राष्ट्रधर्म

Vol. 35 1998 No. 1-6

राष्ट्रधर्म
ज्येष्ठ-२०५५
जून-१९९८
१०/-
अटल चुनौती अखिल विश्व को, भला-बुरा चाहे जो माने

अमृतवाणी

यस्य न विपदि विषादः सम्पदि हर्षो रणे न भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।

(पञ्चतन्त्र, २/१९०)

जो विपत्ति में दुःख को नहीं प्राप्त होता, जो सम्पत्ति में सुख को नहीं प्राप्त होता तथा जो युद्ध में कायरता को नहीं प्राप्त होता; तीनों लोकों के तिलक ऐसे पुत्र को संसार में कोई-कोई माता ही जन्म देती है।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधम् आचारो हन्त्यलक्षणम्।।

(महाभारत, ५/१४९८)

विनयशीलता अपयश का नाश करती है, पराक्रम अनर्थ का नाश करता है, क्षमाशीलता सदैव क्रोध का नाश करती है तथा सदाचार दुर्गुणों का नाश करता है।

अकारणाविष्कृतवैरदारुणाद्
असज्जनात कस्य भयं न जायते।
विषं महाहेरि व यस्य दुर्वचः
सुदुःसहं संनिहितं सदा मुखे।।

(बृहस्पतिनीतिसार, ११२)

बिना किसी कारण के ही दारुण शत्रुता मानने वाले दुष्ट व्यक्ति से कौन नहीं भयभीत होता, जिसके मुख पर दुःसह दुर्वचन सदैव उसी प्रकार से रखे रहते हैं, जिस प्रकार भयंकर सर्प के मुख में विष रखा रहता है।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं ह्यौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।

(हितोपदेश, १/१७१)

शास्त्रों को पढ़े हुए लोग भी मूर्ख ही रहते हैं यदि वे पढ़ी हुई बातों के अनुसार आचरण करता है, वास्तव में वही विद्वान् है। औषधि कितनी ही अच्छी क्यों न हो, कोई रोगी केवल उसका नाम ले लेने से रोगमुक्त नहीं हो सकता।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता,
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता,
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव सन्दृश्यते।।

(चाणक्य शतक, १२/१५)

धर्म में तत्परता, वाणी में मधुरता, दान के प्रति उत्साह, मित्र को धोखा न देना, गुरु के प्रति विनम्रता, चित्त में अत्यन्त गम्भीरता, आचरण में पवित्रता, गुणों से प्रेम होना, शास्त्र में अत्यन्त ज्ञान, रूप की सुन्दरता तथा भगवद्भक्ति— ये सभी गुण सज्जनों में ही देखे जाते हैं।

प्रस्तुति—डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

'शक्ति-९८ अभियान से जुड़े शीर्ष वैज्ञानिक (बाएँ से) डॉ० के संस्थानम्, डॉ० आर० चिदम्बरम्, डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम एवं डॉ० अनिल काकोडकर।

हमें इन पर गर्व है

डॉ० होमी जहाँगीर भाभा (१९६५ में दिवंगत) के सुयोग्य उत्तराधिकारियों ने गत ११ एवं १३ मई १९९८ को पोखरन में पाँच (क्रमशः तीन और दो) परमाणु-विस्फोट कर भारत को उन पाँच देशों के समकक्ष स्थापित कर दिखाने में सफलता प्राप्त की है, जो अपने को महाशक्ति मान बैठने के घमण्ड में चूर थे। पूरा विश्व इसे विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया। जड़वत, मूर्त्तवत, स्तब्ध।

सम्पूर्ण राष्ट्र को अपने इन विज्ञान पुरुषों पर गर्व है। 'राष्ट्रधर्म' राष्ट्र के स्वाभिमान को जाग्रत कर उसे विश्व मंच पर गौरवपूर्वक अधिष्ठित कराने वाले भारत माता के इन तपःपूत सपूतों का हार्दिक अभिनंदन करता है।

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३५ अंक–१

युगाब्द – ५१००

ज्येष्ठ – २०५५

(जून – १९९८)

मूल्य : रु. १०.००

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :
• सुरेश चन्द्र

महाप्रबन्धक :
• सत्येन्द्रपाल बेदी

दूरभाष : २२२९०१

प्रस्तुति

लेख

 मुखपृष्ठ–सज्जा : संजय खरे

मुख-पृष्ठ-परिचय

नीचे – भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (ट्राम्बे)
मध्य – अग्नि प्रक्षेपास्त्र
बाएँ (ऊपर से) – अटलबिहारी वाजपेयी (प्रधानमंत्री)
लालकृष्ण आडवाणी (गृहमंत्री), जार्ज फर्नाण्डीज (रक्षामंत्री)
दाएँ (ऊपर से) – जनरल वी.पी. मलिक (स्थल सेनाध्यक्ष)
एयर चीफ मार्शल एस.के. सरीन (वायु सेनाध्यक्ष)
एडमिरल विष्णु भागवत (जल सेनाध्यक्ष)

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३५ अंक–२

युगाब्द – ५१००

श्रावण – २०५५

(जुलाई – १९९८)

मूल्य : रु. १०.००

☆

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

☆

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

महाप्रबन्धक :

• सत्येन्द्रपाल बेदी

दूरभाष : २२२६०१

प्रस्तुति

लेख

कहानी

कविता

स्तम्भ

मुख-पृष्ठ-परिचय

'हिन्दू पदपादशाही' के संस्थापक
छत्रपति शिवाजी के दरबार की एक झलक

Exchange

अगला अंक-विशेषांक

'राष्ट्रधर्म' का आगामी अंक (अगस्त, ९८) **'अपनी स्वतंत्रता के पचास वर्ष'** विशेषांक होगा। विशेषांक में देश, विदेश के अधिकारी विद्वानों के विभिन्न विषयों पर लेख होंगे।

- **हमने स्वतंत्रता कैसे पायी?**
- **देश खण्डित क्यों और कैसे हुआ?**
- **१५ अगस्त १९४७ के बाद भारत ने कितना क्षेत्र गँवाया?**
- **पर्यावरण की हानि क्यों कर हुई?**
- **औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ चारित्रिक-पतन के आयाम कैसे बढ़े?**
- **वैज्ञानिक प्रगति की राह में रोड़े कैसे अटकाये गये?**
- **विदेश-नीति, रक्षा-नीति, गृह-नीति, अर्थ-नीति, शिक्षा और विकास नीति की विफलता के क्या कारण रहे?**
- **अनजाने ही हम कितने बदल गये, कितने भटक गये?**
- **विकास योजनाओं की 'गरीबी बढ़ाओ' में परिणत क्यों हुई? गाँव उजड़े क्यों, नगर बिगड़े क्यों?**

आदि विषयों पर तल-स्पर्शी चिन्तन-परक तथा दिशाबोधक सामग्री होगी।

अपनी प्रति सुरक्षित कराना न भूलें।

विज्ञापन प्राप्ति की अन्तिम तिथि २० जुलाई' ९८

पृष्ठ : १०० | **मूल्य : रु० १२.००**

स्मरणीय दिवस

१ जुलाई सन् १८५७	राज्याभिषेक नाना साहब पेशवा
४ जुलाई सन् १८९७	अल्लूरी सीताराम राजू-जन्म
४ जुलाई सन् १९०२	स्वामी विवेकानन्द-निधन
६ जुलाई सन् १९०१	डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी-जन्म
६ जुलाई सन् १९०६	श्रीमती (मौसीजी) लक्ष्मीबाई केलकर- जन्म
८ जुलाई (इस वर्ष)	सन्त नामदेव समाधिस्थ (आषाढ़ शु०-१४, सं० १४०७)
९ जुलाई (इस वर्ष)	गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ शु० पूर्णिमा)
१२ जुलाई (इस वर्ष)	गो० तुलसीदास-मृत्यु (श्रावण कृ०-३ सन् १६८०)
१४ जुलाई सन् १६६०	बाजीप्रभु देशपाण्डे-बलिदान
२० जुलाई सन् १९२०	सारदा माँ समाधिस्थ
२३ जुलाई सन् १८५६	लोकमान्य तिलक-जन्म
२३ जुलाई सन् १९०६	चन्द्रशेखर आजाद-जन्म
२६ जुलाई सन् १९७२	माननीय बाबा साहेब आपटे-मृत्यु
२९ जुलाई सन् १८९१	ईश्वर चन्द्र विद्यासागर-मृत्यु
३० जुलाई (इस वर्ष)	गो० तुलसीदास-जन्म (श्रावण शु०-७, सं० १५५४)

वे बहुत दुःखी हैं; उनके हाथों के तोते उड़े हुए हैं; उनके दिल की धड़कनें बढ़ गयी हैं, दिमाग में उथल-पुथल मच गयी है। उनकी समझ में नहीं आ रहा कि क्या करें, क्या न करें? लेकिन इस दुःख से मुक्ति तो पानी ही है, इस परेशानी से निजात कैसे मिले, इसके लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा और उनकी दिमागी-चक्की ने मोटा-महीन पीसने का जुगाड़ जुटा ही लिया। तोते तो उनके हाथ से उसी दिन उड़ गये थे, जिस दिन श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित भाजपा और सहयोगी दलों की सरकार को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो गया था। फिर भी आसरा लगाये थे कि सुश्री जयललिता की कृपा से सरकार किसी भी दिन गिर सकती है; परन्तु हुआ बिल्कुल उलटा। पोखरण में 'बुद्ध भगवान् का अट्टहास' गूँज उठा। विश्व भर में जिसकी प्रतिध्वनि से भूचाल आ गया। अमरीका ने प्रतिबन्ध लगाने की धमकी क्या दी, दो दिन के अन्दर 'दो ठहाके' और गुंजित हो गये। धमकी का जवाब 'गौतम बुद्ध के ठहाके'। क्या नायाब जवाब था 'शक्ति' के परीक्षण के माध्यम से। उड़े हुए तोते तो हाथ आये नहीं; आ भी नहीं सकते थे, पर ऊपर से दिल की धड़कनें और बढ़ गयीं इन धमाकों से। दिमाग में मची उथल-पुथल ने रास्ता ढूँढा। पोखरण-परीक्षणों के विरोध की मुहिम छेड़ दी गयी। अमेरिका, चीन और पाकिस्तान के ढोल-धौंसों के स्वर में स्वर मिलाकर 'पिपिहिरी' बजायी जाने लगी। ११ मई, ९८ का दिन, जिस दिन 'सूर्य कोटि समप्रभ' प्रकाश से दिगन्त आलोकित हो उठा था, उन्हें अन्धकार दिवस लगा; 'राष्ट्रीय शर्म' उन्हें फिर बड़ी 'शिद्दत से महसूस' हुई। मारे शर्म के उनकी गर्दनें झुक नहीं,

दिन नहिं चैन, रैन नहिं निंदिया...

लटक गयीं। राष्ट्रीय-गौरव के प्रत्येक क्षण में उनकी गर्दनें पहले भी 'शर्म से' झुक जाती रही हैं। बड़े शर्मदार हैं वे; बड़े 'हयावाले' हैं वे। तो क्या करें कि इन 'पोखरणी धमाकों' से लोगों का ध्यान बँटाने के लिए! 'धन्यवाद बजरंगियो! तुमने बहाना दे दिया हमें', 'बहुत आभारी हैं हम तुम्हारे!' वे लगे चिल्लाने 'हाय हुसेन हम न हुए!' 'तुम्हारी दिव्य पेण्टिगें मरदूदों ने तोड़ डालीं घर में घुसकर!' 'हुसेन! डरना नहीं, तुम संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं।' और ये हुँकारें, ये चिल्ल-पों, सब की हवा निकल गयी- हुसेन ने उनसे बिना पूछे माफी माँग ली अपनी काली करतूत के लिए। हवा जरूर निकल गयी; पर गुब्बारा फूटा नहीं था। सो गुबार निकालते रहे और गुब्बारा दुबारा फुलाने की नयी तरकीबें सोचते रहे। अभी तरकीबें सोच ही रहे थे कि बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा; टूटा क्या, बिल्ली ने छींका तोड़ने के लिए अपनी आदत के मुताबिक झपट्टा मारा- 'अयोध्या में राम-जन्मभूमि पर मन्दिर बनाने की तैयारी हो रही है; पत्थर गढ़े जा रहे हैं; केन्द्र में अटल और प्रदेश में कल्याण सरकार की मिलीभगत से रातोंरात मन्दिर बनाया जाने को है।'

बस, फिर क्या था! वे भी 'बेसुरे-सुर' में अपना 'सुर' मिलाने लगे। संसद् में हंगामा खड़ा करो; गुल-गपाड़ा मचाओ; कार्यवाही न चलने दो, का 'हल्ला बोल' प्रारम्भ कर दिया गया। अखबारों में लेख, वार्तायें, वक्तव्य छपाना शुरू; पूरा गोयबेल्सी तौर-तरीका चालू। लेकिन 'वे' हैं कौन, जो यह सब करने पर हरदम कमर कसे रहते हैं? 'वे' अपरिचित नहीं हैं; बखने लोग हैं; दुनिया उन्हें भली भाँति जानती है। 'वे' एक पूरी जमात हैं; पूरा गिरोह हैं, जिनकी जड़ें विदेशी मिट्टी-पानी और खाद से अपनी खूराक पाती हैं और यहाँ 'आक्सीजन' खाकर वायुमण्डल में अपनी 'कार्बन-डाइ-आक्साइड' छोड़ने की उनकी जन्मजात आदत है। उनकी अपनी एक 'बिरादरी' है- सेक्यूलर बिरादरी। वैसे वे देखने में कई रंग व नस्ल के हैं; परन्तु उनके दंश प्रायः समान हैं। इस स्वघोषित सेक्यूलर बिरादरी की एकमात्र सम्मिलित फितरत यह है कि 'सब काहू से दोस्ती पर हिन्दू से बैर'। अतः भारत में एक हिंदुत्वनिष्ठ नेतृत्व वाली सरकार बन जाये; फिर बहुमत सिद्ध कर ले जाये; फिर परमाणु-परीक्षणों की 'शक्ति' प्रदर्शित कर दिखाये और फिर अमरीकी प्रतिबन्धों की धौंस-पट्टी के सामने सीना तानकर दो-दो हाथ करने को तैयार हो जाये, तो इस बिरादरी के सीने पर साँप न लोटे, यह सम्भव ही नहीं है। डॉलर और पेट्रो-डॉलर शक्तियों के हाथ की कठपुतली बनी इस सेक्यूलरी जमात की गिरोहबन्दी भी बड़ी अद्‌भुत चीज है। आपस में एक-दूसरे को निगल जाने के मंसूबे साधते रहने वाले इस जमाती

गिरोह को उस समय एक होते देर नहीं लगती, जब इन्हें हिन्दुत्व सामने ताल ठोकता खड़ा दिखायी दे जाता है।

अटल सरकार अटल न रहने पाये, इसे गिराना बहुत जरूरी हो गया है; क्योंकि यदि यह अपने पूरे कार्य–काल भर बनी रह गयी, तो भारत एक आत्म–गौरव–सम्पन्न परम शक्तिशाली देश बन जायेगा, यह आशंका अमरीका को सताने लगती है और संभवतः इसी कारण चील–झपट्टामार पद्धति से देश की सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी की सर्वेसर्वा बन गयी इटालियन संगमर्मर की मूर्त्ति–जैसी भावहीन भंगिमा वाली महिला को एकाएक 'इलहाम' हुआ है कि अयोध्या में रामजन्मभूमि पर मन्दिर बनाया जाने वाला है। प्रचार–तंत्र के भोंपू बजने लगे– 'हाय! मन्दिर बन जायेगा, तो हमारा क्या होगा? हमें कौन पूछेगा फिर? इस 'विलायती से देसी बनी' महिला ने सीधे प्रधानमंत्री से ही जवाब तलब कर डाला। जवाब जैसा मिलना चाहिए था, मिला; पर उससे संतुष्ट किसे होना था! कठपुतली के पीछे का सूत्रधार तो कोई और ही ठहरा, सो प्रचार अभियान जारी। अब इस 'महारानी विक्टोरिया' से कौन पूछे कि अयोध्या में जब 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला' हुआ था, तो प्रधानमंत्री कौन था? जब देश भर में राम–जानकी रथ–यात्रायें निकली थीं, तो उनका सम्मिलित स्वागत दिल्ली के राम–लीला मैदान में करने का वादा किस प्रधानमंत्री ने किया था? राम–जन्मभूमि का ताला किस प्रधानमंत्री के समय में खुला था? देश–विदेश से आयीं रामशिलाओं को सुरक्षित अयोध्या तक पहुँचाये जाने की सुचारु–व्यवस्था किस प्रधानमंत्री ने करायी थी? मन्दिर के सिंहद्वार का शिलान्यास किस प्रधानमंत्री की अनुमति से हुआ था और जब विवादित ढाँचा ढहाया गया, तो किस पार्टी का प्रधानमंत्री था? देवी जी! भोली कतई नहीं हैं कि इन प्रश्नों का उत्तर आपको ज्ञात न हो। फिर जो मन्दिर–निर्माण की तैयारी का काम गत आठ वर्षों से दिन के खुले उजाले में लगातार हो रहा है; जिसके चलते आपके पतिदेव से लेकर संयुक्त–मोर्चा तक की सरकारें बनती–बिगड़ती रहीं, आती–जाती रहीं; पर किसी को कभी कोई आपत्ति नहीं हुई, उसका 'इलहाम' आपको आज ही क्यों हुआ है? यह 'वही' आप पर कहाँ से 'नाजिल' हुई है, इसका अनुमान लगाना किसी के लिए कठिन नहीं है।

और जो इस मुहिम में आज आपके साथी–बाराती बने हैं, वे क्या वही लोग नहीं हैं, जिन्होंने देश–विभाजन की सैद्धान्तिक–शब्द–पीठिका तैयार की थी (श्री निखिल चक्रवर्त्ती ने लिखी थी वह शब्द–पीठिका); वही लोग नहीं हैं, जिन्होंने १९६२ में चीन को आक्रमणकारी मानने से साफ इनकार कर दिया था और उसके कसीदे पढ़ते रहे थे, क्या ये वही नहीं हैं, जिन्होंने इमर्जेन्सी लगवाने की गलत राह सुझाई थी आपकी (स्वर्गीया) सासजी को? क्या ये वही चेहरे नहीं हैं, जिन्होंने १९७४ के पोखरण–अणु–परीक्षण के बाद (आपकी सासजी के शासन–काल में) अमरीकी राष्ट्रपति से भारत के विरुद्ध कठोर प्रतिबन्ध लगाने का आग्रह किया था? इनके चेहरे कितने दागदार हैं; कितने मनहूस हैं, क्या आपको पता नहीं? जिस पार्टी का उसके जन्म–काल से इतिहास ही देशद्रोह का रहा हो, उसकी असलियत, उसके नेताओं की असलियत क्या आप नहीं जानती? नहीं जानती हैं, तो जान लें। एक हैं पश्चिम बंगाल के स्वनामधन्य सर्वश्रेष्ठ सांसद्। ये भी बैरिस्टर हैं और इनके पिता भी बैरिस्टर थे; ये भी लोकसभा सदस्य हैं, इनके पिताजी भी लोकसभा के कई बार सदस्य रहे थे। ये कट्टर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट हैं और शायद सदा के लिए भूल गये हैं कि इनके पिताजी कट्टर हिन्दू सभाई थे और अनेक वर्षों तक हिन्दू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे थे। एक नेता हैं– मुस्लिमों के स्वघोषित सबसे बड़े हितैषी। इनके माता–पिता ने गाँव में राम–शिला का पूर्ण श्रद्धा से पूजन किया था; इनके एक प्रदेश अध्यक्ष हैं, जिनके शिला–पूजन करते हुए फोटो तब के अखबारों में प्रमुखता से छपे थे। आज यही लोग, जिनका 'दोमुँहापन' लोकविदित है, छाती पीट रहे हैं; कि हाय! हाय!! गजब हुआ जा रहा है; मन्दिर बनने वाला है; मन्दिर बन जायेगा, तो क्या होगा! अरे चीख–पुकार मचाने वालो! मन्दिर तो वहाँ पहले से ही है; उसे नया भव्य–रूप देने के लिए गत आठ वर्षों से पत्थर मँगाये जा रहे हैं; घिसाई स्थपतियों की देख–रेख में लगातार चल रही है; तैयार हो चुके स्तम्भों के चित्र समाचार–पत्रों में समय–समय पर छपते रहे हैं; आपकी सरकारों के समय से ही यह काम डंके की चोट पर हो रहा है आपको 'खबर' अब लगी है!

लेकिन कौन समझाये इन 'बाबरी के दीवानों' को? बड़ी दीवानगी है एक दीवाने को समझाना; पर ये तो 'ये-वे-बहुतेरे' हैं, जिनकी आँखों की नींद उड़ी हुई है, जिन्हें 'दिन नहिं चैन रैन नहिं निंदिया'। लगता है, अपनी करतूतों से जिस तरह ये बाबरी ढाँचा ढहवाकर ही माने, उसी तरह ये जन्मभूमि पर मन्दिर बनवाकर ही मानेंगे। ❒

– आनन्द मिश्र 'अभय'

भारत ही माता है ...

– इन्द्रेश कुमार

विश्व भर में २०० से अधिक छोटे बड़े देश हैं। कुछ देश ईसाइयत में विश्वास रखते हैं तो कुछ देश इस्लाम सम्प्रदाय को मानने वाले हैं, कुछ ऐसे देश हैं जो बौद्ध मत के अनुयायी हैं; परन्तु भारत हिन्दू संस्कृति का देश है, हिन्दुत्व इसका प्राण है। भारत अनेक मत, पंथ, सम्प्रदायों की जननी है। भारत में मत, सम्प्रदायों की इतनी अधिकता है इस कारण लगता है कि कहीं समाज खण्ड–खण्ड तो नहीं हो जायेगा, परन्तु इस सबके बावजूद आपसी टकराव में हिंसा नहीं हैं। मतभेद हैं, परन्तु कत्लेआम नहीं है। बुद्धि के स्तर पर वाद–विवाद है, जिसको शास्त्रार्थ कहते हैं, परन्तु उसमें घृणा नहीं है; इसलिए क्योंकि हिन्दुत्व एक जीवन पद्धति है; जिसमें कट्टरता को स्थान नहीं है। हिन्दुत्व से ओतप्रोत भारत में विविधता में एकता का मंत्र है। पंथ अनेक– गन्तव्य एक का सिद्धांत है। भाईचारा है, सहिष्णुता है, सभी पंथ साथ–साथ चलते हैं। हिन्दू पूजा पद्धति से सनातनी है, वह आर्यसमाजी हुआ, बौद्ध, सिख, जैन बना, राधास्वामी, निरंकारी, लिंगायत अथवा कबीरपंथी भी हैं। परन्तु हजारों सम्प्रदायों में बँटने के बावजूद भी एक हैं। इन सम्प्रदायों में जाना और एक से दूसरे सम्प्रदाय में चले जाना; आज भी धर्मान्तरण अथवा मतान्तरण नहीं माना गया; परन्तु अगर भारतीय (हिन्दू) जन मुसलमान अथवा ईसाई बना, तो इसको धर्मान्तरण अर्थात् मतान्तरण माना जाता है।

ईसाईयत में व इस्लाम में अनेक पंथों व विचारों को स्थान नहीं है, इसलिए ये मत कट्टरवादी कहलाते हैं। परन्तु कालक्रम में भी अनेक मत जन्म ले रहे हैं। इस्लाम में दो बड़े धड़े हैं– शिया और सुन्नी। ईसाइयत के दो प्रमुख वर्गीकरण हैं– कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट। ये आपस में खून बहाते हैं। इनके आपसी वैमनस्य एवं संघर्ष के किस्से विश्व विख्यात हैं। इस्लाम और ईसाईयत जीवन पद्धति कम राजनैतिक विचार अधिक हैं। जहाँ–जहाँ भी ये सम्प्रदाय गये, इन्होंने वहाँ–वहाँ रक्तपात करके ही अपना साम्राज्य स्थापित किया।

विश्व के मानचित्र पर इंग्लैंड, अमरीका, कनाडा, चीन, जापान ईरान, इराक, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक छोटे–बड़े देशों में हमारा भी एक देश है; जिसका नाम 'भारत' है, हिन्दुस्थान है। प्रत्येक देश में रहने वाला एक जनसमुदाय है और वह जनसमुदाय प्रायः अपनी–अपनी धरती के नाम से पहचाना जाता है, जैसे चीन के रहने वाले चीनी, जापाननिवासी जापानी, अमेरिका के अमेरिकन, फ्रांस के लोग फ्रांसीसी, ईरान के नागरिक ईरानी। इसी प्रकार से इस वैश्विक सत्य सिद्धांत के अनुसार भारत के नाम से भारतीय, हिन्दुस्थान के नाम से हिन्दू जाने जाते हैं। भारतीय और हिन्दू का नाता शरीर और आत्मा का संबंध है। शरीर बिना आत्मा के मृत है और आत्मा बिना शरीर के मात्र परोक्ष सत्ता है। जब दोनों एक–दूसरे के धारक बनते है, तभी जीवन है।

जब हम विश्व के मानचित्र पर नजरें दौड़ाते हैं तब एक और प्रश्न मन में उठता है कि भारत एक ऐसा देश है, जिसके साथ 'माता' शब्द विश्व भर के लोग लगाते हैं अर्थात् 'भारत माता'। विश्व के अन्य किसी भी देश के साथ माता शब्द सार्वजनिक रूप से, आम बोलचाल में नहीं बोला जाता है। इसलिए कभी न तो पढ़ा और न ही सुनने में आया कि लोग कह रहे हो चीन माता, जापान माता, इंग्लैंड माता, कनाडा माता, ईरान माता, इराक माता आदि–आदि। विभिन्न देशों के लोग भी अपनी–अपनी भाषा में अपनी–अपनी भूमि के साथ 'मदरलैण्ड' या 'फादरलैण्ड' जैसे शब्द लगाते हैं, परन्तु फिर भी जैसे 'भारतमाता' शब्द का प्रयोग प्रचलित है, वैसा अन्य देशों के साथ 'माता' शब्द अपनी–अपनी भाषा में ही क्यों न हो परन्तु प्रचलित नहीं है। इसमें से एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न जन्म लेता है कि भारत के साथ ही 'माता' शब्द क्यों? अन्य किसी भी देश को 'माता' के नाम से सार्वजनिक रूप से क्यों नहीं पुकारा गया।

सर्वप्रथम हम 'माता' किसको कहते हैं और क्यों कहते हैं तथा इसका सृष्टि में कैसा व कौन–सा स्थान है? इसका विचार करना आवश्यक है। 'माता' अर्थात जननी अर्थात् जीवनदायिनी अर्थात् संरक्षिका अर्थात् पालन

पोषण करने वाली अर्थात् जीव को जन्म देने वाली को हम 'माता' कहते हैं। जब हम माता के दर्जे (स्थान) की चर्चा करते हैं, तो ध्यान में आता है कि सभी सम्प्रदायों, ग्रंथों, सन्तों एवं विद्वानों ने कहा है कि सृष्टि में भगवान के पश्चात् माँ का स्थान है; इसका कारण स्पष्ट है 'प्रभु' के पश्चात् सृष्टि की रचना करने की क्षमता नारी में और जो नारी जीव अर्थात् प्राणी मात्र को जन्म देती है वह 'माता' कहलाती है। प्रभु राम ने भी जननी व जन्मभूमि की महिमा का निम्न शब्दों में गुणगान किया है:-

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।।

मनुष्य कितना भी बड़ा और महान क्यों न हो? वह राजनैतिक दृष्टि से देश के राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री के पद पर बैठा हो, अध्यात्मिक दृष्टि से वह महर्षि, ब्रह्मर्षि ही क्यों न हो, विद्वता में मनुष्य चाहे वैज्ञानिक, ज्योतिषी, डाक्टर, इंजीनियर, आचार्य, लेखक अथवा कवि ही हो, आर्थिक दृष्टि से मानव चाहे करोड़पति, अरबपति हो अथवा अति सामान्य मजदूर, किसान हो; प्रशासनिक दृष्टि से मनुष्य मुख्य सचिव, निर्देशक पद पर कार्यरत हो परन्तु जब भी मनुष्य अस्वस्थ होता है और उस शारीरिक अस्वस्थता में असहनीय दर्द के कारण चिल्लाता है, पुकारता है, तो आपने कभी यह नहीं सुना होगा कि उसने कहा हो "हाय बाप" वह सदैव चिल्लायेगा "हाय माँ"। इस स्वाभाविक व्यवहार से स्पष्ट होता है कि 'माता' ही मनुष्य के कष्ट में सहारा है, प्यार है, दुलार है, पालन-पोषण है। माता ही वह सामर्थ्य रखती है, जिससे शारीरिक कष्ट में मनुष्य को साहस व धैर्य मिलता है।

एक और अनुभव भी जीवन में आता है, जब मनुष्य अबोध अथवा शिशु होता है। दो तीन मास की अबोध अवस्था में वह यह भी नहीं जानता कि कपड़ा मखमली है या रेशमी; परन्तु कहीं भी नं. १, नं. २, कर देता है। इस शौच या लघुशंका को करते हुए वह नहीं जानता है कि रसोईघर है या ड्राईगरूम, नाना की गोद है या दादा की गोद। अच्छा बुरा क्या है, ठीक-गलत किसको कहते हैं। शिशु उस गन्दगी में स्वयं लिपट जाता है तथा दूसरों को भी गन्दा कर देता है। ऐसी अवस्था में घर में अगर पुरुष हो, तो वह यह हिम्मत नहीं जुटाता कि बच्चे को साफ करे बल्कि घर में जो नारी होती है वह दौड़ती है; उसी को आवाज देकर बुलाया जाता है और वह निःसंकोच भाव से बच्चे को साफ-सुथरा कर स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता प्रदान करती है। उस नारी को दुनिया भर में माता कहा जाता है।

विश्व के सभी विद्वज्जन कहते हैं 'माता कुमाता नहीं हो सकती, परन्तु पूत कपूत हो सकता है।' बच्चा कितना भी अवज्ञाकारी, अनाचारी क्यों न हो, माँ बाप की उपेक्षा करनेवाला बन जाये तो भी माँ की ममता (प्यार) ऐसी चीज है, जो बेटे का कभी भी अनिष्ट नहीं मांगेगी और अनिष्ट करने का कभी सोचेगी भी नहीं। वह तो हर समय स्वयं कितने भी कष्ट में रहेगी; परन्तु बच्चे के लिए सदा सुख की ही कामना करेगी। पुस्तकों में एक प्रसंग आता है कि एक युवक अपनी प्रेमिका के चक्कर में फंस माँ का कलेजा निकाल कर अपनी प्रेमिका को भेंट करने दौड़ा जा रहा था। मार्ग में ठोकर लगकर गिर गया, कलेजा दूर जा गिरा, युवक चोट के कारण कराहने लगा। दूर पड़े कलेजे से आवाज आई- बेटा! कहीं चोट तो नहीं लगी, जरा सम्भल कर दौड़ो। सत्य कहा है- माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

भारत के लोगों ने ही भारत को माता कहा और दुनिया के लोगों ने माता की मान्यता दी। हम विचार करें तो ध्यान में आता है कि यह हमारी सांस्कृतिक विशेषता है। भिन्न-भिन्न धरती पर पनपने वाली संस्कृतियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। भारतीय संस्कृति उपकार की, सहिष्णुता की, मानवता की विशेषताएँ लिये है, मजहब एवं जाति का नहीं बल्कि प्राणी मात्र का विचार करें, मनुष्य जीवन भर धरती को गंदगी देता ही चला जाता है। परन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि धरती न तो मनुष्य से रूठती है और न ही कभी फटकारती या डांटती है, न ही कभी दुत्कारती अथवा नफरत करती है, न ही किसी ने देखा होगा कि धरती ने मनुष्य को पीटा हो। धरती सहती चली जाती है- सहती चली जाती है बल्कि बदले में मनुष्य को जीवनयापन हेतु अन्न, फल, सब्जियाँ फूल, प्राणवायु, शीतल जल आदि नाना प्रकार के खनिज व अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्रदान करती है। हम गन्दगी देते हैं और वह रक्षण पोषण करती है। इसीलिए हमने धरती को माता का स्थान दिया। यहीं हमारे देश भारत की संस्कृति तथा ईसाईयत और इस्लामिक संस्कृति में अन्तर है, जिसने हम पर इतना उपकार किया, बदले में हमने उसे सृष्टि में अति श्रेष्ठ व ऊँचा दर्जा दिया है। जो हम पर उपकार करे, बदले में उसका सम्मान व सत्कार कर उसके अहसान अथवा परोपकार को कभी न भुलाते हुए बल्कि उस उपकार को जीवन में ऋण के रूप में मान, उस ऋण को कैसे चुकायें; यही चिन्ता रहती है।

ापक :

ं. दीनदयाल उपाध्याय

ाष्ट्रधर्म

कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

विशेषांक
ी स्वतंत्रता के पचास वर्ष

र्ष – ३५ अंक–३
युगाब्द – ५१००
श्रावण – २०५५
(अगस्त – १९९८)
मूल्य : रु. १२.००

ादाता :
वीरेश्वर द्विवेदी

क :
आनन्द मिश्र 'अभय'

ादक :
रामनारायण त्रिपाठी

निदेशक :
सुरेश चन्द्र

धक :
सत्येन्द्रपाल बेदी

दूरभाष : २२२६०१

०५५

प्रस्तुति

लेख

मुखपृष्ठ सज्जा– संजय खरे

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली की अनुपम उपल

लगातार ३ वर्षों तक प्रदेश में प्रथम

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय पिछले लगातार ३ वर्षों १६६५, १६६६, १६६७ में शैक्ष प्रशासनिक एवं वित्तीय अनुशासन की दृष्टि से प्रदेश में प्रथम आया है। उत्तर प्रदेश की सरकार की एक योजना अ प्रत्येक वर्ष सभी विश्वविद्यालयों की परफारमेंस अप्रेजल की जाती है तथा प्रथम तीन विश्वविद्यालयों को प्रथम, द्विती तृतीय घोषित किया जाता है जिसके लिए रु० डेढ़ करोड़, रु० ७५ लाख एवं रु० ५० लाख का प्रोत्साहन पुरस्कार जाता है। पिछले ३ वर्षों में प्रथम आने के कारण रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय को रु० ४ करोड़ का पुरस्कार (१६६५ करोड़, १६६६ एवं १६६७ में डेढ़–डेढ़ करोड़) दिया गया। संक्षेप में विश्वविद्यालय की निम्नलिखित उपलब्धियाँ र

१. विश्वविद्यालय का शैक्षणिक सत्र पूर्णतया नियमित है। ८ जुलाई को विश्वविद्यालय खुलता है और ८ मई को ग्रीष्मावकाश हेतु बन्द हो जाता है।
२. विश्वविद्यालय पिछले ३ वर्षों में वित्तीय दृष्टि से पूर्णतया सुदृढ़ हुआ है। विश्वविद्यालय की आय रु० ४ करोड़ प्रति वर्ष से बढ़कर १६ करोड प्रति वर्ष हुई है।
३. आय हेतु मितव्ययता, मुद्रण, निर्माण कार्य, फार्मों की बिक्री, टेलीफोन, वाहन, यात्रा, बिजली आदि खर्च पर विशेष नियंत्रण किया गया।
४. नये वित्तीय संस्थान जिसमें कापियों की रद्दी की रिसाइक्लिंग, संबद्धता शुल्क, परीक्षा शुल्क, प्रोफेशनल तथा वोकेशनल पाठ्यक्रम शुल्क, छात्रावास शुल्क आदि नये आयाम खुले।
५. प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों से लगभग रु० २० करोड़ का अनुदान आया।
६. शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के १६१ तथा शिक्षकों के २४० पद सृजित हुए।
७. कई भवनों जिनमें ४ छात्रावास, एक महिला छात्रावास, आई०ए०एस०ई० भवन, अतिथिगृह, इंजीनियरिंग भवन, होटल मैनेजमेंट, आदि भवन बने।
८. यू०जी०सी० ने शिक्षा विभाग को उच्चीकृत कर डिपार्टमेंटल रिसर्च सपोर्ट का दर्जा दिया।
६. मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने शिक्षा विभाग को इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज इन एजूकेशन को राष्ट्रीय स्तर प्रदान किया।
१०. सामाजिक आवश्यकता के अनुसार टीचर ट्रेनिंग (बी०एड० स्पेशलाइजेशन) खोला गया। एम०एड० को उच्चीकृत कर एप्लाइड एम०एड० किया गया। एप्लाइड क्लिनिकल साइकोलॉजी, एप्लाइड फिलॉसॉफी तथा मास्टर आफ सोशल वर्क प्रारम्भ हुए।
११. पं० दीनानाथ माडल स्कूल स्थापित किया गया जिसके लिए भवन एवं भूमि दान में मिली जिसका बाजार मूल्य लगभग रु० ८० लाख है।
१२. इन्स्टीट्यूट आफ इंजीनियरिंग की स्थापना की गयी जिसमें आधुनिकतम विषय इलेक्ट्रानिक्स एण्ड कम्यूनिकेशन इंजीनियरिंग, कम्प्यूटर एण्ड इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी, इलेक्ट्रानिक्स इन्स्ट्रूमेंटेशन, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, मैकेनिकल इंजीनियरिंग तथा केमिकल इंजीनियरिंग खोले गये।
१३. एम०सी०ए० एवं बी०फार्मा तथा होटल मैनेजमेंट के पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये।
१४. योगा केन्द्र स्थापित किया गया।
१५. स्वर्ण जयन्ती जॉब प्रमोशन केन्द्र जिसमें छोटे–छोटे उद्योग–धन्धे हैं प्रारम्भ किये गये। यह समाज के सामान्य जनता का ट्रेनिंग केन्द्र भी है।
१६. १६६५ में केवल ५ संकाय थे अब १५ संकाय हो ग
१७. रूहेलखण्ड क्षेत्र में कई महाविद्यालयों की स्थाप १६६५ में ३५ महाविद्यालय थे अब ५३ महाविद्याल हैं।
१८. ३२ गाँवों को राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत विश ने सम्पूर्ण विकास के लिए अंगीकृत किया है।
१६. रिहैबिलिटेशन, कन्सलटेन्सी एवं काउन्सिलिंग के गया।
२०. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय ने प्रदेश में प्रथम ब महाविद्यालयों का उच्च स्तरीय समिति द्वारा निरीक्षण उनकी कमियाँ दूर की गयीं और शिक्षा की गुणव की गयी।
२१. विश्वविद्यालय ने १६ इन्डाउमेंट भाषण स्थापित कि देश विदेश के कई लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा व्याख आयोजित होती है।
२२. पिछले ३ वर्षों में २० राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के तथा कान्फरेन्सेज ज्वलन्त विषयों पर आयोजित कि
२३. महाविद्यालयों में ५० नये विषय जिसमें अधिकतर विषय हैं, खोलने की अनुमति दी गयी।
२४. टीचिंग लर्निंग मैटीरियल तैयार करने के लिए मानव विकास मंत्रालय, यू०जी०सी० तथा ए०आई०सी०ट सहायता से मीडिया सेन्टर स्थापित किया गया।
२५. ३ वर्षों में लगातार दीक्षान्त समारोह आयोजित कि
२६. कार्यपरिषद, विद्यापरिषद तथा बोर्ड आफ स्टडी डिग्री कमेटी आदि की नियमित बैठकें की गयीं।
२७. परीक्षा कार्य पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत किया गया। शुचिता एवं गोपनीयता पूर्णतया स्थापित की गयी। म तथा डिग्री में विशेष परिवर्तन कर किसी प्रकार क न होने देने का संकल्प कर तदनुसार कार्य किया
२८. कार्यालय कार्य पूर्णतया आधुनिकीकृत कर कम्प किया गया।
२६. प्रदेश के समस्त मैनेजमेंट, एम०सी०ए० तथा होटल पाठ्यक्रमों के संस्थानों में प्रवेश हेतु विश्वविद्यालय ने पूर्वक संयुक्त परीक्षा (यू०पी०एम०कैट०) आयोजित
३०. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों से कोलाबोरेश किया गया।
३१. फैक्स, ई–मेल तथा इन्टरनेट आदि आधुनिक संच का उपयोग विश्वविद्यालय कर रहा है।

रूहेलखण्ड क्षेत्र शैक्षणिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा है जो भी विश्वविद्यालय ने किया है वह बहुत कम है अभी अ करने की आवश्यकता है जिसके लिए विश्वविद्यालय कटि

— कुल

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

स्वाधीनता परिशिष्ट

वर्ष – ३५ अंक–४
युगाब्द – ५१००
भाद्रपद – २०५५
(सितम्बर – १९९८)
मूल्य : रु. १०.००

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :
• सुरेश चन्द्र

महाप्रबन्धक :
• सत्येन्द्रपाल बेदी

दूरभाष : २२२९०१

प्रस्तुति

लेख

कहानी/प्रेरक प्रसंग/व्यंग्य

कविता

स्तम्भ

 मुखपृष्ठ सज्जा– संजय खरे

श्रद्धाञ्जलि

एक और रत्न-दीप बुझ गया...

'राष्ट्राय स्वाहा इदं राष्ट्राय इदं न मम्' की भावना मन में सँजोये, 'परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रं' के दृढ़व्रती, जिनकी अखण्ड दीप मालिका राष्ट्रभक्तों का पथ सतत आलोकित करती रही है, उस मालिका का एक और रत्न–दीप गत २३ अगस्त को रात्रि ८ बजे बुझ गया।

बाल्यकाल से ही 'तेरा वैभव अमर रहे माँ हम दिन चार रहें न रहें' को ज़ीवन–मन्त्र बनाने के लिए कर्म–पथ पर अग्रसर माननीय माधवराव देवळे विविध दायित्वों का निर्वाह करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रान्त प्रचारक, तदनन्तर क्षेत्र प्रचारक, और फिर में विद्याभारती के संरक्षक के रूप में समाज का मार्गदर्शन कर रहे थे। साथ ही 'राष्ट्रधर्म' के संचालक के रूप में भी उनका दिग्बोधक नेतृत्व प्रकाशन को लम्बे समय तक प्राप्त होता रहा था। जरा–जर्जर रोगग्रस्त शरीर होते हुए भी वे यमराज को चुनौती देते हुए ध्येय–पूर्ति की ओर सतत अग्रसर थे; पर काल के सामने किसकी चल पायी है?

आज वे पार्थिव शरीर से भले ही हमारे मध्य नहीं हैं; किन्तु उनके कर्त्तृत्व का नन्दादीप सदैव हमारा पथ आलोकित करता रहेगा। 'राष्ट्रधर्म' का उनकी पुण्य–स्मृति को कोटिशः प्रणाम!

□

त्याग ही सफलता की कुञ्जी है

संघ के अन्दर तत्त्वनिष्ठ और व्यवहार–कुशल लोग ही बढ़ने चाहिए। सिद्धान्त और व्यवहार के सम्बन्ध में उन्नति के बीज निहित हैं। संघ–निष्ठा और लोक–संग्रह ये दोनों संघ के प्रमुख तत्त्व हैं। ऐसी अवस्था में इन दो तत्त्वों का परिपालन होना ही चाहिए। फिर उसके लिए हमें चाहे जितना भी कष्ट उठाना पड़े अथवा कितने भी झंझ का सामना करना पड़े– यह त्याग करने के लिए हमें सिद्ध होना ही पड़ेगा। त्याग ही सफलता की कुञ्जी है। उन के लिए त्याग के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। हमारे त्याग पर ही संघ का भविष्य अवलम्बित है। हम कित नादान हैं कि किसी प्रकार का स्वार्थ त्याग न करते हुए भी कार्य की सिद्धि की अपेक्षा करते हैं; परन्तु यह बात सर्व असम्भव है। त्याग के बिना कभी भी फल नहीं मिलता। त्याग में ही सच्चा सुख है। त्याग से ही अमृत–तत्त्व की प्रा होती है। बिना त्याग किये ही मुफ्त का बड़प्पन पाने का कोई मार्ग संघ के पास नहीं है। त्याग के रास्ते पर यदि लड़खड़ा गये और संघकार्य पिछड़ गया, तो हम महान् अपराधी सिद्ध होंगे।

— **डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार** (परमपूज्य आद्य सरसंघचाल

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

ज्योति-पर्व विशेषांक

वर्ष – ३५ अंक–५
युगाब्द – ५१००
आश्विन/कार्तिक – २०५५
(अक्टूबर – १९९८)
मूल्य : रु. १२.००

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :
• सुरेश चन्द्र

महाप्रबन्धक :
• सत्येन्द्रपाल बेदी

दूरभाष : २२२६०१

प्रस्तुति

लेख

कहानी/प्रेरक प्रसंग/व्यंग्य

कविता

स्तम्भ

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

दीपावली परिशिष्टांक

वर्ष – ३५ अंक–६
युगाब्द – ५१००
मार्गशीर्ष – २०५५
(नवम्बर – १९९८)

मूल्य : रु. १०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : २२२६०१

प्रस्तुति

लेख

कहानी

कविता

स्तम्भ

भारत का तीसरा नोबेल 'रत्न'

मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के एक अन्य नोबेल–पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री राबर्ट सोलोव के कथनानुसार 'अपने पेशे की अन्तरात्मा' प्रो० अमर्त्य सेन को अपनी लोक कल्याणोन्मुख अर्थशास्त्रीय अवधारणा के लिए इस बार स्वीडिश अकादमी ने नोबेल–पुरस्कार प्रदान किया है। मार्क्सवादी, समाजवादी, पूँजीवादी तथा उन्मुक्त–हाटवादी अर्थशास्त्र से लोक–कल्याण सम्भव नहीं, अर्थ–शास्त्र की इस मौलिक अवधारणा के पुरोधा प्रो० अमर्त्य सेन नोबेल–पुरस्कार पाने वाले विश्व–कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा सर चन्द्रशेखर व्यंकट रामन् के बाद तीसरे भारतीय हैं।

भारत को अपने इस 'नोबेल–रत्न' पर महान् गर्व है। 'राष्ट्रधर्म' इस अवसर पर उनका शतशः हार्दिक अभिनन्दन करता है। ❐

कृपया ध्यान दें

अनेक विषमतर तथा कठिन परिस्थितियों में 'राष्ट्रधर्म' ने अपने इस संकल्प का दृढ़ता–पूर्वक पालन करने में कोई कमी नहीं रखी कि मूल्य–वृद्धि न करना पड़े; किन्तु इधर कुछ ऐसी अपरिहार्यता बन गयी है, विशेषकर डाक की दरें एकदम ड्योढ़ी हो जाने के कारण, कि अब पत्रिका का मूल्य बिना बढ़ाये काम नहीं चल पायेगा। अतएव बहुत सोच–विचार करने के पश्चात् यह निर्णय लिया गया है कि दिसम्बर ९८ के अंक से 'राष्ट्रधर्म' की एक प्रति का मूल्य रु. १०/– के बजाय रु. ११/– तथा वार्षिक मूल्य रु. ११०/– के बजाय रु. १२०/– कर दिया जाय।

विश्वास है कि 'राष्ट्रधर्म' के सुधी पाठक तथा अभिकर्त्ता बन्धु इस स्वल्प मूल्य–वृद्धि को अंगीकार कर अपना हार्दिक सहयोग पूर्ववत् प्रदान करते रहेंगे।

— **व्यवस्थापक**

क्या अपराध भी साम्प्रदायिक होता है ?

● बैकुण्ठलाल शर्मा 'प्रेम'

बलात्कार ऐसा जघन्य अपराध है, जिसकी भूरि-भूरि निन्दा एवं भर्त्सना होनी चाहिए तथा दोषी व्यक्तियों को कठोरतम दण्ड दिया जाना चाहिए; किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे तथाकथित सेक्युलरवादी मित्रों का व्यवहार सर्वथा भेद-भावपूर्ण एवं पीड़ित व्यक्ति के धर्म-सम्प्रदाय को ध्यान में रखकर होता है। यह सामाजिक न्याय एवं सेक्युलरवाद के पक्षधर, मानवीय त्रासदी एवं अपराध को भी अपनी वोट-बैंक की राजनीति को ध्यान में रखकर केवल मात्र साम्प्रदायिक दृष्टि से ही देखते हैं। दूर-दराज के झाबुआ में किसी निर्जन स्थान पर ईसाई "ननों" से हुए बलात्कार की घटना पर लालू यादव से लेकर सोनिया गांधी तक, हर रंग के सेक्युलरवादी ने कोहराम मचा दिया। ईसाई चर्च एवं उसके नेताओं ने, जिनके पास अमेरिका और यूरोप से अथाह पैसा चन्दे के रूप में आता है, दिल्ली में प्रदर्शन किया, गृहमंत्री से मिले तथा मीडिया के माध्यम से व्यापक प्रचार भी किया। इन सब लोगो ने मीडिया के सहयोग से एक साधारण घटना (जो बेशक एक जघन्य अपराध था) को 'साम्प्रदायिक रंग' दे दिया; अन्यथा इन लोगों के पास अपनी उस आपराधिक चुपी का क्या जवाब है जो इन्होंने एक नाबालिग बच्ची के सामूहिक बलात्कार पर साधी, जिसे बिहार की राजधानी पटना के व्यस्त बाजार में 'पूजा-उत्सव' की गहमागहमी में उसके माँ-बाप से छीनकर उसके साथ जघन्य अपराध (सामूहिक बलात्कार) किया गया। यह हृदय-विदारक घटना उस प्रदेश में हुई, जहाँ सामाजिक न्याय की पक्षधर एक महिला शासन चलाती है। यही नहीं ! इन्हीं सेक्युलरवादियों एवं मीडिया के पास देश की राजधानी में 'जैन साध्वियों' के साथ दिन-दहाड़े हुए दुर्व्यवहार के प्रति अपनायी बेरुखी का क्या कोई उत्तर है ? यह देश का दुर्भाग्य है कि जन लोगों की सोच एवं व्यवहार सर्वथा साम्प्रदायिक है उन लोगों ने धर्मनिरपेक्षता एवं सामाजिक न्याय का मुखौटा ओढ़ रखा है। आज आवश्यकता है इस मुखौटे को उतारकर इन लोगों को बेनकाब करने की।

— **सी–९८, बी.के. दत्त कालोनी, नई दिल्ली–११०००३**

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३५ अंक–७
युगाब्द – ५१००
पौष – २०५५
(दिसम्बर – १९९८)

मूल्य (एक प्रति): रु. ११.००
वार्षिक शुल्क : रु. १२०.००

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :
• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : २२२६०१

प्रस्तुति

लेख

कहानी/व्यंग्य/प्रसंग

कविता

स्तम्भ

मुख पृष्ठ – संजय खरे

मध्य प्रदेश का 'तेजी से बढ़ता' एक प्रतिष्ठित दैनिक। गत ५ अक्तूबर के उसके अंक के मुख–पृष्ठ पर अ पूर्वजों का धर्म छोड़े कांग्रेस के प्रवक्ता, जो आई०ए०एस० छोड़कर (स्व०) राजीव गांधी के समय में राजनीति में अ और जिन पर फर्जी जनजाति प्रमाण–पत्र दाखिल कर गत लोकसभा चुनाव लड़ने का आरोप है, का वक्तव्य छपा कांग्रेस चार प्रदेशों के आसन्न विधान सभा चुनावों में महँगाई को मुख्य चुनावी मुद्दा बनायेगी। इस वक्तव्य में प्याज भाव ५५ रुपये किलोग्राम के साथ हरी धनिया (धनिये की पत्ती) का भाव रु० १५०/– किलो बताया गया। दूसरे (६ अक्तूबर) उसी दैनिक के मुख–पृष्ठ पर बॉक्स में होशंगाबाद में हरी धनिया का भाव तीन सौ रुपये किलो होने समाचार छपा। भोपाल में एक मांगलिक–समारोह में आये होशंगाबाद के अपने रिश्तेदारों से जब गृह–स्वामी (आतिथ ने इस विषय में चर्चा की, तो रिश्तेदारों ने बताया कि अभी हरी धनिया कहाँ ? अभी तो धनिया बोया ही नहीं ग बेमौसम अधिक बरसात के कारण इस बार तो धनिया काफी देर से बोया जायेगा।

लगभग ढाई महीने पहले देश की राजधानी से प्रकाशित एक सुप्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्रिका (जो पहले अंग्रेजी पाक्षिक थी, और फिर उसी अंग्रेजी नाम से हिन्दी में भी छपती है) में टमाटर के भाव ६५ रु० किलो तथा के २० रु० किलो बताते हुए 'स्टोरी' छपी, तो उसके एक सुधी पाठक ने पत्रिका से पूछा कि इस भाव में देश के कि कोने में टमाटर और गेहूँ बिक रहा है ? पत्रिका को चुप्पी साधनी ही थी , क्योंकि 'स्टोरी' वैसी ही फ़र्जी थी, जैसी कुछ वर्ष पूर्व साध्वी ऋतम्भरा के चरित्र–हनन के लिए इसी पत्रिका ने छापी थी, जिसमें बाँये पृष्ठ पर उन्हें हल की लड़की और दाहिने पर नाई की लड़की बताया गया था।

टमाटर के बाद नम्बर आया प्याज का। बेभाव के भाव खूब छापे गये और ऐसे में भाव न बढ़ते तो क्या कर यहाँ तक तो सब ठीक–ठाक चलता गया ; पर जब नमक के भाव ५० रु० किलो छापे गये, तो तहलका

आह महँगाई ! वाह महँगाई !!

गया, तहलका मचना ही था, न मचता तो आश्चर्य होता। बस, सरकार के कान खड़े हो गये। जनता भी पहले चौं फिर चौकन्नी हो गयी। नमक के भावों की बाँधी गयी हवा ने 'गुब्बारे की हवा' निकाल दी। सरकार से लेकर दू गाँवों तक के लोगों को पता चल गया कि यह किसी भीषण षड्यन्त्र द्वारा फैलायी गयी अफवाह है मात्र अफवाह ! इ पहले सरसों के तेल में 'आर्जीमोन' की कुछ जगहों पर मिलावट का षड्यन्त्र इस सीमा तक सफल हो चुका था सरकार ने देश भर में न केवल खुले सरसों के तेल पर ; वरन् कुछ डिब्बा बन्द ब्राण्डों तक पर प्रतिबन्ध लगा दि नमक के भावों की 'फर्जी वृद्धि' से अब लोग सरसों के तेल में की गयी मिलावट के षड्यन्त्र को भी किसी सीमा त समझने लगे हैं। परन्तु 'लाख टके का सवाल' यह है कि आखिर नित्यप्रति उपभोग में आने वाली वस्तुओं के दाम ' दूनी रात चौगुनी' गति से एकदम बढ़ कैसे गये और देश–प्रदेश की सरकारें कान में तेल डाले तब तक क्यों बैठी र जब तक कि पानी गले तक नहीं आ गया ? आखिर सरकार होती किस लिए है ? किस मर्ज की दवा है सरका जनता चीखती–चिल्लाती रहे, सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच जाये, तब कहीं जाकर सरकार की कुम्भकर्णी निद्रा टूटे, आखिर क्या कहा जाय; क्या माना जाय सिवाय निकम्मेपन की हद तक पहुँच गयी अदूरदर्शिता के ? जनता ने अ सहनशीलता एवं धैर्य की ऐसी अग्नि–परीक्षा दी है इन दिनों कि आश्चर्य होता है। अन्य कोई छोटा–मोटा देश हो तो वहाँ निश्चय ही उपद्रव भड़क उठे होते। शायद भारत में भी ऐसे उपद्रवों का ताण्डव रचाने की कोई योजना होगी विदेशी हाथ या हाथों की ; पर भारत तो भारत ठहरा, यहाँ इतनी जल्दी पानी में आग लगाने की कोई भी योज क्या कभी सफल हो सकती है ?

तो आइये, जरा पीछे मुड़कर देखें। किसे याद है कि यह देश कभी 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था ; य कभी घी–दूध की नदियाँ बहती थीं ; यहाँ कभी घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे और उस सुख–समृद्धि–सम सुशासित, सुरक्षित भारत की झलक आज भी 'सोने की थारी मा भोजना परोसें' और 'सोने को गड्डुआ गंगाजल पा जैसी लोकगीतों की पंक्तियों में देखी जा सकती है ; किन्तु यहीं श्री–सम्पन्नता उसके लिए तब अभिशाप बन गयी,

वर्ष १९६५। स्थान– नई दिल्ली। केन्द्र सरकार द्वारा खूब सोच–समझकर आयोजित की गयी पत्रकार–वार्त्ता देश के एक सुविख्यात अणु–विज्ञानी की। प्रश्नोत्तरों के बीच साधारण से दिखने वाले एक संवाददाता ने प्रश्न किया कि अणु–बम बनाने पर अनुमानतः क्या लागत आयेगी ? सीधा, सपाट उत्तर था वैज्ञानिक का 'लगभग साढ़े सैंतीस लाख रुपये।' उत्तर सुनते ही सन्नाटा–सा छा गया खचाखच भरे वार्त्ता–कक्ष में। फिर क्या था ? देश भर में तहलका मच गया। सरकार ही नहीं; उन वाममार्गी पत्रकारों और बुद्धिजीवियों की भी बोलती बन्द हो गयी, जो यह प्रचारित करने में एड़ी–चोटी का पसीना एक किये थे कि "अणु–बम बनाना 'बेहद खर्चीला' है; भारत यह खर्च नहीं उठा सकता; इतने खर्च में तो इतने विद्यालय, इतने अस्पताल, इतने पुल, इतने कारखाने बन सकते हैं; विकास–कार्य रुक जायेगा; देश की शान्तिवादी छवि धूमिल हो जायेगी" आदि–आदि। यह सारा प्रचार, सारा तर्क–जाल ध्वस्त हो गया था; झूठ का भाण्डा फूट गया था; सत्य जनता के सामने उजागर हो गया था।

जानते हैं, कौन था वह अखबार; कौन था वह सम्पादक; कौन था वह संवाददाता और कौन था वह वैज्ञानिक ? अखबार का नाम– 'आर्गनाइजर' (अंग्रेजी साप्ताहिक); सम्पादक का नाम– केवलरतन मलकानी, संवाददाता का नाम– लालकृष्ण आडवाणी और वैज्ञानिक का नाम– डॉ० होमी जहाँगीर भाभा।

'गोरी' दगा : 'बुद्ध' मुस्काये

यह प्रश्न और उत्तर कितना महँगा सिद्ध होगा न केवल उस वैज्ञानिक को; अपितु पूरे देश को, इसका अनुमान तब किसी को नहीं था– न उस अखबार को, न उसके विचक्षण–बुद्धि सम्पादक को, न उस संवाददाता को, न उस वैज्ञानिक को, न देश की सरकार को। बाद में जब एक अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान–सम्मेलन में जाते हुए उस वैज्ञानिक की तथाकथित विमान–दुर्घटना में मृत्यु का समाचार आया, तो लोग सन्न थे; क्योंकि वह विमान दुर्घटना–ग्रस्त नहीं हुआ था; वरन् उसे रात को उस समय मार गिराया गया था, जब वह बर्फ से ढँके आल्प्स–पर्वत को पार कर रहा था। तब आरोप लगा था अमरीका पर, उसकी कुख्यात जासूसी संस्था सी०आई०ए० पर। देश अपने मूर्द्धन्य अणु–वैज्ञानिक से वञ्चित हो गया था उस समय। भाभा जैसे अपने मूर्द्धन्य अणु–वैज्ञानिक को गँवा बैठना देश को कितना महँगा पड़ा, कितना घात दे गया; यह एक इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत को अपना पहला आणविक–विस्फोट कर पाने में लगभग नौ साल लग गये।

१९६५ में अपने चहेते पाकिस्तान की भारत के हाथों करारी हार भला अमेरिका कैसे सहन कर सकता था, जबकि उसके सैबरजेटों की धुनाई नन्हें से 'नैट' ने कर डाली थी और उसके अजेय पैटन टैंकों का कब्रिस्तान हमारे बहादुर जवानों ने खेमकरन में बना डाला था, लाहौर का हवाई अड्डा अपने नागरिकों को सुरक्षित निकालने के लिए खुला रहने देने के लिए उसे हाथ जोड़ने पड़े थे; क्योंकि वह भारत की तोपों की मार में था। पाकिस्तान की हार को अपनी हार मान बैठा था अमेरिका और इस हार का बदला चुकाया था उसने डॉ० भाभा का विमान गिरवाकर तथा प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री को ताशकन्द में परलोक भिजवा कर। फिर भी १९७४ में ठीक बुद्ध–पूर्णिमा के दिन पोखरण में 'बुद्ध के मुस्कराने' को वह रोक नहीं पाया। ध्यातव्य है कि जिस महान् वैज्ञानिक ने 'बुद्ध के मुस्कराने' की पूरी तैयारी १९६५ में ही कर दी थी, उसे वास्तव में 'बुद्ध के मुस्कराने' के पश्चात् जब मृत्यूपरान्त 'भारत–रत्न' देने का प्रस्ताव इन्दिरा सरकार के पास भेजा गया था, तो उस प्रस्ताव को विचार योग्य तक माना गया था। उसका यह मलाल उसके ठीक चौबीस वर्ष बाद ठीक पच्चीसवीं बुद्ध–पूर्णिमा को दुबारा तीन बार 'बुद्ध' के मुस्कराने पर तब फूट पड़ा, जब उसने उसी दिन

भारत के विरुद्ध–अनाप–शनाप प्रतिबन्ध लगाने में एक क्षण की भी देर नहीं लगाई। अमरीका की यह बौखलाहट इसलिए भी है कि इस बार बुद्ध केवल 'मुस्काये' नहीं, 'ठट्ठा मारकर हँसे' हैं। अणु–बम ही नहीं, हाइड्रोजन–बम के धमाके गूँज गये उस दिन पूरे विश्व में और स्वयं प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उसकी निर्भीक घोषणा की अपने श्रीमुख से। इतना ही नहीं, ठीक ४५ घण्टे के अन्दर 'बुद्ध' दो बार और हँसे, खिलखिलाकर हँसे। अमरीका बौखलाये नहीं तो भला और क्या करे? उसकी सर्व–सक्षम गुप्तचर संस्था सी०आई०ए० को भनक भी नहीं लगी और पाँच–पाँच अणु–विस्फोट हो गये, वह भी उस भारत के द्वारा, जिसका एक (भूतपूर्व) प्रधानमन्त्री अपनी रीढ़हीनता का परिचय 'अग्नि–प्रक्षेपास्त्र' के परीक्षणों और अणु–विस्फोट की पूरी तैयारियों को रोक कर दे चुका हो।

भगवान् गौतम बुद्ध को तो मुस्कराना ही था, हँसना ही था; क्योंकि इस बार भारत को एक ऐसा प्रधानमन्त्री मिला है, जो किसी और ही मिट्टी का बना है तथा किसी और ही ढाँचे में ढला है। वह मिट्टी भी ईस्पाती है और ढाँचा भी। उसे झुका सकने की शक्ति अमरीका में है, उसका यह दम्भ चकनाचूर हो चुका है। और बेचारी सी०आई०ए०, उसकी तो अपनी शक्ल ही नहीं रह गयी है किसी को दिखाने लायक। अमरीका का पूरा प्रशासन–तन्त्र, पूरा गुप्तचर–तन्त्र हतप्रभ है भारत द्वारा दी गयी 'वञ्चिका' से। खिसियाहट में वह कुछ भी कर सकता है और कुछ भी कर सकने से चूकेगा भी नहीं वह, यह हमें सदैव स्मरण रखना होगा।

जहाँ अमरीका के साथी–बराती चार देशों आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, जापान ने अपने कूटनीतिक प्रतिनिधियों (तीन उच्चायुक्त, एक राजदूत) को वापस बुला लिया है, वहीं पाकिस्तान ने आणविक–विस्फोट करने की धमकी दी है। चीन की तो अमरीका की तरह धमकी देने की पुरानी आदत है, किन्तु उन्हें तो पहले ही यह समझ लेना चाहिए था कि जब 'गोरी' दागा गया था और 'गजनवी', 'अब्दाली', 'बाबर' को दागने की घोषणा की गयी थी, तो 'बुद्ध' के चेहरे पर से १६७४ में छीन ली गयी 'मुस्कान' स्वतः लौट आयी थी और इस बार उनकी इच्छा, खिलखिलाकर, ठट्ठा मारकर हँसने' की थी, क्योंकि अब दिल्ली की गद्दी पर न तो कोई 'पृथ्वीराज' था, जो गोरी को एक नहीं, बीस बार हराकर छोड़ देता, न कोई नेहरू था जो जिन्ना की इस्लामी गुण्डई से डरकर देश का विभाजन स्वीकार कर लेता, न कोई शास्त्री था, जो अपनी भलमनसाहत में जीती हुई धरती ही नहीं, अपनी जान तक गँवा बैठता, न कोई इन्दिरा गांधी ही, जो पूरी तरह जीती हुई बाजी हार जाने के अलावा शत्रु की एक लाख कैद कर ली गयी सेना को भी मुक्त करने का दम्भ पाल बैठता। कोई नरसिंह राव, देवगौड़ा या गुजराल भी नहीं, जो झुकने के लिए हर समय कमर कसे रहता। इस बार दिल्ली बदली हुई थी, बदली हुई है। इसीलिए ऐसे प्रकरणों में सफलता की एकमात्र कुञ्जी गोपनीयता पूर्णतः अक्षुण्ण रही। वैसे जहाँ आम्भीकों, जयचन्दों, मानसिंहों की पुरानी परम्परा रही हो और शादीलालों की संख्या में भी आये दिन बढ़ोतरी होती रही हो, वहाँ ऐसी गोपनीयता, जो सी०आई०ए० और आई०एस०आई० के भी नाक–कान काट ले, बनाये रखना कोई छोटी बात नहीं है। जिस देश में डॉलर के गुलामों और पेट्रो–डॉलर के 'गुलामों के गुलामों' की भरमार हो, उस देश में ऐसी अखण्ड–गोपन–शक्ति का आविर्भाव इसका पुष्टतम प्रमाण है कि देशभक्तों का सर्वथा अभाव नहीं हुआ है अभी। राष्ट्रभक्ति से परिलुप्त प्रतिभा और वज्र–संकल्प से संवलित परिनिष्ठित राजनीतिक दक्षता विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति को खुली चुनौती देने की क्षमता रखती है। आज की दिल्ली इसका सुस्पष्ट उदाहरण है।

तो भी मुलायम और सुरजीत जैसे अन्धकार के प्रतिनिधियों और पतझड़ के शाश्वत प्रतीकों से जहाँ सतत सावधान रहना होगा, वहीं इस्लामी नेताओं की खूब सोची–समझी चुप्पी को कम खतरनाक आँकना किसी भी रूप में अपेक्षित नहीं है। सरकारें बनाना और बिगाड़ना जिनका पुराना शौक रहा है, वह क्या कहीं चूकने वाले हैं? दंगे कराना जिनके बाँये हाथ का खेल है, वह क्या अपना खेल दिखाने से बाज आयेंगे? डॉ० भाभा से लेकर अब तक जितनी भी रहस्यमयी राजनीतिक हत्याएँ हुई हैं, उनके पीछे विदेशी 'हाथ' और देशी 'हस्तक' दोनों का समन्वित 'हाथ' रहा है, क्या यह सहज ही भूल जाने की बात है? ❑

– आनन्द मिश्र 'अभय'

अपरिहार्य क्यों हो गयी है संविधान की समीक्षा

— केशव देव शर्मा

भारत के वर्तमान सविधान और इसके सस्थापकों की ऊपरी प्रशसा करने की भारतवर्ष में एक प्रथा सी बन गई है, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि विषय का गूढ विश्लेषण किया जाये और सविधान की सरचना की पूरी कहानी को समझा जाये। ऊपरी प्रशसा से वर्तमान सविधान की अन्तर्निहित त्रुटियों को छिपाया नहीं जा सकता। इसलिए भाजपा सरकार ने सविधान समीक्षा के लिए जो एक कमीशन बनाने का निश्चय किया है वह अत्यन्त सूझ–बूझ के साथ किया गया है क्योंकि यह भारतवर्ष के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में सही परिवर्तन लाने का अति उत्तम उपाय है।

इससे पहले कि हम भारतवर्ष के वर्तमान संविधान में निहित विचारधारा और उसकी विशेषताओं पर विचार करें, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि सविधान का परिवर्तन अथवा समीक्षा करना समाज में परिवर्तन लाने के लिए अत्यन्त विशुद्ध, अहिसात्मक तथा युक्तिपूर्ण तरीका है। केवल यह मानकर चलना कि जो सविधान हमें औपनिवेशिक स्थितियों में दिया गया था, वही ठीक है और उसकी समीक्षा अथवा सशोधन या परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, केवल अस्थायित्व, हिंसा यहाँ तक कि गृहयुद्ध और निश्चित विघटन और विनाश को निमन्त्रित करना है।

आइये, सबसे पहले वर्तमान सविधान के विषय में प्रचलित गलत धारणाओं को दूर किया जाये।

सर्वप्रथम श्री पालखीवाला जैसे लोगों ने यह भ्रम अत्यन्त लोकप्रिय बनाया हुआ है कि भारत का वर्तमान सविधान बहुत ही अच्छा है, लेकिन हम भारतीय लोग बहुत ही खराब हैं, जिसकी वजह से हम आजकल बहुत बुरी दशा में हैं। यह तो उसी प्रकार की धारणा है, जिसे कार्ल मार्क्स ने हीगल के सम्बन्ध में कहा था कि हीगल अपने सर के बल खडे होकर ससार को देखते थे, जिसकी वजह से उन्हें दुनियाँ उल्टी नजर आती थी। वास्तव में हमारा वर्तमान सविधान अत्यन्त निकृष्ट है और यह एक निकृष्ट पद्धति की सरचना करता है और अच्छे भले लोगों को असहाय बना देता है। यह कहना कि खराब कारीगर अपने औजारों का दोष निकालता है, इसलिए गलत है कि हमने यह देखा ही नहीं कि औजार बहुत पुराना और जग लगा हुआ है। हमें अपने आपसे घृणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसमें कोई दो राय नहीं है कि हमारे यहाँ एक से एक अच्छे और उच्च कोटि के लोग एवं विद्वान, यहाँ तक कि राजनीतिज्ञ भी हैं।

कुछ लोगों का यह मानना है कि जिस सविधान सभा ने हमारा १९५० का सविधान पारित किया था, वह नागरिकों द्वारा निर्वाचित सभा थी। यह सरासर झूठ है, क्योंकि इस संविधान सभा के सदस्य लोगों द्वारा कभी भी निर्वाचित नहीं किये गये, बल्कि ये विभिन्न शाही रजवाड़ों और सत्ताओं के प्रतिनिधि थे। उनमें बहुत से जवाहर लाल नेहरू और माउण्टबैटन के निजी यार–दोस्त थे। क्या हम लोग भूल गये हैं कि भारतवर्ष का स्वघोषित शत्रु जिन्नाह भी इस सविधान सभा को सम्बोधित करता था? संविधान सभा के एक भी सदस्य को यह ज्ञान नहीं था कि ब्रिटिश अपने साम्राज्य को सारे ससार में कैसे चलाते थे? और किसी भी सदस्य ने कभी भी माउण्टबैटन को गवर्नर जनरल नियुक्त करने या बने रहने पर कभी आपत्ति नहीं की। यह सोचने की बात है कि स्वतन्त्र भारत में अंग्रेज माउण्टबैटन क्यों गवर्नर–जनरल नियुक्त किया गया और उसने हमारे वर्तमान सविधान को एक रूप देने में जो भूमिका निभाई, वो क्या थी?

इसी प्रकार यह आम धारणा है कि वर्तमान संविधान को डा० भीमराव अम्बेदकर ने लिखा। इससे बड़ा असत्य और इससे बड़ी बेईमानी हो नहीं सकती। यह केवल सुनियोजित अफवाह है और पिछले १०–१५ वर्षों में ही बढ़ा–चढ़ाकर पेश की गई है। डॉ० अम्बेदकर ने कोई सविधान नहीं लिखा। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने एक लेख में, जो कि २६ जनवरी १९५० के टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित हुआ था, लिखा था कि सविधान का मसौदा भारत के संवैधानिक मामलों के सलाहकार श्री बेनेगल नरसिंह राउ द्वारा तैयार किया गया था। ज्ञात हो कि बी०एन० राउ को श्री के०एम० मुन्शी और सर मौरिस ग्वायर ने सहयोग दिया था। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आगे लिखा है कि बाद में भारत के विधि मन्त्री डॉ० बी०आर० अम्बेदकर की

अध्यक्षता में मसौदा समिति का गठन किया गया, ताकि संविधान के मसौदे की जाँच की जा सके और इसे संविधान के खुले अधिवेशन में रखा जा सके।

भारत का वर्तमान संविधान किसी भी भारतीय संवैधानिक विशेषज्ञ की रचना नहीं था, बल्कि वह १९३५ के भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट १९३५) का एक हेर–फेर किया हुआ रूप था। इस काम को राउ, मुन्शी तथा ग्वायर ने किया था। हमारे संविधान का सार, इसका दर्शन, इसकी शैली और इसके इरादे हूबहू वैसे ही हैं, जैसे कि १९३५ के कानून के थे। केवल कुछ चीजें सर मौरिस ग्वायर की इजाजत से इसमें जोड़ी गई।

बहुत से लोगों को तो यह याद भी नहीं है कि संविधान की १५ धाराओं (५, ६, ७, ८, ९, ६०, ३२४, ३६६, ३६७, ३७९, ३८०, ३८८, ३९१, ३९२ और ३९३) को २६ नवम्बर १९४९ को लागू कर दिया गया था जबकि शेष संविधान २ महीने बाद २६ जनवरी १९५० को लागू हुआ।

एक और भ्रमपूर्ण धारणा इस संविधान के विषय में प्रचलित है– कि इस संविधान द्वारा भारतवर्ष में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली लाई गई। यह सरासर गलत है। अंग्रेजों के पास हमेशा दो पद्धतियाँ थीं– एक उनके अपने लिए और दूसरी उनके उपनिवेशों के लिए। हमारा संविधान ब्रिटिश औपनिवेशिक पद्धति का अंग है और इसमें वे सब विशेषताएँ हैं, जिनके विरुद्ध १७७६ में अमरीकी विद्रोह तथा क्रान्ति शुरू हुई। ब्रिटेन ने अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के अनुसार आयरलैण्ड में भी ठीक वही करने की कोशिश की थी, जो उन्होंने हमारे साथ की थी। उन्होंने आयरलैण्ड को १९२० में विभाजित किया, उत्तरी आयरलैण्ड को अपने पास रखा और आयरिश गणतन्त्र को आयरलैण्ड सरकार अधिनियम १९२० (Government of Ireland Act 1920) दिया, जिसे वे चाहते थे कि आयरलैण्ड उसे अपने संविधान के रूप में परिवर्तित कर ले। किन्तु आयरलैण्ड गणतन्त्र के लोगों ने ऐसा मानने से इन्कार कर दिया और उन्होंने १९३७ में अपना निजी संविधान लिखा और अपनाया। केवल हम भारतीयों ने ही इस १९३५ के अधिनियम को संविधान के रूप में परिवर्तित किया और आज तक उसकी झूठी प्रशंसा करते रहते हैं।

अनेक बार कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि पिछले ४८ वर्षों में हमारे संविधान ने किसी भी कल्याण कार्यक्रम पर आपत्ति नहीं की। इस प्रकार का तर्क अत्यन्त बचकाना है। हम यह भी तो कह सकते हैं कि संविधान ने जातिवाद, भ्रष्टाचार, धार्मिक बेईमानी, पिछड़ापन और गरीबी पर भी आपत्ति नहीं की। प्रश्न यह नहीं है कि संविधान ने किन चीजों पर आपत्ति नहीं की; बल्कि किन चीजों को आवश्यक नहीं माना। **हमारे संविधान की औपनिवेशिक पद्धति की विशेषताओं ने हमें छिन्न–भिन्न कर डाला है और हमारे साथ अनेक प्रकार के अत्याचार किये हैं।**

आइये, कुछ उदाहरण सामने रखे जायें। हमारे संविधान में यह अवधारणा निहित है कि भारतवर्ष का विभाजन हुआ ही नहीं है, जैसा कि १९३५ में नहीं हुआ था। अल्पसंख्यक यहाँ ठीक वैसे ही रहते हैं जैसे वे अविभाजित भारतवर्ष में रहते। कानूनी और तकनीकी दृष्टिकोण से जब भी किसी अल्पसंख्यक वर्ग को जगह और क्षेत्र दे दिया जाता है जैसा कि मुसलमानों को पाकिस्तान दिया गया, उसके बाद वह अल्पसंख्यक नहीं रह जाते। किन्तु हमारे संविधान के कारण विभाजन होने पर भी भारतवर्ष में ऐसा नहीं होने दिया गया।

साधारण जनता को वास्तविक रूप में वोट डालने के अलावा कोई अधिकार नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि उन्हें वोट डालने के लिए इस्तेमाल किया जाता है और वोट डलवाने के बाद उन्हें भगा दिया जाता है, उनकी कोई भूमिका नहीं रह जाती।

जिन उम्मीदवारों को चुनाव के समय खड़ा किया जाता है वे जनता के नहीं; बल्कि पार्टी नेताओं के प्रतिनिधि होते हैं और जनता को केवल रबर स्टाम्प लगाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

बहुत से अनिर्वाचित लोग, जो कि सत्तारूढ़ पार्टी के चमचे या व्यक्तिगत मित्र होते हैं, उन्हें जनसाधारण से व निर्वाचित प्रतिनिधियों से भी अधिक अधिकार हैं। उदाहरण के लिए एक अनिर्वाचित व्यक्ति प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री या राज्यपाल बन सकता है और राज्यपाल को सभी निर्वाचित लोगों को बर्खास्त करने की क्षमता और अधिकार प्राप्त है। क्या कोई भूल सकता है किस प्रकार राज्यपाल भण्डारी ने उत्तर प्रदेश में जनता के प्रतिनिधियों को भगा दिया और पूरी विधानसभा को निलम्बित कर दिया ? क्या ब्रिटेन में ऐसा कहीं होता है ? क्या ब्रिटेन में संसद या विधानसभाओं को बर्खास्त किया जा सकता है ? कभी नहीं।

हमारी राज्यसभा अप्रत्यक्ष निर्वाचन–पद्धति का परिणाम है, जिससे देश के नागरिकों का कोई भी सरोकार नहीं है। राज्यसभा में केवल पार्टी के नामजद और झूठे प्रशंसक लोगों को लाया जाता है, जिनमें से कुछ बेहद बूढ़े और लाचार व बीमार होते हैं और जिन्होंने अपने

(शेष पृष्ठ १९ पर)

हृदयनारायण दीक्षित

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयः

भारत राष्ट्र की सनातन संस्कृति और तात्त्विक राष्ट्रीय निष्ठाओं से युक्त राजनीति के प्रभावी विस्तार से देश के लोक-जीवन को किसी सीमा तक जो सान्त्वना मिली है, उसको स्थायित्व कैसे मिले, यह विचारणीय है। व्यक्ति हो या राष्ट्र, अपनी प्रकृति से विरत होकर उन्नति नहीं कर सकते। भारत की प्रकृति की व्याख्या को अगर किसी एक शब्द में समेटना हो, तो वह शब्द 'हिन्दुत्व' ही होगा। हिन्दुत्व एक व्यापक राष्ट्रीय अवधारणा के साथ-साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्वयं को ही देखने, जानने की समग्र सनातन दृष्टि है। जब राजनीति जाति, वर्ग, समूह अथवा सम्प्रदाय विशेष के हित-साधन से जुड़ती है, वह लोक आराधना के काम की नहीं रह जाती। उसके उद्देश्य और कार्य-कारण विकृत हो जाते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वाधीनता संग्राम के उद्देश्य भारतीय स्वातंत्र्य से युक्त थे, इसीलिए कांग्रेस उस कालखण्ड में लोक आराधना का सबसे बड़ा मंच थी। वह लोक-संग्रह का सबसे बड़ा अभियान भी बन गई थी। राष्ट्रीय-आन्दोलन का इतिहास साक्षी है कि उस कालखण्ड के सार्वजनिक जीवन के आदर्शों के मूल-तत्त्व हिन्दुत्व के सार्वभौम एवं सार्वकालिक सत्य ही थे।

भारत का लोक-जीवन अपने दैनिक कर्त्तव्य-पालन में अनेक आन्तरिक सकारात्मक प्रेरणाओं से संचालित होता है। क्या करणीय है ? क्या अकरणीय है ? और क्या अनुकरणीय है ? इसकी सारिणी हमारा लोक-जीवन जिस "विराट्-विचार-समवाय" से प्राप्त करता है, उसी सनातन एकात्म प्रवाह का नाम हिन्दुत्व है। भारत के समाज-जीवन के एक-एक घटक, एक-एक जन में सहस्रों तात्त्विक बिन्दुओं पर एक जैसी समझ है, एक जैसी निष्पत्तियाँ हैं, इसका कारण है हमारा सनातन राष्ट्रीय जीवन।

भारत के साधारण नागरिक के स्वभाव में ही सन्मार्ग की राह पर चलने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हमारे लोक-जीवन में पग-पग पर मर्यादाएँ हैं, जिनका पालन कराने के लिए किसी राज्य-शक्ति की आवश्यकता कभी नहीं रही। हमारी सतत प्रवाही संस्कृति ही मर्यादाओं के पालन के लिए एक-एक जन के हृदय की अभीप्सा बनी रही है। भिन्न-भिन्न जातियों, उपजातियों, मतों, सम्प्रदायों में विभाजित रहने के अनन्तर भी समाज जीवन के अनुकरणीय तत्त्वों पर कभी असहमति नहीं रही। तमाम मत-भिन्नता के होते हुए भी जैसी राष्ट्रीय एकात्मकता भारत के सामान्यजन में है, वैसी ही राष्ट्रीय एकात्मकता आज के भारतीय राजनीतिज्ञों में नहीं है। कारण स्पष्ट है कि देश के सामान्यजन अपनी दैनिक गतिविधियों और अभिव्यक्तियों में जिन सांस्कृतिक तत्त्वों से अनुप्राणित होते हैं उनसे राजनीतिज्ञ बहुधा स्वार्थवश विमुख रहते हैं। राजनीति में 'शुचिता और पवित्रता' के अकाल का कारण भी यही है।

भाजपा के वैशिष्ट्य को देश ने क्यों सराहा है और अन्य दलों से भिन्न और विशिष्ट जानकर देश भाजपा के साथ क्यों गति कर रहा है ? इस प्रश्न का उत्तर भी बहुत स्पष्ट है। इसीलिए राष्ट्रीय आवश्यकताओं के चलते राजनीतिक विवशताओं के अनुरूप भाजपा जब भी कोई ऐसे समझौते करती है, जो शाश्वत नैतिक मूल्यों से अलग दिखाई पड़ते हैं, तो स्वयं भाजपा के ही कार्यकर्त्ता बेचैन दिखाई पड़ने लगते हैं; क्योंकि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के दर्शन का व्याप जनमानस में सघन हो रहा है। मूल्यों पर आधारित भाजपा की राजनीति ने सामान्य कार्यकत्ताओं के बीच "शुचिता और पवित्रता" की मर्यादा रेखाएँ खींच दी हैं। हिन्दुत्व के अधिष्ठान पर आधारित अनेक गैर राजनीतिक संगठनों, विशेषकर संघ-विचार-परिवार के कार्यकर्त्ताओं के तप ने भारतीय समाज की समझ को राष्ट्रवादी दृष्टि से प्रखरता दी है। इस तरह निर्मित वातावरण में अब वही राजनीति टिकाऊ होगी, जो मूल्यों पर आधारित होगी, शुचिता और पवित्रता जिसके आचरण में सुस्पष्ट दिखाई पड़ रही होगी।

निःसन्देह भाजपा के पास अकेले दम का अंकगणितीय बहुमत नहीं है। सहयोगी दलों के दबावों को देश पूरे धीरज के साथ देख रहा है। देश भाजपा की सबको साथ लेकर चलने की विनम्रता और सहिष्णुता पर भी अपनी दृष्टि गड़ाए हुए है; मगर सबसे बड़ी बात यह है कि भाजपा को जितना ही दबाया जा रहा है, देश की जनता की सहानुभूति आक्रोशपूर्वक उतनी ही शीघ्रता से भाजपा की तरफ बढ़ती जा रही है। सत्ता कभी भी हिन्दुत्वनिष्ठ राजनीति का इष्ट नहीं रही है। राजनीति का राष्ट्रहितकारी परिशुद्धीकरण ही हिन्दुत्वनिष्ठ राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं का लक्ष्य रहा है। इस दिशा में राष्ट्रवादी राजनीति के अभियानों को विजयश्री मिल चुकी है। सम्प्रति राजनीति के क्षेत्र में हिन्दुत्व-निष्ठा अब अछूत नहीं रही; हिन्दुत्वनिष्ठ राजनीति और समाज सेवा को साम्प्रदायिकता के बहाने लांछित करने वाली शक्तियाँ आज स्वयं हाशिए पर पहुँच गई हैं।

सत्ता में रहकर भी शुचिता और पवित्रता के आदर्शों पर चलते रहने के आचार और संकल्प भारत की सम्पूर्ण

राजनीति में मंगलकारी परिवर्तन के द्वार खोल रहे हैं। केन्द्र की सरकार को अस्थिर किये जाने की हर सम्भव कोशिश जारी है। सरकार कितने दिन चलती है? इसकी उम्र क्या होगी? आदि प्रश्न राजनीतिक विश्लेषक अभी से उछाल रहे हैं। किन्तु वे यह बात नहीं जानते कि **किसी व्यक्ति/संगठन/सरकार की लम्बी उम्र बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होती। महत्त्व तो जीवन लक्ष्यों की ऊँचाईयों और जीवन जीने की गहराइयों का होता है।** शंकराचार्य, विवेकानन्द, रामतीर्थ बहुत लम्बे समय तक नहीं जिए। राजनीतिक दलों को ही लें, तो कांग्रेस की उम्र आज ११३ वर्ष हो चुकी है; परन्तु इस लम्बी उम्र में कांग्रेस इतना सड़ी कि टुकड़े–टुकड़े होती रही। उदात्त आदर्श ही जीवन की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। जीवन की त्वरा और ठीक दिशा में गति ही जीवन की सुगन्ध होती है।

महाभारत में जीवन की उम्र के बारे में बड़ी प्यारी दर्शना है। कहा गया है, **"मुहूर्त्त ज्वलितं श्रेयः, न च धूमायितं चिरम्।"** मुहूर्त्त भर जलना श्रेयस्कर है, धुआँ देते दीर्घकाल तक जलना बेकार। मुहूर्त जैसा प्यारा शब्द हिन्दू ही गढ़ सकते हैं। समय नापने की सम्पूर्ण विश्वस्तरीय इकाइयों में मुहूर्त्त जैसा शब्द कहीं नहीं मिलता। मुहूर्त्त समय का अति छोटा खण्ड है, जिसमें सत्य, शिव और सुन्दर एक साथ प्रकट हो जाते हैं। इसीलिए हिन्दुस्थान में किसी भी अनुष्ठान के लिए मुहूर्त्त निकालने की परम्परा है। लम्बे समय तक धुआँ देते हुए सरकार चलाने के कांग्रेसी कौशल के विपरीत अटल सरकार ने अपने डेढ़ मास के स्वल्प–काल में ही पाँच आणविक विस्फोट कर देश को अन्य पाँच महाशक्तियों के समकक्ष विश्व–मंच पर स्थापित करने में जो अद्भुत सफलता प्राप्त की है, मुहूर्त्त की महत्ता सिद्ध करने के लिए इसके बाद भी क्या किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता रह जाती है? ☐

डॉ० सत्यव्रत शास्त्री को मिला सर्वोच्च थाई सम्मान

पिछले दिनों संस्कृत मर्मज्ञ एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ० सत्यव्रत शास्त्री को थाईलैण्ड के सर्वोच्च राज सम्मान अतिरेक गुणाभरण महतीय प्रोच्चपद (आर्डर आफ दिरेकगुणाभोंण) से विभूषित किया गया है। थाईलैण्ड की राजकुमारी महाचक्री श्रीधरन ने शुक्रवार को बैंकाक में आयोजित एक भव्य समारोह में यह अलंकरण थाई नरेश की ओर से प्रदान किया गया। यह पहला अवसर है जबकि यह सम्मान किसी विदेशी को प्रदान किया गया है।

डॉ० सत्यव्रत शास्त्री का यह अलंकरण विशेष रूप से थाई रामायण पर रचित उनके संस्कृत महाकाव्य 'श्रीरामकीर्ति महाकाव्यम्' के लिए दिया गया है। प्रो० शास्त्री पुरी के जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति रहने के अलावा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के विजिटिंग प्रोफेसर रहे हैं और उनके तीन महाकाव्य, तीन खण्डकाव्य एवं एक प्रबन्ध काव्य संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने बैंकाक स्थित सिल्पकोर्ण विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्ययन केन्द्र की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाने के साथ–साथ थाईलैण्ड और शेष विश्व के बीच सेतु का कार्य किया है। राष्ट्रधर्म की हार्दिक बधाई इस प्रज्ञा–पुरुष को।

कैसे होगी इस क्षति की पूर्ति

एस. नाम्बिरानारायनन्

इसरो के जिन दो मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों को एक भीषण षड्यंत्र के अन्तर्गत फर्जी जासूसी काण्ड में केरल की पुलिस ने फँसाया था, उन्हें न केवल सी.बी.आई. ने अपनी जाँच में सर्वथा निर्दोष पाया; अपितु सर्वोच्च–न्यायालय ने भी उन्हें पूर्णतः निर्दोष घोषित करते हुए केरल सरकार को सभी कथित अभियुक्तों को एक–एक लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में भुगतान करने का आदेश दिया है। केरल की नायनार सरकार की धृष्टता देखिये, उसने पुनः अपनी पुलिस से जाँच कराने का प्रयत्न किया, किन्तु उस पर सर्वोच्च न्यायालय ने रोक लगा दी।

भारत के अन्तरिक्ष–कार्यक्रम को अन्दर से ध्वस्त करने के इस षड्यंत्र के पीछे जिन विदेशी शक्तियों का हाथ है, उनका सहयोग क्यों इस देश के मार्क्सवादी कम्युनिस्ट भी कर रहे थे, कर रहे हैं? इसकी जाँच गहराई से की जानी अपेक्षित है।

एस. शशिकुमारन्

परन्तु इन कर्तव्य–निष्ठ मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों को जो मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ी है, उसकी क्षतिपूर्ति क्या सम्भव है? राष्ट्र इस प्रश्न का समाधान चाहेगा।

आइए चलें... केदारनाथ, बदरीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री के दर्शन करने

- ज्योति खरे

केदारनाथ तीर्थ
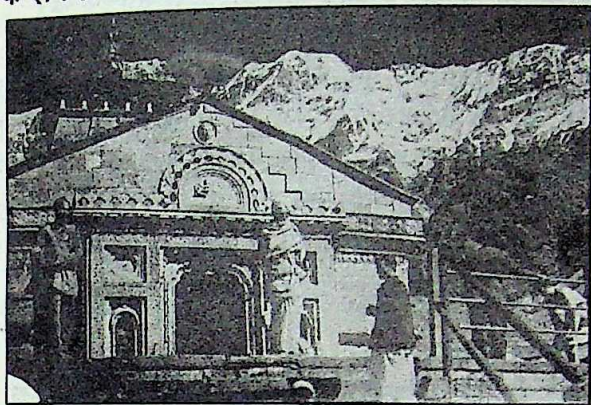
अगर आप दूर–दूर तक फैले ऊँचे–ऊँचे बर्फ से ढके पर्वत, बल खाती मन्दाकिनी नदी और मन्दाकिनी घाटी की प्राकृतिक रमणीयता में कुछ देर के लिए अपने आपको खो देना चाहते हैं, तो उत्तर प्रदेश के गढ़वाल मण्डल में स्थित केदार पर्वत के निकट स्थित केदारनाथ जाइए। यहाँ के लिए सबसे अच्छा मौसम मई–जून और सितम्बर–अक्टूबर के महीनों में रहता है।

केदारनाथ एक शिव मन्दिर है। यह मन्दिर मन्दाकिनी घाटी के सिरे पर बना है। केदारेश्वर व नन्दी के अतिरिक्त इस मन्दिर में पार्वती, गणेश, पाण्डव, कुन्ती आदि की मूर्त्तियों में भी शिल्प–कला का सौन्दर्य देखा जा सकता है।

केदार धाम स्थित मन्दाकिनी घाटी की सुन्दरता बरबस ही पर्यटकों को मुग्ध कर देती है। यह घाटी केदारनाथ मन्दिर के निकट ही है।

केदारनाथ धाम में 'गांधी सरोवर' नामक विशाल तालाब है। पहले इसे 'चेरावादी तालाब' कहते थे, किन्तु १९४८ में गांधी जी की भस्म को इसी तालाब में विसर्जित किया गया था। तब से इसे 'गांधी–सरोवर' की संज्ञा दी जाने लगी है। इसी सरोवर से मन्दाकिनी नदी निकली है।

वासुकि ताल झीलनुमा ताल है। यह केदारनाथ से लगभग ४ कि०मी० की दूरी पर स्थित है। इसका प्राकृतिक सौन्दर्य पर्यटकों को लुभाने में सक्षम है। यहाँ आप वन–विहार का आनन्द भी उठा सकते हैं।

केदारनाथ तक केवल सड़क मार्ग से ही पहुँचा जा सकता है। ऋषिकेश, हरिद्वार, कोटद्वार, काठगोदाम, बदरीनाथ, नैनीताल, गंगोत्री आदि स्थानों से बसें गौरीकुण्ड तक ले जाती हैं। इसके आगे की १४ कि०मी० की दूरी पर्यटकों को पैदल तय करनी पड़ती है। यह चढ़ाई दुर्गम तथा कष्टदायक होते हुए भी यहाँ के सुखद और स्वच्छ वातावरण के कारण पर्यटक आसानी से तय कर लेते हैं। वैसे इस यात्रा के लिए किराए की डाँडी या घोड़े का उपयोग किया जा सकता है।

केदारनाथ दिल्ली से ३४६ किलोमीटर, रुद्रप्रयाग से ८४ किलोमीटर, तिलवाड़ा से ६१ किलोमीटर दूर है।

पर्यटकों के ठहरने के लिए होटलों, लॉजों और धर्मशालाओं की पर्याप्त व्यवस्था है।

बदरीनाथ तीर्थ
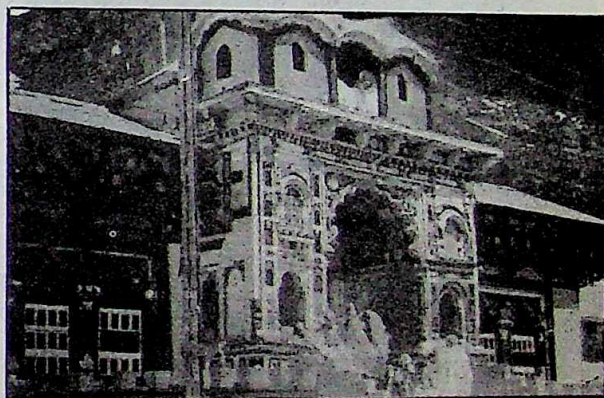
अलकनन्दा और ऋषि–गंगा नामक नदियों के संगम पर स्थित बदरीनाथ नर और नारायण पर्वत श्रेणियों से घिरा है। आज यह एक पर्यटन स्थल के रूप में काफी प्रसिद्ध है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य पर्यटकों के मन को मोह लेता है। बदरीनाथ के पर्यटन पर जाने से पूर्व पर्यटकों को हैजे का टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए और उसका प्रमाण–पत्र अपने पास रखना चाहिए।

बदरीनाथ पर्यटन के लिए मई–जून तथा सितम्बर–अक्टूबर का समय अच्छा रहता है। इन दिनों यहाँ का मौसम सुहावना रहता है। गर्मियों में भी ऊनी वस्त्र अवश्य

ले जाने चाहिए।

बदरीनाथ का निकटतम हवाई अड्डा जौली ग्रान्ट है, जो बदरीनाथ से ३१५ कि०मी० दूर है। यहाँ से बदरीनाथ जाने के लिए बस तथा टैक्सियाँ मिलती हैं, लेकिन यहाँ की वायुदूत की सेवाओं का कोई भरोसा नहीं रहता। बदरीनाथ का निकटतम रेलवे स्टेशन ऋषिकेश है, जो २९७ कि०मी० दूर है। यहाँ से बदरीनाथ जाने के लिए बस और टैक्सियाँ हरदम तैयार रहती हैं। इसके अतिरिक्त देहरादून और हरिद्वार तक रेल मार्ग द्वारा पहुँचकर सड़क मार्ग से बदरीनाथ पहुँच सकते हैं। बदरीनाथ दिल्ली, ऋषिकेश तथा इस क्षेत्र के अन्य केन्द्रों के साथ सड़क मार्ग से जुड़ा है। ऋषिकेश से बदरीनाथ के लिए नियमित बस सेवाएँ उपलब्ध हैं। बदरीनाथ का मुख्य आकर्षण है बदरीनाथ मन्दिर। यह मन्दिर अलकनन्दा नदी के बाएँ तट पर स्थित है। इस मन्दिर की निर्माण कला बौद्ध–निर्माण–कला से पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होती है। बदरीनाथ मन्दिर के ठीक सामने अलकनन्दा नदी के दाँयें किनारे पर गरम पानी का एक झरना है। इसे तप्त कुण्ड कहते हैं। बदरीनाथ के ठण्डे वातावरण में इस झरने के गरम पानी से स्नान करना बड़ा सुखद प्रतीत होता है।

वसुधारा काफी ऊँचाई से गिरने वाला एक रमणीय झरना है। यह बदरीनाथ से कुछ ही दूरी पर स्थित है। यहाँ से तिब्बत की सीमा के निकट स्थित अन्तिम गाँव माना केवल चार–पाँच कि०मी० दूर ही रह जाता है। व्यास–गुफा माना गाँव में ही स्थित है। मान्यता है कि महर्षि व्यास ने विभिन्न पुराणों की रचना इसी गुफा में की थी।

पर्यटन की दृष्टि से हेम–कुण्ड का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम है। यह हरे–भरे वृक्षों से घिरी एक झील है। झील का शान्त और स्वच्छ जल देखकर वहाँ से हटने की इच्छा नहीं होती। हेम–कुण्ड सिखों का एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

पर्वतारोही फ्रैंक स्मिथ ने फूलों की घाटी की खोज की थी। जून से सितम्बर तक यह घाटी नाना प्रकार के रंग–बिरंगें फूलों से भरी रहती है। घाटी के एक ओर स्थित घोर धुंगी पर्वतमालाएँ और आकाश में भूरे–भूरे बादलों के मनोहारी दृश्य देख कर मन प्रसन्न हो जाता है। यह घाटी लगभग ३० वर्ग कि०मी० क्षेत्र में फैली है। तेजी से बहता पुष्पावती झरना इस घाटी को दो भागों में बाँटता है। फूलों की यह अद्‌भुत घाटी देखने के लिए प्रतिवर्ष हजारों पर्यटक आते हैं। यह घाटी केवल भारतीय पर्यटकों के लिए ही नहीं, विदेशी पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र रही है। इस घाटी के लिए गोविन्द घाट से रास्ता जाता है। गोविन्द घाट से लगभग १४ कि०मी० दूर धंधरिया तक पैदल जाना पड़ता है। धंधरिया से करीब एक कि०मी० आगे जाकर यह रास्ता दो भागों में बँट जाता है। इसके बाएँ रास्ते से फूलों की घाटी पहुँचा जा सकता है और दायें रास्ते से हेम–कुण्ड।

बदरीनाथ में पर्यटकों के आवास के लिए मन्दिर–समिति का अतिथि–गृह, लोक निर्माण विभाग का निरीक्षण गृह, डी०जी०बी०आर० का विश्राम गृह, बिड़ला अतिथिशाला आदि के अलावा होटलों और धर्मशालाओं की कमी नहीं है। आप अपनी सुविधानुसार कहीं भी ठहर सकते हैं। हाँ, सरकारी आवासों में असुविधा से बचने के लिए पहले ही आरक्षण करा लेना अच्छा रहता है।

गंगोत्री तीर्थ

चारों ओर से वनाच्छादित पर्वतों से घिरी, गंगा के तेज कलकल, छल–छल से मुखरित गंगोत्री का सौन्दर्य एक भारतीय को ही नहीं, विदेशी पर्यटकों को भी अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों पर्यटक आते हैं, लगभग ३१४० मीटर की ऊँचाई पर स्थित गंगोत्री ही वह स्थल है, जहाँ से हिम–राशि पिघल कर गंगा नदी के रूप में पर्वतमालाओं के गहन मार्गों से होकर बहती है।

अत्यधिक ऊँचाई होने के कारण गंगोत्री में सर्दी अधिक पड़ती है। नवम्बर से यहाँ बर्फ जमने लगती है, जो अप्रैल में ही पिघल पाती है। अतः गंगोत्री के पर्यटन के लिए अप्रैल से जून तक का मौसम अच्छा रहता है। जुलाइ–अगस्त में वर्षा अधिक होती है, फिर सितम्बर से अक्टूबर तक का समय भी पर्यटन के लिए उपयुक्त है।

गंगोत्री में प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ अनेक मन्दिर तथा कुण्ड भी हैं। कुण्डों के नाम सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा

आदि देवताओं के नाम पर रखे गये हैं। कुछ प्रमुख दर्शनीय स्थल इस प्रकार हैं–

हरी–भरी व रमणीय प्रकृति के मध्य स्थित है। गंगा देवी का मन्दिर। एक किंवदन्ती के अनुसार पाण्डवों ने महाभारत की समाप्ति पर प्रायश्चित स्वरूप इस मन्दिर का निर्माण कराया था। एक अन्य मतानुसार शंकराचार्य ने यहाँ गंगादेवी की मूर्ति स्थापित की थी। बाद में १८वीं सदी में एक गोरखा अधिकारी ने वहाँ मन्दिर बनवा दिया था। आजकल इस मन्दिर की देख–रेख स्थानीय पण्डों द्वारा की जाती है।

गंगा देवी मन्दिर के निकट की भैरव नाथ मन्दिर है। कहा जाता है कि भगीरथ ने यहीं बैठकर कठोर तपस्या की थी। मन्दिर में एक शिला है, जिसे "भगीरथ शिला" कहते हैं। यहाँ विश्वासी जन "पिण्ड दान" करने आते हैं।

भगीरथ शिला से कुछ ही दूर पर रुद्र–शिला है। पौराणिक कथाओं के आधार पर शिव ने यहाँ प्रकृति का भरपूर सौन्दर्य बिखेर रखा है। यहाँ से बलखाती गंगा का प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है।

रुद्र–शिला के निकट गंगा, केदार–गंगा से मिलती है। आगे यह धारा एक पत्थर के बीच से होकर लगभग १५ मीटर नीचे प्रपात के रूप में गिरती है। यह "गौरी–कुण्ड" कहलाता है। गंगा की धारा एक शिवलिंग के ऊपर प्रपात के रूप में गिरती है। सम्भव है इसी प्राकृतिक दृश्य को देखकर किसी सहृदय ने शिव द्वारा अपनी जटाओं में गंगा धारण की कल्पना की हो। कुछ लोग गंगा का उद्गम इसी स्थान को मान लेते हैं।

गंगा का वास्तविक उद्गम गौरी–कुण्ड से १८ कि०मी० और ऊपर श्री मुख पर्वत पर बने गोमुख की छटा देखते ही बनती है। यहाँ एक हिमानी (ग्लेशियर) वर्ष भर तैरता रहता है। कहा जाता है कि इसी हिमानी की बर्फ पिघल–पिघल कर गंगा की क्षीण धारा में बदल जाती है। इसके आस–पास देवदारु के वृक्ष हैं। जिनसे इस स्थल का सौन्दर्य और बढ़ जाता है।

गंगोत्री जाने वाले पर्यटकों को अपने साथ उचित मात्रा में गरम कपड़े, कुछ आम बीमारियों की दवाइयाँ, थर्मस, उबले पानी की बोतल आदि जरूर ले जाना चाहिए। टार्च, कम्बल भी रखना न भूलें।

गंगोत्री जाने का निकटतम हवाई अड्डा जौली ग्रान्ट है, जो ऋषिकेश से १८ कि०मी० दूर है। ऋषिकेश से मिनी बस, बस या टैक्सी से गंगोत्री पहुँचा जा सकता है। लेकिन वायुदूत की इन सेवाओं का कोई भरोसा नहीं है। गंगोत्री का निकटतम रेलवे स्टेशन ऋषिकेश है, जो २४६ कि०मी० दूर है। ऋषिकेश से गंगोत्री जाने के लिए टैक्सियाँ, बसें, हरदम मिलती रहती हैं। ऋषिकेश के लिए देश के मुख्य नगरों से रेल सेवाएँ उपलब्ध हैं। गंगोत्री सड़क मार्ग द्वारा उत्तर काशी, टिहरी और ऋषिकेश से जुड़ा हुआ है। वहाँ तक देश के अन्य भागों से आसानी से जाया जा सकता है। इन तीन स्थलों से बस या टैक्सी द्वारा गंगोत्री पहुँचा जा सकता है। गंगोत्री में पर्यटकों के ठहरने की समुचित व्यवस्था नहीं है। यहाँ एक ट्रैवलर्स लॉज है, जिसमें सीमित स्थान है। अतः पर्यटकों को रास्ते में पड़ावों जैसे– रुद्र प्रयाग, गौरीकुण्ड आदि में ही ठहरना चाहिए।

यमुनोत्री तीर्थ
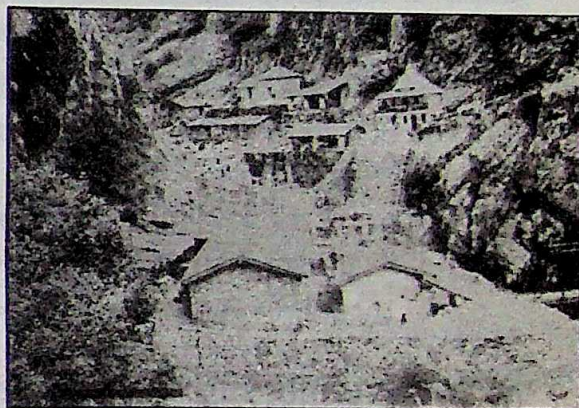
समुद्र तल से ३,२६१ मीटर की ऊँचाई पर बन्दर पूँछ नामक उन्नत शिखर के पश्चिमी किनारे पर स्थित है– यमुनोत्री तीर्थ, यह शिखर सदैव बर्फ से ढका रहता है। ठण्डे गरम पानी के अनेक कुण्डों से सुशोभित यमुनोत्री को यमुना नदी का उद्गम स्थल माना जाता है। शायद इसी कारण इस क्षेत्र का नाम यमुनोत्री पड़ा है।

यमुनोत्री भ्रमण के लिए अनुकूल समय है– मई–जून के महीने। इन दिनों यहाँ गुलाबी सर्दी पड़ती है। अतः हल्के ऊनी वस्त्रों से काम चल जाता है, किन्तु सितम्बर से अक्टूबर के बीच यहाँ भारी ऊनी वस्त्रों की जरूरत पड़ती है। जुलाई–अगस्त में यहाँ वर्षा के कारण भ्रमण करना उचित नहीं है। इसी प्रकार नवम्बर से अप्रैल तक यहाँ बर्फ जमी रहने के कारण पर्यटन करना ठीक नहीं। इन दिनों मार्ग भी प्रायः अवरुद्ध रहता है।

केदारनाथ, गंगोत्री, मसूरी, बद्रीनाथ, देहरादून,

(शेष पृष्ठ १५ पर)

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

मा० अटल बिहारी वाजपेयी
प्रधानमंत्री, भारत सरकार

श्री ओम प्रकाश सिंह
मंत्री, गन्ना विकास एवं सिंचाई विभाग, उ०प्र०

5 परमाणु परीक्षण करके देश का स्वाभिमान व सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं भारत के वैज्ञानिकों को हार्दिक बधाई

गन्ना विकास विभाग ने कई नये रिकार्ड कायम किये

१. पहली बार **गन्ना विभाग का भ्रष्टाचार, गन्ना किसानों का शोषण व माफ़ियाराज़ पूरी तरह समाप्त।**

२. पहली बार **एक वर्ष में ५९ अरब रूपये के गन्ना मूल्य का भुगतान । वर्तमान सत्र का ८६ प्रतिशत से भी अधिक गन्ना मूल्य का भुगतान सम्पन्न।**

इससे पूर्व के वर्षों में कभी भी इतना गन्ने के मूल्य का भुगतान नहीं हुआ। वर्ष ९५–९६ में ३०० करोड़ रूपये, वर्ष ९६–९७ में ३००० करोड़ रूपये के बकाया धनराशि तथा वर्तमान वर्ष के २६०० करोड़ रूपये का भुगतान किया गया।

३. पहली बार **लगातार उत्तर प्रदेश, देश में चीनी उत्पादन में सर्वश्रेष्ठ।**

कम गन्ने के उत्पादन होने के बाबजूद देश में सर्वाधिक चीनी का उत्पादन हुआ।

४. पहली बार **गन्ना मूल्य का पूरा भुगतान बैंकों द्वारा।**

पिछली कोई भी सरकार घोषणाओं के बाद भी इसे लागू नहीं कर पाई। वर्तमान सरकार ने इसे शत्–प्रतिशत पूरा कर दिखाया।

५. पहली बार **सहकारी चीनी मिलों में ६० करोड़ रूपये का नगद लाभ ।**

अब तक ७ सौ करोड़ रूपये का घाटा हुआ। केवल ९५–९६ में ही १३५ करोड़ एवं वर्ष ९६–९७ में १६१ करोड़ का घाटा देने वाली चीनी मिलों ने कुशल प्रशासन के बल पर ६० करोड़ का नगद लाभ दिया।

६. पहली बार **प्रत्येक मिल क्षेत्र में गन्ना विकास का प्रभावी कार्यक्रम लागू।**

मिलों को ७ माह तक चलाने हेतु अबतक शीघ्र पकने वाली प्रजातियों का १८७ लाख कुन्तल बीज का वितरण हुआ।

७. पहली बार **इस वर्ष ७ नई चीनी मिलें पेराई प्रारम्भ करेंगी।**

गन्ना किसानों की आर्थिक समृद्धि एवं चीनी मिलों का वित्तीय सुदृढ़ीकरण हमारा संकल्प है।

— ओम प्रकाश सिंह

गन्ना विकास एवं चीनी उद्योग विभाग द्वारा प्रसारित

संस्कृति

- डॉ० रति सक्सेना

"मानवता की ओर"

'अग्निमीळे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्न धातमम्।। ऋग्वेद १/१/१।।

मानवता सदैव उन्नति की राह पर चलना चाहती है, गहन अंधकार व बीहड़पन को त्याग प्रकाश पाना चाहती है, ऐसा प्रकाश जो तन, मन को प्रकाशित करता हुआ आत्मा की आन्तरिक परत में पैठ जाये। पशुता अपने को जिस अँधेरे में, सीलन में दुबकी अभय पाती है, वही अँधेरा मानव को भीतर तक छटपटा देता है। अँधेरा प्रकाश का अभाव है, परिवेश का प्रकाश, मन का प्रकाश, ज्ञान का प्रकाश आत्मा का प्रकाश– मानवता इन सब प्रकाशों को पाना चाहती है। यही इसका लक्ष्य है, यही उन्नति का मूल है। पशुता अंधकार में जीवन पाती है, अपना शिकार खोजती है और सक्रिय हो जाती है, जबकि मानवता हर अंधकार को त्यागना चाहती है, प्रकाश की ओर बढ़ना चाहती है– प्रकाश के प्रति यही आग्रह मानव को अस्ति की ओर आकर्षित कर पाया– अग्नि जैसी दाहक, ज्वलनशील शक्ति को मित्र बना पाया। उसने अग्नि की आधिभौतिक व आध्यात्मिक क्षमता को पहचाना व स्वीकार किया। वह ज्वलनशील ध्वंसात्मक शक्ति उसके इशारे पर यज्ञ के पावन कुण्ड में जा बैठी, परिवेश को परिशुद्ध करती हुई मानव की भावनाओं को अभिमंत्रित करती हुई लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग को उज्ज्वल करने लगी। तभी 'अग्नि' दिव्य शक्ति बन आधिदैविक शक्तियों को आकर्षित करने लगी। भौतिक जीवन में मानव ने अपने घर के सर्वाधिक पवित्र स्थान रसोई में अग्नि को ला बैठाया। चूल्हे की स्वामिनी बन अग्नि मानव भोजन को सुस्वादु, पक्व व सुगन्धित करने लगी। मानव पशुओं से इतर मानवीय भोजन करने लगा। आध्यात्मिक अग्नि आत्मा को परिशुद्ध करती हुई परमात्मा की प्राप्ति में सहायक बनी। वस्तुतः आध्यात्मिक अग्नि को जाग्रत् करना मानवता की पराकाष्ठा है। वैदिक चिन्तकों ने अग्नि के विविध मूल्यों को स्वीकारा, तभी ऋग्वेद का प्रथम मंत्र उन्नति के मार्ग की ओर ले जाने वाली, यज्ञ की दिव्य शक्ति, होना सभी समृद्धियों के मूल अग्नि को समर्पित किया गया– **"हे शक्तिशाली ईश ! याग के दिव्य रूप आहुति को स्वीकृत कर अभिमंत्रित करने वाले सभी रत्नों के भण्डार देव, हमें उन्नति की राह बता, आगे ले चल।"**

– के०पी० IX/624, वैजयन्त
चेटीकुन्नु, मेडिकल कालेज, तिरुवनन्तपुरम्

(पृष्ठ १३ का शेष)

आइए चलें .... केदारनाथ

कोटद्वार, नैनीताल आदि स्थानों से यमुनोत्री के लिए बसें चलती हैं। ये बसें हनुमान चट्टी पर उतरती हैं। यहाँ से १३ कि०मी० दूर यमुनोत्री तक पैदल चलना पड़ता है।

हनुमान चट्टी और यमुनोत्री के बीच करीब ७ कि०मी० के अन्तराल पर जानकीबाई चट्टी, जिसे नारायण पुरी भी कहते हैं, यमुनोत्री पर्यटन का पड़ाव–स्थल है। जानकी बाई चट्टी से यमुनोत्री का भ्रमण करके उसी दिन लौटा जा सकता है। जानकी बाई चट्टी में ट्रैवलर्स लॉज और लोक–निर्माण विभाग के निरीक्षण–भवन में ठहरा जा सकता है। जो यात्री यमुनोत्री में ही ठहर कर पर्यटन का आनन्द लेना चाहते हैं, वे यमुनोत्री में धर्मशालाओं या वन–विभाग के विश्राम–गृह को अपना आवास बना सकते हैं। यमुनोत्री के प्राकृतिक सौन्दर्य के केन्द्र है– यमुना नदी का उद्गम स्थल। इस स्थल पर हमेशा बर्फ जमी रहती है। हनुमान गंगा तथा टोंस नदियों के जल निर्गम क्षेत्र भी यही है। हिमाच्छादित ऊँचे–ऊँचे पर्वतों का अपना अलग ही आकर्षण है। यमुनोत्री में यमुना देवी का मन्दिर भी है। मन्दिर के निकट गरम पानी के कई स्रोत हैं। यह पानी विभिन्न कुण्डों में चला जाता है। मुख्य मन्दिर में यमुना देवी मूर्त्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

यमुनोत्री के समस्त कुण्डों में सूर्य–कुण्ड का विशिष्ट स्थान है। इस कुण्ड का पानी अपेक्षाकृत अधिक गरम रहता है। अनेक पर्यटक चावल, आलू आदि कपड़े में बाँधकर इसमें उबाल लेते हैं। पर्यटकों के लिए यह आनन्ददायक अनुभव है।

जानकीबाई कुण्ड का पानी गुनगुना है। इस कुण्ड के जल में स्नान से थकान उतर जाती है। ❐

– आर०बी०–२/६६६/सी, रानी लक्ष्मीनगर,
झाँसी–२८४००३

(पृष्ठ ८ का शेष) **अपरिहार्य क्यों ...**

जीवन में शायद कभी कोई किताब भी नहीं पढ़ी होती है। क्या कोई इसे जनता द्वारा जनता के लिए बनाई गई गणतन्त्र–व्यवस्था कह सकता है?

तकनीकी तौर पर और काल–क्रम के सन्दर्भ में कहें, तो अंग्रेजों ने १९४७ में भारत छोड़ दिया; लेकिन हमारे वर्तमान संविधान ने यह सुनिश्चित किया कि औसत भारतीयों के लिए यथार्थ में अंग्रेजों का शासन कभी समाप्त नहीं हुआ। हमारा संविधान केवल अंग्रेजों के ही तौर–तरीकों को बनाये रखने का एक जहरीला तरीका है– जिसमें सोचने का वही पुराना रवैया, वही साम्राज्यवादी मानसिकता, लोगों को परेशान करने की वही पुरानी तरकीबें, वही साम्राज्यवादी पुलिस और वही पहले जैसी यन्त्रणादायक नौकरशाही जारी है। ऐसा लगता है कि औपनिवेशिक अतीत कहीं ठहर गया है। आजादी के ५ दशक बीत चुके हैं, परन्तु इसके बावजूद अंग्रेज शासकों द्वारा तैयार किये गये कायदे–कानूनों से देश को आज चलाया जा रहा है, जनता को दण्डित किया जा रहा है और सरकार के विरोधियों का गला घोंटा जा रहा है। अंग्रेजों ने जिन क्रूर अधिकारों का इस्तेमाल किया था, उनमें से अधिकांश आज भी पहले की तरह बने हुए हैं और विरोधियों की आवाज को दबाने के लिए उनका इस्तेमाल किया जा रहा है। आज भी लोगों को बिना मुकदमा चलाये जेलों में रखा जा रहा है, प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज किया जा रहा है और अखबारों को विरोधी स्वर के कारण बन्द किया जा रहा है। अंग्रेजों ने १८६० में जो वैधानिक संहिताएँ तैयार की थीं, उन्हें ही आज देश का कानून बना दिया गया है। दीवानी और फौजदारी के मामलों में आज भी न्याय उन्हीं कानूनों और नियमों के आधार पर दिया जा रहा है, जिन्हें अंग्रेजों ने १८५७ के स्वतन्त्रता–संग्राम के बाद तैयार किया था।

समूची व्यवस्था सामन्तवाद और अजनतान्त्रिक व्यवहारों के वातावरण में साँस तोड़ रही है। हर कदम पर सच्चाई को छिपाने, जनता को धोखा देने और आजादी को कुचल डालने का प्रयास किया जा रहा है और इसका स्रोत १९५० का संविधान है। आर्थिक–विकास नाम का शब्द संविधान में कहीं आता ही नहीं है। स्वतन्त्रता के पचास वर्ष बाद हम लोगों को पीने का पानी नहीं दे सकते। जिम्मेदारी नाम का शब्द इस संविधान में है ही नहीं। जनता की सेवा करना इस संविधान की देखरेख से बाहर है और एक गौरवशाली राष्ट्र को निष्पक्ष प्राप्ति और गुणों के आधार पर बनाना तो इस संविधान की पद्धति में सोचा ही नहीं जा सकता।

यह संविधान वह कारण है, जो शिक्षा में गिरते हुए स्तर, निरन्तन गिरता हुआ आद्यौगिक उत्पादन, बढ़ती हुई बेरोजगारी, जनता की कंगाली और कठिनाईयों के लिए दोषी है। इसी संविधान के द्वारा लोगों को जाति, भाषा, धर्म तथा अनेक निकृष्ट आधारों पर विभाजित किया जाता है। इसी संविधान द्वारा भारत में अब सरकार द्वारा "संचालित जाति–प्रणाली" आ गई है केवल सरकारी नौकरियों के आरक्षण को बनाने और बढ़ाने के लिए। यही वह संविधान है, जिसकी मदद लेकर अभिव्यक्ति की आजादी का गला घोंटा जाता है और पुस्तकों, फिल्मों, अखबारों तथा हर तरह की कलाकृतियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। इसी संविधान का सहारा लेकर राष्ट्र के हितों की रक्षा न कर एक सत्तारूढ़ परिवार के हितों को बनाये रखने के लिए १९७५ में आपात–स्थिति की घोषणा की गई थी।

वर्तमान संविधान अपने आप में एक षड्यन्त्र और बेईमानी है, जिसके कारण भारतवर्ष में गणतन्त्र व्यवस्था, आर्थिक उन्नति, एक सेवा–उन्मुख सरकार तथा एक भेदभाव रहित समाज की स्थापना करना असम्भव है। भारत का वर्तमान संविधान संसार का सबसे अजनतान्त्रिक, आर्थिक उन्नति विरोधी तथा विघटनकारी संविधान है और इसी कारण हमारे यहाँ भ्रष्टाचार, पिछड़ापन, भेदभाव और दुर्व्यवस्था बढ़ रही है।

अब समय आ गया है कि देश को नये विचारों की आवश्यकता है। समय आ गया है पूरी राजनैतिक पद्धति को सुचारू रूप से सुव्यवस्थित करने का। **विश्वास रखिए, जब तक संविधान त्रुटिपूर्ण रहेगा, अच्छे लोग अच्छी नीयत रखते हुए भी कुछ कर नहीं पायेंगे। वर्त्तमान संविधान उनके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।** ❒

– के०–२१, हौज खास इनक्लेव, नई दिल्ली

गुरु-शिष्य-सम्बन्ध

बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ही भारत में हुआ, जो सनातन धर्म का ही एक अंग है। उसके लगभग सभी तीर्थ–स्थल भारत में हैं और हिन्दुओं के तीर्थ–स्थल; यथा– कैलास, मानसरोवर तिब्बत में। भारत की प्रमुख नदियाँ सिन्धु तथा ब्रह्मपुत्र तिब्बत से ही निकलती हैं। ये सम्बन्ध सदियों पुराने हैं, तिब्बत का अस्तित्व समाप्त होने के साथ–साथ इन्हें खोने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।

– परमपावन दलाई लामा

अभिनन्दन है अभिवन्दन है

युवावस्था में शस्त्रों तथा परवर्त्ती जीवन में लेखनी द्वारा राष्ट्र–सेवा में अविरत अविराम समर्पित क्रान्तिकारी, चिन्तक एवं लेखक श्रीयुत पं० वचनेश त्रिपाठी (जन्म १४ जनवरी १९१४, सण्डीला, जनपद हरदोई, उ.प्र.) को वर्ष १९९८ का 'डॉ० हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान' श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय (१–सी, मदन मोहन बर्मन स्ट्रीट, कलकत्ता) द्वारा गत १० मई ९८ को यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट हाल, कलकत्ता में आयोजित एक भव्य समारोह में प्रदान किया गया। सम्मान–राशि ५१,००० रुपये का चेक कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ० मुरलीमनोहर जोशी द्वारा और शाल ओढ़ाकर श्रीफल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा वचनेश जी को अर्पित किया गया।

'पाञ्चजन्य' (साप्ताहिक), 'राष्ट्रधर्म' (मासिक) और 'तरुण भारत' (साध्य दैनिक) के सम्पादक के रूप में वचनेश जी की लेखनी का लोहा बड़े–बड़े मानते रहे हैं। इन प्रकाशनों को जो प्रतिष्ठा, जो आयाम उनके सम्पादकत्व में प्राप्त हुए, उसका अपना एक इतिहास है। तीस प्रकाशित तथा चार प्रकाशनाधीन पुस्तकों के रचयिता वचनेश जी की लेखनी के तेवरों की प्रखरता ८४ वर्ष की आयु में भी यथावत् है। वह क्रान्तिकारी इतिहास और सांस्कृतिक सत्यों के सचल संगणीकृत ज्ञान–कोश हैं।

ऋषि–कल्प पं० वचनेश त्रिपाठी के इस सम्मान पर 'राष्ट्रधर्म' उनका हार्दिक अभिनंदन एवं अभिवंदन करते हुए गौरव का अनुभव करता है।
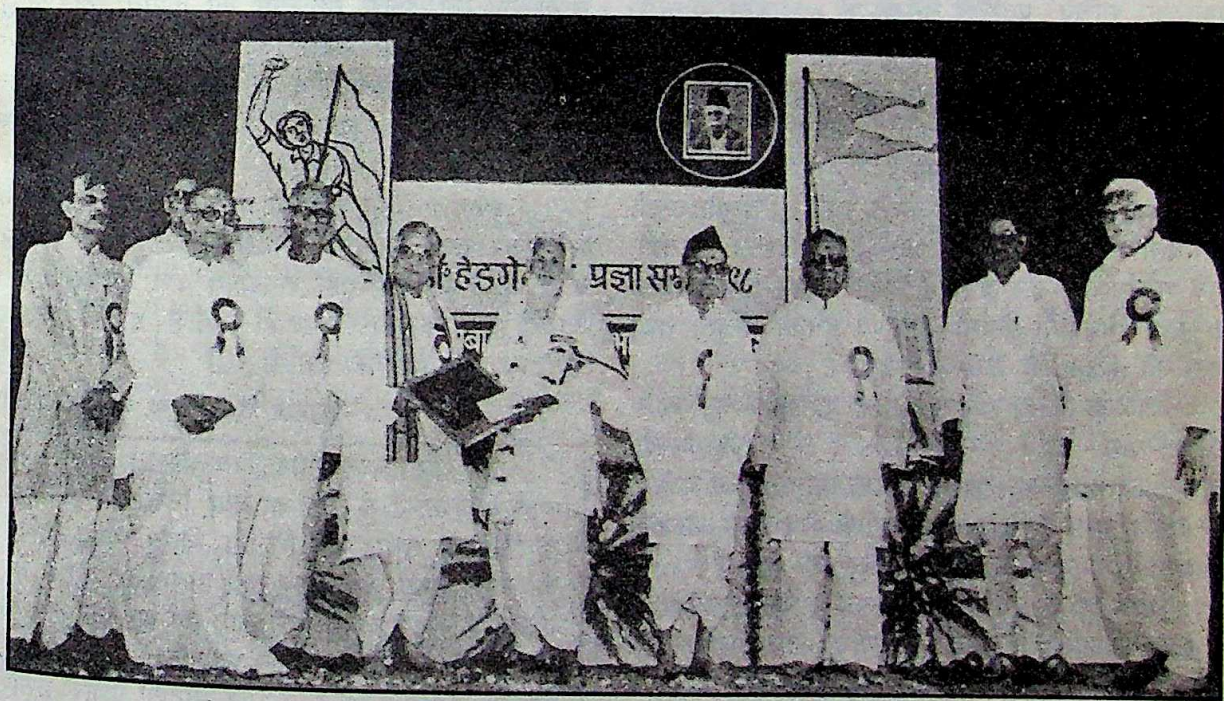
चैतन्यदीप पं० वचनेश त्रिपाठी को 'डॉ० हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान' प्रदान करते हुए डॉ० मुरलीमनोहर जोशी

(चित्र में बाएँ से) डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री महावीर बजाज, डॉ० सुजित धर, आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री, डॉ० मुरलीमनोहर जोशी, पं० वचनेश त्रिपाठी, श्री केशवराव गोरे, श्री अश्विनी कुमार, श्री पुरुषोत्तम दास चितलाँगिया एवं श्री जुगुलकिशोर जैथलिया।

सफल शासक के सौ गुण

— डॉ सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु

शक्ति, साहस और कर्मठता के सम्मुच्चय का ही दूसरा नाम शासक है। जिस शासक में इन तीनों गुणों का समाहार होता है, वह सफल होता है तथा जिसमें इसका अभाव होता है, वह विफल तथा विजित होता है। शासक का यही मूल मन्त्र, यन्त्र तथा तन्त्र है। इतिहास इसका साक्षी है। शासक संज्ञा के साथ ही विशेषण भी है। इस तथ्य को जो शासक ध्यान में रखता है, वह अवश्य ही सफल शासक होता है।

वाल्मीकीय रामायण में अति कुशलता एवं मनोयोग पूर्वक सफल शासक के सौ गुणों की चर्चा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी उपादेयता को दृष्टिमध्य रखते हुए यहाँ चर्चा की जा रही है।

इस सफल शासन को शत्रु–पक्ष के मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सचिव, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माणकर्त्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्र सीमापाल तथा वनरक्षक इन अठारहों को अपने लिए अनुकरणीय तीर्थस्थल के समान मानना चाहिए। निहितार्थ कि इनकी कुशलता तथा व्यवस्था से सीख लेकर अपनी शासन–व्यवस्था को सुदृढ़ तथा चुस्त करना चाहिए। तीर्थाटन की उपादेयता भी तो दोष परिमार्जन ही है। इतना ही नहीं, अपने शासनाधीन इन अठारह विभागों तथा विभागाध्यक्षों पर सतत निगरानी रखनी चाहिए। इनकी पात्रता तथा निष्ठा की परीक्षा भी लेनी चाहिए।

शासक को इन दस दुर्गुणों से सदैव दूर रहना चाहिए। यथा– आखेट, जुआ, दिन में सोना, पर–निन्दा, स्त्री में आसक्त होना, मद्यपान, नाचना, गाना, बाजा बजाना और व्यर्थ घूमना। इतिहास इन दुर्गुणों के शिकार शासकों की कहानी से भरा पड़ा है। ये दस वर्ग–दोष हैं।

एक सफल शासक को अपने शासन क्षेत्राधिकार के जलदुर्ग, पर्वतदुर्ग, वृक्षदुर्ग, ईरिणदुर्ग तथा धन्वदुर्ग की हमेशा रक्षा करनी चाहिए। ये बाह्य आक्रमणों के समय कवच का काम करते हैं। साम, दाम, भय, भेद–चतुर्वर्ग का भी शासन संचालन में प्रयोग करना चाहिए। राज्य के मुख्यमन्त्री, मन्त्री, स्वयं राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्र वर्ग ये सभी उपकारी रत्न हैं, इन्हें रत्नवत् महत्त्व देना आवश्यक है।

दूसरी ओर चुगली, आवेग, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणी की कठोरता और दण्ड की कठोरता से शासक को दूर रहना चाहिए।

खेती की उन्नति करना, व्यापार को बढ़ाना, दुर्ग बनवाना, पुल का निर्माण कराना, जंगलों की रक्षा, खानों पर अधिकार प्राप्त करना, कर लेना और निर्जन, बंजर भू–भाग को आबाद करना शासक के अष्टकर्म हैं। शासक को दण्डनीति तथा वार्त्ता–कार्य की कला में निपुण होना ही चाहिए। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय– इन छह भूषणों को शासकों को आभूषण की तरह धारण करना चाहिए।

शत्रु के वेतन–वंचित सेवकों, अपमानित जनों, कुपित सेवकों, भयभीत किये गये लोगों को शासक द्वारा अपने पक्ष में करने की कला कूटनीति कहलाती है। जो शासक बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, जातिच्युत, डरपोक, भीरु, लोभी–लालची, मन्त्री या सेना को कुपित रखने वाला, विषय–व्यसनी, चंचल चित्त, विद्वानों का निन्दक, अभागा, काहिल तथा पुरुषार्थविहीन, दुर्भिक्ष पीड़ित, सेवा रहित, स्वदेश में न रहने वाला तथा सत्यरहित हो, उससे कभी भी संधि नहीं करनी चाहिए।

स्पष्टतः जिन शासकों के द्वारा उपर्युक्त गुणों को अपनाकर तथा अवगुणों को त्यागकर शासन संचालन कार्य किया जायेगा, वहाँ रामराज्य क्या, स्वर्गसुख उतर आयेगा और फिर 'धरती पर ही स्वर्ग है', इस कहावत को चरितार्थ होते देर नहीं लगेगी। ❐

–आरक्षी उपाधीक्षक, मधेपुरा (बिहार)

"आलसी और अव्यवस्थित लोगों को आवश्यक कार्यों के लिए तो क्या, नित्यप्रति के कामों के लिए भी समय नहीं मिलता, किन्तु व्यस्त व्यक्ति को कभी समय का अभाव नहीं होता। वास्तव में मेरे जीवन के सबसे व्यस्त दिन साठ वर्ष पार कर लेने के बाद के हैं। इस अवधि में मैंने प्रदर्शनियों के उद्घाटन, राष्ट्रीय संस्थाओं के काम और स्वदेशी प्रचार–प्रसार के सिलसिले में देश में कोई दो लाख मील की यात्रा की है। दो बार यूरोप भी गया हूँ। इसके बावजूद मैंने अपने वैज्ञानिक शोधकार्य में कभी बाधा नहीं पड़ने दी। अपनी छुट्टियाँ काटकर शोधकार्य करता हूँ।"

— आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय

सामाजिक कहानी

– वचनेश त्रिपाठी 'साहित्येन्दु'

भैया की बात

"नारी के दो रूप है आशा बिटिया, एक दुःखदायी है, दूसरा सुख देने वाला। पर दोनों में जो सुखी रहे ....ह....ह...ह...ह।"

मैंने देखा भैया जीने की सीढ़ियाँ उतर रहे हैं और अपनी तीन साल की लड़की से कुछ कहते भी जा रहे हैं। वे सदैव बेटी आशा से मन की बातें किया करते हैं। जब आशा अपनी माँ के पास होती है, तब वे स्वयं स्वगत भाषण याकि काल्पनिक बातें किया करते हैं और हँसते भी रहते हैं।

मैंने उनका वह वाक्य सुन लिया था, सोचा ठीक ही कहते हैं भैया। नारी के सचमुच दो रूप होते हैं– एक लक्ष्मी का और दूसरा .... ?

तब तक साढ़े नौ का अलार्म बजा दिया मेज पर रखी घड़ी ने, और तब जल्दी–जल्दी कपड़े उतार कर साबुन की डिब्बी और तौलिया लेकर कमरे से बाहर निकल आया स्नान करने।

आँगन में धुवाँ ही धुवाँ भरा था और भाभी जुटी थीं रोटियाँ सेंकने में।

"भाभी कुछ उदास दीखती हैं आज" ? मैंने ऐसे ही पूछा– कुछ पूछना चाहिए था इसलिए मैं कुछ पूछ रहा हूँ ..... यह जानकर उन्होंने थोड़ा मुस्कराने की कोशिश की, फिर मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए बोलीं...

"नहीं तो .... लकड़ियाँ गीली हैं और क्या बताऊँ .... जब भाग्य ही खोटे हैं, तो किसे दोष देने बैठूँ।"

मैं समझ न सका उनकी बात, बोला... "क्या हुआ .... ?"

"होगा क्या ! तुम्हारे भाई साहब से तो मैं तंग आ गई हूँ, उनका वही ढंग। पूछो जब पैसा देते हो, तो चीज देख–भाल कर क्यों न लो। पर उन्हें रोटियाँ तो बनानी नहीं, जो ...." बोलते–बोलते उनकी यह उदास मुस्कराहट गायब हो गई और सदैव जमी रहने वाली खिन्नता–युक्त कठोरता ने उसका स्थान ले लिया।

और तब मैं चुपचाप स्नानगृह की ओर बढ़ गया। सर्दी लग रही थी; क्योंकि केवल तौलिया डाले खड़ा था और कार्यालय जाने में भी देर हो रही थी।

नहाकर जब वापस लौटा, तो देखा कि भैया कमरे में बैठे हैं.... अनमने से। देख कर चौंका मैं। भैया और अनमने। यह हो ही नहीं सकता। यह हो तो नहीं सकता, पर सम्भव है कुछ विशेष घटना घटित हो गई हो, आखिर आदमी ही हैं वे भी।

पूरे डेढ़ वर्ष से मैं उन्हें जानता हूँ। केवल डेढ़ वर्ष से इसलिए कि मेरा उनका यह जो नाता है, वह "सगेपन" की मुहर नहीं रखता।

चलते–फिरते बहुतों से परिचय हो जाता है– पर नाता तो नहीं जुड़ता इस प्रकार। किन्तु मैं अठारह महीनों से इन्हीं के मकान में रह रहा हूँ... फिर यदि जुड ही जाय, तो अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक भी नहीं लगेगा किसी को।

हाँ, तो भैया का स्वभाव, उनके विचार बहुतों से मेल नहीं खाते, यह मैं कहूँगा। वे कभी कुछ कहते–सुनते नहीं। किसी विषय पर यदि बात छिड़ ही गई तो मौन धारण कर लेते हैं या हँसने लगते हैं और बुरी तरह से, जैसे हँसने का कोई रोग हो उन्हें।

लोग कहते हैं कि यह आदमी जहाँ बैठ जाता था दो मिनट कि फिर देखते आप हर कोई हँस रहा है। बात–बात पर हँसी। भैया अब भी हँसते हैं, पर उतना नहीं। वैसे आप कभी उन्हें उदास नहीं पायेंगे, पर सुनता हूँ कि जब से उनका विवाह हो गया है और भाभी आईं कि दुनिया ही बदल गई उनकी। कुछ दिन ऐसा जान पड़ा कि भीतर–भीतर उन्हें कोई खुरच रहा हो जैसे कोई तेज छुरे से और धीरे–धीरे उनकी खुशी गायब हो गई। स्वस्थ सुन्दर चेहरा, जिस पर सदैव आनन्द व उल्लास लहरें मारा करता था, कुम्हला–सा गया कुछ ही दिनों में। लोग समझ न पाये कि बात क्या है ? अब भी समझ नहीं पाते, क्योंकि इधर कुछ वर्षों से वे हँसते रहते हैं पहले की तरह, सुनने वालों को पर उसमें कुछ अन्तर का आभास अवश्य मिलता है– पहले वाली बात नहीं मिलती।

भाभी से कुछ अनबन रहती है.... ऐसा तो कोई सोच भी नहीं सकता था; क्योंकि कभी किसी ने भाभी की बुराई करते नहीं सुना उन्हें।

इधर मैं जब से आया हूँ और अब तक जो कुछ देख पाया हूँ, उससे चकित रह गया हूँ। इतनी सहनशीलता! न बाबा, आदमी के बस के बाहर की बात है।

"सब्जी और दो न थोड़ी" .... खाते-खाते जब वे माँगते, तो भाभी फुफकार भरती हुई बटलोई उनके सामने पटक देती हैं जोर से। कहती हैं, "क्या सब इसी समय बन जाती?.... शाम को क्या मेरा सिर खाओगे?"

मैं भी सुन लेता हूँ अपने कमरे में बैठे-बैठे, क्योंकि उनके रसोईघर से मिला हुआ मेरा अपना कमरा है।

सुनकर सोचता हूँ कि चार हजार तीस रुपये पाते हैं भाई साहब और इने-गिने तीन प्राणी भैया, भाभी और उनकी लड़की आशा, जो अभी तीन वर्ष की है। फिर भी सब्जी की कमी। भाई साहब का ऊपरी खर्च नहीं के बराबर है।

भैया हैं कि पहली या दूसरी को चार हजार तीस रुपये लाकर वैसे के वैसे भाभी को दे देते हैं। कभी भी तो हिसाब नहीं माँगते हैं। जब आवश्यकता पड़ती है तो माँगते हैं उन्हीं से और तब भाभी झगड़ा-झंझट करके दस रुपये माँगने पर ७ या ८ रुपये कठिनाई से देती हैं। और देखता हूँ कि भैया के माथे पर एक भी सिकुड़न नहीं पड़ती। माँगते हैं तब भी हँसते हैं और जब १० रुपये माँगते हैं तो भाभी देने में आनाकानी करती हैं और फिर भी देती हैं सात रुपये। वह भी जमीन पर फेंक देती हैं। फेंके हुए रुपये उठाकर वे चले जाते हैं, जहाँ जाना होता है।

"कहो साहबजादे! स्नान कर आये? किया बड़ी हिम्मत का काम......।" मैं न जाने क्या-क्या सोच रहा था और कंघे में जो बाल टूट कर रह गये थे.... उन्हें निकाल-निकाल कर खिड़की से नीचे फेंक रहा था कि उनका प्रश्न और फिर एक हँसी का ठहाका सुनकर मैं भी ठीक उनके सामने आ खड़ा हुआ।

"हिम्मत-इम्मत क्या, न नहाऊँ तो शरीर भारी-भारी-सा रहता है और भाभी का जो भय रहता है, वह भी कम नहीं......"

"ह...ह...ह...ह...क्या कहती हैं, बताओ तो जरा?"

"कहती हैं, ब्राह्मण के घर जन्म लेने से कोई पण्डित नहीं बन जाता, कुछ धर्म-कर्म भी...."

"ह...ह....ह...ह..." ..... वही बेढब हँसी। फिर बोले... "ठीक तो कहती हैं, झूठ क्या है इसमें, तुम्हीं बताओ भाई?"

इतनी देर में वे कई ठहाके लगा चुके थे पर मुझे एक बार भी हँसी न आई, हँसने की कोई बात हो तो हँसा जाता है।

मैं चुप रहा और मेज पर से एक मासिक पत्र उठाकर उलटने-पुलटने लगा।

"खैर, तुम्हारा धर्म-कर्म तो तुम्हारी भाभी ही जानें भई, वैसे कुछ मैं भी जानता हूँ.... पर वह शायद न तो तुम से मेल खायेगा, न तुम्हारी भाभी साहिबा से ही। मैंने कहीं पढ़ा था कि जिन्हें तुम अधिक प्यार करते हो... अरे, क्या नाम था उनका, रवीन्द्रनाथ टैगोर, हाँ, टैगोर की ही बात है .....।"

तब तक आ गयी उनकी बेटी आशा.... वह आते ही उनकी टाँगों में झूल गयी और उनकी वह टैगोर वाली बात बीच में ही छूट गयी।

"रानी बिटिया, जा अपनी माँ को मना ले जरा, कह जाकर उनसे कि संसार में रहकर सभी के नाते निबाहने पड़ते हैं... न निबाहना स्वार्थ को बढ़ावा देना ह....ह....ह।" उनकी इस हँसी के कारण परिचितों ने उन्हें 'सनकी' की उपाधि दे डाली थी।

मैं चकराया कि आशा विचारी क्या समझेगी यह सब और यह आज मान मनौती काहे की, किसका नाता नहीं निभाने देना चाहती मेरी नेक भाभी।

"क्या हुआ भैया?" मैंने सीधे उन्हीं से पूछा।

"कल संध्या को एक तार आया है भाई का। उसने बुलाया है जल्दी। कारण कुछ नहीं लिखा। मैंने कहा हो आऊँ, पता नहीं क्या बात है? तार कोई ऐसे ही नहीं देता। पर तुम्हारी भाभी कहती हैं कि क्या करोगे जाकर? वे लोग ऐसे ही बैठे बिठाये खर्चा करवाते रहते हैं। कहती हैं, जमाना देखा; न किसी का भाई है, न भतीजा...., मैं रुपये नहीं दूँगी और न जाने की ही सलाह दूँगी। पर भाई तुम्हीं सोचो कि संसार में रहकर संसार के सभी नाते निभाने पड़ेंगे, फिर वह तो मेरा भाई है, १०-२० रुपयों का मोह देखना उसके सामने उचित है क्या? उन्होंने बता डाला और फिर लगे आशा से कहने......"

"मेरी अच्छी बिटिया, जा अपनी माँ को राजी कर ले रो-धोकर कहना, वह भाई है अपना, तेरा चाचा... न जाना उचित नहीं। और कौन बड़ा खर्चा हो जायेगा..."

वे कहे जा रहे थे और एक भी बल..... एक भी शिकन उनके माथे पर नहीं दिखाई दे रही थी। रोज की ही टोन में बतला रहे थे.... जैसे आशा को कोई कहानी सुना रहे हों।

"उफ! हद हो गई.... ऐसी भाभी...।" मैं मन ही मन बड़बड़ाया।

एक दिन की बात। उस दिन भैया जब जल्दी ही वापस आ गये, तो पता चला कि भाभी दोपहर से कहीं गयी हुई हैं।

"गयी होंगी कहीं रिश्तेदारी में, आती होंगी।" कहकर पूरे तीन घण्टे गुजर गये उन्हें प्रतीक्षा करते-करते। दिये जल गये, तब कहीं वे आईं। मैं भी टहलता रहा इधर-उधर। क्या करता? भाभी बाहर ताला जो डाल गईं थीं। पर वाह रे पति! आने पर भैया बिल्कुल मौन रहे। हँसते रहे बीच-बीच में। अपने आप कोई बात कहना.... किसी गीत या भजन की कोई पंक्ति गुनगुनाना और फिर स्वयं हँसना तो उनकी आदत ही बन गई है। कोई उनकी हँसी में योग दे या न दे; उनकी बात का जवाब दे या न दे ... उसकी उन्हें चिन्ता या अपेक्षा नहीं रहती।

यहीं तक बस नहीं। आने पर जब घर में दीपक जलाया गया तो भाई साहब बोले, "जरा जल्दी खाना बनाओ... बहुत भूख लगी है।"

"भूखे हो गये हो तो क्या यहाँ कोई जादू की मशीन लगी है, जो कहते-कहते पूड़ी-कचौड़ी निकलने लगे। बनाते-बनाते घण्टे दो घण्टे लग ही जायेंगे।" और फिर फर्श पर कटोरदान पटकने की आवाज सुनाई दे गई मुझे। ... मैं थकान के कारण बिना बिस्तर बिछाये खाट पर पड़ा था। भैया भाभी के विचारों ने हृदय में आग लगा दी। उठा और निरुद्देश्य बाहर चल दिया। .... पर जाता कहाँ? थोड़ी देर में ठण्डी हवा के थपेड़े जब सीधे हड्डियों में घुसने लगे, तो दिमाग भी ठण्डा हो गया और आकर चुपचाप लेट रहा। बजे अभी आठ ही थे।

दो ही चार मिनट बीते होंगे कि मेरे कमरे में आ गये भाई साहब।

"वाह! अँधेरे में क्या कर रहे हो साहबजादे? लाइट करो, हुँह भला यह भी कहीं सोने का समय है। पर भाई, तुम ठहरे ऑफिस के बाबू.... ह...ह....ह...ह..." बोलते-बोलते वे लगे हँसने। मैं उठ बैठा, पर हँस नहीं सका। भैया कहने लगे- "हालाँकि उनमें आज जीवित एक भी नहीं आशा बेटी को छोड़कर, पर छह बच्चों का बाप होकर भी मैं इतना बूढ़ा तो नहीं हो पाया साहबजादे, जितने तुम इस नई उमर में .....।" वे कहते जा रहे थे और हँसते जा रहे थे मैं सोच रहा था कि छह बच्चे मर चुके हैं फिर भी उन बच्चों की बात करते समय उनके मुख पर मलिनता नहीं आयी और हँसी तो बेढब है, भयानक है और शायह इन्हें जीवनदान देने वाली भी। तभी तो अब भी ये इतने स्वस्थ हैं। कौन कहेगा कि इन्हें कोई दुःख है .... अभाव है या भाभी से इन्हें कोई शिकायत है?

कभी-कभी देखता हूँ कि भाभी भी हँसती हैं... हँसती रहती हैं अपना चिड़चिड़ापन छोड़कर। पर मैं जानता हूँ कि कौन हँसाता है उन्हें जी भर कर। उन्हें ही क्यों, कोई भी जो भैया के सम्पर्क में आता है, वह हँसता है इसी प्रकार, थोड़ी ही देर सही पर वह अपनी समस्त चिन्ता अथवा व्यथा को भूलकर हँसता अवश्य है।

"भाभी?.... हाँ, दे सचमुच विचित्र हैं.... भैया नहीं मैं यही कहूँगा कि देवता-सा पति पाकर वे भी यह सब अनपेक्षित व्यवहार करती हैं, अन्यथा ......"

पर भाभी! काश तुम अपने हृदय को बदल सकतीं जो आवश्यकता से कहीं अधिक कड़ा हो गया है। पत्थर और लोहा भी सुनता हूँ.... संस्कारित हो जाते हैं और तुम एक हो, भैया-सा देवता पति पाकर ...."

"क्या सोच रहे हो साहबजादे? आफिस नहीं चलोगे? तैयार हो लो, तब तक देखूँ यदि तुम्हारी भाभी खिलावें तो मैं भी खाना खाकर आ जाता हूँ। मैं भी...।" वही टोन, वही स्वर, कुछ भी बदल नहीं।

"लेकिन तार के बुलावे पर जाओगे नहीं भैया?"

"जाना तो चाहता हूँ पर देखो तुम्हारी भाभी कब राजी हों......"

"रुपये मुझसे लीजिए और ......।" मैंने छूटते ही कहा।

"नहीं भाई, सुखी रहो तुम। बात केवल रुपियों की ही नहीं है आज तक कोई भी काम बिना एकमत हुए किया नहीं मैंने। न मानो पूँछ देखना अपनी भाभी से।"

और वे चले गये उसी निर्विकार भाव से।

सुना है नारी श्रद्धा है.... माता है, स्नेहमयी बहिन है पर भाभी! तुम जो भैया की पत्नी हो तो तुम्हें .... और केवल तुम्हें सम्बोधित कर पूछता हूँ कि तुम कौन हो नारी के रूप में? ......बताओगी? ◻

दानवी–शक्ति पर इतराने वालो हो जाओ सावधान

– हरीशंकर दीक्षित

पौरुष को करके दलित, दमन इतिहास बनाता जब अपना;
तन–मन की स्वतन्त्रता जब रह जाती केवल बनकर सपना।
जब पाप जेठ के सूर्य सदृश, विकराल रूप से तपता है;
रट त्राहिमाम् की सुनकर भी, जब ईश्वर नहीं पिघलता है।

वैभव–विलास धन–बल जब सज्जनता की हँसी उड़ाते हैं;
भूखे–नंगे समाज का शोषण कर, मुखिया इतराते हैं।
जब श्वान दूध पीते, भूखे प्यासे बालक अकुलाते हैं;
जननी के रीते स्तन, रोते–पीते ही शिशु सो जाते हैं।

भयभीत दमन से मानवता, जब थर–थर–थर थर्राती है;
बहनों की लुटती लाज देख, भाई की फटती छाती है।
अपमान गरल पीते–पीते, जब मातृ–शक्ति अकुलाती है;
अन्तरतल की वेदना अनल बन, तीव्र ज्वाल धधकाती है।

इस ज्वाला में ही जन्म क्रान्ति लेती, इतिहास बताता है;
दमनाग्नि तपी निखरी कुन्दन–आभा, विधि–लेख सजाता है।
जिस ठाँव–पाँव धरती, धरती धँसती, खगोल थर्राता है;
अत्याचारी का स्वर्ग मात्र चितवन से ही ढह जाता है।

यह करती वरण वीरता का, लाशों की सेज बिछाती है;
तलवारों की खनखन लय पर यह प्रणय गीत जब गाती है।
भ्रुकुटी विशाल बाँकी चितवन जिस ओर घूमती जाती है;
बर्बर शोषक अत्याचारी शासन की मति चकराती है।

है क्रान्ति शक्ति–जिसके भय से पाषाण–हृदय थर्राते हैं;
सिर के बल महाबली चल कर इसके इंगित पर आते हैं।
मानव तो तृण सम है इसके सम्मुख दानव भय खाते हैं;
सम्राट् वन्दना कर चरणों में सादर मुकुट चढ़ाते हैं।

यह जाति पन्थ से उदासीन मानवता की संरक्षक है;
युग–युग से दमित त्रस्त मानव के आत्म–बोध की शिक्षक है।
बर्बरता दमन पाशविकता की यह अनादि से भक्षक है;
यह कर्मयोग पर आधारित दृढ़ "सृष्टि–धर्म" की रक्षक है।

झन झन झन झन झन झनन झूमती क्रान्ति रागिनी गाती है;
आहत भुजंगिनी भूखी बाघिन सी वह बढ़ती आती है।
दानवी शक्ति पर इतराने वालो हो जाओ सावधान;
अन्यथा दिखायेगा कौतुक अपना फिर से विधि का विधान।

– सेतु कर्मशाला, उत्तर रेलवे, चारबाग, लखनऊ

अपने देश के गाँवों तथा शहरों की संस्कृतियों में भयंकर अन्तर आज हमारी अनेक समस्याओं की जड़ में है। इस अन्तर को समाप्त या कम करने के लिए जो भी प्रयत्न किये गये, वे कतिपय विदेशी प्रयत्नों की नकल से अधिक नहीं सिद्ध हुए और इसीलिए भारतीय संस्कृति पर थोपे से लगे और यथेष्ट फल न दे सके। नगरीय संस्कृति की जननी पैनी "बुद्धि", जो प्रायः काइयाँपन से लेकर छल–छद्म तक विस्तीर्ण होती है तथा जिसे भगवान् कृष्ण ने भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन तथा अहंकार की श्रेणी में रखते हुए अपनी आष्टांगिक प्रकृति का ही अंग बताया है, भले ही ग्रामीण संस्कृति के जनक "आत्म गौरव" के सामने तुच्छ या गौण हो, पर यह तो सत्य है आज हमारे ग्राम आजादी के पचास वर्षों के बाद भी नगरों की सुविधापूर्ण जीवनशैली के सामने अपने को फीका पाते हैं। किसी भी नगर के चौराहों पर नित्य प्रातःकाल गाँवों से शहरों में मजदूरी करने आये बन्धुओं के गौरव को बाजार में बिकता देखा जा सकता है। इस असन्तोष एवं ईर्ष्या–जनक समस्या का समाधान आज तक हमारे देश के किसी भी भाग में, किसी समाजवाद, जनवाद, या किसी भी तन्त्र ने नहीं दिया। इसका हल दिया है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए अपनी प्राचीन "ऋषि एवं कृषि संस्कृति" की अवधारणा को "केशव–सृष्टि" नामक विशाल संकुल में चरितार्थ करके।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक एवं भारत के महान् समाज शिल्पी डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार बीसवीं शताब्दी में भारत के ऐसे दिव्य–पुरुष हुए, जिन्होंने अपनी राष्ट्र–साधना से सम्पूर्ण भारतीय समाज को स्पन्दित किया। उनके कर्तृत्व से प्रेरणा लेकर समाज के सम्पूर्ण विकास की दृष्टि से पूरे देश में समाज सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकल्प तथा सेवा कार्य शुरू किये। इसी क्रम में मुम्बई महानगर के पास दो सौ एकड़ भूमि के विशाल संकुल में कृषि शिक्षा तथा वनौषधि अनुसन्धान के विभिन्न प्रकल्पों को मूर्त्तरूप दिया जा रहा है।

"केशव" शब्द के तीन अक्षरों 'क', 'श' तथा 'व' से क्रमशः कृषि, शिक्षा तथा वनौपषधि संस्थान की सृष्टि होने के कारण ही ऋषि तथा कृषि संस्कृति की अनुपम साधना स्थली बनाई गई है जिसका नाम है "केशव–सृष्टि"।

प्रकृति के मनोरम एवं मनोहारी विस्तृत प्रांगण में डॉक्टर हेडगेवार के जीवन्त स्मारक के रूप में पल्लवित हो रहे "केशव सृष्टि" के संकुल में, उनके विचारों एवं आदर्शों के अनुरूप एक स्वाभिमानी, स्वावलम्बी तथा सक्षम भारतीय समाज का प्रतिरूप (माडल) राष्ट्र के सामने प्रस्तुत किया जा सके, ऐसा एक अद्‌भुत प्रयत्न चल रहा है।

मुम्बई महानगर से पचास किलोमीटर की दूरी पर भायन्दर उपनगर है। भायन्दर (पश्चिम) रेलवे स्टेशन से सात किलोमीटर की दूरी पर सिन्धु (अरब) सागर के तट पर स्थित उत्तन नामक गाँव में दौ सौ एकड़ के विशाल भूखण्ड पर 'केशव–सृष्टि' संकुल का विकास किया जा रहा है। यह पूरा भू–प्रदेश प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त रमणीय, मनोरम एवं हरा–भरा है। सागर–तट पर ऊँची–ऊँची पहाड़ियाँ, फलों के बाग, मीठे पानी के झील, झरने इसके प्राकृतिक सौन्दर्य को और भी बढ़ा देते हैं। ब्राह्म–मुहूर्त्त के थोड़ी देर पश्चात् भगवान् भास्कर जब "केशव–सृष्टि" पर अपना आलोक बिखेरते हैं, तो ऐसा लगता है मानो वे अभी–अभी सागर में स्नान करके प्रसन्न मुद्रा में पर्वत–शृंखलाओं पर बैठकर सम्पूर्ण सृष्टि को आशीष दे रहे हों।
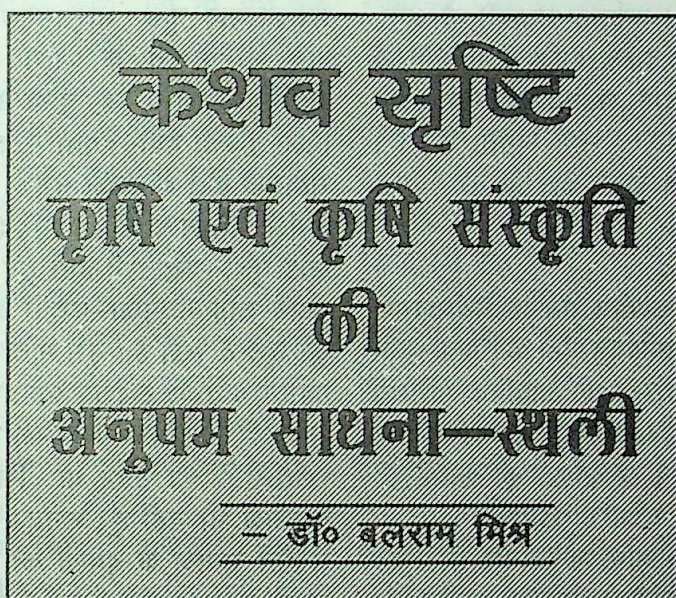
रेल तथा सड़क दोनों मार्गों द्वारा "केशव–सृष्टि", उत्तन, भायन्दर, आसानी से पहुँचा जा सकता है। मुम्बई से उपनगरीय रेल द्वारा भायन्दर स्टेशन पहुँच कर पश्चिम की ओर रिक्शा या अन्य किसी वाहन से सात किलोमीटर की दूरी तय करके "केशव–सृष्टि" पहुँचा जा सकता है।

अपने देश को वैभव-सम्पन्न बनाने के लिए आज सबसे अधिक आवश्यकता है शिक्षा, आरोग्य तथा कृषि के विकास की। इन तीनों परियोजनाओं पर काम करने के लिए तीन अलग-अलग न्यास स्थापित किये गये हैं, केशव-सृष्टि में- (क) उत्तन कृषि संशोधन संस्था, (ख) उत्तन विविध-लक्ष्यी शिक्षण संस्था तथा (ग) उत्तन वनौषधि संशोधन संस्था। इनमें से प्रत्येक न्यास के अन्तर्गत सात-सात प्रकल्प, याने कुल इक्कीस प्रकल्प चल रहे हैं। इन तीनों न्यासों में समन्वय, सहयोग तथा संकुल की उचित एवं समग्र व्यवस्था हेतु "केशव-सृष्टि न्यास" का गठन किया गया है, जिसके मार्गदर्शन एवं निर्देशन में शिक्षा, आरोग्य तथा कृषि की समस्त योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है। वर्तमान शताब्दी के अन्त, अर्थात् सन् २००० तक उपर्युक्त इक्कीस प्रकल्पों में गतिवृद्धि का निश्चय वास्तव में आगामी शताब्दी के वैभवशाली भारत के स्वागत के लिए किया गया लगता है। इन प्रकल्पों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है-

(क) कृषि-प्रकल्प

पुरातन काल से ही भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एव जीवन-पद्धति कृषि से प्रभावित रही है। अतः कृषि आधारित जीवन एवं अर्थ-व्यवस्था को आधुनिक परिप्रेक्ष्य एवं आवश्यकताओं के अनुरूप स्थापित करने के लिए निम्नलिखित कृषि प्रकल्पों एवं योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है :-

१. मधुवन - केशव-सृष्टि के प्रागण में पन्द्रह एकड़ के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तृतीय सर संघचालक श्री मधुकर दत्तात्रेय देवरस की स्मृति में स्थापित 'मधुवन' एक ऐसा उपवन है, जिसमें दस हजार फल-पुष्प-वृक्ष इस शताब्दी के अन्त तक लगाने की योजना है। इसमें सहयोग राशि प्रदान कर अपने परिवार के नाम पर या अपने पूर्वजों की स्मृति में वृक्षारोपण कर मधुवन की श्रीवृद्धि में सहयोग करने की व्यवस्था है।

२. पौधशाला (नर्सरी)-(प्रकृति संरक्षण) - उत्तम किस्म के फलों एवं पुष्पों की प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए केशव-सृष्टि के कृषि-संकुल में एक उत्तम पौधशाला विकसित की जा रही है, जहाँ अनेक प्रकार के फल-वृक्षों की कलम तथा पुष्पों के पौधे उपलब्ध होंगे।

३. वन प्रदेश (प्रकृति की क्रीड़ा-स्थली) - वनस्पति संवर्द्धन तथा पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से केशव-सृष्टि संकुल में सघन वन प्रदेश विकसित किया जा रहा है, जहाँ दुर्लभ प्रकार की प्रजातियों के वृक्ष, वनस्पति, वनौषधियों एवं जड़ी-बूटियों को संरक्षित किया जा रहा है। **वहीं एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसके सामने एक पट्ट लगा है- "केवल दर्शनार्थ"। केवल दर्शन, कोई चढ़ावा, कोई दान-पात्र, कोई धार्मिक या इहलौकिक- पारलौकिक व्यापार, वादा या प्रलोभन नहीं। किसी भी दर्शनार्थी के चेहरे पर कोई दीन-भाव, भिखारी-भाव या तरस-भाव नहीं। सहज भाव से यहाँ इस मन्तव्य को बल मिलता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का न तो कोई गुरु है और न कोई देवी-देवता; न कोई पूजा पद्धति है न कोई स्वर्ग या मोक्ष की कामना। उसका सब कुछ 'भारतमाता' है। इतिहास साक्षी है, जब भी भारत के लोग असंगठित, दुर्बल तथा स्वाभिमान-शून्य रहे, दुःख और केवल दुःख ही उन्हें मिला, किसी देवी-देवता ने कोई सहायता नहीं की। वे सहायक होते हैं केवल उनके, जो स्वयं अपनी सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। शायद इसीलिए संघ की अपनी कोई पूजा-पद्धति न होते हुए भी अपने स्वयंसेवकों को उसने कोई भी पूजा-पद्धति अपनाने की या न अपनाने की छूट दे रखी है।** उस मन्दिर में बुहारी लगा रहे, नेकर पहने एक तरुण से किये गये प्रश्न, "आप कट्टर शिव-भक्त लगते हैं, क्या अन्य पन्थों की उपासनाओं में भी विश्वास रखते हैं?" का उत्तर था, "**शिव का भक्त नहीं, उनका उपासक भी नहीं हूँ। उनका कट्टर प्रशंसक हूँ; क्योंकि उन्होंने समाज के दूषणों को भस्म करने; जाति, पन्थ, भाषा तथा यानि-निरपेक्ष संगठन खड़ा करने एवं आवश्यकतानुसार प्रलय तथा कल्याण करने की विचित्र शक्ति बनाकर सँजो रखी थी। मेरा मन्दिर तो संघ-स्थान है, मेरे आराध्य-देव हैं "राष्ट्रदेव" तथा मेरी प्रार्थना है "नमस्ते सदावत्सले मातृभूमे"। एक साधारण से बुहारी लगा रहे व्यक्ति से ऐसी सारगर्भित बातें सुनकर उसके बारे में ज्ञात करने पर पता चला कि वे सज्जन एक वरिष्ठ कम्प्यूटर इंजीनियर हैं तथा भारत सरकार के एक अति महत्त्वपूर्ण विभाग में अति वरिष्ठ अधिकारी हैं, दिखते तरुण हैं पर आयु है ५६ वर्ष। सप्ताह में चार घण्टे उस पौधशाला तथा मन्दिर की सफाई करने का व्रत ले रक्खा है- "ऋषि-कृषि संस्कृति को चरितार्थ करने के लिए।"** उनकी मान्यता है कि इस "ऋषि-कृषि" संस्कृति के कठोर पालन के कारण ही वे अभी भी इतने तरुण दिखते हैं और इसी के ईमानदार आचरण से उनका

मन–मस्तिष्क इतनी शक्ति पा सका कि वे आज अपने क्षेत्र के इतने चमकते सितारे माने जाते हैं।

४. कृषि उपज (प्रकृति का प्रसाद) – केशव–सृष्टि के विशाल भूखण्ड में बड़ी मात्रा में उपजाऊ भू–क्षेत्र हैं, जिन्हें संस्कारित कर वहाँ बिना रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयों का उपयोग किये ही धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, मशरूम, अरहर, मूँगफली, सूर्यमुखी तथा शाक–भाजी के उत्पादन की अद्भुत व्यवस्था है।

५. गो–संरक्षण एवं पशुपालन – गो–संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु एक आधुनिक एवं उत्तम गोशाला का निर्माण किया गया है। उसमें उत्तम देसी नस्लों की गायों का पालन किया जा रहा है। यहाँ देसी नस्ल के गाय–बछड़ों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए विशेष प्रयत्न किये जा रहे हैं। दुग्ध–उत्पादन के साथ ही साथ यहाँ गो–मूत्र एवं गोबर से व्यावसायिक दृष्टि से औषधि एवं खाद निर्माण की व्यवस्था तथा गो–रस से निर्मित औषधियों के प्रचार एवं प्रसार की योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है।

६. कृषि औजार निर्माणशाला तथा अपारम्परिक ऊर्जा–स्रोत–केन्द्र– कृषि विकास एवं केशव–सृष्टि संकुल को ऊर्जा एवं जल संसाधन की दृष्टि से पूर्णतः आत्मनिर्भर बनाने की विभिन्न परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं, जिनमें सौर–ऊर्जा, पवन–वक्की तथा गोबर गैस, ऊर्जा एवं बिजली से उत्पन्न करने की इकाइयों की स्थापना शामिल है। कृषिगत कार्यों के लिए काम आने वाले विभिन्न प्रकार के औजारों तथा यन्त्रों के निर्माण के लिए भी "केशव–सृष्टि" में निर्माणशालाएँ स्थापित की जा रही हैं।

७. कुटीर उद्योग तथा सहकारी समिति – केशव सृष्टि की "अभिनव ग्राम–योजना" के अन्तर्गत यहाँ कृषि आधारित कुटीर उद्योगों की एक शृंखला स्थापित हो रही है। इसमें खादी ग्रामोद्योग, नारियल–जटा–उद्योग तथा मधुमक्खी पालन, शहद उत्पादन सम्मिलित हैं। इन उद्योगों से उत्पन्न उत्पादों की वितरण एवं विक्रय व्यवस्था केशव सृष्टि की सहकारी समिति के माध्यम से तथा स्थानीय लोगों के सक्रिय सहभाग से सम्भव हो सकी है।

(ख) शिक्षा प्रकल्प

(प्राकृतिक गोद में अध्ययन–संस्थान), "केशव–सृष्टि" का 'माधव विद्या–निकेतन' संकुल संघ के द्वितीय सरसंघ–चालक श्री माधव सदाशिवराव गोलवलकर की स्मृति को समर्पित शिक्षा का प्रकल्प है, जिसमें बीसवीं सदी के अन्त तक निम्नलिखित योजनाओं को लागू किया जाना है–

१. (आवासीय विद्यालय) राम रत्ना विद्या मन्दिर– भारतीय संस्कारों तथा विचारों की आधारभूमि पर आधुनिक दृष्टिबोध से युक्त संस्थापित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का राष्ट्रीय विद्यालय, जिसका नाम 'राम रत्ना विद्या मन्दिर' है, में सभी कुछ भव्य है, आधुनिक सुविधाओं एवं प्रयोगशाला तथा अन्य शिक्षण सामग्रियों, सुन्दर आवासों से युक्त। विद्यालय से बाहर डाली दृष्टि पहले एक विस्तीर्ण वनस्पति जगत् , फिर पर्वत–शृंखलाओं और उनके आगे आकाश एवं महोदधि को छू कर एक विचित्र रोमाञ्च को जन्म देते हुए सहज भाव से शुद्धतम अन्तःकरण तथा निर्मल एवं सक्षम मन–मस्तिष्क बनाने का मानो इंजेक्शन देती है।

सन् २००० तक दसवीं कक्षा तक अध्ययन के लिए पूर्ण सुविधा प्रदान करने की पूरी तैयारियों के साथ यह विद्यालय अभी छठवीं तथा सातवीं कक्षा का अध्ययन कराता है।

२. कृषि विज्ञान एवं शोध केन्द्र – परम्परागत साधनों से कृषि–विकास एवं पर्यावरण–संरक्षण के गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान के लिए सभी आधारभूत सुविधाओं से युक्त एक आधुनिक कृषि विज्ञान एवं शोध केन्द्र स्थापित किया जा रहा है।

३. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र – स्थानीय निवासियों एवं गाँवों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने तथा उनमें जागरूकता लाने और साथ ही साथ ग्रामीण विकास एवं साक्षरता अभियान को सफल बनाने हेतु एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र की स्थापना हो रही है।

४. रोजगार प्रशिक्षण केन्द्र – समाज के शिक्षित, अशिक्षित युवा वर्ग को स्वावलम्बी बनाने तथा उनको आर्थिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा रोजगार प्रशिक्षण केन्द्र की योजना क्रियान्वित हो रही है।

५. व्यक्तित्व विकास केन्द्र – युवक/युवतियों के बौद्धिक तथा आत्मिक विकास एवं उनमें आत्म विश्वास की भावना को विकसित करने की दृष्टि से 'व्यक्तिगत विकास केन्द्र' की योजना को कार्यरूप देने का निश्चय किया गया है।

६. क्रीडांगन (स्पोर्टकाम्प्लेक्स) एवं शिविर–स्थल– युवाओं के सर्वांगीण विकास एवं उनमें अनुशासन के साथ–साथ साहस, साहचर्य एवं स्वावलम्बन की भावना को विकसित करने के लिए एक विशाल क्रीडांगन (स्पोर्ट काम्प्लेक्स) निर्माणाधीन है। साथ ही 'केशव–सृष्टि' परिसर में वन–क्षेत्र तथा पहाड़ियों के नीचे ऐसे शिविर–स्थल (कैम्पसाइट) बनाये जा रहे हैं, जहाँ प्रशिक्षार्थी पटकुटी में

रहेंगे और वहीं से विभिन्न प्रकार के साहसिक अभियानों को सम्पादित करेंगे।

७. अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण केन्द्र – भारतीय समाज जीवन को प्रभावित करने वाली पद्धतियों, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तनधाराओं का गहन अध्ययन करने तथा उन विषयों पर विचार–विमर्श, शिक्षण, प्रशिक्षण, संगोष्ठी एवं शोध हेतु यह केन्द्र कार्य करेगा। यह प्रकल्प "रामभाऊ म्हालगी प्रबोधिनी संस्था" द्वारा संचालित एवं संयोजित होगा।

(ग) वनौषधि तथा वनस्पति प्रकल्प (प्रकृति का आरोग्य वरदान)

आरोग्य तथा भारतीय चिकित्सा पद्धति को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से 'केशव–सृष्टि' संकुल में आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा की अनेक योजनाओं को कार्यान्वित करने का संकल्प लिया गया है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

१. वनस्पति संग्रहालय एवं वनस्पति उद्यान– 'केशव सृष्टि' के विशाल एवं सघन वन–प्रदेश में उपलब्ध १५०० प्रकार की दुर्लभ प्रजातियों की वनस्पतियों, जड़ी–बूटियों, वनौषधियों का प्रदर्शन इस संग्रहालय एवं उद्यान में किया जायेगा। साथ ही इसका उपयोग अध्ययन एवं शोध के लिए भी होगा। ६ प्रकार की तुलसी, दालचीनी, तेजपत्ता, मधुनाशिनी, गुग्गुलु, सप्तपर्णि, कपूर, अशोक, ब्रह्म–कमल, सर्पगन्धा, गजक पिम्परी, लिण्डी पिम्परी, पुनर्नवा, नारायणी, अश्वगन्धा, काण्डल, पुत्रंजिवा, शिवण आदि के पौधे तथा पत्तियाँ अपने आप में विचित्र हैं। वहीं एक पट्ट पर एक श्लोक लिखा है, "**नाक्षरो मन्त्रहीनः, न मूलं च अनौषधम्। अयोग्यो पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।**" अर्थात् "प्रत्येक अक्षर अपने आप में मन्त्र है। प्रत्येक मूल (जड़) अपने आप में औषधि है। प्रत्येक व्यक्ति योग्य होता है। इनका योजक ही दुर्लभ होता है।"

२. आयुर्वेदिक रसायनशाला एवं प्रक्रिया केन्द्र– वनस्पतियों एवं वनौषधियों के व्यावसायिक उत्पादन हेतु एक आधुनिक रसायनशाला एवं प्रक्रिया केन्द्र स्थापित किया जा रहा है।

३. प्राकृतिक–उपचार–केन्द्र एवं आयुर्वेदीय चिकित्सालय – भारतीय चिकित्सा पद्धति को लोकप्रिय बनाने तथा उसको सर्व–सुलभ करने की दृष्टि से "केशव सृष्टि" संकुल में अखिल प्राकृतिक उपचार एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालय स्थापित करने का निश्चय किया गया है।

४. कौशिक–आश्रम – सेवा–निवृत्त एव वान–प्रस्थियों के लिए इस संकुल में वसन्त–स्मृति–न्यास द्वारा 'कौशिक आश्रम' योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। इस आश्रम में रहकर सेवा–निवृत्त प्रौढ़ अपना शेष जीवन तथा सम्पूर्ण जीवन का अनुभव, समाज सेवा तथा सार्वजनिक कल्याण के कार्यों में लगा सकें, ऐसी व्यवस्था है इसमें।

५. मन्दिर एवं संस्कार केन्द्र– यहाँ पाँच मन्दिर स्थापित हैं जिनमें संस्कार केन्द्रों को प्रारम्भ किया जायेगा।

६. वन विहार (पिकनिक) एवं पर्यटन– 'केशव–सृष्टि' वन विहार की दृष्टि से अत्यन्त रमणीय स्थल है। यहाँ बच्चों के लिए 'बाल संस्कार उद्यान' विकसित किया जा रहा है।

७. केशव प्रेरणा– 'केशव–सृष्टि' के प्रेरणा–स्रोत डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार, जिन्होंने अपने तपःपूत जीवन से पूरी शताब्दी को स्पन्दित किया, के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी देने वाली प्रदर्शिनी 'केशव प्रेरणा' इस संकुल का मुख्य आकर्षण होगी। इस प्रदर्शिनी के साथ ही भारतीय दर्शन, मनीषा एवं तत्त्वचिन्तन के अध्ययन एवं मनन हेतु एक पुस्तकालय एवं ध्यान–केन्द्र भी स्थापित किया जायेगा, जहाँ जिज्ञासु एवं अध्येता आकर अपनी ज्ञान–पिपासा को शान्त कर सकेंगे एवं अपने अध्ययन, चिन्तन तथा ज्ञान से समाज का हित संवर्द्धन करेंगे।

इतना सब कुछ मात्र दो सौ एकड़ भूमि पर। ये प्रयोग सारे राष्ट्र के लिए निःसन्देह एक अनुपम आदर्श हैं। यदि यही प्रयोग अपने देश में उपलब्ध हजारों एकड़ भूमि पर हों, तो हमारा देश पुनः समस्त विश्व का आदर्श देश, किंवा विश्व गुरु बन सकता है। फिर कहाँ रहेगी बेरोजगारी ? कहाँ रहेगी हताश–निराशा ? कहाँ रहेगी भूख ? कहाँ रहेगा भय ? आवश्यकता है भारत को भारत ही बना रहने देने की, उसके अनन्त प्राकृतिक स्रोतों के दोहन की और उस कार्य को सम्पादित करने के लिए जन–मन निर्माण करने की, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कर रहा है।

❐

– २७, देवलोक कालोनी,
सन्त हिरदाराम नगर, (बैरागढ़), भोपाल–४६२०३०

पाठकीयम् लिखने के उत्साह में क्रान्ति–इतिहास को गप्पों का पुलिन्दा न बनायें

आजाद की माताजी कानपुर में नहीं रहीं

– पं. वचनेश त्रिपाठी

राष्ट्रधर्म' के विगत मार्च–अंक (१९९८) के पृष्ठ ५७–५८ पर 'आजाद की माँ श्रीमती जगरानी देवी' शीर्षक से आशारानी व्होरा का जो लेख छपा है, वह काल्पनिक किस्से–कहानियों की तरह थोथी गप्पों का पर्याय मात्र है, वास्तविकता से उसका कोई रिश्ता नहीं। मैं यह प्रसंग छेड़ना नहीं चाहता था, अलबत्ता मुझे यह बात कचोटती है कि जिस 'राष्ट्रधर्म' के क्रान्ति–विशेषांक स्वयं उस युग के क्रान्तिकारियों के दस्तावेजों, स्वयं उन्हीं के लिखे लेखों से गौरवान्वित रहते थे, उस पत्रिका में क्रान्ति–इतिहास के नाम पर अनर्गल और तथ्यहीन विवरण तो नहीं प्रकाशित होना चाहिए, अस्तु। 'राष्ट्रधर्म' के सम्पादक भाई आनन्द मिश्र 'अभय' के आग्रहवश मुझे इस प्रकरण में अपनी जानकारी उद्धृत करनी पड़ रही है, खण्डन–मण्डन करने की भावना का यहाँ प्रश्न नहीं। उक्त लेख के शुरू के ही पैराग्राफ में लेखिका लिखती हैं कि "आजाद २७ फरवरी १९३१ को..... बलिदान हो गये पर १९५७ तक लोगों ने एक विक्षिप्त वृद्धा को अक्सर यह कहते सुना है–' चन्द्रशेखर आता होगा। मैंने उसके लिए पेड़े लाकर रखे हैं।" फिर आगे लिखा है कि "यह वृद्धा और कोई नहीं, चन्द्रशेखर आजाद की माँ श्रीमती जगरानी देवी थीं.... जो अपने होश–हवास खो बैठी थीं। उन्हें यह भी ज्ञान न था कि उनका बेटा आजाद अमर हो चुका है और भारत कब का आजाद हो चुका है।"

इसके विपरीत तथ्य यह है कि आजाद की माताजी सन् १९५७ में जीवित ही नहीं थीं, वे उसके ६ वर्ष पहले ही सन् १९५१ के फरवरी महीने में स्वर्ग–वासिनी हो चुकी थीं और उस समय वे रह रही थीं आजाद के ही एक साथी क्रान्तिवीर डॉ० भगवानदास माहौर के घर पर–वहीं से उनकी अर्थी निकली और जिसमें कन्धा देने वाले रहे थे डॉ० माहौर और सदाशिव राव मलकापुरकर। ये दोनों क्रान्तिकारी 'भुसावल–बमकाण्ड' में आजन्म काले पानी की सजा का पुरस्कार पा चुके थे। अनेक वर्षों तक मेरा इन दोनों से सम्पर्क रहा– इनके तीसरे एक साथी थे, विश्वनाथ वैशंपायन, जो चन्द्रशेखर आजाद के अंगरक्षक और विश्वस्त सन्देशवाहक थे, वे भी झाँसी के थे और ये तीनों एक साथ ही 'काकोरी केस' के शचीन्द्र नाथ बख्शी के सम्पर्क से क्रान्तिकारी दल से जुड़े थे। वैशंपायन जी तो मेरे सण्डीला वाले पुराने आवास पर भी एक रात रहे थे। रसूलाबाद में जहाँ चन्द्रशेखर आजाद की समाधि बनी है, वहाँ भी मेरा इन तीनों क्रान्तिकारियों का साथ रहा और मिर्जापुर, काशी, कानपुर, दिल्ली की बैठकों में भी बराबर मिलना हुआ था। इन तीनों क्रान्तिकारियों ने आजाद की माता जगरानी देवी की उनके जीवनांत तक बराबर चिन्ता की। वे कानपुर में नहीं रहीं जैसा कि लेखिका ने 'राष्ट्रधर्म' में लिखा है कि जगरानी देवी अपने पति की मृत्यु के बाद इसी आशा से गाँव छोड़कर कानपुर में आकर रहने लगी थीं कि उनका बेटा यदा–कदा ही सही उनसे आकर मिल तो जाया करेगा।" तथ्य यह है कि आजाद के बलिदान के बाद भी माता जगरानी देवी मध्य प्रदेश के एक ग्राम भावरा में ही रह रही थीं और जब उन्हें अपने पुत्र के बलिदान की खबर मिली, तो उन्होंने मारे शोक के अपना सिर पटक–पटक कर अपनी एक आँख वहीं फोड़ ली। पश्चात् आजाद के पिता का निधन होने से जगरानी देवी का दुःख और बढ़ गया। ऐसे समय में भावरा ग्राम के पास के गाँव में रह रहे पं० मनोहर लाल त्रिवेदी, जो रिश्ते में आजाद के चचाजात भाई होते थे, माता जगरानी देवी की सेवा–शुश्रूषा की और उन्हें किसी प्रकार जीवित रखा। पर जैसा कि आशारानी व्होरा ने लिखा है, वह तथ्यों के विपरीत है– जगरानी देवी कानपुर नहीं गईं – न वे वहाँ रहीं। अवश्य भावरा (मध्य प्रदेश) ग्राम में रहते समय जब तक आजाद का बलिदान नहीं हुआ था पुत्र की आकुल प्रतीक्षा में माँ की मनौती के रूप में अपने दाहिने हाथ की बीच की दो उँगलियों को वे एक धागे से बाँधे रखती थीं। आजाद

क्रान्तिकारी दल में आने के बाद केवल एक बार अपने माता–पिता से मिलने भावरा जा सके थे– वह समय था सन् १९२८ का। उनके साथ एक साथी क्रान्तिकारी झाँसी के सदाशिव राव मलकापुरकर भी गये थे– ये लोग सप्ताह भर भावरा रहे। इस बीच देखा कि वहाँ पुलिस की कुछ सरगर्मी बढ़ रही है तो आजाद को बिना अपने माता–पिता को बताये भावरा से चुपचाप चल देना पड़ा। अवश्य वे अक्सर विश्वनाथ वैशम्पायन से कहा करते थे, "बच्चन ! तुम्हें कभी मौका मिले तो एक बार मेरे घर जरूर जाना।" सन् १९४९ की जनवरी में डॉ० भगवानदास ने अपने साथी सदाशिवराव को भावरा भेजा। वे झाँसी के मास्टर रुद्र नारायण सिंह, जिनके यहाँ फरार हालत में आजाद तीन महीने रहे थे– भी भावरा गये। ये भावरा की उस झोपड़ी में जाकर देखते हैं, माताजी झोपड़ी में आँगन में धूप सेंक रही हैं जाड़े के दिन थे। दोनों ने उनके पैर छुए। वे पहचान गईं कि उनके (आजाद के) साथ यही सदाशिवराव भावरा आये थे। फिर ये दोनों अलीराजपुर गये, जहाँ मनोहरलाल त्रिवेदी मिले– उन्हें ये लोग माताजी के पास ले आये। इस प्रकार माताजी मनोहरलाल त्रिवेदी की सहमति से झाँसी चली आईं और जीवनांत तक वहीं रहीं। बीच में दो बार पं० बनारसी दास चतुर्वेदी माताजी को कुण्डेश्वर ले गये साथ में सदाशिवराव, डॉ० भगवानदास और मास्टर रुद्रनारायण सिंह भी गये। चतुर्वेदी जी ने माताजी से आग्रह किया कि माताजी अब आप मेरे ही पास रहें। "पर वे बोलीं," मेरे बेटे कई हैं, लेकिन बेटा मैंने एक बनाया है, और वह है सदाशिव (सद्दू)। मेरा बुढ़ापा है और उसी के कन्धे पर जाने की इच्छा है, इसी कारण मैं उसके पास रहना चाहती हूँ।" सदाशिवराव ने दो बार माताजी को तीर्थ यात्राएँ कराईं। द्वारकापुरी में समुद्र देखकर वे बड़ी प्रसन्न हुईं– ऐसा सदाशिव ने मुझे बताया था। कहते थे, उस समय बालक समुद्र के पानी में गोमती पत्थर खोज रहे थे– माता उन बालकों के साथ मिलकर पानी में खेलने लगीं– पानी में वे भी बालकों के साथ गोमती पत्थर खोजने लगीं।" वे जगन्नाथपुरी भी गईं। जनवरी सन् १९४९ से फरवरी सन् १९५१ तक वे सदाशिवराव और डॉ० भगवानदास माहौर के साथ रहीं और सन् १९५१ की फरवरी में ही उनका डॉ० भगवानदास माहौर के घर पर स्वर्गवास हुआ। उन्होंने हृदय पर पत्थर रखकर पुत्र–वियोग सहा, पर 'विक्षिप्त' कभी नहीं हुईं– अतः उन्हें एक विक्षिप्त वृद्धा' लिखना उचित नहीं।

माताजी का कानपुर में निवास कभी नहीं रहा– यात्रा के बीच कभी–कभी २–४ दिन रहना हुआ हो वह बात भिन्न है। अवश्य क्रान्तिकारी जीवन में फरार रहते हुए चन्द्रशेखर आजाद कई वर्ष तक कानपुर में आकर गुप्त रूप से ठहरते रहे। कानपुर के डॉ० मुरारी लाल, कांग्रेस नेता प्यारे लाल अग्रवाल, जिनकी पत्नी थीं, श्रीमती तारा अग्रवाल, 'प्रताप' अखबार के सुरेन्द्र शर्मा, मुत्सद्दीलाल आदि के यहाँ रहे। इनमें प्यारे लाल जी एक बार सण्डीला के 'विष्णु–पुस्तकालय' के कार्यक्रम में आये, जिसमें कुंजन कवि ने एक कविता पढ़ी थी, जिसकी एक पंक्ति मुझे अभी तक याद है, "फिर से बम बरसाना है....."। वह पराधीनता–काल था और 'प्रताप' वाले सुरेन्द्र शर्मा तो काफी दिन लखनऊ में रहे। उनसे प्रायः मिलना होता था। आजाद–सम्बन्धी संस्मृतियाँ ही उनका विषय रहता था। आजाद के कारण कानपुर क्रान्तिकारियों का एक केन्द्र ही बन गया था, सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय उनके भाई वीरेन्द्रनाथ पाण्डेय, बटुकेश्वरदत्त, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, रमेश गुप्त, शहीद शालिग्राम शुक्ल आदि उन दिनों कानपुर में एकत्र हुए थे। एक दिन घर छोड़कर जयचन्द्र विद्यालंकार की चिट्ठी लेकर सरदार भगतसिंह भी कानपुर ही आ जमे थे। इनके अलावा रामदुलारे त्रिवेदी (काकोरी केस), ठा० रामसिंह, विजय कुमार सिन्हा (लाहौर केस)। उनके अग्रज राजकुमार सिन्हा (काकोरी केस) और सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य (काकोरी केस) भी तब कानपुर में ही थे। बटुकेश्वर दत्त कानपुर में बंगाली मेस के निकटस्थ रामनारायण बाजार में रहते थे। यहीं २२१ नं० के मकान में सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त प्रथम बार मिले थे। चन्द्रशेखर आजाद और मन्मथनाथ गुप्त से भी इसी मकान में भेंट हुई। सुरेश दा कानपुर के जनरलगंज में रहते थे, 'वर्त्तमान' पत्र में काम करते थे, बाद में 'प्रताप' में आये।

चन्द्रशेखर आजाद 'पेड़े' खाने के शौकीन नहीं थे, अवश्य उन्हें अरहर की दाल और भात खाना रुचिकर था या फिर खिचड़ी पसन्द थी। फरार हालत में कभी–कभी वे तरंग आने पर लोक–भाषा की ये पंक्तियाँ गुनगुनाया करते थे कि,

"जेहि दिन हुइहैं सुरजवा
अरहर के दलिया, जड़हन के भतुआ
खूब कचरि के खइबे हो रामा.....
जेहि दिन हुइहैं सुरजवा....."

अर्थात् "जब देश में स्वराज्य आयेगा तो हमारे देशवासी अरहर की दाल और भात खूब छक कर खा सकेंगे।"

स्वराज्य आया, कांग्रेस के दिग्गज नेता राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री, गवर्नर बने पर 'सुराज' न आया। तभी एक दिन आम चुनाव के दिनों में **"झण्डा ऊँचा रहे**

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

भारतीय— जिसके नाम पर किसी देश का नाम पड़ा

– डॉ० शैलेन्द्र नाथ कपूर
(प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास
एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

वर्तमान दक्षिण–पूर्व एशिया का कम्पूचिया देश प्राचीनकाल में फूनान राज्य के अन्तर्गत आता था। इसे कम्बुज देश की संज्ञा दी गई थी। इसे ख्मेर देश के नाम से भी जाना जाता था क्योंकि यहाँ ख्मेर भाषा बोली जाती थी और ख्मेर जाति के लोग निवास करते थे। इस देश के आदिम निवासी प्रायः नग्न रहते थे। उनमें सभ्यता का अभाव था। बड़ी संख्या में नाग जाति के लोगों का भी इस देश में निवास था। कम्बुज से बड़ी संख्या में संस्कृत तथा ख्मेर भाषाओं में लिखे हुए लेख मिले हैं। अधिकांश लेख यहाँ के हिन्दू मन्दिरों विशेषकर शिव मन्दिरों से प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त चीनी साहित्य से भी इस देश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

कम्बुज के अंकोरथोम नामक स्थान से थोड़ी दूर दक्षिण में बखेंग पर्वत स्थित है। इसी पहाड़ी पर एक शिव मन्दिर निर्मित है जो 'बक्सेई चक्रोम' शिव मन्दिर के नाम से जाना जाता है। यहीं शक सम्वत् ८६६ अर्थात् ६४७ ई० का एक लेख है। संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण इस लेख में निम्न अंश अंकित हैं–

स्वायम्भुवन्नमत कम्बुमुदीर्ण्ण कीर्ति,
यस्याक्र्क सोमकुल संगति माप्नुवन्ती।
सत्सन्ततिः सकलशास्त्र तमोपहन्त्री,
तेजस्विनी मृदुकरा कलयाभिपूर्ण्णा।।
मेरामुदारयशसं सुरसुन्दरीणा–
मीड़े त्रिलोकगुरुणा पि हरेण नीता।
यां दक्षसृष्टयति शयैषणया महर्षे
रक्षित्रयादखता महिषीत्वमुच्चैः।।

आशय यह है कि आर्य देश (भारतवर्ष) के राजा कम्बुस्वयम्भू और अप्सरा (सुर सुन्दरी) मीरा के संसर्ग से कम्बुज वंश की उत्पत्ति हुई।

कम्बुज के 'बक्से–शङ्–रङ्' नामक स्थान से प्राप्त एक अन्य संस्कृत भाषी लेख में कम्बुस्वयंभू को कम्बुज का मनु कहा गया है। उससे सम्पूर्ण ख्मेर लोग उसी प्रकार उत्पन्न हुए जैसे मनु से सम्पूर्ण भारतवासी। इसी वंश में श्रुतवर्मा नामक राजा का उल्लेख है जो कम्बुस्वयंभू के बाद हुआ था।

कम्बुज में भारतीय संस्कृति के संस्थापकों में दो अन्य नाम कौण्डिन्य प्रथम और कौण्डिन्य द्वितीय मिलते हैं। इनके सम्बन्ध में प्रचलित कथाओं की झलक चीनी साहित्य एवं अभिलेखों में मिलती है। कौण्डिन्य प्रथम पहली शती ई० में तथा कौण्डिन्य द्वितीय चौथी शती ई० में कम्बुज गया था। चीनी लेखक काङ्–ताई के तीसरी शती ई० के विवरण से विदित होता है कि फूनान राज्य के अन्तर्गत कम्बुज, कोचीन–चीन और मेकाङ् नदी की दक्षिणी घाटी सम्मिलित थी। पहले फूनान का शासन 'ल्यू–यें' नामक एक स्त्री के अधीन था। 'ह्वेन–तिएन' नामक एक देवभक्त ब्राह्मण को स्वप्न में एक दैवी धनुष प्राप्त हुआ साथ ही आदेश मिला कि वह किसी व्यापारी जहाज पर सवार होकर समुद्र यात्रा के लिए प्रस्थान करे। प्रातः वेला में जब वह मन्दिर में पूजा हेतु गया, तो वहाँ उसे एक धनुष रखा हुआ मिला। उसे लेकर वह एक व्यापारी जहाज पर बैठ गया। देवता की कृपा से वह जलपोत फूनान के सागर तट पर पहुँचा। उसी समय वहाँ की रानी 'ल्यू–यें' उक्त जहाज को लूटने आई। 'ह्वेन–तिएन' ने उसी दैवी धनुष का प्रयोग किया और रानी ने भयभीत होकर आत्मसमर्पण कर दिया। उसी समय से ह्वेन–तियेन फूनान पर राज्य करने लगा। यह ब्राह्मण 'मो–फु' का

निवासी था। अधिकांश विद्वान् मो–फु की पहिचान दक्षिण भारत से करते हैं। कालान्तर के चीनी साहित्य से ज्ञात होता है कि 'ह्वेन–तियेन' तथा 'ल्यु–ये' का विवाह हो गया। चीनी लेखक 'काङ्–ताई' को चीन का मेगस्थनीज कहा जाता है। ह्वेन–तियेन से तात्पर्य कौण्डिन्य प्रथम एवं 'ल्यु–ये' से तात्पर्य कम्बुज की रानी सोमा से है। इसकी पुष्टि चम्पा (वर्तमान विएतनाम) तथा कम्बुज से प्राप्त अभिलेखों से भी होती है।

शक सम्वत् ५७६ (५७६ + ७८ = ६५७ ई०) के चम्पा के राजा प्रकाशधर्म के माइसोन (शिव मन्दिरों से युक्त प्राचीन नगर) से प्राप्त लेख में निम्न अंश मिलते हैं–

".... कुलासीद्भुजगेन्द्र कन्या सोमेति सा वंशकरी पृथिव्याम्।
.... कौण्डिन्यनाम्ना द्विजपुंगवेन कार्य्यार्थपत्नीत्वमनायिमापि।"

अर्थात् नागराज की कन्या सोमा के साथ कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण ने विवाह किया था।

इससे कम्बुज का आगे का वंश चला और इसी वंश का राजा भववर्मा था, जिसने अपने नाम पर भबपुर का निर्माण कराया था। कम्बुज के इसी राजा भववर्मन के बयङ् मन्दिर के लेख में उल्लेख है–

"श्री कौण्डिन्यस्य महिषी या दक्षा सोमवंश्यप्रसूतानां लोपमकुर्वताः।"

इसके अनुसार भववर्मन कौण्डिन्य एवं उसकी पत्नी सोमा का वंशज था। इसी लेख में कोंगवर्मन और सोमा के वंशजों का उल्लेख इनके दक्षिण भारतीय (पल्लव) मूल का प्रतीक है।

कम्बुज के साहित्य में एक कथा निम्न प्रकार मिलती है जो जनश्रुति के रूप में आज भी प्रचलित है। इसके अनुसार इन्द्रप्रस्थ का राजा आदित्यवंश था। उसने अपने पुत्र के कार्यों से असन्तुष्ट होकर उसे निष्कासित कर दिया। वह वहाँ से 'कोकथलोक' नामक स्थान पर गया और वहाँ के स्थानीय राजा को पराजित कर स्वयं राजा बन गया। रात्रि में एक नाग राजकुमारी उसके समीप जलतट पर आई और दोनों ने विवाह सूत्र में बँधने का निश्चय किया। नागराज ने अपनी बेटी एवं दामाद के सुख के लिए समुद्र के जल को पीकर उसके राज्य की सीमा का विस्तार कर दिया तथा उसकी राजधानी का निर्माण कराया। नागराज ने अपने प्रभाव से विशाल मरुस्थल को भी उपजाऊ भूमि में परिणत कर दिया।

प्रस्तुत अंशों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कम्बुज में सभ्यता के प्रसार में मूलतः दक्षिण भारतीय जनों का योगदान था। वहाँ की प्राचीन जातियों के साथ मिलकर भारतीय संस्कृति ने अपने प्रभाव का प्रसार किया। कम्बुज की स्त्रियों के साथ विवाह करके भारतीय ब्राह्मणों ने एक नये युग का सूत्रपात किया। इनकी सन्तानें मूलतः ब्राह्मण वर्ण की मानी गईं। अभिलेखों में ब्रह्म–क्षत्रिय वंश के भी उल्लेख मिलते हैं।

चौथी–पाँचवीं शती ई० में कौण्डिन्य द्वितीय नामक ब्राह्मण फूनान का शासक हुआ। चीन के लिअङ् वंश के इतिहास से ज्ञात होता है कि 'जो किआओ–चेन–जू' (कौण्डिन्य) नामक फूनान का चौथी–पाँचवीं शती ई० का शासक भारतीय ब्राह्मण था, जो दिव्य वाणी सुनकर फूनान गया था। वहाँ पहुँचने पर उसका स्वागत किया गया। वह राजा चुन लिया गया। उसने वहाँ के नियमों को बदलकर भारतीय शासन नियमों को चलाया। ये नियम कम्बुज के शासन की धुरी बन गये। भारतीय मूल के शासक प्रजा का हित एवं सुख प्रतिपादित करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। उदाहरणतः बाद के एक कम्बुज के शासक जयवर्मन प्रथम के कन्देई अङ् मन्दिर शिलालेख में राजा रुद्रवर्मा के शासन को दिलीप के समान प्रसिद्ध कहा गया है।

"राजा श्री रुद्रवर्मासीत् त्रिविक्रमपराक्रमः। यस्य सौराज्यमद्यापि दिलीपस्येव विश्रुतम्।"

कुछ विद्वानों की धारणा है कि चौथी शती ई० में भारत में गुप्त वंशी राजा समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत के जिन ६ राजाओं को पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया था, उनमें कई 'नाग' नामधारी थे, जैसे गणपतिनाग, नागदत्त, नागसेन आदि। सम्भव है इस काल में उत्तर भारत से पराजित इन शासकों के अनेक अनुगामी कम्बुज चले गये और वहाँ उन्होंने मूल निवासियों के साथ सद्भाव स्थापित किया हो। कम्बुज में नगरों के नाम मिथिला, अयोध्या आदि मिलते हैं। इससे सम्भावना की जा सकती है कि कम्बुज के संस्थापक भारतीय दक्षिण भारत एवं उत्तर भारत की समन्वयात्मक भावना से प्रेरित थे। उनका उद्देश्य कम्बुज में अपने शासन की स्थापना के साथ–साथ वहाँ की जनता के प्रति कल्याणकारी भावना से युक्त था।

□

– 'सुरेन्द्रालय', ए–३५४, इन्दिरानगर, लखनऊ–२२६०१६

क्या नागार्जुन दो हुए थे?

– श्याम नारायण कपूर

रसायनाचार्य नागार्जुन द्वितीय का कार्यकाल इतिहासविद् आठवीं सदी मानते हैं। ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्ध में प्रसिद्ध अरब विद्वान् अलबेरूनी भारत आया था। वह कई वर्ष तक यहाँ रहा। भारत की भाषा, संस्कृति, इतिहास एवं ज्ञान–विज्ञान का गहन अध्ययन कर उसने भारत के विषय में एक ग्रन्थ की रचना की। इसमें उसने नागार्जुन का उल्लेख करते हुए लिखा कि वह उसके भारत–प्रवास के लगभग एक शताब्दी पूर्व जीवित था। उसे अल्बेरूनी ने महान् सिद्धहस्त रसायनाचार्य बतलाया और रसायन या कीमिया पर एक ऐसी दुर्लभ पुस्तक का लेखक माना जिसमें उस विषय पर लिखे गये अन्य सभी ग्रन्थों का सार था। अल्बेरूनी के अनुसार नागार्जुन का जन्म गुजरात के सुप्रसिद्ध तीर्थ सोमनाथ के पास स्थित दैहक दुर्ग नामक स्थान में हुआ था। अन्य सूत्र उनका जन्म विदर्भ प्रदेश में बतलाते हैं। उनको भी शिक्षा के लिए नालन्दा भेजा गया था। वहाँ आचार्य सरहपाद द्वारा उन्हें शिक्षित किया गया। सरहपाद का नाम राहुल भद्र था और यह संयोग ही कहा जायेगा कि नागार्जुन प्रथम के गुरु भी राहुल भद्र बतलाये जाते हैं। वास्तव में इन दोनों नागार्जुनों का जीवन–वृत्त एक दूसरे से बहुत उलझ गया है। यदि वास्तव में दो नागार्जुन हैं, तो प्रथम का जीवन वृत्त दूसरे पर आरोपित कर दिया जान पड़ता है।

रस–विद्या के साधकों का व्यक्तित्व और कृतित्व भी उसी के समान बहुत ही रहस्यमय और असाधारण अलौकिक घटनाओं से पूर्ण है।

नागार्जुन नाम की कहानी

नागार्जुन के नाम की भी एक अनोखी कहानी कही जाती है। उसके अनुसार उनका जन्म अर्जुन वृक्ष के नीचे हुआ था। अर्जुन वृक्ष अपने सुगन्धित फूलों तथा औषधिक गुणों के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है। अतः उनका नाम "अर्जुन" रखा गया। नागों से उन्हें संरक्षण प्राप्त हुआ और धार्मिक शिक्षा भी, अतः उन्होंने अपने नाम के साथ "नाग" शब्द संयुक्त कर अपना नाम "नागार्जुन" कर लिया।

श्री शैल पर तपस्या

नालन्दा में शिक्षा प्राप्त करने तथा विविध शास्त्रों और विद्याओं में पारंगत होने के बाद उन्होंने "श्री शैल" पर तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की। श्री शैल नागार्जुन प्रथम के बाद से तान्त्रिक साधना का प्रमुख स्थान हो गया था। सम्राट् हर्ष के समय तक वहाँ बौद्ध तान्त्रिकों के अतिरिक्त शैव और शाक्त तान्त्रिक भी साधना हेतु निवास करते थे।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि नागार्जुन द्वितीय ने नागार्जुन प्रथम द्वारा श्री शैल पर स्थापित मठ में जाकर १२ वर्ष तक तपस्या की और "प्रज्ञापारमिता" के अनुग्रह से सिद्धि प्राप्त की। कुछ सूत्र उन्हें वट वृक्ष–यक्षिणी की कृपा से पारद सिद्ध करने का वरदान प्राप्त होने का उल्लेख करते हैं। इसी मठ में उन्होंने खेचरी विद्या सिद्ध कर आकाश गमन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। 'खेचरी–विद्या सीखकर आकाश मार्ग से समुद्र पार दूर स्थित एक द्वीप में जाकर उन्होंने एक सिद्ध पुरुष से रस–विद्या की शिक्षा प्राप्त की और बदले में उसे खेचरी–विद्या सिखाई। स्वदेश वापस आकर उन्होंने बहुत–सा स्वर्ण बनाया और भिक्षुओं की दरिद्रता दूर की। कुछ सूत्र कहते हैं कि उस समय अकाल के कारण देश में अन्न की बहुत कमी थी, अतः स्वर्ण बनाकर वह विदेशों को ले गये और वहाँ से अन्न लाकर देश के अन्न–संकट को दूर किया। यह भी कहा जाता है कि नागार्जुन प्रथम ने श्री शैल में जो साधना की थी और रसायन सम्बन्धी प्रयोग किये थे, उनका नागार्जुन द्वितीय ने पूर्ण लाभ उठाया और उनके कार्य को आगे बढ़ाया। इतना तो निश्चित रूप से कहा

(शेष पृष्ठ ३३ पर)
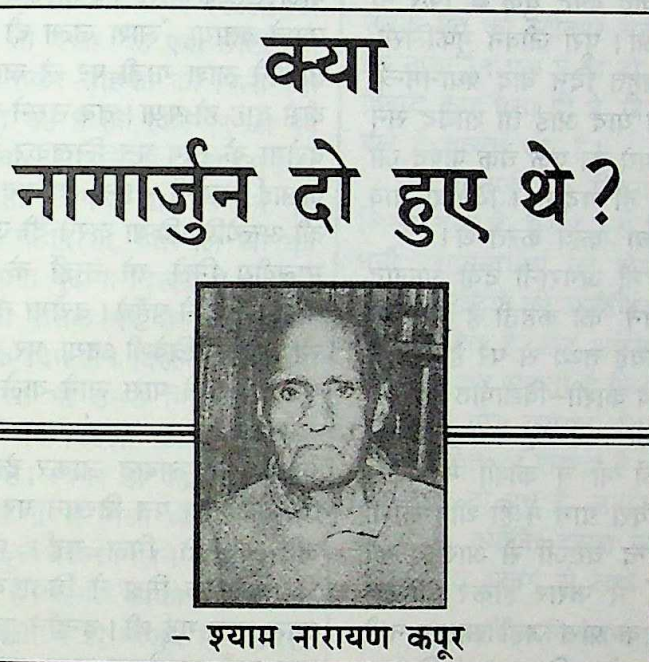
(पृष्ठ २८ का शेष) **आजाद की माताजी ...**

हमारा राष्ट्रीय झण्डा–गीत के प्रणेता श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' लखनऊ में मिल गये। मैंने पूछा– "क्या हाल है?" देश की स्थिति से बड़े हताश थे बोले, सुनिये और फिर अपनी हाल की रची ये पंक्तियाँ सुनाने लगे कि–

"बँधे पंचानन मरते हैं,
स्यार स्वच्छन्द विचरते हैं।
गधे छक–छक कर खाते हैं,
खड़े खुजलाए जाते हैं।"

आये थे कांग्रेस–टिकट माँगने पर मिला नहीं। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने मंना किया, कहा– "पार्षद जी! तुम इस पचड़े में मत पड़ो"। पार्षद जी ४ बार की जेल–यात्रा में ७ वर्ष कैद काट चुके थे, फिर भी कांग्रेस–टिकट मोयस्सर न हुआ। पूरा जीवन मुफलिसी, फाके–मस्ती में गुजारा। हाँ, बहुत दिन बाद प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी को पार्षद जी की याद आई तो शायद सन् १९७२ में उन्होंने पाँच हजार रुपये का एक चेक पार्षद जी को भेजा। पार्षद जी इतने में ही गद्‌गद्। विनोबा भावे इन्हें नाम न लेकर "झण्डा ऊँचा" कहा करते थे।

आशारानी के लेख में माँ जगरानी देवी आजाद को गांधी जी का चेला बन जाने "को कहती हैं और वह भी कानपुर के अपने घर में– यह तथ्य से परे है। माँ ने ऐसा कभी नहीं कहा– अवश्य वे काशी–विद्यापीठ में पढ़ते समय कांग्रेस– आन्दोलन में ही उन्हें १५ बेंत मारने की सजा दी गई। तब भी उनकी माँ न काशी में थीं न कानपुर में– मध्य प्रदेश के भावरा ग्राम में ही थीं। काशी में ही दल के नेता योगेश चन्द्र चटर्जी से आजाद का सम्पर्क हुआ। "काकोरी केस" में फरार होकर आजाद झाँसी के पास ही मथुरा ग्राम के पास जहाँ सातार नदी बहती है– वहीं हनुमान जी के मन्दिर में 'हरिशंकर ब्रह्मचारी' बनकर रहे। झाँसी में रामानन्द ड्राइवर से उन्होंने 'हरि शंकर ड्राइवर' बनकर ड्राइवरी सीखी। उस मोटर कम्पनी के मोटर से वे कभी–कभी पुलिस, कप्तान, इंस्पेक्टर आदि को भी उनके गंतव्य स्थान पर पहुँचा आते थे और कभी किसी को उन पर शक न हुआ। झाँसी में ही मास्टर रुद्रनारायण सिंह के यहाँ रहते हुए आजाद कम्मोद सिंह से, जो कि खुफिया पुलिस का आदमी था– कभी–कभी पंजा लड़ाया करते थे; पर वह कभी भनक भी न पा सका कि यही 'हरिशंकर ड्राइवर' चन्द्रशेखर आजाद है।

अब रही आजाद के बलिदान होने के बाद उनकी अन्त्येष्टि की बात। आजाद के एक सम्बन्धी थे पं० शिव विनायक मिश्र। उन दिनों काशी में ही रहते थे। उनके पास रात ११ बजे (२७ फरवरी) इलाहाबाद से एक आदमी आया, जिसे कमला नेहरू ने यह सन्देश कहने भेजा था कि आजाद शहीद हो गये। उनका शव इलाहाबाद आकर ले जाओ।' मिश्र जी भोर वेला में ४ बजे छोटी लाइन से इलाहाबाद रवाना हुए। उसी सन्देश वाहक के साथ जूही रेलवे स्टेशन से एक तार इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट को किया कि "आजाद मेरे रिश्तेदार थे। उनका शव नष्ट न किया जाय।" मिश्र जी इलाहाबाद आकर सीधे 'आनन्द भवन' गये कमला नेहरू के पास तो उन्होंने बताया– "आजाद का शव पोस्ट मार्टम के लिए अस्पताल ले जाया गया है। अस्पताल गये तो देखा, लाश बन्द गाड़ी में पुलिस के पहरे में ले, जा रही है।" तब सीधे जिला मजिस्ट्रेट के पास गये तो उसने एस० पी० के पास भेजा। उसने बताया, "लाश जला दी गई"। ये बोले, अभी–अभी तो मैंने लाश गाड़ी पर ले जाती देखी है– इतने जल्दी कैसे दाह हो गया। तब उसने दारागंज पुलिस के थाने के दरोगा के नाम पत्र लिखकर दिया कि लाश त्रिवेणी पर जलाई जायेगी– इन्हें आजाद के सम्बन्धी के नाते लाश की अन्त्येष्टि क्रिया करने दी जाय। बाहर इन्हें पद्‌मकान्त मालवीय मिले, तो उन्हीं के साथ उन्हीं की गाड़ी से दारागंज थाने पहुँचे। दरोगा ने पत्र पढ़ा तो इन लोगों को साथ लेकर त्रिवेणी आया, पर वहाँ कुछ भी न था। ये फिर एस० पी० के पास जाने वाले थे कि तभी एक व्यक्ति से समाचार मिला, 'लाश' गंगा तट पर रसूलाबाद ले जायी गई है।' रसूलाबाद जाकर देखा, चिता में आग लगा दी जा चुकी है। पत्र दिखाने पर इन्हें अन्त्येष्टि क्रिया करने की अनुमति मिल गई। पद्‌मकान्त मालवीय और शिवविनायक मिश्र ने चिता की आग बुझाई– लाश की खाल जल गई थी। इन्होंने पुनः चिता को अग्नि दी। तब तक वहाँ पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्रीमती कमला नेहरू आदि भी आ गये। अस्थियाँ और कुछ राख पोटली में बाँधकर मिश्र जी साथ ले आये। शाम को काले वस्त्र में बाँधकर उन अस्थियों का जुलूस शहर में निकाला गया– पूर्ण हड़ताल रही थी उस दिन। कई ऐसे कांग्रेसी नेता थे जो आजाद के लिए हड़ताल और सभा करने का विरोध कर रहे थे– इसलिए सभा व जुलूस का आयोजन छात्र–संघ द्वारा किया गया। शोक–सभा में राजर्षि टण्डन जी, मिश्र जी शचीन्द्र दा की पत्नी प्रतिभा सान्याल और कमला नेहरू ने श्रद्धांजलि दी। भस्मी का जुलूस 'अभ्युदय–प्रेस' से उठा था और 'पुरुषोत्तमदास–पार्क' में शोक–सभा हुई थी। पद्‌मकान्त मालवीय ने मुझे बताया था कि **आजाद के क्रान्तिकारी होने के नाम पर कांग्रेस नेताओं ने हमारी किसी तरह की उस दिन सहायता करने से**

इनकार कर दिया था। केवल पुरुषोत्तमदास टण्डन ने सब जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर कहा, जुलूस जरूर निकले। शहीद आजाद की चिता–भस्म की एक चुटकी राख ले जाने की होड़ मच गई थी उस दिन जनता में।

"पथिक! यहाँ रुको पाँव छू लो ना। यह समाधि है उसी शहीद की।" पुनः 'राष्ट्रधर्म' के अप्रैल अंक में भी उक्त लेखिका के ही लेख में विस्मिल जी की माताजी का नाम "मूलवती" लिखा छपा सर्वत्र देखा तो बड़ा खेद हुआ क्योंकि पं० रामप्रसाद विस्मिल की माता जी का नाम **"मूलमती देवी"** था, न कि "मूलवती"। फिर देखिए, झूठ की परिसीमा कि उसी लेख के अन्त में पृष्ठ ३४ पर लेखिका लिखती हैं कि "कुछ वर्ष पहले सूचना मिलने पर जब लेखिका उनसे (माताजी) से मिलने गई दिल्ली की उत्तम नगर कालोनी पहुँची तो देखा, वह एक छोटी–सी खोखेनुमा देकान में चाय बनाकर ग्राहकों को पिला रही थीं...।" जब कि वास्तविकता यह है कि विस्मिल जी की माता मूलमती देवी का स्वर्गवास ये पंक्तियाँ लिखे जाने के ३५ वर्ष पूर्व शाहजहाँपुर में ही हो गया था– उन्होंने नई दिल्ली का मुँह कभी देखा नहीं। हाँ, विस्मिल जी की बहिन शास्त्री देवी जरूर अपना बुढ़ापा दिल्ली में काटती रहीं– उनका जवान लड़का सड़क पर ठेला लगाकर, गुजर–बसर करता रहा। एक दिन मैंने दिल्ली में शास्त्री देवी और उनके पुत्र को देखा भी उनसे मिला था, पर विस्मिल जी की माता जी का दिल्ली प्रवास नितान्त तथ्यहीन और कल्पना मात्र है। ईश्वर ही जाने कि फिर लेखिका नई दिल्ली में किस माँ से मिली थीं और फिर किसे "सरकार की तरफ से कुछ पेंशन मिलने लगी थी"? जैसा कि लेखिका ने लिखा है। अभी 'काकोरी केस' के श्री मन्मथ नाथ जी गुप्त दिल्ली में ही मौजूद हैं– उनसे मेरी बातों की पुष्टि की जा सकती है।

आगे 'राष्ट्रधर्म' के मई ९८ अंक में पृष्ठ ७० पर लेखिका फिर एक असत्य शिगूफा गढ़ते हुए लिखती हैं कि 'कुछ अपुष्ट प्रमाणों के आधार पर तथा अपनी माँ रल्ली देई से सुने तथ्य के अनुसार मथुरा दास थापर तो भगत सिंह के दुर्गा भाभी व बालक शची के साथ लाहौर से आगरा तक आने की रोमांचक यात्रा की पूर्व प्रचलित कहानी पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं और कहते हैं कि उनकी माँ रल्ली देई ही पहले भगत सिंह के साथ गई थीं।' यह बकवास है। सुशीला देवी कलकत्ता स्टेशन पर मौजूद थीं, जब दुर्गा भाभी भगत सिंह को लेकर अपने पुत्र सहित लाहौर से वहाँ पहुँची। भाभी के पति भगवतीचरण बोहरा भी स्टेशन पर मौजूद थे। इस इतिहास पर धूल डालना गर्हित कर्म है। ❒

(पृष्ठ ३१ का शेष) **क्या नागार्जुन ...**

जा सकता है कि नागार्जुन ने इस विद्या को विकसित करने के लिए कठिन परिश्रम किया और उसके रहस्य के आवरण को हटा कर उसे वैज्ञानिक रूप देने के सफल प्रयास किये। इस तथ्य की पुष्टि उनके द्वारा लिखे ग्रन्थों से होती है। नागार्जुन से पूर्व तथा बाद में रसायन सम्बन्धी जो ग्रन्थ लिखे गये थे, वे बहुत ही गूढ़ भाषा में हैं। इनको केवल गुरु–शिष्य परम्परा से ही समझा जा सकता था। नागार्जुन की रचनाओं से परवर्त्ती ग्रन्थकारों ने अनेक उद्धरण दिये हैं।

(स्व०) आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय का मत रहा है कि नागार्जुन दो नहीं, एक ही हुए हैं, किन्तु कुछ विद्वान् उनके मत को स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार यह प्रश्न कि नागार्जुन एक हैं या दो, विवादास्पद बना हुआ है। यह विवाद कुछ वैसा ही है, जैसा कि महाकवि कालिदास के बारे में चलता रहा है।

नागार्जुन के विषय में वैसे और भी बहुत कुछ लिखा गया है; परन्तु इस विलक्षण एवं विचक्षण प्रज्ञा के धनी रसायनाचार्य को लेकर विवाद का कारण स्यात् उनकी सिद्धियों की अलौकिकता तथा उनकी सुदीर्घजीविता में सन्निहित है और आंग्ल–मानसिकता भला यह कैसे अंगीकार कर सकती है कि कोई व्यक्ति ५५६ वर्ष की आयु तक योग और रसायन के सेवन के फलस्वरूप स्वस्थता पूर्वक जीवित रह सकता है। अतः उनकी दृष्टि में नागार्जुन एक नहीं, दो हुए हैं, जबकि एक ही नागार्जुन को लोग जानते हैं; क्योंकि दूसरा जब हुआ ही नहीं, तो उसका जीवन–वृत्त अलग से लायें कहाँ से? ❒

– साहित्य निकेतन, ३७/५०, शिवाला रोड, कानपुर

लता मंगेशकर को भी चिन्ता है–

मुंबई आगामी पीढ़ी को पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से बचाने के लिए सारे समाज को एकजुट होकर प्रयास करने होंगे तभी हमारी संस्कृति भी बचेगी और हमारा सम्मान भी। टी.वी. चैनलों की भरमार के कारण आज सारे देश में ऐसा माहौल बन गया है कि कौन किधर जा रहा है किसी को मालूम ही नहीं। हमारे बच्चे हमसे दूर होते जा रहे हैं। हम पश्चिमी और अमेरिकी संस्कृति अपनाते जा रहे हैं। हम यह भूल रहे है कि धार्मिक और सांस्कृतिक संपदा के हमारे पास अपार स्रोत हैं। फिल्म संगीत भी आज भ्रष्ट होता जा रहा है। उस पर पश्चिमी संस्कृति पूरी तरह हावी है। इसे रोकने के लिए फिल्म उद्योग व प्रचार माध्यमों को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। यह कहना है स्वर सम्राज्ञी लता मंगेशकर का। उन्होंने महाराष्ट्र सरकार से आग्रह किया कि वे छत्रपति शिवाजी महाराज के कालखण्ड के किलों का संरक्षण भी करे। (वि.सं.के., मुम्बई)

१८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण रहे

झाँसी-दुर्ग से जुड़ी हैं लक्ष्मीबाई की यादें

– जगदीश प्रसाद 'साहनी'

झाँसी का दुर्ग चंदेल राजाओं के बाद मरहठों, ईस्ट इण्डिया कम्पनी व ग्वालियर के शासकों के अधीन रहा। इस किला में जहाँ एक ओर राजदरबार लगे, नर्त्तकियों के घुँघरुओं की झंकार गूंजी तो दूसरी ओर इसी दुर्ग ने शौर्य और पराक्रम की प्रतिमूर्त्ति महारानी लक्ष्मी बाई द्वारा चलाई गई तोपों की गर्जना भी सुनी। इस किले से रानीमहल तक सुरंग बनी, तो दूसरी सुरंग ग्वालियर के किला तक बनाई गई। ऐसा इसलिए भी हो सकता है क्योंकि झाँसी ग्वालियर शासन के आधिपत्य में हो जाने से उक्त सुरंग का निर्माण किया गया हो।

झाँसी का किला ओरछा के राजा वीर सिंह देव ने सन् १६१० ई० में बनवाया था। उस समय वीर सिंह देव सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के राजा थे। आगरा के तख्त पर मुगल बादशाह जहाँगीर था। जहाँगीर और वीर सिंह देव में काफी मित्रता थी। इसी से वीर सिंह देव का राज–तिलक जहाँगीर ने ओरछा में आकर किया था और वीर सिंह देव ने ओरछा दुर्ग में ही जहाँगीर के ठहरने वाले महल का 'जहाँगीर महल' नामकरण किया था। वीर सिंह देव का प्रभुत्व मुगल बादशाह अकबर के समय में इतना बढ़ा था कि उसने ओरछा को मुगलिया हुकूमत में मिलाने के लिए सन् १५९४ ई. में अबुल फजल को सेनापति बनाकर विशाल सेना भेजी। लेकिन अबुल फजल की सेना राजपूत सेना के सामने टिक न सकी। अगस्त सन् १६०२ में शाहजादा सलीम ने वीर सिंह देव से मिलकर अबुल फजल की हत्या की योजना बनाई। १२ अगस्त १६०२ ई. में ग्वालियर के निकट आंतरी के जंगल में अबुल फजल को घेर लिया गया और उसका सिर काटकर वीर सिंह देव ने शाहजादा सलीम को भिजवा दिया।

शाहजादा सलीम जब आगरा के तख्त पर बैठा, तो उसने वीर सिंह देव को काफी सम्मान दिया। वीर सिंह देव ने अपने शासनकाल में ५२ इमारतों का निर्माण कराया, जिनमें किले, महल और मन्दिर शामिल हैं।

झाँसी का किला १६१० ई. से १६४० ई. तक ओरछा के राजा के अधीन रहा। बाद में इस किले पर मरहठों का कब्जा हो गया। मरहठों का अधिकार सन् १७४२ तक ही रहा। बाद में इस किले पर सूबेदार नारूशंकर ने कब्जा कर लिया। इसके वंशज बाजीराव पेशवा (द्वितीय) ने १८०४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि की, जिसके प्रतिकार में उसे राजा घोषित कर दिया गया। लेकिन अंग्रेजों ने पुनः १८१७ में इस किले को अपने कब्जे में लेकर बाजीराव पेशवा को ८ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन देकर वहाँ के सम्पूर्ण राज्याधिकार अंग्रेजों ने जब्त कर लिए १८३२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रामचन्द्र राव को राजा बनाकर किला सौंप दिया। राज्य पर अंग्रेजों का आधिपत्य बना रहा।

सन् १८३८ में गंगाधर राव को झाँसी का राजा घोषित कर दिया गया और झाँसी का किला गंगाधर राव के कब्जे में आ गया। लेकिन २७ फरवरी १८५७ को गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदर राव को गोद लिए जाने को अस्वीकृत कर दिए जाने से झाँसी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा जब्त कर लिया गया। इस निर्णय को महारानी लक्ष्मीबाई ने चुनौती दी। उन्होंने ५ हजार रुपये की वार्षिक पेंशन लेना अस्वीकार कर दिया। ७ मार्च १८५४ ई. को झाँसी अंग्रेजी सत्ता में चली गई और वहाँ का बन्दोबस्त अंग्रेजों ने सम्भाला।

महारानी लक्ष्मीबाई स्वराज्य के लिए अंग्रेजों से लड़ती हुई बलिदान हो गईं, लेकिन दासता स्वीकार नहीं की।

किले का आन्तरिक परिवेश

झाँसी के दुर्ग में जहाँ गंगाधर राव दरबार किया करते थे, उस स्थल पर अंग्रेजों ने पानी की टंकी बनवा दी। गंगाधर राव ने अपराधियों को दण्ड देने के लिए फाँसीघर बनवाया था। अपराधियों को कैद में रखे जाने के लिए जेलखाना बनवाया। झाँसी का दुर्ग काफी मजबूत है। दुर्ग का मुख्य द्वार काफी बड़ा है। इस किले में उद्यान है, जिसे अब बन्द कर दिया गया है। इसी किला में शिव मन्दिर व गणेश मन्दिर बना है, जिसमें राजपरिवार के लोग पूजा करते थे।

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

संचरण-गीत-जो पाँच वर्षों में पूरा हुआ

• डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

ऐतरेय ब्राह्मण के 'शुनः शेप आख्यान' में एक सुन्दर वैदिक गीत दिया हुआ है। इस गीत का अन्तरा है– 'चरैवेति चरैवेति' अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। इसकी कथा यों है। राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। उसने पर्वत और नारद नाम के ऋषियों से उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि तुम वरुण की उपासना करो। वह वरुण के पास गया कि मुझे पुत्र दो। उससे तुम्हारा यजन करूँगा। वरुण ने कहा– तथास्तु। हरिश्चन्द्र के पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम रोहित रखा गया।

रोहित जब तक कवच धारण करने योग्य अर्थात् युवा नहीं हो गया, तब तक राजा हरिश्चन्द्र वरुण को नाना प्रकार के बहाने बना कर टरकाता रहा और अपने वचन का पालन नहीं किया और एक रात उसने रोहित से सलाह कर उसे जंगल में भगा दिया। जब वरुण ने दूसरे दिन आकर पुनः राजा को वचन की याद दिलायी, तो राजा ने कह दिया कि वह तो कहीं भाग गया।

अब वरुण के उग्र नियमों ने हरिश्चन्द्र को पकड़ा। उसके जलोदर हो गया। रोहित ने जंगल में पिता के कष्ट का समाचार हुआ। वह वहाँ से बस्ती की ओर लौटा। (जब रोहित जंगल में था) तब इन्द्र प्रमुख का वेष बनाकर उसके सामने आया और निम्न–लिखित गीत का एक–एक शलोक एक–एक वर्ष बाद उसे सुनाता रहा। इस प्रकार पाँच वर्षों में यह संचरण गीत पूरा हुआ। (रोहित पाँच वर्षों तक अरण्य में घूमता रहा था) गीत इस प्रकार है–

(१)

चरैवेति–चरैवेति।
नाराश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।।
चरैवेति–चरैवेति।

हे रोहित! सुनते हैं कि श्रम से जो नहीं थका, ऐसे पुरुष को लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(२)

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वेपाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।।
चरैवेति–चरैवेति।।

जो पुरुष चलता रहता है, उसकी जाँघों में फूल फूलते हैं, उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलने वाले के पाप थककर सोये रहते हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निषद्यमानस्य चराति चरतो भगः।।
चरैवेति चरैवेति।

बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है, पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(४)

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्त्ष्ठिंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।
चरैवेति चरैवेति।

सोने वाले का नाम कलि है, अँगड़ाई लेनेवाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सत–युगी है इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(५)

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।।
चरैवेति चरैवेति।

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

इस सुन्दर गीत में इन्द्र ने रोहित को सदा चलते रहने की शिक्षा दी है। इन्द्र को शिक्षा किसी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण से मिली थी। गीत का वास्तविक अभिप्राय आध्यात्मिक है। चलते रहो–चलते रहो; क्योंकि चलने का नाम ही जीवन है। ठहरा हुआ पानी सड़ जाता है, बैठा

हुआ मनुष्य पापी होता है। बहते हुए प्राणी में जिनकी रहती है, वही वायु और सूर्य के प्राण-भण्डार में से प्राण को अपनाता है। पड़ाव डालने का नाम जिन्दगी नहीं है। जीवन के रास्ते में थककर सो जाना या आलसी बनकर बसेरा ले लेना मूर्च्छा है। जागने का नाम जीवन है। जागृति ही गति है। निद्रा मृत्यु है। अध्यात्म के मार्ग में बराबर आगे कदम बढ़ाते रहो, सदा कानों में 'चलते रहो-चलते रहो' की ही ध्वनि गूँजती रहे। वह देखो, अनन्त आकाश को पार करता हुआ और अपरिमित लोकों का भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रातःकाल आकर हम में से प्रत्येक के जीवन-द्वार पर यही अलख जगाता है- 'चलते रहो, चलते रहो।'

इन्द्र तो चलने वालों का सखा है। (इन्द्र इच्चरतः सखा) आत्मा उनका ही स्वयंवर करती है, जो मार्ग में चल रहे हों, एक पद के बाद दूसरा पद शीघ्र उठाते हुए अध्यात्म के अनन्त पथ को चीरते चले जाते हैं। उपनिषदों में कहा भी है- **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।'** अथवा **'न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिंगात्।'**

जिसके संकल्प मजबूत नहीं हैं, जो प्रमादी और मिथ्याचारी है, उसे आत्मदर्शन नहीं हो सकता। ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। कमर कसकर खड़े हो जाने वालों का ही इन्द्र मित्र है। जो वेग से रास्ते को पार करते चले जाते हैं; जो पैर उठाकर पश्चात्पद होना नहीं जानते; जो सोते-जागते सदा जागरूक बने हुए हैं, वे ही सच्चे पथिक हैं। उन्होंने संसार के आतिथ्य-धर्म को ठीक समझ लिया है। आत्मा इस देह में एक अतिथि है। यही सूत्र सदा स्मरणीय है- **अतिथिरात्मा'** आत्मा ही क्षेत्रपति शम्भु है। इस शरीर की संज्ञा क्षेत्र है। आत्मा क्षेत्रज्ञ या क्षेत्रपति है। हम नित्य के शान्तिपाठ में कहते हैं- **'शन्नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः'।**

हमारे क्षेत्रपति आत्मा का अहरहः कल्याण हो, वह संतत स्वस्तिमान् हो। इसी आत्माग्नि को सम्बोधन करके कहा जाता है- **'समिधाग्निं दुवस्यत घृतर्बोधयतातिथिम्'।** समिधाओं से इस अग्नि की उपासना करो और घृत की धाराओं से उस अतिथि को जगाओ। ब्रह्मचर्य-काल या आयु का वसन्तकाल घृत की धाराएँ हैं। इसी समय रसों का परिपाक होता है। यौवन या ग्रीष्म ही समिधाएँ या ईंधन हैं। कहा भी है- **'वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः'।**

अतिथि आत्मा का हित चलते रहने में है। घर बनाकर डेरा डालना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है। भोग और विषय दुर्गन्ध से भरे हुए हैं। उनके मध्य में तृप्ति मान लेने वाले को असली माधुर्य का पता ही नहीं लगा। सब विद्याओं से बड़ी मधुविद्या है। आत्म- ज्ञान या अध्यात्म-विद्या का ही नाम मधुविद्या है, जिसे इन्द्र ने दध्यङ् अथर्वा को सिखाया था। यही परम मधु है। इस रस के बराबर और किसी रस में मिठास नहीं है। आत्मा रस-स्वरूप ही है- **'रसो वै सः'।** एक बार जो इस मधु का स्वाद पा जाते हैं, तो वे पुनः दूसरे माधुर्य की चाहना नहीं करते। यह मधु चलते रहने से ही मिल सकता है- **'चरन् वै मधु विन्दति'।**

अध्यात्म मार्ग के दृढ़ पथिक ही इस मधु को चखते हैं। वे ही ऐसे सुपर्ण हैं, जो संसार-रूपी अश्वत्थ वृक्ष के स्वादु या मधुर फल को खाने योग्य (मध्वद्) होते हैं। ❐ ('उरु-ज्योतिः' से साभार)

(पृष्ठ ३४ का शेष)

झांसी-दुर्ग से ...

४ जून १८५८ को महारानी लक्ष्मीबाई के तोपची सरदार गुलाम गौस खाँ, तोपखाना के दरोगा खुदाबख्श तथा तोपखाना का नेतृत्व करने वाली मोतीबाई तीनों अंग्रेजों से युद्ध करते मारे गये, जिनकी समाधियाँ किले में बनी हैं।

झाँसी के अन्य दर्शनीय स्थल

झाँसी के अन्य दर्शनीय स्थलों में रानीमहल प्रमुख है। इस महल का निर्माण रघुनाथ राव के समय में हुआ। झाँसी का किला अंग्रेजों के कब्जे में जाने के बाद इसी महल में महारानी लक्ष्मी बाई ने निवास किया। वास्तुशिल्प व चित्रकारी की दृष्टि से यह महल काफी आकर्षक है। दरोगरान मुहल्ले में रघुनाथ राव ने एक महल गजरा नर्तकी के लिए बनवाया था, जिसमें वह रहती थी। आज भी उस महल के भग्नावशेष विद्यमान हैं। महाराजा गंगाधर राव के जमाने में राजवैद्य प्रताप जिस हवेली में रहते थे, उसे अब नई बस्ती की हवेली कहा जाता है।

झलकारी का त्याग

महारानी लक्ष्मीबाई के दीवान दुल्हाजू के अंग्रेजों से मिल जाने पर ओरछा पोल खोल दिये जाने से जब अंग्रेजी सेना किले में प्रवेश कर गई, तब रानी की विश्वास पात्र सहेली झलकारी, जो भोडेर गेट पर तोपखाने को सम्भाले थी, को एक सूझ समझ में आई। वह उसी वक्त अपने को झाँसी की रानी घोषित कर घोड़े पर सवार हो गई। इतने समय में रानी लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को लेकर घोड़े पर सवार होकर छलाँग लगाकर निकल गईं। झलकारी युद्ध करती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। ❐

– साहनी निकेतन, मलिहा..द, जनपद-लखनऊ

दृष्टिकोण

स्वदेशी वृक्ष आयुर्वेद

- डॉ० मुरली मनोहर जोशी

प्राचीन भारत ज्ञान और विज्ञान का मूल अध्येता है। पाश्चात्य विद्वान् भी मानते हैं वेद १० से १२ हजार वर्ष पुराने हैं। हमारी मान्यता इससे पहले की है। वेदों मे वर्णित जीव जगत्, सृष्टि विज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान की मौलिक और विस्तृत व्याख्याएँ हैं जिनके पास आज का पश्चिमी विज्ञान धीरे-धीरे पहुँचने की कोशिश कर रहा है। परन्तु आज हम छोटी-छोटी चीजों के ज्ञान और तकनीक के लिए परावलम्बी बनते जा रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय अस्मिता, सम्मान और भविष्य की योजनाएँ सब उधार पर आधारित हैं। उधार की प्रौद्योगिकी, धन और अन्न। यह मार्ग सर्वनाश की ओर ले जायेगा। जब सरकारें कर्ज लेती हैं तो उसकी पूरी अर्थव्यवस्था ही साहूकारों के पास गिरवीं हो जाती है।

आज देश जिस परिस्थिति से गुजर रहा है वह बड़े संकट की है। कोई देश या परिवार जब उधार पर चलता है तो उसकी गति रसातल की ओर जाती है। जब हम अपने उत्पादन से कर्ज वापस नहीं कर पायेंगे तो कर्ज देने वाले अपनी वसूली तो नहीं छोड़ देंगे। जिस देश में कुछ उत्पादन होता हो, कर्ज लेने से उसकी आर्थिक स्थिति सम्भलती हो, उसका कर्ज लेना और उत्पादन से चुका देना समझ में आता है, परन्तु यहाँ तो कर्ज का ब्याज चुकाने की भी शक्ति और उत्पादन क्षमता नहीं है। जब कुछ बनाते हैं तो कर्ज लेना ही पड़ता है। मगर उत्पादन करके कर्ज चुका देना चाहिए। पर अपने देश में ऐसा नहीं होता। **फिलीपीन्स का उदाहरण लें। उसने कर्ज लेकर अपने को इतना अधिक कर्जदार बना लिया कि वहाँ के लोग धन कमाने के लिए खाड़ी के देशों की सेवा करते हैं और वहाँ की लड़कियाँ विदेशी कर्ज चुकाने के लिए तन बेचकर विदेशी मुद्रा कमाती हैं। दुनिया के देशों में सबसे ज्यादा वेश्याएँ फिलीपीन्स में हैं। यह है कर्ज का विकृत परिणाम।**

कर्ज का मतलब है फिलीपीन्स के रास्ते पर चलना। क्या भारत को फिलीपीन्स बनाना है? क्या भारत हमेशा कर्जदार रहेगा? ऋण में दबा हुआ बँधुआ मजदूर? ऐसा होना हरगिज उचित नहीं है। भुगतान असन्तुलन में देश चल रहा है। ऐसा क्यों हुआ? बारह हजार करोड़ की जगह और पन्द्रह-सोलह हजार करोड़ डॉलर हो जायेंगे भुगतान असन्तुलन के। हम विदेशी मुद्रा उन उद्योगों में खर्च करते हैं जिनसे हम विदेशी मुद्रा अर्जित नहीं कर सकते। हम अपने परम्परागत उद्योगों, टैक्सटाइल, चमड़े, खनिज और आभूषणों से ही विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकते हैं। इसके लिए किसी कर्ज की जरूरत नहीं।

हमारे वैज्ञानिकों ने इस देश को वैज्ञानिक परम्पराओं से सम्पन्न किया, हमें उसी वैज्ञानिक प्रवाह के साथ जुड़ना चाहिए। अपना आत्मविश्वास जाग्रत् करना चाहिए। भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परम्पराएँ बहुत सम्पन्न और बहुत ही श्रृंखलाबद्ध थीं। वृक्ष आयुर्वेद यानि वनस्पति शास्त्र का अपने देश में गहरा अध्ययन था।

अपने यहाँ सिन्धु घाटी की सभ्यता के विषय में कहा जाता है कि वहाँ के लोग सूती कपड़ा पहनते थे। कपास की खेती करना, उससे धागा बनाना, फिर कपड़ा बुनने की कला तब विकसित थी। इसका अर्थ है कि कपास के बारे में उस समय इतना गहरा अध्ययन हुआ होगा कि उससे धागा कैसे बनाया जाता है, वह उत्पादन का प्रमाण है। बर्तनों की रंगाई के उदाहरण तरह-तरह के रंगों से रंगे बर्तनों से मिलते हैं। रंगों को वृक्षों से प्राप्त करना उन्हें आता था। तब न तो कोई एशियन पेन्ट की कम्पनी थी और न ही किसी मल्टीनेशनल की सप्लाई। वे रंग वृक्षों से लेते थे। वे प्राकृतिक रंग होते थे। उन्हें मिट्टी के बर्तनों में पकाया जाता था और वे पकाने से नष्ट नहीं होते थे। सबसे रुचिकर बात यह है कि सिन्धु घाटी सभ्यता की जितनी ईंटें मिली हैं, वे सब एक ही आकार-प्रकार की हैं। वे चाहे मोहनजोदड़ो, हड़प्पा में मिली हैं या उत्तर प्रदेश के किसी सुदूर पूर्व के गाँव में

मिली हैं। इसका अर्थ है कि एक साँचा बनता था। लोग जानते थे कि ईंटों का आकार–प्रकार कैसा होना चाहिए।

महामुनि पाराशर एक पुस्तक लिख गये थे– 'वृक्ष आयुर्वेद'। लेखन काल है– ईसा पूर्व एक हजार वर्ष। इसमें जो वैज्ञानिक विवेचन है, वह विस्मयकारी है। इस पुस्तक में ८ भाग हैं। कई अध्याय है। पहला है बीजोत्पत्ति काण्ड। वह कहता है कि

आपो ही कललं भूत्वा यत्पिण्डं स्थानकं भवेत्।
तदेव व्यूहमानत्वाद् बीजत्वमधिगच्छति।।

पहने पानी जेली जैसे पदार्थ को ग्रहण कर न्यूक्लियस बनता है और फिर वह धीरे–धीरे पृथ्वी से ऊर्जा और पोषक तत्त्व ग्रहण करता है, फिर उसका आदि बीज के रूप में विकास होता है और आगे चलकर कठोर बनकर वृक्ष का रूप धारण करता है। आदि बीज–यानी प्रोटोप्लाज्म के बनने की प्रक्रिया है।

प्रोटोप्लाजम में जो न्यूक्लियस होता है, उसका वर्णन करता है। पृथ्वी और सूर्य से ऊर्जा ग्रहण कर धीरे–धीरे विकसित होना। यह प्रोटोप्लाज्म और न्यूक्लियस के बनने का बीजाणु में स्पष्ट संकेत है। बीजत्वम् अधिगच्छति कहने का यही अर्थ है।

वृक्षांगादि

वृक्षों के भागों का वर्णन दूसरा अध्याय करता है। **'पत्रं, पुष्पं, मूलं, त्वक् , कंटकम्, प्ररोहम्।'** ईसा से हजार वर्ष पूर्व वैज्ञानिक ढंग से विभाजित करके विस्तृत उल्लेख किया है, वृक्षों के विभिन्न अंगों का। दूसरे अध्याय में पृथ्वी का उल्लेख है।

तीसरा अध्याय है– वन वर्गाध्याय–१४ प्रकार के वनों का उल्लेख है। जब कभी सोशल फॉरेस्ट्री की चर्चा होगी तो उसका उल्लेख होगा। चौथा अध्याय है फिजियालॉजी का, उसमें पत्रों के बारे में है– इसमें प्रकाश संश्लेषण यानी फोटोसिन्थेसिस की क्रिया के लिए कहा है–

'पत्राणि वातातपरंजकानि अधिगृह्णन्ति।

वात आतप रंजक– क्लोरोफिल। यह स्पष्ट है कि वात यानि कार्बन डायक्साइड सूर्य प्रकाश क्लोरिफिल से अपना भोजन वृक्ष बनाते हैं इसका स्पष्ट वर्णन इसी ग्रन्थ में है।

पुष्पाणिअंगा

पुस्तक से आगे है कितने प्रकार के फूल होते हैं, उनके कितने भाग होते हैं। उनका उस आधार पर वर्गीकरण किया गया है उनमें पराग कहाँ होता है। पुष्पों के हिस्से क्या हैं।

फलांग सूत्र

फलों के प्रकार, फलों के गुण, रोग और उसका वर्गीकरण छठवें अध्याय में किया है। फिर सातवाँ है– अष्टांगसूत्री अध्याय। उसमें जड़, मूल, कोड, त्वचा, सारग, स्नेह, कंटक इन सब आठों अंशों का परस्पर क्रियात्मक सम्बन्ध का वर्णन है। फिर आठवाँ अध्याय है जो बीज से पेड़ के विकास का वर्णन करता है। बीज मात्र कायाम् अध्यस्तम, एकमात्रकम्, द्विमात्रकम, यानी मोनाकॉटिलिडेन और डाकॉटिलिडेन। यानी एकबीज पत्री और द्विबीजपत्री बीजों का वर्णन है। किस प्रकार बीज रस ग्रहण करता है धीरे–धीरे बढ़ता है और वृक्ष का रूप धारण करता है। कौन सा बीज कैसे उगता है, वर्गीकरण के साथ उसमें स्पष्ट वर्णन है।

फिर वर्णन है कि बीज के विभिन्न अगों के कार्य अंकुरण के समय कैसे होते हैं।

अंकुरनिवृत्ते बीजमात्रिकाया रसा संगृहते पूर्वागेणु– यानी रस ग्रहण करना।

तेनैव रसेन प्ररोहो वर्धते च– रस ग्रहण करता है, बढ़ता है और आगे कहता है कि जड़ बन जाने के बाद बीजमात्रिका यानि बीज पत्रों की आवश्यकता नहीं रहती, वह समाप्त हो जाता है। फिर पत्ते और फलों की संरचना के बारे में कहा है कि वृक्ष का भोजन पत्तों से बनता है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण वर्णन है। पार्थिव रस जड़ में से ऊपर वाहिकाओं के द्वारा ऊपर आता है जिन्हें स्वदिनी कहते हैं आज के एसेन्ट ऑफ सेप का वर्णन है। यें पहुँच जाती हैं पत्तों में जहाँ पतली–पतली शिराएँ जाल की तरह फैली रहती हैं। ये दोनों प्रकार की हैं उपसर्प और अपसर्प। वे रस प्रवाह को ऊपर भी ले जाती हैं, और नीचे भी ले जाती हैं– दोनों के रास्ते अलग–अलग हैं। ग्रेविटी के विरुद्ध भी वे ऊपर कैसे ले जाती हैं, इसके बारे में आज के विज्ञान में भी पूरा ज्ञान नहीं है। जब तक कैपिलरी एक्शन का ज्ञान न हो तब तक यह बताना कैसे सम्भव है। यह ज्ञान बाद तक पश्चिमी देशों को नहीं था। कैपिलरी मोशन क्या होता है इसी भौतिकी के सिद्धान्त का ज्ञान बॉटनी के ज्ञान के साथ आवश्यक है। पत्तों में रस प्रवाहित होता है तो कहता है–

(शेष पृष्ठ ४० पर)

कितने अनभिज्ञ हैं अनुच्छेद ३७० के ये समर्थक

— अधीश कुमार

आज एक बार पुनः चर्चा प्रारम्भ हुई है कि क्या अनुच्छेद ३७० अमर है? (नवभारत टाइम्स ७ अप्रैल)। परन्तु इसमें तथ्य कम पूर्वाग्रह अधिक है।

महाराजा हरिसिंह ने अपने राज्य जम्मू–कश्मीर का विलय भारत संघ में वैसे ही किया था जैसे अन्य ६०० रियासतों ने। अधिमिलन के बाद किसी रियासत विशेष के लिए विशेष शर्तें स्वीकार करने का क्या औचित्य था? जब कि विलय पत्र पर महाराजा के हस्ताक्षर मात्र से अधिमिलन की सभी संवैधानिक शर्तें पूरी हो गई थीं।

जम्मू–कश्मीर को विशेष अधिकार देने वाले इस अनुच्छेद के लिए आग्रह करने वाले शेख अब्दुल्ला से डॉ० अम्बेडकर ने विरोध करते हुए कहा था कि "तुम चाहते हो कि भारत पर कश्मीर की रक्षा इत्यादि की जिम्मेदारी तो रहे; पर भारतीय संसद् का उस पर कोई अधिकार न हो। मैं भारत का विधि मन्त्री हूँ, मुझे भारत के हितों की रक्षा करनी है, इसीलिए तुम्हारे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।" बाद में प्रधानमन्त्री नेहरू ने इसको विधिमन्त्री के विरोध के बावजूद गोपाल स्वामी आयंगर के द्वारा प्रस्तुत कराया था।

प्रसिद्ध न्यायविद दुर्गादास बसु ने लिखा है कि "इस घातक धारा को संविधान में किसी विवशता, अनिवार्यता अथवा कानूनी आवश्यकता के कारण नहीं वरन् केवल राजनैतिक तुष्टीकरण के कारण जोड़ा गया है।

संविधान के प्रावधानों को (धाराओं को) अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। जम्मू–कश्मीर राज्य, भारत के संविधान की प्रथम सूची में १५वें क्रमांक पर देश के अन्य राज्यों की भाँति उल्लेखित है अतः अन्य राज्यों की तरह उस पर भी संविधान की धारा–१ पूरी तरह लागू है।"

जब संविधान में अनुच्छेद ३७० जोड़ा गया तो इसको संविधान के २१वें भाग में स्थान मिला, जिसका शीर्षक है, **'अस्थाई, संक्रमण कालीन और विशेष प्रावधान'**। इससे संविधान निर्माताओं का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है।

अनुच्छेद ३७० में कहा गया है– "राष्ट्रपति अधिसूचना जारी कर घोषणा कर सकते हैं कि यह धारा अब प्रभावी नहीं रहेगी, बशर्ते राज्य की संविधान सभा इस आशय की अनुशंसा करे।"

जम्मू–कश्मीर की संविधान सभा ने २६ जनवरी १९५६ को जम्मू–कश्मीर राज्य का संविधान स्वीकृत किया और राज्य के भारतीय संघ में अन्तिम विलय की पुष्टि कर दी।

राज्य संविधान की धारा ३ व ५ में राज्य का भारतीय संघ में विलय अन्तिम व पूर्ण घोषित किया गया। साथ ही यह संकल्प भी व्यक्त किया गया कि अब विलय के सम्बन्ध में भविष्य में शंका या प्रश्न नहीं उठाया जायेगा। संविधान लागू होने के साथ ही यह संविधान सभा विसर्जित कर दी गई थी।

चूँकि अब राज्य की संविधान सभा अस्तित्व में नहीं है, अतः अब इसकी पूर्व स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं है। एक मृत संस्था की अनुमति का कोई अर्थ ही नहीं होता। इसलिए अनुच्छेद ३६८ के तहत संसद् जिसमें राज्य के भी प्रतिनिधि होते हैं संविधान में संशोधन कर राज्य की संविधान सभा की पूर्व अनुमति का प्रावधान समाप्त कर सकती है। इस प्रक्रिया के पूर्ण होने के बाद ही राष्ट्रपति धारा ३७० को रद्द करने की अधिघोषणा कर सकते हैं।

एक अन्य विधि से भी अनुच्छेद ३७० में परिवर्तन के बिना इसके विभेदकारी प्रावधानों को रोका जा सकता है। यदि संविधान के अनुच्छेद ३५ ए में संशोधन कर दें तो धारा १९ (१) (ई) और (जी) पूरी तरह प्रभावी हो जायेगी। जिनके अनुसार सभी भारतीय नागरिकों का हक है कि (ए) वे भारत के किसी भी भू–भाग में रहें या बसें, (बी) कोई भी पेशा या नौकरी करें।

पंजाब–हरियाणा उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रणजीत सिंह नरूला ने लिखा है कि "मेरी राय है कि राज्यपाल शासन के दौरान भी धारा समाप्त कर सकते हैं, क्योंकि उस समय राज्यपाल में विधान सभा के सभी विधिक अधिकार समाहित होते हैं। उन्होंने कहा कि मैं अगर भारत का प्रधानमन्त्री होता तो निश्चित ही धारा ३७० खत्म करने का कदम उठाता।" प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ० बाबूराम चौहान ने अपने लेख "कश्मीर प्राब्लम इन

कन्स्टीट्यूशनल लॉ" में इस घातक अनुच्छेद को संवैधानिक ढंग से हटाने की व्यवस्था बतायी है।

उल्लेखनीय है कि १९६४ में लोकसभा में निर्दलीय सदस्य प्रकाशवीर शास्त्री ने धारा की समाप्ति से सम्बन्धित एक निजी विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया था। यह अनुच्छेद स्थायी है ऐसा न मानकर ही उस पर संसद् में बहस हुई थी। मतदान के समय इस अनुच्छेद को समाप्त करने की माँग के समर्थन में **एस०एम० बनर्जी और सरयू पाण्डे जैसे साम्यवादी, डॉ० राममनोहर लोहिया और मधु लिमये जैसे** समाजवादियों ने मत दिया था।

३० अगस्त १९६८ को भी वर्तमान प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी ने धारा ३७० समाप्त करने सम्बन्धी संकल्प संसद् में प्रस्तुत किया था, जिस पर दो दिन बहस चली थी।

पूर्व विदेश मन्त्री मुहम्मद करीम छागला और जी०एम० सादिक भी इस अनुच्छेद को अस्थाई मान कर समाप्त करने का समर्थन कर चुके हैं। प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने तो संसद् के माध्यम से देश को आश्वस्त किया था कि अनुच्छेद ३७० को शीघ्र समाप्त किया जायेगा। अब इसको अमर बताकर लेखक क्या अपनी अनभिज्ञता नही प्रकट कर रहे हैं?

अनुच्छेद ३७० के समर्थकों का कथन है कि यदि धारा ३७० समाप्त हो गई तो कश्मीर के भारत से सम्बन्ध समाप्त हो जायेंगे। यह तो ठीक वैसा ही कुतर्क है कि आज आजादी के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में कोई कहे कि इंग्लैण्ड की संसद् अपने उस कानून **"इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स ऐक्ट"** जिसके तहत भारत को आजादी मिली थी, उसमें कोई संशोधन कर दे (जिसके लिए इंग्लैण्ड की संसद् कानूनी रूप से सक्षम है) तो भारत फिर से अंग्रेजों का गुलाम हो जायेगा। (मी०फो०)

(पृष्ठ ३८ का शेष)

स्वदेश वृक्ष

रंजकेन पश्चमाना– किसी रंग देने वाली प्रक्रिया से यह पचता है– यानी फोटोसिन्थेसिस। यह बड़ा सिग्निफिकेन्ट है। इसके पश्चात् वह कहता है कि **उत्पादम् विसर्जयन्ति**। हम सब आज जानते हैं कि पत्तियाँ फोटोसिन्थेसिस ऑक्सीजन निकालती हैं दिन में और रात में कार्बन डाइऑक्साइड। दिन में कार्बन डाइआक्साइड लेकर भोजन बनाती हैं, अतिरिक्त वाष्प का विसर्जन करती हैं जिसे ट्रान्सपिरेशन कहते हैं– इन सबका वर्णन है इसमें।

पुस्तक में आगे कहा है जब उसमें से वात का विसर्जन होता है तब उसमें ऊर्जा उत्पन्न होती है– यानी श्वसन की क्रिया का वर्णन है। संक्षेप में किस प्रकार रस का ऊपर चढ़ना पत्तियों में जाना, भोजन बनाना, फिर श्वसन द्वारा ऊर्जा उत्पन्न करना। इस सारी क्रमिक क्रिया के अतिरिक्त आज भी, कोई दूसरी प्रक्रिया वृक्षों के बढ़ने की ज्ञात नहीं है। यह सारा वर्णन वृक्ष आयुर्वेद में है।

आगे वर्णन है– **"रसस्याश्च अधानाश्च वेष्टितम् अणुकारश्च"** का अर्थ है कोशिका रचना का वर्णन कि यह अणु के समान माइक्रोस्कोपिक है, इसमें रस प्रोटोप्लाज्म है और यह कला से आवेष्टित सेल मेम्बरेन है। **"यः कलायाः उपजायते भूताष्म उपजायते"** यानी प्रारम्भिक बीज की कला और टेरेस्ट्रियल भूमि रस तथा टेरेस्ट्रियल एनर्जी से इस सेल का निर्माण होता है।

अब इस सेल का वर्णन तो बिना माइक्रोस्कोप के सम्भव नहीं है, यानी वृक्ष आयुर्वेद के लेखक को हजारों साल पहले माइक्रोस्कोप का ज्ञान रहा होगा। तब पश्चिम में इसे कोई नहीं जानता था। यह वृक्ष आयुर्वेद की वैज्ञानिक दृष्टि थी। अब इसे ईसा से दो सौ साल बाद भी मान लिया जाय, तो वनस्पति शास्त्र और माइक्रोस्कोप का ज्ञान पश्चिमी देशों को कब आया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वह तो अभी दो तीन सौ साल के अन्दर ही आया है और वे बड़े-बड़े वैज्ञानिक मान लिये गये तथा हमें, हमारे देश को साँपों सपेरों का देश कह दिया गया। यह तो स्पष्ट है कि वनस्पति शास्त्र का गहन ज्ञान इस देश में कम से कम आठ हजार वर्ष पूर्व तो था। कोई बताए कि किस और देश में वनस्पति शास्त्र का इतना प्राचीन और गहन अध्ययन हुआ है? यही भारत मे हुआ है। परन्तु हमारे वनस्पति शास्त्र के विद्वान् इस सन्दर्भ को पाठ्यपुस्तकों में नहीं रखते क्योंकि वे संस्कृत नहीं जानते। इस देश के वैज्ञानिक क्षमा करें यह कहने के लिए कि वे संस्कृत पढ़ें या न पढ़ें, परन्तु यदि आगे विज्ञान के विद्यार्थी के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य कर दें, तो आगे इस देश के ज्ञान-विज्ञान का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। जिसे संस्कृत का पता नहीं है, उसे वृक्ष आयुर्वेद का ज्ञान कहाँ से होगा? ☆

राजनीतिज्ञों, लेखकों की दृष्टि में

— महेश चन्द्र सरल

सन् १८५७ के प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध से दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा मध्य भारत का कुछ भाग ही प्रभावित हुआ था, जबकि सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई के बाद से ही बंगाल में अंग्रेजों की संस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने व्यापार करने के स्थान पर भारत पर शासन करने की कूटनीति अपनाते हुए, यहाँ के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। कम्पनी के हौसले बुलंदी पर पहुँचने लगे थे, इसलिए कि उसकी 'फूट डालो-राज करो' और 'काले-गोरो' की दुर्नीति भी उसी समय से कार्य रूप में परिणत होने लगी थी।

आगे-चलकर अंग्रेजों ने धीरे-धीरे देश भर में फैले छोटे देशी राज्यों को सन् १८५७ तक 'हुक्म हमारा-राज तुम्हारा' के तहत अपने विरुद्ध चलाए गए विद्रोह में, अपने साथ बनाए रखकर, क्रान्तिकारियों के दमन के लिए उपयोग किया और उन्हें जीभर कर खुले आम बख्शीशें देने के साथ ही रियासतें दीं और खिताब बाँटे। देशी नरेशों में से बहुतों ने अंग्रेजों के प्रति वफादारी दिखाते हुए गुलामी के तौक पहन लिए और उधर जो विद्रोही बने रहे, उनके विरुद्ध घोर अमानुषिक--दमनात्मक कार्यवाही कर लोगों को फाँसियाँ दीं, तोप से उड़वाया और उनकी जागीरें जब्त कर वफादार नरेशों में बाँट दीं।

इस स्वातंत्र्य युद्ध की स्मृति में बाद में अर्ध और फिर शताब्दी मनाई गई। इस ऐतिहासिक स्मरणीय काल पर देश के नेताओं, विचारकों, बुद्धिजीवियों तथा लेखकों ने अपने अपने ढंग से समीक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कितनी सटीक विवेचना 'हमारी राष्ट्रीय दुर्बलताएँ' शीर्षक से सन् १९०७ में अर्ध-शताब्दी के अवसर पर अपने एक भाषण में की थी, जिसे 'मराठा' समाचार पत्र में प्रकाशित किया गया था।

'१८५७ ने भारत के इतिहास पर अपनी स्थायी छाप डाली है। यह हमारी राष्ट्रीय एकता की आवेशमय अभिव्यक्ति थी। इस अवसर पर जन साधारण ने आत्म-त्याग की अपूर्व क्षमता दिखाई और अपनी संगठन-शक्ति का आश्चर्यजनक परिचय दिया परन्तु इसी के साथ इसने हमारे राष्ट्रीय चरित्र की कुछ निर्णयात्मक दुर्बलताएँ भी दिखलाईं। पूर्व के अन्यान्य देशों की तरह भारत ने भी नील-रक्त की श्रेष्ठता की भ्रान्ति का परिचय दिया। पर हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि मनुष्य-मात्र की नसों में बहने वाला सामान्य लाल रक्त ही राष्ट्र के प्रति गद्दारी करने से नील-वर्ण हो जाता है।'

'१८५७ के तीन उल्लेखनीय सेनानायक थे- लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे और बख्त खाँ। यदि क्रान्तिकारियों के सैन्य संचालन का मुख्य दायित्व इन तीनों में से किसी भी एक पर होता, तो १८५७ का इतिहास ही आज कुछ और होता। यह दायित्व लक्ष्मी बाई को इसलिए नहीं सौंपा गया कि वे महज एक 'अबला' थीं। तात्या टोपे को इसलिए नहीं सौंपा गया कि वह 'एक साधारण आदमी' और बख्त खाँ को इसलिए नहीं सौंपा गया कि वह 'महज एक सिपाही' था। अतएव अयोग्यता का ही बोलबाला रहा, जिसके फलस्वरूप सर्वत्र गड़बड़ी फैली, जिनसे आगे चलकर पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और अनुशासन-हीनता ने सिर उठाया और अंत में राष्ट्र को गौरवहीन पराजय स्वीकार करने पर मजबूर होना पड़ा। यदि हम अपनी इन दुर्बलताओं को जरा यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखें तो अवश्य ही हम १८५७ की शताब्दी स्वतंत्र भारत में मना सकेंगे।'

पं. जवाहर लाल नेहरू ने १८५७ के स्वाधीनता युद्ध के विषय में 'वह आन्दोलन' शीर्षक से अपने विचार प्रकट करते हुए इसे साम्प्रदायिक सौहार्द कर एक अनूठा उदाहरण माना है। उनके अनुसार-

'इसमें कोई संदेह नहीं कर सकता कि सन् १८५७ की घटनाओं ने भारतीयों के मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव डाला- हमारा मतलब खास करके देश के उन क्षेत्रों से है, जहाँ इस आन्दोलन का सबसे अधिक जोर रहा। अवश्य ही स्वतंत्रता का यह संग्राम पूरे देश में नहीं फैला था। सन् १८५७ का आन्दोलन स्पष्टतः ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जनता के रोष का प्रदर्शन था। केवल इतना ही नहीं, वह इस बात का भी प्रदर्शन था कि जनता अंग्रेजों

को भारत में नहीं देखना चाहती है और वह उन्हें निकाल देने के लिए आतुर है। इस आम भावना ने लोगों को बड़ा प्रभावित किया। उस काल में घटी एक मामूली घटना ने चिनगारी का रूप धारण कर लिया और देखते ही देखते वह जनता में फैल गई। चपातियों के बाँटे जाने की घटना के बारे में सभी लोग जानते हैं। असलियत यह है कि अंगरेजी हुकूमत के खिलाफ छेड़ा गया आन्दोलन अथवा संघर्ष सुनियोजित नहीं था। यद्यपि अंगरेजों के विरुद्ध ज्यादातर उस जमाने के बड़े लोग, जमीदार और ताल्लुकेदार ही थे, तथापि सामान्य जनता भी उसका अपवाद नहीं थी और वह भी उससे प्रभावित हुई।'

"इस आन्दोलन की एक विशेषता यह भी थी कि सभी धार्मिक सम्प्रदायों के लोगों ने बिना किसी धार्मिक भेदभाव के बाहरी शत्रुओं से जम कर लोहा लिया। स्पष्टतः उन लोगों में किसी तरह की फूट अथवा अनेकता नहीं थी, हालाँकि सन् १८५७ के संघर्ष के समय कोई अखिल भारतीय मान्यता का नेता नहीं था।'

गुजराती साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान्, लेखक, राजनेता और उच्चकोटि के साहित्यकार तथा उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद को सुशोभित करने वाले श्री कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी ने अपने लेख 'सन् १८५७ के विद्रोह की आधारशिला' में लिखा था–

'राष्ट्रों का इतिहास मानव समूहों के संघटन और विघटन की कहानी मात्र है। इस कहानी में विदेशी शासन की स्थापना बड़ी घटना होती है। ऐसी ही घटना स्वतंत्रता की लड़ाई होती है। कभी मानव समूहों का विघटन हो जाता है, तो उनके ऊपर विदेशी शासन स्थापित होता है। कभी विदेशी मानव समूह के ऊपर विजय प्राप्त करते हैं, तो वह विचलित हो जाता है। कभी विघटन होने से विदेशियों की विजय होती है। इसी तरह स्वतंत्रता की लड़ाई लोगों के संगठन के कारण बन जाती है। स्वतंत्रता की प्राप्ति भी संगठन का प्रथम कदम हो जाती है।'

'सन १८५७ की घटनाओं को एक 'सिपाही विद्रोह' नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई की पहली मंजिल थी। वह अपने आप पैदा हुई, जो विभिन्न कारणों से प्रेरित थी। किन्हीं–किन्हीं स्थानों में अनपेक्षित थी, किन्तु वास्तव में राष्ट्रीय थी, क्योंकि यह प्रेरणा भारत को मुक्त करने की भावना से उठी थी।'

क्रान्तिकारी विचारधारा के पोषक ही नहीं, उससे सक्रिय रूप से जुड़े तथा अनेक क्रान्ति–साहित्य संबंधी पुस्तकों के प्रणेता श्री मन्मथनाथ गुप्त ने 'सन् १८५७ पर नई रोशनी' शीर्षक अपने लंबे लेख में अनेक अंतरंग कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर डा. सुरेन्द्र नाथ सेन के हवाले से लिखा था–

'यह विद्रोह काफी बड़े पैमाने पर था। इसमें जनता के हर वर्ग के लोग शामिल थे। इनमें कुछ सिख भी थे। धार और मंदसौर के लोग तथा विलायती और अफगान शामिल थे। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से भाग ले रहे थे। नाना साहब के साथ अजीमुल्ला, बहादुर खाँ के साथ शोभराम, लक्ष्मीबाई के साथ अफगान सैनिक थे। अवध में पासी इस विद्रोह में शामिल थे। राजपूताना और मध्य भारत में भील इसके साथ थे। इसी प्रकार संथाल भी इसके साथ हो गए थे क्योंकि सरकार महाजनों की रक्षा करती थी। यहाँ तक कि कुछ अंगरेज भी विद्रोहियों के साथ थे। सम्राट् से लेकर सिपाही तक सभी इस विद्रोह में भाग ले रहे थे।'

सुप्रसिद्ध लेखक और यायावर श्री देवेन्द्र सत्यार्थी वे 'वीर सावरकर की देन' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित कराया, जिसे देश तथा विदेश सभी जगह महत्ता प्रदान की गई। स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की जीवनी जिन्होंने पढ़ी है, वे भली–भाँति जानते हैं कि भारत से अधिक विदेशों में भारतीय स्वतंत्रता के लिए वह जूझते रहे। उनकी देश सेवा अमूल्य रही। सत्यार्थी जी ने लिखा था–

'सन् १९०६ तक यह एकदम असंभव था कि हिन्दुस्तान के लोग देश में सन् १८५७ की स्वाधीनता–संग्राम का स्मृति–दिवस मना सकें। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि अंगरेजों द्वारा चलाए गए स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में इस सशस्त्र–क्रान्ति अथवा स्वाधीनता–संग्राम को 'गदर' अथवा 'सिपाही–विद्रोह' घोषित किया गया था। दूसरे अंगरेजों द्वारा किए गए प्रचार से प्रभावित होकर अनेक प्रबुद्ध और जाग्रत् हिन्दुस्तानी नेता और विचारक भी यह मानने लगे थे कि विद्रोही सिपाहियों ने अंगरेज स्त्रियों तथा बच्चों को बड़ी निर्दयता से मार डाला था। इसका यह परिणाम हुआ कि वे इस संग्राम को अपने इतिहास के माथे पर कलंक का टीका समझने लगे।'

देशप्रेम के स्वाभिमानी युवक विनायक दामोदर सावरकर के मन में यह विचार आया कि भारत के उक्त स्वाधीनता संग्राम पर खोज की जाए और उसका स्मृति–

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

विश्व पर्यावरण दिवस (५ जून) पर विशेष

क्या पृथ्वी खत्म होती जा रही है ?

– राजशेखर व्यास

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह पृथ्वी दो अरब वर्ष पूर्व प्रज्वलित पिण्ड के रूप में थी और सौर–मण्डल से विलग होकर भी अपनी तीव्र गति में परिभ्रमण करती हुई गोलाकृति बनी हुई थी। ऐसी ही अवस्था में कई करोड़ वर्षों तक बनी रही और धीरे–धीरे वह ठंडी पड़ती गयी। फलतः उसके ऊपर के स्तरों पर कड़ापन आता गया। यह ऊपरी स्तर इस तरह सघन होता गया कि पृथ्वी का अन्तराल यथाक्रम ठंडा ही पड़ता चला गया और अनेक स्थल संकुचित होते गये। संकोचन–क्रिया के निरन्तर चालू रहने के कारण ही ऊपर के अनेक स्तरों पर खाई–खन्दकें–टेकरियाँ और पहाड़ों ने जन्म ले लिया तथा दीर्घकाल के पश्चात् इन खाई–खन्दकों ने सागर और सरिता का स्वरूप प्राप्त कर लिया।

पृथ्वी के ठंडे पड़ जाने के कारण कई "गैसों" ने जन्म लिया और उन्होंने वातावरण का सृजन किया। वातावरणों का आरम्भ में ऐसा प्रभाव पड़ा कि हिममयता के कारण इन वातावरणों को भेद कर सूर्य की किरणें भी पृथ्वी तक पहुँचने का सामर्थ्य न प्राप्त कर सकीं। कालान्तर के बाद वे भी पृथ्वी के अंचल को छूने का साहस कर सकीं। अब बादलों की उत्पत्ति होना स्वाभाविक था और बादलों ने वर्षा को आमंत्रित किया, परन्तु यह आरंभिक वर्षा अविरल–जलधारा से सारी धरणी को परिपूर्ण बनाती रही। पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग जलमग्न हो गया, किन्तु, एक अवधि के बाद वर्षा में कमी आयी, बादलों की चादर को चीरकर सूर्य की सुनहरी किरणों ने फिर प्रथम प्रकाश देना आरम्भ किया। जड़ जमीन में भी पुनः चेतना का संचार हुआ। वृक्ष–वनस्पतियों ने भूगर्भ से सिर उठाकर बाहर झाँकना शुरू किया; पर अभी पृथ्वी का अन्तराल तो केवल ऊपर संपुटों से दबा ही था, अन्दर धधक ही रहा था, वह इधर–उधर से अवसर पाकर फूटने लगा। जिस स्तर की निर्बलता अनुभव की, उसी ओर से वह अपना मुँह निकाल लेता था, लावा ऊपर उगल देता था। इनके ऊपर आ जाने से कई "गैसें" ऊपर आयीं। भू–वेत्ताओं में से कुछ लोगों ने माना है कि यह पृथ्वी के ऊपर के स्तर पर रहने वाला पानी किस प्रकार भूगर्भ में पहुँचकर अन्तराल की प्रसुप्त अग्नि को भड़का देता है और वह मार्ग खोजकर कहीं से फूट पड़ती है। पर हमारे देश के पंडितों की मान्यता है कि जल–गर्भ और भूगर्भ दोनों ही में आग तो रहती ही है। पृथ्वी की एक स्वतन्त्र दैनिक गति है। उस पर अन्य तत्त्वों के विषम–प्रभाववश जो बाधा पहुँच जाती है, उससे जलीय या स्थलीय प्रकंपन हो जाता है (जिसे भूकम्प कहा जाता है) और उस कम्पन में अंदर के ज्वालामुखी का विस्फोट भी कारण बन जाता है। यही नहीं, वह ज्वालामुखी भी कंपन और भू–गति का लाभ लेकर स्तर के अंचल को चीरकर बाहर की झाँकी करने को कभी मचल उठता है। साधारण अवस्था में तो उसका कुतूहल ही शांत होता है, किन्तु यदि उसने रोष के साथ सिर बाहर निकालने का साहस कर डाला, तो परिणाम बड़ा भयानक बन सकता है। वह अपने 'तृतीय नेत्र' के खोलते ही संहार–चक्र चला देता है। कई स्थल जलमय बन जाते हैं और जलाशय स्थल में परिणत हो जाते हैं। अनेक उर्वर प्रदेश बालुकामय निर्जल बन जाते हैं। इस तरह उस प्रदेश (खण्ड) का वातावरण ही बदल जाता है, सृष्टि–संहार के कारणों में इस स्थिति का बड़ा हाथ रहता है।

आरम्भिक सृष्टि जब इस पृथ्वी की गोद में आयी, उसका विकास–क्रम बड़ा सुन्दर और रहस्यमय है। पश्चिम के डार्विनों ने अपने पूर्वजों को बन्दरों की औलाद माना है, तो पूर्व के पूर्वजों ने अपनी प्राथमिक प्रजा को कच्छप, मंत्स्य, वराह आदि से आज की स्थिति के मानव तक पहुँचाया है। विभिन्न पुराणों की सृष्टि की उत्पत्ति और अवतारवाद आदिकाल के "जीव" के क्रम विकास का ही तो अपनी शैली में रहस्यमय रोचक वर्णन है।

"पृथ्वी मण्डल" सूर्य–मण्डल का ही एक सदस्य है, इसलिये, और किरणों के प्रभाव से उसके स्वास्थ्य सन्तुलन और प्राण–पोषण का चिर–संबंध है। यही क्यों पृथ्वी में

आकर्षण शक्ति बनाये रखने और उसके अस्तित्व का कारण भी सूर्य ही है। गणना विचक्षणों का अभिमत है कि आज से कई हजार साल पहले सौर जगत् में क्रान्ति हुई थी और यह हमारी आधार और उत्पत्ति भूमि अपने "केन्द्र" से एक बार विचलित हो गयी थी। हिम–वर्षण से प्रलय उपस्थित हो गया था। परन्तु दीर्घकाल के बाद अन्तर की उष्णता ने हिमाच्छादित अंचल से बाहर मुँह खोला और जल के रूप में "हिम" ने पिघलकर इधर–उधर राह पकड़ी। आज भी सिन्धु तट की बालुकामय धरती इसका प्रमाण है। इसी तरह आज से न्यूनतम २० हजार साल पहले भी सूर्यातप ह्रास से प्रलय सर्जित हुआ था, पृथ्वी ने दूसरी बार अपनी धुरी से धक्का खाया और अन्दर की आग उगल कर कई विस्फोट किये। मारवाड़ की रजकण–निधि, कश्मीर की धरणी और हिमाचल की पर्वत मालिकाओं ने दर्शन दिये, रामायण राजतरंगिणी के प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत हैं। इस समय कई प्रदेश प्रकृति के प्रलय–सर्जन में अदृश्य बने और कई नवीन उद्भूत हुए। आज की पृथ्वी का स्वरूप इसी सृजन की देन है।

आज फिर खगोल के गणना–विशारद इस "भूगोल" के विषय में ऐसी ही बात बतलाने लगे हैं कि शायद इस सूर्य के फट पड़ने की आशंका ही होने लगी है। केवल सूर्य के तेजोह्रास मात्र से ही जब प्रकृति अपना सन्तुलन खोजने लग जाती है, सन्तुलन बिगड़ जाता है, जीवन–तत्त्वों का विलय होने लग जाता है, तो "सूर्य" के फट पड़ने पर इस विशाल धरित्री का कौन ठिकाना होगा। उस समय तो सागर अपनी प्रलयंकर तरंगों में न जाने कितने प्रदेशों को प्रविष्ट कर लेगा। भूगर्भ के ज्वालामुखियों के अग्नि–रस (लावा) अनेक भूस्तरों को चीरकर प्रवाहित होने लगेंगे। सृष्टि के संहार की नाट्यलीला होने लग जायेगी और इसी तरह कभी भी अदृश्य प्रलय के फलस्वरूप सहज इस "जग" का करुण अन्त आ सकेगा। निस्संदेह इधर पृथ्वी का वातावरण अवश्य ही विकृत हो रहा है। बिहार, टर्की, जापान के प्रलयंकर भूकम्प, महानाशकारी युद्ध करने के लिए मानव की प्रेरणा, आतुरता, जागतिक अशांति तथा पृथ्वी से ही पृथ्वी–पुत्रों द्वारा महानाशकारी तत्त्वों का अनुसंधान, यह प्रकृति–सन्तुलन में विकार का ही तो सूचक है।

हमारी यह भूमि अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त शीत, अत्यन्त शुष्क और अत्यन्त आर्द्र ऐसे विरोधी तत्त्वों से यत्र–तत्र भरी हुई हैं, किसी तत्त्व विशेष पर किसी भी विषम–तत्त्व का तीव्र प्रभाव पड़ जाने पर उसके अस्तित्व में अनायास आशंका उत्पन्न हो सकती है। हम अपने सहज नेत्रों से एक ही सूर्य देख पाते हैं, पाश्चात्यों ने अब यह मत प्रतिपादित किया है कि एक नहीं, सूर्य भी अनेक हैं। शास्त्रकार तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्यों का अस्तित्व पहले से ही मानते आ रहे है और उनकी यह मान्यता सभी जानते हैं कि द्वादशादित्य (१२ सूर्य) हैं। कौन जान सकता है कि इन "सूर्यों" में से कौन–सा विकृत हो फट पड़े और जग का "अन्त" ला दे। जगत् का इतिहास भी अनोखा ही है। अब तक पाँच प्रलय पड़ चुके हैं। वैज्ञानिकों के शब्दों मे पाँच–पाँच हिमयुग आ चुके हैं। इस पिछले हिम–युग या प्रलय को न्यूनतम २० हजार वर्ष बीत गये हैं। न जाने कब पृथ्वी की छाती फट जाय और "सीता" की सृष्टि उसमें सहज समाविष्ट हो जाय। "आरम्भ और अंत" की अवस्था एक ही–सी हो जाती है, बूढ़े और बालक की स्थिति समान कही जाती है। जब प्राणी की सृष्टि हुई थी, अन्न, वस्त्र पोषण की समस्या खड़ी थी। धीरे–धीरे वह पोषण–आच्छादन के क्रम में विकास करता गया और आज विकास के लगभग "चरम" को जब वह छू गया है, तब फिर उसके सामने वही समस्या मुँह बाये खड़ी है। सारी पृथ्वी इस चिन्ता में उलझ रही है। जीव के आरम्भ काल की यह "दशा" जीव के अन्त की सूचक नहीं है?

यह सत्य है कि पृथ्वी का प्रलय इतना निकट नहीं हैं; पर कौन कह सकता है कि यह विशाल भू–मण्डल न जाने कब किसी से संघर्ष कर ले और प्रलय कर ले।

वास्तव में यह "प्रलय–युग" है। अभी दूसरे महायुद्ध के घाव भी नहीं भरे हैं कि तीसरे समर की प्रसूति पीड़ा होने लग गयी है। अपनी ही जाति के मानवों के नाश के लिए मानव द्वारा कैसे–कैसे विनाशक शस्त्र निर्मित किये जा रहे हैं। अणुबम और उससे होड़ लगने वाली विनाश की सामग्री यही मानव, इसी धरणी पर बनाता जा रहा है। इस षड्यन्त्र में पृथ्वी भी सम्मिलित है। मानवों के नाश के साथ उसे भी पीड़ा भोगनी है। द्रोपदी की तरह आज यह उसको अपने अधिकार में रखना चाहता है, तो कल वह। एक का मानचित्र बनता है, दूसरे का बिगड़ता है। इस तरह उसके रूप–रंग, अधिकारों में सतत परिवर्तन–क्रम चल रहा है कि वह "अचला" भी विचलित हो रही है। "सर्वहारा" की स्थिति भी असह्य हो गयी है। इधन वैज्ञानिकों का कहना है कि पृथ्वी की सामर्थ्य कम पड़ रही है। सूर्य–तेज में ह्रास हो रहा है। पृथ्वी की सहन–शक्ति की कमी होने का प्रमाण यही है कि उसके तत्त्वों से

पोषित मानव की सहिष्णु भावना निस्संदेह कम हो गयी है। उधर अणुबम के प्रयोगों से भी प्रकृति के साथ "खिलवाड़" किया जा रहा है। वर्षों पूर्व जब जापान के हिरोशिमा, नागासाकी पर अणुबम का प्रयोग किया गया था, वह प्रकृति के साथ क्रूर–खिलवाड़ था। एटम का राजनीतिक प्रभाव या आतंक उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना यह प्राकृतिक परिवर्तनों के लिए चिन्तनीय बन सकता है।

लगभग आठ सौ वर्षों से खगोल के अभ्यासियों ने बहुत चिन्ता के साथ अनुभव किया है कि सौर मण्डलीय तेज–शक्ति का यथाक्रम ह्रास हो रहा है। इसी कारण ३७ साल से इधर दो वक्त सूर्य मण्डल पर रजोवलय (अरोरा वेरे–लिस) व्याप्त हो गया था, वायविक समस्त व्यवहार रुक गये थे। स्पष्ट है कि सूर्य मण्डल का सन्तुलन बिगड़ गया है।

यह जान लेना आवश्यक है कि सौरमण्डलीय गुरुत्वाकर्षण के वशीभूत होकर ही यह पृथ्वी अपने स्थान पर स्थिर है। उसकी गतिविधि में सौर–विकार सहज बाधक बन सकता है। फिर एटामिक शक्ति का सागर तक तथा भूस्तर पर प्रयुक्त प्रभाव चिन्ताजनक बन सकता है। आशंका यही होती है कि पृथ्वी कहीं अपने केन्द्र से विचलित न हो जाये। बार–बार के भूकंपन, वायविक विकार इस बात के प्रमाण हैं कि भौमिक आकर्षण शक्ति की कमी हो रही है। सूर्य का तेजोह्रास हो रहा है। इस कारण भी उस पर किये जाने वाले ऐसे प्रयोग चिन्तारहित नहीं हैं। स्वीडेन के एक वैज्ञानिक ने बतलाया है कि धरती, तट या सागर जल में ऐसे भीषण प्रयोग किये जायेंगे, तो सागर–तल का "हाईड्रोजनवायु" "हेलियम्" में परिणत होकर हमारी इस धरती–रूपी ग्रह को सौर मण्डल में रूपान्तरित न कर दे, यह आशंका निर्मूल नहीं कही जा सकती। जब साधारण अणु–शक्ति ही सागर लहरी को अनेक हजार फुट ऊँची उठाकर एक दीवार बना सकती है और उसमें से गगनस्पर्शी उत्तप्त ज्वाला तरंग फैला कर सकती है, तब सागरतलीय "हाइड्रोजन" "हेलियम" में परिवर्तित हो जाने पर कितनी उष्णता उत्पन्न हो सकेगी, यह कल्पना ही भयोत्पादक है। सारे विश्व को यह उष्णता टकरा न दे, असम्भव तो नहीं। परन्तु उससे भी अधिक तो भूस्तर में प्रचण्ड कंपन कर पृथ्वी को केन्द्र से विलग कर दे, तब प्रलय ही है।

नक्षत्रों की साधारण ताप–वृद्धि उनके गिरा देने (क्षेत्र–च्युति) का कारण होती है। लेकिन वह ऊष्मा मानव जग से अति दूरी पर होने के कारण भयजनक नहीं बन पाती। परन्तु पृथ्वी में अन्तर की ऊष्मा यदि सजग हो जाये और अपने ऊपर की सजातीय ऊष्मा से मिलने को आतुर हो जाये तो...., तारों के इलेक्ट्रान और वजनी न्यूट्रोन के साथ प्रोटोन मिल जाय, तो एक ऐसा वातावरण बन सकता है कि तारा खण्ड–खण्ड होकर नष्ट हो जाता है। कहीं पृथ्वी ग्रह की भी यही स्थिति हो जाय, तो वह भस्मात् होकर नष्ट हो जायेगी।

यह तो स्पष्ट है कि सूर्य की जगती में बगावत (विद्रोह) होने लग गये हैं कई बार उसके प्रमाण प्रकट हो गये हैं, प्रकृति अपना तौल खो रही है। कौन जाने कब पृथ्वी के ३०० फीट नीचे रहने वाला लौह–जिसकी आकर्षण–शक्ति पर वह अभी टिकी हुई है– एक रोज द्रवित होकर प्रवाही बन जाये और उसकी ऊष्मा सौर–मण्डल में मिलने को मचल उठे? सौर–जगत् का विद्रोह इस दुनियावी विद्रोह से अति भयंकर हो सकता है, जिसकी कल्पना भी प्रकंपित कर देने वाली हो सकती है। अनेक तारागण, अपनी सहज गति को छोड़कर विषम प्रयास करने लग गये हैं। इनका वक्र–मार्ग, तीव्र गति, सौर–मण्डल के लिए भयानक ही नहीं, अति भीषण है। कहीं ये यात्री सूर्य–मण्डल में ही प्रविष्ट होने लगे तो बस....। इन तारों में से कई का गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल है कि पृथ्वी के अनेक तत्त्वों को ये सहज अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। फिर हम जिस "धरती के गीत गाते हैं" वह कहाँ होगी और हम कहाँ होंगे, यह बतला देने वाला भी नहीं होगा। सौर–परिवार से बिछुड़ी हुई यह जमीन, जिसे मानव ने, प्रकृति ने, बड़े स्नेह से सजाया सँवारा है, न जाने किस एक तारे से टकराकर, आकर्षित होकर सहज पलक मारते ही गोता खा जायेगी।

"आकर्षण" के सिद्धान्त का उत्पादक माना जाने वाला बेचारा न्यूटन तो कल ही तारों के आकर्षण की कहानी सुनाने लगा था, पर ११वीं सदी का भास्कराचार्य, जिसने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का प्रथम बार पता प्रकट किया, उसने भी इस आन्दोलित पृथ्वी जैसे विशाल ग्रह को किसी भी तारे से टकरा जाने की चिन्ता व्यक्त की थी।

चन्द्रमा तो पृथ्वी की कोख में विद्यमान सागर के ही एक हिम–खण्ड का नाम है। और मंगल तो "भूमि–पुत्र" ही है। इनके संबंध ग्रहण और गणित से सदा ही निकट आ जाते हैं। रेडार द्वारा ग्रह–लोक की यात्रा करने का दुस्साहसी भी मंगल में चाय पीकर शुक्र लोक में विश्रान्ति करने के सपने सोचा करता है। यदि इन पड़ोसी ग्रहों ने

ही पैर फैलाये और पृथ्वी की मेहमानी का मन किया, तो आप "ऊबे ऊबे", (और ले डूबे) मेहमान वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी। ऐसे ही धूमकेतु (पुच्छल तारे) के विषय में भय व्यक्त किया जा रहा है कि यदि उसकी "पूँछ" लम्बायमान होकर एक छोर से दूसरे छोर को छू लेने का प्रयास करे, तो पृथ्वी की चुम्बक शक्ति समाप्त हो जायेगी और वह "दुम" के लगते ही "फुटबाल" की तरह अज्ञात लोक में जा गिरेगी। चन्द्र को ही लीजिये। पृथ्वी और चन्द्र को लेकर गणना की गयी है कि एक लाख वर्ष में पृथ्वी चन्द्र से एक सेकेंड पिछड़ जाती है। पृथ्वी और चन्द्र सामने आ जायेंगे और पृथ्वी की गति पलट जायेगी। वह केवल गोले चुम्बक की तरह बन जायेगी। चन्द्र खिंचता जायेगा, पृथ्वी का आकर्षण अतिशय बढ़ जायेगा। सम्भव है कि चन्द्र टकराकर खण्ड-खण्ड बन जाय और पृथ्वी के आसपास वह खण्ड चक्कर काटने लगेंगे। सारांश यह कि पृथ्वी जिस तरह अधर पर निरवलम्ब है,उससे कोई भी तारा टकरा सकता है, उसकी राह का रोड़ा बन सकता है। कहीं सूर्य के साथ ही उसे टकराने का प्रसंग पड़ा, तो क्या गति होगी। पृथ्वी पर ही नहीं, आकाश में भी प्रलय के "षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। ❐

–ई–६०७, कर्जन रोड अपार्टमेंट,
नई दिल्ली–११०००१

(पृष्ठ ४२ का शेष) **राजनीतिज्ञों, लेखकों ...**

दिवस भी अवश्य मानाया जाय। सन १६०६ में सावरकर इंग्लैण्ड पहुँचे। क्रान्तिकारी कार्यक्रम तो चलते ही थे। चौबीस वर्ष के युवक सावरकर ने बड़ी छानबीन करके इस ऐतिहासिक घटना से संबंधित सभी उपलब्ध छोटे से छोटे ग्रन्थ के अध्ययन के बाद मराठी में एक पुस्तक लिखी–'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम'। वह इस पुस्तक के कुछ अध्यायों का अंगरेजी अनुवाद लंदन की 'फ्री इण्डिया सोसायटी' की साप्ताहिक गोष्ठियों में पढ़कर सुनाया करते थे। वीर सावरकर के इन भाषणों को सुनने के लिए स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड, यहाँ तक कि पेरिस आदि दूर–दूर स्थानों में रहने वाले भारतीय आते थे। इस पर चर्चा होती। इसके फलस्वरूप तटस्थ भारतीय युवकों एवं प्रौढ़ों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ, जो सन् १८५७ के राष्ट्रीय युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाले शहीदों एवं मृतात्माओं को 'श्रद्धांजलि अर्पण' करने के लिए उतावला हो उठा।'

'१० मई १६०७ को पहली बार लंदन में इन्हीं वीर सावरकर की प्रेरणा से इस स्वाधीनता–संग्राम का 'स्मृति–दिवस' इण्डिया हाउस में, अनेक प्रशासनिक विरोधों के बावजूद मनाया गया और वंदेमातरम् के जयघोष के साथ क्रान्तिकारियों के चित्रों को माल्यार्पण कर उनकी 'जय' बोली गई। ❐

–महात्मा गांधी मार्ग, हरदोई।

न्याय नहीं दे सकते, तो हमें भारत भेज दें

पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ–साथ ईसाई एवं अहमदिया भी बहुसंख्यकों (अर्थात् मुसलमानों) के उत्पीड़न के शिकार हो रहे हैं। उनकी जान–माल एवं सम्मान सुरक्षित नहीं हैं। वहाँ सरकार, प्रशासन व न्यायपालिका भी उनको सुरक्षा दे पाने में असमर्थ है,यह जानकारी पिछले माह पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट में दी गई है।

एच०आर०सी०पी० की रिपोर्ट के हवाले से एक विशेष घटना का उल्लेख किया गया है। नवाज शरीफ के दरबार में एक भाई–बहन ने शिकायत की कि बहुसंख्यक समुदाय के कुछ लोगों ने अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया है। लेकिन प्रधानमंत्री भी उनके लिए इस मामले में कुछ न कर सके।

नेशनल एसेम्बली के सदस्य कृष्ण भील के हवाले से बताया गया कि अल्पसंख्यक समुदाय की लड़कियों को जबरन उठा लिया जाता है और बहुसंख्यक समुदाय के लोगों से विवाह के लिए उन्हें मजबूर किया जाता है।

एच०आर०सी०पी० ने अपनी रिपोर्ट में यह भी इंगित किया है कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोग पाकिस्तानी अधिकारियों से अब साफ–साफ कहने लगे हैं कि "हमें न्याय चाहिए। न्याय नहीं दे सकते, तो हमें भारत भेज दीजिए।" ज्ञात रहे पाकिस्तान में मानवाधिकार आयोग एक गैर सरकारी समिति है।

(वि.स.के., नई दिल्ली)

शस्त्र या शास्त्र, मृत्यु या जीवन, विष या अमृत, विनाश या कल्याण, अन्धकार या प्रकाश, हिंसा या अहिंसा, अधर्म या धर्म, आज क्या चाहिए विश्व को, किस पथ का अनुगामी बनना चाहता है संसार, विश्व-मानव-समुदाय के समक्ष यही सबसे बड़ी समस्या है। कुपथ और सुपथ के चुनाव में विवेकहीन बन गया है विश्व ! केवल शस्त्र-संग्रह, धन-संग्रह, शक्ति-संग्रह, स्वर्ण-संग्रह में ही अपने ज्ञान और बुद्धि, प्रज्ञा और पुरुषार्थ की उपयोगिता मानता है आज का मानव। समझ में नहीं आता कि आज का मानव क्या चाहता है ? अस्त्र-शस्त्रों के पीछे पागल हो गया है संसार। पशुता की दिशा में बर्बरता के मार्ग पर, दानवता के विनाशकारी पथ पर बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है मनुष्यता के प्रकाशमय पथ को छोड़कर पशुता की अंधकारमयी गलियों में भटक रहा है मानव। द्वापर की सर्वभक्षी नियति को भोगने को विवश होता जा रहा है धरती का मनुष्य !

आज संसार शस्त्र के पीछे पागल हो गया है। यह शस्त्र को ही अपनी शक्ति का, अपनी समृद्धि का प्रतीक मानता है। संसार में वही राष्ट्र श्रेष्ठ राष्ट्र कहलाता है, जिसके पास अकूत और असीम अस्त्र-शस्त्र और उनके भंडार हैं। अमेरिका, रूस, चीन, जापान, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि राष्ट्र आज इसलिए उन्नत तथा विशेष आदरणीय माने जाते हैं, क्योंकि इनके पास अरबों-खरबों डालर के अस्त्र-शस्त्र उनके भण्डारों में सुरक्षित हैं। इनमें से थोड़े ही अस्त्र-शस्त्रों से ये राष्ट्र विश्व को विनाश के गर्त्त में गिरा सकते हैं और धरती नामक इस ग्रह का अस्तित्व ही मिटा सकते हैं। इन राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र-जीवन पर अस्त्र-शस्त्रों का ही पहरा बैठा दिया है। इन राष्ट्रों के शासन-प्रशासन का एक मात्र उद्देश्य 'स्व' की रक्षा है, 'पर' की चिन्ता उन्हें थोड़ी भी नहीं है।

शस्त्र या शास्त्र
– प्रो. रामाश्रय प्रसाद सिंह

एक अन्धी संस्कृति की ओर की यात्रा शुरू हो गई है धरती के मानव-समुदाय की। नव मानवता की नई भूमि की ओर जीवन का जो सहज-स्वाभाविक प्रवाह होना चाहिए था, उसमें ठहराव आ गया है। उसकी दिशा अन्यत्र मुड़ गई है। स्वार्थशैल की शिलाओं ने मानवता की, दिव्यता की धर्म-धारा को अवरुद्ध कर दिया है। परिणामस्वरूप विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग मानव-विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में कर रहा है। मानव के मन में दुर्दान्त दानव प्रवेश कर गया है, हिंस्र पशु प्रवेश कर गया है। सत्य, सेवा, समता, न्याय, अहिंसा के स्थान पर असत्य, स्वार्थ, विषमता, अन्याय, हिंसा का तांडव नर्तन विश्व मानव का स्वभाव बन गया है। विवेक दब गया है, अन्धापन पसर गया है। मर्यादा मिट रही है और नंगापन खुलकर सामने आ गया है। एक कुत्सित एवं घिनौनी सभ्यता-संस्कृति की रक्षा में अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की होड़ लगी है। निरर्थक मूल्यों की रक्षा में अस्त्र-शस्त्रों का कमरतोड़ और जानलेवा बोझ ढो रहा है संसार !

एक कटु निराशा और उद्धत अनास्था का अन्धकारमय भविष्य धरती पर उगता-पनपता दिखलाई पड़ने लगा है। मानव की बुद्धि विवेक की राह छोड़कर अविवेक की अन्धी गलियों में भटक रही है। मानव की गरिमा स्नेह-शून्य दीपक की लौ की भाँति मलिन और मद्धिम हो रही है। क्रोध-ताड़का ने, लोभ-मंथरा ने, वासना-विष ने, भोग-शूर्पणखा ने सबको संज्ञाशून्य बना दिया है। लूट-मार, छीना-झपटी, शोषण-दोहन, आतंक-अलगाव, आक्रमण-प्रत्याक्रमण, घात-प्रतिघात की दानवी दावाग्नि की भयंकर लपटों के जाल में फँस गया है धरती का मानव। इन सबसे त्राण पाने के लिए वह एक ही मार्ग अपना रहा है और वह है हिंसा का मार्ग, अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण का भयावह मार्ग। पर वह इस शाश्वत-सनातन सत्य को भूल गया है कि वैर से वैर शान्त नहीं होता, हिंसा की आग हिंसा से नहीं बुझती। कटुता का बीज बोने से कटुता का विष नहीं उतरता। राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों का सिंहासन स्वामित्व का प्रतीक बन गया है, सेवा का आदर्श नीचे दब गया है। वह स्वर्ण-सिंहासन बन गया है और राष्ट्राध्यक्ष रावण बनकर उस पर बैठ गया है। कुकर्म-कैकेयी ने लोभ-मंथरा के संकेत और षड्यन्त्र द्वारा मानव-मंगल को, आत्माराम को देश-निकाला कर दिया है। राम वन-वन में भटकने को विवश हैं। आतंकवाद के आततायी रावण ने शांति-सीता को कैदखाने में डाल दिया है और दुर्वृत्तियों राक्षसिनियों का उस पर पहरा बैठा दिया है। समूची धरती लंका बन गई है, शांति अहं की कारा में कैद हो गई है। सारे संसार में अस्त्र-शस्त्रों का जखीरा स्थान-स्थान पर देश-देश में

विस्तार पा गया है। संसार दण्डकारण्य बनता जा रहा है, जहाँ वासना–शूर्पणखा भोग का माया–जाल फैलाकर अपनी नाक और कान कटवाने को विवश है।

हिंसा से मानव–मन को विरत करने के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए हैं। दिखावे के लिए कुछ शान्ति–समझौते अवश्य होते दिखलाई पड़ते हैं, पर वे 'ऊँट के मुँह में जीरा' की कहावत ही चरितार्थ करते हैं। दिखावे के दाँत अलग, खाने के दाँत अलग। हाथी की नियति भोग रहा है आज का तथाकथित सभ्य संसार। कथनी कुछ, करनी कुछ, आकाश–पाताल का अन्तर! आधुनिक सभ्य संसार के मनुष्यों का जीवन वंचनाओं और विडंबनाओं से भरा हुआ एक ऐसा विषाक्त सरोवर बन गया है, जो भीतर ही भीतर बजबजा रहा है– न स्वच्छ जल का कोई स्रोत बाहर से आ रहा है और न प्रदूषित जल बाहर ही निकल रहा है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा के त्रिक् में कोई तालमेल ही नहीं, कोई सामंजस्य ही नहीं। कामायनीकार श्री जयशंकर प्रसाद के शब्दों में–

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।"

झूठी मर्यादा और निरर्थक मूल्यों के बोझ से निरंतर दबता जा रहा है आधुनिक मानव। आधुनिक मानव के जीवनदीप में प्रज्ञा के तेल का अभाव हो गया है। उसका मन–मंदिर प्रज्ञा की पावनता, विवेक की विमलता और मेधा की महनीयता से रहित होकर कुकृत्यों के कूड़े–कचरों से भर गया है, जिससे एक ऐसी सड़ाँध और दुर्गन्ध निकल रही है, जो धरती के जनजीवन को प्रदूषित कर विषाक्त बना रही है। आज संसार कुरुक्षेत्र बन गया है, हमारा जीवन युद्ध बन गया है। धृतराष्ट्रों की संतानों की बेशुमार वृद्धि से धर्म–बन्धुओं को बनवास और अज्ञातवास का दुःसह दंश झेलने के पश्चात् भी अपना अपहृत राष्ट्र, अपना खोया राष्ट्र प्राप्त नहीं होता। अन्धी सभ्यता एवं सड़ाँध से युक्त संस्कृति की रक्षा में विज्ञान की सारी शक्ति लगा दी गई है। विकृत एवं विनाशकारी बुद्धि का शिकार बन गया है आज का विज्ञान। अतिशय बुद्धिवादिता ने विज्ञान की दिशा ही बदल दी है। बुद्धि में विकृति का अनुप्रवेश मानवता के लिए घातक होता है। विश्व–मानव बुद्धिजीवी बनने की दिशा में विकृति का शिकार हो रहा है। जहाँ बुद्धि योग होना चाहिए, वहाँ बुद्धिवाद की बहुलता हो रही है। ध्यान रहे, बुद्धिवाद और बुद्धियोग में बहुत अंतर है।

भारत बुद्धियोग का पक्षधर है। यूरोप और अमेरिका बुद्धिवाद के समर्थक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में बुद्धियोग का ही उपदेश दिया है। जब व्यक्ति की बुद्धि परमेश्वर के साथ, समष्टि के साथ, असीम सत्ता के साथ जुड़ती है, तब उसे हम बुद्धियोग कहते हैं। पर, जब बुद्धि स्वार्थ और संसार के साथ, विषय–वासना एवं भोग के साथ जुड़ती है, तब वह बुद्धिवाद की संज्ञा पाती है। बुद्धि का योग परमात्मा से होना चाहिए, धर्म से होना चाहिए, मानव–मंगल से होना चाहिए। वही बुद्धि कल्याणी है, जो धर्म, नैतिकता और मानवीय मूल्यों से जुड़ी रहती है। आज संसार के मनुष्यों की बुद्धि विषय–वासनाओं से जुड़ चुकी है। परिणाम सबके सामने है– सर्वत्र संघर्ष का अशान्त वातावरण है, सर्वत्र आक्रोश है, अधर्म का जाल फैला है, अशान्ति है, अवमूल्यन है, अवनति और अवसाद है। आज हम भौतिक पदार्थों के लिए, पद और प्रतिष्ठा के लिए पैसे और प्रशंसा के लिए, प्रलोभन, और प्रोन्नति के लिए अपनी बुद्धि को बेंच रहे हैं। हमारी बुद्धि बढ़ती जा रही है, विवेक घटता जा रहा है; मस्तिष्क विकसित हो

पूर्णता के लिए

– संजीव कुमार आलोक

पानी से भरे घड़े के ऊपर रखी छोटी–सी कटोरी ने घड़े से शिकायत की– "तुम प्रत्येक पात्र को, जो तुम्हारे पास आता है, अपने शीतल जल से भर देते हो। किसी को भी खाली नहीं लौटाते, परन्तु मुझे कभी नहीं भरते, जबकि मैं सदा तुम्हारे साथ रहती हूँ। इतना पक्षपात तो तुम्हें शोभा नहीं देता!"

घड़े ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "इसमें पक्षपात की कोई बात नहीं। अन्य सब पात्र मेरे पास आकर विनीत भाव से झुकते हैं, जिससे मैं उन्हें शीतल जल से भर देता हूँ, परन्तु तुम तो गर्व में चूर हमेशा मेरे सिर पर सवार रहती हो, इसीलिए मैं तुम्हें भर नहीं पाता। यदि तुम भी नम्रता से जरा झुकना सीख लो तो तुम भी खाली नहीं रहोगी।

– विनीता भवन, निकट– बेली स्कूल, सवेरा सिनेमा चौक, काजीचक, बाढ – ८०३२१३, पटना (बिहार)

रहा है, हृदय संकुचित होता जा रहा है। विज्ञान विकट बुद्धि की वायु का सहारा पाकर रावण बनता जा रहा है और विवेक-विभीषण पैरों से रौंदा जा रहा है, अपने स्थान से निष्कासित किया जा रहा है। महाकवि श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य में कितना सच कहा है-

"किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुःखी हो देवता चीत्कार।"

बुद्धि की विकरालता विज्ञान की विभीषिका बनकर विनाश और विध्वंस का विषाक्त वातावरण बना रही है। शस्त्र धरती के जीवन पर हावी हो गए हैं, शास्त्र पीछे पड़ गए हैं। शास्त्र से तात्पर्य संस्कार से है, मर्यादा से है, मानवीय मूल्यों से है, शिक्षा और संस्कृति से है। भारतीय राजनीति के उद्‌भट विद्वान आचार्य चाणक्य ने अपने एक सूत्र में कहा है- **'इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम्'**- इन्द्रियों को शान्त रखने वाली शक्ति ही शास्त्र है। शस्त्र-शक्ति के स्थान पर सनातन शास्त्र-शक्ति ही, शुचिता-सात्विकता की सनातन प्रवृत्ति ही मन-दानव की लम्पटता को, दशमुखी दानवी दुःप्रवृत्ति को रोक सकती है, धरती पर सत्कर्म की शुचिता बनाये रख सकती है। यह शास्त्र एक पावन अंकुश है, जो मन रूपी हाथी को उसकी कुचाल से विरत कर सकता है। अवैध और अशास्त्रीय कार्य करने की कुभावना जब मानव मन में पसरने लगती है, तब शास्त्र का अंकुश उसे नियंत्रित कर विवेक के मार्ग पर आरूढ़ कर देता है। शास्त्र मानव-मन में सुप्त शिव को प्रकट कर देता है, शिवत्व और शुभ्रत्व दिशा में संचारित कर देता है। हमारे 'मानुष भाव' को उद्दीप्त कर देता है।

आज नई वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी दुनियाँ के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है शस्त्र, आग्नेयास्त्र, ब्रह्मास्त्र ! इस शस्त्र-शक्ति का एक ही विकल्प है-शास्त्र-शक्ति, संत-शक्ति, शिक्षा-शक्ति, संस्कार-शक्ति। **हमें एक ऐसी सर्वमंगला शिक्षा-संस्कृति की अपेक्षा है, जो मानव-मन को सुसंस्कारों से भर दे; मानव-मन में घुस आई पशुता, पतितता और पाशविकता को मिटा सके। अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर शास्त्र की, शिक्षा और सर्वमंगला संस्कृति की स्थापना और प्रतिष्ठा करके ही हम शस्त्र-दानव से त्राण पा सकेंगे। शास्त्र आचरण और अनुशासन सिखाता है, मन के कुवेग को नियंत्रित करता है, मानव-मन को मर्यादा और शील की सीमा में रखता है। शास्त्र ही हमारे मानस को विकुंठ बनाता है, कुंठारहित करता है, उसमें शुचिता भरता है।** अतः आज विश्व को शस्त्र के स्थान पर शास्त्र को महत्त्व देना है, हिंसा के स्थान पर अहिंसा और स्वार्थ के स्थान पर सेवा को, त्याग को महत्व देना है। लोक को सुशिक्षित करके ही हम अस्त्र-शस्त्रों के भूत को, दुर्दान्त दानव को भगा सकते हैं। संसार का हर विवेकी पुरुष अब यह महसूस करने लगा है कि केवल बुद्धिमान् बनना या ज्ञानी होना ही मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं है। बुद्धि के साथ विवेक का समन्वय ही विश्व को विनाश से बचा सकता है। शस्त्र पर शास्त्र का नियंत्रण और पहरा ही मानव-सभ्यता को शुचिता और उत्कृष्टता की दिशा में पहुँचा सकता है। आधुनिक विज्ञान को अध्यात्म-द्युति से जोड़कर ही उसे मानव-मंगलकारी बना सकते हैं। हिंसा की दावाग्नि की भयंकर लपटों में घिरे संसार के लिए धर्म तथा अध्यात्म की वेदांती भूमिका की आज सबसे अधिक आवश्यकता

डॉ० रमानाथ त्रिपाठी को 'तुलसी पुरस्कार'

दिल्ली सरकार की हिन्दी अकादमी ने ही सम्भवतः सबसे पहले तुलसी-पंचशती के अवसर पर इक्यावन हजार रुपये के तुलसी-पुरस्कार की घोषणा की है। यह पुरस्कार दिया जाएगा बहुभाषा-विद्, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के रामकाव्य-विशेषज्ञ, सशक्त कथाकार और सहृदय कवि डॉ० रमानाथ त्रिपाठी को। उन्होंने भारतीय भाषाओं के रामकाव्यों के साथ रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन कर पी-एच०डी० और डी०लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। डॉ० त्रिपाठी ने विदेशों में रामकथा का स्वरूप और वन्यजातियों में व्याप्त रामकथाओं का भी गहन अध्ययन किया है। स्वाभिमानी और बहुआयामी व्यक्तित्व के विद्वान् डॉ० त्रिपाठी के दो शोध प्रबन्ध, निबन्ध संग्रह, यात्रा-वृत्तान्त, कहानी-संग्रह और सात उपन्यासों सहित लगभग चालीस ग्रन्थ प्रकाशित हैं। दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा देश-विदेश की स्तरीय संस्थाओं द्वारा राम-काव्य विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित हो चुके हैं। उन्हें राष्ट्रीय स्तर के चौदह पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (लखनऊ) द्वारा भी उन्हें पचास हजार रुपये के 'साहित्य-भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

है।

विश्व के लिए एक नए सांस्कृतिक और सुशिक्षित तथा अध्यात्म–चेतना से युक्त मानव–समुदाय के निर्माण की नितान्त आवश्यकता आ पड़ी है। द्वापर में कौरव–पक्ष में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे संस्कृति–सचेत और सुशिक्षित महापुरुषों के रहते हुए भी विश्व–विनाशकारी युद्ध घटित हो गया और विवेक, मर्यादा तथा नियम सभी हाथ से निकाली गई चूड़ियों की तरह ताख पर रख दिए गए। बर्बर पशु और दुर्दान्त दानव सबके मन में प्रवेश कर गये थे। थोड़े से ही विवेकी व्यक्ति व्यास, विदुर आदि लोकपुरुष श्रीकृष्ण के साथ रह गए थे पाण्डवों का पक्ष पुष्ट करने के लिए। पर सत्ता–मद में चूर और विवेक–नेत्र के अभाव में दुष्ट दुर्योधन की हठधर्मिता के समक्ष उनका कुछ भी वश न चला। परिणाम स्वरूप विध्वंस और विनाश ही सामने आये। किन्तु आज द्वापर की नियति हमें नहीं दुहरानी है। आज हमें अपने मन का सुधार करना है, अपनी बुद्धि का परिष्कार, करना है। हमें मानवतावादी महाकवि 'दिनकर' की 'कुरुक्षेत्र' की वाणी के आलोक में अपने जीवन का कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करना है–

"रसवती भू के मनुज का श्रेय
यह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय।
श्रेय उसका प्राण में बहती प्रणय की वायु
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।"

भीष्म पितामह मन के प्रतीक हैं, द्रोणाचार्य बुद्धि के, कर्ण दान के अहंकार का प्रतीक है, कृपाचार्य अर्थकारी विद्या के और शल्य अभिमान का प्रतीक है। श्रीकृष्ण आत्मा हैं। भीष्म और द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य मन–बुद्धि से, अहंकार और चित्त से युधिष्ठिर की विजय चाहते थे, पर युद्ध कर रहे थे दुष्ट दुर्योधन की ओर से। बाण चला रहे थे, अस्त्र–शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे धर्म के पक्ष पर अधर्म की ओर से। वर्तमान विश्व का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही बन गया है। हम सभी आत्म–तत्त्व की अवज्ञा–अवमानना कर धर्महीन, आस्थाहीन, मूल्यहीन और मर्यादाहीन बनते जा रहे हैं। अधर्म का साथी बनकर अधर्मी होते जा रहे हैं। शस्त्र या शास्त्र, शस्त्र या शिक्षा, शस्त्र या सर्वमंगला संस्कृति दोनों में से किस का चुनाव करें– विनाश का या जीवन का; सर्वनाश का या सर्वमंगल का। शस्त्र संहार का, सर्वनाश का प्रतीक है और शास्त्र प्रतीक है संयम का, मर्यादा और मनुष्यता का, मंगल का। एक ओर प्रह्लाद हैं, दूसरी ओर हिरण्यकशिपु; एक ओर राम हैं, दूसरी ओर रावण; एक ओर कृष्ण और बलराम हैं, दूसरी ओर कंस, शिशुपाल, जरासन्ध और दन्तवक्र; एक ओर धर्म–युधिष्ठिर हैं, दूसरी ओर अधर्म–दुर्योधन! शस्त्र और शास्त्र, शस्त्र और शिक्षा, शस्त्र और संस्कृति में आज का विश्व किसे महत्त्व देना चाहता है, यही आज की सबसे बड़ी समस्या है। क्या सचमुच हम समस्या का समाधान चाहते हैं? यदि हाँ, तो आइये शास्त्र की मर्यादा को अंगीकार करें, एक नयी प्रकाशमयी मानवीय संस्कृति की दिशा में अपनी यात्रा शुरू करें। कवियों में सौम्य संत श्री सुमित्रानंदन पंत की वाणी में हमारा यही प्राणमय–प्रकाशमय संकल्प हो–

"मानवता निर्माण करें जन
चरण मात्र हों जिनके भू पर,
हृदय लीन हो स्वर्ग–क्षितिज पर
मन हो स्वर्ग–क्षितिज से ऊपर।"

☆

– 'ऋतंभरा', शान्तिपुरी, पो० मोतीहारी
पूर्व चम्पारण–८४५४०१ (बिहार)

कबीर का लोटा

– संजीव कुमार आलोक

प्रातःकाल के समय लोग गंगास्नान कर रहे थे। पानी पर्याप्त गहरा था। अतः कुछ ब्राह्मणों को उसमें घुस कर स्नान करने का साहस नहीं हो रहा था। एक किनारे पर खड़े संत कबीर स्नान कर रहे थे। उन्होंने अपना लोटा माँज–धोकर एक व्यक्ति को दिया और कहा कि जाओ ब्राह्मणों को दे आओ, ताकि वे भी सुविधा से स्नान कर लें।

कबीर का लोटा देखकर ब्राह्मण चिल्ला उठे, "अरे जुलाहे के लोटे को दूर रखो। इससे स्नान करके तो हम अपवित्र हो जायेंगे।"

"इस लोटे को कई बार मिट्टी से माँजा और गंगाजल से धोया, फिर भी साफ न हुआ, तो दुर्भावनाओं से भरा यह मानव शरीर गंगाजी में स्नान करने से कैसे पवित्र होगा; कबीर बोल पड़े।

भइया की चिट्ठी

प्यारे भइया–बहिनो !

जय श्रीराम।

परीक्षाओं से मुक्ति पाकर ग्रीष्मावकाश की योजना आप सब बना रहे होंगे। पर जरा सँभलकर, धूप से बच कर रहें। पानी पीकर ही घर से बाहर निकलें। यदि कहीं घूमने जाएँ तो यात्रा की अनुभूतियों से अपने भैया को अवश्य अवगत कराएँ। इस बार जिन भइया–बहिनों ने हाईस्कूल (कक्षा १०) की परीक्षा दी है, उनमें से जिनको हिन्दी में ८० प्रतिशत से अधिक अंक मिलें, वे अपने अंकपत्र की छाया प्रति के साथ अपना विवरण व श्वेत–श्याम छोटा चित्र अवश्य भेजें।

इसी अंक से 'राष्ट्रधर्म' में नवोदित रचनाकारों के प्रोत्साहनस्वरूप परिचयात्मक स्थान देना प्रारम्भ किया गया है। अस्तु २० वर्ष से कम आयु के लेखक भइया–बहिन अपना सचित्र पूर्ण परिचय रचना सहित भेज सकते हैं।

आपका

[हस्ताक्षर]

भइया

नवोदित स्वर – कु० अंशु शुक्ला

'प्रतिभा आयु की मुखापेक्षी नहीं होती', यह कथन कु० अंशु शुक्ला पर सटीक उतरता है। ५ सितम्बर १९८१ को झाँसी में जन्मीं कु० अंशु ने प्रारम्भ से अब तक ८५ प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त कर प्रत्येक परीक्षा उत्तीर्ण की है। नृत्य, गायन एवं चित्रकला की स्पर्धाओं में पुरस्कारों के साथ ही विज्ञान, गणित एवं सामान्य–ज्ञान सम्बन्धी प्रतियोगिताओं में रजत पदक भी प्राप्त किया है।

कु० अंशु की २०० से अधिक बाल कविताएँ जहाँ देश की विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं, वहीं 'नाचे मोर मचाए शोर' कविता संग्रह बाल साहित्य संस्थान उन्नाव द्वारा पुरस्कृत हुआ है। बालकन जी बारी इण्टर नेशनल नई दिल्ली द्वारा १९९३ का 'बाल कवि नेहरू एवार्ड' भी अंशु को मिल चुका है। नागरी बाल साहित्य संस्थान– बलिया, गोविन्द शिक्षा समिति– ग्वालियर से पुरस्कृत अंशु की तीन बाल पुस्तकें 'तिरंगा', 'झरना' तथा 'शिशु गीत एवं बाल कविताएँ' प्रकाशनाधीन हैं। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हुए भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना के साथ साहित्य संरचना के लिए कु० अंशु बधाई की पात्र हैं। यहाँ प्रस्तुत है उनकी एक रचना।

वृक्ष

तन मन को सुख देने वाले,
वृक्ष हमेशा लहराते हैं।
बागों में कलियाँ खिलती हैं,
भँवरे उन पर मँडराते हैं।

वृक्ष भूमि पर जन–जीवन को,
नव फूलों सा महकाते हैं।
वृक्षों की महिमा को भैया,
मोर पपीहा सब गाते हैं।

इनकी महिमा बड़ी निराली,
नई–नई फसलें लाते हैं।
काजू, सेब, सन्तरा, नींबू,
सब हम वृक्षों से पाते हैं।

अगर धरा पर वृक्ष न होते,
तो क्या बादल गर्जन करते।
चारों ओर मरुस्थल होता,
सारे प्राणी प्यासे मरते।।

इसीलिए तो पिता हमारे
नियमित वृक्ष लगाते हैं।
इन्हें काटना बहुत बुरा है,
सदा यही समझाते हैं।।

– पता : ३, गोविन्दगंज, दतिया (म०प्र०)

— इन्दरमन 'साहू'

अनुभूति

शाम को छुट्टी होने पर मीतू घर आई। वह बहुत खुश नजर आ रही थी। नीलेश ने भी देखा। वह कुछ पूछने ही वाला था कि मीतू बताने लगी— "भैया, मैं एक सुन्दर कलम पायी हूँ।" और कलम नीलेश को दिखाने लगी।

नीलेश ने ध्यान से कलम को देखा। उसे कुछ याद आया, "हाँ, कलम तो सचमुच बहुत सुन्दर है, लेकिन तुम्हें इसे लौटा देना चाहिए।" मीतू को यह बुरा लगा," क्यों लौटा दूँ? मैंने कोई चोरी नहीं की, फिर लौटा किसे दूँ?"

"पहले तुम मन बना लो कि इसे लौटा दोगी, तब मैं उसका नाम भी बता दूँगा, जिसे लौटाना है," नीलेश ने कहा। कलम पाने की मीतू की प्रसन्नता पर प्रश्नचिह्न लग गया। वह हाथ—पैर धोने के लिए स्नानगृह चली गई।

वास्तव में वह कलम नीलेश के मित्र सुधीर का था। सुबह पाली में छुट्टी के बाद घर आते समय सुधीर की जेब से नीचे गिर गया था। वह बहुत मँहगा कलम था, जिसे सुधीर के जन्मदिन पर उसके चाचा ने भेंट किया था।

मीतू आई। नीलेश ने पूछा, "तो तुमने क्या सोचा?"

"तुम्हीं बता दो, भैया, मुझे कलम क्यों लौटा देना चाहिए? उल्टे मीतू ने नीलेश से पूछा।

"यह तो तुम भी मानती हो कि कलम बहुत कीमती है। इसे पाकर तुम जितनी खुश हो, उससे कहीं अधिक इसको गँवाने वाला दुःखी होगा। जब वह देखेगा कि उसका कलम खो गया है, तो वह बहुत परेशान होगा। उसका गृह—कार्य होने न पायेगा और मन पढ़ाई में बिलकुल भी नहीं लगेगा। माँ और पिताजी की मार—डाँट से तो वह टूट ही जायेगा," नीलेश ने मीतू के सामने कलम खोने वाले की परेशानी का चित्र—सा खींच दिया।

मीतू अप्रभावित रही। नीलेश वहाँ से चला गया। तभी माँ की आवाज आई, "जलपान तैयार कर रही हूँ, मीतू। तू कहीं जाना मत।"
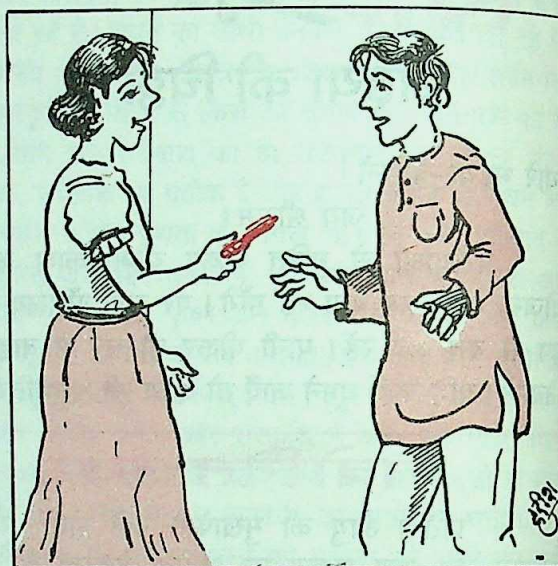
"हाँ, माँ, मैं अपना कक्षा का काम कर रही हूँ" नये कलम से गृह—कार्य करने के लिए मीतू उतावली हो रही थी। वह नये कलम से धड़ाधड़ प्रश्नों के उत्त[र] लिख रही थी। अचानक उसे पैमाना की जरूरत प[ड़ी]। गई बस्ते में हाथ डालकर वह दिग्दर्शक यन्त्र का बक्[स] टटोलने लगी। न मिलने पर उसने बस्ता उलट दिया। किताबों, कापियों को उलट—पुलट कर देखने लगी औ[र] जब वह नहीं मिला तो उसके पैरों तले से जमी[न] खिसक गई।

अभी हाल ही में बहुत पीछे पड़ने के बा[द] पिताजी ने उसे कीमती दिग्दर्शक—यन्त्र बक्स लाक[र] दिया था। कलम पाने की सारी खुशी हवा हो गई। अ[ब] वह क्या करे? माँ और पिता की डाँट की कल्पना कर[ते] ही उसके पसीने छूट गये।

मीतू वहाँ से उठकर नीलेश के कमरे की ओ[र] दौड़ी। नीलेश मीतू की प्रतिक्रिया की ही प्रतीक्षा क[र] रहा था। आते ही मीतू कहने लगी, "भैया, मैं यह कल[म] लौटाना चाहती हूँ। बताओ वह कौन है?

"वह कोई और नहीं मेरा मित्र सुधीर है," मीतू [से] कलम लेते हुए नीलेश ने कहा, "लेकिन तेरा चेह[रा] उतरा हुआ क्यों है? तुम्हें तो खुश होना चाहिए [कि]

तुमने सुधीर को परेशान होने से बचा लिया।

"लेकिन भैया! मुझे परेशान होने से कौन बचायेगा?" मीतू उदास होकर धीरे से बोली।

"क्यों क्या हुआ?" नीलेश ने पूछा।

"भैया, मेरा दिग्दर्शक यन्त्र बक्स कहीं खो गया है" कह मीनू सुबक पड़ी।

"तो तुम्हें यह अनुभव हुआ कि अपनी चीज खोने पर कितनी वेदना और असुविधा होती है। कलम लौटाने के लिए सुधीर की ओर से धन्यवाद," मुस्कराकर नीलेश बोला।

"कोई बात नहीं", बुझी-सी आवाज में मीतू ने कहा और जाने लगी।

"मीतू, ठहरो," नीलेश ने उसे रोका। मीतू पीछे मुड़कर देखने लगी। नीलेश के हाथ में अपना दिग्दर्शक-यन्त्र देखकर उसकी बाछें खिल गयीं, "भैया, तो यह आप पाये थे?"

"पाया नहीं था, चुराया था," मुस्कराकर पूरी बात नीलेश ने बता दी, "तुम्हारी अनुभूति को जगाने के लिए ही मैंने ऐसा किया था और उसमें मुझे सफलता भी मिली।"

"धन्यवाद, भैया!" मीतू बोली।

— निवास/पोस्ट— मर्रा, जिला-दुर्ग, (म०प्र०)

महापुरुषों के अन्तिम शब्द

"हे वैशाली! अब अपने अवशिष्ट आयुष्काल में मैं तुम्हें फिर न देखूँगा। मेरे न रहने पर प्रतिमोक्ष को ही तुम अपना आचार्य, प्रदीप और रतन समझना। संसार में घर और अचर सब नाशवान् हैं, इसलिए प्रमाद-रहित होकर कल्याण का साधन करो।"

— महात्मा बुद्ध

"क्यों रोती हो? मेरा "दास बोध" तो है।"

— समर्थ रामदास

"प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो। तूने अच्छी लीला की।"

— स्वामी दयानन्द सरस्वती

"मुझे पड़ी एक-एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगी।"

— लाला लालपत राय

"हम आजाद रहे हैं, आजाद रहेंगे।"

— चन्द्रशेखर आजाद

"मैं नहीं जानता क्या होगा, क्या होगा।"

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गंगा मैया

— डॉ० गणेश दत्त सारस्वत

दादी जी, बतलाओ तो यह कौन नदी है।
जिसके दोनों तट पर इतनी भीड़ लगी है।
दादी बोलीं— 'भैया! ये गंगा मैया हैं।
पार लगातीं जग-जीवन की ये नैया हैं।
पद-नख से भगवान विष्णु के ये निकली हैं।
स्वर्गलोक को छोड़ धरा की ओर चली हैं।
देख भयंकर वेग जटाएँ शिव ने खोलीं।
बहुत दिनों तक ये उनमें ही विरमीं, डोलीं।
नृपति भगीरथ इनको धरती पर ले आये।
पाप-शाप से हर प्राणी को त्राण दिलाये।
इनकी महिमा अद्भुत इनका वेष सजल है।
इनकी लहरों में मोती की छवि निर्मल है।
कल-कल, छल-छल करता इनका जल पावन है।
जन-जन को पुलकित करता स्वर मनभावन है।
बड़े भाग्य से इनके दर्शन होते हमको।
सुख-समृद्धि का वर देतीं ये जगतीतल को।
देख रहे हो लगा हुआ मेला है तट पर।
गूँज रहा है 'हर-हर-गंगे' का मोहक स्वर।
नहा रहा है कोई बैठा जपता माला।
चन्दन है घिस रहा कि कोई कण्ठी वाला।
दान दे रहा दोनों हाथों से है कोई।
मन्त्र सिद्ध कर रहा रमाए धूनी कोई।
इसके जल को स्वच्छ रखें कर्तव्य हमारा।
पाप भगाएँ दरस, परस, मज्जन के द्वारा।
भारत की पहचान इन्हीं से है धरती पर।
नत-मस्तक हो नमन करो तुम हाथ जोड़कर।

— सिविल लाइन्स, सीतापुर (उ.प्र.)

जादूगर

- चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक'

छू काली! कलकत्ते वाली।
तेरा वचन न जाये खाली।
मैं हूँ जादूगर अलबेला।
असली भानमती का चेला।
सीधा बंगाले से आया।
जहाँ–जहाँ जादू दिखलाया।
सबसे नामवरी है पाई।
उँगली दाँतों तले दबाई।
जिसने देखा खेल निराला।
जादू का बंगाले वाला।
कैसा अचरज भरा तमाशा।
कहीं न धोखा, कहीं न झाँसा।
चाहूँ तिल का ताड़ बना दूँ।
रुपयों का अम्बार लगा दूँ।
अगर कहो–तो आसमान पर।
तुमको धरती से पहुँचा दूँ।
ऐसे–ऐसे मन्तर जानूँ–
दुख–संकट छूमन्तर कर दूँ।
निर्धन को धनवान बनाकर
भारी धन–दौलत से भर दूँ।
साहस–फुरती–मेहनत–हिम्मत–
दृढ़ निश्चय का देकर मन्तर।
सोने का मैं तुम्हें बना दूँ–
ऐसा हूँ अद्भुत जादूगर।

– २६१, फेथफुलगंज, कैण्ट, कानपुर – २०८००४

सवाल हल करो

– प्रस्तुति : भूमिका

एक नींबू के बाग में प्रवेश करने के लिए सात द्वार पार करने पड़ते हैं। प्रत्येक द्वार पर एक चौकीदार है। एक व्यक्ति नींबू लेने जाता है, तो पहला चौकीदार कहता है कि तुम जितने नींबू लाओगे उनके आधे मुझे देने होंगे। मैं अपने हिस्से में से एक नींबू तुमको वापस कर दूँगा। यही शर्त सातों चौकीदार लगाते हैं। वह व्यक्ति नींबू लेकर वापस लौटता है और शर्त के अनुसार आधे नींबू चौकीदारों को देता जाता है। प्रत्येक चौकीदार उसे एक नींबू अपने हिस्से से वापस कर देता है। बाहर आने पर उसके पास मात्र दो नींबू होते हैं। बताओ उसने कुल कितने नींबू तोड़े थे?

"भारतीय संस्कृति का मंगल-प्रतीक-स्वस्तिक"

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

भारत का अर्थ है, तेज की उपासना में रत। इस तेज में सदा सभी के कल्याण की कामना निहित रही। जैसे सूर्य सभी के लिए समान रूप से प्रकाश का प्रसार करता है, वैसे ही यहाँ का भी मूल मन्त्र रहा, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'। सभी सुखी हों। यही अपनी संस्कृति का आधार है। इसीलिए देश के सभी मांगलिक प्रतीकों में स्वस्तिक श्रेष्ठ रहा। वह स्वस्ति या कल्याण का संदेश-वाहक है।

देश के विभिन्न सम्प्रदायों में यह सर्वदा मान्य रहा। मंगल-कलश, द्वार-सज्जा, पूजा, विभिन्न अनुष्ठान सर्वत्र यह विद्यमान है। इसकी प्रतिष्ठा भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में हुई। ऐसा सर्वव्याप्त प्रतीक अन्य कोई नहीं। अपने को आर्य घोषित करने वाले एडोल्फ हिटलर ने इसे विजय-प्रतीक रूप में, गर्व से भुजा पर धारण किया था। स्वस्ति या मंगलकारी होने से इसे स्वस्तिक की संज्ञा मिली थी। अनेक विद्वान् इसे सूर्य का प्रतीक मानते हैं। सूर्य जीवन का पोषक एवं कल्याणकर है। ज्योतिष में भी इसे महत्त्व मिला है। महापुरुषों के चरण-तल पर स्वस्तिक की विद्यमानता उनकी महत्ता का सूचक है। संगीत-शास्त्र में स्वस्तिक के आकार के वाद्य का भी उल्लेख है।

अन्य कल्पनाएँ

सूर्य के सदृश ही अग्नि भी ऊष्मा, प्रकाश एवं जीवन देने वाला है। पावक का अर्थ ही पवित्रकारी होता है। इसी कारण यज्ञाग्नि की विधिवत् प्रतिष्ठा धार्मिक कार्यो में हुआ करती थी। अतः स्वस्तिक की कल्पना अग्नि रूप में भी हुई। एक-दूसरे को काटती इसकी भुजाएँ आदि कांल की दो शाखाओं का स्मरण कराती हैं। उस युग में, दो अरणियाँ, अथवा अग्नि-मन्थन-काष्ठ को रगड़ कर आग पैदा की जाती थी। इसे चतुर्भज ब्रह्मा, चार भुजाओं वाले विष्णु, चार मुख वाले महेश के साथ ही, देवराज इन्द्र के वृत्रनाशी वज्र का भी प्रतीक माना गया है।

स्वस्तिक मानव-जीवन के चतुर्भद्र अथवा चार मांगलिक लक्ष्य- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भी संकेतक माना गया है। अपनी भुजाओं के माध्यम से यह चारों वेदों का भी आभास कराता है। इसकी सभी भुजाएँ एक केन्द्र से सयुक्त हैं। जो परम पुरुष का परिचायक है। ये भुजाएँ समाज के चारों वर्णों की भी अभिव्यंजक हैं। मध्य बिन्दु से जुड़ी वे सामाजिक एकता की द्योतक भी हैं। तीव्र गति होने पर प्रत्येक वस्तु मण्डलाकृति हो जाती है। उस दशा में यह सुदर्शन चक्र का प्रतिरूप है। "चतुष्टयं वा इदं सर्वं।" विश्व चतुर्धा या चार रूपों में विभक्त है। इस प्रकार स्वस्तिक लोक, दिशाओं, लोकपाल, आश्रम सभी का संकेतक है। चार लोकपालों की पूजा के रूप में भी इसका विकास हुआ।

मांगलिक चिह्न

मांगलिक चिह्न के रूप में यह आज भी अंकित होता है। राजा के समक्ष दर्शनार्थ जिन मांगलिक प्रतीकों को प्रस्तुत किया जाता था, उनमें पूर्ण कुम्भ, स्वर्ण-माला के साथ स्वस्तिक भी रहा करता था, 'महाभारत', द्रोण-पर्व, ५८/८-२१)। "मार्कण्डय-पुराण" के अनुसार, यदि नारियाँ प्रातः उठकर, धरती को गोबर से लीप कर, स्वस्तिक का चिह्न नहीं अंकित करेंगी, तो धन, आयु तथा यश का नाश होगा। इस प्रकार गृह के समक्ष स्वस्तिक का निर्माण अनिवार्य रूप से किया जाता था–

प्रातःकाले स्त्रियाकार्यं गोमयेनानुलेपनं।
अकृत स्वस्तिकां या तु क्रमेल्लिप्तां मेदिनीं।।
तस्य त्रीणि विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा।

"स्कन्द-पुराण" में भी स्वस्तिक की रंगोली बनाकर, पूजा करने का विधान है। यह परम्परा आज भी चली आ रही है–

"रंगवल्यादिभिर्देवं देवस्धग्रे विनिर्मितः।
पद्मादिभिः स्वस्तिकायश्चक्राद्यैः पूजेयद्विभुम्।। ३-२२।।

"आकाश-भैरव" कल्प के मत से, "कुमारी को भोजन कराते समय भी वर्ण-वय के अनुसार, चावल के चूर्ण से स्वस्तिक की रंग-वल्ली बनायें–"

चतुरस्र स्वस्तिकांको क्रमशो मण्डलानि वै।
कल्पयेदासनार्थंवै शालितण्डुलचूर्णतः।।

उल्टे स्वस्तिक कब बनाते हैं?

स्वस्तिक से कामना–पूर्ति का भी सम्बन्ध लोक–विश्वास में रहा है। मध्य–प्रदेश के विख्यात स्थल धार में माँ कालिका का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसमें परिक्रमा–पथ में उल्टे स्वस्तिक का अंकन किया गया है। इससे सिद्ध है, लोग यहाँ मन की इच्छा व्यक्त करते थे, तथा "मनौती" पूरी होने के लिए उल्टे स्वस्तिक बनाया करते थे। इन्दौर में खजराना स्थित गणेश–मन्दिर अत्यन्त पुरातन है। यहाँ भी लोग 'मानता' मानते हैं। एक बार में कामना–पूर्ति न होने पर, गोबर से उल्टे स्वस्तिक बनाये जाते हैं। जन–विश्वास है, इससे अवश्य 'मनौती' पूर्ण हो जायेगी।

पहचान के लिए अंकन

विश्व–व्याप्त स्वस्तिक को मांगलिक प्रतीक मानकर, सज्जा के रूप में भी धारण किया जाता रहा। अनेक देशों की मुद्राओं पर भी इसका अंकन हुआ था। पहचान के लिए भी स्वस्तिक आँका जाता रहा। गायों के पृष्ठ–भाग तथा कानों पर भी स्वस्तिक की मुद्रा सज्जित की जाती थी। ऋषियों के गो–समूह पर, चरवाहों की सुविधा के लिए इसे आँकते थे। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में इसका उल्लेख किया है। स्वस्तिक के बीज–मन्त्र में मानो मानवता का वट–वृक्ष समाया है। एच०जी० वेल्स ने "आउट लाइन ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री" में लिखा है, "इस लघु प्रतीक की व्यापकता में समस्त संसार समा गया है।"

बौद्ध धर्म में स्वस्तिक

इस भारतीय प्रतीक की प्रतिष्ठा बौद्ध–धर्म में भी हुई है। महात्मा बुद्ध के चरण तथा वक्ष पर इसे रूपायित किया जाता था। बहुत सम्भव है, बौद्ध–भिक्षु ही इसे संसार के विभिन्न भागों में अपने साथ ले गये हों। अमरावती के स्तूप पर बौद्ध–कला के रूप में स्वस्तिक उत्कीर्ण है। इसके अंकन में यह विश्वास भी था, चारों लोक–पाल सभी दिशाओं से मंगल तथा रक्षा करें। स्तूपों के चारों तोरण द्वारों पर इसे उकेरा जाता था। सम्राट् अशोक के शिला–लेखों पर भी स्वस्तिक उकोरे जाने के प्रमाण पत्र प्राप्त हैं। बाद की बुद्ध–प्रतिमाओं पर, स्वस्तिक उत्खचित किया जाना समाप्त होता गया। इसके मूल में एक विशेष भाव था। दर्शक का अधिक से अधिक 'ध्यान भगवान् के मुख–मण्डल पर ही केन्द्रित रहे। अन्यथा, पहले लोग स्वस्तिक की ही पूजा करते थे। फिर स्तूप–पूजा होने लगी।

जैन–धर्म तथा स्वस्तिक

जैन–धर्म भी भारतीय है। अतः उसमें भी स्वस्तिक को महत्त्व मिला है। पूजा अथवा आशीर्वाद हेतु जाते समय इसके अनुयायी स्वस्तिक का अंकन करते हैं। जन–स्तूपों के चारों ओर निर्मित पूजा–शिलाओं पर स्वस्तिक उकेरा जाता था। पहले उनकी ही अर्चना की जाती थी। जैन–दर्शन के अनुसार एक–दूसरे को काटतीं इसकी दो भुजाएँ आत्मा तथा तत्त्व की संकेतक है। भुजाओं के चार अंग आत्मा के रूपों के सूचक हैं। आर्यिका प्रशान्तमति माता के मत से खड़ी रेखा का अभिप्राय जन्म, तथा आड़ी भुजा मृत्यु की द्योतक है। चारों ओर मोड़ने वाली रेखाएँ चार गतियाँ हैं। उसके ऊपर बनाये जाने वाले बिन्दु रत्न–त्रय हैं। उसमें निर्मित किया जाने वाला चन्द्र सिद्धशिला का प्रतीक है। अंकित बिन्दु भगवान् को स्थापित करने के व्यंजक हैं। उसके अनुसार, स्वस्तिक चिर अस्तित्व का परिचायक है।

पाण्डुलिपियों तथा बहियों पर

प्राचीन भारत में मंगल का यह प्रतीक पाण्डुलिपियों के अन्त में अनिवार्य रूप में अंकित किया जाता था। कल्याण–कामना से गृहस्थजन इसे प्रवेश–द्वार के समीप रचते थे। देवालयों, बाजारों आदि में भी इसकी सज्जा की जाती थी। शुभ–प्राप्ति के लिए व्यापारी अपनी बहियों पर स्वस्तिक–लेखन नहीं भूलते। यह परम्परा आज भी प्रचलित है। तिब्बती नारियाँ अपने परिधान पर स्वस्तिक सजाना स्मरण रखती हैं। उनका विश्वास रहा है, यह सतत आपदाओं से उनकी रक्षा करता रहेगा।

स्वस्तिक की विश्व–व्यापकता

पुरा काल में ईसाई भी मंगल हेतु स्वस्तिक के प्रतीक का अंकन करते थे। धर्माध्यक्ष के आसन, उपदेशक के मंच, वेदिका, गिरजाघर के घण्टे, मकबरों आदि पर इस मांगलिक प्रतीक को उकेरा जाता था। इसकी चार भुजाओं को आत्मा की चार स्थितियों का सूचक माना जाता था। कुछ विद्वानों का मत है, पवित्र क्रास स्वस्तिक का ही रूप है। शुभ–चिह्न के रूप में इसे धारण करने वाले प्रारम्भिक ईसाई इसे "जेनेसिस" अथवा ईश्वर की ओर उन्मुखता के रूप में ग्रहण करते थे। अब भी ग्रेट ब्रिटेन में इसे "फिलफॉट" कहा जाता था।

फिलाडेल्फिया में स्वस्तिक की कल्पना 'थोर' देवता

(शेष पृष्ठ ७४ पर)

प्रसिद्ध व्यक्तियों के असली नाम

१. बैजू बावरा — बैजनाथ
२. राणा साँगा — संग्राम सिंह
३. तानसेन — रामतनु (तन्ना)
४. महात्मा गौतम बुद्ध — सिद्धार्थ
५. महावीर स्वामी — वर्द्धमान
६. महाप्रभु चैतन्य — विश्वंभर
७. स्वामी रामतीर्थ — तीर्थराम
८. महर्षि वाल्मीकि — रत्नाकर
९. तुलसीदास — रामबोला
१०. रामकृष्ण परमहंस — गदाधर
११. समर्थ गुरु रामदास — नारायण
१२. भीष्म पितामह — देवव्रत
१३. दानवीर कर्ण — वसुषेण
१४. चाणक्य — विष्णुदत्त
१५. स्वामी विवेकानन्द — नरेन्द्र दत्त
१६. स्वामी दयानन्द सरस्वती — मूलशंकर
१७. महारानी लक्ष्मीबाई — मनु
१८. तात्या टोपे — रामचन्द्र राव
१९. सुदर्शन — बद्रीनाथ
२०. जैनेन्द्र कुमार — आनन्दी लाल
२१. महाकवि निराला — सूर्यकान्त त्रिपाठी
२२. भूषण (कवि) — गोपाल
२३. प्रेमचन्द — धनपतराय
२४. सुमित्रा नन्दन पन्त — गुसाईदत्त
२५. महाकवि प्रसाद — जयशंकर
२६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — हरिश्चन्द्र
२७. गाांधी जी — मोहनदास करमचन्द गांधी
२८. इन्दिरा गांधी — इन्दिरा प्रियदर्शिनी
२९. हजारी प्रसाद द्विवेदी — बैजनाथ
३०. डॉ० बच्चन — हरिवंश राय
३१. आजाद — चन्द्रशेखर
३२. भगत सिंह — भगवान
३३. लोकमान्य तिलक — बाल गंगाधर
३४. मिजा गालिब — असद उल्ला खाँ
३५. काका हाथरसी — प्रभुलाल गर्ग
३६. जेमिनी हरियाणवी — देवकी नन्दन
३७. नीरज — गोपाल दास
३८. बाबर — जहीरुद्दीन
३९. हुमायूँ — नसीरुद्दीन
४०. अकबर — जलालुद्दीन
४१. जहाँगीर — सलीम
४२. शाहजहाँ — खुर्रम
४३. शेरशाह — फरीदखाँ
४४. टीपू सुल्तान — फतेह अली

प्रस्तुति– नोतन लाल
४५७, न्यू जनता कालोनी, फरीदाबाद (हरियाणा)

माधव सभागार लोकार्पित

भारतीय शिक्षा समिति उत्तर प्रदेश द्वारा निराला नगर, लखनऊ में नवनिर्मित 'माधव सभागार' का लोकार्पण उ०प्र० के मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि मा० कुप्०सी० सुदर्शन (सह सरकार्यवाह, रा०स्व० संघ) द्वारा ८ मई को किया गया।

इस अवसर पर शिक्षा के कर्त्तव्य तथा उसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए मा० सुदर्शन जी ने कहा कि विद्या अपनेपन के दायरे को बढ़ाकर परिवार, गाँव, प्रान्त, देश, चराचर जगत् और परमात्मा से एकाकार कराती है। उन्होंने कहा, विद्या विकास की एक विशेष प्रक्रिया है, जो नर को नारायण बनाती है।

कार्यक्रम में विद्या भारती के अ०भा० संगठन मंत्री श्री लज्जाराम तोमर, मा० माधव देवले, जयगोपाल जी, लालजी टण्डन (नगर विकास मंत्री), रवीन्द्र शुक्ल (प्राथ० शिक्षा मंत्री), ईश्वरचंद्र, राजनाथ सिंह व सुरेश चन्द्रा जी सहित अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे। □

सर्वज्ञान प्रदायिनी शक्तिदात्री जगन्माता की वास्तविक भावना के अभाव और केवल स्वार्थ की दृष्टि से ही उसकी ओर देखने के कारण जीवन पशु–तुल्य बनता जा रहा है। काम–प्रधान जीवन सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन का लक्षण नहीं है। अन्तःकरण में यदि कृतज्ञता का भाव नहीं रहा, तो जीवन जंगली हो जाता है। इसलिए, सुसंस्कृत होकर माता के प्रति अपनी भक्ति उसके इन त्रिविध स्वरूपों में नित्य करना ही अत्यावश्यक है।

— प०पू० गुरुजी

देववाणी शिक्षण –९

अब निम्नलिखित 'कः' (कौन) इस सर्वनाम के शब्द स्मरण में रखिए–

विभक्ति	कः	(कौन)
प्रथमा	कः	कौन
द्वितीया	कम्	किसे
तृतीया	**केन**	किससे, किसने, किसके द्वारा
चतुर्थी	**कस्मै**	किसके लिए
पंचमी	**कस्मात्**	किसके पास से
षष्ठी	**कस्य**	किसका
सप्तमी	**कस्मिन**	किसमें

'कः' (कौन) इस सर्वनाम के सातों विभक्तियों के पुल्लिंग के एकवचन के ये रूप हैं। इन शब्दों का उपयोग निम्नलिखित प्रकार से कीजिए और वाक्य बनाइये–

कः स पुरुषः अस्ति?
कौन वह मनुष्य है?
त्वं कं पुरुषं पश्यसि?
तू किस पुरुष को देखता है?
तुभ्यं केन नरेण धनं दत्तम्?
तुझे किस मनुष्य ने धन दिया?
कस्मै जनाय त्वया वस्त्रं दत्तम्?
किस मनुष्य के लिए तूने धन दिया।
कस्मात् नगरात् त्वं इदानीं आगतः?
किस नगर से तू अब आ गया है?
कस्य गृहं स इदानीं अस्ति?
किसके घर अब वह है?
कस्मिन नगरे जलं नास्ति?
किस शहर में जल नहीं है?

अब निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिए–

लिखति =(वह) लिखता है।
लिखसि =(तू) लिखता है।
लिखामि =(मैं) लिखता हूँ।
पचति =(वह) पकाता है।
पचसि =(त) पकाता है।
पचामि =(मैं) पकाता हूँ।
तिष्ठति =(वह) खड़ा रहता है।
तिष्ठसि =(तू) खड़ा रहता है।
तिष्ठामि =(मैं) खड़ा रहता हूँ।
धावति =(वह) दौड़ता है।
धावसि =(तू) दौड़ता है।
धावामि =(मैं) दौड़ता हूँ।

अब इन शब्दों का उपयोग करके वाक्य बनाइये–

यदा त्वं लिखसि तदा स तत्र धावति। यदा स गृहे तिष्ठति तदा अहं पुस्तकं न पठामि। यदा स धावति तदा स सफलं न खादति। यदा त्वं पचसि तदा अहं लिखामि। त्वं किमपि किं न लिखसि?

निम्न लिखित हिन्दी वाक्यों का संस्कृत बनाइये–

जब तू बोलता है, तब वह दौड़ता है। वह क्यों पकाता है? वह मनुष्य आज क्यों दौड़ता है? जब तू फल खाता है, तब वह पत्र लिखता है। तू यहाँ क्यों खड़ा है? तू उसको पत्र क्यों नहीं लिखती है?

अब निम्नलिखित वाक्य आप पढ़ते ही समझ सकते हैं।

त्वं इदानीं किं पश्यसि? सः अधुना कुत्र गतः? रामः इदानीं तत्र नास्ति किम्? अहं नगरात् इदानीं एब आगतः। अहं शीघ्रं पुस्तकं पठामि। त्वं इदानीं मम पुस्तकं पश्यसि। यदा त्वं तत्र गच्छसि, तदा स कुत्र भवति? यदि त्वं फलं न खादसि तर्हि अहं न खादामि। अधुना स पत्रं लिखति। स पुस्तकेन सह अत्र आगच्छति। त्वं रामेण सह अत्र आगच्छसि किम्? कथं स तत्र न गच्छति? तव गृहं अत्र अस्ति? मम गृहं तव गृहस्य समीपे एवं अस्ति।

त्वं इदानीं सूर्यं पश्यसि। सूर्यः कुत्र अस्ति? सूर्यं आकाशे अस्ति। अधुना रामः कुत्र गतः? रामः इदानीं स्व ग्रहे गतः। यत्र स गतः तत्र त्वं किं न गच्छसि? अहं तत्र गच्छामि, परन्तु सः न गच्छति।

☆

अपने को न गिनने का फल

बारह तरुण विद्यार्थी तैरने के लिए गए। किसी ने बताया तालाब खराब है, अन्दर इसमें भटकने का डर है। पर किसी ने माना नहीं। काफी देर तक वे तैरते रहे, पर मन पर बात का कुछ न कुछ प्रभाव तो होता ही है, जब वे बाहर निकले तो उन्होंने अपने को गिना, गिनने में उन्होंने केवल ग्यारह गिने। अनेक लोगों ने गिना, लेकिन ग्यारह तक पहुँचे। एक को खोया समझ वे रोने लगे। एक राहगीर ने पूछा– रोने का क्या कारण है? उन्होंने बताया– हम बारह आए थे, अब ग्यारह रह गए हैं। एक तालाब में डूब गया है। उसने कहा– देखो, तुममें से कौन कम है और गिनकर उनके भ्रम को दूर किया। वे सब अपने को छोड़कर गिनते थे। यही समाज के लोगों के साथ होता है।

– डॉ० आबा जी थत्ते

❑ जगवीर सिंह वर्मा

अचेतन मस्तिष्क जहाँ न सोचने पर भी सोचना जारी है

विद्वान्, लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, व्यवसायी, उद्योगपति, राजनेता आदि के रूप में मनुष्य का बाह्य स्वरूप उसके चेतन मस्तिष्क की चमत्कृति भर है। भौतिक जगत् में इन विभूतियों की सामर्थ्य से हर कोई परिचित है, परन्तु इससे परे अचेतन मस्तिष्क का भी अस्तित्व है, जिसे रहस्यों का पिटारा कहा जा सकता है, मनोवैज्ञानिकों ने भी इस बात को स्वीकारा है। अचेतन मस्तिष्क चेतन मस्तिष्क से कहीं अधिक रहस्यपूर्ण और विलक्षण क्षमताओं से सम्पन्न है। इसे अभी जाना नहीं जा सका, न इसके कारणों का विश्लेषण संभव हो पाया है।

अब तक की खोजों के परिणाम स्वरूप अचेतन मस्तिष्क के सामर्थ्य का मात्र सात प्रतिशत ही मनोवैज्ञानिकों को ज्ञात हो सका है, उनके अनुसार यह कहा जाता है कि अभिरुचि प्रकृति, सीखा हुआ स्वभाव और चिरसंचित आदतों की मूलभूमि अचेतन मस्तिष्क ही है। परामनोवैज्ञानिकों ने इसे संसार का सर्वाधिक रहस्यमय, अद्भुत तथा शक्तिशाली यंत्र बताया है तथा यह कहा है कि यदि इसके गूढ़तम अविज्ञात रहस्यों को प्रकट किया जा सका, तो उस मनःस्थिति के सहारे संसार की आज की तुलना में हजार गुना अधिक प्रगति संभव हो सकेगी। व्यक्ति की मनःस्थिति के सहारे ही वह कार्य संभव हो सकेगा, जो आज यांत्रिकी द्वारा किया जाता है। इसे वैज्ञानिक 'साइको साइबर्नेटिकल्स' विद्या नाम देते है।

अतीन्द्रिय विद्या के ज्ञाताओं ने अपने अनुभवों के आधार पर बताया है कि प्रायः चेतन मस्तिष्क में उथल-पुथल मची रहने के कारण हमें अचेतन मस्तिष्क की सामर्थ्यो का बोध तक नहीं हो पाता है। समुद्र के ऊपर जो तरंगें नजर आती हैं, उनके विकराल रूप से न घबराकर गहराई में डुबकी लगाकर गोताखोर बहुमूल्य रत्नराशि खोज निकालते हैं, जो जानकारी के अभाव में समुद्रतल में पड़ी रहती है। लगभग यही स्थिति मस्तिष्क की है। उसका सही और पूरा उपयोग तो हम कर नहीं पाते; परन्तु यदि चेतन मस्तिष्क को शान्त व नियंत्रित किया जा सके, तो अचेतन मस्तिष्क की जागृति हो सकती है तथा उसकी विलक्षण विभूतियों से लाभान्वित होने का अवसर हमें मिल सकता है। अभी जो कुछ भी ई. ई. जी. द्वारा ज्ञात किया जा सका है, वह चेतन मस्तिष्क का विद्युत्-तरंग-प्रवाह मात्र है, इसे मस्तिष्कीय विद्युत् का १३ प्रतिशत भाग माना जाता है।

सामान्यतः दैनिक जीवन में शब्द, ध्वनि, और दृश्य का बोध हमारा चेतन मस्तिष्क ही करता है, परन्तु कभी ऐसा भी अवसर आता है, जब चेतन मस्तिष्क को इनका बोध नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति चेतन मस्तिष्क की सामर्थ्य से परे की ध्वनियाँ दृश्य-पटल पर प्रकट होने अथवा उसके सुषुप्तावस्था में होने पर उत्पन्न होती है। इस अवस्था में अचेतन मस्तिष्क जाग्रत् रहता है। उसे ही शब्द, ध्वनि अथवा दृश्य का गहरा बोध होता है तथा उसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार से आमूल-चूल परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है। साथ ही इस माध्यम से मानसोपचार भी संभव हो सकता है।

प्रयोगकर्त्ताओं के एक दल द्वारा पिछले दिनों फोर्ट-ली-न्यूजर्सी के ग्राहकों को एक प्रोजेक्टर के माध्यम से 'लावा खाओ और कोका कोला पीओ' का संदेश प्रत्येक पाँच सौ पर फिल्म के दौरान प्रेषित किया गया। चेतन मस्तिष्क के लिए यह संदेश उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, परन्तु अचेतन मस्तिष्क में यह अत्यन्त विस्मयकारी परिणाम प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ। शीघ्र ही बाजार में लावा की बिक्री में ५.७५ प्रतिशत तथा कोकाकोला में .३८ प्रतिशत की वृद्धि आँकी गयी।

लूसियाना विश्वविद्यालय के मेडिकल इलेक्ट्रानिक्स

के वैज्ञानिक डा. हालबेंकर ने अपने इस तरह के प्रयोग के लिए 'टैकिस्टोस्कोपिक प्रोजेक्शन' नामक उपकरण का विकास किया है। उन्होंने अपने रोगियों के ऊपर "आइ ऐम आनेस्ट", "आई विल नॉट स्टील, इट इज रांग टु स्टील, इफ आई स्टील, आइ विल गेट कॉट" (मैं ईमानदार हूँ मैं चोरी नहीं करूँगा, चोरी करना पाप है, यदि मैने चोरी की, तो पकड़ा जाऊँगा) का संदेश संप्रेषित करवाया। परिणामस्वरूप रोगियों के व्यवहार में अभूतपूर्व परिवर्तन अनुभव किये गये, इसे स्व–सम्मोहन प्रक्रिया कहा जाये अथवा अचेतन का प्रशिक्षण, वस्तुतः यह अध्यात्म प्रयोगों की क्रिया पद्धति की ही एक अनुकृति है। मिशीगन विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक हार्वर्ड शेवरीन ने अचेतन रूप में प्राप्त विभिन्न देशों का मस्तिष्कीय तरंगों के ऊपर प्रभाव का अध्ययन एक संवेदनशील ई.ई.जी. मशीन से किया। ब्रूकलीन कालेज के मनोवैज्ञानिक मैथ्यू, इरडिली ने भी ऐसे संदेशों के पुनरावर्तन का प्रयोग अनेक रोगियों के ऊपर संभाषण तथा दिवास्वप्न के दौरान किया है। उक्त दोनों ही प्रयोगों से अचेतन मस्तिष्क की क्षमताओं की यथार्थता प्रमाणित की जा सकी। ई.ई.जी. उपकरण से डी.सी. पोटेंशियल साधकर बायोफीड बैक द्वारा विधेयात्मक परामर्श बार–बार विद्युत् तरंगों के रूप में देने का प्रयास अब किया जा रहा है, जिसकी सफलता बताती है कि योग साधनाओं में अचेतन मस्तिष्क का नियंत्रण तथा सुनियोजन कितना तर्कसम्मत व वैज्ञानिक है।

न्यूयार्क विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक लायड सिल्वर मैन ने "मम्मी एण्ड आई आर वन (माँ और मैं एक हैं) का संदेश कई रोगियों को नित्य संप्रेषित किया। स्क्रीन के ऊपर यह संदेश इतनी तीव्रता से दिखाया जा रहा था कि चेतन मस्तिष्क के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं होता, परन्तु ऐसे दस वर्ष के प्रयोग का प्रतिफल शरीर का वजन कम करके मनोविकारों से मुक्ति दिलाने, मद्य, धूम्रपान की आदत छुड़ाने तथा पढ़ाई में अच्छी प्रगति करने के रूप में दृष्टिगोचर हुआ है। १६७५ में किये गये एक प्रयोग में तीस महिलाओं का मोटापा घट गया एवं वे तनावमुक्त हुईं। १६७६ में मोंटाना विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिकों ने सिल्वरमैन प्रणाली अपना कर कितनों को इसी प्रकार संदेश दे देकर सिगरेट पीना छुड़वाया।

अपने प्रयोग प्रतिफलों को देखकर 'सिल्वरमैन' ने उन लोगों को चुनौती दी है, जिन्होंने फ्रायड के अचेतन मस्तिष्क की प्रभाव क्षमता से संबंधित सिद्धान्त को एक कल्पना बताया है, कोई आविष्कार या प्राप्ति नहीं, दूसरी तरफ डा. नाथन ब्रोडी ने ऐनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलोजी १६८० नामक पुस्तिका में तो अचेतन मस्तिष्क को मनः विश्लेषण प्रक्रिया में अत्यन्त सहायक बताया उनका कथन है कि फ्रायड के मनोविज्ञान के एकांगी पक्ष यौन प्रवृत्ति को ही उभारा गया, जबकि अचेतन सम्बन्धी उनका मत अपने विधेयात्मक रूप में काफी हद तक सही भी ठहराया जा सकता है। उभारा उसे जाना चाहिए था, जिससे व्यक्तित्व का विकास होता है, न कि उसे, जिससे कुंठाएँ पनपती हैं।

मानवी मस्तिष्क में लगभग १० खरब स्नायुकोष होते हैं। यदि प्रत्येक को गिनने में एक सेकेण्ड लगे, तो भी इन्हें पूर्णरूपेण गिनने में ३०० सदी लग सकती हैं।

प्राचीनकाल से ही संगीत का उपयोग भी मनश्चिकित्सा के लिए इसी रूप में किया जाता रहा है। वैदिक काल में सामवेद की रचना संगीत के मन पर विलक्षण प्रभाव को देखकर ही की गयी थी। ऋषियों ने संगीत का प्रयोग अपने ही मनको नियंत्रित करने से लेकर अंतराल में छिपी ऋद्धि–सिद्धियों के जागरण हेतु किया था तथा महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की थी। ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व ज्यामिति के विद्वान् पाइथागोरस ने मनश्चिकित्सा में संगीत की उपयोगिता प्रमाणित की थी सीरिया के एक प्रवक्ता लैंबलीकस ने कहा था कि मानसिक तनाव तथा आतुरता के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई व्याधियों के उपचार में संगीत की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कैंपवेल ने अपने प्रयोगों के आधार पर बताया है कि विभिन्न दृश्यों का भी मनुष्य के अवचेतन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उन्होंने कहा कि दृश्यों के आधार पर अवचेतन मस्तिष्क एक विशेष प्रकार की विद्युतीय रसायन प्रक्रिया सम्पन्न करता है, जिससे समस्त शरीर प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

कैम्पवेल ने प्रज्वलित दीपक के समक्ष किसी व्यक्ति को बिठाकर यह प्रमाणित किया कि गहन आनन्द की आवृत्तियाँ उतने समय में बनती हैं एवं मनुष्य परम शान्ति का अनुभव करता है, त्राटक प्रयोग में वस्तुतः बिन्दु–साधना द्वारा यही किया जाता है। एकाग्रता, तल्लीनता, सम्पादन के साथ–साथ उच्छृखंल विचारों पर नियंत्रण एक बड़ी महत्वपूर्ण उपलब्धि है अमरीका के लेसली एम लीक्रान ने भी प्रयोगोपरान्त प्रज्वलित दीपशिखा का रोगोपचार तथा मनःचिकित्सा में महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध किया है। चर्चो में मोमबत्ती जलाकर उपासना करने एवं पारसियों द्वारा

(शेष पृष्ठ ६३ पर)

कौन थे भर ?

– डा. वासुदेव सिंह (सेवा–निवृत्त प्राचार्य)

बैसवाड़ा (अवध का एक भाग) क्षेत्र में बैस क्षत्रियों के आगमन के पूर्व यहाँ पर एक युद्धप्रिय जाति का बोलबाला था। जनश्रुति के अनुसार उस जाति को भर कहा जाता था। बैसवाड़ा ही नहीं, वरन् समस्त अवध के एक बड़े भाग पर उस समय उनका आधिपत्य था। गंगा, सई, गोमती और घाघरा आदि नदियों के तटीय दुर्गम प्रदेशों में उनके दुर्ग थे। उन दुर्गों के ध्वंसावशेष टीलों और ढूहों के रूप में आज भी उनके ऐश्वर्य की साक्षी दे रहे हैं। टीलों और ढूहों में पकी ईटों के रोड़े उनके राज–प्रासादों, दुर्गों, शिव–मंदिरों की गाथाएँ आज भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

उन्नाव, रायबरेली, लखनऊ और बाराबंकी की कौन कहे, प्रायः समस्त अवध में अनेक ऐसे ग्राम आज भी विद्यमान हैं, जिनके बसाने का श्रेय इसी जाति को दिया जाता है। अवध की एक जनश्रुति के अनुसार 'ब' अक्षर से प्रारंभ होने वाले उन्नाव, रायबरेली और बाराबंकी जिले के प्रत्येक ग्राम का नाम भर–जाति के सरदारों के नाम पर हैं। गाजीपुर के जिले का चिरैया कोट का किला उन्हीं का बनवाया हुआ कहा जाता है। इसी भाँति बस्ती और गाजीपुर के अनेक खंडहरों का सम्बन्ध भी उन्हीं से बताया जाता है। उनकी असि–चातुरी और वीरता के कारण ही इतिहास प्रसिद्ध ऊदल जैसे उद्भट वीर तक उनकी सीमा में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सके थे। हिन्दू बैस आदि और मुस्लिम दोनों ही शक्तियों को इस भू–भाग पर विजय प्राप्त करना लोहे के चने चबाने के समान ही था। इतना सब जान लेने के बाद भर कौन थे? इस प्रश्न का समाधान आवश्यक हो जाता है।

भर कौन थे ?

सी. इलियट के अनुसार "अवध में अयोध्या के सूर्यवंशी क्षत्रियों के शासन के अवसान के बाद देश का पूर्वी भाग चेरों द्वारा, मध्य भाग भरों द्वारा और पश्चिमी भाग राजपासियों द्वारा शासित था। यह वनवासियों की जातियाँ थीं, जिन्हें आर्यों ने पहाड़ों पर खदेड़ दिया था। ईसवी सन् के प्रारंभ के लगभग वह पुनः वहाँ से उतरे। उन्होंने आर्य–सभ्यता को आवृत करके सूर्यवंशियों को कनक सेन के नेतृत्व में गुजरात तक खदेड़ दिया। इस भाँति वे हिमालय और विन्ध्य पहाड़ी की मिर्जापुर की दक्षिणी शाख तक फैल गये।" डा. ओबर्ट ने उन्हें टालमी के समकालीन बर्राही, भारती और बर्बर नामक पहाड़ी जातियों से संबंधित बताया है। सुलतानपुर जिले के प्राचीन निवासियों को 'भर' कहा जाता है। ये काले रंग के मध्यम कद और अधार्मिक विचारों तथा गंदी आदतों वाले बताये जाते हैं।

विलियम क्रूक के अनुसार 'भरों' को 'राज भर', 'भरत' और भरपटवा' भी कहा जाता है। यद्यपि क्रूक को विद्वान् पंडितों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि 'भर' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'भू' शब्द द्वारा हुई है। जिसका अर्थ पालन करना होता है, किन्तु उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती (पूर्व–वर्णित) अंग्रेज लेखकों के कथन को ही मान 'भरों' को उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में पायी जाने वाली द्रविड़ जाति का वंशज माना है। डा. काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार, सम्भवतः भर उस जाति का बिगड़ा हुआ रूप है, जो किसी समय भारतीय इतिहास में भारशिव वंश के नाम से काफी ख्याति अर्जित कर चुकी थी।

सम्राट् चन्द्रगुप्त से एक पीढ़ी पूर्व प्रवरसेन वाकाटक ने आर्यावर्त और दक्षिणापथ के एक विस्तृत साम्राज्य का शासन एवं एकाधिकार भारशिवों से ही प्राप्त किया था। उनका संक्षिप्त और सारगर्भित इतिहास एक वाकाटक ताम्र–लेख में इस प्रकार अंकित मिला हैः–

"अंशभार सन्निवेशित शिव लिंगोद्वहन शिव
सुपरितुष्ट समुत्पादित राजवंशानाम् पराक्रमा
धिमतृ = भगीरथी = अमल जल मूर्द्धाभिषिक्तानाम्
दशाश्वमेध = अवभृथ स्नानानाम् भार शिवानाम्"

इस ताम्र–लेख से यह प्रमाणित है कि भारशिव राजाओं ने हिन्दू धर्म और संस्कृति का पुनरुद्धार कर दस अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण कर गंगा के पवित्र जल से उस समय अपना अभिषेक कराया जब कि उत्तरी भारत विदेशी आक्रमणकारी कुषाणों के द्वारा एक शती से अधिक तक शासित रहा और जिसमें पुराणों के अनुसार "नैव

मूर्द्धाभिषिक्तास्ते" राजा राज्य कर चुके थे। भारशिवों द्वारा पुनः प्रतिष्ठापित हिन्दू धर्म संस्कृति और परम्परा की रक्षा वाकाटकों ने भी की। वाकाटकों के बाद सभी गुप्त सम्राटों ने भी इसी संस्कृति को ग्रहण किया था।

डा. जायसवाल ने महाराज श्री भवनाग को भारशिव माना है तथा अनेक प्रमाणों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि भारशिव नागवंशी थे। पुराणों के अनुसार नागवंश की कई शाखाएँ थीं। उन्हीं में एक विदिशा का नागवंश था, जिसे वायुपुराण में वृष अर्थात् शिव का साँड़ या नन्दी कहा गया है। शुंग राजवंश के अवसान पर हुए कई राजाओं के नामों के अंत में नन्दी शब्द मिलता है। अस्तु। डा. जायसवाल के अनुसार 'भारशिव' उपाधि पीछे से ग्रहण की गयी थी, जो कि वायु पुराण के वृष और 'नन्दी' शब्द से संबद्ध है।

सम्राट् प्रवरसेन वाकाटक ने अपने पुत्र गौतमीपुत्र का विवाह भारशिव वंश के महाराज भवनाग की कन्या के साथ कर दिया था। यह स्मरणीय है कि वाकाटक ब्राह्मण थे और नाग क्षत्रिय थे। फिर भी वाकाटक राजवंश के शिलालेखों में इस विवाह को बहुत महत्त्व देकर अनेक बार उल्लिखित किया गया है। यही नहीं राज सिंहासन गौतमीपुत्र को, जो सम्राट् प्रवरसेन का पुत्र और रुद्रसेन प्रथम का पिता था, न प्राप्त होकर रुद्रसेन प्रथम को प्राप्त हुआ था। वह वाकाटक सम्राट् प्रवरसेन का पोता था और भारशिव महाराज भवनाग का नाती भी था। यह साक्ष्य ही पर्याप्त प्रमाण है कि भर न तो द्रविड़ थे और न वनवासी ही थे। वह शुद्ध क्षत्रिय थे। कालान्तर में राज वैभव खोकर जब वह विपन्न हुए तब समाज द्वारा प्रचारित उनके संबंध की धारणाएँ उचित नहीं है।

बैसों के आगमन के पूर्व बक्सर क्षेत्र में भरों की प्रधानता थी। उनका राजा भरौली नामक ग्राम (बाद में रायबरेली नाम से विख्यात) में रहता था। उनके सूर-सामन्त इस विस्तृत भू-भाग के विभिन्न भागों में फैले हुए थे। किंवदंतियों के अनुसार तत्कालीन उत्तर भारत में उनका शासन था। वे लोग डल और बल को अपना पूर्वज व नेता मानते थे। एक जनश्रुति के अनुसार डल नामक भर सरदार ने ही डलमऊ नामक शहर की स्थापना कराई थी। १५वीं शती के दूसरे चरण में डलमऊ के समीप रहने वाले काकोर नामक किसी भर सरदार ने एक हाजी सैयद की पुत्री से विवाह करने की साहसपूर्ण इच्छा का प्रदर्शन किया। लड़की के पिता ने सुल्तान इब्राहिम शर्की (जौनपुर) से उक्त घटना की शिकायत की। डलमऊ के इन्हीं भर सरदारों के दो भाई कपूर और भावन सुदामनपुर में रहते थे। इब्राहीम शाह और हुसैनअली ने सैयद रुकुनुद्दीन और सैयद जहाँगीर तथा मलिक मकदूम शाह आदि के नेतृत्व में एक विशाल सेना लेकर सन् ८०३ हिजरी में होली के शुभ अवसर पर जब सभी भर सरदार मदिरा के नशे में चूर हो रंगरेलियाँ मना रहे थे, उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। नशे के बावजूद भी सभी सरदार बड़ी बहादुरी के साथ लड़े। सुदामनपुर के भयंकर युद्ध के बाद भरों का स्थानीय वंश नाश हो गया। उस युद्ध के स्मरण में भरोठिया अहीरों की स्त्रियाँ आज भी नाक में नथुनी तथा हाथ में काँच की चूड़ियाँ नहीं पहनती हैं। डल की स्मृति में डलमऊ से २ मील पूर्व पखरौली ग्राम में दुर्गाजी की मूर्ति के सम्मुख पत्थर की दो मानव मूर्तियाँ हैं, जिन्हें लोग भर सरदार डल और बल की मूर्तियाँ कहते हैं। सावन के महीनों में अहीर लोग उन पर दूध चढ़ाते हैं। सुदामनपुर के अहीर आज भी फाल्गुन की पूर्णिमा को होली नहीं जलाते हैं। प्रायः १५ दिन बाद होलिकोत्सव मनाते हैं। यही कारण है, आज बहुधा लोग बैसवाड़ा के अहीरों को भरों का वंशज मानते हैं, किन्तु अहीरों को भर मानना युक्ति-संगत नहीं है। सम्भवतः भर विनाश के बाद उनकी कुछ विधवा स्त्रियाँ जो निराश्रित थीं, वे अहीरों के द्वारा अपना ली गयी हों, जिनसे अहीरों में भरोठिया (भर + उठिया = भरों से उठी हुई) शाखा का प्रादुर्भाव हुआ हो। हुतात्मा भर राजाओं एवम् सरदारों की पावन स्मृतियाँ फलतः भरोठिया शाखा में संजोई चली जा रही हैं।

उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में आज भी 'भर' नाम की एक जाति आदिवासियों की भाँति पायी जाती है जिसकी वर्तमान दशा पर ही इलियट, बैनेट, ओल्डमैन आदि ने अपना निर्णय देते हुए उन्हें द्रविड़ या आदिवासी पहाड़ी जातियाँ मानने की भूल की। इन्हीं पूर्ववर्ती अंग्रेज लेखकों के आधार पर जहाँ क्रूक ने भरों को आदिवासी या द्रविड़ माना है, वहीं दूसरी ओर डा. जायसवाल ने भी (भरदेवल, भारहूत आदि का वर्णन देते हुए) भर शब्द को भारशिव का अपभ्रंश मानते हुए भी मिर्जापुर की भर जाति को भारशिव नहीं माना है। यह उनकी अपनी ही मान्यता के विरुद्ध है। अनुमान प्रमाण से यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवतः बैसवाड़ा और अवध में अपने पूर्ण पराभव के बाद भर स्त्रियों का एक वर्ग अहीर आदि जातियों में घुलमिल गया हो, तो दूसरी ओर स्वाभिमानी दल गिरि-कन्दराओं में लुकता-छिपता रहा हो, जो कि वातावरण से दूर रहने के कारण आज आदिवासियों के रूप में हमारे

बीच उपस्थित हैं। इनमें शिव और शक्ति की पूजा-उपासना आज भी पाई जाती है, एवम् मद्यपान का दुर्गुण भी है।

भरों को भारशिव मानने के सम्बन्ध में डा. जायसवाल के कथन की सत्यता का एक अति पुष्ट प्रमाण यह है कि प्रत्येक भर टीले पर विशाल शिवमूर्ति अथवा शिव मंदिर उनकी शिवोपासना एवं भारशिव होने के प्रमाण हैं। पनहन के अचलेश्वर, पनई के भंवरेश्वर, गहिरी (रायबरेली) के गहिरेश्वर दरियापुर के दरियेश्वर इसके कुछ प्रमाण हैं।

बैसवाड़ा क्षेत्र के अनेक भागों में आज भी अनेक द्वार-स्तंभ देवमंदिरों में विराजमान हैं, जिनमें गंगा-यमुना की युगल मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह स्मरणीय है कि गंगा-यमुना की पूजा और प्रतिष्ठा वाकाटकों ने भारशिव शासकों से उत्तराधिकार के रूप में पायी थी, जिसे बाद को गुप्त सम्राटों ने भी अंगीकार कर विकसित किया था।

श्री क्रूक की मान्यता के अनुसार भरों का आदि केन्द्र बहराइच था। वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए वे फैजाबाद और सुल्तानपुर में फैले। मिर्जापुर और गाजीपुर में भी उनके कई दुर्गों के ध्वंसावशेष पाये जाते हैं। डा. जायसवाल की मान्यता के अनुसार "भारशिव लोग मूलतः बघेलखण्ड के निवासी थे और वे गंगा-तट पर उसी रास्ते से पहुँचे होंगे, जिसे आजकल दक्षिण का प्राचीन मार्ग कहते हैं और जो विन्ध्यवासिनी देवी के विन्ध्याचल नामक कस्बे (मिरजापुर संयुक्त प्रांत) में आकर समाप्त होता था।" दोनों की मान्यता के अनुसार विंध्याचल में भर अथवा भारशिवों की उपस्थिति प्रमाणित है। अब रहा बहराइच को भरों का केन्द्र मानने की बात- किंवदंतियों के अनुसार किसी समय बहराइच जिले के बालार्क मंदिर और बालार्क कुंड प्रसिद्ध थे। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के भर डीहों में पाये जाने वाले सूरज बेदी जलाशयों के निर्माण की प्रेरणा यदि भरों को बहराइच के बालार्क कुंड से ही मिली हो, तो क्या आश्चर्य? क्रूक्स के अनुसार भरों द्वारा निर्मित जलाशय सूरजवेदी अर्थात् पूर्व पश्चिम को अधिक लम्बे हैं जबकि आधुनिक जलाशय चतुर्वेदी यानी उत्तर दक्षिण को लम्बे है।

अवध के अनेक शासकों को पराजित कर हिन्दू मंदिरों और तीर्थों को ध्वस्त कर आगे बढ़ते हुए, बहराइच के पवित्र वैदिक बालार्क (सूर्य) कुण्ड को नष्ट करने के लिये उद्यत आक्रमणकारी सैयद सालार मसऊद, महमूद गजनवी का सगा भानजा, को पराजित कर तलवार के घाट उतारने वाले श्रावस्ती के प्रख्यात् राजा सुहेलदेव भारशिव क्षत्रिय ही थे। रायबरेली जिले की महाराजगंज तहसील के पुलिस स्टेशन मोहनगंज के पास मुसलमानों के कई गाँव आबाद हैं, जो अपने को 'भरसइयाँ' मुसलमान बतलाते हैं। इनके वैवाहिक सम्बन्ध भी आपस में ही होते हैं। जमीदारी उन्मूलन के पूर्व तक यह सभी बड़े-बड़े जमींदार थे। उक्त भरसइयाँ शब्द की उत्पत्ति भी 'भारशिव' शब्द से ही प्रतीत होती है। अस्तु, भरों को द्रविड़ या आदिवासी मानने की कल्पना भ्रान्तिमूलक है।

निःसंदेह भारशिव (भर) राजाओं को तत्कालीन मुस्लिम सत्ता के आक्रमणकारी सेनापतियों से पराजित हो अपना सर्वस्व एवम् वर्चस्व खोना पड़ा। शौर्य, शक्ति और साहस में अपराजेय होते हुए भी अत्यधिक सुरापान उनके अधःपतन का कारण बना। उनकी दयनीयता हीनता और असमाजिकता के कारण ही विदेशी इतिहासकारों को उन्हें आदिवासी, जंगली बर्बर और द्रविड़ मानने का भ्रम हुआ था। भरों की राजभर शाखा मूलतः भारशिव क्षत्रिय हैं। शाक्य, मौर्य, गुप्त, कलचुरि और हैहयवंशी क्षत्रिय आज दलित और पिछड़ी जातियों में विलुप्त हैं, जिनके विषय में खोज आवश्यक है। ये स्वाधीन भारत के ५० वर्षों में भी अपने पूर्व गौरव व सामाजिक सम्मान को क्यों प्राप्त नहीं कर सके, यह गंभीर विचार का विषय है।

❐

– ग्राम, डाकघर, चैनपुर, उन्नाव (उ.प्र.)

(पृष्ठ ६० का शेष) **अचेतन मस्तिष्क ...**

अग्निपूजा के पीछे यही मनोवैज्ञानिक महत्व है।

भारतीय योग विद्या के आचार्यों ने प्राचीनकाल में ही प्रत्याहार, ध्यान, धारणा जैसी प्रक्रियाओं को अपना कर अचेतन मस्तिष्क को जाग्रत् करने में सफलता अर्जित की थी इससे उन्होंने दूरदर्शन, दूर-श्रवण, विचार-प्रेषण भविष्यज्ञान, अदृश्य का प्रत्यक्षीकरण आदि कितनी ही अद्भुत क्षमताएँ प्राप्त की थीं। बाह्य तथा अन्तर्जगत् दोनों ही क्षेत्रों में वे समर्थ एवं सिद्ध साबित होते थे। पुनः उन्हीं प्रक्रियाओं का अवलंबन लेकर आज भी इसकी पुनरावृत्ति संभव है। तभी आज भी मन की दृष्टि से दीन-हीन व्यक्ति अपने अंतरंग में सन्निहित शक्ति के विशाल भांडार से परिचित हो सकता है।

❐

–ग्राम व पो. बिसारा, जिला– अलीगढ़ (उ.प्र.)

बलिदान— वीर बन्दा बैरागी का

[वार्तालाप–शैली में है यह कविता – सं०]

– दामोदर स्वरूप विद्रोही

"बोल इस माहौल में क्या कह रहा है,
जबकि तू जंजीर में जकड़ा हुआ है?
दे बदल अन्दाज अपनी जिन्दगी का,
मुफ्त में क्यों बेवजह अकड़ा हुआ है??"

"क्या कहा अन्दाज बदलूँ जिन्दगी का,
किसलिए क्यों कर भला ऐसा करूँ मैं?
मौत का है डर नहीं मुझको जरा भी,
जिन्दगी अपनी जिया तो मौत क्या तेरी मरूँ मैं??"

"मौत जिसको तू बहुत आसान कहता,
इस तरह वह भी न तुझको मिल सकेगी।
रूह थर्रा कर कहे सब बागियों की,
सख्त इतनी मौत किसको मिल सकेगी??"

"वक्त की है माँग इतनी जिद न कर तू,
दे झुका सिर हुक्म शाही मान ले तू।
क्या धरा तेरी फकीरी काफिरी में,
आज से पैगम्बरी फरमान ले तू।।"

"बन्द कर बकवास काफी हो चुकी है,
तू समझता देह यह जकड़ी हुई है।
देह तो कपड़ा समझ कर बदल देते,
आत्मा किस मर्द की पकड़ी हुई है??"

"देह का तो मोह तुमको है सताता,
क्योंकि यह तुमको दुबारा मिल न पाती।
हम बुढ़ापे को बदल बचपन बनाते,
जिन्दगी तुमसे नहीं है दिल लगाती।।"

फिर बढ़े नजदीक उसके मौलवी जी,
और समझाने लगे अपनी कहानी।
कुछ सुना फिर थूक कर मुँह पर उसी क्षण,
कह दिया ले लो, तुम्हें अन्तिम निशानी।।

थूकना क्या था कि जैसे पड़ गया हो,
घी धधकती आग में कुछ और ज्यादा।
जल उठे जल्लाद मन उन बहशियों के,
हो गये वे जंगलीपन पर अमादा।।

कर दिया लाकर खड़ा तारा नयन का,
जो कि था सुकुमार बन्दा का खिलौना।
कह उठा काजी तम्हें मंजूर क्या है,
या नबूबत या कि इसका सिर सलोना।।

लाल आँखों से उबलती ज्वाल बोली,
कायरो, यह वीर का धन्धा नहीं है।
पुत्र के पड़ मोह में जो आन छोड़े,
और होगा राम का बन्दा नहीं है।।

यदि बचा तो देश की सेवा करेगा,
मर गया तो स्वर्ग की सीढ़ी मिलेगी।
आन पर यदि पुत्र मेरा चढ़ गया तो,
वन्दना इसकी सभी पीढ़ी करेगी।।

क्रूर, जालिम कुछ न आगे सोच पाये,
फोड़ करके पेट उस नन्हें सुमन का।
बाप के मुँह पर कलेजा फेंक सुत का,
क्रोध कुछ ठण्डा हुआ था क्रूर मन का।।

एक क्षण संकल्प औ' कर्तव्य काँपे,
देख करके पुत्र का रक्तिम कलेजा।
मुँह घुमाया एक तरफ यह सोच करके,
छू न जाये होठ से सुत का कलेजा।।

तब दहाड़ी सिंहिनी पत्नी उसी क्षण,
रूप से परहेज अपने कर रहे हो?
कोख में रखा जिसे नौ माह मैंने,
एक पल स्पर्श से तुम डर रहे हो??

शान्त संयत भाव से यों वीर बोला,
"ग्रास पहला राष्ट्र के भावी हवन का।
रक्त जिससे हाथ–मुँह मेरे सने हैं,
पूज्य गंगाजल हमारे आचमन का"।।

बाप की ही जिन्दगी में क्या हुआ है,
पुत्र ने तर्पण किया अपने लहू से।
कौन लिखेगा अमर इतिहास ऐसा,
किस कलम से और फिर किसके लहू से??

पुत्र के पीछे पिता की देह सारी,
गर्म चिमटों से गई नोची उसी क्षण।
मर गया वह राष्ट्र का गौरव बचाकर,
किन्तु विचलित हो न पाया बावला प्रण।।

नमन सौ सौ बार इस बलिदान को है,
नमन सौ सौ बार इस बन्दा भगत का।
नमन सौ सौ बार तेरे लाड़ले को,
नमन सौ सौ बार नानक के जगत का।।

—चमकनी, बहादुरगंज, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

जो प्रतिदान क्रान्तिकारी ने स्वीकार किया

— क्रान्ति–पथिक

गदर पार्टी के क्रान्तिकारी पं० परमानन्द जो ३० वर्षों तक अन्दमान (काले पानी) आदि की जेलों में रहे और काले पानी में भी जिन्होंने वहाँ के दुष्ट और जालिम जेलर मि० बारी जो जमीन पर पटक कर पीटा, जिसके अपराध में उनको वहाँ ३० बेंत लगाये गये, उन बेंतों के निशान कभी उनके शरीर से मिटे नहीं, मुझे दिखाये थे अपनी पीठ के गहरे निशान– मेरे आवासीय स्थान सण्डीला वाले मेरे घर भी आये, रहे। रात में उन्होंने अपने काले पानी के संस्मरणों में मुझे सुनाया कि अन्दमान की सेलुलर जेल को हम लोग, जो क्रान्तिकारी कैदी थे– **"नालन्दा– विश्वविद्यालय"** कहते थे, जिसके कुलपति थे महान् क्रान्तिवीर विनायक दामोदर सावरकर। वही हमें वहाँ देश–विदेश के क्रान्ति–इतिहास सुनाया–पढ़ाया करते थे। उन्होंने हमें थोरो और एमर्सन की पुस्तकें भी पढ़ने को दीं, पर पढ़ने पर वे हमारी समझ में न आईं– यह बात जब हमने वीर सावरकर को बताई तो उन्होंने कहा– "पढ़ो, फिर पढ़ो। अरे, एक वे थे, जो ये पुस्तकें लिख गये और एक तुम हो, जो उनकी लिखी वे पुस्तकें समझ भी नहीं पाते। ऐसा करो, बहुत प्रातः लगभग ५ बजे उठकर उन्हें पढ़ो–समझोगे।" वे दर्शन–ग्रन्थ थे। कठिन थी उनकी विषयवस्तु, परन्तु सावरकर इन क्रान्तिकारियों को उन्हें भी पढ़ने–समझने को प्रेरित–उत्साहित करते थे। बकौल पं० परमानन्द एक दिन वीर सावरकर ने क्रान्तिकारी कैदियों को एक मैक्सिकन क्रान्तिकारी की अद्‌भुत जीवन कथा सुनाई, जिसका नाम था– 'विला'। यह स्मरणीय है कि वीर सावरकर को डबल काले पानी की सजा अंग्रेजों ने दी थी अर्थात् ५० वर्ष और वहाँ का जेलर बारी उनसे कहता था, "मि० सावरकर ! यह सजा काटने के बाद क्या तुम जिन्दा भी रहोगे ?" तो सावरकर उसे मुँहतोड़ जवाब देते थे कि "हम जिन्दा रहें न रहें, पर तब तक तुम्हारा राज्य तो रहेगा नहीं; भारत स्वतन्त्र हो चुका होगा।" कालेपानी में इतनी लम्बी सजा के कारण सभी सामान्य कैदी सावरकर को 'बड़े बाबू' कहते थे। सावरकर ने पं० परमानन्द की वीरता और साहस को सराहते हुए अपने मराठी ग्रन्थ **"माझी जन्म–ठेप"** में परमानन्द जी द्वारा आयरिश जेलर को पीटने की घटना पर ४ पृष्ठ लिखे हैं– यह बड़ी बात है कि सावरकार सरीखा क्रान्तिकारी भीष्म पितामह किसी क्रान्तिकारी की वीरता का बखान करते हुएं अपनी लौह लेखनी से ४ पृष्ठ लिखे। वीर सावरकर अन्य दोनों भाई गणेश सावरकर (बाबाराव सावरकर) और डॉ० नारायण राव सावरकर भी लम्बी सजाएँ लेकर कालेपानी पहुँचे थे। एक परिवार के तीन भाई अण्डमान में क्रान्तिकारी कैदी। कहाँ है ऐसी मिसाल। पर इस देश के शासकों ने इन सावरकर–बन्धुओं के त्याग–बलिदान की कद्र न की वरन् उन पर विस्मृति की धूल की पर्तें ही चढ़ाईं। सावरकर द्वारा पं० परमानन्द को सुनाई उस मैक्सिकन क्रान्तिकारी विला की क्रान्ति–कथा मैं यहाँ दे रहा हूँ।

एक समय ऐसा था, जब मैक्सिको पराधीनता पाश में जकड़ा छटपटा रहा था उसे स्पेन ने गुलाम बना रखा था। उसी मैक्सिको देश में एक गरीब परिवार का युवक था, जिसका नाम था– विला। विला मैक्सिको के ही एक सौदागर के पास नौकरी करता था। सौदागर जब बिक्री के सामान से घोड़ा लादकर अमेरिका जाता, तो विला को भी उसके साथ घोड़ा हाँकते हुए हर बार जाना–आना पड़ता था। विला घर की गरीबी के कारण कुछ अधिक पढ़–लिख नहीं सका था। वह अमेरिका में देखता कि वहाँ के लोग बड़े सुख में हैं, खाने–पीने–पहनने की मोहताजी नहीं नजर आती तो वह कई बार अमेरिकनों से पूछता यह बात इस पर अमेरिकन उसे चिढ़ाते– अपमानित करते, कहते– "तुम भी एक ही मूर्ख हो जो इतना भी नहीं समझते कि तुम्हारा देश क्यों इस हालत में है ? अरे, वह स्पेन वालों का गुलाम जो है– स्वतन्त्र नहीं है। स्पेन तुम्हारे देश को मनमाने ढंग से लूट–खसोट रहा है। तुम्हारी धन–सम्पदा, उत्पादनों का शोषण करके अपना खजाना भरता है और इसी कारण तुम्हारे देशवासी नंगे–भूखे रहकर बुरी जिन्दगी बिता रहे हैं। हमसे क्या पूछते हो ? हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं, हमारा देश किसी दूसरे का गुलाम नहीं– समझे।" इसी तरह रोज–रोज विला की शंकाओं का समाधान होता गया और वह कम पढ़ा होने पर भी अच्छी तरह यह तथ्य हृदयंगम कर सका कि उसके अपने देश की यह गिरी दशा क्यों है ? उसके युवा हृदय में एक आग जल उठी वह थी स्पेनिश दासता के विरुद्ध विद्रोहाग्नि, क्रान्ति–ज्वाला। फिर वह अपने देश वालों से भी इस बात की चर्चा करता रहता– उसके कुछ समवयस्क मित्र साथी जिनमें कुछ शहरी थे, तो कुछ ग्रामीण जुड़ गये। अब इसी परिप्रेक्ष्य में मैक्सिको में बैठकें होने लगीं कि हम भी स्वतन्त्र क्यों न करें स्वदेश को ! तब सुझाव आये कि खाली बातों से क्या होगा। मित्रों–साथियों

ने धन देकर विला से अमेरिकी पिस्तौलें, कारतूस, रायफलें मँगानी शुरू कीं पर फिर सोचा गया कि इतने हथियारों से क्रान्ति कैसे सम्भव होगी ? उन सभी युवकों–प्रौढ़ों को मिलाकर, संगठित एक दल बना, क्रान्तिदल और इसे गुप्त रखा गया। कहीं इसकी खबर न हो, किसी को भनक न मिले, यह प्रचेष्टा की गई और फिर अधिक शस्त्रास्त्र संग्रहार्थ एक दिन इस दल ने एक स्पेनिश सैनिक केन्द्र पर जो वस्तुतः छावनी ही थी– रातों–रात धावा बोल दिया। कई स्पेनिश सैनिक मारे गये और विला के दल ने छावनी के शस्त्रास्त्र, गोला–बारूद, नकदी लूट ली। यह सब अब दल की सम्पत्ति मानी गई। विला के दल की चर्चा पूरे देश में फैल गई। बड़ी प्रशंसा की गई। मैक्सिकन तरुणों के दिल उत्साह और उमंग से उछलने लगे जिससे नये–नये युवक स्वयं आकर विला के दल में उत्साहपूर्वक शामिल होने लगे। दल का विस्तार हो गया। स्पेनिश पुलिस और सेना इन लोगों के केन्द्र खोजने लगी, जहाँ–तहाँ दल के इक्का–दुक्का लोग गिरफ्तार भी किये गये। इन्हें सजाएँ दी गईं। पर इससे मैक्सिको की जनता में और आक्रोश बढ़ा– दल को और अधिक शक्ति मिली। साधन बढ़े। दल भी बढ़ता गया। परिणामतः खुले आम स्पेनिश सेना और मैक्सिकन क्रान्तिदल से संघर्ष होने लगे और अफसर स्पेन पलायन कर गये।

अब मैक्सिको में वहीं का स्वतन्त्र ध्वज लहराने लगा, स्पेनिश ध्वज फाड़कर फेंक दिया गया। चतुर्दिक् विला की तारीफ होने लगी। उसे मैक्सिकन क्रान्तिकारियों ने अपने नेता मानकर कन्धे पर उठाये जुलूस निकाला। उसका जय–नाद गुँजाते तो वह शर्माता। संकुचित होकर कहता, "ऐसा मत करो, यह समय मेरे घायल साथियों की शहीद साथियों के परिवार की सेवा–सहायता में लगाओ।" अन्त में स्वतन्त्र मैक्सिको की सरकार बनाने का समय समुपस्थित हुआ, तो सभी ने विला से राष्ट्रपति पद स्वीकार करने का प्रस्ताव किया, पर उसने स्वीकार न किया। तो उसे प्रधानमन्त्री–पद स्वीकार करने के लिए आग्रह किया गया, पर उससे भी जब उसने इन्कार किया, कहा, "क्या हमने यही कुछ गले लगाने के लिए इस रास्ते पर कदम रखा था ? क्या इस संघर्ष के लिए अकेले मेरा ही योगदान है ? मुझे कोई पद–प्रतिष्ठा नहीं चाहिए। देश–सेवा कोई पुरस्कार या प्रतिदान नहीं चाहती। मेरे देश की नई पीढ़ी को यह गलत पाठ मत पढ़ाओ। तुम सब तो पढ़े–लिखे, पूर्ण शिक्षित हो– मैं तो सिर्फ एक गरीब किसान का लड़का था, जो कुछ देश की सेवा सम्भव हो सकी, की उसका महत्त्व क्या ? वह तो मेरा हर किसी का कर्त्तव्य ही था, उसका कोई बदला क्यों लूँ ?"

तब उसे प्रभूत धन दिया गया, जिसे उसने अपने घायल साथियों और शहीद साथियों के परिवारों में बँटवा दिया अपने पास उसमें से कुछ न रखा। फिर भी जब मैक्सिकन लोग उसके पीछे पड़े कि आखिर अपने परिवारजनों के लिए तो कुछ सहयोग सहायता–राशि स्वीकार ही कर लें, उस महान् क्रान्तिकारी ने कहा, "अच्छा भाई ! तुम लोग नहीं मानते हो तो चलो, मेरे पास अपना एक घोड़ा है, थोड़ी–सी जमीन भी है खेती लायक मेरे पिता वहीं खेती करते थे। एक घोड़ा और हो जाने से मैं उसी जमीन पर खेती कर लूँगा। बस, इसके बाद मुझसे कुछ लेने की बात न करना।" और उसने राज्य से केवल एक घोड़ा ही लेना स्वीकार किया, क्योंकि वहाँ घोड़ों से ही खेती होती थी।

जिसने सुना, दंग रह गया। धन्य विला ! धन्य तेरी देशभक्ति ! धन्य तेरी क्रान्ति–भावना ! क्या आज अपने देश में सत्ता–लिप्सा की होड़ में जो रस्साकशी चल रही है, उसे देखते हुए क्रान्ति–नायक विला का यह आदर्श अपनी सामयिकता नहीं उजागर करता ? और हम क्यों भूलते हैं कि एक दिन त्रेता युग में जब भरत से अयोध्या का राज्य–तन्त्र सम्भालने को कहा गया, तो नन्दिग्राम में भूमि खोदकर बनाई गई कुटिया से भरत की यह वाणी गूँजी थी कि,

"राज्य नहीं, मैं राम चाहता, ध्वनि कुटिया से आई"

और गले मढ़ने पर भी राजगद्दी भरत ने स्वीकार न की। और इस कलियुग में भी हमारे देश के क्रान्तिकारी पं० रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी, अश्फाक, सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि यही कामना तो व्यक्त करते रहे थे कि,

"हाय ! हम सब यूँ खड़े देखा करें,
और तू रुसवा सरे बाजार हो ?
हैफ ! हम उस दिन को जिन्दा क्यों रहें,
तू तो सर माँगे हमें इन्कार हो !"

फाँसी का फन्दा चूमने और अपने गले में पहनने जाते समय भी उनकी यही अभिलाषा रही थी कि,

"फिर जहाँ में जन्म लेंगे, हम गरीबाने वतन।
हम बनेंगे बागबाँ, अपना तुही होगा चमन।।"

और बंगाल के क्रान्तिकारी भी इसी बलि–पथ पर यही गाते हुए चले गये थे कि

"माँ ! तोमार चरण–दुटि, वक्षे आभार धरी।
एइ देशे ताइ आमार जन्म, एइ देशे ताइ मरी।।"

– अर्थात् "हे भारत जननी, तुम्हारे दोनों चरण हमारे वक्ष पर रखे हों और इसी तरह तुम्हारे ही कार्य में हमारा अन्त हो, मरण और इसी के लिए तो तुम्हारी पावन गोद में हम जन्मे हैं।" □

चिट्ठी आई पेरिस से

खिली-खिली धूप : खिले-खिले फूल

— डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

फ्रान्स का मौसम प्रायः अनिश्चित माना जाता है– प्रिया के मिजाज की तरह, क्षणे रुष्टा और क्षणे तुष्टा। घर से अच्छी-भली धूप देखकर निकले, लेकिन मेट्रो स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते फुलझड़ी वर्षा प्रारम्भ! रात में हल्की गर्मी और आधी रात के बाद बेहद ठण्ड! इसीलिए पेरिसवासी मौसम के इस मिजाज को देखते हुए सावधान रहते हैं। मौसम की इस क्षण-क्षण परिवर्तनशील प्रकृति के रहते हुए भी फ्रान्स में सामान्यतः चार ऋतुएँ मानी जाती हैं– पतझर (शरद्), शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म। मैं जब अक्तूबर में आया था, तो पतझर की स्थिति थी– धरती पर बिछे पीले पत्तों की राशि देखकर ऐसा लगता था, जैसे किसी ने चप्पे-चप्पे पर स्वर्ण-राशि बिखेर दी हो! उसी तरह जैसे भगवान् बुद्ध के लिए जेतवन खरीदने के निमित्त उनके किसी उदार भक्त ने, प्रभु-कृपा से जिसे समृद्धि भी अपार मिली थी, पूरी भूमि पर सुवर्ण-मुद्राएँ ही बिछा दी थीं। फिर धीरे-धीरे पेड़ नंगे हो गये, बिल्कुल नागा साधुओं की तरह हिमपात के समय काले-काले वल्कल में लिपटे हुए वे ऐसे लगते थे, जैसे भभूत-सी रमाये योगियों के समूह हिमालय में तपस्या कर रहे हों। जिनमें पत्तियाँ रह भी गई थीं, वे प्रचण्ड ठण्ड और हिमपात से लाल-लाल पड़ गई थीं बल प्रयोग से त्रस्त साध्वी नारी की तरह। मार्च के मध्य तक लगभग यही स्थिति रही, लेकिन वसन्त के आते ही पेड़ों में नई-नई हरी-हरी पत्तियाँ दिखने लगीं– पेरिस के हर उद्यान में रंग-बिरंगे फूलों की बहार आ गई इतनी तरह के फूल इतने आकर्षक कि लगता है जैसे धरती पर नन्दनवन ही उतर आया हो।

मैं सिटी युनिवर्सिटी के जिस परिसर में रहता हूँ, उसके पास एक बहुत बड़ा उद्यान है– पार्क मोंसूरी। मोंसूरी नाम अपनी मसूरी से मिलता-जुलता है, इसलिए भी कहीं अपनी ओर आकृष्ट करता है। इस उद्यान की संरचना एक छोटे-से वन की तरह की गई है। उठी-उभरी पहाड़ियाँ, मानव निर्मित होने पर भी प्राकृतिक प्रतीत होने वाला झरना, पेड़ों के झुरमुट से घिरी विशाल झील, असंख्य पेड़-पौधे, हरे-हरे दूर तक फैले मैदान और कण-कण पर उगाये गये रंग-बिरंगे फूल। शीत ऋतु में यहाँ की झील बिल्कुल जम गई थी। पत्थर की तरह कठोर बर्फ के रूप में, लेकिन बहुत-से जलचर पक्षी तब भी उस पर बैठे रहते थे और ठिठुरन में भी पक्षी-प्रेमी नर-नारी उन्हें डबल रोटी के टुकड़े खिलाते रहते थे। एक वृद्ध महिला तो साँझ के अँधेरे में भी झील के किनारे खड़ी-खड़ी देर तक दाना चुगाती रहती थीं। वसन्त के आगमन के बाद तो यह उद्यान अत्यन्त मनोहर हो उठा है। यों फ्रान्सीसियों को फूलों से प्रेम भी बहुत है। नगर के हर चौराहे एवं तिराहे पर तो फूलों की क्यारियाँ मिलेंगी ही, घरों में, उनके छज्जों और छतों पर भी बहुविध ताजे फूलों के गमले और गुलदस्ते। खाने की मेज तक भी फूलों से सजी।

अज्ञात कारणों से, इस बार पेरिसवासियों के कथनानुसार मौसम अपेक्षाकृत अच्छा रहा। न तो ज्यादा हिमपात हुआ और न अधिक ठण्ड पड़ी। फिर मार्च के अन्तिम सप्ताह से खिले फूल। अप्रैल मास का पश्चिम में एक दूसरे कारण से भी विशेष महत्त्व है। वह है ईस्टर पर्व के निर्मित्त। जन-विश्वास है कि प्रभु ईसा इसी दिन पुनर्जीवित हो उठे थे। इसलिए पश्चिम के अन्य देशों की तरह, फ्रान्स में भी ईस्टर के उपलक्ष्य में लम्बी छुट्टियाँ होती हैं– पन्द्रह दिनों के लिए विश्वविद्यालय में भी अवकाश होने वाला था। मैं इस अवकाश का सदुपयोग कैसे करूँ, एतदर्थ कुछ चिन्तित था। एकाकी व्यक्ति को, यों भी कभी-कभी अवकाश के दिन उबाऊ लगने लगते हैं। मेरे सामने तीन विकल्प थे– पहला यह कि अन्य मित्रों की तरह यूरोप के कुछ देशों का भ्रमण करना, दूसरा था मैत्रायणी उपनिषद् की हिन्दी व्याख्या को पूरा करना और तीसरा था फ्रान्स के ही भीतर ग्राम्य अथवा उपनगरीय जीवन का अवलोकन। अनिश्चय की इसी स्थिति में एक अपरिचित फ्रांसीसी महिला का फोन आया– 'मैं आपसे मिलना चाहती हूँ।' मैंने उन्हें अगने दिन विश्वविद्यालय आने के लिए कह दिया। उनसे मिलने पर ज्ञात हुआ कि वे योग-तन्त्र पर अनुसन्धान कर रही हैं और इसी सन्दर्भ में किसी संस्कृत ग्रन्थ के अध्ययन में मेरी सहायता चाहती हैं। पेरिस से बहुत दूर, दक्षिण प्रान्त में, मार्साई के पास आर्ल्हनगर में रहती हैं। अवकाश होने के कारण आर्ल्ह में

कुछ दिन रहकर, ग्रन्थ के अध्ययन में सहायता तो करने का उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार तीसरे विकल्प को क्रियान्वित करने का अप्रत्याशित अवसर पाकर मुझे प्रसन्नता ही हुई। आर्ल्ह लौटते ही उन्होंने टिकट भी भेज दिये।

फ्रान्स में, बड़ी तीव्रगामी कुछ रेलें हैं– टी०जी०वी० कहलाती हैं– २०० किमी० से ज्यादा की रफ्तार से चलने वाली। प्रायः आठ नौ सौ किमी० की दूरी तय करके इस गाड़ीसे मैं चार–पाँच घण्टों में ही आर्ल्ह पहुँच गया। स्टेशन पर वे स्वयं थीं– इसलिए नये और अपरिचित में पूछताँछ करने से भी बच गये। इन महिला का नाम है श्रीमती ब्रिजित। भारतीय ज्ञान–विज्ञान और कलाओं से गहरा अनुराग होने के कारण इन्होंने अपना नाम भी भारतीय रख लिया है। दस वर्ष मद्रास में रहीं– वहाँ रहकर भरतनाट्यम सीखा, केलूचरण महापात्र की शिष्य परम्परा में दीक्षित हुईं– उनका भारतीय नाम है– तारा। यौवनकाल में वे कुशल नृत्यांगना ही नहीं थीं, नृत्यकला (भारतीय) की विशेषज्ञा भी थीं। नृत्यकला पर प्राचीन संस्कृत–ग्रन्थ 'अभिनय दर्पण' का उन्होंने फ्राँसीसी और अंग्रेजी भाषाओं में अनुवाद किया है– सचित्र, मुद्राओं की अपनी विशिष्ट अभिव्यक्तियों के साथ। मद्रास (चेन्नै) के किसी विशिष्ट कलागुरु की भी शिष्या बनीं। कुछ समय तक पाण्डिचेरी में स्थित भारतीय विद्याओं के फ्राँसीसी संस्थान (फ्रेंच इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलोजी) में प्राध्यापिका रहीं। भारत भर में घूम–घूमकर नृत्यकला का प्रशिक्षण लिया और दिया। फिर फ्राँस लौट आईं। दो वर्ष पेरिस में रहीं, लेकिन यहाँ का भीड़भाड़ भरा जीवन उन्हें पसन्द नहीं आया। इसलिए सुदूर दक्षिणीनगर आर्ल्ह में रहकर योग पर अनुसन्धान कर रही हैं। फ्राँस सरकार की एक शोध संस्था है– सी० एन० आर० एस० (C.N.R.S.) उसी की शोध वैज्ञानिक के रूप में। 'हठयोग प्रदीपिका' का फ्राँसीसी में अनुवाद करके उसे प्रकाशित करा चुकी हैं। सम्प्रति उनके अनुसन्धान की विषय है महायोगी गोरखनाथ की संस्कृत– कृति 'सिद्ध–सिद्धान्त–चन्द्रिका', इसी के अनुवाद में उन्हें मेरी सहायता की आवश्यकता थी। 'सिद्ध सिद्धान्त चन्द्रिका' अत्यन्त कठिन ग्रन्थ है। अभी तक, उसका किसी भारतीय भाषा में भी अनुवाद नहीं हुआ। उपलब्ध संस्करण भी अत्यन्त दोषपूर्ण है, लेकिन ताराजी उसके फ्राँसीसी अनुवाद में निष्ठा से संलग्न हैं। उनके घर में योग और तन्त्र के साथ ही भारतीय कलाओं पर भी दस हजार से अधिक ग्रन्थों का विशाल संग्रह है। प्राच्य–विद्या विषयक उनके पुष्कल पुस्तक–संग्रह को देखकर लगता है, जैसे पुस्तक– रूप में वे पूरे भारत को ही उठा लायी हों। घर भर में अनेक यन्त्र–तन्त्र लटके हैं, भारतीय देवी–देवताओं के अत्यन्त कलात्मक चित्रों का उन्होंने संग्रह किया है। योग के दुर्लभ ग्रन्थों के साथ ही उपनिषदों का भी उनका संग्रह अति मूल्यवान् है। आर्ल्ह स्थित उनके घर में दस दिन रहकर 'सिद्ध सिद्धान्त चन्द्रिका' के आद्यन्त पारायण को मैं अपनी इस वर्ष की उपलब्धि मानता हूँ। ताराजी ने सामिष भोजन का परित्याग तो बहुत पहले कर दिया था– कई वर्षों से मद्य भी नहीं लेतीं। फ्रान्स में रहकर भी, सामिष भोजन से हटकर मात्र शाकाहारी भोजन करते हुए स्वस्थ और आनन्दपूर्वक जीवन जिया जा सकता है, इसे समझने का अवसर भी मुझे उनके घर में मिला। फ्राँसीसी और भारतीय भोजनों का समन्वय उन्होंने अत्यन्त कुशलता पूर्वक कर लिया है।

अगाध और निर्मल जल–राशि से इठलाती हुई रोन नदी के किनारे स्थित आर्ल्हनगर फ्रान्स का अत्यन्त प्राचीन नगर है– लगभग दो हजार वर्ष पुराना। छठी शती ई० तक रोमनों के अधीन रहा। रोमनों ने यहाँ अत्यन्त भव्य भवन, गिरजाघर विशाल नाट्यशालाएँ इत्यादि बनवाये थे। अत्युन्नत एम्फी थियेटर और खुली नाट्यशाला के खण्डहर अब भी गर्व से सिर ताने खड़े हैं। आर्ल्ह को यदि रोमन–संस्कृति की रंगशाला कहा जाये, तो अनुचित न होगा। उनके समय के पुरातात्त्विक अवशेषों से सुशोभित विशाल संग्रहालय भी वहाँ हैं। जिसमें तत्कालीन मोजइक फर्शें, पत्थरों के मूर्त्ति शिल्पान्वित विशाल ताबूत और घरेलू उपयोग की अन्य तत्कालीन वस्तुएँ सुरक्षित हैं। आर्ल्ह प्रख्यात चित्रकार वान गाग की भी कर्मभूमि रही है। इस महान् चित्रकार को अपने जीवनकाल में न पहचान मिल पाई और न प्रतिष्ठा ही। प्रेम के क्षेत्र में भी केवल गहरी निराशा ही मिली। पूरा जीवन ही गरीबी में बीता, लेकिन आज आर्ल्ह में उनके विषय में ही दो संग्रहालय हैं। एक में उनकी अपनी कला कृतियाँ हैं (ज्ञात हुआ है कि अब यह संग्रहालय कहीं स्थानान्तरित हो गया है) और दूसरे में उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए अन्य कलाकारों के द्वारा बनाई गई कला कृतियाँ हैं। रोन नदी की एक शाखा पर बने पुराने लकड़ी के पुल को यहाँ की सरकार ने केवल इसलिए नहीं तोड़ा है कि उसे कभी वान गाग ने रँगा था। दूर–दूर से लोग उस साधारण से पुल को केवल इसलिए देखने आते हैं कि उससे वानगाग का कोई सम्बन्ध था। अपने कलाकारों को फ्राँसीसी कितना मान देते हैं। ❐

– सारबोन विश्वविद्यालय, पेरिस

खेल-जगत्

क्रिकेट के खेल में चमका नया तारा– सचिन तेंदुलकर

– मृत्युञ्जय दीक्षित

गत दिनों सम्पन्न हुआ क्रिकेट सत्र भारत के लिए कई महान् उपलब्धियों वाला सत्र सिद्ध हुआ। इस दौरान सचिन तेंदुलकर स्वयं को विश्व के श्रेष्ठतम बल्लेबाजों की श्रेणी में स्थापित करने में सफल रहे हैं। भारतीय क्रिकेट टीम में गावस्कर तथा कपिलदेव के अवकाश के बाद जो शून्य उभरा था, सचिन के प्रदर्शन से क्रिकेट प्रेमियों तथा पारखियों में विश्वास पनपा है कि वह शून्य भर जायेगा। पूरी श्रृंखला पर दृष्टि डाली जाए, तो सचिन के कीर्तिमान आश्चर्यजनक ही कहे जायेंगे। सभी टेस्ट मैचों तथा एक दिवसीय मैचों में कुल मिलाकर ११३० से अधिक रन उन्होंने बनाये।

आस्ट्रेलियाई टीम का भारतीय प्रवास शुरू होने से पहले प्रचार माध्यमों ने आस्ट्रेलियाई स्पिनर शेनवार्न की गेंदबाजी का भय पैदा करने का यथाशक्ति प्रयास किया; किन्तु सचिन ने अपनी आक्रामक बल्लेबाजी से आलोचकों का मुँह बन्द कर दिया। आस्ट्रेलिया के विरुद्ध पहले तीन दिवसीय प्रथम श्रेणी मैच में २०४ रन बनाकर सचिन ने शेनवार्न को दिन में तारे दिखा दिये। मुम्बई टीम ने यह मैच १० विकेट से जीता। रन बटोरने के इस सफल अभियान का अन्त सचिन ने शारजाह के कोका–कोला कप के फाइनल में १३४ रनों की महत्त्वपूर्ण पारी खेलकर किया।

खेल की दृष्टि से सचिन ने अनेक खिलाड़ियों को काफी पीछे छोड़ दिया है। चारों ओर सचिन की ही चर्चा है। श्रृंखला के प्रथम मैच से अन्तिम एक–दिवसीय मैच तक निरन्तर जिस प्रकार उसके खेल में निखार आता गया, वह इस शताब्दी का सचमुच एक आश्चर्य है। विश्व प्रसिद्ध क्रिकेटरों ने सचिन को भारत की महान् धरती पर जन्मे एक 'चमत्कार' के रूप में माना है।

तीन टेस्ट मैचों की श्रृंखला, जो कि भारत ने २–१ से जीती थी, उसमें प्रथम दोनों मैचों में सचिन तेंदुलकर ने ही पाँसा पलटा था। तीसरे टेस्ट मैच में सचिन के असफल होने से भारतीय टीम भी असफल हो गई। तीन देशों भारत, आस्ट्रेलिया तथा जिम्बाब्वे के मध्य खेली गई श्रृंखला के भी भारत ने सभी लीग मैच जीते थे, किन्तु फाइनल में सचिन व अजय जडेजा के लड़खड़ा जाने से भारत फाइनल मैच हार गया। इस पूरी श्रृंखला में भी सचिन ने कई सराहनीय पारियाँ खेलीं, जिसमें कानपुर की पारी विशेष आकर्षक पारियों में से एक थी। इसमें सचिन ने सात छक्कों की सहायता से सबसे तेज गति से रन बटोरते हुए शतक बनाया।

इस श्रृंखला के तुरन्त बाद भारतीय टीम का शारजाह दौरा था। यहाँ पर भी भारत की भिड़न्त आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के साथ ही थी। सचिन ने यहाँ पूरा दृश्य ही बदल दिया। हालाँकि भारतीय टीम को फाइनल में प्रवेश रन गति के आधार पर ही मिला था; किन्तु इसका पूरा श्रेय सचिन को ही जाता है। फाइनल में पहुँचने के लिए भारत को अपने अन्तिम लीग मैच में रन–गति सुधारनी आवश्यक थी, अतः सचिन ने ५ छक्कों तथा ८ चौकों की सहायता से १४२ रनों की पारी खेलकर भारत को फाइनल में पहुँचाया। भारत पहला फाइनल मैच आस्ट्रेलिया से हार गया। उस दिन 'मैन ऑफ द मैच' का पुरस्कार लेते समय ही सचिन ने घोषणा कर दी थी कि आस्ट्रेलिया इस श्रृंखला का फाइनल मैच हार सकता है, क्योंकि उसने सभी लीग मैच जीते हैं और सचिन की यह भविष्यवाणी पूरी तरह खरी उतरी। भारतीय गेंदबाजों ने शुरू में आस्ट्रेलियाई बल्लेबाजों पर अच्छा प्रभाव जमाते हुए मात्र १२१ रन पर पाँच विकेट झटक लिये, किन्तु माइकेल ने साहसिक पारी खेली और भारत के समक्ष २७६ रनों का एक बड़ा 'स्कोर' रखा। जिसके जवाब में सचिन ने अपनी विशिष्ट शैली में खेलते हुए एक बेहतरीन और आकर्षक पारी खेलकर भारत को विजय की बुलन्दियों पर ला खड़ा किया। कई विशेषज्ञ १३४ रन पर अम्पायर द्वारा आउट करार देने के निर्णय को विवादास्पद बता रहे हैं। खैर, जो भी हो इतना अवश्य है कि सचिन का खेल प्रशंसनीय एवं विशेष सराहनीय रहा।

कप्तानी से हटने के बाद सचिन ने अपना पूरा ध्यान अपने खेल पर केन्द्रित किया है, फलस्वरूप उसमें निरन्तर निखार आता गया। चाहे कानपुर में खेली गयी पारी हो या कोच्चि का मैदान, जिस पर झटके गये ५ विकेट अथवा शारजाह का १४२ और १३४ रनों की शानदार पारी, सचिन का ही खेल सबसे आकर्षक रहा।

आज भारत का यह युवा खिलाड़ी कपिलदेव, गावस्कर, श्रीकान्त, इमरान, डेसमण्ड हेंस आदि अनेक श्रेष्ठ खिलाड़ियों को पीछे छोड़ चुका है। अधिकांश पूर्व खिलाड़ी २५ वर्षीय सचिन को महान् घोषित कर चुके हैं। जिस तरह से सचिन आगे बढ़ रहा है, यदि यही गति तथा निखार उसके प्रदर्शन में बना रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब सचिन सर डॉन ब्रेडमैन की भी बराबरी कर लेगा और सम्भवतः उन्हें भी पछाड़ देगा। फाइनल में हारने के बाद आस्ट्रेलियाई कप्तान ने कहा कि वह एक महान् खिलाड़ी के हाथों पराजित हुए हैं, अतः उनको इस पराजय पर अफसोस न होकर गर्व हो रहा है। स्पिनर शेनवार्न ने सचिन को महान् खिलाड़ी बताते हुए कहा कि उन्हें स्वप्न में भी केवल सचिन ही दिखाई देता है कि कब उसने मेरी गेंद पर छक्का मार दिया।

सचिन तेंदुलकर वस्तुतः विश्व का एक महान् क्रिकेट खिलाड़ी बन चुका है और लाखों क्रिकेट प्रेमियों की आशाएँ उस पर टिक गई हैं। वर्ष १९९९ की विश्वकप प्रतियोगिता के साथ ही इस वर्ष भी कई सत्र अभी बाकी हैं और कहना न होगा कि भारत के क्रिकेट प्रेमी सचिन को और श्रेष्ठ प्रदर्शन करते देखना चाहेंगे, उनकी शुभकामनाएँ 'सचिन' के साथ हैं। ❒

— १२३, फतेहगंज, लखनऊ–४

चतुष्पदी-चतुष्टय

— अवधेश मिश्र

तोड़ा है अपना देश, घृणा के तनाव ने।
नेता के जाति–धर्म के, अपने स्वभाव ने।
धनधान्य से भरे हुए, अपने स्वदेश को;
चुन–चुन के कर दिया है, खोखला चुनाव ने।

प्रारम्भ में चुनाव हुए, पाँच साल में।
ढाढ़स बँधाने, आने लगे ढाई साल में।
'उनकी' बेहयाई की, हद देखिए तो अब;
आने लगे हैं वोट हेतु, डेढ़ साल में।

तार सुरवाले सब, बेसुरे हो गये।
चन्द चिकने चरण खुरदुरे हो गये।
स्वार्थ की तेज आँधी, चली इस तरह;
कल जो अच्छे थे, वह अब बुरे हो गये।

आज उल्टे सभी, सिलसिले हो गये।
थे जो सिद्धान्तवादी, छले वह गये।
जिनसे नफरत के कारण, हुए दर–बदर;
वे ही सत्ता के कारण, भले हो गये।

— ७०ग/१, रेलवे अस्पताल के दक्षिण,
अवधेश सदन, शाहजहाँपुर

सपा को आर०एस०एस० जैसे कार्यकर्त्ता चाहिए

मुंबई। समाजवादी पार्टी के विशेष राष्ट्रीय अधिवेशन का राजनीतिक प्रस्ताव पेश करते हुए भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री जनेश्वर मिश्र ने कई बार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उल्लेख किया। अपनी परम्परा के अनुसार उन्होंने संघ को कई बार कोसा और साम्प्रदायिक भी बताया। लेकिन जब कार्यकर्त्ता कैसा हो ऐसा विषय आया, तो उन्हें मजबूरीवश ही सही, आखिर संघ का ही उदाहरण देना पड़ा।

उन्होंने कहा कि हमें संघ जैसे कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है जो निःस्वार्थ भाव से पार्टी को आगे बढ़ाने का काम कर सकें। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि कई वर्ष पहले उनके पास उ०प्र० में राबर्ट्सगंज से बलिया तक साइकिल से चलकर एक नवयुवक पहुँचा। जब मैंने उससे परिचय पूछा तो उस नवयुवक ने कहा कि मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ और पिछले पाँच साल से संघ का प्रचारक हूँ और राबर्ट्सगंज से भी २० किलोमीटर दूर से बलिया तक हमेशा साइकिल से आता हूँ। जनेश्वर मिश्र ने इस व्यक्ति का उदाहरण देते हुए कहा कि संघ में ऐसे अनेक युवक वर्षों पूरे मनोयोग से संघ के निर्देशों का पालन करते हैं। वे अपने घर से साइकिल से निकलते हैं तो किसी दूसरे स्वयंसेवक के घर पहुँच कर ही रुकते हैं। जबकि दूसरी ओर सपा कार्यकर्त्ता जब किसी काम के लिए निकलते हैं तो पान की दुकान पर खड़े होकर राजनीति की बातें करते हैं और मुलायम सिंह के नाम पर लड़ने–झगड़ने को तैयार रहते हैं। आज हमें भी संघ जैसे कार्यकर्त्ता बनने की आवश्यकता है। ❒ (वि.सं.के.)

पुस्तक समीक्षा

अविस्मरणीय पूजनीय श्री गुरुजी

प्रस्तुत पुस्तक श्री कौशलेन्द्र द्वारा संकलित की गई है। इसमें श्री गुरुजी के व्यक्तित्व के विविध आयामों का विवरण स्वयं गुरुजी के शब्दों में तथा उनके सम्पर्क में आनेवाले देश के महान् राजनीतिज्ञों, लेखकों, विचारकों, पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा लिखी गई टिप्पणियों के संकलन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

सम्पूर्ण सामग्री २७ उपशीर्षकों में विभाजित है। वह इस प्रकार हैं १. अपनी गाथा अपने शब्दों में २. समाज अग्रणी ३. आध्यात्मिकता व ऋषिजीवन ४. प्रेरणा व प्रबोध ५. शरीर पर नियंत्रण ६. स्वयंसेवक का सुसंस्करण ७. राष्ट्रीय एकात्मता ८. सदैव सावधान ६. वेष और भाषा की निष्ठा १०. पारिवारिक आत्मीयता ११. शील एवं सरलता १२. विषय ज्ञान, सूक्ष्म दृष्टि, प्रखर स्मृति १३. निःस्पृह निर्मलता १४. विचारों की विशालता १५. प्रशंसा प्रसिद्धि से दूर १६. राष्ट्रीय संकट की घड़ी में १७. भविष्य के गर्भ में १८. अटूट आत्म विश्वास १६. अद्भुत क्षमता अनोखी प्रतिभा २०. अनुशासनप्रियता २१. केशव और माधव २२. संगठन कार्य और नेतृत्व २३. परीक्षा की कठिन घड़ियाँ २४. संघर्ष एवं कारावास २५. व्यथित अन्तर २६. वात्सल्य सिन्धु २७. उत्तर पटुता एवं विनोद की मधुरिमा।

अंत में 'सुमनांजलि' शीर्षक के अन्तर्गत गुरुजी की प्रशंसा में लिखी गई ६ कविताएँ संकलित हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं– विभूति गोलवलकर की, दिव्य ज्योति, कलि का भगीरथ, चाहिए आशीष माधव, शतनमन माधवचरण में, हे सद्गुरु।

इस पुस्तक में गुरुजी की बहुमुखी प्रतिभा व महानता का आकलन बड़े सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने गुरुजी के निधन पर उन्हें राष्ट्रभक्ति का नंदादीप कहा था। इस उपशीर्षक के अन्तर्गत माननीय अटलजी की टिप्पणी के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं– "मृत्यु के पूर्व लिख गये हैं कि मेरे स्मारक खड़े नहीं करने चाहिए। उन्होंने अपना श्राद्ध भी स्वयं ही कर डाला था। हमारे करने के लिए वे कुछ भी नहीं छोड़ गये।

लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं होगा कि उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा। उन्होंने हमारे लिए राष्ट्रभक्ति की एक महान् धरोहर छोड़ी है। वे जीवनभर नंदादीप की तरह जलते रहे। स्वयं जलकर प्रकाश फैलाते रहे। अंधकार की शक्तियों से लड़ते रहे। स्वयं जलकर इस संघर्ष में उन्होंने कभी विश्राम नहीं माँगा। कर्त्तव्य के पथ पर कमी रुके नहीं। चरैवेति–चरैवेति उपनिषद् का यह मंत्र मानों उनके जीवन में साकार हो गया था। शरीर का कण–कण जीवन का क्षण–क्षण अहोरात्र राष्ट्र की चिंता।"

पुस्तक की जिल्द आकर्षक तथा मजबूत है। उत्तम कागज पर मुद्रण हुआ है। मुद्रण अशुद्धियों से मुक्त है। राष्ट्रभक्ति के मार्ग पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक से प्रेरणा लेनी चाहिए। ☐

— डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

संकलनकर्त्ता – कौशलेन्द्र
प्रकाशक : लोकहित प्रकाशन
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ–४
मूल्य : ५० रु. मात्र **पृष्ठ** – २२०

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' का मई १९९८ का अंक प्राप्त हुआ। मुख पृष्ठ पर विजय स्तम्भ चित्तौड़ का चित्र देखकर मान मुदित हो गया। कहानियों में मुझे तीनों कहानियाँ प्रेरणादायक लगीं। मैं कवि तो नहीं हूँ फिर भी जहाँ तक मेरा ख्याल है 'रोको मत सुराज के रथ को' शीर्षक से प्रकाशित कविता की दूसरी पंक्ति में '..... जैसी थी अटल बिहारी में' के स्थान पर '...जैसी है अटल बिहारी में' उपयुक्त होगा। आशा रानी व्होरा जी का लेख 'क्रान्तिकारियों की सहायक, सुखदेव की माँ रल्ली देई' पढ़ा, अच्छा लगा, लेखिका और सम्पादक को कोटिशः धन्यवाद। विषय-सूची में रल्ली देई को भगत सिंह की माँ बताया गया है। सम्पादक-मण्डल में विद्वान महानुभावों के होते राष्ट्रधर्म की यह त्रुटि कष्टप्रद है।'

वीर छत्रसाल, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सम्भाजी और महाराणा प्रताप आदि महापुरुषों का जन्म इस महीने में होने के बावजूद मई ९८ के 'राष्ट्रधर्म' में इन नायकों की उपस्थिति न हो पाना आश्चर्यजनक लगा।

आप पत्रिका में विद्यार्थी-हित की सामग्री भी दिया करें, तो उचित होगा। महापुरुषों का रंगीन चित्र पूर्व की भाँति पुनः राष्ट्रधर्म में प्रकाशित करने का आपसे मेरा साग्रह अनुरोध है।

— राधेश्याम गुप्त
रुद्रपुर, देवरिया

'राष्ट्रधर्म' बराबर पढ़ रहा हूँ। अप्रैल का अंक रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगा। सम्पादकीय तो अति उत्तम। यदि सम्भव हो तो 'विधि' सम्बन्धी जानकारी भी दें।

— श्रवण कुमार अवस्थी, हरदोई

'राष्ट्रधर्म' का मार्च ९८ अंक पढ़ा 'यादवी आतंक फिर से बढ़ रहा है' रचना बनारसी साड़ी में टाट के पैबन्द की तरह लगी। जातीय द्वेष से बचें। इधर कुछ नीरसता बढ़ी है, सर्व ग्राह्य सरसता लायें।

— गोविन्द द्विवेदी, बर्रा, कानपुर

केशव कुंज, झण्डेवाला नई दिल्ली से प्राप्त विभिन्न प्रकार की पत्रिकाओं की नमूना प्रतियों में उच्च स्तर की पठनीय सामग्री से पूर्ण मुझे 'राष्ट्रधर्म' लगा। अस्तु वार्षिक शुल्क हेतु रु० ११०/- भेज रहा हूँ।

— प्रो० कृष्ण स्वरूप वशिष्ठ
अवकाश प्राप्त प्रधान वैज्ञानिक
(आई०सी०ए०आर०)

'राष्ट्रधर्म' का बसन्तोत्सव अंक पढ़ा, अच्छा लगा। 'क्रान्तिकारी आन्दोलन के शलाका पुरुष व ऋचा गुंजित धरती व्योम की अभीप्सा लेख, 'दण्डी स्वामी ने कहा था' व माननीय रज्जू भैया का साक्षात्कार प्रभावी रहे।

— प्रकाश उनियाल
गोपेश्वर, चमोली

'राष्ट्रधर्म' का नव वर्ष अंक पढ़ा। 'जब अटल जी ने 'अमर आग है' कविता लिखी, लेख तथा राजबहादुर विकल की कविता ने प्रभावित किया।

समस्त अंक संस्कृति, साहित्य, ज्ञान की त्रिवेणी लगा।

— नारायण मछवानी
उज्जैन (म०प्र०)

'सनातन भारत अंक' व नव वर्ष अंक बहुत अच्छे लगे। यों तो पूरा अंक गवेषणापूर्ण है फिर भी माननीय रज्जू भैया, त्रिपाठी, दीक्षित, रस्तोगी, जोशी, शास्त्री, पद्मेश, व्यास, व्होरा, राव, स्वामी, गुप्त, विकल, गोपाल, पाण्डेय, शंकर पुण तांबेकर की रचनाएँ प्रशंसनीय हैं।

— चिन्तामणि राय
बक्सर (बिहार)

'राष्ट्रधर्म' का अप्रैल अंक पढ़ा, राष्ट्रीय व हिन्दुत्व की भावना हर अंक की तरह अच्छी लगी।

— अंशु चौहान, गोण्डा

'राष्ट्रधर्म' के इधर के अंकों में स्तरीयता बढ़ी है पर सर्वग्राह्यता घटी है। बच्चों के पन्ने कम करके भी उनके साथ अन्याय हुआ है। कृपया न्याय करें।

— अनुराग मिश्र
लालगंज, रायबरेली

'राष्ट्रधर्म' का वैशाख २०५५ वि० (मई १९९८ ई०) अंक देखकर बहुत सन्तोष हुआ। प्राचीन-नवीन भारतीय विज्ञान से भारतीय अपरिचित-से हो गये हैं, इस दिशा में वयोवृद्ध साहित्यसेवी श्री श्याम नारायण कपूर का लेख 'भारत में रसायन-शास्त्र की परम्परा' सर्वतः प्रशस्य है। ऐसे एक या दो लेख प्रत्येक अंक में हों तो वरेण्य। 'जो राखै निज धर्म को' संपादकीय मार्मिक एवं हिन्दुत्व पर प्रहार को उजागर करने वाला है। 'वेदों तथा प्राचीन भारत में आर्थिक विचार : वर्तमान सन्दर्भ में' ज्ञानवर्द्धक भी है, युन-चिर-संयोजक भी। खेद है कि परकीयतावादी लोग काल को खण्डित कर भारतीयता की भयावह क्षति कर रहे हैं। डॉ० मधुकर गोविन्दराव बोकरे का प्रयास स्तुत्य है। प्रख्यात देशभक्त प्रो० बलराज मधोक के लेख में कश्मीर ('कः शिमिरः' या जल से उभरा तथा कश्यपमीर या कश्यपसागर) के स्थान पर काश्मीर का गलत छपना खटका क्योंकि ऐसी भूल वे नहीं कर सकते। क्रान्तिकारी फड़के पर डॉ० भवानीदीन का लेख प्रेरक है। 'गणित की वैदिक परम्परा' लेख के लिए डॉ० रणजीत सिंह साधुवाद के अधिकारी हैं : शून्य एवं दशमलव का प्रवर्तक भारत अंकगणित की जन्मभूमि है, जैसे कि 'नुह सिपटर' में अमीर खुसरो ने माना है। पुण्य श्लोक डॉ० रघुवीर का काव्य स्मरण कर राजबहादुर 'विकल' ने अविकल जनसेवा की है। "प्राचीन भारतीय खेल 'चतुरंग' ही शतरंज है" लेख में आ० वचनेश त्रिपाठी ने सत्य का अच्छा विज्ञापन किया है। फिरदौसी कृत अमर 'शाहनामा' के अनुसार यह खेल नौशेखाने-आदिल के समय भारत से ईरान पहुँचा था।

— राम प्रसाद मिश्र, नई दिल्ली

राणा प्रताप – मेरे यहाँ

- शंकर पुणतांबेकर

दरवाजा खोला, तो राणा प्रताप को पहले मैंने पहचाना ही नहीं, सवाल किया–आप ? तो सुनकर माथे पर बल पड़ गये और बोले, अरे भूल गये मुझे ? खैर, कोई बात नहीं है, करीब हर दरवाजे पर मुझसे यही सवाल किया जाता है, जबकि मैं उन लोगों के पास जाता हूँ जिनकी मुझमें आस्था रही है और मेरे साथ जिन्होंने चर्चाएँ गुजारी हैं।

इसके बाद उन्होंने अपना नाम बताते हुए कहा– क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

अब बल मेरे पड़े, माथे पर नहीं मानस पर। तथापि चेहरे पर मुस्कान चढ़ाते हुए मैंने कहा– अरे आप ! आइए आइए ! शर्मिन्दा हूँ कि आपको मैंने पहचाना नहीं।

और मैं उन्हें अपनी बैठक में ले आया।

बैठक को देख वे बोले, अब तुम्हारी बैठक बैठक नही, ऊँचा ड्राइंगरूम है।

बस, आपकी कृपा है ! मैंने थोड़ा सकुचाते हुए कहा।

अरे मेरी कृपा कैसी ? मेरी कृपा से तो उलटे पुरानी कुर्सियों की जगह आज यह जो ऊँचा सोफा लगा है, वहाँ चटाइयाँ बिछी दिखतीं।

लेकिन मुझे याद नहीं पड़ता कभी आप मेरे यहाँ आये थे।

मेरी बात सुनकर वे हलका–सा मुस्कराये, किन्तु इस मुस्कराहट में पीड़ा थी। बोले– आया था भाई ! वैसे तुम्हें कैसे ख्याल रह सकता है जब कितने ही लोग आते रहे हों।

मैं उनके सूक्ष्म व्यंग्य की चुभन महसूस करूँ–न–करूँ कि उन्होंने आगे कहा–तुमने तब वह कविता लिखी थी "घास की रोटी"। बड़े भावुक थे तुम उन दिनों कविता सुनाते–सुनाते तुम्हारी आँखों में आँसू आ गये थे।

मुझे तब भी याद नहीं पड़ा।

अपनी बात को जारी रखते हुए वे बोले– यह घास की रोटी केवल राणा प्रताप की न रहकर तुम्हारी अपनी बन गई थी; क्योंकि तब तुममें सीधे–सीधे राणा प्रताप बैठा हुआ था या स्वयं तुम राणा प्रताप में जा बैठे थे।

याद है, मैंने कविता सुनकर कहा था, तुम्हारी कविता में पीड़ा है, मूल्यों की पीड़ा है, पीड़ितों की पीड़ा है। इस कविता को ऐसे ही भावुकता के आँसुओं में मत बह जाने दो। उसे लहर नहीं भौंरा बनने दो, कमल नहीं कैक्टस बनने दो।

मैं उठकर प्रताप के लिए पानी ले आया, क्योंकि उनका गला सूख चला था।

पानी पीकर वे आगे बोले– और खुशी की बात है तब ऐसा हुआ भी। क्या कविता में, क्या कहानी में और क्या उपन्यास–नाटक में। मुझे याद है, एक ने "घास की रोटी" नाम की कहानी लिखी थी। सुनकर लगा था, साहित्य को अपनी दिशा मिल गयी है। मेरे तलवार के सिपाही पराभूत हो गये हों, लेकिन उसमें से ये जो कलम के सिपाही उठ खड़े हुए हैं, वे पराभूत नहीं हो सकते।

इतना कह राणा प्रताप रुक गये। वे अब जहाँ बूढ़े हो गये थे वहाँ कमजोर भी। काफी कमजोर। तो उनकी साँस कुछ फूल आयी लगता था अन्दर कहीं उनके पीड़ा दबी हुई है और निकलने का मार्ग चाहती है।

क्या चाय–वाय नहीं पिलाओगे ? अचानक वे बोले।

मुझे लगा यह बूढ़ा कुछ ज्यादा समय चाट जायेगा। साथ ही मैं इस ख्याल से भी काँप उठा कि यह उन उसूलों की बातों पर आ जायेगा, जो अब 'आउटडेटेड' या काल–बाह्य हो चुके हैं। पहले मैं उनमें रस लेता था; पर अब उनके नाम–मात्र से मेरे सिर में दर्द हो उठता है।

मैं चाय ले आया बिस्कुट की प्लेट भी।

चाय के पहले प्रताप ने तीन–चार बिस्कुल खा लिये। मुझे यह अच्छा नहीं लगा, मानता हूँ बड़े हैं वे, ऊँचे मूल्य हैं, पर 'एटिकेट' तो होना ही चाहिए।

चाय पीते हुए उन्होंने मुझसे सवाल किया, क्या इधर तुम यह नहीं देख रहे हो कि कलम–के–सिपाही पराभूत हो रहे हैं ?

मुझे लगा वे यह सवाल मुझको लेकर कर रहे हैं।

क्या तुम यह नहीं देख रहे हो कि जो "घास की रोटी" लिखते थे, वे अब "मक्खन की रोटी" लिख रहे हैं ?

मुझे लगा वे मेरे टी० वी० सीरियलों को सन्दर्भ में रखकर इस तरह का सवाल कर रहे हैं।

आगे वे बोले, क्या निष्ठाएँ विचलित नहीं हो गयीं हैं?

अब तो मुझे जरा भी शक नहीं रहा कि वे मुझे उधेड़ने के लिए ही ऐसे सवाल–पर–सवाल किये जा रहे हैं। मैंने कभी "हल्दी घाटी" नामक एक नाटक लिखा था। जिसके मंचन के लिए काफी भागदौड़ भी की थी, पर कोई नतीजा हाथ नहीं आया।

आखिर एक जगह से अपने आप होकर प्रस्ताव आया।

लेकिन प्रस्ताव एक ही शर्त पर था। मैं मानसिंह के चरित्र को नया आयाम दूँ– राष्ट्रीय आयाम।

मुझे शर्त अच्छी नहीं लगी। लेकिन शर्त न मानने का अर्थ था नाटक का मंच पर न आना।

अन्ततः मैंने शर्त मान ली थी।

प्रताप की चोट से जैसे–तैसे सम्भलते हुए मैंने कहा, नहीं ऐसी बात तो नहीं। निष्ठाएँ आज भी पूर्ववत् हैं।

उन्होंने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं। कहा, आदमी फिर वह किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो, आरम्भ में राणा प्रताप होता है और आगे चलकर मानसिंह बन जाता है। ठीक भी है, सभी को तो भामाशाह नहीं मिल जाते और मिल भी जाते हैं तो सभी "हल्दी घाटी" नहीं पचा पाते न। छिः, मैं भी क्या बातें ले बैठा।

और चाय लेंगे? मैंने इस उम्मीद के साथ सवाल किया कि वे मना कर देंगे और कहेंगे, नहीं नहीं, अब मैं चलता हूँ। पर नहीं, उन्होंने कहा–हाँ, ले लूँगा।

चाय पीते हुए उन्होंने मुझसे सवाल किया–इधर क्या लिख रहे हो?

मैं इन दिनों जिस किताब में व्यस्त था, उसके बारे में उन्हें बताते संकोच हो रहा था, सो बात को टालते हुए मैंने कहा– आप यहाँ इस नगर में कब आये? कहीं शादी–वादी में आये हैं?

हाँ, शादी में ही आया हूँ, उन्होंने कहा। आज शाम को ही बारात के साथ लौट जाऊँगा।

मुझे सुनकर चैन मिला। डर था कि वे कहीं दो–चार दिन रुककर मेरा समय बरबाद न करें। इधर मेरे लिए लेखन की दृष्टि से एक–एक पल मूल्यवान् था। मैं मानसिंह के एक भाई की जीवनी लिख रहा था। काफी बड़ी रकम पेशगी ही मिल गयी थी।

जीवन मूल्यों में वह गिरावट क्यों आयी, बता सकते हो? उनके अन्दर का क्षोभ पुनः बोल उठा।

वे अभी उठने के मूड में नहीं हैं देखकर मैं मन–ही–मन खीज उठा। उनसे छुटकारा पाने के लिए कहा– माफ करें मुझे आप। मेरी एक जगह 'एपॉइन्टमेन्ट' है।

यह सुन खुद उन्होंने मुझसे माफी माँगी और उठे।

उनके जाते ही मैं भी उठा और मानसिंह के भाई बन्द की ओर बढ़ा। ❐

– २, मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५००२

(पृष्ठ ५६ का शेष)

भारतीय संस्कृति का ...

के हथौड़े के रूप में हुई है। जापान में इसे "मानजी" कहा गया। वहाँ की बुद्ध–प्रतिमाओं पर अब भी इसका अलंकरण होता है। बौद्ध–तीर्थ–यात्री पवित्र पर्वत फुजीयामा की यात्रा अवश्य करते हैं। वहाँ उन्हें एक पात्र में पवित्र जल दिया जाता है। वे उसे जीवन का प्रतीक मानते हैं। उस पावन पात्र पर भी स्वस्तिक के दर्शन किये जा सकते हैं।

चीन में, इस प्रतीक को "वाम" का नाम मिला। "वाम" का अर्थ सागर है। स्वस्तिक भी तो अनन्तता की ओर उन्मुख तथा चिरन्तन है। इन देशों में बौद्ध–धर्म तथा प्रतिमाओं की विद्यमानता से स्पष्ट है कि प्रचारक भिक्षु–गण ही इसे प्रत्येक स्थान पर अपने साथ शुभंकर के रूप में ले गये थे। चीन ही नहीं, मिस्र, फ्रांस, स्काटलैण्ड तथा आयरलैण्ड में भी इसकी उपस्थिति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। अमेरिका में इसे प्रस्तरों पर उत्कीर्ण पाया गया है। कोलम्बस के विख्यात अभियान के पूर्व भी स्वस्तिक की वहाँ विद्यमानता उसकी प्राचीनता की ही परिचायक है।

हिटलर ने इसे सहर्ष सादर अपनी भुजा पर ही नहीं धारण किया था। उसने १९१९ में 'नेशनल सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना भी की थी। उसका ध्वज लाल रंग का था। उस अरुणवर्णी ध्वज के मध्य में स्थित सफेद गोले के भीतर, बीच में, स्वस्तिक अवश्य अंकित रहा करता था। इस ध्वज को शासकीय मान्यता मिली हुई थी। नाजी स्वस्तिकयुत ध्वज को विजय तथा मंगल की शक्ति संयुक्त माना करते थे।

कुछ लोग इसे बीज–मन्त्र अथवा अज्ञात लिपि का मांगलिक अक्षर भी कल्पित करते हैं। उनके अनुसार, इसे "कवच" या अशुभ निवारक मान कर धारण किया जाता था। निश्चय ही यह प्रतीक भारतीय यायावरों के माध्यम से मानव–मात्र के मंगलार्थ विश्व को दान था। ❐

– विट्ठलनगर, खण्डला (म० प्र०)

राष्ट्रधर्म

जुलाई-१९९८ आषाढ़-२०५५

१०/-

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित
संपादक : आनन्द मिश्र 'अ
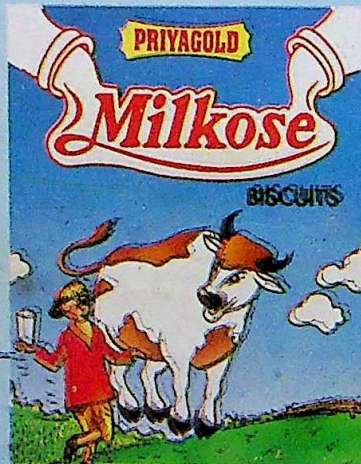
यह एक सत्य है और विश्व के सभी सम्प्रदाय एवं जातियाँ इस बात को स्वीकार करती हैं कि जब–जब पृथ्वी पर दुराचार, अधर्म, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, पाप बढ़ता है; तब–तब वह सर्वशक्तिमान विभिन्न रूप लेकर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। 'सर्वशक्तिमान' को विश्व समुदाय अपनी–अपनी भाषा, बोली में अलग–अलग नाम से स्मरण करते हैं। हम हिन्दू उसे प्रभु, भगवान, ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण कहते हैं। मुसलमान उसे अल्लाह या रब कहते हैं। ईसाई उसे "God" के नाम से स्मरण करते हैं। सर्वशक्तिमान के नाम भी अनेक हैं, रूप भी अनेक हैं। 'सर्वशक्तिमान प्रभु (अल्लाह, God) के संसार में आने के दो प्रकार हैं। एक वह स्वयं आते हैं, जिसको हम अवतार कहते हैं। दूसरा समय–समय पर वे अपने रूप अर्थात् अंश को देवी, देवता एवं दूत के रूप में भेजते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है :–

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थानार्थाय संभवामि युगे युगे।।"

११ नवम्बर, १९९७ की घटना है। हम कश्मीर घाटी के तीन दिवसीय प्रवास पर थे। लगातार ८ वर्ष आतंकवाद के भयानक दौर से गुजरी घाटी के अब कैसे हालात है, ये देखने व जानने के लिए हम गये थे। प्रातः क्षीरभवानी के दर्शन तथा पूजा कर हम लोगों ने यह विचार किया कि 'हजरत बल' भी जाना चाहिए। मन में अनेक आशंकाएँ उठी कि वहाँ जाने पर क्या परिचय देंगे तथा बात क्या करेंगे। माथे पर तिलक धारण किये हुए ही हम सभी बंधु दोपहर २ बजे पवित्र हजरत बल पहुँच गये। सुरक्षा जाँच से निकल हम लोग 'हजरत बल' के भीतर जाने की इच्छा से आगे बढ़े, उसी समय उपस्थित मौलवी साहब ने कहा कि अभी नमाज हो रही है और हम कुछ देर तक बाहर रहें। हम लोग बाहर ही रुक गये तथा घूमकर देखा कि सैनिक कार्यवाही के समय आतंकवादी एवं सेना के लोगों के मोर्चे कहाँ–कहाँ थे तथा उनकी गतिविधियाँ कैसे चलती रही। नमाज होने के पश्चात् हम लोगों को दो मुस्लिम बन्धु भीतर ले गये। वहाँ उपस्थित मुल्ला, मौलवी व अन्य लोगों से परिचय हुआ। हम लोगों ने अपना परिचय स्पष्ट दिया कि हम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता हैं तथा इस पवित्र स्थान के दर्शन करने आये हैं। परिचय के पश्चात् बातचीत प्रारम्भ हो गयी। हम लोग कुल मिलाकर चालीस मिनट से अधिक समय वहाँ रहे। अनेक प्रकार के वार्तालाप में मैंने पूछा कि यह पवित्र स्थान सरकारी धन से बना है या जनता के धन से बना है? वहाँ उपस्थित प्रमुख मौलवी ने कहा कि यह तो जनता के धन से बनाया गया है। तभी मैंने वार्तालाप को आगे बढ़ाते हुये कहा कि धन केवल मुसलमानों से ही लिया गया अथवा सभी लोगों से? दूसरी तरफ से उत्तर तुरन्त आया कि हमें तो हिन्दू व सिख ने भी धन दिया है। मेरे मुँह से निकला कि फिर तो यह पवित्र स्थान सभी सम्प्रदाय व जातियों के लोगों के सहयोग से बनी है इसलिए यह मिलीजुली अर्थात् साझी इबादतगाह यानी पूजास्थल है। हिन्दू ने धन देते हुए संकुचितता नहीं दिखायी, फिर हिन्दू की बात करने वाले लोग व संस्थायें साम्प्रदायिक क्यों कही जाती हैं? यह बात कहते ही एक बार तो मुझे तथा साथियों को लगा कि कुछ अधिक कह दिया गया है, इसलिए कहीं कुछ गड़बड़ न हो जावे; परन्तु मेरी यह बात सुनते ही वे क्रोधित नहीं हुए बल्कि अति सुरक्षात्मक ढंग से बोले कि इस्लाम में भी 'रब उल

दिन ऐसे मनहूस हुए

– आजाद रामपुरी

हँसना, रोना बन्द हो गये, दिन ऐसे मनहूस हुए।
किसको व्यथा–कथा बतलायें, पल–पल दिल मनहूस हुए।

अन्तस् पड़े फफोले दुःख के,
उड़ी अधर की लाली है!
है अतृप्त तृषित मन कुण्ठित,
भाव सिन्धु भी खाली है।।
जो जो रखते हाथ पीठ पर, वे जालिम बारूद हुए।
दिन ऐसे मनहूस हुए।

सच कहना और अंगार आग का,
देश भक्ति अभिशाप बड़ा।
मान देवता जिसे पूजते–
वह डँसने शैतान खड़ा।।
दाता बने माँगते जीवन, हिंसा के अवधूत हुए।
दिन ऐसे मनहूस हुए।।

डाल–डाल सी डंक मारती
झरे कँटीले सुमन मिले।
कितने दिन रह पायें खुशदिल
उजड़े–उजड़े चमन तले।।
अपसंस्कृति का भोग भोगने, अमरीका या रूस हुए।
दिन ऐसे मनहूस हुए।।

– ललितपुर कालोनी, ग्वालियर (म.प्र.) – ४७४००९

मुस्लमीन' नही कहा जाता बल्कि 'रब उल आलमीन' पुकारते हैं अर्थात् रब यानी भगवान केवल मुसलमानों का नहीं है बल्कि सारे जहान अर्थात् चराचर का है। इस्लाम में निरपराध हत्याओं को अपराधा माना जाता हैं, दूसरों के धर्मस्थान को गिराना पाप मानते हैं। मेरे मन में तुरन्त एक बात आई कि यदि सचमुच में हिन्दुस्थान के इस्लाम मतावलम्बी इन बातों को व्यवहार में लायें तो इस देश और विश्व के अधिकांश आतंकवादी आन्दोलन समाप्त हो जायेंगे, साम्प्रदायिक दंगे कभी देखने व सुनने को नहीं मिलेंगे। इसी प्रकार ईसाई भी यह मानते हैं कि "God" यानि परमेश्वर सारे संसार का है। विश्व के सभी मत, पंथ, इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। सचमुच अगर ईसाई इसी सच्ची भावना से व्यवहार करें तथा सेवा, शिक्षा और सहायता के माध्यम से मतान्तरण (धर्मान्तरण) के कुचक्र को न चलायें; तो देश तथा विश्व में मानवता फलने–फूलने लगेगी।

इसी प्रकार संसार के सभी मत, सम्प्रदाय यह भी मानते हैं कि सर्वशक्तिमान अगर एक नहीं होता, वह अलग–अलग होता; तो प्रत्येक सर्वशक्तिमान (प्रभु, अल्लाह, गॉड) अपनी–अपनी मानव आकृतियाँ गढ़ता और जो कि अलग–अलग प्रकार की होती; परन्तु ऐसा नहीं है। हम सारे विश्व में कहीं भी भ्रमण करें; सभी मानव चाहे ईसाई हो या मुसलमान, हिन्दू हों या बौद्ध अर्थात् कोई भी मनुष्य हो; सभी के एक सिर, दो पाँव, दो हाथ, एक पेट, दो कान, एक नाक, मुँह है। सभी का दिल (ह्रदय) बाईं ओर है, सभी के खून का रंग एक है। यानी प्रत्येक भगवान अगर अलग–अलग होते तो सम्भावनाएँ होतीं कि कोई न कोई तो अपने मानव को दो पाँव की बजाय तीन, चार पाँव का बना डालता, आँख दो के बजाय तीन या चार, पाँच लगा सकता या ह्रदय बाई ओर की बजाय कहीं और फिट कर सकता था। मनुष्य की उत्पत्ति नर–नारी के समागम से है, वह इस सिद्धांत को बदल देता; परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं है। इसलिए पूरे जहान का सर्वशक्तिमान एक है और विश्व के रचनाकार 'प्रभु' हैं।

एक तथ्य विश्व की सभी मानवजातियाँ मानती हैं कि 'प्रभु' सृष्टि में किसी भी रूप में विद्यमान है, वह ज्ञात रूप भी हो सकता है, अज्ञात रूप भी हो सकता है। यह बात भी मानवमात्र जानता है कि 'प्रभु' जन–जन में है, कण–कण में हैं और इसलिए वे कहीं भी, कभी भी रूप धारण कर सकते हैं, उनके लिए जल, थल, नभ सब समान है। पृथ्वी पर जब–जब भ्रष्टाचार, पाप, अधर्म, अन्याय, अनैतिकता का बोलबाला हुआ; 'प्रभु' विभिन्न रूपों में अपनी कुछ शक्तियों के साथ अनेकानेक रूप धारण करते हुए देवी, देवता व दूत के रूप में पृथ्वी पर आते रहे। कहीं ईसा के रूप में, तो कहीं मोहम्मद के रूप में संसार के विभिन्न प्राणी उसको मानते हैं। भारत में 'प्रभु' कभी हनुमान तो कभी गणेश, कभी कार्तिकेय तो अनेक बार विभिन्न शक्तियों (माँ) के रूप में इस संसार में आकर दुष्टों का दलन करते रहे तथा सज्जन व सन्तों को सहारा देकर उद्धार करते रहे। परन्तु कभी–कभी प्रभु स्वयं अवतरित हुए और उनके सीधे अवतरित होने के दो स्वरूप चराचर में सर्वाधिक मान्य व प्रचलित हैं। एक है 'राम', दूसरा है 'कृष्ण'। राम और कृष्ण के रूप में प्रभु सृष्टि में अन्यत्र कहीं भी अवतरित न हुए व उन्होंने अन्य कोई भी धरती नहीं चुनकर भारत को ही अपनी लीलाओं की कर्मस्थली बनाया। उन्होंने राम के रूप में अयोध्या तथा कृष्ण के रूप में मथुरा को चुना। उसकी महिमा वही जानता है, मानव तो उनका नाम लेकर ही अपने जीवन को धन्य व सफल मानता है। ये दोनों अयोध्या एवं मथुरा नामक पवित्र स्थान भारत में ही विद्यमान है। इस अध्यात्मिक व श्रेष्ठतम कर्म से यह ज्ञात होता है कि भारत की धरती को विश्व में यह सौभाग्य मिला कि यह धरती 'प्रभु' की कोख भी है और गोद भी है। जैसे हम मानव जन्म लेते हैं और रोते हैं, हँसते है, शरारतें करते हैं, खाते हैं, पीते हैं, तथा अनेक प्रकार की क्रियायें करते हैं; उसी प्रकार से 'प्रभु' ने भी जननी व जन्मभूमि के रूप में 'भारत–माता' को अपनी सभी प्रकार की क्रियाओं से सुशोभित किया है। यह सब सोचने, देखने व सुनने में अत्यधिक सुखदायी लगता है। प्रश्न खड़ा होता है और समाधान मिलता है कि विश्व के सभी देशों की धरतियाँ पवित्र है, परन्तु उन सभी में भारत की धरती पवित्रतम है; कारण इस धरती को प्रभु की कोख व गोद बनने का उच्चतम व श्रेष्ठतम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पृथ्वी पर भारत ही एक ऐसा देश है, जिसको विश्व–गुरू के रूप में मान्यता मिली और इसी रूप में यह संसार में पूज्य भी हुआ। सृष्टि के मानवमात्र को ज्ञान का प्रकाश चाहे अध्यात्मिक हो, चाहे सांसारिक (आर्थिक), चाहे वह ज्ञान सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, सभी प्रकार का प्रकाश भारत से उसको प्राप्त होता रहा है। इसीलिए भारत ही एक ऐसा सौभाग्यशाली देश है, जिसको 'माता' की उपाधि प्राप्त हुई है; इसलिए भारत विश्ववंद्य है। ❐

— वीर भवन, जम्मू

...और मद्रास 'चेन्नइ' बन गया

— डॉ. जा. आशीर्वादम

दिल्ली, कलकत्ता, मुंबई आदि भारत के महानगरों के साथ चेन्नइ भी एक महानगर माना जाता है। सन् १९९६ के पूर्व इसका नाम मद्रास था। जैसे कि बंबई शहर का नाम बदलकर 'मुंबई' बना, वैसे ही मद्रास भी 'चेन्नइ' बन गया है। मद्रास महानगर के लिए 'चेन्नइ' का जो नाम दिया गया है,वह नाम उसके संबन्ध की एक ऐतिहासिक घटना से जुड़ा हुआ है।

उस ऐतिहासिक घटना के अनुसार यह क्षेत्र पुराने जमाने में जंगलों से भरा हुआ एक मरूभूमि ही था। सन् १६२६ में कुछ अंग्रेजों ने 'चेन्नप्पन' नाम के एक व्यक्ति से उस भूमि को खरीदा और उस पर एक इमारत बनवाकर वाणिज्य करना शुरू किया। यही छोटा सा वाणिज्य केन्द्र विस्तृत होकर 'ईस्ट इंडिया कंपनी बना'। बाद की बात तो सब जानते ही हैं। पूर्वकाल में चेन्नप्पन की भूमि होने के कारण इस क्षेत्र का नाम 'चेन्नइ' हुआ। इसी चेन्नइ को अंग्रेजों ने मद्रास का नाम दिया था।

भारत में अपनी सत्ता कायम करने के बाद जब अंग्रेजों ने प्रशासन की सुविधा के लिए संपूर्ण भारत को विभिन्न इलाकों में बँटवारा करके अलग–अलग नाम भी दिया तब दक्षिण के केरल आन्ध्र और तमिल के क्षेत्रों को मिलाकर एक ही हिस्सा बनाया तथा उसे 'मद्रास प्रेसिडेंसी' का नाम दिया। मद्रास शहर (चेन्नइ) तब उसकी राजधानी बना। चेन्नप्पन का क्षेत्र अब मरुभूमि न रहा। व्यापार का वहीं भंडार जिसे अंग्रेजों ने सेण्ट जार्ज दुर्ग का नाम दिया था, वह सरकारी सचिवालय बना।

चेन्नइ को अंग्रेजों ने मद्रास का नाम क्यों दिया था? कैसे उन्होंने उस नाम को चुन लिया? इसके सम्बन्ध में भी एक किवदंती प्रचलित है। उसके अनुसार 'चेन्नप्पन' जिसने अंग्रेजों को पहले पहल वाणिज्य करने के लिए भूमि प्रदान की थी, उसका दूसरा नाम भी था। वह था 'मुत्तुरासा'! तो चेन्नप्पन का पूरा नाम था मुत्तुरासा चेन्नप्पन। इन दोनों में से पहले नाम को यादगार बनाना ही अंग्रेजों ने उचित समझा और उसी मुत्तुरासा नाम को ही 'मद्रास' बनाया। (मुत्तुरासा–मतरसा–मद्रास) उसी किंवदंती के अनुसार मुत्तुरासा चेन्नप्पन अपने परिवार के पचास सदस्यों के साथ पहले पहल वहाँ आकर बसा हुआ था और बाद में उस क्षेत्र को अंग्रेजों के हाथ ६५० पाउंड के दाम पर बेच दिया था।

चेन्नइ नाम का शब्द विशेष

भारत में अंग्रेजों का मूल–केंद्र चेन्नइ, जिसे पूर्वकाल में चेन्नप्पन से खरीदा गया था, एक इतिहास प्रसिद्ध क्षेत्र बना। उसके मूल अधिकारी होने के नाते चेन्नप्पन ने भी भारत के इतिहास में एक जगह प्राप्त कर ली है। पर उल्लेखनीय बात यह है कि चेन्नप्पन एक तमिल भाषी व्यक्ति नहीं था। वह एक तेलुगुवाला ही था। तेलुगु प्रांत के मचूलीप्पटनम से ही चेन्नइ के क्षेत्र में आया था। चेन्नप्पन का नाम जिससे चेन्नइ का नाम बना, वह भी एक तमिल का शब्द नहीं था। 'चेन्नपटनम' के नाम से एक दूसरा स्थान भी तेलुगु प्रांत में है। (एस.टी.डी. कोड ०८११३) फिर भी चेन्नइ क्षेत्र के लिए प्रचलित दोनों नामों में यानी मद्रास तथा चेन्नइ में 'मद्रास' नाम का शब्द जनता के लिए अंग्रेजी शब्द लगा तथा 'चेन्नइ' देहाती शब्द लगा, क्योंकि मद्रास के शब्द से चेन्नइ का शब्द कई प्रकार से आम जनता में अधिक परिचित भी हुआ था, जबकि मद्रास का शब्द सरकारी काम काज मात्र के लिए प्रयोग में लाया गया था। चेन्नइ के ही नाम से अनेक साहित्य कृतियों की रचना हुई। सन् १८४० में संत मुरुगदास ने 'कलबकम' नाम के काव्य–छंद में जिस काव्य की रचना की थी, उसका नाम उन्होंने 'चेन्नइ कलंबकम' रखा। एक प्रख्यात तमिल पतिकम् (शतक) का नाम भी 'चेन्नइ पतिकम्' था। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार किसी भाषा का एक शब्द जब एक अन्य भाषा के क्षेत्र में बरसों से प्रयुक्त होकर क्षेत्र के लोगों के बीच बहुत परिचित हो जाता है,तो उस शब्द को उसी क्षेत्र का निजी शब्द मान लिया जाता है। इस नियम के अनुसार 'चेन्नइ' चेन्नप्पन (तेलुगु) से बना शब्द होते हुए भी तमिल का शब्द ही है। यह ही नहीं बल्कि 'मुत्तुरासा' के नाम से बना 'मद्रास' शब्द से बढ़कर चेन्नइ का शब्द कई अन्य तमिल के शब्दों के साथ ध्वनि विशेष की दृष्टि से बहुत निकट भी है।

कुछ उदाहरण

पुन्नइ; तेन्नइ (तमिल की भाषा में उपयोगी वृक्षों के नाम) पण्णाइ (कई खेतों का समूह), एण्णइ (तेल)।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

श्री बच्चा पाठक
पर्यावरण मंत्री, उ.प्र.

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उ.प्र.

श्री विवेक कुमार सिंह
पर्यावरण राज्यमंत्री, उ.प्र.

विश्व पर्यावरण दिवस

5 जून 1998

पृथ्वी पर जीवन के लिये–अपने समुद्रों को बचायें

प्रतिदिन समुद्र में पहुँचने वाला लाखों टन कचरा, असीमित मल–जल एवं उद्योगों के दूषित उत्प्रवाह समुद्र के पानी को विषैला कर रहे हैं, जिसका कुप्रभाव जलीय जीव–जन्तुओं पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। यदि समुद्र के प्रदूषण को समय रहते नियंत्रित नहीं किया गया तो न केवल समुद्र के किनारे रहने वाली आबादी के लिए, अपितु सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जायेगा।

आईये ! आज 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर हम सभी समुद्र की रक्षा हेतु नदियों, सरोवरों, झीलों आदि समस्त जल संसाधनों को प्रदूषण से बचाने का संकल्प लें।
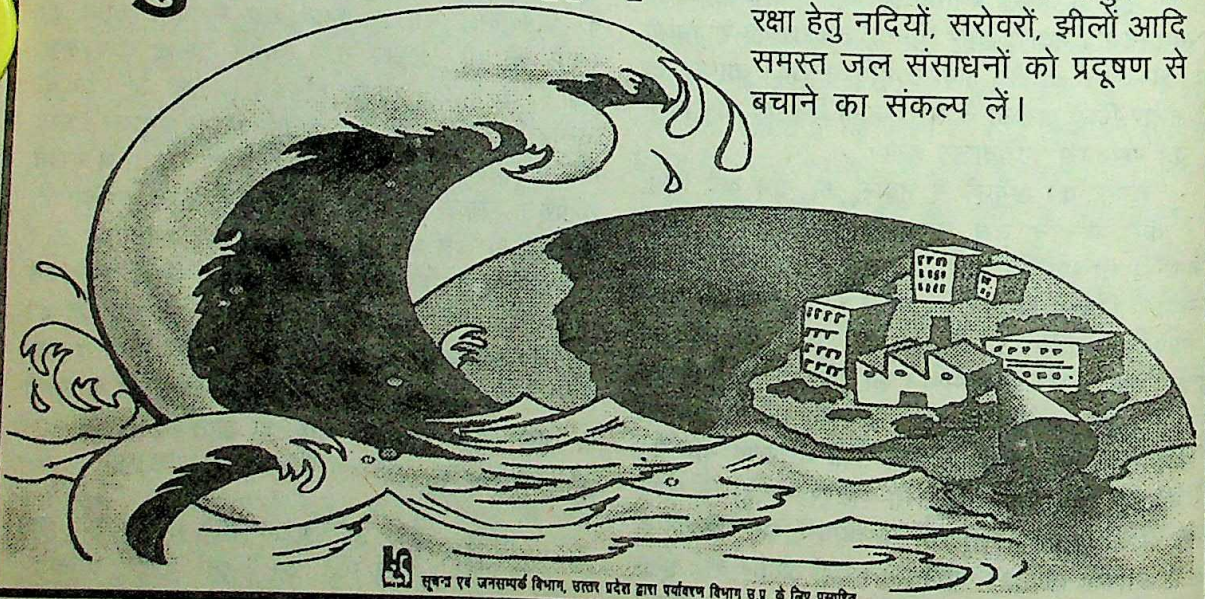
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा पर्यावरण विभाग उ.प्र. के लिए प्रसारित

राजनीति

भारत को आनन्द-मठ बनाना है, तो ...

– हृदय नारायण दीक्षित
(भूतपूर्व संसदीय–कार्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश)

राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से, आनन्द और उल्लास की लब्धि के लिए, देश के एक–एक व्यक्ति के भीतर एकात्म भाव चाहिए। हम एक ही माँ की सन्तान हैं, ऐसी भावात्मक राष्ट्रीय एकता से ही देश पराक्रमी–भाव से खडा हो सकता है; क्योंकि भारत एक बडा परिवार है। सौ करोड़ सदस्यों के इस बृहद् परिवार के अधिसंख्य चेहरों की उदास आँखें अन्धकारमय भविष्य की चिन्ता में पथरा रही हैं। हालाँकि भारत के एक–एक व्यक्ति में भविष्य के प्रति गजब का धैर्य है। धैर्य हिन्दू–धर्म और सनातन–परम्परा का शिखर–तत्त्व है; परन्तु धैर्य की भी कोई सीमा तो होती ही है। गरीबी और अमीरी के बीच आकाश–पाताल के अन्तर जैसी विषमतायें हैं; जातिगत सम्मान और अपमान के दंश हैं। गरीबी और अमीरी के वर्ग टूटते–बनते रहते हैं। एक गरीब अपने सद्प्रयत्नों और समाज द्वारा प्राप्त अवसरों का सदुपयोग करते हुए धनवान् बन सकता है और एक धनवान् व्यक्ति अपने कुकर्मों के चलते गरीब हो सकता है। किन्तु कुकर्मों को लेकर दण्डित किये जाने वाली लोक–व्यवस्था रुग्ण है। अनेक सद् प्रयत्नों के होते हुए भी जाति–व्यवस्था की कठोर सीमाबन्दी के कारण कथित निम्न जाति का व्यक्ति कथित उच्च–जाति में प्रवेश नहीं पा सकता। अपने कुकर्मों, नीच–आचरण और तमाम धोखा देने वाले व्यसनों के बावजूद एक उच्चवर्णीय व्यक्ति निम्न जाति में "अवनत" नहीं होता। जाति–व्यवस्था में जड़ता है, सीमाएँ कठोर हैं, दरवाजे बन्द हैं। जिसने भारत की संगीत–बद्ध एकात्मकता में बाधायें पहुँचाई हैं। स्वामी दयानन्द ने इस रूढ़ि पर वैदिक तत्त्व–ज्ञान के माध्यम से सात्विक प्रहार किया था। स्वातंत्र्य–वीर सावरकर तो काला पानी की सजा काटते हुए भी इस रूढ़ि को समाप्त करने में जुटे रहे थे। रत्नागिरि में स्थानबद्ध रहते हुए पतितपावन मन्दिर बनवाकर उसमें हरिजन पुजारी रखा था। गांधी ने स्वातन्त्र्य आन्दोलन के साथ–साथ जातिगत समरसता का राष्ट्रव्यापी कार्य भी चलाया था। प्रसिद्ध सन्त नरसी मेहता के भजनों के "हरिजन" शब्द को समाज के वंचितों के लिए प्रयोग के गांधीजी के अभियान को व्यापक लोक स्वीकृति मिली थी; किन्तु एक–एक व्यक्ति के भीतर एकात्म–भाव भरने के लिए जिस "आदर्श व्यवहार" की आवश्यकता थी, वह आदर्श एवं व्यवहार वे अपने अनुयायियों में भी उतारने के कार्य में सफल नहीं हुए।

वंचित–वर्ग के बन्धुओं को अपने समाज में वह स्थान नहीं मिल सका, जो उन्हें राष्ट्र–जीवन के विविध क्षेत्रों में स्वाभिमान–पूर्वक काम करने के लिए आवश्यक था। भारत के संविधान में अनुसूचित जाति–जनजाति के रूप में चिह्नित / प्रावधानित वंचित वर्गों को डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विराट् व्यक्तित्त्व से संघर्ष की प्रेरणा मिली। डॉ० अम्बेडकर राष्ट्रवादी थे; मगर समाज के विशाल वर्ग के जीवन–स्तर को लेकर वे बेहद चिन्तित थे। डॉ० अम्बेडकर वंचित वर्ग–समूह में विविध आयामी जागरण के सूत्रधार बने। वे समता और समरसता से युक्त समाज–रचना के प्रखर योद्धा के रूप में आज भी सम्मानित हैं; परन्तु जाति की सीमाबन्दी को तोड़ने के स्वामी दयानन्द, सावरकर, गांधी, डॉ० अम्बेडकर आदि के प्रयत्नों को भारत की चुनावी राजनीति से बड़ी क्षति हुई। जाति की जड़ सीमाबन्दी को जाति की लामबन्दी में बदलने में राजनीतिक दलों को कठोर परिश्रम की जरूरत नहीं होती। राजनीतिक दलों ने जाति की सीमाबन्दी को और भी मजबूती देने के भरपूर प्रयत्न किये हैं। वोटमुखी राजनीतिज्ञों द्वारा यह सीमायें और भी मजबूत बनाई जा रही हैं, क्योंकि एक या दो जातियाँ ही मजबूती से लामबन्द–गोलबन्द होकर किसी को भी कथित रूप से राष्ट्रीय नेता बना सकने लगी हैं। किसी जातिवादी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय स्तर का राजनीतिक दल मान्य करने के लिए अपेक्षित वोट आसानी से जाति की यही सीमाबन्दी दिला देती है। जातिवाद के उफान के. कारण जातियों की पार्टियों की भरमार है। जाति आधारित सेनाओं का बिहार जैसा नंगा नाच भी भारत के अन्य कई राज्यों में देखा ही जा रहा है। जाति–तत्त्व के कारण राष्ट्रीय आस्थाएँ छोटी हो रही हैं। जाति पहली आस्था है, उसके समक्ष बाकी आस्थाएँ,

वचनबद्धताएँ और प्रतिबद्धताएँ गौण हो चुकी है। अखण्ड राष्ट्रवाद की क्षीणता ही भारत में मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश शासन का आधारभूत कारण रही है। परकीय–सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए चलाये गये सभी सात्विक अधिष्ठानों में राष्ट्रवाद की ऊर्जा ही विजयश्री का हेतु बनी थी। अरविन्द और विवेकानन्द जैसे तत्त्व–वेत्ता इसीलिए राष्ट्रवाद की गुहार लगाते रहे हैं कि भारत–भक्ति के अभाव में भारत की उन्नति असम्भव है। भारत को एक जीवमान सत्ता तथा उसके सभी निवासियों को उस प्राणवान् सत्ता का अविभाज्य अंगभूत घटक मानने वाले सभी महापुरुष सनातन काल से भारत को एक प्यारा परिवार भी मानते आये हैं, परन्तु मुगल साम्राज्य और ब्रिटानी दासता के कारण भारत के एक–एक जन के बीच "परिवार–भाव" की जगह 'बाजार–भाव' के रिश्ते चल निकले। यह एक सांस्कृतिक अवमूल्यन का दुर्भाग्यपूर्ण कालखण्ड था।

डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि वे मुस्लिम धर्म कदापि नहीं स्वीकार कर सकते, क्योंकि अनेक भौगोलिक, ऐतिहासिक कारणों से मुस्लिम मजहब उनके समर्थकों के लिए अत्यन्त घातक ही नहीं विनाशक भी होगा।

स्वामी दयानन्द, सावरकर, गांधी और डॉ० अम्बेडकर के द्वारा अपने–अपने ढंग से चलाये गये जाति–बन्धन तोड़ने, जाति–विकार समाप्त करने और समरस समतामूलक समाज बनाने के अभियान सुस्पष्ट ध्येय के रहते हुए भी ध्येय–पूर्ति को अर्पित संगठन–तन्त्र के अभाव के कारण अखिल भारतीय फल देने में प्रायः असफल रहे। जीवन की सुखानुभूति और पुरुषार्थों की लब्धि के आनन्द का नाम ही रस है। रस राग–विराग से परे मानव जीवन की सहज अनुभूति के तत्त्व हुआ करते हैं। समाज के सदस्य एक दूसरे में परिवार जैसे रस लें.... बिल्कुल बराबर का रस अर्थात् वे अपने आचार–व्यवहार में समरस हों, ऐसी भावात्मक–एकता भरने का काम कठिन तो है, मगर भारत की पराक्रमी भवितव्यता के लिए वह अपरिहार्य हो चुका है। किसी भी व्यक्ति की रसमयता में हमारी रसमयता बाधक न हो, तभी समरस आचरण से ही ऐसी सामाजिक स्थिति बनाई जा सकती है और राजनीति यह काम पूरा नहीं कर सकती। राजनीति अल्पकालीन/तात्कालिक समस्याओं का अल्पकालिक समाधान देती है। समाज और राष्ट्र–निर्माण के कार्य तात्कालिक लाभ–हानि के विचारण से परे अनन्त काल का धैर्य माँगते हैं। जातियाँ गाली–गलौज से नहीं टूटतीं। गाली–गलौज से एक दो चुनाव के फायदे वाली राजनीति जरूर सध सकती है। सामाजिक समरसता का कार्य समूचे लोकमानस के दुराग्रहों को स्नेहपूर्वक बदलने का भारतभक्ति अनुष्ठान् है। यह कार्य मात्र ध्येय से पूरा नहीं हो सकता। ध्येय के प्रति प्रतिबद्धता से संकल्प शक्ति को जाग्रत् करने वाला आग्रही भाव भी इस कार्य के लिए अपेक्षित होगा। आग्रही भाव से युक्त सहचित्त लोगों को अपेक्षित संगठन–तन्त्र गत ७३ वर्षों में देश ही नहीं विदेशों में भी खड़ा हो चुका है। अब इस यज्ञ में सबको अपने–अपने आग्रह/पूर्वाग्रह/दुराग्रह त्यागने ही होंगे। भारत को "आनन्द मठ" ही होना है। इसके लिए व्यवहार का वेदान्त और वेदान्त का व्यवहार आचरण–सिद्ध करना आज के समय का आह्वान है। ❐

(पृष्ठ ११ का शेष) **और मद्रास चेन्नइ...**

सरकारी मान्यता

आजादी के पूर्व से ही चेन्नइ के क्षेत्र के लिए मद्रास तथा चेन्नइ दोनों नाम लोगों के बीच प्रचलित थे। फिर भी सरकारी मान्यता मद्रास के नाम को ही दी जाती थी। तब सरकारी अभिलेखों में मद्रास के नाम का उल्लेख ही होता था। आजादी के बाद समूचे मद्रास प्रांत को ही तमिलनाडु के नाम से बदल देने के बाद (१.१२.१९६८) शनैः शनैः कई और छोटे छोटे इलाके और कई जिलों के नामों को भी बदलकर नये नाम दिए जाने लगे। अंत में राजधानी मद्रास की बारी आई। सन् १९९६ में गांधी जयंती के दिन से मद्रास 'चेन्नइ' बन गया है।

लेकिन इतिहास पुनरावृत्ति करता है– यह तो आम धारणा है। नामकरण के मामले में भी यह धारणा सच साबित हो गई है। जिलों के पुराने नामों को बदलकर जो नये नाम दिये गये, उस पर आपत्ति हुई । जिलों को दिये गये सभी नये नाम राजनैतिक नेताओं के नाम पर थे। आपत्ति इसी से हुई। विभिन्न दलों के लोग अपने अपने नेताओं के नामों को भी जोड देने की माँग करने लगे। हड़ताल आदि होने लगी। इसके समाधान के स्वरूप तमिलनाडु की सरकार ने इन नये नामों को पूर्ण रूप से हटाकर पुराने नामों को ही जिलों के लिए अपनाने की आज्ञा दी। १/७/९७ से यह आदेश क्रियान्वित हो गया।

अब विरुद नगर का जिला कामराजर जिला न रहा। विरुद नगर ही कहलाता है। वैसे ही क्रमशः एम.जी. आर. जिला चेंगलपेट जिला तथा अन्ना जिला चेन्नइ जिला (पुराने नाम) ही रह गये। फिर भी राजधानी का नाम, जो 'मद्रास' से 'चेन्नइ' बना, उस पर कोई आपत्ति न रही। चेन्नइ चेन्नइ ही रह गया है। ❐

– ८, कलैमगल नगर पूंतमल्ली, चेन्नइ–६०००५६

अपरिहार्यता –

भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की

– श्याम नारायण कपूर

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन में ब्रिटिश शासन काल में शासकों ने अपने राजनीतिक स्वार्थों को दृष्टि में रखते हुए, जिन मनगढ़न्त एवं अप्रामाणिक बातों का समावेश कर दिया था, स्वाधीनता के पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी उनमें कोई संशोधन नहीं किया जा सका है। आज भी स्कूली पाठ्य-पुस्तकों से लेकर विश्वविद्यालयी इतिहास ग्रन्थों तक में यह बताया जाता है कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे, मध्य एशिया से आकर यहाँ बसे। अपनी इस भ्रामक अवधारणा की पुष्टि हेतु उन्होंने आर्य-अनार्य, आर्य-दस्यु अथवा आर्य-द्रविड़ तथा उत्तर-दक्षिण की समस्याएँ खड़ी करके अति प्राचीन काल की भारतीय एकता में भेद के बीज बोये।

पाश्चात्य विद्वानों का जब भारत आना शुरू हुआ, तो उन्हें इस विशाल देश में उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम सभी जगह संस्कृत भाषा का प्रचलन देखकर महान् आश्चर्य हुआ। यूरोप के छोटे से छोटे देशों में अपनी अपनी भाषाएँ हैं। इन विभिन्न देशों में परस्पर आदान-प्रदान हेतु कोई सर्वमान्य सम्पर्क भाषा भी नहीं है, अतः शासकों ने अपने हित में संस्कृत भाषा का अध्ययन तो किया, परन्तु उसको गौरवान्वित न कर के उसे मृत भाषा घोषित करने में प्रयत्नशील रहे।

उन्होंने समस्त देश में समानरूप से सम्मानित और पूजित वेद, रामायण एवं महाभारत का अध्ययन तो किया, परन्तु अपने दृष्टिकोण से। यूरोप में ज्ञान-विज्ञान के विकास में यूनान को आदर्श माना जाता था। सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में यूनान की उत्कृष्टता स्वीकार की जाती थी। अतः उन्होंने भारतीय भाषा और साहित्य, सभ्यता एवं संस्कृति का भी उसी के अनुसार आकलन किया। रामायण और महाभारत को ऐतिहासिक काव्य न मानकर 'इलियड और 'ओडिसी' के समकक्ष कवि-कल्पित काव्यों की कोटि में रखा। ऋग्वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ तो माना; परन्तु पूर्वाग्रह ग्रस्त होने के कारण इसका काल-निर्धारण करने में न्याय न कर सके। इसकी प्राचीनता को स्वीकार करते हुए भी खींचतान कर इसे वे ईसा से दो-तीन हजार वर्ष से अधिक पुराना न मान सके।

प्राचीन भारत के इतिहास की विकृति का सूत्रपात ऋग्वेद के काल-निर्धारण से ही होता है। ईसाई मत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि ईसा से लगभग छह हजार वर्ष ही पुरानी मानी जाती थी। तत्कालीन विद्वानों में इस मत को अस्वीकार करने का साहस भी न था। अतः जब सृष्टि कुल आठ हजार वर्ष पुरानी है, तो वेदों की रचना भी इसके बाद ही होनी चाहिये। वेदों का काल-निर्धारण करने में जर्मनी के संस्कृत विद्वान् मैक्समूलर अग्रगण्य रहे। उन्हें ब्रिटिश शासकों ने संस्कृत अध्ययन हेतु इंग्लैंड में नियुक्त कर दिया था। उन्होंने ऋग्वेद का रचना काल १२०० ई.पूर्व माना। यह मत बहुत समय तक प्रचलित और मान्य रहा। बाद में मैक्समूलर ने स्वयं इसे नकारा। अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेदों की रचना के कोई पुरातात्त्विक अथवा ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण इसी मत को स्वीकार किया। वेदों की अपौरुषेय रचना की भारतीय परम्परा की पूर्ण उपेक्षा की। यह भी मत व्यक्त किया गया कि जब स्वयं वेद ही इतने पुराने हैं, तो भारतीय इतिहास इसके पूर्व का हो ही कैसे सकता है? बाद में जैसे-जैसे नवीन तथ्य उजागर होते गये, काल निर्धारण सम्बन्धी मत में परिवर्तन होते गये।

१९०७ ई. में एशिया माइनर में बोगासकुई नामक स्थान पर १४०० ई.पू. का एक शिलालेख प्राप्त हुआ, उसमें वैदिक देवताओं का उल्लेख मिला। अतः विवश हो, यह स्वीकार करना पड़ा कि वेदों की रचना इससे काफी पूर्व हो चुकी होगी।

इसी बीच सुप्रसिद्ध जर्मन वेदज्ञ विद्वान् याकोबी ने गृह्यसूत्रों में उपलब्ध विवरण के आधार पर वेदों का रचना काल ४५०० ई.पू. माना। विन्टरनिट्स और मेकडानल प्रभृति विद्वान् २५०० ई.पू. से अधिक पुराना मानने को तैयार न हुए। यह भी तथ्य उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन काल में संस्कृत शिक्षा के लिए इन्हीं विद्वानों की रचनायें पाठ्यक्रम में स्वीकृत थीं। अतः सरकारी मत होने के नाते भारत में भी इसे मान्यता मिली; परन्तु अनेक स्वतंत्र चिंतक भारतीय विद्वानों ने इसे स्वीकार न किया।

स्वामी दयानन्द तो वेदों के अपौरुषेय होने के परम्परागत मत का प्रतिपादन करते रहे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एवं डा. भाण्डारकर ने अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर क्रमशः ४५०० से ६००० ई.पू. वेदों का रचना काल माना।

सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिक डा. अविनाश चन्द्र दास ने भूगर्भशास्त्र और भूगोलगत साक्ष्यों के आधार पर इस रचना काल को ईसा से २५००० वर्ष पूर्व होने का मत प्रतिपादित किया। ऋग्वेद में सरस्वती नदी के समुद्र में मिलने का उल्लेख है। पूर्वकाल में यह समुद्र वर्तमान काल के राजस्थान में था। किसी बड़े भूकम्प के कारण समुद्र और सरस्वती नदी विलीन हो गये। आर्यों के निवास-स्थान 'सप्तसैन्धव प्रदेश' के चारों ओर समुद्र थे। पूर्वी समुद्र आज के बिहार और उत्तर प्रदेश के स्थान पर था। पश्चिमी समुद्र (वर्तमान अरब सागर) अभी अपने स्थान पर है। उत्तरी समुद्र उत्तर में था, आज का "कैस्पियन सी" (कश्यप सागर) उसी का अवशेष है। दक्षिणी समुद्र राजस्थान में था। गंगा प्रदेश, हिमालय की तलहटी तथा असम के पर्वतीय प्रदेश समुद्र के अन्दर थे। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार यह स्थिति ईसा से २५००० से ५०००० वर्ष पूर्व थी।

पाश्चात्य विद्वान डी. प्रॉवले ने "ग्लोरी ऑफ इण्डिया" नामक त्रैमासिक पत्रिका में एक लेख प्रकाशित करके सिद्ध किया कि ऋग्वेद में उल्लिखित ज्योतिष के तथ्यों-नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर इसका रचना काल ईसा से लगभग १२५०० वर्ष पूर्व रहा होगा।

इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वेदों का रचना काल १५००-२००० ई. पूर्व न होकर, यदि उन्हें अपौरुषेय न भी माना जाय, तो भी बहुत प्राचीन काल में होना निःसंदिग्ध सिद्ध होता है। परन्तु यह सब तो बहुत बाद की बातें हैं। आधुनिक समय में भारत के इतिहास की रचना का श्रीगणेश अठारहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में-१७७८ ई. में सर विलियम जोन्स द्वारा किया जा चुका था। इस इतिहास में भारतीयों को अपने प्राचीन गौरव से वंचित रखने की लार्ड मैकाले की नीति का पूर्णतया पालन किया गया था। इसके साथ ही प्रो. मैक्समूलर ने वेदों की रचना के लिए जो काल-क्रम निर्धारित किया था, उसी को आधार मानकर प्राचीन भारतीय इतिहास की सिकन्दर के आक्रमण से मान्यता दी। भारतीय परम्पराओं और पुराणों में वर्णित इतिहास की पूर्ण उपेक्षा की गई। इतना ही नहीं, संस्कृत के प्रसिद्ध लेखक विन्टरनिट्ज ने अपने ग्रन्थ में महाभारत और पुराणों में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं को नितान्त असत्य और काल्पनिक बतलाया। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत के तत्कालीन और बाद के सभी विश्वविद्यालयों में विन्टरनिट्ज को ही मान्यता प्राप्त थी और आज भी है। सर विलियम जोन्स के ग्रन्थ में प्राचीन भारतीय इतिहास को खींचतान कर ईसा के अधिकतम निकट लाने का प्रयास किया गया। इसी ग्रन्थ के आधार पर उसमें वर्णित तथ्यों को स्वीकार करते हुए ही इतिहास के सभी पाठ्य-ग्रन्थ रचे गये हैं।

यहीं से भारतीय इतिहास में भ्रान्तियों का सिलसिला शुरू हुआ। नन्द वंश के महापद्मनन्द के पौत्र चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन बतलाया गया जबकि उसका शासन काल ई.पू. १४६३ में आरम्भ हुआ था अर्थात् सिकन्दर के आक्रमण के लगभग १२०० वर्ष पूर्व। चन्द्रगुप्त का राज-चिह्न "मयूर" था। उसकी ध्वजा पर भी मयूर अंकित होता था तथा सिंहासन भी मयूराकार था। उसके कतिपय सिक्कों पर भी मयूर की आकृति अंकित पाई गई है। मयूर को ही प्राकृत भाषा में "मौर्य" कहा जाता था, इसी से आज का प्रचलित शब्द "मोर" बना है। चन्द्रगुप्त का महत्त्व कम करने के उद्देश्य से ही उसे "मुरा" दासी का पुत्र घोषित किया गया। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल की पुष्टि पुराणों में दी गई राजवंशावलियों और उनके शासन की अवधि से पुष्ट होती है। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार और पौत्र सम्राट् अशोक था।

सिकन्दर के आक्रमण काल में पाटलिपुत्र पर आन्ध्र के गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त (सातवाहनवंशीय) का राज्य था। इस प्रकार लगभग १२०० वर्षों के इतिहास का ही सफाया कर दिया गया। गौतम बुद्ध और सम्राट् अशोक के काल-निर्धारण में भी मनमानी की गई। ब्रिटिश सत्ता को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से प्राचीन भारतीय इतिहास में और भी अनेक भ्रान्तियों का समावेश किया गया। इतिहास के लिए कालक्रम का सही होना अत्यन्त आवश्यक है। कालक्रमों की विकृति ही इतिहास की विकृति का मुख्य कारण है। कालक्रम की विकृति ने इतिहास में अनेक विकार उत्पन्न किये- आर्य भारत के मूल निवासी नहीं हैं, मध्य एशिया से आकर सिन्धु घाटी की सभ्यता को नष्ट किया, वहाँ के निवासियों पर बर्बरता पूर्ण आक्रमण कर उन्हें दक्षिण की ओर पलायन करने के लिए विवश किया, इस प्रकार उत्तर और दक्षिण-वासियों में फूट डालकर शासन करने की नीति अपनाई। यह भी कहने में चूक न की गयी कि ऋग्वेद घुमन्तू चरवाहों के लोकगीतों का संकलन मात्र है। चरवाहे तो अभी भी हैं, और इस बीच मानव सभ्यता का विकास भी स्वीकार किया जाता है-- अब ऐसे गीत क्यों नहीं रच लिये जाते ? महाभारत और पुराणों को काल्पनिक रचनायें बतलाते हुए उन्हें

वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं को असत्य ही नहीं बतलाया, वरन् उनके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न की गई, जो पूर्ववत् बनी हुई है।

वास्तव में इतिहास के पाश्चात्य लेखक भारतीयों में हीन–भावना उत्पन्न करने के लिए विशेष रूप से सक्रिय रहे और उन्होंने तथ्यों को उसी के अनुसार तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत किया। यूनानियों को भारतवासियों की अपेक्षा अधिक सुसस्कृत, सभ्य और वीर बतलाते हुए उन्होंने सिकन्दर को महान् विशेषण से अलंकृत कर महिमामण्डित किया। सिकन्दर के आक्रमण और उसकी वापसी का जो दूसरा पहलू है, उसे पूर्णतया अनदेखा किया। पंजाब में प्रवेश करने पर सिकंदर की सेनाओं की पंजाब के तत्कालीन अधिपति राजा पुरू (ग्रीक लेखकों ने इसे पोरस नाम दिया है) की सुसगठित सेनाओं से मुठभेड़ हुई। पुरु की सेना ने यूनानी सेना के दाँत खट्टे कर दिये और सिकन्दर को विवश होकर पुरु से सन्धि करनी पड़ी। तत्पश्चात् सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। वापसी में रास्ते में यूनानी सेना की मालवगणों की विशाल सेना का सामना करना पड़ा। इस मुठभेड़ में सिकन्दर घायल हुआ और यूनान पहुँचने के पूर्व ही उसका प्राणान्त हो गया। इन तथ्यों की पूर्ण उपेक्षा कर उसे सिकन्दर महान् घोषित किया गया और आज भी वही बतलाया जा रहा है। यदि सिकन्दर जीता था, तो आगे क्यों नहीं बढ़ा ? विजेता के हौसले बुलन्द होते हैं।

इसी प्रकार मैगास्थनीज को चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में राजदूत होने की बात को मान्यता दी गयी। परन्तु उसने चन्द्रगुप्त और उसके राज्य का जो भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया है, वह चन्द्रगुप्त मौर्य से सर्वथा भिन्न है। मैगास्थनीज ने लिखा है कि सैण्ड्रकोटस सिन्धु देश का सबसे बड़ा राजा था, परन्तु पोरस उससे भी बड़ा राजा था। यह तथ्य स्वयं में बहुत भ्रामक है, कारण चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का सम्राट् था और पोरस तो केवल पंजाब के एक हिस्से का अधिपति था। इसी तरह सैण्ड्रोकोटस के पुत्र का नाम अमित्रोचेटस बतलाया है, जबकि चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र का नाम बिन्दुसार था। सैण्ड्रोकोटस और उसकी राजधानी पालीभोद्रा के नाम और चन्द्रगुप्त एवं उसकी राजधानी पाटलिपुत्र के नाम में भी कोई साम्य नहीं है। इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ भौगोलिक वर्णन में होने के कारण यह विश्वास करना कठिन है कि मैगास्थनीज वास्तव में चन्द्रगुप्त मौर्य के यहाँ राजदूत था। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी मैगास्थनीज के विवरण को प्रामाणिक नहीं माना, परन्तु भारत में सर विलियम जोन्स द्वारा इसी को सही मानकर इतिहास रचा गया और तत्कालीन भारतीय इतिहास लेखकों के समान आधुनिक अंगरेजियत पसन्द लोग इसी को मान्यता दे रहे हैं। **वास्तव में पुराणों की उपेक्षा करके उन्हें अप्रामाणिक मानकर केवल पाश्चात्य विद्वानों के मतों के आधार पर प्राचीन भारत का इतिहास लिखना भारी भूल है। इतिहास की ऐसी ही अनेक भ्रान्तियों के कारण स्वामी विवेकानन्द ने अपने कई भाषणों में भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की माँग की थी।**

१९७९ ई. में मद्रास विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस चांसलर प्रो. जी.आर.दामोदरन् की अध्यक्षता में प्राचीन इतिहास की तिथियों तथा अन्य भ्रान्तियों पर विचार करने के लिए एक विशेष संगोष्ठी (सेमिनार) आयोजित की गयी। इसमें ज्योतिषी, पुरातत्वविद्, गणितज्ञ एवं इतिहास के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने भाग लिया और कई महत्त्वपूर्ण तथ्य–परक शोध–पत्र भी पढ़े गये। संगोष्ठी का विस्तृत विवरण "Mythology to History Through Astronomy" नामक एक ग्रन्थ के रूप में १९८० में प्रकाशित किया गया। प्राचीन महाभारत और रामायण प्रभृति ग्रन्थों में उपलब्ध तिथि, नक्षत्र, सूर्य-ग्रहण तथा ऐसे ही अन्य ज्योतिष लक्षणों के आधार पर महाभारत युद्ध की तिथि २२ नवम्बर, ३०६७ ई.पू. (शुक्रवार, मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी, कृत्तिका नक्षत्र) निर्धारित की गयी। प्रो. राघवन के शिष्य श्री जी.एस. शेषगिरि ने अपनी गणना के आधार पर वैवस्वत मनु का समय ८५७६ ई.पू. निर्धारित किया। आर्यभट ने अपने ग्रन्थ आर्यभटीय में युधिष्ठिर–राज्यारोहण सम्वत् का उल्लेख किया था। इसे पाश्चात्य विद्वानों ने नहीं स्वीकार किया। ज्योतिष के आधार पर इसकी पुष्टि की गयी और उसे ३०६२ ई.पू. की मान्यता दी गयी। आर्यभट द्वारा जिस शक सम्वत् की चर्चा की गई थी, उसे ५५६ ई.पू. पाटिलपुत्र साम्राज्य के आन्ध्र सातवाहन सम्राट् द्वारा प्रचलित माना गया। वराहमिहिर द्वारा भी इसी शक सम्वत् का उल्लेख किया गया था, जिसे भ्रान्तिवश आधुनिक प्रचलित शक सम्वत् से जोड़ दिया गया। चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर की समकालीनता को पूर्णतया अमान्य माना गया और भी ऐसे विषयों पर महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। उत्तर और दक्षिण की अलग दो जातियों की धारणा को बिटिश शासकों की फूट डालो और राज करो की नीति का परिणाम माना गया और स्वीकार किया गया कि समस्त भारत के मूल निवासी एक ही हैं। उत्तर के महर्षि अगस्त्य द्वारा दक्षिण की तमिल भाषा का परिष्कार कर उसके व्याकरण की रचना की गई, जो अभी

भी 'आगस्त्यम्' नाम से जानी जाती है। इतिहासविदों से आग्रह किया गया कि इतिहास लेखन में भारतीय दृष्टिकोण को मान्यता दें, केवल पाश्चात्य विद्वानों के कथ्य पर इतिहास प्रस्तुत न करें।

भारतीय इतिहास की प्राचीनता

भारतीय इतिहास कितना प्राचीन है, नैमित्तिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर पढ़े जाने वाले संकल्प मंत्र से इसका सहज अनुमान किया जा सकता है:

"ॐ विष्णुः ३, ॐ तत्सदद्य श्री मद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रर्वतमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय परार्धे श्री श्वेत वाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशातितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे जम्बू द्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैक देशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे ...... अमुक नाम सम्वत्सरे अमुक अयने अमुक ऋतौ अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुक नामाहं..... अमुक कर्म करिष्ये।"

इस मंत्र द्वारा संकल्पकर्त्ता अपने को हजारों-लाखों वर्ष की परम्पराओं से सम्बद्ध कर लेता है। मंत्र बतलाता है कि ब्रह्मा के दिन का दूसरा परार्द्ध चल रहा है।

एक कल्प में १४ मनु १ वर्तमान कल्प---- श्वेतवाराह कल्प इस कल्प के छः मनु गुजर चुके हैं, वर्तमान में सातवें मनु--- वैवस्वत मनु का समय चल रहा है। एक मनु के समय की अवधि को मन्वन्तर कहा जाता है। इस प्रकार आजकल सातवें मनु का समय होने से इस कल्प का सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। कल्प पूरा होने तक अभी सात मन्वन्तर और होंगे। छ : मनुओं के छ : मन्वन्तर बीत चुके हैं। २८वें चतुर्युग का कलियुग चल रहा है। इस कलियुग के वर्तमान सम्वत् २०५५ तक ५०६६ वर्ष बीत चुके हैं। इस प्रकार वर्तमान सृष्टि के अब तक सम्वत् २०५५ तक एक अरब ६७ करोड़ २६ लाख ४६ हजार ६६ वर्ष बीत चुके हैं।

हमारे पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से ही क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। संसार की किसी भी भाषा के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार का इतिहास उपलब्ध नहीं है। फिर भी हमारे इतिहासविद् सम्भवतः पुराणों का अध्ययन किये विना ही उन्हें अमान्य करनेका दुस्साहस करते हैं। वे विदेशी ग्रन्थकारों के दिये तथ्यों के ही आधार पर अपने ग्रन्थ प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक इतिहासविद् पुरातात्त्विक अवशेषों को विशेष महत्त्व देते हैं। श्रीमद्भागवत के भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारका के समुद्र में विलीन हो जाने की बात को भी वे स्वीकार नहीं करते थे। अब जब समुद्र में तीन स्तरों में द्वारका नगर और उसके पोतस्थलों (आधुनिक बन्दरगाहों) के अवशेष मिले, तो उन्हें निरुत्तर हो जाना पड़ा। अब तो हरियाणा के कुनाल क्षेत्र में महाभारतकालीन स्वर्ण-मुकुट और स्वर्ण आभूषण भी प्राप्त हो चुके हैं।

भारतभूमि और उसके निवासियों सम्बन्धी लगभग डेढ़ करोड़ पुराने अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में सबसे प्राचीन मानव-अवशेष रावलपिण्डी के पास सोअन नदी के काँठे में पाये गये- कुछ हड्डियाँ और प्रयोग में लाये जाने वाले कुछ प्रस्तर उपकरण। इन मानव अवशेषों के मानव का नाम वैज्ञानिकों ने "रामपिथैकस" रखा, जो अब से लगभग एक करोड़ ४० लाख वर्ष पहले उस क्षेत्र में रहता था।

स्वतंत्रता के बाद विदेशी पुरातत्त्वविदों की एक दूसरी टोली को अम्बाला जिले की शिवालिक पहाड़ियां की मरकण्डा नदी की घाटी में इससे भी पुराने मानव अवशेष मिले। इन अवशेषों को "शिवपिथैकस" का नाम दिया गया।

शतपथ-ब्राह्मण और मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि मानव-सृष्टि कुरुक्षेत्र ही से आरम्भ हुई और यहीं से मानव का देश-देशान्तर में गमन हुआ। उक्त प्राचीन मानव अवशेषों की प्राप्ति क्या हमारे इन ग्रन्थों के वचनों को पुष्ट नहीं करती। और अब तो वैदिक काल की विलुप्त नदी "सरस्वती" के भी अवशेष देशी और विदेशी टोलियों द्वारा प्राप्त हो चुके हैं। इस सरस्वती नदी के वैदिक ऋषियों ने गीत गाये हैं और इसी के तट पर ऋषियों ने साधना करके वैदिक संस्कृति का विकास किया था।

यह एक सीधी सी सोचने की बात है कि इतने पुरातन इतिहास को ईसा से हजार दो हजार वर्ष पूर्व की अवधि तक समायोजित कैसे किया जा सकता है। ब्रिटिश शासन को समाप्त हुए पचास वर्ष हो रहे हैं, अब तो हमें अपने शुद्ध इतिहास का बोध कराया ही जाना चाहिए. इतिहास के पुनर्लेखन की इस महती आवश्यकता की पूर्ति योजनाबद्ध रीति से की जा रही है।

इतिहास के महत्त्व को बतलाते हुए महाभारत में महर्षि व्यास ने कहा है कि "इतिहास की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता जाता है। धनहीन होने पर कोई नष्ट नहीं होता, किन्तु इतिहास और अपना प्राचीन गौरव नष्ट होने पर विनाश निश्चित है।" ☐

— साहित्य-निकेतन, ३७/५०, शिवाला रोड,
गिलिस बाजार कानपुर-२०८००१

सिंहों के साथ दिलचस्प अनुभव

– रामेश बेदी

जून का महीना था। सुबह के पौने पाँच बजे मैं सिंहों की तलाश में निकला। जंगल की कच्ची सड़क पर हम धीमी गति से जीप चला रहे थे। सड़क के दोनों तरफ जंगल में हमारी निगाहें जीवों को तलाश कर रही थीं। गेस्ट हाउस से हम सोलह किलोमीटर चले आए होंगे। जंगल जाग चुका था और जीव अपने दैनिक काम-धंधों में जुट गए थे।

झाँक (नर चीतल) की तीखी चीख सुनकर हमने जीप रोकी। इन दिनों चीतलों के जोड़ा बनाने का मौसम तो जरूर था, लेकिन यह आवाज अपने जोड़ीदार को बुलाने के लिए प्रणय-पुकार नहीं थी। यह भीति-संकेत था। सिंह कहीं पास में मौजूद था।

हमने जीप छोड़ी और धूल भरी पगडंडी पर सिंह के पैरों के निशान खोजते हुए आगे बढ़ने लगे। दो सौ मीटर जाने पर झाँक खड़ा दिखाई दिया। हमें देखकर वह भागा। कुछ छलाँगें मारकर रुका, फिर भीति-संकेत दिया और भागा।

उस दिन मेरे साथ बापा शिकारी था। इस काम पर उसकी हाल ही में नियुक्ति हुई थी। वह पुराने अनुभवी शिकारियों के समान साहसी नहीं था।

ल्हासा और भगता सगे सिंह भाइयों में तालमेल

भीति-संकेत सुनकर हम सावधान हो गये थे। धीरे-धीरे उस जगह पहुँचे जहाँ पहले झाँक खड़ा था। घास के झीने परदे के पीछे से हमें सिंह के गुर्राने की आवाज आई, मैंने यह आवाज पहले भी सुनी हुई थी। गीर के दो सबसे बड़े सिंह ल्हासा और भगता शिकार खाते वक्त इसी तरह गुर्राया करते थे। अपने पास किसी को फटकने नहीं देते थे। मैं समझ गया कि दोनों में से कोई एक शिकार खा रहा है और हमारे इधर आने पर वह नाराजगी प्रकट कर रहा है। ये दोनों सगे भाई गीर के सबसे तगड़े सिंहों में से थे। सात-आठ साल पहले गंगा ने इन्हें जन्म दिया था। भगता से ल्हासा कुछ बड़ा और ताकतवर था।

हमने सिंहों के गुर्राने का आदर किया और अधिक चौकस होकर उधर बढ़ने लगे। बेरी के एक बिरवे के पास ल्हासा एक झाँक को खा रहा था। हमें देखकर वह जोर से गुर्राया। आगे बढ़ने से हमें रोकने के लिए यह चेतावनी पर्याप्त थी। हम लौट आए।

खून से लथपथ मुँह

उत्तर की तरफ से हम फिर ल्हासा की ओर बढ़े। इधर से ल्हासा तक पहुँचना अपेक्षाकृत कम खतरनाक था। हम ल्हासा से बीस मीटर दूर जाकर खड़े हो गए और फोटो खींचते रहे। झाँक की रान और पेट तक के हिस्से को वह खा चुका था। कुछ देर बाद उसने सिर उठाया। खून से लथपथ मुँह लाल रंग से पुता हुआ दीखता था। उसने लाश छोड़ी और प्यास बुझाने चला गया। पानी पीने के लिए उसे आधा घंटे का सफर तय करना था।

नाटक के अगले दृश्य में रंगमंच पर भगता उतरा। वह हमारे सामने झाँक को खाना नहीं चाहता था। उसने लाश को मुँह में उठा लिया और एक तरफ चल दिया। वह इस सफाई से लाश ले जा रहा था कि उसका कोई भी अंग धरती के साथ घिसट नहीं रहा था। झाँक की चारों टाँगों को और नब्बे सेंटीमीटर लंबे सींगों से सुशोभित सिर को उसने भली-भांति संतुलित कर लिया था। ढाक की छाया में उसने लाश को रखा। पसलियों के साथ चिपटी मांसपेशियों को नोचकर वह खाने लगा। बीच-बीच में पसलियों को तोड़ने की आवाज भी आती रही।

जलकुंड से ल्हासा लौटा, तो उसके मुँह पर पुता हुआ लहू धुल गया था। छाती पर अब भी लहू के धब्बे पड़े हुए थे। भगता ने बड़े भाई का सम्मान किया और लाश को छोड़कर एक तरफ जा बैठा। ल्हासा उसे फिर झाड़ियों में उठा ले गया। नौ बज रहे थे। तीन घंटे बाद मैं गेस्ट हाउस लौट गया।

अपराह्न ढाई बजे फिर निकला। झुरमुटों पर बैठे गिद्धों को देखकर मुझे लाश का पता चल गया। हड्डियाँ बटोरने वाला एक हरिजन अपनी बीबी के साथ वहाँ मँडरा रहा था। हम लोगों ने लाश को तलाश करके बाहर निकाला। हमारे जाने के बाद ल्हासा और भगता ने लाश

को नहीं खाया था। उन्होंने अधिक समय सोने में गुजारा था। लाश पर उतरने वाले गिद्धों को वे उड़ाते रहे थे।

हरिजन झाँक को उठाकर अपने घर ले गया। सिंह द्वारा मारे गए प्राणी का शव जब जंगल में मिलता है तब अधिकारी जाँच करते हैं कि वह बीमार तो नहीं था। जाँच करने के लिए वे टाँग की ऊपरी हड्डी को काटकर अंदर की मज्जा को देखते हैं। यदि वह सफेद रंग की है, तो जानवर स्वस्थ समझा जातात है। नीली, हरी या बदरंग हो, तो बीमार। इस जाँच में झाँक बिलकुल स्वस्थ निकला था। इतना बड़ा और स्वस्थ झाँक सिंह के हाथ कैसे आ गया? झुंड की चीतलियों में से किसी को पकड़ना इसे पकड़ने से अधिक आसान था।

अस्सी किलोमीटर का दौरा

सिंह आमतौर पर रात में शिकार करते हैं। जिन दिनों बच्चे उनके साथ रहते हैं, उन दिनों वे दिन में भी शिकार कर लेते हैं। शाम चार–पाँच बजे ये शिकार के लिए निकलते हैं और सुबह पाँच छह बजे वापस आ जाते हैं। आहार संबंधी यात्राओं में अपने निवास–स्थान से २५ से ३० किलोमीटर तक का चक्कर लगाना इनके लिए मामूली बात है। कभी–कभी तो ८० किलोमीटर का चक्कर लगाने को ये विवश हो जाते हैं और तब भी निश्चित नहीं होता कि उन्हें आहार मिल ही जाए।

शिकार अधिकतर सिंहनी करती है जो बच्चों को पालने, खिलाने तथा प्रशिक्षित करने के भारी कर्त्तव्य को भी निभाती है। भारी–भरकम देह होने से नर अपेक्षाकृत घटिया शिकारी है। लेकिन सिंहनी के मारे हुए शिकार को पहले वही खाता है। वह इसे अपना अधिकार मानता है, क्योंकि लेहड़े द्वारा अधिगृहीत इलाके की अखंडता को अक्षुण्ण रखने तथा उसकी रक्षा करने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी उठाता है; अन्य नर सिंहों से सिंहनी की रक्षा करता है, बच्चे देने के स्थान की सुरक्षा प्रदान करता है।

मिलकर शिकार करते हैं

मनुष्य और सिंह का शिकार करने का तरीका मिलता–जुलता है। सिंह बड़ी चतुराई से काम लेता है। जंगल में घूमकर पहले शिकार का पता लगाता है। आहट किए बिना धीरे–धीरे आगे बढ़ता है। जानवर को इसका आभास तक नहीं होता। पकड़ने योग्य दूरी तक पहुँचकर उस पर झपट पड़ता है। आठ–दस छलाँगों में जानवर पकड़ा गया, तो भला। बच निकला, तो वह उसके पीछे अधिक दूर तक नहीं जाता। इसी तरह जानवर यदि भाग रहा है, तो सिंह पहले अंदाज कर लेता है कि उसे तीन–चार सौ मीटर तक पकड़ सकेगा या नहीं। तब उसके पीछे भागता है। अनुमान लगाया गया है कि सिंह प्रति घंटा ५० से ६० किलोमीटर की गति से कुछ दूर तक दौड़ लेता है।

सासनगीर में देखा गया है कि कुछ सिंह मिलकर योजनापूर्वक शिकार करते हैं। मिलकर शिकार करने के दो तरीके हैं। पहला तरीका शिकारियों की हाँका पद्धति से मिलता है। सिंह परिवार के सदस्य जंगल के उस टुकड़े को चारों ओर से घेर लेते हैं, जहाँ जंगली और पालतू पशु होते हैं। तीन दिशाओं में इस घेरे को धीरे–धीरे तंग करते हुए सिंह आगे बढ़ते हैं। चौथी दिशा में मोर्चे पर सिंहनी छिपकर बैठ जाती है। शिकार को पकड़ने की जिम्मेदारी उसी की रहती है। सिंह जानवर को हाँक कर उसी जगह ले आते हैं। पास आ जाने पर तब वह अचानक पशु को दबोच लेती है। टोली में रहने वाले सिंहों के लिए यह हाँका पद्धति सामान्यतः बहुत कामयाब साबित होती है।

दूसरी पद्धति बहुत अद्भुत है। चर रहे ढोरों के समूह में जब मालधारी (चरवाहा) नहीं होता, तब सिंह उनके चारों ओर घेरा डालकर कुछ दूरी पर बैठ जाते हैं। हवा का रुख देखकर उनमें से एक अपने मुँह से बार–बार हवा छोड़ता है। पाठक जानते हैं कि प्रत्येक जानवर के मुँह से एक बास निकलती है, जिसे दूसरे जानवर भली–भाँति पहचानते हैं। सिंह के मुख से निकली बास हवा के साथ–साथ ढोरों तक पहुँचती है। वे समझते हैं कि सिंह इधर से आ रहा है। तब उनमें भगदड़ मच जाती है। चारों मोर्चों पर सिंह डटे होते हैं, जो मजे से शिकार को मार लेते हैं। तब सारा परिवार अपनी भूख शांत कर लेता है।

अफ्रीकी सिंह भी मिलकर शिकार करते हैं। एक सिंहनी घास में पड़ जाती है और बिना हिले लेटी रहती है। नर चुपचाप दूर निकल जाते हैं। जेबरों को हाँकते हुए वे सिंहनी के इतना पास ले आते हैं कि वह उन्हें आसानी से मार सके। एक को तो सिंहनी मार गिराती है, शेष जेबरे जिधर भी भागते हैं, उधर सिंह उन्हें पकड़ लेते हैं।

आत्म रक्षा के लिए भैंसें अधिक सक्षम

सामान्यतः सिंह झुंड में चर रहे ढोरों पर हमला नहीं करते। साँझ को जब ढोर गाँव चले जाते हैं और भूल से कोई पशु भटक जाता है, तब उसे दबोच लेते हैं।

भैंसें देखने में तो बुद्धू लगती हैं, पर आत्मरक्षा के लिए वे गायों से अधिक विवेकशील होती हैं। सिंह की गंध

पाकर वे चरना छोड़कर झट घेरे में इकट्ठी हो जाती हैं, जिसमें इनके सिर तो बाहर रहते हैं पिछाड़े अंदर। कम उम्र की भैंसें घेरे के अंदर बंद कर ली जाती हैं। इस व्यूह–रचना को देखकर सिंह की हिम्मत पस्त हो जाती है।

सिंह सामान्यतः शिकार को झटपट और कुशलता से मारते हैं। छोटे शिकार को तो पंजे के एक तेज झटके से गिरा लेते हैं। बड़े जानवर का शिकार करने के लिए वे अक्सर उसके पीछे से हमला करते हैं। जानवर के दायें या बायें कमोबेश तिरछी लाइन में दौड़ते हैं। बिलकुल साथ पहुँचने पर एक पंजे से उसकी पीठ पकड़ लेते हैं। दूसरे पंजे से छाती या थूँथनी को काबू कर लेते है, किल्लों को पीठ या गरदन पर गाड़कर मजबूती से पकड़ लेते हैं। जबरदस्त हमले से दुश्मन हतप्रभ हो जाता है और समर्पण कर देता है। उसे नीचे खींचकर गरदन को कसकर पकड़ लेते हैं। गला भींचने से, दम घुटने से जानवर की मौत हो जाती है। कशमश के दौरान दुश्मन अधिक जद्दोजहद करे, तो उसकी गरदन के कशेरुक स्थान–भ्रष्ट हो जाते हैं। कभी–कभी सिंह शिकार की नाक को दाँतों से भींचकर दम घोंट देता है।

शिकार किए हुए चीतल को सिंह सुरक्षित स्थान में ले जाने के लिए उठा रहा है।

मारण के बाद सिंह सामान्यतः शिकार के घावों से बहते हुए लहू को चाटना पंसद करते है। जिस स्थान पर खाल पतली हो, वहाँ से लाश को फाड़ा जाता है। जाँघ और पेट का संधिस्थल इसके लिए उपयुक्त होता है। चुने गये स्थान से कृंतकों द्वारा बालों को साफ कर दिया जाता है। उदर गुहा को खोलने के बाद आमाशय की थैली को सदा निकाल दिया जाता है और लाश से कई मीटर दूर रख दिया जाता है। इसके बाद दावत शुरू होती है।

आँतों को साफ करके खाता है

भीतर के जिगर, गुरदे और दिल आदि अंगों को वह चाव से खा जाता है। आँतों को बाहर निकालकर, दाँतों के बीच में सूँथकर, अंदर की गंदगी को फेंककर साफ करके खाता है। शिकार किये गये जानवर के जिगर से उसे काफी विटामिन–ए मिल जाती है। सिंह और अन्य विडालीय जंतुओं में यह स्वयं नहीं पैदा होती। शिकार को जहाँ गिराया था, अकसर वहीं खाना शुरू कर दिया जाता है। धूप ज्यादा हो, तो घसीटकर नजदीक के पेड़ या झाड़ी की छाया तले खींच लिया जाता है। डटकर पेट भर लेने पर सिंह मारण के नजदीक ही या किसी अनुकूल जगह सो जाते हैं। अधिक दूर नहीं जाते। मन करने पर फिर खाना शुरू कर देते हैं। मारण के साथ लेहड़ा ४८ घंटे तक रह सकता है।

वयस्क सिंह भी शिकार करने में सहयोग देते हैं। दावत के समय वे अपनी चौधराहट बनाये रहते हैं। हरेक को अपनी–अपनी पड़ी रहती है। वयस्क नर मादाओं पर हावी रहते हैं और ये बच्चों पर हावी रहती हैं। मारण को खाने की प्रतिस्पर्द्धा में बच्चे पिछड़ जाते हैं, जिंदगी के

पहले साल में वे भूखे मर सकते हैं।

आहार की कमी के दौरान वयस्क मादाओं को भी अपनी ही संतान को खाने से रोकते देखा गया है। यदि छोटा जानवर मारा गया है, तो वयस्कों के प्रभुत्व के कारण बच्चे खाने से वंचित रह जाते हैं। गोश्त खाने के लिए कोई साहसी बच्चा मारण पर पहुँचने की कोशिश करता है, तो उसे बुजुर्ग सिंह से थप्पड़ खाने का खतरा भी उठाना पड़ता है। करारा थप्पड़ उसकी जान भी ले सकता है।

पानी की जरूरत

मारण से नदी या जोहड़ अधिक दूर न हो, तो लेहड़े के सदस्य कुछ–कुछ समय बाद चहल–कदमी करते हुए मौज में पानी पीने जाते रहते हैं। पास में पानी न हो, तो मारण को खत्म करके समूचा लेहड़ा जलकुंड पर चला जाता है।

पानी पीने के लिए सिंह नीचे झुकता है, दोनों तरफ कोहनियाँ बाहर की ओर खड़ी रहती हैं, सिर नीचे करने पर अंसफलक उठ जाते हैं और जीभ से पानी लपलप करता है। एक बार में कुछ हीं बूँदें जीभ में जाती हैं। पानी पीना मंद प्रक्रिया है, प्यास बुझाने में दस मिनिट से अधिक लग जाते हैं।

सिंह हर रोज या कम–से–कम दूसरे–तीसरे दिन तो पानी पीते ही हैं। नदी या जलकुंड से १० से १५ किलोमीटर से अधिक दूर नहीं रहते। दक्षिण अफ्रीका में कालाहारी रेगिस्तान के सर्वाधिक सूखे भाग में रहने वाले सिंहों को कभी–कभी तरबूज खाते देखा गया है। (गुग्गिसबर्ग, १६७५); इसमें अधिक मात्रा में पानी होता है।

सासनगीर के वन–जंतु विहार में सिंहों के पानी पीने के लिए सैकड़ों प्राकृतिक स्थान हैं। फिर भी यदि किसी वन–खंड में गर्मियों के महीनों में पानी की कमी नजर आए, तो वन विभाग के कर्मचारी नाले में जगह जगह गड्ढे खोद देते हैं, जिनमें प्राकृतिक पानी निकल आता है। प्रत्येक गड्ढा एक मीटर गहरा और लगभग इतना ही लंबा–चौड़ा होता है।

सागाबाड़ी में सिंह–प्रदर्शन के लिए एक खुला मैदान है। उसके साथ एक बरसाती नाला बहता है। यह जगह ठंडी और छायादार है। इसमें सामान्यतः सिंह दिन में सोए पड़े रहते हैं। सागाबाड़ी में एक बूढ़ी भैंस सिंहों के खाने के लिए दी गई। यह भैंस इतनी लाचार थी कि वह चल नहीं सकती थी। गाँव से उसे बैलगाड़ी में लादकर लाए थे। सिंह का परिवार भैंस के कारण सागाबाड़ी से बाहर नहीं गया।

सिंहों के पानी के लिए हमने गड्ढा खोदा

गर्मी बढ़ने के साथ–साथ नाले में सभी जगह पानी सूख गया था। हम लोग सिंहों के पानी पीने के लिए गड्ढा खोदने लगे। इस इलाके में भाणा और दीप्ति नामक सिंह और सिंहनी रहते थे। ये दोनों भाई–बहन आठ–नौ महीने के थे। वे समझ गए कि उनके लिए पानी का प्रबंध किया जा रहा है। भाणा हमसे तीन मीटर दूर बैठकर पानी की प्रतीक्षा करता रहा। दीप्ति अधिक शैतान और चालाक थी, वह नाले के कगार के ऊपर बैठी रही। दो–तीन महीने की उम्र के अलका के तीन बच्चे वहाँ आ गये। पानी ६० सेंटीमीटर की गहराई पर निकला। गड्ढा तंग था, जिसके अंदर सिंह उतर नहीं सकते थे। गड्ढे के किनारों की बलुआ मिट्टी को हटाकर ढलवाँ बना दिया गया। हम लोग गड्ढा से हटे ही थे कि सिंह पानी पीने आ गये। तब जल–कुंड पर छह सिंहों को एक साथ पानी पीते हुए हमने फोटो खींचे।

अभयवन में कई जगह सीमेंट के पक्के जल–कुंड बना दिए गए हैं। ट्रकों में पानी की टंकियों को रखकर ले जाते हैं, जिनमें से इन कुंडों में पानी डाल देते हैं।

बूढ़ों को पेंशन

बूढ़े या अपंग हो जाने से सिंह हिरणों, साँभर और तेज दौड़ने वाले अन्य पशुओं को नहीं पकड़ पाते। ऐसे सिंह पालतू पशुओं के लिए मुसीबत बनते देखे गए हैं। गोधूलि वेला में पास के गाँव के बाहर ये कहीं छिप जाते हैं और घर लौटते हुए ढोर को पकड़ लेते हैं। इसी तरह उषाकाल से पहले ही वे झाड़ी में छिपकर बैठ जाते हैं और चरागाह की तरफ हाँके जाते हुए ढोर को धर पकड़ते हैं। सासनगीर में पालतू पशु काफी संख्या में मारे जाते हैं। इसे रोकने के लिए अभयवन के अधिकारी यदा–कदा वनखंड में जाकर पाढ़ा छोड़ते हैं, जिससे बूढ़े सिंह अपना पेट भर लें और पालतू जानवरों की ओर आकृष्ट न हों। जीप में पशु को रखकर जंगल में ले जाया जाता है। सिंह जीप को पहचानते हैं। उसे देखकर भयभीत होने के बजाय उठकर उसका स्वागत करते हैं। गरदनें ऊपर उठाकर उत्सुकता से भोजन के गिराए जाने की प्रतीक्षा करते हैं। बूढ़े सिंहों को इस प्रकार पेंशन के रूप में पाढ़ा या बकरी देने की प्रथा नवाब के शासनकाल (स्वतंत्रता पूर्व) में शुरू हो गई थी।

(शेष पृष्ठ २६ पर)

कहानी

भागो बुआ

– मदन मोहन पाण्डेय

घर में ढोलक की थाप पर कलहास–मिश्रित गाने का स्वर, रंग बिरंगे परिधानों में चहकते बच्चे, द्वार पर बिजली की बारात, मेहमानों की चहल–पहल, इस सबके बीच व्यवस्था का पर्याय बनी भागो बुआ चाबियों का गुच्छा कमर में खनखनाती हुई, देखने लायक फुर्ती से काम कर रही थीं। कहीं किसी को कोई चीज जरूरत होती तो बुआ की पुकार होती; कहीं किसी मेहमान का स्वागत, कहीं हलवाई की पुकार, बुआ फिरकी की तरह घूम रही थीं। बुआ के जीवन का चरम आह्लाद जैसे आकाश से उतर कर सारे वातावरण पर तैर रहा था। जब बीस साल पहले वे डेढ़ साल के बेटे को गोद में लिए बाप की देहली पर रहने आई थीं, तो पति ने उन्हें सिरफिरा–सा समझा था। जो अपने पिता की ऊबड़–खाबड़ जमीन और घर की देखभाल के लिए शहर की सुविधाएँ छोड़कर गाँव आने की जिद मचाए थीं। बाप की बीमारी का दुःख सभी को होता है, लेकिन उसका मतलब यह तो नहीं कि लड़की सदा के लिए मायके में बस जाये। पर बुआ के अपने तर्क थे। उनका कहना था, जिसके इकलौती बेटी ही हो, उस बेटी को भी बेटे का दायित्व निभाना होता है। अपनी सुविधा के लिए बाप को असहाय मरने के लिए छोड़कर मौत के बाद जमीन–जायदाद के लिए पहुँचे, ऐसा निठुर कलेजा भागो बुआ ने पाया नहीं था। उनके लिए पिता की सेवा और उनका आशीर्वाद जितना महत्त्व रखता था, जायदाद उतना महत्त्व नहीं रखती थी। हाँ; उनके मन में यह इच्छा जरूर थी कि उनके पुरखों की देहरी पर पिता के बाद भी दिया जरूर जलता रहे। शायद इसका कारण यह हो कि उनके छुटपन से गाँव–घर के लोग यह कहते रहे थे कि मास्टर साहब के बाद उनकी देहली पर कोई दिया–बाती करने वाला नहीं रहेगा। ये खेत–पात, घर–मकान, तीन–तेरह हो जायेंगे। भागो बुआ के किशोर मन ने तभी से निश्चय किया हुआ था कि वे बापू की देहली पर जहाँ तक हो सकेगा, उजियारा बनाये रखेंगी और उनके खेतपात जतन से हरे–भरे रखेंगी। वह दिखा देंगी कि बेटे ही नहीं बेटियाँ भी घर में चिराग जलाने की औकात रखती हैं।

फिर तो पिता की अकस्मात् मृत्यु के बाद वह गाँव की ही होकर रह गईं। गाँव में रहने के लिए बुआ ने क्या–क्या नहीं सहा। पट्टीदारों की बेवजह कलह, पति का तिरस्कार और आर्थिक कठिनाइयाँ। लेकिन उन्होंने न तो मायके को तिलांजलि देकर स्वतः मान–रहित होकर पति के पास जाने की सोची और न पट्टीदारों के आगे झुकीं। खेती–बारी से उत्पन्न अनाज या घी–दूध वहाँ जरूर भेज देतीं; परन्तु अपनी मायके की माटी से उनके पैर मानों चिपक गये थे। सोचते–सोचते वे विह्वल हो जातीं कि उस मिट्टी को कैसे छोड़ दें, जिसमें खेल–खेल कर वह बड़ी हुई हैं। इस घर की दीवारों में वात्सल्य का सोंधापन मानो भुजाएँ फैलाकर उन्हें बुलाता है। ये घर के कोने, नीम की छाँव माँ की बाँहों की तरह उन्हें बाँध लेते और वे अपने पति को चिट्ठी लिख देतीं कि यहीं आ जाओ। अन्नपूर्णा धरती अब यहाँ हमारे–तुम्हारे खाने भर को काफी दे देती है। शहर की मामूली नौकरी में क्या रखा है?

लेकिन उनके पति को इस बात पर विश्वास न आता कि ससुराल की उबड़–खाबड़ जमीन को बुआ ने इस कदर उपजाऊ बना दिया होगा। यही कारण था कि बुआ के विश्वास की डोर तोड़कर उन्होंने अपना दूसरा ब्याह रचा लिया था। बुआ ने यह दारुण समाचार भी दाँतों से ओंठ दबाकर सुन लिया। उस दिन वे एकांत में रोईं भी नहीं। हाँ; एक दृढ़ निश्चय की छाप उनके चेहरे पर अवश्य चिपक गई। उस दिन से वे दूनी गति से काम करतीं और मजदूर के रहने पर भी पशुओं को स्वयं चारा डालतीं, खेती देखतीं और अपने एकमात्र अवलम्ब बीरू को पढ़ातीं। बाप वाले बेटे वह परवरिश क्या पायेंगे, जो उन्होंने बाप की छाया से वञ्चित बीरू को दी। गाँव के बाद जब बीरू शहर पढ़ने जाने लगा, तो उसे बिदा करते समय उनका कलेजा मुँह को आ रहा था, लेकिन उन्होंने बीरू के भविष्य को सोचकर अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं होने दी। हाँ, भले ही सिखावन के शब्द उनके मुँह से नहीं

निकल पाये, पर उनकी भरी आँखों की भाषा बीरू ने अवश्य पढ़ ली। तभी तो वह परीक्षाओं की कसौटी पर खरा उतर कर भी शहरी चकाचौंध के बजाय अपनी माँ का ही बना रहा। अच्छी कद काठी, खिलता रंग, सुन्दर स्वभाव। सारे गाँव के लोग कहते थे– भागो बुआ ने बीरू को जैसा बनाया, बाप क्या बना सकता था? उसके दूसरे ब्याह का लड़का बीरू का सौतेला भाई सुना है, गिरहकटी में पकड़ा गया था। यह बाप की काबिलियत है। यहाँ बिना बाप बीरू किसी दिन गाँव का नाम उजागर करे, तब देखना।

हालाँकि बुआ के पट्टीदार इन बातों से खुश नहीं थे। उन्हें अच्छा नहीं लगता था, उनके जुआरी–शराबी लड़के उनके घर में तांडव मचायें और भागो बुआ का बेटा पास ही अपने गुणों की गंध बिखेरे। इसी जलन के कारण उन लोगों ने शुरू में ही बुआ की जमीन–जायदाद पर टंटे बखेड़े और मुकदमे खड़े किये, लेकिन बुआ ने किसी के सामने सिर नहीं झुकाया। भले ही उन दिनों में उन्हें तंगी के कारण घर की कई जरूरी चीजें छिपाकर बेंच देनी पड़ीं। और वे जब तब नहीं झुकीं, तो अब तो खैर उनकी उपलब्धि का समय था।

बीरू पढ़–लिखकर वैज्ञानिक ढंग से खेती करने लगा था। दरवाजे पर ट्रैक्टर मोटर साइकिल सब कुछ था। सिर्फ एक सुघड़ बहू की कमी बुआ को सताती थी। उनका मन सोचता था कि अब घर में पायलों की रुनझुन और पोते की किलकारी गूँजे, ताकि बहू को घर की चाबियाँ सौंपकर बुआ निश्चिंतता के सुख का अनुभव कर सकें। जीवन की श्रमपूर्ण अथक यात्रा में यह विचार उन्हें रेगिस्तान में प्यासे पथिक के लिए मरु–उद्यान की तरह कल्पनातीत रूप से सुखद था।

और आज भागो बुआ की कल्पनाएँ साकार रूप ले रही थीं। बेटे के ब्याह के बाजे बज रहे थे। उनका मन आपे में नहीं था; किन्तु रह रह कर उनके मन में एक बात गूंज रही थी कि काश! बीरू के पिता जी आज यहाँ होते। उनके इस विचार में कहीं कोई ईर्ष्या या आडम्बर और अभिमान का भाव नहीं था। इस समय उनके उदात्त हृदय में इतना उल्लास भरा था कि इन क्षुद्रताओं के लिए वहाँ स्थान ही नहीं था। माँ–बेटे के बाद इनके यदि कोई सबसे सगा अपना था, तो वह बीरू के पिता जी ही थे। ऐसे अवसर पर वह आ जाते, तो भागो बुआ को लगता कि उनकी पत रह गई है। मैंने लाख सब कुछ किया, लेकिन शब्दशः बाप तो नहीं हो सकती। उन्हें बीरू को देखकर कितनी खुशी होती। उन्होंने बीरू से छुपाकर एक कार्ड बीरू के पिता जी को डाला भी था, लेकिन वह क्यों आने लगे? बारात चलते–चलते तक आ जायें, तो उन्हें संतोष हो जाये।

लेकिन बारात चलने तक भागो बुआ ससुराल के रास्ते की ओर चोरी–छिपे दृष्टि डालती रहीं। लोग कहते, बुआ को आज चैन नहीं है। दिनभर की थकी–माँदी हैं। सारा काम खुद देखना पड़ा। जिम्मेदारियाँ आदमी को खुलकर हँसने भी कहाँ देती हैं; पर इन्हें क्या पता था बुआ की दुखती रग का। बारात चल देने के बाद घर में आकर उनके धीरज का बाँध टूट गया। सुख–दुःख दोनों को अकेले झेलना बहुत कठिन होता है। उन्हें आज सुख की अतिशयता में सहचर की आवश्यकता थी। वे फफक कर रो पड़ीं और उनका यह रोना पट्टीदारों ने भी सुना।

बहू को घर में उतारते हुए उन्होंने अपने जीवन के शेष अध्याय को पूर्ण समझा। चरम–तृप्ति उनके चेहरे पर नाच रही थी और विवाह के दो दिन बाद ही उन्होंने घर की चाबियाँ बहू को देकर कहा– "तू आज से यह जंजाल सँभाल, अब तू इस घर की मालकिन है। आज से मैं इस चिंता से मुक्त हुई, कहते–कहते उनकी आँखों की कोरें प्रसन्नता के आँसुओं से छलक आयीं। बहू को उनकी उच्च भावनाओं का पता कहाँ था। उसने बाद में पति से इस घटना का जिक्र इस तरह से किया कि बुआ के मन में जैसे उसके आने से कहीं कोई ठेस लगी है और इसी के कारण डाह में उन्होंने चाबियाँ फेंक दी हैं। और तभी आँखें भर आई हों। जिसे बहू के आने की खुशी होती, वह क्या इस तरह आँसू बहाती? बुआ तो उसके बाद हट गई लेकिन पट्टीदारिनों ने बहू को समझाया कि बुआ केवल आज ही नहीं रो रही हैं, बीरू के ब्याहने जाते समय भी रोई थीं। फिर धीरे–धीरे कान में फुसफुसाईं कि जिन्दगी भर अकेले खाया है। अब बहू का आना इन्हें कैसे सुहायेगा। देख लेना, खाना–पीना हराम कर देंगी।

निंदक लोग परस्पर स्नेह के सरोवर में द्वेष की विष–बेलि बोने में आदि काल से ही कुशल रहे हैं। यहाँ भी उनकी नीति प्रभाव दिखाने लगी। जब बुआ किसी बात के लिए बहू को कहतीं, तो उसे लगता कि यह हमारे सुख से डाह कर रही हैं। उसने धीरे–धीरे बीरू को भी अपने प्रभाव में लेकर बतलाया कि यह तो तुम्हारे ब्याह के दिन ही बुक्का फाड़–फाड़ कर रो रही थीं। कहीं कोई माँ बेटे के ब्याह के दिन रोयेगी। मैं इतनी ही खराब थी, तो क्यों ब्याह किया था? मेरे आते ही चाबियों का गुच्छा

फेंक दिया। विश्वास न हो तो पट्टीदारों से पूछ लो।

पट्टीदार तो जैसे इस सुअवसर की राह ही देख रहे थे। उन्होंने ऐसा नमक–मिर्च लगाया कि बीरू के हृदय में विद्यमान माँ की ममतामयी प्रतिमा की जगह किसी द्वेष की पुतली की प्रतिमा उभर आई। उसी दिन रात में बुआ ने बेटे–बहू को बात करते सुना। वे जैसे उन्हें ही सुनाने के लिए ऊँची आवाज में बात कर रहे थे। बीरू कह रहा था, मैं माँ से साफ–साफ कह दूँगा कि अब उनके साथ उसका गुजर नहीं हो सकता। घर और खेत का बँटवारा हो जायेगा।"

बुआ सिर से पाँव तक काँप गईं। जिस घर में मर्यादा के लिए उन्होंने अपने जीवन के सभी सुखों को तिलांजलि दे दी, उसमें उनके जीते जी दीवार उठे, यह विचार ही उनके लिए असह्य था, वे किससे बँटवारा करेंगी। कल इन्हीं पट्टीदारों के सामने इस तरह की ओछी बातें होंगी, और वे हँसेंगे, इस विचार के आते ही उनके सामने सारा ब्रह्माण्ड घूमने लगा। क्या स्नेह–सम्बन्धों की कलई इतनी जल्दी उतर जाती है। बहू नासमझ ही सही। वह मुझे समझने में चूक कर सकती है, लेकिन मेरा बेटा तो मुझे समझता था। यह भी पराया हो गया। अब कम से कम इस घर में रह कर कलह और फजीहत को जन्म देना ठीक नहीं।

अगले दिन सबेरे बुआ घर से गायब थीं। कहीं खोजने पर भी उनका पता नहीं चल रहा था। जब तीन दिन तक उनका कुछ पता नहीं लगा, तो पट्टीदारों ने चैन की साँस ली और बहू तथा बेटे ने मन ही मन अपने आपको धिक्कारा कि कुछ भी हो, इस घर के लिए मरती–खपती थीं। इतने सस्ते में तो मजदूर भी नहीं मिलेगा।

बुआ के पाले गाय–बैलों की हड्डियाँ निकल आई थीं और उनकी देख–रेख के अभाव में खेती में लूट मची हुई थी। बीरू को वास्तविक धक्का तो तब लगा, जब आषाढ़ में खेतों की जुताई के समय पट्टीदार अरविन्द के बापू ने अपना ट्रैक्टर बीरू के खेत पर चलवा दिया। चूँ–चपड़ करने पर उसने एक धुआँ खाया कागज अपनी जेब से निकाला और कहा कि मरने के पहले मेरे नाम कुल जमीन की वसीयत कर

गई हैं।

बीरू उस दिन बुरी तरह से टूट गया। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि माँ के न होने पर उसके विरुद्ध इतनी जल्दी कुचक्र रचे जाने लगेंगे। वह निढाल–सा पड़ गया। पूरी जमीन जाने की निराशा में बीरू ने चारपाई पकड़ ली।

लोग कहते थे कि जिस तरीके से भागो बुआ ने इस घर को अपने लहू से सींचा था, उसे न समझने पर बेटे–बहू की यह गति होनी ही थी।

उस दिन बीरू की हालत अच्छी नहीं थी। उसे देखने आसपास के लोग जमा थे। तभी किसी ने कहा, अरे! यह तो भागो बुआ आ गईं। और हाथ में फलों से भरा झोला लिए हुए वास्तव में वे सामने खड़ी थीं। बहू की ओर देखकर बोलीं– "बस, देख लिया अपना ज्ञान? जिन पट्टीदारों से मैं अकेले दम पर जूझती रही, तुम दो–दो लोग उनहें छह महीने भी नहीं झेल पाये।"

बहू ने पैर पकड़कर कहा –"अम्मा जी! अब तुम कहीं न जाना। तुम्हारे बिना यह मेरे सम्भाले नहीं सम्भलेंगे।"

"मैं तुम लोगों की खातिर आती या न आती पर बाप के खेत का छिनना मैं कैसे देख पाती! और रही बात बीरू की, यह दो दिन में भला–चंगा हो जायेगा, "उन्होंने यह कहते हुए बीरू के बालों में अँगुलियाँ फेरनी शुरू कीं। बीरू की कमजोर आँखें आँसुओं से तर हो गयीं, जैसे कह रही हों– "मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी निठुर भी हो सकती हो।" ❐

ग्राम–मसीत, पो०–साण्डला,
हरदोई (उ.प्र.)

(पृष्ठ २२ का शेष) सिंहों के साथ ...

बुढ़ापा, स्वाभाविक मृत्यु, उम्र

माँ की गैरहाजिरी में बच्चों को तेंदुओं, गीदड़ों आदि हिंसक जानवरों के हमले का खतरा बना रहता है। छिपने के स्थान से भटककर दूर निकल गये बच्चे भूख से भी मर सकते हैं।

सासनगीर के वनों में स्वतः मरने वाले सिंहों की मृत्यु का एक कारण बुढ़ापा है। मरे हुए सिंहों की लाशों की सूक्ष्मता से जाँच की जाती है। बुढ़ापे में चार बड़े दाँत, जिनसे वह माँस नोचता है, अनुपस्थित होते हैं, जिस तरह मनुष्य के दाँत गिर जाते है, उसी तरह सिंह के दाँत भी झड़ जाते हैं। तब वह स्वयं तो शिकार नहीं मार पाता, दूसरों द्वारा मारे गए और खाने के बाद बचे-खुचे शिकार को खाकर निर्वाह करता है। १९६१ में एक बूढ़ा सिंह मरा पाया गया था। वह कई दिनों से भूखा नजर आता था। दस-पंद्रह दिन से शिकारी उसे हर रोज़ देखते थे। कमजोरी के लक्षण उसमें स्पष्ट दीखने लगे थे। लाश की परीक्षा के बाद पाया गया कि उसका अमाशय खाली था और चारों बड़े दाँत नहीं थे।

दुर्घटना में भी कई बार उसके दाँत टूट जाते हैं किसी जानवर के शिकार में या किसी के साथ लड़ाई में दाँत खोने पड़ सकते हैं। आपसी लड़ाइयों में पंजे भी कट जाते हैं। द्वन्द्व-युद्ध में लगे घाव जब नहीं भरते और उनमें कीड़े पड़ जाते हैं, तब वे घाव ही उनकी जान ले लेते हैं।

तृणभोजी प्राणियों के गोश्त में कृमिकोष रहते हैं। सिंह ऐसे गोश्त को खाते हैं, तो उनके अंदर जाकर कोषों से फीताकृमि निकल आते हैं। सिंह के मल के साथ फीता कृमियों के अंडे घास में मिल जाते हैं, चरने वाले पशु उन्हें फिर घास के साथ खा जाते हैं।

कुएँ में

शिकार के पीछे भागते हुए सिंह कुओं में गिरते देखे गये हैं। लेकिन सिंह अच्छा तैराक है। कुएँ में गिरने के बाद वह तैरता रहता है। इस बीच अधिकारियों को यह खबर पहुँच जाती है। मजबूत रस्सों को लेकर बचाव-दल वहाँ पहुँचता है और खींचकर सिंह को बाहर निकाल देता है। बचाव दल में कुछ शिकारी बंदूक ताने खड़े रहते हैं लेकिन सिंह उन्हें बंदूक चलाने का मौका नहीं देता। वह जोर से गरजता है, मानो रक्षकों को धन्यवाद दे रहा हो। फिर जंगल में भाग जाता है।

जंगल में सिंह का औसत जीवन विस्तार लगभग २० साल है। २८ चिड़ियाघरों में १०० सिंह और सिंहनियों की उम्र की समीक्षा करने पर उनकी औसत उम्र १३ साल पाई गई। (गुगिसबर्ग, १९७५)। अधिक से अधिक आयु २५ साल मानी जाती है। कोलोन चिड़ियाघर में एक सिंह की उम्र ३० साल हो गई थी। नैरोबी नेशनल पार्क में रहने वाली ब्लौण्डी नामक एक सिंहनी जब बुढ़ापे के कारण मरी, तो उसकी उम्र १८ और १९ के बीच में समझी गई थी। गीर अभयवन के शिकारियों के अनुसार गीर वन का ख्याति प्राप्त तिलिया सिंह २४ साल की उम्र भोगकर मरा था।

❒

— बेदी शोध संस्थान
डी-२८, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-११००२७

आगामी दस वर्षों में भारत को विश्व के मानचित्र से हटा देने की साजिश

स्वयं को विश्व में सबसे बड़ी शक्ति मानने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व अध्यक्ष रोनाल्ड रीगन और पोप जान पाल द्वितीय ने मिलकर, रूस को तोड़ने के बाद भारत को तोड़ने की योजना बनायी थी। एक अमेरिकी मिशनरी के शब्दों में, आगामी दस वर्षों में भारत को विश्व के मानचित्र से मिटा दिया जायेगा। इसकी पुष्टि अमेरिकी पत्रकार कार्लबर्नस्टेन की पुस्तक से होती है, जो अभी हाल में ही प्रकाशित हुई है। इसके लिए संयुक्त-राष्ट्र-संघ के पटल पर मानवाधिकारों के नाते जनजातियों को "इंडिजिनस पीपुल्स" घोषित करना, भील स्थान, गोंडवानालैण्ड, झारखण्ड, बोडोलैण्ड आदि आदिवासी राज्यों की माँग कराना, उत्तर पूर्वांचल भारत में अखण्ड भारत के निवासी चकमा जनजाति के शरणार्थियों को देश से भगाना, मिजोरम से रियांग जनजाति के लोगों को विस्थापित कराना, भारत की राष्ट्रीय एकात्मता पर आघात पहुँचा कर भारत में वनवासी और गैर वनवासियों के अन्दर झगड़ा फैलाकर भारत को विभाजित करने की सभी चालें उसी राष्ट्र-समूह की गुप्त योजनायें हैं। ❒ (वि० सं० के० लखनऊ)

'आब'! 'आब'! कहि मर गया...

❑ वचनेश त्रिपाठी

दिल्ली शहर की पुरानी बात, जिसको गुजरे सैकड़ों वर्ष बीत चुके हैं। वह जमाना था, जब मदरसों में अरबी– फारसी ही पढ़ायी जाती थी, साथ ही 'कुरान मजीद' भी पढ़ाते थे। यह तो खैर, बहुत पुराने समय की बात है– उस युग में ऐसे ही एक मदरसे में पढ़ने वाले हिन्दू लड़के हकीकत राय पर क्या बीती, यह बलिदान-कथा तो इतिहास में सर्वप्रसिद्ध है। पर आज से कोई ६५–६७ वर्ष पहले मैं अपने कस्बे के ऐसे ही एक जिस 'मदरसे' में पढ़ता था, वहाँ अपने दर्जे में अकेला हिन्दू छात्र था, किशोरावस्था थी। उस 'मदरसे' में दो मौलवी शिक्षक थे और एक जो प्रधानाध्यापक थे, वे भी आठवाँ दर्जा पास एक मुसलमान ही थे, क्योंकि वे थोड़ी अंग्रेजी पढ़े थे– इसलिए 'हेडमास्टर' या 'मास्टर साहब' कहे जाते थे, बाकी दोनो 'मौलवी साहब' कहलाते थे, जो कि उर्दू–फारसी पढ़ाते थे, 'कुरान' भी! वहाँ हिन्दी के लिए कोई अध्यापक ही न था क्योंकि उस 'मदरसे' को 'वक्फ–स्कूल' कहते थे, वह अंग्रेज सरकार का नहीं था। अवश्य तब सरकारी 'मदरसों' में उर्दू का जोर था– पर हिन्दी के लिए भी कोई 'मुंशी जी' या 'पंडित जी' रहा करते थे, तब उनका वेतन हुआ करता था, १० रुपये – १२ रुपये। हेडमास्टर को १५ रुपये मिलते थे। शिक्षा–प्राप्त लोग इतने कम थे कि किसी ने 'मिडिल' (७वाँ दर्जा) पास किया कि उसे घर बैठे परवाना नौकरी का आ जाता था– मेरे मोहल्ले के जो एक 'मुंशी जी' (हालाँकि वैश्य थे) हेडमास्टरी से अवकाश प्राप्त कर चुके थे, उन्हें मिडिल पास करते ही घर बैठे नौकरी (अध्यापकी) का 'परवाना' (नियुक्ति पत्र) मिल गया था – यह वे बड़े गर्व और गौरव से बताया करते थे।

अस्तु, बात दिल्ली शहर के एक मदरसे की लिख रहा था– उस मदरसे में जो एक हिन्दू लड़का पढ़ता था, उसका परिवार उस प्रान्त के किसी गाँव से आकर बसा था– पहले वह किसान परिवार रहा था। पर फसल नष्ट हो जाने से वे लोग दिल्ली आकर मेहनत मजदूरी करके पेट पाल रहे थे। पिता ने सोचा, हमारे जो एक लड़का है, उसे पढ़ायें–लिखायें; अतः वहाँ दिल्ली के एक मुहल्ला– मदरसे में भर्ती करा दिया, जो जामा मस्जिद के इलाके में चलता था। लड़का अभी साल भर ही उस मदरसे में पढ़ पाया था कि वह बुरी तरह बीमार पड़ गया– तेज बुखार था, बहुत जोर उसे प्यास लगी तो जैसी कि मदरसे में उसकी आदत बन गयी थी, पानी की तलब लगने पर– उसी आदत के अनुसार वह घर में भी नीम बेहोशी में पुकार उठा, "आब! आब!" क्योंकि मदरसे में पानी के लिए मौलवियों ने सभी छात्रों को "**आब**" कहने की शिक्षा दी थी और यह बात उन लड़कों के संस्कार में शामिल होकर आदत बन गयी थी। वह बीमार लड़का पूरे होश में होता तो शायद माँ से पानी देने की ही अभिलाषा व्यक्त करता। पर बेचारा! तीव्र ज्वर में वह होश में कहाँ था– मदरसे की आदत के अनुसार वह "आब! आब!" ही पुकारता– कहता रहा– घर में उस समय सिर्फ माँ थी, जो गाँव–देहात की होने से कुछ भी पढ़ी–लिखी न थी, न दिल्ली के चाल–चलन, रहन–सहन, और वहाँ की बोली–बानी से ही परिचित हो सकी थी– उसने अपने गाँव में यह "आब!" शब्द कभी काहे को सुना था। उसने 'आब' को 'आव' समझा और बोली, "बेटा! किसको बुलाते हो? तुम्हारा बापू तो काम पर गया है, देर में साँझ ढले लौटेगा। यहाँ अकेले मैं हूँ– और तुम्हारे पास ही बैठी हूँ।" बहरहाल वह बीमार लड़का "आब! आब!" कहता हुआ चल बसा। अपढ़ और 'आब' शब्द के अर्थ से अनजान वह गरीबिनी माँ अपने मरणासन्न पुत्र को पानी न पिला सकी– वह प्यासा ही मर गया। जब देर शाम ढले उस मृत लड़के का पिता मजदूरी से छुट्टी पाकर घर लौटा तो रोते–रोते माँ ने उसे बताया कि भैया किसी को बुलाता रहा था, "आव! आव" पुकारता रहा– तुम भी नहीं थे। चला गया हमारा लाल, उड़ गई हमारी चिरय्या!" तब बाप ने भी रोना–बिसूरना शुरू कर दिया। रोना–चिल्लाना सुनकर मुहल्ले के कई लोग आ गये, तो उन्हें भी माँ ने बड़े दुःख से यही बताया कि "हमारा बचवा "आव! आव!"

करते–करते चला गया।" तब वहीं खड़े एक पड़ोसी ने बड़ी हसरत से उसे बताया कि "तू समझी नहीं; वह 'आब' माँगता होगा, 'आब' पानी को ही कहते हैं, वह मदरसे में पढ़ता जो था, पर तू तो नाख्वांदा (अपढ़) ठहरी– इसी से समझ नहीं सकी।" फिर तो उस माँ के दुःख–शोक का पार न रहा– यही कहकर अपनी छाती पीटने लगी कि "हाय! मैं अपने बेटे को प्यास लगने पर पानी भी न पिला सकी और वह प्यासा ही हमें छोड़ गया!"

यही हाल संसार के उन अज्ञानी आदमियों का है, जो किसी मुल्ला–मौलवी–पादरी या पोंगापंथी पण्डित के बहकावे में आकर सत्य को समझे बिना किसी एक ही बात या पंथ के पीछे पड़कर जन्म गँवा देते हैं और सत्य तत्त्व या परमात्मा उनसे सदा दूर ही रहता है। उदाहरण के लिए, भारत में ही जो जन्मे, पले–बढ़े, प्रगति प्राप्त की– उनमें एक अलग पंथ को पकड़े रहने के कारण गंगा को पवित्र मानने का कभी कोई विचार या भाव नहीं उठता– पर वही लोग जब मक्का–मदीना जाते हैं; हज करते हैं, वहाँ, तो वहीं जो एक 'चश्मा' (जलस्रोत) है, जिसे 'जम–जम' का चश्मा कहते हैं, हाजी उसके पानी को परम पवित्र मानकर उसे पीपे में भर–भर कर भारत में साथ लाते हैं; फिर उसे बहुत खास प्रसंगों पर ही थोड़ा–थोड़ा खर्च करते हैं, जैसे कोई बहुत दुर्लभ और कीमती चीज हो। इसी तरह उन लोगों के लिए भारत भर में कोई जगह पवित्र नहीं। यहाँ तक कि यहाँ ऐसी जमातें (संस्थाएँ) भी हैं और पहले भी थीं, जिनकी नजर में हिन्दुस्तान "दरुल–हरब" रहा है, अर्थात् "काफिर" या "नापाक मुल्क (जगह)" – जिसे वे "दारुल–इस्लाम" यानी इस्लामी मुल्क बनाना दीने इस्लाम की खिदमत समझते हैं, जैसे कि 'काफिरों (गैर–मुस्लिमों) के खिलाफ 'जिहाद' (मजहबी जंग) करते रहना वे मुहम्मद साहब का आदेश–पालन मानते हैं। हद तो तब हो गयी, जब भारत में ही जन्मे 'सौदा' सरीखे शायर यह लिखने लगे कि–

गर हो कशिशे शाह खुरासान, तो "सौदा",
सिजदा न करूँ हिन्द की नापाक जमीं पर।

अर्थात् "अगर कहीं 'खुरासान' (मुस्लिम देश) का शाह (शासक) मुझे जरा सा इशारा कर दे कि तू यहाँ (खुरासान) आ जा, तो मैं हिन्दोस्तान की नापाक जमीन पर कभी भी 'सिज्दा' (खुदा की बन्दगी) न करूँ।

इन कठमुल्लों किंवा गद्दार लीगी मनोवृत्ति के लोगों की हालत बहुत कुछ उस "आब! आब" रटने वाले बीमार लड़के जैसी है कि जिसके सिरहाने ही पानी रखा रहा फिर भी वह प्यासा ही दुनिया से कूच कर गया। इसी स्थिति पर किसी ने कहा है कि–

"आब! आब!" कहि मर गये, सिरहाने रखा पानी।

मतलब है, जो लोग किसी एक ही पंथ या शब्द

काश! कोई हिन्दू पादरी भी बिस्कुट बाँटने जाते

भारत माता मन्दिर के संस्थापक व निवर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि जी महाराज ने पिछले दिनों दिल्ली के एक कार्यक्रम में एक संस्मरण सुनाया– समाज जीवन के कार्य में लगे सभी कार्यकर्ताओं के लिए यह प्रेरणास्पद रहेगा।

स्वामी जी ने कहा कि एक स्थान पर चार हजार वनवासियों का एक कार्यक्रम था, जहाँ मुझे भोजन परोसने का काम मिला। मैं भोजन परोस रहा था, पंक्ति में एक वृद्ध वनवासी भी बैठा था। मुझे देखकर वह रो पड़ा, वह कहने लगा कि आज मैं आपको देखकर आनन्द में हूँ लेकिन मेरी इच्छा है कि गाँव–गाँव में झोपड़ी में कोई हिन्दू पादरी भी बिस्कुट बाँटने जाये, ताकि वनवासियों को लगे कि हमारी चिन्ता करने वाले हमारे धर्म में भी हैं और वहाँ ईसाईयों के कुचक्र का सामना करने का हमें बल मिलता।

इस घटना ने मुझे इतना झकझोर दिया कि मुझे लगा कि मैने जीवन के इतने वर्ष केवल भाषण देकर ही व्यतीत कर दिये, यदि मैं वनवासी बन्धुओं के बीच जाता, तो अधिक श्रेष्ठ होता। उन्होंने कहा कि आज वनवासी– कल्याण–आश्रम उसी काम को कर रहा है और उसी के ही कार्य का ही परिणाम है कि ईसाईयों के आज वहाँ से पैर उखड़ने प्रारम्भ हो गये हैं। इस कार्य को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। ❐

(वि०सं०के० लखनऊ)

अमृतवाणी

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।।

(कठोपनिषद्, १/३/१४)

उठो, जागो और उच्चकोटि के व्यक्तियों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी लोग आत्मज्ञान के मार्ग को छुरे की धार के समान तीक्ष्ण, दुस्तर तथा दुर्गम बताते हैं।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद् भागधेयं परमं पशूनाम्।।

(नीतिशतक, १२)

जो व्यक्ति साहित्य, सङ्गीत और कला से रहित है, वह बिना पूँछ और सींग का साक्षात् पशु ही है। ऐसा व्यक्ति जो कि बिना घास खाये ही जीवित रहता है, इसे तो पशुओं का महान् सौभाग्य ही समझना चाहिए।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।।

(पञ्चतन्त्र, २/१५७)

कमाये गये धन की रक्षा उस धन का सत्कार्यों के लिए त्याग करने से ही होती है, जिस प्रकार तालाब में भरने वाले जल की रक्षा उस जल के प्रवाहित होते रहने से ही होती है।

दुर्जनेन समं वैरं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।।

(हितोपदेश, १/८०)

दुष्ट व्यक्ति के साथ न तो शत्रुता करनी चाहिए और न ही प्रेम। कोयला गर्म होने पर हाथ को जला देता है तथा ठंढा होने पर हाथ को काला कर देता है।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानः तं देवाः स्थविरं विदुः।।

(मानव धर्मशास्त्र, २/१५६)

सिर के बाल पक जाने से ही कोई व्यक्ति वृद्ध नहीं होता है। विद्वान लोग तो उसे ही वृद्ध कहते हैं, जो अध्ययनशील है; भले ही वह अवस्था से युवा ही क्यों न हो।

काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः।
प्रसाधयति कृत्यानि शत्रुं चाप्यधितिष्ठति।।

(महाभारत, शान्तिपर्व, १४०/६७)

जो व्यक्ति समय की माँग के अनुसार कोमल हो जाता है तथा समय की माँग के अनुसार कठोर हो जाता है, वह आपने कार्यों में सफल होता है तथा शत्रु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। ❑

प्रस्तुति– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

को पकड़कर बाकी सब रास्तों–पंथों और शब्दों से अलगाव, दूरी या दुश्मनी, नफरत का रिश्ता जोड़ लेते हैं, वे सब उसी मरने वाले बीमार प्यासे लड़के जैसे हैं, जिसे पास रखा पानी नसीब न हुआ। अरब में "गारे हिरा" है– हिरा– नाम की गुफा, जो हाजियों के लिए पवित्र है, तो भारत में भी हिमालय है, जहाँ तमाम एकान्त गुफाएँ हैं, पर उनमें से कोई भी उन्हें पवित्र नहीं लगती– फिर यहाँ की मिट्टी से क्या रिश्ता रहा! काबे के बीचोबीच पत्थर की जो चहार दीवारी है, जिसके कोने में काले पत्थर ("संगे अस्वद") का एक टुकड़ा रखा है, हाजी मानते हैं कि वह खुदा की देन है, खुदा की तरफ से बख्शा गया है। पर, भारत में जो मंदिर हैं– उनमें देव मूर्त्तियाँ हैं, उन्हें तोड़ना "इस्लाम की खिदमत" कैसे हो गया?

काबे के उसी काले पत्थर के कारण हाजी 'मक्का' को "खाना–ए–खुदा" मानते हैं, अर्थात् "खुदा का घर"। लेकिन इतने बड़े हिन्दुस्तान में क्या कहीं भी वह 'खुदा' अपनी कृपा (रहमत) का साया नहीं रखता? इसी स्थिति या भेदभाव पर किसी मुस्लिम शायर ने ही कहा है कि,

"बुतखाने में जो देखा, काबे में, वही देखा"

अर्थात् "मैंने जो मन्दिर में देखा, वही काबे में भी देखा।" दोनों जगह पत्थर को ही परमात्मा का प्रतीक मानकर उपासना हो रही है। वह शायर इसलिए ऐसा कह सका, क्योंकि वह बीमार लड़के की तरह सिर्फ "आब!" कहने का आदी या आग्रही नहीं रहा था– न कोई मुल्ला–मौलवी उसे अपने अंधे अकीदा (विश्वास) के दामन में फँसा पाया था। जो लोग सिर्फ किसी एक ही मुकाम

को "खानये–खुदा" मानते हैं – उन्हें एक मुसलमान ने ही यह चुनौती दे डाली कि,

"तेरा खुदा खुदा है, तो क्या मेरा खुदा नहीं है ?"

और यहीं पर शहीद क्रांतिकारी मोहम्मद अश्फाक उल्ला खाँ वारसी 'हसरत' याद आते हैं, जिनके लिए भारत की मिट्टी इतनी पवित्र थी कि फाँसी की सजा सुनाई जाने के बाद जब उनसे उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी तो कहा और लिखा भी कि–

कोई आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है।
रख दे कोई जरा–सी, खाके–वतन कफन में।।

कि "मेरी कोई आखिरी ख्वाहिश (इच्छा या चाह) नहीं है, अगर कोई ख्वाहिश है तो सिर्फ एक है और वह यह कि फाँसी दी जाने के बाद जब मेरा जनाजा (अर्थी) निकल रहा हो, उस वख्त इस वतन की कुछ खाक, मातृभूमि की जरा–सी मिट्टी मेरे जनाजे के कफन में रख दी जाये;" क्योंकि अश्फाक ने कठमुल्लों से अपना दामन होश सँभालने पर कतई छुड़ा लिया था और तबलीगी विचारों (कि भारत इस्लामी मुल्क बने) को 'बेहूदा' समझता था। 'बेहूदा' शब्द अश्फाक् ने ही प्रयुक्त किया है।

और एक बात काबे के उक्त 'काले पत्थर' (संगे अस्वद) के विषय में, वह यह कि जैसा कि वैदिक विद्वान् पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने भी लिखा है कि "अरब का 'काबा' इस्लाम के पहले शिवालय ही था– उसमें जो शिव–स्वरूप (शिवलिंग) था, वह इतना भारी और विशाल था कि उसे वहाँ के शिवोपासक 'महाकाय' कहते थे और वह वहाँ निर्मित एक विराट् जल–हरी में स्थापित था, जिसे इस्लाम आने पर कुएँ का रूप देकर उस शिवलिंग को तोड़कर उसी कुएँ में फेंक दिया गया और उस तोड़े गये शिव–स्वरूप का एक टुकड़ा बचाकर वहीं स्थापित कर दिया गया, जिसे आज भी हज करने जाने वाले मुस्लिम यात्री आदर से चूमते हैं, समादरणीय और पवित्र मानते हैं। अगर पत्थर का यह टुकड़ा वहाँ आज न रखा होता, तो शायद काबा "खाना–ए–खुदा" नहीं कहलाता। फिर फर्क क्या पड़ा पहले के वहाँ बने शिवालय और आज के "खाना–ए–खुदा" में ? अवश्य 'आब' ! शब्द की तरह ही हठवादिता वश मुल्लाओं द्वारा प्रचारित करने से लोग मात्र एक ही शब्द या नाम के पीछे पड़ गये और दूसरे नामों के जो श्रद्धालु या समादरकर्त्ता थे, उनसे न सिर्फ लड़ने लगे, द्वेष और दुश्मनी बरतने लगे वरन् उनके उपासना–स्थल तोड़ना–ढहाना 'सबाब' (पुण्य) और 'दीन की खिदमत' अंजाम देना समझने लगे, पर इस रास्ते क्या कहीं खुदा मिल सकता है ? बसरे (अरब) की एक गरीब स्त्री, जो दूसरों के घर काम किया करती थी, नाम था राबिया बसरी' उसकी जैसी खुदा–परस्त स्त्री अरब में दूसरी नहीं हुई। कहते हैं, एक रोज पैगम्बर मुहम्मद साहब ने उससे पूछा– "राबिया ! क्या तू मुझे नहीं चाहती" ? राबिया का जवाब था– "हजरत ! इस दिल में इतनी गुंजाइश कहाँ है ? वहाँ तो एक पाक परवर दिगार खुदा की ही मुहब्बत रम रही है।" यह रास्ता मुल्ला– मौलवियों की लीक से हटकर है– वर्ना पैगम्बर मुहम्मद को ऐसा जवाब देने की ताबो–ताकत उसमें कैसे होती ? "आब" की तरह भक्तिमती राबिया अरब में रहते हुए भी एक ही शब्द (मुहम्मद) से अपने को बाँधकर नहीं रख सकी– इसी से उसके नाम में 'सूफी' शब्द संयुक्त किया गया। जरूर वह सूफी मत की ही सिफत थी कि राबिया बसरी पैगम्बर मुहम्मद को ऐसा उत्तर देने की जुर्रत कर सकी। भारत के रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास को ही देखिए आप ब्रज धाम गये तो वहाँ बंशीधर वासुदेव कृष्ण की प्रतिमा के सामने खड़े होकर कहते हैं, "ऐसे नहीं महाराज ! बंशी हटाकर अपने हाथ में धनुष–वाण लीजिए, तभी यह तुलसीदास आपकी वन्दना करेगा, **"तुलसी मस्तक तब नवै धनुष–बाण लो हाथ।"** इस सन्दर्भ में एक युग–धर्म, सामयिक तकाजा भी वाणी पा गया है क्योंकि वह युग था यहाँ मुगलों का; परकीयों की तूती बोल रही थी, समाज पर जुल्म हो रहे थे और तुलसी ठहरे धनुषधारी, रावण हन्ता राम के उपासक, पर कृष्ण से भी दुश्मनी या द्वेष नहीं रखा– इसलिए कृष्ण ने भी तुलसी की बात रखी, चट बंशी हटा कर धनुषधारी बन गये। कृष्णमार्गी वैष्णवों ने भी तुलसी का बहिष्कार नहीं किया। पर खास जामा मस्जिद (दिल्ली) के पास जब मुसलमान सूफी संत सरमद ने कहा, "मैं मुस्लिम नहीं ('अम्मा मुसलमांनेस्तम्) वरन् राम लक्ष्मण का मुरीद हूँ– सरमद के शब्द हैं– **चेखता दीदीं अल्ला हो–रसूल, सरमद मुरीद लछमनो राम शुदी"**– अलबत्ता मैं जा रहा हूँ मस्जिद की तरफ– 'सूए मस्जिद मीरवम्"– यहाँ सूफी सरमद अपने से पूछता है कि "रसूलिल्लाह में तूने क्या कमी देखी कि तू राम लक्ष्मण का शैदाई बन गया ?" साफ जाहिर है कि

(शेष पृष्ठ ६३ पर)

क्या पहले भी परमाणु परीक्षणों पर इतना हंगामा और विरोध हुआ, जितना इस बार हुआ? दो हजार से अधिक परमाणु विस्फोट पांच परमाणु सम्पन्न देशों द्वारा किये जा चुके हैं। दो ही वर्ष पूर्व सन् १९९६ में फ्रांस और चीन ने अलग-अलग परमाणु परीक्षण किये थे, तब साधारण सी हलचल हुई थी, ऐसा हो-हल्ला नहीं मचा था। भारत के परमाणु परीक्षणों पर इतनी हाय-तोबा मचाने के कोई तो विशेष कारण होंगे?

सवाल यह है कि पहले तो परमाणु सन्धि के मौजूदा प्रावधानों से हमारी सहमति नहीं, दूसरी सी.टी.बी.टी. (व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि) अभी क्रियान्वयन में नहीं आया है। उसे इसी दिसम्बर में लागू होना है, इस तरह न तो भारत ने कोई वचनबद्धता तोड़ी और न ही किसी कानून का उल्लंघन किया। सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत की बाहें काफी अर्से से मरोड़ी जा रही थीं; किन्तु भारत के अडिग रवैये के सामने परमाणु सम्पन्न दादाओं की एक न चली। तो किस नियम-कानून

कर ली है और उसका कार्य कम्प्यूटर परीक्षणों से बखूबी चल सकता है। अमेरिका ने अभी दो माह पूर्व ही एक कम्प्यूटर परमाणु परीक्षण नतीजा अंकित किया है। भारत भी इस श्रेणी के उच्चतम तकनीक सम्पन्न कम्प्यूटर परीक्षण नतीजों को विश्लेषित करने के रास्ते खुले रखना चाहता है और यह तभी सम्भव है, जब उसे छठा परमाणु दक्ष राष्ट्र स्वीकार कर लिया जाये; परन्तु वर्तमान प्रस्तावित सी.टी.बी.टी. और एन.पी.टी. में किसी छठे देश के परमाणु सम्पन्न होने के प्रावधान नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं कि यह सन्धियाँ भेदभावपूर्ण हैं। लेकिन यदि भारत को अधिकारिक रूप से छठा परमाणु दक्ष देश स्वीकार कर लिया जाये, तो यह भेदभावपूर्ण प्रावधान हमारे हक में हो जायेंगे; यद्यपि इनका स्वरूप पूर्ववत् पक्षपातपूर्ण बना रहेगा।

यों भी जल, थल, वातावरण और अन्तरिक्ष में परमाणु परीक्षण न करने की बाध्यता इन सन्धियों में निहित है। कम्प्यूटर पर परमाणु परीक्षण का विकल्प खुला है, तो कैसे माना जाये कि इन सन्धियों से पूर्ण परमाणु

...इसलिए जरूरी हैं नयी परमाणु सन्धियाँ !

— कस्तूरीलाल तागरा

के अधीन विभिन्न देशों द्वारा दण्डात्मक प्रतिबन्ध लागू किये जा रहे हैं। अमीर देशों से यह बर्दाश्त नहीं हो पा रहा कि भारत जैसा पिछली पंक्ति में खड़ा विकासशील देश कैसे वैज्ञानिक चुनौती देता हुआ अत्याधुनिक परमाणु प्रणालियों से सम्पन्न हो गया। भारत की यह लम्बी छलाँग पश्चिमी राष्ट्रों को बेचैन कर रही है।

अमेरिका ने भारत को परमाणु सम्पन्न देश नहीं माना हैं। व्यापक-परमाणु-परीक्षण-निषेध-सन्धि एवं परमाणु-अप्रसार-सन्धि के प्रावधानों के अनुसार १९६८ के बाद परमाणु क्षमता प्राप्त देशों को परमाणु सम्पन्न देशों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। केवल पूर्व निर्धारित पाँच परमाणु देश ही परमाणु दक्ष माने जायेंगे। अभिप्राय यह कि अब चाहे कोई देश प्रणाली और प्रविधि में इन देशों से मीलों आगे निकल जाये, तो भी ये "परमाणु देश" कटु सत्य से आँखें मोड़े रहेंगे।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की यह घोषणा कि, "भारत को अब और परीक्षणों की आवश्यकता नहीं हैं" स्पष्ट संकेत है कि भारत ने उच्चतम तकनीक हासिल

निरस्त्रीकरण सम्भव हो जाएगा। जिन पाँच देशों के पास परमाणु आयुध हैं, वह उन्हें समयबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत नष्ट करने पर सहमत नहीं हैं। इस तरह से पक्षपातपूर्ण सन्धियाँ स्वतः ही निष्प्रोज्य, कालबाह्य और व्यर्थ हो जाती हैं।

पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा जरूर है, लेकिन मौजूदा सी.टी.बी.टी. स्वरूप पर नहीं। गुजराल वर्तमान प्रावधानों को न तो परमाणु अप्रसार के लिए सही अर्थों में व्यापक मानते हैं और न ही अपक्षपातपूर्ण। इसीलिए उनका जोर है कि पहले भारत को परमाणु देश स्वीकार किया जाए, जो कि वास्तव में वह है; तब इन सन्धियों पर भारत हस्ताक्षर करे, वह भी कुछ परिवर्तनों के साथ।

प्रधानमंत्री ने प्रतिबन्धों और परमाणु निषेध सन्धियों पर राष्ट्र की राय जानने के लिए प्रतिपक्ष से व्यापक विचार विमर्श की श्रृंखला शुरू की है। परमाणु जैसे संवेदनशील विषय पर पूर्व में भी राष्ट्रीय सहमति रही है। और अमरीकी-मण्डली के लाख दबावों के होते हुए भी

१९६८ से लेकर आज तक सभी सरकारों ने परमाणु अप्रसार सन्धि को स्वीकार नहीं किया। इस पर सभी राजनैतिक दलों में मतैक्य रहा है। उसी का सुपरिणाम है कि भारत के पास आज परमाणु परीक्षण के रास्ते खुले हुए थे और भारत ने सफल परीक्षण विस्फोट कर दिखाये। अन्यथा तो इन पक्षपाती सन्धियों ने हमारे हाथ बाँध रखे होते तथा प्रबल इच्छाशक्ति के होते हुए भी वाजपेयी सरकार परीक्षण विस्फोट कर पाने में अपने को असमर्थ पाती। भारत की सैन्य–भूराजनैतिक स्थितियाँ उसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही एक बड़ी सैन्य और आर्थिक शक्ति बनने के लिए चेताती और जाग्रत् करती रही हैं। इन स्थितियों को प्रायः सभी सरकारों ने ध्यान में रखकर ही रक्षा नीतियाँ तय की हैं।

जो लोग और दल, विशेषकर वामपंथी दल भाजपा–गठबंधन सरकार पर भारत की घोषित परमाणु नीति से हटने का आरोप लगाते हैं, उन्हें इस बात का उत्तर देना ही होगा कि कब उन्होंने सी.टी.बी.टी. एवं एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने की बात कही ? यदि नहीं कही तो स्पष्ट है कि वह भी परमाणु विकल्प खुले रखने के हामी रहे हैं। अब यह और बात है कि वह वर्तमान परीक्षण विस्फोटों के समय और तत्कालीन आवश्यकता पर सवाल उठा रहे हैं। कुल परमाणु नीति एक व्यापक बात है; परन्तु कब विस्फोट हो, यह तो परिस्थितियों को देखते हुए सरकार ही तय करती है। वैसे याद नहीं पड़ता कि कभी वामपंथियों ने चीन के परमाणु परीक्षणों की लम्बी शृंखला और परमाणु अस्त्रों के भण्डार की आलोचना की हो। सिर पर खड़े युद्ध पिपासु परमाणु–सम्पन्न चीन के होते हुए एवं दक्षिण एशिया में परमाणु–असन्तुलन की स्थिति में कैसे सोचा जा सकता है कि भारत परमाणु दक्षता के बिना अपनी सीमाएँ सुरक्षित रख पायेगा। वामपंथियों को तो इस सामयिक कदम के लिए वाजपेयी सरकार को साधुवाद देना चाहिये था, परन्तु जिसे शायद वे आगे भी कभी नहीं देंगे।

दक्षिण एशिया में सामरिक संतुलन के लिए वर्तमान में यदि भारत विस्फोट कर इस क्षमता और दक्षता का प्रदर्शन न करता, तो भावी पीढ़ियों का अपराधी सिद्ध होता। आने वाला समय यह साबित करेगा कि यह परीक्षण केवल सामयिक घटना न होकर ऐतिहासिक आवश्यकता थी। पोखरन के विस्फोट समृद्धि के नये द्वार खोल दे, तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये, क्योंकि शक्ति (दुर्गा) और ऐश्वर्य वैभव (लक्ष्मी) जब सरस्वती (ज्ञान–विज्ञान) के निर्देशन में काम करते हैं, तो आर्थिक समृद्धि के स्रोत फूट पड़ना स्वाभाविक ही है।

अमेरिकी दण्डात्मक प्रतिबन्ध स्वयं अमेरिका के लिये गले की हड्डी भले न बनें, किन्तु वे भारत को झुकाने में काम नहीं आ सकेंगे। योरोपीय देश भारत को अलग–थलग करने के पक्ष में नहीं लगते, जो कि अमेरिका के लिए नैतिक पराजय का कारण बन सकता है। इन विकट परिस्थितियों में रूस द्वारा परमाणु पनडुब्बी बेड़ा देने का निर्णय अमेरिकी–रूसी सम्बन्धों को खँगाल सकता है। इसे दीर्घकालीन भारतीय विदेश नीति की सफलता के रूप में आँका जाना चाहिये।

भारत से रूस के साथ अच्छे सम्बन्धों को दृष्टिगत रखते हुए, अमेरिका ने सी.टी.बी.टी. पर भारत से हस्ताक्षर कराने के लिए रूस से सम्पर्क साधा है। अमेरिका का मानना है कि आज की बदली स्थितियों में बिना भारत के व्यापक परमाणु निषेध सन्धियाँ अप्रभावी होकर रह जायेंगी। जी–८ देशों के सम्मेलन में बोरिस येल्तसिन और बिल क्लिंटन ने इस विषय पर तो बात–चीत की ही थी, उसके बाद भी अमेरिका के राष्ट्रपति हॉटलाइन पर रूसी राष्ट्रपति से वार्ता कर चुके हैं। अमेरिका ने प्रतिबन्धों पर भी अपना स्वर कुछ मद्धिम किया है।

व्यापक मूल्यांकन के बाद ही अमेरिकी पूर्व विदेशमंत्री हेनरी किसिंगर ने भारत के परमाणु परीक्षण को समर्थन देते हुए, अमेरिका को सुझाव दिया है कि अमेरिका का दक्षिण एशिया में चीन पर अंकुश लगाने के लिए भारत

भारत में ईसाई मिशनरियों की चिन्ता

भारत में प्रयासपूर्वक बनाये गये ईसाई भी नाममात्र के ईसाई हैं और संघ के लोग इनको पुनः हिन्दू बना लेते हैं। यह चिन्ता है भारत में ईसाई मिशनरियों की।

ईसाई चर्च द्वारा सद्यः प्रकाशित पुस्तिकाकार रपट "दी चर्च इन इंडिया, इट्स मिशन टुमारो" (भारत में चर्च और इसका कल का लक्ष्य) में इसका उल्लेख करते हुए बताया गया है कि केवल उड़ीसा प्रदेश में ही ५५ हजार ईसाईयों को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने पुनः हिन्दू बना लिया है। (मी.फो.)

की तरफदारी करनी चाहिये। विशेष बात यह है कि इस तरह के सुझाव केवल भारत के परमाणु परीक्षणों तक ही अपनी परिधि सीमित नहीं करते; बल्कि यह चीन–अमेरिका और भारत के सम्बन्धों की पुनर्समीक्षा का आग्रह करते हैं। इन आग्रहों का पलड़ा भारत की ओर झुकता दिखता है।

ब्रिटेन के हाउस ऑफ लार्ड्स के अनेक लार्ड्स भी मानते हैं कि पश्चिमी जगत् ने कभी भारत की रक्षा जरूरतों और भू–राजनैतिक स्थितियों को ठीक से समझने की सार्थक कोशिश नहीं की। यह अति महत्त्वपूर्ण है कि ब्रिटेन के लार्ड्स ने अपनी सरकार से भारत को छठी परमाणु शक्ति के रूप में मान्यता देने की अपील की है। ब्रिटेन अमेरिका का छुटभैया माना जाता है, लेकिन उसने अमेरिका का अनुसरण दण्डात्मक प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में नहीं किया है। इन सबके गूढ़ार्थ और कूटार्थ को भारत के हित और महत्ता के रूप में समझा जाना चाहिये। ऐसा लगता है कि बदलते परिवेश में शक्तिशाली भारत को मूल्यांकित किये जाने की प्रक्रिया चल निकली है।

भारत ने परमाणु परीक्षणों के बाद भी परमाणु निरस्त्रीकरण की अपनी प्रतिबद्धता को दोहराकर यह साबित किया है कि भारत के परमाणुमुक्त विश्व के आग्रह खोखले और स्वार्थी नहीं थे; बल्कि उन आग्रहों में परमाणु खतरों से रहित मानव जाति के लिए एक पावन विश्वदृष्टि थी और आज भी है। मानव मात्र के मंगल की कामना को साकार करने के लिए भारत के परमाणु अस्त्र केवल तभी तक ही अस्तित्व में रहेंगे, जब तक विश्व के देशों के परमाणु आयुध कायम हैं। यह देश सदैव विनाशकारी परमाणु अस्त्रों की समाप्ति के लिए अपनी मुहिम अनवरत जारी रखेगा।

भारत ने अपने परमाणु अस्त्रों को प्रतिरक्षा में प्रयोग करने का वचन दिया है, जिसका सीधा–सीधा मतलब है कि वह गैर परमाणु शक्ति पर अस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा। परमाणु रक्षा छतरी प्राप्त देश यदि उस छतरी का प्रयोग अपने आका देशों से अपने हक में करवायेंगे, तब ऐसे देशों को परमाणु देशों की श्रेणी में मानकर भारत अपनी नीति तय करेगा। भारत द्वारा एकतरफा परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाकर विश्व के सामने अपनी सदिच्छा प्रकट की गयी है। परमाणु सम्पन्न देशों से वार्ता कर वह इस सम्बन्ध में एक नई अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को अस्तित्व में लाना चाहता है, जो पक्षपात रहित हो और समानता पर आधारित हो। देखना है कि भारत की ओर से प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र के इस प्रस्ताव पर परमाणु सम्पन्न शक्तियाँ और अन्य बड़ी शक्तियाँ सद्भावनापूर्वक विचार करती हैं या अपने बड़ेपन का अहं बरकरार रखते हुए सी.टी.बी.टी. और एन.पी.टी. की पक्षपाती धाराओं पर अड़ी रहती हैं।

या तो इन संधियों में आधारभूत परिवर्तन किये जायें, नहीं तो इन्हें समाप्त कर पूर्ण परमाणु निरस्त्रीकरण के लिये नई सन्धियाँ हो। जिसमें ऐसे कोई खिड़की–दरवाजे न हों, जिससे राष्ट्र विशेष या राष्ट्र समूहों को विशेषाधिकार प्राप्त हो। जब तक कि यह सहमति नहीं बनती, तब तक भारत पर से सभी प्रतिबन्ध हटाने की पहल अमेरिका की ओर से होनी चाहिये, यही नैसर्गिक न्याय है। अमेरिका को भारत के परमाणु परीक्षणों को अपने लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना ही श्रेयस्कर होगा। ❑

— २८, आर.आर. क्वार्टर्स
रुद्रपुर (ऊधम सिंह नगर) उ.प्र.

मनुज करुणा का हृदय अब खोल !

बज रही है नाश की मंजीर,
हैं समस्यायें जटिल गंभीर,
देखता विप्लव भयाकुल आर्त
पैर में डाले विषम जंजीर
आज जलने को सकल भूगोल !
मनुज करुणा का हृदय अब खोल !

ज्ञान औ विज्ञान हैं दिग्भ्रान्त,
आसुरी दुर्वृत्तियाँ विक्रान्त,
कौन अब किसका करे कल्याण,
जब अखिल यह विश्व ही आक्रान्त
रक्त हिंसा पी रही बेमोल।
मनुज करुणा का हृदय अब खोल !

छल प्रपंचों से भरा परिवेश,
हर कहीं पर तामसी आवेश,
सामने गहरा पतन का गर्त
हो गयी आशा–किरण निःशेष
बोलता फिर भी अहंकृत बोल।
मनुज करुणा का हृदय अब खोल।

— डॉ. राम लखन सिंह परिहार 'प्रांजल'
— भदबा (फतेहपुर) उ.प्र. – २१२६६४

सावधान ! अब मौलवी भी पढ़ने लगे हैं संस्कृत

[गत कई वर्षों से जमाते–इस्लामी जैसे मजहबी संगठनों ने अपने कुछ मुल्ला–मौलवियों को संस्कृत पढ़ने पर इस गर्हित उद्देश्य से लगाया है कि वे हमारे धर्म–ग्रन्थों को मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करें, जिससे हिन्दुओं के धर्मान्तरण में उन्हें विशेष सुविधा रहे। कुछ मौलानाओं ने तो अपने नाम के आगे 'चतुर्वेदी' लिखना प्रारम्भ कर दिया है। ऋग्वेद तक की फर्जी ऋचायें रच कर मोहम्मद साहब को अन्तिम अवतार सिद्ध करने की धूर्तता की जा रही है ऐसे 'चतुर्वेदी' मौलानाओं द्वारा। ब्रिटिश शासन–काल में ईसाई मत के प्रचारार्थ ऐसी ही धूर्त–योजना की थी पादरियों ने, उससे कहीं अधिक खतरनाक है यह इस्लामीकरण की योजना। – सम्पादक]

क्या कोई इस बात पर विश्वास कर सकता है कि किसी मस्जिद के मौलाना संस्कृत का अध्ययन कर रहे हों, लेकिन यह कोई गप्प नहीं हैं बल्कि एक वास्तविकता है। दिल्ली के मदरसा हुसैन बख्श में आप अगर जायें, तो आपको सफेद कुर्ता–पाजामा तथा टोपी पहने हुए विद्वान् मिल सकतें हैं, जो अरबी के साथ–साथ संस्कृत का भी अध्ययन करते हैं। यहाँ के एक मौलाना के अनुसार अरबी तथा उर्दू तो वे स्वाभाविक रूप से परम्परा के अनुसार सीख लेते हैं। गणित और हिन्दी भी कुछ थोड़े से अभ्यास से सीखी जा सकती है। और संस्कृत का अध्ययन अब उनके लिए ऐसी बात नहीं रह गई है, जो कि कुछ मंत्र पाठ करने वाले पंडितों तक ही सीमित हो।

राजधानी में अनेक मौलाना व मुफ्ती अब देश के अन्य २५ हजार लोगों के साथ विश्व की इस प्राचीन व समृद्ध भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। यह अध्ययन जहाँ भारत के प्राचीन समृद्ध ज्ञान–विज्ञान तथा साहित्य की जानकारी प्रदान करने में सहायक है, वहीं यह भारत के हिन्दू–मुसलमान दोनों समुदायों को एक–दूसरे के निकट लाने में भी सहायक बनेगा। दोनों ही समुदायों के धार्मिक विद्वान् एक–दूसरे की भावनाओं को समझने में सक्षम होंगे।

उड़ीसा के एक विद्वान डॉ. गजेन्द्र कुमार पंडा, जो गुजरात में जाकर बस गये हैं, अब देश भर में घूम कर दोनों समुदायों के युवा धार्मिक छात्रों व विद्वानों को निकट लाकर उनमें अब तक रही दूरी को पाटने का प्रयास कर रहे हैं।

३० वर्षीय डाक्टर पंडा पिछले एक दशक से अपने इस मिशन में लगे हुए हैं तथा उनका लक्ष्य एक लाख लोगों को अपने जीवनकाल में संस्कृत पढ़ाने का है। उन्होंने स्वयं आर.एस. विद्यापीठ–तिरूपति से वेदांत में पी.एच.डी. की है। उन्होंने १९८३ में आन्ध्र प्रदेश में तिरूपति में "१० दिन में संस्कृत बोलना सीखिए" कार्यक्रम के अन्तर्गत अपना अभियान शुरू किया था और आज १९९८ तक वे अपने इस अभियान का एक लम्बा सफर तय कर चुके हैं। डॉ. पंडा की संस्कृत सिखाने की पद्धति के कारण अब संस्कृत व्याकरण के भारी–भरकम बोझ तथा कठिन उच्चारण वाली भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा के रूप में लोकप्रिय होती जा रही हैं। आज के आधुनिक कार्पोरेट जगत् में संस्कृत अब ऐसी भाषा नहीं रहेगी, जिसका केवल सीमित धार्मिक कार्यों के लिए ही उपयोग हो। डा. पंडा के अनुसार संस्कृत के अध्ययन व इसके प्रयोग से इस भाषा में निहित प्राचीन ज्ञान–विज्ञान से हमारे विकास के न जाने कितने द्वार खुल जायेंगे।

"अहम् प्रातः काले संस्कृतम् पठिष्यामि" के शब्द आपको जामा मस्जिद के निकट स्थित एक इस्लामी अध्ययन केंन्द्र रियाजुल उलूम, मदरसा हुसैन बख्श तथा नोएडा में स्थित एक भव्य हाल में वहाँ पढ़ रहे छात्रों के मुँह से सुनने को मिल सकते है। वहाँ आकर संस्कृत पढ़ने वाले छात्र गर्मियों की छुट्टियों में माँ–बाप द्वारा एक अतिरिक्त भाषा सीखने के लिए भेजे गये बच्चे ही नहीं होते बल्कि इन बच्चों के माता–पिता भी इन कक्षाओं में शामिल होते हैं। ये कक्षाएँ प्रातः व सायंकाल लगती हैं। पुरानी दिल्ली में मौलाना 'जुहर' तथा 'असर' (दोपहर तथा अपराह्न की नमाजों) के बाद डाक्टर पंडा के निर्देशन में संस्कृत की कक्षाओं में भाग लेते हैं। श्री पंडा के प्रयासों से पुरी, पटना, राजकोट, रामपुर, भोपाल, बड़ौदा, मुम्बई, मैसूर, दिल्ली तथा कानपुर में अनेक लोग अब संस्कृत बोलने तथा लिखने में अधिक कठिनाई अनुभव नहीं करते हैं। वे इसे अपने दैनिक कामकाज में इस्तेमाल करने लगे हैं। (मी.फो.)

चन्देलों के इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्रोत 'प्रबोध-चन्द्रोदय'

– डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर
प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

चन्देलों के इतिहास के स्रोत के रूप में अल्प साहित्य उपलब्ध है। वैसे तो जयरथ के 'पृथ्वीराज विजय' कल्हण की 'राजतरंगिणी', चन्दबरदायी के 'पृथ्वीराज रासो' से चन्देलों के सम्बन्ध में कुछ सामग्री उपलब्ध होती है; किन्तु चन्देलों के राज्य में रचे गए ग्रन्थों की संख्या बहुत कम है। इनमें 'आल्हखण्ड' बहुत प्रसिद्ध है, जिसका रचयिता जगनिक चन्देल नरेश परमर्दिदेव का दरबारी था। किन्तु लोक कथाओं के समान उसमें कल्पना का पुट बहुत अधिक है। साथ ही समय–समय पर उसमें प्रक्षिप्त अंश भी जुड़ते रहे। अतः इस सम्पूर्ण ग्रन्थ की चन्देल इतिहास के लिए महत्ता घट जाती है। एक दूसरा ग्रन्थ 'रूपक–शतकम्' है, जिसमें छ : नाटकों का संकलन है। इसका लेखक अन्तिम महत्त्वपूर्ण चन्देल शासक परमर्दिदेव का अमात्य वत्सराज था। उसके रूपकों में काव्य, नाट्य तथा इतिहास का मणिकांचन–योग परिलक्षित होता हे। वह चन्देल शासकों को 'कालञ्जराधिपति' विरुद से विभूषित करता है।

चन्देल शासक कीर्त्तिवर्मा के समकालीन कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उन्हें कीर्त्तिवर्मा का दरबारी तथा कीर्त्तिवर्मा के सामन्त शासक गोपाल का कृपा–पात्र माना जाता है। कृष्णमिश्र का परिचय न तो उनके नाटक से मिलता है और न किसी अन्य स्रोत से। संस्कृत कोश के अनुसार इस आस्पद (मिश्र) का प्रयोग आदरणीय या योग्य व्यक्ति के लिए किया जाता था। निश्चय ही इस नाटक के लेखक अत्यन्त विद्वान् और आदरणीय व्यक्ति रहे होंगे। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में प्रतिपाद्य विषय मानसिक और आध्यात्मिक हैं।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' का अर्थ है– 'ज्ञान रूपी चन्द्रमा का उदय'। चन्द्रमा निर्मलता एवं शान्ति का प्रतीक है। वस्तुतः यह संसार के प्रलोभन एवं अज्ञान से जीवात्मा की मुक्ति का रूपक है। नाटक के पात्र मन की सूक्ष्म भावनाएँ एवं वासनाएँ है। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार विष्णु–भक्ति विवेक को जाग्रत् कर वेदान्त, श्रद्धा, विचार तथा अन्य सहकारी तत्त्वों की सहायता से भ्रान्ति, अज्ञान, राग, द्वेष, लोभ आदि को पराजित करती है। इसके पश्चात् प्रबोध अथवा ज्ञान का उदय होता हे। फलस्वरूप जीवात्मा ब्रह्म के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करता है। इसमें वैष्णव धर्म तथा अद्वैत वेदान्त का माहात्म्य दर्शाया गया हे। भागवत परम्परा के अनुसार भगवान् के ६ गुण हैं– ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। इनमें 'ऐश्वर्य के द्वारा अहंकार, वीर्य या पराक्रम के द्वारा क्रोध, यश के द्वारा मद, श्री के द्वारा लोभ, वैराग्य के द्वारा काम और ज्ञान या विवेक के द्वारा मोह नामक शत्रु पर विजय प्राप्त की जाती है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' नाटक इनकी अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण है। सर्वप्रथम सन् १५४४ ई. में नल्ह कवि ने इस नाटक का पद्यानुवाद किया था। सन् १८७२ ई. में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक गद्य–पद्य मिश्रित अनुवाद 'पाखण्ड विडम्बनम्' नाम से किया।

प्रबोधचन्द्रोदय में प्रसंगवश चेदि वंश के शासक लक्ष्मीकर्ण के विरुद्ध चन्देलों की सफलता का उल्लेख किया गया है। यह एकमात्र ऐतिहासिक घटना है, जिसका बोध इस नाटक से होता है। नाटक के प्रारम्भ में ही कीर्त्तिवर्मा के एक सामन्त शासक गोपाल का उल्लेख है, जिसके गुणों की प्रशंसा करते हुए उसके द्वारा चेदि राजा को पराजित कर कीर्त्तिवर्मा को पुनः राज्यासीन करने का विवरण मिलता है–

गोपालो भूमिपालान्प्रसभमसिलतामात्रमित्रेण जित्वा
साम्राज्ये कीर्त्तिवर्मा नरपतितिलको येन भूयोऽभ्यषेचि।

प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अङ्क, ४

गोपाल को 'सकलसामन्तचक्रचूड़ामणि' तथा सहजमित्र कहा गया है। केवल तलवार की सहायता से समस्त विरोधी राजाओं को जीतकर कीर्त्तिवर्मा को पुनः राज्यासीन करने वाले गोपाल नामक भूपाल हैं। गोपाल की चेदि राजा पर विजय का विवरण लेखक ने नाटक के अन्तर्गत अत्यन्त सुन्दर उपमाओं द्वारा प्रस्तुत किया हैः–

("येन तथाविघनिजभुजबल विक्रमैक निर्भर्त्सित सकलराज मण्डलेन आकर्णाकृष्ट कठिनकोदण्डदण्ड बहुल वर्षच्छर निकर जर्जरियतुरङ्तरङ्गमालम्, निरन्तरनिपत तीक्ष्ण विशिख निक्षिप्तमहास्त्रपर्यस्तोत्तुङ्गमातङ्ग महामहीधरसहस्रम्, भ्रमद्भुजदण्डमन्दरामिघात घूर्णमानसकलपत्तिसलिलसंघातम्, कर्णसेनासागरं निर्मथ्य मधुमथनेनेव क्षीरसमुद्रमासादिता समर विजय लक्ष्मीः।" टीकाकार रामचन्द्र मिश्र, प्रबोधचन्द्रोदयम् पृ. ६–१०)

'जिसने अपने उद्दाम बाहु पराक्रम से समस्त राजमण्डल को नीचा दिखाया; शत्रु सागर में कान तक आकृष्ट बाण से शस्त्रवृष्टि करके तरङ्गोपम तुरंगों को जर्जरित किया; निरन्तर गिरने वाले बाणों तथा अन्य महास्त्रों से शैलतुल्य गजराजो को उलट–पुलट दिया; भुजदण्डरूप मन्दर पर्वत घुमाकर सकल पदाति सेना रूप जलराशि को नचा दिया; इस प्रकार कर्णसेना सागर को मथकर विजयलक्ष्मी का वरण किया जैसे विष्णु ने समुद्र मथकर लक्ष्मी पाई थी।'

प्रबोधचन्द्रोदय में गोपाल को स्वभावतः शान्त कहा गया है। उसने सभी भूपों को सताने वाले चेदिराज से उपद्रवग्रस्त कीर्त्तिवर्मा को फिर से पदस्थ करने के लिए ही इस प्रकार का क्रोधमय व्यापार किया था।

(यतः सकल भूपालकुलप्रलयकालाग्निरुद्रेण चेदिपतिना समुन्मूलितं चन्द्रान्वयपार्थिवानां पृथिव्यामाधिपत्यं स्थिरीकर्तुमयमस्य संरम्भः। वही, पृ. १०)

अनेक अभिलेखों से विदित होता है कि चेदिराज लक्ष्मीकर्ण ने चन्देलों को पराजित किया था; किन्तु कीर्त्तिवर्मा ने चन्देलों की शक्ति की पुनर्प्रतिष्ठा की थी। महोबा पाषाणलेख से ज्ञात होता है कि लक्ष्मीकर्ण की सेनाओं ने अनेक राजपुत्रों को पराजित किया था। विक्रम सम्वत् १३१७ (१३१७–५७ = १२६० ई.) के चन्देल राजा वीरवर्मा की पत्नी कल्याणदेवी के अजयगढ़ शिलालेख में कीत्तिवर्मा की अगस्त्य से तुलना करते हुए कहा गया है कि उसने कर्णरूपी समुद्र का पान कर लिया। साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रजा के स्वामी कीर्त्तिवर्मा ने नूतन राज्य की सृष्टि की।'

(कुम्भोद्भवः कर्णपयोधिपाने प्रजेश्वरो नूतनराज सृष्टौ। एपीग्रेफिया इण्डिका, जिल्द १, पृ. ३२७–३२६ श्लोक ३)

दोनों अभिलेखों की तुलना करने से विदित होता है कि लक्ष्मीकर्ण ने चन्देल राज्य को पराजित किया था और कीर्त्तिवर्मा ने उसका पुनरुत्थान किया। अभिलेखों से प्राप्त इस सूचना की पुष्टि साहित्यिक स्रोतों से भी होती है। बिल्हण ने 'विक्रमाङ्कदेव चरित' में कर्ण का उल्लेख करते हुए कहा है कि वह कालञ्जर गिरि के स्वामी के लिए काल था– **(कालः कालंजरगिरिपतेर्य :।** विक्रमाङ्कदेवचरित १८, ६३)

इन साक्ष्यों के आधार पर यह कहना उचित होगा कि चेदि शासक लक्ष्मीकर्ण ने चन्देलों को पराजित किया और कुछ समय तक उनके राज्य पर अधिकार बनाए रखा। निश्चय ही चेदि नरेश द्वारा पराजित होने वाला चन्देल शासक कीर्त्तिवर्मा का पूर्ववर्ती शासक देववर्मा ही रहा होगा। (वी.वी. मिराशी, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम् जिल्द ४ पृ. १४, सं.६.)

कर्ण की यह सफलता क्षणिक थी। आभिलेखिक और साहित्यिक साक्ष्य निर्विवाद रूप से यह प्रमाणित करते हैं कि कीर्त्तिवर्मा ने लक्ष्मीकर्ण को पराजित कर चन्देलों का कलंक धो दिया। ऊपर कल्याणदेवी के अजेयगढ़ लेख का उल्लेख किया जा चुका है, जिसमें अगस्त्य रूपी कीर्त्तिवर्मा द्वारा कर्ण रूपी समुद्र का पान कर लेने का विवरण है। महोबा अभिलेख में इस घटना का उल्लेख आलंकारिक रीति से किया गया। उदाहरणतः जिस प्रकार पुरुषोत्तम ने अपनी उत्ताल तरंगों से अनेक पर्वतों को उदरस्थ करने वाले समुद्र को पर्वत (मन्दार) से मथ कर अमृत उत्पन्न किया और गजों के साथ लक्ष्मी को प्राप्त किया। उसी प्रकार उसने (कीर्त्तिवर्मा ने) अपने भुजबल से उस लक्ष्मीकर्ण को पराजित कर यश प्राप्त किया, जिसकी सेनाओं ने अनेक राजपुत्रों को विनष्ट कर गजों के साथ वैभव प्राप्त किया। (एपीग्रेफिया इण्डिका जिल्द १ पृ. २१६–२०, २२२ श्लोक–२६)

प्रस्तुत अंशों के आधार पर स्पष्ट है कि प्रबोध-चन्द्रोदय तथा कीर्त्तिवर्मा के लेखों में कलचुरि राजा लक्ष्मीकर्ण द्वारा पहले चन्देल सत्ता को पदच्युत करने का तथा बाद में कीर्त्तिवर्मा के राज्यकाल में पुनः कर्ण को पराजित कर चन्देल राजलक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठित करने की बात कही गई है। कीर्त्तिवर्मा के लेखों में इसका श्रेय उसे ही दिया गया है, जब कि प्रबोध–चन्द्रोदय में यह श्रेय सूत्रधार एवं नटी के माध्यम से कीर्त्तिवर्मा के 'सकल

सामन्त चक्र चूड़ामणि' गोपाल को दिया गया है। इस उपलब्धि पर लिखे गये संस्कृत नाटक का मंचन स्वयं कीर्तिवर्मा ने देखा था। महोबा में कीर्तिवर्मा ने एक विशाल झील का निर्माण कराया, जो 'कीर्तिसागर' के नाम से प्रसिद्ध है। कीर्तिसागर के किनारे एक अत्यन्त सुन्दर बारादरी जैसी चारों ओर से खुली संरचना है, जिसके विषय में कहा जाता है कि 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का मंचन यहीं हुआ था।

इस साहित्यिक स्रोत से तत्कालीन राजनैतिक इतिहास के साथ–साथ धार्मिक एवं सामाजिक इतिहास का भी चित्रण मिलता है। मूलतः नाटक ६ अंकों में है। इसकी कथावस्तु मन के अन्तर्द्वन्द्व हैं, जिनमें सत्पक्ष के पात्र व असत्पक्ष के पात्र निम्नवत् हैं :–

सत् पक्ष : १. विवेक, २. वस्तुविचार, ३ क्षमा, ४. सन्तोष, ५. श्रद्धा, ६. शान्ति, ७. मति, ८ करुणा, ९. मैत्री. १०. पुरुष

असत् पक्ष के पात्र :

१. महामोह, २. काम, ३. क्रोधहिंसा, ४. लोभतृष्णा, ५. दम्भ,६. अहंकार ७. रति, ८. मिथ्यादृष्टि, ९. विभ्रमावती १०. मन।

सत्पक्ष का नायक विवेक है, जिसके अन्तर्गत विष्णुभक्ति, सरस्वती, उपनिषद्, संकल्प, वैराग्य, निदिध्यासन, प्रबोध आते हैं। असत्पक्ष का प्रतिनायक महामोह है, जिसके अन्तर्गत तत्कालीन सम्प्रदायों में चार्वाक, भिक्षु (बौद्ध धर्म), क्षपणक (दिगम्बर जैन सम्प्रदाय) तथा कापालिक (शैव सम्प्रदाय) आदि के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।

असत्पक्ष का प्रतिनायक महामोह कितने सुन्दर ढंग से अपनी बात कहता है; प्रबोधचन्द्रोदय का यह वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली है:

'ब्रह्मा सृष्टि करने में लगे हैं, महादेव को पार्वती बाहुपाश के आलिंगन से फुरसत नहीं मिलती है और विष्णु छाती से लक्ष्मी को लगाकर समुद्र में सो रहे है, और लोगों में शान्ति की क्या बात–'

(धाता विश्वसृष्टिमात्रनिरतो देवोऽपि गौरीभुजा, श्लेषानन्दविघूर्णमाननयनो दक्षाध्वरध्वंसनः। दैत्यारिः कमलाकपोलमकरीलेखाङ्कितोरः स्थलः, शेतेऽब्धावितरेषु जन्तुषु पुनः का नाम शान्तेः कथा।। 'प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अङ्क' श्लोक–२८)

वस्तुतः मानव दुर्भावनाएँ अपने ढंग से समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए आकर्षण उत्पन्न करती हैं। सद्भावनाओं का प्रसार मन्थर–गति से होता है; पर अन्ततः सद्भावनाओं की विजय होती है। विविध सम्प्रदायों के अनुयायियों के स्वरूप पर 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में चार्वाक, भिक्षु (क्षपणक), बौद्ध–भिक्षु और कापालिक के चरित्रों के माध्यम से बहुत सुन्दर व्यंग्य किया गया है।

साधुसन्तों में दुश्चरित्रता एवं स्वार्थ–परता थी। अनेक सम्प्रदायों के अनुयायियों में वाद–विवाद, आक्षेप–प्रत्याक्षेप तथा कभी–कभी संघर्ष हो जाते थे। ऐसे अवसरों पर वे एक दूसरे के चारित्रिक दोषों को उजागर करने में भी पीछे नहीं रहते थे। समाज के पतन में धार्मिक सम्प्रदायों के अनुयायियों की भूमिका, राजाओं के पारस्परिक संघर्षों आदि के बीच भी कृष्ण मिश्र जैसा विद्वान् 'प्रबोध चन्द्रोदय' की रचना करके उसके मंचन द्वारा सामाजिक बुराइयों को उद्घाटित करता हुआ श्रेष्ठ विष्णु–भक्ति तथा उपनिषदों के सारगर्भित तथ्यों को उजागर करता है। मानसिक शान्तिके लिए प्रबोध (ज्ञान) आवश्यक है। यह विष्णु भक्ति द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि जीवन के सत्पक्षों का उदय इसी के द्वारा हो सकता है।

'प्रबोध–चन्द्रोदय' की कथावस्तु को निम्न संकेतों से समझा जा सकता है :

(शेष पृष्ठ ४० पर)

– डॉ. अनामिका प्रकाश

अपनी माँ की छवि देखें सास में
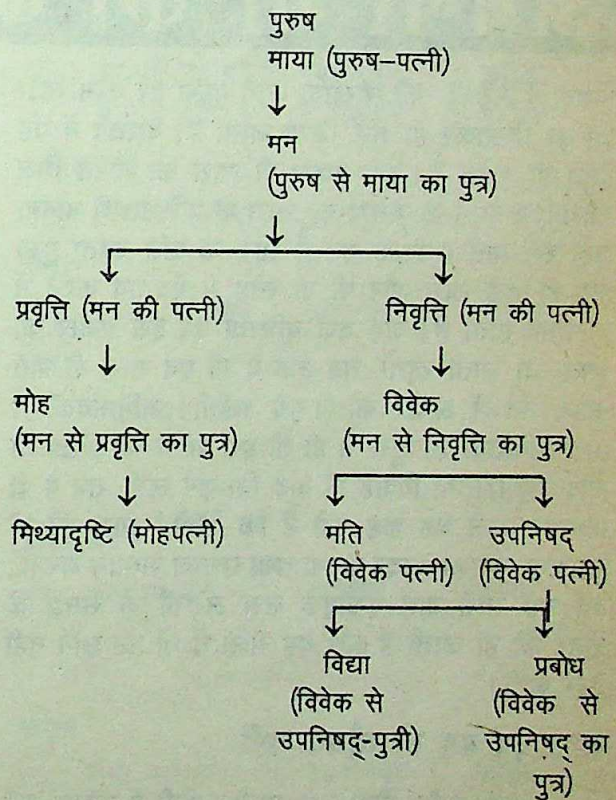
माँ शब्द अपने आप में सम्पूर्ण गरिमा को समाये हुए है। माँ शब्द के उच्चारण मात्र से वात्सल्य मानो टपकने लगता है। फिर भी देखने में प्रायः यही आता है कि बहू अपनी सास में माँ की छवि नहीं देखती। इसके कुछ कारण हैं।

बचपन से ही ससुराल तथा सास का भय

हमारे समाज में जैसे ही कन्या कुछ समझने लगती है, उसे ससुराल तथा सास के प्रति गलत दृष्टिकोण बनाकर भयभीत किया जाता है। बच्ची के समक्ष सास का कठोर रूप वाला चित्र खींच दिया जाता है। बेटी के साथ अनजाने में ही ऐसे व्यवहार करने वाले प्रायः घर वाले ही होते हैं– जैसे दादी, माँ, चाची, भाभी, ताई, बुआ आदि। कोई कार्य बच्ची से बिगड़ जाने पर यह कहना कि "तुझे अक्ल तब आयेगी, जब तेरी सास अच्छी तरह से खबर लेगी"– बच्ची के मन में सास के प्रति भय बिठाना ही है। मायके में लड़की को सिखाया जाने वाला हर काम सास का डर दिखाकर ही शुरू किया जाता है। वास्तव में यह बहुत ही गलत है। इस प्रकार से सास का गलत चित्र खींच दिये जाने के कारण बहू सास के प्रति अच्छी भावना नहीं रख पाती। उसके मन में सास के प्रति बढ़ता हुआ भय ही उसे सास और माँ के स्नेह में भेदभाव करने में सहायक होता है। जब तक बच्चियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती रहेगी, तब तक वे माँ एवं सास के प्रति अपने मन में अन्तर को बनाये रखेंगी। अभिभावकों ने अपनी बिटिया को शुरू से ही तो इस प्रकार की शिक्षा दी और जब बिटिया विवाह के बाद बिछुड़ने लगी, तब वे ही अचानक उसे यह कह रही हैं कि "बेटी! सास को माँ समझना, उसका आदर करना तथा उसका सम्मान करना", तब यह सारी बातें एकाएक उस लड़की के समझ के बाहर की हो जाती हैं और वह सास में माँ की छवि नहीं देख पाती।

सास एवं बहू में मतैक्य नहीं

प्रायः नवीन पीढ़ी तथा प्राचीन पीढ़ी में मतैक्य नहीं होता। जब तक सास के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण साफ–सुथरा नहीं होगा, तब तक बहू सास के द्वारा दी जाने वाली अच्छी सलाह में भी दोष ही ढूँढ़ती रहेगी। जब तक विचारों में तालमेल नहीं होगा, तब तक दोनों एक–दूसरे को अपना विरोधी मानती रहेंगी। दोनों में आपस में तालमेल स्थापित होने पर वे एक दूसरे को अपना सच्चा हितैषी समझेंगी तथा उनकी बातों व भावनाओं का सम्मान करेंगी।

सास में माँ का सा स्नेह ढूढ़ें

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जब तक आप अपनी सास को माँ के रूप में नहीं देखेंगी, तब तक माँ एवं सास में भेदभाव करती रहेंगी। जब लड़की बहू बनकर अपनी गृहस्थी की शुरुआत करती है, तब सास अपनी गृहस्थी का एक लम्बा सफर तय कर चुकी होती है। इसलिए बहू को चाहिए कि वह सास की वह प्रत्येक बात, जो कटु भले लगे; किंतु उसके हित में हो, मान लेनी चाहिए। इसमें जिद न करे एवं झुँझलाए भी नहीं, न ही कोई अन्य अर्थ लगाएं, वरन् इस बात पर ध्यान दे कि सास नहीं, अपितु उनका अनुभव बोल रहा है। जो बहुएँ बिना सोचे समझे सास की प्रत्येक बात का विरोध करती हैं, वे वास्तव में पूर्वाग्रह की शिकार होती हैं। जिस प्रकार आप माँ की प्रत्येक बात को स्वीकारने को तैयार रहती हैं, उसी प्रकार आपको सास की भी बात को सम्मान देना चाहिए। इस प्रकार से आपके और सास के बीच यदि पूर्व में सम्बन्ध कटु बने हुए हैं, तो पुनः स्नेहयुक्त हो जाएंगे। माँ के समान सास भी अनुभवी होती है, बहू को उसके अनुभवों का लाभ उठाना चाहिए। सास द्वारा दी गई शिक्षा से बहू को उस परिवार की परंपरा तो ज्ञात होती ही है, साथ ही यह शिक्षा उसमें आत्म–विश्वास भी लाती है।

बहू भी अपने अहंभाव को कम करे तथा सास भी अपने अहंभाव को नकार कर बहू के नये विचारों के साथ अपने में कुछ परिवर्तन करे, तो वह दिन दूर नहीं होगा, जब सास और बहू में माता–बेटी जैसे ही दृढ़, मधुर सम्बन्ध होंगे तथा दोनों को अपना घर ही सर्वाधिक श्रेष्ठ लगने लगेगा। ❑

– आर.बी.२, जी.एफ.बी, रेलवे कालोनी, बाढ़ (मथुरा) उ.प्र.

बारहवीं लोकसभा में पहुँची महिलाएँ

राज्य	क्षेत्र	दल
उत्तर प्रदेश		
१. मायावती	अकबरपुर	बसपा
२. मेनका गांधी	पीलीभीत	निर्दलीय
३. इला पन्त	नैनीताल	भाजपा
४. रीना चौधरी	मोहनलालगंज	सपा
५. शीला गौतम	अलीगढ़	भाजपा
६. ओमवती	बिजनौर	सपा
७. कमलारानी	घाटमपुर	भाजपा
८. सुखदा मिश्रा	इटावा	भाजपा
६. ऊषा वर्मा	हरदोई	सपा
दिल्ली		
१०. सुषमा स्वराज	दक्षिणी दिल्ली	भाजपा
११. मीरा कुमार	करोलबाग	कांग्रेस
बिहार		
१२. आभा महतो	जमशेदपुर	भाजपा
१३. रीता वर्मा	धनबाद	भाजपा
१४. रमा देवी	मोतीहारी	राजद
१५. मालती देवी	नवादा	राजद
पश्चिम बंगाल		
१६. ममता बनर्जी	दक्षिण कलकत्ता	तृणमूल कांग्रेस
१७. कृष्णा बोस	यादवपुर	तृणमूल कांग्रेस
१८. मिनाती सेन	जलपाईगुड़ी	माकपा
१६. संध्या बौरी	विष्णुपुर	माकपा
२०. गीता मुखर्जी	पांसकुड़ा	भाकपा
मध्य प्रदेश		
२१. विजयराजे सिंधिया	गुना	भाजपा
२२. उमा भारती	खजुराहो	भाजपा
२३. सुमित्रा महाजन	इन्दौर	भाजपा
२४. विमला वर्मा	सीवनी	कांग्रेस
मणिपुर		
२५. किमगोंग्टे	बाहरी मणिपुर	भाकपा
राजस्थान		
२६. वसुंधराराजे सिंधिया	झालावाड़	भाजपा
२७. प्रभा ठाकुर	अजमेर	कांग्रेस
२८. ऊषा मीणा	सवाई माधोपुर	कांग्रेस
गुजरात		
२६. जयाबेन ठक्कर	बड़ोदरा	भाजपा
३०. भावना चिखलिया	जूनागढ़	भाजपा
३१. भावना दवे	सुन्दरगढ़	भाजपा
३२. निशाबेन चौधरी	साबरकांठा	कांग्रेस
महाराष्ट्र		
३३. सूर्यकान्ता पाटिल	हिंगोली	कांग्रेस
३४. चित्रलेखा भोसले	रामटेक	कांग्रेस
आन्ध्र प्रदेश		
३५. पानाबाका लक्ष्मी	नेल्लूर	कांग्रेस
३६. डॉ० सुगना कुमारी	पेदाचल्ली	टीडीपी
उड़ीसा		
३७. जयन्ती पटनायक	बहरामपुर	कांग्रेस
३८. संगीता देवी	बोलांगीर	भाजपा
तमिलनाडु		
३६. डॉ० वी सरोज	रासीपुरम्	अन्नाद्रमुक
केरल		
४०. ए०के० प्रेमाजम	बड़ागारा	माकपा
पंजाब		
४१. सतविन्दर कौर	रोपड़	शिरोमणि अकाली दल बादल
हरियाणा		
४२. कैलाशो देवी	कुरुक्षेत्र	ह०पा० लोकदल राष्ट्रीय
असम		
४३. रानी नाराह	लखीमपुर	कांग्रेस

★

जहाँ कुँआरी बालाओं के नृत्य से मुग्ध होकर मेघ बरसते हैं

— कमल सौगानी

वर्षा एक ऐसा खास मौसम है, जिसके बिना हमारी सृष्टि का विकास अधूरा है, क्योंकि बिना जल के जीवन संभव नहीं, वैसे खेती के लिए तो वर्षा का बड़ा ही महत्त्व हैं। कई बार ऐसा होता है कि वर्षा के दिनों में कई–कई दिनों तक मेघ न गरजते हैं, न बरसते हैं। ऐसे में वर्षा बुलाने के लिए हवन–यज्ञ व कई तरह के जादू–टोटके भी किये जाते हैं।

आज के विज्ञान–युग में दुनिया में एक स्थान ऐसा भी हैं, जहाँ कुँआरी बालाएँ नृत्य कर वर्षा के बादल बुलाती हैं। सचमुच बादल आते हैं और खूब पानी बरसाते हैं। यह स्थान मैक्सिको के एक विशाल जंगल में है। इसे "नीवेवनी" कहा जाता है। यहाँ एक आदिवासी जाति "निनी" रहती है। ये लोग जंगल के मैदानी इलाके में वर्षा में एकबार यानि वर्षा के मौसम में खेती करते हैं। कई बार यहाँ वर्षा के मौसम में पानी नहीं बरसता, तो वहाँ की कुँआरी बालाएँ सजधज कर "वर्षा–नृत्य" करती हैं। यहाँ ऐसा विश्वास किया जाता है कि नृत्य करने से इन्द्र देवता प्रसन्न होते हैं और खूब पानी बरसाते हैं।

जिस दिन वर्षा के बादल बुलाने होते हैं– उसकी भोर में सवा सौ या डेढ़ सौ कुँआरी सुन्दर बालाएँ सुगंधित जल से स्नान कर हल्के–फुल्के वस्त्र धारण कर बीहड़ जंगल में जाती हैं। सिर पर सजे फूल उन्हें बिल्कुल मयूरी बना देते हैं। फिर ये सरदार के खेमे के सामने आकर झूम–झूम कर "मयूरी–नृत्य" करने लगती हैं, यह नृत्य बड़ा ही मनोहर होता है।

ये कुँआरी बालाएँ अपने सलोने हाथों से आसमान की तरफ संकेत कर इन्द्र देवता को बुलाती हैं। थोड़ी देर में आसमान में बादल आते दिखाई देते हैं। ठंडी हवाओं के मस्त झोंकों से वातावरण में एक नई ताजगी की लहर छा जाती है। जब आसमान में रिमझिम फुहारें बरसने लगती हैं, तब नृत्य करने वाली सभी बालाएँ तेज कदमों से नृत्य करने लगती हैं। नृत्य की तेज रफ्तार के साथ ही वर्षा भी जोरों से होने लगती हैं। बिजली चमकती है और मेघ आसमान में तैरते दिखाई देते हैं।

यहाँ कुँआरी बालाओं के "वर्षा–नृत्य" करने की प्रथा सदियों से चली आ रही हैं। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि जो कुँआरी लड़की मयूरी का वेष बनाकर वर्षा के मौसम में नृत्य करती है, उसका विवाह उसी वर्षा के मौसम में उसके मन पसन्द लड़के से हो जाता है।

वर्षा के दिनों में जिस दिन आसमान में यहाँ इन्द्रधनुष दिखाई देता है, तो वह दिन लड़के–लड़कियों की शादी का शुभ दिन माना जाता है। यहाँ शादी बिल्कुल साधारण तरीके से होती है। बस, वर–वधू आसमान में उगे इन्द्रधनुष को हाथ जोड़कर एक दूजे के गले में महुए के फूलों की माला पहना देते हैं। वर–वधू शादी के बाद खुशी–खुशी अपने नये घर में लौट आते हैं।

"क्या कुँआरी बालाओं के 'वर्षा नृत्य' से इन्द्र देवता सचमुच प्रसन्न होते हैं" ? यह बात आज दुनिया के तमाम वैज्ञानिकों और मौसम विशेषज्ञों के लिए एक रहस्य का विषय बनी हुई है। ❒

— स्टेशन रोड, भवानी मंडी (राज.) ३२६५०२

(पृष्ठ ३७ का शेष) **चन्देलों के इतिहास ...**

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि चन्देलों के इतिहास के स्रोत के रूप में 'प्रबोध–चन्द्रोदय' का विशिष्ट महत्त्व है। भारत की मूल मनोवृत्ति आध्यात्मिकता को प्रकाशित करने में इस नाटक की श्रेष्ठ भूमिका है। नैतिक पतन के युग में मानवीय शान्ति के प्रति आस्था रखने वाले कृष्ण मिश्र द्वारा समाज को नाटक के माध्यम से शिक्षित करने का प्रयास न केवल ग्यारहवीं शती ई. के लिए उपादेय था; वरन् वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी सतत् प्रेरणादायक है। ❒

— सुरेन्द्रालय, ए–३५४, इन्दिरा नगर, लखनऊ

शिव-पूजन की कुछ रहस्यमयी बातें

— डॉ. गणेश कुमार पाठक

अपने देश में देवाधिदेव की पूजा अर्चना सबसे अधिक की जाती है। देवाधिदेव शिव की विशेष पूजा वैसे तो फाल्गुन, कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को की जाती है, किन्तु वर्ष भर प्रत्येक दिन भी भक्तगण अपने इस आराध्य की पूजा–अर्चना करते हैं। हम जानते हैं कि शिव की पूजा–अर्चना में अन्य देवताओं से भिन्न वस्तुएँ चढ़ाई जाती हैं, जिनमें विषमय पदार्थ ही अधिक होते हैं जैसे धतूरे के फल–फूल, मदार के फूल, भंग। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि शिव–पूजन में आखिर ये विषैली वस्तुएँ क्यों प्रयोग में लाई जाती हैं ?

"शिव" का अर्थ :

"शिव" अपने आप मे स्वयं रहस्यमय हैं। इसलिए "शिव" का अर्थ भी कम रहस्यमय नहीं है। "शिव" नाम शारीरिक न होकर परमात्म–शक्ति का गुणवाचक प्रतीक हैं। इसलिए यह ईश्वरीय गुणों एव कर्तव्यो के आधार पर आधारित है। सनातन–सस्कृति में "शिव" का वास्तविक अर्थ "कल्याण–कारी" है, जो उन्हें सर्व–शक्तिमान् होने का भाव प्रकट करता है। यही कारण है कि अपने नाम के अनुरूप शिव मात्र किसी जाति, धर्म, मत, सम्प्रदाय का कल्याण नहीं करते, वरन् सम्पूर्ण मानव सृष्टि का कल्याण करते हैं।

शिव का स्वरूप : साकार या निराकार

वैसे तो शिव की मूर्त्ति की भी पूजा की जाती है, जिसे उनका साकार स्वरूप कह सकते हैं, किन्तु वास्तव में शिव के निराकार रूप (शिवलिंग) की ही पूजा का विधान है। शिव की आरती एवं जप में भी उनके निराकार रूप का ही गायन किया जाता है, जैसे– "ॐ जय शिव ओंकारा" तथा 'ॐ नमः शिवाय' अर्थात् ॐ (निराकार आत्मा) अपने ही समान ॐ आंकार वाले निराकार पिता "शिव" को याद करता है। "शिव" का अजन्मा, अविनाशी के रूप में गायन तथा "ज्योतिर्मय" पिण्ड रूप में उनकी पूजा भी "शिव" के निराकार रूप का ही द्योतक है।

शिव पर आक, धतूरा एवं बेलपत्र चढ़ाने का रहस्य

चूँकि "शिव" का अर्थ "कल्याणकारी" है, अतः शिव ने अपने लोक–कल्याणकारी स्वभाव के कारण ही अवतार लेकर सर्वसाधारण की आत्माओं से काम, क्रोध, लोभ, अहकार, द्वेष, घृणा, वैमनस्य एवं उनके पापों को अपने मे आत्मसात् कर लेने के लिए माँगा था; किन्तु इन बुराइयों के बदले नासमझ आत्माओं ने मंदार, भाँग एवं धतूरा रूपी विषमय पदार्थ अर्पित किये। शिव ने आपसी बैर माँगा, किन्तु मानव ने बैर (वैमनस्य) न देकर स्थूल बेर (फल) अर्पित किया। शिव ने आँखों की कुदृष्टि (पाप की दृष्टि माँगी) किन्तु मानव ने आक का फूल अर्पित किया, जिससे कि आँखों की ज्योति ही समाप्त हो जाती है। शिव का विचार था कि हे मानव ! तुम सब आत्माओं को मुझे ही जानो अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों मैं ही हूँ; क्योंकि मैं ही ब्रह्मा के रूप में सृष्टि की रचना करता हूँ, विष्णु के रूप में पालन करता हूँ एवं महेश के रूप में आसुरी सृष्टि का संहार करता हूँ। अतः इन तीनों का जनक समझ कर मुझे ही स्मरण करो, तुम्हारा कल्याण होगा। किन्तु अज्ञानी मानव ने उन्हें तीनों के पिता होने के नाते तीन पत्रों वाला बेल–पत्र अर्पित किया।

शिव के विविध नामों का रहस्य

शिव के विविध नाम भी रहस्य से भरे हुए हैं। उनके ये नाम उनके गुणों एवं कर्तव्यों पर आधारित हैं, जो इस प्रकार हैं –

१. रामेश्वर – राम के ईश्वर यानी राम के पूज्य
२. गोपेश्वर – श्रीकृष्ण के पूज्य
३. भूतेश्वर – भटकती आत्माओं को मुक्त करने वाले
४. पापकटेश्वर – पापों को काटने वाले
५. मंगलेश्वर – मंगल (सुख शांति) प्रदान करने वाले
६. अनंतेश्वर – (अपार) शक्तियों वाले
७. महाकालेश्वर – कालों के काल, महाकाल
८. प्राणेश्वर – सर्व आत्माओं के प्राणों के ईश्वर
९. ज्ञानेश्वर – सर्व आत्माओं के जन्म–जन्म को जानने वाले
१०. त्रिलोकीनाथ– तीनों लोकों के स्वामी
११. महाबलेश्वर – अतुलनीय बल वाले
१२. मनकामेश्वर – मन की कामनाएँ पूरी करने वाले
१३. मंडलेश्वर – सभी धर्मो एवं पंथों के ईश्वर।
१४. जगदीश्वर– सम्पूर्ण जगत् के स्वामी।
१५. ज्योतिर्लिंगम्– जिनका रूप ज्योति सदृश है।
१६. ओंकारेश्वर – आत्माओं के परम पिता।
१७. परमात्मा –सम्पूर्ण आत्माओं के परम आत्मा
१८. त्रिमूर्त्ति– ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का एकाकार रूप
१९. क्षितीश्वर – पृथ्वी के स्वामी
२०. औघड़दानी– शिव का औघड़ एवं कल्याणकारी रूप
२१. ऊँकार अकाल मूर्त्ति : जो आत्मा के समान आकार वाले हैं एवं जिन्हें कोई काल नहीं खा सकता (गुरुग्रंथ साहिब में)
२२. पावन प्रकाश – ज्योर्तिमय निराकार प्रकाश स्वरूप (बाइबिल में वर्णित रूप)
२३. पार–ब्रह्म परमेश्वर – सूर्य तारागणों के परे ब्रह्मलोक वासी।
२४. मुक्तिदाता –मुक्ति प्रदान करने वाले।
२५. संग–ए–असवद–मक्का में मुस्लिमों द्वारा "नूर" (ज्योति) के रूप में पूजित।

इसके अतिरिक्त भी शिवके अनेक रहस्यमय नाम हैं। (तण्डि–ऋषि कृत सहस्त्र नामावली महाभारत में दी हुई है। – सं०)

शिवरात्रि पूजन का रहस्य :

शिव का जन्म साकार रूप में मनुष्यों के गर्भ से नहीं होता, अपितु परकाया में अवतरण होने से होता है। गर्भ से जन्म न लेने के कारण ही शिव को अजन्मा–अविनाशी कहा जाता है। शिव का अवतरण कलियुग के अन्त एवं सतयुग के आदि में सम्पूर्ण विश्व को नरक से स्वर्ग बनाने के समय अति "घोर अज्ञान" रूपी "रात्रि" के समय में होता है। यही कारण है कि शिव के अवतरण को 'शिवरात्रि' के रूप में मनाया जाता है।

शिव का वास्तविक स्वरूप देवों एवं मनुष्यों के समान न होकर सदैव ही प्रकाशमय अति सूक्ष्म "ज्योति बिन्दु" स्वरूप है। "शिव" का आदेश था कि हे आत्माओ! मेरे "ज्योति बिन्दु" रूप में ही मुझे स्मरण करना, किन्तु मानव उन्हें 'ज्योति बिन्दु' रूप में याद न करके उनके पिण्ड पर बिन्दु बनाकर ऊपर से एक–एक बूँद जल गिराकर ही उनके ज्योतिबिन्दु रूप की पूजा–अर्चना करते हैं। ❑

– प्रतिभा प्रकाशन, बलिया–२७७००१ (उ.प्र.)

भारत के प्रधान मंत्री

जवाहर लाल नेहरू	१५.०८.१९४७ से २७.०५.१९६४	६१३१ दिन
गुलजारी लाल नंदा	२७.०५.१९६४ से ०९.०६.१९६४	१४ दिन (कार्यवाहक)
लाल बहादुर शास्त्री	०९.०६.१९६४ से ११.०१.१९६६	५८२ दिन
गुलजारी लाल नंदा	११.०१.१९६६ से २४.०१.१९६६	१४ दिन (कार्यवाहक)
इन्दिरा गांधी	२४.०१.१९६६ से २४.०३.१९७७	४०७८ दिन
मोरारजी देसाई	२४.०३.१९७७ से २८.०७.१९७९	८५७ दिन
चरण सिंह	२८.०७.१९७९ से १४.०१.१९८०	१७१ दिन
इन्दिरा गांधी	१४.०१.१९८० से ३१.१०.१९८४	१७५३ दिन
राजीव गांधी	३१.१०.१९८४ से ०१.१२.१९८९	१८५८ दिन
वी.पी. सिंह	०१.१२.१९८९ से ०७.११.१९९०	३४१ दिन
चन्द्रशेखर	१०.११.१९९० से २१.०६.१९९१	२२४ दिन
पी.वी. नरसिंह राव	२१.०६.१९९१ से १६.०५.१९९६	१७९० दिन
अटल बिहारी वाजपेयी	१६.०५.१९९६ से २८.५.१९९६	१३ दिन
एच. डी. देवगौड़ा	०१.०६.१९९६ से २१.०४.१९९७	३२५ दिन
आई.के. गुजराल	२१.०४.१९९७ से १९.०३.१९९८	३३३ दिन
अटल बिहारी वाजपेयी	१९.०३.१९९८ से	

भारतीय आचार-मर्यादाओं का मर्म रहस्य

❑ राजशेखर व्यास

भारतवर्ष आचार-विचार और व्यवहार में अनेक मर्यादाओं को मानता रहा है। इन मर्यादाओं का रूप यद्यपि धार्मिक महत्त्व का समझा जाता है; किन्तु इनके पीछे आरोग्य-विज्ञान के मौलिक तत्त्व प्रच्छन्न रहे हैं। इन तत्त्वों को अज्ञान-वश हमने नहीं समझा या जान न सके, इस कारण हमने इनकी निरर्थकता अनुभव की और धीरे-धीरे उपेक्षित बना दिये गये। महिलाओं के गहने पहनने को हमने उनकी शोभा समझा, यद्यपि वे स्त्री-सौंदर्य के शृंगार के कारण बन जाते हैं तथापि उनके पहनने की तह में अनेक शारीरिक कारण हैं। नाक और कान बींधने तथा उन स्नायुओं में अमुक वजन का सुवर्ण या रजत पहनाने से सीधा स्वास्थ्य का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। अनेक विकारों का प्रतिरोध होता है। इसी प्रकार विविध रत्नों के परिधान में भी शरीर विज्ञान का सीधा सम्बन्ध है। किसी वैभवशाली के कण्ठ में शायद कुछ समय हीरे के साथ जुड़ा हुआ मौलिक-माणिक उसकी शोभा का कारण भले ही ज्ञात हो; परन्तु उसके परिणाम-वश वह व्यक्ति क्षय जैसे भीषण रोग का शिकार बनने से बच नहीं सकता। ऐसे ही अन्य परस्पर विपरीत-प्रकृति के रत्नों का परिणाम भी होता है। यही कारण है कि रत्नों के अनुकूल-प्रतिकूल परिणामों की जानकारी के बाद ही एक रत्न को दूसरे रत्न के साथ जुड़ाया जाता है और उसका एक स्वतंत्र विज्ञान भी है। (लेखक की कृति "रत्न विज्ञान" में विस्तार से इसकी मीमांसा है।)

शृंगार के वशीभूत हो आधुनिक नारी ने आज जिस प्रकार अज्ञानता के कारण समाज के अनेक नियमों की अवहेलना की है और इस तरह अपने स्वास्थ्य का ही सर्वनाश किया है, उसने ऐसी निर्बल और निःसत्व प्रजा की सृष्टि की है, जिसमें से पौरुष से हीन, विकारों का पुतला, और अचिरजीवी होकर नवीन-समाज का 'सभ्य' उत्पन्न हुआ है। निःसत्व-नारी की संतान कौन से पौरुष की अपेक्षा कर सकती है? नर्सों के नियंत्रण में से नित्य, अत्यल्पावधि में ही प्रसूतिशालाओं से प्रजोत्सर्ग कर निकल आने वाली हीनबल-नारियाँ, स्नायविक पोषण और बल से वंचित रह पुनः प्रजनन में आयु की क्षीणता ही प्राप्त करती हैं। भारतीय-प्रसूति विधानों में सवा महीने तक निरंतर मालिश का क्रम रहता है। स्नायुओं में सामर्थ्य संचित होती है और इतने अधिक उष्ण एवं पोषक तत्त्व दिये जाते हैं कि एक प्रसूति के बाद पुनः जीवन की क्षमता, नव-प्रसव का बल संचित हो जाता है। उस निरोग नारी की नवसंतति क्यों विकार की सहज शिकार बन सकेगी? किन्तु इस ओर दुर्लक्ष्य कर नारी ने अपने स्वास्थ्य की समाधि तो कर ही दी है, देश की भावी संतान को भी बल-वीर्य हीन अचिरजीवी बना डाला है। नर्स के निरीक्षण, और जच्चाखानों की अवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से जिस प्रकार देश की स्वाभाविक स्वास्थ्यर्द्धक परिचर्या प्रणाली की अनजाने अवहेलना की गयी है, वह नारी एवं उसके नव-सृजन के लिए अत्यंत हानिप्रद सिद्ध हुई है।

आज नारी नवीन युग-प्रवाह में प्रवाहित हो अपने "रजस्वला" होने का कोई महत्त्व नहीं मानती। उसकी मर्यादा का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। कोई रजस्वला की अस्पृश्यता की बात करे, तो शायद उसे पोंगा या पुरातन-पन्थी कह कर उपहास का विषय बना दिया जायेगा। अनेक बड़े नगरों, सुधरे समाजों और 'न्यू लाईट' की नारियों को यह पसंद नहीं कि आर्तव के ४ रोज वह अस्पृश्यता स्वीकार कर अलग रहने की कल्पना ही करे, किन्तु स्वास्थ्य के सूक्ष्म सिद्धांतों का जिन्होंने गहराई से अन्वेषण किया है, शरीर विज्ञान का जिन लोगों

ने मार्मिक मन्थन किया है, उन्होंने आर्तव–काल के लिए जिस अस्पृश्यता और एकांतवास की मर्यादायें निश्चित की हैं, उनके पीछे विशुद्ध वैज्ञानिक कारण हैं। हमारे देश में इस सम्बन्ध में बहुत बातें कही जाती हैं। प्रत्येक समाज में उनकी अपनी धारणाएँ भी हैं। फल के वृक्षों को रजस्वला स्पर्श नहीं करती। नींबू, आम और केले के वृक्षों को ऋतुमती के स्पर्श से फलहीन बनते और सूखते हुए देखा गया है। अचार, पापड़, मुरब्बे के पात्रों को भी ऐसी अवस्था में दूर रखा जाता है; परन्तु इन्हें केवल काल्पनिक कहकर उपेक्षित कर दिया जाता है। भारत में ही इस प्रकार की धारणा बद्धमूल बनी हो, ऐसी बात नहीं है। पश्चिम में भी ऐसी धारणाएँ प्रचलित हैं। तथापि एक अंतर अवश्य है, उष्ण कटिबन्ध के भू–भाग पर आर्तव के ये विकार, वातावरण, पसीने और जलवायु के साथ सहज संक्रामक हो परिणामकारी बन जाते हैं, उतने शीत कटिबन्ध पर नहीं हो पाते। यह समझ लेना तो भ्रमपूर्ण ही है कि जो इन बातों को नहीं मानते, वे इनके दूषित परिणामों से मुक्त रह सकते हैं। देश, समाज, जाति में अपनी अपनी स्थिति के अनुसार इस सम्बन्ध में मर्यादाएँ अवश्य हैं। वह देश काल और स्थिति के अनुरूप भी हैं। हमें स्वयं यह अनुभव हुआ है

कि आर्तव काल में आम, नींबू–कैथ, और फल–फूल के वृक्ष या तो सूख गये हैं या वे निष्फल बन गए हैं; किन्तु मान्यताएँ या कल्पनाएँ अपने देश तक ही मर्यादित नहीं हैं। विदेशों में भी हैं। इसके पीछे अधश्रद्धा या परम्परा नहीं, एक खास वैज्ञानिक दृष्टि है। हमने यदि उपेक्षा न कर इनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया होता, तो इनके कारणों को समझा जा सकता था। अनेक विकारों से हम बच सकते थे। हमारे अनेक संस्कार सकारण बने हैं, उनके पीछे वैज्ञानिक हेतु है, केवल उनके परिणाम के लिए ही धार्मिक बन्धन लगाये गये हैं।

भारतीय मर्यादा में रजस्वला नारी को आग, पानी, चूल्हे–चक्की से अलग रखा जाता है। स्पर्शास्पर्श से बचाया जाता है। एकांत रहने की अनुमति है। यह विशुद्ध आरोग्य–मर्यादा के कारण ही है। रजस्वला के शरीर में आर्तव काल में जो परिवर्तन शरीर–क्रिया में होते हैं, रक्त–स्राव होता है, उनके दूषित परिणामों से बचाना ही उक्त मर्यादा में हेतु है। रजस्वला के संसर्ग से उत्पन्न संतान अवश्य ही कुष्ठ विकार युक्त होती है, यह आयुर्वेदिक सिद्धांत है। हमारे आयुर्वेद में इस पर बड़ी सूक्ष्मता और गंभीरता से विचार किया गया है। इसी कारण मर्यादाएँ स्थापित की हैं। इसी प्रकार विदेशों में भी वैज्ञानिकों की दृष्टि इस ओर गयी है। वियना विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर मि. शीके ने इस पर बहुत कुछ विचार किया है। १९२० के एक मेडिकल रिव्यू पत्र में उन्होंने विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा भी की।

उक्त विद्वान् के पास १९१९ में एक बाग से अंदर खिले हुए नए गुलाब के फूल भेजे गए, उसने अपनी गृह–सेविका के हाथों पानी में रख देने के लिए भिजवा दिए; पर दूसरे दिन देखा कि ये फूल मुरझा गये हैं, उनकी पंखुड़ियाँ बिखर गयी हैं। यह जब प्रोफेसर ने देखा, तो उसे सखेद विस्मय हुआ। शीत–प्रदेश में खिले हुए फूल, पानी में सहज ही ५–७ रोज उसी हालत में बने रहते हैं; किन्तु ये फूल दूसरे दिन ही बिगड़ी हालत में हो गये थे। उसने अपनी गृह–सेविका से पूँछताँछ की। उसने बतलाया कि वह तो पहले ही से यह जानती थी कि फूल कुम्हला जायेंगे। वह जब जब रजस्वला हुई, उसने जिन फूलों को स्पर्श किया, वे खत्म हो गये हैं। प्रोफेसर को इस पर विश्वास नहीं हुआ। उसने दूसरे महीने ऐसी ही स्थिति में पुनः प्रयोग किया। एक नौकरानी रजस्वला थी और दूसरी ठीक स्थिति में थी। दोनों को बगीचे से मँगवाकर ताजे गुलाब, सूरजमुखी आदि के ३–३ फूल दिये और १०–१० मिनट उनके हाथों में रहने दिये। बाद में प्रोफेसर ने

देखा कि मासिक धर्मवाली सेविका के हाथों के फूल कुम्हला रहे हैं। कुछ घण्टे बाद वे मुरझा ही गये और दूसरी सेविका के हाथों के फूल यथावत् बने हैं। तीन दिन तक उन पर कोई विकार नहीं आया, एक मास के बाद पुनः यही प्रयोग किया और वही स्थिति अनुभव की, तब तो प्रोफेसर को यह विश्वास हो गया कि अवश्य ही ऋतु–काल में नारी की शरीर–क्रिया का परिणाम असाधारण होता है। उन्होंने लगातार ऋतु–काल के ४ दिनों तक यह परीक्षण किया। प्रथम और द्वितीय दिन जो प्रतिक्रिया प्रतीत हुई, वह तृतीय या चतुर्थ दिन उतनी तीव्र नहीं थी। हमारे यहाँ भी प्रारंभिक दो दिनों को विषम सूचित किया है और चतुर्थ दिन तो सामान्य ही माना है; वृक्ष, पर्ण–वनौषधियों से स्पर्श वर्ज्य माना है। दाख (अंगूर) की लता और शाक भाजी की वृक्ष लताओं से ऐसी नारियों को दूर रखा जाता है। और छू–लेने पर लताएँ सूख जाने के उदाहरण भी हैं। कई बेलों को सूखते हुए देखा गया है। यूरोप में या इस देश में भी मान्यता है कि शराब या बीयर बनाते हुए ऐसी स्त्री छू ले, तो यह बिगड़ जाती है। उक्त प्रोफेसर ने ऐसे ही एक बार एक रजस्वला और दूसरी साधारण सेविका को केक बनाने को दिए और दोनों में विषमता अनुभव की। उन्होंने जाँच कर यह परिणाम निकाला कि ऋतुमती के आर्तव–काल के रक्त में विषाक्तकण होते हैं। यह रक्त और पसीने से बाहर आते हैं। यह विषाक्त कण १०० डिग्री के उबलते पानी में भी नष्ट नहीं हो पाते, इतने तीव्र होते हैं। गरमी रखने और उबलते पानी से बाहर आने पर भी वृक्ष वनौषधियों पर उनका घातक प्रभाव उतना ही तीव्र बना रहता है। इसलिए शरीर आरोग्य के लिए उसके संक्रामक प्रभाव से बचाने की परमावश्यकता है। इसके स्पर्श से संवेदनशील जीवनी–शक्ति क्षीण हो जाती है। रक्तज धातुएँ पोषणहीन बन जाती हैं। खाद्य के पोषक घटकों का नाश भी ऋतुमती के स्पर्श से संभव होता है। हमारे यहाँ तो ऋतुमती की संतान का मुण्डन या ऐसे संस्कार नहीं किए जाते। गर्भिणी के संतान तथा परिवार और पति के लिए भी कुछ मर्यादाएँ मान्य की गई हैं। उनका प्रभाव होता है, यह आचार्यो ने अवश्य परखा होगा। गर्भिणी के पति के लिए कई कार्य वर्ज्य हैं जैसे हजामत बनवाना, मृतक की अर्थी के साथ जाना, प्रवास करना, पानी में तैरना, तीर्थ–यात्रा करना, आदि। इनके पीछे शारीरिक प्रभाव के रहस्य छिपे हुए हैं। इसी प्रकार किस दिन सिर की हजामत न बनवाना आदि कृष्ण और शुक्ल पक्ष की किन तिथियों में सिर के स्नायुओं में रक्ताभिसरण की कमी हो जाती है, किस अवस्था में स्नायविक–शक्ति शिथिल रहती है (जैसे स्नान, भोजन आदि के अनंतर) उस अवस्था में मुण्डन मना है। ये सब बातें स्वाभाविक, और शरीर विज्ञान से सुसंगत हैं। हम बिना जाने ही इन मर्यादाओं की उपेक्षा करते हैं और नेत्र–ज्योति से क्षीण हो जाते हैं। शिरा–विकारों के शिकार बन जाते हैं। यदि इन जैसी अनेक बातों का, जिनके लिए शरीर–विज्ञान–शास्त्रियों ने अपने देश–कालानुरूप मर्यादाएँ स्थिर स्थापित की हैं, हम सावधानी और समझ के साथ पालन करें, तो अवश्य ही अपनी स्वस्थता को सुलभ कर सकते हैं और अनजाने ही जिन अर्भक विकारों से ग्रस्त बन जाते हैं–छुटकारा भी पा सकते हैं। उनके मर्मो को समझने, समझाने की (वैज्ञानिक दृष्टिकोण से) नितान्त आवश्यकता है। ❒

– ई–६०७, कर्जन रोड अपार्टमेंट, नई दिल्ली ११० ००१

'झूठ' भय से मुक्त है

– राममोहन शर्मा 'मोहन'

देश के वातावरण में, अब भी सोंधापन नहीं।
क्या मनुज हैं ? प्रश्न है, उत्तर है, सत्यापन नहीं।।

मूल्य आधारित कहो, कैसे, चलेगा देश यह,
जबकि बहुमत में यहाँ, मूल्यों का मूल्यांकन नहीं।।

साथ लेकर के चले, या छोड़कर 'मुद्दे' चले,
आप सबका प्राप्त फिर भी, हुआ अपनापन नहीं।।

'सत्य' को 'सम्मन' मिला है, 'झूठ' भय से मुक्त है,
न्याय की इस व्यवस्था का, उचित सम्पादन नहीं।।

पूर्वग्रह–ग्रस्त रहकर, यदि चलेंगे साथ में,
तो कभी होगा, किसी का कुशल संचालन नहीं।।

दृष्टि हो व्यापक हमारी, जिन्दगी का अर्थ हो,
कर्म में उतरा नहीं तो, सफल आराधन नहीं।।

सामने 'शिव, सत्य, सुन्दर' और मन में कलुष है,
उस अवस्था का कहीं भी, कोई सीमांकन नहीं।।

मार्ग के कंटक बनो मत, लक्ष्य सबका एक है,
ध्यान, ध्येय सुप्राप्ति का है, कोई ओछापन नहीं।।

राष्ट्रहित में एक 'दस्तावेज' जो प्रत्यक्ष है,
कहीं अन्त र्निहित उसमें, संघ–अनुशासन नहीं।।

मात्र इतनी प्रार्थना है, एक स्वर में, ताल में,
युग क्षमा देगा नहीं, यदि हुआ अनुपालन नहीं।।

– मु. गणेशजी, 'गीतगली', जालौन–२८५१२३

वनवासी रियांग, संघ और मिजोरम के मुख्य मन्त्री की बहक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की बंगलौर बैठक में श्री शेषाद्रि जी के मिजोरम के रियांग विस्थापितों के सम्बन्ध में तथा वहाँ ईसाई मिशनरियों की सक्रियता के सम्बन्ध में दिये गये वक्तव्य से लगता है मिजोरम के मुख्यमन्त्री श्री लालथान हावला बुरी तरहं से बौखला गये हैं।

उन्होंने आरोप लगाया है कि रियांग समस्या के पीछे पूरी तरह से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। संघ उत्तर–पूर्वांचल के इस एकमात्र शान्त राज्य में अशान्ति फैलाना चाहता है। क्या लालथानहावला बतायेंगे कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा मिजोरम में कब आरम्भ हुई ? संघ का कौन प्रचारक वहाँ पर गया ? उसने वहाँ पर किस तरह से संघ का कार्य आगे बढ़ाया ? वर्तमान में वहाँ संघ की क्या स्थिति है ? संघ के लोग रियांग जनजाति के लोगों तक कैसे पहुँचे ? वहाँ पर उन्होंने किस तरह रियांग लोगों को भड़का कर मिजोरम को अशान्त करने की चेष्टा की ? जब संघ के लोग वहाँ अशान्ति फैला रहे थे, तो आपका गृह मन्त्रालय व खुफिया विभाग कहाँ सोया हुआ था ? जिन्हें संघ द्वारा फैलायी जाने वाली अशान्ति का आभास भी नहीं मिला। इस तरह रियांग विस्थापन के छह माह बाद हठात् मिजोरम में संघ की इस तरह की कार्रवाही का 'दिव्य–ज्ञान' आपको कैसे प्राप्त हुआ ? इन सभी विषयों की जानकारी देने से संघ के कर्ता–धर्ताओं को भी मिजोरम में चल रही संघ की गतिविधियों की जानकारी मिल जायेगी, क्योंकि संघ के लोगों को भी अभी तक इसकी कोई जानकारी नहीं है। वे तो यही जानते हैं कि मिजोरम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कोई शाखा या प्रचारक नहीं है।

ईसाई मिशनरियों की सक्रियता एवं उनके कार्यकलापों से मिजोरम ही क्यों, पूरा उत्तर–पूर्वांचल ही धधक रहा है। इस अंचल में भोले–भाले लोगों को विभिन्न तरह के प्रलोभन देकर उनका धर्म–परिवर्तन करके जिस तरह की देश विरोधी भावनाएँ उनमें उत्थापित की जा रहीं हैं, यह सब आज किसी से अनजाना नहीं है। मिजोरम में भी यह सब अबाध गति से चल रहा है। भले ही विदेशी मिशनरियों को मिजोरम से १९६५ में बाहर कर दिया गया हो, पर विदेशी धन से देशी मिशनरियों की सक्रियता पहले से कई गुणा ज्यादा बढ़ गई है।

मिजोरम में हिन्दुओं के उपासना–गृह व मन्दिर आदि तोड़ना आम बात है। चर्च के सहयोग से इनका धर्मान्तरण कराना, नाम परिवर्तन कराना, उनकी अपनी मातृभाषा की जगह लुसाई (मिजो) भाषा में बोलने–लिखने– पढ़ने को बाध्य करके, उनका मिजोकरण करना आम बात है। मिजोरम सिर्फ क्रिश्चियनों का है, ऐसे नारे अक्सर लगते रहते हैं। यह सब कुछ मिजोरम में अबाध गति से चल रहा है।

असम के सीमान्त अंचल में रहने वाले लोगों को सब समय तंग करना, उनकी सम्पत्ति, फसल पशुधन आदि लूट लेना या नष्ट कर देना, उनके घरों को जला डालना, वह भी जो ईसाई मत को मानने वाले न हों, सिर्फ उन्हीं को यह सब क्यों भुगतना पड़ रहा है ? मिजोरम पुलिस उसमें सब समय शामिल रहती है। गत मार्च में मिजोरम के करीब एक हजार लोगों ने, आग्नेय अस्त्रों से लैस होकर, हैलाकांडी (असम) जिले के गुटगुटी ग्राम पर ठीक उसी तरह हमला बोला, जिस तरह किसी दुश्मन देश पर किया जाता है। क्रिश्चियनों का चर्च एवं उनके एक भी घर को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचाया गया, किन्तु हिन्दुओं के सभी १७२ घर, २ मन्दिर व दो विद्यालय पूर्णतया जलाकर भस्म कर दिये गये। उनका सब कुछ लूट लिया गया या नष्ट कर दिया गया। अब उन्हें धमकाया जा रहा है कि अगर फिर से वहाँ घर आदि बनाने की चेष्टा की, तो सबको मार दिया जायेगा। हैलाकांडी जिले के सिर्फ हिन्दुओं के ग्रामों को मिजोरम के हमले का लगातार शिकार होना पड़ा। आक्रमणकारियों के साथ मिजोरम पुलिस भी थी। जिन ग्रामों पर हमले किये गये, उनमें मुख्यतः रियांग जनजाति रहती है, जो मिजोरम बनने से पहले से यहाँ रह रही है। इस अंचल के लोगों को रोजाना तरह–तरह से धमकाया जा रहा है।

मिजोरम में सिर्फ रियांग जनजाति के लोगों को ही नहीं, बौद्धधर्म को मानने वाली चकमा जनजाति के लोगों को भी सब समय विभिन्न तरह से परेशान किया जाता है। मिजो जिराइ पॉल (M.Z.P.), यंग मिजो एसोसिएशन (Y.M.A.) एवं मिजोरम रिजर्व पुलिस (M.R.P.) व मिजोरम आर्म पुलिस (M.A.P.) के जवानों ने जिस तरह रियांग लोगों को प्रताड़ित करके वहाँ से खदेड़ दिया, उसी तरह ये दल चकमाओं को भी प्रताड़ित कर रहे हैं। मिजोरम की सरकार कानों में तेल डाले है ? फरवरी, ९८ में चार चकमा ग्रामों को पूरी तरह नष्ट कर दिया। उन चारों गाँवों के ५०० परिवारों को जान बचाकर जंगलों में शरण लेनी पड़ी। इस माह में और भी जुल्म ढाने के नये समाचार मिल रहे हैं। मिजोरम से बाहर पढ़ रहे छात्रों में बहुत भय व्याप्त है। वे मारे डर के मिजोरम नहीं जा रहे हैं।

मिजोरम छात्र संस्था या मिजो जिराइ पॉल अक्सर अ–मिजो लोगों को विभिन्न तरह से परेशान करता रहता है। सब समय जबरन धन उगाही तो ये दल करते ही रहते हैं।

— विजय चन्द दूगड़

कछाड़ विभाग व्यवस्था प्रमुख, कल्याण आश्रम,

सिलचर — ७८८००५

परमाणु-शक्ति-सम्पन्न देश का हो जाना अपराध नहीं

- राजबहुदर 'विकल'

क्या कहा, भूमि में कम्पन है, क्या कहा दिशायें काँप गईं;
क्या कहा हुआ यह वज्रघोष, आलोक ऋचायें काँप गईं।
यह नहीं सूचना महानाश, यह संचित साहस स्वल्प हुआ;
कहता भविष्य, सुन वर्त्तमान, भारत का कायाकल्प हुआ।।
परमाणु–शक्ति–सम्पन्न देश का हो जाना अपराध नहीं।
पूरे समाज का बदलेंगे ताना–बाना अपराध नहीं।।

संचित कर ली है महाशक्ति जिससे यह देश विकास करे;
कायरता के धब्बे धोकर निर्मल अपना इतिहास करे।
हम पूरी वसुधा को कुटुम्ब, सब को ही अपना मान रहे;
हम शान्ति पुजारी, अमन चैन को घर–घर में पहचान रहे।।
कर सके प्रकट पुरुषार्थ न जो, अज्ञातवास से क्या होगा।
उद्दामशक्ति संचित न हुई, बौद्धिक विकास से क्या होगा।।

एकता–सिद्धि का मंत्र–घोष, सुन्दर शत–प्रतिशत लगता है;
टूटे दर्पण में सुन्दर चेहरा भी क्षत–विक्षत लगता है।
चाहा सिंहासन नहीं मनुज के हृदयों पर शासन चाहा;
कंचन चाहा ही नहीं, प्यार चाहा, मुसकाता मन चाहा।।
मिल रहे ज्ञान–विज्ञान गले, देती जनशक्ति बधाई है।
यह तो विकास का शंखनाद, युग की पहली अँगड़ाई है।।

यह नहीं धमाका अंहकार का, यह विनम्रता का स्वर है;
धरती के कागज पर ऊर्जा का यह मौलिक हस्ताक्षर है।
बोली है भारत की धरती, सामर्थ्य वीर–रस लियें हुए;
नगराज हिमालय के मन की कविता सिर ऊँचा किए हुए।।
यह देश धरा का कल्पवृक्ष, पुरुषार्थ पुष्प चुनते जाओ।
तालियाँ बजाते वृक्षों की मंगल–ध्वनि है सुनते जाओ।।

भारत चेतनता का प्रवाह, प्रतिबन्ध लगाना ठीक नहीं;
भारत परिवर्तन महाकाल, धमकी दिखलाना ठीक नहीं।
उठ रहा ज्योति का ज्वार, अँधेरों का प्रतिबन्ध नहीं होगा;
इच्छा अनन्त की जागी, घेरों का प्रतिबन्ध नहीं होगा।।
हम गुरु–गर्जन कर कहते हैं, भावी इतिहास हमारा है।
जिस पर बैठे शिव–पार्वती, पूरा कैलास हमारा है।।

'मानस' के कंचन–कमलों पर कवि कालिदास की छाया है,
रोता है विरही यक्ष, मेघ को क्यों तुमने भटकाया है।
संघर्षों के काले जंगल में फिर इतिहास दहाड़ रहा;
साहसी मृत्यु के मस्तक पर जीवन का जय ध्वज गाड़ रहा।।
क्यों विदूषको नाराज 'शक्ति' मेरी से तुम इतने उन्मन।
हम हर आँधी के लिए बनें क्यों दुर्बल–तरु के उदाहरण।।

हमको सहायता तुम मत दो, हम मुक्त राष्ट्र असहाय नहीं;
रोटियाँ घास की खाते हम कंगाली के अध्याय नहीं।
क्यों मलय–पवन के झोंकों पर प्रतिबन्ध लगाना चाह रहे;
धमकी देकर ज्वालामुखियों का शीश झुकाना चाह रहे।।
ओ कालोदधि के फेन, क्षणिक बुद्बुद् क्यों करते अहंकार।
कुछ भी तो अपना नहीं यहाँ खुलकर मानव को करो प्यार।।

भारत मानवता का विजयोत्सव चाहा कभी विनाश नहीं;
हम तो कलिंग के हैं अशोक, हमको युद्धों की प्यास नहीं।
हम नहीं चाहते भूमि भीग जाये शोणित की धारों से;
हम नहीं चाहते व्योम भरे लू–लपटों हाहाकरों से।
प्रतिबन्धक तू विचार, कुछ भी करुणा यदि जीवन–प्याला में।
जग का ज्योतिर्मय भाग्यांकुर जल जाय न रण की ज्वाला में।।

हम चाह रहे सबको सुविधाओं के सुख का वरदान मिले।
खाली पेटों को अन्न, भरी आँखों को भी मुसकान मिले।
यौवन के पुष्प न जल पायें अब बेकारी की ज्वाला में;
कलियाँ न जलें अंगारों में, तक्षक न मिले वरमाला में।।
समरानल में जलती धरती को मिले शान्ति का गंगाजल।
जल रहे उपेक्षा की ज्वाला में उनको मिले स्नेह सम्बल।।

राष्ट्रीय अस्मिता की सीता ने अग्नि–परीक्षा दे डाली;
अपने बल पर जीना सीखो सबको ही शिक्षा दे डाली।
अपनी धरती के मालिक हम, एजेण्ट नहीं होने देंगे;
अपने पौधे फल तरुवर को पेटेण्ट नहीं होने देंगे।।
अपने गौरव के मस्तक पर पोतने नहीं कालिख देंगे।
तानाशाही के माथे पर श्रम की गायत्री लिख देंगे।।

ऊर्जा से जग को भयाक्रान्त करना है मेरा काम नहीं;
भारत को करना है समृद्ध, होंगे मानसिक गुलाम नहीं।
यह महाशक्ति के प्रखर–जागरण की वेला है जग जाओ;
दो खून पसीना हँस कर भारत के विकास में लग जाओ।।
अब दृढ़प्रतिज्ञ हैं हम जीवन को कभी नहीं सोने देंगे।
भारत जाग्रत् है, आत्म–पराभव कभी नहीं होने देंगे।।

जब चाह प्रबलतम होती तो जीवन निकालता नई राह;
पत्थर की कारा तोड़ निकल आया करता जल का प्रवाह।

मिथ्या की पूजा जड़ता का बन्धन हमको स्वीकार नहीं;
अंधे विश्वासों की चादर को फेंका, अंगीकार नहीं।।

ऊर्जा के हाथ उठे धरती को यह चूनर धानी देंगे।
ऊसर झूमेंगे, प्यास जहाँ भी—हम सब को पानी देंगे।।

कलियाँ झूमेंगी, ज्वाला में जलता सिन्दूर नहीं होगा;
शैशव पोथी थामे होगा बँधुआ मजदूर नहीं होगा।
हर हाथ करेगा काम यहाँ कोई बेकार नहीं होगा;
सतियों का आँगन है, नारी पर अत्याचार नहीं होगा।।

कवि—पत्रकार—वक्ता नायक हमने प्रधानमंत्री पाया।
सिंहासन पर आ गया विवेकानन्द पड़ी ऋषि की छाया।।

निन्दको! कर रहे क्यों विरोध, सच यही तुम्हारी आदत है;
तुम में न रही है राष्ट्र—भक्ति, अन्याय भरा शत—प्रतिशत है।
विष गली—गली में मिल जाता, अमृत के कोष नहीं देखे;
मानव, दानव, देवता सभी देखे, निर्दोष नहीं देखे।।

सब खिलें, प्रगति के जल पर तो हक पूरा क्यारी—क्यारी का।
संकल्प नहीं टल सकता है, यह युग है अटल बिहारी का।।

हमने प्रकाश के बीज बो दिए, खाद डाल अँधियारों की;
उग रहे सुगंधित सूर्य, उचटती नींद—नींद के मारों की।
खाली पेटों को भरा नहीं जा सकता है हथियारों से;
नंगी देहों को ढका नहीं जा सकता है हथियारों से।।

अणु से बिजली लेकर चमकायेंगे अँधियारी राहों को।
अपने पैरों पर खड़ा देश, जग कर ले शुद्ध निगाहों को।।

वह पावन धरती जो अदृश्य के लेखों को बाँचा करती;
वह आँगन, जिसमें सब ऋतुएँ बारी—बारी नाचा करती।
वह युद्ध नहीं चाहती कभी जग का ही हित करना चाहा;
वह भाग्योदय की उषा माँग में कुंकुम ही भरना चाहा।।

जब किरणों की लेखनी थाम, सूरज धरती पर गीत लिखे।
हर गीत विश्व के मस्तक पर भारत की पहली जीत लिखे।।

विस्फोट शक्ति का मंत्र, एकता का सम्मोहन, आरोहण;
विस्फोट घोषणा है विकास की, नवयुग का मंगलाचरण।
यह नहीं धमाका, भारत के परिवर्त्तन की सूचना नयी।।
अब आया है नूतन प्रभात, भागती निशा है मोहमयी।।

जन—जन लेता संकल्प भाग्य बदलेंगे सभी पसीने से।
यदि वातावरण न बदल सके, तो लाभ नहीं है जीने से।।

❐

— महाकवि निलयम्
'विकल' निवास, मोहमदजयी, शाहजहाँपुर—२४२००१

तमिलनाडु के मुख्य नगर : देवनागरी वर्तनी

क्र.	नगर		देवनागरी
१.	Annur	–	अन्नूर
२.	Andhiyur	–	अंधियूर
३.	Avinashi	–	अविनाशी
४.	Arakkonam	–	अरक्कोणम्
५.	Adhiramapatnam	–	अधिरामपट्टणम्
६.	Arni	–	आरणी
७.	Arcot	–	आरकाडु
८.	Erode	–	ईरोडु
९.	Udumalpet	–	उडुमलैपेट्टै
१०.	Udagmanadalam (ooty)	–	उदकमंडलम् (उटी)
११.	Unjaloor	–	ऊंजलूर
१२.	Edappadi	–	एडप्पाडी
१३.	Yereaud	–	एरकाडु
१४.	Omaloor	–	ओमलूर
१५.	Kanyakumari	–	कन्याकुमारी
१६.	Kuddalore	–	कडलूर
१७.	Kalladakurunchi	–	कल्लडकुरुचि
१८.	Karur	–	करूर
१९.	Katpadi	–	काट्टपाडी
२०.	Kunnoor	–	कुन्नूर
२१.	Coimbatore	–	कोयम्बत्तूर
२२.	Kodaikanal	–	कोडैक्कानल
२३.	Kumbakonam	–	कुम्भकोणम्
२४.	Gudalur	–	गुडलूर
२५.	Gobichehtipalyam	–	गोबिचेट्टिपालयम्
२६.	Dhennai	–	देन्नै
२७.	Chittode	–	चित्तोडु
२८.	Chittoor	–	चित्तूर
२९.	Chidambaram	–	चित्म्बरम्
३०.	Chennimalai	–	चेन्निमलै
३१.	Chengelpet	–	चेंगलपट्टु
३२.	Jolarpet	–	जोलारपेट्टै
३३.	Tanjore	–	तंजाऊर
३४.	Tiruvannamalai	–	तिरुवन्नामलै
३५.	Tirupparamakunram	–	तिरुप्परमकुन्रम्
३६.	Thiruchirappali	–	तिरुच्चिराप्पल्ली
३७.	Thiruchendur	–	तिरुच्चेन्दूर
३८.	Thiruchengodu	–	तिरुच्चेंगोडु
३९.	Thiruvarur	–	तिरुबारूर
४०.	Thiruvaijaru	–	तिरुवैय्यारु
४१.	Thiruthani	–	तिरुतणी
४२.	Thiurpur	–	तिरुप्पूर
४३.	Tiurnelveli	–	तिरुनेल्वेलि
४४.	Darapuram	–	दारापुरम्
४५.	Dindugal	–	दिण्डुक्कल
४६.	Dindivanam	–	दिण्डिवनम्
४७.	Dharmapuri	–	धर्मपुरि
४८.	Nannilam	–	नन्निलम्
५०.	Nagapattanam	–	नागप्पट्टणम्
५१.	Needamangalam	–	नीडामंगलम्
५२.	Palani	–	पल्नी
५३.	Paramakkudi	–	परमक्कुडि
५४.	Pollachi	–	पोल्लाचि
५५.	Palamudircholai	–	पल्मुदिर्चोलै
५६.	Bhavani	–	भवानी
५७.	Bhannari	–	भन्नारी
५८.	Mettupalayam	–	मेट्टुपाल्यम्
५९.	Mettur	–	मेट्टूर
६०.	Madurai	–	मदुरै
६१.	Manamadurai	–	मानामदुरै
६२.	Rasipuram	–	रासिपुरम्
६३.	Rameshwaram	–	रामेश्वरम्
६४.	Ramanathpuram	–	रामनाथपुरम्
६५.	Vandiwasi	–	वन्दवासी
६६.	Vadalur	–	वडलूर
६७.	Vayaloor	–	वयलूर
६८.	Vaniyambadi	–	वाणिम्यवाड़ी
६९.	Valajapet	–	वालाजापेट्टै
७०.	Vellore	–	वेलूर
७१.	Villupuram	–	विलुप्पुरम्
७२.	Virudunagar	–	विरुदुनगर
७३.	Samayapuram	–	समयपुरम्
७४.	Sattyamangalam	–	सत्यमंगलम्
७५.	Sankari	–	संगगिरी
७६.	Sivagangai	–	सिवगंगै
७७.	Sikkal	–	सिक्कल
७८.	Seergazhi	–	सीरगाषी
७९.	Swamimalai	–	स्वामिमलै
८०.	Selam	–	सेलम
८१.	Sivagiri	–	सिवगिरि
८२.	Hozur	–	होजूर
८३.	Srivilliputtur	–	श्रीविल्लिपुत्तूर

– 'दक्षिण समाचार' (हैदराबाद) से साभार

भइया की चिट्ठी

प्यारे भइया, बहिनो,

जय श्री राम!

'राष्ट्रधर्म' का जुलाई अंक आपके हाथों में है ग्रीष्मावकाश समाप्ति पर होगा और आप सब अपने-अपने विद्यालय जाने की योजना बना रहे होंगे। हमारा शिक्षा सत्र जुलाई से प्रारम्भ होता है। हमारी प्राचीन परम्परा में शिष्य गुरु-गृह जाकर शिक्षा ग्रहण करता था, परन्तु आज उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया है। शिक्षक, जो हमें जीवन की उपयोगी शिक्षा देता है, के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। शायद इसीलिए गुरुपूर्णिमा के आस-पास से ही शिक्षा-सत्र प्रारम्भ होता है। गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरु-पूजा का दिवस। गुरु की पूजा यानी उनके प्रति आस्था और श्रद्धा प्रकट करते हुए गुरुवाणी को ईश्वरवाणी मानकर उसके अनुरूप अपना आचरण करना। शास्त्रों में कहा गया है-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरु के प्रति श्रद्धा और निष्ठा के कारण शिक्षार्थी को थोड़े समय में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तभी तो गोस्वामी तुलसी दास जी ने लिखा है-

गुरु गृह पढ़न गये रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई।।

पर आज के बदलते वातावरण में इस प्रकार की न तो व्यवस्था है और न गुरु-शिष्य के सम्बन्धों की वैसी पवित्रता। आज का शिक्षक जहाँ विद्यार्थी को विद्यालय में न पढ़ाकर घर पर बुला 'कोचिंग' के माध्यम से अतिरिक्त आय अर्जित करता है, वहीं विद्यार्थी भी राजनीति में उलझकर पढ़ाई से बचने के उपाय खोजता रहता है।

परन्तु 'राष्ट्रधर्म' के पाठक भइया-बहिन ऐसे नहीं होते। प्रारम्भ हो रहे इस नवीन शिक्षा-सत्र में आप मन लगाकर पढ़ेंगे तथा पिछले वर्ष से अधिक योग्यता अर्जित कर पुरस्कार प्राप्त करेंगे, ऐसा विश्वास है।

शेष अगले पत्र में-

आपका
[signature]
भइया

मैं भी पढ़ने जाऊँगा

— डॉ. गणेशदत्त सारस्वत

पुस्तक कलम मँगा दो माँ जी!
मैं भी पढ़ने जाऊँगा।

रोज सबेरे जल्दी उठकर।
सभी बड़ों के चरण-स्पर्श कर।
छुट्टी पाकर नित्यकर्म से
गिनती तुम्हें सुनाऊँगा।

समय नहीं यूँ ही खोऊँगा।
दिन में कभी नहीं सोऊँगा।
पी लूँगा मैं दूध खुशी से-
और न अधिक खिझाऊँगा।

जो भी पाठ पढ़ाओगी तुम।
कविता हमें सिखाओगी तुम।
उसे याद कर लूँगा झटपट-
देरी नहीं लगाऊँगा।

नित्य पढ़ूँगा हिन्दी भाषा।
और रटूँगा हर परिभाषा।।
रोज लगाऊँगा सवाल मैं।
प्रतिदिन चित्र बनाऊँगा।

जैसे अप्पू भैया जाते।
कन्धे पर बस्ता लटका के।
वैसे ही मैं भी रिक्शे पर-
अन्नू के सँग जाऊँगा।

जग में नाम कमाऊँगा।
मैं भी पढ़ने जाऊँगा।

— सारस्वत-सदन
सिविल लाइन, सीतापुर-२६१००१ (उ.प्र.)

कला की परख

– चित्रेश

कुशपुर नामक छोटा–सा राज्य था। वहाँ का राजा था– श्रीधर। वह एक पैर से लँगड़ाता था, किन्तु था बड़ा वीर। उसके पड़ोसी राज्य बड़े–बड़े थे। कुशपुर की स्वतंत्रता उनकी आँखों में किरकिरी–सी चुभती थी। कई बार पड़ोसी राजाओं ने कुशपुर को जीतकर अपने राज्य में मिला लेने के लिए चढ़ाई की, परंतु अपनी बहादुरी के बल पर श्रीधर ने अपने राज्य को हर बार बचा लिया।

एक दिन श्रीधर ने सोचा– "मुझे आए दिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती हैं। हो सकता है, किसी दिन मैं लड़ाई में मारा जाऊँ। अभी मेरे बच्चे छोटे–छोटे हैं। बड़े होने पर जब कभी देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ेगी, तब वे बहादुरी से लड़ने की प्रेरणा किससे प्राप्त करेंगे।" श्रीधर कई दिन तक इस विषय में सोचता रहा। अंत में उसने अपना एक कलात्मक और प्रेरणादायक चित्र बनवाने का निश्चय किया। उसका विचार था– "मेरे न रहने पर बच्चे मेरा चित्र देख, मेरे बारे में जानेंगे और प्रेरणा लेंगे।"

श्रीधर ने इस सम्बन्ध में ढिंढोरा पिटवा दिया। उसकी राजधानी में रामदत्त, सोमदत्त और रविदत्त नामक तीन चित्रकार रहते थे। उन तीनों को जब श्रीधर की चित्र बनवाने की इच्छा का पता चला, तो दूसरे दिन वे राज दरबार में पहुँचे। उन तीनों को एक साथ देख श्रीधर सोच में पड़ गया। चित्र बनवाना था एक और चित्रकार थे तीन। उसके सामने विचित्र समस्या आ खड़ी हुई। थोड़ी देर सोचने के बाद उसे एक उपाय सूझा। उसने चित्रकारों से कहा, "तुम तीनों मेरा एक–एक चित्र बनाकर लाओ। जिसका चित्र कलात्मक और प्रेरणादायक होगा, उसे मैं पुरस्कार देकर सम्मानित करूँगा।"

प्रसन्न मन से तीनों चित्रकार अपने–अपने घर लौट आये। पुरस्कार पाने की ललक उनके मन में थी। वे चित्र बनाने की तैयारी में जोर–शोर से जुट गये। रामदत्त का चित्र सबसे पहले पूरा हुआ। उसके चित्र में श्रीधर लम्बे–चौड़े सोने के भव्य सिंहासन पर बैठा था। सिंहासन के चारों ओर हीरों–मोतियों की जगमगाती झालर लटक रही थी। चित्र में श्रीधर का रंग चमकदार गोरा था। चेहरा रोबीला और शरीर पहलवानों जैसा भारी भरकम। लँगड़ी टाँग की जगह अच्छी टाँग बनी थी। भड़कीले रंगों से बनाया गया वह चित्र काफी आकर्षक लग रहा था।

ऐसा सुन्दर चित्र बनाकर रामदत्त की खुशी का ठिकाना न था। वह चित्र लेकर, रास्ते भर सोचता आया था कि चित्र देखते ही राजा प्रसन्न हो जाएँगे।
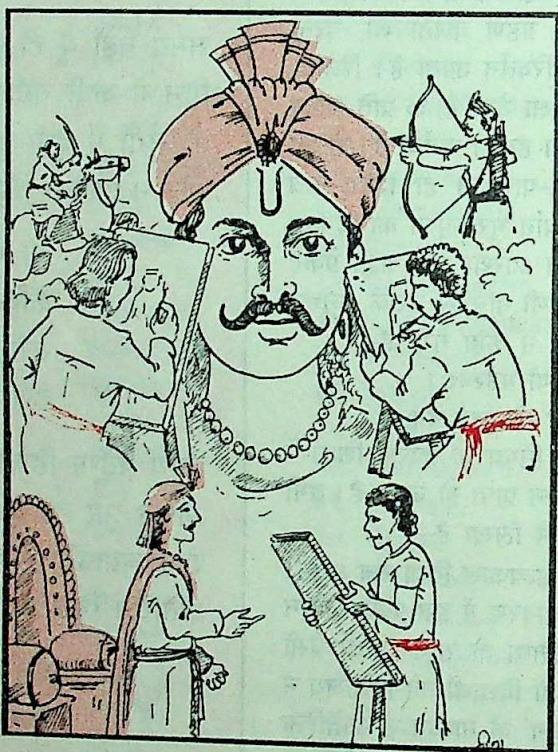
हुआ एकदम उल्टा, चित्र देखते ही श्रीधर भड़क उठा। वह कोई बड़ा सम्राट् तो था नहीं। एक छोटे–से राज्य के राजा के पास सोने का भव्य सिंहासन और हीरे–मोतियों की झालर होने का कोई तुक न था। बेतुकी बातों से उसे चिढ़ थी। सब कुछ तो बर्दाश्त कर गया, लेकिन जब उसकी निगाह पैरों पर पड़ी, तो वह क्रोधित हो उठा। उसने चित्र रामदत्त के ऊपर फेंककर कहा, "तुम मुझे मूर्ख बनाकर पुरस्कार ऐंठना चाहते हो। क्या मैं ऐसा हूँ, जैसा तुमने चित्र में दिखा दिया है? इसमें मेरी लँगड़ी टाँग कहाँ है?"

रामदत्त को कोई जवाब न सूझा। उसने श्रीधर से क्षमा माँगी। अपनी करनी पर पछताता घर लौट गया। यह सोमदत्त को पता चला। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा "राजा असलियत की कद्र करता है। मेरा बनाया चित्र उसे अवश्य पसंद आयेगा।"

उसने चित्र बनाया, उसमें श्रीधर की पूरी छाप उतर आई थी। साँवला रंग, साधारण चेहरा और औसत दर्जे का शरीर। वह चित्र में अपने छोटे–से दरबार में नक्काशीदार लकड़ी के सिंहासन पर बैठा था। कहीं कोई ऐसी विशेष बात नहीं थी, जिससे असली राजा और चित्र के राजा में किसी तरह का अंतर मालूम पड़ता।

सोमदत्त उमंग भरा राजदरबार में पहुँचा। चित्र श्रीधर के हाथ में थमा दिया। वह थोड़ी देर तक चित्र देखता रहा। फिर बोला "चित्र है तो ठीक, लेकिन उसमें कला नहीं है। इसे देखकर हमारी आने वाली पीढ़ी क्या प्रेरणा लेगी? हुबहू किसी की सूरत की छाप उतार देना ही तो कला नहीं होती।"

सोमदत्त ने इस विषय में कुछ सोचा ही नहीं था। वह भी निराश होकर लौट गया। दोनों चित्रकारों की असफलता का हाल रविदत्त को मालूम हुआ। वह सोच में पड़ गया। आखिर ऐसी कौन–सी बात है, जिसे राजा अपने चित्र में पाना चाहता है? वह सोचता रहा। दिन बीतते गए। इस बीच उसके मस्तिष्क में राजा के चित्र की आकृतियाँ बनती–बिगड़ती रहीं। अन्त में एक सुबह वह अपनी रंगशाला में गया। उसने प्यालों में रंग तैयार किया। कूँचियाँ साफ कीं और चित्र बनाने में जुट गया। दिन बीत गया। रात घिर आई, लेकिन वह चित्र बनाने में लगा रहा। दूसरी सुबह वह रंगशाला से बाहर आया। अब उगते सूरज की तरह हीं वह प्रफुल्लित था।

रविदत्त का चित्र पूरा हो गया था। वह चित्र लेकर राजा श्रीधर के पास पहुँचा। राजा ने लेकर

छोटा झरना

– रमाशंकर मिश्र

छोटा सा झरना पर्वत का
बाधाओं से लड़ता है।
अपनी चंचलता, शुचिता से
पथिकों का मन हरता है।
नहीं सोचता सपने में भी
मेरा है गन्तव्य कहाँ?
बढ़ना सीखा आगे उसने
जीवन में विश्राम कहाँ?
अपनी गति के कारण ही
शुचिता उसमें होती है।
गति के रुक जाने पर तो
सरिता भी शुचिता खोती है।
हे मानव तेरा जीवन भी
छोटा सा एक निर्झर है।
फिर क्यों दुविधा में पड़ता तू,
जब शुचिता तुझी पर निर्भर है।
निर्झर सा कंकड़, पत्थर पर चल,
निज जीवन सार्थक करता चल।
जब तक तेरा जीवन है,
तू बाधाओं से लड़ता चल।

– ॐ भवन, ईशानगर चौराहा, नौगाँव,
जिला– छतरपुर–४७१२०१ (म.प्र.)

देखा। चित्र में वह एक घोड़े पर सवार था। उसके एक कंधे पर धनुष और दूसरे पर तीरों से भरा तरकस लटक रहा था। कमर के दोनों तरफ एक–एक लम्बी म्यान लटकी थीं। घोड़े की गर्दन के पास रानी खड़ी थी। उसके हाथ में चमकती हुई थाली थी। वह युद्ध में जाने के लिए तैयार पति की आरती कर रही थी। चित्र में एक विशेष बात यह थी कि रानी राजा की लँगड़ी टाँग के सामने खड़ी थी। उसका लँगड़ापन भी छिप गया था।

कुछ देर अपलक चित्र देखने के बाद सहसा श्रीधर प्रसन्न होकर बोला, "इसे कहते हैं कला! इतनी चतुराई से मेरा लँगड़ापन छिपा दिया गया है कि कोई भाँप भी नहीं सकता। साथ ही यह प्रेरणादायक भी है। इसे देखकर हमारे वंशज देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने की प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।" श्रीधर ने ढेर सारा पुरस्कार देकर रविदत्त को खुश कर दिया।

□

– पो.आ. जासापारा, गोसाईगंज, सुलतानपुर (उ.प्र.)–२२८११६

मेरा देश....!

– मदनेन्द्र

मेरा देश मुझे है प्यारा!
है मेरी आँखों का तारा!!
शक्तिहीन जो इसे समझकर,
लड़ने का अभियान रचेगा।
सच कहता हूँ नहीं विश्व में,
उसका नाम–निशान बचेगा।।
यही रहा है मेरा नारा!
मेरा देश मुझे है प्यारा!!
वैसे मैं अपने नियमों से,
सदा 'सत्य' का रहा पुजारी।
मैंने कभी न व्यर्थ किसी से,
छल करने की बात बिचारी।।
इसे जानता है जग–सारा!
मेरा देश, मुझे है प्यारा!!

– तेलीवाड़ा, तराना (उज्जैन) म.प्र.

आम

– कृष्ण शलभ

लगे डाल पर पीले आम।
रस के भरे रसीले आम।।
चौसा, सरस सिंदूरी आम।
अच्छे लगें दशहरी आम।।
जो दिखता है तगड़ा आम।
कहलाता है लँगड़ा आम।।
गर्मी के आते, आ जाते।
सारे छैल छबीले आम।।
हरा आम होता है कच्चा।
बनते चटनी और अचार।।
देशी टपके का क्या कहना,
रखता खटमिट्ठी रसधार।।
जैसे चाहो खाओ भैया।
होते नहीं हठीले आम।।

– संकल्प ५४२, नया आवास विकास, सहारनपुर (उ.प्र.)

नाम खोजो

रा	हि	आ	चं	भा	चं	च	ला	क्ष	जे
म	न्दु	का	वि	द्यु	त	प	लू	ण	ल
ना	स्था	ल	भा	व	ड़ि	ला	बा	प्र	जा
म	न	की	ता	न	त	घ	ब	भा	ओ
म	सौ	दा	मि	नि	कं	न	दी	श	गे
नि	सं	प	यो	धि	प	वा	री	श	म
दी	तो	सि	न्‍	धु	ति	म	भा	स्वा	जा
प	ष	य	ह	उ	ऊ	ज	र	धी	आ
ध	है	हाँ	नि	द	ल	म	त	न	ए
रू	नी	र	नि	धि	ज	ग	माँ	ता	गा

प्रस्तुत वर्ग में बिजली के ८ तथा समुद्र के १० पयार्यवाची शब्द छिपे हैं। ऊपर से नीचे (↓) तथा बाएँ से दाएँ (—>) तथा ऊपर के दोनों कोनों से नीचे की ओर तिर्यक (↘ ↙) अक्षरों का प्रयोग कर यह नाम खोजे जा सकते हैं। एक अक्षर का प्रयोग एक से अधिक बार भी किया जा सकता है।

– प्रस्तुति : वेदिका

कहानी

रेलगाड़ी का टिकट

– कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'

सवेरे के साढ़े छह बज चुके थे। अखबारवाला जाने कब का बरामदे में अखबार फेंक गया था। प्रमोद के पिताजी ने अखबार उठाकर उसके मुख–पृष्ठ पर उचटती निगाह डाल कमरे में पढ़ाई कर रहे प्रमोद को आवाज दी, "बेटे! खूँटी पर टँगे मेरे कुर्ते की जेब से चश्मा तो देना।"

प्रमोद ने पिताजी के कुर्ते की जेब से जैसे ही चश्मा निकाला कि चश्मे के साथ ही उसके हाथ में रेल का टिकट आ गया। उसने टिकट को पढ़ा तो पता चला कि वह कानपुर सेंट्रल से उसके गाँव वाले स्टेशन तक का है। उसके पिताजी अभी कल ही तो गाँव से लौटे हैं। वह समझ गया कि इस बार भी पिताजी जिस ट्रेन से गये थे, वह स्टेशन से कुछ पहले ही शायद रुक गयी होगी और पिताजी वहीं से उतर कर गाँव चले गये होंगे। इसी वजह से वह स्टेशन के टिकट संग्रहक को अपना टिकट नहीं दे पाये।

पिताजी को चश्मा देकर प्रमोद पढ़ने के कमरे में आ गया, वह टिकट अब भी उसके हाथ में था। उसने जब टिकट पर छापी गयी तारीख पर नजर दौड़ायी, तो देखा कि उस पर महीने वाला अंक ठीक से मुद्रित नहीं हो सका था। प्रमोद ने मन ही मन सोचा, जब इस टिकट को देखकर तारीख और सन् के अलावा महीने के अंक को पढ़ा ही नहीं जा सकता, तब तो यह पुनः यात्रा में काम आ सकता है।

उसका चेहरा खुशी से चमक उठा। अगले महीने प्रमोद को गाँव जाना भी है। क्यों न वह इसी टिकट से ठीक इसी तारीख को यात्रा करे। यात्रा के दौरान टिकट निरीक्षक महोदय किसी भी तरह इसे जाली नहीं साबित कर सकते, क्योंकि इस पर महीने वाला अंक पढ़ा नहीं जा सकता और तारीख सन् से मैं गलत रहूँगा नहीं। प्रमोद ने अपने कई दोस्तों से भी टिकट पर छपी तारीख को पढ़वाया, पर कोई भी महीने के अंक को सही नहीं बता सका। सभी ने यही कहा, "इस टिकट से तो इस वर्ष में किसी भी महीने की सत्ताइस तारीख को यात्रा की जा सकती है, पकड़े जाने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। फिर इस समय किराया भी तो नहीं बढ़ा है।"

प्रमोद यह सोचकर बहुत खुश हुआ कि उसका एक तरफ का किराया खर्च न होने से पूरे पचहत्तर रुपये की बचत हो जाएगी। उसने उस टिकट को सुरक्षित रख दिया। अगले महीने की सत्ताइस तारीख को प्रमोद ने गाँव जाने का अपना कार्यक्रम निश्चित कर लिया था, उस दौरान उसके स्कूल में एक सप्ताह की छुट्टियाँ भी थीं।

धीरे–धीरे वह तिथि नजदीक आ गयी। एकदिन पहले प्रमोद के बड़े भइया जो हिन्दी साहित्य में एम.ए. कर रहे थे, उन्होंने भी गाँव चलने की योजना बना ली। प्रमोद ने मन ही मन सोचा कि कहीं भैया सत्ताइस तारीख के बदले अट्ठाइस को न यात्रा टाल दें; वरना उसकी पचहत्तर रुपयों की बचत मारी जाएगी, पर ऐसा नहीं हुआ। भैया ने भी सत्ताइस तारीख को ही गाँव चलने को कहा।

सत्ताइस तारीख को प्रमोद अपने भैया के साथ गाँव जाने के लिए ट्रेन पकड़ने रेलवे स्टेशन पहुँचा। उसने अपना वह पुराना टिकट पहले ही जेब में रख लिया था। भैया से कहकर उसने ही टिकट खिड़की से टिकट ले आने को कहा। भैया ने उसे अनुमति दे दी। वह खुश होकर दो के बजाय एक टिकट ले आया और अपनी जेब में पहले से रखे पिछले माह के पुराने टिकट के साथ रख लिया। भैया प्रतीक्षालय में कुर्सी पर बैठे कोई उपन्यास पढ़ने में व्यस्त थे।

उन्होंने पूछा तो उसने जेब से दोनों टिकट निकालकर उन्हें दिखाते हुए कह दिया, "ये रहे दो टिकट, पूरे एक सौ पचास लगे।"

भैया ने प्रमोद के हाथ से दोनों टिकट लेकर उस पर एक सरसरी नजर दौड़ाकर उसे लौटाते हुए जेब में सुरक्षित रखने को कहकर पुनः उपन्यास पढ़ने में व्यस्त हो गये।

कुछ देर बाद भैया ने उपन्यास पढ़ना बंद कर दिया। अपने सूटकेस का ध्यान रखने को बोल प्रतीक्षालय से बाहर चले गये कि मैं अभी बुक–स्टाल से एक पत्रिका खरीदकर आ रहा हूँ।

भैया कुछ ही देर में एक पत्रिका लिये हुए आ गये। तब तक गाड़ी आने की उद्घोषणा भी हो चुकी थी। ठीक समय पर गाड़ी आ गयी, प्रमोद अपने भैया के साथ गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी स्टेशन पर कुछ देर रुकने के बाद हवा से बातें करती हुई चल पड़ी।

प्रमोद मन ही मन सोच रहा था कि आज वह अपनी सूझ–बूझ से पूरे पचहत्तर रुपये की बचत करके मुफ्त में रेल यात्रा कर रहा है। उसने भैया की ओर देखा, वे खिड़की के पास बैठे बाहर दूर तक फैले हरी–भरी फसलों व खेतों की ओर देख रहे थे, फिर कुछ अपनी डायरी में लिख रहे थे। शायद वे कोई कविता लिख रहे थे, आखिर वे साहित्य के छात्र हैं न। न जाने कहाँ दृष्टि दौड़ाकर कल्पना करके कविता, कहानी लिखते रहते हैं। उनकी कई रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में छप चुकी हैं।

प्रमोद ने फिर अपने मन में सोचा, जब मेरे भैया इतने बुद्धिमान होकर भी आज सही और गलत टिकट की पहचान न कर सके, तो टिकट निरीक्षक क्या खाक मेरे एक टिकट को जाली साबित कर पाएगा। वह बस मेरे दोनों टिकटों को हाथ में लेगा और उसे देख कर मुझे लौटा आगे बढ़ जाएगा।

गाड़ी छोटे–बड़े स्टेशनों पर रूकती आगे बढती चली जा रही थी। एक बड़े स्टेशन पर जब गाड़ी रूकी, तो वहाँ शोरगुल हुआ कि इस गाड़ी की मजिस्ट्रेट-चेकिंग होगी। अगले ही पल सिपाहियों के साथ टिकट निरीक्षकों का दल गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे में घुसकर यात्रियों के टिकटों की जाँच करने लगा।

देखते ही देखते एक टिकट निरीक्षक ने प्रमोद की सीट पर बैठे एक नवयुवक के टिकट को देखकर कहा, "भाई साहब, यह टिकट जाली है। यह आज ही की तारीख का पिछले किसी और महीने का है, आप पाँच सौ रुपये दीजिए।"

उस नवयुवक ने सीट पर बैठे अन्य यात्रियों को वह टिकट दिखाते हुए कहा, "इस टिकट पर बुकिंग खिड़की से तारीख प्रिंट करने में जब महीने वाला अंक ही ठीक से प्रिंट नहीं हुआ, तो मेरी क्या गलती, आप लोग टिकट निरीक्षक महोदय को समझाइए, ये मेरे टिकट को जाली होने की सही पहचान तो बतायें।"

यह सुनकर टिकट निरीक्षक मुस्कराया, फिर बोला, "भाई साहब ! आपके टिकट के जाली होने की पहचान यही है कि आपके टिकट पर छपे अंकों का जो क्रम है, उसे मैंने आपके स्टेशन के अन्य यात्रियों के टिकटों से बहुत पीछे पाया है।

हम लोग टिकट पर अंकित तारीख इत्यादि तो देखते ही हैं, साथ ही एक स्टेशन के कई यात्रियों के टिकटों का अंक क्रम भी मिलाते हैं। ऐसे में यदि टिकट पर चाहे तारीख बिल्कुल ही छपी न हो, टिकट के अंक–क्रम नम्बर से सही और गलत टिकट की पहचान आसानी से हम कर लेते हैं।" अगले ही पल उस नवयुवक ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए दण्ड–स्वरूप पूरे पाँच सौ रुपये देकर दूसरा टिकट बनवाया। अपने बगल के यात्री के साथ ऐसी घटना घटते देख प्रमोद के शरीर में तो जैसे खून ही न रहा, उसका चेहरा भय से पीला पड़ चुका था। अगले ही पल उसकी गलती भी पकड़ ली जाने वाली थी। वह पल भर में ही घटित होने वाले शर्मनाक दृश्य को सोचकर सिहर उठा, और तो और उसके भैया जी उसके बारे में क्या सोचेंगे ? अपनी कक्षा में सदैव प्रथम आने वाला छात्र होकर भी उसने लालच में आकर इतनी बड़ी गलती कर दी।

अगले ही पल टिकट निरीक्षक ने प्रमोद के समीप आकर टिकट के लिए हाथ बढ़ा दिया। प्रमोद ने धड़कते हृदय से जेब से दोनों टिकट निकाल कर हाथ में लिया ही था कि उसके भैया ने झपट कर उसके हाथों से टिकट ले लिया और बड़ी फुर्ती से अपने हाथ में पहले से ही लिये एक टिकट को प्रमोद द्वारा लिये सही टिकट के साथ टिकट चेकर को थमा दिया।

एकाएक यह सब टिकट निरीक्षक तो गौर न कर सका पर प्रमोद भैया की सूझ–बूझ को जरूर समझ गया। उसे ध्यान आया, भैया स्टेशन पर पत्रिका खरीदने के बहाने टिकट लेने ही गये थे, शायद उन्होंने अपनी तेज निगाहों से उसके पुराने टिकट की पहचान पल भर में ही कर ली थी।

टिकट निरीक्षकों का समूह पूरी गाड़ी के यात्रियों का टिकट निरीक्षण करके, कुछ यात्रियों पर दण्ड लगाकर और कुछ को दण्ड न दिये जाने के कारण जेल भेजने के लिए अपने साथ लेकर जा चुके थे। प्रमोद शर्म के मारे भैया से नजरें नहीं मिला पा रहा था। समय पर उसकी गलती पर पर्दा डालकर उसे बहुत बड़ी सीख जो दे गये थे वे। ❐

– १५८/सी–रेलवे कालोनी, सूबेदारगंज, डाकघर, घूमनगंज, इलाहाबाद।

अब तक आपके नौ पाठ हुए हैं और दसवाँ पाठ शुरू हो रहा है। इतने पाठों से आप कितना संस्कृत समझ गये हैं। वह अब देखना है। इस परीक्षा के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के दो श्लोक यहाँ देते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्ररूढानि मायया।।६१
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परा शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।६२

(भगवद्गीता अं. १८)

पद – ईश्वरः। सर्व + भूतानां। हृद् + देशे। अर्जुन। तिष्ठति। भ्रामयन्। सर्व + भूतानि। यंत्र + आरूढानि। मायया।।६१।।

तं। एव। शरणं। गच्छ। सर्व + भावेन। भारत। तत् + प्रसादात्। परां। शांतिं। प्राप्स्यसि। शाश्वतम्।।६२।।

अन्वय :– हे अर्जुन! सर्व–भूतानां हृद्देशे ईश्वर : तिष्ठति। मायया यंत्र आरूढानि सर्व–भूतानि भ्रामयन्।।६१।।

हे भारत! तं एव सर्व भावेन शरणं गच्छ। तंत् प्रसादात् परां शान्तिं शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि।।६२।।

यह अन्वय दो चार बार पढ़िए, तो भाव और अर्थ अवश्य आपके ध्यान में आ जायेगा। तथापि आपकी सुविधा के लिए शब्दार्थ यहाँ दिये जाते हैं–

अर्थ – हे अर्जुन। सब प्राणियों के हृदय प्रदेश में ईश्वर रहता है और अपनी माया से यंत्र पर लगाये हुए चित्रों के समान सब भूतों को वह घुमाता है। ।।६१।।

हे भरतपुत्र! उसी की पूर्ण भक्ति से शरण जा। उसके प्रसाद से तू श्रेष्ठ शान्ति तथा शाश्वत स्थान प्राप्त करेगा। ।।६२।।

यह अर्थ अन्वय के अनुसार ही दिया है। इसलिए कौन से शब्द का क्या अर्थ है, वह आप समझ ही गये होंगे। अब इन श्लोकों को आप बार–बार पढ़िए और केवल श्लोक पढ़ते ही उनका भावार्थ उत्तम रीति से आपके ध्यान में आ जाये, इतना अभ्यास मनन पूर्वक कीजिए। ऊपर के श्लोकों में आये हुए शब्दों के निम्नलिखित वाक्य अब आप आसानी से समझ जाएँगे।

हृद्देशे ईश्वरः तिष्ठति। हृदये ईशः अस्ति। तं शरणं गच्छ। ईश शरणं गच्छ। सर्वभावेन तं शरणं गच्छ। ईश्वरं शरणं गच्छ। परां शान्तिं प्राप्स्यसि।

युद्धदेशे अर्जुनः तिष्ठति। रथे श्री कृष्णः तिष्ठति। नगरे भूपः तिष्ठति। द्वारदेशे नरः तिष्ठति। भूपं शरणं गच्छ, नरं शरणं न गच्छ। शोभनं पुस्तकं प्राप्स्यसि। विपुलं धनं प्राप्स्यसि। गृहे धनं भवति।

इसी प्रकार अन्य वाक्य भी बहुत से हो सकते हैं। उनको यहाँ देखिए। इस प्रकार आप अनेक वाक्य बनाते जाएँगे। तो संस्कृत भाषा में आपकी प्रगति होने में बड़ी ही सहायता होगी।

संस्कृत–वाक्यानि

ईश्वरः कुत्र अस्ति? ईश्वरः हृद्देशे तिष्ठति। मनुष्यस्य हृदय प्रदेशे ईशः अस्ति। मम हृदय देशे ईश्वरः अस्ति किम्? तव हृदये ईश्वर अस्ति एव। अहं तं ईश्वरं सर्व भावेन शरणं गच्छामि। तत्प्रसादेन त्वं परां शान्तिं प्राप्स्यासि, तथा शाश्वतं स्थानं तत्र प्राप्स्यसि।

यदा त्वं लिखसि, तदा स तत्र धावति। यदा स गृहे तिष्ठति, तदा अहं पुस्तकं न पठामि। यदा स धावति तदा फलं खादति। यदा त्वं पचसि तदा अहं लिखामि। स पुरुषः इदानीं धावति। स वीरः पुरुषः कदा अत्र आगतः? त्वं किमपि किं न लिखसि? स किं अत्र तिष्ठति?

कः मनुष्यः इदानीं गच्छति? स मनुष्यः इदानीं किं पठति? यदा स अन्नं खादति, तदा त्वं किं करोषि? यथा बालकः धावति तथा त्वं अपि धावसि किम्? कदा त्वं अद्य मम गृहं आगमिष्यसि? तत्र एव त्वं गच्छ यत्र सः पुरुषः अस्ति। तस्य कूपस्य एव जलं अत्र आनय। यदा त्वं गच्छसि तदा सः आगच्छति।

प्रयत्न

(१) भिन्न–भिन्न लिंगों के नामों के साथ विशेषणों का उपयोग–

उदाहरणार्थ – **रक्तः वर्णः, शोभनं जलं, मधुरा शर्करा।**

अब निम्न लिखित विशेषण अथवा भूतकाल के रूपों का निम्न नामों के साथ प्रयोग कीजिए।

नाम – **गंगा, वृक्षः पुष्पं, गोपालः कमलं सीता।**

विशेषण अथवा भूत कृदन्त – **शुभ्र, पवित्र, कोमल**

दीर्घ, हरित, खादति, दत्त, [illegible]।

(२) खाली जगह की पूर्ति कीजिए :–

उदाहरणार्थ – ....फलं पतति = वृक्षात् फलं पतति।

अब आप लिखिए–

१. नदी वहति ...... (पर्वत),

२. अहं पठामि ....(पाठ)

३. .... (राम) गृहं कुत्र अस्ति?

कोष्ठक में दिये हुए शब्दों के योग्य रूप लिखिए।

(३) संस्कृत में लिखिए–

उदाहरणार्थ– किमर्थे त्वं पठसि?

उत्तर – ज्ञानार्थं अहं पठामि।

अब उत्तर दीजिए –

१. कस्मात फलं पतति। (वृक्ष)

२. कीदृशी शर्करा भवति ?(मधुर)

३. कासारे किं अस्ति ? (जल अथवा कमल)

(४) हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

१. रामः मां वदति। २. मम हस्ते पुस्तकं अस्ति। ३. कृष्णः वासुदेवस्य पुत्रः ४. नमामि अहं परमेश्वराय। ५. अत्र अस्ति तव माता। ६. अश्वः रथं वहति। ७. गोविन्देन युक्तं कथितं। ८. कदा त्वं पठसि कुत्र च?

□

बादल

अम्माँ! हैं फिर आये बादल!
देखो – कैसे छाये बादल!
हवा चल रही है मतवाली!
झूम रही है डाली–डाली!

लो, अब लगा बरसने पानी!
ये बादल हैं कितने दानी!
बरसा देते पानी सारा!
मानों खुल जाता फौव्वारा!

लेकिन फिर जाकर ले आते!
बार–बार हमको दे जाते!
अम्माँ! अगर न बादल आते!
और न ये पानी बरसाते!

फिर कैसे खेती की जाती?
फिर सारी दुनिया क्या खाती?
सचमुच बादल बड़े काम के!
ये नौकर हैं बिना दाम के!

मुझको लगते प्यारे बादल!
आसमान के सारे बादल!

– चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक'
२६१, फेथफुलगंज, कैण्ट,
कानपुर–२०८००४

O साहू

व्यंग्य-लेख

कन्हैयालाल मंगलानी

महँगाई दर महँगाई-कहीं नहीं सुनवाई

कभी महँगाई बढ़ने के लिए बजट की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी; किन्तु अब यह दकियानूसी की बात होगी; क्योंकि हमारे यहाँ कहा गया है कि 'काल करे सो आज कर,आज करे सो अब', इसलिए बजट तक रुकना ठीक नहीं, बढ़ा दी महँगाई। लोकतन्त्र की दुहाई देने वालों को क्या कहा जाय, जिन्हें दिखाई नहीं देता कि देश की महान् जनता ने किसी को राज करने का अधिकार जनादेश तो दिया ही नहीं है, सिर्फ– 'कम्यूनल फोर्सेज' के विरुद्ध यह जनादेश है– इसीलिए महँगाई का हक बनता है कि वह बढ़े, बढ़ती रहे। इसमें संसद् क्या कर लेगी और क्या कर लेगी 'कम्यूनल फोर्सेज' के नेतृत्व में बनी सरकार। खुली बाजार–व्यवस्था की सड़क तो बनायी ही इसीलिए गयी है कि महँगाई सरपट दौड़ सके।

महँगाई के अनगिनत लाभ हैं, आम आदमी के उपभोग की हर वस्तु जब महँगी हो जायेगी, तो देश का नाम समृद्ध देशों की सूची में शामिल हो जाएगा। गरीब आदमी भी गर्व कर सकेंगे कि हम एक अमीर देश के नागरिक हैं, जहाँ महँगाई अमेरिका के बराबर है। सर्वोपरि यह कि जनता स्वयं यही चाहती है कि महँगाई बढ़े। बजट में एक–एक करके हर चीज को महँगा करते, इससे अच्छा यही है कि पेट्रोलियम पदार्थों को महँगा कर दिया जाय, हर चीज स्वतः महँगी हो जायेगी; क्योंकि हाथी के पैर में सबका पैर, यही तो सुख है। हाँ; सत्ताधारियों, मन्त्रियों तथा अफसरों पर इस महँगाई का कोई असर नहीं पड़ेगा। सरकारी गाड़ियों का सदुपयोग बढ़ेगा, कमजोर दिल वाले कृपया अपना बीमा करवा लें। अभी तो तमाशा शुरू हुआ है, रहस्य–रोमांच के क्षण आगे आयेंगे। चरम बिन्दु तक पहुँचते–पहुँचते जो बाकी बचेगा, उसे 'न्यूनतम कार्यक्रम' की एक प्रति मुफ्त में सादर भेंट कर दी जायेगी।

मौसम का भी अपना अलग आनन्द है, ठीक उपभोक्ता वस्तुओं की महँगाई की तरह। जो सक्षम हैं, उन्हें महँगाई कदापि नहीं व्यापती। इनसे कुछ कम सामर्थ्यवान् जनों को महँगाई भत्ते में वृद्धि की तलब लगती है और जैसे ही वृद्धि हो जाती है, वे महँगाई का बस बखूबी मुकाबला कर लेते हैं। **यहाँ दिलचस्प बात यही है कि महँगाई घटाने की माँग कोई नहीं करता, महँगाई भत्ता बढ़ाने की माँग जोर शोर से, यहाँ तक कि आन्दोलन करके भी की जाती है'हमारी माँगें पूरी हों, चाहे जो मजबूरी हो'की हद तक कम से कम अपने देश में महँगाई के विरुद्ध अब तक तो कोई प्रभावकारी जन–आन्दोलन कभी नहीं हुआ।**

वैसे, ऐसे–ऐसे संवेदनशील देश इतिहास में मौजूद हैं, जहाँ डबलरोटी के दाम में मामूली–सी वृद्धि पर उग्र आन्दोलन हुए तथा सरकार को ले डूबे। लेकिन अपने यहाँ महँगाई के विरुद्ध आन्दोलन जरूर होते हैं जबकि महँगाई भत्ते का लाभ पाने वालों का प्रतिशत दस से भी कम है। चूँकि बहुमत का काम महँगाई बढ़ते रहने से चल जाता है,इसीलिए माना यही जायेगा कि जनादेश महँगाई के विरुद्ध नहीं है; तो कोई भी महँगाई को कम करके जनमत के विरुद्ध आचरण भी क्यों करे ? इसलिए महँगाई, निरन्तर बढ़ती ही चली जा रही है'सुरसा के मुँह की तरह'तथा इससे जिन्हें लाभ मिल रहा है, वे इसे लोकतन्त्र की उदारता का प्रसाद मान कर आदर से शिरोधार्य कर रहे हैं ?

विद्वान् कहते हैं कि जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले । विद्वानों का ही उल्लेख इसलिए कि जो बेचारे विद्वान् नहीं हैं, उनके सिर पर चढ़कर तो कोई भी बोल सकता है; लेकिन जादू विद्वानों के सिर पर ही चढ़कर बोलता है– जैसे देश के सिर पर चढ़कर बोल रही खुली अर्थव्यवस्था। विद्वज्जन कहते हैं कि देश की अर्थ–व्यवस्था इतनी खुल गई है कि अब बन्द नहीं हो सकती। अगर इसे उदार कहें, तो उदारता के इस राजपथ पर देश इतना आगे बढ़ चुका है कि वापस नहीं लौट सकता। इसकी तुलना बोतल से बाहर निकल कर उत्पात मचाने वाले 'भूत' से भी नहीं की जा सकती। नानी–दादी की कहानियों में एक भूत हुआ करता था, जो बोतल में से बाहर निकल कर उत्पात मचा दिया करता था, लेकिन तरकीब से उसे वापस बोतल में बन्द करके कहानी आगे चलती थी; परन्तु इसे वापस बोतल में बन्द करने की कोई तरकीब नहीं है। (किसी को पता हो, तो कृपया सूचित करने का कष्ट करे।)

आम आदमी ने अर्थव्यवस्था की उदारता का 'जलवा' तब देखा, जब दो तीन पैसे के सिक्के चलन से गायब हो गये। ये कहाँ गये शायद सरकार को भी पता नहीं। पोस्टकार्ड तथा मनीआर्डर फार्म दो ऐसी चीजें हैं, जो या तो आम आदमी के काम आती हैं अथवा व्यावसायिक काम लेकर चलाई जाती हैं। दो और पाँच रुपये के नोट शक्ल–सूरत से ऐसे लगते हैं, जैसे तीसरी स्थिति का कैंसर मरीज हो। खुली अर्थव्यवस्था में महँगी चीज अधिक बिकती है तथा गर्व से खरीदी जाती है। न तो अब छोटे सिक्के हैं और न ही छोटे नोट। सबसे बड़ा पाँच सौ रुपये का नोट भी 'प्रीमियम' पर बिकता है तथा सरकार हिदायत जारी करती है कि नोटों की गड्डियों को जाँच–परख कर लें अर्थात् अपने माल असबाब की हिफाजत खुद करें।

कीमतें वहाँ चुकती हैं, जहाँ गृहस्थी चलती है और यहाँ गृहस्थी चलना महँगा हो गया है। हर आम व्यक्ति इस अजगरी महँगाई से त्रस्त है। हम तो सिर्फ चुपचाप सहते हैं। कोई है, जो विरोध करे। हम तो केवल सद्भावना करते हैं। हमारे लिए तो वे भी अच्छे और ये भी भले किससे करें गिले–शिकवे। वे भी नागनाथ ये भी साँपनाथ। पूजा करो और दूध पिलाओ। बदले में जहर पाओ। हमें तो चिन्ता है अपने बटुए की कि ३१ तारीख तक चलेगा कि नहीं ? नोट खत्म हुए; कुछ चिल्लर बची, बस उसी पर भरोसा है।

यह कैसा कमाल है कि देश में महँगाई के बेतहाशा बढ़ने की जिम्मेदारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं; गरीबी और अमीरी दोनों के अन्धाधुन्ध बढ़ने की जिम्मेदारी लेने को भी कोई तैयार नहीं। यह जिम्मेदारी लेने के लिए भी कोई तैयार नहीं कि विकास की गंगा बह रही है, तो आम आदमी की कठिनाईयाँ कम क्यों नहीं हो रहीं ? केवल अफसरों तथा राजनेताओं की ही सम्पन्नता के लिए जिम्मेदार कौन है, कोई नहीं जानता। क्या देश इस इन्तजार में बैठा है कि कभी कहीं से कोई गुमनाम टेलीफोन आएगा और उस पर कोई शैतान या फरिश्ता कहेगा कि इस सबके लिए जिम्मेदार मैं हूँ। तब सब चैन की साँस लेकर सो जायेंगे कि चलो, किसी ने जिम्मेदारी तो ली। इससे आगे क्यों और क्या हो सकता है ?

यह दुःख आदमी के लिए कितना पीड़ादायक हो सकता है, इसकी कल्पना तो कोई भी सम्पन्न अथवा विपन्न भी कर सकता है; लेकिन यही दुःख यदि सर्वशक्तिमान्, परमपिता और परमात्मा जैसे महाविशेषणों से विभूषित ईश्वर को भुगतना पड़े तो ? यह तो बहुत भयंकर तथा रोंगटे खड़े कर देने वाला है। इस दिशा में आगे चलने से पहले यह जान लें कि जैसा समाज होता है, वैसा ही उसका ईश्वर होता है। हम अपने इस आदर्श पर गर्व कर सकते हैं कि हमारे यहाँ ऐसे–ऐसे भगवान्, देवी, देवता हैं, जिनकी दोनों समय आरती तो दूर, सेवा, पूजा, प्रसाद तक के लाले रहते हैं। तब इस महँगाई के चक्रव्यूह में उलझे उनके भक्तों, पुजारियों का क्या हाल–बेहाल रहता होगा। लेकिन दूसरी तरफ ऐसे सम्पन्न भगवान् भी हैं, जिनका प्रसाद यदि गरीब को मिल जाए, तो उल्टी–दस्त हो जाए। ये सम्पन्न कोटि के भगवान् ही अपने भक्तों को इस देश का प्रधानमन्त्री पद तक सेवा के बदले आशीर्वाद में दे डालते हैं, गरीबी भले ही बढ़ती चली जाए।

दाम बढ़ते ही रहे हैं; जनता भूलती भी रही है। दो चार दिन शोर मचने का प्रचार होगा। फिर बढ़ी हुई कीमतें आदत में शुमार हो जायेंगी, यही इस देश का शाश्वत सत्य है। अपनी जनता इतनी भली तथा सहनशील है कि पच्चीस, तीस क्या, सौ–दौ सौ प्रतिशत महँगाई को भी हँसी–खुशी बर्दाश्त कर लेती है। फ्रान्स की क्रान्ति की तरह कभी क्रान्ति नहीं करती।

□

– गुरुकृपा ३०१/ए, कस्तूरबा नगर, रतलाम (म०प्र०)

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था–

- भले ही कोई तात्कालिक और मूर्त लाभ न हो, तथापि कोई भी वेदना और बलिदान कभी निस्सार नहीं जाता। बलिदान और कष्टों के द्वारा ही कोई उद्देश्य सफल और प्रतिफलित हो सकता है। हर युग और हर स्थान में यह शाश्वत नियम लागू होता है कि शहीद के खून से ही धर्म अंकुरित होता है।
- हमें जिस राष्ट्रीय मुक्ति की कामना है वह त्याग और कष्ट सहन के रूप में अपनी कीमत लिये बिना नहीं मिल सकती। यह अनुभव करने के लिए जिसके पास हृदय है और कष्ट सहन करने के लिए तत्पर है, उसे पूजा के पुष्प लेकर आगे आना चाहिए।

— 'वागीश'

उसकी आयु १८ वर्ष की थी, अभी इंटर की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, वह था कलकत्ता हाईकोर्ट के एटार्नी विश्वनाथ दत्त का पुत्र नरेन्द्रनाथ दत्त। पिता संगीत-प्रेमी थे। माता भुवनेश्वरी देवी भक्तिमती थीं, पूजा-अर्चना में उनकी अगाध श्रद्धा थी और बाल्यावस्था से नरेन्द्र अपनी माँ को पूजा-पाठ करते देखा करता था। नरेन्द्र की स्मरण-शक्ति विलक्षण थी। जो भी वार्ता या श्लोक एक या दो बार सुन लेता, वह उसे अतिशीघ्र कण्ठस्थ हो जाता था। उसे राम-कथा में हनुमान् जी की कथा बहुत रुचती थी- इस तरह हनुमान् जी की वीरता की बातें सुनते-सुनते हनुमान् जी का एक प्रकार से भक्त हो गया था यद्यपि 'भक्ति' शब्द का अर्थ ठीक जिस भाव में व्यक्त या परिभाषित होता है, उस अर्थ में नहीं। और ये कथाएँ वह सुना करता था अपनी माता के मुँह से। वे प्रायः नित्य ही 'रामायण-महाभारत' पढ़ा करती थीं और नरेन्द्र चुपचाप बड़े चाव से उनके पास बैठकर वह सब सुनता-गुनता रहता था। इन सब कथाओं में वीरवर हनुमान् की के साहस और शौर्य से वह बहुत प्रभावित रहती थीं। जहाँ भी यह उछलकूद करता जाता, वे दोनों कहारिनें इसी के पीछे-पीछे जातीं।" फिर माँ ने उन्हें बताया कि एक बार क्या हुआ कि मकान के तीसरे खण्ड में शंकर जी की एक प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, नरेन्द्र साथियों के साथ खेलते-खेलते वहीं पहुँच गया और फिर पता नहीं इसे क्या खेल सूझा कि खेलना छोड़कर यह उस प्रतिमा के समक्ष आसनस्थ हो गया। नेत्रनिमीलित बिल्कुल ध्यान-मग्न योगी सरीखा बस उसी शंकर प्रतिमा के सामने जम गया, तभी इसके साथी लड़के चीख उठे, "नाग! नाग!" सच ही वहाँ एक काला नाग फुफकार मार रहा था। और वे सब के सब उसके कमरे के द्वार खोलकर वहाँ से भाग निकले, फिर भी इसकी ध्यान-मग्नता भंग न हुई, न इसने आँखें ही खोलीं। उसी एकाग्र ध्यान-मुद्रा में यह जहाँ बैठा था, बैठा रहा। कुछ देर बाद नाग वहाँ से जाने कहाँ खिसक गया। पश्चात् उस नाग की बहुत खोज की गई, कहीं दिखा नहीं। जब नरेन्द्र से बाद में पूछा गया, उस नाग के बारे में तो वह बोला, कहाँ? मैंने तो कुछ नहीं देखा, न मुझे उसका कोई पता चला।"

जो गये थे गीत सुनाने

था। रोज रात को उसके एक रिश्तेदार "मुग्धबोध" व्याकरण पढ़ा करते थे, सोने से पूर्व नरेन्द्र वह व्याकरण रोज सुनते-सुनते कण्ठस्थ कर सका था। परन्तु इन सब सद्गुरुओं के साथ-साथ वह चञ्चल भी कम न था, कोई न कोई शरारत, उपद्रव वह नित्य कर ही बैठता था, यद्यपि उन दिनों वह निरा बालक ही था। उसे नटखटपन करते देखकर माता भुवनेश्वरी देवी उसे गोद में उठा लेतीं और कहतीं, "बहुत-बहुत पूजा-उपासना करते-करते शंकर जी से योग्य पुत्र की कामना की थी, परंतु शंकर जी ने मेरी गोद में भेज दिया एक भूत।" बहुत बाद में जब नरेन्द्र स्वामी विवेकानंद बनकर विदेशों से लौटे और उनके साथ उनकी कई विदेशी शिष्याएँ भी आईं, तो वार्ता चलने पर माता भुवनेश्वरी देवी उन्हें अपने लाड़ले बेटे नरेन्द्र के बचपन की आदतें, सुनाते हुए बताती थीं कि "अरे! क्या जानती हो तुम लोग? जब यह छोटा ही था, उन दिनों यह इतना चंचल था कि मुझसे सँभाले नहीं सँभलता था और तब इसके कारण मुझे इसके लिए दो कहारिनें लगानी पड़ी थीं, जो आठों पहर इसकी देख-भाल करती

नरेन्द्र को ६ वर्ष की आयु में विद्यालय में पढ़ने बैठाया गया, परन्तु पिता ने जब देखा कि वह वहाँ साथ के लड़कों के प्रभाव में गंदी और बुरी आदतें, बातें सीख रहा है, तो उन्होंने उसे विद्यालय न भेजकर घर पर ही निजी शिक्षक लगाकर पढ़ाना उचित समझा। बड़े होने पर नरेन्द्र विवेकानन्द स्वयं ही अपने शिष्यों को बताते थे कि "बाल्यकाल में मैं बड़ा नटखट था, वर्ना मैं क्या ऐसे ही तमाम संसार घूम आता!" पिता ने घर पर नरेन्द्र की संगीत-शिक्षा के लिए एक गायनाचार्य को लगा दिया था, जो नरेन्द्र को संगीत-विद्या का प्रशिक्षण प्रदान करता था। नरेन्द्र संगीत सीखकर शुरू-शुरू में "ब्रह्म समाज" में प्रति रविवार जो उपासना में ब्रह्म संगीत के गायन की प्रथा है, ब्रह्म संगीत गाता था, उसके कारण केशवचन्द्र सेन सरीखे नेता नरेन्द्र को अपना स्नेह प्रदान करने लगे। नरेन्द्र भी "ब्रह्म समाज" में शामिल हो गया। एफ. ए. में पढ़ते समय नरेन्द्र को मूर्ति-पूजा में आस्था नहीं थी। पर उसे यह प्रबल चाह थी कि परमात्मा जब है, तो उसके दर्शन कैसे किये जा सकते हैं? इस दिशा में वह व्यग्र रहने लगा।

उसके कालेज में एक शिक्षक थे, हेस्टी साहब। पहल पहल नरेन्द्र की यह जिज्ञासा जानकर उन्होंने उससे कहा, "ईश्वर के विषय में यदि तुम जिज्ञासु हो, तो परमहंस रामकृष्ण देव से जाकर मिलो; वे इस विषय में सब भाँति समर्थ हैं।" रामकृष्ण का नाम सर्वप्रथम नरेन्द्र ने इन्हीं हेस्टी साहब से सुना, जो ईसाई मतानुयायी थे; परन्तु परमहंस रामकृष्णदेव को सिद्ध संत मानने में उन्हें कोई शंका नहीं थी। पश्चात् केशवचन्द्र सेन के व्याख्यानों और वार्ताओ से भी नरेन्द्र को रामकृष्ण देव विषयक जानकारी हुई, परन्तु अभी तक उनसे वह प्रत्यक्ष भेंट नहीं कर सका था। वह संभवत उत्सुक भी नहीं था– उनसे मिलने के लिए। अवश्य उसने यह सुना था कि रामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी के पुजारी हैं, यह भी सुना कि कलकत्ता के बड़े–बडे नेतागण जैसे केशवचंद्रसेन, शिवनाथ. शास्त्री, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि रामकृष्ण के पास जाकर घंटों उनकी वार्ता सुनते रहते हैं; जब कि रामकृष्ण कुछ खास पढ़े–लिखे नहीं हैं, मात्र एक गरीब पुजारी ही हैं। तभी वह क्षण भी आ गया अनायास जब नरेन्द्र की प्रथम बार रामकृष्ण देव से भेंट हुई। सन् १८८१ चल रहा था, नवम्बर मास था। कलकत्ते में एक मुहल्ला है सिमुलिया, जहाँ सुरेन्द्रनाथ के मित्र रहते थे। उन्हीं के यहाँ रामकृष्ण देव और उनके कई भक्त पधारे थे। कोई छोटा–मोटा उत्सव हो रहा था। जिसमें संगीत–भजन–गायन की भी जरूरत पड़ी– तब सुरेन्द्रनाथ के मित्र गये अपने पड़ोसी विश्वनाथ दत्त के यहाँ और उनके पुत्र नरेन्द्र नाथ दत्त को अपने घर लिवा लाये कि वही भजन गायेंगे आज। नरेन्द्र ने भी वहाँ मुक्त–कण्ठ से मन–प्राणों से लय स्वर मिलाकर गाया। रामकृष्ण देव तो नरेन्द्र को देखकर एकाएक चौंक ही उठे, और फिर उन्हें यह समझते देर न लगी कि मानव देह में उनके समक्ष आज जो आ बैठा है, वह कौन है? इसीलिए जब वह गा रहा था, तो उसके सुमधुर गायन से रामकृष्ण भाव समाधि में डूब गये। बाह्य जगत् बिसर गया। देह–दशा का भान न रहा– और इस स्थिति से बाहर वे तभी आ सके, जब नरेन्द्र ने गाना बन्द किया। तुरन्त नरेन्द्र के पास पहुँचे और बड़ी व्यग्रता के साथ उससे आग्रह करने लगे, कहा– "एक बार दक्षिणेश्वर आओ? आओगे न?" नरेन्द्र ने रस्मी तौर पर 'हाँ' कहकर छुट्टी पा ली। आगे एफ.ए. की परीक्षा दे चुके, तो घर में उनके विवाह का प्रसंग छिड़ा– नरेन्द्र विवाह करने के विरुद्ध थे। पिता को १० हजार रूपये जो दहेज में मिलने वाले थे,, उनका लोभ था। तब नरेन्द्र का मन वैराग्य के रंग में रँग गया– इस स्थिति में रामचन्द्र दत्त ने जो नरेन्द्र के संबंधी ही थे– कहा, "नरेन्द्र! यदि ईश्वर और धर्म के प्रति तुम जिज्ञासा रखते हो तो, तुम दक्षिणेश्वर जाकर रामकृष्ण देव से मिलो।" तब उनके पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ अपने साथ गाडी में नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर ले गये।(मेरा बड़ा भाग्य कि अभी ११ मई को मैं दो बार दक्षिणेश्वर, कालीबाड़ी और बेलूरमठ पहुँच सका, उसका श्रेय कलकत्ते के शहीद कोठारी–बन्धुओं की बहिन पूर्णिमा देवी कोठारी को है, जो इस भयंकर गर्मी में भी जलती दोपहरी में मुझे दक्षिणेश्वर– कालीबाडी और बेलूर मठ ले गईं– वहाँ दूर, दूर मंदिर रहने से नंगे पाँव ही चलना होता है, जिससे उनके पांवों में छाले पड़ गये हम सबके भी, पर पूर्णिमा जी के उत्साह, दर्शन–अभिलाषा में रंच मात्र फर्क न पड़ा। दक्षिणेश्वर में ही काली माता के पुजारी रहे थे रामकृष्ण देव। वहाँ उस स्थान को देखकर, वहाँ बैठकर रोमांच हो आया, जहाँ सामने रामकृष्ण देव बैठते थे पलंग पर, तो उनके ही सामने भूमि पर नरेन्द्र (विवेकानन्द) बैठा करते थे।)तो, दोबारा जब नरेन्द्र की रामकृष्णदेव से भेंट हुई, तो वह वर्ष था सन् १८८१ का दिसंबर महीना था। वहाँ जिधर गंगा जी प्रवहमान हैं, उसी तरफ के द्वार से नरेन्द्र अपने कई मित्रों के साथ रामकृष्ण के कक्ष में प्रविष्ट हुए। भूमि पर चटाई बिछी थी– रामकृष्ण ने उन्हें उसी पर बैठाया– फिर कहा, "नरेन्द्र! गाओ तो।" और नरेन्द्र ने दो गीत गाये जिनमें से एक की पंक्तियाँ थीं–

"मन चलो निज निकेतने।
संसार विदेशे, विदेशीर वेशे,
भ्रमो केनो अकारणे....."

अर्थात् हे मेरे मन! अब अपने घर चलो। यह संसार विदेशी (नर देह) में यहाँ किसलिए भटक रहे हो?" गीत सुनकर रामकृष्ण अहा! अहा! कहते हुए आनन्द विभोर हो उठे। फिर नरेन्द्र ने जो दूसरा गीत गाया, उसमें ये पक्तियाँ थी :–

"जावे कि हे दिन आमार विफले चलिये।
आछि नाथ दिवानिशि आशा–पथ निरखिये..."

अर्थात् क्या यह जीवन विफल ही रहेगा? ऐसे ही कर्म जिन्दगी के सभी दिन बीत जायेंगे? हे प्रभु! मैं क्या यों ही रात–दिन आशा लगाये बैठा रहूँगा, मैं तुम्हारा विनीत सेवक......"। गीत सुनते–सुनते रामकृष्ण देव को फिर भाव–समाधि लग गई। इसी भेंट में नरेन्द्र ने उनसे पूछा था कि "क्या ईश्वर को देख पाना संभव है?" उत्तर मिला था, "अवश्य, ठीक वैसे ही उसे हम देख सकते हैं, उससे वार्ता कर सकते हैं, जैसे मैं तुमसे बात कर रहा हूँ, पर उसे देखना ही कौन चाहता है?" और तब तो नरेन्द्र एक मास बाद फिर उनके पास पहुँच गये, उन्हीं के हो गये। □

(पृष्ठ ३० का शेष)

आब ! 'आब' ! कहि मर गया....

किसी एक ही 'शब्द' या 'रास्ते' से बँधे नहीं रहे थे। कठमुल्ले औरंगजेब ने दिल्ली की जामा मस्जिद के इलाके में ही सूफी सन्त सरमद को पकड़कर कत्ल करा दिया था। वे शहीद हो गये। दूसरे भी एक सूफी थे, "मुल्ला बदख्शानी", जो बदख्शाँ के रहने वाले थे—उन्हें भी सूफी मत ऐसा भाया कि कह उठे—

"पञ्जः दरपञ्जः मन्जि खुदादारम्।
मन्चि परवां ई कि मुस्तफादारम्।।

अर्थात् मुल्ला बदख्शानी का बयान है कि "मै तो प्रत्यक्ष खुदा से पञ्जा लड़ाता हूँ, यानी उससे साक्षात्कार (वस्ल) करता हूँ— मुझे मुस्तफा (पैगम्बर मुहम्मद साहब) की परवाह क्या !"

वे भी एक मुसलमान थे, और राबिया बसरी भी मुस्लिम ही थी— पर अरब के जो मुल्ले—मौलवी उस जमाने में वहाँ मजहबी फतवे जारी करते थे, हुकूमत पर हावी थे—वे भी मुल्ला बदख्शानी, राबिया बसरी जैसे भिन्न मार्गियों को अपने रास्ते पर चलने को मजबूर नहीं कर सके। जरूर उन्हीं दिनों वहाँ के एक अन्य सूफी शम्स तबरेज़ की जिन्दा ही खाल खींचने का फतबा और हुक्म कठमुल्लों और उनके बगल—बच्चे बने हुए मुस्लिम शासक ने जारी किया था। यह भी मुनादी की गयी थी कि "कोई शख्स शम्स तबरेज़ को न खाना दे, न उसकी रोटी पकाये, बनाये।" कहते हैं, "तब सूफी शम्स की रोटियाँ स्वयं सूर्य ने सेंक दी थीं।" शायद इसी से उनके नाम में 'शम्स' शब्द जुड़ गया, क्योंकि शम्स 'सूर्य' को ही कहते हैं। जो भी हो— अपनी उपासना या इबादत का अलग रास्ता अख्त्यार करने वाले, फिर चाहे वे कबीरदास हों या गुरु नानकदेव रहे हों, या मीरा अथवा 'रसखान' पठान, सूफी सरमद, शम्स तबरेज, मुल्ला बदख्शानी या राबिया बसरी रही हों; विश्व—इतिहास में सदा के लिए वे अमिट अक्षरों में अपने नाम अंकित कर गये, तमाम बरसातें आयीं—गयीं, पर महाबली विनाशी काल उनके नाम लोकालय के स्मृति-पटल से मिटा नहीं सका, न मिटा सकेगा। जो लोग एक ही शब्द और एक ही किताब से बँधकर स्वयं को खुदा का बन्दा, सबसे बड़ा आलिम या हाफिज मानते हैं, वह उनका— अहं है, बन्दगी से उनका सच्चा रिश्ता नहीं, कहा है न कि—

"उसकी नज़र हुई तो क्या,
उसकी नज़र फिरी तो क्या।
जिस बन्दगी में होश है,
वो बन्दगी बन्दगी नहीं।।

हम संकीर्ण, तंगदिल रहकर असीम विराट् को आत्मसात् करना चाहें, तो यह संभव नहीं— क्योंकि खुदा ने कहा—

"हिन्दियां रा इस्तलाहे दादा अन्द।
सिन्धियां रा इस्तलाहे दीगर अन्द।।"

अर्थात् "बकौल खुदा" हमने भिन्न—भिन्न लोगों के

मत पता बहारों का पूछो

— डॉ. निर्मला शर्मा

माथे पर चन्दा सा अंकित,
हर वैभव है, श्रृंगार नहीं;
आँखों से उमड़ा हर आँसू,
पीड़ा का है अभिसार नहीं।

नुपूर की जिस रुनझुन में तुम,
खोए—खोए से फिरते हो;
उसकी मादकता के स्वर में,
है गीतों की झंकार नहीं।

मुर्दों की बस्ती में आ कर
मत पता बहारों का पूछो,
सूनी—सूनी इन आँखों में,
है रंगों का संसार नहीं।

पायल, कंगन, मेखला सुघर,
इनको नाजुक न समझ बैठो,
जकड़ीं मर्यादाएँ हैं ये
चलता—फिरता व्यापार नहीं।

चल—चल कर यों थक जाओगे,
मृगतृष्णा है जीवन की वह;
उसके स्नेहिल मृदु शब्दों में
केवल परिचय है प्यार नहीं।

— ३/६३, सिविल लाइन्स, बाँसवाड़ा
(राज.) ३२७००१

लिए भिन्न–भिन्न रास्ते (तरीके) बना रखे हैं। मेरे तक पहुँचने का रास्ता दिल है, दिमाग नहीं।' यह कहना था मौलाना जलालुद्दीन रूमी का। हजरत मूसा से और भी कहा खुदा ने कि,

'मज़हबे इश्क अज़हम मिल्लतः जुदाऽस्त।
आशिकां रा मज़हबो मिल्लत खुदाऽस्त।।'

अर्थात् खुदा ने कहा, 'ऐ मूसा! प्रेम–धर्म सब मतों–संप्रदायों से पृथक् है। जो मेरे सच्चे प्रेमी हैं, उनके लिए मिल्लत और मजहब–सब कुछ मैं हूँ।' और कहा–

'मूसिया आदाबे दाना दीगर अन्द।
आशिकां सोजे दरुना दीगर दीगर अन्द।।'

अर्थात् खुदा ने कहा, 'ऐ मूसा। ऊपरी तौर पर आदाब के ज्ञाता दूसरे होते हैं और वे सच्चे प्रेमी जिनके दिल में प्रेमाग्नि लगी होती है, दूसरे ही लोग होते हैं।' सरमद, शम्स तबरेज, मंसूर और राबिया बसरी की गिनती ऐसे ही ईश्वर प्रेमियों में है। परमात्मा से शिकवा नहीं किया इन्होंने; वरन् कहा कि–

'झोली ही अपनी तंग थी, तेरे यहाँ कमी नहीं...'

भले ही इन सूफी संतों को, शम्स तबरेज, सरमद और राबिया को पागल माने कोई, पर वे कहते थे–

'सब देख के जुम्बिश नज़रों की,
दीवाना समझते हैं मुझको।
इस राज़ को कोई क्या समझे,
मैं किसको इशारा करता हूँ।।'

और इसी प्रकार मीरा भी कहती थी, 'हे री मैं तो प्रेम– दिवानी; मेरो दरद न जाने कोय।' किसने जाना उसका दर्द ?..

☆

पोलियो ड्राप्स व अन्धता निवारण के लिए ऋण लेना शर्म की बात

– डॉ. भरत झुनझुनवाला
(सुविख्यात अर्थशास्त्री)

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' हमारी संस्कृति का मूल विचार है और इस सुखद स्थिति को प्राप्त करने में राज्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

समाज कल्याण में अपनी इस भूमिका का सरकार आज अनेक योजनाओं को चलाकर निर्वाह कर रही है। सोच यह है कि सरकार टैक्स लगाकर राजस्व प्राप्त करे और प्राप्त धन को समाज कल्याण के कार्यक्रमों में खर्च करे जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, आँगनबाड़ी महिला व शिशु कल्याण आदि। लेकिन इन प्रयासों के सार्थक परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते।

हमारी संस्कृति की सोच कुछ भिन्न है। यदि सरकार गरीब की रक्षा करे और उसे न्याय दिलाये और व्यापारी पर टैक्स कम आरोपित करे, तो गरीब का कल्याण अपने आप हो जाता है। हमें अपनी संस्कृति की इस सोच को समझने की आवश्यकता है। हम प्रतिवर्ष जितना ऋण विभिन्न मदों में लेते हैं, उसका अधिकांश भाग या तो विदेशी कर्जे के ब्याज के रूप में वापस हो जाता है या फिर अनावश्यक सौन्दर्य–प्रसाधनों आदि की खरीद पर उन्हीं देशों को चला जाता है। भारत द्वारा परमाणु विस्फोट के बाद अमेरिका, जापान, कनाडा आदि देशों द्वारा प्रतिबन्ध लगाने के कारण उत्पन्न स्थिति से निपट लेना कठिन नहीं। जिस देश ने गत वर्ष ७०० टन सोना खरीदा हो, उसे कल्याणकारी योजनाओं जैसे पोलियो ड्रप्स व अन्धता निवारण आदि के लिए ऋण लेना ही शर्म की बात है। ❑

संत - रक्षक पठान

– पुष्कर नाथ

गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन और उनके सुपरिचित स्नेही एक संत थे, नाम था स्वामी नन्दलाल गोस्वामी। वे पहले सण्डीला नाम के कस्बे में रहा करते थे। यह कस्बा उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले में पड़ता है। ये स्वामी जी परम विरक्त ज्ञानी पुरुष थे तथा सण्डीला छोडकर तीर्थाटन किया करते थे। राम–भक्त थे, इसलिए एक बार अयोध्या–वास करने के विचार से सण्डीला से पैदल चले। आगे उसी मार्ग में एक स्थान मलिहाबाद पड़ता है– जहाँ अधिसंख्य पठानों की आबादी थी और अभी भी है। मलिहाबाद अपने दशहरी आम के बागों के लिए प्रसिद्ध है। और मुख्यतः ये बाग वहाँ पठानों के ही पास हैं। प्रसिद्ध उर्दू शायर "जोश मलिहाबादी" वहीं के थे, बाद में पाकिस्तान चले गये।

पुराने "गोस्वामी तुलसीदास–चरित" में,जो संभवतः वेणीमाधवदास का लिखा हुआ है, एक प्रसंग मलिहाबाद के दुर्दान्त पठानों की जोर–जबर्दस्ती के संदर्भ में प्रमाण स्वरूप स्वामी नंदलाल से संबन्धित दिया गया है। हुआ यह कि स्वामी नन्दलाल पैदल यात्रा करते हुए जब उक्त स्थान मलिहाबाद पहुँचे, तो पठानों ने जब उन्हें कण्ठ में तुलसी–माला और माथे पर तिलक लगाये देखा, तो समझ गये कि यह कोई हिन्दू भगत है और मलिहाबाद के पठान उस जमाने में इस बात के लिए कुख्यात थे कि जब भी वे वहाँ किसी हरि–भक्त, राम–भक्त को आया–ठहरा देखते थे, तो उनका अनेक विध अपमान करते हुए बहुत त्रास देते थे, लिखा है उक्त ग्रंथ में कि–

"पहुँचे मलिहाबाद तेहि, खोटो शहर जो विश्व–बद।
हरि–दासन अपमान करहिं, विविध विधि त्रास दै।।
धारे कण्ठी–तिलक, भगत जन जो कोइ पावहिं।
घेरि उपद्रव करहिं, ताहि बहु भाँति सतावहिं।।
शंख ध्वनि अरू भजन–रीति, कछु होन न पावै।।
और अनीति अनेकन, खोटो शहर कहावै।।"

इस तरह उस युग में मलिहाबाद 'खोटा शहर' बदनाम था क्योंकि वहाँ न कोई हिन्दू शंख बजा सकता था, न भजन–कीर्तन–पाठ आदि कर सकता था। हिन्दुओं को पठानों की अनीति, उपद्रव और संत्रास झेलने पड़ते थे। वहीं स्वामी नन्दलाल गोस्वामी जब आये, तो क्या हुआ कि–

"तहँ निकसे श्रीमत् स्वामी,
तब बहुत वेष निज संग लहि।
लखि साधु सबै विनती करैं कि
यहि मग प्रभु किमि गमन किय ?"

जब गोस्वामी नन्दलाल स्वामी अपने साथ अनेक शिष्यों सहित मलिहाबाद की तरफ आये, तो उन्हें देखकर जो कुछ वहाँ संत थे गिनती के, उन्होंने स्वामी जी का स्वागत किया और कहा– "आप इस रास्ते कैसे आ गये !" अर्थात् यह जगह तो संतो को संत्रास देने के लिए बहुत बदनाम है ? परन्तु स्वामी जी तो अपने सहज स्वभाव से अग–जग को राममय ही समझते थे– इसलिए उन्होंने यही कहा उनसे कि "हम सब जगह निर्बाध हैं और राममय राम की ही मानते हैं, इसलिए दूसरे किसी का वर्चस्व या अधिकार हम मानकर नहीं चलते।"

उसी समय एक दुर्दान्त पठान अत्याचारी ने अपने कुछ लठैत मुसलमान स्वामी जी के पास भेजे और उन लठैतों ने स्वामी जी से कहा कि "चलो, तुम्हें खाँ साहब ने बुलाया है।" लेकिन स्वामी जी ने उन लठैतों से कह दिया कि–

"काज कहा नहिं जाहिं, कह्यो इति अन्तर्यामी"

स्वामी जी तो सिद्ध पुरुष थे, वे दूर बैठे रहकर भी ऐसे दुष्टों के मन की बात जान लेते थे। अतः कह दिया, "हम कहीं नहीं जाते इस तरह। हमारा वहाँ क्या काम ?"

"सोई कह्यो जाइ तिन, क्रोध ह्वै द्वारपाल पुनि पठै द्वै।
फिर तिन्है दियौ उत्तर सोई, तबहुं न आयो ताहि भय।।"

उन लोगों ने स्वामी जी का ही उत्तर अपने आका को जा सुनाया, तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और अपने दो आदमी (दरबान) फिर स्वामी जी को बुलाने भेजे। किन्तु स्वामी जी ने उस सरकश पठान का जरा भी भय न मानकर उन दरबानों को भी वही जवाब दिया। तब–

"तब कियो क्रोध परचंड, पठान अनेक पठाये।
जो अति दारुण रूप, उग्रता आनि जनाये।।
नेकु न मानी कानि, करन लागे बरियाई।
कह्यो कि निज प्रभु सुधि लेहु, बहुरि हमैं जाहु लेवाई।।"

उस प्रचण्ड पठान ने बहुत क्रोधित हो, अनेक पठान स्वामी जी को जबर्दस्ती ले आने के लिए भेजे। वे पठान भयंकर रूप से कोई भी मर्यादा न मानते हुए स्वामी

जी के साथ जोर–जबर्दस्ती करने लगे, तब स्वामीजी ने उनसे कहा– "ठहरो, पहले लौटकर जाओ; अपने उस मालिक (पठान) का हाल तो देख आओ ? फिर हमें ले जाना।"

"तब जाइ दीख निज स्वामि गति,
रुधिर मलीन वसन सकल।
विदरन मल–द्वार को भयो, महा रोदति विकल।।
तब पलंग डारि लै आये स्वामी–शरण।
करी अमित अनुहारि, औगुण क्षमिये दयानिधि।"

तब उन पठानों ने वापस जाकर अपने मालिक पठान की बड़ी दुर्गति देखी। देखा कि उसका मल–द्वार विदीर्ण हो गया. खून से सन गया है वह पठान और उसके कपडे गंदे हो गये हैं मल और खून से। तब वे लोग उसे एक खाट पर डालकर स्वामी नंदलाल जी के पास ले आये। उनके शरणागत हुए। स्वामी जी की बड़ी मनुहार की–विनय की कहा–"हे दयानिधे! हमारा कसूर माफ कर दो। रहम करो हम पर।"

स्वामी जी ने उसे क्षमा प्रदान की, तब कहीं उसका कष्ट दूर हुआ। सिद्ध हुआ कि–

"साधुन के अपमान को दारुण दुःख अपार"

फिर तो स्वामी जी मलिहाबाद में ही विश्राम करने ठहर गये। स्नान–ध्यान किया और फिर जैसे ही उन्होंने शंख बजाया, वैसे ही पठानों के तमाम लड़के वहाँ आकर इकट्ठा हो गये। चकित थे कि भला यह शख बजाने की जुरंत किसने की ? "मारन धाये" वे लड़के स्वामी जी को मारने दौड़े, तभी एक पठान वहाँ ऐसा आ गया, जो बड़ा बलिष्ठ था, न्यायी था– भला आदमी था। उसे उन मुसलमान लड़कों की हरकत बेजा लगी और तब वह उनसे स्वामी जी को बचाने के लिए भिड गया। देर तक मार–पीट हुई उससे, लेकिन उसने अकेले ही लाठी चलाकर उन आक्रमणकारी दुष्ट पठान छोकरों को मार भगाया; लिखा है–

"तहँ बड़भागी एक हटकि, तिन्है अड़ आयो।
बहु विधान करि युद्ध तिन्है, तब मारि भगायो।।
पुनि शिर नायो आय, तब दीन्हों आशिर्वाद तेहिं..."

उन पठान छोकरों को मार भगाने के बाद वह शक्तिशाली पठान स्वामी जी के पास आया और उन्हें नमन किया– तब स्वामी जी ने उस पठान को अपना आशीर्वाद दिया।" कहा–

"विजयी विनयी होइगो, बहु पृथिवी को राज लहि।
संत–साधु सेवा कियो अरु गोबध्य बराइ।।"

स्वामी जी ने उस पठान को ताकीद की कि "जाओ! तुम विनयी – विजयी होगे और काफी जमीन के स्वामी होगे। साधु–संतो की सेवा करना और कभी गो हत्या न करना, बचना उस पाप से।"

"पावैगो ऐश्वर्य बड़, सुयश रहै जग छाय"

स्वामी जी का उस पठानको आशीर्वाद फला। वह पठान "शंखर खाँ" (शाकिर या शकूर खाँ) नाम से बड़ा मशहूर और यशस्वी हुआ। संत का आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाता। कुछ दिन स्वामी जी मलिहाबाद में ही रुके रहे। रोज रामायण पाठ करते थे, शख–ध्वनि, भजनादि करते थे, किन्तु फिर कोई पठान उन्हें वहाँ सताने नहीं आया। स्वामी जी ने अपनी धर्म-ध्वजा वहाँ गाड दी, जिसे कोई न अपमानित कर सका न उखाड सका। फिर एक दिन वे मलिहाबाद से अयोध्या के लिए चल पड़े। लिखा है "तुलसीदास–चरित" में कि–

"इमि निज गुण अनुसरति,
प्रभु चले सकल मग जाहिं।
यहि मिस पहुँचे वास किय,
पुरी अयोध्या माहिं।।"

"इस तरह मार्ग में अपने गुणों का आदर्श फैलाते हुए स्वामी नंदलाल जी गोस्वामी अयोध्या नगरी पहुँच गये और अयोध्या-वास प्रारंभ किया।" जहाँ भी कहीं आज से १०० साल पहले छपी तुलसी–कृत रामायण की बृहत् पोथी (टीकासहित) होगी। यद्यपि वह अब जर्जर प्राय ही होगी– उसके प्रारम्भ में जो तुलसी दास जी का जीवन–चरित दिया गया होगा– उसमें स्वामी नंदलाल गोस्वामी का यह प्रसंग अवश्य मिलेगा, उसका शीर्षक है– "अथ स्वामी नंदलाल कथा प्रसंग। रामायण की पोथी देखी, वह काफी बृहदाकार तथा इतनी जर्जर हो चुकी थी कि छूने मात्र से उस के पृष्ठ कट–फटकर अलग हो जाते थे। पृष्ठों को पलटना भी दुष्कर था। जो हो– खोजने पर संत–रक्षक उस पठान के खानदानी अभी भी मलिहाबाद में शायद मिल जायें। यह कस्बा लखनऊ जिले में आता है। उसी युग में एक बार गोस्वामी तुलसीदास भी सण्डीला और मलिहाबाद ठहरे थे। प्रसिद्धि थी कि मलिहाबाद में उन्होंने एक को अपनी हस्तलिखित 'रामायण' की प्रति भी प्रदान की। वहाँ मुझे एक ऐसे पठान मिले, सैयद हुसैन, जो संस्कृतज्ञ हैं और उन्हें सैकड़ों वेद–मंत्र कण्ठस्थ हैं। उनसे हमारा यात्रा में कुछ दिन साथ भी रहा। वे तब संस्कृत में ही पी.एच.डी. करना चाहते थे। प्रातः टहलते वक्त वे रोज वेद–मंत्र गुनगुनाते चलते थे। वे वहीं संस्कृत शिक्षक हो गये।

❑

चिट्ठी आई पेरिस से–

पोखरण की गूँज पेरिस में

– डॉ. ओम् प्रकाश पाण्डेय
(अतिथि आचार्य, सारबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस)

मई से अगस्त तक पेरिस में सामान्यतः बड़ा सुखद मौसम रहता है। शरीर से भारी लबादे उतर जाते हैं। कमर में बँध जाता है हल्का स्वेटर –शरीर से उतरकर। केवल एक बिना बाँह की बनियाइन में घूमती हुई लड़कियाँ आपसी चर्चा में 'गर्मी–गर्मी' का शोर मचाने लगती हैं। ऐसे खुशगवार मौसम में, भारत के द्वारा पोखरण में परमाणु–परीक्षण की घटना का समाचार जब मुझे पेरिस में मिला अपने फ्रांसीसी मित्रों से, तो उनकी प्रतिक्रिया जानने को मन उतावला–सा हो उठा। फ्रांस की सरकार आधिकारिक रूप से यद्यपि इस सन्दर्भ में मौन रही, लेकिन 'मौनं स्वीकृति लक्षणम्' के अनुसार उसने भारत के प्रति वास्तव में अपने मित्रधर्म का ही निर्वाह किया। फ्रान्सीसी जनता का रुख भी प्रायः अनुकूल ही था– निन्दा जैसा स्वर तो कहीं भी नहीं सुनाई पड़ा। कहीं–कहीं कुछ आशंकाएँ जरूर प्रकट की गईं कि इस घटना की विश्वव्यापी प्रतिक्रिया का सामना भारत कैसे करेगा, लेकिन मेरे फ्रांसीसी मित्रों को आश्चर्य तब हुआ, जब गौरव के इस क्षण में उन्होंने भारत के कुछ वामपन्थी नेताओं को अनावश्यक रूप से आत्मनिन्दा में संलग्न देखा– कुछ को तो बड़ा कौतूहल भी हुआ यह जानकर कि भारत के ये नेता बिल्कुल शत्रुओं की–सी भाषा में परमाणु–परीक्षण पर विलाप कर रहे हैं। फ्रांस के प्रवासी भारतीय उल्लसित थे, विस्मय–विस्फोटित थे। कुछ ने तो इसे स्वतन्त्रता के बाद की सबसे बड़ी घटना बताया। प्रायः हर ओंठ पर वाजपेयी सरकार के प्रति जय–जयकार थी। वे लोग स्तब्ध थे, जो सोचते थे कि अनेक दलों के सहयोग से बनी भाजपा–सरकार कुछ भी नहीं कर पायेगी। सारबोन विश्वविद्यालय के मेरे वरिष्ठ छात्र–छात्राओं की प्रतिक्रिया थी ; 'आचार्य जी ! वाजपेयी जी ने तो कमाल ही कर दिया।' भाजपा को 'फासिस्ट' और 'फंडामेंटलिस्ट' रूप में समझाने वाले अमेरिकी प्रचारतन्त्र से कुछ गुमराह से मित्रों में भी वाजपेयी–सरकार के प्रति आदरभाव दिखा।

हल्की गर्मी के उन्हीं दिनों में, पेरिस में, अमेरिका से एक तथाकथित विद्वान् पधारे–हार्वर्ड युनिवर्सिटी के मानवशास्त्री प्रो. स्टीफेन जे. तांबिया। श्रीलंका मूल के ये प्रोफेसर अब अमेरिका में बस ही नहीं गये थे, लगता है वहाँ के प्रचार–तंत्र से भी जुड़ गये थे। पेरिस में एक शोध–संस्थान के आमंत्रण पर व्याख्यान देने आये थे। बुलवार रास्पाई मार्ग में स्थित एक बड़े हाल में २७ मई को उनका व्याख्यान हुआ। विषय था 'दक्षिण एशियाई देशों में हिंसा'। अपने डेढ़ घंटे के भाषण में ज्यादातर वे भारत पर ही बोले। हर जगह उन्हें आडवाणी की रथयात्रा की भूमिका दिखाई पड़ी। बंबई, हैदराबाद, कानपुर सर्वत्र हुए दंगों का चित्रण हिन्दू–मुस्लिम संघर्षों के रूप में उन्होंने किया। भाषण के अन्त में, प्रश्न–वेला आई। मैंने पूछा– 'क्या कारण है कि आपने कश्मीर में विदेशी सहायता पर पनप रहे आतंकवाद तथा हाल ही में कश्मीरी पण्डितों की बहुसंख्यक हत्याओं के विषय में एक भी शब्द नहीं कहा ?' इसका उत्तर देते हुए वे मासूमियत से बोले– "मैंने तो अपने व्याख्यान की सामग्री और तथ्य आठ साल पहले अमेरिका में छपी सुधीर कक्कड़ की किताब से लिए हैं। उसमें कश्मीर का उल्लेख न होने से मैंने भी उनका उल्लेख नहीं किया।' उपस्थित विदग्ध श्रोता उनके इस हास्यास्पद उत्तर पर हँस पड़े–उन्हें इस अद्भुत अमेरिकी विद्वान् की विद्वत्ता पर बेहद तरस आ रहा था, जो १९८९–९० में प्रकाशित असत्यों और अर्द्धसत्यों के बल पर १९९८ में व्याख्यान दे रहा था ! ठहाकों के थमने पर मैंने दूसरा सवाल किया।'क्या वाजपेयी–सरकार के दो मास के कार्यकाल में भारत में किसी साम्प्रदायिक दंगों की घटना की जानकारी उन्हें है ?' वे बोले –'नहीं।' मेरा तीसरा प्रश्न था– 'क्या उन्हें पता है कि प्रधानमन्त्री श्री वाजपेयी के चुनाव क्षेत्र में मुस्लिम मतदाताओं की विपुल संख्या है ?, इस बार भी उनका उत्तर था– 'नहीं।' मैंने आगे प्रश्न किया 'क्या दंगाइयों का भी कोई धर्म होता है, जो उन्हें हिन्दू–मुस्लिम दंगे, जैसा नाम आप दे रहे हैं ? जहाँ तक मेरी जानकारी है, दंगे केवल दंगे होते हैं, जो कुछ अपराधी व्यक्तियों के द्वारा किये जाते हैं। हर समुदाय में कुछ अच्छे–बुरे व्यक्ति होते हैं।' उनका उत्तर था– 'भारत के विषय में, अमेरिका में छपी कुछ पुस्तिकाओं में इसी प्रकार का उल्लेख था।' इस उत्तर के बाद तो उनकी विद्वत्ता की रही–सही कलई भी उतर चुकी थी। उनकी सारी चालाकी मन के कल्मष और भारत के प्रति दुर्भावना को छिपाने में विफल रही। विवाद को तूल पकड़ते देखकर आयोजकों ने कार्यक्रम–समाप्ति की घोषणा कर दी। इस घटना से यह बानगी मिल जाती है कि भारत के विरुद्ध अमेरिकी जरखरीद बुद्धिजीवी किस कदर घटिया दुष्प्रचार पर उतर आये हैं! दुर्भाग्य की बात तो यह थी कि प्रो. ताम्बिया के इस व्याख्यान के अवसर पर सभाभवन में,

भारतीय मिशन के कुछ वरिष्ठ अधिकारी भी थे, जो केवल ओंठ सिले बैठे रहे। इस दुष्प्रचार का उत्तर देने की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। इस घटना के बाद, पेरिस के अनेक विद्वानों ने मुझे टेलीफोन पर इस अमेरिकी विद्वान् की कलई खोलने के कारण बधाई दी। लेकिन **विचार का बिन्दु यह है कि विदेशों में भारत के विरुद्ध किये जा रहे, इस प्रकार के दुष्प्रचार का मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए क्या हमारी कोई स्थायी व्यवस्था है? क्या हम अब भी इस मुगालते में हैं कि भारत के विषय में सही जानकारी विदेशों में भारतीय मिशनों के ये 'शालीन' अधिकारी दे देंगे? यदि यह भ्रम है, तो अब उसे दूर कर लेना चाहिए।** यद्यपि भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों के विषय में कोई अवमाननापूर्ण विचार प्रकट करना समीचीन नहीं है; क्योंकि निःसन्देह वे एक निर्धारित परीक्षा में अपनी योग्यता का प्रर्दशन करने के बाद ही चुने गए हैं– उनकी देशभक्ति भी असन्दिग्ध है तथापि उनमें यह बात भी नहीं है, जिसके विषय में कहा गया है– 'वह चितवनि औरै कछू जेहि बस होत सुजान।' केवल उनके बल पर विदेशों में भारत की छवि सुधरने वाली नहीं है– यह स्पष्ट है। **वर्त्तमान भारत सरकार यदि चाहती है कि विदेशों में भारत की छवि उज्ज्वल हो, स्वयं शासक–दल को 'फासिस्ट' और 'फंडामेंटलिस्ट' जैसे विशेषणों से न नवाजा जाये, तो उसे विदेश–सेवा से कुछ हटकर अन्य क्षेत्रों के योग्य व्यक्तियों को भी अपने मिशनों में नियुक्त करना चाहिए और नियुक्ति उन्हीं की की जाये, जिन्हें भारतीय संस्कृति के स्वाभिमान और सम्मान की पहचान हो तथा उनमें उसके प्रभावी संप्रेषण की क्षमता भी हो।**

परमाणु–परीक्षण के बाद पेरिस में कुछ और विचित्र अनुभव भी आये। भारत के बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण किया। पेरिस में रह रहे कुछ वे बुद्धिजीवी, जो भारत–यात्रा के समय भारत–सरकार से विशिष्ट सुविधा पाते रहे थे, वे अब पाकिस्तानी राजदूत के साथ लंच, डिनर और काकटेल का मजा ले रहे थे। इनमें से एक बुद्धिजीवी तो ऐसे भी थे, जो भाजपा पर किताब लिखने के कारण चर्चित हुए थे। क्या हम इन छद्म बुद्धिजीवियों से सावधान रह पायेंगे?

विदेश की भूमि पर भारत के विभिन्न अधिकारी स्वदेश की छवि को धूमिल करते हुए कैसे उसे घोर आर्थिक क्षति पहुँचाते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी पेरिस के शार्ल दे गोल विमान पत्तन पर इसी ७ जून को हुआ। उस दिन पेरिस में दिल्ली–मुंबई की उड़ान भरने की बारी एयर इंडिया की थी। उड़ान का समय था– अपराह्ण साढ़े चार बजे। यात्री अपने सामान को विमानतल के कर्मचारियों को सौंपकर तथा बोर्डिंग कार्ड प्राप्त करके लाउन्ज में प्रतीक्षारत थे। दिल्ली से एयर इण्डिया का विमान पहले ही दो घंटे विलंब से आया। उसके बाद उसमें कोई मामूली सी तकनीकी खराबी आ गई। रात्रि में नौ बजे विमान में यात्रियों को आरूढ़ कराकर उन्हें भोजन देकर पहले कहा गया कि भोजन के बाद उन्हें होटल में भेजा जा रहा है। फिर रात्रि में दस बजे तकनीकी खराबी दूर हो जाने और विमान के ९० मिनट बाद उड़ान भरने की सूचना दी गयी। विमान ने जब ११ बजे के बाद भी उड़ान नहीं भरी, तो यात्री अधीर हो उठे। कुछ देर में एयर इण्डिया के पेरिस–कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारी भी आ गये। उनके साथ विमान के कर्मचारियों का विवाद रात्रि में २ बजे तक चला, लेकिन कोई भी निर्णय न हो सका। उस समय विमान के भीतर और बाहर का दृश्य बिल्कुल मछली–बाजार जैसा था। अनिर्णय की इस स्थिति को संभाला पेरिस के विमान तल के फ्रासीसी अधिकारियों ने, जिन्होंने तुरन्त एयर इण्डिया के अधिकारियों से कोई निर्णय लेने के लिए कहा– तब रात के तीन बजे यह निर्णय हुआ कि अब फ्लाइट सवेरे जायेगी। यात्रियों को होटल भेजने का निर्णय हुआ– एयर इण्डिया के अधिकारी और विमान का चालक वर्ग तो अपने–अपने आवास और होटल चले गये, लेकिन यात्री सवेरे पाँच बजे से पहले होटल नहीं पहुँच सके, क्योंकि विमान तल की महिला फ्रांसीसी अधिकारी इस बात पर अड़ गयी कि सभी यात्रियों को कस्टम–क्लियरेन्स करना होगा– आरक्षित सामान फिर से सँभालना पड़ेगा। सबसे संकटग्रस्त स्थिति थी उन ट्रान्जिट यात्रियों की, जिनका पेरिस में ठहरने का वीसा समाप्त हो चुका था, या जो अन्य देशों से आकर पेरिस में फ्लाइट बदल रहे थे। इन्हें बिना वीसा के पेरिस के होटल में फ्रांस के कानून के अनुसार ठहराया नहीं जा सकता था! इनका अस्थायी वीसा बनाने की प्रक्रिया सवेरे छह बजे तक चलती रही। **इन यात्रियों को जिस होटल में ठहराया गया, उसमें प्रत्येक कक्ष का किराया १५०० फ्रैंक (लगभग दस हजार रु०) प्रतिदिन था। सभी यात्रियों के सम्मिलित किराये की राशि बनी लगभग चालीस लाख रुपये। एयर इण्डिया का यह विमान अगले दिन (८ जून को) पूरे २४ घंटे विलम्ब से अर्थात**

श्रद्धाञ्जलि

रामकुमार 'भ्रमर' नहीं रहे

हिन्दी के मूर्द्धन्य साहित्यकारों में से एक श्री रामकुमार 'भ्रमर' का पिछले दिनों स्वर्गवास हो गया। राम–कथा को सरस औपन्यासिक स्वरूप देने वाले 'भ्रमर' जी मात्र कथाकार, उपन्यासकार ही नहीं थे, श्रेष्ठ व्यंग्यकार भी थे। 'पाञ्चजन्य' (साप्ताहिक) के वे नियमित स्तम्भ लेखक रहे थे। उनके निधन से जो स्थान रिक्त हो गया है, उसको भरना सहज नहीं है।

'राष्ट्रधर्म' परिवार अपने इस पुराने लेखक की पुण्य–स्मृति को श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए सादर प्रणाम करता है।

अपराह्न ४.३० बजे ही उड़ सका। एयर इण्डिया को चालीस लाख रुपये की यह हानि, यात्रियों को असह्य असुविधा और भारत की प्रतिष्ठा की इतनी बड़ी क्षति केवल इसलिए हुई कि एयर इण्डिया के पेरिस कार्यालय के प्रशासनिक अधिकारियों और विमान के चालकवर्ग में परस्पर वैचारिक असहमति थी और उनके अहंकार परस्पर टकरा रहे थे–कोई भी झुकना नहीं चाहता था– और न समझदारी से काम ले रहा था! यदि यात्रियों को होटल में ही रोकना था, तो यह निर्णय पहले क्यों नहीं लिया गया ताकि वे आराम तो पा जाते? तकनीकी खराबी दूर हो जाने पर भी, और बार–बार ध्वनि–विस्तारक पर यह घोषणा करने के बावजूद कि कुछ ही क्षणों में विमान उड़ान भरने वाला है– विमान ने उड़ान क्यों नहीं भरी? जो सामान कहीं गया ही नहीं, उसके कस्टम–क्लीयरेन्स की क्या आवश्यकता थी? एयर इण्डिया के बहुसंख्यक भारतीय यात्रियों को विमान–तल की मात्र एक महिला फ्रांसीसी अधिकारी की सूझबूझ या कृपा पर क्यों छोड़ दिया गया? क्या पारस्परिक सामंजस्य से चालीस लाख रुपये की यह क्षति बचायी नहीं जा सकती थी? ये प्रश्न मेरे मन को आज भी मथ रहे हैं– क्या एयर इण्डिया के प्रभारी केन्द्रीय मन्त्री और उच्चाधिकारी इस घटना की निष्पक्ष जाँच करायेंगे? **८ जून को विमान ने जब उड़ान भरी, तो भोजन परोसते समय एक व्योम बाला ने पूछा– 'आपकी दृष्टि में कल, सर! कौन जीता?' 'इसका निर्णय तो सन्दिग्ध है, लेकिन इतना निश्चित है कि इस घटना से विदेश की भूमि पर भारतीय विमान सेवा की छवि बेहद धूमिल हुई। सामूहिक रूप से तो हम सब हार गये।'**

क्या हम भविष्य में विदेश की भूमि पर, अपने व्यक्तिगत अहंकार को परे रखकर केवल भारतीय के रूप में सोचने का प्रयत्न करेंगे ताकि भारत के गौरव को धूमिल करने वाली इन घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो? क्या परमाणु–परीक्षण की अनावश्यक आलोचना करने वाले इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर बोलेंगे कि उनके वक्तव्यों को विदेश में भी सुना जाता है? ❒

प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी भाजपा–सांसद–प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन करते हुए।

ध्यातव्य

अपने देश में अनेक फाउण्डेशन (देशी–विदेशी) काम करते हैं, जिनमें से कईयों पर सन्देह व्यक्त किया जाता है और गुप्तचरी तक के आरोप लगाये जाते हैं, विशेषकर अमेरिकी 'फोर्ड फाउण्डेशन' और सोनिया गांधी के 'राजीव फाउण्डेशन' जैसी संस्थाओं पर। ऐसे में यह कितनी सुखद अनुभूति का विषय है कि एक फाउण्डेशन ऐसा भी है, जो पूर्णतः राष्ट्रवादी– चेतना–जागरण के प्रति समर्पित है– यह है सूर्या फाउण्डेशन (बी–३/३३०, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली–११००६३)। पिछले महीने उक्त फाउण्डेशन की साधना–स्थली, झिंझोली में लगे भाजपा के नये सांसदों के त्रिदिवसीय शिविर का उद्घाटन प्रधानमंत्री माननीय अटल जी ने किया था। "साथ रहें, विचार करें; पिछले काल पर नजर व आने वाले समय की तैयारी करें। संसद् में मर्यादा–पालन करें; परन्तु बात अवश्य कहें मर्यादा के साथ, दृढ़ता और तैयारी से, लोकप्रियता के लिए नहीं, तात्कालिक लाभ के लिए नहीं। संसद् के समय का उपयोग ठीक से करें, अन्यथा अनेक विधेयक महीनों से पड़े हैं" इन उद्बोधक शब्दों में प्रधानमन्त्री ने लगभग सब कुछ कह दिया। इस सांसद्–प्रशिक्षण–शिविर में सम्मिलित सांसदों का मार्गदर्शन भाजपा अध्यक्ष श्री कुशाभाऊ ठाकरे के अतिरिक्त डॉ. मुरली मनोहर जोशी, गोविन्दाचार्य, राजेन्द्र शर्मा, राम नाईक आदि ने भी किया।

तरुणों के लिए भी ऐसा ही एक प्रशिक्षण–शिविर इस फाउण्डेशन द्वारा आयोजित किया गया, जिसमें १२ प्रान्तों से आये ३१५ तरुणों को विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं के माध्यम से राष्ट्र–सेवा की सही दिशा का सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक मार्गदर्शन प्राप्त कराया गया। व्यक्ति–निर्माण की दिशा में यह एक लघु–प्रयत्न था।

(शिविर में संगणक पर किशोर प्रशिक्षणार्थी)

अत्यन्त खेदजनक स्थिति यह है कि राष्ट्र–निर्माण के ऐसे श्रेष्ठ क्रिया–कलापों को हमारे समाचार–पत्र उचित एवम् अपेक्षित महत्त्व नहीं देते, जबकि अपराधों के समाचारों से उनके स्तम्भ भरे रहते हैं। सूर्या फाउण्डेशन के चेयरमैन जयप्रकाश जैसे अन्य उद्योगपति भी इस ओर अग्रसर हों, राष्ट्र और समाज को इसकी अपेक्षा है।

राव सुरताण जिसने अकबर को चुनौती दी थी

● डॉ. श्रीकृष्ण सिंह सोंढ़

जिन कारणों एवं सन्दर्भों के लिए सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक हल्दीघाटी एवं दिवेर के युद्ध हिन्दुआ सूर्य महाराणा प्रताप सिंह (सिसोदिया) ने मुगल बादशाह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर के विरूद्ध लड़ा था, ठीक उन्हीं सिद्धान्तों, देश–राष्ट्र–प्रेम, स्वाभिमान की रक्षा, हिन्दू धर्म–संस्कृति की रक्षा एवं स्वाधीनता के निमित्त अकबर के विरूद्ध राव सुरताण देवड़ा (चहुँआण) ने दत्ताणी का युद्ध लड़ा था। इस युद्ध में मुगल हार गये थे। खेद है कि इतिहास ने दत्ताणी के युद्ध एवं राव सुरताण को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया तथा इन्हें बिसार दिया।

जनपद सिरोही राजस्थान के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। सिरोही नगर सिरणवा पर्वत की तलहटी में बसा हुआ है, जो पहले एक स्वतंत्र राज्य की राजधानी था। नगर की पर्वतीय घाटी में बना भव्य गढ़–किला, जहाँ कभी भारी गहमागहमी के साथ घोड़ों की टापें, तोपों के धमाके तथा युद्धघोष गुंजायमान होता था, वहीं आज चमगादड़ों की फड़फड़ाहट, उल्लुओं की टहुक व कबूतरों की गुटरगूँ का स्वर ही सुनाई पड़ता है। सूनी दीवारों का एक– एक पत्थर गर्व से उन्नत भाल लिए अपने अतीत की गौरव गाथा को कहता सा लगता है। ये पत्थर इतिहास के मूक साक्षी हैं। ये स्मरण दिलाते हैं कि हमने यहाँ उत्पन्न हुए राव शेष गहल, देवराज, मानसिंह, सुरताण देवड़ा सरीखे नर–केशरी जनों को देखा है; जिन्होंने देश–धर्म के लिए ही अपने को न्योछावर कर दिया; पर स्वतंत्रता तथा संस्कृति की पताका को झुकने नहीं दिया।

शूरवीरों की भूमि सिरोही में ही राव सुरताण देवड़ा ने जन्म लिया। हिन्दू धर्म–संस्कृति की रक्षा, क्षत्रिय आन–बान–मर्यादा का पालन एवं आजादी मानों उन्हें जन्म से ही घुट्टी में प्राप्त हुई थी। मुगल अकबर की साम्राज्यवादी लिप्सा क्षत्रिय राजपूत शासकों के संग जबर्दस्ती रिश्ता कायम कर हिन्दुओं को पददलित करने की उसकी ललक व चाल ने उसे सन् १५८२ ई. में सुरताण देवड़ा के पास दूत भेजने को प्रेरित किया। दूत ने कहा कि आपको मुगल दरबार पहुँचकर जुहार व मुजरा करने के लिए बुलाया गया है, अन्यथा शाही प्रकोप आप पर टूटेगा। इस पर सुरताण ने अकबर को लिखित पत्र भेजा कि जुहार–मुजरा तो सिर काट कर धरती पर गिर जाने के बाद भी नहीं होगा; क्योंकि कबन्ध (धड़) फिर भी युद्ध करता रहेगा। यह ज्ञात होते ही अकबर क्रोधित हो चिढ़ गया तथा उसने सुरताण को परास्त कर सिरोही को अपने अधीन करने के लिए शाही सेना को भेजा।

महाराणा प्रताप का भाई जगमाल सिसोदिया प्रताप के सर्वसम्मति से राज्यारूढ़ होने से रुष्ट होकर मुगल अकबर का दरबारी हो गया था। अकबर ने विशाल मुगल सेना को इसी जगमाल के अधीन सिरोही विजय व सुरताण को बन्दी बनाने के लिए भेजा। सन् १५८३ ई. में शाही सेना ने आबू पर्वत के निकट दत्ताणी के खेतों में अपनी छावनी डाल दी। जगमाल ने एक दूत सुरताण के पास भेजा कि अब भी समय है, वह अकबर की अधीनता स्वीकार कर ले और नाता कर ले; परन्तु सुरताण तो प्रताप एवं चन्द्रसेन के पथ का राही था, वह अपने कुल को कलंकित कैसे होने देता?

राव सुरताण देवड़ा (चहुँआण) ने सिरोही राज्य के अपने वीर–बाँकुड़ा व राजनीति विशारद रणपुंगवो को बुलाया। सारी रणनीति आनन–फानन में तय की गयी। केशरिया साज–सज्जा के साथ, शाका करने को उद्यत, मारने या मरने की चाह लिए, रणभेरी बजाते हुए, ढाक नगाड़ों से धरती गुंजायमान करते हुए, सुरताण ने १७ अक्टूबर १५५३ ई. को मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। तोपों की गरज से धरती हिल उठी और धुएँ से आसमान ढक गया। अकबर के दरबारी कवि दुरसा आढा (चारण) ने इस युद्ध का भी हल्दीघाटी के युद्ध के समान ही वर्णन प्रस्तुत किया है तथा अकबर की चाटुकारिता का परित्याग कर प्रताप के समान ही सुरताण की भी भारी प्रशंसा की है।

इस युद्ध में मुगल सेनापति जगमाल मारा गया। मुगल सेना के पैर उखड़ गये और एक बार जो उन्होंने मुँह फेरकर पीठ दिखायी, तो आगरा जाकर ही रूके। सुरताण के कारण उसका ताजो–तख्त एक बार कम्पायमान हो उठा। एक छोटी–सी सेना ने अपनी भारी इच्छाशक्ति से विशाल मुगल सेना को परास्त कर दिया। सन् १५८४ ई. में पुनः स्वयं अकबर एक विशाल सेना लेकर सिरोही आया, पर उसे अपने अधीन न कर सका।

सुरताण की वीरता की गाथा आज भी रक्तस्नात दत्ताणी के खेत कह रहे हैं; और कह रही हैं वहाँ निर्मित छतरियाँ। दत्ताणी की इस युद्ध भूमि को एवं राव सुरताण को, जिसने एक महत्त्वपूर्ण इतिहास को रचा था, इतिहास ने थोड़ी भी जगह नहीं दी।

क्या आज भी इन्हें इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान देने का मन समाज एवं राष्ट्र तथा शासन–प्रशासन बनायेगा? ☆

—चित्तरपुर–८२५१०१, रामगढ़ (हजारीबाग) वनांचल

पुस्तक-समीक्षा

समीक्षक : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र

भारत विभाजन का दुःखान्त और संघ

प्रस्तुत पुस्तक में देश के विभाजन और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हुए पंजाब के नर–संहार का बड़ा ही हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किया है। यह भीषण नर–संहार मानवता के इतिहास का एक काला अध्याय है जो भारत की स्वतंत्रता के स्वर्णिम पृष्ठों पर छपकर उसे कलंकित कर गया है।

इस भीषण हत्याकांड में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बलिदानी युवकों ने राष्ट्र–भक्ति, परोपकार एवं मानवीय दया व करुणा का जो अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया, वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा। संघ के निःस्वार्थ स्वयंसेवकों ने हिन्दू–सिख लोगों की ही सहायता नहीं की; वरन् उन्होंने निःस्वार्थ समाज सेवा के अनेक ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत किए, जिनमें मुस्लिम, युवतियों और बच्चों को उनके अभिभावकों के पास सुरक्षित पहुँचाने का उल्लेख है। देश के इतिहास को जानना और उससे शिक्षा ग्रहण करना प्रत्येक मानव का धर्म है। अस्तु, यह पुस्तक पठनीय है।

लेखक : श्री मदनलाल विरमानी
प्रकाशक : लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्रनगर, लखनऊ–४
मूल्य : रु. ११.०० मात्र पृष्ठ : ७८

भारतीयता के आराधक हम

'भारतीयता के आराधक हम' शीर्षक पुस्तक भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता की गौरव गाथा को सरल, बोधगम्य तथा प्रभावी शैली में प्रत्येक राष्ट्रभक्त भारतीय के लिए प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत पुस्तक की विषयवस्तु १२ उपशीर्षकों के माध्यम से पठनीय है।

आज की दूषित राजनैतिक प्रणाली के अन्तर्गत जब असुरक्षा, सामाजिक–भेदभाव व विदेशी शक्तियों का कुप्रभाव हमारे नवयुवकों पर घातक प्रभाव डाल रहा है और हमारे जन–जीवन से श्रेष्ठ संस्कारों, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रभाषा व देवभाषा का सम्मान धीरे–धीरे मन्द पड़ रहा है, तब यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसी शिक्षाप्रद व प्रेरक पुस्तकें हाईस्कूल की कक्षाओं तक अनिवार्य रूप से पाठ्य–पुस्तकों की सीमा में सम्मिलित की जायें। मुद्रण शुद्ध और साफ सुथरा है।

लेखक : श्री राणा प्रताप सिंह
प्रकाशक : लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्रनगर लखनऊ–४
मूल्य : रु. १६.०० पृष्ठ : ११६

हमारे ऋषि–मुनि भाग–३

आलोच्य पुस्तक में सात ऐसे ऋषियों को लिया गया है, जिन्होंने अपने तपबल से भारत की आध्यात्मिक शक्ति को भक्ति और कर्म के साथ संयुक्त कर भारत को जगद्गुरु होने का सामर्थ्य प्रदान किया है। मनु, अत्रि, भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, कणाद और मुद्गल ऐसे ही श्रेष्ठ ऋषि व मुनि है।

भगवान् मनु ने मानव जाति को न्यायोचित कार्य करने की सद्प्रेरणा प्रदान की। धर्म के दश लक्षणों को प्रतिपादित करके सम्पूर्ण मानव जाति को धर्ममय जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान की। अत्रि मुनि सर्वप्रथम विज्ञानवेत्ता हैं, जिन्होंने सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के रहस्य को लोगों को समझाया। अत्रि संहिता में जप, तप, अनुष्ठान, उपासना, योग, याग, कर्म, अकर्म, और प्रायश्चित्त आदि गूढ़ विषयों को सम्यक् रीति से समझाया गया है। अग्नि पूजा और सूर्योपासना का रहस्य तेजोपासक भरद्वाज ऋषि ने उद्घाटित किया।

याज्ञवल्क्य ऋषि वेदमूर्ति माने जाते हैं। उन्होंने शुक्ल यजुर्वेद का निर्माण किया। उत्तरी भारत में इसी शुक्ल यजुर्वेद को ब्राह्मणों ने अपनाया तथा कृष्ण यजुर्वेद के विद्वान् प्रायः दक्षिण में निवास करने लगे। वेदों के अध्ययन–अध्यापन में याज्ञवल्क्य शिक्षा का बड़ा महत्व है। 'याज्ञवल्क्य–स्मृति' के माध्यम से अपने चारों वर्णों के कर्त्तव्य की विवेचना की है। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन पर ग्रन्थ रचना की तथा कणमय जगत् का और सर्वव्यापी कणों का सिद्धांत विश्व को प्रदान किया। महर्षि कणाद ने मनुष्यों के ऐहिक और पारलौकिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

गणेशाचार्य मुद्गल मुनि ने मानव जीवन के समस्त विघ्नों के निवारणार्थ तथा सामाजिक सौहार्द सुख–सम्पत्ति के हेतु गणेशपूजन के महत्त्व को लोगों को समझाया। मुद्गल मुनि ने मानव जाति के सेवार्थ सदेह स्वर्ग गमन के इन्द्रराज के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। पुस्तक की भाषा सरल तथा बोधगम्य है। पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

लेखक – प्र. ग. सहस्त्रबुद्धे
प्रकाशक – लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ
मूल्य – १२.०० रु. मात्र, पृ. सं. –७०

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' का जून अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ स्वाभिमान व गौरव में अभिवृद्धि करने वाला रहा। सम्पादकीय हर बार की तरह कसा व पैनापन लिए हुए इतिहास की चीर-फाड़ करने में सहज समर्थ था। एतदर्थ, आप साधुवाद के पात्र हैं। केशव-सृष्टि के बारे में प्रेरणाप्रद जानकारी मिली। निवेदन है कि कभी 'सेवा-विशेषांक' निकालें, जिसमें सभी सेवा प्रकल्पों की जानकारी हो। पाठकीयम् में वचनेश जी की पीड़ा को अनुभव किया जा सकता है। एक तो वैसे ही इतिहास विकृत मानसिकता से लिखा-लिखाया गया, ऐसी स्थिति में यदि तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाता है, तो वेदना का होना स्वाभाविक है। हम वचनेश जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इस पर प्रकाश-प्रक्षेप किया। लेखकों से भी निवेदन है कि भ्रमपूर्ण बातें लिखकर हम पाठकों को, जिनमें विद्यार्थी भी होते हैं, को पथभ्रष्ट न करें।

– प्रमोद दीक्षित 'मलय'
भवानीगंज, अतर्रा, बाँदा

ज्येष्ठ २०५५ (जून १९९८) अंक हेतु आभार स्वीकार करें। मुझे हर्ष है कि आप 'राष्ट्रधर्म' को बौद्धिकता एवं वैज्ञानिकता से संयुक्त कर रहे हैं। स्वीकार्य इतिहास-विवृति एवं निर्विवाद सत्य-प्रतिष्ठापन 'राष्ट्रधर्म' के गौरव में वृद्धि करेगा।

– डॉ. रामप्रसाद मिश्र
मयूर विहार, दिल्ली

'राष्ट्रधर्म' को मैंने पहली बार पढ़ा, जब वह 'पाञ्चजन्य' के साथ मेरे यहाँ आया। सराहनीय पत्रिका है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि इसमें लेखक का पूर्ण पता प्रकाशित किया जाता है। साधुवाद।

– डॉ. राजेश अग्रवाल
अग्रवाल नगर, इन्दौर

'राष्ट्रधर्म' का मार्च '९८ अंक श्रेष्ठ मनभावन लगा। कोयम्बटूर बम विस्फोटों पर रज्जू भैया के उत्तर से जुड़ा श्रेष्ठ स्पष्टवादी चिंतन लगा।

'निर्लज्जता जिनका आभूषण है' शीर्षक लेख मन्थन योग्य लगा। दीक्षित जी का प्रेरक लेख राजनीति में श्रेष्ठ लगा। सचमुच मूल्य, संस्कृति यहाँ की विरासत व जीवन पद्धति से जुड़े हैं। इनसे हटना श्रेयस्कर नहीं है। पंडित वचनेश त्रिपाठी का सनातन भारत पर लेख राष्ट्र-गौरव का अहसास दिलाता है।

– नारायणदास मंधवानी
सिन्धी कालोनी, उज्जैन

'राष्ट्रधर्म' का मई '९८ अंक भी भावोत्तेजक उत्कृष्ट रचनाओं से अलंकृत है। सम्पादकीय में तथ्यपूर्ण बातों का प्रतिपादन हुआ है। अनेक लेख शोधपूर्ण, ठोस, पठनीय एवं दिशाबोधक हैं। कविताएँ भी जोरदार हैं। देशभक्ति और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था का अजेय स्वर झंकृत है रचनाओं से। सबसे बड़ी बात यह है कि आप बाल-रचनाओं को प्रश्रय के साथ छापते आ रहे हैं। आप सभी को हार्दिक बधाई।

– श्रीराम सिंह 'उदय'
बलिया (उ.प्र.)

नव वर्ष अंक पाते ही पूरा चाट गया। रज्जू भैया, त्रिपाठी जी, पिल्ले जी, आशा जी, गुप्त जी की रचनाएँ विशेष रूप से प्रशंसनीय हैं।

'चिट्ठी आयी पेरिस से' पढ़कर बहुत अच्छा लगा। पुणतांबेकर जी की रचना सामयिक है एवं आधुनिक तथा प्रगतिशील कहे जाने वालों के लिए सीख है।

– बबीता राय
विक्रमगंज, रोहतास

'राष्ट्रधर्म' का मई अंक प्राप्त हुआ। आपके सम्पादन में मेरी रचना 'रोको म[illegible] सुराज के रथ को' और भी निखर गई, किन्तु दूसरी पंक्ति में 'जैसी श्री अटलबिहारी' के स्थान पर 'जैसी थी अटलबिहारी' छप गया, जो बहुत खटका। कृपया प्रूफ संशोधन पर ध्यान दें। इस अंक की प्रायः सभी रचनाएँ राष्ट्र निर्माण हेतु प्रेरक हैं। आपके सम्पादकीय लेख ने पत्रिका में चार चाँद लगा दिया है।

– राजेश्वर झा 'राजीव'
तिरासी, भागलपुर (बिहार)

'राष्ट्रधर्म' के ज्येष्ठ २०५५ वि० (जून १९९८ ई०) अंक का मैंने अध्ययन किया। यह अंक मेरे लिए सातवाँ अंक है। इस अंक में प्रकाशित समस्त सामग्री की प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन मेरे विचार से सारी सामग्री अमूल्य, विशेष रोचक व ज्ञानवर्द्धक है, जो अन्य पुस्तकों में उपलब्ध होना नामुमकिन है।

– गोविन्द सिंह सिकरवार 'निर्भीक'
ग्वालियर (म.प्र.)

मैं 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पु[illegible] पाठक हूँ। इस पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी की जो भावना हमारे हृदयों में उत्पन्न हुई है, वह अद्भुत है। इसके लेख एवं व्यंग्य पढ़कर व्यक्ति यह सोचने के लिए विवश हो जाता है कि उ[illegible] उसने अपनी संस्कृति से विरत होकर कितनी बड़ी भूल की है।

माह, जून का अंक पढ़ा। सम्पादकीय ने प्रभावित किया। श्री वचनेश त्रिपाठी की 'भैया की बात' कहानी रोचक लगी। 'अपरिहार्य क्यों हो गई है संविधान की समीक्षा'– केशवदेव शर्मा का लेख भी तर्कसंगत और विचारणीय है। हरीशं[illegible] दीक्षित की 'दानवी-शक्ति पर इत[illegible] वालों' शीर्षक वाली कविता भी वीर-[illegible] से ओत-प्रोत मन को बहुत भायी।

– रामराज [illegible]
मोहनलालगंज, लख[illegible]

> **कमियाँ ढूँढ़ें, हमें बतायें।**
> **केवल नहीं प्रशंसा गायें।।**

समाज

– शंकर पुणतांबेकर

अजायब घर में मैंने एक अजीब प्रतिमा देखी पत्थर की। उसके चेहरा था, पर आँख नहीं थी। उसके पैर नहीं थे, हाथ नहीं थे, गर्दन नहीं थी।

अजायबघर में मामा के बेटे के साथ गया था। मामा ने कहा था– आये हो तो यहाँ का अजायबघर जरूर देखो।

मैंने ममेरे भाई से कहा, कैसी अजीब मूर्ति है यह! बिन आँखों का चेहरा, हाथ–पैर भी नहीं हैं इसके।

भाई ने कहा, यह समाज की मूर्ति है।

समाज की मूर्ति! मैंने आश्चर्य से कहा, क्या समाज के हाथ–पैर–गर्दन आदि नहीं होते।

इसका अपना इतिहास है। समाज के पहले सभी अवयव थे, किंतु जैसे–जैसे आदमी प्रगति करता गया, समाज का एक–एक अवयव उससे छिनता गया।

और इसके बाद भाई ने मुझे समाज का इतिहास सुनाया। मूर्ति के सामने दीवार से लगा एक चबूतरा था, हम उस पर बैठ गये।

समाज बड़ा खुशहाल था– लड़ाई–झगड़ा नहीं, विषमता नहीं, सर्वत्र भातृभाव। राजा की एक राजनीति छोड़ दें, तो शेष पैसा, धर्म, चिकित्सा, कला, शिक्षा आदि सभी एक धरातल पर मानवीय धरातल पर थे।

यह ऐसा इसलिए संभव था कि समाज की अपनी एक नीति थी। नीति यह थी कि संदूक, ताला और अँधेरा किसी का कोई नहीं रहेगा।

लेकिन प्रगति के साथ इस नीति की अवहेलना होने लगी, बल्कि यों कहें कि नीति की अवहेलना के साथ प्रगति होने लगी।

पैसा एक दिन समाज के पास गया और बोला, मुझे संदूक रखने की इजाजत चाहिए।

नहीं, मैं इजाजत नहीं दूँगा, समाज ने कहा– इससे संग्रह बढ़ेगा, तो विषमता पैदा होगी और विषमता कलह पैदा करेगी।

पैसे ने कहा, मैं अपनी सुरक्षा के लिए संदूक चाहता हूँ, संग्रह के लिए नहीं। समाज ने पैसे के इस आश्वासन पर कि "मैं संग्रह नहीं बनूँगा" उसे संदूक रखने की इजाजत दे दी।

लेकिन पैसा संदूक पाकर संग्रह बने बिना नहीं रहा, बल्कि उसने इसी नियत से संदूक की माँग की थी।

कुछ दिनों के बाद पैसा फिर समाज के पास पहुँचा और उसने इस बार उससे ताले की माँग की, जिसे सुनकर समाज की भवें तन गयीं।

समाज ने कहा, तुम ताले की माँग कर रहे हो, इससे साफ जाहिर है कि तुमने दिया हुआ वचन तोड़ा है, तुम संग्रह बने हो, और संग्रह बने हो इसलिए अब तुम्हें उसके लुट जाने के भय से ताला चाहिए। नहीं, तुम्हें ताले की कतई इजाजत नहीं मिलेगी।

संग्रहयुक्त पैसा अपने में कुछ आधिक शक्ति अनुभव करने लगा था, सो उसने समाज को धमकाकर कहा, मैं तुम्हारी अवज्ञा करके ताला रखूँ, तो तुम मेरा क्या कर लोगे ?

समाज ने इस बात का ख्याल कर कि पैसा अपने से टूट न जाये, इसलिए मजबूर होकर पैसे को ताले की इजाजत दे दी।

समाज किसी ताले की इसलिए इजाजत नहीं देता था कि इससे एकाधिकार का भाव पैदा होता है। संदूक संग्रह नहीं रह जाता, वह गाँठ बन जाता है। फिर संग्रह की सीमा पर भी नियंत्रण नहीं रह जाता।

और आगे ऐसा ही हुआ। पैसे के पास का संग्रह गाँठ बना और वह बढ़ता चला गया।

पैसा अपनी शक्ति और बढ़ाना चाहता था और उसे छिपाये रखना चाहता था, सो इसके लिए वह अब

समाज के पास अंधेरे कमरे की इजाजत माँगने पहुँचा।

समाज ने इस बार उसकी बात बिलकुल नहीं मानी। पैसे से कहा– तुम्हारी नीति के कारण मुझे जो डर था वही हुआ– समाज में विषमता पैदा हुई, कलह पैदा हुआ। अब मैं तुम्हारे अँधेरे कमरे की माँग स्वीकार कर लूँ, तो आगे भ्रष्टाचार पैदा होगा, कालाबजारी–रिश्वतखोरी पैदा होगी, महँगाई पैदा होगी, परिणामस्वरूप आदमी और आदमी के बीच का रिश्ता आदमी का नहीं रह जायेगा, मात्र पैसे का बन जायेगा, पैसे का।

जब समाज किसी तरह नहीं माना, तो पैसे को ऐसा गुस्सा आया कि उसने समाज के पैर काट दिये, जो स्वयं पैसे के नहीं होते।

और उसने अपने लिए अँधेरा कमरा बना लिया।

आगे अब यही सिलसिला चल पड़ा।

पैसे के बाद धर्म समाज के पास संदूक के लिए पहुँचा कहा–मुझे पोथियों की सुरक्षा के लिए संदूक की आवश्यकता है, मौसम से सुरक्षा के लिए।

वास्तव में धर्म को अपनी पोथी की नहीं, अपने पैसों की सुरक्षा के लिए संदूक की आवश्यकता थी, जो समाज ने धर्म की नीयत पर संदेह न करते हुए दे दी। लेकिन समाज को धर्म पर तब संदेह हो आया, जब वह एक दिन उससे ताले की इजाजत माँगने के लिए आया। समाज ने कहा– धर्म और ताला बिलकुल विपरीत बातें हैं धर्म के साथ ताला जुड़ा नहीं कि धर्म नहीं रह जाता, वह पाप की ओर अग्रसर होने लगता है, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि धर्म जब पाप की ओर प्रवृत्त होता है, तो उसे ताले की जरूरत पड़ जाती है।

धर्म को समाज की यह बात सुन ऐसा क्रोध आया कि उसने समाज की आँखें निकाल ली। आँखें, जो धर्म के पास नहीं होती।

धर्म को आगे अँधेरे कमरे की भी आवश्यकता पड़ गयी। उसने समाज की इजाजत लिये बगैर ही अँधेरा कमरा ध्यान के नाम से बना लिया, जिसमें से वर्तमान आश्रम पैदा हुए।

धर्म को जो नीतिमत्ता का ही प्रचलित नाम था, इस तरह गिरते देख चिकित्सा, कला और शिक्षा में भी अधोगति आ गयी।

ये भी एक–एक कर समाज के पास पहुँचे, समाज ने जब इनकी माँगों को ठुकराया, विशेषकर ताले की माँग को, तो चिकित्सा ने समाज का हृदय काट लिया, जो उसके पास नहीं होता। कला ने उसके हाथ काट लिये, शिक्षा ने गर्दन काट ली, जो इनके पास नहीं होते।

शिक्षा जब समाज के पास पहुँची तो समाज कह उठा– शिक्षे तुम भी ! तुम संदूक, ताला और अँधेरा कमरा बनोगी, तो मानव की अधोगति चरमबिंदु को पहुँच जायेगी।

अंत में भाई ने बताया, समाज के देखो कान भी नहीं हैं। राजनीति भी पहले औरों के साथ मानवीय धरातल पर थी, समाज के पास पहले वाली मानव हित की दुहाई में संदूक, ताला और अँधेरा कमरा माँगने गयी थी। जब समाज ने अँधेरा कमरा देने से इनकार किया यह कहकर कि इससे तुम जनता पर अन्याय–अत्याचार करोगी तो राजनीति ने उसके कान काट लिये, जो स्वयं उसके नहीं होते।

अजायबघर से लौटते हुए मैं सोच रहा था, समाज का... अपने–अपने समाज का केवल चेहरा क्यों है ? आज समझ में आया और यह भी कि समाज केवल जीभ ही क्यों चलाता है। ❐

– २, मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५००२१

विशेषांक
अपनी स्वतंत्रता के पचास वर्ष

अगस्त १९९८ श्रावण-२०५५

१२/-

सुजला सुफला मातरम्।

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित

देश पीड़ित है; उसकी पीड़ा की सीमा नहीं। राष्ट्र वेदना–विगलित है; उसकी वेदना का अन्त नहीं। लोक संत्रस्त है; उसके संत्रास की किसी को कोई चिन्ता नहीं। तन्त्र पंगु है और 'पंगु चढ़ै गिरिवर गहन' को झुठलाने पर लगा है। आखिर हो 'क्या' गया है; हो 'क्यों' गया है और हो 'कैसे' गया है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने की चेष्टा क्यों नहीं हो रही और यदि हो रही है, तो उसका स्वरूप कहीं परिलक्षित या भासित क्यों नहीं हो रहा है? जनता कब तक इस पीड़ा, वेदना और संत्रास को भोगते रहकर, झेलते रहकर अपने धैर्य की असीमता सिद्ध करती रहेगी और इस असीमता के लिए लगातार अग्नि–परीक्षा देते रहने की क्षमता बनाये रख सकेगी? इन जैसे बीसियों प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर कहीं दूर–दूर तक दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है और हो भी कैसे; क्योंकि इस समस्त त्रासदी के मूल कारण पर चिन्तन–मनन का क्रम इधर मन्द से मन्दतर होता चला गया है। इस मन्दता को बढ़ाने का क्रमिक दुश्चक्र लगातार चलाया जा रहा है एक (अ) पारदर्शी आवरण के तले, जिसका नाम है 'सेक्यूलरिज्म'। इस 'सेक्यूलरिज्म' के नाम पर देश की जड़ों पर सतत कुठाराघात किया जा रहा है और सभी प्रकार के प्रचार–तन्त्र ने एक प्रकार से इसे अपना 'धर्म' नहीं, 'मजहब' मान लिया है।

देश की पीड़ा, राष्ट्र की वेदना का मूल कारण इसी आवरण में छिपा है और यह है 'मजहब के आधार

पाँयपीर, पेटपीर, बाँहपीर, मूँहपीर...

पर देश का विभाजन'। स्वतन्त्रता के पहले जिस 'कृत्या' से पीछा छुड़ाने के नाम पर इस विभाजन को स्वीकार करने का 'महापाप' देश के तत्कालीन कर्णधारों ने किया था, उस 'कृत्या' के जनक भी तो वही थे, यह सत्य अब छिपा नहीं रह गया है। तथ्य तो यह है कि विभाजन के पश्चात् भी इस 'कृत्या' का आकार–प्रकार सतत विस्तार पाता गया है, जिसका असली पुरोधा यही 'सेक्यूलरिज्म' है। वैसे देखा जाय, तो इस कृत्या का बीजारोपण तो उसी समय हो गया था, जिस समय देश का पहला हिन्दू मुसलमान बनाया गया था और यह कथन है उस मोहम्मद अली जिन्ना का, जिसके बाबा को मुसलमान बनाया गया था तथा जिसे पूरा विश्व 'पाकिस्तान का जन्मदाता' या पाकिस्तान का 'राष्ट्रपिता' मानता है। जिन्ना के इस 'वचन' के सत्य का साक्षात्कार करने से वह 'महापुरुष' हर सम्भव प्रकार से विभाजन के पूर्व भी और 'विभाजन के पश्चात्' भी बार–बार लगातार इनकार करता रहा, जिसे लोक–मानस 'महात्मा' विशेषण के कारण अपनी सहज स्वभावजन्य सनातन श्रद्धा अर्पित कर बैठा था। विभाजन के पश्चात् ऐसे 'महात्मा' के चेलों ने भी इस जिन्नाकथित 'सत्य' को देखने, समझने, मानने से सतत इनकार करते रहने के लिए उसी धूर्तता, उसी छद्म, उसी 'कुटिलता' को अपना शस्त्र बनाये रखा, जिसे 'महाभारत–युद्ध' से पहले और 'महाभारत–युद्ध' के बाद धृतराष्ट्र जीवन– पर्यन्त अपनाये रहा था। धृतराष्ट्र का 'मोह–बिन्दु' था दुर्योधन के लिए हस्तिनापुर का सिंहासन और इन चेलों का 'मोह–बिन्दु' रहा दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ नहीं) का सिंहासन। इस 'सिंहासन–मोह' के सामने देश, राष्ट्र, समाज, जनता इन सबकी 'दिन दूनी रात चौगुनी' गति से बढ़ती पीड़ा का भला क्या अर्थ? और जब कोई अर्थ ही नहीं, तो फिर चिन्ता करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? अपने भोग–विलासों; अपनी सुख–सुविधाओं; अपनी असीम लालसाओं पर अंकुश लगाने, उन्हें नियन्त्रित करने के बारे में सोचने–विचारने की फुरसत ही कहाँ है किसी को? कुर्सी का आकर्षण उनके लिए किसी उर्वशी, रम्भा, मेनका, घृताची से कम नहीं है और यही आकर्षण, यही व्यामोह उन्हें 'पुरुरवा' या 'विश्वामित्र' की तरह यदि दीवाना बनाये है, तो उनकी समझ में कैसे यह बात आ सकती है कि कोई 'उर्वशी', कोई 'मेनका' किसी की सगी नहीं होती। कब छोड़ जाय, कोई नहीं

कह सकता; क्योंकि कोई जानता ही नहीं है।

कलियुग के इन 'पुरुरवाओं' ने तो अब अपनी–अपनी 'उर्वशियों' के चक्कर में यह तक कहना प्रारम्भ कर दिया है कि देश का विभाजन अर्थात् पाकिस्तान का निर्माण एक 'सेटिल्ड फैक्ट' (स्थापित तथ्य) है। इन्हें कौन समझाए कि किसी देश का विभाजन कभी किसी युग में न तो 'स्थापित तथ्य' रहा है और न रह सकता है। द्वितीय विश्व–युद्ध के पश्चात् जर्मनी छह भागों (पश्चिमी जर्मनी; पूर्वी जर्मनी; पश्चिमी बर्लिन के तीन भाग क्रमशः अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रान्स के अधीन एवं पूर्वी बर्लिन) में; वियतनाम दो भागों (उत्तरी और दक्षिणी) में, कोरिया दो भागों (उत्तरी और दक्षिणी) में; यमन दो भागों (उत्तरी और दक्षिणी) में; पैलेस्टाइन दो भागों (यहूदी और अरब तथा उसकी राजधानी यरूशलम भी दो भागों पूर्वी और पश्चिमी) में विभाजित कर दिये गये या हो गये थे। भारतवर्ष को भी भारत और पाकिस्तान दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। यदि युद्ध से वियतनाम यमन और इसराइल (राजधानी यरूशलम सहित) तथा बिना युद्ध के जर्मनी एक हो सकते हैं, तो भारतवर्ष एक क्यों नहीं हो सकता? यदि भारतवर्ष के विभाजन को एक 'स्थापित तथ्य' मानने का षड्यन्त्रपूर्ण प्रयत्न पाकिस्तान और बांग्लादेश के स्थायित्व में परिणत हो गया, तो शेष बचे–खुचे भारत (जिसका लगभग डेढ़ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र पाकिस्तान, चीन और बांग्लादेश के कब्जे में है) का इन पड़ोसियों से संकट भी स्थायी हो जायेगा और भारत की अस्मिता सदा खतरे में रहेगी। भारत की अखण्डता अपरिहार्य है। खण्डित भारत की समस्याओं की जड़ें विभाजन में निहित हैं। ७१२ ई० से चली आ रही सम्पूर्ण भारत के इस्लामीकरण की आक्रामक योजनाओं को विफल करने का एकमात्र उपाय है देश–विभाजन की समाप्ति और इसकी अपरिहार्य शर्त है लोक–मानस से विभाजन का निरस्तीकरण। हाँ, अखण्ड भारत में मुसलमानों की आबादी बहुत बढ़ जायेगी और यहाँ पर यह अति गम्भीर प्रश्न सुरसा की तरह मुँह फैलाकर खड़ा हो जाता है कि जब लगभग बारह प्रतिशत मुसलमान हरदम पूरे देश की नाक में दम किये रहता है, तो पाकिस्तान और बांग्लादेश के मुसलमानों को मिलाकर तो देश स्वतः लगभग एक मुस्लिम देश–तुल्य हो जायेगा; क्योंकि यहाँ के हिन्दू के रूप में जन्मे, पले, बढ़े ये सेक्यूलर नेता, जो मानसिकता की दृष्टि से किसी जयचन्द, मानसिंह से कम नहीं हैं और अपने को 'अधर्म–सापेक्ष' सिद्ध करने की होड़ में देश, राष्ट्र, समाज सबको एक तरफ आले में रखकर मुस्लिम मजहबी जनून के तुष्टीकरण में जुटे रहते हैं, सबसे घातक सिद्ध होंगे। बात काफी हद तक ठीक है; परन्तु यह भूलने का कोई औचित्य नहीं है कि एक खुसरो खाँ (जो बलात् बनाया गया मुसलमान था) ने देवलदेवी की योजना से दिल्ली में हिन्दू–शासन स्थापित करने का प्रयत्न (अल्पकालिक) सफल किया था; एक माधवाचार्य ने तुगलकों की छाती पर विजयनगर–साम्राज्य की स्थापना कर दिखाई थी; एक राणा कुम्भा ने मालवा और गुजरात के सुलतानों के सम्मिलित आक्रमण को परास्त कर 'विजय–स्तम्भ' बनवाया था; एक महाराणा प्रताप ने अकबर जैसे बलशाली मुगल की सारी शक्ति को परास्त कर दिया था; एक शिवाजी ने औरंगजेब जैसे धूर्त बादशाह की छाती पर 'हिन्दवी स्वराज्य' का झण्डा गाड़ा था; एक गुरु गोविन्द सिंह ने पंजाब को धधकता ज्वालामुखी बना दिया था और एक छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड से मुगलशाही को उखाड़ फेंका था। मराठों, जाटों, सिखों और बुन्देलों ने मुगल–साम्राज्य की ईंट से ईंट बजाकर ऐसी–तैसी कर डाली थी। अतः दुर्द्धर्ष, आक्रामक, सतत संघर्षशील, विजयिष्णु हिन्दू इस 'कृत्या' से सदा–सदा के लिए भारतवर्ष को मुक्त कराने में सक्षम सिद्ध होगा।

उक्त सुरसा–मुख–तुल्य प्रश्न का समाधान है पहले भारत में विभाजन के बाद जान–बूझकर, सोच–समझकर बसे रहे मुसलमानों का भारतीयीकरण, जो कठिन तो बहुत है; पर असम्भव नहीं है। इसके आड़े आता है वर्त्तमान 'सेक्यूलरिज्म'। इस 'सेक्यूलरिज्म' को पूर्णतः पराभूत करने का महामन्त्र है प्रखर राष्ट्रवाद। यही सिद्ध–औषध भी है इस देश को, इस राष्ट्र को स्वस्थ और नीरोग बनाने की, जो पिछले पचास वर्षों में पाँयपीर, पेटपीर, मुँहपीर से ग्रस्त होकर जर्जरकाय हो गया है और रोम–रोम पीड़ित है जिसका। ❒

– आनन्द मिश्र 'अभय'

कौन करेगा संविधान में ऐसे संशोधन ?

– हृदय नारायण दीक्षित

संसदीय व्यवस्था केवल लिखित प्रावधानों से ही नहीं चलती। लोक आकांक्षा की अभिव्यक्ति के लिए काम कर रहे प्रतिनिधि सदनों के सदस्यों के आचार, विचार और व्यवहार को संयमित करने वाली सांस्कृतिक मर्यादा ही संसदीय परिपाटी की जीवन-ऊर्जा होती है। ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था की महक में वहाँ के लोक-जीवन की रूढ़ियाँ, परम्पराएँ और मर्यादाएँ ही बढ़-चढ़ कर सारी व्यवस्था को स्वतः-स्फूर्त संयम में बाँधे रखती हैं। एक अलिखित संविधान के जरिए चलने वाली ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था भारत के ३९५ अनुच्छेदों व ८३ संशोधनों वाले भारी-भरकम संविधान के बावजूद हमारी संसदीय व्यवस्था में लोकसभाध्यक्ष से बजट-सत्र में विपक्ष के 'माननीय' सांसदों ने अपने-अपने दल के नेताओं के उकसाने पर कागज छीने हैं। समाजवादी पार्टी व राजद के अध्यक्षों ने सदन में "सिर्फ शाब्दिक माफी" माँगकर अपना राजनीतिक कर्मकाण्ड पूरा किया है। संसद् या विधान मण्डलों में हुल्लड़ करनेवाले सदस्यों का कोई सांस्कृतिक अधिष्ठान नहीं है। वैसे भी राजनीति उनके लिए भारत-भक्ति का अनुष्ठान कभी नहीं रही। राजनीति ऐसे लोगों के लिए एक गिरोहबन्दी भर है, जिसके माध्यम से वे सरकारी-तन्त्र पर कब्जा करते हैं और देश को लूटते हैं।

संविधान के २६ नवम्बर, १९४९ को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित किये जाने से लेकर अब तक अपनी संसद् के इतिहास को देखें, तो संसदीय मर्यादा, परिपाटी, आदर्श और तर्क-प्रति-तर्क की गुणवत्ता में उसे लगातार पतन की ओर ही लुढ़कता पायेंगे। संसदीय व्यवस्था राष्ट्रीय मर्यादाओं, शील और आचार की परिधि में किये गये तर्कों से ही चलती है। यह व्यवस्था असहमति के प्रति हार्दिक सम्मान के रास्ते आम-सहमति और सर्वानुमति के नये द्वार की खोज में निरन्तर गति करने वाली एक धैर्यपूर्ण ध्येयनिष्ठ यात्रा होती है। विपक्ष को इसीलिए प्रतीक्षारत सरकारी पक्ष (गवर्नमेण्ट इन वेटिंग) की संज्ञा दी जाती है। एक पक्ष शासन करता है; क्योंकि उसे जनता के अधिकतम हिस्से का समर्थन प्राप्त होता है। दूसरा पक्ष अपनी नीतियों की परिधि के अधीन सरकारी पक्ष की आलोचना करता रहता है और प्रतीक्षारत रहता है कि भविष्य में जनता उसे सरकारी पक्ष के रूप में प्रतिष्ठित करेगी। दोनों पक्षों के उद्देश्यों में उदात्त राष्ट्र-भाव ही सन्निहित रहता है। दोनों पक्षों के उद्देश्य समवेत रूप में लोक-मंगल के ही होने चाहिए। सत्तापक्ष लोक-मंगल से जुड़कर निरंकुश नहीं होता और संख्या-बल में कम विपक्ष के सही सुझावों की उपेक्षा नहीं करता। विपक्ष सिर्फ आलोचना के ही लिए आलोचना भी नहीं करता। सरकार के राष्ट्र-हितकारी निर्णयों की विपक्ष सराहना भी करे, इसकी अपेक्षा रहती है।

मगर बीते ४८ वर्ष का संसदीय कार्यकरण ऐसे तात्त्विक आदर्शों की घोर अवहेलना का काल-खण्ड है। हालाँकि विपक्ष की अनुकरणीय भूमिका के लिए अभी कल तक विपक्ष में रहे अटल बिहारी वाजपेयी के दीर्घकालीन संसदीय जीवन की गतिविधियाँ और संसद् में दिये गये भाषण संसदीय ज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के लिए एक आदर्श पथ-संकेत सिद्ध हो सकते थे; मगर शालीन-प्रस्तुतियों और शिष्ट-आचार वाली संसदीय गतिविधि को भारत के राजनीतिक दल अपने स्वाभाविक आचरण का हिस्सा नहीं बना सके। क्या यह

खेद एव आक्रोश का विषय नहीं है कि १६७१ के बांग्लादेश के युद्ध के समय विपक्ष की बेंच पर बैठे अटल बिहारी वाजपेयी ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी को जैसा हार्दिक और प्रबल समर्थन दिया था, वैसा ही समर्थन परमाणु–परीक्षणों के सन्दर्भ में वर्त्तमान विपक्ष द्वारा न दिये जाने से उसका मानसिक बौनापन ही सिद्ध हुआ है।

भारत की वर्त्तमान संसदीय व्यवस्था ५० वर्ष पूरे करने जा रही है। इस दीर्घ अवधि में भारत के संविधान की समग्रता और राष्ट्रीयता की दृष्टि को व्यापक बनाने की दृष्टि से संसद् में कोई भी उल्लेखनीय कार्य नहीं हुए हैं। भारत के संविधान का (पूर्णतः अस्थायी) अनुच्छेद ३७० एक बड़े भूभाग को देश से एकात्म करने में शुरू से बाधक रहा है। इस अनुच्छेद को एक साधारण सरकारी अधिसूचना से समाप्त किये जाने के उसी अनुच्छेद ३७० के खण्ड–३ की दिशा में कोई भी प्रगति न होने से देश को निराशा हुई है। खण्ड–३ कहता है कि "इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक–अभिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्त्तन में नहीं रहेगा।" संविधान के भाग–४ में वर्णित नीति–निर्देशक तत्त्वों वाले अध्याय के अनुच्छेद ४४ में राज्य से देश के सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता लागू करने की अपेक्षा की गई है। सारा देश जानता है कि एक समान नागरिक कानून ही राष्ट्रीय एकात्मकता का आदर्श मार्ग हो सकता है। इस प्रश्न पर देश के सर्वोच्च न्यायालय के सुस्पष्ट निर्णय को भी किनारे रखते हुए अब तक एक कदम भी आगे न चल सकने की संसदीय जड़ता ने देश को निराशा दी है।

संविधान के अनुच्छेद २६ व ३० भारत राष्ट्र के एक जन, एक राष्ट्र, एक संस्कृति के सनातन सत्य के घोर विरोधी हैं। किसी देश के सभी नागरिकों के मौलिक अधिकार सहित संवैधानिक अधिकार जब एक समान हैं तब किसी को मजहब के आधार पर अल्पसंख्यक कहना ही राष्ट्र–एकता के घोर विरोध का प्रतीक है। अनुच्छेद २६ "अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण" के शीर्षक से संविधान में कहा गया है "भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भूभाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।" उक्त प्रावधान अपने मूल रूप में भारत के जन–जन की एकता का विरोधी है। किसी समूह की अपनी कोई भाषा या लिपि हो नहीं सकती। सभी भाषाएँ सार्वजनीन सम्पत्ति होती हैं। जिसे जो भाषा इष्ट होती है, वह वही भाषा इस्तेमाल करता है। भारत की दृष्टि में सभी विद्याओं में माँ का स्वरूप ही देखा गया है। 'दुर्गासप्तशती' के एक मन्त्र में "विद्या समस्ता तव देवि भेदा" कहकर ज्ञान की समस्त शाखाओं– उपशाखाओं को आदिशक्ति दुर्गा का ही स्वरूप जाना गया है।

जहाँ तक समूह की संस्कृति का सवाल है। संस्कृति समूहगत नहीं होती। संस्कृति का निर्माण राष्ट्र के सामूहिक भावात्मक चैतन्य से ही होता है। पं० दीनदयाल उपाध्याय जिसे 'चिति' कहते थे, वह राष्ट्र की सामूहिक आदर्श राष्ट्रीय चेतना ही संस्कृति की अधिष्ठात्री होती है। उक्त अनुच्छेद में अनजाने समूहों को संस्कृति के अनुरक्षण के अधिकार दिये गये हैं। अनजाने समूहों इसलिए कि अल्पसंख्यक शब्द अभी तक माननीय न्यायालयों द्वारा ही परिभाषित नहीं हो सका है। संस्कृति शब्द की भी व्याख्या और परिभाषा करने में हमारे संविधान निर्माता चूक गये हैं जबकि संविधान में प्रयुक्त होने वाले सक्रिय/कारक शब्दों की व्याख्या भी संविधान में विद्यमान रहनी चाहिए थी। अनुच्छेद ३० शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन चलाने के अधिकार अल्पसंख्यकों को अलग से देता है। अनुच्छेद ३० भारत के संविधान की मूल प्रस्ताविका में वर्णित "समानता" शब्द की भावना का उल्लंघन करता है। ऐसे मामलों पर संसद् में कोई सार्थक बहस कभी भी नहीं हो पाने से देश के सुधी नागरिकों को जैसी चिन्ता होनी चाहिए थी, वह कहीं भी पारिलक्षित नहीं होती।

भारत के संविधान की उद्देशिका निश्चित ही भारत के संवैधानिक दर्शन का बीज–मन्त्र थी। पण्डित जवाहर लाल नेहरू द्वारा १३ दिसम्बर, १६४६ को प्रस्तावित और २२ जनवरी १६४७ को अंगीकृत इस उद्देशिका में 'समाजवादी', 'पंथनिरपेक्ष' शब्द नहीं थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा लागू किये गये आपातकाल में विपक्ष शून्य सदन में पारित ४२वें संशोधन में उक्त अव्याख्यायित और नितान्त भ्रममूलक शब्द जोड़ दिये गये थे। उस समय देश के सभी स्वतन्त्रचेता पत्रकार, सांसद् व प्रतिपक्षी दलों के नेता कारागृह में बन्दी थे। ऐसे समय देश के संविधान का चेहरा ही विकृत कर देने वाले उक्त संशोधन को पारित किया गया था। 'सोशलिस्ट' और 'सेक्यूलर' शब्दों के भ्रमजाल में जन साधारण को फँसाकर श्रीमती गांधी अपने आपातकालीन पापों पर पर्दा डालना चाहती थीं। 'सेक्यूलरिज्म' क्या है? हिन्दू राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विरोध करने की खातिर इस्तेमाल हो रहे इस शब्द का प्रयोग सदैव राष्ट्रभक्तों को गाली देने में ही हो रहा है। पश्चिम से 'सेक्युलर' नाम से आयातित इस शब्द का भारत आते–आते तो सिर्फ अनुवाद का स्वरूप ही

बदला था; किन्तु हिन्दू विरोधी ताकतों के हाथ में पड़कर इस्तेमाल होते-होते "पंथ निरपेक्षता" का सीधा मतलब मुसलमानों की हर अराजक गतिविधि को समर्थन देना (यहाँ तक कि डोडा जैसे स्थलों पर हिन्दुओं के थोक में हुए सामूहिक हत्याकाण्डों पर भी मुस्लिम समर्थन ही करते रहना) हो गया है।

आपातकाल में संविधान के साथ किये गये इस अन्तर्घात के निरसन का प्रस्ताव आना ही चाहिए था। संसद को 'समाजवाद', "पंथ निरपेक्षता", 'साम्प्रदायिकता' शब्दों की व्याख्या करने के ऐतिहासिक दायित्व से भागना नहीं चाहिए। 'वन्दे मातरम्' के गायन के समय भी संसद में बैठे रहने वाले सदस्य की सदस्यता को समाप्त करने का कोई प्रस्ताव न आना ऐसे राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों की 'जुर्रत' को बढ़ाना नहीं, तो और क्या है?

पक्ष हो, प्रतिपक्ष, इनके पक्ष कभी स्थायी नहीं होते। सत्तापक्ष प्रतिपक्ष हो जाता है और प्रतिपक्ष को सत्तापक्ष में परिवर्तित होते हुए बहुत देर नहीं लगती; मगर राष्ट्र के हित स्थायी होते हैं, यह बात अधिकांश सांसदों की समझ में क्यों नहीं आती?

हमारा संविधान राष्ट्र का धारक नहीं है। पं० दीनदयाल उपाध्याय ने प्रश्न उठाया था इस संविधान का क्या करें- पुरस्कार, तिरस्कार या बहिष्कार। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने राष्ट्र के लिए कभी इसे हितकर नहीं माना। संविधान निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए चर्चित डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने कहा था- 'इस संविधान को जलाने वाले वे पहले व्यक्ति होंगे।' संविधान-सभा के वाद-विवाद बताते हैं कि सत्ताधीशों (विशेषकर नेहरू जी) की मनोवृत्ति भारत राष्ट्र की सनातन अवधारणाओं से नितान्त परे पश्चिमी देशों की चमक-दमक में आकण्ठ डूबी हुई थी। भारत का राष्ट्रीय ध्वज भगवा के बजाय तिरंगा कैसे हो गया? अनादिकाल से चली आ रही भारत की 'चिति' के प्रतीक परमपवित्र भगवद्ध्वज को ही यह देश, यह राष्ट्र अपने शिखर प्रतीक के रूप में मानता और जानता आया है। उसका विरोध गांधी, नेहरू, मौलाना आजाद की तिकड़ी का दुराग्रह ही तो था। संविधान निर्माण के समय से ही ऐसे दुराग्रहों के आगे झुक जाने की जो प्रकृति इस देश के कर्णधारों की बन गयी है, उससे विमुक्ति की चिन्ता आखिर कभी किसी दल या राजनेता को अब तक क्यों नहीं हुई? अब भी क्यों नहीं है? आगे कभी होगी भी या नहीं?

संविधान के अनुच्छेद १ को ही लें, देश का नाम 'इण्डिया' है। इससे बेहूदा बात और क्या हो सकती है कि इस देश के नामकरण में भी हम हिन्दुस्थान या भारत जैसे राष्ट्रीय स्फुरणा के शब्द नहीं रख पाये। उस पर भी यही अनुच्छेद १ आगे कहता है "जो राज्यों का संघ है"। जबकि भारत राज्यों का संघ कदापि नहीं है; क्योंकि भारत छोटे-छोटे राज्यों से मिलकर नहीं बना है। भारत वस्तुतः पहले से ही भारत है। राज्य-व्यवस्था संवैधानिक है। जैसे उत्तरांचल और वनांचल जैसे राज्य हम अब बना रहे हैं। मगर अनुच्छेद १ कहता है कि भारत राज्यों का संघ है। यह हमारी विकृति का शिखर है।

संविधान में अब तक ८३ संशोधन हो चुके हैं। ८४वाँ संशोधन महिलाओं को संसद् व विधान मण्डलों में आरक्षण देने विषयक था। मगर अब तक हुए ८३ संशोधनों में राष्ट्रीय अवधारणा को परिपुष्ट करने के प्रयास एक बार भी नहीं हुए हैं। यह हमारी संसदीय प्रणाली की विफलता ही है कि हम संविधान और कानून को राष्ट्र-जीवन की सही दिशा से नहीं जोड़ सके हैं। यह समय इस दृष्टि से आत्म-चिन्तन और आत्म-विश्लेषण का है कि भारत की राजनीति के कार्यकरण को सांस्कृतिक अधिष्ठान दिये बिना कुछ भी सफलीभूत होने वाला नहीं है। ❐

– एल. १५६२, सेक्टर-आई, वि० प्रा०कॉलोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ

अपरिहार्य था परमाणु-विस्फोट

– अंशुमान शुक्ल

१८ मई १९७४ को राजस्थान के पोखरण में अपना प्रथम परमाणु परीक्षण किये। २४ वर्ष बीत गये, पर भारत परमाणु बम नहीं बना सका। जहाँ एक ओर पाकिस्तानी प्रधानमन्त्री खुद घोषणा करता रहा कि पाक के तहखाने में १५ परमाणु बम रखे हैं, वहीं दूसरी ओर भारत सरकार मेमने की तरह मिमियाती रही कि हम परमाणु बम नहीं बनायेंगे। आखिर क्यों? देश की सीमाओं पर संकट के बादल हर समय मँडरा रहे हों; हमारे दोनों पड़ोसी चीन और पाकिस्तान परमाणु-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र बन चुके हों और हम तब भी स्वप्न-लोक में विहार करते रहें कि चीन और पाकिस्तान हमारे ऊपर दया करेंगे। सरकार द्वारा घुटना टेकू मुद्रा छोड़कर राष्ट्रीय स्वाभिमान और देश की सीमाओं की सुरक्षा को गम्भीरता से लिया जाना बहुत पहले से अपेक्षित था; किन्तु वह 'सेक्यूलरिज्म' ही क्या, जो राष्ट्र-हित को स्व-हित से ऊपर माने। पाकिस्तान और चीन के पास परमाणु बम होने से और हमारी निरीहता से देश की जनता का आत्मविश्वास तो डाँवाडोल रहा ही, साथ ही सीमाओं की सुरक्षा में अहर्निश प्राण हथेली पर रखे डटे रहने वाले सैनिकों और सैन्य अधिकारियों का मनोबल भी कमजोर होता रहा। आज जब कूटनीति, विदेश-नीति, रक्षा-नीति ही नहीं, वरन् अर्थ-नीति और मानवाधिकार जैसे मुद्दे भी परमाणु-प्रपंच से प्रभावित होते हैं, तब हम भला कब तक हर मोर्चे पर भारतमाता की प्रतिष्ठा गिरवीं रखकर परमाणु-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों को खुश करने के चक्कर में आत्मघाती रास्ते पर चलते रहते? आखिर कब तक हम अमेरिका, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय-मुद्राकोष की तुष्टि के लिए ९७ करोड़ लोगों की जिन्दगियों से समझौता करते रहते? पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री और पूर्व थल सेनाध्यक्ष की 'पाकिस्तान के पास परमाणु-बम की क्षमता है,' की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बाद भी क्या भारत किसी अन्य स्वीकारोक्ति की प्रतीक्षा में बना रहता?

विगत कई वर्षों से परमाणु बमों के विषय में विश्व में अच्छी-खासी बहस छिड़ी हुई है। वैसे तो इस बहस के कई आयाम हैं, पर भारत के सन्दर्भ में इसका सबसे बड़ा आयाम इस देश की सुरक्षा से जुड़ा हुआ है। भारत पहले से ही थोपे गये चार युद्ध लड़ चुका है, पर तब की बात अलग थी। यदि इस महादेश में पाँचवाँ युद्ध हुआ, तो वह परमाणु-युद्ध होगा, जिससे भारत ही नहीं; वरन् पूरी दुनिया प्रभावित होगी। इसलिए अपनी सुरक्षा और दुनिया के हित में भारत को परमाणु-बम और हाइड्रोजन-बम बना लेना अपरिहार्य था। यह निर्णय जितने ही अधिक दिनों तक ठण्डे बस्ते में पड़ा रहता, हमारे अस्तित्व पर उतना ही बड़ा खतरा मँडराता रहता। 'विषस्य विषमौषधम्' की सूक्ति यों ही तो नहीं बनायी गयी होगी और इसके लिए दूसरों की खुशी से कहीं ज्यादा हमें अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना होगा। भारत ने अब तक परमाणु-बम नहीं बनाया था, तो भारत के साथ पाकिस्तान के सम्बन्धों में कौन-सा सुधार हो पाया? जब पाकिस्तान परमाणु-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र बनकर हमें बराबर धमका रहा हो; ऊपर से अमरीका और चीन लगातार उसकी पीठ थपथपा रहे हों, तो 'एक तो करेला, दूसरे नीम चढ़ा' की कहावत ही तो इससे सिद्ध होती रही है अब तक। फिर भारत को जितना खतरा पाकिस्तान से रहा है और है, उससे कम चीन से नहीं है। परमाणु- प्रौद्योगिकी की आपूर्ति का पाकिस्तान का सबसे बड़ा स्रोत चीन ही तो रहा है। आखिर कब तक हम इन दोनों साझा परमाणु शक्तियों की तैयारी का तमाशा देखते रहते? कब तक भारत उनकी खुल्लम-खुल्ला धौंस-पट्टी को चुपचाप सहन करता रहता?

हमसे कहीं कम कृषि-भूमि और अधिक जनसंख्या दबाव के बावजूद जब चीन परमाणु महाशक्तियों में अपनी गिनती करवा रहा है, तब हम क्या परमाणु-शक्ति बनने के योग्य नहीं थे? लोकमानस के आत्म-विश्वास, सुरक्षा और राष्ट्र-गौरव को सत्ता-सुख से कहीं ऊपर रखे बिना कभी परमाणु-परीक्षण सम्भव ही नहीं हो पाता। निर्णय भले ही थोड़ा अप्रिय हो, पर राष्ट्रीय हित में ऐसी इच्छाशक्ति भारत-सरकार में जाग्रत् होते ही उसकी कथनी-करनी में राष्ट्रीय स्वाभिमान आलोकित हो उठा। चिल्लाने वाले चिल्लाते रहते हैं, भौंकने वाले भौंकते रहते हैं; लेकिन हाथी मस्ती से अपनी राह चलता रहता है, भारत आज यह दर्शित कर रहा है। भारत के परमाणु-विस्फोटों पर चिल्ल-पों मचाने वाली बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार की शक्तियों को अन्ततोगत्वा 'बुद्धं शरणं गच्छामि' करना ही पड़ेगा; क्योंकि 'बुद्ध की मुस्कान' छीन सकना अब किसी के बूते की बात नहीं है। ❑

– जे०आर०वी० इन्स्टीट्यूट के पीछे, आजादनगर,
हरदोई (उ० प्र०)

ग्रह-नक्षत्रो ! भारत की जय बोल दो

साँझ सकारे चन्दा–सूरज करते जिसकी आरती
उस मिट्टी में मन का सोना ढोल दो
ग्रह–नक्षत्रो ! भारत की जय बोल दो

वह माली है, वह खुशबू है, हम चमन
वह मूरत है, वह मन्दिर है, हम नमन
छाया है माथे पर आशीर्वाद–सा
वह संस्कृतियों के मीठे संवाद–सा
उसकी देहरी अपना माथा टेक कर
हम उन्नत होते हैं उसको देखकर
ऋतुओ ! उसको नित नूतन परिधान दो
झुलस रही है धरती, सावन दान दो
सरल नहीं परिवर्तन में मन ढालना
हर पत्थर से भागीरथी निकालना
जिस मन्दिर, मसजिद, गिरजे में
कैद पड़ा इन्सान हो

जाओ उसमें किरन किवारा खोल दो
कुंकुम पत्रो ! भारत की जय बोल दो

●

उसको करो प्रणाम दृगों में नीर है
झेलम की आँखोंवाला कश्मीर है
बजरे और शिकारे उसकी झील के
लगते बंजारे तारे कन्दील–से
किसी नारियल–वन की गेय सुगन्ध से
अन्तरीप के दूरागत मकरन्द से
फूटा करता नये गीत का अन्तरा
कुछ क्षण को दुख भूल, विहँसती है धरा

दो छवि–कमलों के अन्तर आवास में
कोई बादल घुमड़ रहा आकाश में
सर्जन की मंगल बेला में
धूमकेतु क्या चाहता

बच्चों की पावन उत्सुकता तोल दो
देशज मित्रो ! भारत की जय बोल दो

●

हम अनेकता में भी तो हैं एक ही
हर झगड़े में जीता सदा विवेक ही
कृति आकृति संस्कृति भाषा के वास्ते
बने हुए हैं मिलते–जुलते रास्ते
आस्थाओं की टकराहट से लाभ क्या
मंजिल को हम देंगे भला जवाब क्या
हम टूटे तो टूटेगा यह देश भी
मैला होगा वैचारिक परिवेश भी
सर्जन–रत हो आजादी के दिन जियो
श्रम कर्माओ ! रचनाकारो ! साथियो !
शान्ति और संस्कृति की जो
बहती स्वाधीना जाह्नवी

कोई रोके बलिदानी रंग घोल दो
रक्त–चरित्रो ! भारत की जय बोल दो।

— (स्व०) वीरेन्द्र मिश्र
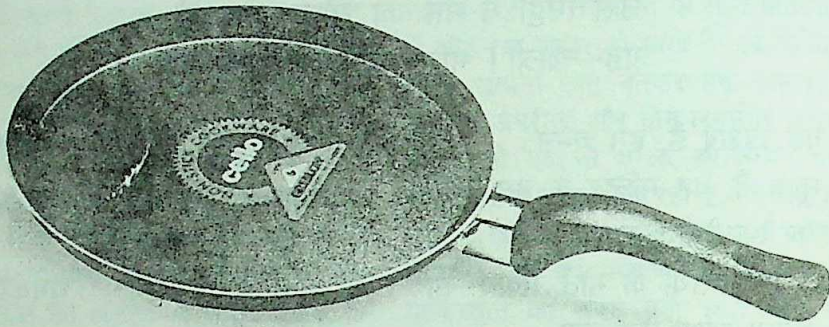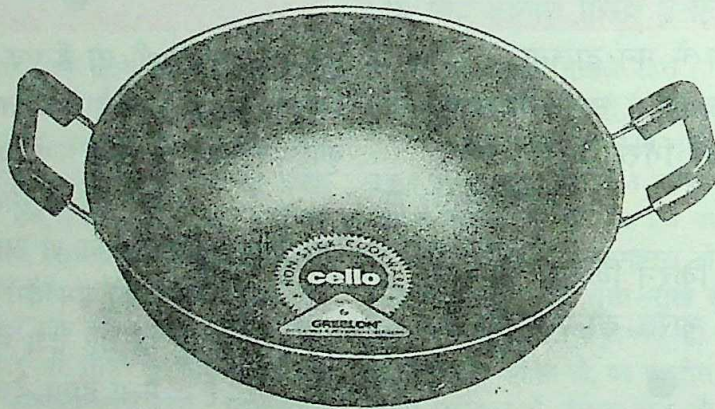
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर विशेष-

कब तक रहेगी कंस के कारागार में श्रीकृष्णजन्मस्थली

- अधीश कुमार

भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से पवित्र हुई मथुरा हिन्दुओं की सप्त पुरियों में स्थान रखती है। कंस के कारागार में जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकट्य स्थल है, आज भी कटरा केशवदेव नामक स्थान पर स्थित है। प्रसिद्ध इतिहासकार एवं मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय के पूर्व अध्यक्ष डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने स्पष्ट लिखा है- **"इतिहास पुरातत्त्व के सम्मिलित साक्ष्य से इस बात की पुष्टि होती है कि कटरा केशवदेव ही पुरातन श्रीकृष्ण जन्मभूमि है। इस स्थान से लगा हुआ पोतरा- कुण्ड नामक विशाल और सुन्दर सरोवर भी कृष्ण-जन्म- स्थान का द्योतक है।"**

भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मस्थली पर उनके प्रपौत्र वज्रनाभ ने प्रथम मन्दिर का निर्माण करवाया था, जिसका जीर्णोद्धार सम्राट् विक्रमादित्य के काल में हुआ। इस भव्य मन्दिर को १०१७ ई० में कुख्यात आक्रमणकारी महमूद गजनवी ने लूट कर ध्वस्त कर दिया था। इस मन्दिर का वर्णन महमूद गजनवी के मीर मुन्शी (दरबारी इतिहासकार) 'अल उतवी' ने अपनी पुस्तक तारीखे-यामनी में किया है- 'शहर के बीचोंबीच एक बहुत बड़ा आलीशान मन्दिर था, जो सबसे ज्यादा खूबसूरत था और जिसे लोग इंसान का बनाया न मानकर देवदूतों का बनाया मानते थे। उसका बयान लफ्जों या तस्वीरों से नहीं किया जा सकता। सुल्तान महमूद ने वह मन्दिर देखकर खुद कहा कि अगर कोई आदमी इस तरह की इमारत बनवाना चाहे, तो उसे १० करोड़ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) खर्च करने पड़ेंगे और उसके बनवाने में २०० साल से कम नहीं लगेंगे, चाहे उसके लिए ऊँचे से ऊँचे तजुर्बेकार कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जाय।"

तीसरी बार मन्दिर का निर्माण सं० १२०७ वि० (सन् ११५०) में किया गया, जिसके १२५ वर्ष बाद ओरछा के राजा वीरसिंह जूदेव बुन्देला ने ३३ लाख रु० की लागत से २५० फीट ऊँचा भव्य मन्दिर बनाया। फ्रान्सीसी यात्री टेवर्नियर ने (१६५० ई० में) इसकी भव्यता का वर्णन किया है। इटैलियन यात्री मनूची ने इस मन्दिर के वर्णन में लिखा है कि 'मन्दिर का स्वर्णाच्छादित शिखर इतना ऊँचा था कि ३६ मील (५४ किमी०) दूर आगरा से दिखाई देता था।'

हिन्दू-द्रोही औरंगजेब द्वारा इसी भव्य एवं विशाल मन्दिर को १६६९ ई० में ध्वस्त कराकर उसके मलवे से मन्दिर की नींव (आधार) पर ही ईदगाह मस्जिद का निर्माण कराया गया था, जिससे सम्पूर्ण हिन्दू समाज आहत और अपमानित हुआ।

प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने १९६० ई० में मौलाना आजाद स्मृति व्याख्यानमाला में अपने भाषण में औरंगजेब की तुलना उन रूसी आक्रमणकारियों से की थी, जिन्होंने कभी पोलैण्ड जीता था। उन्होंने कहा- "इस समय पोलैण्ड रोमन कैथोलिक ईसाई साम्राज्य का हिस्सा था। १९१४ में रूस ने जब पोलैण्ड की राजधानी 'वारसा' पर विजय प्राप्त की, तो उन्होंने सर्वप्रथम वारसा के मुख्य चौक पर ईस्टर्न आर्थोडॉक्स चर्च का निर्माण किया। उन्होंने यह इसलिए किया ताकि पोलैण्डवासियों के मन पर सदा यह बात अंकित होती रहे कि अब उन पर रूसी राज्य कर रहे हैं। जब १९१८ ई० में पोलैण्ड स्वतन्त्र हुआ, तो इस चर्च को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया गया।"

औरंगजेब ने अपने राजनीतिक विरोधियों को अपमानित करने के उद्देश्य से जानबूझ कर इन मन्दिरों को मस्जिद में परिवर्तित किया था, ठीक इन्हीं कारणों से वारसा में रूसियों ने चर्च निर्माण किया था। इन मस्जिदों के निर्माण के पीछे औरंगजेब द्वारा सबको यह बताने की मंशा थी कि हिन्दुओं के सर्वाधिक पवित्र स्थलों पर पर भी राज मुसलमान ही कर रहे हैं। मुगल-साम्राज्य के पतन के साथ ही मथुरा मराठों के कब्जे में आ गयी। कालान्तर १८०३ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मथुरा को अपने अधिकार में ले लिया। १६ मार्च १८१५ में उपेक्षित कटरा केशवदव मन्दिर परिसंर की १३.३७ एकड़ भूमि ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नीलाम की गयी। जिसको काशी के राजा पटनीमल ने खरीद लिया। इस समय मुसलमानों

का इस सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं था। बाद में कुछ मुसलमानों ने राजा पटनीमल के वारिसों से आधिपत्य का विवाद शुरू किया, जिसके लिए वे न्यायालयों में भी गये।

१८६७ ई० में अहमद शाह ने अपने को ईदगाह का चौकीदार बताया और हिन्दुओं द्वारा हमले की शिकायत की। सहायक मजिस्ट्रेट मि० एन्थोनी ने सुनवाई के बाद निर्णय दिया– "इसका कोई प्रमाण नहीं है कि यह सम्पत्ति मुसलमानों की है, बल्कि वास्तविकता तो यह है कि ईदगाह के साथ यह सभी सम्पत्ति नीलामी में राजा पटनीमल को बेच दी गयी है।"

रेलवे द्वारा मथुरा–वृन्दावन मार्ग के निर्माण हेतु कटरा केशवदेव की भूमि के एक अंश के अधिग्रहण का मुआवजा भी राजा पटनीमल के वारिस नारायण दास और नृसिंह दास को दिया गया।

१६ मई १६२० में खान साहब काजी सैयद मोहम्मद आमिर द्वारा अधीनस्थ न्यायाधीश मथुरा के समक्ष वाद प्रस्तुत किया गया कि पटनीमल के वारिस प्रह्लाद दास ईदगाह के निकट मन्दिर बनवाना चाहते हैं, जो मुसलमानों के अधिकार में हस्तक्षेप है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वाद खारिज होने पर खान साहब ने १६२१ में जनपद न्यायालय आगरा में मुसलमानों के अधिकार माँगे, जिसे ६ मार्च १६२१ को खारिज कर दिया गया। १६२३ में माननीय उच्च न्यायालय ने भी उनकी अपील निरस्त कर दी। इस प्रकार न्यायालय का निर्विवाद फैसला आ गया कि यह सम्पूर्ण परिसर मुसलमानों की सम्पत्ति नहीं है और इस पर राजा पटनीमल के वारिसों को सर्वाधिकार प्राप्त हैं।

१६२८ में पुनः मुकदमा शुरू किया गया, जिसका निस्तारण उच्च न्यायालय द्वारा १६३२ में कर दिया गया और कहा गया कि सम्पूर्ण सम्पत्ति राजा पटनीमल की है, उस पर मुसलमानों का कोई अधिकार नहीं है।

पं० मदन मोहन मालवीय जी के प्रयास व प्रेरणा से राजा पटनीमल के उत्तराधिकारी रायकृष्ण दास और आनन्द राय ने अपनी सम्पत्ति एक पंजीकृत बिक्रीनामे द्वारा श्रीकृष्ण–जन्मस्थान–सेवा–संघ को बेंच दी।

१६५१ में श्रीकृष्ण–जन्मभूमि–ट्रस्ट की स्थापना होने पर यह सम्पूर्ण सम्पत्ति उस ट्रस्ट के हवाले हो गयी। ट्रस्ट के प्रथम सभापति लोकसभा के अध्यक्ष स्व० श्री गणेश वासुदेव मावलंकर बने। उनके निधन के पश्चात् लोकसभा अध्यक्ष बने श्री अनन्त शयनम् आयंगार उस ट्रस्ट के सभापति हुए। बाद में क्रमशः स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती और स्वामी वामदेव जी महाराज उपर्युक्त ट्रस्ट के सभापति रहे।

अष्टभुजाकार पुराने मन्दिर का प्राचीन गर्भगृह, जिसको महमूद गजनवी के काल में ध्वस्त किया गया था, खुदाई में निकलने पर वहाँ मन्दिर निर्माण किया गया। आठ पहलू के मन्दिर में से चार पर औरंगजेब द्वारा
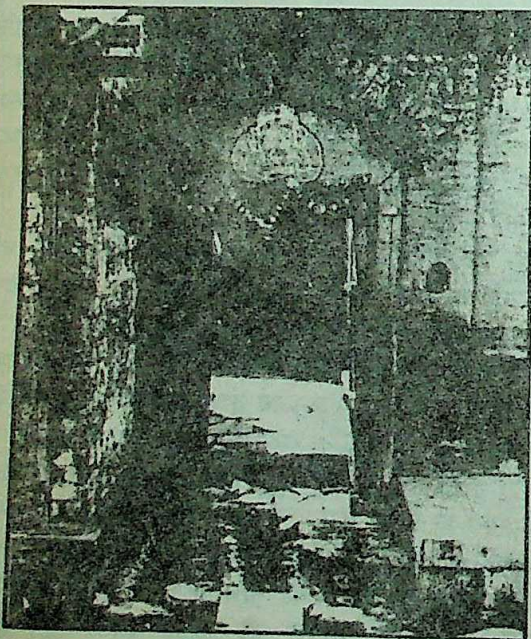
वीर सावरकर जन्मस्थान, भगूर, जि० नासिक (महाराष्ट्र) लोकार्पण सम्पन्न – २८ मई, १६६८

सावरकर जन्मस्थान राष्ट्रीय संरक्षित स्मारक बना

पाषाण से निर्मित भवन मन्दिर कहलाने के भाग्य का धनी तब बनता है, जब देवप्रतिमाओं की प्रष्ठिापना उस भवन में होती है। उसी भाँति ईंट–गारे से निर्मित घर राष्ट्रीय स्मारक तब बनता है, जब राष्ट्रपुरुष के वास से वह पुनीत हुआ होता है, इस दृष्टि से भगूर का यह भवन तो असामान्य ही है। सावरकर के जन्म (२८ मई, १८८३) से पूर्व अग्रज क्रान्तिवीर गणेशपन्त (बाबाराव) सावरकर का जन्म भगूर के इसी घर में हुआ था और आगे अनुज डॉक्टर नारायणराव सावरकर भी इसी घर में जन्मे थे। इन तीनों सावरकर–बन्धुओं ने भारत की स्वाधीनता हित जो संघर्ष किया, वह इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। – सं०

निर्मित मस्जिद उसकी कट्टरता का नमूना है, वहीं उससे लगकर बना हुआ मन्दिर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति विश्वभर में फैले करोड़ों हिन्दुओं की श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक है। जन्माष्टमी के अवसर पर लाखों श्रद्धालुओं का एकत्रीकरण हिन्दू-आस्था का प्रतीक है। वर्ष भर प्रतिदिन आने वाले हजारों तीर्थ-यात्री यात्रा के पुण्य-प्रसाद के साथ-साथ अपने हृदय में आहत अपमान ही लेकर जाते हैं।

न्यायालयों के हुए सभी निर्णयों के अनुसार श्रीकृष्ण जन्मस्थल परिसर पूर्णतः हिन्दू सम्पत्ति है। भारतीय संविधान के भाग ३ में दिये गये मूल अधिकारों में प्रत्येक नागरिक को अपनी आस्था व्यक्त करने तथा अपनी सम्पत्ति का निर्बाध उपयोग करने का अधिकार प्राप्त है; परन्तु हिन्दुओं को अपने इस अधिकार से वंचित रखना क्या संविधान की अवहेलना नहीं?

६ दिसम्बर ९२ की अयोध्या की घटना के बाद केन्द्रीय सरकार ने सुरक्षा के नाम पर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान परिसर पर कब्जा कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप आज मन्दिर-प्रवेश में बाधाएँ उत्पन्न की जाती हैं। स्नान कर दर्शन करने आने वाले यात्रियों को पुलिस के अपवित्र स्पर्श और जबरिया तलाशी का शिकार बनना पड़ता है। पुलिसिया अभद्रता के शिकार तीर्थ-यात्री विशेषकर महिलाएँ अपने स्वतन्त्र देश में तीर्थ-स्थल पर अपमानित होते हैं। लीला-मंच, जहाँ निरन्तर रास-लीला होती थी, पर आज पुलिस अपने तम्बू गाड़े बैठी है। यहाँ-वहाँ बीड़ी-सिगरेट पीते पुलिसकर्मी अपवित्रता फैलाते हैं।

दूसरी ओर ६ दिसम्बर ९२ के बाद मस्जिद में नित्य नमाज पढ़ने की अनुमति देकर प्रशासन हिन्दुओं के अधिकारों का हनन कर रहा है, साथ ही नई परम्परा प्रारम्भ कर रहा है।

मन्दिर विरोध के लिए प्रसिद्ध तत्कालीन गृह राज्यमन्त्री राजेश पायलेट के निर्देश पर मस्जिद के उत्तर की तीन एकड़ भूमि, जो निर्विवाद रूप से जन्मभूमि ट्रस्ट की सम्पत्ति हैं, को सुरक्षा के नाम पर बैरीकेडिंग लगाकर घेर दिया गया। उस स्थान पर प्रस्तावित लीला-मंच और ब्रज की चौरासी कोस के तीर्थों की झाँकी का निर्माण बाधित किया गया। साथ ही तीर्थ यात्रियों के लिए बनी धर्मशाला के १६ कमरे सुलभ शौचालय, स्नानगृह आदि अवैध रूप से घेर लिए हैं। हास्यास्पद तथ्य यह है कि शासन खतरा ईदगाह को बताता है और बैरिकेडिंग, प्रतिबन्ध आदि मन्दिर के प्रवेश पर है।

६ दिसम्बर ९२ से अब तक लगभग ६ वर्ष से सब कुछ शान्तिपूर्ण रहने के बाद भी वहाँ सुरक्षाबलों के संख्या-

जय-जय तुलसीदास

— रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

भव्य भावना हो गयी हुलसी मन की आस।
जब पुहुमी की पीठ पर प्रकटे तुलसीदास।।१।।

डूब चला मृग-वारि में जब सारा संसार।
राम-नाम नौका चढ़ा तुम्हीं ले गये पार।।२।।

भक्ति, शक्ति, संकल्प, दृढ़ विनय, प्रीति, विश्वास।
सबने झुक-झुक कर कहा, जय-जय तुलसीदास।।३।।

'विनय-पत्रिका' मिल गई भीगे प्रभु के नैन।
तुलसी तेरी पीर से राम हुए बेचैन।।४।।

वेद-पुराण असीसते तुमको तुलसीदास।
हाथ बाँध कर द्वार पर खड़ा रहा इतिहास।।५।।

रोम-रोम में राम थे रटा नाम दिन-रात।
बाल न बाँका कर सके कलियुग के आघात।।६।।

गरज रहा रावण अनय कुटिल क्रूरता धाम।
तुलसी बोले 'उठ मनुज! बन जा मेरा राम।।७।।

पग-पग पीड़ा का जहर पी-पी कर अविराम।
तुलसी शिव बनकर जिये आप, साथ में राम।।८।।

संघर्षों से थक - गये तुम पाने विश्राम।
पर रत्ना ने लिख दिया रोम-रोम पर राम।।९।।

तम-पर्वत पर सूर्य से उगे तुम्हारे राम।
शक्ति, शील, सौन्दर्य की प्रतिमा ललित ललाम।।१०।।

पूछा तेरे समय ने तुझसे एक सवाल।
हर युग के हर प्रश्न का उत्तर दिया निकाल।।११।।

— ८६, तिलक नगर, बाईपास मार्ग,
फीरोजाबाद-२८३२०३

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया – महत्त्वपूर्ण तथ्य

आकाशवाणी :

- वर्ष १९२४ में मद्रास प्रेसीडेंसी रेडियो क्लब और लाहौर स्थित वाई०एम०सी०ए० के प्रयासों से प्रसारण सेवा आरम्भ हुई।
- वर्ष १९३० में इण्डिया स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस को आल इण्डिया रेडियो में परिवर्तित कर दिया गया।
- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में नौ प्रसारण केन्द्र थे, जिनमें से तीन विभाजन के बाद अब पाकिस्तान में हैं।
- वर्ष १९५० में आल इण्डिया रेडियों का नया नाम आकाशवाणी कर दिया गया। उस समय आल इण्डिया रेडियों के नेटवर्क में केवल छह केन्द्र थे।
- देश में आल इण्डिया रेडियो के १९५ केन्द्र कार्यरत हैं। इनमें १८३ पूर्ण विकसित, नौ रिले केन्द्र, एक सहायक और तीन विविध भारती वाणिज्यिक केन्द्र हैं।
- आल इण्डिया रेडियो के पास ३०० प्रेषित्र हैं। इनमें से १४३ मीडियम वेव, ५४ शार्ट वेव और १०३ वी०एच०एफ० एफ०एम० ट्रांसमीटर हैं, जिनके द्वारा ९७.३ प्रतिशत जनसंख्या और देश के ९० प्रतिशत से अधिक क्षेत्र तक रेडियो का प्रसारण होता है।
- आल इण्डिया रेडियो प्रतिदिन ३०३ समाचार प्रसारित करता है, जिनकी कुल अवधि ८० घण्टे ३० मिनट की है।
- आल इण्डिया रेडियो की विदेश प्रसारण सेवा १६ विदेशी और ७ भारतीय भाषाओं में ६५ समाचारों का प्रसारण करता है। शार्ट वेव ट्रांसमीटर द्वारा यह अमरीकी महाद्वीप को छोड़कर सभी देशों में प्रसारित होती है। विदेश प्रसारण सेवा के प्राथमिकता के क्षेत्र पड़ोसी देश, दक्षिण–पूर्व और मध्य–पूर्व के देश, अफ्रीकी देश, यूरोप और आस्ट्रेलिया हैं।
- आल इण्डिया रेडियो ने एक नई शृंखला **आल इण्डिया रेडियो–लाइव ऑन इन्टरनेट** शुरू की है जो इन्टरनेट पर २० लाख श्रोताओं को आकाशवाणी कार्यक्रम उपलब्ध कराती है।

दूरदर्शन :

- देश का प्रथम टेलीविजन केन्द्र सितम्बर १९५९ में दिल्ली में ५०० वॉट के ट्रांसमीटर के साथ प्रायोगिक तौर पर शुरू किया गया तथा इसकी परास २४ किमी० थी।
- वर्ष १९७६ में दूरदर्शन को आकाशवाणी से अलग कर दिया गया और दूरदर्शन का स्वतन्त्र अस्तित्व हुआ।
- शिक्षा और सूचना के उद्देश्य को पूरा करने के लिए, सप्ताह में तीन दिन के सीमित प्रसारण के साथ दूरदर्शन ने अपना कार्य शुरू किया। अपने प्रसारण समय में कई गुना वृद्धि होने से यह एक इन्फोटेनमेन्ट माध्यम बन गया।
- ८९७ प्रसारण केन्द्रों और ४१ कार्यक्रम निर्माण केन्द्रों के नेटवर्क के साथ यह १७ चैनलों पर कार्यक्रम प्रसारित करता है।
- यह विश्व के भूमध्यरेखीय नेटवर्कों में से एक है। प्रति सप्ताह १३५० घण्टे कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ विश्व के लगभग ३८०० लाख लोगों तक इसका प्रसारण पहुँचता है।
- अपने मुख्यालय और क्षेत्रीय समाचार इकाइयों से यह प्रतिदिन २८ भाषाओं में ७५ समाचारों का प्रसारण करता है।

(पृष्ठ १५ का शेष)

कब तक रहेगी...

बल की आवश्यकता पर पुनर्विचार नहीं हो रहा है।

इतिहास, परम्परा, जनविश्वास और न्यायालय द्वारा बार–बार निर्णीत श्रीकृष्ण–जन्मस्थली विश्व के करोड़ों हिन्दुओं का श्रद्धास्थल है। उसकी व्यवस्था और पवित्रता बनाये रखने का अधिकार हिन्दू समाज को संविधान द्वारा प्राप्त है। शासन द्वारा जितनी बार भी मुसलमान को नमाज के लिए प्रवेश दिया जाता है, हिन्दुओं के संवैधानिक अधिकारों का प्रत्यक्ष हनन होता है।

महामना मालवीय जी द्वारा मन्दिर निर्माण के लिए खरीदे गये परिसर को मुक्त कराकर उस पर आने वाली बाधाएँ समाप्त की जायें, ऐसा एक वाद उच्च न्यायालय के सम्मुख विचाराधीन है।

परन्तु वोट की राजनीति का शिकार हिन्दू समाज अपने आराध्य के जन्मस्थल परिसर पर अपने को स्वतन्त्र अनुभव करेगा या उसके मूल अधिकार अभी भी बाधित होते रहेंगे ? इतने प्रमाणों के होते हुए भी श्रीकृष्ण जन्मस्थली क्या कंस का कारागार ही बनी रहेगी ? □ (मी० फो०)

१९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का एक क्रान्ति-पृष्ठ

जब वे जेल से निकल भागे

— चित्रेश

९ नवम्बर १९४२ का दिन.... सूर्यास्त के पूर्व की पीताभ धूप वृक्षों की फुनगियों पर ही दिखलायी पड़ रही थी। हजारीबाग सेन्ट्रल जेल के ऊपर से पक्षी चिहूँ...चिहूँ की आवाज करते तेजी से अपने बसेरे की ओर उड़े जा रहे थे। जेल के अन्दर जयप्रकाशनारायण सहित बारह राजबंदियों के पेट का पानी हिल–डुल रहा था उत्तेजना, हर्ष और वीरोचित रोमांच से!

१ सितम्बर, १९३९ को द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ने पर कांग्रेस में जयप्रकाशनारायण और उनके मित्रों की ओर से इसे 'साम्राज्यवादी युद्ध' की संज्ञा दी गई थी। इससे ब्रिटिश सरकार ने खीजकर जे.पी. को नौ महीने के लिए जेल के अन्दर कर दिया था। सन् १९४० के अन्त में छूटे, तो उन्होंने भूमिगत आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। मगर ब्रिटिश सरकार बेखबर नहीं थी; क्योंकि लंदन में जब गोलमेज सम्मेलन असफल हो गया था और कांग्रेस के तमाम नेताओं को जेल भेजने के बाद अंग्रेज सरकार की तरफ से दावा किया गया था– "कांग्रेस मर गई।" तब जयप्रकाशनारायण ने अपनी भूमिगत कार्यवाहियों से गोरों को नाको चने चबवा दिये थे। बाद में जब मद्रास में जे.पी. गिरफ्तार हुए थे तो अखबारों ने लिखा था– 'कांग्रेस ब्रेन अरेस्टेड'। ऐसे नामवर नेता को अंग्रेजी हुकूमत अनदेखा कैसे कर सकती थी।

इस बार यानी सन् १९४० में कांग्रेस का यह ब्रेन दुबारा भूमिगत होता, इससे पूर्व उन्हें बम्बई में गिरफ्तार करके देवली कैम्प जेल भेज दिया गया। यहाँ आकर उन्होंने एक नया संघर्ष छेड़ दिया। देवली कैम्प जेल तोड़ने और राजबंदियों को जेल में 'ए' श्रेणी दिये जाने की माँग को लेकर जयप्रकाश नारायण और उनके साथियों ने आमरण अनशन शुरू किया। ३३ दिन के अनशन के बाद सरकार झुकी थी, लेकिन इस दौरान जे.पी. का स्वास्थ्य चौपट हो गया था।

देवली कैम्प जेल तोड़ने के बाद अंग्रेज सरकार ने उन्हें हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में स्थानान्तरित कर दिया था। यहाँ आए उन्हें करीब दो साल हो रहा था, लेकिन उनका बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य ज्यों का त्यों था। मन में तूफान, पैरों में साइटिका का दर्द, बढ़ी हुई दाढ़ी, पिचके गाल, रात्रि जागरण की कहानी कहती आँखों के नीचे की कालिमा.... जे.पी. एकदम निर्बल शेर से लगते। रामवृक्ष बेनीपुरी से नहीं रहा गया। कह बैठे– 'आपकी सेहत देखकर दिल बैठा जा रहा है। समझ में नहीं आ रहा है कि ....' जयप्रकाशनारायण तुनक उठे– 'आप समझते हैं स्वास्थ्य ही सब कुछ है, स्पिरिट कुछ नहीं? अब फैसला कर लिया है तो जाऊँगा ही, फिर जो पड़ेगा, देखा जायेगा।'

बस, उसी दिन निश्चय पक्का हो गया। नवम्बर में दीपावली की रात्रि में जयप्रकाशनारायण, सूर्यनारायण सिंह, शालिग्राम सिंह, योगेन्द्र शुक्ल, रामनन्दन मिश्र और गुलाब चन्द्र जेल फाँदकर निकल जायेंगे। जबकि रामवृक्ष बेनीपुरी, अवधेश्वर प्रसाद सिंह आदि बाकी छह लोग जेल के अन्दर रहकर यह रहस्य यथासंभव देर तक खुलने से रोके रहेंगे। किस तरफ से कैसे जेल फाँदना है– यह भी तय हो चुका था। नकद रुपयों, कपड़ों और जरूरी सामानों की व्यवस्था भी हो चुकी थी। जेल फाँदने की योजना अच्छी तरह पकते–पकते दीवाली आ पहुँची थी।

दरख्तों की फुनगियों पर झिलमिलाती धूप देखते–देखते गायब हो गयी। योजना में शामिल राजबंदियों का संशय परवान चढ़ने लगा। वे सब रात गहराने का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। यह कष्टों से पलायन नहीं बल्कि गुलामी की जंजीरों में जकड़ी भारत माता की पुकार थी, जिसने जे.पी. और उनके मित्रों को बाध्य कर दिया था– 'करो या मरो।'

वैसे ८ अगस्त १९४२ को यह नारा गांधी जी ने दिया था। हजारीबाग जेल में जब गांधीजी की खुली बगावत के ऐलान का जे.पी. को पता चला तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मगर यह खुशी क्षणिक थी। बाद के दिनों में उन्होंने देखा– 'नेतागण बिना किसी प्रतिरोध के स्वयं को पुलिस के हवाले करके जेल में चरखा कातने आ बैठते थे। यह देखकर उन्हें स्पष्ट आभास हो रहा था कि नेताओं के अभाव में क्रान्ति में संगठनहीनता आ जायेगी और ब्रिटिश हुकूमत आसानी से बगावत पर काबू पा

लेगी।

जयप्रकाशनारायण ने एक योजना तैयार की। फ्रांस की क्रान्ति में बोस्तील जेल तोड़कर रातोंरात खाली कर दी गयी थी। उनकी योजना के तहत यही इतिहास यहाँ दोहराया जाना था; किन्तु भेद खुल जाने के कारण इसका क्रियान्वयन न हो सका। इस बीच अगस्त बीत चुका था। सितम्बर के पहले हफ्ते तक जेल की कोठरियाँ नेताओं से पूर्ण आबाद हो चुकी थीं। ऐसी खबरें बराबर आ रही थीं कि सारे बड़े नेता बंदी बनाये जा चुके हैं और क्रान्ति बिखरने लगी है। इस स्थिति से निपटने के लिए जे.पी. ने नयी योजना तैयार की, ताकि वे और उनके साथी बिखरती क्रान्ति को संगठित करके धारदार बना सकें।

* * *

जेल में इस बार एक हफ्ते पहले से ही अद्वितीय दीवाली मनाने का कार्यक्रम बनने लगा था। युवकों में उत्साह अधिक था, वृद्धों और नेताछाप लोगों में कम। हाँ, इन लोगों ने कोई विरोध नहीं किया और जेल अधिकारियों से बात करके रात १२ बजे तक खुले रहने का प्रबन्ध भी करा दिया था। आज दीपावली भी आ पहुँची थी, सुबह से ही कार्यक्रमों का रिहर्सल शुरू हो गया था। शाम को जे.पी. ने कृष्णवल्लभ सहाय के साथ बैडमिण्टन भी खेला था।

रात करीब खिसक आयी। पेड़ों पर चहचहाते पक्षी शान्त हो गये। जेल में दीपावली के दिए जले। लोग गले मिलने लगे। नौजवान गा उठे– "दीवाली फिर आ गई सजनी... थाली, बाल्टी, लोटा, जिसके हाथ जो लग गया, उसी पर थाप देने लग गया। कुछ जोड़ी पाँव थिरकने लगे। रंग जम गया। उदासीन लोगों में भी उमंग जाग गयी और वे भी अद्वितीय दीवाली के राग–रंग में शरीक होते गये।

ढाई सौ राजबंदियों के बीच जेलर और नायब जेलर किस–किस पर नजर रखें? फिर जरूरत भी क्या थी, जेल अभेद्य और अनुल्लंघनीय जो ठहरी। इसी समय जेल के उस कोने में जहाँ जामुन के पेड़ की छाया से अँधेरा था, किसी ने लाकर एक मेज़ रख दिया। एक आदमी मेज पर चढ़ गया। दूसरा व्यक्ति उसके कन्धे पर चढ़ गया। उसने टटोल कर कंदील रखने का गवाक्ष मजबूती से पकड़ लिया तब तक खिसकते हुए वहाँ और लोग भी आ गये। उनमें से एक पहले व्यक्ति की कमर पर पैर टिकाता हुआ दूसरे आदमी के कंधे पर खड़ा हो गया। अब दीवार का आखिरी सिरा उसकी पहुँच में था। वह उचक कर दीवार पर चढ़ गया। एक नजर चारों तरफ देखकर उसने कमर में बँधी रस्सी का सिरा मेज पर खड़े साथियों को थमाकर दूसरा सिरा बाहर गिरा दिया और नीचे सरकने लगा। कुछ क्षण बाद वह जमीन पर था। उसने अगल–बगल देखा, कोई नहीं था। वह वहीं लेट गया। इसी समय रस्सी के सहारे दूसरा, फिर तीसरा और फिर पाँच मिनट के अन्दर छहों राजबंदी बाहर आ गये। चलते–चलते उन लोगों ने एक बार जेल की ओर देखा। अन्दर कोई सुरीली तान छेड़े हुए था–

"हिन्द का जिन्दा काँप रहा है गूँज रही हैं तदबीरें
उकताये शायद कुछ कैदी तोड़ रहे हैं जंजीरें। ...."

और फिर देखते–देखते वे छहों राजबंदी जंगल के घने अँधेरे में खो गये।

– जासापारा, गोसाईगंज – २२८११६
सुलतानपुर (उ.प्र.)

१८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम की नींव

सन् १८५७ के स्वतंत्रता–संग्राम की नींव सन् १८५५ के हरिद्वार–महाकुम्भ में डाली गयी थी। इसका नेतृत्व दशनामी संन्यास परम्परा के एक वृद्ध संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द ने किया था। वे संभवतः महानिर्वाणी अखाड़े से सम्बद्ध थे।

विभिन्न पुस्तकों और सोरम (मुजफ्फपुर नगर) की सर्वखाप पंचायत के रिकार्ड़ों के अनुसार स्वाधीनता–आन्दोलन छेड़ने के लिए दशनामी संन्यासी स्वामी ओमानन्द एवं उनके शिष्य पूर्णानन्द लम्बे समय तक काम करते रहे। सन् १८५५ के हरिद्वार–महाकुम्भ के अवसर पर (बाद में स्वतंत्रता संग्राम के नायक बने) नाना साहब, तात्या टोपे, अजीम उल्ला खाँ, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के पुत्र फिरोजशाह, स्वामी पूर्णानन्द एवं स्वामी दयानन्द ने यहाँ बैठक करके स्वाधीनता–आन्दोलन की रूप–रेखा तैयार की थी।

सन् १८५७ का स्वतंत्रता–आन्दोलन केवल सैनिकों का आन्दोलन ही नहीं था, बल्कि असैनिक जनता का भी उसमें बड़ा योगदान था, और इस संघर्ष की अगुवाई अप्रत्यक्ष रूप से संन्यासियों ने की थी।

– 'दक्षिण समाचार' (हैदराबाद) से साभार

विभाजन का अपराधी कौन ?

- चन्द्रशेखर शुक्ल

जिन्ना की द्वि–राष्ट्रवाद की इस सोच से सम्बद्ध यह कहना समीचीन है कि भारतीय मुख्य धारा को बाहर से आये शक, हूण, किरात, यवनादि लोगों को आत्मसात् करने में कोई परेशानी नहीं हुई और ये लोग भी परस्पर सौहार्द में यहाँ रहने के लिये समुत्सुक थे। परिणामस्वरूप सभी यहाँ परस्पर प्रायः रच–पच गये; किन्तु, इस्लाम धर्मावलम्बियों से हमारा सम्पर्क दो ध्रुवीय अन्तराल जैसा था और वह अन्तर द्वि–राष्ट्रवाद की घटना घटित होने के बाद भी अद्यावधि ज्यों का त्यों है। इसका कारण है कि इस्लाम मतावलम्बियों के मूल चरित्र में दूसरों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के मिलन–बिन्दु पर कोई बदलाव नहीं आना; क्योंकि **इस्लाम का भ्रातृत्व मानव–जाति का भ्रातृत्व नहीं होता। उनकी यह संवेदना मुसलमानों से मुसलमानों तक ही सीमित रहती है। वह राष्ट्रवाद का कभी कायल नहीं होता। "दारुल हरब" से "दारुल इस्लाम" तक की अपनी यात्रा की अवधारणा की सीमा से बाहर निकलने की उनके लिए मनाही है। सम्भवतः इसीलिए मौलाना मुहम्मद अली ने भारत की अपेक्षा यरूशलम में दफनाया जाना अधिक पसंद किया।** इसीलिए, भीमराव अम्बेदकर ने समूचे स्वाधीनता–आन्दोलन को हिन्दू–मुसलमानों के बीच पृथक् संस्कृतियों की लड़ाई के रूप में देखा था। वस्तुस्थिति की सच्चाई भी यही है जिसे गांधी और नेहरू ने भी माना है कि मुसलमान राष्ट्र की मुख्य धारा और मुख्य संस्कृति के साथ नहीं जुड़ना चाहता।

इसी परिप्रेक्ष्य में जिन्ना ने द्वि–राष्ट्रवाद के क्रियान्वयन में अपनी मुहिम जारी रखी। वह मुख्यतः चार बातों पर अपना पुरअसर तर्क प्रस्तुत करते थे। पहला, इस्लाम और हिन्दुत्व सही संदर्भ में धर्म–मत नहीं हैं, अपितु ये दो भिन्न और सुनिश्चित पहचान वाली परस्पर पृथक्–पृथक् समाज की व्यवस्थाएँ हैं। दूसरा, हिन्दू और मुसलमानों के लिए दो अलग–अलग सामाजिक रीति–रिवाज, दर्शन और साहित्य हैं। इनके महाकाव्य ही नहीं; अपितु गौरव ग्रंथ भी अलग हैं। तीसरा, ये दोनों दो भिन्न सभ्यताओं से सम्बद्ध हैं। चौथा, इनकी जीवन–दृष्टि अलग–अलग है। अपने इतिहास के अलग–अलग स्रोतों से ये प्रेरणा ग्रहण करते हैं। जिन्ना की तरह ही इकबाल भी अखण्ड भारत के कभी हामी रहे थे। किन्तु, कालान्तर में उन्होंने भी करवट बदली और कहा– "ऐ मुसलमान! तू अपने दामन को वतन की मिट्टी से झाड़कर रख, तब ही तू तरक्की कर सकेगा"! उन्होंने अपने तराने की बीन भी उलटी धारा में बजाना आरम्भ कर दिया:

"चीन–ओ–अरब हमारा हिन्दोस्ताँ हमारा
मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा"

उक्त सन्दर्भ में खण्डित आजादी के प्रस्ताव का पारित होना ही परिस्थितिजन्य एकमात्र विकल्प शेष रहता है। इसके साथ एक प्रस्ताव और भी दिमाग में आता रहा है– प्रस्तावित द्वि–राष्ट्र के अल्पसंख्यकों की आबादी का परस्पर अदला–बदली। किन्तु, भारतीय मुख्यधारा के तथाकथित कर्णधारों को यह प्रस्ताव इसलिए भी स्वीकार नहीं रहा कि वे मजहबपरस्ती को अपने वोट बैंक तक पहुँचाकर "धर्म निरपेक्षता" का दायित्व एकमात्र हिन्दुओं पर लादकर सर्वदा सत्तासीन होना चाहते रहे हैं। हिन्दू–हिन्दू की बात न करें क्योंकि उससे 'साम्प्रदायिकता' की गंध निकलती है। ऐसा करने से वोट की राजनीति में मजहब और जाति को संवैधानिक दर्जा हासिल हो जाता है। इतना ही नहीं, जैन, बौद्ध, सिक्ख को अलग–अलग धर्म मानकर इन्हें इस्लाम और ईसाइयत के समकक्ष रखे जाने का उपक्रम होता है और हिन्दू–धर्म को इनके समानान्तर रख कर कहा जाता है कि भारत पहले से ही एक बहुधर्मी देश है। वस्तुतः भारत कभी बहुधर्मी देश नहीं रहा है, अपितु यह अनेक विचाराचार वाले लोगों का देश रहा है। यहाँ सबकी जगह सुनिश्चित रही है, बिना टकराव के।

बहरहाल, जो होना होता है, वही तो होता है।

अंतिम ब्रिटिश वाइसराय लार्ड लुई माउण्टबेटन की पहल पर देश के बँटवारे का प्रस्ताव पेश किया जाता हैं। तब, "मुस्लिम लीग" के सर्वमान्य नेता जिन्ना उसे तत्काल स्वीकार कर लेते हैं। कांग्रेस की "कार्य-समिति" के तीन प्रमुख नेताओं– नेहरू, पटेल और आजाद– की भी उसमें सहमति हो जाती है, क्योंकि जिन्ना अपनी मजलिस के सर्वेसर्वा रहे हैं और उन्हें उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है। किन्तु, कांग्रेस की "कार्य-समिति" द्वारा पारित प्रस्तााव का क्रियान्वयन तभी सम्भव होता है, जब "अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" इसका अनुमोदन करती है। आम आदमी उक्त प्रस्ताव के विरोध में खड़ा हो जाता है। "अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" आहूत होती है। सभी की निगाहें गांधी पर टिक जाती हैं, कि वह इसका विरोध करेंगे और नये सिरे से देश का नेतृत्व सम्भालेंगे। क्योंकि आम आदमी सुनते आये हैं कि गांधी कहते रहे हैं कि हिन्दुस्तान का बँटवारा मेरी लाश पर होगा। ये लोग यह भी सुनते आये हैं कि गांधी कहते हैं कि अंग्रेज पहले हिन्दुस्तान से चले जाएँ, हम हिन्दू–मुसलमान आपस में निपट लेंगे।

१४–१५ जून, सन् १६४८ का कोलाहल–भरा दिन। "अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" बैठती है। पटेल समिति के सम्मुख देश के विभाजन के प्रस्ताव को अनुमोदन के लिये अपने तर्क प्रस्तुत करते है। अध्यक्ष–पद से आचार्य कृपलानी विभाजन के परिणाम के प्रति आशंका व्यक्त करते हुए दबे स्वर में इसके अनुमोदन की संस्तुति प्रस्तुत करते हैं। किन्तु भारत के भाग्य में कुछ और बदा था। गांधी खड़े होते हैं। चारों ओर से समारोह में तालियाँ गूँज उठती हैं। वहाँ उपस्थित प्रायः सभी यह सुनना चाहते हैं कि वह बूढ़ा, नंगा फकीर अपने हाथों को आकाश में उठाकर यह कब कहता है कि मैं इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हूँ।" और कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में "एकला चलो, एकला चलो" कहते हुए समारोह से बाहर निकल जाता है और हुजूम उनके पीछे दौड़ पड़ता है।

गान्धी खड़े होते हैं, मलिन विषण्ण–मुद्रा में (यह मुद्रा उन्होंने जान–बूझकर बनायी थी अपना ढोंग छिपाने के लिए। वह माउन्टबैटन को पहले ही आश्वस्त कर आये थे कि वह विभाजन का प्रस्ताव कांग्रेस महासमिति में पारित करा लेंगे। जन–रोष से बचने के लिए वह नोआखाली चले गये थे और हसन शहीद सुहरावर्दी जैसे हिन्दू-संहार कराने वाले लीगी को सज्जनता का प्रमाण–पत्र दे आये। तथ्य यह है, सत्य भी यही है कि देश–विभाजन के महापाप में माउन्टबैटन दम्पति, नेहरू और गान्धी की पूरी दुरभिसन्धि थी। विभाजन के असली अपराधी माउण्टबैटन, नेहरू और गान्धी ही थे, जिन्होंने मृत्यु भी ईश्वरीय–दण्ड के रूप में तदनुरूप ही पायी। –सं.) वह भर्राये स्वर में कहते हैः "जब आप द्वारा चुने हुए "कार्य-समिति" के सदस्यों ने विभाजन का निर्णय ले ही लिया है, तो आप भी इसे स्वीकार कर लें। मुझ बूढ़े में नेतृत्व सम्भालने की शक्ति नहीं रही।" गान्धी जी के मुख से यह सुनते ही लोगों पर वज्राघात होता है। लोग सोचने लगते हैः "काह सुनाव दई काह दिखावा"।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि गांधी यदि विभाजन के प्रस्ताव को न मानते और इस आपद्धर्म के निर्वाह के लिये कांग्रेस का नेतृत्व स्वयं सभाल लेते, तो देश विभाजन की आपदा से क्या हम बच जाते? सम्भावना यही रही है। भारतीय मानस द्वारा समर्थित गांधी में वह कूबत अवश्य रही है कि वह अपने मिशन में सफल होते। किन्तु गान्धी अपना मिशन जान–बूझ कर आचानक भूल जाते हैं। गांधी की तरह अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने भी अपने देश में गृहयुद्ध के अवसर पर कहा था कि मेरे देश का विभाजन मेरी लाश पर होगा। विचित्र संयोग है कि अब्राहम लिंकन का जनाजा जरूर निकला; किन्तु अमेरिका विभाजित नहीं हो सका। परन्तु भारतीय जनमानस की वेदना यह है कि देश विभाजित भी हुआ और साथ ही गांधी का जनाजा भी निकला और उनके तथाकथित चेलों ने उनके 'वाद' का भी जनाजा निकाल दिया। इस परिप्रेक्ष्य में गांधी एक अभिशप्त पुरुष ही नहीं, विभाजन के 'पितृ–पुरुष' भी माने जायेंगे।

उक्त ऐतिहासिक परिदृश्य से साराशतः निष्कर्ष क्या निकलता है, यही विचारणीय प्रश्न है। हिन्दू और मुसलमानों की अलग–अलग पहचान के संदर्भ में, जो आज है और जिसे बरकरार रखने के लिये सेक्युलर नेतृत्व प्रयासरत है, यही कहा जा सकता है कि देश की खंडित आजादी के लिए जिन्ना और नेहरू–गान्धी ही नहीं, भारतीय भू–खण्ड की अधिसंख्य मुसलमानों की वह मानसिकता भी उत्तरदायी है, जो इस धरती को केवल अपनी भोगभूमि मानती है। इस शताब्दी में भारतीय भू–खण्ड में गांधी से बढ़कर मुसलमानों का कोई हितेच्छु नहीं जन्मा। किन्तु, उनके निधन पर कायदे आजम जिन्ना के मुख से ये शब्द ही तो निकले थे : "आज हिन्दुओं का सबसे बड़ा नेता मर गया।"

(शेष पृष्ठ ८६ पर)

चाहिए एक नयी सामाजिक-क्रान्ति

— प्रो० बलराज मधोक

हिन्दुस्तान की इस समय सबसे बड़ी समस्या इसके लोगों में देश और समाज के प्रति अपनत्व के भाव, राष्ट्रवाद की भावना और चेतना का अभाव है। फलस्वरूप विघटनकारी और तोड़ने वाली शक्तियाँ और प्रवृत्तियाँ बढ़ रहीं हैं और एकता के सूत्र कमजोर पड़ते जा रहे हैं; जिसके कारण सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता का भाव समाप्त हो रहा है और जाति–बिरादरी का भाव बढ़ रहा है। जातिवाद के कारण सम्प्रदाय और क्षेत्रवाद को भी बल मिल रहा है।

इसलिए सबसे पहली आवश्यकता देश के मूल राष्ट्रीय समाज में समरसता लाने की है और सामाजिक ढाँचे में आयी विकृतियों को दूर करने की है। इसके लिए देश में एक नयी सामाजिक क्रान्ति लाने की आवश्यकता है।

किसी भी क्रान्ति, चाहे वह हिंसक हो अथवा अहिंसक, का मूल 'विचार' होता है। वैचारिक क्रान्ति के बिना संसार में न कोई बड़ा बदलाव, बड़ी क्रान्ति कभी हुई है और न हो सकती है। इसीलिए भारत में सामाजिक क्रान्ति लाने के लिए भारतीय समाज का ढाँचा जिस विचार पर आधारित है, उसे समझना होगा और उसमें बदलाव लाना होगा।

वर्ण–व्यवस्था

भारतीय समाज के ढाँचे का आधार वर्ण–व्यवस्था को माना जाता है। वर्ण–व्यवस्था का मूल यजुर्वेद के इकत्तीसवें अध्याय का निम्न मन्त्र माना जाता है :–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

इसके अनुसार ब्राह्मण ईश्वर का मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य कमर तथा शूद्र पाँव से उत्पन्न हुए। शरीर के चार प्रमुख अंगों के साथ समाज के चार भागों को जोड़कर वैदिक ऋषि ने यह स्पष्ट किया कि चारों अंग एक ही शरीर के अवयव हैं। यह अलग–अलग काम करते हैं, परन्तु इन चारों के मेल से ही शरीर बनता है और समाज चलता है, उनमें से किसी को छोटा या बड़ा, नीच या ऊँच कहना सरासर असंगत और तर्कहीन है। इनमें से एक भी अंग नकारा हो जाय, तो सारा शरीर नकारा हो जाता है। इसी प्रकार समाज में भी काम का बँटवारा करना आवश्यक होता है। जो दिमागी काम करते हैं, पढ़ते है और पढ़ाते हैं वे ब्राह्मण, जो समाज के लिए लड़ते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, शासन चलाते हैं वे क्षत्रिय, समाज के निर्वाह के लिए साधन जुटाते हैं, जो खेती और व्यापार करके धन कमाते हैं, वे वैश्य और जो अपने श्रम से ऊपर दिये गये तीनों कामों में सहयोग करते हैं, वे शूद्र हैं। यह एक–दूसरे का सहारा और पूरक हैं। उनमें से किसी को ऊँचा या किसी को नीचा कहना गलत है। समाज एक है काम के बँटवारे की दृष्टि से बनाये गये वर्ग या वर्ण अनेक हैं।

मनुस्मृति के रचयिता महर्षि मनु (जिनको अज्ञानता–वश श्री कांशीराम और मायावती दिन रात कोसते हैं) ने काम के बँटवारे की इस व्यवस्था को अधिक विस्तार से और अधिक तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। मनुस्मृति के दशवें अध्याय के पैंसठवें श्लोक–

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।

में मनु ने स्पष्ट किया है कि जो शूद्रकुल में पैदा होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण और स्वभाव वाला हो; वह शूद्र क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय; वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कुल में पैदा हुआ; परन्तु गुण, कर्म स्वभाव शूद्र जैसे हों, वह शूद्र कहलाये।

इन दो श्लोकों से यह स्पष्ट है कि वर्ण–व्यवस्था काम का बँटवारा मात्र है। यह गुण कर्म और स्वभाव पर आधारित है, जन्म पर नहीं। इस प्रकार के वर्ण या वर्ग बुद्धिजीवी, श्रमजीवी इत्यादि वर्ग संस्कार के सब देशों में हैं और रहेंगे। अपने गुणों और प्रयत्नों से एक वर्ग का व्यक्ति कभी भी दूसरे वर्ग का अंग बन सकता है।

वर्ण–व्यवस्था को गुण–कर्म–स्वभाव के स्थान पर जन्म के साथ जोड़ना एक विकृति है। यह विकृति क्यों और कैसे आयी? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। यह एक तथ्य है कि आज भी एक उपजाति के लोग विभिन्न जातियों में मिलते हैं। पंजाब में सूदन क्षत्रिय भी हैं और ब्राह्मण भी। पंजाब में योद्धा ब्राह्मण मस्यिान बन गये। उ०प्र० में खेती करने वाले ब्राह्मण त्यागी बन गये और बिहार में भूमिहार। मुस्लिम राज्यकाल में जिन क्षत्रियों ने मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ सबसे अधिक संघर्ष किया, उनको उन्होंने 'जिम्मी' बनाकर मैला उठाने जैसे काम करवाने शुरू किये। इस प्रकार गुजरात में सोलंकी शूद्र बन गये और उत्तर प्रदेश में पासी शूद्र बन गये; परन्तु पंजाब में पासी आज भी क्षत्रिय हैं। जो क्षत्रिय खेती करने लग गये, वे भी अन्य क्षत्रियों से पिछड़ गये। इसी कारण गुजरात में बाघेला क्षत्रिय अपने आपको पिछड़ा ओ०बी०सी० मानते हैं।

आज भी व्यवहार में यह बदलाव जारी है, केवल उसे सामाजिक मान्यता देने की आवश्यकता है। जनरल शर्मा और जनरल जैसी, भारत की स्थल सेना के प्रमुख रहे। उनके पिता भी सेना में अधिकारी थे औरपुत्र भी सेना में है, मनु के अनुसार– वे क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण नहीं। लेखक का जन्म क्षत्रिय परिवार में हुआ, १९४२ में एम०ए० पास करने के बाद सेना में कमीशन भी प्राप्त कर लिया था; परन्तु बाद में मन बदल गया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक बन गया और उसके बाद कालेज में प्राध्यापक बना। तब से पठन–पाठन का कार्य कर रहा है। राजनीति लेखक के लिए समाज सेवा का माध्यम है, व्यवसाय नहीं। इसलिए वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार लेखक अपने आपको ब्राह्मण मानता है।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर लेखक के अभिन्न मित्र थे। उनकी बुद्धि अति प्रखर थी। वे बहुत अच्छे लेखक और समाजसेवी थे। उनका जन्म एक शूद्र परिवार में हुआ था। परन्तु वैदिक–वर्ण–व्यवस्था के अनुसार वे एक बेहतर ब्राह्मण थे।

हिन्दुस्तान के मुसलमान और ईसाई भी हिन्दू समाज के अंग थे। वर्ण–व्यवस्था के साथ वे भी बँधे हुए थे और अब भी बँधे हुए हैं। इन विकृतियों के वे भी शिकार हो गये।

उच्च जातियों के मुसलमान, जिन्हें 'अशरफ' कहा जाता है, छोटी जाति के मुसलमानों, जिन्हें 'अजलफ' कहा जाता है, के साथ वैसा ही भेदभाव करते हैं, जैसे उच्च जातियों के हिन्दू शूद्रों के साथ करते हैं।

जन्म और जाति के आधार पर आरक्षण की नीति ने वर्ण–व्यवस्था में आज इन विकृतियों का राजनीतिकरण कर दिया है और उनको बनाये रखने में कुछ लोगों का निहित–स्वार्थ पैदा कर दिया है। इसके कारण गलती को सुधारने के बजाय स्थायी बनाया जा रहा है। डॉ० अम्बेडकर विद्वान् थे। वे इस बात को समझते थे, इसलिए वे जन्म और जाति के आधार पर किसी प्रकार के आरक्षण के विरोधी थे। आज हिन्दुस्तान देश और हिन्दू समाज को सबसे बड़ा खतरा इस विकृत वर्ण–व्यवस्था से है। यह समाज को भी तोड़ रही है और देश को भी। राष्ट्रवाद के उद्भव में यह सबसे बड़ी रुकावट है और इसीलिए यह देश की सुरक्षा के लिए भी खतरा बन रही है।

इस विकृत वर्ण–व्यवस्था को बदलना, जन्म के स्थान पर गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर लोगों का मूल्यांकन और उनका वर्गीकरण करना हर प्रकार के आरक्षण को खत्म करके, जो लोग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, उन्हें ऊपर उठाने के लिए न्याय संगत और तर्क-संगत पग उठाना आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता है, इसको पूरा करने के लिए देश में सामाजिक–क्रान्ति लानी होगी। वे सभी लोग जो राष्ट्र के हितैषी हैं, समाज को जोड़ना चाहते हैं और सभी को सामाजिक–न्याय दिलाना चाहते हैं, उन्हें इस सामाजिक क्रान्ति के लिए मिलकर काम करना चाहिए। ❑

– जे–३६४, शंकर रोड, नई दिल्ली–११००६०

श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ते हैं अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ. कलाम

अंतरिक्ष के क्षेत्र में डॉ. अब्दुल पी.जे. कलाम ने भारत को अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलाई है। उनका जन्म मंदिरों की नगरी रामेश्वरम में हुआ था। डॉ. कलाम का बचपन पड़ोस में रहने वाले एक हिन्दू परिवार के संग बीता है। इस परिवार की संगति का उन पर बहुत असर हुआ। यही कारण है कि वे शाकाहारी हैं और भगवद् गीता पढ़ते हैं। 'भारत-रत्न' से सम्मानित इस गौरव पुरुष का शाकाहारी रहना व भगवद् गीता पढ़ना हर भारतीय नागरिक के लिए प्रेरणादायी है। ❑

पैन इस्लामिज्म, जिससे आज के कथित 'उग्रवाद' की जड़ें जुड़ी हैं

डा. राम मनोहर लोहिया का आत्म-साक्ष्य

❒ वचनेश त्रिपाठी

शहीद शचीन मित्र के बारे में एक बार डा. राम मनोहर लोहिया ने कहा था, "उस हिम्मतवर नौजवान ने अपने सिद्धान्तों के प्रति ऐसी आस्था प्रदर्शित की, वैसी किसी दूसरे ने तो आज तक प्रकट नहीं की। मुझे कभी-कभी इस बात से बड़ा अफसोस होता है कि शचीन जिन्दा नहीं है। उसके नाम पर आज तक कोई स्मारक खड़ा नहीं किया गया। गान्धी जी की इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न करते हुए शचीन मित्र कुरबान हो गये। गान्धी जी ने जरूर ही उनको वही हिदायतें दी होंगी, जो मुझे दी थीं। एक दिन कलकत्ते के किसी मुसलमान मुहल्ले में, ऐसे कट्टर मजहबी मुसलमानों ने, जिन्हें इस किस्म के मेल-मिलाप पैदा करने के काम बिल्कुल नापसन्द थे, उन्हें मार डाला। शचीन मित्र एक विचित्र पुरुष था। हम दोनों कलकत्ते में छात्र-संघ में साथ-साथ काम कर चुके थे।"

साइमन कमीशन के बहिष्कार के समय

डा. लोहिया के ये उद्‌गार उक्त शहीद के सम्बन्ध में मैंने इसलिए उद्‌धृत किये कि कोई शचीन मित्र की बात को अतिशयोक्ति या अप्रामाणिक न माने। कौन थे ये शचीन मित्र, इसकी पूरी जानकारी तो प्रयास करके भी सम्भव नहीं हो पाई। अवश्य ही यह प्रगति हुई कि वे कानपुर के अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी और एक अन्य शहीद शिवबुल्ला खाँ की श्रेणी के ही शहीद थे। अपने छात्र-जीवन से ही देश की आजादी की लड़ाई से जुड़ गये थे- उसका एक प्रमाण यह है कि जिन दिनों देश में सर्वत्र साइमन-कमीशन के बहिष्कार का आन्दोलन चल रहा था, पंजाब में लाला लाजपत राय, सरदार भगत सिंह, सुखदेव, सरीखे महाप्राण साइमन-कमीशन के बहिष्कार के लिए जुलूस और प्रदर्शन आयोजित कर रहे थे, बल्कि लाला लाजपतराय ने तो अपने प्राण ही उत्सर्ग कर दिये इस बहिष्कार-आंदोलन के बीच। कलकत्ता में छात्रों के बीच शचीन मित्र ही था- जिसने 'साइमन-कमीशन' के बहिष्कार के उद्देश्य से एक बृहत् जन-सभा का आयोजन किया था। उस सभा की अध्यक्षता शचीन मित्र की योजनानुसार सुभाषचंद्र बोस करने वाले थे। अंत में, जब देखा, सुभाष बोस के आने में बहुत विलम्ब हो रहा है; तो शचीन मित्र ने अपने ही उस जमाने के एक साथी छात्र राम मनोहर लोहिया, जो बाद में एक बड़े समाजवादी नेता के नाते प्रसिद्ध हुए- को अध्यक्षता के लिए मंच पर ला बिठाया और विधिवत् सभा की कार्यवाही प्रारम्भ करा दी। ऐसी प्रत्युत्पन्नमति वाला था शचीन मित्र। ऐसा था उसका साहस और विवेक। आगे शचीन मित्र इंग्लैण्ड चला गया और डा. लोहिया गये जर्मनी। दोनों के रास्ते भी जुदा हो गये। इंग्लैण्ड में जाकर देखा गया ऊपरी तौर से कि शचीन मित्र में फैशन परस्ती आ गई है और वह बड़े आदमी जैसी जिन्दगी जी रहा है- सांहबी ठाठ-बाट से रहता है; परन्तु यह मात्र भ्रम ही था- उसका बहिरूंप था, उसका अंतरंग कुछ भी परिवर्तित नहीं हुआ था। वहाँ अभी भी वही आग धक्-धक् जल रही थी। स्वदेश लौटने पर वह पुनः देश और समाज-सेवा के रास्ते पर अपने ढंग से और गांधी जी के नेतृत्व तथा दिशा-निर्देशन में संलग्न देखा गया। वह जमाना सन् १९४६ का था, अगस्त का महीना था। कलकत्ता दंगों का शहर बन चुका था। लाखों लोग मारे गये थे, करोड़ों उत्पीड़ित होकर उजड़ गये थे। बकौल डा. लोहिया कि "अनेक हिन्दू छात्र, कातिल कलकत्ते शहर में मुस्लिम गढ़ या इलाके में कैदखाने की-सी तकलीफें और मुसीबतें बरदाश्त कर रहे थे। मुस्लिम हदों के बाहर के हिन्दू हमारी हालत के बारे में अत्यंत चिन्तित हो उठे थे। उन हिन्दू छात्रों ने उस खतरनाक मुहल्ले से बाहर तक निर्विघ्न वापस पहुँचा आने के लिए हम पर बड़ा जोर डाला। इसी बीच बालकृष्ण

और अश्विनी गुप्ता हमारे पास उस होस्टल में आ गये थे।"

और उन दिनों चटगाँव का क्या नक्शा था, बकौल डा. लोहिया "थोड़ी देर बाद ही समूचे चटगाँव शहर में जिसकी ८० फीसदी आबादी मुसलमान थी, मुस्लिम गुण्डों को दंगा लूट–खसोट और मारकाट करने की खुली छूट अफसरों ने दे दी थी। इस शहर का दो नम्बर का यानी दूसरे दर्जे का पुलिस अफसर हिन्दू था। वह हमें रात भर अपने घर में पनाह देकर हमारी हिफाजत करना चाहता था।.... हमने उस रात वह आतंक व अत्याचार देखा, अच्छी तरह सूँघा और महसूस किया; जो एक प्रबल बहुमत वाला (मुसलमान) समूह या समुदाय वहाँ अल्पसंख्यकों (हिन्दुओं) परढा और बरपा कर सकता था। इस वारदात का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा और मैंने भी आवेश में आकर नाटकीय ढँग का वक्तव्य दे डाला कि "इस तरह के अन्याय व जुल्म अब ज्यादा दिन बरदाश्त नहीं किये जा सकते और उनका खात्मा करने के लिए, कोई न कोई रास्ता जल्द से जल्द ढूँढा जाना चाहिए। डेढ़ करोड़ लोग इस बुरी तरह मजबूर कर दिये गये कि उनको भाग आने के अलावा कोई रास्ता नहीं दिखायी दिया। इन डेढ़ करोड़ इन्सानों को अपने घर–बार से नेस्तनाबूद कर इस बुरी किस्म से उजाड़ दिया गया कि वे रोजी–रोटी और घर के लिए भटकते फिरे। शायद समूचे संसार के इतिहास में इससे पहले कभी भी इतनी बड़ी तादाद में लोगों को अपनी जन्म–भूमि, कर्म–भूमि, काम–धन्धे, जमीन–जगह आदि वहीं छोड़कर दूसरे दूर के क्षेत्रों में भटकने की घटना न घटी हो। ६ लाख **मर्दो–औरतों और बच्चों का कत्ले आम कर दिया गया।** हत्यारे पागलपन के नारे या उन्माद में इस तरह के खूँखार खूनी बन गये थे कि वे जान मारने और बलात्कार करने के जघन्य पापों की यातनाओं के नये–नये तरीके और किस्में ईजाद कर रहे थे।"

पं. नेहरू उवाच

देश में लीगियों द्वारा यह कत्लेआम देखकर बकौल डा. लोहिया पं. जवाहर लाल नेहरू भी उस वक्त जब कि उनके सामने यह प्रस्ताव आया कि "हिन्दू–मुसलमानों को दो अलग कौमें समझने के सिद्धान्त को अस्वीकार किया जाना चाहिये और अखण्ड भारत की ही सर्वदा पूजा और आराधना करनी चाहिये" तो बौखलाकर बोले– "ऐसे वक्त लगातार हिन्दू–मुसलमानों को 'भाई–भाई' कहना जब कि वे एक दूसरे का गला काटने को दिन–रात दौड़ते रहते हैं, मुझे सिर्फ अहमकों और बेवकूफों की–सी बहक मालूम पड़ती है। जिन्ना के साथ रोजाना इस तरह का वाद–विवाद चलाना भी बेकार ही नहीं, भद्दा और भयानक भी है।"

पहले कभी कोई सोच सकता था कि किसी मौके पर पं. नेहरू भी ऐसा विचार व्यक्त कर सकते हैं। परन्तु वह शायद उन परिस्थितियों का ही तकाजा था। लीगी मुसलमानों की कलकत्ते की एक सभा का जिक्र करते हुए डा. लोहिया ने लिखा कि, "हमारी तरफ देखने वालों की आँखों में कटार और खंजर बरस रहे थे। राजनीति और मजहब, दोनों में ही 'काफिर', हम लोगों को देखकर उनकी नजरें खूंखार खूनियों की–सी हो उठी थी। वहाँ पर दूषित मनों से उबलती उफनती लपटों में उठती आग की आब हवा तैयार हो गई थी। वह दिन मुझे हमेशा याद रहेगा, जब करीब दो घंटे कि लिए मैं मुस्लिम हदों के भीतर घुस गया था– यह बात खास कलकत्ते की ही है सन् १९४६ की।"

बकौल डा. लोहिया "हमारी देहों पर वे खूंखार आँखें मुझे हमेशा याद रहेंगी, जब मैं और बारीन घोष उस मुस्लिम मुहल्ले में मेरे दोस्त के घर तक का दो फर्लांग का रास्ता तय कर रहे थे। गली में खड़े, लोगों के नेत्रों

आज के विश्व को ज्ञात सारे अस्त्र–शस्त्र ही नहीं, उनसे भी अधिक भीषणतम नये–नये शस्त्रास्त्रों को खोज निकालने और तैयार करने के लिये शतावधि युद्धक रसायनशालाएँ और शतावधि कारखाने सारे देशभर में घनघनाते और गड़गड़ाते रहने चाहिये। आगामी पाँच वर्षों में आधुनिक विश्व के किसी भी राष्ट्र के शस्त्रबल की तुलना में हमारे भारतीय महाराज्य को अधिक बलशाली होना चाहिये।

वैसे सशक्त होने पर ही आप चाहें तो विश्व को कह सकेंगे कि हम आक्रमण नहीं करेंगे या हम तटस्थ रहना चाहते हैं। तब कहीं उन शब्दों का कुछ अर्थ होगा।

— स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर

से कत्ल का खून बरस रहा था। उस इलाके में लगभग एक साल तक किसी हिन्दू की छाया तक नहीं पड़ी थी। जिस इमारत में हमे गये, वहाँ मुसलमान विद्यार्थियों का एक छात्रावास था। उस जगह तकरीबन सभी छात्र मुस्लिम लीगी ही थे। इनमें से कई तो विभिन्न संगठनों, दलों व संस्थाओं के सदर व सिपहसालार भी थे। उन्होंने मुझसे इस किस्म के डरावने सवाल भी पूछे कि "क्या आप भी कायदे आजम जिन्ना साहब को अंग्रेजों का दलाल समझते हैं?" कोनों के अन्धेरों से लपलपाती, जीभ निकालती, मौत से आमना–सामना करते हुए जब मैं विशुद्ध ईमानदारी के साथ यहाँ तक पहुँच गया था, तो कैसे बनावटी मुलायम या दिल रखने वाला दब्बू जवाब देता! इनमें से चन्द लीगी विद्यार्थी तो बेहद गुस्से से पागल हो रहे थे।"

मुस्लिम श्रोता भी कुरबान हुआ

ऐसे ही हालात में गांधी जी के अनुवर्ती शचीन मित्र को लीगियों ने कलकत्ते में कत्ल कर डाला। न सिर्फ एक शचीन मित्र, बल्कि कलकत्ते से दूर चटगाँव की एक सभा में जहाँ डा. लोहिया खुद मौजूद थे, लिखते हैं– "रास्ते के रेलवे स्टेशनों पर ही गुस्से में उत्तेजित भीड़ से मेरा आमना–सामना हो रहा था। चटगाँव में कुछ ऊँची खुली जगह पर मेरी आम सभा होने वाली थी। मुस्लिम लीग के बदमाशों ने वहाँ मौजूद मेरे दर्शकों या श्रोताओं में से एक आदमी जो डरकर नहीं भागा और अपनी ही जगह पर डटकर खड़ा रहा, मुस्लिम होने के बावजूद, उसके दो टुकड़े कर डाले। सिर्फ तीन श्रोता वहाँ खड़े रहे– बाकी सब डरकर भाग गये। ५ मिनट तक हम भी वहाँ खड़े रहे। जिला मजिस्ट्रेट व पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट दोनों ही मुसलमान थे। वे खुद सभा शुरू होने से पहले तक मारकाट व दंगे के कार्यक्रम का नक्शा बना रहे थे। हमारे ऊपर भी वहाँ ईंटों की बौछार होने लगी। मेरी बाँह–पीठ और छाती पर पता नहीं कितनी चोटें लगी। अपने सिर को बार–बार बड़ी चुस्ती के साथ इधर–उधर नीचा कर मैं कैसे बचा पाया; यह मुझे आज भी याद पड़ता है और अपनी फुर्ती पर अचम्भा भी होता है।

और आज का कथित "उग्रवाद"

भूलना न होगा कि आज कश्मीर की भी लगभग वही स्थिति है, जो विभाजन-पूर्व पूर्वी बंगाल, सिन्ध और पंजाब की थी। आज जिसे आतंकवाद या "उग्रवाद" जैसे गलत नाम दिये जा रहे हैं, उस विघटनवाद की जड़ें भी विभाजन–भूमिका से अपने खूनी 'पान-इस्लामिज्म' से ही जुड़ी हैं। ❑

प० बंगाल में एलेना फ्रूट कम्पनी नाम पर बन रहा अल्लाना कत्लगाह

गोपाल के देश में गोवंश के लिए एक ओर जहाँ संतों, धर्माचार्यों, गोभक्तों द्वारा आन्दोलन चलाये जा रहे हैं, वहीं हिन्दू जनभावनाओं को आहत करने के लिए कटिबद्ध सेकुलर सरकारों द्वारा नई–नई साजिशों के जरिए गोवंश हत्या का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है। इसी प्रकार का एक गंभीर षड्यन्त्र उजागर हुआ बंगाल के हावड़ा जिलान्तर्गत गौड़ी ग्राम में। जहाँ पर वामपंथी प्रदेश सरकार के सहयोग से एलेना फ्रूट प्रोसेसिंग कम्पनी के नाम पर अल्लाना कम्पनी द्वारा यान्त्रिक बूचड़खाना बनवाया जा रहा है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार २२ अगस्त १९६१ को पश्चिम बंगाल के भूमि राजस्व विभाग द्वारा गजट नोटिफिकेशन के माध्यम से दुइला अंचल की यह भूमि मोड़ी ग्राम डानडुनी लिन्फ प्रोजेक्ट तैयार करने के लिए अधिगृहीत की गयी थी। गत ६ जून ९५ को पट्टा के माध्यम से सरकार ने ५०, ७१,५६,८२० में इसी भूमि को एक कम्पनी को दे दिया तथा यह प्रचारित करवाया गया कि यहाँ एलेना कम्पनी द्वारा फ्रूट प्रोसेसिंग कारखाना लगाया जायेगा, परन्तु हाल में यहाँ शुरू हुए विशाल निर्माण कार्य की गति गोपनीयता के चलते क्षेत्रवासियों को शक हुआ तथा शीघ्र ही सत्य उजागर हो गया कि वास्तव में यहाँ एलेना कम्पनी द्वारा फ्रूट प्रोसेसिंग कारखाना नहीं, बल्कि मुम्बई की अल्लाना कम्पनी द्वारा यांत्रिक कत्लखाना बनाया जा रहा है। जिसका पूरा नाम फिज़ारिया कनजारभा अल्लाना लिमिटेड है, इसके मालिक मुम्बई के इरफान अब्दुल अल्लाना हैं। ❑

सब के सब बन्दर गान्धी के

- शिवाकान्त मिश्र 'विद्रोही'

जो हुए व्यतीत पचास साल आजादी के करते सवाल;
क्या मिला तुम्हें अंग्रेजों की सत्ता को भारत से निकाल।
उनचास साल वाले विकास की गति ऐसी बेढंगी है;
चिथड़ों में लिपटी धनिया की आबरू अभी तक नंगी है।
हो रहे कोयले गाँवों के दुधमुँहें ईंट के भट्ठों पर;
जो प्रेमचन्द के होरी हैं उनको रोटी की तंगी है।
डँस लिये स्वार्थ के विषधर ने पग ग्राम विकास योजना के
बैठे सरकारी फाइल पर कुंडली मारकर कपट-जाल।।
मैथिलीशरण के सपनों के आदर्श ग्राम की अनहोनी;
है रामराज्य का उदाहरण हरिजन आवासी कालोनी।
सीमेंट छिड़ककर बालू में निर्माण अधपकी ईंटों के,
पहली वर्षा में छत टपकी दीवारों को चाटे लोनी।
सूखे कण्ठों सरकारी नल आँसू टपकाते बूँद-बूँद
हैं अंधकार में फ्यूज बल्ब के पोल सूर से फटेहाल।।
जो संसद् की मर्यादा से खिलवाड़ करे, वह नेता है;
भाषण में तिल भर की करनी को ताड़ करे, वह नेता है।
सारे कानून ताख पर रख नम्बर दो के हथकंडों से;
जो वोट बैंक के नित-नित नये जुगाड़ करे, वह नेता है।
माइक के हत्थों से लेकर जूते-चप्पल-अपशब्दों तक
जन प्रतिनिधि की गुंडागर्दी बनती विधायिका की मिसाल।।
चंबल घाटी के बीहड़ तक बिगड़ा संसद् का ढर्रा है,
रो रहा खून के आँसू अब भारत का जर्रा-जर्रा है,
कल जिसको पुलिस ढूँढ़ती थी वह भारत भाग्यविधाता बन,
वातानुकूल कारों में बैठा उड़ा रहा गुलछर्रा है,
जिन पर अंकुश के लिए तिहाड़ों का निर्माण किया हमने,
वे रेल अफसरों पर ए.सी. के लिए रहे आँखें निकाल।।
इस तरह कुएँ में भाँग पड़ी हर कहीं दाल में काला है;
रिश्वत को 'सुविधा-शुल्क' नाम दे देकर हमने पाला है।
कर दिये दाँत खट्टे सारे पाचनतंत्रों की क्षमता के;
यूरिया और पशु चारे तक से पड़ा पेट का पाला है।
है स्वार्थ हमारा मूलमंत्र व्यवसाय हमारा लोकतंत्र;
हम ऐसे बगुले जिनके पाँवों में लोटा करते मराल।।
आतंकवाद की मुट्ठी में जकड़ी सारी सीमाएँ हैं;
विघटन, अलगाववाद की ही उठती रहती चर्चाएँ हैं।
सब के सब बन्दर गान्धी के, बस कुरसी-दौड़ लगाते हैं,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण उलटी बह रही हवाएँ हैं।
सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न, था 'कल' कुंठित है 'आज' खिन्न
जो हाथ कटे अब तक न जुड़े सन् सैंतालिस के दिन कराल।।

- डब्ल्यू-२५१, आवास विकास कालोनी, गोंडा-२७१००२

कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की

(भारत सरकार द्वारा १९६३ में जब्त)

- छैल बिहारी वाजपेयी 'बाण'

पुस्तक 'कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की' को सन् १९५१ में कुछ पंक्तियों के साथ लिखा, जिसका क्रमशः विस्तार होते-होते सन् १९६३ के जब्त काल तक १००० से अधिक छन्दों या कहिये चौपदों तक पहुँच गया।

पूरे देश को प्रचार माध्यम से धोखा देने वाले कुशासन के विरुद्ध भावों ने रचना का रूप ले लिया, जिसमें शिक्षा के अभाव के कारण गति-दोष, मात्रा-दोष, शब्द-पुनरावृत्ति-दोष सभी होने के बावजूद मात्र ऐतिहासिक दोष न होने पाये, इसका ही ध्यान रखने का प्रयास किया गया।

कांग्रेस शासन का प्रचार था कि 'अंग्रेजों ने देश बाँटा' मुझे इस सम्बन्ध में लिखना पड़ा कि गलत है। ब्रिटिश हुकूमत की अन्तर्कलह से भारत में ही नहीं, यूनियन जैक समस्त ब्रिटिश हुकूमत वाले देशों से स्वतः उतर गया। जबकि मुस्लिम तुष्टीकरण की चरम सीमा पार करके कांग्रेस द्वारा भारत को ही नहीं, भारत माता को विभाजित कर डाला गया भारत की तथाकथित आजादी के साथ-साथ।

- कवि-कथन

'श्याम', 'अनाम' और 'लंका' का पूरा भाग हुआ स्वाधीन;
'ब्रह्मा' स्वतः स्वतन्त्र हो गया, रहा न गोरों के आधीन।
किन्तु कांग्रेस के नेताओं ने दिखलाई नीति नवीन;
भारत का खण्डन कर डाला, राजनीति के परम प्रवीण।
सिंहासन के मरभुक्खों ने खोई शक्ति कृपाण की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

उदय हुआ था जिस गोदी में, मानव का इतिहास प्रथम;
बहती जहाँ कि सिन्धु, व्यास, सतलज, चिनाब, राबी, झेलम।
वेदों का निर्माण हुआ है, जहाँ सृष्टि के रचे नियम;
आदि सभ्यता ने मुसकाकर, लिया जहाँ अवतार स्वयम्।।
उसी पंचनद के प्रांगण की भूमि बाँट कर दान की।
कांग्रेस ने कर डाली, बरबादी हिन्दुस्थान की।।

मतवालों के शुचि शोणित से, जहाँ कि कण कण लाल था;
चौराहों पर टाँगा जाता बहादुरों का भाल था।
हर जवान, बालक, बूढ़े को आजादी का ख्याल था;
डायर की गोली से जूझा, जहाँ कि मदन गोपाल था।।
सिसक रही वह भूमि हमारी अमरबाग जलियान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्तान की।।

जहाँ के नरनाहर ने नारा वन्देमातरम् का बोला;
लंदन लोकसभा में जिसका सबसे पहले स्वर बोला।
जिसको सुन गोरों का आसन, शासन, सिंहासन डोला;
सरे आम ललकार के भूना पापी डायर का चोला।।

छिन्न–भिन्न हो गयी भूमि ऊधम सिंह के आह्वान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

'सवा लाख से एक लड़ाऊँ', गूँजी थी जिसकी ललकार;
लेकर 'बाज' जो कि घूमा था, नीले घोड़े का असवार।
बैरी दल के वक्षस्थल पर, चमकी थी जिसकी तलवार;
और उबाल दिया था जिसने, 'अरब सिन्धु' के जल का ज्वार।।

कहाँ गयी वह वरद–भूमि, गुरु गोविन्द सिंह के शान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

चमकी थी तलवार जहाँ पर सिन्धु देश के 'दाहिर' की;
आभा जहाँ कि बोल रही, 'रणजीत सिंह' नरनाहर की।
लाली अभी न छूट सकी थी, पद में लगे महावर की।
बहुएँ विधवाएँ बन जूझीं, बोल जहाँ जय हर हर की।।

भूमि बँटी श्री 'लाला लाजपत राय' के अस्थि–प्रदान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

खेत–खेत पर जहाँ खटकते आये खाँड़े खट खट खट;
बलिवेदी पर लग जाता था, जहाँ जवानों का जमघट;
विश्व–विजेता जहाँ सिकन्दर टिक न सका था एक मिनट;
पूछो इन नेताओं से, वह कहाँ गया झेलम का तट।।

सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को जहाँ कि कन्या दान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

चुने हुए सरहिन्द किले में जहाँ देश के अनुरागी;
गुरु–पुत्रों के बलिदानों से जहाँ धधकती है आगी।
मातृभूमि के लिए 'हकीकत' मरा जहाँ बनकर बागी;
खुली खड्ग लेकर घूमा था जहाँ कि बन्दा बैरागी।।

बाँट दिया पंजाब, भुलाकर गाथाएँ बलिदान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

जिस धरती पर जन्म लिया 'चैतन्य देव' से संत महान;
जहाँ 'विवेकानन्द' कर गये, विश्व–शान्ति का मार्ग प्रदान।
'रामकृष्ण' बन परमहंस बन गये जहाँ नर से भगवान;
जहाँ बैठ कर विपिन पाल ने, रचा देश का क्रांति–विधान।।

भूमि बँटी श्री 'बंकिमचन्द्र' के वन्देमातरम् गान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

राजगुरु सुखदेव भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद;
फाँसी के फन्दों पर झूले नाश कर लिये घर आबाद।
लाखों हुईं सुहागिन विधवा चूड़ी फूटीं बेतादाद;
हिन्दुस्थान की आजादी में, लाखों लोग हुए बरबाद।।

उसी देश में कर दी देखो रचना पाकिस्तान की।
कांग्रेस ने कर डाली बरबादी हिन्दुस्थान की।।

— २६१–ए, आवास विकास कालोनी, लखनऊ मार्ग, हरदोई (उ.प्र.)

सुनो, पोखरण क्या कहता है ?

– केशव प्रसाद चतुर्वेदी

पोखरण की बात समझने के लिए हमें अपने अन्तर में झाँककर देखना भी पड़ेगा। पिछली बार हमने उसके स्फोट को अनसुना जैसा कर दिया था।

उदात्त की ओर बढ़ो

मान लीजिए आपके घर में लगा बिजली का मीटर खराब हो गया या आपने ही उसका चलना रोक दिया हो और उसकी रीडिंग आनी बन्द हो गयी हो, तो ऐसी स्थिति में प्रायः जो होता है, जिसे सब जानते हैं कि किया जायेगा, कूलर आदि सब लग जायेगा। यह सरासर बिजली की चोरी है; बेईमानी है; नैतिक क्षरण है; केन्द्रक का क्षुद्र विकास है। हो सकता है कि कुछ विवेकशील लोग ऐसा न करें; क्योंकि उनके केन्द्रक का उदात्त विकास है; किन्तु, यह निश्चित है कि क्षुद्र विकास केन्द्रक से प्रेरित अधिकांश लोग ऐसी कार्य–संस्कृति में कोई खोट नहीं देखते हैं। नैतिक क्षरण के प्रति वे पूर्णतया संवेदन–शून्य हो गये हैं। सम्पूर्ण समाज में व्यक्तिगत जीवन, परिवार, मुहल्ला, शिक्षा केन्द्र, अस्पताल, अदालत सभी स्थानों में स्वार्थ, विषमता, बौद्धिक कलाबाजी, नकल–बाजी, आरक्षणबाजी, रिश्वत, शोषण के विभिन्न रूप, मुखौटे दिखलाई पड़ते हैं। पोखरण में हुए परमाणु–परीक्षणों की शक्ति की उच्चता, गम्भीरता और व्यापकता को अपने क्षुद्र न्यूक्लिअस (केन्द्रक) से कैसे स्थिर–स्थायी रखा जा सकेगा ? नाली की कींच से कहीं देवता की मूरत गढ़ी जाती है ? सुनो, पोखरण हमसे कुछ कह रहा है।

यह परमाणु–शक्ति–सम्पन्नता तुम्हारे प्राचीन पराक्रम की परम्परा में है; किन्तु आज भी तुम्हें इतनी शक्ति अर्जित करनी है कि अन्तरिक्ष और पृथ्वी (उभे इमे) इन दोनों ओर शत्रु तुम पर आक्रमण न कर सके; पश्चात् (पश्चिम दिशा) के पाकिस्तान और अमरीका जैसे वैरियों और ईर्ष्यालुओं को तुम धाराशायी कर सको; पुरस्तात् (पूर्व दिशा) में स्थापित शत्रु के नौ–सैनिक अड्डों को नष्ट कर सको; उत्तरात् (उत्तर दिशा) के चीन के अजगर को तुम कुचल सको; अधरात् (दक्षिण दिशा) हिन्द महासागर और रत्नाकर (अरब सागर) में उतराती अमरीकी नौ–सेना को वहीं जल में डुबो सको। और, इस शक्ति का उपयोग 'वसुधैव–कुटुम्बकम्' के हित में कर सको। यही धर्म (हिन्दुत्व) है, हमारी कार्य–संस्कृति का आधार है। तुम मुझे संयमित जीवन दो, मैं तुम्हें समृद्धि दूँगा। कार्य असम्भव नहीं है। अपनी सोच–मनीषा को उदात्त की ओर लेकर बढ़ो। आरम्भ में, अधिक नहीं, केवल पाँच वर्ष के लिए संयमित जीवन में रहना सीखो– फिर देखोगे कि तुम पर लगे सारे प्रतिबन्ध मकड़ी के जाले की भाँति टूट जायेंगे।

चाहिए। असंस्कारित केन्द्रक स्वार्थ–पशुत्व से पोषित होगा, शोषण–अपहरण का प्रेरक होगा, कर्त्तव्यबोध से शून्य होगा, स्वप्रयास में सदैव बाधक रहेगा, समाज–द्रोही और राष्ट्र–द्रोही होगा। यह क्षुद्र केन्द्रक है। संस्कारित केन्द्रक मनुष्यत्त्वपूर्ण है। संस्कार अर्थात् बुद्धि, मन, आत्मा का ऐसा सन्तुलन, जो व्यक्तिगत तथा समाज की विकास प्रगति के लिए कल्याणकारी हो, शुभ हो। यह उदात्त केन्द्रक है।

केन्द्रक अपने–अपने ढंग से विकसित होकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि जीवन के समस्त क्षेत्रों में अपनायी जाने वाली कार्य–संस्कृति को प्रभावित करता रहेगा। तो, सर्वप्रथम आपके मन में (हम लोगों में बहुतों के मन में) विचार आयेगा कि अब जी भरकर बिजली खर्च करो, जी। बिजली का बिल तो रु० १५०/– ही आयेगा। फिर सारा भोजन हीटर पर ही बनेगा, प्रतिदिन चाय दूध इसी पर गरम होगा, नहाने का पानी भी गरम

के बोले माँ तुमि अबले !

पोखरण के परमाणु विस्फोटों ने राष्ट्रीय स्वाभिमान का तुमुल उद्घोष किया है। नयी स्फूर्ति हिलोरें ले रही है; नया आत्मविश्वास जगा है। उसकी गर्जना जैसे कह रही है– संगठित हो; शक्तिशाली बनो; शौर्य को शालीनता और विनम्रता से प्रकट होने दो। फिर देखो, लोग तुम्हारे आगे नतमस्तक हो जायेंगे। भारत का जन–मानस उल्लसित है, जैसे उसने खोये हुए पराक्रम–गौरव को

प्राप्त कर लिया हो। वह राष्ट्रीय सुरक्षा की गम्भीरता को अनुभव कर रहा है। दक्षिण सागर में खड़ी स्वामी विवेकानन्द की मूर्त्ति कह रही है– उत्तिष्ठ भारत! राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाने के लिए उठ! आने वाली शताब्दी हिन्दुत्व का स्वागत करने के लिए आतुर हो रही है।

दूसरी ओर क्षुद्र केन्द्रक के लोग विलाप करने में लगे हैं। परमाणु–विस्फोट अनुचित और अवाञ्छनीय थे। असंयम का प्रदर्शन किया गया है। इससे युद्धोन्माद फैल रहा है। हम पर प्रतिबन्धों का जाल फैला दिया गया है। हाय! अब भारत की गरीबी उन्मूलन का क्या होगा? हम सारी दुनिया से अलग–थलग पड़ गये। हथियारों की होड़ से जैसे सोवियत संघ बिखर गया, वैसे ही हम भी टूट–फूट जायेंगे– वे विलाप के साथ–साथ झूठ भी बोलते चलेंगे– हम भी ऐसे ही परमाणु–विस्फोट करने वाले थे; लेकिन क्या करें, बीच में चुनाव आ गये आदि–आदि। वे नहीं जानते कि शत्रु ने इस देश को नष्ट करने की परमाणु तैयारी बहुत पहले से कर रखी थी। देश के जीवन के लिए संकट उत्पन्न हो गया है, अब तो हमें, अपनी रक्षा करनी ही करनी है। पहले रक्षा, फिर अन्य काम। वृक्ष के सूख जाने पर ठूँठ को सींचने के लिए पानी लेकर दौड़ने वालों में से हैं यह लोग।

हथियारों की होड़

हथियारों की होड़ के पीछे सोच क्या है? और इस सोच का उत्पत्ति आधार क्या है? इसका उत्पत्ति आधार मजहब और रिलीजन है। यह दोनों ही असहिष्णु हैं; भिन्न मतावलम्बी के साथ सह–जीवन को एकदम नकारते हैं। अपने मत का अधिनायकत्व इनका एकमात्र आदर्श है। साथ ही समूहवादी (साम्यवादी गलत अनुवाद है 'कम्यूनिज्म' का) 'रिलीजन' की चाहे जितनी कटु आलोचना करें; किन्तु उनके दर्शन में सर्वहारा का अधिनायकत्व और असहिष्णुता उनके अपने 'रिलीजन–कल्चर' की ही उपज है। समूहवाद या गिरोहवाद को मजहब और रिलीजन की पृष्ठभूमि से अलग करके देखना उचित नहीं होगा। अतः इन तीनों के सन्देशों की परिणिति एक दूसरे को नष्ट करने के लिए भयातुर करते रहने में होती है। पाकिस्तान से लेकर अफगानिस्तान, ईरान, इराक, समस्त अरब देश, फिलिस्तीन, मिश्र, नाईजेरिया, लीबिया आदि सभी मजहबी देश परस्पर अपने ही मजहबी (इस्लामी) आतंक से भयाक्रान्त हैं, हथियारों के जखीरे जमाकर रखे हैं इन देशों ने। हिरोशिमा और नागासाकी का हाहाकार, वियतनाम–युद्ध, साइबेरिया के कैम्पों में घुटती सिसकती मानवता, अफ्रीकी देशों की भुखमरी, इराक पर मिसाइलों की मार, योरोपीय देशों का परस्पर–द्वन्द्व, यूगोस्लाविया का गृह–युद्ध, मानव अधिकारों का हनन जैसी अनेक विपत्तियाँ इन्हीं मजहब–रिलीजन–समूहवाद के कारण हैं। इन देशों द्वारा अपनायी गयी भय–सन्तुलन की नीति ही हथियारों की होड़ का कारण है। हथियारों की होड़ (दौड़) का उद्देश्य इस प्रकार समझिए– जैसे सद्भावना दौड़ का उद्देश्य होता है परस्पर सद्भावना का विकास और ठीक इसके विपरीत हथियारों की होड़ (दौड़) का उद्देश्य है मानवता का विनाश।

यादुम् ऊरेः यावरूम केलिर

धर्म (हिन्दुत्व) का इस हथियारों की होड़ से लेश–मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। धर्म के पास तो सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्।। सभी सुख से रहें, ऐसी परिकल्पना है। समस्त समाज के प्रति समष्टि–दृष्टिकोण है, अलग–अलग तोड़ने का नहीं। यह सोशलिज्म, सेक्युलरिज्म, कम्युनिज्म आदि सभी मनुष्य और समाज के प्रति खण्डित दृष्टिकोण अपनाते हैं। ये विचारधाराएँ विदेशी हैं, भारत की भूमि के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त। बिना शोषण की भावना के इन सभी 'इज्मों' का अस्तित्व ही नहीं रहता।

'यादुम ऊरे' अर्थात् सभी गाँव, नगर, कस्बा, पुरवा जहाँ कहीं भी मानव का निवास स्थान है, उन सभी के प्रति अपनत्व का भाव। ऐसा नहीं कि यह मेरा गाँव है तो इसका विकास हो ओर वह उसका गाँव है, तो उसे उपेक्षित कर दिया जाये। समस्त वसुधा समस्त पर्यावरण के प्रति स्नेहिल उदार विशाल हृदयता का भाव ही 'यादुम ऊरे' का सन्देश है।

यावरूम् केलिर अर्थात् सभी जन अपने ही लोग हैं अपना ही समाज है। परस्पर किसी प्रकार का दुराव नहीं। न ऊँच–नीच; न रंग–भेद; न जाति–भेद। शोषण नहीं, उत्पीड़न नहीं, भय नहीं यही इस 'यावरूम् केलिर' का अर्थ है। शोषण अर्थात् दूसरे के अधिकार का अपहरण ही समाज में भय की भावना उत्पन्न करता है। शोषण विहीनता से निर्मित अभय समाज की कल्पना हमारे ऋषियों ने बहुत पहले ही की है –

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

– अथर्ववेद १९–१५–६

मित्र से अभय हो (अर्थात् मित्र से मधुर सम्बन्ध बने रहें), शत्रु से अभय हो (हमारी बढ़ी हुई शक्ति को देखकर शत्रु किसी प्रकार का दुःसाहस न कर सकें),

परिचित लोगों से सहयोगियों से अभय हो (निहित स्वार्थों का त्यागकर विश्वास की भावना बनी रहे) रात्रि में, दिन में अभय प्राप्त हो, यह समस्त आशा (दिशाएँ और पर्यावरण) हमारे लिए अनुकूल बनी रहे।

मा गृधः

इस पृथ्वी की सम्पदा का संयमित उपभोग का स्वभाव वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा को जन्म देता है या वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव सर्वदा दृष्टि के सामने रहकर संयमित उपभोग के स्वभाव को स्थायित्व प्रदान करता है- दोनों एक ही बात है। पश्चिम का विचार है कि गॉड (खुदा) ने यह जमीन आदमी को मनमाने ढंग से भोग करने के लिए बनायी है। इससे इन्द्रिय-भोग की भावना बलवती होती है, साथ ही इस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण भी नहीं है। यह सब शोषण को जन्म देती है। जहाँ शोषण है, वहाँ वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना पनप ही नहीं सकती है।

हमारे यहाँ समस्त ब्रह्माण्ड को ईश्वर का वास बताया है और यह उसी के द्वारा ही नियन्त्रित है। मनुष्य को उस सम्पदा में से उतना ही लेना है, जितना उसके लिए आवश्यक है और उससे अधिक लेने का प्रयास भी न करे (मा गृधः)।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।
— ईशोपनिषद्

पोखरण हमसे कह रहा है कि अब तो तुम परमाणु-शक्ति-सम्पन्न-राष्ट्र बन गये हो। यह परमाणु-शक्ति-सम्पन्नता क्या तुम्हारे अतीत के गौरवमय पराक्रम के अनुरूप है? तुम्हारे द्वारा इस सम्पन्नता का क्या उपयोग होगा?

जानते हो, प्राचीनकाल में सरस्वती नद का महा प्रवाह मेरे निकट ही बहता था। उसके तट पर बैठे ऋषि-मनीषियों की वाणी मुझे आज भी सुनाई दे रही है। उनकी वाणी तुम्हारी शक्ति-सम्पन्नता की साक्षी है।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथ्वी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।

यह परमाणु-शक्ति-सम्पन्नता तुम्हारे प्राचीन पराक्रम की परम्परा में है; किन्तु आज भी तुम्हें इतनी शक्ति अर्जित करनी है कि अन्तरिक्ष और पृथ्वी (उभे इमे) इन दोनों ओर शत्रु तुम पर आक्रमण न कर सके; पश्चात् (पश्चिम दिशा) के पाकिस्तान और अमरीका जैसे वैरियों और ईर्ष्यालुओं को तुम धाराशायी कर सको; पुरस्तात् (पूर्व दिशा) में स्थापित शत्रु के नौ-सैनिक अड्डों को नष्ट कर सको; उत्तरात् (उत्तर दिशा) के चीन के अजगर को तुम कुचल सको; अधरात् (दक्षिण दिशा) हिन्द महासागर और रत्नाकर (अरब सागर) में उतराती अमरीकी नौ-सेना को वहीं जल में डुबो सको। और, इस शक्ति का उपयोग 'वसुधैव- कुटुम्बकम्' के हित में कर सको। यही धर्म (हिन्दुत्व) है, हमारी कार्य-संस्कृति का आधार है। तुम मुझे संयमित जीवन दो, मैं तुम्हें समृद्धि दूँगा। कार्य असम्भव नहीं है। अपनी सोच-मनीषा को उदात्त की ओर लेकर बढ़ो। आरम्भ में, अधिक नहीं, केवल पाँच वर्ष के लिए संयमित जीवन में रहना सीखो- फिर देखोगे कि तुम पर लगे सारे प्रतिबन्ध मकड़ी के जाले की भाँति टूट जायेंगे।

पोखना शब्द का अर्थ है- पालन-पोषण करना। पोख संवर्द्धन का संकेत देता है। रण शब्द का अर्थ है शब्द (स्वर)। मैं दो ही शब्दों से बना हूँ- पोख+रण, अर्थात् संवर्द्धन के शब्द।

❐

-४०/२८, रघुबर दयाल लेन, नरही, लखनऊ-१

यह भूमि

हमारे लिए यह सम्पूर्ण भूमि तपोभूमि है। प्राचीन साहित्य में एक उद्‌बोधक प्रसंग आया है। एक बार एक प्रश्न किया गया कि योग्य फल की प्राप्ति के हेतु तप और यज्ञ करने के लिए कौन सा देश शुद्ध एवं पवित्र है और चरम सत्य की अनुभूति के लिए आदर्श स्थान कौन सा है? उत्तर दिया गया कि इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वही स्थान उपयुक्त है, जहाँ कृष्णसार हिरन मिलते हैं। पशु-विज्ञान का कोई भी विद्यार्थी आपको बता सकता है कि इस विशिष्ट प्रकार का हिरन केवल हमारे ही देश में मिलता है, संसार में और कहीं भी नहीं। इससे क्या प्रकट होता है? हमारे पूर्वजों का विश्वास था कि सम्पूर्ण संसार में यही एक ऐसा पवित्र देश है, जहाँ छोटा सा सत्कर्म भी सैकड़ों, हजारों गुना अधिक लाभदायी होता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि यदि पृथ्वी पर कोई ऐसी भूमि है, जिसे मंगलदायिनी पुण्य-भूमि कहा जा सकता है, जहाँ ईश्वर की ओर अग्रसर होने वाली प्रत्येक आत्मा को अपना अन्तिम आश्रय-स्थल प्राप्त करने के लिए जाना ही पड़ता है, तो वह भारत है।

— श्री गुरुजी

राष्ट्रपुरुष के मुख होते हैं राजनीतिक दल

– ना०गं० वझे

'एकोदराः पृथग्ग्रीवा, अन्योन्य फलभक्षिणः।
परस्परं विनष्यंती, भारण्डा इव पक्षिणः।।'

उक्त श्लोक में अंकित दो मुँहवाला भारण्ड नाम पक्षी काल्पनिक है; किन्तु हम लोगों को एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त समझाने के लिए उसकी कथा है 'हितोपदेश' में।

इस कथा के अनुसार एक दिन इस भारण्ड पक्षी के एक मुँह को एक अतीव सुन्दर फल प्राप्त हुआ। यह देख पक्षी के दूसरे मुँह ने उस फल का कुछ भाग अपने लिए माँगा; किन्तु पहले मुँह ने उसकी एक न सुनी। पूरा फल स्वयं ही खा डाला। इस पर दूसरा मुँह बड़ा क्रोधित हो उठा। क्रोध की परिणति हुई प्रतिशोध की भावना में। अतः पहले मुँह की हत्या करने के विचार से, दूसरे मुँह ने जल्दबाजी में एक विष–फल खा लिया।

कहना न होगा कि दोनों मुखों का पेट (शरीर) एक ही होने के कारण विष के दुष्प्रभाव ने पूरे शरीर को ग्रस लिया अर्थात् पहले मुँह के साथ, दूसरा मुँह भी काल–कवलित हुआ।

यदि हम संस्कृत की इस कथा को अपने समाज–रूपी राष्ट्रपुरुष पर घटित करें, तो हमें मानना होगा कि इस विशाल राष्ट्रपुरुष के अंग–प्रत्यंग हैं देश के कोटि–कोटि नागरिक और उनकी इच्छा–आकांक्षाओं को मुखरित करनेवाले तथा इष्ट पदार्थों के सेवन द्वारा राष्ट्रपुरुष के शरीर को स्वस्थ–सशक्त बनाये रखने वाले मुख हैं देश के विभिन्न राजनीतिक दल।

अतः इन दलों (मुखों) में से किसी के भी द्वारा अवाञ्छनीय बातों का उच्चार अथवा अहितकर अन्न के सेवन का दुष्परिणाम होगा– राष्ट्रपुरुष (शरीर) का अन्त। पर्याय से, सम्बन्धित विवेकहीन मुख का भी अन्त! किन्तु सत्तारूपी सुन्दर फल से वञ्चित रहने वाले हमारे देश के अधिकांश राजनीतिक दल (राष्ट्रपुरुष के मुख), भारण्ड पक्षी के दूसरे (फल से वञ्चित) मुँह की विवेकहीन करतूत को ही दोहराते हुए दिखाई देते रहे हैं! इस कटु सत्य का सर्वाधिक लज्जास्पद प्रमाण है– पोखरण में गत ११ व १३ मई १९९८ को किये गये ५ सफल परमाणु परीक्षणों के विरोध में उनके भाषण!

भारतीय संसद् में दिये गये इन भाषणों को दूरदर्शन पर देख–सुनकर, भाषणकर्त्ताओं की राष्ट्रीयता पर ही सन्देह होने लगा; क्योंकि ये परीक्षण थे– अपनी स्वतन्त्रता के ५० वर्षों की एक अत्यन्त गौरवशाली कृति। इस चिर अपेक्षित साहसपूर्ण कृति की सराहना करने के बजाय भाषणकर्त्ताओं ने वर्तमान सरकार को अपराधी के कटघरे में खड़ा करने का दुष्प्रयत्न किया; उस पर अनर्गल आरोप लगाए।

ऐसा करते हुए उनमें से कुछ ने अपरोक्षतः इस्लामाबाद के दलालों की भूमिका निबाही, तो कुछ ने चीन के चमचों की। पोखरण–परीक्षणों पर पाकिस्तान की प्रतिक्रिया को तेज धार देने, उस धार पर विष का पानी चढ़ाने और पाकिस्तान में युद्ध–सदृश उन्माद की निर्मिति का, देश–हित–विघातक कुकृत्य किया है इन विवेकहीन भाषणकर्त्ताओं ने। वर्तमान सरकार द्वारा बनाये जाने वाले परमाणु–बम को 'हिन्दू–बम' बताकर भारतीय समाज के विभिन्न जाति–पन्थों में (राष्ट्रपुरुष के अंग–प्रत्यंगों में) फूट डालने का कुप्रयास भी किया है इन मतिभ्रष्ट नेताओं ने।

वस्तुतः पोखरण के सफल परीक्षणों ने भारत के इतिहास में एक तेजस्वी, ओजस्वी, जयस्वी अध्याय जोड़ा। वर्षों की पराभूत मानसिकता को एक ही झटके में समाप्त कर दिया। भारत को विश्व की छठवीं महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारतीय वैज्ञानिकों की असामान्य प्रतिभा एवं अध्यवसाय के प्रकटीकरण द्वारा समूचे विश्व को स्तम्भित किया। इन परीक्षणों से देश की सेना का मनोबल वृद्धिंगत हुआ और विश्व–शान्ति के पक्षधर भारत का निरन्तर अहित करनेवाले तथा बिना बात ही उसे धमकाने वाले शत्रुओं के हृदयों में हड़कम्प मच गया।

इसीलिए प्रधानमन्त्री द्वारा संसद् में इन सफल परीक्षणों की घोषणा की जाते ही, 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के सर्वेक्षणानुसार, ९१ प्रतिशत भारतीय रोमाञ्चित हो उठे, हर्षोत्फुल्ल हो नाच उठे। उन्होंने गर्वोन्नत एवं उल्लसित होकर मिठाइयाँ बाँटीं। कन्याकुमारी से श्रीनगर और कर्णावती से गोहाटी तक हर्षातिरेक से झूम उठने वाले इन देशवासियों में पोखरण–क्षेत्र के वे लोग सबसे आगे थे, जिनके घरों को इन परीक्षणों से भारी क्षति पहुँची थी।

दूसरी ओर ये जनादेश द्वारा सत्ता रूपी सुन्दर फल से वञ्चित हुए विरोधी दलों के 'स्वनामधन्य' नेता!

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

राजनीति सिर्फ गुण्डों का पेशा है

– पं० जवाहर लाल नेहरू

[पं० जवाहरलाल नेहरू, जो बाद में भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री बने, ने सन् १६४२ में लिखे अपने इस लेख में राजनीति और राजनीतिक नेताओं के बारे में जो कुछ लिखा था, स्वतन्त्रता के पचास वर्ष पश्चात् भी उतना ही सटीक आज भी है, जितना तब था। गम्भीर विचार का विषय तो यह है कि भारत की राजनीति और उसके राजनीतिक नेताओं का जैसा कुत्सित आचरण स्वतन्त्रता के पहले से ही बनने लगा था, स्वतन्त्रता के अनन्तर उसकी गति तीव्र से तीव्रतर होती चली जाने के लिए क्या स्वयं नेहरू जी का आचरण और उनकी नीतियाँ ही ***उत्तरदायी*** *नहीं रही हैं ? – सम्पादक]*

इंग्लैण्ड के जॉर्ज तृतीय का कहना था कि राजनीति तो गुण्डों का पेशा है शरीफ आदमियों का नहीं। शायद यह बात कुछ बढ़ा–चढ़ाकर कही गई थी, लेकिन फिर भी है यह कि हम सब लोग, जिन्होंने इस कीचड़ से हाथ सान लिए हैं, कभी–कभी इससे तंग आ जाते हैं और बिल्कुल नफरत और खीझ होने लगती है। कभी–कभी हमें दूसरे हमपेशा लोग दिखाई पड़ते हैं, जिन पर उस अंग्रेज बादशाह की बात पूरी–पूरी सही उतरती है। ऐसे लोग हमारे पक्ष के भी होते हैं और विपक्ष के भी; हालाँकि विपक्ष के लोगों पर फैसला देने में सभी ज्यादा बेरहम होते हैं, लेकिन लोग किस तरह एकाएक नेता और राजनीतिज्ञ बन जाते हैं, यह है बड़ी दिलचस्प बात। डॉक्टर बनने के लिए आदमी आखिर इतने दिनों तक चीरा–फाड़ी और तमाम किस्म की बातें सीखता है, तब इलाज के लिए अपना दवाखाना खोलकर बैठता है। कोई आदमी किसी अनाड़ी के पास इलाज के लिए नहीं जाता। बिना किसी किस्म की ट्रेनिंग के किसी भी पेशे में आदमी कदम नहीं रखता चाहे वह इन्जीनियरी हो, तिजारत हो, यहाँ तक बिजली वाले का ही पेशा क्यों न हो। अगर किसी आदमी ने इन्जीनियरी की ट्रेनिंग नहीं पाई है, तो उससे आप एक पुल बनवा लीजिए!

लेकिन राजनीति के पेशे में नेता बनने के लिए किसी भी ट्रेनिंग की कोई जरूरत नहीं। हर ऐरा–गैरा अपने देशवासियों पर शासन करने में समर्थ समझा जाता है। प्रोफेसर और इसी किस्म के बड़े–बड़े लोग राजनीति पर छोटे–मोटे पोथे लिखते रहें, सामाजिक समस्याएँ, जिनके पीछे हमारा समाज दिनोंदिन बदतर होता जा रहा है, उन पर लिखते रहें और उनके समाधान के लिए चीख–पुकार मचाते रहें, वे चाहें तो मानवशास्त्र, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के नियमों की उधेड़बुन करते रहें और हजारों ऐसी बातों में माथापच्ची करते रहें, जिनकी एक नेता को बहुत बड़ी जरूरत है। लेकिन हमारे नेता को इन सब बेकार की बातों के लिए वक्त कहाँ है? खुदा ने उसको जो थोड़ी–बहुत अक्ल बख्श रखी है, उसी पर उसे पूरा भरोसा है कि वह हुकुमत के स्टीमर को साहिल तक ठेल ही ले जायेगा। लेकिन अफसोस तो इस बात का है कि खुदा की बख्शी हुई यह अक्ल कभी–कभी सिर्फ "घास– कूड़ा" ही साबित होती है और हुकूमत का स्टीमर धक्के खाता हुआ चट्टानों से टकरा जाता है, अनगिनत बेगुनाहों की जिन्दगी पर आ बंनती है। लेकिन मुझे तो इस बात पर हैरत होती है कि इतनी बार यह दुर्घटना होने पर भी न तो इन राजनीतिक नेताओं को ही अपनी असलियत का ज्ञान हुआ है और न जनता ही ने उनकी असलियत समझी है। यहाँ तक कि इंग्लैण्ड जैसे उन्नत और प्रजातान्त्रिक देश में घरेलू महकमे के सरगना ऐसे व्यवहार करते हैं जैसे वे शाही दरबार के खानदानी विदूषक हों। और सर ऑस्टिन चेंबरलेन भी अपनी शक्ल और दिमाग की कमी को तड़क–भड़क और शान–शौकत से पूरा करते हैं। रोमाँ–रोलाँ ने यह सुझाव पेश किया है कि युद्ध के खिलाफ आवाज उठाने के बजाय इन युद्ध छेड़ने वालों के खिलाफ आवाज उठाई जाए, इन राजनीतिक नेताओं को निर्वासित कर दिया जाए।

लेकिन सात समुद्र पार विलायत जाने की क्या जरूरत है? ऐसे नमूने तो अपने हिन्दुस्तान में भी बिना ढूँढ़े हजार मिलते हैं। मुझे पूरा यकीन है कि जैसे "मैडम ट्रेसा" का अनोखा अजायबघर था, जिसमें "चैंबर ऑफ हॉरर्स" भी था भयानक चीजों का संग्रह, (अगर वह आज भी होता तो कितने काम का साबित होता), उसी तरह आगे भी कभी-न-कभी एक बड़ा-सा अजायबघर कायम किया जाएगा। इस अजायबघर में हमारे बहुत से वर्तमान मिनिस्टरों की मूर्तियाँ रखी जायेंगी, ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ यह जान सकें कि हिन्दुस्तान में भी कैसे-कैसे "जीव-जन्तु" मिनिस्टरी चलाते थे। वह आगे आने वाले स्वर्णयुग में बच्चों के अध्यापक इन लकदक मूर्तियों को दिखलाकर उस असभ्य और जंगली युग की बातें बतायेंगे। जब ऐसे-ऐसे लोगों के हाथ में सरकार थी और वे इन्सान पर हुकूमत करते थे। वे बतायेंगे कि उस जमाने में योग्यता, प्रतिभा, ज्ञान या जनता को मुग्ध करने वाले गुणों के आधार पर किसी को शासन नहीं सौंपा जाता था, बल्कि अज्ञान और मूर्खता ही एकमात्र कसौटी थी। जिस व्यक्ति में सबसे गहरा अज्ञान होता था, वही शासन के सबसे अधिक योग्य समझा जाता था। वह उन बच्चों को बतायेगा कि सच्चाई और सिद्धान्त पर दृढ़ रहना ऐसे अवगुण थे, जिनसे ये मन्त्रीपद के भूखे महापुरुष हमेशा दूर रहते थे और हमेशा उसी के सिर पर सेहरा बँधता था जो सच्चाई का पूरी तरह गला घोंट सके और जिस सिद्धान्त पर खड़ा है अच्छी तरह उसकी ही पीठ में छुरा भोंक सके।"

इस अजायबघर में भारत के हर सूबे के नुमाइंदे रहेंगे। लेकिन सबसे बड़ा और खास हिस्सा युक्त प्रान्त के नुमाइंदों में भी सबसे आगे होंगे हमारे बाँके नवाब, जो ढीलाढाला कोट और ढीला पायजामा पहनकर बड़ी चुस्ती से स्थानीय शासन चलाते हैं, जो खूबसूरत कालीनों और हरे-भरे घास के लॉनों पर एक शहजादे की ठसक से दावतों के बाद दावतों पर इनायत फरमाने की तकलीफ उठाते हैं, समझदारी और अक्ल के ऊबड़-खाबड़ और तकलीफदेह रास्ते से उनको कोई सरोकार नहीं। किताबों में "उन्हें कोई खास दिलचस्पी नहीं और रेलवे स्टेशनों पर घनिष्ठ से घनिष्ठ दोस्त ने भी कभी न देखा होगा। उनका बड़ा से बड़ा दोस्त उन पर यह इल्जाम नहीं लगा सकता कि उन्होंने कभी भी ठिकाने की बात की है या कभी उनकी किसी भी बात से अक्लमन्दी की कोई भी झलक मिली है। अपने खुद के विभाग के बारे उन्होंने कभी कुछ भी पढ़कर अपने विचारों की मौलिकता पर आँच नहीं आने दी है और अपने प्रान्त के बारे में उनकी उतनी ही गहरी जानकारी है, जितनी किसी कुली-मजदूर को मंगल ग्रह के बारे में होगी।

उसी अजायबघर में दूसरी दिलचस्प मूर्ति होगी नवाब के नए सहयोगी राजा साहब की, जिनके अन्तःकरण ने बावजूद उनके विश्वास और विचारों के, यह नेक सलाह दी कि वे आखिरकार मिनिस्टरी की बलिवेदी पर सीना खोलकर शहीद हो जाएँ (हालाँकि कुछ ही दिनों पहले वे भोंपू पर चीख-चीखकर पदों का विरोध करते थे।)

और यह भी कि बहुत से लोग इस अजायबघर में रखे जायेंगे और आने वाले युग का विद्यार्थी आश्चर्य करेगा कि जिन राजनीतिज्ञों और मिनिस्टरों को बुद्धि की सबसे ज्यादा जरूरत थी, वे ही इस दृष्टि से बिल्कुल शून्य थे। उसे ऐसी जनता पर भी आश्चर्य होगा जो इन शेर की खाल ओढ़ने वाले गीदड़ों से शासित होती रही।

[उपर्युक्त लेख स्वयं पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था। स्वतन्त्रता पूर्व १९४२ में पं० सूर्य नारायण व्यास ने अपने द्वारा सम्पादित 'विक्रम' मासिक में प्रकाशित किया था।]

प्रस्तुति- राजशेखर व्यास

(पृष्ठ ३२ का शेष)

राष्ट्रपुरुष के मुख...

इन्होंने संसद् में अपने भाषणों द्वारा जन-मानस के सर्वथा विपरीत अपना अनूठा बेसुरा राग अलापा! देश की ९१ प्रतिशत जनता द्वारा प्रशंसित सरकार को कोसनेवाले ये महानुभाव, स्वदेश-हित को सर्वोपरि नहीं मानते। ये सर्वोपरि मानते हैं व्यक्तिगत अथवा दलगत हित को। स्वदेश की सुरक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में इन्हें कोई रुचि नहीं। बोफोर्स की तोपों तथा विभिन्न न्यायालयों में दर्ज अन्यान्य भयंकर घोटालों के मामले इस विदारक सत्य को उजागर करते हैं। ऐसे नेताओं को केवल वही जनता के प्रतिनिधि अर्थात् राष्ट्रपुरुष के मुख मानेगा, जिसके हिये की फूटी हो!

गत अनेक वर्षों से अपना देश-अन्तर्बाह्य संकटों से घिरा हुआ है। अतः विरोधी दलों के इन 'बुद्धि के महासागर' नेताओं को चाहिए कि वे आत्म-निरीक्षण करें। जनतन्त्र में विरोधी दलों के महान् उत्तरदायित्व को अपनी आँखों से ओझल न होने दें। प्रतिशोध की धुन में विवेकहीन होकर भारण्ड पक्षी के फल-वञ्चित दूसरे मुँह की भाँति विष-फल खाने की भूल को न दोहरायें, अन्यथा भारण्ड पक्षी की गति को प्राप्त होने से वे बच नहीं पायेंगे। साथ ही इतिहास में जयचन्दों, मानसिंहों की सूची में उनका नाम भी अंकित हो जायेगा। ❒

– १५ ए (टाइप-बी), कार्पोरेशन कॉलोनी,
उत्तर अम्बाझरी मार्ग, नागपुर-४४००१०

मिटते दल और उभरते गिरोह

– डॉ० ब्रह्मदत्त अवस्थी

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में चल रही राजनीति का केन्द्र–बिन्दु देश था। देश पर ही सबकी दृष्टि गड़ी थी। यह बात दूसरी थी कि प्रत्येक दल देश का चित्र और देश का रंग अपने विचार के अनुकूल चाहता था। अर्थ को ही प्राण–तत्त्व मानकर चलनेवाले समाजवादी और साम्यवादी दल भारत को आर्थिक कलेवर में ढक लेना चाहते थे। इस आर्थिक कलेवर के लिए ही काम और धर्म का वे उपयोग करना चाहते थे और मोक्ष की चिन्ता नहीं करते थे। काम को ही सब कुछ समझने वाले कांग्रेसी भारत को राजनीतिक रंग में नीचे से लेकर ऊपर तक रँग देना चाहते थे और इसी के लिए अर्थ तथा धर्म को प्रयुक्त करना चाहते थे। मोक्ष की उन्हें विशेष चिन्ता न थी। मजहब की बात आवश्यक मानने वाले मुस्लिम लीग जैसे दल, अर्थ, काम और धर्म तीनों को ही मजहब के लिए प्रयुक्त करते थे। अर्थवादी दृष्टि ने भोग की भरपूर भूख पैदा की और काम (राजनीति) की दृष्टि ने अधिकार की आँधी सन्तों की कुटिया तक पहुँचा दी। मजहबी सोच ने देश को काट डाला और बचा देश भी आग के हवाले कर दिया। अंर्थ, काम और मोक्ष से हटकर धर्म के सोच पर चलने वाले लोग, अर्थ, काम और मोक्ष तीनों को ही धर्माधारित रखना चाहते थे। धर्म पर चलते हुए अर्थ का अर्जन और व्यय, धर्माधारित जीवन जीते हुए कामनाओं की तुष्टि और धर्म का ही पालन कर मोक्ष की प्राप्ति चाहते थे। यही भारतीय चेतना की सही अभिव्यक्ति थी। भारतीय संस्कृति का जीवन में योग्य प्रकटन था। इस संस्कृतिवादी सोच पर चलने वाले जनसंघ जैसे दल भारत को सांस्कृतिक–पूर्णता के रंग में रँगना चाहते थे। मानव-विकास और राष्ट्र-उत्कर्ष के लिए वे अर्थ और काम को लगाना चाहते थे और मोक्ष की उपलब्धि इसी मार्ग पर चलते हुए चाहते थे।

सभी दलों का अपना–अपना उद्देश्य था और उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपने–अपने रास्ते थे। लक्ष्य निश्चित था, विचार–धारा निश्चित थी। व्यवहार भी अपनी पहिचान बनाए था। लक्ष्य, विचारधारा और व्यवहार के ताने–बाने में कार्यकर्त्ताओं का समूह एक दल के रूप में सामने प्रकट होता था। दल का नेतृत्व आदर्श बन समाज के सामने खड़ा था। दल के नेता को देखकर ही दल की पूरी तस्वीर सामने आ जाती थी। छोटे से छोटा समाज का व्यक्ति नेता को देख श्रद्धा से झुक जाता था। राजनीति राम के काल में पूज्य रही थी। भक्ति–भावना से भर समाज उसे देखता था। परन्तु इस शती में भी स्वतन्त्रता से पूर्व की राजनीति श्रद्धा की वस्तु थी। गान्धी जी को देख जनता सैलाब बन उमड़ती थी। नेता के शब्द जन–जन के हृदय को पकड़ते चले जाते थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् ६७ तक राजनीति का श्रद्धा से पगा स्वरूप जन–मानस पर छाया रहा। पं० जवाहर लाल नेहरू, पं० दीनदयाल उपाध्याय, डॉ० राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, आचार्य कृपलानी, बाबू जयप्रकाश नारायण आदि कितने ही नेता थे, जिनके व्यक्तित्व का प्रकाश समाज को आलोकित करता था। उनकी भाषा, उनकी भूषा, उनकी भावना, उनकी प्रकृति और उनकी विचार–धारा सहज ही अनुयायियों को बाँध लेती थी। जो अनुयायी नहीं होते, वे भी प्रभावित हुए बिना न रहते। अश्रद्धा का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। विचार भले ही भिन्न थे, परन्तु मन सम्मान से भरा रहता था।

दल के कार्यकर्त्ता अपने दल की पहिचान हुआ करते थे। किसी भी कार्यकर्त्ता की भाषा सुनते ही बताना सरल हो जाता था कि यह अमुक दल का सदस्य है। समाजवादी भाषा–शैली अपनी आक्रामकता, अपनी स्पष्टता, अपनी दृढ़ता और अपनी जनसामान्य की शब्दावली के लिए जानी जाती, तो कांग्रेस की भाषा–शैली शालीनता, विनम्रता, राजनीतिक गम्भीरता और पटुता लिए मध्यम–वर्ग की शब्दावली के लिए पहिचानी जाती थी। साम्यवादी शैली एकदम आक्रोश और संघर्ष की वृत्ति से निकली मजदूर वर्ग की शब्दावली लिए, अव्यवस्थित और असंयत, परन्तु धारदार और प्रभावशाली होती। जनसंघ की भाषा–शैली परिमार्जित संस्कार–क्षम, आक्रामक; परन्तु संयमित और विनम्रता, गम्भीरता और पैनापन लिए मध्यम–वर्ग की शैली रहती। दल के सदस्य का पहनावा दूर से बता देता कि यह साम्यवादी है या समाजवादी या कांग्रेसी है या जनसंघी। चाल पहिचान बन जाती थी। जनसंघ का कार्यकर्त्ता

कितना ही छिपे; परन्तु उसके पड़ते हुए कदम बता देते थे कि जनसंघी है; व्यवहार तो सब कुछ कह देता था और वह ऊपर से लेकर नीचे तक एक–सा उतरता चला जाता था। दल का अपना अलग मनोविज्ञान ही होता था।

दल के कार्यकर्त्ता दल के सिद्धान्त और नीतियाँ जानते थे। सुन सुन कर सब समझ जाते थे। दल का साहित्य घरों पर रहता था। पढ़ते थे। सिद्धान्तों और नियमों को जानते ही नहीं, मानते भी थे। वे अपने सिद्धान्तों को स्वीकारते और उनका प्रचार करते थे। कोरे नारे नहीं लगाते वे, आचरण में उतारते थे। **छोटे से छोटा कार्यकर्त्ता भी अपने आचरण में पक्का मिलता था। भूखे रहकर, शीत में ठिठुरते हुए, बरसात में भीगते हुए, गर्मी में झुलसते हुए नंगों पैरों दल के काम के लिए महीनों घर से बाहर रहकर पार्टी–कार्यकर्त्ता काम करते थे।** किसी की चमचागीरी नहीं, किसी की गुलामी नहीं, किसी स्वार्थ के लिए नहीं, किसी भय से नहीं, अपनी इच्छा से, अपनी लगन से कार्यकर्त्ता निकल पड़ते और रात–रात भर बीहड़ों में भटकते हुए काम करते थे। सन् ६३ का डॉ० लोहिया, पं० दीनदयाल उपाध्याय और आचार्य कृपलानी का लोकसभा का चुनाव फर्रुखाबाद, जौनपुर और अमरोहा में देखने योग्य था। केरल से चलकर आया कार्यकर्त्ता कैसे गंगा की बालू में दोपहरी में जलता और मुस्कराता हुआ पार्टी के लिए आगे बढ़ता था। कैसे केरल, कर्नाटक, आन्ध्र की महिलाएँ फर्रुखाबाद में दरवाजे–दरवाजे कुण्डी खटखटातीं और पार्टी के लिए प्रचार करतीं। यह था विचार–धारा का नशा; यह था अपने नेता के प्रति समर्पण; यह था देश के प्रति लगाव।

कार्यकर्त्ताओं का संगठन और अनुशासन, बिगड़े से बिगड़े, उग्र से उग्र दल में भी देखने योग्य रहता। समय पर काम, समय पर पहुँचना और समय पर वापस। कार्यकर्त्ताओं की बैठकें लगती थीं कि बैठके हैं। दल की और देश की ही बात चलती। गम्भीर से गम्भीर चिन्तन चलता। योजनाएँ बनतीं और उनका पालन भी होता। आर्थिक गड़बड़ी सुनने को भी नहीं मिलती। कुछ संगठन तो एकदम आदर्श मिलते। समय के लिए कार्य पर जाते कार्यकर्त्ता देखकर घड़ी मिला लीजिए। अनुशासन के लिए कार्यकर्त्ता को गुरुकुल–प्रणाली का शिष्य मान लीजिए समर्पण और निष्ठा के लिए नकार तो शब्दकोश में ही नहीं, बस इच्छा ही आदेश, पूरा जीवन अर्पित। ये थे देश के लिए दल, यह थी दल के लिए निष्ठा और भक्ति। नीचे से लेकर ऊपर तक दल एक जीवन्त इकाई रहता। चेतना रहती, चिन्तन रहता, मनन रहता, मत–भिन्नता रहती; परन्तु मन एक, राह एक, दृष्टि एक, गन्तव्य एक; कभी विघटन नहीं। जनसंघ और साम्यवादी दल एकता और अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थे। जनसंघ तो आदर्श बनकर उभरा था। आदर्श नेता, आदर्श दल, आदर्श कार्यकर्त्ता, आदर्श चिन्तन और आदर्श लक्ष्य।

दुर्भाग्य ने आज का दिन दिखाया। दल दल न रहे; दल–दल बन गए। आदर्श 'देश' न रहा, आदर्श हो गया 'सत्ता की प्राप्ति'। लक्ष्य 'लोक–मंगल' न रहा, लक्ष्य हो गया लोक की लूट। लोकतन्त्र के लिए अपनी विचार–धारा फैलाना नहीं, लोक में दबदबा बनाना, लोक में आतंक जमाना, लोक में जातिवाद, क्षेत्रवाद, मजहबवाद और भ्रष्टाचार फैलाना ही काम रह गया। आर्थिक समानता और सम्पन्नता की बात करने वाले अपनी सम्पन्नता में जुट गये। जन–जन को अधिकार दिलाने वाले सभी के अधिकार समेट कर बैठ गये। सत्ता को घर–घर पहुँचाने वाले सत्ता को अपने घर में कैद कर बैठे। मजहब की दुहाई देने वाले राजनीति की तलवार से दंगे करवाने लगे। एकात्मता और संस्कृति की बात करने वाले, अपनी आत्मा और अपनी संस्कृति को ही भुला बैठे। सबका एक लक्ष्य रह गया– 'सत्ता' और 'स्वार्थ'।

दल में नीचे से लेकर ऊपर तक बैठे लोग, पहले तो अपने दल के सिद्धान्त और नीतियों से अपरिचित मिलते और यदि जानते हैं, तो मानते नहीं। मान भी लें, तो मानने वाले आचरण से कोसों दूर रहते हैं। किसी भी दल में प्रदेश और देश के नेताओं को लीजिए, खोजिए कहाँ हैं डॉ० लोहिया के आचरण के लोग, पता लगाइए कहा हैं पं० दीनदयाल उपाध्याय के स्वभाव और चरित्र वाले लोग; समझिए कहा हैं गांधी के सोच और व्यवहार वाले लोग; पहिचानिए कहाँ हैं एम.एन. राय और डाँगे के चरण–चिह्नों पर चलने वाले लोग। अब भिन्नता नहीं, समानता है। सब दलों में एक से हैं। एक ही स्वभाव है, एक ही आचरण है। लोहिया–भक्त की कोठी में पहुँचिए, करोड़ों का माल मिलेगा। कांग्रेसी गांधी का भक्त बनेगा, परन्तु करोड़ों से मन न भरेगा। साम्यवादी भी पीछे न रहेगा और धर्म की संस्कृति की, चरित्र की, देशभक्ति की बात करने वाला दीनदयाल का 'तथाकथित भक्त' भी करोड़ों में लोटता मिलेगा। इसी समानता और इसी वृत्ति के कारण दल बदलने से कोई अन्तर न पड़ेगा। कल का साम्यवादी आज का भाजपाई होगा और कल होते ही बसपाई बन जायेगा। कभी सपाई रहा भाजपाई हो जायेगा और फिर कांग्रेस का कहलाने में भी हिचक न करेगा। बिल्ला बदलता रहेगा, वृत्ति बदलने का तो प्रश्न ही नहीं; क्योंकि राजनीति में अब वृत्ति सब की एक है, कुछ अपवादों को छोड़कर।

सत्ता प्राप्ति के लिए सिद्धान्त घोषित किये जाते हैं। सिद्धान्तों को समझते भी हैं या नहीं, इसका कोई अर्थ नहीं। कभी समाजवाद बहुत ही लुभावना नारा था। वोट घसीटना है, तो सब लगा बैठे समाजवाद का नारा। समाजवाद क्या है? आज तक निश्चित एक अवधारणा न आ सकी। समाजवाद पुराना पड़ा, तो लोकतन्त्र का झण्डा लेकर निकल पड़े और वे भी आगे–आगे चल पड़े, जिन्हें लोकतन्त्र सदैव शत्रु दिखाई पड़ा। लोकतन्त्र में 'लोक' क्या है? 'लोक–चेतना' क्या है? 'लोकमत' क्या है? इसका न तो ज्ञान है और न ज्ञान करने की कोई आवश्यकता है। सत्ता प्राप्त करने और सत्ता बनाए रखने का तन्त्र ही लोकतन्त्र बन गया। चुनाव तन्त्र जिसका रास्ता निकल आया। इसीलिए इस सत्तातन्त्र, जिसे लोकतन्त्र कहा जाता है के पैरों तले लोक दबा सिसकियाँ भर रहा है, लोक चेतना गहरे दब गई है, लोक पहिचान खो गई है और लोक-सम्मान समाप्त हो गया है। लोकतन्त्र के नाम पर सभी लूट तन्त्र में हर मर्यादा तोड़ जुट गये। जब लोकतन्त्र से भी काम पूरा न बनता न दिखा, तो 'सेकुलर' होने का चीख–चीख कर नारा लगाना प्रारम्भ कर दिया। 'सेकुलर' क्या बला है? बताना कठिन है। क्या यह भारत का शब्द है? यदि नहीं है, तो क्या इस शब्द के अर्थ जो लगाये जाते हैं, उस अर्थ के लिए कोई शब्द किसी भारतीय भाषा में है? यदि शब्द ही नहीं है भारतीय भाषाओं में इस 'सेकुलर' के लिए, तो फिर यह भाव कैसे विद्यमान रहा? शब्द गढ़ दिए गये, कोई कहे 'पंथ–निरपेक्ष' कोई चिल्लाए 'धर्म–निरपेक्ष'; परन्तु समाज को दिखाई पड़ता है 'सत्ता-सापेक्ष'। इस सेकुलर का कमाल तो देखो, कांग्रेस गाए सेकुलरिज्म, स.पा., ब.स.पा. अलापे सेकुलरिज्म, साम्यवादी और मुस्लिम लीग ऊँचे चढ़ चिल्लाए सेकुलरिज्म और भा.ज.पा. भी गुनगुनाए 'सेकुलरिज्म'। धन्य है देश की राजनीति और धन्य हैं देश के राजनीतिज्ञ। अब अद्वैतवाद से क्या लेना–देना, अब एकात्मवाद का क्या करना, अब 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' का क्या सोचना, 'विश्व–कल्याण' की बात क्या करना, अब तुलसी के चिन्तन का क्या पढ़ना "मुखिया मुख को चाहिए खान–पान में एक, पालै पोषै सकल जग तुलसी सहित विवेक"। बस, वोट चाहिए वोट और वोट के लिए चाहिए विदेशी सोच और विदेशी नारे।

किसी भी दल का आर्थिक चिन्तन उठाकर देख जाइए, खोजिए भारत की 'उपभोग' दृष्टि कहाँ है, इस उपभोग हेतु उत्पादन सोच कहाँ है? इस उत्पादन का वितरण–क्रम और भाव कहाँ है? इस वितरण से प्राप्त अर्थ का विनिमय कैसे और कहाँ है? यह विनियम कैसे उपभोग–हित प्रयुक्त हो, सन्तुष्टि दे, वह चिन्तन कहाँ है? कहाँ है वह कर की दृष्टि, जो उपभोग और उत्पादन को सन्तुलित और सुखकर बनाती हुई व्यवस्था के लिए अर्थ जुटा दे? सबकी एक ही दृष्टि है 'वोट कैसे मिलें'। इसी वोट दृष्टि को लेकर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक चिन्तन के आज के दल अपनी–अपनी शैली में बोलने लगे। दल का देश की दृष्टि से स्वस्थ चिन्तन देखने को न मिला। जो कुछ भी चिन्तन दिया गया, उसका आचरण से कोई सम्बन्ध न रहा।

किसी भी दल का कार्यकर्त्ता वह है, जो उस दल की पहिचान बनकर चलता है, जो उस दल का सोच रखता है, जो उस दल का स्वभाव बनता है, जो उस दल का अंग होता है और जो दल तथा देश के लिए कर्म करता है। जो कर्म ही न करे वह कार्यकर्त्ता कैसा? अपने कर्म से जब औरों को माँजता और सम्हालता है, औरों को प्रेरित करता है, तो वह प्रमुख कार्यकर्त्ता बन जाता है और जब दल की आत्मा को पकड़ लेता है, उसे जीता है, आचरण में उतारता है, पूरा दल ही उसके व्यक्तित्व से बोलता है, उसकी दृष्टि में देश होता है और उसके प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक आचरण से जब कार्यकर्त्ता प्रेरणा और शक्ति प्राप्त करते हैं, तब वह अधिकारी कहलाता है। आज सदस्यता ही कार्यकर्त्ता बनने का रास्ता है और अधिकारी का बिल्ला लगा लेने से ही अधिकारी बन जाता है। नीच से नीच, ऊँचे से ऊँचे जा पहुँच अधिकारी बन गर्जता है। **जिसे अपराध–जगत् के हर कोने में समाज ने खुली आँखों देखा और समझा है, वही प्रदेश और देश का अगुआ बन सामने आता है। अधर्म का कोई भी चरण जिसने चलने से नहीं त्यागा, वह धर्म-ध्वजा ले, राजनीति की पवित्रता, स्वच्छता और समरसता की बात करता है। कहाँ है आदर्श, जिन्हें देखकर दल के कार्यकर्त्ता बढ़ें। कहाँ है आदर्श, जिन्हें देखकर देश के लोग आगे बढ़ें।** लोहिया को भूल क्या लालू का अनुसरण करें, गांधी को छोड माया का पथ पकड़ें। जब आदर्श ही सामने नहीं, तो दल कैसे बँधे।

दल देश से विदा हुए, सत्ता के लिए नीले, पीले, लाल झण्डे लेकर गिरोह सामने आ गए। सत्ता के लिए जो भी करना पड़े, वह करने में उन्हें कोई हिचक न रही। अकेले सम्भव हो, तो अकेले चुनाव दंगल में कूद पड़े, मिलकर सत्ता मिले, तो चुनावी दगल में कई दल एक साथ कूदे और यदि सत्ता के लिए अपने दल के प्रत्याशी का विरोध करना पड़े तथा विरोधी दल के प्रत्याशी का समर्थन करना पड़े, तो इसमें भी कुछ संकोच नहीं। खुलकर सत्ता का खेल इन्हें खेलना है। **गिरोहों के मुखिया मंच पर एक दूसरे के दल को भरपूर गाली देंगे, परन्तु**

परस्पर एक दूसरे को जिताने के लिए सब कुछ कर डालेंगे। आवश्यक हुआ, तो अपने दल का प्रत्याशी ही खड़ा न करेंगे, खड़ा भी करना पड़ा, तो सबसे कमजोर खड़ा करेंगे और फिर उसे जिताने के लिए आना तो दूर, उलटे उसके विरोध में खड़े दूसरे गिरोह के मुखिया को जिताने के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी प्रयास करेंगे। इन गिरोहों की मित्रता पक्की है, दल की निष्ठा या देश की निष्ठा कहीं भी पक्की क्या नाम की भी नहीं है। अयोध्या में कारसेवा के लिए 'जय श्रीराम' के नारे लगा सबसे आगे जो मुखिया बनने वाले और कारसेवकों पर गोली चलवाकर निहत्थे रामभक्तों की हत्या कराने वाले, ये नेता चुनावी दंगल से लेकर पारस्परिक प्रत्येक प्रकार के हित में खुलकर एक दूसरे के साथ मिलेंगे, सब प्रकार की सहायता करेंगे। दलों में ये गिरोह ही दलों की बागडोर सम्हालने साधने में सबसे आगे हैं। उनकी जय-जयकार है। दलों का सारा ताना-बाना, दलों का सारा कार्यकर्त्ता अभियान और दलों का सारा सोच इन्हीं गिरोहों के अनुसार बनता और ढलता है। छँटे हुए लोग दलों में आते हैं और छँटे हुए अपने नुस्खे चुनाव में अपनाते हैं। नगर के सबसे छँटे हुए घर में प्रदेश और देश के नेता पहुँचते हैं; जलपान करते, भोजन करते और ठहरते हैं। जिन्हें समाज का सामान्य व्यक्ति भी पास बिठालने में संकोच करता है, उन्हें ये गिरोह अति सम्मानित बना मंच पर आसीन करते हैं। गिरोह की शक्ति बढ़ती है, सामर्थ्य बढ़ती है। इन्ही लोगों के बल पर भय और आतंक बना लोकमत की लूट होती है। इस लूट प्रक्रिया में समाज में देवता समझे जाने वाले लोग भी जब गिरोहों के मुखिया और गिरोह को लाभ पहुँचाने के लिए सक्रिय भागीदार बनते हैं, खुलकर फ़र्जी मतदान करते और करवाते हैं, तो माथा पकड़कर बैठ जाना पड़ता है। क्या होगा देश का? देश में देवता की तरह सम्मानित और पूजित लोग जब इन गिरोहों के प्रमुखों का यशगान करते हैं, तो देश अपना सिर धुनता है।

दलों के रूप में चल रहे इन गिरोहों का देश-हित से कोई भी वास्ता नहीं होता। सत्ता ही लक्ष्य होता है और सत्ता से बँधकर भरपूर भोग के लिए लूट चलती है। पूरे देश में दिन में यह डकैती चल रही है। सब देखते हुए भी देखते नहीं लगते; सब जानते हुए भी जानते नहीं लगते, सब समझते हुए भी समझते नहीं लगते। स्थानान्तरण कितना धन देता है, प्रोन्नति क्या-क्या जुटा देती है, नियुक्तियाँ क्या नहीं कर देतीं। निर्माण-कार्य कितना धन उगलता है, सहायता और ऋण-वितरण कितनी झोली भरता है। यह पट्टे, यह लाइसेन्स, यह कोटे, ये सौदे क्या नहीं दे डालते? विधायक और सांसद् पाला बदलने में क्या नहीं पा जाते। अपराध-जगत् नित्य धन देता ही रहता है। संकेतों पर हत्या और अपहरण चलते हैं। मासिक बँधा रहता है। बिना माँगे सब पहुँचता है। इसीलिए कल का दूसरों की रोटी पर पलने वाला, जब आज का विधायक, सांसद् और मन्त्री बनता है, तो लखपति नहीं करोड़पति और अरबपति होता है। पुरुषों की बात छोड़िए ममता और करुणा की देवी समझी जाने वाली भी जब सत्ता के गलियारे में जाती हैं, तो दस-बीस नहीं, सौ-दो सौ नहीं, हजार नहीं, दस हजार साड़ियाँ अपने लिए अलग जुटा कर रखती हैं। यह है देश का दर्द। यह है देश की सेवा। न जाने कितने 'सुखराम' अपने सुख के लिए देश को लूटने में लगे हैं। भ्रष्टाचार का सर्वत्र साम्राज्य है। अपराधका सर्वत्र बोलबाला है। आश्चर्य तो यह है कि यह भ्रष्टाचार और अपराध देश में पूजित है। दुष्ट पूजा करें, तो कोई चिन्ता नहीं, दुःख और भय होता है जब चरित्रवान्, विद्वान् और साधुजन इन भ्रष्टों की इन अपराधियों की आरती उतारते हैं। यह दृश्य हर गाँव, हर नगर और हर कोने में देखने को मिल जायेगा। लोकतन्त्र के नाम पर चल रहे लूट तन्त्र का यह वरदान है, जो घर के चूल्हे तक पहुँच गया है।

दल के नाम पर चल रहे ये गिरोह बेलगाम हो चुके हैं। अभी तक देश की जनता को लूटते थे, अब लूट को सुरक्षित करने के लिए और अपना वर्चस्व बनाने के लिए परस्पर भिड़ने लगे हैं। अभी तक हत्या और अपहरण जनता झेलती थी, अब गिरोह के सदस्य और मुखिया भी इसी हत्या और अपहरण के शिकार हो रहे हैं। इन गिरोहों की कृपा से यह हत्या का दौर थमेगा नहीं। थामेगा कौन? यह प्रशासन के अधिकारी भला क्या कर सकते हैं? यह तो शासन-तन्त्र की सनक पर थिरकने वाले प्रशासन-तन्त्र के निर्जीव यन्त्र हैं। कल जिसे दर्जनों हत्या, अपहरण और डकैतियों में बन्द किया था, आज उसी को सलाम ठोकना पड़ रहा है और उसके इशारे पर नाचना पड़ रहा है। इन हत्या, अपहरण, डकैती और भ्रष्टाचार के राक्षसों की आत्मा उन बगुलों में वास करती हैं, जो लखनऊ और दिल्ली के सत्ता वृक्षों पर कल तक बैठे रहे हैं। सारे देश में अराजकता की लगाम इन्हीं हाथों में है। देश को बचना और बचाना है, तो प्रबुद्धजन बैठें, सोचें और इस तन्त्र तथा मन्त्र को विदाकर वास्तविक लोकतन्त्र को लावें, जहाँ लोकेच्छा का आराधन हो, लोकेच्छा का नियन्त्रण हो और प्रत्येक कार्य में लोकेच्छा का ध्यान हो। लोक की लगाम लोक के हाथ हो और दिशा-बोध प्रबुद्ध करें। ❑

— १/२३६, नगला दीना, फतेहगढ़

स्वतन्त्रता के बाद भी भूल-भुलैया में फँसी रही है संस्कृत

– डॉ० प्रणव पारिजात

संस्कृत इस देश की ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की प्राचीनतम भाषा है। समस्त भारतीय भाषाओं का तो वह मातृ–स्तन्य की तरह पोषण करती रही है। भारतीय संस्कृति, धर्म–दर्शन, आचार–व्यवहार और इतिहास के परिज्ञान के लिए संस्कृत का अध्ययन अपरिहार्य है– इन सभी कारणों से, स्वतन्त्रता की ५०वीं वर्षगाँठ के समापन अवसर पर, संस्कृत के विकास की दिशा और दृष्टि का गम्भीर आकलन आवश्यक प्रतीत होता है। संस्कृत के विकास के सन्दर्भ में, स्वतन्त्रता के बाद, केन्द्रीय अथवा प्रादेशिक सरकारों ने अपने दायित्व का निष्ठा से निर्वाह नहीं किया। केन्द्र–सरकार की पहली भूल थी संस्कृत को अरबी–फारसी जैसी विदेशी मूल की भाषाओं के साथ श्रेणीबद्ध कर देना, दूसरी भूल थी लैटिन और ग्रीक जैसी मृतभाषाओं के कोष्ठक में डाल देना और तीसरी भूल थी उसे मुख्य शिक्षा–क्रम से अलग–थलग करके हाशिए पर छोड़ देना। और सबसे बड़ा अपराध किया प्रादेशिक सरकारों ने संस्कृत को उर्दू के साथ वोटों के तराजू में तौलकर। कांग्रेसी और समाजवादी नेताओं को हर बार वोटों की तुला पर उर्दू का पलड़ा भारी लगा और उन्होंने बिना विचार किये मुख्य–शिक्षा–क्रम से संस्कृत को हटाने के लिए हर बार उस पर चोट की।

संस्कृत के विकास के सन्दर्भ में, स्वतन्त्रता के बाद, केन्द्रीय अथवा प्रादेशिक सरकारों ने अपने दायित्व का निष्ठा से निर्वाह नहीं किया। केन्द्र–सरकार की पहली भूल थी संस्कृत को अरबी–फारसी जैसी विदेशी मूल की भाषाओं के साथ श्रेणीबद्ध कर देना, दूसरी भूल थी लैटिन और ग्रीक जैसी मृतभाषाओं के कोष्ठक में डाल देना और तीसरी भूल थी उसे मुख्य शिक्षा–क्रम से अलग–थलग करके हाशिए पर छोड़ देना। और सबसे बड़ा अपराध किया प्रादेशिक सरकारों ने संस्कृत को उर्दू के साथ वोटों के तराजू में तौलकर। कांग्रेसी और समाजवादी नेताओं को हर बार वोटों की तुला पर उर्दू का पलड़ा भारी लगा और उन्होंने बिना विचार किये मुख्य–शिक्षा–क्रम से संस्कृत को हटाने के लिए हर बार उस पर चोट की।

यह ठीक है कि श्मशान–यात्रा की तैयारी कर रहे कुछ महावृद्ध संस्कृत–विद्वानों को भी अरबी–फारसीविदों के साथ केन्द्र–सरकार प्रतिवर्ष पुरस्कृत कर देती है– कुछ प्रदेशों में स्थापित संस्कृत–अकादमियाँ भी इन 'अंगं गलितं, पलितं मुण्डम्, दशनविहीनं जातं तुण्डम्'–श्रेणी के जराजीर्ण संस्कृत–पण्डितों को पुरस्कृत कर अपनी सार्थकता का स्वयं ढिंढोरा पीट लेती हैं– लेकिन इससे संस्कृत के प्रचार में कितनी तीव्रता आयी ? इन पुरस्कारों की राशि का दुरुपयोग किया संस्कृत–विद्वानों के उन वज्रमूर्ख पुत्रों ने, जिन्होंने स्वयं तो संस्कृत पढ़ी ही नहीं– और संस्कृत पढ़ने के कारण अपने पिता और पितामह को सदैव मूर्ख समझकर उनका उपहास किया। यदि ये पुरस्कार मरणासन्न वृद्धों को न देकर कुछ उत्साही युवा संस्कृतज्ञों को दिये जाते, तो उनकी अधिक सार्थकता होती– वे अधिक उत्साह से संस्कृत का आगे बढ़कर प्रचार–प्रसार करते। होना तो यह चाहिए था कि साठ वर्ष की अवस्था के बाद किसी को पुरस्कार न दिया जाता। इसके विपरीत हिन्दी और संस्कृत–संस्थानों के अधिकांश उल्लेखनीय पुरस्कार साठ वर्ष से कम के लोगों को प्रदेय ही नहीं हैं। प्रश्न यह है कि हिन्दी और संस्कृत–संस्थानों के इन पुरस्कार नियन्ताओं को समझदार माना जाये या अंग्रेजी–साहित्य के पुरस्कारों का निर्णय करने वालों को, जिन्होंने अरुन्धती राय जैसी कम उम्र की लेखिका की पहली किताब को

ही 'बुकर' जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार से पुरस्कृत कर दुनिया भर में तहलका मचा दिया। यही कारण है कि हिन्दी और संस्कृत–संस्थानों के द्वारा प्रदेय पुरस्कारों की कहीं कोई प्रतिष्ठा नहीं है। उ०प्र० संस्कृत संस्थान द्वारा अपना डेढ़ लाख का प्रतिष्ठित 'संस्कृत–भारती' सम्मान कुछ वर्ष पूर्व जब एक ऐसे ही विद्वान् को दिया गया था, तब हर कोने से यह आवाज उठी थी कि आखिर उन्हें किस संस्कृत–कृति पर यह पुरस्कार दिया गया है? हाँ; उन विद्वद्वर की हिन्दी में ललित निबन्धों के कारण प्रतिष्ठा अवश्य है। प्रश्न है कि उस पुरस्कार को पाने के बाद उन्होंने संस्कृत की कितनी सेवा की? इसी प्रकार इन्दिरा गांधी के प्रधानमन्त्रित्व–काल में वाराणसी के एक ऐसे संस्कृत विद्वान् (अब दिवंगत) पर केन्द्र सरकार ने अलंकरणों और पुरस्कारों की वर्षा–सी कर दी थी– लेकिन ये पुरस्कार उन्हें उनकी संस्कृत–विद्वत्ता के लिए नहीं दिये गये थे– ये इसलिए दिये गये थे; क्योंकि इन्दिरा गांधी की ओर से उन्होंने राजनारायण के विरुद्ध इलाहाबाद के उच्च न्यायालय में गवाही दी थी– उस गवाही में उन्होंने यह 'मौलिक' मत प्रकट किया था कि 'हिन्दू–धर्म और समाज गाय और बछड़े को पूज्य नहीं मानते।' इस गवाही के बाद तत्कालीन केन्द्र–सरकार की दृष्टि में अचानक वह विद्वान् बड़े मूल्यवान् हो उठे थे। संस्कृत–विद्वानों को पदवियाँ बाँटकर जिस प्रकार मुगल बादशाह और अंग्रेज सरकार पथ–भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते थे, उनसे 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो' जैसी विरुदावली लिखवा लेते थे, वही काम स्वतन्त्रता के बाद केन्द्र सरकार और विभिन्न अकादमियाँ भी करती रहीं– संस्कृत के वास्तविक प्रचार–प्रसार में इन अलंकरणों और पुरस्कारों से कोई विशेष सहायता आज तक नहीं मिली– यह सरलता से समझा जा सकता है। संस्कृत–पुरस्कारों का यह दुर्भाग्य है कि उनके निर्णय में विशुद्ध विद्वत्ता या संस्कृत–प्रचार–जन्य योगदान को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता, जितना क्षेत्रवाद उपजातिवाद या सजातीयतावाद अथवा गुरु–शिष्य वाद को महत्त्व दिया जाता है। यदि पुरस्कारों के निर्णय में इन क्षुद्रताओं, स्वार्थी–निष्ठाओं से ऊपर उठा जा सका होता, तो संस्कृत के विकास में ये सम्मान या पुरस्कार अवश्य सहायक सिद्ध हो सकते थे।

वाहवाही लूटने के लिए केन्द्र और प्रदेश की तत्कालीन (कांग्रेसी) सरकारों ने कुछ संस्कृत विश्वविद्यालय भी खोले। लेकिन इनकी स्थापना से भी संस्कृत का विशेष हित नहीं हुआ। हित उन्हीं का हुआ, जो संस्कृतज्ञ कम, 'संस्कृत–नेता' अधिक थे। वे स्वयं कुलपति बन गये या अपने चाटुकारों को उन्होंने कुलपति बनवा दिया। अदल–बदल कर इन विश्वविद्यालयों से केवल चार–पाँच चाटुकारिता–दक्ष संस्कृत नेताओं ने लाभ उठाया। चाहे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी हो, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय (बिहार) हो या लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली हो, घूम–फिर कर ये ही चार–पाँच संस्कृत–विद्वान् राजनेताओं और वरिष्ठ नौकरशाहों की 'गणेश–परिक्रमा' कर उनके आशीर्वाद के बल पर कुलपतित्व पाते रहे। एक विश्वविद्यालय से हटे, तो दूसरे में आ गये। दूसरे से हटे, तो तीसरे को 'कृतार्थ' करने के लिए पहुँच गये। दिल्ली से हटे, तो वाराणसी में प्रतिष्ठित हो गये, वाराणसी से हटने के बाद किसी दूसरे संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रतिष्ठित होने की जुगाड़ में लग गये; लेकिन ऐसे नामों से संस्कृत–जगत् अनभिज्ञ नहीं है। संस्कृत के उद्धार के लिए संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का श्रेय(स्व०) डॉ० सम्पूर्णानन्द को जाता है। बाद में वे अपनी अन्तरंग–मण्डली में बहुधा यह कहते सुने गये कि 'वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना करके उनसे बड़ी भूल हो गई।' कभी–कभी तो वे 'भूल' के स्थान पर 'पाप' शब्द का प्रयोग करते थे।

इन विश्वविद्यालयों से कैसे लोग पढ़–लिखकर निकले इसकी एक ही बानगी पर्याप्त होगी। वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के परिसर में, उसके संस्थापक स्व० डॉ० सम्पूर्णानन्द की प्रतिमा का उद्घाटन तत्कालीन विशिष्ट राजनेता बाबू जगजीवनराम ने किया। उद्घाटन के बाद विश्वविद्यालय के 'विद्वानों' ने उसे अशुद्ध मानकर गंगा–जल से धोया! इस घटना से स्पष्ट है कि छुआछूत जैसे कुसंस्कारों को दूर करने के स्थान पर इन संस्कृत–विश्वविद्यालयों में उसे प्रोत्साहन ही मिला। यही कारण है कि संस्कृत–विश्वविद्यालयों में शिक्षित और दीक्षित युवक राष्ट्र की मुख्य–धारा में अपना स्थान बनाने में प्रायः विफल ही रहे। अनेक कुत्सित रूढ़ियों से ग्रस्त और प्रायः अतीतोन्मुख ये युवा न तो संस्कृत का भला कर पाये और न अपना ही। शासन, प्रशासन और नव–निर्माण की दृष्टि से इनकी भूमिका नगण्य ही रही। प्रशासनिक प्रतियोगिताओं में संस्कृत–विश्वविद्यालयों के छात्रों की भागीदारी और उपलब्धि का आकलन करने पर केवल गहरी निराशा ही

हाथ लगती है। समाज में अपनी छाप छोड़ने में इन्हें प्रायः विफलता ही मिली। सस्कृत–भाषा के प्रचार–प्रसार में भी इनकी भूमिका नगण्य है। केवल नकल के बल पर 'शास्त्री' और 'आचार्य' जैसी उपाधियों से विभूषित होने पर भी ये संस्कृत–ज्ञान से प्रायेण शून्य ही रहे। समाज की सामान्य धारणा है कि संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन से व्यक्ति में सद्गुणों का विकास होता है सदाचार की ओर उसकी प्रवृत्ति होती है, लेकिन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालय में नियुक्त कुछ शिक्षकों ने तो बेईमानी से धन बटोरने में भी सारी मर्यादाओं को ही तिलांजलि दे दी। यह तथ्य अब अविदित नहीं रह गया है कि संस्कृत–पाठशालाओं में विशेषज्ञ बनकर गये ऐसे अर्थ–लोलुप अध्यापकों ने बिना 'दक्षिणा' लिये नियुक्तियाँ नहीं कीं। ऐसे महानुभावों द्वारा नये विषयों और कक्षाओं की मान्यता की संस्तुति करने से पहले खुलकर 'सुविधा–शुल्क' की माँग करना आम बात हो गयी और यह 'सुविधा–शुल्क' जुटाया संस्कृत– पाठशालाओं के उन दयनीय शिक्षकों ने, जिन्हें समय से वेतन नहीं मिलता है और जो मिलता है, वह तवे पर बूँद जैसा है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि आज जब भारतीय समाज के सभी वर्गों में गहराई से भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है, तब अकेले संस्कृत विश्वविद्यालयों के ऐसे अर्थकामी लोगों की ओर ही क्यों उँगली उठाई जाय? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि चादर जितनी उजली होगी; कालिख का धब्बा उतना ही ज्यादा उजागर होगा। और जहाँ तक शुद्ध वैदुष्य की बात है, वह भी अब संस्कृत–विश्वविद्यालयों में दुर्लभ होता जा रहा है। अधिकांश विद्वानों की विद्वत्ता बस 'स्वागतं व्याहरामः' तक ही सीमित है। हाँ; दक्षिण के तिरुपति जैसे कुछ विश्वविद्यालय निश्चित ही बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं– लेकिन उनकी दृष्टि भी संस्कृत के सर्वहितकारी स्वरूप पर कम ही जा पाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि संस्कृत का विकास उसे केवल संस्कृत पाठशालाओं अथवा संस्कृत–विश्वविद्यालयों में सीमित कर नहीं किया जा सकता। संस्कृत के संवर्द्धन में इनकी भूमिका सीमित है। मुख्य–शिक्षा–क्रम से अलग–थलग रखकर संस्कृत का विकास कदापि सम्भव नहीं हो सकता। संस्कृत–विकास के लिए खुली अकादमियों में से दिल्ली संस्कृत अकादमी जैसी कुछ अकादमियों द्वारा ही उपयोगी काम किया गया है। शेष तो क्षेत्रवादी, वर्गवादी और स्वार्थवादी संकीर्ण 'भूल–भुलैयां' में ही उलझकर रह गयीं।

आज जब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पाँच दशक पूरे हो रहे हैं, यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि संस्कृत के प्रचार–प्रसार के लिए कौन–सी दिशा और दृष्टि अपनाई जाये? इस सन्दर्भ में समाज, जिस पर संस्कृत के रूप में सर्वाधिक मूल्यवान् धरोहर के संरक्षण का दायित्व है, स्वयं आगे बढ़े। हम केवल अकादमियों एवं विश्वविद्यालयों के सहारे न बैठे रहें। उन स्कूलों का बहिष्कार किया जाये, जिनके मुख्य शिक्षा–क्रम में संस्कृत का समावेश नहीं किया गया है। उन नवोदय तथा केन्द्रीय विद्यालयों में संस्कृत पढ़ाये जाने का आग्रह किया जाये, जिनमें से राजीव गांधी की शिक्षा–नीति ने संस्कृत हटा दी थी। आयुर्वेद के पाठ्यक्रमों में केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाये, जिन्होंने माध्यमिक–स्तर तक संस्कृत का विधिवत् अध्ययन किया हो। प्रत्येक विद्यालय में माध्यमिक–स्तर तक एक सम्पूर्ण और स्वतन्त्र विषय के रूप में संस्कृत को अनिवार्य किया जाये। **संस्कृत हमारे समाज की संजीवनी है। यदि संस्कृत का ज्ञान हमने भावी अभियन्ता को दिया, तो वह लोक–निर्माण के कार्य (पुल, भवन, मार्ग आदि) अधिक निष्ठा से करेगा। संस्कृत का विद्यार्थी रह चुका पुलिस–अधिकारी अधिक तत्परता से अपराधों पर नियन्त्रण करेगा। विज्ञान के विद्यार्थी को संस्कृत के अध्ययन से नई दिशाएँ मिलेंगी। (पश्चिमी देशों के परमाणु–विज्ञानी अपनी वैज्ञानिक क्षमता के आकलन तथा संवृद्धि हेतु 'वैशेषिक दर्शन' का गहन–अध्ययन करने में जुटे रहते हैं।)** सत्य तो यह है कि **मुख्य–शिक्षा क्रम में संस्कृत के समावेश से ही समाज को आज के बढ़ते मानसिक–प्रदूषण से मुक्त किया जा पाना किसी सीमा तक सम्भव हो पायेगा।** सरकारें आती रही हैं, जाती रही हैं। आगे भी आती रहेंगी, जाती रहेंगी; परन्तु सरकारों के माध्यम से संस्कृत का संवर्द्धन–सम्पोषण तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक संस्कृत और हिन्दू-संस्कृति के प्रति समर्पित, निष्ठावान् लोगों की पूर्ण बहुमत प्राप्त सरकारें केन्द्र और प्रदेशों में स्थापित नहीं होतीं। इस दिशा में जो थोड़ी–सी राष्ट्रीय चेतना राजनीतिक क्षेत्र में परिलक्षित हुई है, उसी का परिणाम यह दिखाई दिया कि इस बार वर्त्तमान लोकसभा (बारहवीं लोकसभा) के ६५ सदस्यों ने संस्कृत में शपथ ली, जिनमें मात्र एक सदस्य कांग्रेस का और एक ही शिवसेना का है, बाकी सभी भाजपा के हैं। क्या यह राजनीति की दिशा हमें सही दायित्व–बोध कराने के लिए स्पष्टतः पर्याप्त नहीं है? ❐

दृष्टिकोण-

गंगा को बहने दो

[गंगा जी भारत की सनातन संस्कृति, सभ्यता, धर्म, इतिहास, पौरुष, पराक्रम, त्याग, तपस्या, शुचिता, पवित्रता, दिव्यता, भव्यता अर्थात् सभी कुछ की प्रतीक हैं। लोक–मानस का जन्म–पूर्व से लेकर मृत्यु–पर्यन्त तक गंगा जी से ऐसा तादात्म्य है कि बस अनिर्वचनीय है। गंगा जी के सनातन–प्रवाह को बन्धन–ग्रस्त करने का उपक्रम सर्वप्रथम 'अपर' गंगा नहर तथा 'लोअर' गंगा नहर निकालकर अंग्रेजी शासन–काल में किया गया। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् उसके जल की पवित्रता नष्ट करने का पहला उपक्रम रूस की सहायता से पेंसिलीन बनाने का कारखाना ऋषिकेश में स्थापित करके किया गया। तत्पश्चात् तो इस 'अमृत' की धारा को प्रदूषित करने का मानो अभियान–सा ही चलता रहा; परन्तु फिर भी इसके जल की (जिसे मुगल बादशाह अकबर तक ने 'अमृत' कहा था) स्वतः शुद्ध हो जाने की गुणवत्ता अक्षुण्ण बनी रही। अब एक ओर जहाँ मूल–उत्स गोमुख (हिमानी) गत आठ वर्षों में नौ कि०मी० पीछे खिसक चुका है और पर्यटन–विभाग की 'महती अनुकम्पा' से लगातार पीछे खिसकता जा रहा है, वहीं टेहरी–बाँध बनाकर गंगा जी की अब तक प्रायः यथावत् बनी रही दिव्य–महिमा को सदा–सदा के लिए समाप्त किया जाने का दुष्प्रयत्न 'विकास' के नाम पर सतत जारी है। गंगा जी ही न रहीं, तो देश की प्रत्येक नदी को गंगा मानकर चलने वाली लोक–संस्कृति कैसे बची रह पायेगी, यह सरकार ही नहीं; शासन ही नहीं; प्रशासन ही नहीं, देश–विदेश में बसे एक अरब से अधिक हिन्दुओं की चिन्ता का अत्यन्त गम्भीर विषय है। विश्व–हिन्दू–परिषद् के मार्गदर्शक–मण्डल की चिन्ता जिस प्रस्ताव के रूप में अभिव्यक्त हुई है, वह जन–जन की चिन्ता बने, ऐसी अपेक्षा है। प्रस्ताव नीचे उल्लिखित है। –सम्पादक]

गंगा के वर्तमान–स्वरूप में बिना किसी भौतिक–परिवर्त्तन के ही विद्युत् प्राप्त करने के उपाय पर सरकार अविलम्ब विचार करे, वह गंगा के अक्षुण्ण–प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाए तथा टिहरी–बाँध पर गंगा को बाँधने का कार्य तत्काल रोका जाय। गंगा मात्र एक नदी ही नहीं है; अपितु वह विश्व भर में आस्तिक समाज की प्रवहमान आस्था भी है। गंगा हमारी अखण्डता, निरन्तरता, पारदर्शिता और पवित्रता की प्रतीक ही नहीं, अपितु प्रेरिका भी है। वह धरती पर स्वर्ग का वरदान है; मूर्तिमन्त दिव्यता है। (ब्रिटिश–शासन काल से ही) भारतीय न्यायालय गंगा की सौगन्ध को (प्रामाणिकता के रूप में) स्वीकार करता है। सद्यः–परिणीता वधुएँ जहाँ उससे अपने सौभाग्य की अखण्डता की कामना करती हैं, वहीं इस देश का हर म्रियमाण व्यक्ति गंगा से अपनी सद्गति चाहता (कामना करता) है। आज भी जितनी बड़ी संख्या में लोग गंगा और गंगाजल से जुड़े हैं, शायद उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं। गोमुख से गंगा–सागर तक गंगा के दोनों तटों पर असंख्य तीर्थों की एक पवित्र–शृंखला है। उन तीर्थों का अस्तित्व इसी गंगा के प्रवाह पर अवलम्बित है। यह हमारे सांस्कृतिक इतिहास की मुखर साक्षी, काव्य और साहित्य की प्रेरणा तथा लोक कला की प्राण है। टिहरी–जल–विद्युत्–परियोजना के हम पक्षधर हैं; परन्तु गंगा पर कोई बाँध बने और स्वर्ग से धरती को जोड़ने वाली आस्था की इस (अजस्र) धारा में कोई अवरोध उत्पन्न किया जाए, यह हमें सहन नहीं है। गंगा के स्वाभाविक प्रवाह में प्रकृति से प्राप्त ढलान का लाभ (तथा सुरंगें बनाकर) लेते हुए ऊर्जा प्राप्त की जाती है, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। सम्पूर्ण हिमालय में ऐसे कई प्रपात और प्रवाह हैं, जिनसे ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। छोटी–छोटी (माइक्रो प्रोजेक्ट्स) परियोजनाएँ बनाई जा सकती हैं। भागीरथी पर मनेरी माली परियोजना, यमुना नदी पर लखवाड़ व्यासी परियोजना, किशाऊ बाँध परियोजना, अलकनन्दा पर श्रीनगर तथा विष्णु प्रयाग परियोजना आदि ऐसी परियोजनाएँ, जो धनाभाव और शासकीय उपेक्षा के कारण अधूरी पड़ी हैं, यदि पूरी कर ली जाएँ, तो केवल इन्हीं से २१२८ मेगावाट ऊर्जा और दिल्ली को २५० क्यूसेक पानी पीने के लिए मिल सकता है। लेकिन जब इन सबको छोड़कर केवल गंगा को बाँधने का आग्रह किया जाता है, तो इसमें विदेशियों से मिलकर हमारी राष्ट्रीय आस्था को मिटाने का (स्पष्ट) षड्यन्त्र (परिलक्षित) होता है।

यदि पड़ोसी चीन छोटी–छोटी अनेक परियोजनाओं से १५,००० मेगावाट ऊर्जा प्राप्त कर सकता है, तो प्राकृतिक ढलान की असंख्य धाराओं का उपयोग भारतीय जल– वैज्ञानिक और ऊर्जा–विशेषज्ञ क्यों नहीं कर सकते ? सन् १९७२ से ही चल रही यह टिहरी–जल–विद्युत्–परियोजना अब तक २६ वर्ष का मूल्यवान् समय तथा हजारों करोड़ रुपये बर्बाद करती रही है, (कर चुकी है)। हम भारत सरकार से आग्रह करते हैं कि वह इस अन्धी दौड़ को तत्काल रोके और मानवीय पुरुषार्थ की इस नैसर्गिक– प्रतिष्ठा को धरती पर स्वर्ग की धरोहर समझकर उसकी रक्षा करे। महामानव भगीरथ से लेकर महामना पं० मदन मोहन मालवीय तक अनेक महापुरुष जिस गंगा की धारा की रक्षा हेतु स्वयं को समर्पित करते रहे, उसे हम नष्ट नहीं होने देंगे। हम सब कुछ करने को संकल्पबद्ध हैं जिससे गंगा की रक्षा हो और उसकी मर्यादा पर कोई आँच न आए।

– (वि०हि०प० के मार्ग–दर्शक–मण्डल का प्रस्ताव)

अटल जी के प्रति

हे चन्दन-तरु ! तुमको प्रणाम

- 'विकल' जलालाबादी

वर्षों पहले देखा सपना, अब हो पाया है मूर्त्तिमान,
भारत के भाग्योदय गिरि पर तुम सूरज से देदीप्यमान।

वर्षों पहले घोषणा विकल कवि ने की थी उद्‌गारों में,
भावी प्रधानमंत्री आया है कारा की दीवारों में;
वह स्वप्न हुआ साकार आज, बिखरे भावों को छन्द मिला,
संसद् के माध्यम से युग को दूसरा विवेकानन्द मिला।
तुम मूर्त्तिमान तप, तेज राष्ट्रवेदी पर सब बलिदान किया।
जड़ता का तिमिर बेधने वाली किरणों का सन्धान किया।।

अपराजित संघर्षों की ही तो कीर्ति अमर अक्षय होती,
तप का अमृतफल लोकार्पित करने वालों की जय होती;
ओ मानवता के लिए समर्पित जीवन शत शत अभिनन्दन,
तप की आलोक ऋचाओं के जंगम स्वरूप हो उदाहरण।
सिंहासन मिला तुम्हें सचमुच ही काँटों का संसार मिला।
यह तो चुनौतियों का जंगल, तुमको जन मन का प्यार मिला।।

उदयाचल को मिल गया नया रवि, कण—कण में लाली होगी,
उद्यान हँसेगा फल फूलों को देती हरियाली होगी;
तुमको स्रष्टा ने भेजा है नूतन इतिहास बनाने को,
एकता प्यार की धार बहा नूतन पुरुषार्थ जगाने को।
कवि पत्रकार हो वक्ता हो नेता हो नव—निर्माता हो।
कण—कण न्योछावर तुम पर तुम धरती के भाग्य विधाता हो।।

उस महादेश के मुखिया हो जिसमें रोता फिरता बचपन,
बँधुआ मजदूर जहाँ ढोते चट्टानें, अकुलाता, क्रन्दन;
शैशव को श्रमिक बना डाला व्यवहार क्रूर इन्सानों का,
नन्हें फूलों पर भार लदा दुख की काली चट्टानों का।
जल रहे प्राण तरुणाई के हैं बेकारी की ज्वाला में।
मारीच घूमते गली—गली तक्षक बैठे वर माला में।।

दायित्व मिला तुमको ऐसी घड़ियों में नाव चलाने का,
है चट्टानों से भरी नदी भय बना हुआ टकराने का;
तुम कर्मठता के अग्रदूत तपते आए अंगारों में,
तुम कर्णधार तट आयेगा, खोजता, हुआ मँझधारों में।
चाहते रहे हैं रामराज्य, आदर्श-व्यवस्था, सहजज्ञान।
रावण से मुक्ति मिलेगी मारो नाभिकुण्ड में अग्नि—बाण।।

संस्कृति के जंगम ज्योति—कलश, ओ नई दिशा के उद्‌घाटन
खोले नवीन क्षितिजों के पट, ओ परम्परा के संशोधन,
अन्धी श्रद्धा स्वीकार नहीं तुम रूढ़िवादिता के दुश्मन,
अपना प्रतिबिम्ब देखता युग, सम्पूर्ण मनुजता के दर्पण।

तुम चलो देश चल पड़े, तुम्हारे इंगित पर दिनमान चले।
पद चिह्नों का आलोक देखकर पूरा हिन्दुस्थान चले।

तुम जीवन के अलिखित भविष्य के महाकाव्य, आलोक—शिखर,
आये यथार्थ की धरती को देने आदर्शों का अम्बर,
उस धरती के नायक जिस पर होता अपमान पसीने का,
जीवित प्राणी जानते नहीं उद्देश्य जहाँ पर जीने का।
शिव के स्वरूप, रोता कुमारसम्भव, अपना कैलास नहीं।
पर्वत पर रोती पार्वती, कंचन कमलों में हास नहीं।।

कंटकाकीर्ण पथ मिला अटल तुम बढ़े चलो, विश्वासी हो,
तुम ऐश्वर्यों के मोह-कुंज में विचर रहे संन्यासी हो;
जनमानस के उदयाचल पर तुम उदित हुए रवि के समान,
पग अँधियारों के काँप रहे शिंजिनी रहित जैसे कमान।
मलयानिल ने गुदगुदा दिया जागे उपवन खिलखिला उठे।
बोलते वृक्ष, उड़ रहे गीत अँधियारे पथ जगमगा उठे।।

बलिपंथी है सारथी, बज रहा पाञ्चजन्य जय पायेगा,
कौरव पांडव सब गले मिलेंगे, रथ मंजिल तक जायेगा;
चलते हैं जब उनचास पवन, तृण तरु वन धूल मिला करते,
पर शैलराट् जो अटल कभी भी उनसे नहीं हिला करते।
ओ माली! उपवन में पतझारों से भय मुक्त विधान बचे।
कलियों फूलों के साथ साथ अपना पूरा उद्यान बचे।।

शोषण दोहन उत्पीड़न से रक्षा हो विष के बाणों से,
मानवता क्यों कुचली जाए अब कंचन की चट्टानों से;
खाली पेटों की भरी हुई आँखों को मुस्कानें दे दो।
भारत के कण—कण को अपनी सब खोई पहचानें दे दो।
ओ महा तपस्वी, कर्मवीर तारुण्य-कोष, माँ के सपूत।
तुम अक्षय-वट के हो प्रधान सांस्कृतिक शक्ति के राजदूत।।

ओ चलते फिरते यज्ञकुण्ड, ओ कर्तव्यों के सिंहद्वार,
तुम आए हो सिंहासन पर, चेतना—सिन्धु में उठा ज्वार;
विष पीकर अमृतदान किया, कंटकाकीर्ण पथ ही भाया,
जग क्या जाने यह सार्थवाह कैसे अभीष्ट तक आ पाया।
तुम वीतराग शासक, सत्ता को जनबल का साधन समझा।
काया चलता फिरता मंदिर नर को ही नारायण समझा।।

तुम समय—पटल पर हो अदृश्य सत्ता के लौकिक हस्ताक्षर,
तुम लपटों के कँवारे गुलाब, भावों के हो वैचारिक स्वर;
विष की लपटों से घिरे हुए हे चन्दन—तरु तुमको प्रणाम,
उद्दाम वेग के निर्झर हो तुम क्या जानो कैसा विराम।
इतिहास—विधाता युग का रूपान्तर कर तप बलिदान लिखो
किरणों की लिपि में प्राण—प्राण में पूरा हिन्दुस्थान लिखो।।

— 'महाकवि निलयम्', विकल निवास
मोहमदजयी, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

एक मन्दिर ऐसा भी ....

– हरीश कुमार शर्मा

अयोध्या के रामजन्मभूमि–मन्दिर–निर्माण को लेकर जब देखो तब चिल्ल–पों मचाते रहने वाले वाममार्गियों को शायद याद भी नहीं होगा कि इसी उत्तर प्रदेश के एक नगर में एक ऐसा दिव्य एवं भव्य मन्दिर भी है, जिसका निर्माण उस नगर के तत्कालीन एक मुसलमान सेठ ने कराया था और जिसका उद्घाटन हमारे प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपने कार्यकाल में किया था। किसी अली मियाँ; किसी इमाम बुखारी या किसी सैयद शहाबुद्दीन की बात जाने दें; किसी चन्द्रशेखर, विश्वनाथ प्रताप सिंह, हरिकिशन सिंह सुरजीत या मुलायम सिंह की भी बात जाने दें, किसी शीर्ष कांग्रेसी द्वारा जब ऐसी चिल्ल–पों मचायी जाती है, तो उस पर हँसी कम, तरस अधिक आना क्या स्वाभाविक नहीं है? – **सम्पादक**

प्रत्येक उस स्थान, जहाँ मानवों का निवास होता है, की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, भले ही वे स्थानीय महत्त्व की हों अथवा फिर क्षेत्र, प्रान्त एवं राष्ट्र आदि की परिधियों को भी लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक उनकी गूँज पहुँची हो। भारत की सर्वाधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश के रुहेलखण्ड मण्डल का एक प्रमुख नगर बरेली जहाँ अपनी सुरमा जैसी अनेक वस्तुओं एवं कतिपय अन्य विशेषताओं के लिए देश ही नहीं, विदेशों तक में विख्यात है, वहीं यह महानगर धार्मिक–ऐक्य एवं साम्प्रदायिक– सौहार्द्र के एक दिव्य एवं भव्य प्रेरणा–पुञ्ज के कारण भी अपनी विशेष पहचान रखता है और यह प्रेरणा–पुञ्ज है श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर उर्फ चुन्ना मियाँ का मन्दिर। हाँ, चुन्ना मियाँ का मन्दिर। यही इस मन्दिर की पहचान भी है और विशेषता भी।

आप बरेली में 'लक्ष्मीनारायण के मन्दिर' के नाम से इस मन्दिर का पता करेंगे, तो बहुत कम लोग ही इसके बारे में बता सकेंगे; किन्तु यदि आप 'चुन्ना मियाँ के मन्दिर' के नाम से इसे पूछने लगें, तो राह चलता व्यक्ति भी आपको इस मन्दिर एवं इसके निर्माता की प्रशंसा करते हुए पता बता देगा। निश्चित रूप से यह मन्दिर भव्य और विशाल है। पर्याप्त समय, श्रम एवं धन के व्यय के फलस्वरूप यह सुन्दरतम कृति अपने अस्तित्व में आयी है; परन्तु एक से एक श्रेष्ठ, सुन्दर एवं विशाल प्राचीन एवं नवीन मन्दिरों के देश भारत में चुन्ना मियाँ के इस मन्दिर की भव्यता एवं विशिष्टता इतने आकर्षण की वस्तु नहीं; वह तो स्थानीय लोगों के लिए विशेष महत्त्व की बात हो सकती है। बरेली के बाहर यदि प्रदेश और देश की सीमाओं को भी लाँघकर इसकी ख्याति विदेशों तक पहुँची है, तो उसका कारण है– एक मुसलमान सेठ फजल–उर्–रहमान अर्थात् चुन्ना मियाँ द्वारा इसका निर्माण कराया जाना। यही वह आकर्षण है, यही वह विशेषता है और यही वह महत्त्वपूर्ण बात है, जिसके कारण यह मन्दिर अन्य मन्दिरों से भव्य, विशिष्ट एवं महान् बन पड़ा है और यही वह कारण है कि इस मन्दिर को देखने की इच्छा बरबस ही आपको इसकी तरफ खींचने लगती है। आज स्थिति यह है कि चुन्ना मियाँ के नाम से न केवल उक्त
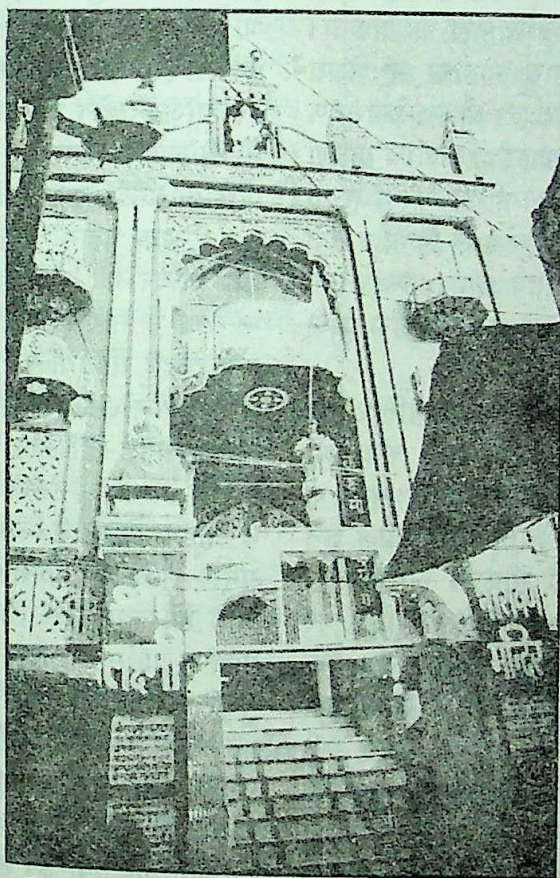
लक्ष्मीनारायण का मन्दिर जाना जाता है, बरेली को भी उनके नाम से पहचाना जाता है।

संसार में बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जिनको देखकर हठात् हमारे मुख से प्रशंसा के शब्द निकल पड़ते हैं; लेकिन कुछ चीजें ऐसी भी हैं, जिनकी प्रशंसा सुनकर हम उन्हें देखने की अपनी लालसा को दबा नहीं पाते और स्वभावतः हमारे पैर उसी ओर खिंचने लगते हैं। किसी भी वस्तु की भव्यता की माप उसके बाह्य सौन्दर्य से ही नहीं, उसके मूल में निहित भावना से भी होती है। वस्तुतः इस मुसलमान 'हरिजन' (इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दू बारिये— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) का कार्य ही ऐसा है कि उसके बारे में जानकर कोई भी व्यक्ति उसे देखने की इच्छा किये बिना नहीं रह सकता और मन्दिर को देखने के बाद सराहना के दो शब्द बोले बगैर नहीं रह सकता। बरेली के बीचोंबीच कटरा मानराय मोहल्ले में स्थित 'चुन्ना मियाँ का मन्दिर' नाम से सुविख्यात श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर का स्वर्णभमण्डित सत्तर फीट ऊँचा सर्वोच्च कलश अपनी अप्रतिम चमक से सुदूरस्थ लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करता है; साथ ही मौन उद्घोष भी कि जब तक इस मन्दिर का अस्तित्व रहेगा, तब तक और उसके पश्चात् भी चिरकाल तक चुन्ना मियाँ का नाम इस पृथ्वी पर सादर लिखा जाता रहेगा।

अपने आप में अनूठी मिसाल इस मन्दिर का शिलान्यास बरेली नगर के जाने–माने सेठ श्री फजल–उर्–रहमान, जो कि चुन्ना मियाँ के नाम से प्रसिद्ध थे, ने स्वयं अपने हाथों से दिनांक १३ अप्रैल सन् १९५७ को किया था। बताते हैं नींव में लगने वाले पत्थरों का प्रथम टोकरा स्वयं सेठजी अपने सिर पर लाद कर लाये थे। बाद में भी सेठजी की यह कारसेवा मन्दिर निर्माण होने तक समग्र उत्साह से जारी रही थी। यही नहीं, मन्दिर में स्थापना के लिए श्री लक्ष्मीनारायण जी की युगल–मूर्त्ति को जयपुर जाकर वे स्वयं लाये थे। मन्दिर बनकर तैयार हो जाने पर भारत के प्रथम एवं तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने १६ मई, सन् १९६० को श्री लक्ष्मीनारायण के इस मन्दिर के कपाट अपने हाथों से भक्त जनों के लिए खोले थे, और कहा था— 'श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर सेठ फजल–उर–रहमान की राष्ट्र को महान् देन है, जहाँ से सदैव हिन्दू–मुस्लिम एकता व सद्भावना का सन्देश मिलता रहेगा।'

यद्यपि लोगों की निगाहों में तो यह मन्दिर अपने निर्माण–काल से ही चढ़ने लगा था; किन्तु राष्ट्रपति द्वारा उद्घाटन के अनन्तर यह व्यापक जन–चर्चा का विषय बना। समाचार–पत्रों में इसके बारे में लेख लिखे गये, इससे सम्बन्धित समाचार प्रकाशित हुए तथा देश–विदेश से बधाई सन्देशों एवं पत्रों का सिलसिला शुरू हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने ईरान से बधाई का तार भेजा। एक पाकिस्तानी नागरिक ने अपने पत्र में टिप्पणी की— **'हिन्दुओं को जो महमूद गजनवी से शिकायत थी, फजल–उर्–रहमान ने उसकी तलाफी (प्रायश्चित) कर दी।'** मदीना से अरबी में भेजे गये एक पत्र में मु. इदरीस मदनी ने लिखा— **'सेठ फजल–उर्–रहमान साहब, आपकी कुरबानी या आपकी सखावत (दानवीरता) कुरुन–ए–अदला में जो इस्लामी हुकूमतें थीं और इस्लामी हुकूमतों में रहने वाले मुसलमान जो फर्राखदिली करते थे, वो ही फर्राखदिली आपने दिखायी। इस नाजुकतरीन दौर में सैकड़ों–हजारों तो क्या, लाखों में भी फकत आप ही एक हैं। ये दुनियाँ फकत आप जैसे ही सखी बुजुर्गों के सदके में चल रही है।'**

एक महान् व्यक्ति की महान् देन चुन्ना मियाँ के इस मन्दिर के प्रवेश द्वार तक पहुँचने के लिए कटरा मानराय में सड़क से थोड़ा चढ़ाई पर चलकर पत्थर की बनी चौदह सीढ़ियों को चढ़ना होता है। नीचे एक कक्ष में जूते–चप्पल उतारने की निःशुल्क व्यवस्था है। मन्दिर का विशाल प्रवेश–द्वार पार करते ही भव्य हाल में प्रवेश होता है और फिर दर्शन होते हैं— सामने ही एक सजे हुए कक्ष में प्रतिष्ठापित श्री लक्ष्मीनारायण की पूर्णाकार मोहक युगल–मूर्त्ति के, जिसको देखकर भक्तजन विमुग्ध हो जाते हैं। जयपुर से लाकर स्थापित की गयी इस युगल पाषाण–प्रतिमा के सिर पर स्वर्णभमण्डित शुद्ध चाँदी के मुकुट सुशोभित हैं तथा सुन्दर वसनाभूषणों से देह–सज्जा की गयी है। श्री लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति के अतिरिक्त उनके दायें–बायें राधाकृष्ण, सीताराम, संतोषी माता, माँ दुर्गा तथा बजरंगबली की प्रतिमाएँ तथा शिवलिंग की भी स्थापना की गयी है। हाल में बने पाँच गोल पीले स्तम्भों पर हनुमान, सरस्वती, विष्णु आदि देवी–देवताओं के चित्र उत्कीर्ण हैं तथा दीवारों पर हनुमान–चालीसा, शिव–चालीसा, गीता के श्लोक, विभिन्न देवी–देवताओं के चित्र तथा धार्मिक प्रसंगों सम्बन्धी चित्रादि अंकित हैं, जो कि भक्ति भावना को उद्दीप्त करने वाले हैं।

लगभग पन्द्रह सौ से दो हजार श्रद्धालुओं की क्षमता वाला मन्दिर का विशाल कक्ष, जिसे 'सत्संग–भवन'

भी कह सकते हैं, में धार्मिक प्रवचन आयोजन प्रायः होते ही रहते हैं। सत्संग–भवन के फर्श पर लाल मखमली कालीन बिछा है। दायीं ओर व्यास–पीठ बनी हुई है, जिस पर धर्माधिकारी, सन्त–महात्मा आदि बैठकर प्रवचन करते हैं। साधु–सन्त, अतिथि–अभ्यागत प्रायः आते ही रहते हैं, उनके ठहरने के लिए मन्दिर की तीसरी मंजिल पर कमरे बने हुए हैं। मन्दिर का अपना एक भण्डार है, जिससे अतिथियों का भोजन तो चलता ही है, प्रत्येक मंगल एवं संक्रांति के दिन निर्धनों को मन्दिर की ओर से भोजन कराया जाता है। मई के महीने में सात दिनों तक विष्णु–महायज्ञ का आयोजन होता है, जिसमें हवन एवं प्रवचन में सम्मिलित होने के लिए दूर–दूर से साधु–सन्त आते हैं। श्री कृष्ण जन्माष्टमी एवं महाशिवरात्रि के उत्सव भी शानदार तरीके से मनाये जाते हैं। मन्दिर की साफ–सफाई, सेवा, उपासना आदि के लिए सेवादार एवं दो पुजारी नियुक्त हैं। मन्दिर के संचालन के लिए एक पाँच सदस्यीय न्यास बना हुआ है, जो अपनी देखरेख में मन्दिर के समुचित रख-रखाव एवं धार्मिक कार्यक्रमों के आयोजन आदि की व्यवस्था सँभालता है।

अपनी गतिविधियों के लिए मन्दिर को आर्थिक दृष्टि से पराश्रित न रहना पड़े, वे निर्बाध चलती रहें, इसके लिए भी पर्याप्त व्यवस्था की गयी है। मन्दिर से संलग्न छह दुकानों का निर्माण सेठजी ने अपने जीवन–काल में ही कराया था, जिनसे प्राप्त किराया मन्दिर की आय का प्रमुख साधन है। मन्दिर के सामने एक धर्मशाला बनी हुई है, जिसमें आयोजित होने वाले विवाहादि समारोहों से प्राप्त आय भी मन्दिर के खाते में जाती है। इसके अतिरिक्त मन्दिर में दान–पात्र रखे हुए हैं, जिनमें श्रद्धालुओं द्वारा डाला गया द्रव्य भी मन्दिर के काम आता है। इस व्यवस्था के कारण मन्दिर की नियमित गतिविधियों के लिए अर्थाभाव आड़े नहीं आता और समस्त कार्यक्रमों का सहज संचालन होता है।

चुन्ना मियाँ उर्फ सेठ फजल–उर्–रहमान द्वारा बनवाये गये श्री लक्ष्मीनारायण के इस मन्दिर के निर्माण में उनके गुरु–मुनि श्री हर मिलापी जी महाराज की प्रमुख भूमिका रही है। सेठजी मुनि जी से प्रभावित थे और उन्हीं के त्यागमय जीवन एवं विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने उक्त महान् कार्य को सम्पन्न कराया। यद्यपि सेठजी से अनेक हिन्दू–सिख देवस्थान एवं मुस्लिम संस्थान तथा शिक्षण संस्थान लाभान्वित हुए हैं, उन्होंने आर्य अनाथालय, इस्लामिया इण्टर कालेज मिशन अस्पताल, धोपेश्वरनाथ शिवालय, बरेली कालेज, कोहाड़ापीर का गुरुद्वारा, सरस्वती इण्टर कालेज आदि के लिए हजारों रुपया दान दिया; तथापि उनका सबसे बड़ा कार्य श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर का निर्माण था और इसी ने उन्हें सर्वाधिक ख्याति दिलायी। उक्त मन्दिर के निर्माण हेतु न केवल उन्होंने अपनी जमीन दी; अपितु मन्दिर में लगने वाली अधिकांश धनराशि जुटाने में भी सहायता की। मन्दिर निर्माण के प्रति उनके

श्रीकृष्ण की जन्मकुण्डली

कर्मयोगी श्रीकृष्ण का जन्म ५२२६ वर्ष पूर्व भाद्रपद मास कृष्ण पक्ष की अष्टमी, रोहिणी नक्षत्र में अर्द्धरात्रि में हुआ था।

हरिवंश पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद मास कृष्णपक्ष की अष्टमी, अर्द्धरात्रि रोहिणी नक्षत्र (चन्द्रमा वृष का; सूर्य और बुध सिंह राशि में; शुक्र, शनि, केतु, तुला राशि में; गुरु मीन राशि में; राहु मेष राशि में तथा मंगल मकर राशि में) में हुआ था।

महाज्योति निर्बन्ध के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद मास कृष्ण पक्ष की अष्टमी अर्द्धरात्रि रोहिणी नक्षत्र में हुआ। चन्द्रमा वृष का, सूर्य सिंह का, कन्या का बुध, शुक्र, शनि, केतु, तुला में, मंगल मकर में, मीन में बृहस्पति, मेष में राहु था।

दोनों ही गणना में यह स्थिति लगभग एक सी है। केवल अन्तर है तो बुध का। आयु–गणना के लिए बुध बहुत अधिक प्रभावी नहीं होता। इन दोनों ग्रन्थों के अनुसार भगवान् कृष्ण का जन्म आज से ५२२६ वर्ष पूर्व हुआ था।

आस्ट्रलाजिकल मैगजीन के संपादक डॉ. बी. बी. रमन के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म ईसा से पूर्व १५ जुलाई ३२२८ वर्ष में हुआ था। यदि ३२२८ में १९९८ जोड़ दिए जाएं तो भी ५२२६ वर्ष होते हैं। इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म आज से ५२२६ वर्ष पूर्व हुआ था।

— के.ए. दुबे 'पद्मेश'

मन में इतना उत्साह था कि उन्होंने स्वयं अपनी देख-रेख में रुचिपूर्वक मन्दिर निर्माण कराया, कारसेवा की और लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति लाने के लिये जयपुर गये। इस मन्दिर से जुड़ा एक रोचक पहलू और उल्लेखनीय वैशिष्ट्य यह भी है कि इसके शिल्प-निर्माण में मुख्य भूमिका दो मुस्लिम-शिल्पियों की रही है। प्रारम्भिक चरण में पत्थर तराशने का कार्य जोधपुर के एक शिल्पी हाजी मकराना ने किया तथा मन्दिर के शेष निर्माण में अपना सुयोग्य निर्देशन एवं योगदान अहमद रजा उर्फ लल्लू मिस्त्री ने किया।

सन् १८८९ को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन जब बरेली के जकाती मुहल्ले में स्थित किफायत उल्लाह एवं सकीना बी के अभावग्रस्त मकान को अपने प्रादुर्भाव से फजलू अर्थात् फजल-उर्-रहमान ने खुशियों से भर दिया, तो यह खुशी सिर्फ उस परिवार तथा आस-पास के घरों तक सिमट कर रह गयी; लेकिन जब २३ दिसम्बर सन् १९६८ को सेठ फजल-उर-रहमान उर्फ चुन्ना मियाँ के नाम से प्रसिद्ध हो चुके इस फरिश्ते स्वरूप इन्सान ने इस संसार से विदा ली, तो पूरी बरेली में शोर हो गया और सभी की आँखें गमगीन हो गयीं। इस दौरान बचपन में ही माता-पिता की छाया से वंचित हो गये इस व्यक्ति ने किस प्रकार अपनी संघर्षशीलता, लगन, कर्मठता एवं व्यावसायिक-मेधा के बल पर अपने को इतना ऊँचा उठाकर बरेली के धनी-मानी सेठों के समकक्ष ला खड़ा किया और सेठ की पदवी पायी, वह अपने आप में एक अद्भुत गाथा है; किन्तु चुन्ना मियाँ को इतनी प्रसिद्धि और सम्मान इसलिए नहीं मिला कि अब वह एक बहुत बड़े सेठ हो गये थे। उनको यदि लोगों ने पसन्द किया और अपनी सिर-आँखों पर बिठाया, तो इसका कारण यही था कि बड़े हो जाने पर भी वह छोटों से दूर नहीं हो गये। अकूत दौलत के मिथ्याभिमान में डूबे रहने के स्थान पर उन्होंने दूसरों के दुःख-दर्द को समझने को वरीयता दी और यथासम्भव उनकी सहायता करते रहे। सेठजी अपने प्रारम्भिक मुसीबत और संघर्षभरे दुर्दिनों को कभी भूले नहीं और सादगी भरा जीवन जीते रहे। स्वयं पर बहुत कम व्यय करने वाले सेठ चुन्ना मियाँ सामाजिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक कार्यों हेतु बड़ी उदारता से अपना हाथ खोलते थे। बरेली एवं उसके आस-पास के अनेक व्यक्ति, स्थान एवं संस्थाएँ इसके गवाह हैं, फिर चाहे वह धन किसी गरीब की लड़की के विवाह हेतु दिया गया हो, किसी शिक्षण संस्था के उन्नयन हेतु दान-स्वरूप दिया गया हो, छात्रों की शिक्षा के लिए सहायता के तौर पर दिया गया हो अथवा फिर धार्मिक स्थलों (मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर आदि कोई भी) के लिए श्रद्धासहित अर्पित किया गया हो। अपने इसी स्वभाव एवं व्यवहार के कारण वे जन-जन के अतिप्रिय एवं श्रद्धास्पद बन गये थे।

वस्तुतः बरेली का श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर सेठ फजल-उर्-रहमान उर्फ चुन्ना मियाँ की उदार धर्म-भावना का साकार वैभव है, जो कि कोटि-कोटि भारतवासियों को धर्म के सत्स्वरूप को समझने एवं औदार्य की प्रेरणा देता है। सेठजी जब तक जीवित रहे, पूर्ण मनोयोग के साथ मन्दिर की गतिविधियों से संलग्न रहे; उन्हीं के पदानुगामी उनके पुत्र सेठ अतीकुर्रहमान यद्यपि मन्दिर के ट्रस्ट में सम्मिलित नहीं हैं, फिर भी मन्दिर के कार्यों में पूरी रुचि लेते हैं। यह उदारमना परिवार बरेली का गौरव है और सम्पूर्ण भारतवर्ष को चुन्ना मियाँ द्वारा किए गये इस महान् कृत्य पर गर्व है।

— (द्वारा) डॉ. भगवानशरण भारद्वाज
चित्रकूट-४३, सुमति मार्ग, सिन्धु नगर, बरेली

गंगोत्री से गंगा-सागर तक दूषित है गंगा

— शिव ओम अम्बर

आजादी की अर्द्धशती का बेशक अभिनन्दन हो,
पर उत्सव के साथ-साथ निष्पक्ष आत्मचिन्तन हो;
आओ दर्पण को सम्मुख रख अपनी शक्ति निहारें,
आगत-विगत-अनागत के प्रश्नों पर जरा विचारें।
जिन पर है निर्भर सब की रामकथा,
उन पृष्ठों पर काजल-सा फैला है;
अंकित होनी थी जिस पर गायत्री,
प्रज्ञा का वह पीताम्बर मैला है।
आँसू-आहें-कुण्ठा-नैराश्य-घुटन,
यह देश किसी विधवा का क्रन्दन है;
हैं वेदमंत्र व्याधों की मुट्ठी में,
व्यालों के बन्धन में चन्दन-वन है।
जो लोग दहकते अंगारों-से थे,
बेगैरत ठंडी राख हो रहे हैं;
आदर्शों के सतिये से मढ़े हुए,
घट में सौ-सौ सूराख हो रहे हैं।
जातिवाद की अंधी खाई में हम उतर गये हैं,
जीवन-मूल्यों की पुस्तक के पन्ने बिखर गये हैं।
गंगोत्री से गंगासागर तक दूषित है गंगा,
सहम गया है अर्द्धशती को जीता हुआ तिरंगा।।

— ४/१०, नुनहाई, फर्रुखाबाद — २०९६२५

कब थमेगा कश्मीर में हिन्दुओं का संहार

– जोगेश्वरी सधीर

हाल में १६ जून को डोडा जिले में चपनारी ग्राम के बारात में शामिल पूरे पच्चीस पुरुषों की जघन्य हत्या कराने में पाकिस्तान का खुला हाथ रहा है। तत्पश्चात् पाक समर्थक आतंकियों ने जम्मू से आ रही ट्रेन में विस्फोट कर वैष्णव देवी के यात्रियों को घायल कर दिया। यह घटनायें बार–बार हमारे राष्ट्र की पाक से लगी सीमा पर दोहराई जा रही हैं। चुन–चुन कर कश्मीर में बसे हिन्दू (कश्मीरी पंडितों व सिखों) को मारा जा रहा है। यही नहीं, पूरे परिवार में तो कई जगह एक भी पुरुष नहीं बचा है। बेकसूर बच्चों व स्त्रियों को बेसहारा किया जा रहा है और निहत्थे पुरुषों को पाक समर्थित आतंकी दरिन्दे बार–बार अत्याधुनिक शस्त्रास्त्रों से दनादन मार रहे हैं। यह समस्त हत्याकांड किसके शह व इशारे पर हो रहे हैं? इन हत्याओं पर विपक्षियों ने चुप्पी क्यों साध ली है? क्या राष्ट्र के नागरिकों की प्राण की कीमत सभी भूल गये हैं?

जब भी पाक इस तरह के सामूहिक हत्याकाण्ड करवाता है, तब पाक प्रधानमंत्री, सचिव या विदेश मंत्री का यह बयान आ जाता है कि पाक भारत से वार्त्ता के लिए तैयार है। वह कौन–सी वार्त्ता की इच्छा जताता है? जिस राष्ट्र के बेकसूर नागरिकों की हत्यायें हो रही हों, वहाँ विपक्ष को सत्ता की राजनीति में सीमा पर रह रहे नागरिकों व सैनिकों की जान की कीमत का महत्त्व समझ में नहीं आ रहा है। वे कश्मीर की घाटी में मारे जा रहे कश्मीरी पंडितों के नरसंहार पर क्यों चुप हैं? क्या विपक्षी दलों की नज़र में कश्मीरी पंडितों की जान की कोई अहमियत नहीं है? क्या सीमा पर असहाय होकर आतंक की बलि चढ़ रहे नागरिकों के परिवारों के लिए इस 'धर्म–निरपेक्ष' विपक्ष के पास कोई सहानुभूति नहीं है, तो क्यों नहीं है?

सीमा पर होने वाली गोलीबारी, विस्फोट व हत्यायें

वर्षों से देश की सीमा पर पाकिस्तान अपनी सेनाओं द्वारा गोलीबारी व आतंकवादियों व घुसपैठियों की मदद से नृशंस हत्यायें सामूहिक रूप से करवा रहा है। जब भी पाक इस तरह के सामूहिक हत्याकाण्ड करवाता है, तब पाक प्रधानमंत्री, सचिव या विदेश मंत्री का यह बयान आ जाता है कि पाक भारत से वार्त्ता के लिए तैयार है। वह कौन–सी वार्त्ता की इच्छा जताता है? जिस राष्ट्र के बेकसूर नागरिकों की हत्यायें हो रही हों, वहाँ विपक्ष को सत्ता की राजनीति में सीमा पर रह रहे नागरिकों व सैनिकों की जान की कीमत का महत्त्व समझ में नहीं आ रहा है। वे कश्मीर की घाटी में मारे जा रहे कश्मीरी पंडितों के नरसंहार पर क्यों चुप हैं? क्या विपक्षी दलों की नज़र में कश्मीरी पंडितों की जान की कोई अहमियत नहीं है? क्या सीमा पर असहाय होकर आतंक की बलि चढ़ रहे नागरिकों के परिवारों के लिए इस 'धर्म–निरपेक्ष' विपक्ष के पास कोई सहानुभूति नहीं है, तो क्यों नहीं है?

राष्ट्रप्रेमी फासिस्ट कैसे?

एक विपक्षी पार्टी के अध्यक्ष ने राष्ट्रवादी दल को 'फासिस्ट ताकत' कहा। क्या वह अपने राष्ट्र की अस्मिता पर प्रहार करने वालों के विरुद्ध उठ खड़े होने वाले स्वाभिमानी दलों को 'फासिस्ट' मानता है? आज जहाँ हमारे देश के विरुद्ध पाक ने अघोषित युद्ध छेड़ दिया है, वहीं चीन ने भी हमारे देश की सीमाओं पर मिसाइलें तान रखी हैं और अमेरिका लगातार हमें अपने आर्थिक दबावों से झुकाना चाहता है, हम किस बुद्धि–विवेक से अपने राष्ट्र की सुरक्षा से और कब तक मुख मोड़े रहेंगे? शुतुरमुर्ग की भाँति यदि हमने पाक व चीन सीमा पर हो रही सैनिका कार्यवाहियों से मुँह मोड़

भी लिया, तो क्या हमारी ढुलमुल नीति से चीन का प्रसारवाद रुक जायेगा या पाक आतंकवादियों के द्वारा जम्मू में हिन्दुओं की हत्यायें करने से बाज आयेगा? फिर यह भी तो वर्षों से सत्तारूढ़ दलों ने करके देख लिया। यदि हम प्रारम्भ से ही दृढ़ता से चीन की प्रसारवादी नीतियों का विरोध करते, तो शायद हालात आज जितने नहीं बिगड़ते।

राष्ट्र की सीमा की व सीमा पर तैनात सैनिकों एवं वहाँ रह रहे नागरिकों की रक्षा कर रही सरकार को कुछ दल 'फासिस्ट' कहते हैं, तो वे मात्र अपनी ही प्रशासनिक अक्षमताओं पर पर्दा डालने के लिए ऐसा कह रहे हैं। ऐसे ही नेताओं के राज्य में कानून व व्यवस्था की हालत चरमराती रही है और वे राष्ट्र की रक्षा कर रही सरकार पर आरोप मढ़ रहे हैं। काश! ऐसे नेता पहले अपने प्रदेश में हो रही हत्याओं व अपहरणों के सिलसिलों पर नियंत्रण करने की बात करते।

अनियन्त्रित प्रतिक्रियायें

विपक्ष की अनियन्त्रित और ऊल-जलूल प्रति-क्रियाओं ने जनमानस का तिरस्कार ही किया है। परमाणु-परीक्षण पर एक वरिष्ठ सांसद् ने तो यहाँ तक कहा कि प्रधानमंत्री मात्र भाजपा वाली ज़नता को सम्बोधित कर रहे थे। ऐसा कहना कहाँ तक उचित है? भाजपा समर्थित लोग भी तो इसी राष्ट्र के नागरिक हैं। फिर प्रधानमंत्री तो सारे राष्ट्र की सुरक्षा व मनोबल के लिए प्रयासरत दिखे। कश्मीर में होने वाले हत्याकाण्डों तथा चीन की सीमा पर की जा रही सैन्य-कार्यवाहियों का जवाब तो देना ही था। वरना सीमा पर तैनात सैनिकों के मनोबल को धक्का लगता। 'गोरी' मिसाइल के परीक्षण से पाक ने जैसी उकसाने वाली बयानबाजी की थी, उसके प्रत्युत्तर में हमें परमाणु-परीक्षणों से गुजरना ही था। कश्मीर में बार-बार नागरिकों का सामूहिक संहार पाक आतंकियों की लगातार चल रही घृणित व भड़काऊ कार्यवाही है। हमें राष्ट्र की सीमाओं पर हो रही आक्रामक कार्यवाही व आतंकवादी हमलों से सैनिकों तथा नागरिकों के मनोबल को टूटने से बचाना होगा ही।

अमेरिका की चालों का पर्दाफाश

हाल में भारत द्वारा किये गये परमाणु-परीक्षणों से अमेरिका ने सी.टी.बी.टी. रूपी जो दो रंगी चालें चली हैं तथा परमाणु-बमों के जखीरे रखने वाले चीन में हो रहे मानवाधिकारों से मुख मोड़ कर हर तरह से पाक व चीन के प्रति अपनी जिस सहयोग पूर्ण विदेश नीति को स्वीकृति दी है उससे साफ जाहिर होता है कि अमेरिका भारत को हर हाल में नीचा दिखाना चाहता है। वह भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध थोपता है, जबकि भारत में कश्मीर में हो रहे नरसंहारों पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं है। इससे यही स्पष्ट होता है कि अमेरिका को कश्मीर में हो रहे सामूहिक नरसंहारों में मानवाधिकार हनन नहीं दिख रहा है, जो कि पाक समर्थित आतंकियों द्वारा किया जा रहा है। यह अमेरिका की दोगली नीति ही कही जायेगी।

भारत अपनी रक्षा के लिये कटिबद्ध

भले ही हमारे कुछ राजनीतिक दलों को राष्ट्र की सुरक्षा पर मँडराते खतरों से कोई लेना-देना न हो क्योंकि इससे उन्हें राजनीतिक लाभ नहीं मिलेगा। इसलिये वे कश्मीरी पंडितों की हत्याओं को नजरअंदाज करते हैं। कश्मीर में पाक द्वारा चलाये जा रहे अघोषित युद्ध से भले ही कुछ बड़े राजनीतिज्ञ आँखें मूँदे बैठे हों और बार-बार अयोध्या-मंदिर-विवाद को उछालकर मजहब विशेष को खुश करने में लगे हों; पर यह एक कठोर तथा नग्न सत्य है कि कश्मीर में वर्षों से पाक समर्थित आतंकियों द्वारा हिन्दुओं की हत्यायें हो रही हैं और बेकसूर नागरिक मारे जा रहे हैं। पाक की कोशिश रही है कि वह कश्मीर के कुछ हिस्सों को पहले हिन्दू-विहीन कर दे। और इसी नीति के तहत वह लगातार बम विस्फोट तथा गोलीबारी करता रहा है, जिसके फलस्वरूप जम्मू व डोडा से असंख्य हिन्दू परिवार आज दिल्ली एवं विभिन्न हिस्सों में शरणार्थियों का अभावग्रस्त जीवन जीने को विवश हैं। किन्तु पाक के भाड़े के घुसपैठी हत्यारों को हमारे गृहमंत्री के इस बयान से सबक लेना ही होगा कि हम कश्मीर में आतंकी कार्यवाहियों को बर्दाश्त नहीं करेंगे। और न ही बेकसूर निहत्थे नागरिकों का रक्त बहने देंगे। श्री आडवाणी ने कहा है कि जो सरकार अपने ही नागरिकों की हिफाजत नहीं करती उसे शासन का कोई अधिकार नहीं है। कश्मीर हमारा है। हम हर हाल में उसकी रक्षा तो करेंगे ही; पर उससे भी पहले हमें घाटी में मारे जा रहे बेगुनाह नागरिकों की सामूहिक हत्याओं को रोकना है। यही अटल सरकार की अग्नि-परीक्षा होगी।

□

— प्लाट नं. ९५, कृष्णा कालोनी
विदिशा — ४६४००१ (म.प्र.)

'वन्देमातरम्'– जिसके गायन के समय अंग्रेज गवर्नर भी सम्मान में खड़ा हो गया था

• उदय खत्री

भारत के स्वाधीनता–संग्राम के इतिहास में सर्वाधिक प्रेरणादायक मंत्र 'वन्देमातरम्' का महत्त्व अद्वितीय है। श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इस गीत की रचना कब और किस प्रेरणा से की, इस सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।

एक तो यह कि ७ नवम्बर, १८७५, दुर्गा–पूजा के दिनों में अष्टमी की रात बंकिम चन्द्र को स्वप्न में भारत माता के विराट् दर्शन से 'वन्देमातरम्' गीत की पंक्तियाँ उनकी वाणी में उतर आईं। उन दिनों वे प्रसिद्ध बंगला मासिक पत्रिका 'बंग दर्शन' के सम्पादक थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि एक बार दुर्गा–पूजा के अवसर पर बंकिम बाबू के घर एक कीर्त्तन–मंडली पधारी। उन कीर्त्तनकारों द्वारा प्रस्तुत 'एसो–एसो बन्धु एसो, आधो, आँचरे बोसो। नयन भोरिया तोमाय देखी...।' गीत से प्रेरित होकर बंकिम बाबू ने 'बंग दर्शन' पत्रिका में 'आमार दुर्गोत्सव' एवं 'एक टि गीत' शीर्षक से दो लेख लिखे। 'वन्देमातरम्' एवं 'आनन्द मठ' के जनक यही दोनों लेख हैं।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि मुगल शासन काल में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के पूर्वी भारत में पैर जम चुके थे, तब 'संन्यासी विद्रोह' के समय विद्रोहियों ने 'ओ३म् वन्देमातरम्' का नारा लगाया था। बंकिम बाबू ने उस काल एवं उस नारे की कथा १०८ वर्ष तक जीवित रहने वाले अपने चचेरे पितामह से सुनी थी। इसी के बाद 'वन्दे मातरम्' एवं 'आनन्द मठ' का जन्म हुआ। 'आनन्द मठ' की पृष्ठभूमि संन्यासी विद्रोह से काफी मिलती है।

एक अन्य मत के अनुसार बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री राजनारायण वसु ने सन् १८६१ में मिदनापुर में 'जातीय गौरव सम्पादिनी सभा' की स्थापना की और इस सभा ने सन् १८६६ में 'हिन्दू मेला' का आयोजन शुरू किया। उन दिनों बंगाल में राष्ट्रीय भावना जाग्रत् करने में 'हिन्दू मेला' का काफी योगदान रहा। इसी मेले से प्रभावित होकर बंकिम बाबू ने 'वन्देमातरम्' की रचना की।

इनके अतिरिक्त एक अन्य बंगला विद्वान् श्री हेमेन्द्र घोष के मतानुसार 'वन्देमातरम्' गीत का बीजारोपण बंगाल की साहित्यिक तीर्थभूमि चुँचड़ा में हुआ था। चुँचड़ा के मछुआरे बड़ा मधुर गीत गाते थे। बंकिम बाबू गंगा तट पर घण्टों बैठे उनके गीतों को सुन भाव विभोर हो उठते। बंकिम बाबू ने एक जगह स्वयं लिखा है, 'मछुआरों के मधुर गीत सुनकर प्राण तृप्त हो जाते। मन को सुर मिलता। बंगला भाषा में बंगालियों के मन की आशा सुनकर यह सौन्दर्यमय जगत् अपना लगने लगता।'

किन्तु लगभग सभी विद्वानों की एक राय से यह तो प्रमाणित है कि इस गीत की रचना सन् १८७५ में ही हुई।

शुरू–शुरू में जब उनके कुछ साहित्यिक मित्रों ने इस गीत पर यह कह कर टिप्पणी की कि 'इतना अच्छा गीत आधा बंगला आधा संस्कृत में लिख कर बंकिम बाबू ने सब चौपट कर दिया', तो उन लोगों की बातों को बड़े धैर्यपूर्वक सुनने के बाद बंकिम बाबू ने जवाब दिया, "भाई! मुझे अच्छा लगा, इसलिए लिखा। तुम लोगों की इच्छा हो तो पढ़ो, नहीं तो मत पढ़ो।" वहीं कुछ मित्रों ने इसे प्रकाशित करने के लिए जोर दिया; परन्तु बंकिम बाबू उस समय इसे यह कहते हुए प्रकाशित कराने को राजी नहीं हुए कि "**इस समय इस गीत का मर्म कोई समझ नहीं सकेगा। लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा जब मात्र बंगाल ही नहीं, सारा भारत इसके महत्त्व को समझेगा और देशभक्त इस गीत के पीछे पागल हो उठेंगे। शायद यह सब देखने के लिए मैं जीवित न रहूँ; परन्तु तुम लोग रहोगे, देख लेना।" और आगे चलकर उनकी यह बात सच साबित हुई।**

१८७६ में बंकिम बाबू ने 'बंग दर्शन' का सम्पादन कार्य छोड़ दिया। इसके बाद जब उन्होंने 'आनन्द मठ' उपन्यास लिखना आरम्भ किया, तो 'वन्दे मातरम्' गीत को भी उसमें शामिल किया। 'आनन्द मठ' सन् १८८० में 'बंग दर्शन' में धारावाहिक रूप में छपना आरम्भ हुआ था। १५ दिसम्बर, १८८२ को यह उपन्यास प्रथम बार पुस्तक

रूप में प्रकाशित हुआ। १६१ पृष्ठों के इस प्रथम संस्करण का मूल्य एक आना था, जिसे बंकिम बाबू ने अपने घनिष्ठ मित्र प्रसिद्ध बंगला नाट्यकार श्री दीनबन्धु मित्र को समर्पित किया था। आम जनता में 'वन्दे मातरम्' गीत का प्रचार पहले ही हो जाने के कारण यह पुस्तक छपते ही हाथों–हाथ बिक गयी।

'आनन्द मठ' में शामिल कर देने से लोगों को इस गीत का महत्त्व अधिक समझ में आया। 'आनन्द मठ' में जब भवानन्द गाता है–

"वन्दे मातरम्!
सुजलाम्, सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्।"

इस पर महेन्द्र चौंक कर पूछता है, "माता कौन है?"

भवानन्द आगे गाता है–

"शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्।"

महेन्द्र फिर जिज्ञासा प्रकट करता है, "यह तो देश है, माँ नहीं है?"

तब भवानन्द कहता है– "हम लोग दूसरी माँ को नहीं मानते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। जन्मभूमि ही हमारी माता है। हमारे न कोई माँ, न पिता, न भाई, न घर; कुछ भी नहीं है। हमारी यदि कोई है, तो यह शस्य श्यामला जन्मभूमि ही सब कुछ है।"

२६ जून, १८३८ को बंगाल के २४ परगना स्थित काँटालपाढ़ा ग्राम में पिता श्री जाधवचन्द्र चट्टोपाध्याय के घर जन्मे बंकिम बाबू के जीवन काल में ही 'आनन्द मठ' के पाँच संस्करण प्रकाशित होने के साथ ही इसके अंग्रेजी और जर्मन अनुवाद भी हो चुके थे। बंकिम बाबू ने तभी इस गीत की लोकप्रियता का अनुमान लगा लिया था, जब 'वन्देमातरम्' का नारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में चर्चा का विषय बन गया; नाटकों में प्रयोग होने लगा और समकालीन कवियों ने भी अपनी रचनाओं में इस नारे का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।

प्रकाशित न होने के बावजूद 'वन्दे मातरम्' गीत आश्चर्यजनक रूप से १८७७ ई. आते–आते सम्पूर्ण बंगाल में विशेषकर बंगला साहित्यकारों के बीच काफी लोकप्रिय हो चुका था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस गीत से प्रभावित होकर १८७७ में ही स्वरचित 'स्वदेश गीत' में इसका प्रयोग किया। प्रस्तुत हैं उसकी दो पंक्तियाँ–

'एक सूत्रे बांधियाछी सहस्रटि मन,
एक कार्ये संपियाछी सहस्र जीवन
वन्दे मातरम्।'

आठ पंक्तियों की इस पूरी कविता की प्रत्येक दो पंक्तियों के अन्त में वन्दे मातरम् का प्रयोग किया गया है।

बंकिम बाबू को तो अपना यह गीत इतना प्रिय था

मंदिर की भूमि पर मस्जिद बना दी विरोध करने पर मन्दिर सील कर दिया

मलेशिया (जो कभी मलयद्वीप के नाम से जाना जाता था) में हिन्दुओं की प्राचीन धर्मस्थलियों पर वहाँ के मुस्लिम कट्टरपंथियों ने आक्रमण करना शुरू कर दिया है।

पिछले हफ्ते उत्तर मलेशिया में मुसलमानों ने जबरन मंदिर की भूमि पर मस्जिद का निर्माण किया और जब हिन्दुओं ने इसका विरोध किया, तब वहाँ के मुस्लिम प्रशासक ने उल्टा मन्दिर को ही सील कर दिया और वहाँ हिन्दुओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। मलेशिया में इस तरह की यह पहली घटना नहीं है। इससे कुछ माह पूर्व वहाँ के मुल्ला मौलवियों ने रामायण के मंचन पर रोक लगाने की माँग की थी और कट्टरपंथियों का जहाँ भी राज्य है, वहाँ रामलीला का मंचन नहीं हो सकता। वैसे मलेशिया में मुसलमानों की आबादी ५० से ५५ प्रतिशत के बीच है और हिन्दू तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों की जनसंख्या ४५ से ५० प्रतिशत है। फिर भी मलेशिया पूरी तरह कट्टरपंथियों के शासन में रहने को मजबूर है।

मानवाधिकार का ढिंढोरा पीटने वाले तथाकथित मानवाधिकारी इस स्थिति पर पूरी तरह चुप्पी साधे हुए हैं।

कि उन्होंने इसकी पहली स्वरलिपि उन दिनों भाटपाड़ा, बंगाल के प्रसिद्ध संगीताचार्य श्री यदुनाथ भट्टाचार्य (यदु भट्ट) से तैयार करवायी थी और वे स्वयं अक्सर अपने घर में अपने कविवर मित्रों सर्वश्री नवीन चन्द्र सेन, क्षेत्रनाथ मुखर्जी एवं हेम चन्द्र बनर्जी को साथ लेकर हारमोनियम पर इसे 'मल्लार सुर' में गाया करते थे।

सन् १८८६ में दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुए द्वितीय कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में कविवर हेमचन्द्र बनर्जी ने स्वरचित कविता 'राखी बन्धन' का पाठ किया, जिसमें प्रथम बार वन्दे मातरम् के कुछ अंशों को भी शामिल किया गया था, जिसके प्रमुख अंश निम्न हैं —

'.... पूरब, बांगला, मगध, बिहार,
डेरा इस्माइल, हिमाद्रिरधार
कराची, मद्रास, शहर बम्बई
सुरटि, गुजराती, मराठी भाई, चौदि के मायेर घेरिल।
प्रेम आलिंगन करे राखी कर
खुले देछे हृदि, हृदि परस्पर
एक प्राण सबे एक कण्ठ स्वर मुखे जय ध्वनि करिल।
प्रणय विह्वले घरे गले गले
गाहिल सकले मधुर काकले गाहिल वन्दे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्।"

८ अप्रैल, १८९४ को बंकिम बाबू का निधन हुआ। इसके दो वर्ष बाद २८ दिसम्बर १८९६ को कलकत्ता के बीडन उद्यान (आजकल रवीन्द्र कानन) में बम्बई के प्रसिद्ध वकील मुहम्मद रहीमतुल्ला की अध्यक्षता में कांग्रेस का १२वाँ अधिवेशन आयोजित हुआ। इस अवसर पर वन्देमातरम् गीत दूसरी बार, मगर सम्पूर्ण रूप से विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने श्वेत वस्त्र धारण कर देस राग एक ताल स्वर में निबद्ध जब अपनी ओजस्वी वाणी में गाया, तो पूरे अधिवेशन में बिजली सी दौड़ गयी। उस समय श्री ज्योतिरिन्द्रनाथ ने आर्गन बजाकर उनका साथ दिया था।

(आगे चलकर १९०४–५ में २ मिनट ३३ सेकेण्ड का यही वह प्रथम गीत था, जिसे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के कण्ठ स्वरों में रिकार्ड किया गया था। इसकी प्रति आज भी शान्ति निकेतन में सुरक्षित है।)

मूल 'वन्दे मातरम्' गीत —

'वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ्र ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्।।
सप्त कोटि कण्ठ कल कल निनाद कराले,
द्विसप्त कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले,
के बोले माँ तुमि अबले।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीं मातरम्।
तुमि विद्या तुमि धर्म्म,
तुमि हृदि तुमि मर्म्म,
त्वम् हि प्राणः शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे–मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दश–प्रहरणधारिणी
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्
सुजलाम् सुफलां मातरम्।
वन्दे मातरम्।

ओ कलमधर्मा !

— कमलकिशोर 'भावुक'

अरे सुन ओ कलमधर्मा ! जरा यह बात लिख देना।
मचलती आग के अनुरोध पर बरसात लिख देना।

कलम के तुम सिपाही कवि ! तुम्हारा सत्य से नाता,
जहाँ– जैसे दिखें तुमको सही हालात लिख देना।

जहाँ पर शान्ति की शहनाइयों का मान होता था,
शहर में सभ्य लोगों के लुटी बारात लिख देना।

कभी रुकने न पाये खुशबुओं का सिलसिला साथी,
खुशी का अन्त लिखने से प्रथम शुरुआत लिख देना।

जहाँ पीयूष निष्कासित– गरल की उम्र लम्बी है,
वहाँ बेहद जरूरी है कोई सुकरात लिख देना।

करेगा युग तुम्हारा गर्व से अभिषेक–अभिनन्दन,
समय के भाग्य में कोई सुखद सौगात लिख देना।

— 'कान्ति–कुञ्ज', ११ बुद्ध विहार, आलम नगर
लखनऊ–२२६ ०१७

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम्
वन्दे मातरम्।'

आगे चलकर यह गीत कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में मंगल-गान के रूप में गाया जाने लगा।

१६०५ में बंग–भंग आन्दोलन के समय देखते ही देखते 'वन्देमातरम्' ने व्यापक रूप धारण कर लिया। यह सारे देश में इतना ऊँचा और पवित्र नारा बन गया कि भारत का सम्पूर्ण राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन ही वन्दे मातरम् पर आधारित हो गया। १६०५ में ही गांधी जी का वन्दे मातरम् पर पहला वक्तव्य आया। पं. मोतीलाल नेहरू ने जवाहरलाल नेहरू को पहली बार वन्दे मातरम् का उल्लेख करते हुए पत्र लिखा। उसी वर्ष शासन ने वन्देमातरम् पर रोक का आदेश दिया। अक्टूबर, १६०५ में ही बंगाल में 'वन्दे मातरम् सम्प्रदाय' की स्थापना हुई। पंजाब में लाला लाजपत राय के सम्पादन में 'वन्दे मातरम्' दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ, तो बंगाल में अंग्रेजी और बंगला में 'वन्दे मातरम्' पत्र प्रकाशित होने लगे। १६०६ में बंगाल में देशभक्त कवियों के गीतों का संग्रह 'वन्दे मातरम्' नाम से एक पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ, जिसमें कविवर श्री सतीशचन्द्र ने आह्वान किया—

'स्वदेशी संग्रामे चाई आत्मदान।
वन्देमातरम् गाओ रे भाई।।'

इसी प्रकार प्रत्येक कवि अपनी रचनाओं में वन्दे मातरम् का समावेश करने लगे।

उन दिनों सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। बड़ी–बड़ी मूँछों एवं भारी भरकम शरीर वाले श्री मुखर्जी अपनी बुलन्द आवाज के लिए सारे देश में जाने जाते थे। पंजाब विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण हेतु उन्हें आमंत्रित किया गया। वहाँ उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण से पूर्व यह कहते हुए वन्दे मातरम् गीत गाया कि 'मातृ वन्दना के बाद ही कोई कार्य करना चाहिए।' उनके गायन के समय शिक्षाविदों एवं छात्रों को खड़े होते देख वहाँ उपस्थित पंजाब के तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर, जो पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे, को भी इस गीत के सम्मान में खड़ा होना पड़ा।

वन्दे मातरम् की गूँज केवल भारत की पवित्र भूमि तक ही सीमित नहीं रही, देश के बाहर अमरीका, कनाडा, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, सिंगापुर, हांगकांग एवं जापान तक पहुँच गयी।

१८ अगस्त, १६०७ को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन' के अवसर पर भारत का प्रतिनिधित्व कर रही महान् क्रांतिकारी वीरांगना मैडम भीखाइजी कामा ने मंच पर उपस्थित होकर जब भारत के अपने प्रथम राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे को फहराया, तो सम्मेलन में उपस्थित सारे प्रतिनिधियों ने एक साथ खड़े होकर देर तक करतल–ध्वनि कर भारतीय झण्डे को सम्मान दिया।

सम्मेलन में बोलने से पूर्व मैडम कामा ने वन्दे मातरम् गीत भी गाया। यह पहला अवसर था, जब भारत का अपना स्वतंत्र झण्डा फहराया गया तथा 'वन्दे मातरम्' गीत अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर सम्मानित हुआ। उल्लेखनीय है कि इस झण्डे का डिजाइन तैयार किया था महान् क्रान्तिकारी वीर विनायक दामोदर सावरकर एवं हेमचन्द्र दास ने। झण्डा तीन रंगों का था। ऊपर की हरी पट्टी में एक सीध में आठ कमल–पुष्प बने थे, जो भारत के तत्कालीन आठों प्रान्तों के प्रतीक थे। बीच की केसरिया पट्टी पर 'वन्दे मातरम्' अंकित था तथा नीचे की लाल पट्टी पर एक सिरे पर सूर्य और दूसरे सिरे पर अर्द्ध–चन्द्र अंकित थे।

मैडम कामा ने सितम्बर, १६०६ में पेरिस में, 'गदर पार्टी' के संस्थापक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल के सम्पादकत्व में 'वन्दे मातरम्' पत्र का प्रकाशन आरम्भ

उन दिनों सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। बड़ी–बड़ी मूँछों एवं भारी भरकम शरीर वाले श्री मुखर्जी अपनी बुलन्द आवाज के लिए सारे देश में जाने जाते थे। पंजाब विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण हेतु उन्हें आमंत्रित किया गया। वहाँ उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण से पूर्व यह कहते हुए वन्दे मातरम् गीत गाया कि 'मातृ-वन्दना के बाद ही कोई कार्य करना चाहिए।' उनके गायन के समय शिक्षाविदों एवं छात्रों को खड़े होते देख वहाँ उपस्थित पंजाब के तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर, जो पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे, को भी इस गीत के सम्मान में खड़ा होना पड़ा।

किया। जब फ्रांस सरकार इस पत्र के प्रकाशन पर अत्यधिक रोड़े अटकाने लगी, तो उसे जेनेवा से प्रकाशित किया जाने लगा। जब वहाँ भी सख्ती होने लगी, तो वह हालैण्ड से प्रकाशित होने लगा।

इधर भारत में, बंगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिवीर श्री अरविन्द घोष पर 'वन्दे मातरम्' पत्र के सम्पादन के अभियोग में मुकदमा चला और उन्हें छह माह सश्रम कारावास की सजा मिली।

२६ अगस्त १६०७ को कलकत्ता की एक अदालत द्वारा श्री विपिन चन्द्र पाल को छह माह की सजा दिये जाने पर जब उन्हें अदालत के बाहर लाया गया, तो बाहर खड़ी हजारों जनता ने 'वन्दे मातरम्' के जोरदार नारों से आकाश गुँजा दिया। इस पर पुलिस ने जनता पर बुरी तरह लाठी-चार्ज आरम्भ कर दिया। यह दृश्य देख पन्द्रह वर्षीय बालक सुशील चन्द्र सेन से रहा नहीं गया। उसने लाठीचार्ज के जिम्मेदार एक अंग्रेज सार्जेन्ट की वहाँ अकेले ही अपने शक्तिशाली मुक्कों से बुरी तरह पिटाई कर दी। इस पर उस बालक को पन्द्रह बेंतों की सजा दी गयी।

इतनी अल्पायु में १५ बेंतों की मार साहस के साथ झेलने वाले वीर बालक सुशील सेन का २८ अगस्त, १६०७ को कलकत्ता में एक लम्बा जुलूस निकालने के बाद एक विराट् जनसभा में राष्ट्रनायक श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा भेजा गया सोने का तमगा पहनाकर अभिनन्दन किया गया। उस दिन सम्पूर्ण कलकत्ता नगरी कविवर श्री काली प्रसन्न की निम्न पंक्तियों से गूँजती रही–

'जय जाबे जीवन चले,
जगत माझे तोमार काजे वन्देमातरम् बोले।
बेंत मेरे कि माँ भोलाबि,
आमरा कि मायेर सेई छेले।।'

यहाँ तक कि भारत के स्वाधीनता संग्राम में इस सदी का पहला क्रान्तिकारी बम-विस्फोट करने वाले १८ वर्षीय क्रान्तिकारी खुदीराम बोस ने ११ अगस्त, १६०८ को प्रातः मुजफ्फरपुर जेल में 'वन्देमातरम्' का जोरदार उद्घोष करते हुए हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा चूमा। इसके बाद तो कितने ही देशभक्तों ने स्वाधीनता-संग्राम में वन्दे मातरम् का नारा लगाते हुए जेल में कड़ी सजाएँ भोगीं अथवा अपने प्राणों की आहुति दे दी।

सन् १६०८ में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को बेलगाम (मैसूर) से बर्मा की मांडले जेल हेतु ले जाते समय वहाँ 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष कर रही युवाओं की विशाल भीड़ पर बुरी तरह लाठीचार्ज किया गया तथा कइयों को गिरफ्तार कर लिया गया।

१६१४ में भारत में सैनिक विद्रोह हेतु बाहर से भारतीय क्रान्तिकारियों को लाने वाले प्रसिद्ध 'कामागाटामारू' जहाज के झण्डे पर भी 'वन्दे मातरम्' अंकित था।

१६२७ में सुप्रसिद्ध 'काकोरी काण्ड' के क्रान्तिकारी राम प्रसाद 'बिस्मिल,' अशफाक उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी एवं ठा. रोशन सिंह उत्तर प्रदेश की विभिन्न जेलों में 'वन्देमातरम्' के उद्घोष के साथ फाँसी चढ़े।

सन् १६३० से ३३ के बीच देशभर में वन्दे मातरम् पर अनेक राष्ट्रीय गीतों की रचना हुई और इसी दौरान 'आनन्द मठ' की जब्ती भी।

१६४१ में बम्बई से भी गुजराती भाषा में 'वन्देमातरम्' पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। देश भर में कितने ही लेखकों ने वन्देमातरम् पर आधारित उपन्यास लिखे।

लगभग सम्पूर्ण स्वाधीनता-संग्राम 'वन्दे मातरम्' से गुँजायमान रहा। जहाँ जुलूसों एवं सभाओं में वन्दे मातरम् का नारा लगाते समय सुभाष चन्द्र बोस जैसी विभूति भी अक्सर अपना दायाँ हाथ ऊपर कर लिया करती, वहीं धरना-प्रदर्शन, सरकार के अनुचित कार्यों का विरोध एवं लाठीचार्ज के समय भी वन्दे मातरम् का नारा लगाया जाता। स्वतंत्रता के दीवाने एक दूसरे से पत्र-व्यवहार में वन्दे मातरम् लिखते तथा जनता सरकारी कार्यालयों में वन्दे मातरम् का उल्लेख कर पत्र भेजती। जब राजनैतिक कैदी जेलों में बन्द होते, तो वे रह-रहकर वन्दे मातरम् गीत गाते और नारे लगाते। जब वे बन्दी जेल से अदालत ले जाए और वापस लाए जाते, तो सड़क के दोनों ओर खड़ी जनता 'वन्दे मातरम्' का नारा लगाकर उनका अभिनन्दन एवं उत्साहवर्द्धन करती। कांग्रेस के जुलूसों एवं अधिवेशन का आरम्भ वन्दे मातरम् गीत से होता तथा समापन 'वन्दे मातरम्' नारे से।

वर्षों तक कांग्रेस अधिवेशन में गाये जाने के बाद १६३७ में मुस्लिमों को पहली बार इस गीत पर आपत्ति हुई। फलस्वरूप १६३८ के हरिपुरा कांग्रेस में इस गीत के कुछ अंशों को स्वीकार कर सप्त कोटि (सात करोड़) के स्थान पर त्रिंश कोटि (तीस करोड़) एवं द्विसप्त कोटि (चौदह करोड़) के स्थान पर द्वित्रिंश शब्द परिवर्त्तित कर दिये गये ताकि यह सम्पूर्ण भारत के लिए हो।

वास्तव में बंकिम बाबू ने इस गीत में सात करोड़ कण्ठ और चौदह करोड़ हाथ बंगभूमि को ध्यान में रखकर ही लिखा था। उल्लेखनीय है कि बंकिम युग में बंग प्रान्त

में बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम एवं छोटा नागपुर सम्मिलित थे, जिनकी उस समय कुल आबादी लगभग सात करोड़ थी।

स्वतंत्रता के बाद 'त्रिंश कोटि' एवं 'द्वित्रिंश कोटि' के स्थान पर 'कोटि-कोटि' शब्द रख दिये गये।

अन्ततः १५ अगस्त, १६४७ को स्वतंत्रता की प्रथम प्रभात बेला, आकाशवाणी पर पं. ओंकारनाथ ठाकुर द्वारा प्रस्तुत 'वन्दे मातरम्' गायन से हुई। और २४ जनवरी, १६५० को वन्दे मातरम् संवैधानिक रूप से राष्ट्रगान 'जन गण मन' के साथ राष्ट्रगीत के पद पर सुशोभित हुआ।

महान् क्रान्तिकारी श्री अरविन्द घोष ने कितना सही कहा था कि– "बहुत से लोग इस महान् और प्राचीन राष्ट्र के अतीत वैभव की याद करके रुदन करते हैं। वे कुछ इस प्रकार चर्चा करते हैं मानो चिंतन और सभ्यता के प्रेरक प्राचीन ऋषि हमारे गौरव-काल के चमत्कार थे और हम पतित लोगों और हमारे विपन्न वर्त्तमान में उनका पुनरागमन सम्भव नहीं है। यह एक भूल है, बारम्बार भूल है। **हमारा देश शाश्वत है, लोग शाश्वत हैं, धर्म शाश्वत है। इनकी शक्ति, महानता, पवित्रता कभी-कभी धूमिल हो सकती है; किन्तु कभी भी एक क्षण के लिए भी शेष नहीं होती। नायक, ऋषि, सन्त हमारे भारत की मिट्टी के सहज सुफल हैं। कोई भी ऐसा युग नहीं है, जिसमें ये पैदा नहीं हुए। हम अन्ततोगत्वा समझे हैं कि हमें उत्तर काल के ऋषियों में उस व्यक्ति का नाम सम्मिलित करना चाहिए, जिसने वह संजीवन मंत्र दिया, जो नये भारत का सृजन कर रहा है–'वन्दे मातरम्' का मंत्र।** ..."

अन्त में गांधी जी के शब्दों में – "..... यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ है कि हमारा राष्ट्रगान बन गया है। अन्य राष्ट्रगीतों की तुलना में यह श्रेष्ठ भावनाओं वाला और मधुर है। जहाँ अन्य राष्ट्रगीतों में दूसरों के लिए निन्दाजनक भाव मिलते हैं, वन्दे मातरम् इस प्रकार के दोषों से सर्वथा मुक्त है। इसका एकमात्र लक्ष्य है हमारे अन्दर देशभक्ति की भावना जाग्रत् करना। यह भारत को माँ मानता है और उसकी प्रशंसा के गीत गाता है। कवि ने भारत माता में वे सभी सद्गुण देखे हैं, जो कोई भी अपनी माँ में देखता है। जैसे हम अपनी माँ की पूजा करते हैं, उसी प्रकार यह गीत भी भारत की भावभीनी वन्दना है।....."

उन्हीं ने और उनके नेहरूजी जैसे चेलों ने राष्ट्रीयता के महामंत्र-रूप इस 'वन्दे मातरम्' के गायन के विरोधियों का तुष्टीकरण करने हेतु जैसा तिरस्कार किया, वह स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात् के इतिहास का कालिमामय-पृष्ठ है। □

– २, मेंहदी बिल्डिंग, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ–२२६०१८

अमृत-गान पोखरण

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

धरती से अम्बर तक, नव स्वर सा, नव वर सा,
मृत मरुथल में, अमृत-गान पोखरण।।

वीर-प्रसू धरती जहाँ स्रोत बहे खून के,
असियों से उठी तान, शौर्य औ' जनून के,
शान्ति हेतु, ऐक्य हेतु, विजय-केतु बन उठा-
अटल सदा भारत का, जय निशान पोखरण।
अमृत-गान पोखरण।।

भारत की रज गरजी, धमकियों का ध्वस्त किला,
गर्जन से हृदय हिला, विश्व उठा तिलमिला,
सबको विश्वास दिला, रक्षण का सिलसिला,
ज्वालामुख बन धधका, राम-बान पोखरण।
अमृत-गान पोखरण।।

युग-युग से रह-रह कर, सह कर अगणित प्रहार,
झेले हँस-हँस कर, कुण्ठित हुई न धार,
गरल-पान करता रहा, सहता रहा देश जो-
उस चन्दन-वन का ही, अग्नि-दान पोखरण।
अमृत-गान पोखरण।।

युद्धों का समाधान, एकता का आह्वान,
सहमे चरणों को मिला, नयी स्फूर्त्ति, नया प्रान,
सावधान विश्व सुने, सावधान पोखरण।
शक्ति तथा गौरव की नवल तान पोखरण।।
अमृत-गान पोखरण।।

– विट्ठलनगर, खण्डवा–४५०००१ (म.प्र.)

कश्मीर घाटी को इस्लामी प्रदेश बनाने का षड्यन्त्र जारी है

[कश्मीर घाटी के इस्लामीकरण का यह कार्य शेख मोहमम्द अब्दुल्ला द्वारा शुरू किया गया था और शेख के अधूरे रह गये कार्य को उनके सभी उत्तराधिकारी मुख्यमन्त्रियों ने सतत् जारी रखा। वर्त्तमान मुख्यमन्त्री अपने बाप के शेष कार्य को यथाशीघ्र पूरा कर डालने में कोई कसर नहीं रख रहे हैं। शेख अब्दुल्ला से लेकर अब तक लगभग एक हजार नगरों, कस्बों, गाँवों के पुराने नाम बाकायदा शासनादेश जारी करके नये इस्लामी नामों से बदले जा चुके हैं। सरकारी जमीन पर मुसलमानों को अवैध रूप से बसाकर जम्मू नगर को चारों ओर से पूरी तरह घेरा जा चुका है। लद्दाख को मुस्लिम बहुल बनाने का सरकारी–क्रम पूर्ववत् जारी है। –सं०]

बहुत ही सुविचारित षड्यन्त्र के अधीन कश्मीर घाटी को इस्लामी प्रदेश बनाने के पाक खुफिया एजेन्सी 'आई०एस०आई०' के प्रयत्न सफल होने आरम्भ हो गये हैं। घाटी में अब हिन्दुओं की सम्पत्ति मुस्लिम कट्टरपन्थी टके–टके में खरीद रहे हैं।

ऐतिहासिक लाल चौक में अब हिन्दुओं की दुकानें इक्की–दुक्की ही रही गयी हैं। १९८९ में आतंकवाद की आँधी ने हिन्दुओं की दुकानों पर ताले लगवा डाले। १९९४ तक इन दुकानों पर ताले लटकते दिखाई देते रहते थे। फिर शनैः शनैः इन दुकानों से ताले हटने लगे; लेकिन दुकानों के मालिक बदल गये हैं। लाल चौक में पान की सबसे प्रसिद्ध दुकान चौरसिया पान वाले की थी। अब लाल चौक में चौरसिया के बदले प्रिंस ट्रेडर की दुकान है। अब वहाँ शायद ही किसी हिन्दू की दुकान हो। जो कुछ हैं भी, उनके मालिक लाल चौक में दुकान ही नहीं करना चाहते। यह हालत कर डाली है पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी आई०एस०आई० ने कश्मीर में दीर्घकालीन योजनाओं को अमली जामा पहनाकर। पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी ने कश्मीर घाटी को पूरी तरह मुस्लिम–क्षेत्र कर देने के लिए जो योजना बहुत पहले बनायी, उसको अमली जामा पहनाना आरम्भ हो चुका है।

कश्मीर घाटी के छह जिलों में आबादी की स्थिति

अनन्तनाग–हिन्दू–३.७६%; मुस्लिम–९६.६४%; सिख–०.५९%
पुलवामा–हिन्दू–२.५०%; मुस्लिम–९५.८८%; सिख–१.६२%
श्रीनगर–हिन्दू–८.३९%; मुस्लिम–९०.६५%; सिख–०.९०%
बड़गाम–हिन्दू–२.६%; मुस्लिम–९५.९४%; सिख–१.४०%
बारामूला–हिन्दू–२.०२%; मुस्लिम–९६.५०%; सिख–१.४६%
कुपवाड़ा–हिन्दू–२.०२%; मुस्लिम–९७.५३%; सिख–०.४४%

कश्मीर घाटी में २४.२६% हिन्दू और ६.५१% सिख हैं। दोनों को जोड़ दें तो हिन्दू आबादी कुल ३०.७७% थी। अब कितनी बची रह गयी होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

१९८९ में ७० प्रतिशत से अधिक हिन्दू पलायन कर गये। १९८९ से १९९८ तक रुक–रुक कर पलायन जारी रहा। अब तो कश्मीर घाटी की स्थिति यह हो चली है कि शहरों में नाममात्र को ही हिन्दू बचे हैं। श्रीनगर में हिन्दू– बहुल–क्षेत्र हरीसिंह गली, कर्णनगर में अब तो कहीं पर मन्दिर की घण्टियों की आवाज भी सुनाई नहीं देती। हाँ; श्रीनगर शहर में ही अनेक नयी मस्जिदों का निर्माण हुआ है और इन मस्जिदों में कट्टरपन्थिता का जोर जारी है। इन मस्जिदों में अधिकतर मौलवी उत्तर भारत के हैं और वहाँ 'विषैला' प्रचार चल रहा है और दिनानुदिन इसमें तेजी आती जा रही है। कालेजों में जमाते इस्लामी का ही प्रभुत्व है। सरकारी स्कूलों की हालत भी ऐसी ही है। अधिकतर सरकारी स्कूलों में अध्यापक तो जमाते–इस्लामी संगठन के कट्टर समर्थक हैं। अब तो इन निजी स्कूलों में विदेशों से खुलकर पैसा आ रहा है और शिक्षा पा रहे बच्चों को भारत के खिलाफ करने के लिए जोरदार अभियान छेड़ा हुआ है। अब स्कूलों में जा रहे नन्हें–नन्हें बालक–बालिकाएँ हर भारतीय को नफरत की निगाह से देखते हैं। □

(दैनिक जागरण १–७–९८ से साभार)

पुस्तक-समीक्षा : 'वेदायन'

– डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

कवि एवं समीक्षक डॉ० रामप्रसाद मिश्र की वेदायन १६वीं प्रकाशित काव्य कृति है। यह वैदिककालीन चित्रण– प्रक काव्य है। देखा जाय तो वेदों पर आधारित 'वेदायन' हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कृति है, इसमें १२ सर्ग हैं। इस काव्यकृति में उच्चतम मानवीय आध्यात्मिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। साथ ही सांसारिक कर्त्तव्यों के प्रति पूर्ण सजगता भी व्यंजित हुई है। अतः इसे महाकाव्य कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। ऐसे उदात्त महाकाव्य का प्रारम्भ निम्न पंक्तियों से होता है–

"वेदोऽखिलोधर्मभूलम्" वेद आदि ग्रन्थ
वेद धर्म की क्रिया, शेष सब प्रतिक्रिया
भारत सदैव वेद की साँस में जिया
वेदामृत पिया
ओ मानव! यदि तू निज मूल, निज आदि का परिचय चाहता तो वेद पढ़, स्वयं को जान जायेगा।
सारा–कुछ पाएगा।

विश्व–विख्यात संस्कृत विद्वान् मैक्समूलर ने ऋग्वेद को मानव–पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ माना है।

डॉ० कुमार स्वामी कहते हैं, "वेदों का अर्थ भारतीय अध्यात्म विद्या की व्याख्या न होकर विश्वव्यापी अध्यात्म विद्या की व्याख्या है। 'सनातन धर्म' अथवा 'सनातनी आत्म विद्या' किसी एक काल, देश या जन–विशेष की सम्पत्ति नहीं है, वह तो मानव जाति की जन्म–सिद्ध सम्पत्ति है।

डॉ० मिश्र अपनी कृतियों की भूमिकाएँ स्वयं लिखते हैं। उस भूमिका के कुछ अंश पठनीय हैं "मैंने वैदिक कालीन भाषा के अनुरूप अधुनातन हिन्दी ढालने का यत्न किया है, जो भाषिक अनवरतता की परोक्ष प्रतीक भी है। मैंने चिरन्तन प्रतीकों एवं बिम्बों के द्वारा चिरंतन प्रवृत्तियों (आस्था, अनुराग, जिजीविषा, विजिगीषा, अभियान इत्यादि) को चित्रित करने का यत्न किया है। अतीत को वर्तमान में ढालने का यत्न किया है, किन्तु अनुकरण–जन्य प्राचीन–नवीन की बेमेल खिचड़ी नहीं पकाई। प्राचीन को नवीन का लग्गू–भग्गू बनाना अनुचित है। प्राचीन की अपनी सत्ता है, महत्ता भी है। नवीन की अपनी अस्मिता है, जीवन्तता है। दोनों अन्योन्य भी हैं।

"आर्य" शब्द 'ऋ' धातुमूलक है, जिसका अर्थ है गतिशील या जड़तामुक्त।

'वेदायन' महाकाव्य के १२ सर्गों के उपशीर्षक इस प्रकार हैं– वेदलोक अटन (प्रथम), (द्वितीय), (तृतीय) विश्वामित्र, विश्पला, अपाला, बुध और इला, पुरुरवा, कश्यप, अगस्त्य, यम–यमी और ऋषभ्‌देव।

सार्वभौमिकता की दृष्टि से यह काव्यकृति उल्लेखनीय है। मानव एक और अखण्ड प्राणी रहा है, उसके विभिन्न ऐतिहासिक–रूप भंगिमाएँ मात्र हैं। डॉ० मिश्र ने अपनी इसी मान्यता के अनुरूप 'दृष्टि' महाकाव्य की रचना की है और इसी मान्यता का प्रमाण उनकी 'सार्वभौम' नामक कविता–संग्रह की कविताओं में भी इंगित हैं। डॉ० मिश्र ने 'वेदायन' को 'नव्यायन' भी कहा है।

'वेदायन' काव्य के 'विश्पला' सर्ग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"आर्यों ने विजितों का विनाश नहीं किया
उनको गले से लगाया, अपनाया है
उनको विराट् धर्म ही प्रदान किया है
उनके धर्म का समन्वय किया है–करवाया है
एक को अखण्डित रखकर, अनेक को पूजा
धर्म को संगीत, नृत्य से सजाया है
सभ्यता का, ज्ञान का और विज्ञान का
प्रस्तार कर जीवन धन्य बनाया है।"

डॉ० मिश्र ने बहु आयामी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। समीक्षा, कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, हास्य एवं व्यंग्य, संस्मरण, जीवनी, दैनंदिनी, बाल साहित्य, धर्म, राजनीति, इतिहासादि अनेक विधाओं के वे निष्णात लेखक हैं। 'वेदायन' एक पठनीय, संग्रहणीय एवं पुरस्कारणीय काव्य है। हाँ, मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है। हिन्दी जगत् में इसका अच्छा स्वागत अपेक्षित है।

नाम पुस्तक	: वेदायन, **विधा** : महाकाव्य
कवि	: डॉ० रामप्रसाद मिश्र
वर्ष	: सन् १९९७ ई०
प्रकाशक	: राकेश प्रकाशन, सत्यप्रेमी नगर, बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)
मूल्य	: अस्सी रुपये मात्र **पृष्ठ सं.** : १४४

बधाई

प्यारे भइया, बहिनो! जब अपने परिवार का कोई सदस्य विशेष उपलब्धि अर्जित करता है, तो उसका उल्लास पूरे परिवार को होता है और परिवार का प्रत्येक सदस्य उसकी पीठ ठोंकता है तथा भविष्य में और अधिक उन्नति करने की शुभकामना करता है। 'राष्ट्रधर्म' के पाठक व लेखक परिवार से जुड़ी कु० अंशु शुक्ला ने इस वर्ष कक्षा १० (आई०सी०एस०ई० दिल्ली बोर्ड) की परीक्षा ९३.४ प्रतिशत अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण की है। 'राष्ट्रधर्म' के जून ९८ अंक में आप सबने इनका परिचय और कविता पढ़ी ही है। 'राष्ट्रधर्म-परिवार' अपनी इस प्रतिभाशालिनी सदस्या को इस सफलता के लिए हार्दिक बधाई देता है तथा मंगलमय भविष्य की कामना करता है। साथ ही हाईस्कूल की परीक्षा में हिन्दी में ८० प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले सभी भइया, बहिनों को भी बधाई देता है। आप सब भी बहिन अंशु को बधाई दे सकते हैं। इनका पता है–

३, गोविन्दगंज, दतिया (म०प्र०)

अम्मा! मैं तो बड़ा बनूँगा जैसे अटल बिहारी

– महेश चन्द्र त्रिपाठी

अम्मा! मैं तो बड़ा बनूँगा
जैसे अटल बिहारी
जन–जन का दुख दूर करूँगा
बनकर जन–उपकारी।

काम करूँगा सदा राष्ट्र हित
नहीं करूँगा शादी!
दूर अपव्यय से रहकर मैं
रोकूँगा बर्बादी।।

मथुरा और बनारस के
झगड़ों का कर निपटारा;
अवधपुरी में बनवाऊँगा
मन्दिर जग से न्यारा।

कथित धर्मनिरपेक्ष जनों से
मेरी नहीं पटेगी;
मेरे सत्प्रयास से उनके
उर की धुन्ध छँटेगी।

हिन्दी बने विश्व की भाषा
ऐसे यत्न करूँगा;
हिन्दी सेवी मनीषियों में
नव–उत्साह भरूँगा।

भारत बने महान विश्व में,
ऐसा करूँ परिश्रम;
इसकी आन न जाने पाये
जब तक है दम में दम।

– सिधौंव, फतेहपुर (उ० प्र०)

पशु-पक्षी भी वर्षा की पूर्व-सूचना देते हैं

– ईलू रानी

आपको यह जानकर अचरज होगा— प्रकृति की गोद में कुछ पशु–पक्षी ऐसे भी हैं, जिनके माध्यम से वर्षा का पूर्व आभास हो जाता है। हालाँकि विज्ञान के इस युग में मौसम की भविष्यवाणी करने वाले कई उपकरण हैं, लेकिन कई मर्तबा इन उपकरणों की भविष्यवाणी भी गलत सिद्ध होती है। जबकि पशु–पक्षियों की भविष्यवाणी मौसम के सन्दर्भ में सौ फीसदी खरी उतरती हैं। कुछ ऐसे ही पशु पक्षियों के संदर्भ में रोचक जानकारी इस प्रकार है—

- यदि झींगुर का आकार बड़ा हो जाए और उसका वजन बढ़ जाए, तो तूफानी हवा चलने की संभावना समझनी चाहिए।
- जब कुत्ते घास खायें, तो ज़ानना चाहिए कि तूफानी हवा के साथ वर्षा होगी।
- चातक पक्षी को चोंच ऊपर किए हुए देखें, तो समझना चाहिए कि वर्षा शीघ्र होने वाली है।
- यदि ऊँची पहाड़ी पर भेड़ अपने शिशु को दूध पिलाती है, तो समझना चाहिए अच्छे मौसम की संभावना है।
- जब मोर अपने समूह में नाचते हैं तो, बरसात अच्छी होती है।
- लाल मुँह के बन्दर या गौरैया चिड़ियाँ जब जमीन में लोटने लगती हैं, तो समझना चाहिए आसमान में तेजी से बिजली की चमक के साथ वर्षा होने वाली हैं।
- साइबेरिया में चेसा नस्ल की चिड़िया होती है। जब यह बहुत ऊँची उड़ान भरती है, तो समझना चाहिए जोरों की वर्षा होगी।
- जंगली हाथी भी वर्षा की पूर्व सूचना देते हैं। कई बार ये अपने समूह में अपनी सूँड़ आसमान की तरफ कर तेजी से दौड़ते हैं, इसका अर्थ है वर्षा होने वाली है।
- जापान में एक ऐसी मछली पाई जाती है, जो गिरगिट की भाँति रंग बदलती है। यदि वह अपने शरीर का लाल रंग करती है, तो वर्षा आने की संभावना, हरा करती है; तो सर्दी बढ़ने की संभावना तथा सफेद रंग करती है तो गर्मी बढ़ने की संभावना रहती है। वहाँ के कई घरों में लोग इस मछली को एक विशेष पात्र में पालते हैं।
- सफेद कबूतर भी किसी मौसम विशेषज्ञ से कम नहीं। जब ये अपने समूह में एक पंक्ति में बहुत ऊँचाई पर उड़ान भरते हैं, तो समझना चाहिए कि बिन मौसम बरसात आने वाली है। ☐

भैंसोदा मंडी–४५८७७८ (जिला मन्दसौर, म.प्र.)

जादूगरनी वर्षा

– गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'

नये–नये करतब दिखलाने,
जादूगरनी वर्षा आयी।

पहले सूरज दादा से मिल,
गर्मी का डंका बजवाया।
गायब किये गगन से बादल,
बूँद–बूँद जल को तड़पाया।

गड़–गड़–धड़–धड़ मन्त्र पढ़े कुछ,
तब घनघोर घटा–सी छायी।

पड़ीं फुहारें रिमझिम–रिमझिम,
बिजली हथिनी सी चिंघाड़े,
हवा हिलाये वृक्ष–लताएँ,
झिल्ली–मेढक रटें पहाड़े।

वशीभूत पशु–पक्षी हरषे,
पानी की ही महिमा गायी।

टुकड़े–टुकड़े बादल करके,
भालू, चीता, मोर बनाया।
जाने कितने रंग बदलकर,
इन्द्र–धनुष का ध्वज फहराया।

ताल पोखरे भरे लबालब,
हरियाली ने छटा दिखायी।

– ए–१४८५/७, इन्दिरानगर, लखनऊ

नवोदित स्वर — सत्यव्रत मिश्र 'सत्य'

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उक्ति भैया सत्यव्रत मिश्र 'सत्य' पर खरी उतरती है। १ जून १९८२ को बस्ती जनपद के सुदूर ग्राम डूड़ी में जन्मा यह बालक प्रत्यक्ष मिलन में मितभाषी तथा संकोची प्रवृत्ति का होते हुए भी अन्तर्मुखी प्रतिभा सम्पन्न है। योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान के रूप में कविवर गोमती प्रसाद मिश्र 'अनिल' को यह पुत्र-रत्न के रूप में प्राप्त हुआ। बचपन से ही भैया 'सत्य' को कविता का गुण उत्तराधिकार के रूप में मिला।

'सत्य' की अब तक कई दर्जन कविताएँ व कहानियाँ (बाल व प्रौढ़) अनेक पत्र-पंत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। दोहा, चौपाई शैली में लिखी उनकी लम्बी रचना 'भारत-स्तवन' पर अखिल भारतीय नवोदित साहित्यकार परिषद् द्वारा गत वर्ष प्रशस्त्रि-पत्र प्रदान किया जा चुका है।

भैया सत्य ने अपनी छोटी सी आयु में ही अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों से पत्राचार कर उनका आशीष प्राप्त किया है। तथा अन्यान्य कवियों की महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक रचनाओं का संग्रह भी किया है।

नितान्त ग्रामीण परिवेश में बढ़े-पढ़े भैया सत्य की सुन्दर-हस्तलिपि तथा वर्तनी की शुद्धता से उनकी आयु का आकलन करना कठिन हो जाता है। प्रथम दृष्टि में तो यही लगता है कि यह किसी प्रौढ़ व्यक्ति की भाषा-शैली है।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति असीम लगाव तथा साहित्य संरचना के लिए भैया 'सत्य' को बधाई व शुभकामनाएँ। यहाँ प्रस्तुत है उनकी रचनाओं की एक बानगी-

भोलू हाथी

एक बार था नन्दनवन में,
हुआ बहुत हंगामा।
पता चला जंगल में आये,
पहलवान हैं गामा।

शुक्रवार को गामा जी का,
लगा अखाड़ा भारी।
"जो भी चाहे कुश्ती लड़ ले,
हुई घोषणा न्यारी।

हुई घोषणा सिंहराज की,
वह मन्त्री-पद पाये।
जो कुश्ती में गामाजी को,
आकर धूल चटाये।।

जुटी भीड़ फिर, जोर-शोर से,
कुश्ती की तैयारी।
पहलवान सब हारे हिम्मत,
लड़कर बारी-बारी।।

भोलू हाथी खड़ा हुआ तब,
बढ़कर हाथ मिलाया।
इधर-उधर देखा, फिर उसने-
अपना दाँव लगाया।

गामा गिरा चित्त हो करके,
धूल भूमि की खायी।
हारा कुश्ती भोलू जी से,
सारी अकड़ भुलायी।।

वीर सिंह राजा ने तब,
भोलू को बुलवाया।
धूमधाम से भोलू जी को,
मन्त्री-पद दिलवाया।।

होता बुरा घमण्ड साथियों,
तुम न कभी अपनाना।
और नम्रता से ही रहना,
प्यार सभी का पाना।।

— पता : ग्राम-डूड़ी, पत्रालय-चिलमा, जनपद-बस्ती-२७२३०१ (उ०प्र०)

वर्षा

- डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

बादल गरज रहे कड़–कड़।
बिजली चमक रही तड़–तड़।
झड़ी लगी है सावन की
बूँदें पड़ती हैं पड़–पड़।
रचती हैं संसार नया–
तान चतुर्दिक् जल–चादर।।
अँधियारी घिर आई है।
हहर रही पुरवाई है।
अपना हाथ पसारा भी–
पड़ता नहीं दिखाई है।
नाले हैं बन गए नदी–
आवागमन हुआ दूभर।।
अन्नू बोले अंकुर से
आओ भाग चलें फुर से।
आँख बचा कर माँ जी की–
अप्पू कूदे दादुर से।
लगे नहाने उछल–उछल–
जैसे हों उग आए पर।।
गुड़िया रानी हैं मचली।
चाह रहीं बनना मछली।
पिता डाँटते रहे बहुत–
किन्तु न उनकी एक चली।
हाथ पकड़ कर खींच लिया–
मिक्की बोली हर हर हर।।

– सारस्वत–सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर–२६१००१

प्रेरक प्रंसग–

न मिटने वाले दाग

– संजीव कुमार 'आलोक'

पुत्र किसी के घर में डाका डालकर आता, तो माँ कमरे में एक कील गाड़ देती; किसी का खून करता तो एक और कील गाड़ देती। यह सिलसिला न जाने कब तक चलता रहा। एक दिन पुत्र ने माँ से पूछा, "माँ, तुमने यह सारा कमरा कीलों से भर दिया है। यह सब क्या है?"

"पुत्र, यह तुम्हारे बुरे काम हैं। तू कोई बुरा काम करता था तो मैं एक कील गाड़ देती थी। अब तो पूरा कमरा कीलों से भर गया है, पर..."

पुत्र का पाषाण–हृदय पानी–पानी हो गया। उस दिन से वह अच्छे काम करने लगा। हर रोज जब वह घर आता, तब माँ को अपने अच्छे काम बताता, माँ एक कील उखाड़ देती। कई वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहा। एक दिन जब सभी कीलें उखड़ गयी, तब पुत्र ने बड़ी शान्ति से पूछा– "माँ, अब तो कोई पाप नहीं रहा?"

माँ ने कहा– "पुत्र! देख कीलें तो सभी निकल गयी हैं पर कीलों के न मिटने वाले दाग दीवार पर रह गये हैं। मुझे ये निशान तुम्हारे बुरे कामों की हमेशा याद दिलाते रहेंगे।"

– विनीता भवन, निकट बेली स्कूल सबेरा सिनेमा चौक, काजीचक, बाढ़, पटना (बिहार)–८०३२१३

राजा का कुँआ

– नयन कुमार राठी

एक राज्य था। वहाँ के राजा बहुत सरल हृदय एवं प्रजापालक थे। समय–समय पर प्रजा के दुख–दर्द सुनकर उनका निराकरण करते। इसलिए राज्य की प्रजा भी राजा को बहुत चाहती थी।

राज्य में एक तालाब भी था। उसके बारे में मशहूर था, चाहे कितना अकाल पड़ जाये। बारिश आए, न आए। उसका पानी कभी कम नहीं होता। हमेशा लबालब भरा रहता है।

एक दफा लगातार तीन वर्ष तक बारिश नहीं हुई। तालाब में पानी होने से राज्य के लोगों को कोई तकलीफ नहीं हुई। गरमी के दिन थे। दिन चढ़ने के बाद लोग अपने ठिकाने से नहीं निकलते। शाम होने पर थोड़ी चहल–पहल दिखाई पड़ती।

एक दिन दोपहर के समय राजा किसी को बताए बिना साधारण वेष में राज्य का हालचाल देखने निकल पड़े। बहुत दूर पहुँचने पर एक जगह बहुत से स्त्री–पुरुष कार्य करते दिखे। पुरुष तगारी में मिट्टी भर रहे थे। स्त्रियाँ सिर पर रखकर उन्हें फेंकती जा रही थीं। भीषण गरमी के कारण उनके बदन पसीने से तरबतर हो रहे थे। फिर भी वे कार्य कर रहे थे।

राजा वहाँ पहुँचे। साधारण वेष के कारण उन्हें किसी ने पहचाना नहीं। अंजान हो– उन्होंने पूछा– तुम लोग क्या कर रहे हो? एक व्यक्ति उदास सा बोला– "कुँआँ खोद रहे हैं"।

"मगर...क्यों? यहाँ पानी की कोई कमी नहीं है, तालाब लबालब भरा है। चाहे जितना पानी लो। मनाही नहीं है। फिर भी कुँआ खोदा जा रहा है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

उनकी बात सुन एक स्त्री उदास सी बोली– "तुम्हारी बात सही है। मगर तालाब का पानी हमारे किसी काम का नहीं है।"

"क्यों... क्या तालाब का पानी गन्दा है? तुम तालाब पर जाना नहीं चाहते हो "– आश्चर्य से राजा ने पूछा। "नहीं उस तालाब का पानी शुद्ध है। हम तालाब पर जाते थे। मगर थोड़े दिन पहले राजा ने एक तख्ती वहाँ लगा दी है। उस पर लिखा है– "दिनोंदिन तालाब का पानी कम होता जा रहा है। ऐसा न हो, एक दिन तालाब का पानी खत्म हो जाये इसलिए अब से यहाँ पर जो पानी भरने आयेगा, उसे कीमत देनी होगी। तुम बतलाओ, यह कहाँ का इंसाफ है? राजा तो प्रजा की सेवा के लिए जी-जान लुटा देते हैं। परन्तु यहाँ सेवा के बदले वे प्रजा से पानी का मोल ले रहे हैं।" उदास-सा व्यक्ति बोला।

"मगर...हमने ऐसी कोई तख्ती वहाँ पर नहीं टँगवाई है"– राजा बोले। "क्या आप राजा साहब हैं।"

एक व्यक्ति के कहने पर "नहीं...नहीं... हड़बड़ाहट में मेरे मुँह से निकल गया। चलो– मैं भी तुम्हारे साथ कार्य करता हूँ। शाम को हम सभी राजा के पास फरियाद लेकर चलेंगे। उन्होंने हमारी फरियाद नहीं सुनी, तो उन्हें बदनाम कर देंगे।"

वे उनके साथ मिलकर कार्य करने लगे। मेहनत तो कभी नहीं की थी। थोड़े समय में थककर चूर हो गये। पसीना बदन से बह निकला। उन्होंने पानी माँगा। एक व्यक्ति हँसते हुए बोला– "थोड़े समय बैठो। थकान कम कर लो। कुँए में पानी नजर आने लगा है। अभी लाकर पिलाते हैं।"

थोड़े समय पश्चात् वे लोग एक मटकी में पानी लेकर आए। राजा ने आधी मटकी पानी पिया। तब प्यास बुझी। थोड़े समय आराम करके शाम को आने को कहकर वे वहाँ से रवाना हो गये।

चलते हुए वे तालाब के करीब पहुँचे। तीन–चार व्यक्ति खड़े थे। एक ओर तख्ती लगी थी, जिस पर वे शब्द लिखे थे, जो उस व्यक्ति ने बतलाए थे। चलते हुए वे उनके करीब पहुँचे। साधारण वेष के कारण उन्हें कोई नहीं पहचान पाया।

उदास-से वे एक व्यक्ति से बोले– "भैया! बहुत दूर से चला आ रहा हूँ, प्यास के कारण कण्ठ सूखा जा रहा है। गिलास या कटोरा हो, दे दो, पानी पी लूँ।" एक व्यक्ति कड़क आवाज में बोला– "हम पानी पीने की इजाजत नहीं दे सकते हैं। यहाँ के मन्त्री जी का आदेश है। जो पानी पीये, उससे मूल्य लिया जाए। तुम्हारे पास देने के लिए पैसा हो, तो हम पानी पिलवा सकते हैं।"

अंजान बनकर उन्होंने सोने की एक गिन्नी जेब से निकाली। उसे थमाते हुए उदास से बोले– "बेटी के विवाह के लिए सामान खरीदने के लिए लाया था। मजबूरी में इसे तुम्हें देना पड़ रहा है। प्यास के कारण मेरा दम निकला जा रहा है। जल्दी से पानी पिलवाओ।"

गिन्नी लेकर उन्होंने राजा को पानी पिलाया। पानी पीकर धन्यवाद देकर वे वहाँ से महल के लिए निकल पड़े। महल पहुँचकर उन्होंने कपड़े बदले, रानी आई। खाना खाने को कहने लगी, उन्होंने इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर उन्होंने सारी बात बतलाई।

रानी बोली– "आप मूर्ख हैं। जब उन्होंने आपसे पानी का पैसा माँगा, तब उन्हें सजा देनी चाहिए थी।"

रानी को समझाते हुए राजा बोले– "यह राज्य

वाक्य बनाओ

तु	म	ह	म	स्व	त	न्त्र	ता	मु	झे	÷
आ	जा	द	प	ड़ी	हो	गी	ला	ठी	ग	र्व
ए	क	क	फ	न	से	ब्रि	टि	श	ए	क
ज	वा	न	मु	झे	ज	य	क	हो	ॐ	के
ह	मा	रा	र	हे	सा	म्रा	ज्य	卐	ह.	म
आ	जा	द	हैं	✿	की	ज	न्म	र	हें	गे
खू	न	म	न	दो	+	हि	न्दू	में	दूँ	गा
अ	धि	का	र	की	ल	कि	सा	न	सि	द्ध
ज	य	सि	द्ध	तु	म्हें	गं	गा	क	ठौ	ती
मैं	#	है	चं	गा	तो	हैं	*	आ	जा	दी

प्रस्तुत वर्ग में ७ महापुरुषों के प्रसिद्ध वाक्य छिपे हैं। बाएँ से दाएँ अक्षरों का संयोजन कर वे वाक्य खोजे जा सकते हैं। वाक्य का कोई क्रम नहीं है, पर प्रत्येक शब्द के अक्षर एक क्रम में हैं। एक अक्षर का प्रयोग एक ही बार किया जा सकता है। वाक्य खोज कर यह भी बताएँ कि यह वाक्य किस महापुरुष का है।

— प्रस्तुति : वेदिका

प्रश्नोत्तर

- जून ९८ अंक में पृष्ठ ५४ पर भूमिका द्वारा प्रस्तुत 'सवाल हल करो' का उत्तर है– 'दो नींबू'।
- जुलाई ९८ अंक में पृष्ठ ५४ पर वेदिका द्वारा प्रस्तुत 'नाम खोजो' वर्ग में 'बिजली' के पर्यायवाची हैं–

विद्युत, चपला, चंचला, सौदामिनि, घनवाम, क्षणप्रभा, आकालकी, तड़ित्।

समुद्र के पर्यायवाची हैं–

वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, उदधि, पयोधि, कंपति, नदीश।

है। अच्छा या बुरा कार्य रोज होता है। बिना देखे–परखे इस तरह सभी को सजा देते हुए तो दो दिन में हमारा अस्तित्व खत्म हो जायेगा। गलती मन्त्री की है। उसे सजा दी जायेगी। शाम को मैं और तुम साधारण वेष में बिना किसी को बतलाए उन लोगों के पास चलेंगे। सभी को लेकर तालाब आयेंगे। सारी कार्यवाही वहीं पर होगी।"

शाम को बिना किसी को बतलाए साधारण वेष में राजा–रानी उन लोगों के पास पहुँचे। हँसते हुए राजा उनसे बोले– "मैंने महाराज से बात की। उन्होंने हम सभी को तालाब पर बुलाया है। वहीं पर अपनी समस्या उन्हें बतलायेंगे।"

सभी उनके साथ चल दिए। तालाब के करीब पहुँचे। वहाँ पर किसी को नहीं देख सभी ने पूछा– "राजा साहब कहाँ हैं?" "बस थोड़े समय में आते होंगे" हँसते हुए राजा बोले। वे तालाब से बाल्टी में पानी भरकर लाए। डरते हुए सभी बोले– "तुम पानी भरकर क्यों लाए? राजा साहब को मालूम हो गया तो सजा मिलेगी।"

इतने में मन्त्री सहित बहुत से व्यक्ति आए। राजा को देख उसके पसीने छूट गए। एक व्यक्ति हँसते हुए बोला– "मन्त्री जी! यह वही व्यक्ति है, जिसने हमें गिन्नी दी थी।" हँसते हुए राजा– उनके करीब पहुँचे। मन्त्री उनके पैरों पर गिर पड़ा।

राजा के साथ आए सभी लोग चकित रह गये। मन्त्री हाथ जोड़कर उनसे कह रहा था –"मुझे माफ कर दीजिए। आइन्दा ऐसा कार्य नहीं होगा।"

गुस्से में राजा बोले– "तुमने मेरा नाम बदनाम किया है। राज्य का नाम बदनाम किया है। सिर उठाकर चलने काबिल नहीं रखा है। तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा। राज्य का तालाब प्रजा की प्यास बुझाने के लिए है। प्यासा रखने के लिए नहीं है। तुमने बहुत बुरा कार्य किया है। कोई तुम पर विश्वास नहीं करेगा। तुम्हारे माथे पर कलंक लग चुका है।"

सभी लोग आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। रानी ने राजा को समझाया– "स्वामी! गलती किससे नहीं होती है? गलती करके जो स्वीकार कर ले। उसे क्षमा किया जा सकता है।"

सभी लोग राजा के करीब पहुँचे। हाथ जोड़ते हुए बोले– "हमें माफ कर दीजिए। अजाने में आपसे श्रम करवाया।" हँसते हुए वे बोले– "श्रम का फल मीठा होता है। हर जगह कुँए खुदवाए जायेंगे। मैं भी श्रम करूँगा।"

यह सुन मन्त्री बोले– "महाराज! आपको श्रम करने की जरूरत नहीं है। कुँए मैं खुदवाऊँगा। मेरा प्रायश्चित्त हो जायेगा। जनता में मान बढ़ जायेगा।" फिर तो उस राज्य में जगह–जगह कुँए खुदवाये गये। जिस कुँए पर राजा ने कार्य किया था, उस कुँए का नाम "राजा का कुँआ" पड़ गया।

– २६६, गुमाहतानगर, इन्दौर (म०प्र०)–४५२००६

ज्ञान-दीप आलोक लुटाता

– सतीश तिवारी 'सरस'

भक्ति–सुवास प्रसारित करता रामचरित मानस;
दिव्य–कथा–रसपान कराता रामचरित मानस।

श्रद्धा–प्रेम–दया–करुणा परहित का भाव जगा;
धर्म–ध्वजा घर–घर फहराता रामचरित मानस।

द्वेष–घृणा–अज्ञान तमस का निष्कासन करता;
ज्ञान–दीप आलोक लुटाता रामचरित मानस।

माता, पिता, बन्धु, गुरु, पत्नी, शिष्य, सखाओं को,
कर्त्तव्यों का बोध कराता रामचरित मानस।

'सरस' पूर्ण होती हैं उसकी मनोकामनाएँ,
प्रेम–पूर्वक जो नित गाता रामचरित मानस।

– मोहद (करेली), नरसिंहपुर (म०प्र०)–४८७२२१

देववाणी शिक्षण — ११

अब 'तद्' (वह) इस सर्वनाम के निम्नलिखित शब्द कण्ठ कीजिए।

विभक्ति	'तद्'	=	(वह)
प्रथमा	सः	=	वह
द्वितीया	तं	=	उसको
तृतीया	तेन	=	उसने, उससे
चतुर्थी	तस्मै	=	उसके लिए
पंचमी	तस्मात्	=	उससे
षष्ठी	तस्य	=	उसका
सप्तमी	तस्मिन्	=	उसमें

'तद्' (वह) इस सर्वनाम के पुल्लिंग के सातों विभक्तियों के एकवचन के ये रूप हैं।

इनका अब वाक्यों में उपयोग कीजिए–

तस्मै मया भूषणं दत्तम्।

उसको मैंने अलंकार दिया।

सः इदानीं कुत्र अस्ति?

वह अब कहा है?

तेन तुभ्यं किं दत्तम्?

उसने तुझको क्या दिया?

तस्मात् नगरात् अत्र आगच्छ।

उस नगर से यहाँ आ।

तस्य ईश्वरस्य वाचकः प्रणवः अस्ति।

उस ईश्वर का वाचक प्रणव (ॐकार) है।

तस्मिन् गृहे श्री रामचन्द्रः अस्ति।

उस घर में श्री रामचन्द्र है।

तं ईश्वरं सर्वभावेन अहं शरणं गच्छामि।

उस ईश्वर की मैं सर्व भाव से शरण जाता हूँ।

अब आप निम्नलिखित वाक्य पढ़ते ही समझ सकते हैं–

तव पुस्तकं अहं नैव पठामि। मम पुस्तकं एव पठामि। त्वं इदानीं मम पुस्तकं पश्यसि। यदा त्वं तत्र गच्छसि, तदा स कुत्र भवति? यदि त्वं फलं न खादसि, तर्हि अहं न खादामि। अधुना स पत्रं लिखति। स पुस्तकेन सह अत्र आगच्छति। त्वं रामेण सह अत्र आगच्छसि किम्? कथं स तत्र न आगच्छति? पुस्तकस्य पत्रं कुत्र अस्ति? तव गृहं कुत्र अस्ति? मम गृहं तव गृहस्य समीपे एव अस्ति। तेन सह अहं भ्रमणाय गच्छामि। त्वं केन सहं भ्रमणाय गच्छसि? तस्मिन् नगरे तव गृहं कस्मिन् स्थाने अस्ति? रामचन्द्रस्य गृहस्य समीपे मम गृहं अस्ति। सूर्यस्य प्रकाशे सः तिष्ठति। त्वं सूर्यस्य किरणे पुस्तकं किं पठसि? तेन मह्यं इदानीं पुस्तकं दत्तं, तत् अहं चन्द्रस्य प्रकाशे पठामि। त्वं दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं पठसि किम्? नहि नहि, अहं दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं न पठामि। अहं ह्यः रामचन्द्रस्य गृहं गतः। तत्र श्रीकृष्णः किं पश्यति? नारायणेन दत्तं फलं स खादति। रामचन्द्रस्य शोभनं पुस्तकं कुत्र अस्ति?

अब निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिए–

वद	=बोल,	**पठ**	= पढ़,	**पश्य**	=देख,
खाद	=खा,	**गच्छ**	= जा,	**आगच्छ**	= आ,
पच	=पका,	**धाव**	= दौड़,	**प्रापय**	=पहुँचा,
चल	=चल,	**स्मर**	= स्मरण रख,	**भव**	=हो,
पत	=गिरजा,	**कुरु**	= कर,	**देहि**	=दे,
ब्रूहि	=बोल,कह,	**लिख**	= लिख,	**तिष्ठ**	=ठहर,
भ्रामय	=घुमा,	**नय**	= ले जा,	**उपविश**	=बैठ,
आनय	= ले आ।				

अब इनका उपयोग करके वाक्य बनाइये–

हे राम! त्वं फलं खाद।

हे राम! तू फल खा।

हे मनुष्य! पुस्तकं पठ।

हे मनुष्य! पुस्तक पढ़।

त्वं तत्र गच्छ।

तू वहाँ जा।

सत्यं वद = सच बोल।

फलं तत्र नय = फल वहाँ ले जा।

अब निम्नलिखित वाक्य आप सुगमता से समझ सकते हैं।

ब्रूहि, स इदानीं कुत्र गतः? इदानीं चक्र भ्रामय। अधुना धाव। अत्र आगच्छ। त्वं तस्य गृहं प्रापय। तस्मै एक पत्रं देहि। अधुना त्वं अन्नं पच। पश्य, रामः कथं धावति। त्वं भूपः भव।त्वं भूषणं कुरु। त्वं तिष्ठ, अहं इदानीं एव आगच्छामि। अत्र एव उपविश। अहं इदानीं अत्र एव तिष्ठामि। तस्मात् मम पुस्तकं आनय। तस्मै इदानीं नारायणेन किं दत्तम्? तस्मिन गृहे कः पुरुषः भवति? स इदानीं किं करोति। त्वं तेन मार्गेण तस्य गृहं चल। सदा परमेश्वरम् स्मर। ❑

सागर के आगर-जिन्हें हम भुला बैठे

• अनुपम मिश्र

तालाब एक बड़ा शून्य है अपने आप में। लेकिन तालाब पशुओं के खुर से बन गया कोई ऐसा गड्ढा नहीं कि उसमें बरसात का पानी अपने आप भर जाए। इस शून्य को बहुत सोच-समझकर, बड़ी बारीकी के साथ बनाया जाता रहा है। छोटे से लेकर एक अच्छे बड़े तालाब के कई अंग-प्रत्यंग रहते थे। हरेक का अपना एक विशेष काम होता था और इसलिए एक विशेष नाम भी। तालाब के साथ-साथ यह उसे बनाने वाले समाज की भाषा और बोली की समृद्धि का भी सबूत था। पर जैसे-जैसे समाज तालाबों के मामले में गरीब हुआ है, वैसे-वैसे भाषा से भी ये नाम, शब्द धीरे-धीरे उठते गए हैं।

बादल उठे, उमड़े और पानी जहाँ गिरा, वहाँ कोई एक जगह ऐसी होती है, जहाँ पानी बैठता है। एक क्रिया है : आगौरना, यानी एकत्र करना। इसी से बना है आगौर। आगौर, तालाब का वह अंग है, जहाँ से उसका पानी आता है। यह वह ढाल है, जहाँ बरसा पानी एक ही दिशा की ओर चल पड़ता है। इसका एक नाम पनढाल भी है। आगौर को मध्य प्रदेश के कुछ भागों में पैठू, पौरा या पैन कहते हैं। इस अंग के लिए इस बीच में हम सबके बीच, हिन्दी की पुस्तकों, अखबारों, संस्थाओं में एक नया शब्द चल पड़ा है- जलागम-क्षेत्र। यह अंग्रेजी के कैचमेंट से लिया गया अनुवादी, बनावटी और एक हद तक गलत शब्द है। जलागम का अर्थ वर्षा-ऋतु रहा है।

आगौर का पानी जहाँ आकर भरेगा, उसे तालाब नहीं कहते। यह है आगर। तालाब तो सब अंग-प्रत्यंगों का कुल जोड़ है। आगर यानी घर, खजाना। तालाब का खजाना है आगर, जहाँ सारा पानी आकर जमा होगा। राजस्थान में यह शब्द तालाब के अलावा भी चलता है। राज्य परिवहन के बसों के डिपो भी आगर कहलाते हैं। आगरा नाम भी इसी से बना है। आगर नाम के कुछ गाँव भी कई प्रदेशों में मिल जाएंगे।

आगौर और आगर, सागर के दो प्रमुख अंग माने गए हैं। इन्हें अलग-अलग क्षेत्रों में कुछ और नामों से भी जाना जाता है। कहीं ये शब्द मूल संस्कृत से घिसते-घिसते बोली में सरल होते दिखते हैं, तो कहीं ठेठ ग्रामीण इलाकों में बोली को सीधे संस्कृत तक ले जाते हैं। आगौर कहीं आव है, तो कहीं पायतान, यानी जहाँ तालाब के पैर पसरे हों। आयतन है जहाँ यह पसरा हिस्सा सिकुड़ जाए यानी आगर। इसे कहीं-कहीं भराव भी कहते हैं। आंध्र प्रदेश में पहुँच कर यह 'परिवाह प्रदेशम्' कहलाता है। आगर में आगौर से पानी आता है पर कहीं-कहीं आगर के बीचों बीच कुआँ भी खोदते हैं। इस स्रोत से भी तालाब में पानी आता है। इसे बोगली कहते हैं। बिहार में बोगली वाले सैकड़ों तालाब हैं। बोगली का एक नाम चूहर भी है।

जल के इस आगर की, कीमती खजाने की रक्षा करती है पाल। पाल शब्द पालक से आया होगा। यह कहीं भींड कहलाया और आकार में छोटा हुआ तो पींड। भींड का भिंड भी है बिहार में। और कहीं महार भी। पुश्ता शब्द बाद में आया लगता है। कुछ क्षेत्रों में यह पार है। नदी के पार की तरह किनारे के अर्थ में। पार के साथ आर भी है- आर, पार और तालाब के इस पार से उस पार को आर-पार या पार-आर के बदले पारावार भी कहते हैं। आज पारावार शब्द तालाब या पानी से निकल कर आनंद की मात्रा बताने के लिए उपयोग हो रहा है, पर पहले यह पानी के आनंद का पारावार रहा होगा।

पार या पाल बहुत मजबूत होती है; पर इस रखवाले की भी रखवाली न हो, तो आगौर से आगर में लगातार भरने वाला पानी इसे न जाने कब पार कर ले और तब उसका प्रचंड वेग और शक्ति उसे देखते ही देखते मिटा सकता है। तालाब को टूटने से बचाने वाले इस अंग का नाम है अफरा। आगर तो हुआ तालाब का पेट। यह एक सीमा तक भरना ही चाहिए, तभी तालाब का साल-भर तक कोई अर्थ है। पर उस सीमा को पार कर ले, तो पाल पर खतरा है। पेट पूरा भर गया, अफर गया, तो अब उसे खाली करना है। यह काम अफरा करती है और पेट को फटने से, तालाब को, पाल को टूटने से बचाती है।

इस अंग के कई नाम हैं। अफरा कहीं अपरा भी हो जाता है। उबरा, ओबरा भी है जो शायद ऊबर,

उबरने, बचने–बचाने के अर्थ में बने हैं। राजस्थान में ये सब नाम चलते हैं। अच्छी बरसात हुई और तालाब में पानी इतना आया कि अपरा से निकलने लगे, तो उसे अपरा चलना, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में इसे चादर चलना भी कहते हैं। छत्तीसगढ़ में इस अंग का नाम है छलका– पाल को तोड़े बिना जहाँ से पानी छलक जाए।

इस अंग का पुराना नाम उच्छ्वास था, छोड़ देने के अर्थ में। निकास से यह निकासी भी कहलाता है। पर ठेठ संस्कृत से आया है नेष्टा। यह राजस्थान के थार क्षेत्र में, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर में सब जगह, गाँवों में, शहरों में बिना एक मात्रा भी खोए नेष्टा ही कहलाता है। सीमा पार कर सिंध में भी इसी नाम से चलता है। यह दक्षिण में कालंगल है तो बुन्देलखण्ड में बगरन यानी जहाँ से तालाब का अतिरिक्त पानी बगर जाए, निकल जाए।

नेष्टा को पहले वर्ष छोटा बनाते हैं। पाल से भी बहुत नीचा। नई पाल भी पानी पिएगी, कुछ धँसेगी, सो तालाब में पानी ज्यादा रोकने का लालच नहीं करते। जब एक बरसात से मामला पक्का हो जाता है, तो फिर अगले वर्ष नेष्टा थोड़ा और ऊपर उठाते हैं। तब तालाब ज्यादा पानी रोक सकता है।

नेष्टा मिट्टी के कच्चे पाल का कम ऊँचा भाग है लेकिन पानी का मुख्य जोर झेलता है, इसीलिए इसे पक्का यानी पत्थर–चूने का बनाया जाता है। नेष्टा का अगल–बगल का भाग अर्धवृत्त की गोलाई लिए रहता है ताकि पानी का वेग उससे टकरा कर टूट सके। इस गोलाई वाले अंग का नाम है नाका। यदि यही अंग तालाब के बदले बंधान पर बने यानी किसी छोटी नदी नाले के प्रवाह को रोकने के लिए बनाए गए छोटे बाँध पर बने तो उसे ओड़ कहते हैं। पंखे के आकार के कारण कहीं इसे पंखा भी कहते हैं।

नेष्टा है तो शुद्ध तकनीकी अंग, लेकिन कहीं–कहीं ऐसा भी नेष्टा बनाया जाता था कि तकनीकी होते हुए भी वह कला–पक्ष को स्पर्श कर लेता था। जिन सिद्धहस्त गजधरों का पहले वर्णन किया गया है, उनके हाथों से ऐसे कलात्मक काम सहज ही हो जाते थे। राजस्थान के जोधपुर जिले में एक छोटा–सा शहर है फलौदी। वहाँ शिवसागर नामक एक तालाब है। इसका घाट लाल पत्थर से बनाया गया है। घाट एक सीधी रेखा में चलते–चलते फिर एकाएक सुंदर सर्पाकार रूप ले लेता है। यह अर्धवृत्ताकार गोलाई तालाब से बाहर निकलने वाले पानी का वेग काटती है। ज्यामिति का यह सुन्दर खेल बिना किसी भोंडे तकनीकी बोझ के, सचमुच खेल–खेल में ही अतिरिक्त पानी को बाहर भेज कर शिवसागर की रखवाली बड़े कलात्मक ढंग से करता है।

वापस आगौर चलें। यहीं से पानी आता है आगर में। सिर्फ पानी लाना है और मिट्टी तथा रेत को रोकना है। इसके लिए आगौर में पानी की छोटी–छोटी धाराओं को यहाँ–वहाँ से मोड़कर कुछ प्रमुख रास्तों से आगर की तरफ लाया जाता है और तालाब में पहुँचने से काफी पहले इन धाराओं पर खुरा लगाया जाता है। शायद यह शब्द पशु के खुर से बना है– इसका आकार खुर जैसा होता है। बड़े–बड़े पत्थर कुछ इस तरह से जमा दिए जाते हैं कि उनके बीच में से सिर्फ पानी निकले, मिट्टी और रेत आदि पीछे ही जम जाए, छूट जाए।

शिवसागर की कलात्मक नेष्टा

रेगिस्तानी क्षेत्रों में रेत की मात्रा मैदानी क्षेत्रों से कहीं अधिक होती है। इसलिए वहाँ तालाब में खुरा अधिक व्यवस्थित, कच्चे के बदले पक्के भी बनते हैं। पत्थरों को गारे–चूने से जमा कर बाकायदा एक ऐसी दोमंजिली पुलिया बनाई जाती है, जिसमें से ऊपरी मंजिल की
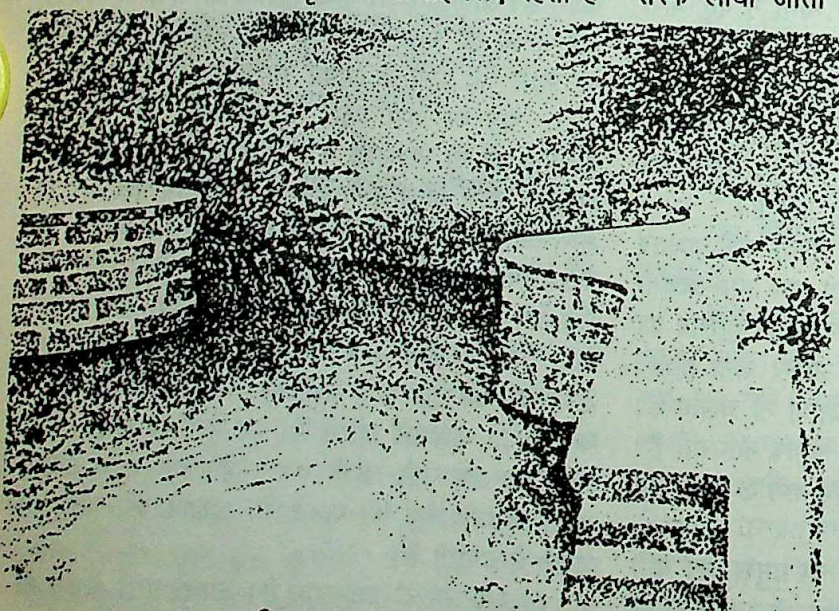
खिड़कियों या छेदों से पानी आता है, उन छेदों के नीचे से एक नाली में जाता है और वहाँ पानी सारा भार कंकर–रेत आदि छोड़कर साफ होकर फिर पहली मंजिल के छेदों से बाहर निकल आगौर की तरफ बढ़ता है। कई तरह के छोटे–बड़े, ऊँचे–नीचे छेदों से पानी छानकर आगर में भेजने वाला यह ढाँचा छेदी कहलाता है।

इस तरह रोकी गई मिट्टी के भी कई नाम हैं। कहीं यह साद है, गाद है, लद्दी है, तो कहीं तलछट भी। पूरी सावधानी रखने के बाद भी हर वर्ष पानी के साथ कुछ न कुछ मिट्टी आगर में आ ही जाती है। उसे निकालने के भी अवसर और तरीके बहुत व्यवस्थित रहे हैं। उनका ब्यौरा बाद में।

अभी फिर पाल पर चलें। पाल कहीं सीधी, कही अर्ध चंद्राकार, दूज के चाँद की तरह बनती है तो कहीं उसमें हमारे हाथ की कोहनी की तरह एक मोड़ होता है। यह मोड़ कोहनी ही कहलाता है। जहाँ भी पाल पर आगौर से आने वाले पानी का बड़ा झटका लग सकता है, वहाँ पाल की मजबूती बढ़ाने के लिए उस पर कोहनी दी जाती है।

जहाँ संभव है, सामर्थ्य है, वहाँ पाल और पानी के बीच छोटे पत्थर के पाट लगाए जाते हैं। पत्थर जोड़ने की क्रिया जुहाना कहलाती है। छोटे पत्थर गारे से जोड़े जाते थे और इस घोल में रेत, चूना, बेलफल (बेलपत्र), गुड़, गोंद और मेथी मिलाई जाती थी। कहीं–कहीं राल भी। बड़े वजनी पत्थर, छेद और कील पद्धति से जोड़े जाते थे। इसमें एक पत्थर में छेद छोड़ते और दूसरे में उसी आकार की कील अटा देते थे। कभी–कभी बड़े पत्थर लोहे की पत्ती से जोड़ते थे। ऐसी पट्टी जोंकी या अकुंडी कहलाती थी। पत्थर के पाट, पाल की मिट्टी को आगर में आने से रोकते हैं। पत्थरों से पटा यह इलाका पठियाल कहलाता है। पठियाल पर सुंदर मंदिर, बारादरी, छतरी और घाट बनाने का चलन है।

तालाब और पाल का आकार काफी बड़ा हो तो फिर घाट पर पत्थर की सीढ़ियाँ भी बनती हैं। कहीं बहुत बड़ा और गहरा तालाब है, तो सीढ़ियों की लम्बाई और संख्या भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। ऐसे में पाल की तरह इन सीढ़ियों को भी मजबूती देने का प्रबन्ध किया जाता है। ऐसा न करें तो फिर पानी सीढ़ियों को काट सकता है। इन्हें सहारा देने बीच–बीच में बुर्जनुमा, चबूतरे जैसी बड़ी सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। हर आठ या दस सीढ़ियों के बाद आने वाला यह ढाँचा हथनी कहलाता है।

ऐसी ही किसी हथनी की दीवार में एक बड़ा आला बनाया जाता है और उसमें 'घटोइया बाबा' की प्रतिष्ठा की जाती है। घटोइया देवता घाट की रखवाली करते हैं। प्रायः अपरा की ऊँचाई के हिसाब से इनकी स्थापना होती है। इस तरह यदि आगौर में पानी ज्यादा बरसे, आगर में पानी का स्तर लगातार ऊँचा उठने लगे, तालाब पर खतरा मँडराने लगे, तो घटोइया बाबा के चरणों तक पानी आने के बाद, अपरा चल निकलेगी और पानी का बढ़ना थम जाएगा। इस तरह घाट की, तालाब की रखवाली देवता और मनुष्य मिलकर करते रहे हैं।

तालाबों की तरह नदियों के घाटों पर भी घटोइया बाबा की स्थापना होती रही है। बाढ़ के दिनों में जो बड़े–बूढ़े, दादा–दादी घाट पर खुद नहीं जा पाते, वे वहाँ से वापस लौटने वाले अपने नाती–पोतों, बेटे–बेटियों से बहुत उत्सुकता के साथ प्रायः यही प्रश्न पूछते हैं, "पानी कहाँ तक चढ़ा है? घटोइया बाबा के चरणों तक आ गया?" उनके पाँव पानी पखार ले, तो बस सब हो गया। इतना पानी आगर में हो जाए, तो फिर काम चलेगा पूरे साल भर।

पूरे साल भर आगर की जलराशि को, खजाने को आँकने–नापने का काम करते हैं उनमें अलग–अलग स्थानों पर लगने वाले स्तम्भ। नागयष्टि बहुत पुराना शब्द है। यह नए खुदे तालाबों में जल–स्तर नापने के काम में आता था। इस पर अक्सर नाग आदि उत्कीर्ण किए जाते थे। जिन पर नाग का अलंकरण नहीं हुआ, वैसे स्तम्भ केवल यष्टि भी कहलाते थे। धीरे–धीरे घिसते–घिसते यही शब्द 'लाठ' बना। यह स्तंभ भी कहलाता है और जलथंब या केवल थंभ भी। कहीं इसे पनसाल या पौसरा भी कहा जाता है। ये स्तंभ अलग–अलग जगह लगते हैं, लगाने के अवसर भी अलग होते हैं और प्रयोजन भी कई तरह के।

स्तंभ तालाब के बीचों–बीच, अपरा पर, मोखी पर, यानी जहाँ से सिंचाई होती है वहाँ पर तथा आगौर में लगाए जाते हैं। इनमें फुट, गज आदि नीरस निशानों के बदले पद्म, शंख, नाग, चक्र जैसे चिह्न उत्कीर्ण किए जाते हैं। अलग–अलग चिह्न पानी की एक निश्चित गहराई की सूचना देते हैं। सिंचाई के लिए बने तालाबों में स्तंभ के एक विशेष चिह्न तक जल–स्तर उतर आने के बाद पानी का उपयोग तुरंत रोक कर उसे फिर संकट के लिए सुरक्षित रखने का प्रबंध किया जाता रहा है। कहीं–कहीं पाल पर भी स्तंभ लगाए जाते हैं। पर पाल के स्तंभ के

डूबने का अर्थ है 'पाले' यानी प्रलय होना।

स्तंभ पत्थर के बनते थे और लकड़ी के भी। लकड़ी की जात ऐसी चुनते थे, जो मजबूत हो, पानी में सड़े–गले नहीं। ऐसी लकड़ी का एक पुराना नाम 'क्षत्रिय काष्ठ' था। प्रायः जामुन, साल, ताड़ तथा सरई की लकड़ी इस काम में लाई जाती रही है। इनमें साल की मजबूती की कई कहावतें रही हैं जो आज भी डूबी नहीं हैं। साल के बारे में कहते हैं कि "हजार साल खड़ा, हजार साल पड़ा और हजार साल सड़ा"। छत्तीसगढ़ के कई पुराने तालाबों में आज भी साल के स्तंभ लगे मिल जाएँगे। रायपुर के पुरातत्त्व संग्रहालय में कहावत से बाहर निकल कर आया साल के पेड़ का सचमुच सैकड़ों साल से भी पुराना एक टुकड़ा रखा है। यह एक जल–स्तंभ का अंश है, जो उसी क्षेत्र में चंद्रपुर अब जिला बिलासपुर के ग्राम किरानी में हीराबंध नामक तालाब से मिला है। हीराबंध दूसरी शताब्दी पूर्व के सातवाहनों के राज्य का है। इस पर राज्य अधिकारियों के नाम खुदे हैं जो संभवतः उस भव्य तालाब के भरने से जुड़े समारोह में उपस्थित थे।

परिस्थिति नहीं बदले, तो लकड़ी खराब नहीं होती। स्तंभ हमेशा पानी में डूबे रहते थे, इसलिए वर्षों तक खराब नहीं होते थे।

कहीं–कहीं पाल या घाट की एक पूरी दीवार पर अलग–अलग ऊँचाई पर तरह–तरह की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। ये प्रायः मुखाकृति होती थीं। सबसे नीचे घोड़ा तो सबसे ऊपर हाथी। तालाब का बढ़ता जलस्तर इन्हें क्रम से स्पर्श करता जाता था और सबको पता चलता जाता कि इस बार पानी कितना भर गया है। ऐसी शैली के अमर उदाहरण हैं जैसलमेर के अमर सागर की दीवार पर घोड़े, हाथी और सिंह की मूर्त्तियाँ।

स्तंभ और नेष्टा को एक दूसरे से जोड़ देने पर तो चमत्कार ही हो जाता है। अलवर से कोई सौ किलोमीटर दूर अरावली की पहाड़ियों के ऊपर आबादी से काफी दूर एक तालाब है श्याम सागर। यह संभवतः युद्ध के समय सेना की जरूरत पूरी करने के लिए १५वीं सदी में बनाया गया था। इसमें किनारे पर वरुण देवता का एक स्तंभ है। स्तंभ की ऊँचाई के हिसाब से ही उससे कोई एक फर्लांग की दूरी पर श्याम सागर की अपरा है। बढ़ते जल–स्तर ने वरुण देवता के पैर छुए नहीं कि अपरा चलने लगती है और तालाब में फिर उससे ज्यादा पानी भरता नहीं। वरुण देवता कभी डूबते नहीं।

जलराशि का मापदण्ड
नागयष्टि

स्तंभ तालाब के जल–स्तर को बताते थे; पर तालाब की गहराई प्रायः 'पुरुष' नाप से नापी जाती थी। दोनों भुजाएँ अगल–बगल पूरा फैलाकर खड़े हुए पुरुष के एक हाथ से दूसरे हाथ तक की कुल लम्बाई पुरुष या पुरुख कहलाती है। इंच फुट में यह कोई छह फुट बैठती है। ऐसे २० पुरुष गहराई का तालाब आदर्श माना जाता रहा है। तालाब बनाने वालों की इच्छा इसी 'बीसी' को छूना चाहती है। पर बनाने वालों के सामर्थ्य और आगौर–आगर क्षमता के अनुसार यह गहराई कम–ज्यादा होती रहती है।

प्रायः बीसी या उससे भी ज्यादा गहरे तालाबों में पाल पर तरंगों का वेग तोड़ने के लिए आगौर और आगर के बीच टापू छोड़े जाते रहे हैं। ऐसे तालाब बनाते समय गहरी खुदाई की सारी मिट्टी पाल पर चढ़ाने की जरूरत नहीं रहती। ऐसी स्थिति में उसे और भी दूर, यानी तालाब से बाहर लाकर फेंकना भी कठिन होता है। इसलिए बीसी से गहरे तालाबों में तकनीकी और व्यावहारिक कारणों से तालाब के बीच टापू जैसे एक या एकाधिक स्थान छोड़ दिए जाते थे। इन पर खुदाई की अतिरिक्त मिट्टी भी डाल दी जाती थी। तकनीकी मजबूती और व्यावहारिक सुविधा के अलावा लबालब भरे तालाब के बीच में उभरे ये टापू पूरे दृश्य को और भी मनोरम बनाते थे।

टापू, टिपूआ, टेकरी और द्वीप जैसे शब्द तो इस अंग के लिए मिलते ही हैं; पर राजस्थान में तालाब के इस विशेष भाग को एक विशेष नाम दिया गया है — लाखेटा।

लाखेटा लहरों का वेग तो तोड़ता ही है, वह तालाब और समाज को जोड़ता भी है। जहाँ कहीं भी लाखेटा मिलते हैं, उन पर उस क्षेत्र के किसी सिद्ध संत, सती या स्मरण रखने योग्य व्यक्ति की स्मृति में सुन्दर छतरी बनी मिलती है। लाखेटा बड़ा हुआ, तो छतरी के साथ खेजड़ी और पीपल के पेड़ भी लगे मिलेंगे।

सबसे बड़ा लाखेटा ? आज इस लाखेटा पर रेल का स्टेशन है, बस का अड्डा है और एक प्रतिष्ठित माना गया औद्योगिक–क्षेत्र भी बसा है, जिसमें हिन्दुस्तान इलक्ट्रो ग्रेफाइट्स जैसे भीमकाय कारखाने लगे हैं। मध्य रेलवे से भोपाल होकर इटारसी जाते समय मंडीद्वीप नामक यह स्थान एक जमाने में भोपाल ताल का लाखेटा था। कभी लगभग २५० वर्ग मील में फैला यह विशाल ताल होशंगशाह के समय में तोड़ दिया गया था। आज यह सिकुड़ कर बहुत छोटा हो गया है फिर भी इसकी गिनती देश के बड़े तालाबों में ही होती है। इसके सूखने से ही मंडीद्वीप द्वीप न रह कर एक औद्योगिक नगर बन गया है।

प्रणाली और सारिणी तालाब से जुड़े दो शब्द हैं, जिन्होंने अपने अर्थों का लगातार विस्तार किया है। कभी ये तालाब आदि से जुड़ी सिंचाई व्यवस्था के लिए बनी नालियों के नाम थे। आज तो शासन की भी प्रणाली है और रेलों का समय बताने वाली सारिणी भी।

सिंचाई की प्रमुख नाली जहाँ से निकलती है वह जगह मुख है, मोखा है और मोखी भी। मुख्य नहर रजबहा कहलाती है।

बहुत ही विशिष्ट तालाबों की रजबहा इस लोक के राज से निकल कर देवलोक को भी छू लेती थी। तब उनका नाम रामनाल हो जाता था। जैसलमेर के धुत्त रेगिस्तानी इलाके में बने घने सुंदर बगीचे 'बड़ा बाग' की सिंचाई जैतसर नामक एक बड़े तालाब से निकली रामनाल से ही होती रही है। यहाँ की अमराई और बाग सचमुच इतना घना है कि मरुभूमि में आग उगलने वाला सूरज यहाँ आता भी होगा तो सिर्फ ठंडक लेने और वह भी हरे रंग में रंग कर।

रजबहा से निकलने वाली अन्य नहरें बहतोल, बरहा, बहिया, बहा और बाह भी कहलाती हैं। पानी निकलने के रास्ते पर बाद में बस गए इलाके का नामकरण भी इन्हीं के आधार पर हुआ है। जैसे आगरा की बाह नामक तहसील।

सिंचाई के लिए बने छोटे से छोटे तालाबों में भी पानी निकालने का बहुत व्यवस्थित प्रबंध होता रहा है। पाल के किसी हिस्से में से आर–पार निकाली गई नाली का एक सिरा तालाब की तरफ से डाट लगाकर बंद रखा जाता है। जब भी पानी निकालना हो, डाट खोल दिया जाता है। लेकिन ऐसा करने में किसी को पानी में कूदना पड़ेगा, उस गहराई तक जाकर डाट हटाना होगा और फिर इसी तरह बंद करना पड़ेगा। इस साहसिक काम को सर्व सुलभ बनाता है डाट नामक अंग।

डाट पाल से तालाब के भीतर की तरफ बना एक छोटा–सा लेकिन गहरा हौजनुमा ढाँचा होता है। यह वर्गाकार हौज प्रायः दो से तीन हाथ का होता है। पानी की तरफ की दीवार में जरूरत के हिसाब से दो–तीन छेद अलग–अलग ऊँचाई पर किए जाते हैं। छेद का आकार एक बित्ता या उतना, जितना किसी लकड़ी के लट्ठे से बंद हो जाए। सामने वाली दीवार में फिर इसी तरह के छेद होते हैं, लेकिन सिर्फ नीचे की तरफ। इनसे पाल के उस पार नाली से पानी बाहर निकाला जाता है। हौज की गहराई आठ से बारह हाथ होती है और नीचे उतरने के लिए दीवार पर एक–एक हाथ पर पत्थर के टुकड़े लगे रहते हैं।

इस ढाँचे के कारण पानी की डाट खोलने तालाब के पानी में नहीं उतरना पड़ता। बस सूखे हौज के पत्थरों के टुकड़ों के सहारे नीचे उतर कर जिस छेद को खोलना है, उसकी डाट हटा कर पानी चालू कर दिया जाता है। पाल की तरफ वाली नाली से वह बाहर आने लगता है। डाट से मिलते–जुलते ढाँचे राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और गोवा तक मिलते हैं। नाम जरूर बदल जाते हैं जैसे :– चुकरैंड, चुरंडी, चौंडा, चुंडा और उरैंड। सभी में पानी बाहर उँडेलने की क्रिया है और इसलिए ये सारे नाम उँडेलने की ही झलक दिखाते हैं।

तालाब से नहर में उँडेला गया पानी ढलान से बहाकर दूर–दूर ले जाया जाता है। पर कुछ बड़े तालाबों में, जहाँ मोखी के पास पानी का दबाव बहुत ज्यादा रहता है, वहाँ इस दबाव का उपयोग नहर में पानी ऊपर चढ़ाने के लिए भी किया जाता है। इस तरह मोखी से निकला पानी कुछ हाथ ऊपर उठकर फिर नहर की ढाल पर बहते हुए न सिर्फ ज्यादा दूर तक जाता है, वह कुछ ऊपर बने खेतों में भी पहुँच सकता है।

मुख्य नहर के दोनों ओर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर कुएँ भी बनाए जाते हैं। इनमें रहट लगा कर फिर से पानी उठा लिया जाता है। तालाब, नहर और कुआँ तथा रहट की यह शानदार चौकड़ी एक के बाद एक कई खेतों को सिंचाई से जोड़ती चलती है। यह व्यवस्था बुंदेलखंड में चंदेलों–बुंदेलों के समय बने एक–एक हजार एकड़ के बरुआ सागर, अरजर सागर में आज भी काम दे रही है।

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

दिल्ली की गद्दी सावधान

(यह कविता आपातकाल में जब्त कर ली गयी थी।-सं०)

- दामोदर स्वरूप 'विद्रोही'

तेरे ऊपर अब तक जितने सत्ताधारी आरूढ़ हुए।
उनको सम्राट् कहा सबने विद्वान् याकि वे मूढ़ हुए।।
तुझ पर अधिकार जताने को भाई ने भाई को मारा।
बन गया मुकुट की इच्छा में है पुत्र पिता का हत्यारा।।
तेरे नजदीक न पनप सका सौन्दर्य प्यार का सौम्य रूप।
तेरे ऊपर आसीन सन्त बन गया क्रूर दाहक कुरूप।।
तेरी बोली है मधुर लिखावट की लेकिन टेढ़ी भाषा।
पंडित मूरख के द्वार ज्ञान की तेरी है कटु परिभाषा।।
तू अपनी माँग सजाने को लेती है शुद्ध रक्त लाली।
पर अपने उर का सिंहासन देती पापी को वाचाली।।
तू अन्धकार की रानी है खलता तुझको नूतन विहान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
जिसने है तुझको नमन किया उसके तूने ठोकर मारी।
जिसने बाँहों में बाँध लिया रह गई सिसक कर लाचारी।।
तेरी सुस्थिर है नीति, तंत्र चाहे कोई कितने बदले।
तू जहाँ खड़ी थी वहीं रही शासक बदले शासन बदले।।
जीवन पाया तलवारों में अंगारों में तू खेली है।
तू महानाश के सौदागर की पुत्री एक अकेली है।।
तेरे पतियों के नाम बाप—भाई का कोई पता नहीं।
तू दुल्हन बिना बरात बनी पंडित नाई का पता नहीं।।
गोरी, गजनी, तैमूरलंग, नादिर आये चंगेज गये।
तुगलक, लोदी, खिलजी, पठान सब मुगल गये अंग्रेज गये।।
इस बार लपेटा है तुझमें जनता ने अपना ही विधान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
कहने कों तो तू कोटि-कोटि प्राणों की करती रखवाली।
पर सच तो केवल इतना है तू एक पुरुष की घरवाली।।
तेरा अतीत सब छोड़ छाड़ तेरा इतिहास भुलाकर के।
तू सँभल सकेगी आगे चल पिछला अभ्यास भुला करके।।
तेरा छल-छद्मीरूप भूल माता जैसा सम्मान किया।
तू इस धरती की जाता है कण—कण ने यह आह्वान किया।।
जब राष्ट्रपिता के भावों ने समझा है बेटीतुल्य जिसे।
उस पर कुदृष्टि जो धर देखे बोलो बोलो क्या कहूँ उसे।।
तेरी पायल रुनझुन करती हर पनघट पर हर आँगन में,
स्वर बन जाते मेहमान कहीं सुकुमार किसी के कंगन में
पर तेरा तो उपहास बना करता दुखिया का करुण गान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।

* * * *

ओ गद्दी के सत्ताधारी! है दमन–चक्र तेरे कर में।
तूने तरकश तो बदल दिया पर वही धार तेरे शर में।।
बापू के आदर्शों की तुम अब निर्मम हत्या बन्द करो।
अब राजघाट के नाटक का तुम नियमित धन्धा बन्द करो।
तुम बहुरूपी अभिनेता हो दुनियाँ के बड़े कबाड़ी हो।
आदर्श त्याग निष्ठा के तुम पक्के पोढ़े व्यापारी हो।।
दोनो हाथों में थाम लिये तुमने कस कर गांधी–सुभाष।
फिर खून चूसना शुरू किया कागज पर फैलाकर विकास।
ओ अन्धकार की सन्तानो! तुम मत प्रकाश की बात करो।
हम ऊषा स्वयं बुला लेंगे अपने विनाश की बात करो।।
खुदगरजी मजहब बनी और तुम भूल गये गीता कुरान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
दिल्ली रानी रंगीन रहे, सारा भारत गमगीन रहे।
जो कोई तुमको बुरा कहे, उसके आगे संगीन रहे।।
सुख वैभव तुम्हे नसीब रहे, भारत का गाँव गरीब रहे।
तरुणों का गर्म रक्त पीकर यह बूढ़ी देह सजीव रहे।।
है यही तुम्हारा रामराज जो कल्पवृक्ष कुछ लोगों का?
अपना तो जीवन बना हुआ है चक्रव्यूह संयोगों का।।
यह सच है छः द्वारों तक ही अभिमन्यु बहुत मर जायेंगे।
जाने कितने जयद्रथ सफेद कर अट्ठहास इठलायेंगे।।
जब टूट उत्तरा का टीका माथे पर से गिर जायेगा।
तब सच मानो उस जयद्रथ का सिर कन्धों से उड़ जायेगा।।
लपटे आलिंगन को आतुर जलने को है पापी वितान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
तुमको माँगे से राज मिला इस पर बल का गौरव करते?
भारत की कोढ़ी देह मिली फिर भी सुख का अनुभव करते।।
यह पेट भीख से भर सकता, मानस की तृप्ति नहीं होती।
संसद् में बैठी भीड़भाड़ जनता की शक्ति नहीं होती।।
जनता को स्वामी बता स्वयं को तुम सेवक कहने वालो।
निर्माता की कुटिया देखो ओ दिल्ली में रहने वालो।।
तुम भूल गये हो रंग तुम्हें मिट्टी तक की पहिचान नहीं।
तुम आसमान में घूम रहे तुमको धरती का ज्ञान नहीं।।
तुम लगे हुए हो निशि–वासर जनता का खून सुखाने में।
तुम श्रम की कठिन कमाई को पानी–सा लगे बहाने में।।
वह निजी तुम्हारी सम्पति है जो विश्व बैंक का महादान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
ओ रामराज्य के निर्माता ओ पंचशील के कारीगर।
ओ गान्धी जी के जाँनशीन बन्धुत्व प्यार के बाजीगर।।
जब तक होठों पर बीन तभी तक हैं वश में काले विषधर।
बस एक मिनट का मौन–काल बन जाता है ओ जादूगर।।
पर तूने छेड़ी बीन सदा विषहीन अजगरों के आगे।
वे भूखे हैं पर झूम रहे तू नचा रहा है भय त्यागे।।
पर सुना गया ऐसा भी है रसभरी तान तेरी सुनकर।
सहसा आ जाया करते हैं कुछ मतवाले काले विषधर।।

लेती समेट जिनकी केवल फुफकार समेटे मधुर तान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।

* * * *

इस धर्म–प्राण भारत भू का है बदल सका इतिहास नहीं।
धरती की सीमा बदल गई पर बदल सका आकाश नहीं।।
इतिहास गवाही देता है मिल्टन पुष्किन तुलसी कहते।
इस जोर–जुल्म की डाली पर विष के ही सुमन खिला करते।
शासक मनमानी करता जब जनता गरीब चिल्लाती है।
तब केश खोल, खप्पर लेकर काली करीब आ जाती है।।
सुनकर नुपुर की गरज–तरज तजते समाधि देवाधिदेव।
डमरू त्रिशूल हाथों में ले फिर ताण्डव करते महादेव।।
जब शंकर की पद–चाप नृत्य बन धरती से मिल जाती है।
समतल बीहड़ पर्वत सागर की कील कील हिल जाती है।।
भूकम्प सूचना को आते बन महानाश के लघु प्रमाण।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
जब जब कोई सत्ताधारी निर्बल पर बल अजमाता है।
तब मूकशक्ति से अनजाने वह मात स्वयं खा जाता है।।
जिस जगह गरीबों की माँगें शासन का रोग कही जायें।
उनके घर का हैजा व प्लेग विधि का संयोग कही जायें।।
तुम देते हो कानून बना कोई हड़ताल नहीं होगी।
पर किसी मिनिस्टर के दौलत की भी पड़ताल नहीं होगी।।
चपरासी ले यदि दस पैसे रिश्वत है दण्ड दिया जाये।
पर मंत्री जी की थैली को कानूनन फण्ड कहा जाये।।
तुम बेबस की आवाज और इच्छा को सदा रोक सकते।
पर एक इरादा कुदरत का धरती पर नहीं रोक सकते।।
वह रेल तार को तोड़ ताड़ करती है नगरों को श्मशान।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।
ओ राजभवन के अधिवासी भारत के गाँवों को देखो।
ओ मखमल पर चलने वालो तुम नंगे पावों को देखो।।
जनता के प्रतिनिधि कहलाकर जनता का शोषण बन्द करो।
तुम कोटि कोटि का पेट काटकर अपना पोषण बन्द करो।
तुम मुँह पर से संगीन हटा कहने दो करुण पुकारों को।
गलियारों में भी बहने दो दिल्ली में बंद बहारों को।।
तुम बड़े रहोगे तब तक ही जब तक लघुता स्वीकार हमें।
तुम तब तक नेता हो जब तक तुमसे श्रद्धा है प्यार हमें।।
जब सहनशीलता पर अपनी हो दुखी विभीषण रोता है।
तब छोटे छोटे हाथों से गुरुता का रावण सोता है।।
सोने की लंका भस्म हुई रह गया न सोने का मकान।
फिर ईंट पत्थरों की दिल्ली तू क्यों करती इतना गुमान।।
दिल्ली की गद्दी सावधान।।

❑

– चमकनी, बहादुरगंज, शाहजहाँपुर, उ०प्र०

पुण्य-तिथि (१ अगस्त) पर विशेष

ऐसे थे लोकमान्य तिलक

- डॉ० हरिप्रसाद दुबे

बाल गंगाधर तिलक महान् कर्मयोगी, मनीषी, चिन्तक एवं राष्ट्रवादी राजनीति के ऋषि व्यक्तित्व थे। भारत के गौरवशाली अतीत से भविष्य को सम्पृक्त करने वाले इस शिल्पी का जन्म २३ जुलाई १८५६ को महाराष्ट्र स्थित रत्नागिरि के एक चितपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल में माता का असामयिक देहान्त हो जाने एवं पिता के संन्यास ले लेने के कारण बालक का अन्तर्मन अनाथ जैसा हो गया। अध्ययन के समय गणित और संस्कृत में वे कुशाग्र थे। डेकन कालेज में १८७३ में उन्होंने प्रवेश लिया। १८७६ में पूना से स्नातक परीक्षा प्रथम श्रेणी में तथा १८७८ में विधि परीक्षा उत्तीर्ण की। प्राचीन संस्कृति की परम्पराओं के अनुसार वे नूतन परिवेश के पक्षधर थे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में जिस राष्ट्रभक्ति से क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों के विरोध में स्वर मुखरित किया, उसके अनन्तर ही देशद्रोहियों ने पुनः भारत को कुचलने का आमन्त्रण दे दिया। विदेशी शिक्षा-व्यवस्था ने भारतीय मनीषा को विमूढ़ बना दिया था। राष्ट्रीय भावना और वीरता धीरे-धीरे ह्रास की ओर उन्मुख होती गयी। आतंक और रुदन से देश संकट में पड़ता चला गया। भारतीय जनमानस को राष्ट्रीय-धारा से जोड़ने का कार्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने किया। मराठी समाचार-पत्र 'केसरी' के सम्पादक लोकमान्य तिलक ने मुखपृष्ठ पर प्रेरक आलेख लिखना आरम्भ कर दिया। आलेख का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार था-- "यह भारत रूपी सिंह अभी निद्रित अवस्था में पड़ा है और इसी से निष्क्रिय जान पड़ता है। तुम्हारा हित इसी में है कि समय रहते ही इस देश को छोड़ जाओ अन्यथा जब यह जाग्रत् होगा, तो जान बचाना कठिन पड़ेगा।"

तिलक जी द्वारा १८९० में गणपति-उत्सव और शिवाजी-जयन्ती समारोह आरम्भ किये गये। दस दिवसीय गणेश-उत्सव में किसी नेता का राष्ट्र-भक्ति-पूर्ण ओजस्वी व्याख्यान होता था। आज भी महाराष्ट्र के जन-मानस में इन पर्वों का अनूठा स्थान है। जन जीवन में ईश्वर-भक्ति के साथ ही मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने की मूल भावना को उद्भूत करने वाली कीर्त्तन मण्डलियों की स्थापना भी तिलक ने की। व्यायाम के अतिरिक्त लाठी बल्लम शस्त्र सिखाने के लिए व्यायामशालाओं की स्थापना की गयी।

महाराष्ट्र में जब १८९६ में भीषण अकाल पड़ा, तो चतुर्दिक् भुखमरी फैल गयी। 'मराठा' एवं 'केसरी' समाचार पत्रों के मुखपृष्ठ भुखमरी, जबरन कर-वसूली तथा अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के समाचारों से परिपूर्ण रहते थे। इनके पाठकों की संख्या अनवरत बढ़ने लगी। अकाल सहायता संहिता मराठी में अनुवादित करके तिलक ने उसकी प्रतियाँ अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में पहुँचाईं। कृषकों को प्राकृतिक आपदा के साथ अंग्रेजों से संघर्ष करने का आह्वान किया। उनका एक पैर कारागार में रहता था, तो दूसरा असहयोग आन्दोलन के नेतृत्व में। तिलक को उग्र संगठन का नेता कहा जाने लगा। १९०७ तक 'केसरी' की बीस हजार प्रतियाँ बिकती थीं। पूना में तिलक ने १८८० में न्यू इंग्लिश स्कूल स्थापित करके शिक्षा के अतिरिक्त जीवन निर्वाह एवं राष्ट्रीय भावना प्रेरित करने का अद्वितीय प्रयास किया।

प्लेग का भयंकर प्रकोप जब १८९७ में समूचे पूना (पुणे) में हुआ, तब भी तिलक ने प्लेग कमिश्नर रैण्ड के अमानवीय व्यवहार का विरोध किया। २२ जून १८९७ को मि० रैण्ड एवं मि० आयर्स्ट नामक दो अंग्रेज अधिकारियों को दामोदर चाफेकर एवं बालकृष्ण चाफेकर नामक दो क्रान्तिकारियों ने गोलियों से छलनी कर दिया। पकड़े जाने पर चाफेकर बन्धुओं को फाँसी दी गयी। १९०८ में तिलक को राजद्रोह के मुकदमे में सजा दी गयी। १८८४ में पूना में फर्गुसन कालेज की नींव डालकर बम्बई (मुम्बई) में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व स्वराज्य प्राप्ति का मन्त्र जगा दिया। कोल्हापुर के दीवान ने अंग्रेजों के उकसाने पर तिलक और उनके मित्र भदाण के सम्पादक आगरकर पर मान-हानि का मुकदमा कर दिया। अच्छी पैरवी के बाद भी चार मास की कैद की सजा मिली। जेल से छूटने पर उनका अनूठा स्वागत किया गया।

पत्रकारिता के क्षेत्र में लोकमान्य पीछे रहने वाले नहीं थे। 'केसरी' में "शासन करने का मतलब बदला लेना नही है" और "क्या सरकार बुद्धि खो बैठी है" विषयक लेखों द्वारा तिलक अंग्रेज सरकार के आरोपों का उत्तर देते रहे। जेल में बन्द क्रान्तिवीर दामोदर चाफेकर को अपने हस्ताक्षरयुक्त श्रीमद्भगवत्गीता की एक प्रति भिजवायी,

जिसे हाथ में लेकर वह क्रान्तिवीर हँसते-हँसते फाँसी पर ... चढ़ गया। २७ जुलाई १८९७ को राजद्रोह का मुकदमा चलाकर उन्हें जेल की सजा दी गयी। ६ सितम्बर १८९८ को जब डेढ़ वर्ष बाद वे जेल से छूटे, तो उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। वे मधुमेह से ग्रसित हो गये। कांग्रेस नेताओं की कमजोरियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए तिलक ने केसरी में लिखा– "कांग्रेस में चाटुकारों को नहीं, उन लोगों को आगे आना चाहिए, जो जनमत को निर्भीक किन्तु संयमित ढंग से प्रकट करने में हिचकते नहीं।"

तिलक कांग्रेस को जन–जन की संस्था बनाने के पक्ष में थे। वे स्वयं राजनीति सम्भालने के लिए आगे आये। धीरे–धीरे वे युवकों में लोकप्रियता प्राप्त करते गये। १९०० में दिल्ला पहुँचने के अनन्तर वे कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हो गये। जब वे नागपुर पहुँचे, तो उन्हें मानपत्र भेंट करके 'लोकमान्य' की उपाधि से अलंकृत किया गया। समग्र देश के लिए वे लोकमान्य नाम से प्रसिद्ध हो गये। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी प्रयोग, बंग–भंग विरोधी आन्दोलन के तिलक प्रबल समर्थक थे। १९०६ में समग्र देश का भ्रमण कर जन–जन तक तिलक पहुँच गये। उनका वक्तव्य "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे" मंत्र बन गया।

राजद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें पुनः २४ जून १९०८ को छह वर्ष कालापानी का दण्ड दिया गया। तिलक बर्मा के माण्डले कारागार ले जाये गये। इसी बीच 'गीता–रहस्य' ग्रन्थ की रचना उन्होंने की। १६ जून, १९१४ को वे जेल से छूटे। २८ अप्रैल १९१६ को बेलगाँव में होमरूल लीग की स्थापना की गयी। १ अगस्त, १९२० को बम्बई में उनका स्वर्गवास हो गया। ❐

– रामपुर भगन, फैजाबाद–२२४२०३

चाह हमारी

– सुरेश गिरि 'प्रखर'

जीवन में माँ हमने केवल, तेरा पद–वन्दन सीखा है।
तेरे आवाहन पर जीवन, कर देना अर्पण सीखा है।।

जब–जब अरि ने तेरे ऊपर
अपना दूषित नयन उठाया,
तब–तब उसकी छाती पर चढ़
बदला हमने सदा चुकाया।
रुका सिकन्दर का पग रावी
के इस पार नहीं बढ़ पाया,
चन्द्रगुप्त बन, सेल्यूकस को
मार देश से दूर भगाया।।

कालचक्र की छाती पर, चढ़कर करना गर्जन सीखा है।
जीवन में माँ हमने केवल, तेरा पद–वन्दन सीखा है।।

वीर शिवा बन लड़े समर में
लेने चैन न वैरी पाया,
राणा बन कर अड़ा आनपर
मस्तक हरगिज नहीं झुकाया।
संकट की नाजुक घड़ियों में
जब–जब तुमने हमें बुलाया,
तात्या टोपे, नाना बनकर
स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया।।

जलते भीषण अंगारों पर, हँस–हँस कर चलना सीखा है।
जीवन में माँ हमने केवल, तेरा पद–वन्दन सीखा है।।

बन आजाद चन्द्रशेखर सा
वक्ष स्थल पर गोली खाना,
भगतसिंह बनकर सीखा है,
फाँसी को हँस गले लगाना।
बन सुभाष हमने सीखा है
स्वतन्त्रता का दीप जलाना,
ऊधम सिंह बनकर सीखा है
लन्दन जाकर बैर चुकाना।।

बन सरदार पटेल शत्रु का करना सदा दमन सीखा है।
जीवन में माँ हमने केवल, तेरा पद–वन्दन सीखा है।।

जनमें मरें देश हित माँ हम
युग–युग की यह चाह हमारी,
जनम–जनम तक कभी न छूटे
बलिदानों की राह हमारी।
तेरे लिए चढ़ूँ फाँसी पर
किन्तु न निकले आह हमारी,
ठण्डी कभी न पड़ने पाये
देश–भक्ति की चाह हमारी।।

हमने बलिदानी वीरों का, करना अभिनन्दन सीखा है।
जीवन में माँ हमने केवल, तेरा पद–वन्दन सीखा है।

–भारत अर्थ मूवर्स लि०
सिंगरौली, जिला–सीधी (म०प्र०)

तुलसीदास ने जब 'मारुति-मन्दिर' बनवाना चाहा

— वचनेश त्रिपाठी 'वागीश'

लोगों की यह धारणा है कि अकबर के शासनकाल में हिन्दू जनता के लिए मन्दिर--मठ आदि निर्माण कराने में कोई कठिनाई या बाधा मुस्लिम हाकिमों की तरफ़ से नहीं उत्पन्न की जाती थी, परन्तु यह सत्य नहीं है। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास के जीवन–प्रसंग से भी यह प्रमाणित होता है कि अकबर के जमाने में भी काशी जैसे हिन्दू तीर्थ–क्षेत्र में हिन्दुओं के लिए मन्दिर–निर्माण कराना एक समस्या ही रही थी। काशी–वास के दिनों में गोस्वामी तुलसीदास का विचार बना कि वे एक मारुति–मन्दिर का निर्माण करायें, जिसमें वे हनुमान् जी की उपासना कर सकें। उन दिनों काशी का माल महकमे का हाकिम था, मिर्जा दौलत बेग, उसने तुलसीदास के मन्दिर निर्माण के रास्ते में बाधा खड़ी कर दी। जिस स्थान पर गोस्वामी जी मारुति–मन्दिर बनवाना चाहते थे, उस भूमि–खण्ड को मिर्जा दौलत बेग ने उन्हें देने से इन्कार कर दिया। कहा– यहाँ मन्दिर नहीं बन सकता। तब कोई अन्य भू–खण्ड प्राप्त करने की प्रचेष्टा की तुलसीदास ने, पर हाकिम मिर्जा दौलत बेग ने किसी भी भू–खण्ड पर मन्दिर बनाने के लिए कब्जा देना स्वीकार न किया। इस बात से गोस्वामी जी बड़े दुःखी हुए और उसी दुःख में उन्होंने कई दिन तक अन्न–पानी ग्रहण नहीं किया। भूखे रहते रहे। उन्हें निराहार रहते हुए जब छठा दिन आया, तो यह बात अकबर के दरबारी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना को विदित हुई। उन्होंने अकबर के मन्त्री राजा टोडरमल खत्री से स्वीकृति प्राप्त कर काशी में वह भू–खण्ड स्वयं खरीदा और फिर उसका पट्टा गोस्वामी तुलसीदास के नाम करा दिया, ताकि वे वहाँ बनवा सकें। कविवर रहीम के तुलसीदास से स्नेह सम्बन्ध रहे थे। कहते हैं, अकबर ने तुलसीदास को भी पहले अपना दरबारी बनाना चाहा था; पर तुलसीदास ने यह कहकर उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया था कि –

'हम चाकर रघुबीर के पटो लिख्यो दरबार।
'तुलसी' अब का होहिंगे नर के मनसबदार।।'

अर्थात् "हमने तो रघुवीर श्री राम के दरबार की सेवा करने का पट्टा लिख दिया है, फिर अब यह तुलसीदास क्या किसी मनुष्य की मनसबदारी करेगा ?" वह जमाना था, जब कई हिन्दू राजा–राव मुसलिम शासकों से मनसबदारी प्राप्त कर अपने को गौरववान् मानते थे। तुलसीदास के एक पूर्वज थे नारायण स्वामी, जिनके ४ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम था– सनातन। सनातन के पुत्र थे, चिदानन्द और चिदानन्द के पुत्र हुए सच्चिदानन्द, तुलसीदास के पिता आत्माराम इन्हीं सच्चिदानन्द के पुत्र थे अर्थात् वही तुलसीदास के पितामह थे। आत्माराम के भाई थे जीवतराम, जो तुलसीदास के चचेरे भाई थे। जीवतराम सच्चिदानन्द के दूसरे पुत्र थे। किसी कारण सच्चिदानन्द अपनी बहू अर्थात् तुलसीदास की माता हुलसी से नाराज हो गये, तो उन्होंने आत्माराम का दूसरा विवाह रचा दिया। जिससे नन्ददास जन्मे। पितामह सच्चिदानन्द का प्रेम अपने इसी पौत्र नन्ददास पर ही रहा– तुलसीदास की माता सर्वथा उपेक्षित रही थीं। और फिर वे भी चल बसीं। तुलसी अनाथ की तरह द्वार–द्वार भूखे–प्यासे बिलबिलाते घूमते रहे जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं कि–

"बारे ते ललात, बिललात द्वार–द्वार दीन"
"खाये टूक माँगि......... दुनी के"

"कहाँ–कहाँ के, दुनिया में मैंने रोटी के टुकड़े माँग कर नहीं खाये........"।

और फिर जब बड़े हुए, 'रामचरित मानस' लिखा तब भी काशी में उनकी किसने कद्र की ? अगर उन्हें पण्डित समाज, विद्वानों की मण्डली ने अपनाया होता, तो क्या तुलसीदास यह लिखते कि,

"माँगि के खाइबो, मसीत को सोइबो"

कि "यह तुलसीदास कहीं माँगकर खा लेता है और रात में मस्जिद में सो जाता है।"

मन्दिर–मठों–धर्मशाला के द्वार बन्द रहे तुलसीदास के लिए; क्योंकि वे 'भाखा' में रामायण और अन्य ग्रन्थ रच रहे थे जब कि वह युग था संस्कृत का। उन्हें क्या–क्या न झेलना पड़ा, लिखा तुलसीदास ने कि–

"धूत कहौ अवधूत कहौ,
रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
"काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब,
काहू की जाति बिगारिबे न सोऊ।

★

❒ पुष्कर नाथ

बाबा गोपालदास का वंशज है–शास्त्रीय-संगीत का डागर घराना

उन तीनों डागर–बन्धुओं का संगीत सुने आज ३२ बरसातें बीतने आईं, फिर भी उनके संगीत में जो जुगलबंदी थी ; आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत जो लयकारी थी ; प्राचीन संगीत–शैली ने जो उस दिन समाँ बाँधा था। इस्लाम मत में रहने के बावजूद भगवान् श्री कृष्ण के प्रति उनके गाये संगीत में जो अनुराग और भक्ति–भाव व्यक्त हुआ था, उसकी याद ताजा हो उठती है। कौन हैं डागर–बन्धु ? यह घराना काफी प्राचीन और संगीत क्षेत्र में प्रतिष्ठित रहा है, जिसके मूल–पुरुष हिन्दू ही थे; उनका नाम था– बाबा हरिनाम डागर। इन्हीं हरिनाम डागर के नाम से आज भी 'ध्रुपद' की एक विशिष्ट विधा 'डागर–वाणी' कहलाती है। ये महान् संगीतज्ञ स्वामी हरिदास के समकालीन थे। इन्हीं के वंशज थे– संगीताचार्य बाबा गोपाल दास। अनन्तर पता नहीं किस परिस्थिति में यही घराना मुस्लिम हो गया, तब बाबा गोपाल दास का लड़का कहलाया 'बहराम खाँ'– ध्रुपद गायकी के यही गायनाचार्य उस्ताद बहराम खाँ विख्यात हो गये। उनके बाद इसी घराने में क्रमशः सरदार खां, मुहम्मद खां, जमीरुद्दीन खां, अला बन्दे खां, नसीरुद्दीन खां, रहीमुद्दीन खां और नसीर मोइनुद्दीन खां डागर उभरे। परंतु इस्लाम मत में रहने के बावजूद ये श्रीकृष्ण–प्रेमी और भक्त बने रहे।

अस्तु, १९६६ में एक बार लखनऊ की "संगीत नाटक अकादमी" ने एक संगीत–संगोष्ठी आयोजित की, जिसमें ध्रुपद गायकी के विख्यात संगीतज्ञ नसीर मोइनुद्दीन खां डागर को श्रद्धांजलि समर्पित करके उनका स्मरण किया जाना था, क्योंकि उसी वर्ष (१९६६) २४ मई को दिवंगत हुए थे। उनके तीन भाई, जो सभी संगीतज्ञ थे, नसीर जहीरुद्दीन खां, नसीर फैयाजुद्दीन खाँ और नसीर अमीनुद्दीन खां इस मौके पर मौजूद थे। मुझे वहाँ अपने साथ ले गये थे– संगीत–शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य कैलाश चन्द्र देव 'बृहस्पति'। मेरा उनका उन दिनों कई वर्ष साथ–संपर्क रहा था, जब लखनऊ के ही सदर बाजार मुहल्ले से हिन्दी दैनिक "स्वदेश" प्रकाशित होता था, वहीं "भारत प्रेस" में छपता था, जिसके संपादक थे अटल बिहारी जी वाजपेयी, मैं सहसंपादक था उस पत्र में कुछ दिनों तक 'वृहस्पति जी' ही उसका रविवासरीय संस्करण सँभालते थे, वहीं सदर में एक किराये के मकान में रहते थे। बड़े अच्छे कवि थे। उनके लिखे कई गीत **"जगाया तुमको कितनी बार"** आदि अनेक वर्षों तक संघ–कार्यक्रमों में गाये जाते रहे थे। बाद में वे दिल्ली में संभवतः वहाँ आकाशवाणी के संगीत–विभाग से जुड़ गये थे, तब भी वे मुझे दिल्ली से पत्र लिखा करते थे। उक्त संगीत–गोष्ठी का लखनऊ में उस दिन बृहस्पति जी ने ही उद्घाटन किया था। अपने उद्घाटन–भाषण में बृहस्पति जी ने दिवंगत उस्ताद नसीरमोइनुद्दीन खाँ डागर के विषय में सम्यक् जानकारी भी दी थी। डागर–बंधुओं ने उस दिन जो गाया, उनमें एक ध्रुपद था, 'रसखान' का प्रसिद्ध छन्द **"मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं नित गोकुल गाँव के ग्वारन"**। विलक्षणलयकारी थी। मैं यथावत् वर्णन नहीं कर सकता। पश्चात् उनके दूसरे भाई नसीर अमीनुद्दीन खां ने गाई "सूरदासी मल्हार", जो वर्षा–काल में गेय है। जैसा भाव, तदनुरूप लय ने वातावरण को आध्यात्मिक रंग से सराबोर कर दिया। 'रसखान' का ध्रुपद छंद १२ मात्रा वाला था। पश्चात् वहाँ गाया गया 'गंगे! सरल बहो' का ध्रुपद भी श्रोताओं को भाव-विभोर कर गया। क्या खूब जुगलबंदी थी ! प्राचीन भारतीय संगीत–शैली को जैसे इन डागर–बंधुओं ने फिर से ताजगी प्रदान की लोगों में उसके प्रति रुचि जगा दी। 'बृहस्पतिजी' से वापसी में जब मैंने उक्त डागर–बन्धुओं की प्रशंसा करते हुए कहा कि "इनके संगीत में जो इस देश की सांस्कृतिक विरासत मुखर हो रही है, उसका महत्त्व विशेष है परंतु इनके परिचय से बहुधा यह पक्ष छूट ही जाता है।" मेरी बात से बृहस्पति जी जैसे अंदर से भर आये ; बोले, "आप ने तो मेरी एक दुखती रग छेड़ दी। वचनेश भाई ! भले ही यह लोग इस्लाम में हों, परन्तु इनका जीवन हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म–दर्शन और उसके प्रति अति अटूट आस्था से ओत–प्रोत है। यह बात देश के कट्टरपंथी मुस्लिमों के लिए एक ज्वलंत मिसाल है।" दूसरी ओर इस देश में बहुतांश वे मुसलमान, जिनके पूर्वज भी कभी हिन्दू ही रहे थे, आज राम–जन्म–भूमि और कृष्ण–जन्म–स्थान जैसे प्राचीन ऐतिहासिक धार्मिक तीर्थ–स्थलों को इस्लामी ढाँचे में देखने के लिए जद्दोजहद व दुराग्रह कर रहे हैं। ❒

जो कभी 'सोने की चिड़िया' था...

- बाबूलाल शर्मा
(भू.पू. कृषि मन्त्री, उ.प्र.)

विश्व के भौगोलिक मानचित्र पर नजर डालें, तो पता चलता है कि दुनिया के समान देशों में केवल १० प्रतिशत कृषि भूमि उपलब्ध है, पर देवात्मा हिमालय की अनुकम्पा से भारत परम सौभाग्यशाली देश है, जहाँ कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में ५२ प्रतिशत उर्वरा वसुन्धरा (कृषि भूमि) उपलब्ध है।

भारतीय अर्थ–व्यवस्था में कृषि की उपेक्षा

कुछ वर्ष पूर्व कृषि विशेषज्ञ डॉ० थिओडोर शुल्भ ने भारत की यात्रा की थी। प्रवास के दौरान उन्होंने यहाँ के किसानों से भेंटवार्ता की और उनके प्रश्नों का अध्ययन किया। किसानों ने बताया कि रासायनिक खाद के प्रयोग से यहाँ की कृषि भूमि खराब होने की आशंका है, जिससे कृषि उपज घटेगी। इसलिए उर्वरकों के साथ नैसर्गिक सेन्द्रीय तथा गोबर की कम्पोस्ट खाद प्रयोग करने की जरूरत है। यह सुनकर डॉ० शुल्भ आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे भारत का किसान निरक्षर होने पर भी कृषि–विशेषज्ञ की तरह चिन्तन और विचार करता है। उन्होंने अपने अध्ययन से इसका कारण खोजकर बताया कि भारतीय किसानों की संस्कृति 'कृषि–संस्कृति' है, जिसकी कम से कम दस हजार वर्ष की परम्परा है। वंश–परम्परागत उनको अनुभव प्राप्त होता रहा है। इसी कारण उनके अनुभव–सिद्ध कृषि विज्ञान के विचार तथ्यपूर्ण हैं। यदि यह तथ्य और मत भारतीय कृषि वैज्ञानिकों के सामने रखा जाता, तो हमें पिछड़ा और दकियानूसी कहकर मखौल उडाते; किन्तु पाश्चात्य विशेषज्ञ का अभिमत होने के कारण उसे माना गया। भारतीय वैज्ञानिकों के साथ विदेशियों को भी डॉ० शुल्भ का मत स्वीकार करना पड़ा कि भारतीय संस्कृति और उद्यम व्यवसाय १० हजार वर्षों से अधिक पुरातन और अनुभव सिद्ध वैज्ञानिक शोध पर आधारित है।

भारतीय इतिहास, संस्कृति और संस्कृत–साहित्य में विश्व का सबसे पुराना वैदिक साहित्य का ग्रन्थ ऋग्वेद है, जिसमें कृषि–विज्ञान का भरपूर वर्णन उल्लेखनीय है। उस वैदिक काल में एक कारीगर (कवष एलूष) था, वह अपना व्यवसाय चलाकर परिवार का सुखपूर्वक भरण–पोषण करता था; पर दुर्भाग्यवश उसे जुआ खेलने की लत लग गयी, जिससे वह कंगाल बन गया। वह उस युग के कृषि विशेषज्ञ पराशर ऋषि के पास गया। पराशर ऋषि ने "ऋग्वेद" "अक्ष–सूक्त" का उपदेश दिया। अक्षैर्मा दिव्यः। कृर्षम इत् कृषस्व विन्ते रमस्व। बहुमन्यमानः।। (जुआ मत खेलो, कृषि ही करो। इससे प्राप्त होने वाले धन से बहुत सम्मानपूर्वक जियो।) उस कारीगर ने गुरु–मन्त्र मानकर जुआ खेलना छोड़ दिया और कृषि कार्य करने लगा। कुछ दिनों में ही सुखी सम्पन्न बनकर समाज में सम्मानपूर्वक रहने लगा। आज के सन्दर्भ में ऋग्वेद के उक्त सूक्त का यह मन्त्र हमारे लिए अनुकरणीय है।

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व तक भारत धनधान्य पूर्ण वैभव सम्पन्न था। विश्व का कोई देश भारत के बराबर सम्पन्न नहीं था। विश्व का सबसे धनी देश होने के कारण भारत "सोने की चिड़िया" कहलाने लगा, जिससे उत्तर, पश्चिम दिशा में आक्रमण का सिलसिला शुरू हुआ। वास्तव में दुनिया भर में इस 'सोने की चिड़िया' का बखान ही था, जिसने असंख्य हमलावरों को इस देश की सम्पत्ति लूटने और यहाँ अपने साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। आज वही देश ५० वर्षों की आजादी की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर कंगाल बन कर खड़ा है। यदि भारत को पुनः वैभव–सम्पन्न बनाना है, तो हमे गहराई में जाकर विचार और चिन्तन करना पडेगा कि वह "सोने की चिड़िया" कहाँ और कैसे उड़ गयी? भारत की समुन्नत अर्थ–व्यवस्था क्यों और कैसे ध्वस्त हो गयी?

सम्पन्नता का रहस्य

प्राचीन काल में भारत की सम्पन्नता कृषि के श्रेष्ठ उत्कर्ष के सहारे और उत्तम कृषि के कारण थी। तभी तो भारत को "अन्नपूर्णा" तथा "शस्य श्यामला" ग्रामवासिनी भारतमाता कहा गया। विश्व के भौगोलिक क्षेत्रफल मे केवल १० प्रतिशत कृषि भूमि है। जबकि भारत में उर्वरा वसुन्धरा की ५२ प्रतिशत उपजाऊ कृषि–भूमि उपलब्ध है। देवात्मा हिमालय की अनुकम्पा से ऋतुचक्र और चार मास

की वर्षा–ऋतु तथा सिंचाई साधनों की ओर जनता व शासक–प्रशासक का विशेष ध्यान रहने से धन–धान्य परिपूर्ण भारत बना था। बरसात के पानी का संग्रह कर सिंचाई के लिए भरपूर उपयोग किया जाता था। अनादि काल से परिश्रम तथा मनोयोगपूर्वक कृषि उत्पादन बढ़ाने के प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेद युग के साहित्य तथा अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित हैं कि कुओं, बावलियों, जलाशयों, झीलों से नालियों द्वारा पानी खेतों में पहुँचता था। सम्भवतः नदियों से भरपूर पानी उपलब्ध हो जाता था। दक्षिण भारत में नदियों का पानी इकट्ठा करने के लिए बड़ी–बड़ी झीलों, जलाशय आदि बनाने का चलन था। सम्भवतः बड़े बाँध बनाकर नदियों का पानी रोककर नहरों द्वारा सिंचाई का चलन उस युग में भारत में नहीं था; परन्तु एक वैकल्पिक–विधि पर्वतों की तराई में प्रचलित थी, जिसमें ऊँचाई पर एकत्र किये गये पानी को नालियों तथा उसकी फैली हुई शाखाओं द्वारा कोसों दूर तक पहुँचाकर खेतों की सिंचाई की जाती थी। इसका प्रामाणिक अवशेष पश्चिम बंगाल क्षेत्र में "शुभांकरी दण्ड" के रूप में मिलता है। इस प्रसंग में "दण्ड" का अर्थ है "शाखा" व "प्रशाखा" से युक्त वृक्ष का तना। एक विस्तृत–क्षेत्र में सिंचाई की प्राचीन व्यवस्था का यह एक उल्लेखनीय उदाहरण है। यह नहर १६ कोस लम्बी थी और घाटी के ऊपरी भाग से जल ग्रहण करती थी। इसका निर्माण प्रसिद्ध गणविज्ञ "शुभांकर" ने किया था। अथर्ववेद में सिंचाई साधनों के झील, जलाशय, सरोवर, कूप, बावड़ी, सरिता आदि के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उनमें पानी एकत्र करने तथा उस जल के प्रयोग की विधियाँ बतायी गयी हैं।

महाभारत काल में जल–प्रबन्ध

महाभारत में राजा द्वारा सिंचाई की व्यवस्था किये जाने का स्पष्ट विवेचन किया गया है। राजनीति अर्थात् राजा के कर्तव्यों और दायित्वों में कृषि–संवर्द्धन और विकास के लिए सिंचाई का प्रबन्ध करना प्रमुख ध्यान देने योग्य विषय माना गया था। सभा पर्व में राजा युधिष्ठिर से नारद (जनता के प्रतिनिधि के रूप में घूमने फिरने वाले सन्त) पूछते हैं कि हे राजन्! क्या कृषि को सुधारने के लिए आपने स्थान–स्थान पर तालाबों, कूपों और बावड़ियों को खुदवाने की व्यवस्था की है, जिससे आपके द्वारा शासित साम्राज्य में कृषि केवल वर्षा पर ही निर्भर न रहे? और युधिष्ठिर उन ऋषि को आश्वस्त करते हैं कि उनके अधीन मन्त्री और कर्मचारी परिश्रमपूर्वक और पूर्ण निष्ठा से इस कर्तव्य का पालन करते हैं।

चाणक्य युग में

आज से २३३५ वर्ष पूर्व कौटल्य–अर्थशास्त्र में, राजा के कर्तव्यों में स्पष्ट निर्देश है कि राजा को पानी से भरे भण्डारों का निर्माण यत्र–तत्र–सर्वत्र करना चाहिए, फिर चाहे यह जलाशय स्थायी हो या ऋतु विशेष में प्रयोग किये जाने वाले। उनमें इन जलाशयों का निर्माण करने वाले श्रमिकों तथा निवेशक कर्मचारियों के निवास, भोजन तथा आने–जाने के लिए सड़कों आदि की राज्य की ओर से व्यवस्था कराने का निर्देश है। जिससे कि यह लोग मन लगाकर लोक–कल्याण के कार्य कर सकें। सिंचाई के लिए जलाशयों का निर्माण करने में कृषकों की सहकारी संस्थाओं का विशेष योगदान अर्थशास्त्र में उल्लेखनीय है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में "कार्षक" नाम के वरिष्ठ राज्याधिकारी का भी उल्लेख है, जो कृषि संबर्द्धन के सब उपायों, संपोषण, निरीक्षण आदि करता है। उसके कर्तव्य हैं कृषि–योग्य भूमि की खोज पड़ताल, कराधान, करमुक्ति आदि। जो कृषक स्वयं अपनी सिंचाई व्यवस्था करते हैं, उन्हें कर से मुक्ति का प्रावधान है। इनमें तालाब, सरोवर, झीलें, कूप, बावड़ी, उनकी मरम्मत खुदाई द्वारा गहरा करना आदि सम्मिलित है, जो शासन के कर्तव्यों में आता है। राजा को इस प्रकार का प्रोत्साहन देने का परामर्श है।

मौर्य काल में कृषि–विकास

चन्द्रगुप्त मौर्य के युग में भारत में नहरों की एक सुव्यवस्थित तथा व्यापक सिंचाई योजना थी। मेगास्थनीज ने प्राचीन काल से भारतीयों द्वारा व्यापक रूप में सिंचाई साधनों के उपयोग का उल्लेख किया है। वह लिखता है "अधिकांश कृषि भूमि में सिंचाई की समुचित और भरपूर व्यवस्था है और इसलिए हर जगह वर्ष में दो फसलें होती हैं।" चन्द्रगुप्त के शासनकाल में भूमि नापने तथा खेतों में पानी पहुँचाने के तरीकों की देखभाल और नियन्त्रण करने के लिए अलग से एक विभाग था। चन्द्रगुप्त के राज्यपाल पुष्पगुप्त द्वारा खुदाई गई सुदर्शना झील, जिससे नहरें निकालने का काम सम्राट् अशोक ने पूरा कराया, यह ऐसी यादगार है, जो प्रमाण है कि प्राचीन भारत में शासन सिंचाई साधनों के निर्माण और उसकी व्यवस्था को बहुत महत्त्व देता था। इस तरह के साधनों का उपयोग बड़ी कुशलता के साथ किया जाता था। पर्वतीय राज्यवंशों ने भी सिंचाई के लिए अनेक जलाशयों का निर्माण कराया। ऐसी ही कुछ उत्तम व्यवस्था के अवशेष पश्चिम बंगाल के

मिदनापुर, बाँकुड़ा तथा वीरभूमि में आज भी दिखाई देते हैं। सिंचाई साधनों का उल्लेख करते हुए पुराणों में भी कई कथायें आती हैं, उदाहरणार्थ हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में श्री बलराम द्वारा यमुना का मार्ग बदलकर उसे वृन्दावन की ओर मोड़कर लाने का वर्णन है। स्पष्ट है कि ऐसा उन्होंने ब्रज की सूखी भूमि को सिंचाई द्वारा हरा–भरा करने के लिए ही किया होगा। बलराम का एक प्रसिद्ध नाम 'हलधर' भी है। मूर्त्ति और चित्रों में उन्हें कन्धे पर हल धरे हाथ में मूसल लिए हुए दिखलाया गया है। इसलिए यमुना को मोड़ने का उद्देश्य सिंचाई के लिए उसका प्रयोग करना ही रहा होगा।

पाश्चात्य इतिहासकारों का मत

निष्पक्ष शोध और अनुसंधान से पाश्चात्य इतिहासकारों ने माना है कि प्राचीन भारत में सिंचाई की आम व्यवस्था करके कृषि का उच्च स्तरीय विकास किया गया था। 'बिल्काक्स', जिन्होंने इस दिशा में महान् शोध किया है, कहते, हैं "प्राचीन भारत में उससे कहीं अच्छी और अधिक व्यापक सिंचाई की व्यवस्था थी, जितनी पूरे एक हजार वर्ष की दासता के युग में नये–नये साधनों के बावजूद निर्माण नहीं हो सकी। वास्तव में राजाओं के सतत प्रयत्नों से व्यापक पैमाने पर देश के कोने–कोने में सिंचाई का सुप्रबन्ध करके कृषि–विकास द्वारा भारत की धरती को धनधान्य परिपूर्ण किये रखने की परम्परा अप्रतिहत रूप से अनादि काल से चलती रही। उसमें व्यवधान तभा आया, जब यहाँ की शस्य श्यामला भूमि को लूटने और यहाँ पर क्रूर संहार, हत्या और दमन के द्वारा अपनी सत्ता जमाने के लिए मुसलमानों के आक्रमण सिन्ध से प्रारम्भ होकर पश्चिमोत्तर दिशा में जोर–शोर से हुए।"

कृषि की अवहेलना

मुसलमान सुल्तान का एक और केवल एक ही लक्ष्य रहता था कि अपनी सल्तनत को फैलाने के लिए सेना से हमले करते रहना। अलाउद्दीन खिलजी, जो किसानों से अपनी उपज का आधा हिस्सा कर के रूप में वसूल करता था, स्पष्ट कहता था "अगर सल्तनत कायम रखना है, तो किसानों से रुपया खींचो" इस तरह भारत की खुशहाली क्रूर अत्याचारी पाँवों तले कुचलती गयी और विकास की दिशा उल्टी हो गयी। मुसलमानों के आठ सौ वर्षों के शासनकाल में बादशाही की नीति और नीयत अपने फौजी हमलों के खर्चों के लिए किसानों को लूटने–खसोटने और नई जमीनों पर सिंचाई का प्रबन्ध न करने की रही। नतीजन जमीन का बड़ा हिस्सा सिंचाई के बिना रह गया, जिससे उपज काफी घट गयी। लोगों में बेतहाशा बेरोजगारी बढ़ी। भारी करों के बोझ और सिंचाई की उपेक्षा ने देश के वैभव और सुखी सम्पन्न जीवन को बर्बाद कर दिया। उर्वरा वसुन्धरा का मालिक किसान कंगाल बन गया। जहाँ काफी कृषि योग्य भूमि थी, वहाँ जैसे–तैसे गुजारा चला; वरना अकाल में लाखों लोगों ने अपनी जान गँवा दी। फिर भी उपजाऊ भूमि इतनी थी और गाय, भैंस पालकर व बाग लगाकर एवं छोटे पैमाने पर दस्तकारी के द्वारा लोग किसी प्रकार गुजारा करने लगे।

अंग्रेजों की दुष्टता

१८वीं शताब्दी के बीच जब अंग्रेजों ने भारत में प्रभुसत्ता प्राप्त की, तो प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात पर्याप्त था और खेती योग्य भूमि एक गीत गाने के एवज में मिल सकती थी। परन्तु उसके बाद स्थिति बड़ी तेजी से बदली, जिसके कई कारण थे। ब्रिटिश शासकों की नीति थी कि भारत के ग्रामीण उद्योगों और हस्तकला शिल्पों को नष्ट कर दिया जाय, जिससे ब्रिटेन के उत्पादनों के लिए बाजार मिल सके। ग्रामीण कुटीर उद्योग और हस्तकला के विनाश का परिणाम यह हुआ कि करोड़ों लोग खेती के सहारे जीने को विवश किये गये। इस प्रकार धरती पर दबाव बढ़ता गया। नये कानूनों ने पूँजीपतियों को खेती योग्य भूमि को खरीद कर सम्पत्ति बनाने की सुविधा दी। १९वीं शताब्दी के मध्य तक कृषि भूमि दुर्लभ होती गयी और खेतिहर मजदूर इतने अधिक हो गये क्योंकि हर जिले की करीब एक तिहाई आबादी बेरोजगार बन गयी। यही बेकार लोग भी भूमि पर बोझ बन गये; क्योंकि केवल भूमि ही ग्रामीण जीवन का एकमात्र सहारा रह गयी थी। इस प्रकार ग्रामीण अंचलों में गरीबी की हालत बद से बदतर होती चली गयी। यही कारण है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद एक हजार वर्ष से सिंचाई तथा खेती नितान्त उपेक्षा और शोषण के शिकार रहे तथा उनके संचित रूप में गरीबी विरासत में हमें मिली।

स्वाधीनता के बाद

जब १९४७ में भारत आजाद हुआ, देश की सरकार का प्रथम पुनीत कर्तव्य था कि सिंचाई और कृषि विकास का विशाल जन–आन्दोलन चलाती, जिससे पिछले एक हजार साल की गरीबी, बेरोजगारी, बदहाली का निराकरण होता और अधिक से अधिक भूमि खेती के योग्य उर्वरा

बनाकर प्राप्त होती; तेजी से सिंचाई के साधनों का विकास होता और कृषि उत्पादन बढ़ता तथा ग्रामीण क्षेत्र की आय बढ़ती, जिससे सारे भारत में सम्पन्नता और क्रय–शक्ति की वृद्धि होती। इसी से बचत तथा उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ती और अत्यन्त स्वाभाविक एवं सामान्य प्रक्रिया से उद्योग और सम्पूर्ण आर्थिक विकास की गति मिलती। चतुर्दिक् समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त होता, परन्तु खेद है कि भारत के भाग्य में यह सब लिखा नहीं था।

स्वदेशी के पुरोधा लोकमान्य तिलक के बाद गांधी जी परम्परागत स्वदेशी–भाव भूमि पर देश की अर्थव्यवस्था का निर्माण कृषि तथा ग्रामीण विकास की नींव पर खड़ा करना चाहते थे। किन्तु हमारे राजनेता विदेशी भोगवादी संस्कृति की चकाचौंध से अभिभूत थे। उन्होंने गांधी जी के स्वदेशी विचारों को पिछड़ापन और दकियानूसी ठहरा कर नकार दिया। इसी का परिणाम है कि आज देश गरीबी, बेरोजगारी और विदेशी ऋण से दबा हुआ कराह रहा है और कंगाली के कगार पर खड़ा हो गया है।

कृषि प्रधान देश

भारतीय अर्थ–व्यवस्था का आधार कृषि ही है। भारत में आर्थिक विकास की सारी प्रक्रिया को कृषि विकास से ही प्रारम्भ करना अपरिहार्य है। दूसरे शब्दों में भारत का औद्योगिक विकास का मार्ग २१ करोड़ खेतों में से होकर जाता है, क्योंकि कृषि उत्पादन ही अन्य सभी आर्थिक प्रगति को गति दे सकता है। अगर हम कृषि में असफल हुए, तो हम उद्योगों में भी सफल नहीं हो सकते। उद्योग से कृषि अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि उद्योग भी कृषि पर ही निर्भर होते हैं। उद्योग कभी भी विकसित नहीं होगा, यदि कृषि भरपूर, स्थायी और प्रगति की ओर नहीं है।

निशुल्क जल–प्रबन्ध

भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल ३२.८६ करोड़ हेक्टेयर (८३ करोड़ एकड़) है। उसमें से केवल १४.४० करोड़ हेक्टेयर (३५ करोड़ एकड़) कृषि भूमि पर खेती हो रही है। १७ एकड़ भूमि आज भी ऊंसर, बंजर, परती, दलदली, जलप्लावित और बीहड़ की है, जो सरकारी स्तर पर कृषि योग्य बनायी जाय और साढ़े तीन करोड़ भूमिहीनों को आवंटित की जाय; साथ ही हर खेत को सिंचित बनाकर दो फसली बनाया जाय तथा ५२ करोड़ एकड़ पर खेती की जाय, तो एक अरब टन अनाज पैदा किया जा सकता है। इतनी क्षमता आज भी भारतभूमि में उपलब्ध है।

भारत में सत्तर करोड़ एकड़ घनमीटर पानी हर साल बरसता है। विगत ५० वर्षों में सिंचाई की परियोजनाओं, अनेक उद्योगों और पेयजल योजनाओं द्वारा अब तक केवल चार करोड़ एकड़ घनमीटर पानी का उपयोग किया जा सका है। शेष पानी नदी, नालों को उफनाता, बाढ़ की स्थिति पैदा कर खेत, खलिहान, गाँव जलप्लावित करता, भयंकर विनाश–लीला करता समुद्र में चला जाता है। देश में आज भी लाखों एकड़ में फैले कई लाख जलाशय और झीलें हैं, जिनमें पानी कभी नहीं सूखता। हजारों बरसाती नाले लाखों किलोमीटर लम्बाई में फैले हैं। उत्तर प्रदेश में ही ५०० एकड़ से लेकर ३५०० एकड़ तक बड़े–बड़े स्थायी जलाशय और झीलें एक लाख ३५ हजार हैं। करीब १६०० बरसाती नाले हजारों किलोमीटर लम्बाई के हैं। बहराइच जिले की अनारकली झील २१०० एकड़ में तथा बघेल ताल ३४०० एकड़ रकबे में फैला है। यदि इन बरसाती नालों को वैज्ञानिक ढंग से गहरा और चौड़ा कर नहरों का आकार दिया जाये और इन पर २००–२०० मीटर पर अवरोध बाँध बना दिये जायें तथा इसी तरह स्थायी जलाशयों, झीलों और गाँव के पोखरों, ताल–तलैयों का वैज्ञानिक ढंग से सुधार कर दिया जाय, तो खेत, खेलिहान, गाँव का सारा पानी इनमें खपाया जा सकता है। देश में प्रतिवर्ष ५८ इंच वर्षा होती है। इन बरसाती नालों पर बने अवरोध बाँधों, सरोवरों, जलाशयों, झीलों, ताल–पोखरों में ३० इंच पानी खपाया जा सकता है। ऊसर भूमि में भी १०० एकड़ रकबे में एक बड़ा जलाशय बनाया जाय, तो ऊसर सुधार के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो सकता है।

वर्षा–जल पर आधारित स्वदेशी "सतह जल समेट योजना" कम खर्चीली सरल सुलभ त्वरित फलदायी है और कोई खतरा नहीं हैं। इस योजना से बाढ़ पर भी नियन्त्रण पाया जा सकता है और सूखे की स्थिति में भी भरपूर पानी हर खेत को मिल सकता है। नहरों के किनारे दिनों दिन ऊपर जा रहे जल स्तर से तथा सीवेज से तैलीय ऊसर बन रही भूमि की समस्या नहीं रहेगी। दूसरी ओर भूगर्भ–जल के अधिक दोहन से उसके गम्भीर नतीजे सामने आ रहे हैं। भूमिगत पानी अधिक निकाल लेने के कारण जल–स्तर काफी नीचे जा रहा है। इस कारण गर्मी के दिनों में कुँए और नलकूप सूख जाते हैं और पीने के पानी की समस्या खड़ी हो रही है। इस योजना से भू–गर्भ जलस्तर ऊपर उठेगा और तेजी से फैल रहा

(शेष पृष्ठ ६० पर)

बारहवीं लोकसभा में

संस्कृत में शपथ लेने वाले ६५ सांसद्

[बारहवीं लोकसभा के संसद् सदस्यों द्वारा शपथ–ग्रहण समारोह में पहली बार संस्कृत में शपथ लेने वाले सांसदों की एक बड़ी संख्या दृष्टिगत हुई। कांग्रेस के एकमात्र संस्कृत–प्रेमी डॉ० बलराम जाखड़ तथा शिवसेना के मधुरकर सरपोतदार के अतिरिक्त शेष सभी सदस्य भाजपा के थे। 'राष्ट्रधर्म' की इन्हें कोटिशः बधाई।]

क्र. नाम	क्षेत्र	राज्य
१. श्रीमती सुषमा स्वराज	दक्षिण देहली	देहली
२. श्रीमती रीता वर्मा	धनबाद	बिहार
३. श्रीमती भावना बेन	सुरेन्द्र नगर	गुजरात
४. श्रीमती भावना बेन देवराज भाई चिखालिया	जूनागढ़	गुजरात
५. कुमारी जयाबेन भरतकुमार ठक्कर	बड़ोदरा	गुजरात
६. श्रीमती सुमित्रा महाजन	इन्दौर	मध्यप्रदेश
७. श्रीमती कमल रानी	घाटमपुर	उ०प्र०
८. श्रीमती शीला गौतम	अलीगढ़	उ०प्र०
९. डॉ. मुरलीमनोहर जोशी	प्रयाग	उ०प्र०
१०. श्री संतोषकुमार गंगवार	बरेली	उ०प्र०
११. श्री सोमपाल	बागपत	उ०प्र०
१२. श्री बच्ची सिंह रावत	अलमोड़ा	उ०प्र०
१३. मे.ज. (से.नि.) श्री भुवन चन्द्र खण्डूरी	गढ़वाल	उ०प्र०
१४. श्री राजवीर सिंह	आँवला	उ०प्र०
१५. श्री राघवेन्द्र सिंह	शाहाबाद	उ०प्र०
१६. श्री जनार्दन प्रसाद मिश्र	सीतापुर	उ०प्र०
१७. स्वामी रामविलास वेदान्ती	प्रतापगढ़	उ०प्र०
१८. श्री डॉ. संजय सिंह	अमेठी	उ०प्र०
१९. श्री बैजनाथ रावत	बाराबंकी	उ०प्र०
२०. श्री रामसिंह चौहान	बस्ती	उ०प्र०
२१. श्री आदित्यनाथ	गोरखपुर	उ०प्र०
२२. श्री रामनगीना मिश्र	पडरौना	उ०प्र०
२३. स्वामी चिन्मयानन्द	मछलीशहर	उ०प्र०
२४. श्री विजय	सैदपुर	उ०प्र०
२५. श्री रामसकल	राबर्ट्सगंज	उ०प्र०
२६. श्री वीरेन्द्र सिंह	मिर्जापुर	उ०प्र०
२७. श्री रमेशचन्द्र द्विवेदी	बाँदा	उ०प्र०
२८. श्री जगतवीर सिंह द्रोण	कानपुर	उ०प्र०
२९. श्री श्याम बिहारी मिश्र	बिल्हौर	उ०प्र०
३०. स्वामी सच्चिदानंद हरिसाक्षी	फर्रूखाबाद	उ०प्र०
३१. श्री अशोक कुमार प्रधान	खुर्जा	उ०प्र०
३२. श्री रमेशचन्द्र तोमर	हापुड़	उ०प्र०
३३. श्री जबिया गोवर्धन जाधवभाई	पोरबन्दर	गुजरात
३४. श्री राणा राजेन्द्र सिंह घनश्याम सिंह	भावनगर	गुजरात
३५. श्री रतिलाल कालिदास वर्मा	धनधुका	गुजरात
३६. श्री हरीन्द्र पाठक	अहमदाबाद (कर्णावती)	गुजरात
३७. श्री जयसिंह जी नानसिंह जी चौहाण	कपाडवच	गुजरात
३८. डा. ए.के. पटेल	मेहसाना	गुजरात
३९. डॉ. सत्यनारायण जटिया	उज्जैन	मध्यप्रदेश
४०. डॉ. रामकृष्ण कुसमरिया	दमोह	मध्यप्रदेश
४१. श्री सोहन पटाई	कांकेड़	मध्यप्रदेश
४२. श्री यावरचन्द गहलोत	शाजापुर	मध्यप्रदेश
४३. श्री रामेश्वर पाटीदार	खरगोन	मध्यप्रदेश
४४. डॉ. लक्ष्मी नारायण पाण्डेय	मन्दसौर	मध्यप्रदेश
४५. साध्वी उमा भारती	खजुराहो	मध्यप्रदेश
४६. डॉ. देवेन्द्र प्रधान	देवगढ़	उड़ीसा

क्र.	नाम	क्षेत्र	राज्य
४७.	श्री सलखान मुमू	मयूरभंज	उड़ीसा
४८.	श्री महामेघवाहन ऐर खारवेल स्वाई	बालासोर	उड़ीसा
४९.	श्री बिक्रम केसरी देव	कालाहाण्डी	उड़ीसा
५०.	श्री जुएल ओरॉंव	सुन्दरगढ़	उड़ीसा
५१.	श्री उपेन्द्र नाथ नायक	केओञ्झार	उड़ीसा
५२.	श्री राम नाइक	मुम्बई (उत्तर)	महाराष्ट्र
५३.	श्री रामकृष्ण बाबा पाटील	औरंगाबाद	महाराष्ट्र
५४.	श्री मधुकर सरपोतदार	मुम्बई (उ.प.)	महाराष्ट्र
५५.	श्री गिरधारी लाल भार्गव	जयपुर	राजस्थान
५६.	श्री बलराम जाखड़	बीकानेर	राजस्थान
५७.	श्री अनन्त कुमार हेगड़े	केनरा	कर्णाटक
५८.	श्री बसबराण पाटील सेडग्	गुलबर्गा	कर्णाटक
५९.	श्री बण्डारु दत्तात्रेय	सिकन्दराबाद	आन्ध्र
६०.	श्री चेन्नमनेनि विद्यासागरराव	करीमनगर	आन्ध्रप्रदेश
६१.	श्री कबीन्द्र पुरकायस्थ	सिलचर	असम
६२.	श्री लालबिहारी तिवारी	देहली पूर्व	देहली
६३.	श्री वैद्य विष्णु दत्त	जम्मू	जम्मूकश्मीर
६४.	श्री सि.पि. राधाकृष्णन	कोयम्बत्तूर	तमिलनाडु
६५.	श्री कथीरिया वल्लभभाई रामजी भाई	राजकोट	गुजरात

□

भारत की भूमि पर चीन का कब्जा- एक दृष्टि में

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चीन ने १९६२ में भारत पर अकस्मात् आक्रमण किया और हमारी काफी भूमि पर अभी तक बलात् काबिज है। निम्नांकित मानचित्र में इस कब्जे को निर्देशित किया गया है :– यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चीन ने १९६२ में भारत पर आक्रमण किया और हमारी काफी जमीन पर अभी तक कब्जा किया हुआ है, जिसका एक दृष्टि में विवरण निम्नांकित है।
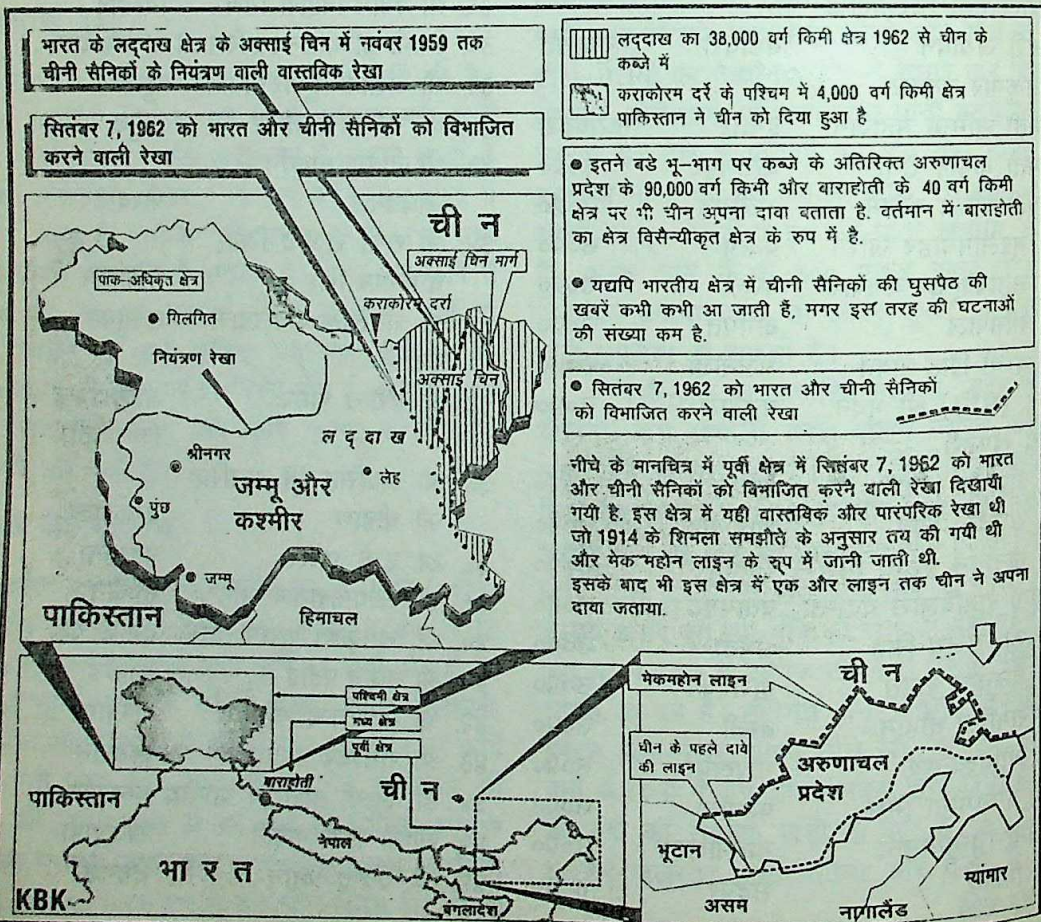
पुण्य-तिथि (१२ अगस्त) पर—

भारतीय क्रान्ति की माता : भिकाई जी कामा

– डॉ० भवानीदीन

भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भारत के मुक्ति संघर्ष का एक अप्रितम दस्तावेज है। इसका हर पृष्ठ क्रान्तिकारियों के समग्र समर्पण का साक्षात् मूर्त–रूप है। भारत के क्रान्तिकारी संघर्ष के सूत्रपात को लेकर मत–वैभिन्न्य है; किन्तु इतना निश्चित है कि १७५७ के प्लासी–युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहाग्नि प्रज्वलित होने लगी थी। १७६४ में पहला सैन्य–विद्रोह बंगाल में हुआ। तत्पश्चात् बंगाल में ही १७६५ में दूसरा सैन्य–विप्लव हुआ। १८०६ का वेल्लोर आन्दोलन भी स्वातन्त्र्य–संघर्ष का शिलान्यास था। इन विद्रोहों के बाद भारतभूमि में एक ऐसी क्रान्तिकारिणी का जन्म हुआ, जो कालान्तर में अपनी राष्ट्रधर्मी निष्ठा के कारण भारतीय क्रान्ति की माता कहलायीं। २४ सितम्बर १८६१ में बम्बई के प्रसिद्ध पारसी परिवार में भिकाई जी (भिकाजी) का जन्म हुआ, जो आगे चलकर मैडम कामा के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

प्रारम्भिक जीवन

बम्बई के प्रतिष्ठित पारसी सोहराब जी फ्राम जी पटेल भिकाई जी कामा के पिता थे और जीजीबाई उनकी माँ थीं। भिकाई जी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि की थीं। छात्र जीवन में वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में उन्हें कई पुरस्कार मिले। भिकाई जी कामा ने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ही कई भाषाएँ सीख ली थीं। बाल–जीवन में ही उन्हें क्रान्तिकथाएँ रुचिकर लगने लगी थीं। धीरे–धीरे उनकी मनोभूमि में पड़ा आंग्ल–विरोधी बीज अंकुरित होने लगा। कुछ समय बाद कामा के पिता सोहराब जी ने १८८५ में उनका विवाह बम्बई के ख्याति–प्राप्त वकील के० आर० कामा के साथ कर दिया। उन्होंने सोचा था कि ऐश्वर्यशाली जीवन भोगी होकर हो सकता है कि कामा अपना क्रान्तिकारी जीवन बदल ले; किन्तु हुआ उलटा। श्रीमती कामा ने सार्वजनिक जीवन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। १८८६ में बम्बई में बड़े पैमाने पर प्लेग फैला। उन्होंने रोग–पीड़ित लोगों की पूरे मनोयोग से सेवा की। सुप्रतिष्ठित परिवार की एक स्त्री के लिए अस्पताल के रोगियों की इस तरह सेवा–शुश्रुषा करना एक आश्चर्यजनक बात थी। श्रीमती कामा ने कुछ दिनों तक बम्बई में फिरोजशाह मेहता के पत्र 'क्रानिकल' में साथ–साथ काम किया। इस पत्र ने उनके भावी राजनैतिक जीवन के लिए आधारभूमि तैयार की। कामा के प्रति रुस्तम जी उनके राजनैतिक विचारों से सहमत नहीं थे। रुस्तम जी का विश्वास था कि ब्रिटिश दयालु होते हैं। पति–पत्नी का यह मत–विरोध कालान्तर में और गहरा हो गया, जो आगे चलकर सम्बन्धों के विच्छेद पर समाप्त हुआ।

यूरोपीय प्रवास

प्लेग पीड़ितों की देखभाल के कारण श्रीमती कामा भी इस महामारी की चपेट में आ गयीं। मरने से तो वे बच गयीं; किन्तु बहुत कमजोर हो गयीं। उनके शुभचिन्तकों ने उन्हें १६०२ में लन्दन भेजा। उनके यूरोप प्रवास के साथ ही श्रीमती कामा के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। लन्दन में उनका भारतीय राजनीति के पितामह दादाभाई नौरोजी से परिचय हुआ। वे नौरोजी से बहुत प्रभावित हुईं। जुलाई १६०५ में वहाँ एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। उक्त तिथि में लन्दन में इण्डिया हाउस का उद्घाटन हुआ, जो आगे चलकर प्रवासी–भारतीयों के लिए क्रान्ति का केन्द्र बना। श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि के साथ मैडम कामा ने क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय रुचि ली। संगठनात्मक कार्यों में उन्होंने अद्भुत कौशल का परिचय दिया। मैडम कामा ने युवा भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणात्मक भूमि तैयार की। वे खयाली पुलाव पकाने की अपेक्षा वास्तविकता पर अधिक ध्यान देती थीं। उन्होंने लन्दन में अपना सघन राजनीतिक अभियान छेड़ा। वहाँ ब्रिटिश–विरोधी अनेक भाषण किये। वे श्यामजी कृष्ण वर्मा की पत्रिका "इण्डियन सोशियोलोजिस्ट" में नियमित रूप से लेख लिखती रहीं।

राष्ट्रीय ध्वज निर्मात्री

अगस्त १६०७ में पेरिस के स्टट्गार्ट नामक स्थान में आयोजित "अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन" में उन्होंने दो सदस्यों– वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय एवं सरदार सिंह

राणा के साथ भारत का प्रतिनिधित्व किया। मैडम कामा ने उस सम्मेलन में जिस झण्डे को फहराया था, वह भारत का पहला राष्ट्रीय झण्डा था। उस झण्डे का आकल्पन प्रख्यात राष्ट्रसेवी सावरकर ने तैयार की थी। झण्डे में तीन पट्टियाँ थीं। हरा रंग भारत की धनधान्यपूर्ण हरीतिमा को दर्शा रहा था। उस हरी पट्टी पर आठ कमल पुष्प अंकित थे। उस समय भारत में आठ प्रान्त थे। आठ कमल भारतीय योग–साधना के प्रतीक भी हैं। झण्डे के बीच की पट्टी केसरिया रंग की थी। यह रंग भारतीय वीरता का द्योतक है। इसी पट्टी पर युवा वीरों का युद्ध घोष 'वन्देमातरम्' अंकित था। सबसे नीचे की पट्टी लाल रंग की थी। यह रंग भारतीय अनुराग का रंग माना जाता है। अनुराग और एकता की भावना को दर्शाने के लिए लाल पट्टी पर एक ओर सूर्य तथा दूसरी ओर चन्द्र अंकित था। कालान्तर में यही ध्वज क्रान्तिकारी युवाओं के अन्य दस्तावेजों के साथ इन्दुलाल याज्ञनिक द्वारा गुप्त रूप से भारत लाया गया। तत्कालीन ध्वज आज भी पुणे के 'मराठा' और 'केसरी' पत्र के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

मैडम कामा ने ध्वजारोहण के बाद २५ देशों के प्रतिनिधियों के समक्ष एक ओजस्वी भाषण किया। उन्होंने भाषण करते हुए कहा– "मेरा नियम है कि अपने देश का झण्डा फहराकर ही मैं बोलना प्रारम्भ करती हूँ। भारत के महान् बलिदानियों के तप, त्याग और बलिदानों की गरिमा से युक्त स्वाधीनता के प्रतीक इस झण्डे को मैंने आपके सामने फहराया है। मेरे सम्मुख बैठे हुए संसार के सभी स्वाधीनता प्रेमी सदस्यों से मैं निवेदन करती हूँ कि आप लोग इस झण्डे के सम्मान के लिए खड़े हों और इसका अभिवादन करें।" उनकी वाणी का लोगों पर जादू जैसा असर हुआ। सभी सदस्यों ने खड़े होकर अपनी–अपनी टोपियाँ उतार कर झण्डे का सम्मान किया। मैडम कामा ने इसके बदले में सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त किया और अपने उद्‌बोधन में ब्रिटिश साम्राज्य पर कड़ा प्रहार किया।

वस्तुतः आज हम जिस संशोधित राष्ट्रीय ध्वज को देखते एवं उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं, उसकी निर्मात्री मैडम कामा ही थीं।

अमरीका–प्रवास

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस के बाद मैडम कामा अमरीका गयीं। वहाँ पर उन्होंने भारतीय स्वाधीनता विषयक अनेक सभाएँ कीं और स्वामी विवेकानन्द की भाँति राजनैतिक क्षेत्र में भारतीय गौरव का डंका बजाया। मैडम कामा का अमरीकियों ने जोरदार स्वागत किया। न्यूयार्क में मैडम कामा के अनेक भाषण हुए। उन दिनों प्रख्यात क्रान्तिकारी मौलवी बरकतुल्ला अमरीका में ही थे। उन्होंने मैडम कामा का पूरा साथ दिया उन्होंने अपने अमरीकी प्रवास में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के शोषण का खुलासा किया।

मैडम कामा पेरिस में बहुत दिनों तक रहीं। उन्होंने वहाँ कई युवा क्रान्तिकारियों को प्रशिक्षित भी किया। १९३५ में ७५ वर्ष की आयु में भारत सरकार ने मैडम कामा को स्वदेश वापसी की अनुमति प्रदान की। ४५ वर्षों के अपने निर्वासन के लम्बे अन्तराल के बाद जब वह भारत लौटीं, तो उन्हें आते ही पारसी अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। वे भारत लौटने के बाद मात्र आठ महीने ही जीवित रहीं। १२ अगस्त, १९३६ को भारत की इस महान् क्रान्ति-नेत्री का देहावसान हो गया।

मैडम कामा का एक ऐसे समय में भारतीय राजनीति में पदार्पण हुआ था, जब स्वातन्त्र्य–संघर्ष में महिलाओं की प्रतिभागिता नगण्य थी। श्रीमती कामा ने एक सुप्रतिष्ठित परिवार की स्त्री होकर भी जिस तरह से अपने आपको राष्ट्रार्पित किया, वह निश्चित रूप से महिला जगत् का अनुपम दृष्टान्त है। किसी भी राष्ट्र के मुक्ति–संघर्ष हेतु एक राष्ट्रीय ध्वज की आवश्यकता होती है। आज हम जिस ध्वज को अतीत के गौरव एवं गरिमा का प्रतीक मानते हैं, उस ध्वज की निर्मात्री मैडम कामा ही थीं, किन्तु अफसोस कि जिस ध्वज की कीर्ति–रक्षा हेतु अनेक युवा देशभक्तों ने अपने आपको न्योछावर कर दिया, आज उसी झण्डे का देश के अनेक भागों में अपमान निश्चित रूप से एक राष्ट्रीय विडम्बना है।

मैडम कामा का प्रवासी क्रान्तिकारियों में एक अलग ही स्थान था। उन्होंने लन्दन, फ्रान्स एवं अमरीका आदि देशों में भारत की स्वतन्त्रता के लिए युवाओं को नयी प्रेरणा दी; देश एंव विदेश में आंग्ल–विरोधी अभियान में तन–मन–धन से कार्य किया और अनेक क्रान्तिकारियों के परिजनों की आर्थिक सहायता की। वस्तुतः उनका समग्र जीवन त्याग एवं बलिदान का जीवन रहा। स्वतन्त्र भारत उनका सपना था। वे लगभग पाँच दशकों तक राष्ट्रसेवा में निरत रहीं। उनकी इसी भूमिका ने उन्हें "भारतीय क्रान्ति की माता" का स्थान दिलवाया। आज आवश्यकता है कि उनके राष्ट्रसेवी जीवन को जनता के सामने रखा जाय। उनके जीवन–मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने तब थे। ❒

– वार्ड–१२, लाजपतनगर (गुरगुज)
म०नं०–२७०, भरुवा, सुमेरपुर, हमीरपुर

संस्मरण-

"..... फिर भी घिरी काली रात"

– वचनेश त्रिपाठी

बात बहुत पुरानी है, शायद ४९–५० बरसातें बीतने आईं। रात थी, कोई ९, ९.३० बजा होगा। मैं उन दिनों लखनऊ में ही सदर मुहल्ले में उसी किराये की इमारत में रह रहा था, जहाँ अटल जी रहते थे। बरसात का मौसम था। वर्षा थम चुकी थी, अटल जी कब आ गये वापस, जान न सका। मैं स्नानघर की तरफ से निकला तो उसके अन्दर से अटल जी की गुनगुनाहट सुनी और फिर मैं वहीं बाहर ठहर गया, स्नानघर का द्वार आधा खुला ही था, मैंने अटल जी को पुकार कर पूछा– 'क्या कोई नई कविता लिखने का मूड बन रहा है ?' तो वे बाहर आ गये हाथ पोंछते हुए– बोले, "अरे ! आज बड़ा आनन्द आ गया। सोहनलाल जी द्विवेदी (बिन्दकी निवासी) की आज एक बहुत बढ़िया कविता सुनी, उसकी दो पंक्तियाँ याद आ रही थीं, वही दोहरा रहा था। समझ गया कि अभी स्नानघर के अन्दर हाथ-मुँह धोते हुए जो पंक्तियाँ अटल जी गुनगुना रहे थे, वे सोहनलाल जी द्विवेदी की ही लिखी रही हैं। सोहनलाल जी कोई सामान्य कवि नहीं थे। उनके लिखे राष्ट्रीय गीत ब्रिटिश पराधीनता–काल में स्वतन्त्रता–आन्दोलन में सक्रिय सत्याग्रही टोलियों और जुलूस के लोग सामूहिक गान के रूप में गाते हुए चलते थे, इसी कारण एक पत्र में एक बार स्वयं गांधीजी ने सोहनलाल जी को "राष्ट्र–कवि" लिखा था, (वह पत्र मैंने देखा था बिन्दकी में सोहनलाल जी के पास) और गांधी जी द्वारा प्रदत्त इस गौरव–गरिमा से द्विवेदी जी फूले नहीं समाये थे, यह भी मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। भारत सरकार ने उन्हें "पद्मश्री" का अलंकरण प्रदान किया, जो उस महान् कवि की स्वतन्त्रता–आन्दोलन की जो देन रही, उसको देखते हुए, कोई वजन न रखता था। अस्तु, मेरे पूछने पर उस रात लखनऊ में सोहनलाल जी की लिखी जो ३ पंक्तियाँ सुनाईं थीं, वे मुझे अभी तक याद हैं, पूरी कविता सम्भवतः "राष्ट्रधर्म" या "पाञ्चजन्य" में कभी छपी हो तो छपी हो, पर वह अब मुझे कहीं प्राप्य नहीं। वे तीन पंक्तियाँ ये हैं–

"ऐसे हर्ष की क्या बात !
कटी काली रात,
फिर भी घिरी काली रात
ऐसे हर्ष की क्या बात !"

वस्तुतः जैसा कि अटल जी ने बताया था, यह कविता सोहनलाल जी ने १५ अगस्त पर अर्थात् भारत के प्रथम 'स्वतन्त्रता–दिवस' (१५ अगस्त, सन् १९४७) पर लिखी थी– तदनुसार इन ३ पंक्तियों का अर्थ है कि, आजादी मिली, यह ठीक है, परन्तु फिर भी ऐसी कोई खुशी की बात नहीं है, क्योंकि काली रात (पराधीनता) तो कटी (समाप्त हुई), परन्तु फिर से एक काली कराली रात घिर आई है और काली रात है भारत का विभाजित होना, पाकिस्तान बनना तय होना, देश का खण्डित होना और पंजाब, सिन्ध और बंगाल में निरीह निहत्थी निर्दोष हिन्दू जनता का लाखों की संख्या में कत्ले–आम होना, करोड़ों लोगों का बेघर होकर विस्थापित बनना, दर–दर भटकना। यही दुर्निवार दर्द, अन्तस्–पीड़ा कवि की वाणी में मुखर हो उठी थी– उसकी सशक्त लौह लेखनी से काल–पटल पर अमिट अक्षरों में अंकित हो उठी थी। और यह बड़ी बात थी, बड़े साहस की बात उस जमाने में; क्योंकि सोहनलाल जी अर्से तो तक स्वतन्त्रता–आन्दोलन से जुड़े रहे थे, उनकी कलम तब भी आजादी के लिए आग उगलती रही थी, जिन दिनों सरदार भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ दास ६३ दिन तक जेल में अनशन करके, तिल–तिल गलते छीजते शहीद हुए थे, उन दिनों सोहनलाल जी ने उस शहीद पर लिखा था–

"ओ शहीद ! उठने दे अपना फूलों भरा जनाजा।"

और एक दिन मेरे पास ही बैठे हुए भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी जयदेव कपूर, जी (१८ वर्ष काले पानी की कैद में सड़ते रहे थे) बोल उठे थे कि "द्विवेदी जी की यह कविता मैंने कंठस्थ कर ली थी और वह एक अखबार में छपी मुझे अण्डमान (कालेपानी) में मिली थी– यह बात जयदेव भाई ने सोहनलाल जी से गौरवपूर्वक कही थी।" □

> "ऐसे हर्ष की क्या बात !
> कटी काली रात,
> फिर भी घिरी काली रात
> ऐसे हर्ष की क्या बात !"

अमृत-वाणी

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।
(शाङ्र्गधरपद्धति, ६६६)

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह विद्या तथा अर्थ का उपार्जन निरन्तर इस प्रकार से करे कि जैसे वह अजर–अमर है तथा धर्म का आचरण निरन्तर इतनी तत्परता से करे कि जैसे मृत्यु ने उसके बाल पकड़ रखे हों अर्थात् किसी भी क्षण उसकी मृत्यु हो सकती है।

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
प्राप्नुयाद् बुद्ध्यवज्ञानम् अपमानं च शाश्वतम्।।
(सुभाषितावलि, २७८६)

यदि साक्षात् बृहस्पति भी बिना उचित अवसर के कोई बात कहें, तो वह भी मन्द बुद्धि वाले समझे जायेंगे तथा अत्यन्त अनादर को प्राप्त होंगे।

ते धन्यास्ते महात्मनः तेषां लोके स्थितं यशः।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः।।
(पञ्चतन्त्र, १/२८५)

संसार में वे व्यक्ति ही धन्य समझे जाते हैं, वे ही महापुरुष कहे जाते हैं और उन्हीं का यश स्थिर रहता है, जिनके द्वारा या तो काव्यों का सृजन किया जाता है या फिर काव्यों में जिनकी कीर्ति गायी जाती है।

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।
(महाभारत, ५/१२५५)

जो पराक्रमी है, जो विद्वान् है तथा जो सेवा करना जानता है— ये तीन प्रकार के व्यक्ति ही स्वर्णपुष्पों वाली पृथ्वी को प्राप्त करते हैं अर्थात् सुख–समृद्धि से सम्पन्न होते हैं।

क्षमाखड्गः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ?
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।।
(चाणक्यशतक, ३/३०)

जिसके हाथ में क्षमारूपी तलवार है, उसका कोई दुष्ट व्यक्ति क्या बिगाड़ सकता है। जहाँ घास–फूस न हो, वहाँ गिरी हुई अग्नि स्वयं ही शान्त हो जाती है।

— प्रस्तुति : डॉ. अम्बिकानन्द मिश्र

(पृष्ठ ७१ का शेष)

सागर के आगर ...

बरुआ सागर ओरछा के नरेश उदित सिंह ने और अरजर सुरजन सिंह ने क्रमशः सन् १७३७ तथा १६७१ में बनवाए थे। इनकी नहरें आज उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग की प्रतिष्ठा बढ़ा रही हैं।

पानी की तस्करी ? सारा इंतजाम हो जाए; पर यदि पानी की तस्करी न रोकी जाए, तो अच्छा खासा तालाब देखते ही देखते सूख जाता है। वर्षा में लबालब भरा, शरद में साफ सुथरे नीले रंग में डूबा, शिशिर में शीतल हुआ, बसंत में झूमा और फिर ग्रीष्म में ? तपता सूरज तालाब का सारा पानी खींच लेगा। शायद तालाब के प्रसंग में ही सूरज का एक विचित्र नाम 'अंबु तस्कर' रखा गया है। तस्कर हो सूरज जैसा और आगर यानी खजाना बिना पहरे के खुला पड़ा हो तो चोरी होने में क्या देरी ?

इस चोरी को बचाने की पूरी कोशिश की जाती है तालाब के आगर को ढालदार बनाकर। जब पानी कम होने लगता है तो कम मात्रा का पानी ज्यादा क्षेत्र में फैलने से रोका जाता है। आगर में ढाल होने से पानी कम होते हुए भी कम हिस्से में अधिक मात्रा में बना रहता है और जल्दी वाष्प बन कर उड़ नहीं पाता। ढालदार सतह में प्रायः थोड़ी गहराई भी रखी जाती है। ऐसे गहरे गड्ढे को अखड़ा या पियाल करते हैं। बुंदेलखण्ड के तालाबों में इसे भर कहते हैं। कहीं–कहीं इसे बंडारौ या गर्ल के नाम से भी जाना जाता है। इस अंग का स्थान मुख्य घाट की ओर रखा जाता है या तालाब के बीचों–बीच। बीच में गहरा होने से गर्मी के दिनों में चारों ओर से तालाब सूखने लगता है। ऐसे में पानी घाट छोड़ देता है। यह अच्छा नहीं दिखता। इसलिए मुख्य घाट की तरफ पियाल रखने का चलन ज्यादा रहा है। तब तीन तरफ से पानी की थोड़ी–बहुत तस्करी होती रहती है, लेकिन चौथी मुख्य भुजा में पानी बराबर बना रहता है।

ग्रीष्म ऋतु बीती नहीं कि बादल फिर उमड़ने लगते हैं। आगौर से आगर भरता है और सागर फिर लहराने लगता है।

सूरज पानी चुराता है तो सूरज ही पानी देता है।

□

— गान्धी शान्ति प्रतिष्ठान (पर्यावरण कक्ष)
२२१, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नयी दिल्ली – ११०००२

विषपायी

– डॉ. रामप्रसाद मिश्र

अमृतपान केवल देवता बना सकता है
महादेव के लिए विषपान अनिवार्य
हलाहल कंठधार्य
शेष फूत्कार कार्य
ज्वाला ज्योति ही विचार्य

जीवन–युद्ध के कायर मदिरापान करते हैं
भंग–भवानी की सरिता में तरते हैं
चरस–गाँजा आदि के भ्रम में विहरते हैं
जीते–जी मरते हैं।

किंतु कुछ होते जो देशभक्ति के जुनून
में जीते अमर हो, मर कर भी जीते हैं
इतिहास को कान पकड़ पीछे चलाते
वे चिर और युग को एकाकार कर जाते
सब मस्तक नवाते
कविगण यश गाते
राष्ट्र प्रेरणा पाते
मानवता को भाते

निष्फल हुई अकबर की गोटियाँ
राणा प्रताप की यश–पर्वत चोटियाँ
डोला नहीं, स्वयं दरबार में आना नहीं
मन भी झुकाना नहीं

शिवाजी को मनसबदारी नहीं भायी
यश–ज्वाला धधकायी
झाँसी की रानी पेंशन के लिए न गिड़गिड़ाई
अपने लोहू नहाई
आजाद ! आजाद जिया, आजाद मरा !
यौवन गौरव भरा !

एक ऐसा ही आजादी का दीवाना
तिलक, अरविन्द, सावरकर को पहचाना
आग के राग में
लोहू के फाग में
आई.सी.एस. का सत्ताभोगवाद ठुकराया
जलने में सुख पाया
गांधी को हराया
भाग भाग्य जगाया
"शत्रु की पराजय हेतु कोई पथ" अपनाया
भस्म कर दी काया
अमरत्व को पाया !

नाम था सुभाष पर काम था अग्निभाष
मातृभूमि पर अर्पित, ज्वाला की अभिलाष
स्वातंत्र्य तन–मन–जीवन, स्वांतत्र्य चिद्विलास–
अजर–अमर यश से पूर्ण मातृभूमि, आकाश !

– १४, सहयोग अर्पाटमेन्ट्स
मयूर विहार–१, दिल्ली–११००९१

(पृष्ठ २० का शेष)

विभाजन का अपराधी ...

इतिहास अपनी व्याख्या करने की छूट तो देता है, किन्तु तथ्य बदलने की सख्त मनाही करता है। इतिहास तब तक सजीव और सुघड़ नहीं बनता, जब तक हम उसकी भावनात्मक आधार पर तथ्यपरक राष्ट्रीय व्याख्या नहीं करते। यही 'राष्ट्रीयता' की सतत प्रवाही प्रक्रिया है, जिसमें हम सभी को सनद्ध रहना है। भारत विविध धर्मों का देश नहीं है। यह नानाविध विचारधारा वाले "सम्प्रदायों" की रंगस्थली है। इस्लाम और इसाईयत को भी इन्हीं की पांति में अपना स्थान ढूँढ़ना होगा। सम्प्रति, इतिहास बदलने से समाज में विकृति उत्पन्न होगी, क्योंकि इतिहास के तथ्य जनमानस के भीतर गहरे बैठे रहते हैं। हाँ, इतिहास की पुनर्व्याख्या होनी चाहिए। राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, राष्ट्र के गौरव–पुरुष अभिहित न किये जायें और उनके स्थान पर बाबर, हुमायूँ, शेरशाह सूरी, अकबर और औरंगजेब को हमलावर न मान कर उनको भारतीय राष्ट्र–नायकों के रूप में निरूपित कर इतिहास की पुनर्रचना की जो बात मार्क्सवादी तत्त्वों द्वारा उठायी जा रही है, अपने इतिहास की यह पुनर्व्याख्या नहीं, अपितु उसकी चरम–कोटि की विकृति होगी। यह विकृति न होने दी जाय, इसकी पूरी सिद्धता रखना राष्ट्र गौरव ही नहीं, उसकी अस्मिता की रक्षा की भी अनिवार्य शर्त है। ❐

– सी–१७/२०५/एम–१०,
अशोक विहार, प्रथम चरण, पहाड़िया, वाराणसी–२

(पृष्ठ ८२ का शेष)

जो कभी सोने की ...

ऊसर क्षेत्र भी रोका जा सकेगा। अवैज्ञानिक ढंग से अन्धाधुन्ध उपयोग से धरती के गर्भ में संचित जल भण्डार, जिसे पौराणिक भाषा में "क्षीर–सागर" कहते हैं– खाली हो रहा है और धरती पर जल का भार बढ़ने से प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ रहा है। **विदेशी माडल पर आधारित सिंचाई प्रणालियाँ दीर्घगामी, अति खर्चीली, अनुपयोगी, अव्यावहारिक, अलाभकारी, हानिकारक और खतरनाक साबित हुई हैं। नहरों के किनारे जल भराव से कृषि भूमि बर्बाद हो रही है। ऊसर भूमि की मात्रा बढ़ रही है। अब तक नहरी क्षेत्र की लाखों एकड़ भूमि कृषि के अयोग्य हो चुकी है। अकेले पंजाब की ६ लाख एकड़ भूमि ऊसर बन चुकी है।**

कैसी विडम्बना है कि एक ओर पानी के प्रभाव से खेत, खलिहान और गाँव के गाँव डूबते हैं और दूसरी ओर पानी के अभाव में खेत सूखते हैं। दोनों का एकीकृत–समायोजन किया जाये, जिससे पानी के प्रभाव से खेत डूबने न पाये और पानी के अभाव से खेत सूखने न पाये। इसलिए विदेशी माडल के बजाय "जल समेट योजना" ही कारगर व उपयोगी है। इस परम्परागत स्वदेशी स्वावलम्बी योजना से निःशुल्क जल–प्रबन्ध हो सकता है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने दावा किया था कि योजनावधि के अन्त तक देश की कुल कृषि–भूमि को सिंचित बना दिया जायेगा अर्थात् हर खेत को पानी पहुँचा दिया जायेगा। पर सरकार का यह दावा खोखला साबित हुआ; क्योंकि सिंचाई के मद में इतना धन प्राप्त नहीं हो सका धन के अभाव में अनेक बड़ी व मंझोली सिंचाई योजनायें वर्षों से अधूरी पड़ी हैं। उनका लागत मूल्य काफी बढ़ गया है। नर्मदा–घाटी–योजना और सरदार सरोवर की १६ हजार करोड़ की विशाल परियोजना के लिए विश्व बैंक ने ४५ करोड़ रुपये की किश्त देने के बाद आगे कर्ज देने से मनाकर दिया। उधर टिहरी बाँध परियोजना विवाद के घेरे में फँसी पड़ी है। उसका खर्चा ३ हजार करोड़ से ऊपर पहुँच गया। घाघरा नदी पर गिरिजापुरी की सरयू नहर परियोजना भी विश्व बैंक द्वारा कर्जा देने से इंकार कर देने के कारण ठप्प पड़ी है, और ४०० करोड़ रुपया पानी में बह गये।

यदि विदेशी माडल पर आधारित पिछली योजनाओं की तरह दैत्याकार सिंचाई योजनाएँ बनाई गयीं, तो उनका नतीजा भी वही 'ढाक के तीन पात' होगा और आत्मनिर्भरता का उद्‌देश्य पूरा नहीं होगा। हाँ, विदेशी और अव्यावहारिक योजनाओं से और कितना विदेशी कर्ज जरूर देश पर लदता चला जायेगा।

अनेक कृषि विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और विद्वानों का यह दृढ़ मत है कि विदेशी नकल पर भारी भरकम, दैत्याकार, दीर्घगामी, अति खर्चीली परावलम्बी और भारतीय कृषि संस्कृति के विपरीत सिंचाई योजनाएँ बनाने के बजाय स्वदेशी तकनीक पर आधारित परम्परागत, स्वावलम्बी, "सतह जल समेट योजना" लागू की जाय। बड़े–बड़े बाँध, तटबन्ध और उनसे बनाये गये कृत्रिम जलाशय अत्यन्त खतरनाक हैं। गुजरात का "भैरवी बाँध" इसका ज्वलन्त उदाहरण है। बाँध टूटने से भैरवी शहर ६ मीटर पानी में डूब गया था और कई हजार लोगों की जल–समाधि हो गयी थी। भाखड़ा–नांगल बाँध, जिसे नेहरू जी ने नया "तीर्थ स्थल" या आधुनिक मन्दिर कहा था, की सुरक्षा व उपयोगिता की १०० साल की गारण्टी दी गयी थी। परन्तु खेद है कि बाँध की दीवारों में कई दरारें पड़ गयी हैं और ३० साल में ही करीब ४० मीटर गाद भर गयी है। जिससे जलधारण–क्षमता इस भीमकाय जलाशय में घटती जा रही है। गाद को निकालने की कोई वैज्ञानिक तकनीक उपलब्ध नहीं है। इस कारण बाँध के टूटने का खतरा अभी से पैदा हो गया है। कदाचित् बाँध टूटा, तो आधा भारत जलप्लावित हो जायेगा। ५६० मीटर ऊँची टिहरी बाँध परियोजना भूकम्पीय खतरे के अलावा यदि "भैरवी" बन गयी, तो पौराणिक कथाओं की महाप्रलय की पुनरावृत्ति हो जायेगी।

इसलिए स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर कम खर्चीली, त्वरित लाभकारी खतरे से रहित, हानिरहित छोटी–छोटी बन्धियों के निर्माण की योजना बनायी जानी चाहिए। बड़ी नहरों और छोटी बरसाती नदियों पर भी निश्चित दूरी पर अवरोध–बाँध बनाकर पानी का भण्डारण किया जा सकता है, जिससे अवर्षण की स्थिति में भी पानी उपलब्ध रहेगा। यदि ऐसी स्वदेशी "सतह जल समेट योजना" लागू की जाय, तो पाँच साल में हर खेत को सिचिंत बनाया जा सकता है। यदि १७ करोड़ भूमि को दो फसली बना दिया जाय, तो एक अरब टन अनाज वार्षिक पैदा हो सकता है। भारत की आबादी एक अरब होने पर २५ करोड़ टन अनाज घरेलू खपत के लिए काफी होगा। शेष ७५ करोड़ टन अनाज निर्यात कर ५ वर्ष में कर्ज मुक्त भारत, स्वावलम्बी भारत, स्वाभिमानी भारत खड़ा हो सकता है। ❑

– जरवल रोड, जिला–बहराइच–२७१६०१

भूदान के याचक से

- गोपालसिंह नेपाली

[देश के स्वतन्त्र होते ही तेलंगाना (तब की हैदराबाद रियासत का भाग, वर्त्तमान में आन्ध्र प्रदेश का एक क्षेत्र) में कम्यूनिस्टों ने सशस्त्र–विद्रोह का बिगुल बजा दिया था। निजाम के संरक्षण में कासिम रिजवी के रजाकारों ने इस विद्रोह में कम्यूनिस्टों के साथ मिलकर हिन्दुओं का भीषण संहार किया था। सौभाग्य से सरदार वल्लभ भाई पटेल उप प्रधानमन्त्री और गृह–मन्त्री थे। उन्होंने रजाकारों के साथ ही इस आन्दोलन की भी 'पुलिस कार्यवाही' करके कमर तोड़ दी। तब बड़े भू–स्वामियों से भूमि का दान माँगकर उसे भूमिहीनों में वितरित करने का अभियान पूरे भारत में आचार्य विनोबा भावे ने चलाया था, जिसे उन्होंने 'भूदान–यज्ञ' का नाम दिया था। भूदान का यह अभियान अपने उद्देश्य में इस कारण पूरी तरह असफल रहा; क्योंकि भूस्वामियों, जिनमें अधिकांशतः कांग्रेसी थे, ने दिखाने के लिए अपनी ऊसर, बंजर, अनुपजाऊ, कृषि के अयोग्य भूमि विनोबा जी को दान कर 'पुण्य' कमाया था। हाँ; इस 'भूदान' के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में भू–अभिलेखों और भूमि–व्यवस्था का 'अर्जी–फर्जी' भूदान पट्टों के कारण बण्टाढार अवश्य हो गया।

स्व० गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी इस कविता में उसी 'भूदान–यज्ञ' पर विनोबा जी को इंगित करते हुए तब करारा प्रहार किया था। – सम्पादक]

माँग देश के लिए भीख तो, धन–जन मिला, मिलन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

किसने तुझसे कहा कि भिक्षा माँग करोड़ों के लिए
किसने कहा, भीख है मल्हम, जग के फोड़ों के लिए
राष्ट्र पले कब तक चन्दों से
लाज बचे क्या पैबन्दों से
मिटे न दुखड़ा इन धन्धों से
नया वसन्त बुला ला फिर तू, सौरभ सुमन–सुमन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

चलता दान श्राद्ध–तर्पण से, पूजन में, त्यौहार में
ब्याह मृत्यु में, राव–रंक के, भेद भरे व्यवहार में
किन्तु यहाँ तो प्रश्न देश का
स्वाभिमान का, लाज ठेस का
लाखों के गौरव अशेष का
लाखों की सुधि लेनी है तो युग के अक्षय धन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

भीख माँगने से निर्धनता, जाती तो क्या बात थी
लेन–देन से क्रान्ति चली जो आती तो क्या बात थी
जब–जब याचक भिक्षा लेगा
निर्धनता को जीवन देगा
धन की सत्ता अमर करेगा
साम्यवाद को लाना है तो छोड़ धनी, निर्धन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

तू फिरता है द्वारे–द्वारे, रोज अमीर–गरीब के
पता न तुझको किसके कारण, दीपक बुझे कुटीर के
धनी अगर देते धन–धरती
क्यों न झोपड़ी अब तक भरती
मानवता क्यों रो–रो मरती
कोटि–कोटि घर भरना तो मौसम से माँग चमन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

जिनका घर है भरा, बने वे, मस्त फकीर लकीर के
किसे सुनाता है तू किस्से, यहाँ पराई पीर के
जो भी देगा जूठन देगा
मीठा–मीठा पास रखेगा
धन–धरती–सुख स्वयं चखेगा
जूठन छोड़, हृदय का वैभव, मोती–भरे नयन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

*

निर्धनता है एक प्रश्न, भिक्षाटन उसका हल नहीं
है दरिद्रता घोर पाप तो भिक्षा गंगा–जल नहीं
इसकी दवा न सूत–कातना
इसकी दवा न भक्ति–प्रार्थना
इसकी दवा न दान–दक्षिणा
दवा चाहिए इसकी तो कर साहस, शक्ति लगन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

बित्ता भर तो खेत मिले, फैली दरिद्रता छोर तक
फसल खड़ी न अभी, फिर रोटी पहुँचेगी किस ओर तक
दक्षिण में दुखियारी तरसे
उत्तर में फुलवारी सरसे
फिर यह दौलत किस पर बरसे
तरु–तरु से क्या पूछ रहा, आँधी से माँग पवन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

भीख बुद्ध ने भी माँगी थी, कहाँ अमीरी लुट गई
गांधी ने भी अलख जगाई, कहाँ गरीबी उठ गई
निर्धनता सागर–सी फैली
जिसके कारण धरती मैली
बूँद बराबर तेरी थैली
बूँद–बूँद जल सिन्धु भरे तो सौ युग धरनि–धरन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

नेता बनना रोग और है जी, निर्धनता और है
स्वतन्त्रता के सूर्योदय में जाग्रत् जनता और है
दुनिया बैठी लेकर दुखड़े
ताक रहा तू चिकने मुखड़े
फिर क्यों चरन अनय के उखड़ें
भिक्षा की झोली फैला तो, समता वरन–वरन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

निर्धन हो या धनी, सभी जाते हैं जग से कूच कर
सुलझाता तू कौन प्रश्न मिटने वालों से पूछ कर
छोड़ पन्थ जाने वालों का
वर्ग मिटा दे कंगालों का
स्वर्ग बसा आने वालों का
इतना भी कर सके न तू तो, जाकर शरन, मरन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

यह जूठन इन्सान नहीं रहने देगी इन्सान को
यह टुकड़ों का ढेर कहाँ तक रोकेगा तूफान को
देख समस्या को समीप से
तिमिर मिटेगा जम्बु–द्वीप से
कैसे माँगे हुए दीप से
तुझे चाहिए भोर साम्य की, बढ़कर क्रान्ति–किरन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

चन्दा, झोली, आश्रम की चल चुकी यहाँ काफी हवा
वैद्य बदलते गये, न बदली अब तक रोगी की दवा
रोग नहीं भागे मृदंग से
रुका मद्य जिस सरल ढंग से
मान–चित्र रँग उसी रंग से
बिन माँगे तू रह न सके तो, चिर उत्थान, पतन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

खाईं इधर उधर पर्वत, दोनों को सर कैसे करें
समतल धरा तभी होगी जब शैल गिरे, खाईं भरे
पाप चले आये पुश्तों से
बढ़ते गये रीति–रिश्तों से
अब न मिटेंगे ये किश्तों से
ठोकर से अन्याय उड़ा दे, आँधी चरन–चरन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

इस पर भी न समझ तो मुझको, आसन देकर देख ले
इधर चलाऊँ कलम, उधर सिंहासन लेकर देख ले
एक मिनट में जो हो जाये
उस पर क्यों सौ सदी लगाये
भरमा स्वयं, जगत भरमाये
कमी नहीं जनतन्त्र–कोष में, जो भी रतन, यतन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग गगन से माँग

●

— आशारानी व्होरा

लेखकीयम्—

गलती किससे नहीं होती ?

'राष्ट्रधर्म' जून ९८ अंक में आदरणीय पं० वचनेश त्रिपाठी जी का लेख देखा। निश्चय ही प्रत्यक्ष सम्पर्क और शोध-अध्ययन में अन्तर होता है और शोध की अपनी सीमाएँ होती हैं। यह भी कि अपने-अपने क्षेत्र की विशेषज्ञता के बावजूद सर्वज्ञ कोई नहीं होता। इसलिए किसी तथ्यात्मक भूल की ओर किसी विषय-विशेषज्ञ लेखक द्वारा ध्यान आकृष्ट किये जाने पर भूल-सुधार से सम्बन्धित लेखक का हित-संवर्द्धन ही होता है; किन्तु किसी लेखक-लेखिका के स्वतन्त्रता-संग्राम सम्बन्धी चौदह-पन्द्रह वर्ष के श्रम-साध्य अध्ययन-लेखन पर 'गप्पों का पुलिन्दा' लेबल लगाकर उसे खारिज कर दिया जाए, तो यह आघात न केवल रचनाकार को मानसिक कष्ट पहुँचाएगा, उसके विशाल पाठक-वर्ग में भी उसकी छवि धूमिल करेगा। अतः शिकायत भूल-सुधार से नहीं, उसे कहने के ढंग से है और आपसे भी यूँ कि आपको मुझसे स्पष्टीकरण माँगना चाहिए था और मेरा उत्तर भी साथ छापना चाहिए था। तब पाँच दशकों से निरन्तर लिख रही लेखिका पर काल्पनिक किस्से-कहानियों वाली 'गप्पी' लेखिका का ठप्पा तो न लगता।

भाई वचनेश जी निश्चय ही इस विषय के अच्छे ज्ञाता हैं। उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क भी रहा है। मैं उनका बहुत सम्मान करती हूँ। इसलिए समय-समय पर पत्र- व्यवहार कर सन्दर्भ-स्रोतों के बारे में उनसे पूँछताँछ भी करती रही हूँ। अभी पिछले दिनों क्रान्तिकारी किशोरों पर काम करते हुए, दिल्ली में भेंट होने पर, मैंने उन से इस सम्बन्ध में पूँछताँछ की और उनसे उनके वर्तमान निवास का पता लिया; पर वादा करके भी उन्होंने मेरे तीन पत्रों में से एक का भी उत्तर नहीं दिया। (स्व०) पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ मेरा ऐसा अनुभव नहीं रहा। उन्होंने वृद्धावस्था में भी न केवल बराबर उत्तर दिए, सन्दर्भ-सूत्रों के साथ जानकारियाँ और सामग्रियाँ भी भेजीं।

वचनेश जी के इस लेख के उत्तर में इतना ही कि उत्तमनगर दिल्ली में बिस्मिल जी की बहन ने चाय की दुकान चलाई थी, उनकी माताजी मूलवती ने नहीं, उनसे उत्तमनगर में मेरी भेंट के समय उनके पास बैठी एक बहुत वृद्ध महिला को मैंने उनकी माँ समझा, क्योंकि ऐसा ही दिल्ली के एक पत्रकार ने लिखा व मुझे बताया था। इस भूल की ओर बिस्मिल पर विशेष कार्य करने वाले श्री मदन लाल वर्मा 'क्रांत' ने भी मेरा ध्यान दिलाया था, जो स्वयं शाहजहाँपुर के रहने वाले हैं। शेष दो ब्योरों के बारे में, वे कहाँ से, कैसे आए ? सुखदेव के भाई मथुरा दास थापर ने हापुड़ से मेरे मायापुरी वाले घर में दिल्ली आकर मुझसे इस विषय पर कैसे बहस की ? साथ ही देश भर से उपलब्ध पुस्तकों, पत्रों, पत्रिकाओं, दस्तावेजों से और पूर्व पीढ़ी से बातचीत व पत्र-व्यवहार में मुझे कितनी भ्रान्तियाँ और विसंगतियाँ मिलीं ? कैसे एक-एक सन्दर्भ या उसकी पुष्टि के लिए मुझे, कभी-कभी महीनों भी, भटकना पड़ा; इस पर कृपया मेरा भी एक लेख प्रकाशित करें, यह मेरा आपसे आग्रह है। ❐

— बी-२७ ए/सेक्टर-१६, नोएडा-२०१३०१

[श्रीमती आशारानी व्होरा हिन्दी की वयोवृद्ध विदुषी लेखिका हैं। उनकी हिन्दी-सेवा बहुतों के लिए स्पृहणीय रही है। 'राष्ट्रधर्म' के प्रति उनके लगाव और स्नेह-भाव ने ही 'हुतात्मा क्रान्तिवीरों की माताओं' से सम्बन्धित लेखमाला देने की प्रेरणा सम्भवतः उन्हें दी। तत्सम्बन्धी मई ९८ तक प्रकाशित लेखों में पायी गयी तथ्यात्मक भूलों एवं विसंगतियों पर श्रद्धेय पं० वचनेश त्रिपाठी जी की प्रतिक्रिया निश्चय ही स्वाभाविक थी और जैसा कि सभी जानते हैं, वचनेश जी ऐसे प्रकरणों में कभी किसी को क्षमा करना नहीं जानते; क्योंकि न केवल वह स्वयं एक प्रखर क्रान्तिकारी रहे हैं, हिन्दी के मूर्द्धन्य, सुप्रतिष्ठित और अति निर्भीक पत्रकार एवं साहित्य-सेवी के रूप में उनकी ख्याति भी सर्वविदित है। (स्व०) पं० बनारसी दास चतुर्वेदी के बाद क्रान्तिकारियों पर जितनी तथ्यात्मक-सामग्री हिन्दी को उनकी ओज-तेज-पूर्ण लेखनी के माध्यम से प्राप्त हुई है, वह अपने में एक अमूल्य-कोष है। 'राष्ट्रधर्म' और 'पाञ्चजन्य' के अपने सुदीर्घ सम्पादन-काल में अमर हुतात्मा सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' यशपाल (सभी दिवंगत) के अन्तरंग साथियों डॉ० भगवानदास माहौर, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, काशीराम (काशी भाई), नलिनी किशोर गुह, शचीन्द्रनाथ बख्शी, पं० परमानन्द (झाँसीवाले) आदि-आदि का 'राष्ट्रधर्म' और 'पाञ्चजन्य' को लगातार लेखकीय तथा अन्य सहयोग वचनेश जी के व्यक्तिगत सम्पर्कों का ही सुपरिणाम था, जिससे घबड़ाकर श्रीमती इन्दिरा गांधी ने क्रान्तिकारियों को पेंशन और ताम्र-पत्र प्रदान करने में ही अपनी गद्दी तथा पार्टी की कुशल समझी थी।

विदुषी लेखिका को दुर्गा भाभी (जो अपने पुत्र शची के साथ गाजियाबाद में रह रही हैं) या मन्मथनाथ गुप्त (जो दिल्ली में ही हैं) जैसे पुराने क्रान्तिवीरों से सम्पर्क कर सम्बन्धित विषय की सही-सही जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए थी, तभी लेखमाला प्रारम्भ करतीं, तो ऐसी विभ्रमकारी स्थिति नहीं बनती। उनसे ऐसी भूलों की कोई आशा भी नहीं थी। जो भी हो, 'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित एक-एक अक्षर का सदा से महत्त्व रहा है। अतएव इन भूलों के परिप्रेक्ष्य में यह लेखमाला जून अंक से ही बन्द कर दी गयी। 'राष्ट्रधर्म' वचनेश जी और लेखिका तथा अपने सुधी पाठकों और शुभचिन्तकों के प्रति आभार प्रकट करता है, साथ ही खेद व्यक्त करते हुए अनुरोध भी-'क्षमस्व मे'। —सम्पादक]

क्यों होता है शिवलिंग का जलाभिषेक

– डॉ० सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु

अजस्र ऊर्जा के स्रोत शिव वस्तुतः अग्नि के प्रतीक हैं। अग्नि के दृश्य–भौतिक आधार पर ही रुद्र की कल्पना खड़ी की गई है। अतः रुद्र के ऊर्ध्वलिंग की शिखा ऊपर की ओर वैसे ही उठी रहती है, जैसे अग्नि की शिखा ऊपर को उठती है। शिवलिंग को ज्योतिर्लिंग कहने का भी यही अभिप्राय है। अग्निदेव वेदी पर विराजते हैं, इसलिए शिव जलधारी के बीच में स्थापित किये जाते हैं। शंकर जल के अभिषेक से प्रसन्न होते हैं तथा शिव–भक्त अपने शरीर पर भस्म धारण करते हैं, यह बात भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट करती है।

वस्तुतः अग्नि के दो स्वरूप हैं– घोरतनु और अघोरतनु। अपने भयंकर घोर स्वरूप से वह संसार के संहार करने में समर्थ होता है; परन्तु अघोररूप में वही संसार के पालन में भी समर्थ होता है। यदि अग्नि का निवास इस मही पर नहीं होता, तो क्या एक क्षण के लिए भी प्राणियों में प्राण संचार हो पाता? अतः उग्र रूप के कारण जो देव रुद्र हैं, वे ही जगत् के मंगल साधन के कारण शिव हैं।

पशु, पाश और पति :- अणु का परिच्छिन्न रूप तथा सीमित शक्ति से युक्त होने वाला जीव ही पशु है। शैव–सम्प्रदाय में पशु को कर्त्ता माना गया है। अर्थात् जब तक कर्त्तापन का बोध तथा फल की आसक्ति है, तब तक जीव पशु–स्तर का ही है। गाय–बैल को हम इसीलिए तो पशु कहते हैं कि वे बन्धन के द्वारा जकड़े जाने के कारण परतन्त्र हैं। संसारी जीवों की भी कुछ ऐसी ही दशा है। शिवरूप होते हुए भी सांसारिक मलों से आवृत होने के कारण उनकी मौलिक स्वातन्त्र्य– शक्ति नष्टप्राय हो गयी है। शिवत्व प्रधान पुरुष स्वतन्त्रता–युक्त तथा प्रकृति–मुक्त होता है।

पाश का सरलार्थ बन्धन होता है– उस तरह का बन्धन, जिसके द्वारा शिवरूप होने पर भी जीवों को मल, कर्म, माया और रोध-शक्ति रूपी बन्धन से युक्त होने के कारण मुक्ति नहीं मिलती। मल देह का उत्पादन है। फलार्थी जीवों द्वारा किये जाने वाले कार्य कर्म हैं। प्रलय-काल में

श्रद्धाञ्जलि

● पिछले दिनों 'मेन–स्ट्रीम' पत्रिका के संस्थापक सम्पादक तथा प्रसार भारती बोर्ड के अध्यक्ष वयोवृद्ध पत्रकार श्री निखिल चक्रवर्ती जिन्हें आदर से लोग 'निखिल दा' कहते थे, का स्वर्गवास हो जाने से बौद्धिक–जगत् के वामपन्थी चिन्तकों के मध्य एक शून्य–सा उत्पन्न हो गया है। 'निखिल दा' अपनी सिद्धान्त–निष्ठा के कारण उस समय लोकमानस में और ऊँचे धरातल पर अधिष्ठित हो गये थे, जब उन्होंने 'पद्मश्री' अलंकरण लेना अस्वीकार कर निर्भीक पत्रकारिता को नया कीर्तिमान प्रदान किया था। ध्यातव्य है कि यह वही निखिल चक्रवर्त्ती थे, जिन्होंने पाकिस्तान के निर्माण के पक्ष में कम्यूनिस्ट पार्टी की ओर से उसके सैद्धान्तिक–अधिष्ठान– आलेख की रचना की थी। अत्यन्त खेद की बात यह रही कि प्रसार भारती बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में निखिल दा को प्रबन्ध–निदेशक बनाये गये वामपन्थी एस०एस० गिल के हाथों उस समय अपमानित होना पड़ा, जब वह पहली बार अपने कार्यालय–कक्ष गये, तो वहाँ जमे गिल ने उन्हें कुर्सी तक बैठने को नहीं दी और अपमान के इस घूँट को वे ऐसे पी गये मानो कुछ हुआ ही नहीं।

'राष्ट्रधर्म' इस सिद्धान्त–निष्ठ, निर्भीक एवं प्रखर पत्रकार एवं वामपन्थी विचारक के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

● उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ० प्रताप नारायण टण्डन की एक मार्ग–दुर्घटना में पिछले मास आकस्मिक–मृत्यु से हिन्दी–सेवा के क्षेत्र में एक शून्य–सा निर्मित हो गया। व्यवसाय से चिकित्सक; परन्तु हृदय से हिन्दी की समुन्नति के लिए एकान्तिक निष्ठावान् डॉ० टण्डन स्वयं में एक सचल–संस्थान थे।

'राष्ट्रधर्म' का इस ध्येयनिष्ठ हिन्दी–सेवी को शतशः प्रणाम।

● अपने पुराने लेखक विद्वद्वर डॉ० विश्वनाथ याज्ञिक के गत दिनों दिवगंत हो जाने से 'राष्ट्रधर्म' को मार्मिक दुःख हुआ। याज्ञिक जी एक प्रखर राष्ट्रवादी तथा हिन्दी–भक्त थे। वे पिछले कई मास से अस्वस्थ चल रहे थे। 'राष्ट्रधर्म' की उनकी स्मृति को सश्रद्धा शोकाञ्जलि।

● ओज–तेज के प्रखर–स्वर कविवर रामबहादुर सिंह भदौरिया का अकस्मात् गत दिनों स्वर्गवास हो गया। वे आजीवन हिन्दी के प्रति परिनिष्ठित रहे। उनकी पुण्य–स्मृति को 'राष्ट्रधर्म' का श्रद्धा–नमन।

● गत ३ जुलाई को एक और हिन्दी–सेवी श्री गौरीश श्रीवास्तव का भी अकस्मात् निधन हो गया। उ०प्र० सचिवालय में अनुभाग अधिकारी गौरीशजी अनाम रहते हुए भी सदा हिन्दी–सेवा में निरत रहे। उनकी स्मृति को 'राष्ट्रधर्म' का नमन।

– सम्पादक

जीव जिसमें लीन हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में जिससे उत्पन्न हो जाते हैं, उसका नाम "माया" है। रोध–शक्ति परमेश्वर की वह शक्ति है, जिससे वे जीवों के स्वरूप का तिरोधान करते हैं। जिस प्रकार लोक में गाय के गले की रस्सी को खोलकर उसका स्वामी ही उसे स्वतन्त्र करता है, उसी प्रकार बिना पशुपति की अनुकम्पा हुए जीव पाशों से मुक्त नहीं हो सकता।

पति से तात्पर्य परमेश्वर या परमशिव से है, जो नित्य निर्मल, निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से युक्त है और सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह में सदैव तत्पर है।

निर्लिप्त देव आशुतोषः– शिव का अर्थ अवढरदानी परमकल्याणी तथा परोपकारी भी है। सब कुछ देकर तृप्त होने वाले का नाम शिव है। जितने विरोध हो सकते हैं, इन विरोधों का अवसान जहाँ सम्पन्न होता है, वहीं तो शंकर विराजमान हैं। निर्धन होते हुए भी वे अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर लक्ष्मी की वर्षा करने में समर्थ हैं। त्रिलोकनाथ होते हुए भी श्मशान में निवास करते हैं। उनका शरीर नितान्त भयानक है; परन्तु वे मंगलकारक कहे जाते हैं। सचमुच वे विश्वमूर्ति हैं।

प्रेम भगति जल हैं शिव :– जीव में स्वतः कोई शक्ति नहीं है, जिससे वह भवमल गट्ठर को स्वयं साफ कर सके। इस मल को दूर करने का एक ही साधन है परमशिव का अनुग्रह। इसे ही तन्त्रों में शक्तिपात कहा गया है। गुरु की दीक्षा भगवान् की ही अनुग्रह–शक्ति का प्रतीक है। जो कि अनन्य शरणागत होकर ही प्राप्त होता है। जीव जब तक बहिरंग तब तक सन्मार्ग से वह बहुत दूर है। जब वह शंकर की शरण में जाता है, उसका चित्त अन्तर्मुख होकर अपने ही हृदय कमल में निवास करनेवाले, सौन्दर्य सुधारस, परम कल्याणमय भगवान् के ध्यान में लीन होता है, तभी उसके ज्ञानचक्षु खुलते हैं और वह परमतत्त्व का साक्षात्कार करने में कृतकार्य होता है।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् संयुक्तक शिव :– महेश का व्यक्तित्व स्वयं प्रिज्म के समान है, जिसके तीनों कोण उनके क्रमशः सत्य, शिव और सुन्दर रूप को बिम्बित करते हैं। शिव सत्य के प्रतीक हैं तो उनका शरीर भस्म–धवलित है। चूँकि वे मृत्युंजय हैं, अतएव उनके मस्तक, गला, भुजदण्डों में काल–स्वरूप विकराल सर्पों की माला है। शिव के ललाट पर चन्द्रमा है। चन्द्रमा प्राणियों के सन्ताप को हरण करने वाला है तथा सौन्दर्य का परम निधान है। उसे ललाट पर धारण करना जगत् के त्रिविध–ताप के निवारक तथा सौन्दर्य के अनन्त–कोष का परिचायक है। गंगा जीवों के लिए मुक्ति–मुक्ति–प्रदायिनी हैं। वह जिसके मस्तक के ऊपर वशवर्तिनी बनकर विचरण करती हैं, वह परम-पुरुष मुक्ति तथा भुक्ति का नितान्त सम्पादक होता है। शंकर त्रिलोचन हैं। दो नेत्र तो चन्द्र और सूर्य के रूप में सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। तीसरे नेत्र है– ज्ञाननेत्र। इसी नेत्र से काम का दहन किया जाता है। जब तक यह नेत्र उद्बुद्ध नहीं होता, तब तक काम का साम्राज्य रहता है। शिव साधना से ही आज्ञाचक्र के रूप में त्रिनेत्र उन्मीलित होकर त्रिविध ताप के साथ–साथ त्रिविध बन्ध तथा अन्ध से उपासक को मुक्त कर साकेत–लोक–वासी बनाता है। ❐

– आरक्षी उपाधीक्षक, मधेपुरा (बिहार)

अभिनन्दन ! शत-शत अभिनन्दन !!

"आओ बच्चो! तुम्हें दिखायें झाँकी हिन्दुस्तान की; इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की, वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्" चलचित्र 'जागृति' के इस अत्यन्त प्रेरणादायी देशभक्ति–पूर्ण गीत के रचयिता वयोवृद्ध पं. प्रदीप (पं. रामचन्द्र द्विवेदी) को इस बार 'दादा फाल्के' पुरस्कार दिया गया है। सिनेमा में अपने गीतों से राष्ट्रभक्ति की पावन धारा प्रवाहित करने वाले पं. प्रदीप को यह सम्मान महामहिम राष्ट्रपति जी के कर–कमलों से प्रदान किया गया है। मजरूह सुलतानपुरी जैसे कनिष्ठ गीतकार को यह सम्मान पहले प्रदान करके पं. प्रदीप की राष्ट्रभक्ति को एक प्रकार से उपेक्षित करने का 'पाप' अब जाकर प्रक्षालित हुआ है।

ध्यान रहे, सिनेमा–जगत् में एक इस्लामी माफिया–तंत्र काफी पहले से कार्य–रत है जो हिन्दू कलाकारों, गीतकारों, संगीतकारों, निर्देशकों और फोटोग्राफरों तथा तंत्रज्ञों को पनपने न देने की हर संभव चेष्टा खुल्लमखुल्ला समय–समय पर करता रहता है। भरत व्यास, इन्दीवर, (स्व.) नरेन्द्र शर्मा, नीरज जैसे गीतकारों के साथ भी इस गिरोहबंदी ने उपेक्षा तथा अवहेलना करने में कोई कोताही नहीं की। फिर पंडित प्रदीप तो ठहरे प्रखर राष्ट्रवादी, सिद्धान्तनिष्ठ, राष्ट्र–हित के प्रश्न पर कोई समझौता न करने वाले। अतः उनकी उपेक्षा, अवहेलना इतने लम्बे समय तक होती रहनी ही थी इस देश में 'सेक्यूलरिज्म' के नाम पर। पण्डित रामचन्द्र द्विवेदी (पण्डित प्रदीप) हिन्दी के प्रथम विश्वकोश के स्वनामधन्य सम्पादक लखनऊवासी पंडित कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के अनुज हैं। 'राष्ट्रधर्म' को फिल्मी दुनिया के इस प्रखर राष्ट्रवादी सिने–गीतकार पर गर्व है। 'राष्ट्रधर्म' पण्डित प्रदीप का हार्दिक अभिनन्दन कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है– **सम्पादक।**

अभिमत

जुलाई ६८ का 'राष्ट्रधर्म' प्राप्त हुआ। कविता, कहानी और शोधपूर्ण लेखों को समेटे यह अंक एक बैठक में ही पढ़ गया। यही एकमात्र पत्रिका है जिसकी मैं अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करता हूँ; कारण– पत्रिका की हिन्दू हित चिन्तन दृष्टि एवं राष्ट्रीय विचारधारा का मुखर स्वर।

सजग पाठक होने के कारण त्रुटियों की ओर संकेत करना कर्त्तव्य समझता हूँ। 'बालवाटिका' में छपी कविता 'छोटा झरना' क्लिष्ट है जो बाल मन के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं। मुखपृष्ठ पर छत्रपति शिवाजी के दरबार का चित्र समयानुकूल नहीं है।

अंक के प्रत्येक पृष्ठ पर आषाढ़ २०५५ छपा है जबकि पृष्ठ ४ पर श्रावण २०५५ छपा है। आशा है आगे से ध्यान रखेंगे। पूर्व की भाँति बूझो तो जानें (पिछले अंक पर आधारित) स्तम्भ प्रारम्भ करें। इससे अंक दुबारा पढ़ने का अवसर मिल जाता था।

– **प्रमोद दीक्षित 'मलय'**
भवानीगंज, अतर्रा, बाँदा

पृष्ठ ३ पर भूल से 'श्रावण' छप गया है। वहाँ पर भी आषाढ़ होना चाहिए। – सम्पादक

पूरक

'एक मन्दिर ऐसा भी' शीर्षक लेख के साथ मन्दिर का निर्माण कराने वाले (स्व.) सेठ फजलु-र्रहमान 'चुन्ना मियाँ' का चित्र समय से उपलब्ध न हो पाने के कारण नहीं जा सका। उसे यहाँ अलग से दे रहे है। –सं०

राष्ट्रधर्म –जुलाई ९८ अंक

जुलाई ६८ के 'राष्ट्रधर्म' में,
अंकित है सारस्वत कर्म,
लेख, कहानी हर कविता में
छिपा हुआ है इसका मर्म।
'राष्ट्रधर्म' की सब कविताएँ
राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत,
जिसका सूख नहीं सकता है
युग–युग तक पावन स्रोत।
परमाणु शक्ति सम्पन्न देश का
हो जाना अपराध नहीं,
विकल और मोहन की कविता
सचमुच में है सत्य सही।
जनजीवन में भरती है जो
देशभक्ति की चिंगारी,
जिसकी सारी विशेषताएँ
करतीं नियमित पहरेदारी।
दिन ऐसे मनहूस हुए
रामपुरी की रचना सुन्दर,
पीड़ा और वेदना से वह
भर देती है अभ्यन्तर।
चन्दा–आँसू, वैभव–पीड़ा का
मिलता है अद्भुत जोड़,
कंचन और कामिनी से है
वह रहती अपना मुँह मोड़।
'मत पता बहारों का पूछो'
सचमुच में कविता बेजोड़,
डॉ. निर्मल शर्मा जी से
कोई नहीं ले सकता होड़।
'दिन नहीं चैन रैन नहीं निंदिया'
हीरा मोती सा चमक रही,
सम्पादक की कलम में भइया
राष्ट्रभक्ति है महक रही।
सम्पादक जी ने है खींची
राजनीति की जो तस्वीर,
उसका असर सर्वदा होगा–
जन–जन में व्यापक गम्भीर।

– **मुन्द्रिकाप्रसाद 'विकल', सरैयाँ, भोजपुर, बिहार**

'राष्ट्रधर्म' का जुलाई अंक पढ़ा। सटीक लगा। 'भारत को आनन्द मठ बना है तो ...' हृदयनारायण दीक्षित का लेख प्रेरक है। सचमुच सांस्कृतिक अवमूल्यन हटकर आदर्श मूल्य व व्यवहार का वेदान्त विकसित हो। 'भारत ही माता है' लेख श्रेष्ठ है। इन्द्रेश कुमार जी का चिन्तन मंथन योग्य है। विविधता में एकता हमारे सनातन संस्कारों की जीवन–पद्धति है। यही सच्चा राष्ट्रीयत्व है। भारत को भारत–माता के रूप में प्रतीक चिन्तन संकल्पना श्रेष्ठ अहसास है। कस्तूरीलाल कागरा का परमाणु संधियों पर लेख सटीक है।

– **नारायण मधवानी**
सिन्धी कालोनी, उज्जैन

'राष्ट्रधर्म' के जुलाई ६८ अंक में पृष्ठ २३ पर कहानी 'भागो बुआ' बहुत अच्छी, प्रेरक व संस्कारक्षम है। लेखक मदनमोहन पाण्डेय को बधाई।

– **सूबे. मेजर ओमप्रकाश शर्मा (अ.प्रा.)**
बसई, फतेहाबाद, आगरा

मैं 'राष्ट्रधर्म' का ५ वर्ष से नियमित पाठक हूँ। पत्रिका में बदलते स्तम्भों व तेवर का अभ्यस्त हूँ। किन्तु इधर पत्रिका ने स्मारिका अथवा पुस्तक का रूप ले लिया है। जो सर्वजन के लिए अनुपयोगी है। इसे पत्रिका ही रहने दें।

– **मनोज कुमार**, जूही, कानपुर

भूल सुधार (इसी अंक में)

- 'जो कभी सोने की चिड़िया था' लेख में (पृ. ७६) लेखक का नाम 'बाबूलाल शर्मा' की जगह पर कृपया 'बाबूलाल वर्मा' पढ़ें।
- 'तुलसीदास ने जब मारुति मन्दिर बनवाना चाहा' लेख के पृ. ७७ पर दाहिने स्तम्भ की सातवीं पंक्ति में 'चचेरे भाई' के स्थान पर 'चाचा' पढ़ा जाय। – **संपादक**

कमियाँ ढूँढ़ें, हमें बतायें।
केवल नहीं प्रशंसा गायें।।

मधुरेण समापयेत्

– शंकर पुणतांबेकर

मेरी तीसरी कसम

पहली कसम मैंने तब खायी थी, जब जिन्दगी में पहली बार और शायद आखिरी बार फर्स्टक्लास में यात्रा की थी। जगह मिल नहीं रही थी, जाना जरूरी था, सो फर्स्टक्लास का टिकट खरीदना पड़ा था। काउण्टर पर जब टिकट के पैसे रखे थे, तो लगा था, मेरी जेब सूली पर चढ़ गई है और उसने मुझे सेकेण्ड क्लास बसर से तीन माह के लिए थर्ड क्लास बसर की सजा सुना दी है।

यात्रा दिन के समय की थी। एक नेताजी भी थे मेरे हिस्से वाले सूट में। बात-बात में बात साहित्य की चल पड़ी। मैं हिन्दी के साथ-साथ उर्दू-अंग्रेजी साहित्य पर भी खूब बोलता चला गया। एक-एक की खूबियों के साथ कि नेताजी ने कण्डक्टर को बुलवाया और उससे कहा कि वह मुझे कहीं और बैठा दे।

मुझे और जगह बैठना पड़ा।

उस दिन मैंने कसम खायी नेता के साथ कभी साहित्य मत बोलो।

दूसरी कसम मैंने एक कॉलेज हॉस्टल में खायी थी। नियुक्ति समिति विषय-विशेषज्ञ के नाते मैं इस कॉलेज को गया था। प्रिन्सिपल के कक्ष में बैठा था। बात भ्रष्टाचार और शिक्षा के गिरते स्तर की चल पड़ी। मैंने कहा, शिक्षा का स्तर गिराने वाले आखिर हमीं लोग हैं- अध्यापक लोग। पढ़ाने के लिए मेहनत से पढ़ते नहीं। सिफारिशबाजी से नियुक्तियाँ होती हैं। भ्रष्टाचार भी अब आम बात हो गयी है।

मुझे नहीं मालूम था कि प्रिन्सिपल सिफारिशबाजी से ही तरजीह पा गया था और भ्रष्टाचारी था। चपरासी ने मुझे बताया। मेरी उक्त टीका-टिप्पणी का नतीजा यह हुआ कि रात हॉस्टल के रूम में जहाँ मुझे ठहराया गया था, मसहरी नहीं मिली, जब कि और सदस्यों को मिली थी। इससे मैं रात-भर मच्छरों से परेशान रहा।

उस दिन... बल्कि रात मैंने कसम खायी- किसी कक्ष में सिफारिशबाजी और भ्रष्टाचार पर कभी मुँह नहीं चलाऊँगा।

तीसरी कसम मैंने एक क्लब में खायी थी, भाषण देने के बाद।

एक ऊँचे क्लब के सेक्रेटरी मेरे पास आये और बोले, कृपया आप हमारे यहाँ आएँ और भाषण दें।

भाषण को मैं एक सांस्कृतिक कार्य मानता हूँ, यदि वह नेता अथवा अफसर का न हो।

मैं इधर लेखन-वेखन में इतना चाव नहीं लेता था। भाषण को लेखन से अधिक प्रतिष्ठित कार्य मानने लगा था, सो मैंने सेक्रेटरी का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

अब ऊँचे क्लब में भाषण था, अतः मैंने उसकी ऊँची तैयारी आरम्भ कर दी। विषय सेक्रेटरी ने मुझ पर ही छोड़ दिया था।

अब जब विषय मुझे ही चुनना था, तो मैंने तय किया कि इन ऊँचे लोगों को बताऊँ कि हमारी जिन्दगी कैसी विसंगतियों से भरी हुई है, और इन विसंगतियों को बड़े-बड़े लेखकों-विचारकों ने किस तरह पेश किया है, पेश करने का इनका अपना अन्दाज है, जो हमें चमत्कृत भी करता है और हमारी मानसिकता को झकझोरता भी है।

लियो टॉल्सटॉय, खलील जिब्रान, बर्नाड शॉ, प्रेमचन्द, अब्राहम लिंकन, गौतम बुद्ध, विवेकानन्द आदि से गुजरते हुए मैंने अपने पास ऐसी काफी सामग्री बटोर रखी थी, जो जीवन के विभिन्न आयामों पर तीखा प्रकाश डालती थी।

यह मेरा एक मूल्यवान् खजाना ही था।

जिन्दगी के विभिन्न क्षेत्रों की विसगतियों को मैंने इस खजाने में से चुना। कुछ ये थीं-

मैं पैसा हूँ और तुम पोस्टर, इसलिए आओ हम आपस में मिलें और प्रजातन्त्र को बनाएँ।

हम दुनिया में मरीज हैं- पैसा, नाम, प्रतिष्ठा, सत्ता के मरीज जो ऊँचा मरीज वही हृष्ट-पुष्ट आदमी।

हमारी जिन्दगी में रोटी और संस्कृति दोनों एक साथ दुबली अथवा दोनों एक साथ हृष्ट-पुष्ट नहीं होतीं।

पूँजी खट्टे दही जैसी होती है, जिसके बिलौने पर वह एक ओर छाछ देती है तो एक ओर मक्खन।

जनता वह सामग्री है, जिससे महल खड़ा होता है जनता रक्षार्थ।

महल का दरवाजा बड़ा अजीब है। इसके फाटक में से बाहर–से–अन्दर हाथी तो सहज जा सकता है, पर अन्दर–से–बाहर चींटी बड़ी मुश्किल से आ पाती है।

नाव कब डूबती है? जब साथ का सामान हल्का हो अथवा यात्री भारी न हो।

भगवान् और पैसे के बीच के चुनाव में आदमी भगवान् को नहीं, पैसे को चुनता है; क्योंकि वह जानता है कि पैसे से तो भगवान् पैदा किया जा सकता है, भगवान् से पैसा नहीं।

खेतों की खुली–हवा इतनी प्राणवान् नहीं होती जितनी फैक्टरी की धुँआ–भरी।

जनता की कमजोरी राजा की कमजोरियों को ताकतवर बना देती है।

पैसा, सत्ता अथवा धर्म शिवं के स्थान पर जब सुन्दरम् बन जाता है, तो सत्यं मृत्यु को प्राप्त होता है।

अधिकार की चींटी में ऐसी ताकत होती है कि उसके आगे कर्तव्य का हाथी भी झुक जाता है।

विकास की शृंखला में हम बन्दर से आदमी बने और अब बने हैं आदमी से पैसायुक्त आदमी, जो बन्दर ही है शराब पिया हुआ।

भगवान् और शैतान में सिर्फ पैसे का फर्क है। पैसायुक्त भगवान ही शैतान होता है।

पेट, देह का देश की ही तरह ऐसा राजा है, जिसकी गुलामी आँख, हृदय, सिर भी करते हैं।

सत्य और कुछ नहीं। मजहब राजनीति पैसा–कानून के आवरण से रहित तथ्य है।

सिर हमारी देह में स्थित वह ब्रह्म है, जिसने जगत् को पेट की माया के हाथों नरक बनने से बचाया है।

पैर का टोपा–जूता, सिर के टोपे से कहीं अधिक मूल्यवान होता है; क्योंकि सिर के तर्क से पैरों की ठोकर की मार अधिक भारी होती है।

लेकिन मेरा यह मूल्यवान् खजाना धूल साबित हुआ।

क्लब में अपने भाषण में मैंने इसे बड़ी चतुराई से प्रस्तुत किया था; किन्तु क्या बताऊँ मैं आपको, भाषण समाप्त होते–होते हॉल में दो–चार लोग ही बचे रहे थे। एक–एक कर वे उठते चले गये।

हाँ, बाद में चाय के टेबल पर सभी हाजिर थे और उनमें मैंने देखा बड़े हल्के दर्जे की चुटकुलेबाजी चल रही थी।

यह सब देख वहाँ मैंने तीसरी कसम खायी– ऊँचे क्लब में कभी ऊँचा भाषण नहीं दूँगा। ❐

– २ माया देवी नगर, जलगाँव–४२५००२

'हम हिन्दू एक राष्ट्र हैं'

सिकन्दर ने यूनान से आकर ब्राह्मणों के टुकड़े किये; मुसलमानों ने गुरु तेगबहादुर का सिर उड़ाया; मतिदास के मस्तक पर आरा रखने पर भी वह हिन्दुत्व छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए, इसलिए उन्हें जैसे का तैसा खड़ा–खड़ा ही चीर डाला; बन्दा वीर का मांस तक लोहे के गज भोंक कर टुकड़े–टुकड़े कर डाला; सम्भाजी की आँखें फोड़ीं, जीभ काट डाली; हरपाल को छील डाला, कवि कुलेश को मार डाला; टीपू के हाथों अपना धर्म–परिवर्तन न हो, इसलिए जिन वीरों ने अपनी जीभ खींच कर प्राण दिये इन हुतात्माओं ने जो प्राण त्याग किये, वे हिन्दू शब्द को तुम्हारी पुस्तकीय व्याख्या तथा व्याकरण की मात्रा की गलती न होने पाये, क्या इसीलिए किये थे? नहीं बिलकुल नहीं! हिन्दुत्व के अतिरिक्त उन्हें जीवन ही नहीं भाता था, वे जीना ही नहीं चाहते थे– 'धर्म हेतु साका तिन किया, सर दिया पर सिरह न दिया।' उनकी तीव्र इच्छा ही उनकी हिन्दुत्व की व्याख्या, उनका हृदय ही उनका व्याकरण!

हिन्दुओ! अपना राष्ट्र गत दो सहस्र विशुद्ध ऐतिहासिक वर्षों तक जो जीवित रह सका वह केवल यदृच्छा जीवित रह गया इसलिए ही जग सका जो लोग ऐसा कहते हैं वे मूर्ख अथवा चालबाज हैं। हम जीवित रहे क्योंकि जीवित रहने के लिए हम ही सबसे योग्य थे। उन परिस्थितियों से जूझने के लिए जो–जो भूलना आवश्यक था, वह हम भूल गये और जो कुछ अपनाना आवश्यक था वह सीखे भी। और इसीलिए उन परिस्थितियों पर भी विजय पाकर जीवित रह सके। संसार पर विजय पाता हुआ सिकन्दर आया, उसके पास हमसे बहुत कुछ अधिक था। उसने उस हिसाब से आक्रमण किया, किन्तु शीघ्र ही चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने यूनानियों के शस्त्र संगठन समेत उन्हें आत्मसात् कर लिया। जो अपने मण्डल में कच्चा था, उसे निकाल कर पक्का कर लिया।'

— स्वातन्त्र्यवीर सावरकर

राष्ट्रधर्म

सितम्बर-१९९८ भाद्रपद-२०५५
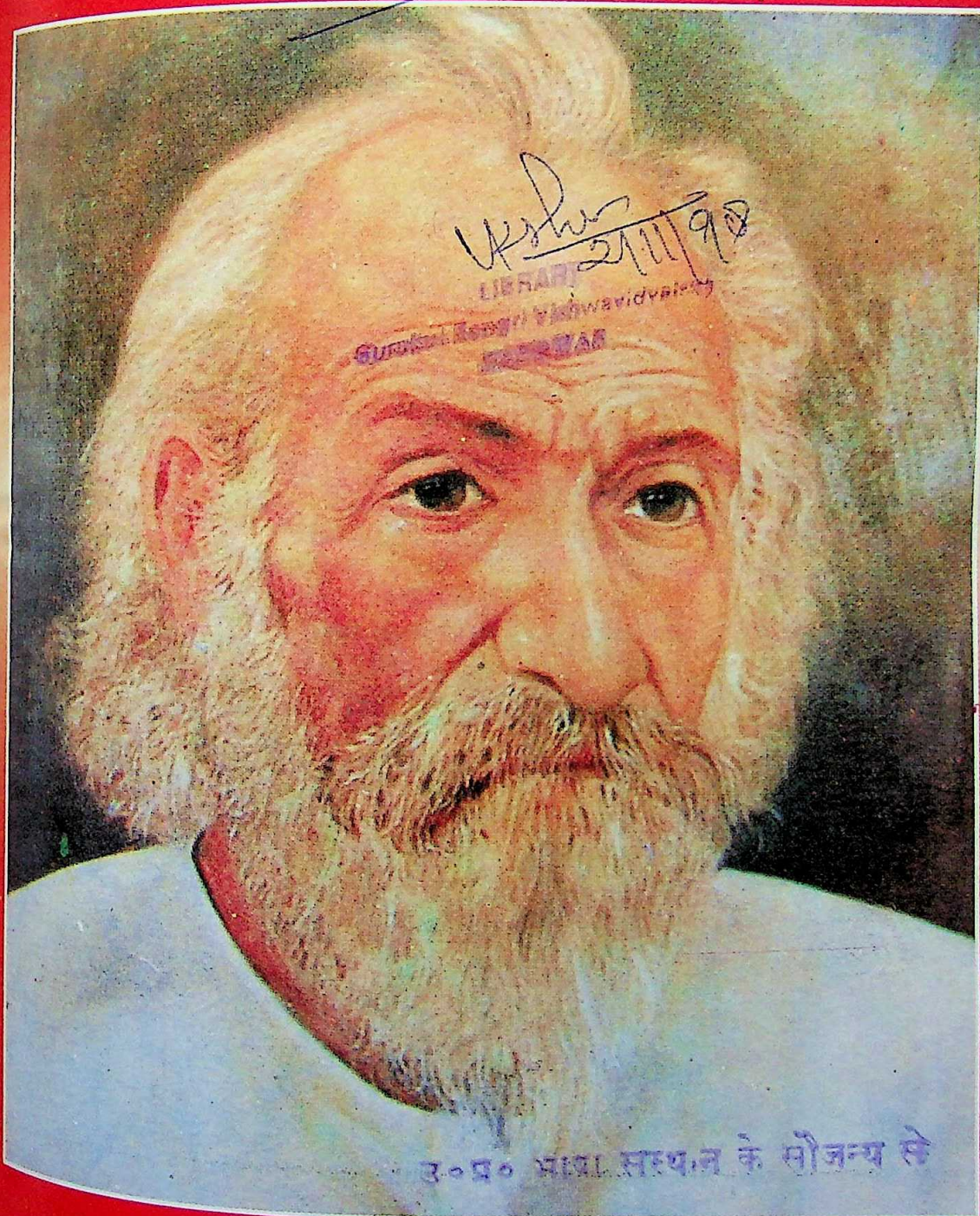
१०/-

हिन्दी के दधीचि

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन
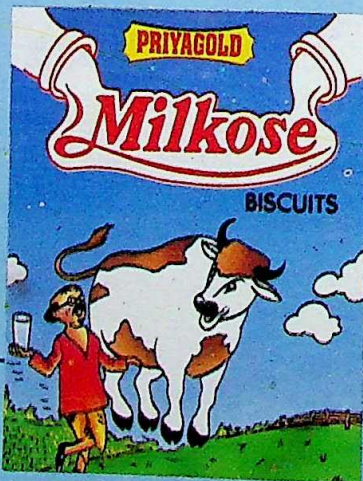
राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित

संविधान सभा चल रही थी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने और राज–भाषा बनाये जाने के मार्ग में गांधी, नेहरू, मौलाना के परोक्ष समर्थन से रोड़े अटकाने का पग–पग पर प्रयत्न मेकाले और मार्क्स के मानस पुत्रों द्वारा अन्दर–अन्दर चल रहा था। स्वतन्त्र भारत की भाषा का नाम 'हिन्दी' के बजाय 'हिन्दुस्तानी' रखे जाने का भी सुझाव ऐसे ही षड्यन्त्र का एक अंग था। पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को कहीं से भनक लगी कि पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को भी 'हिन्दुस्तानी' के समर्थन में पटाया जा रहा है। बस क्या था। 'नवीन' जी एक शाम को गुस्से में तमतमाये जा धमके चतुर्वेदी जी के यहाँ और हाथ का डण्डा दिखाते हुए बोले– 'चौबेजी ! सुना है 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन करने वाले हो, खाल खींच लूँगा अगर ऐसा किया।" चतुर्वेदी जी ने मुस्कराकर 'नवीन' जी के क्रोध को शान्त करते हुए उन्हें 'हिन्दी' का समर्थन करने का पक्का आश्वासन दिया। इस प्रकार संविधान सभा में हिन्दी को सभी सदस्यों द्वारा पूर्ण समर्थन दिया गया और वह एकमत से राजभाषा घोषित हुई। आज वही मेकाले, मार्क्स और मौलाना के मानस पुत्र यह विभ्रम फैलाने में एकजुट हैं कि हिन्दी मात्र 'एक' मत से राजभाषा घोषित हुई थी ओर वह 'मत' संविधान सभा के अध्यक्ष का था। ध्यान रहे, संविधान–सभा के अध्यक्ष थे देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और उन्होंने भी हिन्दी के पक्ष में मत इसलिए दिया था कि उन्हें कहीं हिन्दी–विरोधी न मान लिया जाये। इस 'एकमत' और 'एक मत' के विभ्रम का शिकार आज हिन्दी के अनेक लेखक तक हो गये हैं, जो हिन्दी का पक्ष प्रबलता से रखते हुए भी अनजाने ही इस 'विभ्रम' का 'शिकार' हो जाते हैं। 'एकमत' का अर्थ ही है 'सबका मत एक' या 'सर्व–सम्मति'। 'सर्वसम्मति' के लिए 'ऐकमत्य' शब्द (भाववाचक संज्ञा) का प्रयोग पहले भी होता रहा है। कहने का तात्पर्य यह कि जब हिन्दी 'राजभाषा' घोषित की गयी, तो यह सर्वसम्मत निर्णय था संविधान–सभा का, जिसमें नेहरू जी, मौलाना आजाद, मौलाना हसरत

एक खेत में ऐसा हुआ

मोहानी और अंसार हरवानी जैसे लोग भी सम्मिलित थे ; क्योंकि हिन्दी के पक्ष में ऐसी प्रबल जन–भावना थी कि किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी कि विरोध करता।

परन्तु नहीं ; वह नेहरूजी ही क्या, जो हार मान लें। प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने एक चाल तुरन्त खेली और देवनागरी लिपि के साथ देवनागरी अंकों के प्रयोग के बजाय अंग्रेजी अंकों का 'देवनागरी अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप' कहकर उनके प्रयोग का प्रावधान संविधान में करा दिया। है न कमाल की बात। और ऐसा कमाल विश्व के किसी भी देश में अणुवीक्षण–यन्त्र लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा कि उसकी राजभाषा की लिपि तो एक हो ; परन्तु अंक किसी अन्य लिपि के हों। 'आधा तीतर, आधा बटेर' ऐसा अन्धेर केवल और केवल भारत में ही मिलेगा। हिन्दी की लिपि तो देवनागरी और अंक अंग्रेजी ; वर्णमाला देवनागरी की और अंकावली अंग्रेजी की। आज इस देश की तीन पीढ़ियाँ देवनागरी अंकों का प्रयोग करना भूल चुकी हैं। प्राचीन ग्रन्थों, पुस्तकों में अंकित देवनागरी अंकों को अगली पीढ़ी पहचानने तक में असमर्थ होगी। हिन्दी और संस्कृत के ऐसे अनेक विद्वान् अंग्रेजी अंकों के पक्ष में यह 'निर्लज्ज कुतर्क' देते मिल जायेंगे कि ऐसा तो संविधान में लिखा है। इनसे कौन पूछे कि संविधान में तो और भी बहुत कुछ लिखा है, उसका कितना पालन करते हो ? संविधान में यह कहाँ लिखा है कि देवनागरी अंकों का प्रयोग देवनागरी–लिपि के साथ न किया जाय ?

हिन्दी के साथ विडम्बनायें और भी हैं। 'हिन्दी–दिवस', 'हिन्दी–सप्ताह', 'हिन्दी पखवारा' और हिन्दी–मास' के नाम से जितने भी आयोजन सरकारी, अर्द्धसरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं, उनमें मुख्य अतिथि, मुख्य वक्ता, अध्यक्ष बनाया जाने वाला 'विद्वान्', 'राजनेता', 'साहित्यकार' हिन्दी को सरल बनाये जाने का उपदेश बिना दिये नहीं मानता। उसके इस नितान्त अवाञ्छनीय उपदेश की ध्वनि यही होती है कि 'सरलीकरण' के नाम पर हिन्दी का 'भ्रष्टीकरण' किया जाय। संस्कृत के शब्दों (तत्सम शब्दों) को निकालकर उनके स्थान पर अरबी–फारसी, अंग्रेजी

के शब्दों को रखा जाय। क्या ऐसा ही सरलीकरण करने का उपदेश वे उर्दू [illegible]जीवालों को देने की हिम्मत कर सकते हैं? है इनमें यह साहस? आखिर ऐसा उपदेश पिलाने के लिए इन्हें हिन्दी ही क्यों मिलती है? इन्होंने हिन्दी को 'लटे की लुगाई' क्यों समझ लिया है? क्या हिन्दी कोई पंगु भाषा है? क्या लूली–लँगड़ी भाषा है हिन्दी? समय आ गया है कि ऐसे विकृत–मानस लोगों कों, फिर वे चाहे जो हों, स्पष्ट बता दिया जाय कि हिन्दी विश्व की सबसे सशक्त, सबसे सक्षम, सबसे समर्थ भाषा है। इसे 'उपदेश पिलानें' की जुर्रत न करे कोई।

'घुसपैठिये' सिर्फ बांग्लादेशीय या पाकिस्तानी ही नहीं हैं। 'घुसपैठिये' और भी हैं और इनकी 'घुसपैठ' करानेवाले उन्हें 'वैधता' दिलानेवाले भी वही हैं,जो बांग्लादेशीय और पाकिस्तानी घुसपैठियों के हिमायती हैं; संरक्षक हैं; सम्पोषक हैं; सम्वर्द्धक हैं। यह वही तत्त्व हैं, जो ऐसे घुसपैठियों के निकाले जाने की बात आते ही आसमान सिर उठा लेते हैं। हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' या 'हिंग्रेजी' बना डालने वाले ऐसे तत्त्वों में वे तथाकथित पत्रकार, लेखक, साहित्यकार और बुद्धिजीवी प्रमुख हैं, जो अपने को, 'श्रमजीवी', 'प्रगतिशील', 'मानवाधिकारवादी' कहते नहीं थकते हैं। ये ही वे लोग हैं, जो हिन्दी में 'गौरतलब', 'मकसद', 'साजिश', 'अजदहा', 'फिलवक्त', 'गैरबराबरी', 'मुनासिब', 'बावजूद', 'खैरियत', 'कैफियत', 'रूबरू', 'कामयाबी', 'क्लीनचिट', 'दफा होना', 'अल्टीमेटम', 'कत्ल', 'किस्सा–गो', 'गुफ्तगू' जैसे शब्दों की घुसपैठ कराने में पिछले पचास वर्षों से लगे हैं। अरबी–फारसी के जिन शब्दों को हिन्दी बहुत पहले ही आत्मसात् कर चुकी है, उनका अरबी/फारसीकरण भी इधर तेजी से किया जा रहा है। क, ख, ग, ज, फ के नीचे बिन्दी लगाये जाने की वर्जना हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन ने अपने बरसों पुराने प्रस्ताव में की थी और जिसका परिपालन निष्ठापूर्वक अब तक होता रहा था, उस प्रक्रिया को एकदम पलट दिया जा रहा है और यह 'तेजी' इतनी 'तेज' है कि 'फल', 'फूल' अब 'फ़ल–फ़ूल' रहे हैं। इन लोगों में अनेक ऐसे कहानीकार भी हैं, जिनकी कहानियों में अंग्रेजी के पूरे के पूरे वाक्य मिलेंगे। मानसिक दासों की ऐसी एक पूरी की पूरी जमात पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में कुण्डली मारकर जम गयी है। इसी जमात की 'महती अनुकम्पा' से 'धर्मयुग', 'दिनमान', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसे हिन्दी की पहचान बन चुके साप्ताहिक पत्र असमय काल–कवलित हो गये और किसी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी।

हिन्दी के अस्तित्व पर एक और दिशा से भी संकट के बादल मँडरा रहे हैं। क्षेत्रीयता और व्यक्तिगत स्वार्थपरता तथा अहम्मन्यता के वशीभूत कुछ लोगों ने भोजपुरी, अवधी, मैथिली, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी आदि हिन्दी की बोलियों को भाषा की मान्यता दिलाने का अभियान–सा चला रखा है। एक सज्जन तो ऐसे धुरन्धर विद्वान् निकले कि उन्होंने यह तक खोज कर डाली कि रावण की अशोक–वाटिका में बन्दिनी सीताजी से जिस भाषा में हनुमान् जी ने वार्त्ता की, वह भाषा 'बज्जिका' थी और इससे भी अधिक मजे की बात यह कि उन्होंने 'बज्जिका भाषा' के नाम पर अपनी एक कागजी या जेबी संस्था का पञ्जीयन तक करा डाला, लेकिन कहाँ? बिहार के किसी नगर, नहीं, सुदूर हैदराबाद में। ऐसे लोगों का उत्साह–वर्द्धन और पृष्ठ–पोषण करने में साहित्य अकादमी की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट दिखलायी पड़ती है। मार्क्स, मेकाले, और मौलाना के मानसपुत्रों का इस षड्यन्त्र में जैसा योगदान परिलक्षित होता है, उससे तो 'हिन्दी' का नाम कहीं बचेगा ही नहीं। हिन्दी को अस्तित्वहीन करने के पीछे छिपी दुरभिसन्धि के जो लोग जाने–अनजाने लोकैषणा या वित्तैषणा के कारण आखेट बन रहे हैं, उन्हें समय रहते सचेत हो जाने, सचेत किये जाने की नितान्त आवश्यकता है।

जिस देश के नाम दो – 'इण्डिया' और 'भारत'; राष्ट्र–गान दो – 'जन–गण–मन' और 'वन्दे मातरम्'; संविधान दो– १. भारत का २. कश्मीर का; राष्ट्र–ध्वज दो– १. भारत का २. कश्मीर का; देश की राजभाषा दो– हिन्दी और अंग्रेजी हों, उस में देवनागरी लिपि को भी खण्डित कर दिया गया, तो इसमें आश्चर्य क्या? जिस देश को प्रथम प्रधान मन्त्री ही खण्डित व्यक्तित्व का मिला हो, उसे ऐसी विडम्बनायें तो भोगनी ही थीं और यह उसी देश में सहन किया जाना सम्भव भी था। अमीर खुसरो के नाम पर प्रचलित पहेली– 'एक खेत में ऐसा हुआ, आधा बगुला आधा सुआ' भी तो आखिर कहीं चरितार्थ होनी थी, सो हो रही है। उक्त पहेली में क्या मात्र इतना–सा संशोधन देश और उसके साथ ही देश की तथाकथित राजभाषा हिन्दी की वस्तु–स्थिति को उजागर करने, समझने, समझाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि– **"एक देश में ऐसा हुआ, आधा बगुला आधा सुआ"।**

और वह एकमात्र देश केवल भारत है भारत, अन्य कोई नहीं।

– आनन्द मिश्र 'अभय'

दृष्टिकोण—

ईसवी सन् २००१ का भारत-आह्वान व सिद्धता पक्ष

– लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े

१९४७ अगस्त में भारत राजनैतिक दृष्टि से परकीय शासन से मुक्त हुआ। प्रचलित भाषा में "स्वतन्त्र" हुआ। प्रचलित भाषा में "स्वतन्त्र" ऐसा शब्द प्रयोग इसलिए करना पड़ रहा है कि आज ५० वर्ष पूर्ण करने के पश्चात् भी हमारे राष्ट्र जीवन के किसी भी आयाम में 'स्व' का तन्त्र देखने को नहीं मिलता, यह दुर्भाग्य है। आज भी राष्ट्र जीवन का प्रत्येक आयाम परकीय तन्त्र से ही संचालित, परिभाषित है। हमारा संविधान भानुमती का कुनबा है। हमारी संसदीय–पद्धति हमारी ग्राम पंचायत पद्धति का रूप नहीं है, वह केवल पाश्चात्य पार्लियामेण्ट व सीनेट का मिला–जुला रूप है। हमाना न्यायालय राम शास्त्री प्रभुणे, आर्य चाणक्य या राजा भोज का न्यायालय नहीं है। वह असत्य को सत्य प्रमाणित करने की सुविधा देकर वाग्विलास के लिए स्थान देने वाला एक मंच है, जिसके कारण आज कितने ही निरपराध लोग दण्ड भोग रहे हैं और अपराधी खुलेआम अपनी रोटी सेंक रहे हैं। हमारी अर्थनीति एकात्म मानव्य के विचार की अथवा सच्चिदानन्द रूप आत्मा की द्योतक समष्टि–भावना की नहीं है, तो मिलावट, दिखावट, सजावट, बनावट की है। एक दूसरे की सहायता की नहीं, एक दूसरे के उत्पीड़न की है। पोषण की नहीं, शोषण की है। फिर यह बजाजा हो या सराफा, कृषि हो या वाणिज्य, साहूकारी हो या बैंक, सहकारी संस्था हो या सरकारी दफ्तर। हमारी शिक्षा–पद्धति में न हमारी भाषा को स्थान है, न इतिहास को, न ही संस्कृति को या सामाजिक रचना को, न साहित्य को, न धर्म की बुनियादी शिक्षा को। एक प्रकार से वह पूर्णतः आयातित है ऐसा कहा जाए, तो अन्यथा नहीं होगा। हमारा पशु–पालन, गो–संवर्द्धन, पादप–सुरक्षा, निसर्ग–रक्षा, जल–व्यवस्था, सामाजिक संस्थाएँ, कुछ भी तो अपना नहीं है। किसी में भी अपनापन भारत का अपना 'स्व' त्व देखने को नहीं मिलता। इसीलिए प्रचलित भाषा में 'स्वतन्त्र' अथवा 'तथाकथित स्वतन्त्र' शब्द प्रयोग करना पड़ता है।

स्वयंसेवी संस्थाएँ वस्तुतः इस 'स्व' भाव से प्रेरित होकर ही कार्य करने के लिए खड़ी हुई हैं। परन्तु काल, परिस्थिति व वातावरण की विवशता के कारण उनमें से अनेक 'स्व' याने व्यक्ति–केन्द्रित ऐसा अर्थ लेकर कार्य करती दिखतीं हैं वह 'स्व' याने स्वार्थ ऐसा भाव लेकर स्वार्थ–पूर्त्ति में लग गई हैं। फिर भी पद्मश्री अण्णा हजारे, श्री म्हैसाब, श्री प्रेमभाई जैसे मनीषी इस प्रवाह–पतित अवस्था से ऊपर उठकर समाज को ऊर्ध्व की दिशा में, उत्तमता की दिशा में, 'स्व' के आधार पर ले जाने की चेष्टा में लगे हुए हैं, यह प्रभुकृपा ही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में संस्था से प्रेरित लाला हंसराजजी गुप्त भी उसमें से ही एक मनीषी थे। एक सफल शीर्षस्थ उद्योगपति होते हुए भी पूर्णतः राष्ट्र–भाव से प्रेरित थे। लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, डॉ० हेडगेवार व श्री मा०स० गोलवलकर गुरुजी के सम्पर्क से वे केवल राष्ट्रगंगा में एक स्रोत ही मात्र नहीं रहे, तो स्वयं गंगा–स्वरूप ही बन गये थे। उनका स्पर्श–मात्र भी राष्ट्रकार्य के विभिन्न अंगों का पोषण करने का कार्य करता था। अपने लाला हंसराज गुप्त स्मृति शिक्षा एवं शिल्प–कला संस्थान रघु आश्रम, वृन्दावन के वे प्रेरणास्रोत हैं। सरस्वती शिशु मन्दिर, विद्या भारती, साईं सेवा मिशन, रामकृष्ण मिशन आदि कतिपय संस्थाएँ भी ऐसी 'स्व' की भावना से प्रेरित आकार लेती हुई दिखाई अवश्य पड़ती हैं।

स्वतन्त्र भारत का समाज भी स्वतन्त्र हो, स्वाभिमानी हो, स्वावलम्बी हो, आत्मनिर्भर हो, स्वत्वनिष्ठ हो, स्वकर्त्तव्य-प्रवण हो, यह स्वाभाविक अपेक्षा गांधी जी से लेकर भारत के सभी स्वातन्त्र्य सेनानी मनीषियों की रही है, यह निर्विवाद है; परन्तु इच्छा समुचित होने पर भी मार्ग समुचित न हो, साधन समुचित न हो, तो गन्तव्य स्थान पर पहुँचना असम्भव होता है। जिस गन्तव्य को जाना है,

उसकी निश्चित दिशा या साधन का ज्ञान न हो व अनवधान से अथवा अपरिपक्व बुद्धिभेद के कारण गलत दिशा या गलत साधन लेने पर गन्तव्य स्थान पर पहुँचना सम्भव नहीं। दुर्भाग्य से ऐसा ही हुआ। गांधी जी, विनोबा जी व अन्य रचनात्मक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का आग्रह न मानकर पं० जवाहरलाल नेहरू जी ने पाश्चात्य अर्थवाद का आग्रह रखा और पाश्चात्य यन्त्र व तन्त्रों के आधार पर औद्योगीकरण का मार्ग अपनाया। कृषि–प्रधान शस्य श्यामल देश में औद्योगीकरण एक अभिशाप ही प्रमाणित हुआ। कृषि की पारम्परिक कला व विशेषता समाप्त हुई। गो–धन व पशु–धन नष्ट हुआ। देश की हरियाली कम होती चली गई। ग्राम उजड़ गये। नगर अधिक आबादी के कारण सभी प्रकार की आपूर्त्ति के अभाव से ग्रस्त हो गये। बेरोजगारी बढ़ गई। अपराधकर्मी बढ़ गये। प्रदूषण बढ़ने लगा व सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि सम्पन्न लोगों की लालसाएँ बढ़कर दैत्य रूप लेने लगीं वह सर्वसाधारण समाज विश्वासहीन बनकर अपने को परावलम्बी अपंग अनुभव करने लगा। विश्वासहीन समाज का भविष्य अन्धकारमय ही होता है। जाग्रत् अवस्था में विडम्बना की स्थिति आयी है। कोई किसी का विश्वास नहीं करता। एक दूसरे को नीचा दिखाने की, लूटने की व उपहास करने की स्थिति आ गई है।

इन सबका कारण है गत ५० वर्षों में बनी समाज की परावलम्बी, परमुखापेक्षी देहनिष्ठा की वेतनभोगी हताश आहत मनोवृत्ति। उसका भी कारण है बिना राष्ट्रभाव का विचार किये केवल झूठी स्पर्द्धा की कल्पना से अपनाई गई औद्योगीकरण की पाश्चात्यावलम्बी अर्थनीति। उसका एक ही उपाय है और वह है 'स्व' के भाव का जागरण व आत्मबोध। यही स्वत्व–सम्पन्न व्यक्तित्व को उभारेगा। स्वाभिमान व स्वावलम्बन के आधार पर राष्ट्रसेवा, समाजसेवा का भाव जाग्रत् करेगा। स्वावलम्बी विद्यालयों की इसीलिए आवश्यकता है। उसमें भी एक सावधानी रखने की आवश्यकता दिखती है।

स्वावलम्बी संस्थाएँ चलती तो हैं; परन्तु वे भी स्वयं स्वावलम्बी न रहकर सरकारावलम्बी अथवा पूँजीपति अवलम्बी बनती हैं। कुछ मनीषी उससे भी बचकर समाज से ही सहायता उपलब्ध कराकर अपनी संस्था खड़ी करते हैं, परन्तु व्यवस्था व रचना ठीक न होने से वह संस्था समाजावलम्बी बन जाती है। ऐसी संस्थाओं में– "हम समाज का व्यक्ति समाजोन्मुख बनाते हैं व उसमें समाजसेवा वृत्ति जाग्रत् कर उसे समाज के शोषित उपेक्षित क्षेत्र की सहायता करने को प्रवृत्त करते हैं।" ऐसा समाधान अपने में से अनेकों को होता होगा, तो आश्चर्य नहीं। कारण यह विधान सही है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए, तो इस विधान के पीछे भी उन सहायता लेने वाले व्यक्तियों का अथवा संस्थाओं का स्वार्थ ही छिपा हुआ दिखेगा। वस्तुतः समाज को सेवाभिमुख करने की दृष्टि से प्रारम्भ में उन्हें ऐसी संस्थाओं के पोषण के लिए उद्युक्त करना यह तो उचित कहा जा सकता है, परन्तु सदा ऐसी बाहरी मदद पर ही संस्था को चलाने से न संस्था ही स्वावलम्बी कही जायेगी, न उसके प्रशिक्षित शिक्षार्थी ही अपने अन्दर स्वतन्त्रता का स्वाभिमान जाग्रत् कर सकेंगे। कारण–बोले हुए शब्दों में स्वातन्त्र्य, सेवा, स्वाभिमान कहना व कृति में परावलम्बित्व होना व्यक्ति को परावलम्बी, परजीवी ही बनायेगा। अतः ऐसी संस्थाओं को उद्यमिता की ऐसी ही विधि अपनानी चाहिए, जिससे वह शीघ्रातिशीघ्र स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर हो।

यह भाव संस्था का कार्यकारी मण्डल शिक्षक, व्यवस्थापक वर्ग व छात्र वर्ग सभी में हो, यह आवश्यक होगा। इसके साथ छात्रों के अभिभावकों को भी संस्था के साथ आत्मीयता से जोड़ा जा सके, यह भी अपेक्षित है। इससे संस्था व संस्था के छात्र स्वावलम्बी वृत्ति के बनेंगे। व यह संस्कार ही उन्हें स्वाभिमानी व स्वत्व सम्पन्न बनायेगा।

परन्तु इतने मात्र से ही भारतीय स्वावलम्बी संस्था का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता। ऐसी संस्थाओं के प्रशिक्षित छात्र पढ़ाई पूर्ण करने के उपरान्त समाज से अथवा सरकार से उपलब्ध आवश्यक सहारा लेकर यथाशीघ्र स्वावलम्बी होने की प्रक्रिया में लगेंगे व सफल होंगे, यही अपेक्षित है। परन्तु ऐसी संस्थाओं को और उनसे प्रशिक्षित छात्रों को इससे भी आगे जाते बनना चाहिए। पाश्चात्य जगत् के अर्थ व समाजशास्त्र का नारा है "कमाने वाला खाएगा" कारण वहाँ व्यक्ति ही समाज की सभी गतिविधियों का केन्द्र है, इसलिए वहाँ केवल 'व्यक्ति' के जीवन का विचार होता है व माना जाता है कि व्यक्ति, व्यक्ति खाने-पीने में निवास में सुखी होगा, तो सम्पूर्ण समाज अपने–आप वैसा ही सुखी होगा। रोटी, कपड़ा और मकान यही व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताएँ मानी गई हैं। परन्तु यह तो केवल पशु के लिए ही सत्य हो सकता है, मानव के लिए नहीं। मानव की केवल इतनी ही न्यूनतम आवश्यकताएँ नहीं कही जा सकतीं। कारण उसके पास मन है, बुद्धि है, अहंकार है– उनसे सम्बन्धित उसकी आवश्यकताएँ अधिक

भौतिक हैं। पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता इसे विचार में लेना भूल गए, ऐसा दिखता है। वे केवल उसकी पाशविक आवश्यकताएँ– 'आहार निद्रा भय मैथुन' तक ही विचार का विषय मान बैठे हैं।

भारतीय–तत्त्व–ज्ञान विश्व में अनुस्यूत आत्मतत्त्व को जो परमात्म-तत्त्व का ही अशंभूत है, जगत् का केन्द्र मानता है। वह यह भी मानता है कि विश्व में जन्म पाए प्रत्येक का गन्तव्य स्थान परमात्म-तत्त्व ही है व प्रत्येक आत्मा उसी की चेष्टा में है और उसके साधन के नाते शरीर धारण करती है। अतः आत्म-तत्त्व में सर्वात्म-तत्त्व की अनुभूति निसर्ग–सिद्ध है। उसी को भूले हुए शरीरस्थ आत्मा को स्मरण कराने के लिए भारतीय अर्थशास्त्र को पं० दीनदयाल उपाध्याय जी ने पाश्चात्य नारे की तुलना में प्रगट किया है। वह है "कमानेवाला खिलाएगा" कारण 'कमानेवाला' संसार में अकेला नहीं आया है। वह जन्म से ही अपनी भूमि, पंच-तत्त्व, परिवार, समाज व पूरे विश्व के साथ बँधा हुआ है। उसके तदनुसार उत्तरोत्तर जन्मजात कर्तव्य भी हैं जिसे 'धर्म' कहा गया है। उस धर्म का पालन करना ही उसके जन्म का सार्थक्य है। उसी में उस जीव का परमकल्याण निहित है। इस धर्म की प्रक्रिया उपर्युक्त नारे में है। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्", "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"; सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सहवीर्यं करवा वहै। "मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।" "यावद्भ्रियेत् जठरं तावत् सत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति", ये सर्व वचन "कमानेवाला खिलाएगा" इस नारे में समाहित हैं। अतः स्वयंसेवी स्वावलम्बी संस्था को भी केवल अपने को स्वावलम्बी बना कर ही धन्यता नहीं मानना चाहिए। तो उसके द्वारा अन्य दुर्बल व्यक्ति या संस्था के पोषण की भी व्यवस्था हो, इसका विचार करना चाहिए।

वस्तुतः ऐसी स्वयंसेवी संस्था जो इस प्रकार केवल व्यक्ति व समाज के स्वावलम्बन याने आर्थिक स्वावलम्बन का विचार कर चल रही हो, उसे यह आर्थिक स्वावलम्बन की स्थिति प्राप्त करना व कराने से भी समाधान मानने का कारण नहीं होना चाहिए। कारण व्यक्ति या समाज का जीवन अर्थ से ही चलता है, ऐसा नहीं। उसके मन की, आत्मा की भूख भी शान्त हो, यह आवश्यक होता है। उसके लिए आज के अर्थशास्त्री विभिन्न प्रयोग कर रहे हैं। उस सभी प्रयोगों को देखने के बाद ब्रह्मदेश रंगून में प्राध्यापक रहे एक ब्रिटिश तत्त्वज्ञ ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "The man is an admixture of the three, the animal, the human and the superhuman and accordingly the man has three corresponding needs. Communism goes to satisfy well the animal needs of man; the socialism or the democracy may satisfy the human needs; but it is only Eastern spiritualism in which India has got the foremost position, can only satisfy the superhuman needs of man." ईस्टर्न स्पिरिच्युएलिज्म से उनका मतलब भारतीय आध्यात्मिक तत्त्व-ज्ञान से ही है। संसार के जीवन के तत्त्व की खोज उस अनुमूति से ही हो सकती है व तभी शान्ति भी सम्भव है।

अतः केवल "सुखस्य मूलं अर्थः," इतना ही ध्यान में रखकर अर्थोत्पादन में लगने के मार्ग खोजना, इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसके आगे की सीढ़ी भी देखनी चाहिए। उसके आगे की सीढ़ी है, "अर्थस्य मूलं धर्मः।" अर्थ के मूल में धर्म हो, तभी अर्थ का राष्ट्र-जीवन के लिए लाभ हो सकता है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह अनर्थकारी होता है। इसलिए यह भी शास्त्रवचन है कि "अर्थमनर्थम् भावय नित्यम्" और इसके अनुसार धर्म का विचार न करते हुए जब व्यक्ति या व्यक्ति समूह धन कमाता है, तो उसका विनियोग भी वह अपनी इच्छा के अनुसार व्यक्तिगत स्वार्थ के कार्यों में अथवा केवल ऐश–आराम में करेगा, यह स्पष्ट है। उस धन का समाज के लिए या राष्ट्र या देशहित के लिए उपयोग होने की कोई सम्भावना नहीं कही जा सकती।

परन्तु जब व्यक्ति धर्म को आधार बनाकर धनोपार्जन करता है तो उसे व्यक्तिधर्म, समाजधर्म, राष्ट्रधर्म, पड़ोसी–धर्म, पुत्रधर्म, पितृधर्म, भ्रातृधर्म आदि सभी बातों का विचार करना ही पड़ता है। एक प्रतिदिन मजदूरी कर कमानेवाला व्यक्ति भी जब कमाता है, तो उसके मन में घर, माता, पिता, पुत्र, कन्या, बहन, भाई व अन्य सगे ध्यान में रहते ही हैं और उनकी आवश्यकता अपनी आवश्यकता से अधिक ही है, यह भाव उसके मन में रहता है। पुत्र व कन्या की किताबें लेनी हैं या माता–पिता के लिए औषधि लेनी है, तो वह अपनी धोती या कमीज फटी हो, तो केवल उसे सीकर चलाने का निर्णय ले लेगा व माता–पिता की औषधि या पुत्र–कन्या की पुस्तकें या भाई के विवाह की तैयारी, इसे अधिक महत्त्व देगा। यही भाव उत्तरोत्तर समाज, देश, राष्ट्र के हित के लिए जाग्रत् होता चले, यही 'धर्म' भाव है। ऐसा धर्मभाव जहाँ जाग्रत् रहेगा, वह देश, राष्ट्र या समाज कभी दरिद्रता का अनुभव नहीं करेगा। वह स्थिति आने ही नहीं देगा।

धर्म ही वह भाव है, जो समाज के विभिन्न अवयवों के परस्पर पोषण की व्यवस्था देता है। जैसे पुत्रधर्म के पालन में पितृधर्म पालन की बाध्यता आती ही है। पतिव्रताधर्म पालन में पति की पत्नी के प्रति कर्तव्य-भावना का जागरण समाया हुआ है। पड़ोसीधर्म के पालन में दोनों पड़ोसी एक दूसरे का पोषण करेंगे, यह सुनिश्चित है। उसी प्रकार व्यवसाय में भी ग्राहक व दुकानदार दोनों भी अपने-अपने ग्राहकधर्म व व्यवसायीधर्म का ठीक पालन हो, तो दोनों एक दूसरे के पूरक बनकर समाज का स्वस्थ रूप में पोषण करते दिखाई देंगे। यही बात मजदूर व मालिक भी अपने-अपने धर्म का पालन करेंगे, तो आपस में तो मन मिला रहेगा ही, समाज की समृद्धि का भी साधन बनेंगे। सबसे महत्त्व की बात तो 'मन की प्रसन्नता' है। स्वधर्म पालन करने से अपने से सम्बन्धित तत्त्व को भी मन की शान्ति मिलेगी व समाज का मन भी सन्तुलित स्वस्थ व प्रासादिक बना रहेगा।

इससे निसर्ग या प्रकृति के प्रति जागरूकता भी बनी रहेगी व प्रकृति, अर्थात् पंच महाभूतों के प्रति हमारा कृतज्ञभाव जाग्रत् रहेगा और जैसी की प्रकृति की परस्पर पोषण की व्यवस्था है, मनुष्य ऑक्सीजन (प्राणवायु) का सेवन कर नत्रवायु (नाइट्रोजन) का प्रक्षेपण करता है, तो पेड़-पौधे नत्रवायु ग्रहण कर प्राणवायु का प्रक्षेपण करते हैं। सूर्य की किरणें प्रकाश देने के साथ ही जल का वाष्पीकरण कर शोषण करती हैं, तो उतना ही बादल बनाने में भी सहायक होकर पुनः जलरूप में पृथ्वी पर आने की क्रिया को सरल बनाती है। उसी प्रकार ग्रह व तारे एक दूसरे को गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से सन्तुलित रखकर गतिमान करने में भी अपना कर्तव्य निभाते हुए स्पष्ट दिखते हैं, उसी प्रक्रिया में मानव भी अपनी सहनशीलता से, सदाचार से तथा सद्‌वृत्ति से प्रकृति में अपना योगदान देता है व "सत्यं शिवं सुन्दरं" का सच्चिदानन्द रूप प्रकट करता है। अतः ५० वर्ष की स्वतन्त्रता की उपलब्धि होने पर भी आज हम 'स्व' तन्त्र स्वीकार न करने के कारण केवल परतन्त्र ही नहीं, तो परकीय तथ्यों पर आधारित अर्थात् दूसरों के आधार पर ही केवल जीवित हैं। दूसरों के सहारे के बिना हम जीवित रह ही नहीं सकते, ऐसी अवस्था में पहुँच गए हैं। हमारे बुद्धिजीवियों के मन-मस्तिष्क भी आज अपने नहीं हैं; पराये हो गये हैं। यह स्थिति किसी भी स्वत्व-सम्पन्न स्वाभिमानी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए अपमानास्पद है, त्याज्य है।

हमें विचार करना होगा, परन्तु निराश होने का कोई कारण नहीं। आशा की किरण आज भी विद्यमान है। भारत की संस्कृति आज भी ग्रामों में व वनों में अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है। अर्द्धशताब्दि के भारतीय-जीवन-विरोधी प्रचारतन्त्र के उपरान्त भी ग्रामीण अंचल व वनांचल उसके पूर्णतः शिकार नहीं बने हैं। कृषि, आयुर्वेद व धार्मिक-व्रत, उद्यापन, यज्ञ-यागादि एवं नैमित्तिक उत्सव त्यौहारों के माध्यम से पर्यावरण सन्तुलन बना हुआ है। उसी को साधन बनाकर भारतीय जीवन-पद्धति का परिष्कार करते हुए युगानुकूल समाजरचना कर उसके आधार पर विश्व जीवन में मार्गदर्शक भूमिका निभाते हुए आज की "असन्तुलित पृथ्वी" से उत्पन्न विभीषिका के कारक दुष्प्रवृत्त मानव व उसके द्वारा प्रताड़ित होने से दूषित पशु-पक्षी एवं पंचमहाभूतों में आवश्यक अपेक्षित परिवर्तन के माध्यम बनने की भूमिका भारत ही निभा सकता है। समुचित धर्म, अर्थ, काम का सन्तुलन बनने से ही साध्य होगा। सन्तुलन बनाने का प्रारम्भ सत्पुरुषों के संकल्प से ही होता है। आज सौभाग्य से अनेक सत्प्रवृत्त कार्य हो रहे हैं। स्वाध्याय-मण्डल, रामकृष्ण मिशन व विवेकानन्द मिशन, दिव्य जीवन सोसायटी, स्वामि नारायण पंथ, साईबाबा मिशन, साधु बेला आश्रम, गीता-गायत्री-परिवार व स्वयं स्वामी शंकराचार्य पीठों पर आसनस्थ स्वामी महाराज आदि अनेक सत्प्रवृत्त संस्थाएँ भारतीय जीवन का मूल्याधिष्ठित स्वरूप निखारने के कार्य में आगे बढ़ती जा रही हैं। अर्थनीति व राजनीति भी इसके प्रभाव को मानने लगी है। व्यवसायी क्षेत्र को भी यही पंथ अपनाना होगा।

ऐसा समाज का सामूहिक मन बनेगा ही। उद्योग व वाणिज्य, अर्थ व राजनीति, मनोरंजन व कामपूर्ति सभी मूल्याधिष्ठित जीवन को अंगीकार करें, ऐसा प्रयास करना होगा। विवेकानन्द केन्द्र, सर्वोदय समाज, दीनदयाल शोध संस्थान, भारतीय मजदूर संघ, विद्या भारती एवं सरस्वती शिशु मन्दिर, वन बंधु समाज, लघु उद्योग भारती, अखिल भारतीय ग्राम पंचायत, वनवासी कल्याणाश्रम ऐसे अनेक कार्य इस प्रयास में लगे हुए हैं। प्रज्ञा-प्रवाह इसे नवीन-नवीन आयाम देकर समाज मन को संस्कारित करता जा रहा है। वातावरण बनता जा रहा है। यह सर्व ईश्वर-प्रणिधान ही है। मानो ईश्वरीय योजना से ही सब हो रहा है। आवश्यकता है अपने ऊपर विश्वास करने की, अपनों को विश्वास में लेने की व अन्यों को विश्वास बँधाने की। एक बार आत्मनिरीक्षण कर संकल्प लें। "विश्वासो फलदायकः" यह सूक्ति साकार रूप लेकर विश्व में उभरेगी। ❑

राजनीति

भारत राज्यों की यूनियन नहीं, एक सनातन राष्ट्र है

– हृदय नारायण दीक्षित

"राष्ट्र का अस्तित्व उसके नागरिकों के जीवन का ध्येयभूत आधार है। जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक व्रत, विचार या आदर्श रहता है और वह समुदाय किसी भूमि विशेष को मातृभाव से देखता है, वह राष्ट्र कहलाता है।" "हमारे संविधान में राष्ट्र की स्वभावगत विशेषताओं को प्रतिबिम्बित नहीं किया जा सका है। विदेशी, विशेषतः अमरीका के लिखित और ब्रिटेन के अलिखित संविधानों में से बहुत सी बातें हमने उधार ले ली हैं। यही नहीं, १९३५ के उस विधान की, जिसने स्वराज्य की एक किश्त प्रान्तीय स्वायत्तता के रूप में हमें दी थी, छाया हमारे संविधान पर पड़ी है। इस विधान से यहाँ के लोगों को दिये गये अधिकारों में 'फूट डालो और राज करो' वाली कुटिल नीति प्रतिबिम्बित हुई है; किन्तु ब्रिटिशों द्वारा दिये गये अधिकारों की गहन समीक्षा करते हुए अनिष्ट बातों को अस्वीकार करने का समुचित प्रयास हमारी धारा सभा ने नहीं किया। राजनीतिक शीघ्रता के कारण अनेक विभेदकारी प्रावधान ज्यों के त्यों बनाये रखे गये। राष्ट्र की एकात्मता की दिशा में ले जाने के लिए आवश्यक चिन्तन नहीं हुआ सावधानी नहीं बरती गई। भारतीय प्राचीन परम्परा का भी ग्राह्य/ग्राह्यता की दृष्टि से अध्ययन नहीं किया गया।"

– दीनदयाल उपाध्याय

भारतभूमि पर निवास करने वाले लोगों की अपनी एक अतिविशिष्ट सनातन संस्कृति है। भारतवासियों के अपने ध्येय आदर्श और जीवन के सभी कर्मों की निर्णायक प्रेरक यही सनातन संस्कृति लोकजीवन की आचार-सारिणी की भी नियामिका है, परन्तु देश की राज्य व्यवस्था के उद्देश्यों, कार्यकरण व राष्ट्र के जन-जन के अभ्युदय व निःश्रेयस् की लब्धि के लिए निर्मित देश के संविधान में इसी सतत-प्रवाही संस्कृति की उपेक्षा की गई है। दीनदयाल जी देश के संविधान में भारत राष्ट्र की सहज प्रकृति की उपेक्षा से बेहद क्षुब्ध थे।

भारत राष्ट्र की प्रकृति के मूल तत्त्व का उन्हें सम्यक् ज्ञान था। उनका मत था कि कोई भी राष्ट्र अथवा व्यक्ति अपनी मूल प्रकृति से भिन्न रहकर उन्नति नहीं कर सकता। मूल प्रकृति की अपनी लोकमंगलकारी गति ही संस्कृति कहलाती है। संस्कृति-सत्य समूचे राष्ट्रजीवन के कार्यकरण की दिशा निर्धारित करते हैं।

भारत राष्ट्र के सनातन अस्तित्व को न स्वीकारने वाली राजनीतिक समझ के चलते संविधान निर्माण के समय देश के तथाकथित बुद्धिजीवियों में "हम निर्माणाधीन राष्ट्र हैं" की बम-चख थी। मानो भारत का संविधान बनाने वाले महानुभावों ने ही भारत को राष्ट्र की पहचान दी है, इसके पहले भारत एक राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में ही नहीं था, जबकि सच बात यह है कि भारत अनादिकाल से एक राष्ट्र है। हमारा सम्पूर्ण वाङ्मय भारत के सनातन अस्तित्व का जीवन्त प्रमाण है।

असल में भारत के अस्तित्व को तोड़ने का काम विदेशी चरित्र के अनेक परकीय शासकों द्वारा अपनी सत्ता के समय से ही किया जाता रहा है, किन्तु भारत का लोकजीवन सत्ता षड्यन्त्रों को नकारते हुए उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम एकसूत्र गतिशील बना रहा है लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में १९२८ में नियुक्त साइमन कमीशन की सिफारिशों के परिप्रेक्ष्य में बने भारत शासन अधिनियम १९३५ ने देश की एकता को तोड़ने के कानूनी बीज बो दिये थे। इस अधिनियम में मुसलमानों, सिखों, योरोपीय लोगों, ईसाइयों और एंग्लो इण्डियन लोगों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व के प्रावधान किये गये। इस तरह भारतीय समाज को बाँटकर कुछ वर्गों को विशेषाधिकार दे दिये गये। देशी रियासतों के सामने भारत परिसंघ में सम्मिलित होने का विकल्प था। उन्होंने सहमति नहीं दी। इसलिए केन्द्र १९३५ की भारतीय अधिनियम की कल्पना के अनुसार

नहीं बन सका। प्रान्तीय स्वायत्तता की बातें आधारभूत ढग से स्वीकार कर ली गयीं। यहीं प्रान्तीयता के विषधर को गति मिलती है। केन्द्रीय विधान मण्डल व प्रान्तीय विधानमण्डलों की विधायी शक्तियाँ भी बाँट दी गयी थीं। उद्देश्य एकदम साफ था कि भारत की एकात्मता को विभाजित करने वाली नींव पुख्ता हो।

भारत के संविधान निर्माता भारत शासन अधिनियम १९३५ की स्थापनाओं से मुक्त नहीं हो सके। सेवानिवृत्त न्यायाधीश एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विधिवेत्ता पद्मभूषण डॉ० दुर्गा दास बसु कहते हैं "इसके कारण राष्ट्रीय एकता के निर्माण में गम्भीर बाधाएँ उपस्थित हुईं। मुसलमानों के पृथक् राज्य के लिए विभाजन हो जाने के बाद भी भावी संविधान के निर्माता इस कठिनाई को पार नहीं कर सके।" "यदि हम १९८० के साधारण निर्वाचन से धार्मिक अल्पसंख्यकों की आक्रामक माँगों से प्रकट होने वाली शका उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति का उल्लेख नहीं करते हैं तो यह अध्याय अपूर्ण रहेगा। उनकी ये माँगें विद्यमान संविधान के आधार के विरुद्ध हैं और हमारे देश के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का अनादर करने के लिए हैं। ये इस आधार पर नहीं आईं कि वह निर्णय संविधान के उपबन्धों से असंगत है; बल्कि इसलिए कि धार्मिक अल्पसंख्यकों की पृथकतावादी मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं है। स्वतन्त्रता के बाद इस प्रवृत्ति का दुःखद लक्षण यह है कि अल्पसंख्यकों ने अपने मतों को सदैव दाँव पर रखा है और बहुसंख्यक समुदाय के विभिन्न दलों के राजनेताओं के लालच में पड़कर अपनी निर्वाचन घोषणाओं में उनकी बातों को माना है। हमारे स्वतन्त्र भारत में न तो आदर्शों का ध्यान रखा जाता है और न विद्यमान संविधान के आधारों का। इस पृष्ठभूमि में निष्पक्ष अध्येताओं का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे राष्ट्रवादी भारतीय के रूप में (प्रत्येक भारतीय नागरिक के बारे में यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि वह कुछ संकीर्ण राजनीतिक आकांक्षाएँ रखता है) यह बताएँ कि अल्पसंख्यकों की इन राष्ट्रविरोधी माँगों को स्वीकार करने से भारत खण्ड–खण्ड हो जायेगा।" आचार्य वसु के तर्क कौन काट सकता है? जबकि भारत का संविधान भारत की अपनी मूल प्रकृति, प्रवृत्ति संस्कृति से हटा हुआ है। वे कहते हैं– "लोकतन्त्र के प्रकल्प में उन्होंने (संविधान निर्माताओं ने) केवल ब्रिटिश लोकतन्त्र को ही माना, उसमें कोई लचीलापन उन्होंने नहीं रखा।" आज सारा देश ब्रिटिश माडल की भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के कारण साम्प्रदायिक विभाजन, भाषा की असहिष्णुता के तनाव और राष्ट्रीय स्वाभिमान की जगह हर क्षेत्र में बढ़ रहे प्रान्तीय दुरभिमान का शिकार है। बेशक इसका कारण भारत की संवैधानिक व्यवस्था से सत्ता पद छीनने की देश के राजनीतिक दलों की संकीर्ण राजनीति है।

लोकसभा में अनेक बाधाओं के कारण पेश न हो सके महिला आरक्षण विधेयक को लेकर धर्म व जाति आधारित आरक्षण की माँग ने दुबारा सिर उठाया है। आबादी के हिसाब से विधानमण्डलों व सेवाओं में प्रतिनिधित्व देने की अल्पसंख्यकों की माँगें नयी नहीं हैं।

दलवई लिखित 'मुस्लिम पालिटिक्स इन सेक्युलर इण्डिया' (१९७२) के कतिपय सारवान अंशों की न्यायमूर्ति डी.डी. बसु ने अपनी पुस्तक "कमेन्ट्री आफ दि कांस्टीट्यूशन आफ इण्डिया" (पृष्ठ २२०–२१) में इसी पृथकतावादी मानसिकता की शल्यपरीक्षा करते हुए देश को सावधान किया है। वसु 'भारत का संविधान एक परिचय' के पृष्ठ ४१९ पर कहते हैं "**जो कोई यह समझता है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों की निरन्तर बढ़ती हुई माँगों को स्वीकार करना पंथ– निरपेक्षता है, उसे इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि एक धर्म के विरुद्ध दूसरे धर्म का समर्थन करना उच्चकोटि की साम्प्रदायिकता है।**" कौन नहीं जानता कि इसी प्रकार की माँगों के चलते भारत का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ था। संविधान की इसी मनोवृत्ति की खामी है कि ईसाई मत के लोग भी ईसाइस्तान बनाने की माँग पर आगे बढ़ते रहे हैं, यह निष्कर्ष नागपुर उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश नियोगी की अध्यक्षता में गठित नियोगी आयोग का था– "इन सब गतिविधियों के पीछे उनकी मंशा यह है कि वे अपनी संख्या के बल पर अपने लिए एक पृथक् ऐसे राज्य की स्थापना करें।"

संविधान निर्माताओं के समक्ष १९४७ के मध्य में देश के विभाजन के फलस्वरूप अल्पसंख्यकों की राजनीतिक समस्याओं के अनुचित दबावों से सर्वथा मुक्त वातावरण उपलब्ध था। दीनदयाल जी ने "भारतीय संविधान पर एक दृष्टि" शीर्षक लेख में अपने आशावाद को रेखांकित करते हुए कहा था "देश की बदलती राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति के कारण संविधान सभा और उसके सदस्यों की मानसिकता में जैसे–जैसे परिवर्तन होता जा रहा है, वैसे–वैसे संविधान का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। इसीलिए कहा जा सकता है कि हमारे संविधान का विकास हो रहा है। संविधान के प्रारूप में परिवर्तन करने

के सुझाव उसकी हर बैठक में आ रहे हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारा देश धीरे–धीरे अपने स्वाभाविक स्वरूप को पहचान रहा है। अपना स्वरूप क्या है और आत्मा क्या है, इसके ज्ञान का उदय हो रहा है। परतन्त्रता के काल में आयी विकृति दूर होकर हमारी अपनी प्रकृति प्रबल होती दिखाई दे रही है। अतः स्वाभाविक है कि इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति जीवन के सभी क्षेत्रों में होगी और उसका प्रभाव इन क्षेत्रों का नियन्त्रण करने वाले हमारे संविधान पर भी पड़ेगा।" परन्तु संविधान के वास्तविक स्वरूप को देखकर उन्हें निराशा ही हाथ लगी। वे संविधान के गलत शब्दों के प्रयोग से क्षुब्ध थे, वे कहते थे कि "अमरीकी ढंग से हमने यहाँ के प्रान्तों- प्रदेशों को "स्टेट्स" कहा है फिर भारत को राज्यों की "यूनियन" कहकर गलत धारणा हमने बोयी। उनका मत था कि भारत की स्वाभाविक प्रकृति एकात्मक शासन अर्थात् यूनीटरी फार्म आफ गर्वनमेण्ट की है। इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद १ में सुस्पष्ट उल्लेख होना चाहिए था कि "भारत एक एकात्मक राज्य होगा।" उनका मत था "संघात्मक संविधान में इकाईयों की निजी सत्ता और प्रभुता होती है, वे एक समझौते के अनुसार (यहाँ पर संविधान समझौता है) अपने अधिकार केन्द्र या संघ को सौंप देती है। हो सकता है कि ये इकाईयाँ अपने सम्पूर्ण अधिकार केन्द्र को सौंप दें और इस तरह संघ अधिक अधिकार सम्पन्न हो सकता है किन्तु उसके सभी अधिकार उसे मिले हुए तथा सौंपे हुए रहते हैं। ऐसा कोई अधिकार नहीं, जो उसका अपना ही हो। इस विचार से संविधान भारत के प्रान्तों की सत्ता को मूलभूत मानता है और केन्द्र को राज्यों का समूह मात्र।"

असल में पं० दीनदयाल उपाध्याय भारत की सार्वभौम एकता के प्रति आग्रही भाव वाले तत्त्वदर्शी ऋषि थे। उन्हें आज के भारत की भवितव्यिता बहुत पहले ही दिखाई पड़ रही थी। वे भारत की राजनीति की चरित्रहीन गति को भी जानते थे कि सत्ताभिमुख राजनीति सत्ता के लालच में पतन की सीढ़ी का कोई भी डण्डा आगे आने वाले दिनों में नहीं छोड़ेगी और स्वयं को तो डुबोयेगी ही यह राजनीति, राष्ट्र के अनेक और विभाजनों के लिए कुएँ और खाई खोदने का कार्य भी करती ही रहेगी। उन्होंने संविधान में प्राविधानित राज्यों की यूनियन का प्रखर विरोध करते हुए कहा था "यह सत्य के विपरीत है, भारत की एकता अखण्डता की धारणा का विरोधी है। इसमें भारत माता की जीवमान चैतन्यमयी कल्पना नहीं" संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार "इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा" अर्थात् बिहार माता, बंगमाता, पंजाबमाता, कन्नड़माता, तमिलमाता आदि माताओं को मिलाकर भारतमाता बनेगी। यह हास्यास्पद कल्पना है हमने प्रान्तों की कल्पना भारतमाता के रूप में की है, अलग–अलग माताओं के रूप में नहीं अतः हमारा संविधान संघात्मक न होकर एकात्मक होना चाहिए।"

अपने इस दृष्टिकोण को और भी साफ करते हुए उन्होंने कहा था कि "यूनियन में पारस्परिक सुविधाओं या स्वार्थ के लिए सहयोग करने की भावना होती है। एकात्मकता में राष्ट्र शरीर एक है और प्रान्त उसके विभिन्न अवयव हैं, यह भाव प्रकट होता है। इस भावना के साथ सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया, तो सम्पूर्ण शरीर को उससे बल प्राप्त होता है।" उनकी चिन्ता ठीक निकली। भाषायी राज्य रचना के लिए हुए आन्दोलनों ने देश के मर्म पर घातक चोटें पहुँचाई। स्पष्ट बहुमत की केन्द्रीय सरकारें राज्यों की स्वायत्तता की माँगों के आगे झुकती जा रही हैं। राज्यों के आधार पर राजनीतिक दल बन चुके हैं। एक दल का तो नाम ही तेलुगूदेशम् है। एक राज्य से दूसरे राज्य को जाने वाले पानी/बहने वाली नदियों को लेकर राज्यों में लट्ठमलट्ठा जारी है। तमिलनाडु का द्रविड़ मुनेत्र कड़गम हो या अन्नाद्रमुक, सबके अभियान प्रादेशिकता से युक्त हैं। अकाली दल की भी यही दृष्टि है। प्रादेशिक हितों की बढ़ती राजनीति ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों की खाईं को लगातार बढ़ाया है। इसे संविधान की भूल ही कहा जाना चाहिए कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की बावत न्यायमूर्त्ति सरकारिया की अध्यक्षता में आयोग गठित करना पड़ा। इस सबके बावजूद मात्र कानून–व्यवस्था की सामान्य औपचारिक कार्यवाही पर आज राज्य भड़क रहे हैं।

भाषा आधारित राज्य रचना ने तो गड़बड़ की ही; राष्ट्रभाषा के लिए भी संविधान निर्माता अपना सत्साहस नहीं जुटा सके। फलतः हिन्दी सहित देश की सभी भारतीय भाषाएँ रुग्णता का शिकार हैं और अंग्रेजी देश के सिर पर चढ़कर बोल रही हैं। राष्ट्र की आत्मा की अभिव्यक्ति उसकी अपनी भाषा में ही सर्वोत्तम प्रकार से हो "संविधान सभा का सारा कामकाज चूँकि अंग्रेजी में हुआ था, अतः संविधान पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। संविधान का विचार हिन्दी में किया जाता, तो उसमें अपनी भाषा के

अनुषंग से भारतीयता आयी होती", आज हमारे विद्वान लोग पश्चिम से मुँह फेर कर सोच ही नहीं सकते। मुँह फेरना तो दूर रहा, वे केवल पश्चिम के आधार पर ही विचार कर सकते हैं। संविधान का विचार उन्होंने राजभाषा के रूप में किया तो है और तद्नुसार संविधान का अनुवाद भी हिन्दी में किया जायेगा; किन्तु संविधान की अंग्रेजी प्रति ही अधिकृत मानी जायेगी।" अर्थात् संविधान का विचार भारतीय भाषा में होता, तो भारत के लोकजीवन को अनुप्राणित करने वाले तत्त्व भी संविधान में सहज ही स्थान पा जाते। कौन नहीं जानता कि भाषा किसी भी राष्ट्र के लोकजीवन में एक-एक इकाई के मध्य स्नेह, प्रेम, सौमनस्य ही नहीं, राग-विराग और हर्ष-क्रोध तक को अभिव्यक्त करने का सहज माध्यम होता है। लोकजीवन अपनी सुरुचि, सुरभि और संस्कृति की अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में ही नित्य नये मुहावरे गढ़ता है, नये शब्द गढ़ता है, पुराने शब्दों को नये अर्थ देता है और नये शब्दों को अपनी पुरातन संस्कृति के खूँटे से भी बाँधा करता है।

संविधान की प्रखर आलोचना करने वाले महान् पुरोधाओं में पं० दीनदयाल उपाध्याय अकेले राष्ट्रवादी तत्ववेत्ता नहीं हैं। संविधान सभा में भी ऐसे अनेक विद्वान् सदस्य थे, जिन्होंने संविधान रचना के समय ही कहा था कि हम दास मनोवृत्ति से पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे हैं। यह भी कहा गया था कि यह संविधान भारत राष्ट्र की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। उनका आरोप था कि सब कुछ जल्दबाजी में किया गया है और पश्चिम के देशों के संविधानों के प्रारूपों की अनुकृति करते हुए सनातन राष्ट्र भारत के मूल्यों की उपेक्षा की गई है। संविधान की अच्छाई और बुराई का तत्त्वतः विश्लेषण भारत की पीढ़ियाँ करती ही जा रही हैं मगर इतना साफ है कि हमारे संविधान के मूल अधिकार के अध्याय की रचना का आधार अमरीकी संविधान है। संसदीय प्राणाली सीधे-सीधे ब्रिटिश संसदीय पद्धति की ही अनुकृति है। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की परिकल्पना आयरलैण्ड के संविधान से उधार ली गयी है। जर्मनी के संविधान को भी संविधान निर्माण का आधार बनाया गया, किन्तु सब कुछ अंग्रेजी आकांक्षाओं वाले भारत शासन अधिनियम १६३५ के यथास्थिति फ्रेम में ही जड़ देने की आतुरता में देश की भावात्मक एकता और सनातन संस्कृति के उदात्त आदर्श धरे के धरे रह गये। इस सबके बावजूद जम्मू-कश्मीर के लिए अनुच्छेद ३७० का विशेष, मगर अस्थाई उपबन्ध करते हुए देश के लिए एक स्थायी समस्या खड़ी करने की आधारभूत गलती भी संविधान में मौजूद है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय भारत राष्ट्र की एकता, अखण्डता, सम्प्रभुता और राष्ट्रीय एकात्मकता के मूलभूत सिद्धान्तों के आग्रही तत्ववेत्ता थे, इसीलिए वे संविधान में "एकात्मक राज्य व्यवस्था" के तत्त्व के समर्थक थे। मगर एकात्मक राज्य व्यवस्था से उनका तात्पर्य स्वेच्छाचारी केन्द्र कदापि नहीं था। उनके अनुसार राष्ट्र का संविधान प्राकृतिक न्याय के प्रतिकूल नहीं हो सकता। उनके प्राकृतिक न्याय का तात्पर्य भारत की प्रकृति और संस्कृति के सार्वभौम तत्त्वों के अनुरूप गलत सही के विवेचन से था। उनके "एकात्मक" का अर्थ 'यूनिटरी' नहीं; वरन् 'इण्टीग्रल' था यूनियन का अर्थ होता है कि स्वतन्त्र अस्तित्व वाले घटक पहले से मौजूद हैं और उन सबको किसी खास उद्देश्य या उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक जगह लाया गया है जबकि **"एकात्म" का अर्थ है कि पूरी संरचना एक ही है। व्यवस्था की दृष्टि से जहाँ-जहाँ आवश्यक हो वहाँ अंगों-उपांगों के नाम रखे जा सकते हैं। उन्हें व्यवस्था की दृष्टि से ही शक्ति भी मिलती रहती है। जैसे शरीर में हाथ हैं, पैर हैं, उँगलियाँ हैं। शरीर, हाथों, पैरों, उँगलियों, हड्डियों, रक्त और माँस की यूनियन नहीं है। हाथ, पैर आदि अंग उपांग शरीर में "एकात्म" हैं। हाथ अलग हिलते दिखाई पड़ सकते हैं। मगर शरीर के सभी अंग अविभाज्य घटक ही हैं।" भारत के संविधान में "भारत राज्यों का 'यूनियन' है" इस वाक्य से निकलने वाली ध्वनि ही भारत की जीवमान सत्ता को अस्वीकार करती है। इससे केन्द्र कमजोर होता है।**

भारत के संविधान निर्माता संविधान के संघीय ढाँचे के निर्माण के बारे में ही स्वयं बहुत स्पष्ट नहीं थे। सम्भव है, अपनी इसी द्विविधाग्रस्त मानसिकता के चलते उन्होंने कनाडा के संविधान से मार्गदर्शन प्राप्त किया हो शायद इसीलिए भारत के संविधान में यूनिटरी (ऐकिक) व फेडरल (संघीय) दोनों का साझा स्वरूप शामिल करने की कोशिशें की गईं हैं। मगर दोनों का समन्वय स्थापित करने का काम पूरा नहीं हो सका । यह काम पूरा हो भी नहीं सकता था। वस्तुतः भारत राज्यों का संघ है ही नहीं; यह तो एक सनातन राष्ट्र है सृष्टि के आदि से ही।

❐

— एल-१५६२, सेक्टर आई,
एल०डी०ए० कालोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ

हैदराबाद राज्य रजाकारी के दौर के काले दिन

❑ डॉ. किशोरी लाल व्यास 'नीलकंठ'

भारत विभाजन की जिस दारुण त्रासदी को पंजाब, सिंध और बंगाल के हिन्दुओं ने भोगा, जिया और जिसके घाव लेकर उस पीढ़ी के कुछ बड़े–बूढ़े अब भी जीवित हैं, उतनी ही भयंकर अमानुषिक यातनाओं की शिकार हैदराबाद राज्य की बहुसंख्य हिन्दू जनता रजाकारों के हाथों हुई। दिन–दहाड़े हिन्दुओं की सरेआम हत्याएँ हुईं, उनके घर जलाये गये, बलात्कार किये गये, महिलाओं को नग्न कर उनको बनकम्मा[1] खेलने को बाध्य किया गया; उनके स्तन काट डाले गये, उनके साथ अमानुषिक बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया तथा उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया और वह भी सिर्फ इसलिए कि एक सिरफिरे वकील कासिम रिजवी ने मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन संस्था की बागडोर अपने हाथों में ले ली, लाखों की संख्या में धर्मान्ध मुसलमानों को रजाकार (स्वयंसेवक) बनाया, हथियार और वर्दियाँ दीं गयीं और उन्हें बहुसंख्य हिन्दुओं पर अत्याचार करने की पूरी–पूरी छूट दी गई। देखते–देखते रजाकारों की संख्या इतनी बढ़ गई और रिजवी ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि स्वयं निजाम–बादशाह उस्मान अली खान उससे घबराने लगा। रजाकारों ने सारे हैदराबाद राज्य में जिस ढंग से धीरे–धीरे सारी कानून और व्यवस्था को ताख पर रख दिया, जिस ढंग से डंडे और तलवार का राज्य कायम कर एक समानान्तर प्रशासन व्यवस्था कायम की, उसकी मिसाल किसी भी राज्य में नहीं मिलती। यहाँ तक कि रिजवी ने निजाम को ये सब्ज बाग भी दिखाये कि 'एक दिन आसफजाही का परचम लाल किले पर लहराएगा। निजाम उस्मान अली हिन्दुस्तान के बादशाह होंगे। हम मुसलमानों ने इस मुल्क पर हुकूमत की है और करेंगे। ये 'धोती–परशाद' भला क्या खाकर राज करेंगे?'

परन्तु बहुत जल्द ही 'धोती–प्रसादों' ने रिजवी को धूल चटा दी। रिजवी हिन्दुस्तान छोड़कर रातों–रात भाग खड़ा हुआ। कई रजाकार भारतीय सेना के हाथों मारे गये, कई बन्दी हुए। १७ सितम्बर, १९४८ को निजाम ने जनरल चौधरी के सामने आत्म समर्पण किया। निजाम शाही का अन्त हुआ। हिन्दुस्तान के बीचोंबीच इस्लामी राज्य स्थापित करने का सपना चूर–चूर हो गया। बहुसंख्य निरीह हिन्दू जनता ने आजादी की साँस ली। विशाल हैदराबाद राज्य अपनी बहुसंख्य हिन्दू जनता के साथ भारतीय गणराज्य का एक अविभाज्य अंग बना, पर इस आज़ादी की बहुत बड़ी और भयंकर कीमत चुकाई–निजाम राज्य के हिन्दुओं ने। इतिहास के इस दारुण अध्याय से उत्तर भारत की जनता तो क्या, विद्वान् व इतिहासकार तक अपरिचित हैं। दरअसल हमारे देश में इतिहास को सदैव टुकड़ों में देखा गया और 'विशेष चश्मे' से देखकर आँका गया।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली के तथाकथित सेक्युलरिस्ट इतिहास लेखक बुद्धिजीवियों को यह गुप्त आदेश कांग्रेस सरकार की ओर से दिया गया था कि मुसलमानों के अत्याचारों के खिलाफ कुछ भी न लिखा जाए। और तब ये धर्मनिरपेक्ष सरकारी इतिहासकार जुट गये इतिहास को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत करने में। प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, बन्दा बैरागी, छत्रसाल जैसे स्वाभिमानी देशभक्तों को इन्होंने नजरअन्दाज किया, और मुगल–साम्राज्य के वैभव के गुण गाये। राष्ट्रीय स्वाभिमान को सर्वत्र अपमानित किया और गुलामी को बखाना। इस षड्यन्त्र का ही एक हिस्सा है– हैदराबाद के रक्तरंजित रजाकारी अत्याचार गाथा को छिपाये रखना, परन्तु इतिहास तरह–तरह के प्रमाणों को सहस्र जिह्वाओं से बोलता है। न उसे छिपाया जा सकता है, न रोका जा

१ धार्मिक उत्सव जिसमें देवी के चारों ओर महिलाएँ गीत गाती हुई नृत्य करती हैं।

सकता है। इस्लामी धर्मान्ध रजाकारों ने जो अमानुषिक अत्याचार किये, उसके साक्षी अभी जीवित हैं। उसके प्रमाण अब भी विद्यमान हैं। उसके साक्षी–अवशेष अभी नष्ट नहीं हुए हैं।

हैदराबाद दक्षिण का एक बहुत बड़ा राज्य था, जिसमें तेलंगाना के आठ, कर्नाटक के तीन तथा महाराष्ट्र के पाँच जिले शामिल थे। इस राज्य की ८६ प्रतिशत जनता हिन्दू थी तथा शासक मुस्लिम धर्मावलम्बी थे। यह स्थिति काश्मीर के ठीक विपरीत थी, जहाँ की बहुसंख्य जनता मुस्लिम व शासक हिन्दू थे।

हैदराबाद राज्य 'दकन का नगीना' था। धन–धान्य से सम्पन्न। अपने कला–कौशल और वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध। इस राज्य पर दो राजवंशों ने शासन किया–कुतुबशाही और आसफजाही। कुतुबशाही वंश के बादशाह इसी मिट्टी की उपज थे।– जनता के निकट थे। जनभाषा का आदर करते थे। तेलुगू में भी इन बादशाहों ने कविता की है। दकनी का उद्भव यहीं से हुआ, जिससे बाद में (कथित) उर्दू भाषा ने जन्म लिया।

युवा औरंगजेब को शाहजहाँ ने दक्षिण को जीतने और मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए भेजा। औरंगजेब ने दो स्वतन्त्र राज्यों बीजापुर और गोलकोंडा को कई वर्षों की लड़ाई के बाद जीता। उसने अपने प्रतिनिधि निजामुलमुल्क आसफजाह प्रथम को दकन का सूबेदार बनाया और दिल्ली लौट गया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद आसफजाही सूबेदारों ने मौका देखकर स्वयं को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया। आसफजाही शासकों ने फ्रांसीसियों और युद्ध में अंग्रेजों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखे और अपने राज्य को स्थिरता प्रदान की। सन् १८५७ की क्रान्ति के समय भी उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया और अपने राज्य में उठे बलवे को ताकत से दबा दिया। तुर्रेबाज खाँ नामक एक रोहिल्ला सरदार तथा मौलवी अलाउद्दीन ने पाँच सौ सैनिकों के साथ अंग्रेजों की किंगकोठी पर १७ जुलाई, १८५७ को हमला बोल दिया। इनमें से अधिकांश लोग मारे गये। निजाम की अंग्रेजों से मैत्री सुदृढ़ हो गई और उन्होंने 'द फेथफुल अलाइ' 'विश्वस्त साथी' की पदवी पायी।

आसफजाही राज्य में छठे निजाम मीर महबूब अली बादशाह तक तो स्थिति अच्छी रही। बादशाह अपनी रिआया को समानभाव से देखते थे। कोई भेदभाव नहीं था। पर सन् १९११ ई. में उस्मानअली के गद्दीनशीन होने के बाद धीरे–धीरे रंग बदलने लगा। सरकारी प्रशासन में हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम था। उन्हें बहुत से अधिकार प्राप्त नहीं थे। बहुसंख्य होकर भी हिन्दू इस राज्य में दूसरे दर्जे के नागरिक थे। निजाम की धार्मिक नीति भी हिन्दुओं के रोष का कारण बनी। निजाम ने हिन्दुओं, विशेषकर हरिजनों के धर्मान्तरण की प्रक्रिया 'तबलीग' को बहुत बढ़ावा दिया। इसके लिए काफी धन भी उपलब्ध करवाया। प्रशासन की ओर से इस प्रक्रिया को पूरा समर्थन दिया। इस्लामीकरण तेजी से बढ़ने लगा। इससे आर्यसमाज 'हिन्दू–महासभा' आदि संस्थाओं के कान खड़े हुए।

बहादुर यार जंग या मोहम्मद बहादुर खान एक

एक करोड़ अमरीकी भुखमरी के शिकार

क्या आप सोच सकते हैं कि विश्व की प्रमुख शक्ति, विकसित और सम्पन्न देश में भी भुखमरी हो सकती है? चाहे आपको विश्वास हो या न हो; पर ऐसा है। हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण से पता चला है कि अमरीका के एक करोड़ लोग भुखमरी से ग्रस्त हैं, जिनमें चालीस लाख बच्चे हैं। नेशनल सेन्टर फार हेल्थ स्टेटिस्टिक (एस०सी०एच०एस०) और कॉरनेल विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने पब्लिक हेल्थ के हाल ही के अंक में कहा है कि भुखमरी के शिकार अधिकतर ऐसे लोग हैं, जिनके परिवार में कम से कम एक व्यक्ति ही कार्य कर रहा है। यहाँ तक कि जो परिवार गरीबी रेखा (३५१५० डॉलर प्रतिवर्ष) से ऊपर के स्तर के हैं, वहाँ भी भुखमरी की समस्या है। सर्वे के प्रमुख कैथरीन अलाइमों ने बताया कि उन परिवारों में भी यह समस्या है, जहाँ चार सदस्यों के परिवार में २० हजार डॉलर प्रतिवर्ष की आय है। अमरीका की जो वर्तमान में आर्थिक व्यवस्था है, उसमें धनी और धनी होते जा रहे हैं और गरीब और गरीब, यह राष्ट्र की एक प्रमुख समस्या है। सर्वेक्षण में ६८ प्रतिशत लोगों ने बताया कि उनके पास उतना धन ही नहीं कि औषधियाँ खरीद सकें या खाने की ही समुचित व्यवस्था कर सकें, जबकि अमरीकी अर्थव्यवस्था में सुधार हो रहा है फिर भी इसका लाभ सबको नहीं मिल पा रहा है, जिससे अमीरों–गरीबों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। (मी०फो०)

पठान सैनिक था, जिसने हज की यात्रा की और, सन् १९२७ ई. में 'मजलिस तबलीगे इस्लाम' नामक संस्था की स्थापना की– जिसका मूल उद्देश्य हैदराबाद राज्य में मुसलमानों की संख्या में भारी वृद्धि करना था। वह कट्टरतावादी तो था ही, अच्छा वक्ता भी था। निज़ाम ने उसे नवाब बहादुर यार जंग उपाधि से नवाजा।

सन् १९३३ में एक और धर्मान्ध संस्था 'मजलिस इत्तेहादुल मुसलमीन' की स्थापना हुई, जो दुर्भाग्य से आज भी राज्य में व देश में राजनीतिक पार्टी के रूप में जीवित है तथा धर्मान्धता के प्रचार में व्यस्त है। बहादुर यार जंग अपने तबलीग (धर्मान्तरण) और 'तंजीम' (इस्लाम का पुनर्निर्माण) कार्यक्रम में पूरे जोर–शोर से जुट गया। उसने साफ घोषणा कर दी– "इस्लाम शासक का धर्म है। जो हिन्दू सरकारी नौकरी या अन्य सुविधाएँ चाहते हैं, वे मुसलमान बन जाएँ। बादशाह तो चाहते हैं कि सारे हिन्दू मुसलमान धर्म अपना लें।" हजारों की संख्या में लालच देकर या डरा–धमकाकर हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाने लगा। आर्य समाज ने इसका कड़ा विरोध किया। निजाम ने आर्य समाज के कार्यक्रमों पर प्रतिबन्ध लगा दिये। वामनराव नाईक, जस्टिस केशवराव कोरटकर आदि ने निजाम का विरोध किया।

मजलिस की शाखाएँ जिलों व तालुकों में भी खोली गयीं और इस्लामीकरण की प्रक्रिया तेज कर दी गयी। सन् १९४० ई. में बहादुर यार जंग आल इण्डिया मुस्लिम लीग का अध्यक्ष बना। मार्च १९४१ ई. में सिकन्दराबाद के अपने एक भाषण में उसने कहा– "हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच परम्परा या संस्कृति के रूप में कुछ भी सामान्य नहीं है।"

१९ अप्रैल १९३८ के दिन धूलपेट में भयानक दंगा हुआ। कई आर्य समाजियों को सजाएँ हुईं। सिद्दीक दीनदार नामक एक धर्मान्ध फकीर ने स्वयं को 'चेन्ना वसवेश्वर का अवतार' घोषित किया और कई लिंगायतों को मुसलमान बनाया।

अक्टूबर १९३८ में उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा 'वन्देमातरम्' गाये जाने पर उन्हें कालेज व छात्रावासों से निकाल दिया गया। कई छात्रों ने नागपुर जाकर अपनी शिक्षा पूरी की। रामचन्द्र राव नामक एक छात्र को तो वन्देमातरम् के हर नारे पर बेंत से इतना पीटा गया कि उसकी चमड़ी उधड़ गयी। उसका नाम ही 'वन्देमातरम् राम चन्द्र राव' पड़ गया। (यही वन्देमातरम् रामचन्द्र राव वर्तमान में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली के अध्यक्ष हैं।)

निजाम ने बहादुर यार जंग को खूब बढ़ावा दिया। मजलिस चाहती थी कि निजाम स्वयं को सारे 'दकन का बादशाह' घोषित कर दे। निजाम भी यही चाहता था। धीरे–धीरे बहादुर यार जंग की बढ़ती ताकत से निजाम भी डरने लगा। २५ जून १९४४ को एक दावत के बाद, बहादुर यार जंग हमेशा की नींद सो गया। हुक्के के माध्यम से उसे जहर दे दिया गया। सन् १९४५ में मजलिस पार्टी से जीतकर आये कासिम रिज़वी ने शीघ्र ही सारी कमान अपने हाथों में सम्हाल ली। उसने हजारों रजाकार (भर्ती) किये। उन्हें हथियार बाँटे और कवायद शुरू करायी। देखते–देखते रजाकारों की संख्या लाखों में पहुँच गयी। पैसे–टके, खाने–पीने की उन्हें कोई कमी नहीं थी। रोज लूटपाट होती थी। सारे गुंडे और बदमाश रजाकार बन गये। छोटे–छोटे गाँवों, तालुकों, जिलों आदि में रजाकारों के जत्थे फैल गये। उन्हें स्थानीय पुलिस का पूरा समर्थन प्राप्त था। रिजवी ने निजाम से कहा कि वह अपने आपको आजाद घोषित कर दे। भारतीय गणराज्य में न मिले। रिजवी मध्य–युगीन धर्मान्ध आक्रमणकारियों के जोश से भरा था।

गजल : परिभाषा

– डॉ. रामप्रसाद मिश्र

खेलों का जैसा सत्यानाश क्रिकेट ने किया है, हिन्दी के गीतों का उससे कम बण्टाढार 'गजल' ने नहीं किया है। सब दुष्यन्त कुमार नहीं हो सकते; परन्तु मंचीय कवियों ने सस्ती लोकप्रियता के लिए 'गजल' को जो उधार लिया है, तो मूलधन खो बैठने का अनजाने ही अपराध कर बैठे हैं।– सं.

मुगल वंश के पतन का उद्गार
बस अनियंत्रित कामुकता का प्रसार
कालातीत भावना औ विचार का विहार
राष्ट्रीय अस्मिता से विकट व्यभिचार।

गालिब की कामुकता, मीर की निराशा
इकबाल की साम्प्रदायिक अभिलाषा
साकी, सागर, शराब और शायर प्यासा
गजल साहित्य नहीं, अदब का तमाशा!

– पो. बॉ. नं. ६११७, दिल्ली ११००९१

उसके भाषण भयानक रूप से आक्रामक व विस्फोटक होते थे। निजाम की पुलिस व सेना भी रजाकारों के साथ थी।

१५ अगस्त १६४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ, पर हैदराबाद के हिन्दुओं पर परतन्त्रता और अत्याचारों के बादल छाये थे। रिजवी का एक ही उद्देश्य था– दकन में इस्लामी राज्य स्थापित कर, बाद में दिल्ली के लाल किले पर आसफजाही झण्डा लहराना। वह अत्यन्त घृणा के साथ हर भाषण में कहता– 'ये हिन्दू तो जंगली हैं। तहजीब से कोसों दूर। पत्थरों को, बन्दरों को पूजने वाले जाहिल 'काफिर' हैं जो गाय का पेशाब पीते हैं। मुसलमान ही इन्हें सुधारेंगे।' (द लास्ट निजाम–पृ. २६६)

रिजवी को निजाम के सेनापति अल इद्रूस, कई मंत्रियों, नवाबों, नौकरशाहों और पुलिस का पूरा समर्थन प्राप्त था। वह रेडियो पर बोल सकता था। कई उर्दू समाचार पत्र इसके पिट्ठू थे। दरअसल हैदराबाद के स्वाधीनता संघर्ष में 'उर्दू प्रेस' की भूमिका बड़ी ही नकारात्मक और विरोधी रही। यह बड़े शर्म की बात है कि वे ही देशद्रोही–जन–विरोधी पत्रकार आज उर्दू की दुहाई देते नहीं थकते। उर्दू प्रेस की इस जन–विरोधी भूमिका पर पूरे शोध की गुंजाइश है।

उर्दू के एकमात्र देशभक्त पत्रकार 'इमरोज' के सम्पादक शोएबुल्लाह खान को अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण जान से हाथ धोना पड़ा। निर्भीक सम्पादक शोएब सदैव रजाकारों की नीतियों का विरोध करते थे।

अगस्त २१, १६४८ की रात जब शोएब अपने साले के साथ घर लौट रहे थे, तब रजाकारों ने शोएब पर गोली चलाई, फिर तलवार से उनके हाथ काट डाले। रिजवी ने दो दिन पहले जमरूद महल की एक आम सभा में कहा था– "जो हाथ हमारे खिलाफ उठेंगे, वे काट दिये जाएंगे, जो जबान हमारे खिलाफ बोलेगी, उसे खींच लिया जाएगा।' रिजवी ने जो चुनौती दी, रजाकारों ने उसे कर दिखाया। एक बहादुर पत्रकार धर्मान्धों द्वारा सदैव के लिए सुला दिया गया। आज तक बनी–बिगड़ी न किसी प्रान्तीय सरकार ने और न ही केन्द्र सरकार ने इस राष्ट्रप्रेमी बलिदानी पत्रकार के नाम पर कोई पुरस्कार स्थापित किया। (कम से कम अब तो उसका सम्मान होना चाहिए।)

पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी की जिस तरह धर्मान्ध मुसलमानों के हाथों हत्या हुई, उसी तरह शोएब भी कट्टर रजाकारों के शिकार हुए। हत्यारों को कोई सजा नहीं हुई। कासिम रिजवी की ताकत बढ़ने के साथ–साथ हिन्दुओं पर अत्याचार भी बढ़ते गये। उसने सारे राज्य में आतंक का साम्राज्य खड़ा कर दिया। हिन्दू जनता प्राण–रक्षा के लिए पास–पड़ोस के राज्यों में शरण लेने लगी। मजलिस मुसलमानों की धर्मान्ध संस्था थी, जिसके नौ लाख सदस्य थे। (द लास्ट निजाम–पृ. २६५) मुसलमान स्वयं को 'हुक्मरान कौम' कह कर निरीह हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार ढाते थे।

१६४७ के आरम्भ में मुहम्मद अली जिन्ना हैदराबाद आया। एक विशाल सभा में उसने कहा– 'मुसलमानो! उठो, हिन्दुओं की गर्दन मुर्गियों की तरह मरोड़ डालो। इन्हें गाजर मूली की तरह काट डालो।' मुसलमानों ने दोहरी नीति द्वारा जनसंख्या बढ़ाने का यत्न किया– एक ओर वे जबरन हिन्दुओं का धर्मान्तरण कर रहे थे, दूसरी ओर बड़ी संख्या में उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब व बंगाल के मुसलमानों को आमन्त्रण देकर बसा रहे थे। ट्रेन के डिब्बों में खचाखच लदे मुसलमान हैदराबाद आ रहे थे,जिन्हें सरकार पूरी शरणार्थी सुविधाएँ प्रदान कर रही थी और उन्हें रजाकार बनाया जा रहा था। आगन्तुक लुटेरे हिन्दुओं को लूट रहे थे। भैरवुनिपल्ली, बीबीनगर, गोर्टे, वरंगल, निजामाबाद, करीमनगर, वीदर, नाँदेड़, औरंगाबाद आदि स्थानों पर रजाकारों ने हजारों हिन्दुओं को मारकर उनकी लाशों को उन्हीं के घरों में जला दिया। कई शवों से बड़ी–बड़ी बावड़ियाँ और कुएँ पाट दिये गये। गाँवों से अनेक लड़कियों, बहुओं को उठाकर ले जाया गया जिनका बाद में कभी पता ही नहीं चला। आतंक का साम्राज्य बढ़ता ही गया।

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

यह तो महिमा राम की

गत ६ अगस्त, ६८ को अयोध्या में राम–जन्मभूमि–परिसर में आकाशीय बिजली गिरने से एक आश्चर्यजनक दृश्य सामने आया, जिसे ईश्वर के चमत्कार की संज्ञा दी जा सकती है।

राम–जन्मभूमि–परिसर में लगे सुरक्षा बलों के अनुसार आकाशीय बिजली गिरने से परिसर में लगे वायरलेस उपकरण, क्लोज सर्किट टी०वी०, ध्वनि विस्तारक यन्त्र आदि जल गये; परन्तु रामलला के निकट (गर्भ–गृह) में लगे टी०वी० को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची, जबकि वह भी अन्य टी०वी० सेटों के साथ ही जुड़ा था। ❑

धर्म-ग्रन्थों में राष्ट्र-भक्ति के स्वर

– रघोत्तम शुक्ल

(विद्वान् लेखक सेवा–निवृत्त पी. सी. एस. अधिकारी हैं। 'स्वतन्त्र भारत' जैसे प्रतिष्ठित दैनिक में उनकी रचनाएँ बहुत पहले से प्रकाशित होती रही हैं। – सं०)

आज सेक्युलरिज्म के [illegible] फैशन के कारण राजनैतिक तथा परिणामस्वरूप सामाजिक परिवेश में 'धर्म–निरपेक्ष' रहना आधुनिकता का प्रतीक हो गया है। मध्य प्रदेश में प्रारम्भिक कक्षा की पाठ्य पुस्तक में 'ग' माने गणेश लिख गया, तो इतना बाबेला मचा कि उसे संशोधित करके 'ग' माने 'गधा' करना पड़ा। वैसे हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में बड़ी बुद्धिमत्ता से रचनाकारों और मनीषियों ने राष्ट्रभक्ति के स्वर गुञ्जारित किये हैं, जो युग-युग तक समाज को देश–भक्ति की भावना में सराबोर करते रहेंगे।

राष्ट्रभक्ति के स्वरों की गूँज मानव सभ्यता के आदि ग्रन्थ वेदों में ही होने लगी थी। 'देव्याथर्वशीर्ष' में भगवती आद्याशक्ति ने अपने को 'राष्ट्री सगमनी' कहा है। अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के चतुर्थ सूक्त में 'राष्ट्रधर्म' का सुन्दर उल्लेख है। राष्ट्राध्यक्ष का सीधे जनता द्वारा चयन किये जाने का संदर्भ है। शासक ऐसा प्रबन्ध करे कि सब शान्ति से रहें। राज्य हर प्रकार जनता की रक्षा करे और प्रसन्न रक्खे। चतुर्थ सूक्त के प्रथम मंत्र में कहा गया है :–

"आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङविशां पतिरेकराट त्वं वि राज ! सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो हयुन्तप सघों नमस्यो भवेह।"

(अर्थात् यह राष्ट्र आपको प्राप्त हुआ है। आप महा प्रतापी और प्रजा पालक हों। सब दिशाओं में आपकी ख्याति हो। राजन् ! आप सबके द्वारा आदरणीय और अभिनंदनीय हों !)

आदि कवि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य 'रामायण' में स्थान–स्थान पर, जन–कल्याण, लोकहित–साधन, शान्ति–व्यवस्था, बाह्य शत्रुओं से राज्य की रक्षा, जन समस्याओं का राष्ट्राध्यक्ष द्वारा सीधे–अध्ययन व समाधान आदि भावनाओं को लक्षणा, व्यञ्जना का सहारा लेकर उजागर किया है। उनके राम पिता के वचनों का पालन [illegible] करते हैं, किन्तु पिता ने राज्य सभा को भी वचन दिया था कि राम का राज–तिलक किया जाएगा। राज्य सभा में विभिन्न नगरों के प्रधान पुरुष भी बुलाए गये थे। अतः जनता का पूरा प्रतिनिधित्व था। उस सभा में राजा ने घोषणा की थी कि 'कल प्रातः पुष्य नक्षत्र में राम को युवराज पद पर नियुक्त करूँगा।' यह प्रस्ताव ध्वनि मत से पारित हो गया था। "स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्ष समीरितः" (अयोध्या काण्ड २/१८) ऐसी दशा में पिता का एक वचन तो भंग होना ही था, या तो माता को दिया हुआ या राज्य सभा में जन प्रतिनिधियों को। राम ने वन–गमन का पथ इसलिए चुना कि वे सम्पूर्ण राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, विभिन्न अंचलों की समस्याओं, आतंकित लोगों की पीड़ा आदि का गहराई से स्वयं अध्ययन करना चाहते थे, जो किसी भी राज्याध्यक्ष के लिए अनिवार्य है।

उन्होंने वैसा ही किया। कहीं परिगणित जाति के निषाद को मित्र बनाया, तो कहीं अस्पृश्यता को दर किनार कर शबरी के जूठे बेर खाये। कहीं अकृष्य (अहल्या) भूमि को उपजाऊ बनाकर उद्धार किया, तो कहीं मलद, करूष, ताटका वन जैसे आतंकवाद से निर्जन हो चुके क्षेत्रों को आतंक–मुक्त कर पुनः रहने योग्य बनाया। कहीं खर, दूषण, मारीच, सुबाहु जैसे जन–त्रासक क्षेत्रपतियों (तब के माफियों) से निर्बलों और सज्जनों को छुटकारा दिलाया। वे वनवासी सत्पुरुषों, जनजाति के वानर, भालुओं से सहयोग लेकर क्षेत्र में सकारात्मक सत्ता–परिवर्तन कराते हैं और ऐतिहासिक निर्माण कार्य करवाकर विकास के द्वार भी खोलते हैं। आदि–कवि ने भरत–मिलाप के समय राम द्वारा भरत से कुशल–प्रश्न पुँछवाने के बहाने राष्ट्र के आदर्श संचालन के सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। अयोध्या काण्ड के सौवें सर्ग में सुरक्षित राम के मुख से निःसृत अविकल मंत्र आज भी श्लाघनीय, अनुकरणीय और प्रासंगिक हैं। कृषि की उन्नति, दुधारू पशुओं, जंगलों

की देखभाल, आय–व्यय पर सम्यक्–दृष्टि, दुर्ग की रक्षा, समुचित गुप्तचर–व्यवस्था, जनता–दर्शन, कर्मचारी–अनुशासन, उनका निश्छल होना आदि सब कुछ इसमें सन्निहित है। इस सर्ग के श्लोक ५१ व ५३ इस प्रकार हैं–

कश्चिद् दर्शयते नित्यं मानुषाणां विभूषितम्।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्ने राजपुत्र महापथे।। ५१
कश्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदुकैः
यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा शिल्प धनुर्धरैः।। ५३

(अर्थात् हे भरत! क्या तुम प्रतिदिन पूर्वाह्न काल में वस्त्राभूषणों से विभूषित हो प्रधान सड़क पर जा–जाकर नगरवासी मनुष्यों को दर्शन देते हो? क्या तुम्हारे सभी दुर्ग धन–धान्य, अस्त्र–शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे पूरे रहते हैं?)

संसार के सबसे बड़े महाकाव्य के सृजन का श्रेय भी पवित्र भारतभूमि को ही है। व्यास–प्रणीत 'महाभारत' नामक यह ग्रन्थ धर्मराज युधिष्ठिर की जय–गाथा है। शंकर जी ने पार्वती जी से कहा है कि जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। इसकी मान्यता 'पञ्चम वेद' की है। सवा लाख श्लोकों वाले इस 'जय' ग्रन्थ में रचनाकार ने देशभक्ति के तन्तु बड़ी सुन्दरता से पिरोये हैं। भीष्म पर्व के नवें अध्याय को राष्ट्र कीर्तन का अध्याय कहना समीचीन होगा। धृतराष्ट्र, संजय से भारतवर्ष का यथार्थ वर्णन करने को कहते हैं। संजय विस्तृत और मनोहर शब्दावली में यहाँ का भूगोल, वन, पर्वत नदियों का वर्णन करते हैं। यहाँ के अनेकानेक जनपदों का संदर्भ देते हुए, नदियों को विश्व की माता बताते हैं। इस भूमि को मनुष्यों का ही आकर्षण केन्द्र मात्र न कहकर देवताओं को भी यथेष्ट फल देने वाला कहा गया है। इस देशभक्ति प्लावित कीर्तिगान के कुछ श्लोक इस प्रकार हैं :–

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्ष भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च।।५।।
पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च।।६।।
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसां।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।।६।।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफला।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोथ सहस्रशः।।३७।।
देव मानुष कायानां कामं भूमिः परायणम्।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेयायथामिषम्।।७३।।

(अर्थात् हे भरतवंशी! अब मैं यहाँ आपसे उस भारतवर्ष का वर्णन करता हूँ, जो इन्द्र देव और वैवस्वत मनु का प्रिय देश है। यह पृथु, वेणु, इक्ष्वाकु, अम्बरीष, मान्धाता और नहुष को भी प्रिय था। राजन्! यह भारतवर्ष अन्य अनेक बली राजाओं को भी प्रिय रहा। यहाँ की नदियाँ विश्व की माताएँ हैं। वे सब महान् फल देने वाली हैं। देवताओं और मनुष्यों के लिए यथेष्ट फल देने वाली यह भूमि उनका परम आश्रय होती है।)

महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व में ग्रन्थकार ने पाण्डवों से स्वर्गारोहण पर जाते हुए अपने सम्पूर्ण राज्य की प्रदक्षिणा करवाई है। वे पृथ्वी का शासन करते थे। वे सभी दिशाओं में गये। अनेक देश (स्थान) नदियाँ, समुद्र देखे, तब अन्त में हिमालय पर चढ़े। यह महान् प्रदक्षिणा या विश्वभ्रमण उनकी देशभक्ति का परिचायक है।

योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः।
अभिजग्मुर्बहून् देशान् सरितः सागरास्तथा।।
उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरतसत्तमाः।
प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः।।

(महाप्रस्थानिक पर्व, प्रथम अध्याय श्लोक ३०/४६)

'परिक्रमा' श्रद्धा और भक्ति की परिचायक होती है। राष्ट्र या शासित प्रदेश अथवा भूमि–मण्डल की परिक्रमा इसी बात की द्योतक है। वाल्मीकि रामायण का बालि सूर्योदय से पूर्व, पश्चिम समुद्र से पूर्व तक और दक्षिण सागर से उत्तर तक घूम कर आ जाता है और थकता नहीं है। यथा –

समुद्रात् पश्चिमात् पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम्।
क्रामत्यनुदिते सूर्ये बाली व्यपगतक्लमः।।

श्री मद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में भारतवर्ष का श्रद्धान्वित वर्णन है तथा 'विष्णुपुराण' में कहा गया है कि भारतभूमि के गीत देवता भी गाते हैं–

गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्।।

(वि. पु. –२/४/२४)

अतः यह स्पष्ट है कि हमारे आर्ष ग्रन्थों की कर्म, उपासना और ज्ञान की त्रिवेणी के प्रवाह में राष्ट्रभक्ति की उच्छल ऊर्मियाँ भी उद्वेलित हैं। □

– शाम्भवी, सी–२१, सेक्टर एम,
अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ।

व्यंग्य

महेश चन्द्र सरल

एक दीवाने वे थे और एक ये हैं

दीवाने कई तरह के होते चले आये हैं। एक वे थे, जो देश-प्रेम और आजादी के मतवाले थे। ऐसे दीवाने सर में कफन बाँधकर निकलते थे और अपने को 'शहीदों की टोली' में आगे रखते थे। 'आजादी या मौत' उनका नारा होता था। 'माँ, मेरा रंग दे वसंती चोला' – वे निर्भीकता से गाया करते और अंग्रेजी सरकार को चुनौती देते हुए कहते थे– 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है– देखना है जोर कितना बाजु–ए–कातिल में है।' वह भी एक जमाना था दीवानों का। देखते–देखते वे फाँसी का फंदा अपने गले में डाल लेते थे और फाँसी के तख़्ते पर पहुँचते–पहुँचते 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते हुए उनका वजन बढ़ जाता था।

दूसरे तरह के मौज–मस्ती के दीवाने थे, जिनके लिए श्री भगवती चरण वर्मा ने लिखा था– 'हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले। मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।' ऐसे ही दीवाने अब जगह–जगह घूमते मिलेंगे। हजार जीवन–यापन करना कठिन हो गया हो, अपने पैसों से नहीं, तो दूसरों के पैसों पर मौज उड़ाते हैं।

एक तीसरे तरह के भी दीवाने स्वाधीन देश में अलख जगाने लगे हैं। क्या शिक्षक, क्या राजनीतिक दल के लोग, क्या श्रमिक और क्या विभागों के कर्मचारी, सभी नये–नये नारों से लैस होकर, बैनर लिये आये दिन सड़कों पर निकल पड़ते हैं। सत्याग्रह, अनशन और हड़ताल उनकी माँगों के मनवाने और दबाव बनाने के अमोघ अस्त्र हैं। वेतन तथा अन्य प्रकार की विसंगतियों के विरुद्ध सशक्त–स्वर में वे कहते हैं– 'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी माँगें पूरी हों'। माँगें तो किसी की कभी भी पूरी नहीं होंगी। तब वे सरकार को चेतावनी देते हुए चीखते हैं– 'अभी तो यह अँगड़ाई है, आगे और लड़ाई है।' 'जो हमसे टकरायेगा, चूर–चूर हो जायेगा।'

इतना ही नहीं, वे सरकार को धिक्कारते भी हैं– 'रोजी–रोटी दे न सके जो, वह सरकार निकम्मी है, जो सरकार निकम्मी है, वह सरकार बदलनी है।' उन्हें यह सब कहने का अधिकार संवैधानिक है, तभी तो पुलिस बल सब कुछ सुनता हुआ चुपचाप साथ–साथ चलता है। चाहे किसी भी दल की सरकार हो उसे बदलने के तेवर अब दिन–प्रतिदिन तेज होते जा रहे हैं। सभी जगह कर्मचारी संघों और ट्रेड यूनियनों का बोलबाला है। उनकी कर्मचारियों पर खासी पकड़ भी है। फिर वेतन–भत्ते में बढ़ोतरी और अधिकाधिक सुविधाएँ किसे नहीं चाहिए ? काम से उसकी क्या तुलना ? 'जैसा काम–वैसा दाम' के स्थान पर वे स्पष्ट कहते हैं– 'जैसा दाम–वैसा काम'।

ऐसे ही कुछ तमाशबीन प्रदर्शनकारियों की भी कलई खुल गई, जब मुख्य कार्यकर्ताओं के साथ उन्हें भी जेल में बन्द कर दिया गया। 'ये दीवाने कहाँ चले ?' के उत्तर में वे सामूहिक रूप से स्वर में स्वर मिलाकर कहते थे– 'जेल चले, भाई जेल चले।'

तो उनका जेल जाना मानो उनके सर पर पहाड़ का टूट कर गिरना था। रोना–धोना–माफीनामा सभी कुछ हुआ। एसे भी दीवाने हैं, जो अपने कान पकड़ चुके हैं, जेल नहीं जाएँगे। जो सबको मिलेगा, उन्हें भी मिलेगा। □

– महात्मा गांधी मार्ग,
हरदोई– २४१००१

गीत

– कमला मदन

जहाँ न हो
कोई जग–बंधन।
उस घर लौट चलें!
चलें जहाँ उन्मुक्त नियति
नूतन श्रृंगार करे,
जहाँ प्रकृति
प्रतिरूप निरख
निज से अभिसार करे!
जहाँ सत्य का
हो अभिनन्दन
उस घर लौट चलें!
जिसने सत्पथ में
नित अपना
है सर्वस्व लुटाया,
सहयोजन के
सुखद स्वप्न को
कर साकार दिखाया।
जहाँ न हो
थोथा जन–गण–मन।
उस घर लौट चलें!

– मदारबड़ मस्जिद के पास
तराना–४५६६६५ (उज्जैन)

शहीदों के सपने-अब अपने

हमारे शहीदों ने ऐसे आजाद भारत की कल्पना की थी, जिसमें नागरिकों को राजनैतिक आजादी, सामाजिक और आर्थिक न्याय, विचार–अभिव्यक्ति, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा अवसर की समानता मिले। आज स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती समारोह के समापन एवं

51 वीं वर्ष गांठ पर

आइये, हम सब जाति, धर्म, मत, मजहब से ऊपर उठकर ऐसे भारत, ऐसे समाज की संरचना में जी-जान से जुट जायें, जो हर तरह से खुशहाल हो।

स्वतंत्रता दिवस का यह स्वर्णिम सुप्रभात उन शहीदों को समर्पित है, जिन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर हमें आजाद देश का नागरिक होने का गौरव प्रदान किया है।

स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष में प्रदेश की जनता की सेवा का अवसर एक सुखद अनुभूति है।

हमारे स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने अपने लहू से देश को राजनैतिक आजादी दिलायी। अब हम सब की जिम्मेदारी है कि इस महान देश को सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक आजादी दिलाने में पल-पल का सदुपयोग करें।

कल्याण सिंह, मुख्यमंत्री, उ.प्र.

उत्तर प्रदेश सरकार की प्रमुख उपलब्धियाँ : ठोस कदम

* पहली बार कुल बजट का 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण विकास पर।
* पहली बार ग्रामीण निकायों के लिए सीधे 1001 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* पहली बार प्रत्येक विधायक को अपने विधानसभा क्षेत्र में प्रतिवर्ष 25 हैण्ड पम्प व 5 गांवों के विद्युतीकरण कराने का अधिकार।
* 260 करोड़ रुपये से विधायक निधि की स्थापना। प्रत्येक विधायक को अपने क्षेत्र के विकास के लिए प्रति वर्ष 50 लाख रुपये की व्यवस्था।
* ग्राम पंचायतों को 10,000 रुपये तक के कार्यों की स्वीकृति का अधिकार।
* किसान की पत्नी को किसान की मृत्यु की दशा में कृषि भूमि में पुत्रों के बराबर मालिकाना हक।
* सिंचाई की निर्माणाधीन परियोजनाओं के लिए 609 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* नहरों के किनारे बसे ग्रामीणों के आवागमन के लिए पैदल पुलिया निर्माण योजना प्रारम्भ।
* दैवी आपदा राहत राशि में दोगुनी वृद्धि।

* कुल बजट का 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण विकास हेतु।
* विधायक निधि की स्थापना।
* रोजगार छतरी योजना।
* डीप ट्यूब-वेल लगाने हेतु 50 प्रतिशत अनुदान।
* इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट एथारिटी के गठन का निर्णय।
* सड़कों के विकास के लिए धनराशि में भारी वृद्धि।
* ग्रामीण विद्युत उपभोक्ताओं को पासबुक की सुविधा।
* रिक्शा चालकों के लिए अपने रिक्शा के खुद मालिक योजना।
* सघन मिनी डैरी योजना अब सभी जनपदों में।
* महिला उत्थान योजना प्रारम्भ।
* विधवा महिलाओं को पुत्रों के बराबर मालिकाना हक।
* नकल मुक्त परीक्षा व्यवस्था।

1,50,000 भवनों के निर्माण का लक्ष्य।

* रिक्शा चालकों के लिए बड़े पैमाने पर 'अपने रिक्शे के खुद मालिक' योजना।
* ग्रामीण क्षेत्र में 1,02,825 स्वच्छ शौचालयों के निर्माण के लिए 30 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
* मलिन बस्तियों में नाली, खड़ंजा, सार्वजनिक शौचालय एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बनाये जाने हेतु 46 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
* नगर की मलिन बस्तियों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खोलने का निर्णय।
* बुन्देलखण्ड विकास निधि के लिए 40 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* पूर्वांचल विकास निधि के लिए 120 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* उत्तरांचल की वार्षिक उप–योजना हेतु 860 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* दिल्ली में उद्योग बन्धु कार्यालय की स्थापना।
* विभिन्न पारम्परिक कार्यों में लगे व्यक्ति जैसे–बुनकर, कुम्हार, लोहार, सुनार, मछुआरे, बढ़ई, चर्मकार, हस्तशिल्पी आदि के उत्थान के लिए "विकास परिषद" की

* ग्राम पंचायतों को 10,000 रुपये तक के कार्यों की स्वीकृति का अधिकार।
* किसान की पत्नी को किसान की मृत्यु की दशा में कृषि भूमि में पुत्रों के बराबर मालिकाना हक।

* के गठन का निर्णय।
* सड़कों के विकास के लिए धनराशि में भारी वृद्धि।

* महिला उत्थान योजना प्रारम्भ।
* विधवा महिलाओं को पुत्रों के बराबर मालिकाना हक।

* बुन्देलखण्ड विकास निधि के लिए 40 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* पूर्वांचल विकास निधि के लिए 120 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* उत्तरांचल की वार्षिक उप–योजना हेतु 860 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* दिल्ली में उद्योग बन्धु कार्यालय की स्थापना।

---

* सिंचाई बन्धु को पुनर्जीवित किया गया। 191.37 कि.मी. नहरों की सफाई की गयी।
* नहरों के किनारे बसे ग्रामीणों के आवागमन के लिए पैदल पुलिया निर्माण योजना प्रारम्भ।
* दैवी आपदा राहत राशि में दोगुनी वृद्धि।
* खरीफ और रबी के लिए 1050 करोड़ रुपये के फसल ऋण का प्राविधान।
* गन्ना किसानों को उनके देयों का 96 प्रतिशत अर्थात 61.50 अरब रुपये का भुगतान। गन्ना मूल्य का बैंको के माध्यम से भुगतान। इस वर्ष 7 चीनी मिलों की स्थापना का लक्ष्य।
* चीनी उत्पादन में प्रदेश पुनः देश में सर्वश्रेष्ठ।
* 240 करोड़ रुपये की लागत से 2133 गांवों के विद्युतीकरण का निर्णय।
* मनेरी भाली, लखवार व्यासी, ओबरा, हरदुआगंज, टाण्डा एवं रिहन्द तापीय तथा जलीय परियोजनाओं की बन्द पड़ी इकाईयों का चरण बद्ध संचालन।
* बिजली चोरी रोकने के लिए कटिया हटाओ, कनेक्शन लगाओ अभियान के अन्तर्गत भारी संख्या में अवैध कनेक्शन नियमित। पी.एल.एफ. 49% से बढ़कर 58% हुआ।
* ग्रामीणों को पासबुक द्वारा विद्युत देयों को जमा करने की सुविधा।
* 2800 गांवों को पक्की सड़क से जोड़ने का लक्ष्य।
* सड़कों के विकास के लिए 1365 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* सड़क निर्माण एवं रख–रखाव के लिए 'सड़क निधि' की स्थापना।
* 24080 कि.मी. राज मार्ग / ग्रामीण / जिला मार्ग गड्ढा मुक्त किया गया।
* पं दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण सम्पर्क मार्ग योजना के अन्तर्गत 813 गांवों को जोड़ते हुए 794 कि.मी. मार्ग का निर्माण।
* राष्ट्रीय मार्गों पर 5 सेतु एवं 1 रेल उपरिगामी सेतु का कार्य पूर्ण। नाबार्ड योजना के अन्तर्गत 293 सड़कें तथा 39 पुलों का निर्माण।
* दिल्ली–नोयडा के बीच आठ लेन वाले पुल हेतु निजी क्षेत्र से 334 करोड़ रुपये के पूंजी निवेश की स्वीकृति।
* वाराणसी, हरिद्वार, अयोध्या, चित्रकूट लखनऊ, आगरा और मथुरा में पर्यटन विकास हेतु विशेष बल।
* महानगरों में शीघ्र ही 'सिटी बस सेवा' प्रारम्भ। परिवहन निगम के बेड़े में 800 नई बसें।
* भ्रष्टाचार की गुंजाइश समाप्त करने हेतु निजी यात्री वाहनों के पंजीयन का कार्य वाहन के डीलरों के माध्यम से।

* राशि 10 लाख से बढ़ाकर 20 लाख रुपये की गयी।
* अतिरिक्त वर्गों के लिए 'वन टाइम' सामान्य मान्यता का प्राविधान।
* नकल मुक्त परीक्षा व्यवस्था। हाई स्कूल स्तर पर 10 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम लागू।
* विश्वविद्यालयों में शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के 2283, महाविद्यालयों में 288 शिक्षक तथा 234 शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के अतिरिक्त पद सृजित।
* रुड़की विश्वविद्यालय तथा अन्य इंजीनियरिंग कालेजों में उपलब्ध प्रवेश क्षमता को 2285 से बढ़ाकर 4500 कर दिया गया है।
* मेडिकल कालेजों को स्वायत्तता। निजी क्षेत्र में अब तक 35 मेडिकल / डेण्टल कालेज खोलने की अनुमति।
* अनुसूचित जाति / जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदाय के छात्र- छात्राओं की छात्रवृत्ति के लिए क्रमशः 210 करोड़, 55.48 करोड़ तथा 127 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
* समाज के अन्य वर्गों के निर्धन छात्र–छात्राओं को भी छात्रवृत्ति।
* विकलांग बच्चों के लिए प्रत्येक जनपद में पं. दीनदयाल उपाध्याय योजना के अन्तर्गत विशेष विद्यालय की स्थापना की कार्रवाई।
* विकलांग छात्र–छात्राओं की छात्र वृत्ति दोगुनी।
* विकलांगों को सरकारी नौकरियों में 3% का आरक्षण तथा निःशुल्क बस यात्रा सुविधा।
* ग्राम्य विकास के अन्तर्गत जवाहर रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना आदि के लिए 2000 करोड़ रुपये का प्राविधान।
* सघन मिनी डेयरी योजना सभी जनपदों में लागू।
* एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 3,69,401 परिवारों को लाभान्वित करने तथा 1,49,034 इन्दिरा आवासों के निर्माण का लक्ष्य।
* 56 करोड़ रुपये की लागत से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में 50 हजार इण्डिया मार्क–2 हैण्ड पम्प लगाये जाने का लक्ष्य।
* पशुधन इकाइयों की स्थापना करके अम्बेदकर विशेष रोजगार योजना के तहत 22 हजार व्यक्तियों के लिए स्वरोजगार सृजन।
* मत्स्य पालकों को एकमुश्त पट्टा देने में प्रक्रिया का सरलीकरण
* भाउराव देवरस योजना, आश्रय योजना तथा अन्य आवासीय योजनाओं के अन्तर्गत

* विभिन्न पारम्परिक कार्यों में लगे व्यक्ति जैसे–बुनकर, कुम्हार, लोहार, सुनार, मछुआरे, बढ़ई, चर्मकार, हस्तशिल्पी आदि के उत्थान के लिए "विकास परिषद" की स्थापना।
* औद्यानिक विकास के लिए लगभग 12.50 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
* 'हमारे दस' योजना के अन्तर्गत वन विभाग की घर बैठे पेड़ लगवाने की योजना।
* एक स्तरीय मण्डी शुल्क व्यवस्था 15 अगस्त 1998 से लागू
* व्यापार कर का सरलीकरण। कुलिया मिठाई, अगरबत्ती, फास्फेटिक और पोटैशियम खाद व्यापार कर से मुक्त।
* सभी प्रकार की वेल्डिंग, मिल स्टोर हार्डवेयर पर से व्यापार कर 8 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत किया गया।
* खुली चाय, प्रेशर कुकर, हवन सामग्री, सभी प्रकार के छातों तथा प्लास्टिक एवं लाख की चूड़ियों पर व्यापार कर 8 प्रतिशत से घटाकर 4 प्रतिशत, कैंची, सरौता, रेजर आदि पर व्यापार कर 6 प्रतिशत से घटाकर 4 प्रतिशत, फर्नीचर पर व्यापार कर 12 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत, हार्डबोर्ड, फाईबर शीट, लेदर बोर्ड तथा प्लाईवुड पर व्यापार कर 10 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत, पादुकाओं पर व्यापार कर 6 प्रतिशत से घटाकर 3 प्रतिशत, सोने या चांदी या उसके मिश्रण से निर्मित गहने / आभूषण पर व्यापार कर 4 प्रतिशत से घटाकर 2 प्रतिशत किया गया।
* रजिस्ट्री प्रक्रिया का सरलीकरण। बैनामा दस्तावेज संबंधित पक्ष को उसी दिन वापस करने की व्यवस्था। स्टाम्प पेपर की अनिवार्यता समाप्त।
* लखनऊ में 21 वर्षों से रुके अजादारी के जुलूस शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न।
* कानून व्यवस्था में लगातार सुधार।
* होमगार्डस स्वयं सेवकों के दैनिक भत्ते में 5 रुपये प्रतिदिन की वृद्धि।
* युवा वर्ग को रचनात्मक कार्यों में लगाने हेतु शीघ्र ही 'युवा नीति' एवं खेल नीति।
* स्वाधीनता सेनानियों की पेंशन 1500/- से बढ़ाकर 2250/- प्रतिमाह।
* रोजगार छतरी योजना में 10 लाख परिवारों को लाभान्वित कराने का लक्ष्य।
* 67.20 करोड़ रुपये से 'महिला उत्थान योजना' की शुरूआत।
* सार्वजनिक वितरण प्रणाली में धांधली रोकने हेतु नये राशन कार्ड का वितरण युद्ध स्तर पर प्रारम्भ।
* फिल्म विकास परिषद का गठन। फिल्म सिटी की स्थापना का निर्णय।
* उत्तरांचल राज्य के गठन के लिए प्रतिबद्ध प्रयास।
* नौकरियों में भर्ती की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाया गया। 70 हजार रिक्त पदों को भरने की कार्यवाही शुरु।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

• विवेक शुक्ल

शंख के असंख्य चमत्कार

शंख-ध्वनि के संदर्भ में बर्लिन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने जो शोध- अनुसंधान किये हैं, वे इस तथ्य की पुनर्स्थापना करते हैं कि भारतीय ऋषियों, मुनियों और योगियों ने हजारों वर्ष पूर्व "शंख" की महत्ता का प्रतिपादन अकारण नहीं किया था। इस प्रतिपादन के पीछे ऋषियों की एक वैज्ञानिक सोच थी। बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हमबोल्ट के अनुसार शंख-ध्वनि के प्रभाव से १४०० फीट की परिधि में पड़ने वाले जीवाणु-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। हमबोल्ट के अनुसार शंख-ध्वनि से मियादी बुखार, हैजा व प्लेग जैसी महामारियों के कीटाणुओं को नष्ट किया जा सकता है।

क्या है रहस्य

शख-ध्वनि से कीटाणु नष्ट होते हैं, ऐसा क्या रहस्य है शंख में? इस क्रम में हमबोल्ट की राय है कि शंखध्वनि से वातावरण में जो कम्पन उत्पन्न होते हैं, उन कम्पनों से ही कीटाणु विनष्ट होते हैं,। कदाचित् यही वजह है कि मनीषियों ने लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण के शुद्धीकरण की दृष्टि से शंख को धार्मिक दृष्टि से इतना महत्त्व दिया। स्पष्ट है, यह महत्त्व अकारण नहीं है। ध्वनि के विशिष्ट प्रभाव को अब विज्ञान भी मान्यता देता है। आज के युग में 'अल्ट्रासाउंड' ध्वनि के वैज्ञानिक चमत्कारों का एक नमूना भर है। पर शब्द या ध्वनि की महत्ता को इस पृथ्वी पर सबसे पहले भारतीय ऋषियों ने ही समझा था। ऋग्वेद में एक स्थल पर निर्दिष्ट है:- 'शब्दैव ब्रह्म' अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है। यहाँ शब्द के ब्रह्म होने का आशय यह है कि शब्द-शक्ति ही संसार की श्रेष्ठ शक्ति है। अब भौतिक विज्ञान भी प्राचीन ऋषियों के इस ध्वन्यार्थ को समझने लगा है। भौतिक शास्त्रियों की मान्यता है कि 'ईथर' में रेडियो तरंगें, विचार तरंगें और शब्द तरंगें एक ही गति से परिभ्रमण करती हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि विचार तरंगें और रेडियो तरंगें तीस सेकेण्ड में विश्वाकाश के चार चक्कर लगाती हैं। शंख से उत्पन्न ध्वनि तरंग "रेडियो वेव" की भाँति 'ईथर' से प्रसारित होती हैं। यही कारण है कि कई दिनों से लगातार हो रही तीव्रतम वृष्टि को रोकने के लिए ऋषियों ने सामूहिक रूप से तीव्र शंख-ध्वनि करने का विधान रखा था।

भारत में शंख को कितना महत्त्व दिया गया है, इसका प्रमाण प्रतीक रूप में देवी-देवताओं के चित्रों में परिलक्षित होता है। महालक्ष्मी, महासरस्वती, गणेशजी, भगवान् विष्णु, भगवान् कार्तिकेय और भगवान् सूर्य के करकमलों में शंख विराजमान रहता है। कहते हैं कि शंख की माला से लक्ष्मी का जप करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कृष्णोपनिषद् में तो शंख को महालक्ष्मी का प्रतीक माना गया है। गरुड़ पुराण के अनुसार शंख का दर्शन मात्र करना ही सौभाग्यवर्द्धक है। इसके नित्य दर्शन से पाप नष्ट होते हैं और मन में शुभ विचारों का उदय होता है।

पाञ्चजन्याय विद्महे पावनाय धीमहि।
तन्नो शंख प्रचोदयात्।

वाराह पुराण के अनुसार शंखनाद के पश्चात् ही मंदिर का प्रवेश द्वार खोला जाना चाहिए। जो व्यक्ति या पुजारी शंखनाद के बगैर मंदिर का द्वार खोलता है, वह अगले जन्म में या इस जीवन में ही बहरा हो जाता है। यही नहीं चारों वेदों में कई ऐसी ऋचाएँ हैं, जो शंख की महत्ता का प्रतिपादन करती हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार क्षीरसागर से ही लक्ष्मी व शंख की उत्पत्ति हुई। स्पष्ट है, लक्ष्मी व शंख के मध्य एक तरह से प्रतीक तादात्म्य है।

शंख की शास्त्रोक्त परिभाषा इस प्रकार की गयी है- 'शं कल्याणं खनति जनयति-इति-शंख' यानी कल्याण की उत्पत्ति और श्रीहीनता को विनष्ट करने वाले को शंख कहा जाता है।

आयुर्वेद में तो शंख के औषधीय गुणों का भी वर्णन किया गया है। आयुर्वेद के अनुसार शंखनाद से विभिन्न रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते है। यही नहीं, शंख को घिस कर उसका लेप लगाने से संग्रहणी, सिरदर्द, गंडमाला और दंत रोगों की शिकायतें दूर हो जाती हैं।

लोक प्रचलित प्राचीन विश्वास के अनुसार किसी यात्रा पर निकलने से पूर्व शंख-दर्शन व उसका नाद सुनना शुभतासूचक होता है। जिसकी श्वास फूल रही हो या दमा का रोग हो, उसे नित्य प्रातः शंख फूँककर जोर से बजाने पर दमा रोग से राहत मिल सकती है। स्पष्ट है, भारतीय ऋषियों, मुनियों और चिन्तकों ने शंख को जो प्रतिष्ठा प्रदान की थी, उसके पीछे वैज्ञानिक रहस्य छिपे हुए थे।

- ७२/ ६३ महावीरन गली, कटघर
मुट्ठीगंज, इलाहाबाद-२११००३
(अणुव्रत से साभार)

जब राजर्षि टण्डन ने हाथ के बने स्वदेशी कागज पर निमंत्रण-पत्र छपाया

– पुष्करनाथ

एक वह भी युग था, सन् १६४० का, जब यहाँ ब्रिटिश दासता के रहते कागज भी विदेश से ही आता था परन्तु कोई–कोई स्वदेशी के प्रेमी और आग्रही हाथ के बने स्वदेशी कागज पर ही अपने परिवार के विवाहादि के निमंत्रण–पत्र छपवाते थे। ऐसे ही निमन्त्रण पत्र महान् हिन्दी–सेवी और देश–भक्त राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने अपने पुत्र के विवाहोत्सव के जो निमन्त्रण–पत्र अपने नाते–रिश्तेदारों और मित्रों को पठाये, वे हाथ के बने स्वदेशी कागज पर ही छपवाये थे– उसे निमन्त्रण–पत्र का नमूना यहाँ अनेक पुराने निमन्त्रण–पत्रों के संकलनकर्त्ता डा. सत्यप्रकाश के पत्र–संग्रह से उद्धृत किया जाता है। टण्डन जी ने दो प्रकार के निमन्त्रण–पत्र स्वदेशी कागज पर छपवाये थे, पहला यह था–

"प्रिय महोदय,

मेरे पुत्र चि. सत प्रसाद का विवाह श्री महाशंकर ... की पुत्री के साथ रविवार, माघ–बदी ११, ता. ४ फरवरी को देहरादून में होना निश्चित हुआ है।

बारात २ फरवरी को इलाहाबाद से शाम को ४-२० पर सहारनपुर पैसेन्जर से जाएगी और देहरादून ३ फरवरी की शाम को पौने सात बजे पहुँचेगी।

घोड़ी की रसम इलाहाबाद में पहली फरवरी की रात को लगभग ८ बजे है और तनी–कढ़ाई ३१ जनवरी को लगभग साढ़े ४ बजे शाम को।

आपसे नम्र निवेदन है कि अपनी उपस्थिति से इलाहाबाद में उपर्युक्त अवसरों की और बारात के साथ देहरादून चलकर विवाहोत्सव की शोभा बढावें, और वर–कन्या को आशीर्वाद दें।"

१०, क्रास्थवेट रोड
इलाहाबाद

विनीत
पुरुषोत्तम दास टण्डन

रविवार ८ माघ, संवत् १६६६

यह पत्र अविकल उद्धृत है। टण्डन जी ही द्वारा दूसरा निमन्त्रण–पत्र भी स्वदेशी हाथ के बने, कागज पर था– वह इस प्रकार है,

श्री

"प्रिय भाई

१०,क्रास्थवेट–रोड
इलाहाबाद
२६–१–४०

मेरे पुत्र चि. सन्त प्रसाद का विवाह देहरादून में ४ फरवरी को होने वाला है। विवाह–संस्कार–सम्बन्धी काम और आरम्भ करने की रीति बुधवार ता. ३१ जनवरी को है। आपसे सविनय निवेदन है कि उस दिन शाम को साढ़े पाँच बजे मेरे स्थान पर पधार कर अपनी मंगल–कामना से हमें उपकृत करें।"

विनीत
पुरुषोत्तम दास टण्डन

सिद्ध भाषा–विज्ञानी डा. बाबू राम सक्सेना जो "हिन्दी साहित्य सम्मेलन"–प्रयाग के प्रधानमंत्री रहे, ने भी अपने भाई के विवाहोत्सव के जो निमंत्रण–पत्र छपाये थे, वे भी हाथ के बने स्वदेशी कागज पर ही छपवाये थे– उसका नमूना इस प्रकार है–

ओउम्

२४, चैथमलाइन, प्रयाग
४/२/१६४०

"श्री डाक्टर सत्य प्रकाश जी,

सेवा में संहर्ष निवेदन है कि चिरंजीव अर्जुन वर्मा का शुभ विवाह मोहतशिम गंज (प्रयाग) निवासी श्री भगवती प्रसाद जी की सुपुत्री से होना निश्चित हुआ है। विवाह–संस्कार मंगलवार, माघ शुक्ल ५, संवत् ६६, तदनुसार ता. १३ फरवरी, सन् ४० को रात्रि के समय होगा, और बरात उसी दिन सायंकाल ४ बजे मोहतशिमगंज के लिए रवाना होगी। आपसे सविनय प्रार्थना है कि इस शुभ अवसर पर सपरिवार सम्मिलित होकर कृतार्थ करें।"

निवेदक

पुत्तूलाल	गयाप्रसाद
ब्रह्मदीन	सुरेन्द्र वर्मा

उक्त डा. सक्सेना जी का ही हाथ के बने कागज

पर छपवाया गया दूसरा नमूना निमंत्रण-पत्र का यह था-

"श्रीमान् जी,

मेरे भाई श्री अर्जुन वर्मा के विवाह के उपलक्ष्य में शुक्रवार ता. १६ फरवारी, ४० को सायंकाल ८ बजे प्रीति-भोज में सम्मिलित होकर कृतार्थ करने की कृपा करें।"

निवेदक

बाबूराम सक्सेना

डा. सक्सेना द्वारा निरुपलक्ष्य प्रेषित एक तीसरे निमंत्रण-पत्र का नमूना जो हाथ के बने स्वदेशी कागज पर छपा था, यह है –

२४, चैथमलाइन, प्रयाग

२७/३/४१

"श्री सत्य प्रकाश जी !

"आपसे सविनय निवेदन है कि शनिवार ता. ५ एप्रिल, १६४१ को सायंकाल ८ बजे मेरे स्थान पर भोजन करके कृतार्थ कीजिए।"

आपका

बाबूराम सक्सेना

निमंत्रण-पत्र पर 'भारतमाता' व 'बन्देमातरम्' का अंकन।

एक अन्य निमंत्रण-पत्र जिसमें स्वदेशी भावना को मूर्त रूप दिया गया है, वह था जबलपुर के प्रसिद्ध साहित्यकार ब्योहार राजेन्द्र सिंह द्वारा छपाया गया, जिसमें पीछे की तरफ भारतमाता का चित्रांकन और उसमें "बन्देमातरम्" छपा था। विवाहोत्सव के अवसर पर भी भारत माता का वन्दन 'वन्दे मातरम्' सम्बोधन से करने की ऐसी उत्कट कामना क्वचित् निमंत्रण-पत्रों में दृश्यमान होती है। निमंत्रण-पत्र के अन्दर यह दोहा छपा था –

"गणपति, गिरिपति, गिरापति, श्रियपति, सियपतिधीर।
यशोधारपति गोपिपति, जयति धरापति वीर।।"

परिशिष्ट में यह दोहा भी छपाया-

"परिजन, पुरजन, जातिजन, सुजन, प्रजाजन धीर।
सुफल, सुकारज करहु मिलि बिनवत नित रघुवीर।।"

इसमें जो 'रघुवीर' शब्द है, वे ब्योहार रघुवीर सिंह परिवार-जन ही थे, ब्योहार राजेन्द्र सिंह के। एक साहित्यकार के निमंत्रण-पत्र में साहित्यिक स्व-रचना का समावेश स्वाभाविक ही है, किन्तु सन् १६४१ के घोर ब्रिटिश दमन-काल में ब्याह-बारात के निमंत्रण-पत्र पर 'भारत माता' का चित्र और वह भी 'बन्देमातरम्' सहित छपाना सुखद आश्चर्य की बात थी। बिना प्रखर स्वदेशी भावना और स्वदेश-प्रेम के ऐसे मौकों पर कितनों को 'भारत माता' और उसकी बन्दना स्वरूप "बन्देमातरम्" की याद आती है ! □

दुर्भाग्य हिन्दी का कि ...

"दुर्भाग्य है इस देश का कि यहाँ हिन्दी में बोलने पर भी क्षमा माँगनी पड़ती हैं" संचार मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज की इस निर्भीक टिप्पणी पर जहाँ नयी दिल्ली में गत १२ अगस्त को एक समारोह में अंग्रेजी के दास अधिकारी एकदम सन्नाटे में आ गये, वहीं श्रोता-गण हर्ष से उत्फुल्ल हो नाच उठे। यह समारोह आयोजित था सार्वजनिक क्षेत्र (वास्तव में सरकारी क्षेत्र) की दूरसंचार कम्पनी 'टेली-कम्यूनिकेशंस कंसल्टेण्ट्स आफ इण्डिया लिमिटेड' (टी.सी.आई.एल.) के नये भवन के उद्घाटन-अवसर पर। इस उद्घाटन समारोह में एक के बाद एक वक्ता अंग्रेजी में बोलता रहा था। संचार मंत्री श्रीमती स्वराज की हिन्दी संबंधी उक्त तीखी टिप्पणी पर सभा-कक्ष श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। अपनी झेंप मिटाने के लिए लगातार अंग्रेजी में कार्यक्रम का संचालन कर रही गजाला अमीन को (दूरदर्शन पर हिन्दी-समाचार-वाचिका) 'धन्यवाद मन्त्री महोदया' कहकर अपना 'पश्चात्ताप भाव' व्यक्त करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

दु:ख का विषय यह नहीं है कि हिन्दी के प्रति यह तिरस्कार भाव ऐसे अवसरों पर व्यक्त होता है; दु:ख का विषय यह भी नहीं है कि ऐसा पिछले ५० वर्षों से लगातार होता चला आ रहा है; दु:ख का विषय यह भी कदापि नहीं है कि ऐसा केवल हिन्दी के साथ ही हो या किया जा रहा है। वस्तुतः दु:ख ही नहीं; अत्यन्त दु:ख का विषय तो यह है कि ऐसा भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं के साथ हो रहा है, वह भी स्वतंत्रता के स्वर्ण-जयन्ती वर्ष में; एक 'सार्वजनिक उपक्रम' के आयोजन में, जो प्रकारान्तर से सरकारी उपक्रम है और वह भी भाजपा की एक महिला मन्त्री की उपस्थिति में। सुषमाजी ! आपका हम अभिनन्दन करते हैं कि आपने ऐसी फटकार उन 'अंग्रेजी के गुलामों' को सार्वजनिक रूप से लगायी, जो वास्तव में इसी के पात्र थे। अच्छा होगा कि इन 'मानसिक दासता के चलते-फिरते पुतलों' के लिए किसी ऐसे दण्ड का प्रावधान भी नियमों में किया जाय, जो औरों की आँखें भी खोल देने में समर्थ हो। मैकाले, मार्क्स और मौलाना के ऐसे मानस-पुत्रों की निर्लज्जता इस सीमा तक बढ़ गयी है कि बिना कठोर विभागीय दण्ड-विधान के ये सुधरने का नाम नहीं लेंगे। □

विश्वकर्मा–जयन्ती (१७ सितम्बर) पर विशेष

श्रम के देवता भगवान् विश्वकर्मा

• बाबू लाल वर्मा

श्रम ही जीवन, श्रम ही धन है, श्रम ही देवता (देने वाला) श्रम ही भगवान् है। श्रमिक वह है जो अहर्निश श्रम-देवता के चरणों में सेवारत है। श्रम न होता, तो सृष्टि की रचना सम्भव न हो पाती। भगवान् कृष्ण ने गीता में श्रम को ही प्रधानता दी है। कर्मयोग या कर्मक्षेत्र ही श्रम का प्रतीक है आज का विकसित, सस्कारित, सभ्य–मानव समाज का सुखी समृद्ध जीवन भी श्रम अथवा कर्म पर आधारित है। ज्ञान, विज्ञान, कला, शिक्षा, उपभोग्य सामग्री आदि श्रम की ही देन हैं अर्थात् मानव जीवन के छह आधार स्तम्भ भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, शिक्षा और सुरक्षा ये सभी श्रम के आधार पर खड़े हैं। किसी वस्तु का निर्माण या उत्पादन, कल–कारखाने या उद्योग सभी सात बातों पर आधारित हैं जिन्हें अंग्रेजी में "सात–मकार" कहते हैं। यथा– (१) मैन पावर (श्रमशक्ति या जनशक्ति) (२) मेटेरियल (कच्चा माल) (३) मनी (पूँजी) (४) मोटिव पावर (विद्युत् एवं भाप शक्ति) (५) मशीन (यन्त्र शक्ति) (६) मैनेजमेन्ट (प्रबन्ध तन्त्र) (७) मार्केट (बाजार)। इन सात मकारों में किसी भी स्तम्भ के अभाव में कोई भी उद्योग खड़ा नहीं हो सकता। इन सात मकारों में सामञ्जस्य तारतम्य और सन्तुलन की स्थापना का एक सूत्र है जिसे "चिति" कहते हैं। शरीर में जो स्थान हृदय का है, वहीं कार्य उद्योग धन्धों में "चिति" का है। इसके अतिरिक्त किसी परियोजना के लिए ६ चरण हैं– (१) विचार (२) अभिव्यक्ति (३) प्रकल्प (४) प्राक्कलन (५) कार्यान्वय (६) क्रियान्वयन।

भगवान् विश्वकर्मा ने इन्हीं सात के आधार पर छह चरणों में त्याग, तपस्या और शिल्प के द्वारा महान् कार्य कर विश्व की रचना में उसे कलापूर्ण ढंग से सँवारने, सुधारने, अच्छा बनाने का महान् कार्य किया और वे श्रमिकों के देवता भगवान् विश्वकर्मा कहलाये। देश भर के श्रमिक-वर्ग भगवान् विश्वकर्मा की पूजा १७ सितम्बर को प्रति वर्ष बड़ी श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, लगन, विश्वास और भक्ति भाव से करते हैं। इस दिन सभी कल–कारखानों, उद्योगों, प्रतिष्ठानों, और श्रमिक संगठनों में श्रमिक एकत्र होकर भगवान् विश्वकर्मा की प्रतिमा बनाकर तथा अपने सभी यन्त्रों, औजारों को एकत्र कर पूजा–अर्चनाकर दिन भर उत्सव मनाते हैं।

सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा जी ने जब विश्व का सृजन किया, तब भगवान् विश्वकर्मा ने अपने कला, कौशल, योग्यता और कारीगरी से विश्व का निर्माण किया। वे प्रथम शिल्पी, कला के अवतार और प्रथम अभियन्ता थे। कहते हैं कि ब्रह्मास्त्र से लेकर सुदर्शन चक्र तक और शिव के त्रिशूल से लेकर वज्र तक भगवान् विश्वकर्मा ने बनाया। दधीचि की अस्थियों से बने वज्र से ही वृत्रासुर का संहार हो पाया। तभी देवताओं ने दैत्यों पर विजय पायी। वृत्रासुर भगवान् विश्वकर्मा का बड़ा पुत्र और सम्राट् हिरण्यकशिपु की सेना का सेनापति था। हिरण्यकशिपु, दैत्यों का राजा था। भगवान् विश्वकर्मा ने समाज की संरचना व्यवस्था में महान् योगदान किया। दैवी संस्कृति की रक्षार्थ और वेदविहित जीवन-शैली व धर्म की रक्षार्थ अपने ही हाथों से वज्र बनाकर अपने ही समाजद्रोही दुष्ट पुत्र का वध कराया। यह उनका महान् त्याग और बलिदान का आदर्श है।

भारत अपनी मानवतावादी देव-संस्कृति और "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" का परम वैभवशाली अति प्राचीन राष्ट्र है। यह भारत के प्राचीन वाङ्मय, पुरातत्त्विक अभिलेखों से सिद्ध हो चुका है। भारत राष्ट्र का उदय १५ अगस्त ४७ को नहीं हुआ और न इसके निर्माण का श्रेय तत्कालीन राजनेताओ को है। सृष्टि के रचना-काल से ही भारत अपनी सास्कृतिक विशेषताओं और लोक–हितकारी नीतियों तथा भौगोलिक आधार पर महान् रहा है, आज भी है और कल भी रहेगा। भारत वसुन्धरा में जन्म लेकर हमारे पुरखों ने सम्पूर्ण विश्व के कल्याण हेतु अपना जीवन होम कर दिया और उन्हें अज्ञानता के घोर अन्धकार से निकालकर प्रकाशमय सभ्य जीवन प्रदान किया है। इसीलिए भारत जगत्‌गुरु रहा है।

यह सत्य है कि महाकाल का "काल चक्र" अविराम घूमता रहता है। परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है। प्राचीन काल से आज तक जाने कितनी संस्कृतियाँ इसी धरा पर उपजीं, विकसित हुईं, फूली-फलीं और कालान्तर में नष्ट हो गयीं, विलुप्त हो गयीं, किन्तु भारत अनवरत विदेशियों के आक्रमण ओर उनके क्रूरतम शासन से त्रस्त रह कर भी उनकी दासता को सतत नकारता रहा और अपनी अस्मिता, अस्तित्व, स्वतन्त्रता, संस्कृति को बचाये रखा, बनाये रखा। आजादी की मशाल अविराम जलती रही, कभी बुझी नहीं। इस उदात्त भावना के पीछे अतीत का गौरवशाली इतिहास रहा है। देश का गौरवमय उज्ज्वल भविष्य गढने-रचने में महापुरुषों का निःस्वार्थ तपोनिष्ठ जीवन और लोक कल्याणार्थ अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने का "इदं राष्ट्राय इदं न मम्" का उद्‌घोष और "योगक्षेमं वहाम्यहम्" से आगे "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" के परम पावन जीवन दर्शन में उतारने, कार्य रूप में बदलने और विश्व के कल्याण के लिए अपने को तिल-तिल कर जलाया।

ऐसे ही महान् योगियों, साधकों, त्यागियों, तपस्वियों में सृष्टि की रचना से लेकर अखिल विश्व को सर्व-विधि साधन-सम्पन्न बनाने के लिए "स्वयं अपने हाथों से काम करने की प्रेरणा" देने वाले आदि पुरुष भगवान् विश्वकर्मा "श्रम के देवता" हैं इनके बारे में भारत के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। भगवान् विश्वकर्मा को ऋग्वेद (६२-६१) में पृथ्वी, जल, प्राणी का निर्माता कहा गया है। अथर्ववेद वाजसनेय संहिता (६०-२६२) में उन्हें सर्व द्रष्टा प्रजापति कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वे विधाता प्रजापति हैं। पुराणों और महाभारत में विश्वकर्मा को देवताओं का महान् शिल्पी, शिल्प शास्त्री तथा स्वायंभुव मनु अवतार में शिल्प-प्रजापति कह कर गौरव गान किया गया है। विश्वकर्मा शब्द बडे व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। विश्वकर्मा अर्थात् सभी कर्म, क्रियाकलाप जिनके द्वारा प्रयुक्त हुए- इस अर्थ में सृष्टि के रचयिता परमेश्वर के रूप में विश्वकर्मा का बोध होता है। पुराणों में उन्हें "सौर देवता" की उपाधि दी गयी है। उन्होंने "सौर-शक्ति" के जल, थल, अम्बर के सभी प्रकार के यानों, वायुयानों, जलयानों और वाहनों का सृजन किया। प्रथम बार भगवान् विश्वकर्मा ने चक्र (पहिया) का आविष्कार किया था। सौर ऊर्जा से विष्णु के लिए सुदर्शन चक्र, शिव के लिए त्रिशूल और इन्द्र के लिए विजयरथ बनाया। विश्वकर्मा वास्तु-कला-शास्त्र के आविष्कर्त्ता हैं। वास्तुकला को एक शास्त्र के रूप में प्रस्तुत किये जाने वाला जगत् का यह सर्वप्रथम ग्रन्थ है।

सम्पूर्ण मानव जाति को काम करने की दिशा और प्रेरणा देने में विश्वकर्मा की बहुमुखी प्रतिभा और अपने जीवन का प्रत्येक क्षण नव रचना कार्यों में उत्सर्ग करके नव निर्माण करने की प्रेरणा देती है।

श्रम का प्रतीक "कर" (हाथ) है तथा कर अग्र भाग में लक्ष्मी का वास है- "कराग्रे वसते लक्ष्मी" कर का अग्रभाग (हथेली) श्रम का प्रतीक है, जिससे लक्ष्मी उत्पन्न होती है। हथेली का मुख्य अंग है अँगूठा। हथेली का अँगूठा श्रम का ही मुख्य अंग है, क्योंकि यदि हाथ का अँगूठा काट कर अलग कर दिया जाए, तो चारों अँगुलियाँ बरकरार रहने पर भी पूरा हाथ बेकार हो जाता है। फिर हाथ से न तो कोई श्रम हो सकता है और न लक्ष्मी ही पैदा हो सकती है। हाथ की सारी कला और शिल्प समाप्त हो जायेगा। विशेषता यह भी है कि यदि हाथ की तीन उँगलियाँ काट दी जायें तथा एक उँगली और अँगूठा ही बरकरार रहे, तो भी कला व शिल्प नष्ट नहीं होगा। हाथ बराबर काम करता रहेगा। पर अँगूठा न रहने पर पूरा हाथ बेकार हो जाता है। गुरु द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सीखने के उपलक्ष्य में एकलव्य से हाथ का अँगूठा ही गुरु-दक्षिणा में माँग लिया था। एकलव्य जैसे ध्येयनिष्ठ शिष्य ने अपने गुरु के चरणों में अँगूठा काट कर चढ़ा दिया था। अँगूठा चले जाने पर उसकी सारी धनुर्विद्या सदा के लिए बेकार हो गयी थी। शायद इसीलिए अनेक श्रमिक संगठनों ने विशेषकर भारतीय मजदूर संघ ने तथा उससे सम्बद्ध अनेक श्रमिक संघों ने हाथ का अँगूठा ही अपना पवित्र प्रतीक-चिह्न माना है।

किसी भी उद्योग, राष्ट्र अथवा विश्व की सुख समृद्धि, वैभव-सम्पन्नता का मूल स्रोत श्रम ही है। इसीलिए श्रम और श्रमिक को उसका समुचित सम्मान मिलना चाहिए। श्रमिक के पसीने (श्रम) का मूल्यांकन उद्योग में लगी पूँजी के बराबर मानना चाहिए, सम्पूर्ण राष्ट्र की पूँजी का विकेन्द्रीकरण हो- विकेन्द्रित पूँजी का औद्योगीकरण हो, उद्योगों में मजदूरों को भागीदार बनाया जाय, श्रमिकों का राष्ट्रीयकरण हो, राष्ट्र सर्वोपरि है, इस निमित्त श्रमिकों के अन्तःकरण में राष्ट्र के प्रति उनका अपना कर्तव्य क्या है- इसका बोध कराया जाय, और "दुनिया के मजदूरो एक हो", विदेशी विचार के बजाय "मजदूरो! दुनिया को एक करो"- यह आदर्श और लक्ष्य हो, तभी औद्योगिक शान्ति और भू-मण्डल पर सुख-समृद्धि आ सकती है। भारतीय मजदूर संघ इसी हेतु सतत प्रयत्नशील रहकर आज भारत का प्रथम स्थान प्राप्त श्रमिक संगठन बन चुका है और विश्व-मंच पर भारत को प्रतिष्ठा प्रदान करा चुका है। ◘

—जरवल रोड, बहराइच

राष्ट्रीयता की अलख जगाती रही है हिन्दी

• डॉ. शिवनन्दन कपूर

हिन्द से उदभूत हिन्दी ही ऐसी भाषा है, जो नाम से ही समग्र भारत से जुड़ी होने की घोषणा कर रही है। बंगाली, मराठी आदि के समान इसमें प्रान्तीयता की गन्ध नहीं है। हिन्दी, हिन्दुई अथवा हिन्दवी– ये सभी नाम उसे हिन्दुस्तान की, समस्त देश की भाषा सिद्ध करते हैं। 'लिखि भाषा चौपाई कहैं', लिखकर महाकवि जायसी ने इसे 'भाषा' की संज्ञा दी। कवि-शिरोमणि तुलसी ने भी इसे भाषा ही कहा था– "भाषानिबद्धमतिमंजुलमातनोति।" केशव भी इसे भाषा का ही नाम देते हैं, "भाषा बोलि न जानहीं, जेहि के कुल के दास।" कबीर ने भी अपने विचारों को वाणी का आवरण देते समय इसे ही जन-भाषा के रूप में स्वीकार किया था, 'संस्कृत खारी कूप–जल, भाषा बहता नीर।'

डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार, "व्यवहार में हिन्दी उस बडे भू–भाग की भाषा समझी जाती है, जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर–पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण–पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण–पश्चिम मे खण्डवा तक पहुँचती है।" इस प्रकार हिमाचल–प्रदेश, पंजाब, दिल्ली, उत्तर–प्रदेश, राजस्थान तथा मध्य–प्रदेश की अठारह बोलियाँ इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। इसमें उर्दू के प्रचलित शब्द भी मिलाये गये हैं। दक्षिण में प्रचलित दक्खिनी हिन्दी के मूल में १४वीं सदी में प्रचलन–प्राप्त दिल्ली के निकट की खड़ी बोली थी। डॉक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने खड़ी बोली का रूपान्तर कहा है।

इसका हृदय अपने देश के समान ही विशाल है। जैसे महासागर में नदियाँ विलीन होकर उसका ही रूप ले लेती हैं, उसी प्रकार विभिन्न भाषाओं के शब्द इसमें सहज समाहित हो गये हैं। फ्रांसीसी कारतूस, अंग्रेजी से प्राप्त लालटेन, पुर्तगाली परात, गमला, अचार आदि को इसने पचा लिया है। प्रान्तीय भाषाओं से भी शब्द–सम्पदा बहनापे के तौर पर ली है। यह भी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है। यद्यपि उनके अर्थ बिगाड़ दिये गये है। उदाहरणार्थ संभ्रान्त तथा बंगला के ही 'थाक' को ले सकते हैं। 'थाक' का अर्थ स्थिर होने के अर्थ में न लेकर, 'थकने' से जोड़ दिया जाता है।

अनेक मुगल–बादशाहों तक ने मजहबी कट्टरता की अपनी भावना से परे होकर हिन्दी में काव्य–रचना की थी। अकबर तथा दारा शिकोह ही नहीं, शाहजहाँ भी हिन्दी प्रेमी था। उसने लाल खाँ कलावन्त को "गुण–समुद्र" की उपाधि दी थी। "जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री" में इतिहासज्ञ श्री आर. के. कानूनगो ने शाहजहाँ के द्वारा दाराशिकोह को हिन्दी में पत्र लिखे जाने का उल्लेख किया है। औरंगजेब ने अपने शाहजादे के द्वारा भेजे गये आमों का नाम–करण "रसना–विलास" किया था। तुलसी, सूर ने ही नहीं, ताज तथा रसखान आदि ने अपनी रचनाओं से हिन्दी को गौरव के शिखर पर प्रतिष्ठित किया था। नानक जी ने 'ग्रन्थ–साहब' में हिन्दी के सन्तों की वाणियाँ संकलित की हैं। वे वाणियाँ वर्ग तथा सम्प्रदाय की सीमा तोड़तीं, राष्ट्रीय एकता का प्रचार करतीं, हिन्दी की व्यापकता सिद्ध करती हैं। उत्तर भारत ही नहीं, सुदूर दक्षिण में, केरल–नरेश स्वास्ति तिरुंथल ने १९वीं सदी में, हिन्दी के ही एक रूप ब्रज–भाषा में काव्य–रचना की थी। इससे हिन्दी का राष्ट्र–व्यापी स्वरूप सिद्ध है।

भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व अनेक राष्ट्रीय नेता राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से हिन्दी के प्रचार में लगे थे। राजर्षि टण्डन जी ने कहा था, "हिन्दी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती तथा दृढ़ बनाती है।" "इण्डियन होम रूल" के

१८वें अध्याय में गांधी जी ने भी लिखा था, "बिना भाषा के राष्ट्र गूंगा है। हिन्दी को हम राष्ट्र–भाषा मानते हैं। वही भाषा राष्ट्र–भाषा बन सकती है, जिसे देश के असंख्य लोग जानते–बोलते हैं। जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी है।" १६१८ में हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन के अधिवेशन मे, उन्होंने हिन्दी का राष्ट्रीय महत्त्व प्रतिपादित किया था। "इण्डियन होम–रूल" में ही वे लिख चुके थे, "सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए।" दक्षिण में हिन्दी के प्रचार के लिए गांधी जी ने हिन्दी–प्रचार– सभा की स्थापना की। सन् १६१८ में उन्होंने पुत्र देवदास गांधी को हिन्दी के प्रचार के लिए मद्रास और मदुरै भेजा था।

मान्या एनी बेसेण्ट ने भी, विदेशिनी होते हुए भी, मात्र राष्ट्रीय एकता की भावना से हिन्दी को हृदय से अपनाया था। उन्होंने १६१८ से १६२१ तक दक्षिण–भारत में हिन्दी के प्रचार के लिए अथक श्रम किया था। हरिपुरा के कांग्रेस–अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में बंगाल के शेर वीर सुभाष बसु ने राष्ट्र–भाषा के रूप में हिन्दी का ही नाम लिया था। उनका उक्त भाषण बाद में कलकत्ते से प्रकाशित पत्रिका 'विशाल–भारत' में उद्‌धृत हुआ था। शीर्षक था, "बंगाल और राष्ट्र––भाषा।" भूदेव मुखर्जी ने बिहार एवं नवीनचन्द्र राय ने भी हिन्दी के प्रचार में अपूर्व कार्य किया था। श्री सुनीति कुमार जी ने कहा था, "बोलने वालों एवं व्यवहार करने तथा समझने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दुस्तानी का स्थान संसार की महान् भाषाओं में तीसरा है। इस प्रकार हिन्दी या हिन्दुस्तानी आज की भारतीयों के लिए एक बड़ा रिक्थ है। यह हमारे भाषा–विषयक प्रकाश का एक महत्तम साधन तथा भारतीय एकता एव राष्ट्रीयता का प्रतीक रूप है। वास्तव में हिन्दी ही भारत की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती है।"

हिन्दी तथा राष्ट्रीयता के सामंजस्य की दिशा में मात्र राजनीतिज्ञों ने ही नहीं, समाज–सुधारकों ने भी विचार एवं कार्य किये थे। गांधी जी गुजरात के थे। परम देश–भक्त स्वामी दयानन्द भी गुजरात में उत्पन्न हुए थे। संस्कृत के पण्डित थे, किन्तु उन्होंने सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्रान्ति तथा एकता की दृष्टि से संस्कृत अथवा गुजराती नहीं अपितु हिन्दी को ही माध्यम बनाया था। उसी परम्परा में श्रद्धानन्द जी ने १६०२ में हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। उसमें सभी विषयों का अध्यापन–माध्यम हिन्दी रहा। आर्य समाज ने अद्‌भुत प्रयत्न से समग्र भारत विशेषतः पंजाब में हिन्दी के प्रचार का कार्य किया था। १६०० में सनातनी–सभा में हिन्दी को प्राथमिकता दी गयी। इस प्रकार राष्ट्रीयता के प्रश्न पर हिन्दी को सेतु बनाते हुए धार्मिक संस्थाओं ने भी कार्य किये थे।

देश स्वतन्त्र हुआ। १६६५ में हिन्दी राज–भाषा घोषित कर दी गयी। इसके साथ ही प्रान्तीयता तथा राजनीति की क्षिद्रिल बाँसुरी से बेसुरे सुर उठने लगे। जिन महाभाग डॉक्टर सुनीतिकुमार ने १६४६ में कहा था, "विभिन्नता होते हुए भी समस्त भारत की जड़ अखण्ड है। भाषा तथा संस्कृति के क्षेत्र में इस सत्य की प्रतीक हिन्दी है" वे ही चाटुर्ज्या मोशाय इसके विरोधी बन गये। "दशरथ नन्दन श्रीराम" के रचयिता श्री राजगोपालाचारी जी हिन्दी के परम पक्षधर के रूप में ललकार चुके थे, "केन्द्रीय सरकार तथा कानून की भाषा और प्रान्तीय सरकारों के परस्पर एवं भारत–सरकार के साथ व्यवहार की भाषा हिन्दी अवश्य स्वीकार करनी होगी।" वे ही चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जी अब हिन्दी को अंग्रेजी के समक्ष अक्षम मानने लगे; किन्तु धीरे–धीरे राजनीतिज्ञों के द्वारा उठाया गया दक्षिण का तूफान ठंडा पड़ने लगा। तमिलनाडु का आन्दोलन भी शान्त सा हुआ।

आज हिन्दी सम्पर्क भाषा, राष्ट्र भाषा तथा राज–भाषा इन तीनों रूपों में प्रगति की ओर अग्रसर है। इसका चतुर्मुखी विकास हो रहा है। कम्प्यूटर, विद्युत्-टंकण–लेखन आदि ने इसकी प्रगति का मार्ग और प्रशस्त किया है। न्याय की मात्र अंग्रेजी में प्राप्त पुस्तकें हिन्दी में सुलभ हुईं। कानून सम्बन्धी पत्रिकाओं का भी हिन्दी में प्रकाशन होने लगा। वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावली, तकनीकी पुस्तकों का, पत्रिकाओं का प्रकाशन कब से चल रहा है। डॉक्टर नटवर दवे ने हिन्दी को विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की वाहिका के रूप में सक्षम एवं विकसित घोषित किया था। विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के आदान–प्रदान के रूप में इसने अपनी विशालता, पाचन–क्षमता, राष्ट्रीय-भावना का परिचय दिया है। राष्ट्र की विभिन्न बहुरंगी माला में हिन्दी सुमेरु है।

इस राष्ट्र–भाषा में सदा राष्ट्रीयता का स्वर गूँजता रहा। "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा" गीत सम्पूर्ण भारत में किशोरों के भी कण्ठ का हार बन गया था। भारतेन्दु ने इसी भाषा में "धन विदेश जाने" पर क्षोभ व्यक्त किया था। माधव शुक्ल ने "गोली से होली खेलने" की प्रेरणा दी थी। स्वर्गीय राष्ट्र–कवि ने भारत–भारती के माध्यम से राष्ट्र–जागरण का स्वर मुखर किया था। उन्होंने ही लिखा था–

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर–पशु निरा है और मृतक समान है।।'

साहित्य–देवता माखन लाल जी ने 'पुष्प की अभिलाषा' के रूप में हुतात्माओं के हृदयों की कामना व्यक्त की थी। प्रसादजी का प्रयाण–गीत 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' इसी भाषा में ध्वनित हुआ था। महाप्राण निराला की ललकार 'जागो फिर एक बार' में गुंजरित हुई। सुमित्रानन्दन पन्त के 'जन–जन भारत जन–मन अभिमत जन–गणतन्त्र विधाता' में राष्ट्र के अभिनव रूप की कल्पना साकार हुई थी। कवि नवीन ने इसी भाषा में ऐसी तान सुनाई, जिससे उथल–पुथल मच जाये। सोहनलाल द्विवेदी के वन्दना के स्वरों में बलि की प्रेरणा थी। दिनकर ने इसी भाषा में ललकारा था 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' सुभद्रा कुमारी की 'झाँसी की रानी' अतीत के माध्यम से वर्तमान की प्रेरणा थी।

स्वाधीनता के बाद भी, जब भी देश संकट में घिरा, हिन्दी में जागृति का स्वर अवश्य गूँजा। चीन के आक्रमण के समय सर्वश्री सुमन, गोपाल सिंह नेपाली, पं. श्याम नारायण पाण्डेय ने चीन को चुनौती दी थी। रुद्र काशिकेय ने 'चीन को चेतावनी' में देश की एकता तथा दृढ़ता व्यंजित की थी। श्री रामेश्वर शुक्ल ने जवानों को प्रेरणा देते लिखा था–

'सीमाओं पर घिरे शत्रु को फिर तुमने ललकारा है।
आज तुम्हारे कण्ठ–कण्ठ में बलिदानों का नारा है।।'

राष्ट्र–नायक गोपाल सिंह नेपाली तो अपने ओजस्वी गीतों द्वारा चीन के विरुद्ध अलख जगाते हुए ही स्वर्गवासी हो गये थे :

'ओ राही! दिल्ली जाना तो कहना अपनी सरकार से।
चरखा चलता है हाथों से, शासन चलता तलवार से।।'

प्रेम–गीत लिखने वाले नीरज भी उत्साह से बोल उठे थे, 'जय हो हिन्दुस्तान की। जय हो वीर जवान की।' पाकिस्तान से युद्ध के समय जोश भरे बाल कवि बैरागी ने हर कवि–सम्मेलन के मंच से ललकारा था 'नक्शे पर से नाम मिटा दो पापी पाकिस्तान का।' सरल जी ने तो हुतात्माओं पर अनेक महाकाव्य लिख डाले।

दुख है, अंगेजों ने तो फ्रांसीसी भाषा का चोला सप्रयास उतार फेंका था, पर उनके भारतीय मानस–पुत्र आज भी अंग्रेजी की गुलामी का तौक गले में डाले अंग्रेजियत को बन्दरिया के बच्चे सा चिपटाये हैं। आज के नौकरशाह को हिन्दी में देशी बू आती है। राष्ट्र–भाषा को पूर्ण ज्योतित करने, राष्ट्रीयता का ऐक्यकेतु फहराने के लिए इस मोह–पाश को हटाना अपरिहार्य है। ▫

– विट्ठलनगर, खण्डवा (म.प्र.)

अमृतवाणी

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।
(महाभारत, ५/१०४८)

इस संसार में कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घ–सूत्रता– इन छह दोषों का त्याग कर देना चाहिए।

जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं वा प्रशमं नयेत्।
अतिपुष्टाङ्गयुक्तोऽपि स पश्चात् तेन हन्यते।।
(पञ्चतन्त्र, १/२५६)

जो व्यक्ति शत्रु या रोग को उसके उत्पन्न होते ही नहीं मिटा देता है, वह व्यक्ति अत्यन्त पुष्ट अंगों वाला होने पर भी बाद में उसके द्वारा (शत्रु या रोग के द्वारा) मारा जाता है।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति।।
(शार्ङ्गधरपद्धति, १४२१)

मनुष्य को प्रत्येक दिन के अन्त में इस बात की समीक्षा करनी चाहिए कि आज मैंने कौन–कौन से ऐसे कार्य किये, जो पशुओं के सदृश थे तथा कौन–कौन से ऐसे कार्य किये, जो सत्पुरुषों के सदृश थे।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।
(चाणक्यशतक, २/१६)

जो मनुष्य दूसरे की पत्नी को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा सभी प्राणियों को अपने समान समझता है, वही पण्डित है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव तु।
(गरुड पुराण, १०८)

जो व्यक्ति जिन वस्तुओं का प्राप्त होना निश्चित है, उन वस्तुओं का त्याग करके उन वस्तुओं के पीछे दौड़ता है, जिनका प्राप्त होना अनिश्चित है, उसकी वे वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती हैं, जिनका प्राप्त होना निश्चित था और जिन वस्तुओं का प्राप्त होना अनिश्चित था, वे तो पहले से ही नष्ट थीं।

– प्रस्तुति : डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

आयुर्वेद पर आघात

— प्रदीप बहुगुणा

नीम दतूनी जो करे, भूनी हर्र चबाय।
दूध बियारी नित करे, तिन घर वैद्य न जाय।।

हमारे देश में ऐसे हजारों घरेलू नुस्खे प्रचलित हैं, जिन्हें अपनाकर स्वस्थ व निरोग रहा जा सकता है। नीम का काढ़ा, अदरख, तुलसी की चाय, बेल का शरबत, ठण्डाई जैसे नुस्खे तुरन्त राहत प्रदान करते हैं। धन्वन्तरि व चरक जैसे चिकित्सकों का यह देश, आयुर्वेदिक औषधियों के क्षेत्र में पूरे विश्व में अग्रणी रहा है। आयुर्वेदिक औषधियों के प्रचलन का कारण यह है कि वे रोगी को बिना कोई नुकसान पहुँचाये, रोग को समूल नष्ट कर देती हैं, जबकि ऐलोपैथिक दवाओं का कोई न कोई पार्श्विक दुष्परिणाम अवश्य होता है।

प्राचीन काल से ही भारतवासी जड़ी–बूटियों तथा अन्य घरेलू पदार्थों से औषधियाँ बनाकर उनका प्रयोग करते आये हैं, जो हमारे लिये साधारण–सी बात है। वर्तमान परिस्थितियों में यदि ऐसा करने पर जेल की सजा मिले, तो यह अविश्वसनीय तो लगता है ; परन्तु सत्य होने जा रहा है। नीम, तुलसी, पारिजात, अजवाइन, लौंग व सुदर्शन जैसी कई औषधियों का पेटेण्ट अमेरिका के व्यापारिक प्रतिष्ठान करा चुके हैं। इसके कारण भारत में कोई विना उनकी अनुमति के इनका प्रयोग कर औषधियों का औद्योगिक निर्माण नहीं कर पायेगा। यदि ऐसा किया, तो इसके विरुद्ध अमेरिका में मुकदमा चलाया जाएगा। इसकी निगरानी करने के लिए जल्दी ही अमेरिका, भारत में फेडरल ब्यूरो ऑव इन्वेस्टीगेशन का कार्यालय खोलने जा रहा हैं

आयुर्वेदिक औषधियों का पेटेण्टीकरण डंकल प्रस्ताव की आड़ में किया जा रहा है, जिसके गम्भीर परिणामों का सामना हमें करना पड़ेगा। यह प्रस्ताव भारतीय कृषि, चिकित्सा, बौद्धिक सम्पदा, उद्योगों तथा व्यापार पर कब्जा करने के लिए रची गयी अमेरिका की साजिश है, क्योंकि वह भारत को एक बाजार की भाँति प्रयोग कर रहा है और इसमें हमारे ही देश के कुछ भ्रष्ट नेता व अधिकारी आधुनिक जयचन्दों का रूप धारण कर तमाशा देख रहे हैं।

अमेरिका द्वारा प्रमुख औषधियों का पेटेण्ट लिये जाने के कारण इन पर उसका एकाधिकार होगा, हमें अपनी ही जड़ी–बूटियों से बनी औषधियों के लिए उसका मुँह ताकना पड़ेगा। विदेशी कम्पनियाँ मनमाने दामों पर औषधियाँ बनाकर वितरित करेंगी। दवाओं के मूल्य में हुई भारी वृद्धि पेटेण्टीकरण का एक छोटा-सा परिणाम है। गरीब व्यक्ति की पहुँच से औषधियाँ बाहर हो जायेंगी। सदियों से चली आ रही वैद्य-परम्परा समाप्त हो जाएगी और हम मूक–दर्शक बने रहेंगे, जैसे अभी तक सेण्ट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिक, सविचालय के अधिकारी और राजनेता देखते रहे। कर्ज से दबा यह देश आर्थिक खोखलेपन की ओर बढ़ रहा है। हाल ही में अमेरिका की कम्पनी राइसटैक द्वारा बासमती चावल का पेटेण्ट करके हमारी प्रभुसत्ता व अर्थनीति पर करारा प्रहार किया गया और हम अभी तक कुछ नहीं कर पाये हैं।

इस दुरवस्था का प्रमुख कारण हमारी गलत आर्थिक नीतियाँ व सामाजिक चेतना की कमी है। देश को बचाने के लिए भारत व विदेशों में बसे सभी भारतीयो को संगठित रूप से कार्य करना होगा। स्वदेशी वस्तुओं व औषधियों का प्रयोग करके डूबते देश को बचाने के लिए हम सकारात्मक प्रयास कर सकते हैं। कई प्रबुद्ध व्यक्तियों व राष्ट्रवादी संगठनों द्वारा हल्दी का पेटेण्ट रद्द कराया जाना एक सराहनीय प्रयास हे। 'स्वदेशी' के मूल मंत्र से ही हम देश पर लगे आर्थिक प्रतिबन्धों से निपटकर अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बना सकते हैं। अन्यथा जिस प्रकार हमारी योग–विद्या 'योगा' बनकर हमारे समक्ष लौटी है, वैसे ही गुलामी भी भारत में लौट आएगी और तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।

□

ग्राम– घम्मूवाला, पो.– डाण्डी (रानीपोखरी)
देहरादून (उ.प्र.), २४८१४५

जब रायबहादुरों को कवि 'भूषण' में 'दूषण' दिखते थे

– वचनेश त्रिपाठी

'सरस्वती' सरीखी विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रति भी ब्रिटिश सरकार का गुप्तचर विभाग कितना सतर्क रहता था– उसी का साक्ष्य सँजोये है यह प्रसंग। बात सन् १६३४ की है। उस समय 'सरस्वती' के सम्पादक पं. देवीदत्त शुक्ल थे। उस साल के दिसम्बर महीने की 'सरस्वती' का जो अंक छपा–उसको लेकर गुप्तचर विभाग ने अनुवाद विभाग को सक्रिय किया– 'सरस्वती' में प्रकाशित एक जिस लेख का अनुवाद उसने कानूनी कार्रवाई करने के उद्देश्य से करवाया– उसका शीर्षक था "श्री अरविन्द की डायरी"। उस लेख के 'सरस्वती' में छपते ही सचिवालय के अनुवाद विभाग में सनसनी फैल गई। सरकार के कान खड़े हो गये। उसी बीच उस विभाग के एक कर्मचारी पूछताछ के लिए सम्पादक पं. देवीदत्त शुक्ल से आकर मिले– भाग्य से उनसे शुक्ल जी का स्नेह–सम्बन्ध रहा था। उन्होंने शुक्लजी से पूछा– "यह तो बताओ कि तुम अरविन्द बाबू की डायरी कहाँ पा गये?" ये बोले–"कौन अरविन्द बाबू? किस डायरी की बात आप पूछ रहे हैं?"

वे कहने लगे– "वही, जो तुमने 'सरस्वती' में प्रकाशित की है, ताजे अंक में।" तब शुक्ल जी मामला समझे कि वास्तविकता क्या है। कहा–"अरे! तो क्या उस लेख को आप लोगों ने पाण्डिचेरी वाले क्रांतिकारी नेता अरविन्द घोष की डायरी समझ लिया था?"

तब उन्होंने बताया कि सच ही उसे पाण्डिचेरी वाले अरविन्द बाबू की डायरी मानकर सचिवालय में बड़ी सरगर्मी रही– उसका हमारे अनुवाद विभाग से अनुवाद भी कराया गया और 'सरस्वती' के सम्पादक–प्रकाशक के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने का सरंजाम होने लगा।" शुक्ल जी ने उन्हें सत्य से अवगत कराते हुए बताया कि, 'सरस्वती के दिसम्बर अंक में छपा वह लेख था बाबू शीतलासहाय का लिखा–पाण्डिचेरी के अरविन्द बाबू से तो उस लेख का स्वप्न में भी कोई रिश्ता नहीं जोड़ा जा सकता–लेकिन लगता है, इन दिनों आपकी सरकार का दिमाग दुरुस्त नहीं है– इससे नितान्त झूठ को भी सच का जामा पहनाकर पथ–भ्रान्त हो रही है।"

वे बोले, "तुम कुछ भी कहो– लेकिन सिर्फ उस लेख में 'अरविन्द' नाम देखकर ही गुप्तचर विभाग सक्रिय हो गया और उसके कारण हम लोगों को बहुत परेशान होना पड़ा।"

इसके बावजूद 'सरस्वती' में शुक्ल जी के सम्पादन–काल में कांग्रेस के पं. मोती लाल नेहरू जैसे नेताओं के लेख प्रकाशित होते रहे थे। एक बार सन् १६३२ के जनवरी अंक में भाई परमानन्द का लेख 'सरस्वती' में छपा, जिसका शीर्षक था– "भारत की राजनीतिक अवस्था"। इस लेख पर भी सचिवालय में आपाधापी मची। लेख का अनुवाद कराया गया अनुवाद विभाग से और जिन लेखांशो को आपत्तिजनक माना था सचिवालय ने, उन पर कार्रवाई करने की सिफारिश के साथ ऊपर भेजा भी लेकिन काफी ऊहापोह के बाद सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उस लेख के विरुद्ध मामला बनना सम्भव न होगा। बात टल गई।

एक समय ऐसा आया जब कि कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के प्रति तुष्टीकरण नीति अपनाने से पत्र–पत्रिकाओं में भूषण कवि की निन्दा करने वाले लेख छपने लगे। 'वीणा' पत्रिका में एक लेख भूषण कवि पर छपा जिसका शीर्षक था– 'भूषण के दूषण'– या इसी तरह का कुछ। उस लेख को भूषण कवि को छत्रपति शिवाजी का 'भाट' और 'शिवा बावनी' को भटैती साबित किया गया। लेखक थे अवधवासी राय बहादुर लाला सीताराम बी.ए.। इसका सटीक उत्तर 'सरस्वती' के मई (१६३२) अंक में छपा, जिसके लेखक थे पं. किशोरी दास बाजपेयी। देखा गया कि प्रयाग की 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' सरीखी महत्त्वपूर्ण हिन्दी–सेवी संस्था ने भी भूषण कवि का जो

काव्य संकलन छपाया–उसे भी काट–छाँट कर ही छापा गया। उद्देश्य था इस काट–छाँट का मुसलमानों की नाराजगी का डर। इस सन्दर्भ में सम्पादक पं. देवीदत्त शुक्ल के अपने शब्द हैं–

"छत्रपति महाराज शिवाजी मुसलमानों को, विशेषकर लीगी मुसलमानों को कभी नहीं भाये। इधर जब कांग्रेस का जोर बढ़ा और महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस में मुसलमानों को लाने का या उनसे मेल बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा, तब मुसलमानों के प्रीति–भाजन कांग्रेसी 'हिन्दुओं' को शिवाजी महाराज के प्रशंसक 'भूषण' कवि का काव्य फूटी आँख नहीं सुहाने लगा। धीरे–धीरे यह बात पत्रों में लाई गई और भूषण कवि को 'भाट' और उनकी रचनाओं को 'भटैती' बताकर उनका महत्त्व गिराने का उपक्रम होने लगा। इस सम्बन्ध में 'सरस्वती' में भी लेख निकले।"

शुक्ल जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से अछूतोद्धार आदि सुधारों को भी वाणी दी। महामना पं. मदन मोहन मालवीय ने समाज के अछूत कहे जाने वाले भाइयों को जब दीक्षा प्रदान कर उन्हें उत्कर्ष की ओर ले जाने का अभियान चलाया, तो कट्टर पंथी ब्राह्मणों ने महामना का विरोध किया। सन् १६३२ में जब शिवरात्रि का समय आया, तो फिर से मालवीय जी ने काशी में दीक्षा देने का आयोजन किया। 'हिन्दी बंगवासी' जैसे पत्रों ने उसका विरोध किया। इस पर सम्पादक शुक्ल जी ने 'सरस्वती' में मालवीय जी के अछूतोद्धार–कार्यक्रम का समर्थन करते हुए लिखा था, जिसमें इस काम को लोक–कल्याणकारी–समाजोपयोगी तथा शास्त्र–सम्मत" सिद्ध किया। लिखा–

"दुनिया काफी समझदार हो गई है। वह जानती है कि मालवीय जी का यह लोक–कल्याणकारी कार्य समाजोपयोगी ही नहीं है, किन्तु, शास्त्र–सम्मत भी है। जिन लोगों ने भारतीय धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया है, उन्हें यह बतलाना नई बात नहीं होगी कि मंत्र–दीक्षा की क्रिया शिवोक्त आगम शास्त्र की एक विशेष वस्तु है और उसी आगम शास्त्र में चाण्डाल तक को सभी मंत्रों की दीक्षा देने का विधान ही नहीं बताया गया है, किन्तु उसे अन्य वर्णों के समान ही सभी बातों का अधिकार भी दिया गया है। ऐसा होते हुए भी जो लोग मालवीय जी की इस सम्बन्ध में विगर्हणा कर रहे हैं, वे एक नहीं दो–दो पाप कर रहे हैं। एक ओर वे अपने इस कार्य से सत्य के ऊपर धूल झोंक रहे हैं, दूसरी ओर वे एक ऐसे ब्राह्मण को लांछित कर रहे हैं, जिनकी लोक–पूज्य महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति पूजा करते हैं।"

स्पष्ट है कि सम्पादक के नाते शुक्ल जी ने देश का जो युग–धर्म था, राष्ट्र–धर्म था, उसे लोगों की नाराजगी लेकर भी निबाहा। ऐसे ही हिन्दी बनाम हिन्दुस्तानी के मसले पर भी उन्होंने हिन्दी का पक्ष लेकर हिन्दुस्तानी–समर्थकों किंवा नेताओं के कृपाकांक्षी वर्ग की नाराजगी मोल ली। सन् १६३५ में जब 'आज' पत्र के काशी में सम्पादक थे, बाबू सम्पूर्णानन्द। उस समय कश्मीरी परिवार के एक स्नातक पं. सूर्यनाथ तकरू 'आज' अखबार में अपने छद्मनाम "खैराती खाँ" नाम से हिन्दी का उपहास करने वाले लेख लिखते थे। एक अजीब फिजा बन रही थी उन दिनों। सन् ३५ की मई में 'हिन्दी साहित्य–सम्मेलन' का इन्दौर में २४वाँ वार्षिक अधिवेशन हुआ। गाधी जी ने उसका सभापतित्व किया। अपने भाषण में गाधी जी ने कवि 'भूषण' की कविता के सम्बन्ध में तथा हिन्दी या हिन्दुस्तानी के विषय पर जो अपना दृष्टिकोण रखा–उसके समर्थन में ठाकुर श्री नाथसिंह ने छद्मनाम 'विनोदविहारी' नाम से 'सरस्वती' के जुलाई अंक में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था– "भूषण के दूषण"। इसके पहले जून वाले अंक में साहित्यकार लक्ष्मीधर बाजपेयी ने गांधी जी के 'भूषण' सम्बन्धी विचार के विरुद्ध लेख लिखा था जिसमें 'शिवाबावनी' के पक्ष में मत व्यक्त किया गया था। आगे 'सरस्वती' के अक्तूबर अंक (१६३५) में श्री नाथसिंह के "भूषण के दूषण" वाले लेख का सटीक जवाब पं. कमलाकर शर्मा ने अपने लेख में दिया। स्वयं पं. देवीदत्त शुक्ल ने 'सरस्वती' में उस अधिवेशन के दोनों प्रस्तावों के प्रति हिन्दी–जगत और समाज को सजग किया। ऐसे ही 'स्वराज्य' के विषय में भी मत–भिन्नता होने से पं. जवाहरलाल नेहरू और प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता भाई परमानन्द में नोक–झोंक सम्बन्धी लेख 'सरस्वती' में छपते रहते थे। नेहरु जी ने एक लेख शुक्ल जी को स्वयं अपने हाथ से लिखकर भेजा था, जिसका शीर्षक था– "भाई परमानन्द और स्वराज्य"। पुनः भाई परमानन्द ने भी इसके उत्तर में अपना लेख "जवाहरलाल नेहरू और हिन्दू संस्कृति" शीर्षक से 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ शुक्ल जी को भेजा। दोनों ही लेख उन्होंने छापे थे। भाई परमानन्द जी प्रायः 'सरस्वती' में लिखा करते थे। □

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी की प्रगति गत पचास वर्षों में

- श्याम नारायण कपूर

स्वाधीनता के बाद भारत में विज्ञान के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई है। भारतीय वैज्ञानिक विज्ञान की विविध शाखाओं-प्रशाखाओं में अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के कार्य करने में सफल हुए हैं। वे नित नूतन शोध-कार्य करने में बड़ी तेजी से अग्रसर हो रहे हैं। प्रौढ़ और तरुण वैज्ञानिकों ने अपने मौलिक कार्यों द्वारा स्वयं तथा देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में उनका सक्रिय सहयोग श्लाघ्य है। गत दिनों (मई में) पोखरण में तीन दिन के भीतर होने वाले एक-एक कर पाँच परमाणु-विस्फोट भारतीय वैज्ञानिकों की सफलता की कीर्ति-पताका भारत ही नहीं, दिग्दिगन्त में फहरा रहे हैं।

अपने को विश्व भर में सबसे अधिक शक्तिशाली समझने वाले अमरीका की झुंझलाहट तो बहुत ही अधिक बढ़ गई। अपने खुफिया एजेंसी की विफलता पर तो अभी तक उसका गुस्सा शान्त नहीं हुआ। अमरीकी उपग्रह भारतीय आकाश में निरन्तर मँडरा कर इस प्रकार के आयोजनों की टोह लेने में विशेष रूप से सक्रिय रहते हैं, उनकी खुफिया एजेंसी संसार में सबसे अधिक सचेत और प्रभावशाली मानी जाती है। और यह दोनों ही गुप्तचर-तंत्र विस्फोट की कोई पूर्व सूचना न प्राप्त कर सके, उनकी इस असफलता ने अमरीकी गुप्तचर-तन्त्र की, क्षमता के ढोल की पूरे विश्व में पोल खोल दी। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि चीन और फ्रांस में जब इस प्रकार के विस्फोट किये गये थे, तब अमरीका तथा अन्य शक्तियाँ उनके विरुद्ध कुछ भी न कह पायीं थीं।

भारतीय वैज्ञानिकों की इस अभूतपूर्व सफलता का श्रेय किसी एक व्यक्ति विशेष को नहीं, वरन् समूचे वैज्ञानिक समुदाय को प्राप्त है। वर्षों की साधना, अनुसन्धानशालाओं में निरन्तर शोध और पारस्परिक सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ। यह कोई एक दिन का कार्य नहीं था। वैज्ञानिक इस कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता तो कुछ समय पूर्व ही प्राप्त कर चुके थे। श्री पी. वी. नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व काल में इसकी तैयारी भी की जा चुकी थी, उस समय अमरीकी खुफिया एजेंसी को इसकी भनक लग गई थी। अतः अमरीकी राजनैतिक दबाव के कारण विस्फोटों का आयोजन स्थगित रहा। इस बार प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी और वैज्ञानिकों के पारस्परिक सहयोग से जिस सुनियोजित ढंग से यह कार्य सम्पन्न हुआ वह अभी भी एक रहस्य सा बना हुआ है। कतिपय भारतीय नेताओं ने भी, वैज्ञानिकों की इस अति महत्त्वपूर्ण सफलता पर बधाई देकर उनको प्रोत्साहित करना तो दूर, अपने को देश का तथाकथित अन्यतम हितैषी प्रदर्शित करते हुए इसका विरोध प्रकट करने में ही अपना हित समझा-विशेषकर पाकिस्तान और चीन के प्रति हमदर्दी रखने वाले नेताओं ने ; पर सफलता तो सफलता ही है, उसे किसी प्रकार के विरोध या निन्दा से नकारा नहीं जा सकता। और विदेशी वैज्ञानिकों की यह पुरानी रीति-नीति रही है कि भारतीय वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित न कर हतोत्साहित किया जाय। सम्पूर्ण स्वदेशी तकनीक विकसित करने में समर्थ होने वाले वैज्ञानिक कैसे उनकी प्रशंसा के पात्र बनते। विज्ञानाचार्य जगदीश चन्द्र बसु ने प्राचीन भारतीय ऋषियों के इस अभिमत- कि वनस्पतियाँ और पेड़-पौधे भी सजीव हैं- को स्वनिर्मित उपकरणों और यन्त्रों द्वारा प्रदर्शित कर पुष्टि की- तो इग्लैंड के इस कार्य में संलग्न वैज्ञानिकों ने यही कहा कि जब हम वर्षों के अनुसन्धान और आधुनिक उपकरणों की सहायता से सफल नहीं हो पाये हैं, तो हम यह कैसे मानें कि एक युवा वैज्ञानिक और वह भी भारतीय, वनस्पतियों और पेड़-पौधों को सजीव सिद्ध करने में सफल हो सकता है। परन्तु साँच को आँच कहाँ- पेरिस में अनेक वैज्ञानिकों के संमक्ष अपने देशी उपकरणों द्वारा प्रदर्शन कर सभी की शंकाओं

का समाधान हो जाने पर उन विदेशी वैज्ञानिकों को वनस्पतियों का सजीव होना स्वीकार करना पड़ा। कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ– स्वदेशी तकनीक, स्वदेशी उपकरण और स्वदेशी सामग्री द्वारा किये गये परमाणु–विस्फोट की भी समझी जा सकती है।

अणु–शक्ति का शान्तिपूर्ण उपयोग

पोखरण में ये विस्फोट उनकी सामरिक उपयोगिता के इस दृष्टिकोण से किये गये कि देश की सुरक्षा के लिए परमाणु–ऊर्जा को अस्त्र–निर्माण में कैसे और कितना उपयोग किया जाये। इसलिए इन आणविक अस्त्रों का निर्माण दूसरे देशों पर आक्रमण का न होकर अपनी सीमाओं की सुरक्षा ही अभिप्रेत है।

इसके पूर्व दूसरे महायुद्ध के पश्चात् परमाणु और उसकी असाधारण शक्ति की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित होने पर भारतीय वैज्ञानिकों, विशेष रूप से डॉ. होमी जहाँगीर भाभा का इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार का भी ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। अणु–ऊर्जा को काम में लाने के लिए डॉ. भाभा के नेतृत्व में 'अणु शक्ति आयोग' संगठित किया गया। डॉ. भाभा की अध्यक्षता में इस आयोग ने शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किये। फलस्वरूप विश्व के अणु–शक्ति उत्पादक देशों में भारत भी आगे रहा।

परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय प्रयोग के पक्षधरों में डॉ. भाभा विश्व के वैज्ञानिकों में अग्रगण्य थे। वे सैद्धान्तिक रूप से ही इसका समर्थन न करते थे; वरन् इसके क्रियान्वन के लिए भी सक्रिय थे और इसको व्यावहारिक रूप प्रदान करने में भी सफल हुए।

अगस्त १९५५ में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोगों के सम्बन्ध में विचार–विमर्श करने के लिएं एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। डॉ. भाभा इस सम्मेलन के अध्यक्ष मनोनीत किये गये। स्पष्ट है कि भारत में डॉ. भाभा के नेतृत्व में इस ओर जो कार्यक्रम चालू थे, उन सबको विश्व भर की मान्यता मिली। इसके बाद भी इस तरह के अनेक सम्मेलनों और गोष्ठियों का आयोजन हुआ और उन सब में भारत की ओर से डॉ. भाभा ने परमाणु–ऊर्जा को शान्तिमय कार्यों में लाने के उपायों और उनके क्रियान्वन पर बल दिया।

१९५५ में परमाणु से शक्ति उत्पादन के लिए मुम्बई के निकट ट्राम्बे में एक विशिष्ट संस्थान स्थापित किया गया। इस संस्थान में शोध–कार्य के साथ ही शक्ति–उत्पादन के लिए अग्रगामी (पायलट) यंत्र बनाने की व्यवस्था की और शीघ्र ही इस संस्थान द्वारा प्रशिक्षित वैज्ञानिकों की देख–रेख में अणु–शक्ति यंत्र 'अप्सरा' के संयोजन द्वारा उत्पादन कार्य का श्री गणेश हुआ। 'अप्सरा' प्रतिकारी (रिएक्टर) यंत्र की स्थापना भारत के इतिहास में एक स्मरणीय घटना मानी जाती है। इस यंत्र का निर्माण भी पूर्णतया भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा डॉ. भाभा की देखरेख में किया गया था। यंत्र के साथ ही उत्पादन कार्य में प्रयुक्त होने वाले ईंधन विदेशों से न मंगा कर तिरुवांकुर (ट्रावनकोर) के तटवर्ती–क्षेत्र की बालू से थोरियम प्राप्त करने की व्यवस्था की गई और भारत ही में यूरेनियम उत्पादक खनिजों को खोज निकाला गया। उन दिनों भारत ही नहीं, विश्व में अणु–शक्ति उत्पादन करने वाला यह सम्भवतः प्रथम उद्यम था। अगले दस वर्षों में भारत में परमाणु–ऊर्जा–उत्पादन में विशेष उल्लेखनीय प्रगति हुई।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्

स्वाधीनता के पूर्व भारतीय वैज्ञानिकों ने जो भी मौलिक कार्य किये थे और अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त की थी उसका प्रमुख श्रेय उनकी साधना और स्वाध्याय तथा विज्ञान के प्रति लगन को है। सरकार की ओर से शोध कार्य और वैज्ञानिक विषयों में अनुसन्धान करने के लिए कोई उत्साहवर्धक योजना नहीं थी। स्वाधीनता के बाद सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर शान्तिस्वरूप भटनागर के सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत सरकार भी इस ओर सक्रिय हुई और विज्ञान की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए 'इण्डियन कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्ड्रस्ट्रियल रिसर्च' (भारतीय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्) की स्थापना की गई। तत्कालीन प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने इस कार्य में विशेष रुचि ली। इस परिषद् द्वारा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में स्वतन्त्र रूप से अनुसन्धान और शोधकार्य करने के लिए अनेक अनुसन्धानशालाओं की स्थापना की गई, जो आज भी कार्यरत हैं। इनके माध्यम से राष्ट्र–निर्माण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन हो रहा है। शोधकार्य में भी यह संस्थाएँ अग्रणी मानी जाती हैं।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद

भारत कृषि प्रधान देश है। अतएव सरकार की

ओर से कृषि सम्बन्धी शोध–कार्य हेतु इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्च' (भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्) कार्यरत है। इस परिषद् द्वारा संचालित 'पूसा शोध संस्थान' के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थाओं के माध्यम से शोध–कार्य को प्रोत्साहन और आर्थिक सहयोग दिया जाता है।

सरकारी अनुसन्धानशालाओं के अतिरिक्त मुम्बई की 'टाटा फण्डामेन्टल साइंस इंस्टीटूयूट्' और बंगलौर की 'इण्डियन इंस्टीट्यूट् ऑफ साइंस' के द्वारा विशेष सराहनीय वैज्ञानिक कार्यों का सम्पादन बराबर होता रहता है। भारत के विभिन्न नगरों में स्थापित और कार्यरत इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी (आई.आई.टी.) भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान–तरुण वैज्ञानिकों एवं तकनीशियनों को प्रशिक्षित करने के साथ ही अपने शोध–कार्य द्वारा भारतीय उद्योग–धन्धों एवं यंत्र–निर्माण–क्षेत्र की विशिष्ट सेवा कर रही है।

डा. कोठारी का अवदान

विज्ञान की प्रगति में रक्षा मंत्रालय और उसके अन्तर्गत कार्यरत वैज्ञानिकों का भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण और सराहनीय योगदान है। देश के स्वतंत्र होने के बाद ही भारत सरकार ने देश की रक्षा में वैज्ञानिक साधनों का समुचित उपयोग करने के उद्देश्य से 'प्रतिरक्षा विज्ञान संगठन' के नाम से एक अलग विभाग स्थापित किया। १९४८ में इसकी स्थापना के साथ ही सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. दौलत सिंह कोठारी इस विभाग के संचालक नियुक्त किये गये। उस समय वे दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक–विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व के इस विभाग का अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य बड़ी तत्परता और कुशलता से निबाहा।

डॉ. कोठारी ने प्रतिरक्षा वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों का पुनर्गठन किया तथा कई नई प्रयोगशालाएँ और अनुसन्धान–शालाएँ स्थापित कराईं। नई अनुसन्धानशालाओं में जोधपुर की अनुसन्धानशाला विशेष उल्लेखनीय है। इसमें मरुभूमि में सैनिकों की गतिविधियों और कठिनाइयों का विशेष अध्ययन किया जाता है। रेगिस्तानी परिस्थितियों में हथियारों और दूसरे सैनिक उपकरणों का निरीक्षण और परीक्षण भी किया जाता है। साथ ही रेगिस्तान को हरा–भरा बनाने के लिए भी प्रयोग किये जाते हैं। इसी प्रकार की एक प्रयोगशाला पहाड़ी क्षेत्रों के सैनिकों की समस्याओं का अध्ययन करती है और उनकी कठिनाइयों को दूर करने की व्यवस्था के उपायों की खोज करती है। रक्षा विभाग के वैज्ञानिक संगठनों के अध्यक्ष और रक्षा मंत्री के परामर्शदाता पद पर रहते और योग्यतापूर्वक उसका संचालन करते हुए डॉ. कोठारी अवैतनिक रूप से कार्य करते रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय से जो वेतन मिलता था, वे उसी से संतुष्ट रहे। इस बात के लिए निरन्तर सचेष्ट रहे कि सैनिकों और वैज्ञानिकों में अधिक से अधिक सहयोग हो। सेना के उपयोग के लिए जो नवीनतम वैज्ञानिक उपकरण तैयार हों, उनमें अधिक से अधिक स्वदेशी सामग्री काम में

(शेष पृष्ठ ४० पर)

झूठ ठहाका मारता

– डॉ अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

आज आदमी सिन्धु की तह तो आया नाप,
अन्तस् की गहराइयाँ किन्तु न पाया भाँप।

पुरश्चरण चलते रहे दुआ–हवन अविराम,
मृत्युंजय पाया न बन, पर मृत्युंजय जाप।

मैंने माँगी चाँदनी, जो हर सके प्रदाह,
किन्तु झुलसने के लिए सूर्य दे गये आप।

अपने–अपने कर्म हैं, अपने–अपने भाग्य,
उन्हें मिले वरदान हैं, हमें मिले अभिशाप।

बाँस बाँसुरी का रहा, मछली का तालाब–
है बिजली का घन सघन, कोल्हू गुड़ का बाप।

तुझको क्या दरकार है ? तू ही तय कर बन्धु !
इधर पूनमी पुण्य है, उधर मावसी पाप।

इस न्यायालय का तुम्हें, क्या बतलायें हाल ?
झूठ ठहाका मारता, सच कर रहा विलाप।

दोपहरी के सूर्य को, आप रहे थे देख;
पगड़ी गिरने का वृथा करते पश्चात्ताप।

कहो, करें क्या आजकल, जायें हम किस ठौर ?
दुनिया में वैषम्य–दुख हैं संत्रास अमाप।

डिगा–चढ़ा पाये नहीं, जिसको अपने राम,
दुख अंगद का पाँव है, सुख शंकर का चाप।

– गोला गोकर्णनाथ–खीरी (उ०प्र०) २६२८०२

लखनऊ के नागरिकों से दस्त, उल्टी एवं हैजा से बचाव के लिए नगर प्रमुख की अपील

हम क्या न करें ?

१. बासी व ठण्डा भोजन न खायें।
२. खुली खाने–पीने की वस्तुएँ, कटे, सड़े फल तथा जिस पर मक्खियाँ बैठी हों बिल्कुल न खायें।
३. बर्फ, आइसक्रीम, सोडावाटर, माँस व मछली का प्रयोग न करें।
४. कूड़ा गन्दगी हर जगह न फेकें।
५. रोगी के बर्तन, कपड़े व बिस्तर का प्रयोग न करें।
६. रोगी की उल्टी तथा टट्टी को हर जगह न फेकें तथा उसे नष्ट कर दें।
७. धैर्य व संयम रखें अफवाहों पर ध्यान न दें।

हम क्या करें ?

१. उल्टी दस्त होने पर तत्काल किसी स्वास्थ्य कार्यकर्ता या निकटतम स्वास्थ्य केन्द्र या संक्रामक रोग अस्पताल में रोगी को ले जाएँ।
२. खाने–पीने की चीजों को मक्खियों से बचाएँ।
३. उबला हुआ जल या हैण्डपम्प का जल पीयें एक बाल्टी में एक गोली क्लोरीन अथवा एक चुटकी (बिलीचिंग पाउडर) जरूर मिलायें।
४. रोगी को साफ पानी में जीवन रक्षक घोल ओ०आर०एस० दें।
५. शौच से आने के बाद खाने व परोसने से पहले हाथों को साबुन से धो लें।
६. गर्म व ताजा भोजन नींबू, आम का पना आदि का प्रयोग करें।
७. रोगी को अधिक से अधिक तरल पदार्थ दें। जैसे– चावल का पानी, लस्सी, सिकन्जी, हल्की चाय, नारियल का पानी इत्यादि।
८. बच्चों को माँ का दूध पीने दें।
९. रोगी की उल्टी व टट्टी को खुला न छोड़ें, उसे राख या मिट्टी से ढक दें।
१०. घर के आस–पास कूड़ा न इकट्ठा करें। नगर निगम द्वारा सुनियोजित जगहों पर ही कूड़ा डालें।
११. टूटे–फूटे पानी के पाइपों की मरम्मत हेतु जल संस्थान को सूचित करें।
१२. संक्रामक रोग अस्पताल (आई०डी०एच०) डालीगंज पुल के पास बासमण्डी फोन नं० २२२३०१ में २४ घण्टे निःशुल्क चिकित्सा सेवा उपलब्ध है। कृपया इसका लाभ उठायें।

कु० रेखा गुप्ता
अपर मुख्य नगर अधिकारी

दिवाकर त्रिपाठी
मुख्य नगर अधिकारी

डॉ० सतीश चन्द्र राय
नगर प्रमुख, लखनऊ

भारत के ६३ प्रतिष्ठान अमरीका की काली सूची में

[भारत के परमाणु–परीक्षणों से बौखलाये अमेरिका ने हमारे निम्नलिखित प्रतिष्ठानों को अपनी काली–सूची में डाल दिया और उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने पर प्रतिबन्ध लागू कर दिया है। अमरीका की इस प्रकार की समस्त कार्यवाहियाँ उसके भारत के प्रति शत्रु–भाव की ही द्योतक हैं। – सम्पादक]

१. एरियल डिलीवरी रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (आगरा कैण्ट)।
२. एरोनाटिकल डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (बेंगलूर)।
३. एग्रीकल्चरल रिसर्च यूनिट (अल्मोड़ा)।
४. आर्ममेण्ट रिसर्च डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (पुणे)।
५. सेण्टर फार एरोनाटिकल सिस्टम्स स्टडीज एण्ड एनालिसिस (बेंगलूर)।
६. कामबैट वेहकिल्स रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट।
७. डिफेंस बायो इंजीनियरिंग एण्ड इलेक्ट्रो मेडिकल लेबोरेटरी (बेंगलूर)।
८. डिफेंस इलेक्ट्रानिक्स एप्लीकेशन्स लेबोरेटरी (देहरादून)।
९. डिफेंस इलेक्ट्रानिक्स रिसर्च लेबोरेटरी (हैदराबाद)।
१०. डिफेंस फूड रिसर्च लेबोरेटरी (मैसूर)।
११. डिफेंस इंस्टीट्यूट आफ फायर रिसर्च (दिल्ली)।
१२. डिफेंस इंस्टीट्यूट आफ फिजियोलाजी एण्ड एलाइड साइंसेज (दिल्ली)।
१३. डिफेंस इंस्टीट्यूट आफ फिजियोलाजिकल रिसर्च (मसूरी)।
१४. डिफेंस लेबोरेटरी (जोधपुर)।
१५. डिफेंस मेटेरियल्स एण्ड स्टोर रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (कानपुर)।
१६. डिफेंस मेटलर्जिकल रिसर्च लेबोरेटरी (हैदराबाद)।
१७. डिफेंस रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (ग्वालियर)।
१८. डिफेंस रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट लेबरोटरी (हैदराबाद)।
१९. डिफेंस रिसर्च एण्ड डवलपमेण्ट यूनिट (कलकत्ता)।
२०. डिफेंस रिसर्च लेबोरेटरी (तेजपुर)।
२१. डिफेंस साइंस सेण्टर (दिल्ली)।
२२. डिफेंस साइंटिफिक इनफारमेशन एण्ड डाकुमेण्टेशन सेण्टर (दिल्ली)।
२३. डिफेंस टेराइन रिसर्च लेबोरेटरी (नई दिल्ली)।
२४. इलेक्ट्रानिक्स एण्ड राडार डेवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (बेंगलूर)।
२५. एक्सप्लोसिब्स रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट लेबोरेटरी (पुणे)।
२६. फील्ड रिसर्च लेबोरेटरी (ले)।
२७. गैस टरबाईन रिसर्च इस्टेब्लिसमेण्ट (बेंगलूर)।
२८. इंस्टीट्यूट आफ आर्ममेण्ट टेक्नालोजी (पुणे)।
२९. इंस्टीट्यूट आफ न्यूक्लीयर मेडिसिन एण्ड एलाइड साइंसेज (दिल्ली)।
३०. इंस्टीट्यूट फार सिस्टम्स स्टडीज एण्ड एनालिसस (दिल्ली)।
३१. इंस्ट्रूमेण्ट्स रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (देहरादून)।
३२. नेवल केमिकल एण्ड मेटलर्जिकल लेबोरेटरी (विशाखापत्तनम)।
३३. नेवल साइंसेज एण्ड टेकनालाजिकल लेबोरेटरी (विशाखापत्नम)।
३४. प्रूफ एण्ड एक्सपेरीमेण्टल इस्टेब्लिसमेण्ट (चाँदीपुर)।
३५. रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट इस्टेब्लिसमेण्ट (पुणे)।
३६. साइंटिफिक एनालासिस ग्रुप (नई दिल्ली)।
३७. सालिड स्टेट फ़िजिक्स लेबोरेटरी (दिल्ली)।
३८. टर्मिनल बैलेस्टिक्स रिसर्च लेबोरेटरी (चण्डीगढ़)।
३९. व्हेकिल्स रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट एण्ड इस्टेब्लिसमेण्ट (अहमदनगर)।
४०. डिपार्टमेण्ट आफ एटामिक एनर्जी।
४१. एटामिक एनर्जी रेगुलेटरी बोर्ड।
४२. एटामिक मिनरल्स डिवीजन (हैदराबाद)।
४३. भाभा एटामिक रिसर्च सेण्टर (ट्राम्बे)।
४४. भुवनेश्वर इंस्टीट्यूट आव फिजिक्स (उड़ीसा)।
४५. बोर्ड आव रेडिएशन एण्ड आइसोटोप टेक्नालॉजी (मुम्बई)।
४६. सेण्टर फार एडवांस्ड टेक्नालॉजी (इन्दौर)।

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

(पृष्ठ ३७ का शेष)

लायी जाये।

डा. कलाम का योगदान

डॉ. कोठारी की प्रसिद्धि तारा–भौतिकी (एस्ट्रो–फिजिक्स) और भौतिक–विज्ञान की दूसरी शाखाओं में किये गये उनके मौलिक शोध कार्यों के कारण थी। अतः रक्षा–विज्ञान–संगठन का सफलता पूर्वक संचालन उनकी असाधारण प्रतिभा सम्पन्नता का द्योतक माना जाएगा। डॉ. कोठारी ने रक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक संगठनों में जिस कार्य–प्रणाली का सूत्रपात किया, उसी को और विकसित तथा उन्नत रूप देकर डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने देश की रक्षा हेतु अति महत्त्वपूर्ण तकनीकी विधियों का विकास करने और सामरिक उपयोग के लिए कई प्रकार के प्रक्षेपास्त्रों–मिसाइलों–का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सर्वथा नवीन क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित किये हैं। भारतीय प्रक्षेपास्त्रों का तो उन्हें जनक ही कहा जाता है। अन्तरिक्ष में उपग्रह–प्रेषण के लिए राकेटों का निर्माण उनकी अभूतपूर्व कार्य–कुशलता और विज्ञान–साधना ही का प्रतिफल है।

अप्रैल १९७५ में अपने प्रथम उपग्रह 'आर्यभट' का प्रक्षेपण कर भारत ने 'अन्तरिक्ष–युग' में प्रवेश किया था। उस समय भारत के पास कोई स्वनिर्मित राकेट नहीं था, जो उस उपग्रह को अन्तरिक्ष में पहुँचा सके। इसके लिए रूस से एक विशेष राकेट मँगाकर उसकी सहायता से उपग्रह अन्तरिक्ष में पहुँचाया जा सका। स्वदेश में ऐसे राकेट बनाने के लिए डॉ. कलाम निरन्तर प्रयत्न करते रहे और कई वर्ष की साधना के बाद वे भारतीय राकेट 'एस. एल. वी.–३' का निर्माण करने में सफल हुए और इसकी सहायता से नवीन उपग्रह 'रोहिणी' को अन्तरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया। इस राकेट की सफलता से भारी राकेटों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। वास्तव में अन्तरिक्ष–विज्ञान–प्रौद्योगिकी क्षेत्र में यह एक ऐतिहासिक योगदान था। विशेषज्ञों ने इसकी ईंधन प्रणाली को विश्व की श्रेष्ठतम प्रणालियों में स्वीकार किया है। इस राकेट के निर्माण के समय डॉ. कलाम भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन–इसरो के निदेशक थे और तिरुवनन्तपुरम् स्थित विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष–केन्द्र का कार्य भी उन्हीं की देख–रेख में चल रहा था।

भारत के प्रक्षेपास्त्र

आरम्भ में डॉ. कलाम की नियुक्ति रक्षा–वैज्ञानिक के पद पर हुई थी। उनकी विज्ञान–साधना और ऐतिहासिक महत्त्व की उपलब्धियों से उनका मार्ग प्रशस्त होता गया और वे शीघ्र ही रक्षा अनुसन्धान और विकास प्रयोगशाला (डी.आर.डी.एल.) हैदराबाद के निदेशक नियुक्त किये गये, साथ ही प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम का भी संचालन करते रहे। राकेट के सफल निर्माण के समान प्रक्षेपास्त्र कार्य में भी उनकी उपलब्धियाँ भारत ही नहीं, विदेशों में भी सराही गयीं। 'पृथ्वी' और 'अग्नि' के निर्माण से प्रक्षेपास्त्र प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उनके साथ ही भारत का भी मस्तक ऊँचा हुआ।

फरवरी १९८८ में 'धरती से धरती पर' मार करने वाले प्रथम प्रक्षेपास्त्र 'पृथ्वी' का सफल परीक्षण किया गया था। इसकी मारक दूरी २५० किलोमीटर थी। यह अपने ढंग का पहला प्रक्षेपास्त्र था। इसके लगभग डेढ़ साल बाद मई १९८९ में उनके द्वारा निर्मित 'अग्नि' प्रक्षेपास्त्र ने नये कीर्तिमान स्थापित किये। इसकी मारक क्षमता १६०० किलोमीटर बतलाई जाती है और कहा जाता है कि इसे २५०० किलोमीटर तक बढ़ाया जा सकेगा।

मिसाइलों के निर्माण की योजना श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में १९८३ में प्रारम्भ हुई थी। इसके लिए समुचित धन की भी व्यवस्था की गई थी। ५–६ वर्ष के अन्तराल में डॉ. कलाम ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर पाँच प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण द्वारा भारत को विश्व में एक शक्ति–सम्पन्न राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह प्रक्षेपास्त्र हैं– १. पृथ्वी, २. अग्नि, ३. आकाश, ४. त्रिशूल और ५. नाग। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण की तकनीक उन्होंने स्वयं विकसित की है। वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए देश के बाहर नहीं गये। उन्होंने आई. आई. टी., मद्रास (चेन्नई) से वैमानिक अभियांत्रिकी (एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग) में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति भी ऐसी न थी कि वह उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेज पाता। उनका जन्म रामेश्वरम् में निम्न–आय–वर्ग के परिवार में हुआ था।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान की प्रगति

'रोहिणी शृंखला के उपग्रहों के सफल अभियान

के बाद अन्तरिक्ष अनुसन्धान के क्षेत्र में एक और उल्लेखनीय उपलब्धि है 'एपल' (एरियन पैसेंजर पे लोड एक्सपेरिमेंट) का सफल प्रक्षेपण। यह भारत का प्रथम प्रायोगिक भूस्थिर-संचार-उपग्रह था। 'एपल' का उपयोग संचार, रेडियो नेटवर्क, डाटारिले आदि के क्षेत्रों में प्रयोग करने के लिए सफलतापूर्वक किया गया। भूस्थिर संचार उपग्रह के सफल प्रयोगों से देश के लिए एक सुदृढ़ तकनीकी आधार प्रस्तुत हुआ। इसी प्रकार 'इनसेट-१ ए' और 'इनसेट १ बी' की योजना द्वारा रेडियो और टी.वी. कार्यक्रमों के ग्रामीण क्षेत्रों के पुनः प्रसारण हेतु तैयार हुई। कुछ अप्रत्याशित घटनाओं के कारण 'इनसेट-१ ए' अभियान सफल न हो सका, परन्तु उसकी कमियों और त्रुटियों को दूर कर १९८३ के अन्त में 'इनसेट १ बी' को प्रक्षेपित करके संचालन दक्षता प्राप्त कर ली गई।

सागर विज्ञान अनुसन्धान

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के लिए राकेट और उपग्रह निर्माण के साथ ही देश के विकास में 'सागर-विज्ञान' के महत्त्व को ध्यान में रख कर राष्ट्रीय सागर विज्ञान अनुसन्धान और विकास संस्थान द्वारा कार्य तेजी से प्रगति कर रहा है। इस क्षेत्र में प्रमुख उपलब्धियाँ हैं हिन्द महासागर में बहुधात्विक पिण्डों की खोज। पिण्डों का पहला नमूना भारतीय अनुसन्धान पोत 'गवेषिणी' ने १९८० में प्राप्त किया था। बाद में देश की विभिन्न प्रयोगशालाओं में इनका परीक्षण और विश्लेषण किया गया।

अण्टार्कटिक के अभियान

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय वैज्ञानिकों ने सरकार के सक्रिय और योजनाबद्ध सहयोग से अन्तरिक्ष-विज्ञान, सागर-विज्ञान, ऋतु-विज्ञान, संचार की विविध शाखाओं में अत्यधिक प्रगति की है। इनके अनुभवों के आधार पर अण्टार्कटिक महाद्वीप और उसके आसपास के सागरीय क्षेत्रों में विस्तृत अध्ययन का सूत्रपात हुआ। १९८१-८४ तक दक्षिण हिन्द महासागर और अण्टार्कटिक के चार सफल वैज्ञानिक अभियान आयोजित किये गये।

अण्टार्कटिका महाद्वीप दक्षिणी ध्रुव के पास स्थित है और सदैव बर्फ से ढका रहता है। वहाँ औसतन २५ और ३५ डिग्री सेल्सियस के बीच तापक्रम रहता है। सदैव बर्फ से ढके रहने वाले इस प्रदेश में भारतीय वैज्ञानिकों ने वर्ष भर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ उगाने का चमत्कार किया। विश्व में भारत ही ऐसा देश है, जिसे इस कार्य में अभूतपूर्व सफलता मिली है। अण्टार्कटिका में २६ वैज्ञानिक कई वर्षों से रह रहे हैं और अपनी उगाई भारतीय सब्जियाँ जैसे बैंगन, शिमला मिर्च, आलू, मूली, सलाद पत्ता, सेम, प्याज, लहसुन, धनिया, पालक आदि का उपयोग भी कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने अपने शोध-कार्य द्वारा सर्वथा नयी तकनीक विकसित की। भारत की यह उपलब्धि इसलिए विशेष उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है कि करीब पाँच किलोमीटर दूर स्थित कैम्प में वास करने वाले जर्मन वैज्ञानिक वर्षों से प्रयत्न करने पर भी इस कार्य में सफल नहीं हो सके हैं। अन्त में हताश होकर उन्होंने इस कार्य को स्थगित कर दिया। भारतीय वैज्ञानिकों की इस उपलब्धि ने संसार को दिखा दिया कि वे शोध-कार्य में किसी से भी कम नहीं, वरन् काफी आगे हैं।

परमाणु ऊर्जा विभाग

इस विभाग ने अपनी स्थापना के २५वें वर्ष में ही

कैसे शर-सन्धान हो

— दिनेश भारद्वाज

इस सीमा तक बढ़ गया, युग का भ्रष्टाचार।
गुरु को देता शिष्य है, धोखे का उपहार।।

जिनके जीवन चरित से, आती है दुर्गन्ध।
उनके प्रति कैसे लिखें, सद्य सुगन्धित छन्द।।

सारवान लगता हमें, सपनों का संसार।
जाग्रत् जीवन हो गया, इस युग का निस्सार।।

जीवन का संगीत है, अपना-अपना मित्र।
जैसे होते हैं अलग, सबके अपने चित्र।।

करते रहे शिकायतें, कानाफूसी आप।
आत्महीन होकर स्वयं, झेल रहे संताप।।

कोई कुछ बन जाय तो, किसको है तकलीफ।
कोई मोती बन गया, कोई बनता सीप।।

क्षमता से बाहर अगर, किया आपने काम।
दोष दूसरों को दिया, आप हुए बदनाम।।

लालच बुरी बलाय है, बूढ़े बने जवान।
कैसे शर-सन्धान हो? टूटी हुई कमान।।

जिनकी मति विपरीत है, रीति, नीति से द्वेष।
उनमें एकाकी फँसा, आकर यहाँ दिनेश।।

— एम०एस० रोड, जौरा, जिला-मुरैना, (म०प्र०)

नाभिकीय औद्योगिकी सम्बन्धी व्यापक तकनीकी क्षमताएँ विकसित कर ली थीं। परमाणु–ऊर्जा उत्पादन के लिए प्रयुक्त होने वाले ईंधन 'यूरेनियम' की खोज के साथ ही प्रयुक्त ईंधन के उपचार और प्लूटोनियम के पुनश्चक्रण तक की प्रक्रिया का विकास कर लिया है। इस विभाग के अनुसन्धान और विकास प्रयासों से अन्तरिक्ष रक्षा, उद्योग, कृषि और चिकित्सा के क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

भारत परमाणु चिकित्सा–क्षेत्र में अग्रणी

भारत परमाणु चिकित्सा के क्षेत्र में 'न्यूक्लियर मेडिसिन' विकास और उसके व्यवहार में लाने वाले विश्व के इने–गिने देशों में अग्रणी है। दिल्ली, मुम्बई, इन्दौर और कोच्चि में ५० से अधिक चिकित्सा केन्द्रों में परमाणु–चिकित्सा को नवीनतम तकनीकी मदद से विभिन्न अंगों के कैंसर, गुर्दा रोग, हृदय रोग आदि की चिकित्सा की जा रही है। इन केन्द्रों में दिल्ली स्थित 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' परमाणु चिकित्सा और सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल, सीताराम भारतीय विज्ञान और अनुसन्धान संस्थान और मुम्बई स्थित टाटा स्मारक अस्पताल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। परमाणु–चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. एम.ए. वैम्बी के अनुसार इस चिकित्सा में परमाणु से निकलने वाली गामा किरणों से रोगों की जाँच और चिकित्सा की जाती है।

भारत में विज्ञान नीति का विकास

विज्ञान और प्राद्यौगिकी के विकास की अनिवार्यता को भारतीय नेताओं विशेषकर पं. जवाहर लाल नेहरू ने स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व ही अनुभव कर लिया था। आजादी के बाद इसके लिए सरकार की ओर से समुचित व्यवस्था की जाने लगी। विज्ञान और टेकनोलाजी को बढ़ावा देने और देश की प्रगति में उनके उपयोग के विषय में १९५८ में सरकार द्वारा विज्ञान–नीति की घोषणा की गई। शोध और विकास के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये। समय–समय पर उनकी उपलब्धियों और असफलताओं पर विचार–विमर्श होते रहे। पंचवर्षीय योजनाओं में सैद्धान्तिक और आधारभूत अनुसन्धान पर विशेष बल दिया गया। इनके कार्यान्वयन के लिए अनेक संस्थाएँ, प्रयोगशालाएँ, अनुसन्धानशालाएँ और समितियों की व्यवस्था की गई। इस कार्य में संलग्न विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और विभिन्न सरकारी विभागों के अन्तर्गत कार्य करने वाली संस्थाओं की सूची काफी लम्बी है।

राष्ट्रीय विज्ञान नीति के अन्तर्गत वर्तमान और उपलब्ध क्षमताओं का समुचित उपयोग तथा विभिन्न सरकारी एवं सार्वजनिक एजेंसियों में जो शोध–कार्य सम्पन्न होते हैं– उनके समन्वय की भी उचित व्यवस्था की गयी है- मंत्रिमण्डल वैज्ञानिक सलाहकार समिति द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। समय–समय पर वैज्ञानिकों और टेक्नोलॉजिस्टों के सम्मेलन आयोजित होते हैं और उनकी सिफारिशों पर समुचित ध्यान दिया जाता है। योजना आयोग द्वारा भी इस कार्य में सक्रिय सहयोग दिया जाता है। विज्ञान–नीति की समीक्षा समय–समय पर विभिन्न स्तरों पर होती रहती है। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप स्वाधीनता के इन पचास वर्षों में विज्ञान और प्राद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति हुई है और भविष्य में भी अच्छी सम्भावनाओं के शुभ संकेत उपलब्ध हैं। ●

– साहित्य निकेतन,३७/५०, शिवाला मार्ग, गिलिस बाजार, कानपुर– २०८००१

(पृष्ठ ३६ का शेष)

भारत के ६३ प्रतिष्ठान

४७. कन्स्ट्रक्शन एण्ड सर्विस ग्रुप (मुम्बई)।
४८. डायरेक्टरेट आव इंस्टेट मैनेजमेंट (मुम्बई)।
४९. डायरेक्टरेट आव परचेज एण्ड स्टोर्स (मुम्बई)।
५०. इलेक्ट्रानिक कार्पोरेशन आव इण्डिया लिमिटेड।
५१. हेवी वाटर बोर्ड।
५२. इण्डियन रेयर अर्थ्स लिमिटेड।
५३. इन्दिरा गांधी सेण्टर फार एटामिक रिसर्च (कल्पकक्कम)।
५४. नेशनल सेण्टर फार कम्पोजिशनल कैरेक्टर स्टिक्स आव मैटेरियल्स।
५५. न्यूक्लियर फ्यूल काम्पलेक्स (हैदराबाद)।
५६. न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन आव इण्डिया।
५७. रेयर मिनरल्स प्लाण्ट (मैसूर)।
५८. साहा इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स (कलकत्ता)।
५९. टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेण्टल रिसर्च (मुम्बई)।
६०. टाटा मेमोरियल सेण्टर (मुम्बई)।
६१. यूरेनियम कार्पोरेशन आव इण्डिया
६२. वैरिएबल एनर्जी साइक्लोट्रान कन्ट्रोल (कलकत्ता)।
६३. इण्डियन स्पेस रिसर्च आर्गनाइजेशन। □

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम में

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमन्त्री, उत्तर प्रदेश

समाज कल्याण विभाग, 'उत्तर प्रदेश'
प्रतिबद्धता के साथ प्रदेश में
गरीबों की सेवा में तत्पर

श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
मन्त्री समाज कल्याण, उत्तर प्रदेश

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली प्रमुख योजनाएँ

राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेन्शन योजना

भारत सरकार द्वारा घोषित एवं प्रदेश में समाज कल्याण विभाग के माध्यम से संचालित इस योजना में ९७–९८ में १३ लाख लाभार्थियों को लाभान्वित करने का लक्ष्य है। उक्त में से १०,२७,५०० लाभार्थियों को जो ६५ वर्ष से अधिक आयु के हैं, भारत सरकार की ओर से प्राप्त सहायतांश एवं राज्यांश से पेन्शन दी जा रही है एवं अवशेष २,७२,५०० लाभार्थी जो ६० वर्ष के बीच के हैं, को राज्याज्ञा से पेन्शन दी जा रही है। पेन्शन शहर एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के लाभार्थी को १२५ रुपया प्रतिमाह की दर से दी जाती है।

लाभ हेतु नियम

१. लाभार्थी की उम्र ६० वर्ष या अधिक होनी चाहिए।
२. ग्रामीण क्षेत्र के लाभार्थी की मासिक आय २२५/– रु० प्रतिमाह से अधिक नहीं होनी चाहिए।
३. पेन्शन स्वीकृति का अधिकार ग्रामीण क्षेत्र में परगनाधिकारी की अध्यक्षता में तथा शहरी क्षेत्र में सिटी मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में गठित समिति को है। जनपद स्तर पर जिलाधिकारी की देख–रेख में जिला समाज कल्याण अधिकारी द्वारा इस कार्य को सम्पादित एवं संचालित किया जा रहा है। वर्ष ९७–९८ में १२९३३७३ व्यक्तियों को १८६.४० करोड़ की सहायता प्रदान की गई है। योजना में ५० प्रतिशत लाभार्थी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के होंगे। पेन्शन का वितरण बैंक/डाकघर में एकाउण्ट खोलकर उसके माध्यम से तथा मनीआर्डर के माध्यम से किया जाता है।

वर्ष १९९८–९९ में १३ लाख वृद्ध जनों को १९५ करोड़ रुपये की सहायता दिया जाना प्रस्तावित है। जून, १९९८ तक ६,९५,८९२ वृद्धों को ५८.५० करोड़ रुपये की पेन्शन वितरित की जा चुकी है। लाभार्थियों की सुविधा हेतु किसान दिवस केन्द्र तथा तहसील दिवस केन्द्र पर पेन्शन उपलब्ध कराने के निर्देश दिये गये हैं।

राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना

इस योजना में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवार के जीविकोपार्जक की स्वाभाविक मृत्यु होने पर रुपया ५०००/– तथा किसी दुर्घटना के कारण मृत्यु हो जाने पर १०,०००/– रुपये दिये जाने की व्यवस्था है, जिसकी आयु सीमा १८ वर्ष से ६४ वर्ष रखी गयी है। वर्ष ९५–९६ में कुल मिलाकर ६०४३९ परिवारों को रुपये ३४४९.३९ लाख रुपये की सहायता वितरित की गई है। यह योजना जिला अधिकारी की देख–रेख में जिला समाज कल्याण अधिकारी द्वारा समन्वित/संचालित की जा रही है। इसका भुगतान बैंक/डाकघर में एकाउन्ट खोलने के उपरान्त एकाउन्ट पेयी चेक के माध्यम से किया जा रहा है। वर्ष ९७–९८ में २९२९७ व्यक्तियों को १५.११ करोड़ रुपये की सहायता प्रदान की गई है।

वर्ष १९९८–९९ में ४६,७९७ परिवारों को २५.४३ करोड़ रुपये की सहायता दिया जाना प्रस्तावित है।

उक्त योजनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी हेतु अपने जिले के जिलाधिकारी/जिला समाज कल्याण अधिकारी/परगनाधिकारी/खण्ड विकास अधिकारी से सम्पर्क करें।

निदेशालय समाज कल्याण, उत्तर प्रदेश
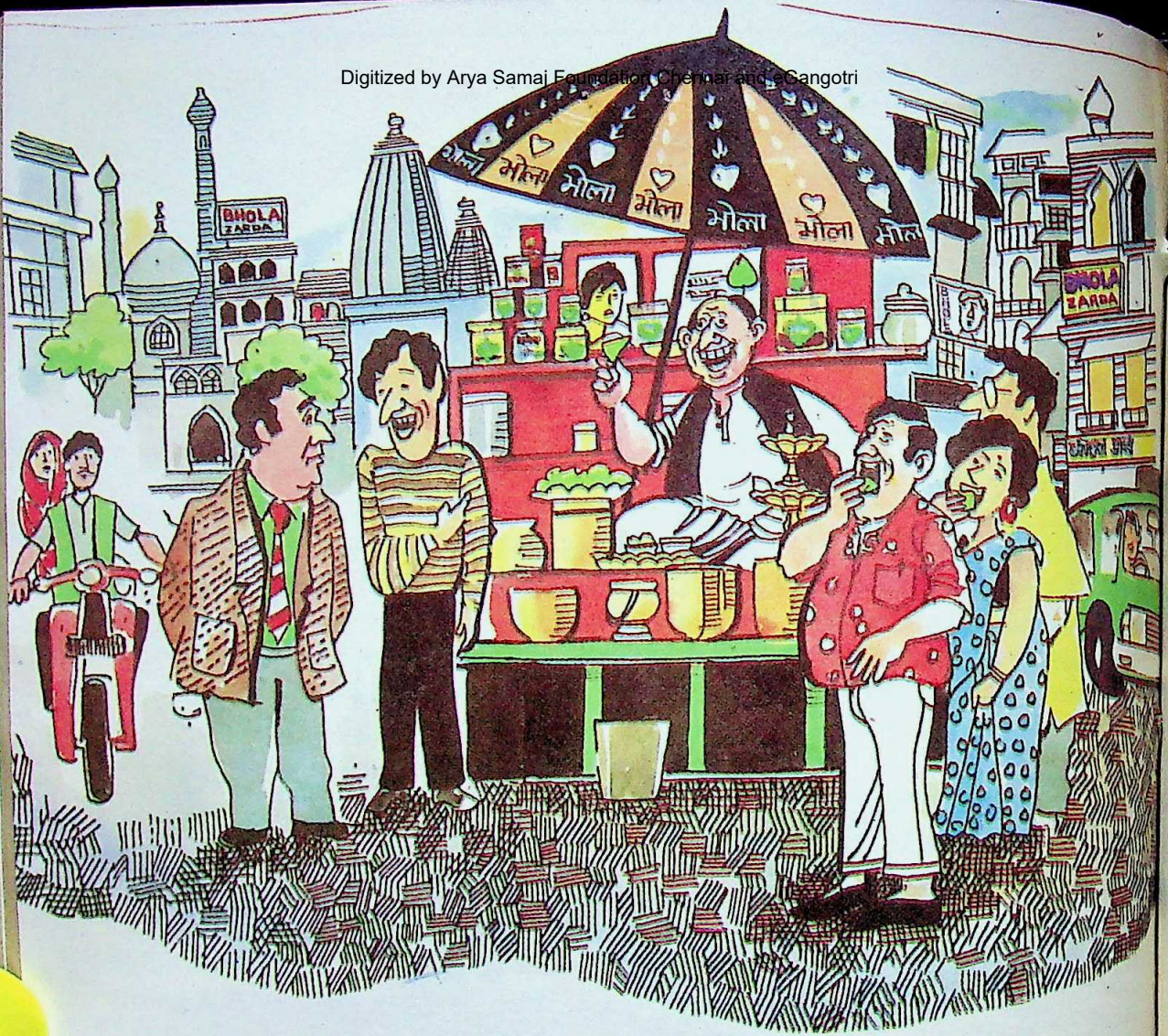
अब सुगन्धित तेलों से भी होगा रोगों का उपचार

– डॉ० गणेश कुमार पाठक

यह बात सुनने में बड़ी विचित्र लगती है कि भला सुगन्धित तेलों से रोगों को कैसे ठीक किया जा सकता है। किन्तु ब्रिटेन, फ्रान्स एव अन्य यूरोपीय देशो के चिकित्सकोंनेइसे सच कर दिखाया है और इस तरह की चिकित्सा को सुगन्धित 'चिकित्सा पद्धति' का नाम दिया है।

सुगन्धित चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत किसी घाव, चोट, जोड़ों, हड्डियों एव मांस–पेशियों में दर्द, गठिया या किसी अन्य बीमारी में सुगन्धित तेल, क्रीम अथवा सुगन्धित साबुन लगाने से रोगों का निदान होता है एवं रोगी स्वस्थ हो जाता है।

सुगन्धित चिकित्सा पद्धति फ्रान्स की देन है। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व फ्रान्स का एक रसायनशास्त्री ओरीन मारिस गेटफास अपनी प्रयोगशाला में काम कर रहा था, उसी दौरान एक छोटा सा धमाका हुआ जिससे उस वैज्ञानिक के दोनों हाथ बुरी तरह झुलस गये। उसने जलने की हड़बड़ाहट में पास ही एक मेज पर एक जार में रखे लवेण्डर के तेल में अपने जले हुए हाथों को डुबो दिया। ऐसा करने से उस वैज्ञानिक के हाथ की जलन शीघ्र ही दूर हो गयी तथा जलने से उत्पन्न जख्म भी शीघ्र ही ठीक हो गए तथा जले हुए स्थान पर किसी तरह का निशान भी नहीं रहा।

इस विचित्र घटना के बाद गेटफास ने स्वयं तरह–तरह के शारीरिक कष्ट झेलकर इस तरह के अनेक प्रयोग किये। इन प्रयोगों की सफलता के फलस्वरूप ही उसने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अनेक घायलों को सुगन्धित तेलों से इलाज करके ठीक कर दिया और बाद में उसने अपने इस चिकित्सा पद्धति को 'सुगन्धित चिकित्सा पद्धति' का नाम दिया। फ्रान्स में आज भी सुगन्धित चिकित्सा पद्धति काफी लोकप्रिय है तथा इसके चिकित्सकों को इस पद्धति से इलाज करने हेतु योग्यता एवं प्रशिक्षण ग्रहण करना आवश्यक होता है।

चिकित्सकों के अनुसार सुगन्धित चिकित्सा पद्धति कोशिकाओं के पुरुत्पादन के सिद्धान्त पर काम करती है। कोशिकाओं के दुबारा बनने से घाव बहुत आसानी से एवं बहुत जल्दी ही भर जाते हैं। कई सुगन्धित तेल कटने, जलने एवं रगड़ खाये हुए घाव के कष्ट को काफी हद तक कम कर देते हैं। ऐसे तेलों का प्रयोग गठिया रोगियों के लिए सूजन तथा दर्द को कम करने में विशेष कारगर सिद्ध हो रहा है। सुगन्धित तेल से मात्र घाव ही ठीक नहीं होते, अपितु जोड़ों, हड्डियों एवं मांस–पेशियों के दर्द को भी दूर भगाने में अहम् भूमिका निभाते हैं। यही नहीं इन तेलों का मस्तिष्क पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

ब्रिटेन में तो सुगन्धित चिकित्सा पद्धति इतनी लोकप्रिय हो रही है कि एरोमाथिरेपी पद्धति पूरक चिकित्सा का रूप ग्रहण करती जा रही है। अब यहाँ के लोग एलोपैथिक दवाओं के सेवन करने के बजाय सुगन्धित चिकित्सा पद्धति से इलाज कराने में अधिक भरोसेमन्द हैं।

ब्रिटेन आदि देशों में हुए चिकित्सा पद्धति के प्रयोगों के दौरान ऐसे तेल भी ढूँढ़ लिए गये हैं, जिनसे न केवल दिमाग की नसों को राहत मिलती है, अपितु सम्पूर्ण स्नायुतन्त्र भी मजबूत हो जाता है।

ब्रिटेन के लोग अब प्राकृतिक पदार्थों से तैयार सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री का उपयोग अधिक करने लगे हैं तथा वातावरण को भी सुगन्धित बनाने वाले कृत्रिम पदार्थों से तैयार एयर फ्रेशनर की जगह प्राकृतिक सुगन्धित पदार्थों से तैयार स्प्रे का प्रयोग अधिक करने लगे हैं। ब्रिटेन में अनिद्रा रोगियों के लिए भी प्राकृतिक पदार्थों से एक विशेष क्रीम तैयार की गयी है, जिससे जल्द ही नींद आ जाती है। यही नहीं चन्दन, गुलाब, चमेली, शीशम तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थों के तेल से साबुन, क्रीम एवं अन्य सौन्दर्य सामग्रियों का निर्माण हो रहा है जिसका प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। ❐

– प्रतिभा प्रकाशन, बलिया–२७७००१

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक : डॉ दुर्गाशंकर मिश्र

राजस्थान की रजत बूँदें

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थान की रजत बूँदें' में श्री अनुपम मिश्र के आठ शोधपरक लेख संकलित हैं। इनमे राजस्थान की प्राचीन जलव्यवस्था का बड़ा ही रोचक, प्रेरक एवं तथ्यपरक वर्णन आकर्षण चित्रों और रेखाचित्रों के माध्यम से हुआ है। इसके पूर्व श्री अनुपम मिश्र की 'आज भी खरे हैं तालाब' में सम्पूर्ण भारतवर्ष की प्राचीन जल-संचयन की उल्लेखनीय व्यवस्था का परिचय पाठकों को प्राप्त हो चुका है। इस महत्वपूर्ण विषय पर खोज करने के लिए मिश्र जी को के०के० बिड़ला फाउण्डेशन की ओर से शोधवृत्ति प्रदान की गई थी।

पुस्तक के आठ आलेखों के शीर्षक इस प्रकार हैं—

१. पधारो म्हारे देस, २. माटी, जल और ताप की तपस्या, ३. राजस्थान की रजत बूँदें, ४. ठहरा पानी निर्मला, ५. बिन्दु में सिन्धु समान, ६. जल और अन्न का अमरपटो, ७. भूण थारा बारे मास, ८. अपने तन, मन, धन के साधन। इनके अतिरिक्त सन्दर्भ शीर्षक के अन्तर्गत उपर्युक्त आलेखों के स्रोतों के साथ ही उन विशिष्ट व्यक्तियों और संस्थाओं का उल्लेख है, जिनके सम्पर्क से इन आलेखों की सामग्री प्रस्तुत की जा सकी है।

राजस्थान न्यूनतम वृष्टि तथा मरुभूमि के कारण भारत के अन्य प्रदेशों से अपनी अलग पहचान रखता है। प्रथम आलेख का प्रारम्भ करते हुए मिश्र जी लिखते हैं— 'कभी यहाँ समुद्र था। लहरों पर लहरें उठती रहीं थीं। काल की लहरों ने उस अथाह समुद्र को न जाने क्यों और कैसे सुखाया होगा। अब यहाँ रेत का समुद्र है। लहरों पर लहरें अभी भी उठती हैं।

प्रकृति के एक विराट रूप को दूसरे विराट रूप में समुद्र से मरुभूमि में बदलने में लाखों बरस लगे होंगे। नए रूप को आकार लिए भी आज हजारों बरस हो चुके हैं। लेकिन राजस्थान का समाज यहाँ के पहले रूप को भूला नहीं है। वह अपने मन की गहराई में आज भी उसे हाकड़ों नाम से याद रखे है।" डिंगल भाषा में 'हाकड़ों' शब्द समुद्र का पर्यायवाची शब्द है।

द्वितीय आलेख में लेखक ने राजस्थान के भूगोल का विस्तृत वर्णन किया है। वर्षा के आगमन का स्वागत, बादलों के विभिन्न नाम विभिन्न क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा की औसत आदि की सूचना का उल्लेख इस आलेख के आकर्षक विषय हैं।

विविध प्रकार की वर्षा का वर्णन गद्य-काव्य पढ़ने का आनन्द बिखेरता है, "चार मास वर्षा के और उनमें अलग-अलग महीने में होने वाली वर्षा के मास भी अलग-अलग। हूलर है तो झड़ी पर सावन, भादों की। रोहाड़ ठण्ड में होने वाली छुटपुट वर्षा है। बरखावल भी झड़ी के अर्थ में वर्षावलि से सुधर कर बोली में आया शव्द है। मेहांझड में बूँदों की गति भी बढ़ती है और अवधि भी। झपटो में केवल गति बढ़ती है और अवधि कम हो जाती है— एक झपट्टे में सारा पानी गिर जाता है।"

सम्पूर्ण आलेख इसी प्रकार की रोचक शैली में लिखे गये हैं, जिनके पढ़ने में कथा का आनन्द आता है और पाठक आद्योपान्त पुस्तक पढ़े बिना रह नहीं सकता है— ऐसा मेरा अनुभव है। इस सन्दर्भ में एक उद्धरण पर्याप्त होगा—

"पालर पानी वर्षा के जल को संग्रह कर लेने के तरीके भी यहाँ बादलों और बूँदों की तरह अनन्त हैं। बूँद-बूँद गागर भी भरती है और सागर भी— ऐसे सुभाषित पाठ्य पुस्तकों में नहीं, सचमुच अपने समाज की स्मृति में समाये मिलते हैं। इसी स्मृति से श्रुति बनी। जिस बात को समाज ने याद रखा, उसे उसने आगे सुनाया और बढ़ाया और न जाने कब पानी के इस काम का इतना विशाल, व्यावहारिक और बहुत व्यवस्थित ढाँचा खड़ा कर दिया कि पूरा समाज उसमें एक जी हो गया। इसका आकार इतना बड़ा कि राज्य के कोई तीस हजार गाँवों और तीन सौ शहरों, कस्बों में फैलकर वह निराकार सा हो गया।"

"ऐसे निराकार संगठन को समाज ने न राज को, सरकार को सौंपा न आज की भाषा में 'निजी' क्षेत्र को। उसने इसे पुरानी भाषा के निजी हाथों में रख दिया। घर-घर, गाँव-गाँव लोगों ने ही इस ढाँचे को साकार किया, सँभाला और आगे बढ़ाया।"

तृतीय आलेख में कुईं बनाने की विधियों का विस्तार के साथ वर्णन है। आगोर, कुईं, कुंड, टाँका आदि अनेक नाम और प्रकार से 'ठहरा पानी निर्मला' कैसे रहता है— इसका सटीक वर्णन चतुर्थ आलेख का विषय है।

'बिन्दु में सिन्धु समान' शीर्षक आलेख में 'बन्ध–बन्धा, ताल–तलाई, जोहड़–जोहड़ी, नाडी, तालाब, सरबर, सर झील, देईबन्ध–जगह, डहरी, खडीन और भे–इन सबको बिन्दु से भरकर सिन्धु समान बनाया गया। आज के नये समाज ने जिस क्षेत्र को पानी के मामले में एक असम्भव क्षेत्र माना है, वहाँ पुराने समाज ने कहाँ क्या–क्या सम्भव है– इस भावना से काम किया। साईं 'इतना' दीजिए के बदले साईं 'जितना' दीजिए वामे कुटुम समा कर दिखाया।'

राजस्थान का जैसलमेर सबसे कम वर्षा का क्षेत्र है। यहाँ मात्र १० दिन संक्षिप्त रूप से वर्षा होती है। फिर भी यहाँ 'घडसीसर' आदि अनेक ऐतिहासिक तालाब हैं, जिनकी कीर्ति और आभा आज भी मलिन नहीं हुई है।

विद्वान लेखक ने विश्व के अन्य मरु प्रदेशों का उल्लेख किया है, संयुक्त राष्ट्रसंघ के पर्यावरण कार्यक्रम की मरुभूमि को रोकने की अन्तर्राष्ट्रीय योजना तथा वहाँ की रिपोर्टों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन देते हुए यह सिद्ध किया है कि राजस्थान के जल संचयन की पुरानी पद्धति नई पद्धतियों से भी श्रेष्ठ रही है और साथ ही वैज्ञानिक भी। राजस्थान की पुरानी कुण्डियों के रखरखाव का तरीका सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ है और विदेशी वैज्ञानिकों ने यहाँ आकर इनका विशेष रूप से अध्ययन किया है और ये प्रयोगात्मक 'कुण्डियों' की सार–सँभाल के लिए यहाँ के गाँव वाले परिवारों का उपयोग भी कर रहे हैं।

पुस्तक सजिल्द आकर्षक आवरण पृष्ठों, उत्तम कागज, शुद्ध मुद्रण, रंगीन चित्रों तथा आवश्यक रेखांकनों से युक्त, पठनीय, संग्रहणीय एवं प्रेरणादायक है। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों तथा सार्वजनिक पुस्तकालयों में इसकी एक प्रति अवश्य उपलब्ध होनी चाहिए। सरकारी–गैर सरकारी सभी विभागों के अभियन्ताओं तथा नियोजनकर्त्ताओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

लेखक – अनुपम मिश्र
प्रकाशक – गाधी शान्ति प्रतिष्ठान, २२१, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–२
पृष्ठ – ११३ मूल्य – २०० रुपये मात्र

दर्पण का सच क्या कहें

– वीरेन्द्र 'मृदु'

बंजारे लेकर चले, अपना आँगन साथ।
इन शहरों की भीड़ में, छुटे हाथ से हाथ।।

चली प्रगति की योजना, करने जिन्हें निहाल।
रोते–रोते सो गये, वे ही भूखे लाल।।

सड़कों पर है आदमी, बन्द पड़ा बाजार।
इतने से ही जानिये, जनता की सरकार।।

कीर्तिमान लिखने उड़े, गीध बन्धु से लोग।
घर के रहे न घाट के, कितना अद्‌भुत रोग।।

पूछ न कैसे हम जिये, कैसे अनगढ़ गाँव।
राम भरोसे है तिरी, कागज की यह नाव।।

गुरुकुल की बातें नहीं, आँगन के अनुरूप।
शिक्षित होकर बन रहे, चितकबरी–सी धूप।।

रत्नाकर क्या पूजिये, जिसका खारा नीर।
बात न धीरज से सुने, जब तक सधे न तीर।

तिनके तिनके जब जुड़े, मिले हमें तब नीड़।
काम न इतने आ सकी, सड़कों की यह भीड़।।

कालेज पढ़ने भेजकर, हम थे बहुत निहाल।
किन्तु सड़क पर वह मिला, करवाता हड़ताल।।

दर्पण का सच क्या कहें, टुकड़ों में है धूप।
दिशा कोण का दाँव है, शकुनी के अनुरूप।।

– २/३१८, खलराना, फर्रुखाबाद–२०९६२५

श्रीलंका में बना मारुति का मंदिर

श्रीलंका में हनुमान जी के पहले मंदिर का निर्माण हो गया है। लगभग ५००० वर्ग फीट में फैले इस विशाल और भव्य मंदिर का निर्माण 'चिन्मय मिशन' ने किया है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह भव्य मंदिर उस पौराणिक अशोक वन के पास स्थित है, जहाँ रावण ने सीताजी को बन्दिनी बना कर रखा था तथा श्री हनुमान् प्रथम बार सीता माता से वहाँ मिले थे। इस मंदिर के निर्माण की लागत लगभग डेढ़ करोड़ श्रीलंकाई रुपये आयी है।

फिल्मी गीतकार- प्रदीप- जिन्हें 'दादा फाल्के सम्मान' मिला

- विजय अग्रवाल

पण्डित रामचन्द्र नारायण द्विवेदी (प्रदीप) फिल्म जगत के ऐसे दूसरे गीतकार हैं, जिन्हें दादा साहब फाल्के पुरस्कार दिया गया है। इससे पूर्व इस सम्मान को प्राप्त करने का श्रेय मजरूह सुल्तानपुरी को जाता है। ऐसे समय में, जबकि लगभग एक माह बाद ही देश की स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष का समापन होने जा रहा है, प्रखर राष्ट्रीय गीतकार "प्रदीप" को सम्मानित करके सरकार ने स्वर्ण जयन्ती वर्ष को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। जैसा कि सभी जानते हैं, लता मंगेशकर का गाया हुआ राष्ट्रीय गीत "ए मेरे वतन के लोगों, जरा आँख में भर लो पानी", "प्रदीप" का लिखा हुआ एक ऐसा गीत है, जो सदियों तक भारतीय जन मानस के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना भरता रहेगा।

"प्रदीप" का पूरा नाम पण्डित रामचन्द्र नारायण द्विवेदी है। "प्रदीप" का जन्म मध्य प्रदेश के तत्कालीन ग्वालियर राज्य के बड़नगर स्थान के एक मध्यवर्गीय परिवार में ६ फरवरी १९१५ को हुआ था। उन्होंने उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और लखनऊ में अपनी शिक्षा पूरी की। लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९३९ में उन्होंने बी०ए० पास किया था। विद्यार्थी जीवन से ही उनकी काव्य प्रतिभा मुखरित होने लगी थी। छोटे-छोटे उत्सव और समारोह में उन्हें कविता पढ़कर सुनाने का शौक-सा था। इसी समय उन्होंने अपना उपनाम "प्रदीप" रखा था।

"प्रदीप" बनना तो चाहते थे- अध्यापक, लेकिन यह संयोग ही था, कि वे बन गये- गीतकार और वह भी फिल्मी गीतकार। संयोग से कुछ ऐसा हुआ कि बम्बई (अब मुम्बई) के विले पार्ले स्कूल में उन्हें कविता पाठ करने का अवसर मिला। उस समारोह में बम्बई टाकीज के निर्माता-निर्देशक श्री एन० आर० आचार्य भी उपस्थित थे। वे "प्रदीप" जी की गायन शैली और कविता से इतने प्रभावित हुए कि वे उन्हें लेकर बम्बई टाकीज के मालिक हिमांशु राय के पास जा पहुँचे। हिमांशु राय ने उन्हें तुरन्त ही ५५० रुपये मासिक वेतन पर रख लिया और 'कंगन' फिल्म के गीत लिखने की जिम्मेदारी सौंपी। "प्रदीप" ने इसके लिए चार गीत लिखे, जिसमें तीन उन्होंने खुद गाये। इस समय "प्रदीप" मात्र २४ वर्ष के थे और इस युवा गीतकार की इस पहली ही फिल्म 'कंगन' ने रजत जयन्ती मनाई। फिल्म का लीला चिटनिस का गाया यह गीत उन दिनों अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

हवा तुम धीरे बहो, मेरे आते होंगे चितचोर।
छोटी सी मेरे दिल की तलैया, डगमग डोले प्रीत की नैया,
ओ पुरवैया। दया करो मेरे हिया में उठत हिलौर। हवा तुम ....

इसके बाद सन् १९४० में "प्रदीप" ने दूसरी फिल्म 'बन्धन' के लिए गीत लिखे। इसके लगभग सभी गीत अत्यन्त सराहे गये। "चल चल रे नौजवान" गीत तो उस समय लोगों की जुबान पर चढ़ गया था। इसके साथ ही "प्रदीप" एक गीतकार के रूप में स्थापित हो गये। सन् १९४१ में 'पुनर्मिलन' और 'नया संसार' तथा १९४३ में 'किस्मत' फिल्म के गीत लिखने के लिए भी "प्रदीप" को ही चुना गया। ज्ञातव्य है कि श्री अब्बास द्वारा लिखित, हिमांशु राय द्वारा निर्मित तथा अशोक कुमार और रेणुका देवी द्वारा अभिनीत फिल्म 'किस्मत' ने अपने समय में तहलका मचा दिया था। इस फिल्म के गीत "आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है। दूर हटो ए दुनिया वालों, हिन्दुस्तान हमारा है" के राष्ट्रीय स्वर ने अपने समय के न जाने कितने युवाओं को झकझोर कर रख दिया था। यह बात गौर करने की है कि यह वह काल था, जब हमारे देश का स्वतन्त्रता आन्दोलन अपने चरम पर था। ऐसे समय में "प्रदीप" के इन गीतों ने देश के लोगों के अन्दर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए जोश पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसके बाद "प्रदीप" ने अनेक फिल्मों के लिए सुन्दर, सरल, प्रेरणादायक, ओजस्वी और देशप्रेम से ओतप्रोत गीत लिखे। इस दृष्टि से 'जागृति', 'नास्तिक', 'मशाल', 'वामनावतार', 'पैगाम', 'नागमणि', 'हरिश्चन्द्र-तारामती', 'तलाक' और 'जय सन्तोषी माँ' आदि फिल्मों के नाम लिये जा सकते हैं। "प्रदीप" के कुछ लोकप्रिय गीत निम्न हैं-

- आओ बच्चों तुम्हें दिखाये झाँकी हिन्दुस्तान की- फिल्म- 'जागृति'।

- बिगुल बज रहा आजादी का, गगन गूँजता नारों से– फिलम 'तलाक'।
- दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल– फिल्म– 'जागृति'।
- हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के– फिल्म– 'जागृति'।
- इंसान का इंसान से हो भाईचारा, यही पैगाम हमारा– फिल्म– 'पैगाम'।
- मैं एक नन्हा सा, मैं एक छोटा सा बच्चा हूँ, तुम हो बड़े बलवान– फिल्म– 'हरिश्चन्द्र–तारामती'।
- पिंजरे के पंछी रे, तेरा दरद न जाने कोय– फिल्म– 'नागमणि'।
- देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवान– फिल्म– 'नास्तिक'।
- तेरे द्वार खड़ा भगवान, भगत भर दे रे झोली– फिल्म– 'वामनावतार'।
- मैं तो आरती उतारूँ रे– फिल्म– 'जय सन्तोषी माँ'।

फिल्मी गीतकार के रूप में "प्रदीप" की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कभी भी न तो अश्लील गीत लिखे और न ही सस्ते गीत। वे हमेशा स्वस्थ, भावना प्रधान एवं प्रेरणादायक गीतों के पक्षधर रहे। उन्होंने हमेशा ऐसे गीतों को प्राथमिकता दी, जो उच्च विचारों से प्रेरित हों और जिनमें मानवीय हृदय को झंकृत करने की शक्ति हो। यही कारण रहा है कि "प्रदीप" बदलते हुए फिल्मी परिदृश्य के अनुकूल स्वयं को नहीं बदल सके इसलिए वे धीरे–धीरे फिल्म जगत के लिए अप्रासंगिक होते चले गये। लेकिन फिल्म गीतकार के रूप में उनका जो योगदान है, वह उन्हें हमेशा प्रासंगिक बनाये रखेगा। कवि "प्रदीप" के गीत पहाड़ी नदियों की तरह तेजी से बहकर शीघ्रता से सूख जाने वाले गीत नहीं हैं, बल्कि गंगा–यमुना और कृष्णा–कावेरी की तरह हमेशा बहने वाले गीत हैं। कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" ने १९३८ में कवि "प्रदीप" की प्रशंसा करते हुए कहा था कि "प्रदीप" का स्वर ईश्वर–प्रदत्त है। उन्होंने स्वर की शिक्षा नहीं पाई, पर इतना अच्छा मैंने हिन्दी में दूसरा स्वर नहीं सुना। आज जितने कवियों का प्रकाश हिन्दी में फैला हुआ है, उनमें प्रदीप का अत्यन्त उज्ज्वल और स्निग्ध है। ....मैं काव्य के जिन गुणों के लिए विरोधियों से वर्षों से विवाद करता रहा हूँ, "प्रदीप" ने अपनी रचना कुशलता और आवृत्ति से क्षणमात्र में उस धारा की पुष्टि कर दिखाई है।"

प्रदीप ने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी कदम रखा। १९४९ में कुछ लोगों के साथ मिलकर उन्होंने लोकमान्य प्रोडक्शन्स नाम से एक कम्पनी खोली इस कम्पनी ने एक फिल्म बनाई "गर्ल्स स्कूल"। फिल्म तो पिट गई, लेकिन गीत खूब चले। तब प्रदीप ने निर्णय किया कि वे फिल्म नहीं बनायेंगे बल्कि गीत लेखन का कार्य ही जारी रखेंगे।

कवि "प्रदीप" को इससे पूर्व निम्न सम्मान प्राप्त हुए हैं–

संगीत नाटक अकादमी– सन् १९६१, फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन एवार्ड सन् १९६२, महान कलाकार पुरस्कार– १९७१, "राष्ट्र कवि" सम्मान– १९९५, मध्य प्रदेश सरकार का विशेष पुरस्कार– १९९५, राजीव गांधी पुरस्कार– १९९५, सुरसागर पुरस्कार– १९९६, राष्ट्रीय एकता पुरस्कार– १९९६, सन्त ज्ञानेश्वर पुरस्कार– १९९७ एवं परिवार पुरस्कार– १९९७।

अब तक लगभग १५०० गीतों की रचना करने वाली कवि "प्रदीप" की लेखनी ८३ वर्ष की आयु में भी सक्रिय है।

❒

अंग्रेजी को मातृभाषा मानने वाले सिर्फ १.७८ लाख

नब्बे करोड़ से अधिक आबादी वाले देश भारत में अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानने वाले लोग सिर्फ १.७८ लाख हैं, यहीं नहीं १९८१ से १९९१ तक के दस वर्ष में कुल आबादी भले ही तेजी से बढ़ी हो मगर अंग्रेजी को मातृभाषा मानने वाले लोगों की आबादी घटी है।

भारत के जनगणना आयुक्त ने १९९१ की जनगणना के अनुसार हाल ही में मातृभाषा रिपोर्ट जारी की है। रिपोर्ट के अनुसार १९८१ में अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानने वाले लोग २,०२,४४० थे। १९९१ में घटकर १,७८,५९८ रह गये। जबकि १९९१ में ६,१०५ लोगों ने संस्कृत को अपनी मातृभाषा बताया था तो १९९१ में यह संख्या बढ़कर ४९,७३६ हो गई। इस प्रकार दस वर्षों में संस्कृत को मातृभाषा बताने वालों की संख्या ७१४.५४ प्रतिशत बढ़ी है।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल : एक और मोर्चे पर

- डी० जी० महापात्र
(जन-सम्पर्क अधिकारी, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल)

लगभग ५ वर्ष पूर्व २७ नवम्बर, १९९३ को देश के सर्वाधिक पुराने अर्द्धसैनिक पुलिस बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ। इस दिन केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल ने उड़ीसा में संवर्द्धन और संरक्षण के लिए बरबरा वन क्षेत्र को अंगीकृत किया। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल द्वारा अंगीकृत यह वन क्षेत्र बालू गाँव से ३५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जो १९वीं शताब्दी में बनाये गये सर्वाधिक पुराने वन विभागों में से एक पुरी वन विभाग के अन्तर्गत आता है। बरबरा आरक्षित वन क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत ५ आरक्षित वन खण्ड तथा १० संरक्षित वन खण्ड आते हैं तथा इसका क्षेत्रफल कुल २३४३६ हेक्टेयर है। अंगीकार करने के बाद से केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की एक कम्पनी अपने वाहनों, संचार साधनों तथा अन्य उपकरणों के साथ इस वन में तैनात है और पूरी मुस्तैदी के साथ इसकी सुरक्षा में लगी है।

देश के अन्य वन्य क्षेत्रों की ही तरह यह वन क्षेत्र भी अवैध कटाई तथा शिकार के कारण विनाश के कगार पर पहुँच चुका था। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल जैसी पुलिस फोर्स के लिए इस इलाके को, यहाँ के निवासियों को, पशु-पक्षियों को समझना एक चुनौती है। इस वन क्षेत्र ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को यह मौका दिया है कि वह साबित कर सके कि वह न केवल मानव जगत के प्रति सहृदय है बल्कि प्रकृति के अन्य स्वरूपों के प्रति भी उतना ही संवेदनशील है।

बरबरा वन क्षेत्र पहाड़ियों, घाटियों और तावा और अशोक के नाम से जाने वाले दो नालों से युक्त एक दुर्गम किन्तु मनमोहक वन क्षेत्र है। इस वन क्षेत्र में जहाँ एक ओर टीक के जवान वृक्ष दिखाई देते हैं वहीं साल, आसन, अर्जुन, शीशम, बहादा जैसे पुराने वृक्षों के अलावा कई प्रकार की बहुमूल्य जड़ी-बूटियों की भी भरमार है। साथ ही यह जंगल चीतों, तेंदुओं, भालुओं, नीलगायों, हाथियों, साँभर तथा हरिणों की शरणस्थली भी है।

बरबरा-जन-क्षेत्र के निकट ही एक खूबसूरत झील भी स्थित है, तथा इस में वन-विभाग के क्षेत्र विश्राम-गृह भी हैं। इस वन क्षेत्र के आसपास तथा वन के भीतर भी कई छोटी-छोटी बस्तियाँ तथा गाँव स्थित हैं। पूरे जंगल में अलग-अलग दिशा में जाने वाली कच्ची-पक्की सड़कों का जाल बिछा है। यह सम्पूर्ण इलाका अपने आप में अद्भुत है। बरबरा से ३५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है प्रसिद्ध चिल्का झील, भारतीय नौ सेना का नाविक प्रशिक्षण आई०एन०एस० चिल्का भी बालू गाँव के नजदीक ही स्थित है।

पिछले ३५ सालों में अपने नजदीक, भुवनेश्वर जैसे शहरों के विकास के कारण यह वन क्षेत्र भारी दबाव में है। इमारती तथा ईंधन के लिए बढ़ती लकड़ी की माँग के कारण इस क्षेत्र के बेरोजगार युवकों के लिए इस वन क्षेत्र से टीक व साल की लकड़ी को चोरी-छिपे काटकर भुवनेश्वर में बेच आना काफी सरल था। राज्य का वन विभाग पूरी सतर्कता के बावजूद इन पर रोक नहीं लगा पा रहा था, धीरे-धीरे इस वन क्षेत्र में घातक हथियारों के साथ तस्करों की घुसपैठ भी शुरू हो गयी। वन अधिकारियों के साथ उनकी मुठभेड़ होना एक आम बात हो गयी। परिणामस्वरूप जहाँ बरबरा वन क्षेत्र में अवैध कटाई दिनों-दिन बढ़ रही थी, वहीं जानवरों का शिकार भी जोरों पर था।

लेकिन केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की तैनाती के साथ ही इलाके में इन गतिविधियों पर तेजी से अंकुश लगा। तैनाती के बाद केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल ने वन-क्षेत्र के संवेदनशील इलाकों धनौली, साँखजोड़ी, महुलिया, वैसीगाँठ तथा बुगड़ा में अपनी एक-एक सेक्शन तैनात कर दी। इनमें से प्रत्येक टुकड़ी आठ हफ्ते तक बरबरा में तैनात रहती है, जिसमें से एक महीने उसे जंगल के भीतर रहना पड़ता है। १९९३ से ४१, ६४ तथा ३९ बटालियन की कम्पनियाँ इस इलाके में तैनात रह चुकी हैं। इसके अलावा ग्रुप केन्द्र भुवनेश्वर की भी एक अस्थायी कम्पनी ३ महीने के लिए यहाँ तैनात रही थी।

अपने दृढ़ अनुशासन तथा उच्च कोटि की कर्तव्य–परायणता के कारण केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की उपस्थिति मात्र ने इस इलाके में अपना प्रभाव दिखाया है। बल के कार्मिकों ने वन–विभाग के कर्मचारियों के साथ मिलकर न केवल वन–सम्पदा की तस्करी पर रोक लगायी है, अपितु वन–विभाग के अनुसार तस्करों से ६ करोड़ रुपये मूल्य की अवैध सम्पदा भी बरामद करने में वे सफल रहे हैं तथा लगभग ६०० तस्करों को भी गिरफ्तार किया है।

चूँकि यह क्षेत्र बुरी तरह से मलेरिया की चपेट में रहता है, अतः बल के जवान न केवल यहाँ के नागरिकों के बीच मलेरिया से सम्बन्धित जागरूकता अभियान चलाते रहते हैं, अपितु उन्हें चिकित्सकीय सुविधा भी उपलब्ध कराते हैं केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के चिकित्सक अक्सर इलाके का दौरा करते रहते हैं। परिणामस्वरूप जहाँ पहले ये वनवासी लोग तस्करों के शोषण के शिकार थे, वहीं अब ये बल के कार्मिकों के सहयोग से अपने हाथ की बनी वस्तुएँ उचित मूल्य पर बेंचकर अपनी जीविका कमा रहे हैं।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल यहाँ न केवल अवैध तस्करों तथा शिकार को रोकने में सफल रहा है, अपितु इस वन–क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त प्रयास कर जहाँ नये पौधे लगाये हैं, वहीं कीटनाशक आदि दवाओं के छिड़काव से बीमार पौधों को मरने से भी बचाया है। उसने बीज प्राप्त करने, उनके रख–रखाव, क्यारियाँ तैयार करने, पौधशाला तैयार करने बेकार और सूख गये पौधों को बदलने और इलाके के खनन वाले क्षेत्रों में वन विभाग को पौधे लगाने में सहायता दी है।

बरबरा वन क्षेत्र में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की भूमिका का महत्व पुरी के जिला वन अधिकारी श्री एस० सी० स्वेन के इन शब्दों से समझा जा सकता है– "जिस दिन केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के जवान यहाँ से हटा दिये जायेंगे, बरबरा वन के बहुमूल्य वृक्ष भी उसी दिन गायब होने शुरू हो जायेंगे।" श्री स्वेन की यह टिप्पणी इस बात पर की गई प्रतिक्रिया थी कि कुछ निहित स्वार्थी तत्त्व चाहते हैं कि बरबरा से केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को हटा दिया जाए। कलकत्ता स्थित प्रकृति वन तथा वन्य जीवन के संरक्षण में लगी एक गैर–सरकारी संस्था ने अपने एक पत्र के जरिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल द्वारा बरबरा वन क्षेत्र में किये जा रहे कार्यों के प्रति उसे हार्दिक धन्यवाद देते हुए कहा है कि उनके इस क्षेत्र को अंगीकृत करने के बाद से यहाँ के वृक्षों, वन्यजीवन और स्थानीय आबादी का हर दृष्टि से विकास हुआ है।

एक अनुशासित बल के प्रभावशाली कार्यों की सर्वत्र सराहना हुई है। स्थानीय जनजातीय आबादी खुश है कि वे अवैध तस्करों से मुक्त होकर अपने ही बलबूते पर जीवन यापन कर रहे हैं। वन अधिकारी सुरक्षित और संरक्षित वन–क्षेत्र पाकर खुश हैं और बल के जवानों को प्रकृति व प्रकृति के प्राणियों की मदद करने की खुशी व आत्मसंतोष है। ❒

–सौजन्य से पत्र–सूचना–कार्यालय भारत सरकार

हिन्दी कितनी प्यारी है

– डॉ० बलराम मिश्र

सशक्त भारत उठे, चल पड़े,
पुनः विश्व गुरु बन जायेगा;
जगती की समस्त भाषाओं में
फिर वह अमृत मनपायेगा।

भाषाओं की जननी संस्कृत कभी 'देववाणी' कहलायी,
आज बन रही जनवाणी है जन–जन की किस्मत मुस्कायी।
जनवाणी की सीख बढ़ी तो विश्व–वंद्य होगी ही हिन्दी,
जगती की सब भाषाओं की योजक सूत्र बनेगी हिन्दी।

जन–जन से सम्पर्क बनाती,
स्नेह तथा सद्भाव बढ़ाती,
विजय–भाव की अलख जगाती,
स्वर्ग–लोक धरती पर लाती,
वीर–व्रती, बलशाली, सक्षम–
परम्परा के लोग बनाती,
द्वेष भगाती, ऐक्य बढ़ाती,

"दीर्घदास्य के दुष्प्रभाव" को संस्कारित कर, तपोपूत कर,
भारत माता को जग–जननी का
पुनः पूज्य स्थान दिलाती अपनी हिन्दी
देख सभी फिर चकित हो उठें, "यह भाषा क्या न्यारी है,
अखिल विश्व परिवार बनाती, हिन्दी कितनी प्यारी है।।"

– २७, देवलोक कालोनी, सन्त हिरदारामनगर,
(बैरागढ़) भोपाल–४६२०३० (म०प्र०)

बालवाटिका

भइया की चिट्ठी

प्यारे भइया, बहिनो,

जय श्री राम !

पिछले अंकों से आप में से जो लेखक अथवा कवि है उनका परिचय सभी भैया/बहिनों को हो इसलिए 'नवोदित स्वर' स्तम्भ से उनका परिचय किया जा रहा है। २० वर्ष की आयु तक के लेखक भैया/बहिन अपना परिचय व अपनी रचना (कविता/कहानी) अपने चित्र सहित 'राष्ट्रधर्म' को भेज सकते हैं।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है इसलिए हम सब हिन्दी में ही वार्ता, पत्र–व्यवहार करें आपसी बातचीत में अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग न करें। अंकों में भी देवनागरी अंकों को ही प्रयोग में लाएँ। यदि हमारे घर में, पडोस में या अपने या अपने किसी परिचित के प्रतिष्ठान में नाम पट्टिका या विज्ञापन पट्ट अंग्रेजी में है तो उसे हिन्दी में कराने का अनुरोध करें। अच्छा होगा इसका प्रारम्भ अपने ही घर से किया जाये। हमारा आग्रह एवं निवेदन निश्चय ही प्रभावी होगा और हम निर्बल होती राष्ट्रभाषा को सबल बनाने में सहायक होंगे। हमारे घरों में किसी भी प्रकार के निमन्त्रण पत्र हिन्दी में ही छपें इसका आग्रह घर में माता पिता से करें। मित्रों से भी यही आग्रह हो और यदि अंग्रेजी में छपा कोई निमन्त्रण आये तो उसमें न जाने का संकल्प लें। हमारा यह संकल्प हमारे मित्रों, परिचितों को भी हिन्दी का सम्मान करने की प्रेरणा देगा। और अन्त में–

हिन्दी बने विश्व की भाषा,
यह संकल्प हमारा हो।
जय हिन्दी जय देवनागरी,
यही हमारा नारा हो।।

आपका
भइया

शिक्षक दिवस (५ सितम्बर) पर विशेष–

शिक्षक

माताएँ देतीं नवजीवन,
पिता सुरक्षा करते हैं।
लेकिन सच्ची मानवता,
शिक्षक जीवन में भरते हैं।।

सत्य न्याय के पथ पर चलना,
शिक्षक हमें बताते हैं।
जीवन संघर्षों से लड़ना,
शिक्षक हमें सिखाते हैं।।

ज्ञान–दीप की ज्योति जलाकर,
मन आलोकित करते हैं।
विद्या का धन देकर शिक्षक,
जीवन सुख से भरते हैं।।

शिक्षक ईश्वर से बढ़कर हैं,
यह कबीर बतलाते हैं।
कारण शिक्षक शिष्यगणों को
ईश्वर तक पहुँचाते हैं।।

जीवन में कुछ पाना है तो,
शिक्षक का सम्मान करो।
शीश झुकाकर श्रद्धा से तुम,
प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करो।।

– कु० अंशु शुक्ला

– ३, गोबिन्द गंज,
दतिया (म०प्र०) ४७५६६१

सच्ची पूजा

– इन्दरमन "साहू"

संतू की उम्र थी ७ वर्ष। वह बड़ा होनहार और तेज था। दूसरी कक्षा में पढ़ता था। घर में माता–पिता के सिवाय एक छोटी बहन भी थी। पिता मेहनत मजदूरी करते और परिवार का किसी तरह गुजर–बसर हो रहा था।

एक दिन सन्तू के पिता को लकवा मार गया। वह चल फिर नहीं सकता था। घर में रोजी–रोटी की समस्या खड़ी हो गई। सन्तू की माँ लोगों के घरों में काम करने लगी। फिर भी दो वक्त की रोटी के लाले पड़ जाते।

सन्तू का स्कूल छूट गया।

उसके गाँव सूरजपूर में एक भव्य शिवाला था। दूर–दूर से लोग दर्शन करने आते थे और अपने कष्टों से मुक्ति पाते। सन्तू ने भी भगवान् शिव की उदारता के कई किस्से सुन रखे थे। एक दिन वह शिवाला पहुँचा। भक्तों की भीड़ लगी थी। सभी के हाथों में फूल, अगरबत्ती, नारियल थे। अपने को खाली हाथ पाकर सन्तू संकोच से जमीन में गड़ गया। सच ही तो था, आखिर उतने बड़े भगवान् के सामने खाली हाथ कैसे जाया जा सकता था। आसपास फूल, अगरबत्ती और नारियल बिक रहे थे। लेकिन सन्तू के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी।

सन्तू उल्टे पाँव लौट चला। वह सीधे तालाब पर पहुँचा। तालाब में रंग–बिरंगे कमल के फूल अटे पड़े थे। नेकर और बनियान उतार कर वह पानी में कूद पड़ा।

थोड़ी ही देर में उसने बहुत से कमल–फूल तोड़ लिये। दोनों बाहों में फूलों को समेटकर वह पुनः शिवाला पहुँचा। एक युवक ने पूछा; "एक फूल कितने का है ?"

"ये बिकाऊ नहीं है। इन्हें भगवान् शिव को भेंट करना चाहता हूँ," सन्तू ने बताया।

"इतने फूलों को! भगवान् को तो सिर्फ एक ही फूल पर्याप्त है। फिर पुजारी इतने फूलों को चढ़ाने भी नहीं देंगे। लो, एक रुपया लो और एक फूल दे दो", युवक सन्तू को मनाने लगा।

सन्तू ने उसे एक फूल दे दिया। उसने फूलों को गिना, एक, दो, तीन... तीस फूल यानि पूरे तीस रुपए! फूल बेंचने के लिए सन्तू एक ओर खड़ा हो गया।

बहुत देर तक किसी ने उसका फूल नहीं खरीदा। सन्तू झल्ला गया, "अजीब लोग हैं। जब बेंचना नहीं चाहता था तब गिड़गिड़ाने लगे थे और अब बेंचना चाहता हूँ तब कोई पूछ नहीं रहा।" उसने जोर–जोर से चिल्लाना शुरू किया। "फूल ले लो, फूल कमल के ताजे फूल। एक रुपये में एक फूल।"

लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ और सन्तू के सारे फूल बिक गये। उसने मन ही मन भगवान् का आभार माना, सचमुच, भगवान् शिव बड़े उदार हैं। शिवाला के पास पहुँचते ही उसकी समस्या का समाधान हो गया था।

उसने खाने–पीने का सामान खरीदा और अपनी बहिन मुनियाँ के लिए एक गुब्बारा ले लिया। खुशी-खुशी वह घर पहुँचा। खाने–पीने का सामान माँ को देकर वह पिता की सेवा–शुश्रूषा में जुट गया। गुब्बारा पाकर मुनियाँ खुशी से किलकारी मारने लगी।

उस दिन से सन्तू की यह सब दिनचर्या सी बन गई। बड़े सबेरे वह सोकर उठता और आँखें मलते हुए तालाब पहुँचता। बहुत से कमल फूल तोड़ता और बेंचने के लिए शिवाला पहुँच जाता। माँ के कामों में हाथ बँटाता और मुनिया को खिलाता। शेष समय उसका पिता की सेवा–टहल में बीतता। अब तो उसने बीमार पिता की दवाइयों के लिए पैसे भी इकट्ठे कर लिए थे। उसका पिता प्रसन्न तो रहने लगा था किन्तु चिन्ता के कारण उनका स्वास्थ्य गिरता जा

रहा था। बरसात का मौसम था, एक रात खूब पानी बरसा। सबेरे आसमान साफ हो गया। सन्तू रोज की तरह तालाब पहुँचा। तालाब पानी से लबालब भर गया था। किनारे पर छोटा सा शिवाला था, जो तालाब के मध्य में चला गया था। पुरइन पत्ते तहस–नहस हो गये थे। कमल के फूलों का कहीं अता–पता नहीं था।

पहले की तरह लोग नहा–धो रहे थे।

सन्तू ने कपड़े उतारे और अनायास पानी में कूद गया। कमल के डण्ठलों के कारण उसे तैरने में बड़ी परेशाली हो रही थी दूर एक फूल दिखा। डण्ठलों को हटाते हुए वह आगे बढ़ा। उस दिन बड़े परिश्रम के बाद केवल पाँच फूल हाथ आये। फूलों को समेटकर वह किनारे की ओर लौटने लगा।

तैरते–तैरते सन्तू ने देखा, शिवाला का दरवाजा खुला पड़ा था और अन्दर सन्नाटा पसरा था। पहले तो आरती–शंख और घण्टी की आवाजें गूँजती थीं, धूप, अगरबत्ती की सुगन्ध फैली रहती थी। सन्तू को यह अच्छा न लगा और वह मन्दिर की ओर बढ़ गया।

सबसे पहले उसने मन्दिर की सफाई की, फिर शिवलिंग के ऊपर पानी टपकाने वाले मटके में पानी भर दिया। हाथ जोड़कर वह कहने लगा, "प्रभु ! धूप–दीप की व्यवस्था तो नहीं हो सकती।" और उछलकर घण्टी पर हाथ मार दिया। घण्टी टनटना उठी।

सन्तू को लगने लगा कि कुछ कमी रह गई है। उसने शिवलिंग के ऊपर एक कमल रख दिया। श्याम वर्ण प्रतिमा कमल से अत्यन्त मनोहारी लगने लगी। सन्तू ने बारी–बारी से सारे फूलों को शिवलिंग पर चढ़ा दिया। हाथ जोड़ प्रणाम कर वह जाने लगा।

तभी किसी ने उसे रोका, "रुको, वत्स !"

सन्तू ने पीछे मुड़कर देखा, भगवान् शिव पंचमुखी रूप में सामने खड़े थे। राख पुती काली देह, कमर पर लिपटी बाघ की खाल, गले में काला नाग, बिखरी हुई जटाएँ और पाँच सिर। सन्तू थरथर काँपने लगा।

"डरो मत, वत्स ! मैं तुम्हारी सेवाभक्ति से प्रसन्न हूँ।"

सन्तू ने देखा, उसके पाँचों फूल भगवान् शिव के सिरों पर एक–एक कर रखे हुए थे। उसे थोड़ी हिम्मत हुई। "लेकिन मैंने तो कभी भी आपकी विधिवत् और नियमित पूजा अर्चना नहीं की।"

"अपने पिता की सेवा तथा अपने परिचार के लिए जो तुम नियमित करते हो, वह मेरी ही सच्ची पूजा है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, कुछ माँग लो।"

"प्रभु, आज मैं खाली हाथ घर जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि मेरे पिता मुझे डाँटें नहीं," सन्तू ने निवेदन किया।

वतन न लुटने दीजिए

– प्रभूदयाल स्वर्णकार 'प्रभु'

भारत माँ के लाल सब, बनो वीर रणधीर।
भारत माँ घायल पड़ी, हर लो इसकी पीर।।
मातृभूमि के आप पर, लाख चढ़े एहसान।
करो समर्पित देश पर, हँसते–हँसते प्राण।।
स्वाभिमान मन में रखो, नहीं झुकाओ भाल।
देश द्रोहियों के लिए, बन जाओ तुम काल।।
दुश्मन के आगे कभी, मत डालो हथियार।
चाहे हँसकर काल को, कर लेना स्वीकार।।
मिला दीजिए खाक में, दुश्मन के अरमान।
मिटा दीजिए सदा को, उसका नाम निशान।।
मत गलने दो हिन्द में, शैतानों की दाल।
कर दो चकनाचूर तुम, उनकी सारी चाल।।
करो सुरक्षा देश की, खूब बढ़ाओ मान।
मातृभूमि के हित करो, अर्पित तन, मन प्राण।।
रहा हमेशा हिन्द का, दुश्मन पाकिस्तान।
ऐसे घातक देश का, रहे न नाम नाम–निशान।।
वीर जवानों देश के, लड़िये सीना तान।
मुड़कर कभी न देखिए, चाहे निकले प्रान।।

ग्राम व पोस्ट–कैरुआ, तहसील–भितरवार,
जिला–ग्वालियर (म०प्र०) ४७५२२०

"तथास्तु !" कहकर भगवान् शिव अन्तर्द्धान हो गये।

सहमा–सहमा सन्तू घर पहुँचा। घर में कोई सेठ आये हुए थे। पिताजी खाट पर बैठे थे। उन्हें भले चंगे देखकर सन्तू को सुखद आश्चर्य हुआ। वह उनसे लिपट गया।

सेठ कह रहे थे, "सन्तू बड़ी पवित्रात्मा है। जब से मैं इसके फूलों को भगवान् शिव को अर्पण करने लगा हूँ, तब से मेरा व्यापार बहुत फल–फूल रहा है। सन्तू को आज शिवाला में न पाकर यहाँ आ गया।"

पिताजी सन्तू को वात्सल्य भरी दृष्टि से देखने लगे।

"इस आयु में सन्तू को फूल बेंचता देखकर मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। इस उम्र में इसकी शिक्षा–दीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। ताकि इसकी प्रतिभा, निष्ठा तथा मेहनत का लाभ सभी को मिल सके। इसी विषय पर आपसे एक विनम्र निवेदन है," सेठजी ने हाथ जोड़ कर कहा। सन्तू के पिता कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

"सन्तू को आप मुझे सौंप दीजिए। मैं इसे अपने पुत्र की तरह रखूँगा और इसकी उत्तम शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध भी करूँगा।" हाथ जोड़कर सेठजी खड़े हो गये।

सन्तू के पिता को यह अच्छा न लगा। सेठजी के हाथों को पकड़ कर वह कहने लगे, "यह तो मेरा अहोभाग्य है, सेठजी ! जो आपने मेरे पुत्र की इतना चिन्ता की है। अब मैं स्वस्थ हो गया हूँ। परिवार के गुजारे लायक कमा ही लूँगा।"

"यदि आप सन्तू को योग्य समझते हैं, तो मैं इसे आपको सौंपता हूँ।"

किन्तु सन्तू ने सेठजी के साथ जाने के लिए मना कर दिया। वह माँ की ममता, पिता के स्नेह और बहन के साथ से वंचित नहीं होना चाहता था। सेठजी जैसे लज्जित हो गये, वह सोचने लगे, किसी भी बच्चे का सम्पूर्ण विकास उसके घर–परिवार के बीच ही सम्भव है। घर–परिवार भी एक अनिवार्य पाठशाला है।"

गाय

– रामकुमार गुप्त

भारतीयता की चिर काल से प्रतीक रही,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।
लौकिक समृद्धि, सिद्धि की प्रदायिनी प्रसिद्ध,
आश्रित सदैव रहा कृषि व्यवसाय है।
स्वयमेव तृण, शाक से है भरती उदर,
हमें सुधा दुग्ध पिला पालती ज्यों धाय है।
राजा–रंक द्वारा शुभ पूजनीय कामधेनु,
रहने न पाये दीन, हीन वह गाय है।

–मंगला देवी मन्दिर, गोला गोकर्णनाथ (खीरी)

सेठजी को लगा कि सन्तू के परिवार को आर्थिक आधार मिलने से उसकी पढ़ाई–लिखाई हो सकती है। इसलिए उन्होंने सन्तू के पिताजी से कहा, "ठीक है, सन्तू घर में रहकर लिख–पढ़ ले, किन्तु आप मेरे कारोबार में मुझे सहयोग प्रदान करें, तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

सेठजी के इस प्रस्ताव पर सन्तू के पिता को इन्कार करते नहीं बना।

भगवान् शिव की कृपा हुई थी। परिवार में खुशियाँ पुनः लौट आईं थीं। सन्तू को लगा कि भगवान् शिव से कुछ न माँगने पर भी उसे बहुत कुछ मिल गया है।" ❑

– ग्राम व पत्रालय–मर्रा, जिला–दुर्ग (म०प्र०)

वर्ग पहेली

१	२	को	म	छ	न्द	र	हाँ	स्वा	मी	२	३
म	त	२	ह	त्र	ख	२	५	मी	मो	चु	प
ला	ला	ला	ज	प	त	रा	य	वि	रं	९	र
पं	१	२	पा	ति	१	द	१	वे	ड	१	हो
का	म	ले	श	शि	९	या	८	का	म	भी	ख
को	म	ल	१	वा	१	न	२	न	पं	क	ज
१	८	९	७	जी	६	न्द	५	न्द	नौ	क	री
सु	भा	ष	च	न्द्र	बो	स	नो	१	८	६	३
आ	न	न्द	म	ठ	तो	र	१	९	गो	२	सो
अं	ब	१	८	६	५	स्व	लो	१	६	३	०
ह	ल	वा	हा	ज	ग	ती	त	ल	प	र	नं
पं	दी	न	द	या	ल	उ	पा	ध्या	य	गं	गा

उपर्युक्त वर्ग में ६ महापुरुषों के नाम तथा उनकी जन्म तिथि छिपी है। ऊपर से नीचे तथा बाएँ से दाएँ, अक्षरों व अंकों का संयोजन कर नाम व जन्म तिथि खोजी जा सकती है। नाम में एक अक्षर का प्रयोग एक से अधिक बार किया जा सकता है। पर जन्म तिथि में एक अंक का प्रयोग केवल एक बार ही किया जा सकेगा। अब आप अपने सामान्य ज्ञान की जाँच करें। (जन्म तिथि में तारीख, माह व वर्ष तीनों खोजने हैं।)

— प्रस्तुति : **वेदिका**

मैं हूँ पेड़

— **कृष्ण शलभ**

मैं हूँ पेड़ मुझे मत काटो,
काट रहे जो उनको डाँटो।
मैं हरियाली फल देता हूँ,
नहीं किसी से कुछ लेता हूँ।
हूँ चिड़ियों का रैन–बसेरा,
उनका सारा सुख दुख मेरा।
तुम भी पेड़ लगा सुख ले लो,
मेरे नीचे जी भर खेलो।
जो चाहो ले जो उपहार,
नींबू, इमली, आम, अनार।
मेरी लम्बी, बड़ी कहानी,
धरती जैसी पड़ी पुरानी।।

— संकल्प–५४२, नया आवास विकास, सहारनपुर

○ साहू

एवरेस्ट चोटी की ऊँचाई कितनी है?
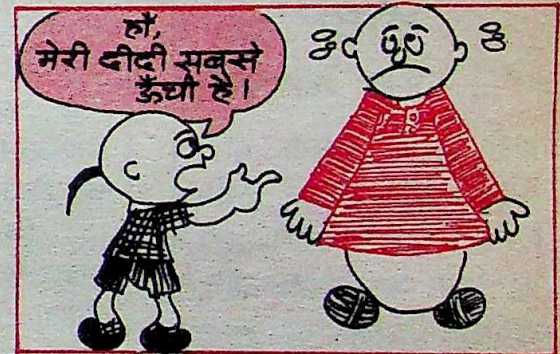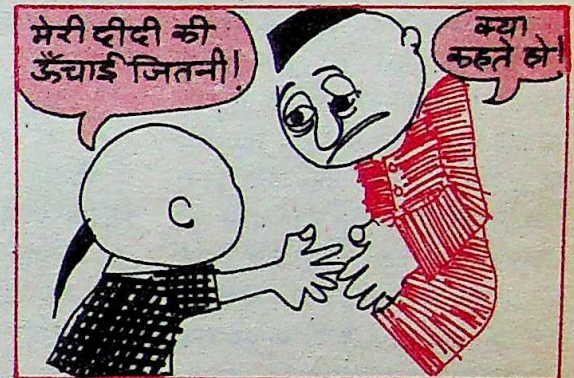
हँसना मत

एक छोटे बच्चे ने पिता को टाई बाँधे हुए देखकर पूछा— 'यह क्या है पिताजी?'

'इसे टाई कहते हैं बेटा!' पिता ने उत्तर दिया।

बच्चा बोला— 'समझ गया, माँ ने इसे आपकी नाक पोंछने के लिए बाँध दिया है।

— प्रस्तुति : **गौरव**

कर्त्तव्यनिष्ठा

– मृदुल पुरोहित

विश्व विख्यात पंडित गंगाधर शास्त्री का सुपुत्र ढुंढिराज विद्यार्थियों का बड़ा प्यारा साथी था। तनिक सी बीमारी में एक दिन वह चल बसा परन्तु पंडित जी ने सदा की भाँति उस दिन भी सभी शिष्यों को पढ़ाया। हाँ, उनके मुख पर गहरी उदासी और गंभीरता की रेखाएँ अवश्य थीं। पाठ समाप्त होने पर सहपाठियों ने आकर ढुंढिराज को आवाज लगाई, तो पंडित जी बोले, "वह... वह तो अब इतनी दूर चला गया है कि तुम्हारी आवाज वहाँ तक नहीं पहुँच सकती"। पहले विद्यार्थी समझ नहीं पाये; परन्तु जब असली बात का पता चला, तो उनमें से एक ने आश्चर्यचकित होकर विनयपूर्वक निवेदन किया, "गुरुजी! इस मर्मान्तक शोक में भी आपने आज का पाठ बन्द नहीं किया?"

"बन्द कैसे करता बेटा।" पंडित जी ठहर–ठहर कर पर स्थिर स्वर में समझाने लगे– "तुम बच्चे न जाने कितनी–कितनी दूर से आये हो। भला तुम्हारा एक दिन कैसे नष्ट कर देता? पुत्र–शोक मेरा निजी मामला है, परन्तु ज्ञान की इस आराधना का सम्बन्ध तो सबसे है। उसमें विघ्न डालकर तुम्हारा विकास रोक दूँ, क्या यह मेरे लिए उचित होगा?"

इस अविचल कर्त्तव्य–निष्ठा से सब स्तब्ध रह गये। साथ ही विद्यार्थियों में से शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसने अपनी धोती के छोर से आँखों को न पोंछा हो। □

– पेलेस रोड, बाँसवाड़ा
राजस्थान–३२७००१

चिड़िया!

– कमला मदन

तिनके चुन–चुन लाती है,
चिड़िया नीड़ बनाती है।
कभी बैठ जाती
मुँडेर पर
कभी चहकती है
धरती पर
सबका मन हर्षाती है।
कभी न संकट में
घबराओ
हर मुश्किल
आसान बनाओ
यह सन्देश सुनाती है।

– मदारबड़ मस्जिद के पास
तराना–४५६६६५
जिला–उज्जैन (म०प्र०)

चींटी

– भगवत प्रसाद पाण्डेय

नन्हीं नन्हीं काली चींटी,
सबको प्यारी लगती चींटी।
दिन भर चलती फिरती रहती,
नहीं कभी यह थकती चींटी।
आपस में मिलजुल कर रहती,
कभी नहीं यह लड़ती चींटी।
मीठी चीजों पर झट बढ़ती,
पल भर में चट करती चींटी।
चाहे दूर हो मंजिल कितनी,
गिरते उठते चढ़ती चींटी।
आ जाता यदि काम मेहनती,
मिलकर सब हल करती चींटी।

–पाटन (निकट पंचायतघर)
पत्रालय–लोहाघाट,
जिला–पिथौरागढ़ (उ०प्र०)

निःस्वार्थ सेवा

ऋषि मतंग के आश्रम में छात्रों को नित्य सरोवर में स्नान के लिए जाना पड़ता था। मार्ग कंकरीला, पथरीला एवं काँटों से भरा हुआ था। जिससे छात्रों के पैर छिलते एवं कभी–कभी लहूलुहान भी हो जाते।

किन्तु इधर दो दिनों से किसी भी छात्र को काँटे चुभने, पत्थरों की ठोकर खाने और कँटीली झाड़ियों से शरीर छिलने की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। छात्र आश्चर्य में थे कि जो रास्ता सदा कष्ट दिया करता था, वह अब इतना सरल सुखद कैसे हो गया। ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि कोई उस मार्ग को रोज बुहार जाता है।

छात्रों ने गुरुदेव से पूछा– "भगवन्! हमारा रास्ता रोज बुहार जाने वाला व्यक्ति कौन है? हम उसके दर्शन कर कृतज्ञता प्रकट करने के इच्छुक हैं।"

ऋषि मतंग ने उत्तर दिया "वत्स! जो व्यक्ति बिना प्रत्युपकार की आशा से निःस्वार्थ भाव से कार्य करता है, वह उस कार्य को सबके सामने नहीं करता। दिखाने के लिए तो ढोंगी ही ऐसा करते हैं। तुम उत्सुक हो तो बताये देता हूँ। वह भगवान् को प्रिय, जन्म–जन्मान्तरों से उनसे जुड़ी एक भील महिला है। नाम है शबरी।"

प्रस्तुति : भूमिका

देववाणी शिक्षण - १२

अब इस पाठ में 'यद' (जो) सर्वनाम के निम्नलिखित शब्द कण्ठ कीजिये–

'यद' = (जो)

विभक्ति			
प्रथमा	यः	=	जो
द्वितीया	यं	=	जिसको
तृतीया	येन	=	जिसने
चतुर्थी	यस्मै	=	जिसके
पंचमी	यस्मात्	=	जिससे
षष्ठी	यस्य	=	जिसका
सप्तमी	यस्मिन्	=	जिसमें

'यद' (जो) इस सर्वनाम के सातों विभक्तियों के पुल्लिग के एक वचन के रूप हैं।

अब इन शब्दों का उपयोग करके निम्नलिखित वाक्य बनाइये–

१. यः शूरः पुरुषः इदानीं मम नगरे अस्ति, स एव तत्र अद्य गच्छति। २. यं त्वं इदानीं तत्र पश्यसि स एव स भूपः। ३. येन तुभ्यं धनं दत्तं स एव वीरः अस्ति। ४. यस्मात् नगरात् इदानीं सह मनुष्यः आगतः स एव यज्ञेश्वर शर्मा इन्द्रप्रस्थ नगरस्य अस्ति। ५. यस्य पुरुषस्य त्वं पठसि स एव मम गृहे इदानीं अस्ति। ६. यस्मिन गृहे स नरः अस्ति तत् गृहं कुत्र अस्ति? ७. यस्मै तेन धनं दत्तं सः कृष्णः अस्ति।

आपको इन वाक्यों का अर्थ समझने में कठिनता हो तो नीचे दिया हुआ अर्थ क्रम से देखिये–

१. जो शूर मनुष्य अब मेरे नगर में है वही वहाँ आज जाता है। २. जिसको तू अब वहाँ देखता है, वही वह राजा है। ३. जिसने तुझे धन दिया, वही शूर है। ४. जिस नगर से अब वह मनुष्य आया है, वही यज्ञेश्वर शर्मा इन्द्रप्रस्थ नगर का है। ५. जिस पुरुष की पुस्तक तू पढ़ता है, वह मेरे घर में इस समय है। ६. जिस घर में वह मनुष्य है, वह घर कहाँ है? ७. जिसको उसने धन दिया वह कृष्ण है।

ऊपर संस्कृत और उन्हीं के हिन्दी वाक्य दिये हैं। अध्ययन करते समय हिन्दी वाक्य न देखते हुए आप स्वयं संस्कृत वाक्यों का हिन्दी में रूपान्तर करके उन्हें भी जाँच लीजिए और इसी तरह हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में रूपान्तर करके उन्हें भी जाँच लीजिए। इस पद्धति से आपका अध्ययन उत्तम होगा और संस्कृत शीघ्रता से सीख सकेंगे।

अब निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिए–

ह्यः	=	कल (बीता हुआ)
श्वः	=	कल (आने वाला)
वदिष्यति	=	(वह) बोलेगा
वदिष्यसि	=	(तू) बोलेगा
वदिष्यामि	=	(मैं) बोलूँगा
द्रक्ष्यति	=	(वह) देखेगा
द्रक्ष्यसि	=	(तू) देखेगा
द्रक्ष्यामि	=	(मैं) देखूँगा
खादिष्यति	=	(वह) खायेगा
खादिष्यसि	=	(तू) खायेगा
खादिष्यामि	=	(मैं) खाऊँगा
निरन्तरं	=	हमेशा, सदैव
परश्वः	=	परसो
गमिष्यति	=	(वह) जायेगा
गमिष्यसि	=	(तू) जायेगा
गमिष्यामि	=	(मैं) जाऊँगा
पक्ष्यति	=	(वह) पकायेगा
पक्ष्यसि	=	(तू) पकायेगा
पक्ष्यामि	=	(मैं) पकाऊँगा
करिष्यति	=	(वह) करेगा
करिष्यसि	=	(तू) करेगा
करिष्यामि	=	(मैं) करूँगा

इनका उपयोग करके अब वाक्य बना सकते हैं–

१. यदा त्वं तत्र गमिष्यसि तदा अहं त्वां द्रक्ष्यामि। २. यदा त्वं फलं खादिष्यसि, तदा अहं अपि फलं खदिष्यामि। ३. यदा रामः अन्नं पक्ष्यति, तदा त्वं अपि अन्नं खादिष्यसि। ४. अद्य अहं मम गृहं इदानीं गमिष्यामि, त्वं तत्र श्वः आगमिष्यसि किम्? ५. नहि, अहं तव गृहं परश्वः आगमिष्यामि। कः इदानीं तत्र गमिष्यति? ८. अहं अद्य अन्नं नैव पक्ष्यामि। ६. स कदा त्वया सह अत्र वदिष्यति?

ऊपर के संस्कृत वाक्यों के हिन्दी वाक्य देखिए–

१. जब तू वहाँ जाएगा, तब मैं तुझे देखूँगा।

२. जब तू फल खाएगा, तब मैं भी फल खाऊँगा।
३. जब राम अन्न पकायेगा, तब तू भी अन्न खायेगा।
४. जो तू वहाँ अलंकार करेगा तो वह अन्न खायेगा।
५. आज मैं अपने घर अभी जाऊँगा, तू वहाँ कल आयेगा ?
६. नहीं, मैं तेरे घर परसों आऊँगा।
७. कौन अब वहाँ जायेगा ?
८. मैं आज अन्न नहीं पकाऊँगा।
९. वह कब तुम्हारे साथ यहाँ बोलेगा ?

प्रयत्न

अब निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

१. आज्ञार्थ रूपों का उपयोग–

उदाहरणार्थ– लिख = **लिख**, दौड़ = **धाव**, बैठ = **उपविश**, पढ़ = **पठ**।

अब निम्न क्रियापदों के आज्ञार्थ रूप (द्वितीय पुरुष के एकवचन) लिखिए। **खाद्, वद्, स्था, पा (पिब्) पत्, नी, ब्रू, आगच्छ, प्राप्, भू।**

जैसे– खाद्, वद् ......

२. खाली जगह पूर्ण कीजिए–

(किसी भी योग्य शब्द का अथवा रूपों का उपयोग करके)

१. **अहं** .... (पठ्), २. **सीता** .... (धाव), ३. **त्वं** .... (उपविश), ४. **गोविन्दं** .... (लिख), ५. **फलं** .... **(पत्), अहं अत्र अधुना न** .... (आगम्), ७. **मया** .... **पुरुष (दृश्)** ? ८. **ऊषा** .... (गता), ९. **दुग्धस्य** .... (वर्णः) ? १०. **त्वं** .... **अधुना** .... **पठसि** ? ११. .... **त्वं** .... **तत्र तत्र** .... **धावामि**, १२. .... **ग्रहं तव** .... **समीपे** .... **अस्ति**।

३. निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में भाषान्तर कीजिए–

१. वह अब कहाँ है ? २. तू कौन सा अन्न खाता है ? ३. वह वहाँ हमेशा पढ़ता है। ४. उस नगर से यहाँ आ। ५. तू बहुत धन प्राप्त करेगा। ६. सुमित्रा वहाँ बिलकुल नहीं बैठेगी। ७. दाँतों का रंग कौन सा है ? ८. गंगा नदी बहुत पवित्र है। ९. जब तू संस्कृत सीखना चाहता है, तब यह पुस्तक अच्छी तरह से पढ़। १०. वह सुन्दर तालाब है।

प्रेरक प्रसंग– • प्रस्तुति–उत्पल कान्त

अमूल्य मिट्टी

एक बार यात्रा के समय तथागत (बुद्ध) को प्यास लगी। उन्होंने अपने परम प्रिय शिष्य आनन्द से कहा– "आनन्द ! प्यास लगी है। नदी से जल ले आओ।"

आनन्द जलपात्र लेकर तुरन्त ही नदी की ओर चल पड़ा। तभी कुछ बैलगाड़ियाँ नदी पार करने लगीं। नदी अधिक गहरी न थी। बैलगाड़ियाँ तो नदी पार कर गयीं, परन्तु पानी को गँदला कर गयीं। आनन्द बिना पानी लिए लौट आया। तथागत ने पूछा– "क्यों ? क्या हुआ ?" आनन्द ने उत्तर दिया– "भगवन् ! बैलगाड़ियों के पहिये मिट्टी से सने थे। नदी में पानी कम था, मिट्टी मिलने से वह गन्दा हो गया।" तथागत मुस्करा उठे, बोले– "मिट्टी से पानी दूषित नहीं होता। मिट्टी तो जल को शुद्ध करती है। अब फिर जाओ और पानी ले आओ।" आनन्द फिर नदी के पास पहुँचा, तो आश्चर्यचकित रह गया। तथागत की बात पूर्णतः सत्य निकली। पानी सचमुच स्वच्छ हो गया था। मिट्टी पानी के नीचे बैठ चुकी थी। आनन्द ने पात्र में जल भरा और तथागत के पास गये। तथागत ने जल पिया और पीने के पश्चात् कहा– "आनन्द ! वास्तव में मिट्टी अनजाने में ही हमें बहुत सी वस्तुओं की प्राप्ति कराती है। उसकी धैर्यशीलता, विनम्रता, परोपकारिता की कोई निश्चित सीमा नहीं है। वह सीमाओं को पार करते हुए मानव–मात्र के लिए ही नहीं; अपितु विश्व के सम्पूर्ण जीवधारियों के लिए अनेक वस्तुओं की प्राप्ति कराती है।" आनन्द समझ गया– सचमुच मिट्टी की महिमा अनुपम है, उसे एक सीमा के भीतर नहीं बाँधा जा सकता। ❒

– द्वारा श्री वीरेन्द्र कुमार, प्राचार्य, सरस्वती शिशु मन्दिर, बाढ़ बाजार (पटना)–८०३२१३

ओंकार-मान्धाता - एक सिद्ध-क्षेत्र

- ज्योति खरे

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग →

शस्य-श्यामला भारत-भूमि में भगवान् शंकर के बारह ज्योतिर्लिंग हैं। प्रत्येक ज्योतिर्लिंग की महिमा और उसका महात्म्य अपने आप में विशिष्ट है। इन्हीं ज्योतिर्लिंगों में भगवान् महादेव के ओंकारेश्वर में स्थित ज्योतिर्लिंग के प्राकट्य और उसकी महिमा का वर्णन निम्नांकित है-

एक समय मुनि-श्रेष्ठ नारद, विन्ध्य पर्वत पर आये थे। विन्ध्य ने पूजन के बाद अभिमानपूर्वक कहा "मैं सर्व सुविधायुक्त हूँ" उसकी ऐसी अभिमान-युक्त बातों को सुनकर नारद मुनि ने लम्बी साँस ली। यह देखकर विन्ध्य ने पूछा- "आपने मेरे यहाँ क्या कमी देखी ?"

नारद जी ने कहा, "तुम्हारे यहाँ सब कुछ है, फिर भी मेरु पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है, इसके शिखरों का भाग देवताओं के लोकों में भी पहुँचा हुआ है।" विन्ध्य पर्वत "मेरे जीवन को धिक्कार है" ऐसा सोचता हुआ मन ही मन संतप्त हो उठा। वांछित फल-प्राप्ति हेतु विन्ध्य ने भगवान् शंकर की आराधना करने का निश्चय किया। जहाँ साक्षात् ओंकारर्लिंग स्थित हैं, वहाँ जाकर विन्ध्य ने शिव की पार्थिव-मूर्त्ति बनायी और छह माह तक निरन्तर शिवजी की आराधना करता रहा। अपनी इस तपस्या के बीच वह स्थल से हिला तक नहीं। विन्ध्याचल की घोर-तपस्या से भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उसको दर्शन दिये। विन्ध्य की भक्ति पर प्रसन्न भगवान् बोले, "विन्ध्य तुम मनोवांछित वर माँगो, तुम्हारी तपस्या से मैं अति प्रसन्न हूँ।"

विन्ध्य बोला- "देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे अभीष्ट बुद्धि प्रदान कीजिए, जो मेरे कार्य को सिद्ध करने वाली हो।" भगवान् शिव ने उसे वह वरदान दे दिया और कहा "विन्ध्य ! तुम जैसा चाहो, वैसा करो !" इसी समय देवता तथा ऋषि वहाँ आये और शंकर जी की पूजा करके बोले, "प्रभो ! आप यहाँ स्थायी रूप से निवास करें, तो उत्तम होगा !"

देवताओं के अनुरोध पर शिवजी ने वैसा ही किया। वहाँ जो एक ही ओंकारर्लिंग था, वह दो स्वरूपों में विभक्त हो गया। प्रणव में जो सदाशिव थे, वे ओंकार नाम से विख्यात हुए और पार्थिव लिंग में जो शिव-ज्योति प्रतिष्ठित हुई, उसकी 'परमेश्वर', 'अमलेश्वर', 'ममलेश्वर' संज्ञा हुई। इस प्रकार 'ओंकार' और 'परमेश्वर' ये दोनों शिवलिंग भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन ज्योतिर्लिंगों का दर्शन-पूजन करता है, उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

ओंकारेश्वर मन्दिर से थोड़ा पहले नर्मदा नदी दो धाराओं में प्रवाहित होती हुई कुछ दूर जाकर एक हो जाती है। इन दोनों धाराओं में से एक को 'नर्मदा' और दूसरी को 'कावेरी' कहते हैं। इस प्रकार इन दोनों धाराओं के मध्य में एक शैलद्वीप बन गया है। इसी द्वीप पर महाराज मान्धाता ने शंकर जी की आराधना की थी, अतः उन्हीं के नाम से इस शैलद्वीप का नाम 'मान्धाता' पड़ा, जिसका क्षेत्रफल लगभग डेढ़ वर्ग कि०मी० का है। यहाँ की बस्ती तीन भागों में विभक्त है- पहले भाग को 'ब्रह्मपुरी' कहते हैं, जहाँ ब्रह्मेश्वर मन्दिर, परमेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं अन्य कई मन्दिर हैं, दूसरे भाग को 'विष्णुपुरी' कहते हैं। जहाँ विष्णु मन्दिर, बाजार तथा बस स्टैण्ड हैं, मान्धाता द्वीप को 'शिवपुरी' कहते हैं, जहाँ ओंकारेश्वर आदि हैं। सरकारी कागजों में इन
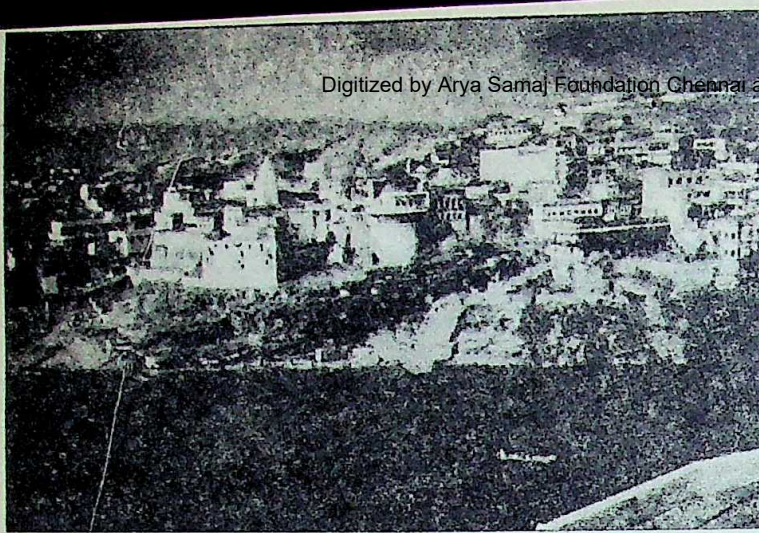
नर्मदा तट पर स्थित ओंकारेश्वर तीर्थ

तीनों पुरियों का नाम "मान्धाता" है।

ओंकारेश्वर मन्दिर जाते समय सर्वप्रथम पंचमुखी गणेश मन्दिर आता है। कहा जाता है कि राजा मान्धाता के पिता 'युवनाश्व' ने यज्ञ के समय जब गणेश जी का आह्वान किया था, तब इसी स्थान पर ऋद्धि-सिद्धि प्रदाता भगवान् गणपति ने पंचमुखी स्वरूप में राजा मान्धाता को दर्शन दिये थे। इस मूर्त्ति के चार मुख अग्रभाग पर तथा शेष एक मुख पृष्ठ-भाग पर द्रष्टव्य हैं। मन्दिर में ही वेदमाता गायत्री की संगमरमर की निर्मित सुंदर मूर्त्ति है, जिसके पाँच मुख हैं। ओंकारेश्वर मन्दिर के बाहर पूर्वाभिमुख विशाल नन्दी प्रतिमा है। यह नन्दी गण देवी अहल्याबाई होल्कर ने बनवाकर प्रतिस्थापित किया था। मन्दिर के बगल में ही श्री हनुमान् प्रतिमा है।

ओंकारेश्वर मन्दिर में प्रवेश करते ही प्राचीन भारतीय कलाकारों के हाथों का जादू देखने को मिलता है। मन्दिर के सभी स्तम्भों पर उत्कृष्ट कारीगरी के नमूने दिखाई पड़ते हैं। मन्दिर में अनेक छोटी-बड़ी घण्टियाँ टँगी हैं। आधुनिक काल के झूमरों के समान ही प्राचीनकला का पीतल निर्मित झूमर भी देखने योग्य है। मन्दिर के एक प्रकोष्ठ में शुकदेव मुनि की प्राचीन प्रतिमा बनी है। प्रकोष्ठ के सामने बने ओटले पर बैठकर राजा मान्धाता ने तपस्या की थी।

मन्दिर के आगे बढ़ने पर प्रणवलिंग के दर्शन होते हैं। बताया जाता है कि लिंग के नीचे हमेशा बने रहने वाला जल नर्मदा का जल है। इस जल को चरणामृत के रूप में ग्रहण किया जाता है। सामने ही जगमगाती पार्वती जी की मनोहारी पाषाण प्रतिमा है। प्रतिमा के आसपास चाँदी के पत्तरों से सज्जा की गयी है। मन्दिर में घृत का अखण्ड-दीप जलता रहता है। यहाँ अभिषेक करने का बहुत महत्त्व है। यह मन्दिर पाँच मंजिला है। मन्दिर की द्वितीय मंजिल पर भगवान् महाकालेश्वर के दर्शन किये जा सकते हैं। जैसे कि महाकालेश्वर मन्दिर की द्वितीय मंजिल पर भगवान् ओंकारेश्वर की मूर्त्ति स्थापित है, तृतीय मंजिल पर सिंहनाथ, चतुर्थ पर केदारेश्वर और पंचम मंजिल पर गुप्तेश्वर महादेव के मन्दिर हैं।

ओंकारेश्वर मन्दिर की परिक्रमा के समीप ही भगवान् द्वारका-धीश की भव्य प्रतिमा है, आठ फीट ऊँची यह प्रतिमा काले पाषाण से निर्मित है। प्रतिमा की ठोड़ी पर जड़ा हुआ 'हीरा' आकर्षण का केन्द्र है।

मन्दिर की परिक्रमा में रामेश्वर, जलेश्वर, विशालेश्वर व अंधकेश्वर, नवग्रहणेश्वर एवं अन्नपूर्णा की प्रतिमाएँ भी हैं तथा समीप ही सन्तोषी माता झूमकेश्वर महादेव का मन्दिर, रेवा मन्दिर है। रेवा मन्दिर में माता नर्मदा की संगमरमर निर्मित मनभावन प्रतिमा स्थित है। मन्दिर के बाहर की ओर अविमुक्तेश्वर, बटुकभैरव, मंगलेश्वरनाग, नाग चन्द्रेश्वर, दत्तात्रेय, काल-भैरव तथा घृष्णेश्वर के मन्दिर दर्शनीय है।

गौरी सोमनाथ मन्दिर मान्धाता शैलीद्वीप के सर्वोच्च शिखर पर है। नर्मदा-तट से ३५० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं, मन्दिर में मनुष्य की ऊँचाई से भी अधिक ऊँचा एक शिवलिंग है, जिसका व्यास लगभग ४ मीटर का है। इसी शिखर पर सिद्धनाथ ऋण-मुक्तेश्वर आदि कई दूसरे देव-मन्दिर हैं। सिद्धनाथ मन्दिर के पास ही विशाल वृक्ष के नीचे माता कुन्ती की प्राचीन प्रतिमा है। प्रतिमा वर्त्तमान में भग्नावस्था में है।आयोजना में भूगर्भ, अन्तराज एवं मल्लिकार्जुन रूप की विशाल प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। प्रतिमाएँ काफी ऊँचाई पर स्थित हैं। यह स्थान प्राचीन नगर का पूर्वी प्रवेश-द्वार है, जो कि बारहवीं शताब्दी का है। वनवास के काल में पाण्डव यहाँ आये थे। यहाँ किरातार्जुन और परशुराम के युद्ध की कथा भी प्रचलित है।

ओंकारेश्वर प्राचीनतम मन्दिरों में सिद्धनाथ बारहद्वारी (सिद्धेश्वर मन्दिर) की गणना की जाती है। यह मन्दिर आठ फीट ऊँचे चबूतरे पर निर्मित है। चबूतरे के चारों ओर विभिन्न मुद्राओं में हाथी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर

(माता कुन्ती की प्रतिमा)

के स्तम्भों व छत पर देवी–देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। मन्दिर के मूल स्वरूप में बारहद्वार होने से इस मन्दिर का नाम 'सिद्धनाथ बारहद्वारी' भी पड़ा। ओंकारेश्वर नगरी में ब्रह्मपुरी में परमेश्वर मन्दिर, जिसे अमलेश्वर अथवा ममलेश्वर मन्दिर भी कहते हैं, स्थित है। यह ज्योतिर्लिंग है। यह मन्दिर अति प्राचीन शिल्पकला से युक्त है। पुराण कथानुसार इस ज्योतिर्लिंग का दर्शन–पूजन करना अति आवश्यक है अन्यथा श्रद्धालु भक्त की ओंकारेश्वर की यात्रा पूर्ण नहीं होती और उसे यहाँ की यात्रा का कोई पुण्यफल नहीं मिलता। इसकी परिक्रमा में अन्य कई जगह मन्दिर हैं। इसी के निकट ब्रह्मेश्वर मन्दिर है, जिसमें ब्रह्मेश्वर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। ओंकारेश्वर में मार्कण्डेय आश्रम, विज्ञानशाला, विष्णु मन्दिर, कपिल धारा, पशुपतिनाथ मन्दिर, जैन मन्दिर, च्यवन ऋषि का आश्रम आदि दर्शनीय हैं।

पश्चिम रेलवे के खण्डवा–रतलाम–अजमेर रेलमार्ग पर खण्डवा से ६० कि० मी० दूर मोरटक्का ग्राम में ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है यहाँ से १२ कि०मी० की दूरी पर ही मान्धाता अर्थात् ओंकारेश्वर तीर्थ हैं। इन्दौर, उज्जैन, खण्डवा से बसों द्वारा सीधे भी ओंकारेश्वर पहुँचा जा सकता है, ओंकारेश्वर में ठहरने के लिए कई धर्मशालाएँ, आश्रम, होटल, लॉज उपलब्ध हैं। ❐

कण-कण चमन लिखो

❐ राज नारायण चौधरी

रुको नहीं लेखनी! बाँधकर सर पर कफन लिखो,
कुर्सी को तुम नहीं, देश को, जन को नमन लिखो।

नहीं झूठ के आगे झुकना धर्म तुम्हारा है,
जगमग जो चमके वह सच्चाई का रतन लिखो।

फौलादी धड़कन, सांसों में ले तूफान सदा,
राष्ट्र–अर्चना में पवित्रतम अपना हवन लिखो।

कभी किसी से दबकर नहीं रहेंगे दुनिया में,
राम, कृष्ण, नेता सुभाष का है यह वतन लिखो।

तुम हो देवी क्रान्ति–अग्नि नित सुलगाने वाली,
स्याही से ही नहीं खून से कण–कण चमन लिखो।

तुम स्वतंत्रता की सच्ची निःशंक पुजारिन हो,
अपनी यह धरती, अपना यह सारा गगन लिखो।

तुमको जो आँखें दिखलाये, बढ़े कुचलने को,
काल–ज्वाल में झोंक–झोंक कर उसका दहन लिखो।

–प्रोफेसर कॉलोनी, हाजीपुर (बिहार) ८४४१०१

डॉ. धर्मवीर भारती के नाम पर पुरस्कार : महाराष्ट्र सरकार को बधाई

हिन्दी के नामी साहित्यकार तथा धर्मयुग के वर्षों तक सम्पादक रहे डॉ. धर्मवीर भारती की स्मृति में महाराष्ट्र में पुरस्कार शुरू किया गया है।

महाराष्ट्र हिन्दी अकादमी हर वर्ष एक साहित्यकार को उसकी साहित्य सेवा के लिए पुरस्कृत करेगी। डॉ. भारती पुरस्कार ५१ हजार रुपयों का होगा। 'अंधा युग', 'गुनाहों के देवता' आदि कालजयी रचनाओं के लेखक डॉ. भारती का गत वर्ष निधन हो गया था। डॉ. भारती की 'मुनादी' नामक कविता को जब्त करने का साहस आपातकाल में श्रीमती गांधी भी नहीं कर सकी थीं।

अकादमी ने वर्षों पहले बाबूराव पराडकर हिन्दी पत्रकारिता जैसे अनेक पुरस्कार शुरू किए हैं। ❐

कलकत्ते के 'मतवाला' और 'रंगीला' साप्ताहिक

❐ वागीश

वह भी राष्ट्र–भाषा हिन्दी की पत्रकारिता का एक युग था, जब कलकत्ता जैसी बंगला–भाषा–भाषी नगरी से हिन्दी में 'मतवाला' और 'रंगीला' नाम के साप्ताहिक प्रकाशित होते थे और दोनों पत्रों के सम्पादक थे महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी। 'मतवाला' पत्र के बिल्कुल ऊपर बाईं ओर के बाक्स में एक शीर्षक रहता था– **'मेरा पिनल कोड'**। यहाँ 'मेरा' से मतलब था, 'मतवाला' पत्र से। यह क्या था, पिनल कोड! उसकी शब्दावली देखिए; लिखा रहता था–

मेरा पिनल कोड

'प्रति शनिवार को शनैश्चर की तलाश में मैं बाहर निकला करूँगा और चार पैसे नकद नारायण लेकर भरपायी भक्तों को दर्शन दिया करूँगा। जो लोग ४/– रुपये सालाना सलामी मेरे पण्डे के पास पेशगी जमा कर देंगे, उनके घर ठीक समय पर, बिना रोक–टोक, सीधे पहुँच जाऊँगा। बी०पी० से बुलाने पर मैं किसी के पास नहीं जाता।४/– रुपये में समस्त भारत की और १० शिलिंग में विदेशों की यात्रा करता हूँ।'

इस विज्ञापन में मैंने कोई शब्द बदला नहीं है। अक्षरशः मूल प्रति से ये उद्धृत किया गया है। इस कोष्ठक (बाक्स) की बगल में भी बीचोंबीच त्रिशूल–धारी शंकर भगवान् की ताण्डव–नृत्य करती हुई मुद्रा वाला चित्र छपा रहता था, जिसके पग तल में पत्र का नाम बड़े और काले अक्षरों में छपा रहता था– **मतवाला**। चित्र के दाएँ कोष्ठक में विज्ञापन छपा रहता था, जिसमें पता रहता था– "शंकर घोष लेन, कलकत्ता मैनेजर, 'मतवाला'। फिर पत्र के नाम के नीचे दो काव्य–पंक्तियाँ छपी रहती थीं–

अमिय–गरल, शशि सीकर,
रविकर, राग–विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका
प्यारा है यह 'मतवाला'।।

इसके नीचे छपा रहता था ब्रैकेट में (प्रति प्याला एक आना नकद)। दूसरे छोर पर ब्रैकेट में ही छपा रहता था– (वार्षिक बोतल चार रुपये पेशगी)। इसके नीचे दो रूलों के बीच में एक ओर छपता था– 'वर्ष १'– बीच में ये शब्द रहते थे– 'कलकत्ता, श्रावण शुक्ल ६, सं. १६८१, शनिवार' दूसरे छोर पर छपी रहती थी, (अंक) संख्या...।

इस उद्धृत अंक ('मतवाला') में प्रथम पृष्ठ पर ही शीर्षक, विज्ञापन आदि के नीचे दोनों छोरों पर स्वयं निरालाजी की लिखी दो कविताएँ छोटे अक्षरों में छपी हैं, जिनमें दोनों का ही शीर्षक है, 'बादल–राग'।

इसी प्रकार अन्य हिन्दी साप्ताहिक 'रंगीला' के मुख पृष्ठ पर पत्र के नाम के ठीक नीचे श्रीकृष्ण और राधाजी का संयुक्त चित्र छपता था, जिसमें श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए नृत्य-मुद्रा में दिखते हैं और राधा जी ढफ बजा रही हैं। इस चित्र के नीचे ये दो काव्य–पंक्तियाँ रहती थीं–

पुरुष–प्रकृति, तम–ज्योति
दिवस–निशि कल्प–तल्प पर।
एक 'रंगीला' रूप,
खिला सब विश्व चराचर।।

इसके नीचे छपता था– संपादक– पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

इसके नीचे एक कोने में मूल्य छपा रहता था– (प्रति फौवारा–) १ आना। दूसरे कोने में छपा रहता था– वार्षिक फौवारे ३) मूल्य कोष्ठक में ही रहता था।

सबसे नीचे एक कविता प्रकाशित है। (वर्ष १) कलकत्ता, ज्येष्ठ कृ. ६ संवत् १६८६ ता. ४ जून १६३२ (संख्या १ में कि–

गीत

(कविवर श्रीयुत बाबू जयशंकर 'प्रसाद')

इस गीत की प्रथम पंक्ति है– **'बीती विभावरी जाग री'।**

□

सूक्ष्मिका

वे
अपना अधिक समय
पूजा–पाठ में
बिताते हैं;
रोज
मंत्री के
बँगले पर
माथा
टेक आते हैं।

– मिश्रीलाल जायसवाल
सुभाष चौक, कटनी (म.प्र.)

व्यंग्य

• सुधीर ओखदे

उनका दर्शन

नगर के चौराहे से गुजर रहा था कि उनसे भेंट हो गई। वे उस वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, जो कहीं भी, कभी भी, किसी भी समय अपना दर्शन देने में विश्वास रखते हैं। पहला दर्शन वह स्वयं देते हैं; पर बाद के अनगिनत दर्शनों को भक्त स्वयं लालायित रहता है। वे हेडक्वार्टर में भक्त, तो अपने नगर के स्वयं घोषित भगवान् हैं।

वे जब भी अवतरित होते है, एक "दर्शन" के साथ अवतरित होते हैं। आज भी मिले तो दर्शन–शास्त्र से लबालब भरे हुए मिले। सर्वांग से दर्शन ऐसे छलक रहा था, जैसे सभी राजनीतिक दलों का अल्पसंख्यकों और दलित भाइयों से प्रेम छलकता दिखाई देता है। आँखों में स्नेह और मुख में वादों के साथ जब कोई दल इन भाइयों की तरफ बढ़ता है, तो सिंहासन स्वयं उनके समीप आ खड़ा होता है।

दर्शन और वादों का अटूट नाता है। कुछ उसी तरह का जैसे विरहिणी और वर्षा का अथवा भ्रष्ट पुजारी और भगवान् का। वादे हमेशा टूटने के लिए किये जाते हैं और दर्शन हमेशा तरसाने के बाद दिये जाते हैं। वादे हमेशा टूटते हैं और दर्शन हमेशा दुर्लभ होते हैं।

वे भक्त बने हमेशा दिल्ली दरबार में जाते हैं; पर वहाँ उन्हें अगली बार मिलने का वादा मिलता है। वह फिर दर्शनों को जाते हैं, फिर जाते हैं और फिर जाते हैं। कभी–कभी उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् जब दर्शन देने को राजी होते हैं, तो उनकी लालसा बढ़ जाती है। वह दर्शनों के साथ–साथ कुछ वादे भी प्राप्त करना चाहते हैं– या यों कहे कि वह दर्शन नहीं, अपितु उसके माध्यम से वादों का वादा चाहते हैं।

मात्र दर्शन तो वही बात हो गई कि कार्यकर्त्ता ही बने रहे और कुर्सी तो कोसों दूर रही। वह कर्म नहीं, कुर्सी की अभिलाषा करते हैं। भगवान् से साक्षात्कार होते ही उनकी अभिलाषाएँ बढ़ती जाती हैं। और ये लालसा के मारे पेट्रोल पम्प का ठेका, सीमेण्ट का कोटा और गैस की एजेंसी सभी कुछ की माँग एक साथ करने लगते हैं।

प्रभु का यह एक ही भक्त होता, तो कतई संकोच न होता भगवान् को उनकी इच्छापूर्त्ति में। पर भक्त तो रोज और निरन्तर दरवाजे पर पड़े रहते हैं। मन्त्रियों के दरवाजे पर वरिष्ठ अधिकारियों की तरह, लक्ष्मी के दरवाजे पर सरस्वती की तरह, गुण्डे के दरवाजे पर बुद्धिजीवी की तरह। किस–किस को भगवान् क्या–क्या दें?

अतः यहाँ से शुरू होता है वादों का सिलसिला। भगवान् वादा करते हैं और भक्त प्रयत्न करता है कि जब तक भगवान् की कुर्सी सलामत है, कुछ वादों की सिद्धि तो वह कर ही ले। अन्यथा भगवान् की प्रार्थना तपस्या का लम्बा दौर फिर सहन करना होगा।

उन्हें कतई गुरेज नहीं है कि नए–नए भगवानों का जप करें और वादों की सौगात प्राप्त करते रहें। वह कुर्सी को पहचानते हैं, भगवान् को नहीं। वह राजा और मुकुट में से मुकुट को श्रेष्ठ मानते हैं। राजा तो आत्मा है, उसे निरन्तर भ्रमण करना है दिल्ली, मुम्बई, भोपाल, पटना, तिहाड़ और न जाने कहाँ–कहाँ।

पर मुकुट तो स्थायी है। जो उसे धारण करता है, वह आदर्श, सत्य, परिश्रम, शान्ति और सज्जनता की प्रतिमूर्त्ति बन जाता है। मुकुट तो उस पावन गंगा की तरह है, जहाँ एक डुबकी लगाने से पूर्व-जन्म में किये गये पापों तक से मुक्ति मिल जाती है। इन्हीं पापियों के कारण तो गंगा प्रदूषित हुई है। ये अनगिनत पाप करते हैं और घड़ा भरने के पूर्व ही गंगा–तट पर पहुँच जाते हैं। डुबकी लगाते ही वे पुनः पापों का खाता खोलने को स्वतन्त्र रहते हैं।

कुछ–कुछ मुकुट भी इसी प्रकार का होता है। पुराने पापी मुकुट धारण करते ही पुण्यात्मा प्रतीत होने लगते हैं। उनकी आरती गायी जाने लगती है; पूजा आरम्भ हो जाती है। अतः मुकुट तो श्रेष्ठता, पवित्रता की सीढ़ी है। जो इसे धारण करता है, उसमें महानता स्वतः ही आ जाती है।

वह महान् तब तक रहता है, जब तक वह मुकुट धारण किये हुए रहता है। एक बार वह मुकुट से विमुख हुआ कि वह पुनः लोभ, क्लेश, असन्तोष, अशान्ति इत्यादि के मायाजाल में उलझ कर रह जाता है।

पहले राजा मुकुट धारण करके भी अत्याचार करने के लिए स्वतन्त्र रहते थे, क्योंकि जानते थे कि

मुकुट तो उनकी पैतृक सम्पत्ति है। अतः उन्हें मानवता के दर्शनशास्त्र से कुछ लेना-देना नहीं था। पर अब जमाना सचमुच बदल गया है।

महान् भारत के इस तेजस्वी पुत्र से भेंट होते ही मैंने पूछ डाला, नेताजी! आज आप का रंग कुछ बदला-बदला-सा लगता है, क्या बात है?

मेरे प्रश्न से वह कुछ विचलित हुए। पर समझदार वही होता है, जो स्वयं कम और जनता को अधिक विचलित करे। अतः मेरे प्रश्न के उपरान्त वह कुछ क्षण चिन्तन-सा करते रहे। फिर बोले, भाई! यह सरकार तो नहीं चलने की। कोई नीति ही नहीं है। मँहगाई देखो, कहाँ जा रही है। भ्रष्टाचार देखो, कितना बढ़ रहा है! दुर्घटनाएँ देखो कितनी हो रही हैं! त्राहि-त्राहि मची है, पूरे देश में और सरकार धृतराष्ट्र बनी तमाशा देख रही है।

मैंने उन्हें बधाई देते हुए कहा, आपने तो अपनी पार्टी के गुण-दोषों की समीक्षा करके आदर्श उपस्थित किया है। अब क्या इरादे हैं? इस बार पार्टी का टिकट तो आपको मिला नहीं। भगवान् के आशीर्वाद के बिना आपका गुजारा कैसे होगा?

वह बोले, ईंट से ईंट बजा दूँगा, यह मेरा क्षेत्र है। आप सब मेरे अपने हैं। वह ..... क्या मुझसे पार पाएगा? नंगा करके रख दूँगा उसको। सारी कारगुजारियों को जनता के सम्मुख ले आऊँगा। कोई नीति ही नहीं है। आगे उसी भ्रष्टाचार, महँगाई, दुर्घटना इत्यादि इत्यादि को कोसते हुए उन्होंने विदा ली।

अभी दो दिन भी नहीं बीते होंगे कि उनसे फिर भेंट हो गयी। विरोधी की ईंट से ईंट बजाने वाले आज उसके हाथों में हाथ डाले उसके लिए वोट माँगते गली-गली घूम रहे थे। वह सरकार की हर नीति का समर्थन कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा में लगे हुए थे। पता चला इस बार टिकट की पूर्ति उन्हें अन्य कई सुविधाएँ देकर की गई है। अब वह सरकार की नीतियों का समर्थन करने को प्रतिबद्ध हैं। ❒

– III/२, आकाशवाणी कालोनी,
जलगाँव (महाराष्ट्र)-४२५००१

नवल सृष्टि करो एक बार

– डॉ. शिवनन्दन कपूर

भारत की व्यथित धरा रही अब पुकार।
प्रलयंकर नवल सृष्टि करो एक बार।।
ताण्डव की ताल से, नर्तित मुण्ड-माल से,
ज्वालामुखी तड़कें जब भाल-ज्वाल-जाल से,
भय को फिर दबा काँख-काल की कफनियाँ बाँध-
निकलें नर-सिंह नवल-
पर्वतों के वक्ष निज नखों से बिदार।
प्रलयंकर नवल सृष्टि करो एक बार।।
जागो देव! दया-दृष्टि करो हे उदार।।
मत दो विधाता के माटी के पुतले,
अन्तर्बाह्य भुरभुरे, निष्क्रिय अपंग।
चाहिए अब निष्कपट, नग से निश्चल,
निर्मल मन निहंग।
आस्थावान् नौजवान- राष्ट्र हेतु रहें जो-
सब कुछ निछावर कर, हरदम तैयार।
जागो देव! दया-दृष्टि करो एक बार।।

जिनके मन, सुख की ललक,
पल भर भी न डिगा पाये,
पद का प्रलोभन,
विलासिता का पंक जिन्हें कलुषित न कर पाये,
भर कर हुंकार, घूम-घूम-झूम-झूम जो-
सोते हुए देश में अलख जगा जायें।।
सत्ता नहीं, सत्य के सत्पथ पर-
गुंजरित करें सदा अन्तस् की पुकार।।
जिनका जीवन हो नित्य निश्छल, विवादों से परे,
पल-पल परीक्षा की आग में जो उतरें खरे,
हर क्षण, हर साँस में बस देश ही उद्देश्य हो-
कुछ कर गुजरे, जिनके यौवन का ज्वार।
ऐसे जवाँमर्द दो भारत को एक बार।।
पंक के अतल तल से हो राष्ट्र का उद्धार।।

– *'नीराजना', विट्ठलनगर, खण्डवा*

हिन्दी साहित्य में राष्ट्र चिन्तन

• सुश्री कमल चित्रे

साहित्य की कसौटी उसकी उपयोगिता है। यदि किसी साहित्य की रचना की गई है और वह समाज के लिए उपयोगी नहीं है, तो वह साहित्य की श्रेणी में नहीं आयेगा और न वह साहित्य कहलायेगा। कारण स्पष्ट है कि उसकी उपयोगिता ही रचना को साहित्य की श्रेणी में लाती है। बिना उपयोगिता के न तो साहित्य की रचना की जाती है और यदि की भी गई, तो वह मात्र कूड़ा-कचरा होती है, साहित्य नहीं। उसकी उपयोगिता ही साहित्य को अमर बनाती है। शान्ति के समय शान्तिमय साहित्य की रचना होती है। संक्रमण-काल में क्रान्तिकारी रचनाएँ होती हैं। सदा से साहित्य समाज के लिए उपयोगी रहा है और रहेगा।

'अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है'

अर्थात् वहाँ साहित्य का प्रकाश नहीं है। वहाँ अन्धकार ही अन्धकार रहता है तथा वह राष्ट्र, राष्ट्र होते हुए भी अचेतन के समान है, क्योंकि बिना साहित्य के जागरण नहीं आता और जागरण के अभाव में समाज चेतन होते हुए भी अचेतन बन जाता है। साहित्य का प्रकाश सूर्य की किरणों से भी प्रखर होता है। जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच पाती, साहित्यकार की कल्पना उसका कोना- कोना झाँक लेती है। साहित्य से कोई वस्तु छिपी नहीं रहती है। इसीलिए यह लोकोक्ति कही गई है-

'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।'

हिन्दी साहित्य में एकता के स्वर

व्यापक अर्थों में राष्ट्रीयता का अर्थ होता है राष्ट्र के विचार, राष्ट्र की संस्कृति और राष्ट्र की भाषा। राष्ट्र की भाषा में राष्ट्रीय संस्कृति को लेकर राष्ट्र के विचारों को प्रतिपादित करने वाला कवि ही राष्ट्रीय कवि के आसन पर आसीन होता है और उसकी कविता राष्ट्रीय काव्य का पद प्राप्त करती है। वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, भूषण और मैथिलीशरण गुप्त आदि इस दृष्टि से सच्चे राष्ट्रीय कवि की श्रेणी में आते हैं।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत विश्रृंखलित-सा हो गया। राजपूत राजा देश की ओर दृष्टि न रखकर किसी विशेष भूभाग के लिए ही आपस में युद्ध करते रहे। उन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध भी तलवार बहुधा समस्त देश की रक्षा के लिए न उठाकर अपने ही राज्य की रक्षा के लिए उठाई। हिन्दी साहित्य का जन्म इसी संघर्ष युग में हुआ। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में जो गीत गाये, उनमें समग्र राष्ट्र का स्वर आंशिक रूप में ही मुखरित हुआ था। वास्तविकता यह थी कि हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में चारणों की कविता एक राजा के द्वारा दूसरे राजा पर चढ़ाई करने के अवसर पर वीरता के छन्द गा उठती थी; किन्तु आक्रमणकारियों से देश की रक्षा के लिए यह ओजपूर्ण वाणी का शंखनाद न कर सकी। अतः वीरगाथा काल की कविता में राष्ट्रीय भावना का स्वरूप अत्यधिक सीमित हो गया।

हिन्दू राजाओं की परस्पर कलह ने आक्रमणकारियों को विजय प्रदान की। मुसलमान हमारे देश के शासक हो गये। उन्होंने हमारे धर्म, संस्कृति को मिटा डालने का हर सम्भव प्रयास किया। इसी समय अत्यन्त प्राचीन काल से मन्द-मन्द चली आती हुई भक्ति-मन्दाकिनी उत्तरी भारत में तीव्र-गति से प्रवाहित हो उठी; जिसने हिन्दुओं को नव जीवन प्रदान किया। तुलसीदास जी का रामचरित मानस अत्याचारों से पीड़ित जनता के लिए अमरत्व का सन्देश लेकर सामने आया। रीतिकाल में जब अन्य कविगण शृंगार काव्य की धारा बहाने में लगे हुए थे, उस समय भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल को अपने का विषय चुनकर राष्ट्रीयता का शंखनाद किया-

"तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।"

शिवाजी और छत्रसाल दोनों ही वीर केवल सीमित प्रदेश से ही नहीं, अपितु समस्त देश से विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए प्रयत्नशील थे। भूषण जैसे राष्ट्रीय कवि को 'साम्प्रदायिक' कहकर स्वतन्त्र भारत में, पाठयक्रम से निकाल दिया गया, जबकि ब्रिटिश-शासन काल तक में उन्हें लगातार पढ़ाया जाता रहा। उनका ध्येय विदेशी, विधर्मी अत्याचारी शासन का समूलोच्छेदन करना था। तभी तो वे अपने काव्य नायक शिवाजी को लेकर घोषणा

करते हैं–

"भूषण अखण्ड नवखण्ड महिमण्डल में,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछाहिं देश उत्तर ते दक्खिन लौं,
जहाँ पातशाही तहाँ दावा सिवराज को।"

अंग्रेजों के आर्थिक और राजनैतिक शोषण ने भारतवासियों के हृदय में राष्ट्रीयता की लहर जाग्रत् कर दी। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। अंग्रेजों के शोषण और अत्याचार को देखकर भारतेन्दु जी का हृदय कराह उठा–

"कहाँ करुना निधि केसव सोये,
जागत नेकु न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये।"

देश के अतीत गौरव का स्मरण कराकर वे भारतवासियों को पुनः जागृति का सन्देश देते हुए कहते हैं–

"हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत।
हाय! चित्तौर निलज तू भारी
अजहु खरो भारतहि मझारी।"

भारतेन्दु जी सच्चे देशभक्त थे। उनकी कविता में देशभक्ति और राष्ट्रीयता का तीव्र स्वर मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त का राष्ट्रीय काव्य का सच्चे अर्थों में प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी 'भारत भारती' में सबसे पहिले राष्ट्रीयता का शंखनाद मिलता है। उनका प्रत्येक काव्य देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है।

पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" और माखनलाल चतुर्वेदी इस युग के राष्ट्रीय गायक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताओं में देशप्रेम और राष्ट्रीयता का सागर हिलोरें ले रहा है। "पुष्प की अभिलाषा" शीर्षक कविता में चतुर्वेदी जी ने अपनी अभिलाषाएँ व्यक्त करते हुए कहा है–

"मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जायें वीर अनेक।"

राष्ट्रीय कवियों में सोहनलाल द्विवेदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की "झाँसी की रानी" राष्ट्रीय काव्य-परम्परा की अनुपम कड़ी है। उनकी स्फुट कविताओं में "झाँसी की रानी" और 'वीरों का कैसा हो वसन्त' राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं। राष्ट्रीय कवियों की परम्परा में पन्त, निराला, प्रसाद का योग भी भुलाया नहीं जा सकता। दिनकर जी तो अपनी राष्ट्रीय कविताओं के कारण ही अमर रहेंगे। निराला जी की 'जागो फिर एक बार' 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में राष्ट्रीय भावनाएँ भरी हुई हैं। प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक राष्ट्रीय गौरव और देशप्रेम की भावनाओं से परिप्लुत हैं।

कविवर गोपालसिंह नेपाली की रचना 'स्वतन्त्रता का दीपक' में देश प्रेम और एकता के प्रखर भाव हैं।

"लड़ रहा स्वदेश हो, शान्ति का न लेश हो,
क्षुद्र जीत हार पर यह दिया बुझे नहीं,"

सुभद्रा कुमारी चौहान की काव्य-साधना के पीछे उत्कृष्ट देश प्रेम, साहस और बलिदान की भावना है। देश को स्वतन्त्र कराने के लिए जेल जीवन की यातनाएँ सहने में उन्हें जितना सुख मिलता है, उतना ही उन सात्विक अनुभूतियों को कविता द्वारा व्यक्त करने में भी प्राप्त होता है। इसीलिए 'झाँसी की रानी' काव्य में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–

"बुन्देलों हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।"

हिन्दी राष्ट्रीय एकता एवं चिन्तन की जन्मदात्री है और यही इस सनातन काल से एक, अखण्ड चले आ रहे आज के खण्डित भारत को उसके पूर्वकालिक अखण्ड-स्वरूप की पुनर्स्थापना की गारण्टी भी है। □

– दीक्षित डेरी के पास, मेला रोड
महावीरगंज, भिण्ड (मध्य प्रदेश)

मलेशिया में हिंदुओं के जुलूस पर रोक

उत्तरी मलेशिया में सांप्रदायिक दंगे भड़कने की आशंका के नाम पर हिन्दुओं का जुलूस नहीं निकालने दिया गया। सरकारी समाचार सेवा 'बेरनामा' के अनुसार देश का हिंदू सम्प्रदाय अर्से से हर वर्ष ७ अगस्त को पेनांग प्रांत में स्थित ऐतिहासिक गेलूगोर मंदिर में आग पर चलने का अनुष्ठान करता है। कुछ दिन पहले इस धार्मिक रस्म को लेकर सांप्रदायिक और जातीय विद्वेष फैलाने संबंधी कुछ पर्चे बाँटे गये थे।

राज्य के पुलिस प्रमुख अब्दुल हामिद मुस्तफा के अनुसार एक पर्चा हिंदुओं के लिए और दूसरा पर्चा मुस्लिमों के बारे में था। हिंदुओं का समारोह पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही होना था, लेकिन 'सुरक्षा की दृष्टि से' इसे रद्द कर दिया गया।

ज्ञातव्य है कि मार्च में पेनांग में स्थित हिंदू मंदिर की ओर हजारों मुसलमानों ने जुलूस निकाला था और मंदिर पर पत्थर फेंके थे। बहाना था कि घंटियों की आवाज नमाज में बाधा डालती है। □

लखनऊ जल संस्थान

लखनऊ नगरवासियों के लिये आवश्यक सूचना

गर्मियों के दिनों में संक्रामक रोग फैलने से बचने हेतु समस्त उपभोक्ताओं से निम्नानुसार अपील की जाती है।

(१) जिन उपभोक्ताओं ने एल्काथीन/रबर पाइप से कनेक्शन लिये हैं तथा वे पाइप नालियों से गुजर रहे हैं, से अनुरोध है कि वे अपने पाइप जी.आई. पाइप से बदला लें अन्यथा इससे जल प्रदूषित हो सकता है और महामारी फैल सकती है।

(२) जिन उपभोक्ताओं के घर में भूमिगत जलाशय अथवा ओवर हेड टैंक बना हुआ है, उसकी नियमित सफाई व्यवस्था करा लें तथा उसे विसंक्रमित करा लें। इस हेतु नगर निगम में क्लोरीन टैबलेट उपलब्ध है जिसे प्राप्त किया जा सकता है।

(३) कई उपभोक्ताओं ने सीधे सर्विस पाइप पर टुल्लू/बड़े सेक्शन पम्प लगा लिये हैं, जो नियम विरुद्ध है तथा इसके विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जा सकती है। डाइरेक्ट पम्प मिलने की सम्भावना रहती है।

(४) सर्विस पाइप में लीकेज की मरम्मत उपभोक्ताओं की है। इस हेतु जल संस्थान के स्टाफ के साथ सहयोग प्रदान करें एवं अपने पाइप की मरम्मत करा लें, जिससे प्रदूषण पेयजल की सम्भावना न रहे।

उपरोक्त के अतिरिक्त नगरवासियों से यह भी अनुरोध है कि पाइप लाइन एवं राइजिंग मेन के ऊपर किसी भी तरह के कोई निर्माण न करें क्योंकि यह नियम विरुद्ध है और भवन का निर्माण ढहाया जा सकता है। उपभोक्ताओं से यह भी अनुरोध है कि पानी का न्यूनतम उपभोग करें एवं टोटियों को खुला न छोड़ें तथा पाइप लाइन लीकेज की सूचना जल संस्थान के सम्बन्धित जोनल कार्यालय को दें।

महाप्रबन्धक
जल संस्थान, लखनऊ

डॉ० एस०सी० राय
अध्यक्ष, जल संस्थान, लखनऊ

बिरादरी के और लोग जहाँ जेबकतरी के पुश्तैनी धन्धे से जुड़कर थोड़ी–बहुत रकम पाकर उसके खर्च होने तक दारू के नशे में धुत् रहकर बीबी को रानी और बच्चों को राजकुमार बनाने की बातें करते और कभी–कभी पकड़े जाने पर दस–पन्द्रह दिन जेल की हवा खाकर चोटों पर हल्दी–चूना लगाते, वहीं बीरू मुंशी और नन्हकू दो इसके अपवाद थे। नन्हकू जहाँ मेहनत मजदूरी करके अपना और अपनी माँ का पेट भरता, वहीं बीरू मुंशी कचहरी में अन्सारी वकील साहब की मुंशी–गीरी करके चार पैसा पैदा करते। यद्यपि उनके पास पैसे इफरात नहीं होते, लेकिन संतोषी वृति के कारण उन्हें किसी के आगे हाथ फैलाने की जरूरत भी नहीं पड़ती थी। अपने इकलौते कुरते–पायजामे पर हल्का सा नील लगाकर तकिया के नीचे उसकी तह बनाकर पहन लेते, तो गाँव के लोग उन्हें भला आदमी ही समझते। पूरा गाँव अपनी बिरादरी का ही था, जिसमें बीरू मुंशी ही पढ़े-लिखे और वक्त जरूरत जमानत वगैरह कराने के काम आते थे। गाँव के सारे लोग जेबकतरी के धन्धे के कारण उनके मुवक्किल थे। वे लोगों को अक्सर समझाते भी कि मेहनत मजदूरी करके अपनी गुजर-बसर करो। उठाईगीरी के भरोसे कोई सुखी नहीं रहता।

मगर कुछ लोग कहते कि बीरू मुंशी की यह बात केवल कहने भर को है। वैसे वे खुद चाहते हैं कि गाँव वाले जुर्म करते रहें, नहीं तो मुंशी जी और वकील साहब की रोटी कैसे चलेगी? फिलहाल मुंशी के बच्चे भी चार किलोमीटर दूर शहर में पढ़ने जाते थे और सादी–सस्ती साड़ी पहनने वाली उनकी पत्नी को कभी भी किसी ने गाँव की औरतों की चोरी–चकारी से आई हुई साड़ियों की और ललचाते हुए नहीं देखा। यही वजह थी कि गाँव में मुंशी जी की इज्जत थी।

नन्हकू का धन्धा इसके विपरीत मेहनत–मजदूरी का होने के कारण गाँव के लोग उसे खास तवज्जो नहीं देते थे। उनके लिए वह बेमतलब जिन्स था, जिसका उनकी निगाह में कोई मूल्य नहीं था। जेबकतरे का लड़का मेहनत का काम करे, यह गाँव वालों की निगाह में पुरखों की नाक कटाने का काम था। शायद इसीलिए उसके शादी–ब्याह की भी बात नहीं उठ सकी थी। यद्यपि उसकी माँ कई बार दबी जुबान से अपने मायके में भी इसकी चर्चा कर चुकी थी, जहाँ रिश्ता हो सकता था। पर हर बार यही जवाब मिला– "जिसका कोई धन्धा–पानी ही नहीं है, उसके साथ कौन अपनी लड़की को भूखा मारना चाहेगा?"

नन्हकू को ब्याह के नाम से ही जैसे खीझ हो गयी थी। उसे एक रिक्शा बीरू मुंशी ने कहसुन कर दिला दिया था। जिस पर उनके बच्चों को बिठाकर वह स्कूल पहुँचा आता और एक दूसरे स्कूल के दूसरी पारी के बच्चों को पहुँचाने का काम भी मिल गया था। इन सजे–धजे, हँसते–मुस्कराते, साफ–सुथरे बच्चों की तुलना वह अपनी बस्ती के बच्चों से करने लगता, जिनके बाप पढ़ाई के बजाय उन्हें जेबकतरी का हुनर सिखाने लगते थे। उसका मन एक दुःख से भर जाता और वह ऐसे बच्चों के रूप में अपने बच्चों की कल्पना करके सिहर जाता। यही कारण था कि वह अपनी शादी का विचार मन से झटक देता।

लेकिन उस दिन नन्हकू के मन में शादी का विचार बड़े जोरों से जाग्रत हो गया, जब उसने बीरू मुंशी के बच्चों को शाम को छोड़ते समय उनके दरवाजे पर सोना को देखा। साँवरी, छरहरी, बड़ी–बड़ी पानीदार आँखों वाली सोना को देखकर उसे लगा; जैसे उसका काफी कुछ खो गया है, जिसे वह सोना के चेहरे में ढूँढ रहा है। उसकी निगाह सोना के चेहरे से हट नहीं रही थी। आपे में तो वह तब आया, जब बीरू मुंशी की पत्नी ने हँसकर कहा– "नन्हकू! लड़कों को देखते–देखते लड़कों की मौसी तक निगाह पहुँच गई? खबरदार जो इस तरह सोना को देखा। मेरी बहन को नजर लग जायेगी।" कहकर मुंशियाइन हँस पड़ीं, नन्हकू गाँव नाते उनका देवर जो लगता था।

"अ–अ–ऐसी कोई बात नहीं भौजी। म्–म् मैं तो ऐसे ही देखने लगा था" नन्हकू हकलाया।

मुंशियाइन ने उसके मन का चोर पकड़ लिया था। वे मुस्कराकर बोलीं– "दाई से पेट छिपाते हो। अभी मुंशी जी आते होंगे, उनको मैं सारी बातें बताऊँगी, तब तक तुम बैठो। सोना चाय बनाकर लाती है।"

नन्हकू से कुछ जवाब देते नहीं बन पड़ा। वह चुपचाप बैठकर मुंशियाइन के परिहास का मन ही मन आनन्द लेते हुए सोना के विचारों में खो गया। ऐसी भली लड़की यदि हमराह बने, तो उसके हाथों में जिन्दगी की दौलत डालकर जीवन की तचती दोपहरी में छाँह का अनुभव किया जा सकता है। अगर ऐसी लड़की से पहले भेंट हो जाती, तो उसके आँगन के सूने सन्नाटे में चाँदनी के झोंके झरने लगते। पायलों की खनक, चिड़ियों की चहक की तरह

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

'हिन्दी दिवस' पर विशेष आह्वान

- कैलाश भूषण जिन्दल

[विद्वान् लेखक एक वयोवृद्ध सुख्यात राष्ट्रवादी चिन्तक हैं। —सम्पादक]

हँसी आती है जब हम प्रतिवर्ष १४ सितम्बर को बड़े उल्लास से 'हिन्दी दिवस' मनाते हैं। इस दिन को तो हमें बड़ी सञ्जीदगी और गम्भीरता से "श्राद्ध दिवस" के रूप में मनाना चाहिए। हमारे इतिहास में यह वह काला दिवस है, जब १९४९ में इसी दिन हिन्दी सर्वथा और सर्वदा के लिए संविधान से बहिष्कृत की गई थी।

संसार में भारत ही एक अभागा देश है, जिसका न कोई राष्ट्रधर्म है और न कोई राष्ट्रभाषा। संविधान–निर्माताओं ने संविधान में अनुच्छेद ३४३ रखकर देशवासियों के प्रति बड़ा भारी प्रपञ्च और विश्वासघात किया है। अनुच्छेद ३४३ इस प्रकार है–

१. "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

२. संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिसके लिए उसका ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।"

उपर्युक्त उद्धरण से तीन बातें स्पष्ट होती हैं–

(१) देवनागरी लिपि से देवनागरी अंक सर्वदा के लिए बहिष्कृत कर दिये गये। हमारी लिपि में वर्णसंकर हो गया। वर्णमाला देवनागरी है, परन्तु उसमें अंक रोमन हैं। परिणाम यह हुआ कि युवा पीढ़ी इसके आगे हिन्दी की गिनती जानती ही नहीं। उसे रोमन अंकों का आश्रय लेना पड़ता है। कोई संख्या देवनागरी अंकों में लिखी हो, तो वह उसे न पढ़ सकती है, न समझ सकती है।

(२) अनुच्छेद ३४३ के खण्ड (१) में स्पष्ट कर दिया गया है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा या मातृभाषा नहीं है– वह केवल "राजभाषा" है, अर्थात् केवल राज–काज के लिए उसका वैकल्पिक प्रयोग किया जा सकता है।

३. खण्ड (१) में जो बात कही गई है, उसे खण्ड (२) में और स्पष्ट कर दिया गया है। खण्ड (२) में स्पष्ट कहा गया है कि "पन्द्रह वर्ष की अवधि तक संघ के सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा।"

पन्द्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने नहीं पायी थी कि जवाहर लाल नेहरू ने संसद् में राजभाषा अधिनियम, १९६३ पारित करा दिया। उनकी सुपुत्री इन्दिरा गांधी ने १९६८ के संशोधन द्वारा, इस अधिनियम की धारा ३ का स्वरूप ही बदल दिया और उसमें एक नई उपधारा (५) जोड़ दी, जो इस प्रकार है–

"(५) उपधारा (१) के खण्ड (क) के उपबन्ध और उपधारा (२), उपधारा (३) और उपधारा (४) के उपबन्ध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे, जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए सभी राज्यों के विधान–मण्डलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिये जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद् के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।"

गणतन्त्र में निर्णय बहुमत से होता है न कि सर्वसम्मति से, परन्तु राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३५ में सर्वसम्मति का प्रावधान है। उत्तर–पूर्व के सात छोटे–छोटे राज्यों– अरुणाचल, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड और त्रिपुरा को "सात बहन" की संज्ञा दी गई है। सात बहनों में से हर एक बहन को "भारत भाग्य विधाता" बना दिया गया है। सबसे छोटा राज्य मिजोरम है। उसकी जनसंख्या केवल ६,८६,२१७ है। यह कैसी विडम्बना है, कैसी हास्यास्पद व्यवस्था है कि भारत के मुट्ठीभर सात लाख लोगों को यह अधिकार दे दिया गया है कि देश की शेष नब्बे करोड़ जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं को वह अपने पैरों तले रौंद सकते हैं। पोलैण्ड की विधानसभा में कोई भी विधेयक पारित नहीं हो सकता यदि एक भी सांसद् उसका विरोध करता है। इसे librum veto कहते हैं। राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ (५) ने भारत पर भी librum veto थोप दिया है, जो लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के विपरीत है।

(शेष पृष्ठ ७९ पर)

(पृष्ठ १८ का शेष)

हैदराबाद राज्य...

भारत सरकार के प्रतिनिधि बनकर कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हैदराबाद आये, जिसका रजाकारों ने खूब जमकर विरोध किया। उन्हें 'कोठी' में न ठहराकर बोलारम सिकन्दराबाद में ठहराया गया।

आजाद हैदराबाद की योजना बनकर तैयार हो गयी थी। सिडनी काटन नामक आस्ट्रेलियन, हवाई जहाज द्वारा लगातार हथियारों की खेप रातोंरात ला रहा था। निजाम की सेना तैयारी कर रही थी। निजाम ने अपना दावा संयुक्त–राष्ट्र–संघ में भी दायर कर दिया।

इधर रजाकारों के अत्याचारों की खबरें लगातार सरदार पटेल को पहुँच रही थीं। उन्होंने आपरेशन की पूरी तैयारी कर ली।

निजाम की लगभग पचास हजार सेना, दस हजार अरब, दस हजार पैगा–सैनिक और दो लाख रजाकार तैयार बैठे थे। सरदार पटेल ने दक्षिण कमान के कमांडिंग अफ़सर लेफ्टिनेंट जनरल महराज राजेन्द्र सिंह जी को उचित आदेश दे दिये।

भारतीय सेनाएँ चारों ओर से चल पड़ीं। इधर नांदेड़ से, उधर विजयवाड़ा से– इस तरह १३ सितम्बर १६४८ को हैदराबाद को घेर लिया गया। निजाम की सेना और रजाकारों ने यत्र–तत्र सामना किया, पर दो–चार घंटों में ही उन्हें कुचल दिया गया। बाकी धर्मान्ध मुसलमान भाग खड़े हुए। रजाकारों के सारे नारे हवाओं में उड़ गये। मेजर जनरल इद्रूस ने आत्म–समर्पण कर दिया। निजाम उस्मान अली ने भारतीय गणराज्य में शामिल होने के विलय–पत्र पर दस्तखत कर दिये। १७ सितम्बर १६४८ को हैदराबाद आजाद हुआ। रजाकारों ने रातोंरात टोपियाँ बदल दीं। खादी पहन कर वे कांग्रेसी बन गये। राज्य पर से परतन्त्रता और अत्याचार के काले बादल छँट गये। पर इतिहास का यह काला अध्याय सदैव रजाकारों के अत्याचारों की याद दिलाता रहेगा।

पूर्व हैदराबाद राज्य

भारत के रजवाड़ों में सबसे बड़ा, सर्वाधिक सम्पन्न राज्य था हैदराबाद। इस राज्य का अन्तिम बादशाह उस्मान अली खान विश्व के सबसे धनवान् व्यक्तियों में तीसरे स्थान पर गिना जाता रहा।

हैदराबाद राज्य में तेलंगाना के आठ जिले– आदिलाबाद, निज़ामाबाद, करीमनगर, बरंगल, नलगोंडा, मेदक, महबूबनगर और हैदराबाद, महाराष्ट्र के पाँच जिले–औरंगाबाद, परभणी, बीड़, नांदेड और उस्मानाबाद तथा कर्नाटक के तीन जिले बीदर, गुलबर्गा और रायचूर शामिल थे। इसके अतिरिक्त मध्य भारत का बरार इलाका भी निजाम के राज्य का ही हिस्सा था। राज्य का कुल इलाका ८२,६६८ वर्ग मील था। हैदराबाद राज्य की आबादी का ८६ प्रतिशत हिन्दू, १२.५० प्रतिशत मुसलमान तथा १.५ प्रतिशत ईसाई था। आबादी का अधिकांश भाग तेलुगू, कुछ लोग मराठी, कुछ कन्नड़ भाषा तथा शेष उर्दू व्यवहार में लाता था।

देती गौरव सबको हिन्दी

– महेश शुक्ल

ऋषियों के आँगन उतर–उतर,
महिमा गाते हैं उच्च शिखर।
देती गौरव सबको हिन्दी–
श्रद्धा से करते अभिनन्दन।।

मीरा–तुलसी, केशव–कबीर
सूरा की अपनी रही पीर।
केशव, पद्माकर, घनानन्द–
सबने गाये हैं मधुर छन्द।
रहिमन के सारे दोहों का,
उठकर करते शत–शत वन्दन।।

मधुशाला से मधुरस छलका,
हो नशा भले हल्का–हल्का।
साकेत, उर्वशी, कर्मभूमि–
यह चन्द्रगुप्त की सुखद भूमि।
यह सब मस्तक पर शोभित हैं,
इनसे सुरभित अपना नन्दन।।

यह गूँजी घाट–घाट, घर–घर,
गलियों, गाँवों औ शहर–शहर।
भारत की संस्कृति परिचायक,
भाषाओं में भी सुखदायक।
तन–मन–जीवन पावन करता,
शीतलता ज्यों देता चन्दन।।

देती गौरव सबको हिन्दी।
श्रद्धा से करते अभिनन्दन।।

– सनातन धर्म स०शि०मं० लखीमपुर–खीरी

राज्य प्रशासनिक सेवा में ७५ प्रतिशत तथा सेना व पुलिस में ६५ प्रतिशत मुसलमान थे।

सन् १९१७ में स्थापित उस्मानिया वि.वि. में उर्दू माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की गयी–तेलुगू भाषा की अवहेलना करके।

सन् १९२६ ई. में कट्टरतावादी संस्था मजलिसे–इत्तिहादुल मुस्लिमीन की स्थापना की गई।

सन् १९३० में बहादुर खान ने इस्लाम के प्रचार हेतु मजलिस–तबलीग–ए–इस्लाम की स्थापना की।

सन् १९३७ गुंजोटी में आर्य समाजी कार्यकर्ता वेदप्रकाश की दिन दहाड़े हत्या कर दी गयी।

७ अप्रैल १९३८ में धूलपेट में दंगे हुए।

८ अप्रैल शुक्रवार रामनवमी के दंगों में पचासों हिन्दू मारे गये।

१९३९ जिन्ना ने हैदराबाद का दौरा किया–यहाँ पर दो सप्ताह रहा और अलग इस्लामी राज्य के लिए मुसलमानों को भड़काया।

२१ जनवरी १९४८ संकेसर गाँव में १९ हिन्दुओं को कतार में खड़ा कर गोली मार दी गयी।

९ मई– १९४८ को गोर्टा में २०० लोगों को गोलियों से भून दिया गया।

मई–१९४८ करीमनगर, निजामाबाद व नलगोंडा के गाँवों में महिलाओं पर अत्याचार।

२१ अगस्त १९४८ शोएबुल्लाह खान– पत्रकार की हत्या।

२४ अगस्त १९४८ सौ से अधिक गाँव जलाये गये। हजारों हिन्दू कत्ल कर दिये गये।

२६ अगस्त– १९४८ भैरवुनिपल्ली में २०० हिन्दुओं को गोली मारकर, शवों को जला दिया गया।

अगस्त १९४८ निजामाबाद के आर्य समाजी कार्यकर्ता राधाकिशन मोदाणी की दोपहर के समय पुलिस स्टेशन के सामने छुरा मारकर हत्या कर दी गयी।

१३ सितम्बर १९४८ भारतीय सेनाओं द्वारा पुलिस एक्शन–'आपरेशन पोलो।'

१७ सितम्बर १९४८– निजाम द्वारा आत्म–समर्पण हैदराबाद राज्य का भारतीय गणराज्य में विलय। □

– फ्लैट नं. ११२, प्लॉट नं. ५, सौम्या अपार्टमेण्ट, हुडा काम्पलेक्स, कोत्तापेट, हैदराबाद

(पृष्ठ ६८ का शेष)

'हिन्दी दिवस' पर ...

संविधान की आठवीं अनुसूची में देश की जिन पन्द्रह भाषाओं का उल्लेख है, उसमें अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं है। फिर भी संविधान की अवहेलना करते हुए मिजोरम ने अंग्रेजी को अपनी राजभाषा घोषित कर रखा है। जिस राज्य ने अंग्रेजी को इस प्रकार गले लगा रखा है, उसके विधान–मण्डल से हम कभी भी यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वह 'अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ... संकल्प पारित करेगा।' 'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी' और अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व इस देश में अनन्त–काल तक बना रहेगा।

अमरीका के राष्ट्रति अब्राहम लिंकन का एक चिरस्मरणीय वाक्य है– 'कोई भी राष्ट्र प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता, जब तक कि वह आधा स्वतन्त्र और आधा परतन्त्र है।' पचास वर्ष के संघर्ष के बाद हमें १९४७ में भले ही राजनैतिक स्वतन्त्रता मिल गयी हो, पर हम अंग्रेजी भाषा के अब भी गुलाम हैं। वह जाति और समाज मूक है, जिसकी अपनी कोई भाषा नहीं। भाषा की दासता को समाप्त करने के लिए हमें अभी एक और संघर्ष करना है।

अतएव सभी हिन्दी प्रेमी, सेवी, लेखक और साहित्यकारों को यह आह्वान है कि वह इस वर्ष हिन्दी–दिवस पर संकल्प लें कि–

१. वे अपनी लेखन सामग्री और परिचय–पत्र हिन्दी में छपवायेंगे और पत्राचार हिन्दी में करेंगे।
२. विवाह, यज्ञोपवीत, नामकरण, कनछेदन आदि मांगलिक उत्सवों के निमन्त्रण–पत्र हिन्दी में छपवायेंगे और भेजेंगे। यदि उनके पास विदेशी अंग्रेजी भाषा में निमन्त्रणआयेगा तो ऐसे मांगलिक उत्सवों में भाग नहीं लेंगे और यही कारण लिखकर निमन्त्रणदाता को सूचित भी कर देंगे, जिससे भविष्य में वह ध्यान रखे।
३. एक अभियान शुरू करें कि दुकानदार और व्यावसायिक–प्रतिष्ठान अपनी पट्टिकाओं का लेख हिन्दी में करें। अंग्रेजी में लिखी पट्टिकाओं को उतारकर यदि वे अपने खर्चे से पुनः उन पट्टिकाओं को देवनागरी लिपि में लिखवाकर दुकानदार को वापस कर देंगे, तो उसे कोई आपत्ति नहीं होगी।
४. निर्वाचन के समय उसी पार्टी के प्रत्याशी को वोट दें, जिसके घोषणा–पत्र में यह आश्वासन हो कि यदि वह सत्ता में आ गयी, तो राजभाषा अधिनियम १९६३ की धारा ३ की उपधारा (५) में दिये हुए काले कानून को समाप्त करेगी।

'हिन्दी की जो बात करेगा।
वही देश पर राज करेगा।।' □

– अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ (उ.प्र.)

(पृष्ठ ६७ का शेष)

उसके घर को कलरव से भरा नीड़ बना देती। सोना का अंग-अंग साँवली चाँदनी से नहाए लता के हरियाले पातों जैसा लगता है और उसकी हँसी जैसे बेला की कलियों को बिजली की चमक मिल गयी हो।

मुंशी जी ने चाय पीते समय सोना को बताया कि जहाँ गाँव के और लोग चोरी-चकारी करके गुजर करते हैं नन्हकू थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होने के बावजूद मेहनत पर भरोसा रखने वाला ईमानदार आदमी है।

सोना ने अपनी आँखें ऊपर उठाकर चेहरा झटकते हुए "हूँ" कहा।

नन्हकू लाख चाहने पर भी इस "हूँ" का अर्थ न समझ सका। यह उसकी स्थिति का उपहास है या सोना मुंशी जी का बात से सहमत है; यह समझने भर का होश उसे नहीं रह गया था।

हाँ, अगले दिन जब वह रिक्शा लेकर आया, तो उसके बाल कायदे से खिंचे थे और उसकी जेब में पड़े रूमाल का सिरा भी जेब से कुछ निकला-निकला था। हवाई चप्पलें जैसे कह रही थीं कि उन्हें साबुन से रगड़-रगड़ कर चमकाया गया है और खुद उसका बदन कह रहा था कि उसके पोर-पोर में मस्ती समायी हुई है। वह धीमे-धीमे कोई गाना गुनगुना रहा था और उसका मन बार-बार सीटियाँ बजाने को होता था। यह दशा कई दिनों तक चलती रही। सोना उसे आँखों भर देख लेती, तो वह निहाल हो जाता, जैसे उसे सब कुछ मिल गया हो। इसकी इच्छा होती कि वह शहर से बालों में बाँधने का बढ़िया-सा फीता या नाखूनी लाकर सोना को दे। लेकिन सोना के बुरा मान जाने के डर से खुद को वह ऐसा करने से लाचार पाता था। अब उसका मन रिक्शा चलाने में नहीं लगता था; पर रिक्शे के अलावा बीरू मुंशी के दरवाजे पर जाने का दूसरा बहाना भी नहीं था। इस समय बीरू मुंशी उसे संसार के सबसे ऐश्वर्यशाली व्यक्ति लगते, जिनके ऐश्वर्य पर उसे ईर्ष्या होती। अब उसे न तो साँझ को माँ का हालचाल पूछने की फुर्सत होती और न रिक्शे पर बैठे शहर के बच्चों से बात करने की। हाँ, बीरू मुंशी के बच्चों को खोद-खोद कर वह उनकी मौसी के बारे जरूर जानकारी लेता रहता। यह बात अलग है कि उसके हर काम में सलीका आ गया था। उसका रिक्शा चमचमाता रहता। कलाई पर रूमाल बँधा रहता और लौटते समय वह कुछ न कुछ खाने की चीज जरूर लिये आता, जिसमें से आधा भाग वह मुंशी जी के लड़कों को देता- "इन बच्चों का मैं कुछ लगता होता, तो आप मना नहीं करतीं।" यह कहते समय सहज प्रसन्नता से उसके नेत्र छलक उठते और उसकी सरल भावना पर तुषारपात करने की हिम्मत मुंशियाइन में नहीं थी।

यह कल्पना ही उसे सुखद लगती कि उसकी लायी हुई कुछ न कुछ चीज तो सोना भी खायेगी ही। बची चीज लाकर वह माँ को बड़े प्यार से खिलाता ओर कुछ न कुछ गुनगुनाता जाता। माँ, बेटे में आये इस सुखद परिवर्तन से अभिभूत थी। उसके गम्भीर चेहरे पर हँसी की छटा खिली तो, यह क्या कम सन्तोष का विषय है। एक दिन जब वह माँ के पोपले मुँह में अंगूर ठूँस रहा था, तो उसने कहा- "तू अपनी फिकर करता नहीं है। मेरी देह में क्या कल्ले फूटेंगे। तू मेरी इतनी खातिर क्यों कर रहा है?" उनके चेहरे पर एक ऐसी मुस्कान थी, जो इससे पहले नन्हकू ने नहीं देखी थी।

वह तपाक से बोला- "इसलिए की तुम मुझे ढेर सारे आशीर्वाद दो।"

"तुझे असली आशीर्वाद तो बीरू मुंशी ने दिया है।" माँ के झुर्री भरे चेहरे पर शरारत भरा वात्सल्य नाच उठा।

नन्हकू को अपनी साँस रुकती सी मालूम हुई, तो क्या माँ को मुंशियाइन ने सारी बात बता दी है? वह हकबकाकर बोला- "कैसा आशीर्वाद?"

बेटे के हड़बडाहट भरे चेहरे को देखकर माँ ने जो कहा, उससे नन्हकू चौंके बिना नहीं रह सका। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। क्या सचमुच बीरू मुंशी सोना का विवाह नन्हकू के साथ करने की बात कह सकते हैं, फिर सोना के माँ-बाप क्या वास्तव में उसके साथ शादी पर रजामंद हो जाएंगे; फिर सबसे बढ़कर सोना क्या सचमुच उसके घर में बहार बन कर आ जायेगी? नन्हकू का मन इतनी खुशियाँ समेट नहीं पा रहा था। इतना सुख समेटने के लिए उसे अपनी बाँहें छोटी जान पड़ीं; पर माँ के विश्वास दिलाने पर उसे यकीन करना पड़ा।

बिरादरी के पंचों ने जब यह बात जानी, तो उन्होंने नन्हकू की माँ को घेर लिया। चौधरी चेतराम ने कहा- "चाची! बहुत दिन बाद यह शुभ महूरत आया है। सोने जैसी बहू के घर आने की खुशी में बिरादरी को न भूल जाना।"

"वाह भैया! बिरादरी को भूलूँगी! बिरादरी में ही तो आदमी पैदा होता पलता-बढ़ता और शादी ब्याह होता है। बिरादरी तो शुरू से आखिरी तक साथ देती है"- नन्हकू की माँ ने हामी भरी।

"हाँ, वही तो मैंने कहा। ऐसे दिन बार-बार थोड़े ही आते हैं। दो बकरे और एक पीपा कच्ची दारू का इन्तजाम हो जाये। बाकी गाँव भर का खाना तो होगा ही"-चेतराम ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा और चाची के मौन को सहमति मानकर बिरादरी के लोग चले गये।

चाची अजीब साँसत में पड़ गईं। नन्हकू ने मेहनत-मजदूरी करके जो कमाया था, उसमें बहुत कुशलता

से खर्च किया जाता,तो सोना के लिए मंगलसूत्र, पायलें और दो चार साड़ियाँ ही खरीदी जा सकती थीं और ब्याह का साधारण खर्चा उठाया जा सकता था। इतने खर्चे में तो उसका कचूमर निकल जाएगा। बिना कर्ज लिए यह काम सम्भव नहीं था। वह नहीं चाहती थी कि वैवाहिक जीवन की इस शुरुआत में ही बेटे–बहू की खुशियों पर कर्ज का ग्रहण लग जाये।

बिरादरी की यह बात जब माँ ने नन्हकू को बताई, तब वह बिफर उठा– "माँ! मैंने दारू और गोश्त को कभी हाथ नहीं लगाया, न मेरे घर में इन बुराइयों के लिए गुंजाइश है। शादी–ब्याह खुशियों के साथ–साथ जिम्मेदारियाँ भी लेकर आते हैं। मैं अपनी खुशी के मौके पर न हत्या करवाऊँगा और न जिम्मेदारियों के पहले दिन को शराब के नशे में डुबोना चाहता हूँ।"

पंचों को यह भनक पड़ी, तो उन्होंने बीरू मुंशी और सोना के साथ ही नन्हकू और उसकी माँ को बुलाकर कहा– "हम लोग कोई नयी प्रथा डालने नहीं जा रहे हैं। शादी–ब्याह में ऐसी दावतें हम सभी करते हैं।"

"आप सभी जो कुछ करते हैं, मै वह नहीं करवाऊँगा"– नन्हकू ने सोना की आँखों में आश्वस्ति देखकर उत्साह से कहा।

"तो तुम बिरादरी से बड़े हो और शादी-ब्याह बिरादरी में ही होता है। हम तुम्हें बिरादरी से अलग करते हैं। कर लो शादी। देखेंगे तुम्हारी कूबत। क्यों पंचो,ठीक है न?" नन्हकू के चेहरे पर जलती नजर डालकर चौधरी चेतराम ने बिरादरी से अपना समर्थन चाहा।

बिरादरी ने 'हाँ' में सिर हिलाया– "हाँ और क्या? कोई भी बिरादरी से बड़ा नहीं है। और बिरादरी से अलग होने वाले का शादी-ब्याह कैसा? यह दम तो बीरू मुंशी में भी नहीं है"– महतो ने कहा।

अब चौधरी को बाजी अपने हाथ लगी। बिरादरी के समर्थन से अकड़े चौधरी ने मूँछों पर हाथ फेरकर मुंशी जी से कहा– "आप की क्या राय है? अब नन्हकू बिरादरी से अलग है। अब तो आप भी इस शादी के पक्ष में नहीं होंगे।"

सबकी ओर एक नजर डालकर गम्भीर स्वर में बीरू मुंशी ने जो कहा, उसकी किसी को उम्मीद नहीं थी। वे बोले– "अकेले नन्हकू ही नहीं, मैं भी शुरू से ही आपकी बिरादरी से बाहर हूँ; क्योंकि नन्हकू और मैं न पाकेटमारी कर सकते हैं और न तुम लोगों की दावत में दारू और गोश्त खिलाकर कर्जदार बनने की हिम्मत हम लोगों में है। मेहनत मजदूरी का पैसा इस तरह उड़ाने के लिए होता भी नहीं है। वैसे अच्छा यह होगा कि इस अहम मसले पर सोना की राय भी ले ली जाये।"

चौधरी ने जलती आँखों से सोना की ओर देखा। दारू और गोश्त के खतम होते जुगाड़ के कारण उनका रोम–रोम जल रहा था। बोले– "कह; तुझे जो कहना हो; पर यह जान ले, बिरादरी बहुत बड़ी चीज होती है।"

"हाँ, मालूम है। हमारी बिरादरी इतनी बड़ी चीज है कि अपने बड़प्पन के चलते उसे आये दिन बड़े घर की हवा खानी पड़ती है। तब बीरू जीजा ही बड़े लोगों की जमानतें करवाते हैं। ऐसा बड़प्पन मुझे नहीं चाहिए। नन्हकू की ईमानदारी की ही मैं कायल हूँ। और आप लोग यह चाहते हैं कि बिरादरी के भोजन में कर्ज के बोझ से लदकर नन्हकू या तो दम तोड़ दे या आप सबकी तरह चोरी–चकारी में लगकर ईमानदारी का अनमोल रत्न खो दे। ब्याह मेरा होना है या बिरादरी का?" अपने निचले ओंठ को दाँत से दबाती हुई सोना ने कहा, तो बिरादरी हक्की–बक्की रह गयी।

ब्याह के दो साल बाद नन्हकू जब अपने दरवाजे पर बँधी दो भैंसों का दूध निकाल कर घर जा रहा था और सोना दाई का प्रशिक्षण लेकर लौटी अपने दवा की पेटी को तरतीब दे रही थी, तभी चौधरी चेतराम का लड़का राजू उधर से आँखें पोंछता हुआ निकला। नन्हकू ने उससे पूछा– "क्या बात है?"

उसने कहा– "घरवाली के प्राण संकट में हैं। शायद ही बचे। बच्चा उलट सा गया है।

आँगन में खड़ी सोना ने यह सुना, तो अपनी पेटी उठाती हुई बोली– "तुम चलो। पानी गरम करवाओ। मर्द होकर इस तरह हौसला खोते हो। तुम्हीं रोओगे, तो उस बेचारी को हिम्मत कौन बँधायेगा? तुम पहुँचो, तब तक मैं आती हूँ।"

नन्हकू की माँ को यह बात अटपटी लगी। बोली– "बहू! तुम उसी चौधरी की बहू बचाने जाओगी, जिसने हमें बिरादरी से बाहर कर रखा है!"

"इसमें उस बेचारी का क्या कसूर? फिर चौधरी के कसूर की सजा उस बेगुनाह को क्यों दी जाये? हम लोग बिरादरी से अलग हैं, उसके दुख–दर्द से नहीं"–सोना ने धीमे स्वर में सास को समझाया और दवा की पेटी लेकर चल दी।

नन्हकू की माँ को लग रहा था, जैसे बहू चौधरी के गुनाह को क्षमा करके ऐसा बदला देने जा रही है, जिसकी मार चौधरी को जिन्दगी भर नहीं भूलेगी। अब चौधरी में हिम्मत हो, तो सोना को बिरादरी से अलग करके देखे। सोना की बिरादरी तो कलक, ममता और मानवीयता की बिरादरी है। □

– मसीत, साण्डला, हरदोई (उ.प्र.)

मधुरेण समापयेत्

जब कोतवाल पैदल चला

— शंकर पुणतांबेकर

सुधी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होना स्वाभाविक है कि इस स्तम्भ के लेखक सुविख्यात व्यंग्यकार श्री शंकर पुणतांबेकर जी को गत २६ जुलाई को हैदराबाद में 'आचार्य आनन्द ऋषि पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। 'राष्ट्रधर्म की तदर्थ हार्दिक बधाई। — संपादक

कोतवाल या अफसर पैदल चले, यह "पैरों" का अभिमान हो, लेकिन "पद" की लज्जा की बात है। अफसर के पैर कुली होते हैं, जो बोझ को मुकाम–वाहन–मुकाम अथवा वाहन–मुकाम–वाहन के बीच फासले में ढोते हैं। और ये ऐसे कुली हैं, जिनकी शिकायत बोझ (वाला) शीघ्र सुनता है–

एक दिन की बात है कि कोतवाल नगर की सड़क पर पैदल चला।

लज्जा की बात लोगों के लिए आश्चर्य की बात बन गयी।

आश्चर्य की बात कई लोगों के लिए भय की बात बन गयी।

आग बुझाने का दमकल जब चल पड़ता है, तो खतरे की घण्टी बजती है–रास्ता दो, मुझे रास्ता दो कि मुकाम पर शीघ्र पहुँच सकूँ।

कोतवाल या अफसर भी जब चल पड़ता है पैदल तो खतरे की घण्टी बजती है आगे–आगे लोगों में आप ही - बाप रे बाप! इससे बचो, इससे बचो।

दमकल पानी लेकर निकलता है आग बुझाने, कोतवाल या अफसर आग लेकर निकलता है प्यास बुझाने।

कोतवाल को लोग नाना प्रकार से ले रहे हैं।

यह तोप का गोला किधर निकल पड़ा?

आज किसका मुँह देखा कि इस दैत्य के दर्शन हुए।

यह गाज पता नहीं, किस पर गिरने को निकल पड़ी है!

बचो बचो, अजगर से बचो! न मालूम किसको निगलने चल पड़ा है!

हटो हटो, सँभलो! देखा, उधर वह यमराज आ रहा है!

जो लोग भाग नहीं सकते थे, काम–धंधे पर थे, खासकर छोटे दुकानदार–पान वाले, सब्जी वाले, मोची कुम्हार, सुई–तागे वाले नाक में दम साधे रहे जब तक कोतवाल गुजर नहीं गया। उसका कुचल डालने वाला जूता उसके पैरों में ही नहीं था, उसकी आँखों में भी था। उसका बरसने वाला डंडा उसकी बगल में ही नहीं था, उसकी भ्रकुटियों में भी था। उसका कसने वाला पट्टा उसकी कमर में ही नहीं था, उसके ओठों में भी था।

उसके आगमन की बात सुनकर कई घरों ने खिड़की–दरवाजों के पट बंद कर लिये, अकाल का सामना कर सकते हैं, इसका नहीं।

आग का सामना कर सकते हैं इसका नहीं।

और तो और महामारी का सामना कर सकते हैं, इसका नहीं।

कोतवाल का एक–एक कदम इस तरह पड़ रहा था, जैसे वह कोई बड़ी लड़ाई जीत आया हो।

वह लोगों को ऐसे देख रहा था, जैसे वह उनका मुक्तिदाता हो।

किसी को भी देख उसके मुँह से निकल पड़ता है, क्यों बे! अबे ऐ! अरे ए...! अबे ए...! आदि।

ये गालियाँ नहीं हैं, पुलिस–इंजन की भाप है, जो इसके डण्डे में भी विद्यमान है।

मुँह में गालियों की और हाथ में डण्डे की भाप न हो, तो पुलिस–इंजन ठप्प हो जाये।

लोगों को भी कोतवाल के मुँह से निकलने वाली भद्दी से भद्दी गाली भद्दी नहीं लगती।

अबे ऐ!

जी, माई बाप!,

आँख क्यों उठाये हुए है?

गलती हो गयी हुजूर, माफ कर दो।

थाने में बन्द कर दूँगा....

जी मालिक, अभी लाया पान।

कोतवाल की अतिरिक्त भाप बाहर पड़ जाती है और पान का कोयला ले वह आगे बढ़ता है।

क्यों बे....! चौकी पर हाजरी नहीं दी?

अपने धन्धे से फुरसत नहीं मिली हुजूर। इधर–उधर हाथ नहीं मारा, लड़ाई–झगड़ा नहीं कराओ, तो पेट कैसे भरे।

थाने में बन्द कर दूँगा बे!

जी मालिक, अभी चाय लाया।

विद्वान् की सूक्तियों में चाँद–सूरज हों; पर कोतवाल की गालियों में जो 'पशु–जीव' हैं, वे चाँद–सूरज से कही अधिक बढ़कर है।

कोतवाल की गालियों में जहाँ "खुल जा सिमसिम" है, वहाँ विद्वान् की सूक्तियों में "बन्द हो जा सिमसिम" है।

विद्वान् जब बाजार से गुजरता है तो जैसे चीटी ही गुजरती है।

कोतवाल जब बाजार से गुजरता है तो साक्षात् हाथी ही गुजरता है। लोग सूरज से नहीं डरते, अंधेरे से डरते हैं।

अबे, यह बिजली क्यों जला रखी है दिन में ही?

अभी बुझा देता हूँ हुजूर।

कितना कमाया अबे अँधेरे में?

अभी लाये देता हूँ आपका हफ्ता हुजूर।

कोतवाल और आगे बढ़ता है।

अबे ए....

जी हुजूर।

बड़ा ईमानदार बनता है....

नहीं, ऐसी बात नहीं मालिक।

बोल, महात्मा गांधी बड़ा है या कोतवाल बड़ा है?

अब यह भी कोई सवाल हुआ हुजूर।

अभी तुझे थाने में बन्द कर दूँ तो क्या तुझे तेरा यह दीवार पर टँगा गांधी बचाने आ सकता है?

मालिक! एक ओर सत्य है एक ओर सत्ता...

उतार बे यह महात्मा गांधी की तस्वीर दीवार से उतार फेंक।

हुजूर, मैं तो बहुत छोटा आदमी हूँ, यहाँ बच्चों को पढ़ाकर पेट भरता हूँ। क्या मैं बच्चों को पढ़ाऊँ कि कोतवाल महात्मा गांधी से बड़ा है।

जबान लड़ाता है बे .... और कोतवाल की डण्डों की बरसात।

कोतवाल वहाँ से आगे बढ़ा।

अबे ए!

आइए हुजूर।

बहुत मुटाता जा रहा है तू। ये दुकान किसी सर्राफ की है या लुटेरे की?

विराजिए तो हुजूर।

कितने का 'स्मगल' किया?

अरे हुजूर के लिए शरबत लाओ और संदूक में से पॉलिश की डिब्बी और बुरुश दो मुझे, हुजूर के जूतों को चमका दूँ।

कुछ देर में लोगों ने देखा कोतवाल एक कुर्सी में बैठा शरबत पी रहा है, उधर सर्राफ उसके पैरों में बैठा जूतों पर पॉलिश कर रहा है। □

— २, मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५००२

राष्ट्रधर्म
आश्विन/कार्तिक-२०५५
अक्टूबर-१९९८

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित

संपादक : आनन्द मिश्र

मृत्यु–लोक से विदा हुए मुझे पचास साल से ज्यादा हो चुके हैं और इस बीच जमुना में पानी तो बहुत बह ही चुका है, गन्दगी भी उसमें बहुत मिल चुकी है। फिर भी हर साल मेरी 'समाधि' पर जो दो मर्तबा फूल चढ़ाये जाते हैं, परिक्रमा की जाती है और 'राम–धुन' गायी जाने के साथ गीता, कुरान, इंजील और गुरुग्रन्थ साहब के चन्द श्लोक वगैरह सुनाये जाते हैं, उनके दिखावटीपन को देखकर कुछ अपने मन की बात कहे बिना मुझसे रहा नहीं जा रहा है। तो कहाँ से शुरुआत करूँ ? मेरे ख्याल से अफ्रीका के अपने सत्याग्रह से शुरू करना ठीक रहेगा; क्योंकि उसके पहले मुझे जानता ही कौन था ? लोगों को यह तो याद ही होगा कि अपना वह पहला सत्याग्रह जिस बात को लेकर मैंने शुरू किया था और जिसमें वहाँ के सभी हिन्दुस्तानियों ने मेरा साथ दिया था, उसे मैंने वहाँ के तब के सर्वेसर्वा जनरल स्मट्स से गुपचुप समझौता करके जब अकस्मात् वापस ले लिया था, तो मुझसे गुस्साये एक पठान ने मेरे सिर पर लाठी मारी थी। सच में उस पठान का गुस्सा एकदम सही था; परन्तु मैं तब उसकी माफी की बात प्रचारित कराके अपने उस 'विश्वासघात' पर पर्दा डालने में सफल रहा था। इसी का सुफल था कि जब मैं देश लौटा, तो मेरा हाथोंहाथ स्वागत हुआ।

देश लौटकर राजनीति में उतरने से पहले पूरे देश का दौरा करने का सुझाव मुझे श्री० गोपालकृष्ण गोखले ने दिया था। मैं देश भर में तीसरे दर्जे के रेल डिब्बे में घूमा और सादगी तथा त्याग को पुजंते देखकर उसे ही अपनाने को तय किया। देहाती किसान की सादगी, गरीबी को अपनाकर मैं जनता की श्रद्धा का पात्र इस हद तक बन गया कि लोगों ने बाद में मुझे 'महात्मा' बना दिया। बस, मेरे मन में यह बात कौंद गयी कि अपना हर दाँव इसी 'महात्मा' की आड़ में चलकर राजनीति में अपना दबदबा बना लूँ। इसी समय 'बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा', लोकमान्य तिलक

मी मोहनदास करमचन्द गान्धी बोलतोय

का अचानक १ अगस्त १९२० को निधन हो गया। मैं ने मौके का फायदा उठाया और किसी तरह कांग्रेस की बागडोर सम्भाल ली। द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति पर जब तुर्की भी हार गया था, तो अंग्रेजों द्वारा तुर्की के खलीफा की गद्दी खत्म कर दिये जाने से गुस्साये हिन्दुस्तान के मुल्ला–मौलवियों ने 'खिलाफत' बहाल करने का आन्दोलन शुरू कर दिया। कांग्रेस के असहयोग–आन्दोलन को 'हिन्दू–मुस्लिम–एकता' के नाम पर जब मैंने 'खिलाफत–आन्दोलन' की पूँछ से बाँध दिया, तो कांग्रेस में मेरे इस कदम का समर्थन करने को कोई तैयार नहीं हुआ। तब मैंने पं० मोतीलाल नेहरू की इस शर्त को मानकर उन्हें पटाया कि यदि देश आजाद हुआ, तो उन्हें और अगर वे न रहे, तो उनके बेटे जवाहर लाल नेहरू को प्रधानमन्त्री बनाऊँगा। अपनी इसी गुप्त शर्त की वजह से मैंने सरदार को कांग्रेस का राष्ट्रपति और देश का प्रधानमन्त्री नहीं बनने दिया और जवाहरलाल को देश का पहला प्रधानमन्त्री बनवाया। अपनी इसी बात को रखने के लिए मैं जवाहर की राह के काँटों को बराबर साफ करता रहा। सुभाष चन्द्र बोस को तो मैंने कांग्रेस से 'दूध की मक्खी' की तरह निकलवा बाहर किया; क्योंकि वह तो मेरे चहेते जवाहर लाल को ही नहीं, मुझे भी किनारे कर देता। डॉ० नारायण भास्कर खरे को भी मैंने इसी कारण कांग्रेस से चलता कराया था। जनता 'खिलाफत' को 'अंग्रेजों की खिलाफत' समझकर मेरे पीछे खड़ी हो गयी, लेकिन बुरा हो उस कमाल अतातुर्क का, जिसने तुर्की में क्रान्ति करके खुद 'खलीफा' का पद खत्म कर दिया। जब बाँस ही नहीं रहा, तो बाँसुरी कहाँ से बजती ? खिलाफत–आन्दोलन अपनी मौत आप मर गया और उसका गुबार मौलानाओं (मुहम्मद अली, शौकत अली) ने जगह–जगह दंगा कराकर हिन्दुओं के संहार के रूप में निकाला। मलाबार में तो मोपलों ने इस्लामी हुकूमत की घोषणा करके हिन्दुओं का ऐसा संहार किया कि गोरखा फौजें ही जाकर उसे दबा पायीं। मैंने मोपलों को 'देशभक्त' कहकर निर्दोष करार दिया। तबलीगी नेता ख्वाजा हसन निजामी ने स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या करा दी, तो मैंने 'हत्यारे' अब्दुर्रशीद को भी देशभक्त ही माना। लेकिन मौलानाओं ने मेरे साथ क्या किया ? उन्होंने मेरे बड़े पुत्र हरिलाल को

बरगलाकर (मुसलमान) अब्दुल्ला गान्धी बना लिया और मुझे भी 'इस्लाम कुबूल करने की दावत' दे डाली। भला हो आर्य–समाज का, जिसने मेरे हरिलाल को तो फिर से हिन्दू बना ही लिया, उस मुल्ला को भी हिन्दू बना, लिया जिसने हरिलाल को 'कलमा' पढ़ाकर मुसलमान बनाया था। बा उस दिन कितनी खुश हुई थीं, बता नहीं सकता। लेकिन मेरी आँखें फिर भी नहीं खुलीं। इसके पहले विजयलक्ष्मी को भी उस मुसलमान ने अपने प्रेम–जाल में फँसाकर मुसलमान बनाने का षड्यन्त्र किया था, जिसे पं० मोतीलाल नेहरू ने अपने अखबार 'इण्डिपेण्डेंस' का सम्पादक बनाकर आनन्द भवन में टिका रखा था; पर वह मुसलमान ही क्या, जो जिस पत्तल में खाये, उसमें छेद न करे। मैंने विजयलक्ष्मी को समझाकर उसका विवाह रणजीत पण्डित से करा दिया। पं० मोतीलाल की बिटिया और मेरे पुत्र के मुसलमान बन जाने से इस्लाम का कितना प्रचार हो जाता; यह समझने की आज बहुत जरूरत है।

डॉ० भीमराव अम्बेदकर भी अंग्रेजों के बहकावे में आकर हरिजनों के लिए पृथक्–निर्वाचन की माँग कर रहे थे। मैंने उन्हें समझाकर मना लिया। पूना–समझौता ने हिन्दू–समाज के निर्बल अंग को उससे काटकर अलग कर देने के अंग्रेजों के षड्यन्त्र पर पानी फेर दिया। आज जो लोग मुझे 'शैतान की औलाद' कहते फिरते हैं, उन पर मुझे तरस आता है।

१९३० में मैंने वायसराय लार्ड इरविन से समझौता किया और भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव को तय तारीख से पहले ही फाँसी पर लटका देने का सुझाव चुपचाप दे दिया, ताकि समझौते के खिलाफ सुभाष बोस आन्दोलन न खड़ा कर पायें और जनता इन फाँसियों में ही उलझी रह जाय। १९४२ में 'भारत–छोड़ो' का नारा भी मैंने जान–बूझकर लगाया था, ताकि देश सावरकर के बजाय मेरे पीछे खड़ा हो जाय, सुभाष को भूल जाय; हालाँकि मैं जानता था कि इससे जिन्ना को फायदा होगा। अहमदनगर किले से सिर्फ मुझे ही अंग्रेजों ने क्यों छोड़ा? मैंने जिन्ना से उसके मलाबार हिल स्थित बँगले पर जा–जाकर वार्त्ता क्यों की? भूलाभाई देसाई को लियाकत अली से समझौता मुस्लिम लीग की शर्तों पर करने को क्यों बाध्य किया? सरदार पटेल को क्यों बार–बार पीछे ढकेला? जवाहरलाल को हर बार क्यों आगे बढ़ाया, प्रधानमन्त्री बनाया? खान अब्दुस्समद खाँ (बल्लोच गान्धी) और खान अब्दुल गफ्फार खाँ (सरहद्दी गान्धी) को धोखे में रखकर पाकिस्तान की माँग को लार्ड माउण्टबैटन के सामने क्यों मान लिया? माउण्टबैटन को देश–विभाजन के खिलाफ आन्दोलन न होने देने के लिए चुपचाप क्यों आश्वस्त कर दिया? कांग्रेस महासमिति में विभाजन का समर्थन करने की अपील करके उसे मंजूर क्यों करवाया? अपनी मजबूरी का रोना–रोकर सबको धोखे में क्यों रखा? १५ अगस्त आने के पहले ही बहाने से नोआखाली क्यों खिसक गया? हसन शहीद सुहरावर्दी, जो मुस्लिम लीग का 'डाइरेक्ट ऐक्शन डे' का बंगाल में कर्त्ता–धर्त्ता था, को 'भला आदमी' होने का प्रमाण–पत्र क्यों दिया? वगैरह–वगैरह सवालों का मेरे पास कोई जवाब नहीं है। असली बात तो यह है कि मैं एक तरह से न सिर्फ जवाहरलाल को प्रधानमन्त्री बनाये जाने की राह साफ करने में जुटा रहा, बल्कि पाकिस्तान बनाये जाने की राह भी बुहारता रहा। सत्य और अहिंसा तो बस मेरे दिखावटी हथियार थे। इन दोनों का पालन करने की दृढ़ता मेरे मन में कभी क्यों नहीं उपजी, कह नहीं सकता।

'मेरे शरीर के टुकड़े भले ही हो जायें; पर देश के टुकड़े नहीं होने दूँगा' अपने इस घोषित वचन का पालन ऐन मौके पर मैंने क्यों नहीं किया? यह अब कोई रहस्य नहीं रह गया है। विभाजन के विरुद्ध यदि मैं आमरण–अनशन कर देता, तो दुनिया की कोई ताकत देश का बँटवारा नहीं करा पाती; परन्तु मैंने ऐसा जान–बूझकर नहीं किया; क्योंकि मुझे जवाहरलाल देश से ज्यादा प्रिय था। क्या मैं अंग्रेजों का एजेण्ट था? जैसा कि कम्युनिस्टों का आरोप है? इस सवाल का जवाब भी इन सवालों के जवाब में ही छिपा है कि जो बिड़ला और बजाज कांग्रेस और मेरा पूरा खर्च उठाते थे, उनके विरुद्ध अंग्रेजों ने कोई कार्यवाही क्यों नहीं की? जबकि कई साधारण कांग्रेसियों के घर तक खुदवा डाले थे अंग्रेजों ने? मैं हर आन्दोलन को उसके शिखर पर पहुँचते ही अकस्मात् बिना किसी से सलाह–मशविरा किये क्यों वापस ले लेता रहा? मैंने अपना कोई आन्दोलन कभी सफल क्यों नहीं होने दिया? हाँ, मुझसे एक बहुत बड़ी गलती तब हो गयी, जब मैंने पाकिस्तान को ५५ करोड़ दिलाने के लिए अनशन कर दिया। मैं यहीं धोखा खा गया कि लोग इसे भी बर्दाश्त कर ही लेंगे मेरी पिछली जिदों की तरह। और एक बेहद नाराज नौजवान नाथूराम गोडसे ने मुझे गोली मार दी। मेरे तीन गोलियाँ लगीं और मैं वहीं ढेर हो गया। मुँह से आह तक न निकल पायी। लेकिन वाह रे मेरे

(शेष पृष्ठ ७७ पर)

दृष्टिकोण-

घर फूँक तमाशे की राजनीति

देश ने पिछले दिनों एक राजनीतिक तमाशा देखा यह तमाशा मानों एक घूमते हुए रंगमंच पर था। गुरुवार २३ जुलाई को कुर्ला हावड़ा एक्सप्रेस जैसे ही पश्चिम बंगाल में उलूबेरिया (जिला हावड़ा) स्टेशन पहुँची, फॉरवर्ड ब्लॉक के विधायक राबिन घोष के नेतृत्व में ७००० से ८००० लोगों की भीड़ ने गाड़ी पर हमला बोल दिया। खिड़कियों को तोड़-ताड़ कर डिब्बे में बैठे हुए उन ३४ बांग्ला भाषियों को; जिन्हें महाराष्ट्र सरकार ने बांग्लादेश के अवैध घुसपैठिये के रूप में मुम्बई से पिछले दिन ही रवाना किया था, अपने साथ ले गये। पश्चिम बंगाल में वामपन्थी सरकार है और उसी के एक घटक फॉर्वर्ड ब्लॉक के विधायक ने यह 'मुक्ति अभियान' छेड़ा और उसे पश्चिम बंगाल की सरकार का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। तमाशे का रूप 'महाराष्ट्र विरुद्ध पश्चिम बंगाल' बनाकर सनसनी पैदा की गई। आरोप यह रहा कि निष्कासित किये जा रहे लोगों में कुछ पश्चिम बंगाल के ही मुसलमान हैं और महाराष्ट्र की शिवसेना-भाजपा सरकार अपनी मुस्लिम-विरोध की नीति के कारण अपने ही देश के नागरिकों को विदेशी करार देकर देश से बाहर बलात् खदेड़ रही है। मामला कलकत्ता उच्च न्यायालय में पहुँच गया है।

दूसरा दृश्य उधर मुम्बई में महाराष्ट्र विधानसभा में देखा गया। विपक्ष अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के प्रति खास हमदर्दी दिखाने के लिए उधार बैठा रहता है, के हाथ अनायास ही मौका लगा, उसने प्रखर विरोध का फर्ज निभाया। ऐसे में महाराष्ट्र के चतुर मुख्यमन्त्री मनोहर जोशी ने सी०पी०एम० विधायक नरसैया आदम से सीधा सवाल किया कि "आप हमारे साथ हैं या पश्चिम बंगाल सरकार के साथ ?" इस प्रकार देश के दो प्रदेश या कहें दो सरकारें आमने-सामने हो गयीं।

तीसरा दृश्य देश की राजधानी दिल्ली में, मतलब लोकसभा में देखा गया, जहाँ पश्चिम बंगाल के विपक्षी सांसद् अपने प्रदेश के पक्ष में खड़े हो गये। उलूबेरिया के सी०पी०एम० सांसद् हन्नान मुल्लाह का कहना था कि १५ जुलाई को जिन २६ लोगों की बैच को महाराष्ट्र पुलिस ने बी०एस०एफ० को सौंपा, उनमें से अधिकांश याने १८ की पहचान भारतीय नागरिक के रूप में हो चुकी है। उन्होंने सदन को बताया कि पश्चिम बंगाल के हावड़ा, हुगली, मिदनापुर तथा उत्तर और दक्षिण चौबीस परगना आदि पाँच जिलों के जवाहरात और जरी का काम करने वाले सैकड़ों मुस्लिम कारीगर मुम्बई और गुजरात में जाते हैं। सी०पी०एम० नेता सोमनाथ चटर्जी ने महाराष्ट्र सरकार के रवैये को अमानवीय बताया। इसके विरुद्ध केन्द्रीय गृहमन्त्री लालकृष्ण आडवाणी ने केन्द्र का दृष्टिकोण रखते हुए कहा कि महाराष्ट्र सरकार से प्राप्त जानकारी बताती है कि सन्देहास्पद लोगों को उनकी नागरिकता को प्रमाणित करने के पूर्ण अवसर दिये गये थे और इस प्रकार पूरी कार्यवाही वैधानिक तरीके से की गयी है।

उल्लेखनीय है कि तीनों दृश्यों में सम्बन्धित नेता घुसपैठियों को भारत में नहीं रहने देने की बातें करते रहे और एक दूसरे को आरोपित भी करते रहे। मामला न्यायालय में है और दूध का दूध और पानी का पानी देखने को मिलेगा ही, पर इस राजनीतिक तमाशे ने बांग्लादेश के सामने मानों अपने देश का पानी उतार दिया। बांग्लादेश के नेता इस तमाशे को देख बाग-बाग हो रहे होंगे, तो इधर भारत की जनता इसे देखकर हमारे राजनेताओं पर तरस खा रही है।

हमारे देश में बांग्लादेशी घुसपैठियों की समस्या एक उजागर सत्य है। हमारी जनगणना रिपोर्ट बताती है कि बांग्लादेश के सीमावर्ती भारतीय क्षेत्रों में जनसंख्या के तेजी से बढ़ते रहने का विशिष्ट कारण है बांग्लादेशियों की घुसपैठ। और तो और वे देश की राजधानी दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडू, तक पसरते जा रहे हैं। मोटे अनुमानों के अनुसार घुसपैठियों की संख्या तीन करोड़ के लगभग है। विदेशियों का बिना वीसा लिए भारत में रहना कानूनन अवैध तो है ही; पर साथ ही अनेक समस्याओं को जन्म देता है। हमारे देश के संसाधनों के बल पर जहाँ हम एक विकासमान राष्ट्र के रूप में वर्षों से बने हुए हैं, वहाँ विदेशी जनसंख्या का बोझ हमारे विकास को प्रभावित करता है। दूसरी समस्या बड़ी ही गम्भीर है। अभी पचास वर्ष पहले हमने मानो असहाय होकर देश का विभाजन स्वीकारा है। उस विभाजन का एकमेव कारण रहा खुद को कुछ खास और अलग समझने वाले मुसलमानों द्वारा मजहबे-इस्लाम के नाम पर एक अलग राष्ट्र पाकिस्तान के लिए जद्दोजहद् ! ठीक उसी रास्ते पर चलते हुए देश का फण्डामेन्टलिस्ट मुस्लिम

तबका अपने हममजहबियों की संख्या बढ़ा रहा है, जो भविष्य में एक नये विभाजन के लिए 'डायरेक्ट–ऐक्शन' पर उतारू होगा। बांग्लादेश के पिछड़ा होना और वहाँ औलाद की बढ़ती हुई फौज धर्मांध मुस्लिम नेताओं के लिए उपयुक्त साधन है। बांग्लादेश की विगत जनगणना प्रमाणित करती है कि १९७१ से १९९१ के दो दशकों में ७५ लाख बांग्लादेशीयों ने भारत में सफल घुसपैठ की है। (इण्डियन एक्सप्रेस अहमदाबाद, १६ सितम्बर १९९२)।

राष्ट्र के सम्मुख की इन भीषण समस्याओं के अतिरिक्त राज्य शासन के सम्मुख आने वाली सामयिक समस्याएँ भी अपना महत्त्व रखती हैं। महाराष्ट्र विशेषकर मुम्बई के इस दशक का इतिहास बताता है कि यह महानगर संगठित गिरोहबाजी से पीड़ित है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मुम्बई का प्रशासन इस नतीजे पर पहुँचा है कि हत्या, डाकेजनी, तस्करी आदि के लिए गुण्डों के गिरोहों के लिए बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठिये सस्ता सुलभ–साधन बन गये हैं। इनकी संख्या एक मोटे अनुमान के अनुसार ४६ हजार के आसपास है, जो विशेषकर उत्तर पूर्व मुम्बई के एकता नगर, पी०एम०जी० कॉलोनी, चिखलवाड़ी, साईबाबा नगर गोवंडी–मानखुर्द में बस गये हैं। महाराष्ट्र की वर्तमान गठबन्धन सरकार ने ही नहीं, तो पूर्व की कांग्रेस सरकार भी बांग्लादेशियों के देश निकाले की कार्रवाई करती रही है। हालाँकि ये कार्रवाई एक खानापूरी भर प्रतीत होती है। वर्ष १९८२ से आज तक मात्र ८१०३ घुसपैठिए, मतलब औसतन प्रतिवर्ष ४७५ लोगों को खदेड़ा गया है। इस गति से तो इक्कीसवीं सदी के अन्त में जाकर यह समस्या कहीं समाप्त हो।

यथार्थ में देखा जाए, तो देश की राजनीति ने समस्या की जड़ों को मजबूत बनाया है धर्मनिरपेक्षतावादी शिवसेना–भाजपा पर आरोप लगाते हैं कि वे घुसपैठिए हिन्दुओं को शरणार्थी मान आश्रय देते हैं और मुसलमानों को निकाल भगाते हैं, यह साम्प्रदायिकता है। इसका सीधा सटीक उत्तर है मजहब के आधार पर मुसलमानों ने हथियाया पाकिस्तान। बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठिए धर्मनिरपेक्षतावादी दलों की वोट बैंक अर्थात् उनके नेताओं की सत्ता के प्राणतत्त्व बन चुके हैं और यह एक वास्तविकता है, इसीलिए तो पश्चिम बंगाल सरकार के अधिकारी शासकीय बैठकों तक में कह देते हैं कि 'हमारी सरकार मजदूर एकता में यकीन रखती है। बांग्लादेश से आने वाले गरीब मजदूरों के लिए हमें हमदर्दी रखना ही चाहिए।' पर विदेशियों के प्रति उनकी यह हमदर्दी भारत के लिए दर्दनाक है। इसीलिए इस बीमारी का इलाज दो स्तरों पर होना चाहिए। आज तक भाजपा युवामोर्चा, विद्यार्थी परिषद, बजरंग दल ने बहुत बात बहादुरी दिखायी, लफ्फाजी की; पर घुसपैठी डटे हुए हैं। वस्तुतः भाजपा को चाहिए कि उसके अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ, जो असल में मुस्लिम प्रकोष्ठ है, को ही यह जिम्मेदारी सौंप दे। वही देशी–विदेशी मुसलमानों की पहचान करें। शासकीय स्तर पर इसे सुलझाने के लिए वर्तमान समय बहुत अच्छा है। राजनीति से ऊपर उठकर लोकसभा संकल्प पारित करे कि ३१ दिसम्बर २००० तक सीमावर्त्ती देशों से जनसंख्या विनिमय कर लिया जाये। जो कल की सरकारों ने नहीं किया, उसे आज किया जाये। स्वतन्त्रता के पचास वर्षों बाद किसी को याने हिन्दू को भी 'शरणार्थी' के रूप में भारत में आने का अधिकार क्यों हो ? दो वर्षों में वे फैसला कर लें कि भारत के नागरिक बनना है या पाकिस्तान, बांग्लादेश में ही रहना है। कभी भी कहीं भी रहने का अधिकार उन्हें मिल नहीं सकता। आने के इच्छुक हिन्दुओं का भारत में स्वागत कर घुसपैठियों को बाहर का रास्ता बताया जाये। आज भाजपा के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार पाक, बांग्लादेश से यदि दो टूक बात करने की हिम्मत नहीं करती तो बीमारी मिट नहीं सकती और राजनैतिक तमाशे चलते ही रहेंगे।

(विचार सेवा)

❐

प्रेरक-प्रसंग

चयन

संजीव कुमार आलोक

रूस के सम्राट् जार के मुख्यमन्त्री काउण्ट विट्टी ने एक दिन अपने सचिव से कहा कि ऐसे सब लेखकों की सूची बनाओ, जिन्होंने अखबारों में मेरे विरुद्ध लिखा है। सूची तैयार हो गयी। तब विट्टी ने कहा कि अब उन लेखकों के नाम चुनो, जिन्होंने मेरी सबसे कठोर आलोचना की है। यह नयी सूची जब बन गयी, तब सचिव ने पूछा कि इन्हें क्या सजा दी जायेगी ?

"सजा ! कैसी सजा ? अब मैं इनमें से अपने सबसे कठोर आलोचक को अपने समाचार–पत्र का सम्पादक बनाऊँगा। मेरा अनुभव है कि सबसे कठोर आलोचक ही सच्चा हितैषी होता है", विट्टी ने जवाब दिया। ❐

प्रकाश-पर्व

एवं महालक्ष्मी

की पूजा का प्रतीकार्थ

• प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह

दीपोत्सव अन्धकार पर प्रकाश की विजय का पर्व है, कालुष्य और कालिमा पर स्वच्छता तथा शुभ्रता की स्थापना का पर्व है। दीपोत्सव मात्र मिट्टी के दीपक, सरसों या तीसी के तेल, कपास या कपड़े की बाती और इनसे विकसित लौ का प्रकाश-पुञ्ज नहीं; प्रत्युत हमारे शुचिमय कर्मों तथा प्राणवान् पौरुष का भी प्रतीक है। यह केवल भौतिक समृद्धि और सम्पन्नता का सूचक नहीं, आत्मा की शुचिता, शुभ्रता एवं सात्विकता के प्रकटीकरण का प्रतीक भी है। इस पावन-पर्व के मूल में धर्म, कर्म, ज्ञान एवं अध्यात्म की मंगलमयी घोषणा भी है। ज्ञान और क्रिया के साथ भक्तिमयता का प्रकृष्ट रूप है दीपों का यह मंगलमय त्योहार। इसका आधार सत्य है, इसमें जो तेल है, यह तप है, बाती दया है और लौ क्षमा है। महाभारतकार भगवान् वेद व्यास ने पाण्डवों को उनकी वन-यात्रा के समय ऐसे ही ज्ञानमय, कर्ममय, तपमय, भक्तिमय सत्याधारित जीवन-दीप जलाते रहने का उपदेश और सन्देश दिया था-

"सत्याधारस्तपस्तैलं
दयावर्त्तिः क्षमा शिखा।
अन्धकारे प्रवेष्टव्यो
दीपो यत्नेन वार्यताम्।।"

ज्योति-पर्व दीपावली हमें यही सन्देश देती है कि हमारे जीवन में जब-जब अन्धकार का प्रवेश हो, हमें यत्न से ऐसा ही दीपक जलाना चाहिए। यह धर्म का दीप है। धर्म के चार पैर होते हैं- सत्य, तप, दया और दान या क्षमा।

अन्धकार और प्रकाश का संघर्ष अनादिकाल से चला आ रहा है। बार-बार अन्धकार ताल ठोककर प्रकाश के सामने आकर खड़ा होता है और हर बार उसे पराजय का मुख देखना पड़ता है। देव और दानव, सुर और असुर, राम और रावण, कृष्ण और कंस, पाण्डवों और कौरवों के द्वन्द्व और युद्ध के माध्यम से प्रकाश और अन्धकार के इसी संघर्ष को हमारे धर्म-शास्त्रों में दिखलाया गया है।

सत् और असत्, आत्म और अनात्म, शुभ्रता और कालुष्य, सुरत्व और असुरत्व के द्वन्द्व के माध्यम से सत् को अपनाने और असत् को छोड़ने का ही दिव्य सन्देश हमारे ऋषियों ने दिया है। दीपावली इसी सन्देश को हर वर्ष हमें सम्प्रेषित करती है। हमारी महनीय ऋषि-संस्कृति का मुख्य सन्देश यही है-

"असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति"
– बृहदारण्यकोपनिषद् १/३/२८

अनादिकाल से मनुष्य सत्य, प्रकाश तथा जीवन के लिए पुकार लगा रहा है। कार्तिक अमावास्या की घनघोर अन्धकारमयी रात्रि में दीपोत्सव मनाना इसी बात का संकेत है कि संसार का हर मनुष्य प्रकाश चाहता है, अपने बाहर तथा भीतर के अन्धकार से त्राण पाना चाहता है। बाहर का अन्धकार उतना भयानक और खतरनाक नहीं, जितना भीतर का है। प्रकाश–पर्व दीपावली हमारे इसी आन्तरिक प्रकाश को प्रकाशित करने का पावन प्रयास है; हमारी आत्मा पर छाये कालुष्य को मिटाकर आत्मा के निज स्वरूप को प्रकट करने का प्रतीक है। आज के सन्दर्भ में दीपावली पर्व की प्रासंगिकता और बढ़ गई है, जब बाहर चारों ओर कृत्रिम प्रकाश–पुञ्ज लहरा रहा है और हमारे भीतर अन्धकार का साम्राज्य सुरसा के मुँह की भाँति फैलता जा रहा है। मानवीय ज्ञात इतिहास में मानव के भीतर आज जितना अभाव और अन्धकार है, उतना कभी नहीं रहा है। हमारी आन्तरिक दरिद्रता इतनी बढ़ गई है कि हमारी बाहरी समृद्धि और सम्पन्नता उसको भर नहीं पा रही है।

प्रकाश–पर्व और महालक्ष्मी की पूजा का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। लक्ष्मी ऐश्वर्य, वैभव और सम्पन्नता–समृद्धि की देवी हैं। ज्योति की आराधना एवं महालक्ष्मी की पूजा–अर्चना का एक साथ सम्पन्न होना एक बड़ा ही विशिष्ट अर्थ रखता है। प्रकाश प्रतीक है ब्रह्म–ज्ञान का, आत्म–ज्ञान का और लक्ष्मी प्रतीक है ऐश्वर्य तथा समृद्धि– सम्पन्नता की। दीपकोपासना या प्रकाशोपासना का अर्थ है जीवन में प्रकाश को महत्त्व देना, आत्म –ज्योति को प्रदीप्त करना। इसीलिए वेदों में, शास्त्रों में कहा गया है– 'आत्मदीपो भव' अर्थात् अपनी आत्मा को ही दीपक बना लो और उसी के पावन प्रकाश में जीवन की निरापद यात्रा करो; प्रकाश के पथ का पथिक बनो। महालक्ष्मी की पूजा और अर्चना का अर्थ है भौतिक समृद्धि प्राप्त कर जन–सेवा करना, समष्टि–हित में लगना। लक्ष्मी जी भगवान् विष्णु के चरणों को दबाती रहती हैं, उनकी सेवा करती रहती हैं। चरण सेवा के प्रतीक हैं, गतिशीलता के द्योतक हैं। विष्णु समस्त सृष्टि में विद्यमान हैं। लक्ष्मी का विष्णु के पैरों को दबाना समस्त सृष्टि के प्राणियों और पदार्थों की सेवा करना है।

मानव–जीवन के सफल निर्वाह के लिए तीन चीजों की नितान्त आवश्यकता होती है– विद्या की, बल की और वैभव की। सद्ज्ञान, शक्ति और समृद्धि की त्रिवेणी–धारा में ही जीवन को शान्ति, सुख और शीतलता प्राप्त होती है। इसी पावन प्रवाह में स्नान कर धरती का मानव त्रय–ताप से त्राण पाता है। शत्रुओं से रक्षा के लिए शक्ति चाहिए, संसार–समर से संघर्ष करने के लिए शौर्य चाहिए। सुखमय जीवन जीने के लिए सम्पत्ति चाहिए तथा परमात्म–तत्त्व और सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिए सद्ज्ञान चाहिए। मानव ने जब से होश सम्भाला, उसी समय से वह इन तीनों चीजों

पानी पर तैरने वाली रामशिला

चुरू (राजस्थान)। जिला मुख्यालय के विभिन्न मन्दिरों और शिवालयों में इस बार श्रावण पर्व पूर्ण आस्था और उत्साह के साथ मनाया गया। इन मन्दिरों में जहाँ प्रातःकाल पूजा–अर्चना करने वालों का ताँता लगा रहा, वहीं शाम के समय शिवालयों में भगवान् शिव के होने वाले शृंगार को देखने व आस्था प्रकट करने वालों की भारी चहल–पहल रही। इस बार स्थानीय वार्ड नं० ४ में जतीजी के बगीचे के सामने वाली गली में विक्रम सम्वत् २०३१ में स्व० सेठ शुभकरण द्वारा निर्मित श्री सिद्ध चेतन हनुमान् मन्दिर आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। इस मन्दिर में स्थापित नर्मदेश्वर महादेव का कभी फूलों से, कभी बर्फ से, तो कभी चाँदी से एवं तरह–तरह के आभूषणों से शृंगार किया गया। नियमित दर्शनार्थियों के कथनानुसार मन्दिर में शृंगारित शिव के दर्शनार्थ शहर के विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले लोगों का शाम के समय लगातार ताँता लगा रहता रहा। वर्षों पूर्व बने इस मन्दिर में पानी में तैरने वाली एक रामशिला श्रद्धालुओं के लिए विशेष आकर्षण बनी हुई थी।

इस मन्दिर के व्यवस्थापक के अनुसार लगभग दस किलोग्राम की यह 'रामशिला' वर्षों पूर्व श्रीलंका से यहाँ लाई गई थी। उल्लेखनीय है कि गोलाकार आकार वाली यह शिला वजनी होते हुए भी ऊपरी सतह पर तैरती है।

को प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा है। मानव-जीवन की पूर्णता इन तीनों की प्राप्ति में है। अतएव इसके लिए हमारे क्रान्तिदर्शी ऋषियों ने पूजा, प्रार्थना और पर्व के तीन प्रतीकों को विकसित किया। शक्ति की प्रतीक दुर्गा (काली) बुद्धि, ज्ञान और विद्या की प्रतीक सरस्वती तथा श्री, समृद्धि और सम्पन्नता की प्रतीक लक्ष्मी को प्रतिष्ठित किया गया। आश्विन माह में शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से लेकर दशमी तक हम शक्ति, साहस और शौर्य के लिए माँ दुर्गा की आराधना-अर्चना करते हैं। कार्तिक अमावास्या की रात को हम प्रकाश-पूजा के माध्यम से महालक्ष्मी की पूजा करते हैं और माघ शुक्ल-पक्ष पंचमी को हम विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की अर्चना-वन्दना करते हैं। विजयादशमी, दीपावली और वसन्त पञ्चमी या श्रीपञ्चमी के रूप में हम इन्हीं तीन देवियों की पूजा, अर्चना और उपासना करते हैं। ये तीनों तत्त्वतः एक ही महाशक्ति के तीन प्रतीक हैं। आराधना-उपासना और अर्चना की यह प्राणमयी-प्रकाशमयी-प्रतीकमयी आर्ष-परम्परा है।

दीपोत्सव के साथ लक्ष्मी-पूजा का बड़ा ही गम्भीर अर्थ है। ऋग्वेद में ज्योति को, अग्नि को ब्रह्म कहा गया है-

'अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा
घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्'

— ऋग्वेद

मैं परम तत्त्व स्वरूप अग्नि हूँ, ज्योतिर्मय हूँ। मैं परम निरपेक्ष रहकर जन्म से ही दिव्य रूप को स्वयं ही प्रकट करता हूँ। प्रकाश मेरा नेत्र है। मेरे मुख में अमृत है। इसी प्रकार यजुर्वेद में भी कहा गया है कि सूर्य के समान ज्योति ब्रह्म है- **'ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिः'** -यजुर्वेद २३/४८ यहाँ यजुर्वेद के इस मन्त्र में बतलाया गया है कि ब्रह्म, ज्ञान, वेद स्वयं-प्रकाश हैं और सर्वप्रकाशक हैं। शिव के साथ शिवा, ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी और विष्णु के साथ लक्ष्मी का रहना अनिवार्य है। अतः दीपावली पर्व के शुभ अवसर पर जहाँ हम ज्योति रूप ब्रह्म की पूजा करते हैं, वहाँ लक्ष्मी की पूजा भी करते हैं। पुरुष और प्रकृति की यह संयुक्त-पूजा देखते ही बनती है। ज्ञान और सेवा, प्रकाश और समृद्धि की यह समवेत पूजा हमारी उत्कृष्ट सामाजिक चेतना का श्रेष्ठ रूप है।

यजुर्वेद में विष्णु की दो पत्नियाँ बतलायी गयी हैं- श्री और लक्ष्मी। "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ"- यजुर्वेद ३१/२२। भृगु और ख्याति की कन्या हैं श्री। इन्हें भृगु जी ने विष्णु को अर्पित किया। श्री का अर्थ शोभा, समृद्धि, सन्तोष, शान्ति आदि भी है। श्रीमद्भगवद्गीता में दशम अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनी विभूतियों के वर्णन में सात नारियों का उल्लेख किया है। ये हैं- कीर्त्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा। ये नाम भी हैं और नारी के गुणों के प्रतीक भी हैं। इनमें 'श्री' नारी के श्रेष्ठ व्यक्तित्व का आकर्षण है। श्री- सम्पन्न नारी के प्रभाव से परिवार परिपूर्ण बनता है, फूलता-फलता है और उस परिवार की कीर्त्ति की सुगन्ध सर्वत्र फैलती है। सचमुच श्री- सम्पन्न नारी ही इस सृष्टि की शोभा है। दीपावली में श्री की पूजा इसी ईश्वरीय विभूति की पूजा है; अपने घर-आँगन को, परिवार-परिवेश को श्री-सम्पन्न, शोभा- सुषमा-सम्पन्न बनाना है। नारी परिवार की प्राणमयी चेतना होती है, वह परिवार की आत्मा होती है। परिवार में प्रकाश फैले, ज्ञान विकसित हो, सम्पन्नता आवे, समृद्धि के साथ सेवा की सुगन्ध फैले, इसीलिए दीपावली की रात में हम श्री की पूजा करते हैं।

लक्ष्मी समुद्र-मन्थन के समय क्षीर-सागर से उत्पन्न हुई थीं। उन्होंने सभी देवों, ऋषियों और मुनियों का त्याग कर विष्णु को ही पति स्वीकार किया। लक्ष्मी ही श्री हैं। ये दोनों स्वरूपतः भिन्न होती हुई भी तत्त्वतः एक हैं। श्रीमद्भागवत में श्री को ही लक्ष्मी कहा गया है। इनकी शोभा अद्वितीय है, इनकी छटा अपूर्व है, इनकी शरीर-कान्ति अद्भुत है। जिस समय लक्ष्मी जी क्षीर-सागर से उत्पन्न हुईं, उस समय उनकी रूप-छटा से सबका चित्त खिंच गया। भागवतकार महर्षि व्यास देव लिखते हैं-

अपराधी को सजा न मिलती

— महेश चन्द्र त्रिपाठी

"गाँव-गाँव में मारकाट है
शहर-शहर में दंगा
गंगोत्री से गंगासागर
तक मैली है गंगा
है गरीब के पास न रोटी
घूम रहा वह नंगा
काश्मीर में मुश्किल है
फहराना आज तिरंगा
अपराधी को सजा न मिलती
संविधान बेढंगा
मन्त्री बन कानून बनाता
लुच्चा और लफंगा
होगा तभी देश अपना, इस
महारोग से चंगा
हिम्मत कर जब जनता लेगी
नेताओं से पंगा"

— सिधाँव, फतेहपुर-२१२६६३

"ततश्चाविरर्भूत साक्षाच्छ्री
रमा भगवत्परा।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या
विद्युत् सौदामिनी यथा।।"
– भागवत ८/८/८।

शोभा–मूर्त्ति लक्ष्मी भगवान् विष्णु की नित्य शक्ति हैं। उनकी बिजली के समान चमकीली छटा से दिशाएँ उस समय जगमगा उठीं। ये ही लक्ष्मी धन, वैभव और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं; श्री, सौन्दर्य और श्रेष्ठता को देती हैं; जीवनामृत बाँटती हैं। किन्तु यह जीवनामृत दानवों को नहीं मिलता, देवताओं को ही मिलता है। तात्पर्य यह कि जो पुण्यात्मा हैं, दिव्य तत्त्वों से युक्त हैं, गुणी और विवेकी हैं, भक्त और सेवा–परायण हैं, उदार और दानी हैं, जो यज्ञ और दान के द्वारा दिव्यत्व को प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें ही महालक्ष्मी अपनी कृपा–किरण प्रदान कर अमृत देती रहती हैं। किन्तु, जो आसुरी प्रवृत्ति के हैं, आतंकवादी और उग्रवादी हैं, छली और कपटी हैं, हिंसक और प्रपीड़क हैं, उन्हें लक्ष्मी जी जीवनामृत नहीं देतीं। लक्ष्मी जी रूप और यश का भी दान करती हैं। इनकी पूजा से हमारा जीवन सँवरता है, समृद्ध होता है और हम असुरत्व पर विजय प्राप्त कर दरिद्रता–दानव का नाश करते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा गया है कि जब प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते–करते थक गये, तब उन्होंने लक्ष्मी को प्रकट किया, श्री को सृजित किया। ऐसी अपूर्व रूप वाली लक्ष्मी का स्वरूप–वर्णन शब्दों द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता। ऐसी ही अद्वितीय–अप्रतिम रूप–छटा वाली एवं श्री–सम्पन्नता, अनन्तश्री समलंकृता महालक्ष्मी की पूजा और प्रार्थना प्रकाश–पर्व के दिन हम भारतवासी करते रहे हैं और उस सौन्दर्यमयी, उदार, नित्ययौवना, अनन्त एवं अमित महिमामयी महालक्ष्मी से याचना– अभ्यर्थना करते हैं कि हमारे जीवन में सुख, समृद्धि और शान्ति आये; हम स्नेहमय, समृद्धिमय और आनन्दमय बनें। हम असंख्य दीपकों की लौ की प्रकाश–किरणों से धरती का तमस भगाकर उस अमित महिमामयी देवी से सबके कल्याण के लिए विनीत प्रार्थना करते हैं।

प्रकाश–पर्व दीपावली की रात में लक्ष्मी जी की पूजा करते समय हमें यही प्रार्थना करनी चाहिए कि जो लक्ष्मी पवित्र है, पुण्यकारिणी और मंगलकारिणी हैं, वे हमारे यहाँ आनन्द से रहें तथा जो पापकारिणी हैं, वे नष्ट हो जायँ। अथर्ववेद में हमारे ऋषि ने इसी पुण्यमयी– प्रकाशमयी लक्ष्मी की प्रार्थना की है–

"रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः
पापीस्ता अनीनशन्।"
– अथर्ववेद ५/७/७।

किसी भी समाज और राष्ट्र का आधार धन है, लक्ष्मी है। लक्ष्मी से ही; ऐश्वर्य, वैभव और समृद्धि से ही राष्ट्र चलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा गया है– 'श्रीवै राष्ट्रम्– ६/७/३/७। इसीलिए हमारे ऋषियों ने दरिद्रता– दलन के लिए महालक्ष्मी की पूजा की परम्परा चलाई। दीनता अन्धकार है, दरिद्रता एक भयंकर अभिशाप है। सन्त तुलसीदास जी ने भी लिखा है– "नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।" वेदों में दरिद्रता को भगाने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई हैं। एक–दो उदाहरण देख सकते हैं–

(क) "परोपेह्य समृद्धे
विते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्ती नितुदन्तीमराते।।"
– अथर्ववेद ५/७/७

ओ दरिद्रता! दूर हट जा, परे भाग। हम तेरे ऊपर वज्र से प्रहार करते हैं। हे अराते! अदानशीलते! मैं जानता हूँ कि तू सब प्रकार से निर्बल करने वाली और नाना प्रकार से पीड़ा देने वाली है।

(ख) "अरायि काणे विकटे गिरिं
गच्छ सदान्वे।
सिरम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा
चातयामसि।।"
– ऋग्वेद १०/१५५/१

हे विरूप, कुरूप और सदा कष्ट देने वाली दरिद्रता! तू निर्जन पर्वत पर जा। वहीं रह, हमारे पास न आ। वज्र के समान कठोर हृदय मनुष्य के पराक्रम की सहायता से हम तुझे समूल नष्ट करते हैं।

सचमुच कोई भी मानवीय समाज लक्ष्मी अर्थात् धन से ही चलता है, अपना अस्तित्व कायम रखता है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभुत्व सारे संसार पर छाया है। क्यों? इसलिए कि उसके पास धन–वैभव का, स्वर्ण–समृद्धि का अक्षय भण्डार है। अकूत डालर की महाशक्ति से वह सम्पूर्ण संसार में अपना प्रभाव जमा चुका है।

यह पावन पर्व प्रतिवर्ष हमें यही सन्देश देता है कि लक्ष्मी या सम्पत्ति, साहस और सत्कर्म में ही बसती है। 'मृच्छकटिक' में कहा गया है– "साहसे श्रीः प्रतिवसति"। दण्डी ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दशकुमार चरित' में कहा है कि इस संसार में जो यत्न नहीं करता, उसको लक्ष्मी नहीं मिलती– "इह जगति हि न निरीह देहिनः श्रियः संश्रयन्ते।" कौटिल्य (विष्णुगुप्त चाणक्य) के अर्थशास्त्र में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उन्नति के लिए सचेष्ट न होने से जो प्राप्त है और जो भविष्य में प्राप्त हो सकता है, उन दोनों का नाश निश्चित है। उन्नति के लिए सचेष्ट होने से ही फल प्राप्त होता है और मनुष्य

(शेष पृष्ठ १६ पर)

कहानी

प्रेरणा

– डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

'आरे, अब उठो भी। दिवाली का दिन है, मिठाई तो ले आओ।' नरेश की पत्नी रमा ने तीसरी बार उससे कहा।

'बस, थोड़ी सी और रह गई है। पाँच मिनट में खत्म हो जाती है।'

'आप अजीब हैं। बाजार जाने का समय है और आप कहानी लेकर बैठ गये।'

'मैंने तो सोचा था कि जब तक तुम थैला ढूँढ़ती हो, तब तक शुरू कर लूँ। आगे, आकर पढ़ लूँगा। लेकिन क्या बताऊँ, अब छोड़ने का मन ही नहीं कर रहा। ...अब तो दो पृष्ठ ही रह गये हैं। दो मिनट में पूरी हो जायेगी।'

कहानी खत्म करने के पश्चात् नरेश ने रमा से पूछा, 'कौन सी मिठाई लानी है?' रमा ने कहा, 'जो चाहे ले आइये, लेकिन लाइये अच्छी–सी।'

नरेश के बाजार चले जाने पर रमा के मन में आया, देखें कि वे क्या पढ़ रहे थे। उसने पुस्तक उठाई। पुस्तक प्रेमचन्द की कहानियों की थी। जो कहानी समाप्त हुई थी, उस पर पुस्तक–चिह्न लगा हुआ था। रमा ने खोलकर देखा। कहानी का शीर्षक था– 'ईदगाह'। रमा के मुँह से अनायास निकल पड़ा, 'वाह रे मेरे देवता! त्योहार है दिवाली का और आप मना रहे हैं ईद। साम्प्रदायिक–सद्भाव का कोई प्रतीक हो तो ऐसा।'

अच्छी मिठाई लेनी थी। इसलिए नरेश नगर में मिठाई की एक अति प्रसिद्ध दूकान पर गया। भीड़ बहुत थी। नरेश भी वहाँ खड़ा हो गया। सोचा, थोड़ी देर में ही सही, नम्बर तो आ ही जायेगा। खड़े–खड़े वह इधर–उधर की दूकानों को देखने लगा। प्रत्येक दूकान का पोस्टर पढ़ भी जाता। पढ़े–लिखे व्यक्ति के सामने जब कोई लिखावट आती है, तो वह अनायास पढ़ ही ली जाती हैं। कई दूकानों के पोस्टर पढ़ते–पढ़ते उसकी निगाह एक पोस्टर पर टिक गई। एक सुन्दर बलिष्ठ युवक का चित्र बना हुआ था। उसकी भुजाओं और जाँघों की माँस–पेशियाँ ऐसे बनी हुई थीं जैसे कि तराशी गई हों। सीना सिंह की तरह निकला हुआ था। कमर बहुत पतली। चेहरे पर पौरुष, शक्ति और प्रसन्नता खिली हुई। यह च्यवन–प्राश का विज्ञापन था।

नरेश देर तक उस चित्र को देखता रहा। एकाएक उसके मन में आया, 'अच्छी बातें केवल पढ़ने से ही जीवन नहीं बनता। उन पर आचरण भी करना चाहिए। अभी जो कहानी पढ़कर आया हूँ, उस पर मुझे अमल भी तो करना चाहिए।'

वह मिठाई की दूकान से उस दूकान पर गया। उसने च्यवन–प्राश का एक किलो का डिब्बा खरीदा। इसके बाद वह पैकिंग करनेवाले की दूकान पर गया। दूकानदार से कहा कि इसकी ऐसी पैकिंग कर दो कि यह मिठाई का डिब्बा लगे। दूकानदार ने कई पर्तों में उसकी अच्छी–सी पैकिंग कर दी।

घर आकर नरेश जब डिब्बा रमा को देने लगा, तो बड़े प्रयास से वह अपनी हँसी दबा पाया। सन्ध्या हुई। लक्ष्मी–पूजन का समय हुआ। रमा ने थाल में मिठाई लगाने के लिए डिब्बा उठाया। पैकिंग की चार पर्तों को खोलने के बाद डिब्बा अपने वास्तविक रूप में सामने आ गया। सोचा, शायद च्यवन–प्राश के डिब्बे के अन्दर मिठाई हो। ढक्कन खोला, तो सील बन्द थी। रमा समझ गई कि च्यवन–प्राश के अतिरिक्त उसमें कुछ नहीं। नरेश को बुलाकर उसने कहा, 'आपसे तो मिठाई लाने को कहा था और आप यह ले आये हैं!

नरेश– 'यह किस मिठाई से कम है। खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।'

रमा– 'कुछ तो दिन का भी ध्यान धरा करो। आज मिठाई का त्योहार है।

नरेश– मिठाई कौन–सी अच्छी चीज होती है। दाँत में कीड़ा लग जाता है। मधुमेह हो जाता है। यह मिठाई से न जाने कितना गुना अच्छा है। बिल्कुल ताजे फलों और वनस्पतियों से बनाया जाता है। सील–बन्द करके रखा जाता है। महीनों ताजा रहता है और मिठाई, न जाने कितने बासी गँधाते खोये को झोंक देते हैं। उसी

के पास खाँस रहे हैं, बीड़ी पी रहे हैं, छींक रहे हैं, उसी हाथ से पसीना पोंछ रहे हैं और उसी से लड्डू बना रहे हैं।

रमा– ये सब बातें छोड़ो। मुझे यह बताओ भगवान् को भोग किससे लगाऊँ? वह तो मिठाई से ही लगता है। इसकी भी तो कुछ चिन्ता करनी थी।

नरेश– कैसी उल्टी बातें करती हो। भगवान् को हमारी चिन्ता करनी चाहिए कि हमको उनकी। इसी से भोग लगा दो। वह भी क्या सोचेगा कि हमारी तन्दुरुस्ती का ख्याल करने वाला भी कोई दुनिया में है।'

रमा– लगा दूँगी इसी से भोग। कह दूँगी, जैसा पति मुझको तुमने दिया है, वैसा और तुम भी पाओ। लेकिन मुन्ना को कैसे समझाओगे? वह तो मिठाई माँगेगा।

इतने में ही उनका मुन्ना कूदता–फाँदता आ गया। नरेश को भय हुआ कि कहीं वह मिठाई के स्थान पर च्यवन–प्राश देखकर रार न मचाए, इसलिए वह उसे पूजा के स्थान से दूसरे कमरे में ले गया। उसने सोचा कि एक भूमिका बाँध कर बच्चे में च्यवन–प्राश के लिए रुचि और आकर्षण पैदा कर लें। तब वह बवाल न मचायेगा। उसने कहा– 'मोहन! तुम तो हम लोगों का कोई ख्याल नहीं रखते। देखो, मम्मी काम करते–करते थक जाती है, कितनी कमजोर होती जा रही है। मैं भी कभी–कभी बहुत कमजोरी महसूस करता हूँ और तुम भी पिछले साल स्कूल में दौड़ में फर्स्ट आये थे, इस साल सेकेण्ड ही रह गये।

मोहन–'पापा! वह लड़का जो फर्स्ट आया है, बहुत ताकत की चीजें खाता है। आप खिलाते हैं? फिर कैसे आयें?

नरेश– 'इसीलिए तो मैं आज ताकत बढ़ाने वाली मिठाई लाया हूँ। तुमने टी०वी० पर देखा है, 'देखा, मुन्ना रेस में फर्स्ट आया है, आखिर पोता किसका है। मैं भी तो तुम लोगों को रोज .... ' और बताओ आगे क्या कहा?'

मोहन– 'च्यवन–प्राश खिलाती हूँ।'

नरेश– 'शाबाश! हमारे मुन्ना की स्मृति कितनी अच्छी है! अब की हम वही च्यवन–प्राश की मिठाई लाये हैं।'

मोहन– 'हमने पहले एक–दो बार कहा था, तो आपने उत्तर दिया था कि यह केवल विज्ञापन–बाजी है, लोग पैसा देकर जो चाहे कहला लेते हैं।'

नरेश– 'हाँ, कहा तो था, फिर सोचा, किसी और से भी पूछ लें।'

मोहन– किससे पूछा आपने?'

रमा सब सुन रही थी। वह अन्दर से ही बोली– 'मुंशी प्रेमचन्द से। आज प्रातः ही ईदगाह पर मिले थे इनको। ... लो अन्दर आकर पापाजी की अनुपम मिठाई ले लो।'

मोहन अन्दर गया, तो रमा ने उसे एक चम्मच में च्यवन–प्राश निकाल कर दे दिया।

मोहन– 'अरे, यह कैसी मिठाई है? बिल्कुल काली काली!'

नरेश– 'इसका रंग न देखो बेटा! गुण देखो।' यह मीठी भी है, खट्टी भी है, इसमें टॉनिक भी है।

मोहन– 'लेकिन मिठाई तो नहीं लगती यह।'

नरेश– 'मिठाई के सारे गुण तो हैं इसमें, और इससे ज्यादा गुण भी हैं। जरा खाकर देखो।'

मोहन ने कुछ बेमन से च्यवन–प्राश खाया। स्वादिष्ट लगा। बोला, 'खाने में तो स्वाद है।'

नरेश– 'और तन्दुरुस्ती भी बनाता है। देखना, इस बार दौड़ में तुम फिर फर्स्ट आओगे।

मोहन खुशी–खुशी च्यवन–प्राश लिए बाहर आया। वहाँ उसे पड़ोस का लड़का शेखर दिखा। उसे देखकर वह चिल्लाया– 'अरे यार शेखर! यहाँ आओ। देखो मेरे पापा कितनी अच्छी मिठाई लाये हैं।' मोहन की आवाज सुनकर शेखर दौड़ा आया। उसके हाथ में भी बरफी के टुकड़े थे। वह भी चिल्लाया– 'मेरे पापा भी लाये हैं।'

मोहन के पास आकर उसने उसकी 'मिठाई' देखी, तो बोला, अरे यार! यह कैसी काली–कलूटी मिठाई है! यह तो कोई दवाई लगती है?

मोहन– 'दवाई तो कड़ुवी होती है। यह बहुत स्वादिष्ट है। मीठी है और खट्टी भी है।'

शेखर– 'लेकिन भाई, यह काली क्यों है? हमारी बर्फी देखो, कैसी सफेद–उजली है।

मोहन– 'तू रंग पर न जा। रंग से क्या होता है? गुण देख।

शेखर– 'क्या गुण हैं भाई, तेरी कल्लो परी में?'

मोहन– 'इसमें ताकत बहुत है। वह जो टी०वी० में रेस होती है, उसमें जो लड़का सबसे आगे निकल जाता है, उसकी माँ उसको यही मिठाई खिलाती है।

शेखर– 'वह तो च्यवन–प्राश है। मिठाई कहाँ है, टॉनिक है।

मोहन–'यही तो इसकी विशेषता है। मिठाई भी है, टॉनिक भी है। हलवाइयों को अब ऐसी ही मिठाइयाँ

बनानी चाहिए कि टॉनिक का भी असर करे। स्वाद भी आये और तन्दुरुस्ती भी बने।

शेखर– 'च्यवन–प्राश में यार जब इतनी ताकत है तो सरकार को एक काम करना चाहिए।'

मोहन– 'क्या? बोलो। मेरे पापा तो सरकारी नौकरी में हैं, फौरन् करवा देंगे।

शेखर– 'सरकार को चाहिए कि अपने सैनिकों को खूब च्यवन–प्राश खिलाये, इससे वे खूब ताकतवर हो जायेंगे।

मोहन–-और फिर मार बम, मार बम, दुश्मन का भुर्ता बना देंगे।

तभी अन्दर से मोहन की माँ ने आवाज लगाई। 'बम पास में नहीं छुटाना, जरा दूर जाकर छुटाना।

मोहन– 'लो! मम्मी समझ रही है कि हम पटाखों की बात कर रहे हैं।

शेखर– 'माँ–बाप तो यह समझते हैं कि हम लोग अभी बच्चे ही हैं। खिलौनों और पटाखों से बड़ी बात ही नहीं कर सकते।

मोहन– 'चलो यार, पटाखे निकाल लायें। छुटाना शुरू करें।'

मोहन घर की ओर दौड़ने को हुआ। शेखर के मन में च्यवन–प्राश खाने का लालच पैदा हो गया था। उसने फौरन् मोहन को रोका और कहा, 'अपनी मिठाई हमको भी तो चखाओ जरा। देखें कैसी है?'

मोहन– 'तुम हमारी मिठाई चखो और हम तुम्हारी। दोनों का स्वाद आ जायेगा।'

शेखर ने च्यवन–प्राश चखा और मोहन ने बर्फी। दोनों को एक–दूसरे की चीज अच्छी लगी। मोहन ने प्रतिक्रिया की– 'शेखर! मिठाई तो तुम्हारी बर्फी ही है। अपनी तो चटनी जैसी है।' शेखर की प्रतिक्रिया थी– 'नहीं, चटनी जैसी है तो क्या? चीज तो ताकतवर है।'

तभी शेखर की माँ ने उसे बुलाया। वह चला गया। मोहन भी अपने घर आ गया। आते ही वह अपने पिता पर बरस पड़ा– 'पापा! आप हमको बेवकूफ समझते हैं। मिठाई की जगह चटनी चटाते हैं।'

रमा को यह बात सुनकर बहुत खुशी हुई। बोली, 'तुम्हीं इनको ठीक करोगे। मैं तो हार गयी। माँ से शह मिल गई। अब तो मोहन शेर हो गया। बहुत दृढ़ता से बोला, 'आप मिठाई लाइये। आज मिठाई का त्योहार है।'

नरेश– 'तुमको मिठाई खानी है तो कल खा लो। अब असमय बाजार क्यों दौड़ा रहे हो। कल बाजार जायेंगे ही, लेते आयेंगे।

मोहन– 'त्योहार आज है, सारी दुनिया आज मिठाई खा रही है। और हम हैं कि च्यवन–प्राश खा रहे हैं।'

नरेश– 'बेटा! यह मामूली प्राश नहीं है। इसे खाकर च्यवन ऋषि बुढ़ापे में भी जवान हो गये थे!'

नरेश का पाँसा गलत बैठा। मोहन ने उत्तर दिया– 'आप खाइये इसे। आप बूढ़े हो रहे हैं, आपको फिर जवान होना है। हम तो वैसे ही जवान हो जायेंगें। आज दस साल के हैं। आठ–दस साल बाद देखियेगा।

नरेश– 'भैया! तुम जीते, मैं हारा। कल जरूर मिठाई ले आयेंगे।

मोहन– 'मिठाई तो आज आनी चाहिए। आप नहीं लायेंगे, तो हम खाना नहीं खायेंगे। पटाखे नहीं छुटायेंगे, आप से बात नहीं करेंगे, आपके बेटे नहीं बनेंगे।' और वह दूसरे कमरे में बत्ती बुझाकर लेट गया।

नरेश ने पीड़ित दृष्टि से रमा की ओर देखा। रमा को उनसे कोई सहानुभूति न थी। बोली– 'जरा बुद्धि से काम लीजिए। जाइये, ले आइये।'

नरेश समझ गया कि अब मिठाई लेने जाना ही पड़ेगा। बाहर जाते–जाते उसने व्यंग्य किया, 'जब घर से ही सहयोग नहीं मिलेगा, तो अच्छे साहित्य की प्रेरणा कब तक काम करेगी। तुम्हारे जैसे बीवी–बच्चे हों, तो आदमी गया काम से।'

'काम से नहीं, मिठाई से कहिये।' रमा ने प्रत्युत्तर दिया।

नरेश घर से बाहर आया, तो उसी समय उसका पड़ोसी भी घर से निकला। उसने नरेश को देखकर नमस्कार किया और मन में कहा, 'धन्य हो महाराज।' प्रकट में नरेश से पूछा, 'श्रीमान् जी कहाँ जा रहे हैं?'

नरेश– 'बाजार।'

पड़ोसी– 'क्या करने?'

नरेश– 'मिठाई लेने।'

पड़ोसी– 'अच्छा, यह बात है। अब हमसे पूछिये कि हम क्या लेने जा रहे हैं?'

नरेश– 'आप तो बिना पूछे ही बताने को उतावले हो रहे हैं। कोई रहस्य है।

पड़ोसी– 'च्यवन–प्राश लेने जा रहा हूँ। क्या आपसे भी यह रहस्य है?'

दोनों ने एक–दूसरे को मुस्कुराती आँखों से देखा और ठहाके मार–मार कर हँसने लगे।

❒

(पृष्ठ १२ का शेष)

अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है–

"अनुत्थाने ध्रुवो नाशः
प्राप्तस्यानागतस्य च।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते
चार्थ सम्पदम्।।"

– अर्थशास्त्र १/१६।

प्रकाश–पर्व दीपावली का सम्बन्ध वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों और संस्कृतियों से है। वैदिक एवं श्रमण तीनों संस्कृतियों का समवेत रूप इस पर्व में प्रदीप्त होता है।

हम मिट्टी के दीप तो जला रहे हैं, बाहर प्रकाश तो फैला रहे हैं, पर हमारे भीतर हमारे नीचे और केन्द्र में अन्धकार ही अन्धकार है। 'दीपक तले अधेरा' की कहावत चरितार्थ हो रही है।

ध्यान रहे, बाहर का प्रकाश अन्दर के अन्धकार को नहीं मिटा सकता। कविवर श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने कितना सच कहा है–

"यह न ज्योति उस मधुर अनल की,
जिससे जीवन–स्वर्ण दमकता;
बन बिजली इस अन्धकार में,
यह तो कोई प्रलय चमकता।"

अतः इस प्रकाश–पर्व से हमें यही शिक्षा लेनी है कि हमारे भीतर भी आत्मा का प्रोज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण हो, जिससे हमारी संकुचितता, संकीर्णता और कलुषता का अन्धकार मिटे। उस आत्म–दीप की लौ में भेद–भाव, छुआछूत, ऊँच–नीच, जात–पाँत, वर्ग–वर्ण और विषमता के सारे शलभ जलकर नष्ट हो जायें। प्रकाश–पर्व के इस पावन पर्व पर हमें अपने मन्त्र–द्रष्टा ऋषियों, महात्मा बुद्धदेव और महावीर वर्द्धमान का पीयूष स्मरण हो रहा है। इन मनीषियों ने ज्ञानालोक फैलाकर मानव–मन के अन्धकार अभिशाप को मिटाया जा सकता था; दरिद्रता–दानवता के नाश का पावन प्रयत्न किया था और मानव को उसकी महिमा से मण्डित किया था। हमें इस शुभ अवसर पर यह सुदृढ़ संकल्प लेना है कि हम भी आत्म–दीप विकसित कर भारत में व्याप्त हिंसा, द्वेष, घृणा, नफरत, आतंक, छुआछूत, ऊँच–नीच, धनी–गरीब, अपढ़–विद्वान्, नागरिक– ग्रामीण के कृत्रिम भेद–भावों को मिटाकर धरती पर रामराज्य की स्थापना करेंगे। हम अपने ज्ञान–प्रकाश को चिरंजीवी बनाकर उसी के आलोक में परम्परा की जड़ता को तोड़ेंगे और ऋग्वेद की इस उक्ति को सार्थक करेंगे– "उद्यानं ते पुरुष नावयानम्" हे पुरुष ! हे मानव ! तू ऊपर उठने के लिए है, नीचे गिरने के लिए नहीं है। दीपक की लौ से शिक्षा लेकर हम ऊपर और ऊँचा उठें, संकीर्णता के अन्धकार को मिटावें। शुचिता, शुभ्रता और सात्विकता का प्रकाश फैलाकर ही हम सही और सार्थक दीपावली मना सकते हैं।

प्रकाश–पर्व दीपावली एक पावन पर्व है। दीपक तप का प्रतीक है। तप ही जीवन है, श्रम ही सम्बल है, साधना ही आधार है, जिस पर हमारा जीवन स्थिर है। तप हमारी प्राण–चेतना का वह पावन प्रकाश है, जो हमारे जीवन के हर पक्ष को प्रकाशित करता है प्रकाश–पर्व तप की यही जीवनदायिनी सुगन्ध विकसित करता है। यह धर्म का पर्व है, आस्था और विश्वास का पर्व है, यह मानव–मंगल का पर्व है। इसे हम अमंगल का पर्व न बनावें। भगवान् महावीर वर्द्धमान ने धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा है–

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं"

– दश वैकालिक सूत्र १/१

इस धर्म–मंगल के तीन रूप हैं– अहिंसा, संयम और तप। उन्होंने कहा है– 'अहिंसा संजमो तवो'। आज अपने इस महान् राष्ट्र को, इस विशाल लोकतन्त्र को धर्म–मंगल के इन्हीं तीनों रूपों की आवश्यकता है।

❑

– ऋतम्भरा, शान्तिपुरी, पो०–मोतीहारी, पूर्व चम्पारण–८४५४०१ (बिहार)

सरसों की फसल को बचाने का प्राकृतिक तरीका

लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषधि एवं सगंध पौध संस्थान (सीमेप) के वैज्ञानिकों ने सरसों की फसल को क्षति पहुँचाने वाले माहू कीट के नियंत्रण का प्राकृतिक तरीका ढूँढ निकाला है। इससे कीटनाशकों पर होने वाला खर्च बचेगा, साथ ही किसानों को अतिरिक्त आय भी होगी।

संस्थान के वैज्ञानिकों ने वर्षों के अनुसंधान के बाद पता लगाया है कि यदि सरसों के खेत में सौंफ के पौधों को भी लगा दिया जाए, तो सरसों की फसल पर माहू कीट का प्रकोप नहीं हो पाता। संस्थान के वैज्ञानिकों ने १९९३ में सरसों की फसल पर लगने वाले माहू कीट की रोकथाम के प्राकृतिक तरीके की खोज के लिए विभिन्न पौधों को सरसों की क्यारियों में अलग-अलग रोपित कर उनमें से निकलने वाले रासायनिक तत्त्वों का गहन अध्ययन, परीक्षण तथा माहू कीट पर उनके प्रभाव का आकलन शुरू किया था। पाँच वर्ष तक अनुसंधान और परीक्षण के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि हुई है।

छुट्टियों के बाद फिर पेरिस में

– डॉ० ओम प्रकाश पाण्डेय

[डॉ० पाण्डेय लगभग डेढ़ महीने के ग्रीष्मावकाश में भारत लौटे थे। फलतः गतांकों में उनकी चिट्ठी का 'पेरिस से आना' बन्द रहना ही था। अब वह फिर पेरिस पहुँच गये हैं। अतः यह स्तम्भ (कुछ विष्कम्भक के बाद) पुनः प्रारम्भ। –सम्पादक]

ग्रीष्मावकाश की लम्बी छुट्टियाँ भारत में बिताने के बाद इस बार पेरिस लौटना लगभग उतना ही नागवार गुजरा, जितना मायके से द्विरागमन के अवसर पर ससुराल जाती हुई किसी सद्यः विवाहिता को लगता है। अचार–मसाले जुटाने की फिर वही तैयारियाँ; साथ में पत्नी को भी आना था, इसलिए दोहरी व्यवस्था करनी पड़ी। स्वजनों, परिजनों और मित्रों की शुभकामनाओं से लैस होकर एक सितम्बर की प्रातः दिल्ली के इन्दिरा गांधी अन्तरराष्ट्रीय विमानपत्तन पर हम जब किसी तरह पहुँचे, तो पुनः वही अव्यवस्था का अनन्त साम्राज्य दिखाई पड़ा, जिसे झेलना हम भारतीयों की जैसे दुर्निवार नियति–सी बन गई है। दो–दो घण्टे से बोर्डिंग कार्ड के लिए सामान की ट्राली के साथ लाइन लगाये यात्रियों की लम्बी कतारें लेकिन अधिकांश काउण्टर कर्मचारी–शून्य थे। वे सभी खड़े गप्पें मार रहे थे।

मेरे विमान को प्रातः ८.५० बजे उड़ान भरना था– यात्री सवेरे छह बजे से ही लाइन में खड़े थे, लेकिन सवा आठ तक किसी काउण्टर पर कोई कर्मचारी नहीं था। कुछ विदेशी यात्री इस प्रतीक्षा से उकताकर जोर–जोर से दूर खड़े अधिकारियों से शिकायत कर रहे थे। किसी तरह काउण्टर पर कर्मचारी आये और अफरा–तफरी में बोर्डिंग कार्ड दिये जाने लगे। एक साथ सबके टिकट जमा कराये गये– जल्दबाजी में अनेक कार्डों पर विमान पर चढ़ने के लिए गलत द्वार संख्या अंकित थी। स्वयं मेरे कार्ड पर द्वार–संख्या नौ अंकित थी। ऐसे चार यात्री थे– बाद में बताया गया कि हमें दूसरे द्वार से जाना है। क्या इस व्यवस्था को और चुस्त नहीं किया जा सकता?

साढ़े आठ घण्टे की सतत उड़ान भरने के बाद हमारा विमान पेरिस के शार्ल दे गोल विमानतल पर भारतीय समय के अनुसार सायंकाल छह बजे उतरा। उस समय पेरिस की स्थानीय घड़ियों में अपराह्न ढाई बजे थे। विमानपत्तन से बाहर निकलने के बाद पूर्व–सूचना देने पर भी, राजदूतावास की गाड़ी जब नहीं मिली, तो मन थोड़ा उद्विग्न हुआ। यों भी भारतीय विदेश सेवा या प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को किसी प्राध्यापक या साहित्यकार की सुविधा की चिन्ता ही कहाँ होती है? विगत ५० वर्ष में इन अधिकारियों को संस्कृति अथवा साहित्य से जुड़े लोगों का सम्मान करने का प्रशिक्षण ही कहाँ दिया गया है? चाहे स्वदेश हो अथवा विदेश, इनके कार्य करने की शैली एक ही है। फिर व्यक्तिगत शिकायत करने की गुंजायश ही कहाँ रह जाती है? लेकिन दूतावास की गाड़ी न मिलने पर भी, फ्रान्स की परिवहन–व्यवस्था इतनी अच्छी है कि मुझे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। टैक्सीवालों पर, हर जगह, भाड़े की दृष्टि से गुमराह करने का आरोप प्रायः लगाया जाता है– यहाँ भी ऐसे भ्रामक टैक्सीवाले हैं, लेकिन मेरा सौभाग्य था कि एक भला टैक्सीवाला मुझे मिल गया, जिसने सर्वथा उचित भाड़े पर सुरक्षित ढंग से आवास तक हमें पहुँचा दिया। भाड़े के पूर्व भुगतान की विधि यद्यपि यहाँ नहीं है। (दिल्ली में भी टैक्सियों पर वह अब लागू नहीं है– केवल आटोरिक्शा ही उससे संचालित होते हैं)– लेकिन मीटर–रीडिंग प्रायः दोषपूर्ण नहीं होती। जो राशि मीटर प्रदर्शित करे, वही आपको देनी है। हाँ, सामान के लिए कुछ अतिरिक्त राशि देनी पड़ती है।

पेरिस की परिवहन–व्यवस्था में व्यक्तिगत मोटर–गाड़ियों और टैक्सियों के अतिरिक्त मेट्रो, बसों और दूर जाने वाली रेलगाड़ियों का विशेष योगदान है। यहाँ की भूमिगत रेल–व्यवस्था (मेट्रो) सौ वर्ष पुरानी और अत्यन्त

सुविधापूर्ण है। सम्पूर्ण पेरिस नगर भर में मेट्रो का सघन जाल बिछा है। मेट्रो स्टेशन इतने पास–पास हैं कि कोई भी स्थान मेट्रो स्टेशन से आधे किलोमीटर से ज्यादा दूर नहीं रह जाता। लगभग १४ मेट्रो लाइनें पूरे नगर में कहीं भी आने–जाने के लिए बिछी हैं। प्रत्येक तीन मिनट पर मेट्रो की सुविधा उपलब्ध है। ये भूमिगत रेलें प्रातः चार–पाँच बजे से रात्रि में साढ़े बारह बजे तक निरन्तर चलती रहती हैं। ये भूमिगत रेलगाड़ियाँ पूरी तरह चमाचम रहती हैं। इनमें मैंने कभी न कटी–फटी सीटें देखीं और न टूटी–फूटी चीजें। चलते समय इनके द्वार अपने आप बन्द हो जाते हैं और रुकने पर स्वतः खुल जाते हैं। दरवाजे उसी ओर खुलते हैं, जिधर प्लेटफार्म होता है। मेट्रो स्टेशनों पर लाइनों के डायरेक्शन और लाइन बदलने की व्यवस्था (करेस्पान्डेंस) बहुत स्पष्ट और सुबोध रूप से अंकित है। मेट्रो के अतिरिक्त लोकल गाड़ियों जैसी ही दूसरी रेलें भी हैं, जिन्हें एरिएर (RER) कहते हैं। ये मेट्रो की अपेक्षा अधिक तीव्रगामी होती हैं। मेट्रो स्टेशन बेहद साफ–सुथरे और आकर्षक हैं– इनमें उतरने–चढ़ने के लिए स्वतः चालित सोपान–मार्ग (स्केलेटर) होते हैं। कुछ बड़े स्टेशनों पर ऊपर जाने के लिए स्वतःचालित बड़ी–बड़ी लिफ्टें भी हैं। स्टेशन पर उतरते ही, उसके आस–पास की संस्थाओं के परिचय की भी कहीं–कहीं व्यवस्था है। उदाहरण के लिए पास्त्यूर (Pasture) स्टेशन पर वैज्ञानिक प्रयोगशाला के नमूने देखते ही पता चलता है कि इसका नामकरण सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पास्त्यूर (अंग्रेजी में पाश्चर) के नाम पर हुआ है और विश्वविख्यात पास्त्यूर विज्ञानशाला इसके पास में ही है। कुछ स्टेशनों की छतों पर वैज्ञानिकों, नाटककारों और साहित्यकारों के हस्ताक्षरों के अंकन भी दिखायी पड़े। प्रत्येक स्टेशन पर खाने–पीने की चीजों से भरी बिक्री–मशीन रहती है, जिसमें निर्धारित मूल्य के सिक्के डालकर आप फलों का रस, चाकलेट, आलू के चिप्स, सैंडविच, झरनों का पानी, चाय–काफी इत्यादि खरीद सकते हैं। इन मशीनों के अतिरिक्त सामान्यतः प्लेटफार्म पर कोई दुकान नहीं होती है। हाँ, प्लेटफार्म के अतिरिक्त अन्य भागों में पत्र–पत्रिकाओं, प्रकीर्ण वस्तुओं, खाने–पीने की चीजों और फलों की दुकानें मिल जाती हैं। मेट्रो के अतिरिक्त पेरिस भर में बहुसंख्यक बसों का विशाल जाल बिछा है। एक बस छूट जाने पर दूसरी बस मिलने में प्रायः दस मिनट से अधिक नहीं लगते। दूरगामी बसें पी०सी० (P.C.) कहलाती हैं, जो नगर के चारों ओर रिंग रोड अथवा पेरीफिरी (मुद्रिका मार्ग) पर चक्कर लगाती रहती हैं, मेट्रो और बसों में एक ही टिकट चलता है, जो स्टेशनों के अतिरिक्त तमाखू, सिगरेट की दुकानों में भी मिल जाता है। दस टिकट इकट्ठे लेने पर कीमत लगभग आधी लगती है। ये टिकट मासिक, दैनिक और साप्ताहिक क्रम से तीन प्रकार के होते हैं। टिकट चेक करने के लिए सामान्यतः स्टेशनों और बसों में पंचिंग–मशीनें लगी रहती हैं। कभी–कभी कर्मचारी इनका आपात निरीक्षण भी करते हैं। यहाँ की नगर–बसों में परिचालक (कण्डक्टर) नहीं होता, केवल चालक ही होता है। वही टिकट–निरीक्षण का कार्य भी करता है। बस में चढ़ते ही लोग पहला कार्य करते हैं टिकट पंच करने का। पंच न करने पर, कभी–कभी भारी जुर्माना अदा करना पड़ता है। बसें भी सुन्दर, साफ–सुथरी और बढ़िया होती हैं। टूटी–फूटी बसें सड़कों पर नहीं दिखायी पड़तीं। इनके अतिरिक्त पेरिस को पास के उपनगरों और अन्य नगरों से जोड़ने के लिए द्रुतगामी रेलगाड़ियाँ हैं, जिन्हें 'एस०एन०सी०एफ० (S.N.C.F.) कहा जाता है। बहुत तेज चलने वाली गाड़ियाँ टी०वी०जी० (T.V.G.) कहलाती हैं। मेट्रो, बसों और रेलगाड़ियों को चलाने वाली संस्था (कारपोरेशन) है आर०ए०टी०पी० (R.A.T.P.)। यह संस्था सरकार के नियन्त्रण में तो है; लेकिन है वास्तव में गैर सरकारी। परिवहन–व्यवस्था में समय–सारिणी के परिपालन पर बहुत बल दिया जाता है। ऊपर उल्लिखित सभी साधन निरपवाद रूप से निर्धारित समय–सारिणी का पूर्ण पालन करने का प्रयत्न करते हैं। पेरिसवासियों को अपनी इस परिवहन–व्यवस्था पर गर्व है और वे इसके मानकों के निरन्तर उच्चीकरण का प्रयत्न करते रहते हैं।

❐

– अतिथि आचार्य, सारबोन नूविल विश्वविद्यालय,-पेरिस

इस्लामी देशों में शवदाह कैसा ?

संयुक्त अरब अमीरात ने हाल ही में हिन्दुओं के शवदाह को प्रतिबन्धित कर दिया है। पिछले वर्ष तक दुबई में हिन्दुओं का एक शवदाह–गृह था, जिसे वहाँ की सरकार के आदेश से जनवरी ९८ से बन्द कर दिया गया, जब कि वहाँ रहने वाले पाँच लाख भारतीयों में तीन लाख हिन्दू ही हैं। (मी०फो०)

हमारी दो प्रमुखताएँ हों

↓

इस्लामी आतंकवाद का विनाश और तिब्बत की स्वतन्त्रता

– प्रो० बलराज मधोक

बीसवीं शताब्दी में संसार में तीन बड़े उथल–पुथल हो चुके हैं। पहला था १६१४–१८ का महायुद्ध और उसमें से निकली १६१७ की रूसी क्रान्ति और साम्यवाद का एक राजनैतिक विचारधारा के रूप में उदय तथा तुर्की के इस्लामी साम्राज्य का विघटन और खिलाफत का अन्त। दूसरा उथल–पुथल दूसरे महायुद्ध के साथ जुड़ा हुआ था। यूरोपीय उपनिवेशवाद का अन्त और भारत का विभाजन उसी के परिणाम थे। १६६०–६१ में साम्यवाद की विफलता के साथ जुड़ा हुआ सोवियत संघ का विघटन और मध्य–एशिया में ६ नये इस्लामी राज्यों का उदय था। अब संसार चौथे उथल–पुथल की ओर बढ़ रहा है।

संयुक्त–राज्य अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान और सूडान में इस्लामी आतंकवादियों के अड्डों पर बमबारी करके इसकी शुरुआत कर दी गयी है। संसार इस्लामवादी देशों और लोकतन्त्रवादी, मानव–वादी देशों में बँटना शुरू हो गया है। अब यह स्पष्ट लगने लगा है कि अगला महायुद्ध इस्लामवादी और मानववादी तत्त्वों और देशों के बीच होगा।

पहले दो महायुद्धों और उनके साथ जुड़े उथल–पुथलों का मुख्य केन्द्र यूरोप रहा; परन्तु लगता है कि अगले महायुद्ध और उसके साथ जुड़े उथल–पुथल का मुख्य प्रभाव–क्षेत्र एशिया होगा और भारत उसका एक बड़ा केन्द्र होगा। इस सम्भावना के कारण भारत की विदेशनीति और सुरक्षानीति तथा उनसे जुड़े काश्मीर और तिब्बत के मुद्दे अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं।

जम्मू–काश्मीर राज्य, विशेष रूप से काश्मीर घाटी–इस्लामवाद और इसके साथ जुड़े हुए इस्लामी आतंकवाद का एक मुख्य निशाना बना हुआ है। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में कायम किये गये आतंकवादियों के प्रशिक्षण केन्द्रों से प्रशिक्षित इस्लामी आतंकवादी वैसे तो संसार भर में सक्रिय हैं; परन्तु जम्मू–काश्मीर में उन्हें विशेष सफलता मिली है। वे काश्मीर घाटी से सारे हिन्दुओं को निकालकर उसका पूर्ण इस्लामीकरण कर चुके हैं। अब ये इस्लामी आतंकवादी जम्मू–क्षेत्र से भी हिन्दुओं को खदेड़ रहे हैं। परिणाम–स्वरूप जम्मू–काश्मीर में पाकिस्तान और इस्लामवाद के पाँव जम रहे हैं और अरबों रुपये खर्च करने और हजारों जवानों का बलिदान देने के बावजूद भारत के पाँव पीछे हटते से लग रहे हैं।

जम्मू–काश्मीर के सम्बन्ध में भारत की नीति शुरू से गलत रही है। इसे बदलने और समय रहते काश्मीर की स्थिति को सुधारने की आवश्यकता है। इसके लिए आवश्यक है कि भारत सरकार पाक–अधिकृत–क्षेत्र को वापिस लेने की कोरी रट लगाने के बजाय रियासत का जो भाग इसके पास है, पहले उसकी सुधि ले।

तदर्थ यह आवश्यक है कि भारत की सरकार, राजनैतिक नेता और जनता इस्लामवाद के सही स्वरूप को समझें और इससे जुड़े इस्लामी आतंकवाद के सम्बन्ध में भारत के अन्दर और बाहर लोगों को शिक्षित और जागरूक करें।

भारत की एकता और सुरक्षा को पाकिस्तान और पाकिस्तान समर्थित इस्लामी आतंकवाद के अतिरिक्त दूसरा बड़ा खतरा चीनी विस्तारवाद से है। भारत और चीन की सीमाएँ कहीं नहीं मिलती थीं। इनके बीच तिब्बत एक स्वतन्त्र मध्यवर्त्ती (बफर) राज्य था। तिब्बत को चीनी विस्तारवाद का शिकार होने से बचाना भारत की राष्ट्रीय आवश्यकता थी। पं० नेहरू की गलत नीति के कारण

तिब्बत चीन के अधिकार में आ गया और भारत की सुरक्षा तथा एकता के लिए चीन एक नया खतरा बन गया। इससे बचने के लिए तिब्बत की आजादी भारत के लिए भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि तिब्बत के लोगों के लिए।

दलाई लामा के प्रयत्नों के कारण तिब्बत के लिए संसार में सहानुभूति बढ़ रही है। तिब्बत चीनी–विस्तारवाद और इसके कारण विश्व–शान्ति और मानववाद के खतरे का प्रतीक बन गया है। दूसरी ओर इस्लामी आतंकवाद की लपेट में संसार के अन्य देश भी आने लगे हैं। अमेरिका और यूरोप के ईसाई लोग इस्लामवाद के सही स्वरूप को समझते हैं और वे इसको रोकने के लिए प्रयत्नशील हो गये हैं।

इस प्रकार इस्लामवाद और तिब्बत दो ऐसे मुद्दे हैं, जो भारत और संसार के बहुत से अन्य देशों को समान रूप से प्रभावित कर रहे हैं। इन मुद्दों को ढंग से उठाकर भारत संसार में न केवल नये साथी जुटा सकता है; अपितु इस्लामवाद के खतरों से स्वयं भी बच सकता है और अन्य देशों को बचाने में भी सहायक हो सकता है। इसी प्रकार तिब्बत के मुद्दे को उठा कर भारत तिब्बत की भी सहायता कर सकेगा और चीनी–विस्तारवाद से अपने आपको भी और दक्षिण–पूर्वी–एशिया और मध्य एशिया के देशों को भी बचा सकता है।

अतः भारत के राष्ट्रीय हित माँग करते हैं कि सभी राष्ट्रवादी तत्त्व, संगठन और दल इस्लामवाद और इससे प्रभावित काश्मीर जैसे मुद्दों तथा चीनी–विस्तारवाद और इससे प्रभावित तिब्बत जैसे मुद्दों को योजनाबद्ध ढंग से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उठायें। साम्यवाद की तरह इस्लामवाद भी एकाधिकारवादी, असहिष्णु, लोकतन्त्र–विरोधी और मानववाद विरोधी राजनैतिक विचारधारा है, जिसका उद्देश्य सारे संसार को इस्लाम के आधिपत्य में लाना और उसे 'दार–उल्–इस्लाम' बनाना है। वस्तुतः यह साम्यवाद का स्थान ले रही है और मानववाद तथा विश्व–शान्ति के लिए उससे भी अधिक भयानक खतरा बन रही है।

भारत इन दो मुद्दों को आधार बनाकर अपनी विदेश नीति और सुरक्षा नीति पर पुनर्विचार करे। नेहरूवादी काश्मीर नीति और विदेशनीति विफल हो चुकी है और अप्रासंगिक भी सिद्ध हो गई है। उसे छोड़कर संसार के बदलते हुए हालात के अनुरूप विदेश नीति को ढाला जाना अनिवार्य हो गया है।

वैश्विक इस्लामवाद (पैन–इस्लामिज्म) काश्मीर और तिब्बत के सम्बन्ध में जनमत को अविलम्ब जाग्रत् और शिक्षित किया जाना अत्यावश्यक है और हमारी सरकार भी अपनी विदेश नीति में यथोचित संशोधन–परिवर्द्धन करके इस्लामवाद और इस्लामी आतंकवाद के खतरों और तिब्बत की आजादी को आधार बनाकर संसार में नये ध्रुवीकरण का सूत्रपात करने की दिशा में तत्काल अग्रसर हो। गृह, रक्षा और आर्थिक–नीतियों का भी विदेश–नीति से पूर्ण समन्वय होना अपरिहार्यतः अपेक्षित है। ❐

– जे ३६४, शंकर रोड, नई दिल्ली–११००६०

लघुकथा

• सत्यनारायण भटनागर

अवकाश का नियम

पिताजी ने अपने पुत्र को पत्र लिखा, 'बेटा! दीपावली पर घर आ जाओ। तुम्हारी माँ के चले जाने के बाद अकेलापन काटने दौड़ता है। तुम्हारे आने से यह सूनापन नहीं खलेगा त्योहार पर।

बेटे का पत्र आया, 'पिताजी! मेरा मन भी आपसे मिलने को व्याकुल है; पर क्या करूँ, प्रशिक्षण के चलते अवकाश देने का नियम नहीं है। इसलिए चाहते हुए भी मैं गाँव आ न सकूँगा।' पिताजी परेशान हुए। उनका मन नहीं लग रहा था। उन्होंने सोचा, चलो पुत्र–वधू के घर ही हो आयें। दीपावली पर अकेलापन तो नहीं रहेगा।

वे पुत्र की ससुराल पहुँच गये। दरवाजे की घण्टी बजायी। दरवाजा उनके पुत्र ने खोला। दोनों ने एक दूसरे को देखा। आँखों ही आँखों में कहा–सुनी हुई। फिर मरे–मरे से पाँवों के सहारे पिता ने घर में प्रवेश किया। ❐

– देवरा देवनारायण नगर, रतलाम–४५७००१

एक दुर्लभ संस्मरण

भारत खण्डित नहीं होता, यदि...

– वचनेश त्रिपाठी

ब्रिटिश दासता का जो प्रतीक "यूनियन जैक" (अंग्रेजों का झण्डा) लखनऊ की रेजीडेन्सी पर सन् १८४७ से अर्थात् १०० वर्षों से फहरा रहा था, वह सन् १९४७ के १३ अगस्त की संध्या को चुपचाप उतार लिया गया– उस झण्डे (यूनियन जैक) को फील्ड मार्शल आचिनलेक के पास पहुँचा दिया गया और आचिनलेक ने वह झण्डा इंग्लैण्ड के शासक को भेज दिया– वहाँ यह यूनियन जैक अन्य पुराने ऐतिहासिक झण्डों के साथ सुरक्षित रखा जाने वाला था; परन्तु एक बेजा हरकत करने से अंग्रेज उन दिनों में भी बाज नहीं आये– वह यह कि जब अगले दिन भारतीय नेता जुलूस के साथ रेजीडेन्सी पर भारतीय ध्वज (तिरंगा झण्डा) फहराने पहुँचे तो दिखाई दिया कि जिस ध्वज–दण्ड पर वहाँ पहले यूनियन जैक लगा था– वह ध्वज–दण्ड ही काट फेंका गया है– उन दिनों अंग्रेज वायसराय माउण्टबेटन बहुत खुश दिखाई देता था और उसने अपने सह–कर्मी अंग्रेजों को सूचित कर दिया था कि "मैंने यहाँ (भारत में) वायसराय रहते हुए जो काम कर दिखाए हैं और जो ब्रिटिश कूटनीति की सफलता से मण्डित हैं– उनके लिए मुझे भारत के इसी स्वाधीनता–दिवस (१५ अगस्त) पर इंग्लैण्ड द्वारा 'अर्ल की उपाधि प्रदान की जायेगी।" इसके पूर्व ही यहाँ सम्पन्न हुए एक जलसे में एक अन्य अंग्रेज जार्ज एबेल को 'सर' की उपाधि प्रदान की जा चुकी थी। इस जलसे का आयोजक स्वयं माउण्टबेटन ही रहा था। लेकिन दूसरी ओर फील्ड मार्शल आचिनलेक और लार्ड इस्मे जैसे भी अंग्रेज यहाँ मौजूद थे, जो भारत के स्वतन्त्र होने पर अत्यन्त खेद और क्षोभ व्यक्त कर रहे थे यहाँ तक कि फील्ड मार्शल आचिनलेक को "बेरन" बनाकर सम्मानित किये जाने का निश्चय हुआ और यह बात आचिनलेक को विदित हुई, तो उसने साफ इन्कार कर दिया।

इसी तरह एक अन्य अंग्रेज उन दिनों भारत में कार्यरत था, जिसका नाम था– लार्ड इस्मे, उसने वायसराय माउण्टबेटन के यहाँ से वह सूची मँगवाई– जिसमें वे नाम अंकित किये गये थे, जिन्हें भारत में ब्रिटिश हितों के लिए कारगुजारी करने पर लन्दन के तख्त से पुरस्कृत किया जाना था। लार्ड इस्मे उस सूची में यह देखने का इच्छुक था कि जो अंग्रेज उसके अधीनस्थ रहकर यहाँ काम करते रहे– वे पुरस्कृत किये जाने वाले हैं या नहीं– परन्तु जब इस्मे वह सूची पढ़ने बैठा तो देखता क्या है कि उस सूची में सर्वोपरि मेरा ही नाम लिखा हुआ है। उसका नाम लन्दन इस संस्तुति के साथ भेजा गया था कि "लार्ड इस्मे को "के०जी०एस०आई०" अर्थात् "नाइट ग्रेंड क्रास आफ दि स्टार ऑफ इण्डिया" (भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा पुरस्कार) का पुरस्कार प्रदान किया जाय।" परन्तु लार्ड इस्मे ने तुरन्त कलम लेकर उस सूची से अपना नाम स्वयं काट दिया और फिर वह वायसराय माउण्टबेटन से यह कहने जा पहुँचा कि "मुझे यह सम्मान पुरस्कार नहीं चाहिए। मैं स्वीकार नहीं कर सकता।" उसका यह निषेध सुनकर लार्ड माउण्टबेटन हँस दिये बोले, "लेकिन अब तो बहुत देर हो चुकी है। इन नामों को संस्तुति यहाँ से लन्दन प्रेषित की जा चुकी।" फिर भी इस्मे कहता गया कि देखिए, यदि आप स्वयं इस सूची में मेरा नाम नहीं काटते, अपनी संस्तुति रद्द नहीं करते तो मैं ही खुद लन्दन को केबुल भेजूँगा।" और अन्ततः इस्मे के आग्रह पर लन्दन केबुल रवाना ही किया गया। इस कारण ब्रिटिश शासक क्रुद्ध भी हुआ परन्तु उसे इस्मे का नाम उस पुरस्कार सूची से हटा देना पड़ा और यही वह अंग्रेज था (लार्ड इस्मे) कि जब यह इसके ३५ वर्ष पूर्व भारत में कार्य कर रहा था तो कितना अभिलाषी रहा था कि काश ! यह उपाधि ("के०जी०एस०आई०") मुझे प्राप्त हो पाती। परन्तु क्योंकि अब भारत स्वतन्त्र हो रहा था, यहाँ से ब्रिटिश यूनियन जैक उतारा जा रहा था और एक अंग्रेज, फिर प्राचीन लार्ड वंशी अंग्रेज के नाते इस्मे को यह गवारा न था कि भारत को इंग्लैण्ड उसकी स्वतन्त्रता वापस करे और वह भी "आजाद हिन्द फौज" तथा "नेवी–विद्रोह" के प्रभावों से भारतीय सेना के विद्रोही हो जाने की धारणा से। लार्ड इस्मे ऐसे अवसर (१५ अगस्त) को, अपने जैसे अंग्रेज को इंग्लैण्ड के सम्राट् द्वारा

पुरस्कृत या सम्मानित किया जा[illegible] था, न ही इस (सत्ता–हस्तान्तरण) के कार्य को अपने लिए कोई प्रसन्नता या पुरस्कार प्राप्ति के लायक मानने को तैयार था। इतना विरोधी था उसका अन्तर्मन भारतीय स्वतन्त्रता के विषय में। इसी तनाव या कि अशान्त मानसिकता का शिकार बनकर इस्मे बुरी तरह रोगी हो गया, उसने खाट पकड़ ली। पेचिश (विशूचिका) शुरू हो गई और वह इसी रुग्णावस्था एवं मन की उदासी लिए तब तक बिस्तर से उठ नहीं सका, जब तक भारत में स्वाधीनता–दिवस (१५ अगस्त) का उत्सव समाप्त नहीं हो गया मानो १५ अगस्त उसके लिए "शोक–दिवस" रहा था और वायसराय लार्ड माउण्टबेटन था, जो १३ अगस्त को ही मोहम्मद अली जिन्ना को एक नये उपनिवेश 'पाकिस्तान' बनने के उपलक्ष्य में अपनी शुभकामनाएँ और हार्दिक 'बधाई' प्रदान करने के लिए कराची रवाना हो चुका था। यह शुभकामना उसे जिन्ना को इंग्लैण्ड के सम्राट् की ओर से भी देनी थी और जिसे वह भारत में वायसराय रहते हुए अपना एक अन्तिम कर्त्तव्य भी समझता था। इसी समय यद्यपि माउण्टबेटन को यह भी गुप्त सूचना प्रदान की गई कि "१४ अगस्त (सन् १९४७) के दिन कराची में जब पाकिस्तान बनने की उद्घोषणा के साथ मोहम्मद अली जिन्ना की सवारी एक बृहत् जुलूस के रूप में निकल रही होगी तो "**राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ**" के लोग उसकी सवारी पर बम फेंककर जिन्ना को मार देंगे।" यह खबर मिलते ही माउण्टबेटन कह उठा कि "अगर ऐसा है तो मैं भी १४ अगस्त को जिन्ना साहब के साथ उस मौके पर रहूँगा।" जिस दिन जिन्ना कराची पहुँचा– उसने अपने एडीसी से कहा था कि "मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि यह (पाकिस्तान बनना) मुमकिन होगा। क्योंकि मैंने अपनी जिन्दगी में पाकिस्तान बनने की उम्मीद भी नहीं की थी।" लेकिन अब यह एक घटना बन चुकी थी। पाकिस्तान अस्तित्व में आने वाला था और जिन्ना खुद अपनी खुली आँखों कल ही (१४ अगस्त को) पाकिस्तान को जन्मते हुए देखेगा। यह सत्य है कि यदि जिन्ना नहीं होता, तो पाकिस्तान का भी कहीं पता नहीं होता। इसीलिए वीर सावरकर के बड़े भाई बाबा राव सावरकर (गणेश सावरकर) अपने पास बड़े यत्नपूर्वक ५० हजार रुपये नकद और एक बड़ा देसी पिस्तौल जुटाकर यह योजना बना रहे थे कि जिन्ना को गोली मार दी जाय। उन्होंने एक क्रान्तिकारी को जिनका नाम यशपाल था और जो आजाद भगत सिंह के साथ रहे थे, पुणे बुलाया भी था और उनके सामने वह ५० हजार रुपये और पिस्तौल रखकर कहा था, "तुम आखिर क्रान्तिकारी हो इसलिए यह एक काम करो कि तुम या तुम्हारे साथी जिन्ना को गोली मार कर खत्म कर दें ताकि भारतमाता खण्डित होने से बच सके।" पर न तो यशपाल उस काम को स्वीकार कर सके और न ही यह बात दल को ही सूचित की। क्योंकि वैचारिक रूप से ही वे इस काम को उचित नहीं मान सके थे। यह प्रसंग यशपाल जी ने ही मुझे एक दिन बताया था। इतिहास शिकायत करता है कि काश! यह हो पाता! तो भी भारत से अंग्रेजों की १८२ वर्ष पुरानी दासता समाप्त हुई। अवश्य भारत खण्डित कर गये अंग्रेज। उस दिन १४ अगस्त को समारोह समाप्त होने के पहले तक जिन्ना अत्यन्त तनावग्रस्त और घबराया हुआ दिखता था क्योंकि "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" के लोगों द्वारा उसकी सवारी पर बम फेंके जाने की खबर उसे भी गुप्तचर विभाग ने दे रखी थी। इसीलिए १४ अगस्त का जब वह समारोह समाप्त हुआ तो जिन्ना राहत की साँस लेते हुए वापसी में लार्ड माउण्टबेटन के घुटनों पर अपना हाथ टिकाते हुए कह पड़ा था कि, "खुदा का शुक्र है कि मैं आपको वहाँ (समारोह) से जिन्दा वापस ले आया।" बाद में संघ की सिन्ध–शाखा के ४० स्वयंसेवकों पर पाकिस्तान ने "शिकारपुर–बम–केस" नाम से जो मुकदमा चलाया था– उसमें पाकिस्तान की अदालत ने १९ स्वयंसेवकों को फाँसी की सजाएँ और शेष २१ स्वयंसेवकों को जिनमें कराची के संघचालक तथा "सिन्ध आब्जर्वर" के प्रबन्ध संचालक श्री खानचन्द गोपालदास एडवोकेट भी

(पृष्ठ २६ का शेष)

अमूल्य निधि

आम सभा में, एक नेताजी ने
एक मनचले श्रोता से प्रश्न किया–
बताओ इन ऐतिहासिक
इमारतों में देश की
अमूल्य निधि कौन है ?
ताजमहल, लाल किला या इण्डिया गेट
श्रोता ने भौंहें घुमाकर
रुँधे गले से उत्तर दिया
'जी ! आपका पेट।'

– **योगेश मिश्र**
मुगरॉव (खदरान), हंडिया, इलाहाबाद

प्राचीन मिस्र में भी मनायी जाती थी दीवाली

• डॉ० शिवनन्दन कपूर

दीपावली का पर्व समस्त विश्व में किसी न किसी रूप में प्रचलित रहा है। भारत की भाँति चीन में भी रंग-बिरंगी कन्दीलें प्रज्वलित कर इस त्यौहार को मनाया जाता था। अमेरिका की मय जाति (मूलतः भारतीय) में भी वर्ष में एक बार वहाँ के निवासी ऐसा ही ज्योति-उत्सव आयोजित करते थे। इससे इस धारणा की पुष्टि होती है कि सारा संसार पुरातन सभ्यता के एक सांस्कृतिक-सूत्र में बँधा था। वह सूत्र निश्चय ही भारतीय स्रोत से उद्भूत हुआ होगा। कहा भी गया है–

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याः सर्व मानवाः।। (मनुस्मृति)

धरती के समस्त मानवों ने ज्ञान की, संस्कृति की शिक्षा इसी देश से प्राप्त की। फिर ज्योति-जागरण ही क्यों अछूता रहता?

विदेशों में भी यह प्रकाश-पर्व विशेषकर शीत-ऋतु के आगमन के पूर्व ही मनाते थे। कारण, उन दिनों सूर्य की आभा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त न हो पाती थी। सूर्य शीघ्र ही अस्त भी हो जाता था। रातें लम्बी हुआ करती थीं। इस प्रकार वह उत्सव ज्योति-आराधन का ही परिवर्तित रूप था।

मिस्र के शासक फरोओह सम्राट् अपने को 'सूर्य-पुत्र' कहा करते थे। ये सूर्य-वंशी राजा या 'सूरज के बेटे' इसी कारण अन्धकार दूर करना अपना कर्त्तव्य मानते थे। यह एक प्रकार से अपने आराध्य के प्रति सद्भावना-प्रदर्शन के रूप में था। अपने पूर्व-पुरुष के प्रति यह श्रद्धांजलि उसके वंशजों का स्वाभाविक धर्म या कर्त्तव्य भी था।

ये सूर्य-वंशी शासक आडम्बर-प्रिय तथा वैभव-प्रदर्शन में रुचि रखने वाले थे। इसका अवसर उन्हें अपने त्यौहारों पर भरपूर मिलता था। ऐसे समय पर वे जितना अपव्यय कर सकते थे, हृदय खोलकर उत्साह से करते थे। आज की इस महँगाई में तो उसकी कल्पना या अनुमान भी कठिन है। उस काल में विश्व की जनसंख्या भी कम थी। वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा में थीं। मिस्र के जलयान भारत एवं श्रीलंका तक व्यापार के लिए आया-जाया करते थे। भारत से रेशम, इत्र, कीमती लकड़ी, चन्दन आदि तथा मसाले, फल, औषधियाँ एवं अन्य खाद्य-पदार्थ ले जाया करते थे। ये भोज्य वस्तुएँ वे होती थीं, जो उस देश में नहीं पायी जाती थीं। मलाबार की श्यामांगी रूपसियाँ भी दासी-कार्य के लिए ले जाई जाती थीं। उन्हें राजा की सेवा में नियुक्त किया जाता था।

बहुत सम्भव है, ऐसी ही किसी यात्रा में मिस्र के व्यापारियों अथवा किसी अधिकारी ने भारत की जगमगाती ज्योति-माला के दर्शन किये हों। फिर मुग्ध-भाव से उसका वर्णन अपने देश के शासक-वर्ग के समक्ष किया हो। दीपों के पावन हास एवं जन-मन के मिलन तथा उल्लास ने उसे भी पुलकित एवं प्रभावित किया हो। भारतीय व्यवसायियों ने अपने सम्पर्क के उन अतिथियों को भारतीय परम्परा के अनुसार, आमन्त्रित किया ही होगा। हास-उल्लासमय प्रकाश के उस नर्तन से प्रेरित तथा प्रभावित होकर उसका प्रचलन उन्होंने मिस्र में भी किया होगा। शीघ्र ही उस उत्सव को शासकीय संरक्षण भी मिल गया होगा। फराओह शासक भी दीपावली मनाने लगे होंगे। अन्ततः वे ज्योति-पुत्र ही तो थे।

दीपावली मनाने का एक कारण और दिया जाता है। उन दिनों मिस्र में पिरामिडों तथा स्फिंक्स का निर्माण नया ही प्रारम्भ हुआ था। अतः उनके श्रममय सृजन पर प्रसन्नता-वश उत्सव का आयोजन होता रहता था। वह उल्लास-उत्सव दिन-रात चला करता था। अतः रात्रि मे अन्धकार का व्यवधान दूर रखने के लिए समुचित प्रकाश की व्यवस्था रखनी ही पड़ती थी। सम्भव है, एक वर्ष के उल्लास की स्मृति में हर वर्ष उसे मनाकर सुख का अनुभव किया जाने लगा। रात-दिन दीपकों तथा ज्योति-दण्डों, (मशालों) के प्रकाश में लोग नृत्य-गीत की योजना करते थे।

उस अवसर पर दो दिन उल्लास से सुमधुर, स्वादिष्ट पदार्थों से युक्त भोज आयोजित होते थे। तीसरे दिन की दावत फराओह के विशाल भवन में विशेष रूप से आयोजित होती थी। उस रात राजभवन ज्योतित दीपकों के प्रकाश में झिलमिलाता, जैसे अपने अन्तर की प्रसन्नता को आभासित करता रहता था। अन्य दिनों की अपेक्षा उस दिन विशेष रूप से प्रकाश की व्यवस्था होती थी। उत्सव तथा दावत की शान भी कुछ और रहती। उस दिन के भोज में हर मेज के चारों ओर बारह कुर्सियाँ लगाई जाती थीं। वे सोने की तथा जवाहरातों से जड़ी होती थीं। मात्र आसन्दियों की यह शोभा ही नहीं रहती थी, भोज्य–पदार्थ भी सोने–चाँदी के पात्रों में परोसा जाता था।

इस दिशा में यह उत्सव भारत से भिन्न न था। भारत में ही इस पर्व को कई दिनों तक मनाते हैं। अनेक प्रकार के पक्वान्न बनते ही रहते हैं। उत्सव–माला में ही अन्न–कूट का समावेश भी है। अन्नकूट अर्थात् भोज्य–पदार्थ के पर्वत सजते हैं। देवार्पण कर प्रसाद रूप में उनके वितरण की परम्परा आज भी चली आ रही है।

फराहो शासक अपने को धरती पर "होरस" देवता का प्रतिनिधि मानते थे। इस कारण वे वहाँ के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करते थे। प्रजा में धारणा थी कि राजा ही ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम है। शासक ही हर मन्दिर का मुख्य पुजारी माना जाता था। वही अन्य सह–पुजारियों की नियुक्ति करता तथा मन्दिर के उत्सव आदि के लिए भूमि और आर्थिक सहायता भी देता था। 'रे' यदि सूर्य देवता थे, तो गो–माता की प्रतिनिधि रूप में 'हाथोर' देवी थीं। भारत में अब भी गोवर्द्धन–पूजा के रूप में गो–धन का भी आराधन होता है। गो–धन का यहाँ तक महत्त्व था कि थेबन रईस मेकेत्रे के मकबरे में लकड़ी के सेवकों की पंक्तियाँ मिली हैं। वे सेवक दण्ड लिये स्वामी के पशुओं को चराते दिखाये गये हैं। उनमें कर्बुर या अनेक प्रकार की चित्तियों वाली श्वेत गायें हैं। भारत की ही भाँति वहाँ भी गो–धन की मान्यता थी। गो–पूजा का पर्व इसीलिए दीपावली से जुड़ा जैसे गो–धन यहाँ क्रय–विक्रय का साधन था, वैसे ही मिस्र में गो–धन से कर चुकाया जाता था। अति प्राचीनकाल में वे ही मुद्राओं के विकल्प या स्थानापन्न थे।

वैसे मिस्र–वासी श्वेत वसन धारण करने में रुचि रखते थे; पर ज्योति–पर्व या अन्य अवसरों पर वे रंगीन वस्त्र भी पहनते थे। वे कपड़े तरह–तरह के जवाहरातों से सज्जित भी होते थे। उन्हें नीला रंग विशेष प्रिय था। उनकी नदी भी नील है। भवन भी नीले रंग से रंगे जाते। उनमें स्फाटिक का चूर्ण तथा अन्य ऐसे पदार्थ मिलाये जाते थे, जिससे ऐसे ज्योति–पर्व पर उनकी आभा कई गुना बढ़ जाती थी।

रात में दीपों से प्रकाशित नौकाएँ नील नदी के वक्ष पर अप्सराओं–सी तिरती थीं। उन नौकाओं के पर्दों पर सोने–चाँदी के पत्तर जुड़े रहते थे। नदी–तट की शोभा भी निराली रहती थी। दोनों किनारों पर प्रकाश की व्यवस्था से आभा जैसे जल–तल पर लहराती, छहरती, अठखेलियाँ करती लगती थी। इस रोशनी में नौकाओं के पेंदे चमकते, फिर उनका प्रतिबिम्ब लहरों को ज्योतिर्मय करता था। उन नौकाओं में देश की सुन्दर बालाएँ आरूढ़

प्रेरक–प्रसंग

● संजीव कुमार आलोक

अनथक प्रयत्न

बात उस समय की है, जब जापान में बौद्धधर्म–सूत्र उपलब्ध नहीं थे। जापान में बौद्ध धर्मानुयायी इस कमी को पूरा करना चाहते थे।

विद्वान् तेत्सुजेन ने उन्हें जापानी भाषा में प्रकाशित करने के लिए धन एकत्रित करना आरम्भ किया। दस वर्षों में वह इतना धन संग्रह कर पाया कि ग्रन्थ छपा सके।

ग्रन्थ प्रकाशित होने को था कि यूजी नदी में बाढ़ आ गयी और तेत्सुजेन ने वह धन बाढ़ पीड़ितों की सहायता में व्यय कर दिया। इसके बाद उसने फिर चन्दा जमा किया। अन्य दस वर्षों के कठिन परिश्रम से उतना ही धन फिर जमा हो सका। इतने में महामारी फैली और वह धन फिर रोग ग्रस्तों की सहायता में लगा दिया गया।

लेकिन इसके बाद तेत्सुजेन ने फिर धन–संग्रह आरम्भ किया। इस बार उसे उतना धन जमा करने में बीस वर्ष लग गये।

इस तरह चालीस वर्षों के अथक परिश्रम से तेत्सुजेन उन ग्रन्थों को छपाने में सफल हो गया।

— विनीता भवन, निकट बेली स्कूल, सबेरा सिनेमा चौक, काजी चक, बाढ़–पटना – ८०३२१३ (बिहार)

रहा करतीं। सुकुमार करों में सुनहले दण्ड वाली पतवार रहती। इसीलिए कलात्मक रीति से, कलाइयों को बल देकर चलाई गयी पतवारें 'छप-छप' के शब्द में भी अद्भुत लयात्मकता का सुमधुर संगीत उत्पन्न कर मन मुग्ध करती रहती थीं। नावों पर भी गीत-नृत्य का आयोजन रहा करता।

इस दृश्य की समता या कल्पना वाराणसी में काशी-राज द्वारा प्रारम्भ किये गये, "बुढ़वा-मंगल" के उत्सव से कर सकते हैं, जिन्होंने गंगा की किलोलें करती लहरियों पर गैसों तथा मशालों से जगमगाती नृत्य तथा गीतमय शोभा वाली तरुणियों से सज्जित तरणियों को देखा है, वे उस दृश्य की सहज कल्पना कर सकते हैं। उनमें तो कुछ बजरों पर चलती-फिरती दुकानें बाजार का भ्रम उत्पन्न करती थीं। कुछ पर श्रोता, कुछ पर कलकण्ठी कोकिल-कूजिता कामिनियों के कण्ठ से प्रवाहित ललित स्वर-धारा संचलित होती। गंगा का जल कल-कल के स्वर में अपना योगदान अपनी तान मिलाता रहता। बुढ़वा-मंगल का उत्सव रात भर चला करता था। उसे देखने के लिए तटों पर भी कम भीड़ नहीं एकत्र होती थी।

मिस्र के निवासी भी उसी प्रकार के आयोजित प्रकाश-पर्व का गर्व से आनन्द लेने के लिए नील नदी के दोनों किनारों पर एकत्र हो जाते थे। वे उन ज्योतित नौकाओं को देखते ही उल्लास से भर जाते थे। उन्हें देखते ही वे आवेश और आवेग के साथ वेग से हाथ हिलाते तथा स्वागत-स्वर में गगन गुँजाते रहते थे। नृत्य तथा उमंग भरे गीत का वातावरण पुलिन पर भी रहता। कभी-कभी तो उनकी उन्मत्तता सीमा पार कर जाती थी। उस समय उन्मादित समूह को वश में करने के लिए दासों का दल अग्रसर होता था। उनके हाथों की नंगी तलवारों का फलक उस प्रकाश में चमकता रहता था। इस प्रकार नील पर होने वाला वह जल-उत्सव भी बहुत कुछ भारतीयता की छाप लिए रहता था।

उस उत्सव की एक विशेषता और थी। उस प्रकाश-पुंज का और अद्भुत आभास कराने के लिए पल भर को सभी मशालें बुझा दी जाती थीं। फिर अकस्मात् वह रोशनी फिर जगमगा उठती थी। पहाड़ी के ऊपर बने मन्दिर में ज्योति ले जायी जाती थी। धनवानों के प्रासाद उस दिन जगमगाते रहते। राजभवन की विभा तक शोभा की तो कोई समता ही न रहती। नृत्य-गीत तथा उन्मत्तता के परिवेश में ऐसा लगता था मानों वह दीपों का पर्व जीवन का उपभोग करने वालों को रात्रि हास-उल्लास तथा आमोद में बिताने की प्रेरणा दे रहा हो। भारत में भी मन्दिर में ज्योति प्रकाशन की व्यवस्था है।

कामिनियाँ वीरों अथवा प्रेमियों के कन्धों पर सवार होकर निकलती थीं। उनके कल-कण्ठ से मधुर कूजन वाली ध्वनि वातावरण को मोहक एवं मादक संगीत से भरती रहती थी। दीपों की मुस्कान के मन्द पड़ने तक वे चन्द्रमुखियाँ अपने प्रियतमों के साथ निशा की सरसता का आनन्द लेती थीं। वह ज्योति-पर्व वहाँ प्रेम तथा मिलन का अवसर बन कर भी मन लुभाता था।

भारत तथा मिस्र के ज्योति-पर्व में यही बड़ा अन्तर था। इस देश में, जहाँ यह उत्सव धन-साधना, आराधना, उल्लास एवं पावनता का संगम लिये रहता, वहीं मिस्र में नील-वासी नर इस रस-धारा को वासना से सना बना दिया करते थे। अब स्थान-विशेष की प्रभावशीलता अपना रंग तो दिखायेगी ही। गौरव की बात यही है कि इस देश का सांस्कृतिक सन्देश देश-देश में विशेष रूप से व्याप्त हुआ था। ❐

— विट्ठलनगर, खण्डवा (मध्य प्रदेश)

शक्ति-पीठ पोखरन कोटिशः नमन

— **धनञ्जय अवस्थी**

शक्ति की मशाल का नाम पोखरन;
शक्ति-पीठ पोखरन, कोटिशः नमन।

भारतीय अस्मिता अभेद्य हो गई,
साधना स्वदेश की वरेण्य हो गई;
चेतना अखण्ड शोध-सन्धि-संचरण,
शक्ति-पीठ पोखरन कोटिशः नमन।

बुद्ध राष्ट्र की समर्थ योजना सफल,
शौर्य-पूत-भावना, महाव्रती अटल;
उठी उमंग की तरंग राष्ट्र-सोच-मन,
शक्ति-पीठ पोखरन कोटिशः नमन।

युग प्रभात की नयी किरन पुकारती,
भर गई सुगन्ध से समग्र भारती;
मानवीय क्षेम के सुयोग योग-धन,
शक्ति-पीठ पोखरन कोटिशः नमन।

अणु प्रयोग में न द्वेष-भावना रही,
राष्ट्र की समृद्धि मात्र कामना रही;
हेतु लोक मंगलम् रसाद्रि कोष-धन,
शक्ति-पीठ पोखरन कोटिशः नमन।

— कमलानगर, फतेहपुर (उ०प्र०)

(पृष्ठ २२ का शेष)

शामिल थे, जन्म कैद तथा १०–१०, १५–१५ वर्ष का कारावास दिया गया था परन्तु भारतीय जनता द्वारा तत्कालीन नये प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू पर दबाव डालने से भारत में जिन मुस्लिमों को फाँसी और जन्म–कैद आदि की सजाएँ मिली थीं– उन्हें पाकिस्तान भेजकर उनके बदले संघ के उक्त ४० दण्ड–प्राप्त स्वयंसेवक भारत बुला लिए गये। रिहा होकर एडवोकेट खानचन्द गोपालदास उन्हीं दिनों दिल्ली आये थे, दिल्ली के तत्कालीन संघचालक लाला हंसराज के यहाँ ठहरे थे। मैं भी गया था वहाँ, उन्हीं से सर्वप्रथम इस 'बम–केस' के विषय में ४० नामों की सूची मैंने प्राप्त की थी– उस दिन तत्कालीन सर संघचालक स्वं० गुरुजी भी लाला हंसराज के यहाँ आये हुए थे। परन्तु उस मुकदमे के विषय में देश के अन्य अखबारों में भी कुछ प्रचारित या प्रकाशित नहीं हुआ। यह तथ्य है कि उन दिनों भी संघ–कार्यकर्ता कराची में सुख की नींद नहीं सो रहे थे।

आजादी के प्रथम दिवस १५ अगस्त (सन् १६४७) को यह दृश्य क्या कम आश्चर्यकारक था कि खास दिल्ली की सड़कों पर "जयहिन्द" के नारों के साथ जनता की भीड़ चिल्लाती थी–

"माउण्टबेटन जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद ! माउण्ट बेटन की जय !" और एक नारा जनता के बीच से यह भी उभरता सुनाई देता था कि

"नेहरू–माउण्टबेटन एक हो !"

और मुम्बई की सड़कों पर पथ–संचलन मार्च करते समय सरकारी बैण्ड की यह धुन गूँज रही थी कि, **"गाड ब्लेस दि प्रिंस ऑफ वेल्स।"**

दरवाजों से आते–जाते और लिफ्टों में उतरते–चढ़ते समय अंग्रेजों से भारतीय जनता के लोग यह कहते सुने जाते– **"पहले आप ! पहले आप !"** शायद इसी दृश्य को परिलक्षित कर पुराने कांग्रेसी कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी ने लिखा कि–

"इंग्लैण्ड को छोड़कर संसार की अन्य कोई भी सरकार भारतवासियों को इतनी शालीनता से स्वाधीनता नहीं प्रदान कर सकती थी तथा हिन्दुस्तान के अतिरिक्त संसार का और कोई भी देश इतनी शालीनता और विनम्रता से इग्लैण्ड के शासक के प्रति आभार व्यक्त भी नहीं करता" लेकिन यह आजादी कैसी थी कि अगस्त १६४७ से लेकर ६ महीने बीतते–बीतते एक करोड़ साठ लाख जनता घर–बार छोड़कर शरणार्थी बन गयी तथा इन्हीं महीनों के बीच ६ लाख लोग मार डाले गये। बच्चों को उनकी टाँगें पकड़– पकड़ कर दीवारों पर पटक कर मार डाला गया। गर्भवती माताओं के पेट चीर डाले गये और हिन्दू लड़कियों की छातियाँ काट ली गई। सिखों से भरी ट्रेन के सभी शरणार्थी मार डाले गये और फिर उसी ट्रेन पर यह लिख दिया गया कि– **"पाकिस्तान की तरफ से हिन्दुस्तान को तोहफा"**। एक लाख लड़कियों का अपहरण हुआ। उनका धर्मान्तरण किया गया और फिर वे नीलाम की गईं। इसके बावजूद लार्ड माउण्टबेटन के मित्रों का यह फतवा था कि माउण्टबेटन, जो द्वितीय विश्व–युद्ध के समय दक्षिण– पूर्वी एशिया के मोर्चे पर ब्रिटिश सेना का कमाण्डर इन–चीफ था और जिसे यह निर्देश था इंग्लैण्ड की तरफ से कि **'सुभाष चन्द्र बोस को जिन्दा या मुर्दा किसी भी हालत में हिरासत में लेकर हाजिर करो'** की मौजूदगी में बंगाल के बनावटी या कि जान–बूझकर पैदा किये गये "अकाल" में ४० लाख बंगाली भूख से तड़प–तड़प कर मर गये थे क्योंकि वहाँ का सारा अनाज जहाजों में भर–भरकर अंग्रेजों ने समुद्र में बहा दिया था– उसके रहते सन् १६४७ में यदि ६ लाख लोग और मारे गये तो भारत को आजादी देने की उपलब्धि के सामने यह हत्याकाण्ड या कि मूल्य कोई बड़ी कीमत न थी।" पता नहीं, माउण्टबेटन के उन मित्रों में सर्वोपरि एक नाम पं० जवाहर लाल नेहरू का भी था या नहीं, क्योंकि नेहरू जी ही भारत के ऐसे एक नये प्रधानमन्त्री थे, कि लन्दन में हवाई जहाज से उतरते ही लार्ड माउण्टबेटन के बँगले पर जा पहुँचते थे– नेहरू जी के सिवा भला और किस भारतीय ने उस अंग्रेज से ऐसी मित्रता या कि वफादारी निभाई ? वह माउण्टबेटन जिसे पता था कि सुभाष चन्द्र बोस का अन्त जबकि विमान–दुर्घटना में नहीं हुआ तो आखिर उस शलाका पुरुष का हुआ क्या ? और यह असम्भव है कि वह रहस्य माउण्टबेटन जानता हो और फिर नेहरू जी से छिपा रह सका हो ! पर सुभाष बोस के गायब होने का रहस्य ये दोनों ही व्यक्ति पचा गये। फिर कांग्रेस के हाथ में समझौते की मेज पर आजाद भारत की जो सत्ता आई– उस वातावरण में यदि दिल्ली–मुम्बई की सड़कों पर **"माउण्टबेटन जिन्दाबाद"** और **"नेहरू–माउण्टबेटन एक हो"** के नारे लगे तो किमाश्चर्यम् ? ❑

१४ अक्टूबर (जन्म दिवस) पर विशेष–

उनका रोम–रोम क्रान्तिकारी था

– उदय खत्री

इस शताब्दी के आरम्भ की बात है। लाहौर कालेज के एक छात्र ने कालेज के सभा भवन में अन्य साथी छात्रों एवं अध्यापकों के सम्मुख अपनी असाधारण स्मृति एवं बुद्धि का प्रदर्शन कर सबको हतप्रभ कर दिया।

उस छात्र ने पहले तो अपने शातिर प्रतिद्वन्द्वी को शतरंज के खेल में मात दे दी। फिर एक कापी में लिख कर दिये गये गणित के एक बहुत ही कठिन सवाल को उसने फटाफट हल कर दिया। उसी समय दो विद्वानों ने अरबी व लैटिन भाषा में दो कविताएँ पढ़ीं। उनको सुनने के फौरन बाद उस छात्र ने वे दोनों कविताएँ शब्दशः सुना दीं। मजे की बात तो यह कि उसने यह सब कार्य एक साथ मात्र पाँच मिनट के अन्दर कर डाले। यही नहीं, इन पाँच मिनटों के पूरे समय तक एक व्यक्ति एक घण्टा टन–टन कर बजाता रहा। उक्त पाँच मिनट की अवधि में घण्टे से कितनी बार टन–टन की ध्वनि की गई, उसकी संख्या भी उसने बिल्कुल सही–सही बता दी।

बाद में उसी प्रतिभाशाली छात्र ने लाहौर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य की परीक्षा ८०० में ७७६ अर्थात् ९७ प्रतिशत अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण की। यह एक कीर्तिमान था। उल्लेखनीय है कि उन दिनों एम०ए० अंग्रेजी की कापियाँ अधिकांशतः अंग्रेज प्रोफेसर ही जाँचते थे।

आगे चल कर उच्च अध्ययन हेतु जब वह छात्र लन्दन की आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगा तो उसके लिखे निबन्धों को पढ़ कर अंग्रेज प्राध्यापक बरबस कह उठते– "मिस्टर, आपने जो कुछ भी निबन्ध में लिख दिया है, उससे आगे आपको पढ़ाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है।"

विलक्षण स्मृति एवं बुद्धि के धनी वह प्रतिभाशाली छात्र लाला हरदयाल थे, जो कालान्तर में विख्यात क्रान्तिकारी संस्था "गदर पार्टी" के संस्थापकों में एक हुए।

लाला हरदयाल का जन्म १४ अक्टूबर, १८८४ को दिल्ली के एक खाते–पीते कायस्थ परिवार में माता भोलीरानी एवं पिता श्री गौरी दयाल माथुर के घर हुआ था। वे एक बहन और चार भाइयों में सबसे छोटे थे। माता भोलीरानी एक आदर्श हिन्दू धार्मिक विचारों की महिला थीं जिनकी गहरी छाप बालक हरदयाल के मन पर पड़ी थी। पिता श्री गौरी दयाल माथुर दिल्ली की जिला अदालत में रीडर के साथ–साथ फारसी और उर्दू के अच्छे विद्वान् भी थे। पिता से प्रभावित लाला हरदयाल भी बड़े होकर उर्दू– फारसी के अच्छे विद्वान् बने। इनके अतिरिक्त उन्होंने पाली, अरबी, इटालियन, टर्किश, स्वीडिश, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक एवं जर्मन भाषाएँ भी सीखीं।

बचपन से ही होनहार हरदयाल की स्मरण शक्ति गजब की थी, मानों उन्हें कोई ईश्वरीय वरदान प्राप्त हुआ हो। किसी भी पुस्तक को एक बार पूरा पढ़ लेने के बाद उन्हें उसे दुबारा पढ़ने की आवश्यकता ही न रहती। मित्रगण उनके मुख से पूरी पुस्तक आरम्भ से अन्त एवं अन्त से आरम्भ तक जुबानी शब्दशः सुन कर दंग रह जाते। वास्तव में वह एक "जीनियस" थे।

जब हरदयाल मात्र छठी कक्षा के ही छात्र थे, उसी समय से उन्होंने अंग्रेजी दैनिक "ट्रिब्यून" एवं साप्ताहिक "हाविंजर" के सम्पादकीय लेख पढ़ने शुरू कर दिये थे। परन्तु विद्याध्ययन के दौरान वे इतने खो से जाते कि अपने वस्त्रों का उन्हें विशेष ध्यान न रहता। यहाँ तक कि वे उल्टा पायजामा पहन कर कालेज पहुँच जाते।

लाहौर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में सर्वाधिक अंकों का नया कीर्तिमान स्थापित कर एम०ए० की डिग्री प्राप्त करने पर लाला हरदयाल की ख्याति चारों ओर फैलने लगी। उन्हें पूरे उत्तर भारत में "पंजाब विश्वविद्यालय का देदीप्यमान सितारा" कहा जाने लगा। उस समय उनकी आयु लगभग बीस वर्ष थी।

१९०५ में लाला हरदयाल

सरकारी छात्रवृत्ति पर उच्च अध्ययन हेतु इंग्लैण्ड पढ़ने गये। यह स्वतन्त्रता संग्राम में "तिलक-गोखले" का दौर था। इंग्लैण्ड जाने से पूर्व ही, "तिलक-गोखले" की राष्ट्रभक्ति से प्रभावित लाला हरदयाल के मन में भी उग्र राष्ट्रवाद की चिनगारी सुलगने लगी थी।

इंग्लैण्ड में हरदयाल लन्दन की आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगे। उन दिनों वहाँ भारत के महान् क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा भी रह रहे थे। वे वहाँ भारतीय छात्रों की आवास-सुविधा हेतु "इण्डिया हाउस" की स्थापना कर उसकी देखभाल करते हुए क्रान्तिकारी कार्यों में भी सक्रिय थे। लाला हरदयाल और श्यामजी कृष्ण वर्मा में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गये। भारत के एक और महान् क्रान्तिकारी भाई परमानन्द भी उन दिनों आर्य समाज के प्रचारक के रूप में लन्दन में ही सक्रिय थे। उनसे भी लाला जी का घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया। उक्त दोनों क्रान्तिकारियों के साथ उनकी अब अक्सर बैठकें होने लगीं। कुछ दिनों बाद वीर विनायक दामोदर सावरकर जैसे महान् क्रान्तिकारी भी लन्दन पहुँच कर उन बैठकों में शामिल हो गये। सावरकर और हरदयाल एक अच्छे क्रान्तिकारी मित्र बन गये।

लाला हरदयाल की लगभग १६ वर्ष की अल्प आयु में ही सुन्दर रानी नामक एक सुशील एवं सुन्दर कन्या से शादी हो चुकी थी। उनकी ससुराल मेरठ में थी तथा ससुराल वाले रूढ़िवादी विचारों के होने के कारण अपनी कन्या को हरदयाल के साथ इंग्लैण्ड भेजने को किसी भी प्रकार तैयार न थे। लन्दन में हरदयाल एक क्रान्तिकारी के रूप में स्थापित हो चुके थे। वहाँ वह अपने क्रान्तिकारी साथियों से सलाह-मशविरा कर एक विचित्र योजना कार्यान्वित करने भारत पहुँचे।

भारत पहुँच कर हरदयाल अपनी पत्नी से मिलने मेरठ अपनी ससुराल गये। वहाँ वह बड़ी चालाकी से पत्नी को अपनी बात समझाने में सफल हो गये। पूर्व योजनानुसार एक दिन उनकी पत्नी मर्दाना लिबास में घर से चुपचाप निकल कर मेरठ स्टेशन पहुँची जहाँ हरदयाल पहले से ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों पति-पत्नी ट्रेन पकड़ कर बम्बई रवाना हो गये। हरदयाल ने दो टिकटों की व्यवस्था पहले ही कर ली थी। चौकन्ने ससुराल वाले टके से देखते रह गये। बम्बई से दोनों पति-पत्नी पानी के जहाज द्वारा इंग्लैण्ड पहुँच गये और आक्सफोर्ड में साउथ मूर रोड पर रहने लगे। इधर भारत के समाचार पत्रों ने "पति द्वारा पत्नी का अपहरण" शीर्षक से समाचार छाप कर लाला हरदयाल के उक्त क्रान्तिकारी कदम की खूब प्रशंसा की।

भारत में हरदयाल के मित्रों को इस बात का विश्वास था कि उनका जैसा विलक्षण प्रतिभा का धनी आसानी से आई०सी०एस० की परीक्षा पास करके भारत लौट कर देखते ही देखते बड़े ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हो जायेगा। परन्तु लाला हरदयाल तो पहले ही अंग्रेजों की नौकरी न करने का संकल्प ले चुके थे।

वह एक बार जो संकल्प लेते, उस पर दृढ़ता से कायम रहते। लन्दन में रहते हुए उनके हृदय में यह भावना प्रस्फुटित हुई कि भारतीयों के लिए अंग्रेजी शिक्षा एवं वेषभूषा कतई उपयोगी नहीं, यह गुलामी के संस्कार ही डालती है। अंग्रेजियत से सख्त घृणा हो जाने के कारण उन्होंने उन सभी चीजों का त्याग करना शुरू कर दिया, जिससे गुलामी के संस्कार झलकते हों।

लालाजी को भारत सरकार से छात्रवृत्ति के साथ ही आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की भी दो छात्रवृत्तियाँ मिल रहीं थीं। क्रान्तिकारी साथियों के समझाने के बावजूद उन्होने तीनों छात्रवृत्तियाँ वापस कर दीं। उन्होंने इस बात की चिन्ता नहीं की कि ऐसे में दम्पति का गुजारा कैसे होगा। परन्तु कुछ प्रबन्ध श्यामजी कृष्ण वर्मा की ओर से तथा कुछ स्वयं कर वह जिन्दगी की गाडी किसी प्रकार चलाने लगे। अब वह पत्नी को भी स्वयं पढ़ा-लिखा कर क्रान्ति के रंग में रंगने लगे।

लाला शीघ्र ही अंग्रेजी वस्त्रों को सदा के लिए त्याग कर धोती, कुर्ता, पगड़ी, दुपट्टा एवं देशी जूते पहन कर रहने लगे यानी पूर्णतः स्वदेशी अपना ली। फलतः उस ठण्डे मुल्क में वे निमोनिया से ग्रस्त हो गये, परन्तु उन्होंने अंग्रेजी दवाएँ न लेकर कुछ घरेलू नुस्खों से ही अपने को ठीक कर लिया। अब वे शरीर पर कम्बल लपेट कर रहने लगे।

महँगाई

वे
असहाय
नजर आते हैं
अपनी आमदनी की,
खर्च से
पटरी बैठाने में
खुद पटरी से
उतर जाते हैं।

— मिश्रीलाल जायसवाल
सुभाष चौक, कटनी (म०प्र०)

धीरे-धीरे लाला हरदयाल के मन में भी क्रान्तिकारी उपायों द्वारा भारत को स्वतन्त्र कराने की धुन सवार हो गई और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वे शीघ्र ही सपत्नीक भारत लौट आए तथा लाहौर में एक आश्रम बनाकर रहने लगे। वहाँ से वे पत्नी को छोड़ने मेरठ गये और कुछ दिनों बाद पुनः लाहौर लौट आए। यह उनकी अपनी गर्भवती पत्नी से जीवन की अन्तिम भेंट थी। लाहौर में आश्रम में रहते हुए ही उन्हें पुत्री-रत्न प्राप्ति का सुखद समाचार मिला, परन्तु यह उनका दुर्भाग्य ही रहा कि उन्हें जीवन में कभी अपनी पुत्री "शान्ति" का मुख देखने का भी अवसर नहीं मिला।

आश्रम में रहते हुए लाला हरदयाल ने "पंजाबी" नामक दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया, जिसके माध्यम से वे ब्रिटिश सरकार पर जम कर प्रहार करते। आश्रम में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर कितने ही नौजवान क्रान्तिकारी कार्यों की ओर उन्मुख हुए, जिनमें सर्वश्री भाई बाल मुकुन्द, हनुमन्त सहाय, मास्टर अमीर चन्द एवं अवध बिहारी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन क्रान्तिकारी युवकों ने भी आगे चलकर दिल्ली में एक विद्यालय खोल कर उसके माध्यम से क्रान्तिकारी युवक तैयार करने का काम शुरू कर दिया।

लाला हरदयाल शीघ्र ही सरकार की निगाहों में चढ़ने लगे। नौजवानों को क्रान्ति के लिए उनसे अत्यधिक प्रेरित होता देख शासन उनकी गिरफ्तारी की तैयारी करने लगा। एक विलक्षण प्रतिभा के धनी क्रान्तिकारी की भारत के स्वतन्त्रता संग्राम हेतु महत्त्वपूर्ण उपयोगिता को ध्यान में रख कर लाला लाजपत राय व अपने अन्य अन्तरंग मित्रों के अत्यधिक ज़ोर देने पर लाला हरदयाल भारत छोड़ने के लिए सहमत हो गये।

लाहौर का आश्रम एक प्रकार से बन्द कर बड़े भारी हृदय से भारत छोड़ लाला कोलम्बो व इटली होते हुए फ्रान्स पहुँचे। उन दिनों श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम भीखाइजी कामा, वीर विनायक दामोदर सावरकर एवं सरदार सिंह राणा आदि क्रान्तिकारियों की मण्डली पेरिस में सक्रिय थी। मैडम कामा ने "वन्दे मातरम्" नामक मासिक पत्रिका निकालना आरम्भ किया तो उसके सम्पादन का भार लाला हरदयाल को सौंपा।

एक जुलाई, १९०६ को लन्दन में कुख्यात ब्रिटिश अधिकारी कर्जन वायली को गोली मार कर धराशायी करने वाले क्रान्तिवीर मदन लाल धींगरा को १७ अगस्त, १९०६ को लन्दन की पेन्टोनविले जेल में फाँसी दे दी गई। इसके कुछ दिनों बाद १० सितम्बर, १९०६ को पेरिस में "वन्दे मातरम्" का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ जो कि इसी अमर शहीद क्रान्तिवीर मदनलाल धींगरा को समर्पित था। पत्र के आगामी अंक भी क्रान्तिकारी शहीदों की गाथाओं से भरे रहते। साथ ही लाला हरदयाल के सम्पादकीय लेख भारतीय युवकों को देशभक्ति एवं बलिदान हेतु अत्यधिक प्रेरित करते। "वन्दे मातरम्" की लोकप्रियता से घबड़ाई ब्रिटिश सरकार के अत्यधिक दबाव पर फ्रान्सीसी सरकार ने जब इस पत्र के प्रकाशन में अत्यधिक रोड़े अटकाने शुरू किये तो उसे जेनेवा से प्रकाशित किया जाने लगा। इस बीच लाला हरदयाल ब्रिटिश गुप्तचरों को चकमा देते हुए किसी प्रकार लन्दन होते हुए अल्जीयर्स पहुँचे जहाँ वे मिस्र के क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। वहाँ से वे पुनः पेरिस होते हुए फ्रान्सीसी उपनिवेश "लामार्टिनिक" द्वीप पहुँचे, जहाँ वे एक तपस्वी के रूप में कई माह तक एकान्तवास में रहे।

जनवरी १९११ में लाला हरदयाल क्रान्तिवीर भाई परमानन्द के आमन्त्रण पर लामार्टिनिक द्वीप छोड़ कर अमरीका के कई नगरों का भ्रमण करते हुए केलिफोर्निया पहुँचे। केलिफोर्निया राज्य में भारतीय समुदाय

एक रोज ... !

— महेन्द्र भट्ट

एक रोज
दीप ने सोचा
दुनियाँ
कितनी बदल रही है?
जुगनुओं को
नमस्कार कर रही है।
दीपों का
युग बीत गया।
उदार-मन का
घट रीत गया।।
हर तरफ, चमत्कार है।
जुगनुओं की भरमार है।।
तभी, पर्ण-कुटी से
निकल कर
एक निर्धन व्यक्ति आया।
उसने
दीप ले जाकर
सिंहासन पर बिठाया।।
दीप की ताज-पोशी देखकर,
सारे जुगनू घबड़ाये।
पर्ण-कुटी छोड़कर,
दूर भागते नजर आये।।

— जे/५४२, दर्पण कालोनी,
ग्वालियर-४७४०११

के लोग काफी बड़ी संख्या में रहते थे। वहाँ उन्होंने भाई परमानन्द, तेजा सिंह, तारकनाथ दास आदि क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर भारतीय विद्यार्थियों को विद्याध्ययन में मदद एवं क्रान्तिकारी कार्यों का प्रशिक्षण देना आरम्भ कर दिया। अमरीका के सानफ्रान्सिस्को एवं बर्कले आदि विभिन्न नगरों में उनके द्वारा दिये गये ओजस्वी भाषणों से उनकी ख्याति भारतीयों एवं अमेरिकन विद्यार्थियों के बीच भी तेजी से फैलने लगी। इसी बीच उन्होंने लेलैण्ड स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत एवं हिन्दू दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक के पद पर भी कुछ समय कार्य किया। वे जहाँ कहीं भी रहते, अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही सबको आकर्षित कर लेते।

२३ दिसम्बर, १६१२ को दिल्ली में लार्ड हार्डिंग्ज पर हुए बम प्रहार से प्रफुल्लित लाला हरदयाल ने तुरन्त ही एक सार्वजनिक सभा का आयोजन कर डाला। जिसमें राष्ट्रवादी चीन के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता डॉ० सनयात् सेन भी उपस्थित थे। जनवरी, १६१३ में उन्होंने "युगान्तर सरक्युलर" नामक एक प्रपत्र तैयार कर सारी दुनिया में बँटवाया। प्रपत्र के प्रमुख अंश निम्न प्रकार थे–

"शाही दरबार को मुँह तोड़ उत्तर दिया है बम–विस्फोट ने। ... अच्छा है कि दरबार भी होते रहें और बम प्रहार भी होते रहें जब तक कि सारी दुनिया से दरबारों के आयोजन की प्रथा समाप्त न हो जाये। ... किसी भी साम्राज्यवादी या शाही जुलूस पर बम का प्रहार कभी असामयिक और अनुचित नहीं हो सकता; क्योंकि वह शासक वर्ग के जादू को समाप्त करता है और उस सम्मोहन को भंग कर देता है जिसका काम लोगों को संज्ञा–शून्य करना है। बम के विस्फोट में लाखों लोगों का स्वर सम्मिलित रहता है। बम–विस्फोट क्रान्ति की रणभेरी है।"

इस प्रपत्र ने ब्रिटिश साम्राज्य में खलबली मचा दी। ब्रिटिश गुप्तचरों की रिपोर्ट पर ब्रिटिश शासन ने अमरीकी सरकार से लाला को सौंपे जाने का अनुरोध किया। परन्तु लाला जी ने इन बातों की कोई परवाह न करते हुए अमरीका के सान फ्रान्सिस्को नगर में जून, १६१३ में ही "गदर पार्टी" की स्थापना कर डाली जिसके सचिव वे स्वयं, बाबा सोहन सिंह भकना अध्यक्ष एवं पं० काशीराम कोषाध्यक्ष बने। वास्तव में अमरीका में उन दिनों अधिकतर भारतीय मजदूरी करते थे। साथ ही सस्ते होने के कारण उनका शोषण भी खूब होता था। उन्हें इस शोषण से मुक्ति दिलाने हेतु पहले से ही वहाँ "हिन्दुस्तानी एसोसिएशन आफ दि पैसिफिक कोस्ट" नामक एक संस्था कार्यरत थी। आगे चलकर क्रान्तिकारियों ने इस संस्था को "गदर पार्टी" का नया नाम दिया जो कालान्तर में इतिहास प्रसिद्ध हुई। सान फ्रान्सिस्को स्थित पार्टी के "युगान्तर आश्रम" नामक कार्यालय से उर्दू एवं पंजाबी भाषाओं में "गदर" नाम से दो साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन भी आरम्भ कर दिया गया जिनकी प्रतियाँ भारत की अधिकांश फौजी छावनियों में विशेष रूप भेजी जातीं। "गदर पार्टी" को प्रवासी भारतीयों का तन–मन–धन से सहयोग मिला।

देखते ही देखते अनेक क्रान्तिकारी इस संस्था से आ जुड़े जिनमें बाबा गुरुदत्त सिंह, करतार सिंह सराभा, हरनाम सिंह, सन्तोख सिंह, बाबा पृथ्वी सिंह आजाद, पं० परमानन्द, पं० जगतराम, भगवान सिंह एवं मौलवी बरकतुल्ला आदि क्रान्तिकारियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

ब्रिटिश सरकार के बारम्बार अनुरोध पर लाला हरदयाल १६ मार्च, १६१४ को सान फ्रान्सिस्को में गिरफ्तार कर लिए गये, परन्तु प्रवासी भारतीयों एवं अमरीकी जनता के अत्यधिक विरोध के दबाव में अमरीका सरकार उन्हें शीघ्र ही जमानत पर छोड़ने को विवश हो गई। अमरीकी जनता की यह सहानुभूति "गदर पार्टी" के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई।

अब क्रान्तिकारी साथियों को इस बात की आशंका हुई कि अमरीकी सरकार लाला जी को अंग्रेजों के सुपुर्द भी कर सकती है। अतः पार्टी के सर्वसम्मत निर्णय पर लाला हरदयाल अमरीका छोड़कर तुर्की एवं स्विट्जरलैण्ड होते हुए २७ जनवरी, १६१५ को जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुँचे। वे प्रथम विश्व युद्ध के दिन थे।

उन दिनों जर्मनी में "बर्लिन कमेटी" के नाम से भारतीय क्रान्तिकारियों की एक संस्था पहले से ही सक्रिय थी, जिसके अन्तर्गत कार्य करने वाले क्रान्तिकारियों में सर्वश्री चम्पक रमन पिल्लई, तारक नाथ दास, अब्दुल हफीज, मो० बरकतुल्ला, डॉ० चन्द्रकान्त चक्रवर्ती, डॉ० भूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के भाई), डॉ० प्रभाकर, वीरेन्द्र सरकार एवं वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय प्रमुख थे। लाला हरदयाल के आ जाने से उन्हें नई शक्ति मिली।

उधर भारत में पंजाब, यू०पी० बंगाल के क्रान्तिकारियों ने विप्लवी महानायक रास बिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल, करतार सिंह सराभा

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

[इस शोधपूर्ण लेख के लेखक प्रो० जगवंश किशोर बलवीर भारत में, १० वर्ष तक संस्कृत के विश्वविद्यालयीय प्राध्यापक रहने के बाद यूनेस्को के पेरिस कार्यालय में वरिष्ठ अधिकारी होकर फ्रान्स चले गये, जहाँ वे संस्कृत हिन्दी और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए निरन्तर संघर्षशील रहे। तिब्बती रामायण पर अनुसंधान करके उन्हें पेरिस के सोरबोन विश्वविद्यालय से उच्च उपाधि प्राप्त हुई। बाद में माघ–कृत 'शिशुपाल वध' पर विशेष अनुसन्धान करके वहीं से उन्हें डाक्टरेट की उपाधि मिली। विभिन्न रामायणों के तुलनात्मक अध्ययन के अतिरिक्त भारतीय भाषा विज्ञान, नाट्यशास्त्र एवं काव्य–साहित्य उनके विशेष अध्ययन के क्षेत्र रहे हैं। उच्चतर शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ होने के साथ ही विश्वभर के विभिन्न मंचों पर उन्होंने हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। फ्रान्सीसी साहित्य का हिन्दी में और हिन्दी–साहित्य का फ्रान्सीसी में अनुवाद करने के साथ ही उन्होंने हिन्दी–फ्रान्सीसी और फ्रान्सीसी–हिन्दी के विशालकाय कोशों का निर्माण अपनी हिन्दी–सेविका फ्रान्सीसी पत्नी श्रीमती प्रो० निकोल के सहयोग से करके फ्रान्स में हिन्दी सीखने वालों का मार्ग प्रशस्त किया है। हाल में ही उनके द्वारा स्व० जयशंकर प्रसाद की अमर–कृति 'कामायनी' का फ्रान्सीसी में किया गया स्तरीय अनुवाद विशेष चर्चित हुआ है। प्रस्तुत लेख उन्होंने पेरिस से 'राष्ट्रधर्म' के लिए विशेष रूप से भेजा है। – सम्पादक]

वैदिक साहित्य के समान रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के मूलाधार हैं। कई शताब्दियों से रामकथा ने काव्य, नाटक तथा सारे भारतीय साहित्य को प्रेरणा दी है। रामकथा का प्रचार और प्रभाव दूर-दूर देशों में, विशेषकर दक्षिणी–पूर्वी–एशिया के निकटवर्ती देशों में भी हुआ है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में रामकथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के अतिरिक्त, आधुनिक सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी रामकथा व्यापक है।

अनुमान है कि रामकथा की एक धारा भारत से हिन्देशिया तक गई थी, फिर हिंदचीन और उसके बाद स्याम (आधुनिक थाईलैंड) तक और वहाँ से ब्रह्मदेश (आधुनिक म्यांमार, बर्मा) तक फैली थी। रामकथा की दूसरी धारा उत्तर की ओर तिब्बत और खोतान में फैली। बौद्धों ने रामकथा को जातक–साहित्य में स्थान दिया है। विद्वानों का मत है कि रामकथा का स्वरूप "दशरथ जातक", "अनामक जातक" व "दशरथ स्थानम्" में उपलब्ध है। अन्तिम दो ग्रन्थों का क्रमशः तीसरी व पाँचवीं शती ई. में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। इस उत्तरी धारा का प्रमाण हमें आठवीं अथवा नवीं शती ई. की तिब्बती व खोतानी भाषा की रामकथा में मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार रामकथा तिब्बत से मंगोलिया और वहाँ से साइबेरिया (शिबिर देश) पहुँची।

रामकथा सम्बन्धी तिब्बती भाषा में चार हस्तलिपियाँ "इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी" लन्दन में हैं, जिनका अध्ययन प्रोफ़ेसर एफ. डब्ल्यु. थोमस ने "इंडियन स्टडीज" नामक ग्रन्थ में १९२६ में किया था। तत्पश्चात्, सौरबोन विश्वविद्यालय, पेरिस की प्राध्यापिका श्रीमती मार्सेल लालू ने पेरिस के फ्रांसीसी राष्ट्रीय संग्रहालय में उपलब्ध रामकथा की दो तिब्बती हस्तलिपियों का संकेत "जुर्नाल अशियातिक" में १९३६ में दिया था। अंग्रेजी विद्वान् सर औरेल स्टाईन व फ्रांसीसी विद्वान् पोल पेलियो तुर्किस्तान और तुन ह्वांग की गुफाओं से अनेकों हस्तलिपियाँ लाये थे। तिब्बती भाषा की ये छह हस्तलिपियाँ उस अमूल्य कोश का भाग हैं।

इन सब हस्तलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन तथा पोल पेलियो के तिब्बती संग्रह की संख्या ९८१ के विशेष अध्ययन के पश्चात् पेरिस विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर उपाधि से यह लेखक कृतकृत्य हो गया था। इस अनुसंधान में लेखक को कई वर्ष लगे। और अन्त में तिब्बती रामकथा

की दो सौ पिचहत्तर पंक्ति की इस हस्तलिपि को रामन लिपि में मूलपाठ, हस्तलिपि की फोटोछाया सहित भूमिका के साथ, लेखक ने प्रधानतया दक्षिणी और पूर्वी और पश्चिमोत्तरीय संस्करण के आधार पर प्रकाशित वाल्मीकि रामायण से तुलना भी की थी। फ्रांसीसी अनुवाद, भूमिका तथा अनुवाद पर टिप्पणियाँ व प्रधान तिब्बती नामों की सूची सहित यह ग्रन्थ पेरिस में प्रकाशित हुआ था। तिब्बती रामकथा संक्षेप में इस प्रकार है –

"लंकापुर प्रदेश समुद्र के मध्य द्वीप के मेरुपर्वत की तलहटी में स्थित था। वहाँ महादेव व इन्द्रादि देवों से अधिक शक्तिशाली राक्षसों का राजा "यक्षकोरे" राज्य करता था। जब राक्षसों की संख्या बढ़ गयी तो देवताओं ने सभा की और देवर्षि विश्रवस् और श्रीदेवी से प्रार्थना करने का निश्चय किया जससे उनका पुत्र राक्षसों पर विजय प्राप्त कर सके। उनके एक पुत्र हुआ और उसका नाम वैश्रवण हुआ। उसने राक्षसों का दमन किया पर "यक्षकोरे" बच गया। उसके पुत्र ने देवर्षि का रूप लेकर देवर्षि ब्रह्मा के पुत्र के विजयप्रासादरथ नामक वन में रहने का व्रत लिया। बहुत वर्षों तक धर्म पालन करके और देवताओं को प्रसन्न करके उसने देवर्षि को अपनी पुत्री "मेकेसेना" भेंट करना चाहा। इस पर देवर्षि द्विविधा में पड़ गये, पर उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार देवर्षि और "मेकेसेना" के तीन पुत्र हुए, जिनमें दशग्रीव भी था। उसे लंका भेजकर, देवर्षि अत्यन्त संतुष्ट थे; क्योंकि इस प्रकार उनकी सारी कामनाओं के सफल होने की सम्भावना थी।

उधर दशग्रीव लंकापुर का राजा हो गया। शक्ति और वैभव से सम्पन्न दशग्रीव नाच–गाने में व्यस्त हो गया। उसके मंत्रियों ने उसके सम्मुख क्षीरसागर नामक समुद्र के उत्तर में बसे शक्तिशाली विष्णु का गुण–गान कर उसे सचेत किया।

रथारूढ़ दशग्रीव विष्णु के यहाँ गया। विष्णु ने उसे अपने पास आने को कहा। उसके अन्दर आने पर जब विष्णु उठे नहीं, तो वह क्रुद्ध हो गया और उसने विष्णु को युद्ध करने की चुनौती दी। पर विष्णु ने केवल अपने कान को उखाड़ने भर के लिए कहा। जब दशग्रीव इसमें सफल नहीं हुआ तो उसने विष्णु के पैरों में अपना सिर झुका दिया। फिर वह लंकापुर लौट गया।

जब दशग्रीव ने देवताओं को बहुत कष्ट दिया, तो उसकी अपूर्व शक्ति को देखते हुए देवताओं ने एक सभा की, जिसमें महादेव ने बताया कि उन्होंने ही उसे ऐसी शक्ति प्रदान की है। उन्होंने विष्णु से पूछा कि ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया कि जम्बूद्वीप में दशरथ नाम का राजा है, जिसके कोई पुत्र नहीं। मैं उसके यहाँ पुत्र के रूप में जन्म लूँगा और राक्षसों का नाश कर दूँगा। इस प्रकार विष्णु ने दशरथ के पुत्र के रूप में, विष्णु के पुत्र ने उसके छोटे भाई लक्ष्मण के रूप में, एक देवी ने दशग्रीव की रानी के गर्भ में और अन्य देवताओं ने अन्य अवतार लिये।

दशग्रीव की रानी के यहाँ पुत्री का जन्म देखकर लक्षणविदों ने बताया कि वह अपने पिता के अन्त का कारण बनेगी। तब उसे एक ताम्र पेटिका में रख जल में फेंक दिया गया। एक बार कृषकों ने उसे पेटिका से निकाला और उसका पालन–पोषण किया और तब से उसका नाम "लीलावती" रखा गया।

उधर जम्बूद्वीप में राजा दशरथ ने पाँच सौ कैलाश पर्वत निवासी ऋषियों से पुत्र प्राप्ति की विनती की। उन्होंने दशरथ को एक फूल दिया, जिसे उन्होंने आधा–आधा अपनी दोनों पत्नियों में बाँट दिया। दूसरी रानी के पुत्र का जन्म तीन दिन पहले हुआ और वह बड़ा भाई हुआ, उसका नाम "रमन" रखा गया। पहली रानी का पुत्र छोटा भाई हुआ और उसका नाम "लक्षण" रखा गया।

जब देवताओं और असुरों का युद्ध हुआ, तो दशरथ घायल हो गये। तत्पश्चात् रोग–ग्रस्त दशरथ ने सोचा– मेरी उमर बढ़ गई है। मैं अधिक जीवित नहीं रहूँगा पर इन दोनों पुत्रों में से किसको राज्याधिकारी बनाऊँ? किंकर्तव्यविमूढ़ दशरथ के पास जाकर जब "रमन" ने अपने पितृजनों की पूजाहित तपस्या करने की सूचना दी, तो राजा ने "लक्षण" को राज्याधिकार सौंपा। इसके बाद ही दशरथ की मृत्यु हो गयी।

फिर "रमन" और "लक्षण" में परस्पर वाद–विवाद हुआ। पर "रमन" ने "लक्षण" के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, जिसके अनुसार वह राम के एक पादुक को सिंहासनारूढ़ कर, स्वयं मंत्री बन उसकी पूजा करेंगे।

जब "लीलावती" बड़ी हुई, तो कृषकों ने उसके अद्वितीय सौन्दर्य के योग्य "रमन" को उसे समर्पित किया। "लीलावती" को देखकर "रमन" ने ऋषिव्रत त्याग दिया और उन्हें अपनी रानी बना लिया। तब से "लीलावती" का नाम "ज़ीता" हुआ।

एक बार दशग्रीव की बहन "फुरपल" ने भी "रमन" की प्रशंसा सुनी, तो बहुत आकर्षित हुई। राम के पास

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

'धाय' नहीं, राजकुमारी थी पन्ना

डॉ० श्रीकृष्ण सिंह सोढ

क्या वीरांगना पन्ना, धाय थी? इतिहास लेखकों ने इस स्वामिभक्त–राजभक्त क्षत्राणी को 'धाय' कहकर इसकी गरिमा को कम करने का कुप्रयास किया है।

राजघरानों में (विशेषतः राजस्थान में) राजवंश के बच्चों को दूध पिलाने के लिए सेविकाएँ रखने की परम्परा थी, जिन्हें 'धाय' कहा जाता था; परन्तु पन्ना इस प्रकार की 'धाय' नहीं थी। वह तो खीची चौहान राजकुमारी थी।

महाराणा साँगा (संग्राम सिंह) की हाड़ा चौहान रानी से उत्पन्न हुए थे उदय सिंह, जबकि पन्ना, सिसोदिया राजवंश के गनायत खीची चौहान क्षत्रियों की राजकुँवरि थी। हाड़ा चौहान एवं खीची चौहान आपस में बाँधव होने से पन्ना उदय सिंह की मौसी थी।

डॉ० अख्तर हुसैन निजामी ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है। पं० श्यामल दास (वीर विनोद), डॉ० बी० एल० पानगड़िया, डॉ० शम्भू सिंह मनोहर, डॉ० हुकुम सिंह भाटी, ठाकुर रणधीर सिंह निरवाण, ठाकुर ईश्वर सिंह मड़ाढ़, ठा० रघुनाथ सिंह खीची, 'रावल राणा जीरीवात' (३०० वर्ष प्राचीन) भी इससे पूर्णतया सहमत हैं।

गागरोन के शासक राजा शत्रुशाल खीची की पुत्री पन्ना देवी का विवाह चित्तौड़ के एक सामन्त सिसोदिया समर सिंह से हुआ था, जिसकी कोख से पुत्र चन्दन का जन्म हुआ, जो बालक उदय सिंह के वय का था। राजा शत्रुशाल खीची ने १५२७ ई० में खानवा (कनवाह) के युद्ध में स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए अपनी सेना सहित महाराणा साँगा के पक्ष में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी।

भक्त–शिरोमणि मीराबाई जायल के खीचियों की दौहित्री थी, जो महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज को ब्याही थी। जब हाड़ी कर्मावती ने जौहर की तैयारी की, तो बहिन के नाते अपने बालक उदय सिंह को उसने पन्ना को सौंपकर जौहर व्रत का पालन किया।

पन्ना ने बालक उदय सिंह को पुत्र की भाँति लालन-पालन किया। फिर जब बनवीर राणा साँगा के पुत्र विक्रमादित्य को मारकर बालक उदय सिंह को मारने आने वाला था, तो देश एवं स्वामिभक्त पन्ना ने राजकुमार उदय सिंह को गुप्त रूप से 'बारी' द्वारा चित्तौड़ दुर्ग से बाहर भेज दिया और उदय सिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को सुला दिया।

जब १५३६ ई० में महाराणा के वंश को नष्ट करने के लिए बनबीर पन्ना के महल में आया और बालक उदय सिंह के बारे में पूछा, तो पन्ना ने अपने लाड़ले पुत्र बालक चन्दन की ओर इशारा किया, जिससे पन्ना के सामने ही उसने चन्दन को मार दिया।

मेवाड़ का निष्कंटक शासक बन जाने का स्वप्न सँजोये बनबीर अति प्रसन्न हो महल से चला गया। तब पन्ना अपने पुत्र चन्दन का मृत शरीर लेकर चित्तौड़गढ़ से चल पड़ी। पुत्र का अन्तिम संस्कार गम्भीरी नदी के तट पर कर, बालक उदय सिंह को गुप्त रूप से बचाकर वन व पहाड़ों में भटकती हुई प्रतापगढ़ (देवलिया) एवं डूँगरपुर के शासकों के पास गयी; किन्तु वे भी बनवीर के भय से बालक उदय सिंह को आश्रय न दे सके। फिर भी खीची चौहान राजकुँवरि पन्ना निराश नहीं हुई। वह अनेक कष्ट उठाकर कुम्भलगढ़ जा पहुँची। वहाँ के सूबेदार आशाशाह देवपुरा की माता के माध्यम से सूबेदार को उत्साहित कर गुप्त रूप से बालक उदय सिंह को सौंपा, जहाँ उसकी सुरक्षा हुई। तत्पश्चात् स्वयं चित्तौड़गढ़ लौट पड़ी। यहाँ उसने उदय सिंह के जीवित होने का गुप्त रूप से प्रचार किया। इससे मेवाड़ सरदारों में नई उमंग व जोश का संचार हुआ।

बाद में सामन्तों ने कुम्भलगढ़ जाकर आशाशाह से मन्त्रणा की, तो पन्ना ने बालक उदय सिंह को बताकर साक्षी दी और उदय सिंह ने भी पन्ना को 'माँ–माँ' कहकर सम्बोधित किया। इससे शंका समाधान हुआ। रावत साहिब खाँ, रावत साँगा व मेवाड़ के अन्य सामन्तों के सहयोग से उदय सिंह ने फिर बनवीर को चित्तौड़ से मार भगाया

और स्वयं महाराणा बनकर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा।

ठाकुर सुरजन सिंह 'झाझड़', कुँवर रघुनाथ सिंह शेखावत, डॉ० रामकुमार वर्मा ('दीप–दान एकांकी'–पृष्ठ ५६, पृष्ठ ७०, ७३, ७५), डॉ० नरेन्द्र भानावत ('एकांकी सुषमा'– कक्षा ६ व १० के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान से स्वीकृत हिन्दी अनिवार्य पाठ्य पुस्तक) एकमत से पन्ना को खीची चौहान राजकुमारी सिद्ध करते हैं और उपर्युक्त बातों से सहमत हैं। राजा शत्रुशाल एवं पन्ना के मायके के वंशधर आज भी गागरोन में हैं और पूरी वंशावली रखते हैं। यह ठीक है कि साधारणतया राजस्थान में गुर्जर एवं माली जाति की ही धाय सेविकाएँ रखी जाती थीं, परन्तु पन्ना वैसी न थी।

महाराणा उदय सिंह ने पन्ना का सदैव माता की भाँति ही सम्मान किया। धन्य है पन्ना का महान् त्याग व बलिदान, जिसने मेवाड़ के राजवंश को सदा–सदा के लिए अस्त होने से बचाया। यह न केवल भारत, वरन् विश्व का अद्वितीय उदाहरण है। यदि पन्ना इस प्रकार उदय सिंह को न बचाती तो हमारा राष्ट्रभक्त प्रताप पैदा ही न होता और देश का इतिहास बदल जाता।

'वीर सतसई' – वियोगी हरि के अनुसार :

निज प्रिय लाल कटाय कर,
प्रभु शिशु लियो बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में,
पूजित पन्ना धाय।।

अब इसे 'पूजित पन्ना माय' कहना यथोचित होगा।

☐

– चित्तरपुर, रामगढ़ (हजारीबाग) छोटा नागपुर (वनांचल)–८२५१०१

(पृष्ठ ३० का शेष)

उनका रोम–रोम ...

एवं विष्णु गणेश पिंगले आदि क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में सम्पूर्ण भारत में सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई। इस प्रयोजन हेतु अमरीका एवं कनाडा से "गदर पार्टी" के सदस्य बड़ी संख्या में भारत पहुँचने लगे।

उधर जर्मनी में रहते हुए लाला हरदयाल एवं "बर्लिन कमेटी" ने भारत की स्वाधीनता के पक्ष में वातावरण तैयार करने में सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से फ्रान्स, स्वीडन, नार्वे, स्विट्जरलैण्ड, इटली, आस्ट्रिया एवं अन्य देशों के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क साधा। क्रान्तिकारियों ने जर्मनी द्वारा बन्दी बनाये गये भारतीय सैनिकों को भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने हेतु प्रेरित किया। अन्ततः क्रान्तिकारियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत के क्रान्तिकारियों की सहायता हेतु हथियारों से लदे जर्मन जहाज भारत के लिए रवाना किये गये, परन्तु दुर्भाग्यवश वे या तो पकड़े गये या रास्ते में ही नष्ट कर दिये गये। दुर्भाग्य से भारत में भी २१ फरवरी, १९१५ को निश्चित सशस्त्र क्रान्ति की योजना एक विश्वासघाती द्वारा शासन को पहुँचा देने के कारण क्रियान्वित न हो सकी और देश भर में क्रान्तिकारियों की धर–पकड़ शुरू हो गई। इन घटनाओं ने क्रान्तिकारियों को बड़ा आघात पहुँचाया।

उधर जर्मनी भी युद्ध में पराजित होने लगा था। अतः लाला हरदयाल बड़ी कठिन परिस्थितियों में किसी प्रकार सन् १९१७ में स्वीडन पहुँचे। वहाँ वे विभिन्न नगरों में अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए लगभग नौ वर्ष रहे।

इंग्लैण्ड प्रवेश पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिए जाने पर लाला जी अक्टूबर, १९२७ में पुनः लन्दन आ गये और वहाँ लगभग दस वर्ष रहे। इस बीच उन्होंने गौतम बुद्ध के दार्शनिक विचारों पर शोध कर सन् १९३१ में पी–एच०डी० की उपाधि भी प्राप्त कर ली। बाद में यही थीसिस पुस्तक रूप में "बोधिसत्व" नाम से प्रकाशित भी हुई।

अन्ततः इंग्लैण्ड में मि०सी०एफ० ऐन्ड्रूज तथा भारत में सर तेज बहादुर सप्रू आदि नेताओं के अथक प्रयासों से ब्रिटिश शासन ने लाला हरदयाल पर भारत प्रवेश पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया। परन्तु उन दिनों अमरीका में उनके भाषणों की शृंखला आयोजित होने के कारण उन्हें यह सूचना देर से मिली।

इधर भारत की जनता उनके आगमन की बाट जोह ही रही थी कि अमरीका के फिलाडेल्फिया शहर में ४ मार्च, १९३९ को उनकी रहस्यमयी मृत्यु का दुःखद समाचार सुन सारा देश स्तब्ध रह गया। मृत्यु का समाचार वास्तविक तारीख के चार सप्ताह बाद भारत पहुँचने पर लोगों का सन्देह करना स्वाभाविक ही है।

जो भी हो, भारत माता के वीर पुत्र, विलक्षण प्रतिभा के धनी क्रान्तिवीर लाला हरदयाल भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के गौरवशाली इतिहास में अपनी क्रान्तिकारी भागीदारी का स्वर्णिम अध्याय जोड़ कर सदा–सदा के लिए अमर हो गये। ☐

– मेंहदी बिल्डिंग, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ–२२६०१८

(पृष्ठ ३२ का शेष) **कैसी है तिब्बती ...**

पहुँच उसने पूछा कि क्या वह उनकी दासी बन सकती है। पर "रमन" ने उसे देखना भी स्वीकार न किया। तब "फुरपल" ने एक युक्ति सोची। दशग्रीव के पास जाकर उसने सीताहरण का प्रस्ताव किया। दशग्रीव ने अपने मंत्रियों से परामर्श किया। उनके मत के विरुद्ध, उसके मंत्री "मेरुचे" ने राम को धोखा देने के लिए और सीताहरण के लिए अनमोल मृग का रूप धारण किया।

मृग को देखकर रानी "ज़ीता" ने उसे पकड़ने के लिए राम से प्रार्थना की। भले ही राम ने बताया कि वह कृत्रिम मृग है और यदि वे उसे छोड़ गये तो कोई उनका हरण कर लेगा। फिर भी "ज़ीता" नहीं मानीं। मृग का पीछा करने से पहले, "रमन" ने "लक्षण" को सीता की रक्षा का आदेश दिया। राम के दूर होते ही किसी ने उनका नाम पुकारा। सीता ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह राम की रक्षा के लिए जायें। सीता को अकेला छोड़ने में लक्ष्मण और भी अधिक हिचकिचाये। तब गुस्से में आकर सीता ने कहा – "यदि राजा पर आघात हुआ, तो मेरी रक्षा से क्या लाभ?" तभी रानी सीता ने घोषणा भी की कि जो भी उनका स्पर्श करेगा, उसका नाश होगा। इस पर अपने भाई की सहायता के लिए लक्ष्मण को जाना ही पड़ा।

जब सीता अकेली रह गयीं, तो दशग्रीव उनका हरण करने आ पहुँचा। पर उसने उन्हें स्पर्श करने का कोई प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उसे पता था कि रानी के सम्पर्क–मात्र से उसका नाश होगा। अतएव धरती–खण्ड सहित उसने सीता का हरण कर लिया।

लौटने पर सीता को न पाने से राम और लक्ष्मण बहुत दुःखी हुए, पर फिर भी वे सीता को ढूँढ़ने जंगल में लौट गये। वहाँ उनकी भेंट सुग्रीव से हुई। उसने अपने भाई बाली के साथ झगड़े की कथा बताई, तो राम ने सुग्रीव की सहायता करने का बचन दिया और स्वयं उससे सीता को ढूँढ़ने में वानरों की सहायता माँगी।

अगले दिन जब सुग्रीव व बाली में युद्ध हुआ, तो वे दोनों एक समान दिखाई दिये, जिससे राम ने किसी पर भी बाण नहीं छोड़ा। जब सुग्रीव ने राम को उलाहना दिया तो राम ने उसे बताया कि उन दोनों में अत्यन्त साम्य होने के कारण उन्होंने ऐसा किया। उन्होंने प्रस्ताव किया कि अगले दिन युद्ध में वह अपनी पूँछ पर एक दर्पण बाँध ले, जिससे वे उसे पहचान लें। इस प्रकार युद्ध में राम के बाण ने बाली को घायल कर दिया। उसके मरने से पहले सुग्रीव ने बाली को धैर्य दिया और कहा– "तू धन्य है, इस प्रकार अब तू एक देवता के रूप में अवतार लेगा। राम के साथ सीता को ढूँढ़ने का समय निश्चित करके सुग्रीव वहाँ से चला गया।

जब तीन साल तक सुग्रीव को कोई समाचार न मिला तो राम ने बाण पर संदेश लिखकर सुग्रीव के पास भेजा। इस संदेश को देखकर अन्य वानरों ने सुग्रीव के साथ एक सभा बुलाई और हनुमान सहित सब से शक्तिशाली

बेतुके दोहे

–डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

(दोहों की यह नयी विधा है, जिनमें अतुकान्तता के दर्शन होते हैं। –सं.)

वह कैसे बरसात को, बना सके मनमीत?
उसका घर कच्चा बना, उसका मन भयभीत।

कीर्तिमान पिछले सभी, जिसने डाले तोड़,
आयी यों इस वर्ष है, हड़कम्पी ऋतु शीत।

पतझड़ तो विख्यात ही था जग में भरपूर,
यह वसन्त भी कर उठा पत्रकारिता पीत।

विन्ध्याचल पर सोहती यों रेवा की धार,
समाधिस्थ ऋषि–वक्ष पर ज्यों लहरे उपवीत।

प्रेम–द्वन्द्व में कर न मन! हार–जीत का ध्यान,
यहाँ जीत भी हार है, यहाँ हार भी जीत।

जब रातें थीं नीलमी, दिन थे खरे सुवर्ण,
नवयौवन के साथ ही गये सुदिन वे बीत।

ऐसा कन्धा दे मुझे अरे अभागे भाग्य!
जिस पर सर रख गा सके आँख अश्रु के गीत।

कोई टी.वी. छोड़कर, रहा न तुझको देख,
दादी माँ! घर के लिए तू हो गयी अतीत।

जाऊँ तो जाऊँ किधर दे तू ही दिग्बोध,
ज़िधर चलूँ, मिलती उधर तेरी गली पुनीत।

कैसे हो अब देश में देशी घी की पूर्ति?
बच ही पाता है कहाँ लेपन से नवनीत?

–गोला गोकर्णनाथ–खीरी (उ.प्र.) २६२८०२

तीन वानरों को एकत्रित करने का निर्णय किया।

इस प्रकार राजा राम ने हनुमान को एक सन्देश और अँगूठी देकर रानी की खोज में भेजा। तीनों वानर उन्हें ढूँढ़ने निकले पर उन्हें सीता का पता न चला। तब गरुड़ राजा "अगजन" से भेंट होने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि लंकापुर के राजा दशग्रीव ने सीता का हरण किया है।

समुद्र के बीचोंबीच होने से केवल हनुमान लकापुर गए और उनके दोनों साथी समुद्रतट पर ही रह गए। लंकापुर में हनुमान ने रानी को ढूँढ़ा, पर राक्षसों ने उनका पीछा किया। फिर भी छुपकर उन्होंने सीता को राम का संदेश और अँगूठी दे दी। इस संदेश की ललित भाषा में बिरही राम ने सीता से अपने दुःख का वर्णन किया और सीता को धैर्य रखने को कहा। सीता ने हनुमान को सतर्क रहने को कहा। हनुमान के उपद्रव उठाने पर राक्षसों ने दशग्रीव से शिकायत की। उसने स्वयं सूर्य की किरणों का सिद्धिपाश हनुमान को पकड़ने के लिए डाला; पर वह सफल न हुआ। हनुमान ने राक्षसों को बताया कि यदि वह उसे मारना ही चाहते हैं तो वे उसकी पूँछ में आग लगा दें। उन्होंने ऐसा ही किया, पर उससे हनुमान ने सम्पूर्ण लाक्षगृह को ही भस्मसात् कर दिया।

रानी के पास जाकर हनुमान ने कहा – "मैं लौट आया हूँ। कृपया आप एक संदेश दें जिसे मैं राजा राम तक पहुँचा दूँ।" सीता का संदेश भी सुन्दर भाषा में है। उन्होंने राम को बताया कि दशग्रीव उनके संस्मरणों पर विजय न पा सका वे केवल राम को ही प्रेम करती हैं। और स्नेहपूर्ण संदेश के लिए उन्होंने राम के प्रति धन्यवाद किया।

तत्पश्चात् मानव व वानर सेना लंकापुर पहुँची। वहाँ एक महानदी को पार करना था। राम ने दो वानरों को उस पर पुल बाँधने का आदेश दिया।

लंकापुर में दशग्रीव ने युद्ध का समय निश्चित किया और उसके भाई "उदूपकर्ण" ने राम को युद्ध का आह्वान दिया।....

हस्तलिपि का अन्त यहीं हो जाता है।

उपर्युक्त विवरण से पाठकों को सरलतया ज्ञात हो जाएगा कि तिब्बती हस्तलिपि की रामकथा रोचक, पर अधूरी है। वह न तो वाल्मीकि रामायण का सर्वथा अनुकरण करती है न रामायण की कथा के क्रम को ही अपनाती है। यह तिब्बती रामकथा लंकापुर के वर्णन और दशग्रीव की कथा से आरम्भ होती है, ठीक महाभारत के रामोपाख्यान की भाँति, क्योंकि रामायण में यह विषय उत्तरकाण्ड में मिलता है। इसी प्रकार तिब्बती हस्तलिपि में वैश्रवस की जन्मावली संक्षिप्त है, रानायण के उत्तरकाण्ड में उसकी वंशावली अधिक स्पष्ट है, इसके अनुसार वैश्रवस के पूर्वज प्रजापति, पुलस्त्य और विश्रवस थे। प्रजापति के पुत्र पुलस्त्य की पत्नी तृणबिन्दु की पुत्री और विश्रवस की पत्नी भरद्वाज की पुत्री थी। यद्यपि दशग्रीव की वंशावली रामायण व महाभारत में भिन्न है, तथापि दोनों महाकाव्यों के अनुसार दशग्रीव के पूर्वज ब्रह्मा थे। राम और लक्ष्मण के जन्म की कथा भी यहाँ विचित्र है और दशरथ की रानियों के नाम भी नहीं दिये गये हैं। उक्त हस्तलिपि में सीता को रावणात्मजा बताया गया है जब कि वाल्मीकि रामायण और अधिकांश रामकथाओं में वे "भूमिजा" हैं। इस हस्तलिपि में राम तथा दशग्रीव की सेना के युद्ध का वर्णन भी नहीं है हस्तलिपि इस घटना से पूर्व ही समाप्त हो जाती है।

□

– ५८, र्‍यु दाँफ़ैर रोशरो, ६२१०० बुलोज स्यूर सेन, फ्रांस

असलियत-'गालिब' की-जिसने क्रान्तिवीरों को 'सुअर' लिखा

- पुष्करनाथ

यह असलियत कम ही लोग जानते हैं कि उर्दू के शायर जिस मिर्जा गालिब का सन् १९६९ में शताब्दी-समारोह मनाया गया और शताब्दी-समारोह प्रारम्भ होने के कुछ दिन पूर्व जिस गालिब के लिए डा. जाकिर हुसैन ने "यादगार-इमारत" (स्मारक-भवन) का दिल्ली में शिलान्यास करते हुए कहा था- 'उन्होंने (गालिब ने) हिन्दुस्तान की उस तकदीर को, जो आज फिर उस पर उजागर हो रही है, आज से सदियों पहले ताड़ लिया था कि उनके प्यारे वतन में कुदरत आदमीयत का एक नया साँचा बनाना चाहती है, जिसमें कई मुल्कों और तरह-तरह की तमद्दुनों (संस्कृतियों) का मेल होगा-वही मिर्जा गालिब ११ मई, सन् १८५७ (१६ रमजान १२७३ हिजरी, पीर के दिन दोपहर) को जब दिल्ली और मेरठ में क्रान्ति का बिगुल बज उठा, तो लिखते हैं कि, "अचानक दिल्ली के किले और फसील की दीवारें काँप उठीं, जिसका असर चारों तरफ फैल गया। मैं जलजले (भूकम्प) की बात नहीं कर रहा हूँ- उस दिन जो कि बड़ा मनहूस दिन था। मेरठ की फौज के कुछ बदकिस्मत और पागल सिपाही शहर (दिल्ली) में आये, निहायत जालिम, बेरहम और नमकहरामी के सबब से अंग्रेजों के खून के प्यासे, शहर के जुदा-जुदा दरवाजों के संतरी, जो इन फसादियों के हम-पेशा और भाई-बन्द थे, बल्कि कुछ ताज्जुब नहीं कि पहले ही से इन पहरेदारों (संतरियों) और फसादियों में साजिश हो गई हो, वे शहर की हिफाजत की जिम्मेदारी और हके-नमक हर चीज को भूल गये, इन बिन बुलाये या दावत दिये गये मेहमानों की अगवानी की..., वे दीवानों की तरह इधर-उधर दौड़ पड़े, जिधर किसी अफसर को पाया और जहाँ भी इन इज्जतदारों (अंग्रेज) के मकान देखे, जब तक उन अफसरों को मार नहीं डाला और इन मकानों को बिलकुल बरबाद नहीं कर दिया, इधर से रुख नहीं फेरा।.... अपने आपको मजबूर समझकर हर शख्स गमजदा होकर अपने घर में बैठा रहा- इन्हीं गमजदा लोगों में से एक मैं भी हूँ।...

शोर मच गया कि (दिल्ली के) किले के अन्दर 'एजंट बहादुर' और किलादार कत्ल कर दिये गये।... जमीन हर तरफ मासूमजिस्मों (अंग्रेजों) के खून से लाल हो गई। बाग का हर कोना तबाही और बरबादी की वजह से बहारों का कब्रिस्तान बन गया। अफसोस! कि मुजस्सिम इल्मोहुनर और इन्साफ सिखाने वाले नेकदिल हुक्मराँ (अंग्रेज) और सद-अफसोस, वे परी चेहरा नाजुक-मिजाज औरतें (अंग्रेज) जिनके चेहरे चाँद की मानिन्द चमकते थे और जिनके जिस्म कच्ची चाँदी की तरह दमकते थे... ये सब कत्ल और खूँरेजी के बवन्डर में फँसकर बरबादी के समन्दर में गर्क हो गये। यह दृष्टिकोण और सोच रहा था मिर्जा गालिब का सन् १८५७ की क्रान्ति के विषय में और जहाँ उन्होंने क्रांतिकारियों के प्रति सीमातीत रूप से नफरत जाहिर की, वहीं अंग्रेज शासकों व अफसरों को 'न्यायी', 'सहृदय', 'नेकदिल', करार दिया, वहीं क्रान्तिकारियों को 'क्रूर हत्यारे', विनाश-कर्ता', 'दीवाने', 'पागल', 'बदकिस्मत', 'जालिम', 'बेरहम', 'नमकहराम', 'फसादी' के खिताब दिये-साथ ही उस क्रान्ति-दिवस को 'मनहूस', बरबादी व जलजला (भूकम्प) लाने वाला बताया। लिखा- "लुटेरे (क्रान्किारी) हर तरह की पाबंदियों से और व्यापारी हर तरह के टैक्स से आजाद थे।"

दिल्ली-दरबार के एक गद्दार हकीम अहसान अल्ला खाँ और पटियाला के राजा नरेन्द्रसिंह बहादुर की प्रशंसा करते हुए गालिब ने लिखा है कि "फलक-मर्तबा मरीख हशम राजा नरेन्द्रसिंह बहादुर फरमा-रवाए-पटियाला इस लड़ाई में जीतने वालों (अंग्रेजों) के साथ है और उनकी फौज शुरू से ही अंग्रेजी लश्कर की मददगार है।"

मिर्जा गालिब इस तरह जब सन् १८५७ में अंग्रेजों की चापलूसी और खेरख्वाही पर आमादा थे, तो दूसरी तरफ अनेक उर्दू शायर, जो मुस्लिम ही थे, उसी क्रांति में भाग लेने के कारण जन्म-कैद, काले पानी और अंग्रेजों का यातनामय दमन झेल रहे थे, जिनके नाम हैं, १- गुलामफजलेहक खैराबादी, २- मुनीर शिकोहाबादी, ३- इमामबख्श सहबाई, ४- जहीर देहलवी, ५- मुफ्ती सदरुद्दीन आजुर्दा, ६- नवाब मुस्तफा खाँ शेफ्ता आदि।

मौलाना गुलाम फजलेहक खैराबादी अंडमान (कालेपानी) में कैद काटते ही मरे। दूसरी तरफ मिर्जा गालिब थे, जो क्रांतिकारियों को 'खंजीर' (सुअर), 'बे-हया', 'रू-स्याह' और 'काले' जैसे अपशब्दों के फतवे दे रहे थे। गालिब ने आजादी और गुलामी को एक सतह पर ला दिया और न स्वयं को भारत का नागरिक होने पर गर्व किया, न ही भारत को कभी अपना वतन (स्वदेश) समझा। उसी शायर के लिए यहाँ उसकी मौत की जो शताब्दी शान से लाखों रुपये सरकारी मद से लेकर मनाई गई उसमें कहा गया, "गालिब उर्दू और उर्दू गालिब है।" उसी साल १५ फरवरी को नई दिल्ली में "गालिब-अकादमी" का उद्घाटन समारोह हुआ। सत्तावनी क्रांति के बलिदानी वीरों की शताब्दी फिर कौन मनाता? जब अंग्रेजों ने ग्वालियर पर कब्जाकर लिया, तो उसके प्रसंग पर गालिब लिखते हैं कि- "जून के महीने में बीते हुए दिनों की तादाद के बराबर बिजली की तरह गरजने वाली तोपों की आवाज बुलन्द हुई। २१ तोपें छूटीं, जिसने दोस्तों (अंग्रेजों के पिट्ठुओं की) के दिल को खुशी और उमंगों से भर दिया और आग से ज्यादा जलाने वाली राख (दुगवकी) दुश्मनों (क्रान्तिवीरों) के सिरों और चेहरों पर डाल दी। ग्वालियर शहर की फतह और उस संगीन किले पर,जो जमीन का जिगर-गोशा और पहाड़ के दिल का टुकड़ा है, कब्जे की खुशखबरी बारगाहे-एजदी (खुदा) की तरफ से बागियों (क्रान्तिकारियों) की मौत का परवाना लेकर आई- इसलिए उसने हुक्मरान (अंग्रेजों) और रियाया (शासित) को आरजुओं के चिराग जल उठने की उम्मीद बख्शी।"

आगे सत्तावनी क्रान्ति के वीरों पर अपना गुस्सा उतारते हुए गालिब लिखते हैं कि, "... इससे मालूम होता है कि इन गुमराहों (क्रांतिकारियों) का अंजाम यह होगा कि नाउम्मीद और मायूस होकर इधर-उधर लूट-मार करते हुए भटकते फिरेंगे और आखिर में जगह-जगह जिल्लत के साथ मारे जायेंगे, उनके आवारा घोड़े, बीहड़ जंगलों में जमीन पर सीना रगड़ते, दम तोड़ते नजर आयेंगे और उन (क्रांतिकारियों) का साजो-सामान पानी भरे नालों में, कीचड़ में लिथड़ा मिलेगा। फिर हिन्दुस्तान घास-फूस (क्रान्ति कुचली जाने के बाद) से इस तरह पाक हो जायेगा कि हर गली-कूचा रौनक और आबादी में बाजार का नमूना होगा।" प्रश्न है, क्या कोई देशभक्त अपने ही देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई (क्रान्ति) को ऐसे निन्दनीय शब्दों का परिधान पहनाकर प्रसन्न होगा? और बनारस के एक मुसलमान कवि थे 'नजीर बनारसी', जिन्होंने जब गोरखपुर में दबा-छिपाकर गाड़ी गई बलिदानी 'बिस्मिल' की भस्मी (चिता की राख व अस्थियाँ) एक दिन निकाल कर उन्हें स्मारक-स्तम्भ रूप दिया जाना था- तो (हमारे साथ एक ही कमरे में ठहरे हुए थे) कहा था-

"सजा दो मौत की जो वतन के साथ चाल करे।
यह सर जमीन नहीं है ऐसे बदचलन के लिए।।

(इन्हीं नजीर बनारसी की वाराणसी मुस्लिम दंगे के बाद जो असलियत खुली, वह किसी पाकिस्तानी से कम न थी।- सं.)

परन्तु एक गालिब हैं, जो गद्दारों, देश-घातियों की प्रशंसा के पुल बाँधते रहे और ब्रिटेन की मलका विक्टोरिया को अपना लिखा 'कसीदा' भेजकर पेन्शन की फरियाद करते रहे; लेकिन हमारे उर्दू-जगत् के मसीहा उसी गालिब की शताब्दी मनाकर गद्गद् होते रहे। हालाँकि वह पेन्शन भी बाद में बन्द हो गई-गालिब ने लिखा, "अब यह जुलाई का पंद्रहवाँ महीना है, कदीम (पुरानी) पेन्शन, जो मुझे सरकार अंग्रेजी से मिलती थी, उसके दोबारा मिलने की कोई सूरत नजर नहीं आई।

उन्हीं दिनों बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह, बहादुर गढ़ के नवाब बहादुर जंग खाँ, झज्झर के नवाब अब्दुल रहमान खाँ, फरखनगर के शासक अहमद अली खाँ को दिल्ली के ही लाल किले में लाकर कैद किया गया और फिर इन सभी को अंग्रेजों ने फाँसी दे दी। धोखे में एक बार गालिब भी पकड़े गये, पर उसी समय छूट गये, खुद लिखते हैं- "५ अक्टूबर को मुसीबत का दिन था। चन्द गोरे उस दीवार पर चढ़ गये, जो बन्द दरवाजे से मिली हुई थी। वहाँ से एक छत पर और छत से कूदकर गली में आ गये। राजा नरेन्द्र सिंह के सिपाही उन्हें रोक नहीं पाये। दूसरे छोटे-छोटे मकानों को छोड़कर मेरे मकान में घुस आये। इन गोरों ने मेरे सामान को हाथ नहीं लगाया। मुझे, दोनों बच्चों को, २-३ नौकरों को और चन्द भले पड़ोसियों के साथ गली से २ फर्लांग के फासले पर दानिशवर कर्नलब्राउन के पास ले गये, जो चौक से इसी तरफ कुतुबुद्दीन सौदागर की हवेली में डेरा डाले हुए है। कर्नल ब्राउन ने मुझ से बड़ी नर्मी और इंसानियत से बात-चीत की। मुझसे नाम और दूसरों से उनका पेशा पूछा। फिर बड़ी अच्छी तरह उसी वक्त हमें रुक्सत कर दिया। मैंने इस नेकदिल (कर्नल ब्राउन) की तारीफ की। खुदा का 'शुक्रिया' अदा किया और चला आया।" ७

(शेष पृष्ठ ४० पर)

ब्राह्मी बूटी

–वैद्य दिनेश कुमार शर्मा

ब्राह्मी से बहुत से लोग परिचित हैं। 'मण्डूकपर्णी' इसी की एक किस्म है। ब्राह्मी का लैटिन नाम 'सेण्टेला एशियाटिका' [Centella asiatica] है। यह शतपुष्पा कुल का (अम्बेलिफेरी Umbelliferae) का वर्षायु क्षुप है, जो कभी–कभी दो–तीन वर्ष तक रहता है। इसका काण्ड लम्बा होता है, जो जमीन पर फैला रहता है। काण्ड के प्रत्येक पर्व से जड़, पत्ते, फूल तथा फलों का उद्गम होता है। इसके पत्ते गोल, गुर्दों की आकृति के १/२ से २.५ इंच लम्बे, चौड़े तथा सात शिराओं से युक्त होते हैं। इनका स्वाद तिक्त होता है। इसके फूल छोटे तथा लाल रंग के होते हैं, जो बसन्त ऋतु में लगते हैं। फल छोटे १/८ से १/६ इंच के ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होते है। फलों के अन्दर चपटे बीज पाये जाते हैं। इसकी जड़ बारीक व सूत्रवत् (धागे के समान) होती है।

ब्राह्मी भारत व श्रीलंका में सर्वत्र २००० फीट की ऊंचाई तक मिलती है। यह प्रायः नदी, नालों तथा जलाशय के किनारों पर होती है। रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें हाइड्रोकोटिलीन ($C_{22}H_{32}O_8N$) नामक क्षाराभ पाया जाता है। इसकी ताजा पत्तियों में प्रतिकिलो ०.७ से ०.१२ ग्राम तक एशियाटिकोसाइड (Asiticoside) नामक ग्लाइकोसाइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें वेलेरिन (Vallerine) राल, टैनिन, वसाम्ल तथा एसकोर्विक अम्ल पाये जाते हैं।

आयुर्वेद मतानुसार इसका गुण लघु, रस तिक्त, अनुरस कषाय,विपाक मधुर, वीर्यशीत तथा प्रभाव मेध्य है। तिक्त रस होने के कारण कफ और पित्त का शमन करती है। **मेध्य प्रभाव से यह स्मरण-शक्ति-वर्द्धक है।**

मधुर विपाक व शीतवीर्य होने से महिलाओं के स्तनों में दूध की मात्रा बढ़ाती है। **इसके अलावा मधुर व शीतवीर्य होने से यह बालक, युवा वृद्ध तथा स्त्री सभी को बल प्रदान करती है।**

विभिन्न रोगों में उपयोग –

कुष्ठ, घाव तथा अन्य चर्मरोगों में इसके पत्तों को पानी में पीसकर लेप किया जाता है।

इसका स्वरस पीने से स्मरण-शक्ति बढ़ती है तथा मानसिक दुर्बलता दूर होती है; इसके अलावा उन्माद व अपस्मार दूर होते हैं। इसके स्वरस की मात्रा १० से २० मि.ली. है।

पाचन–संस्थान के विकार अग्निमान्द्य व ग्रहणी में यह उपयोगी है।

श्वसन–संस्थान के विकार खाँसी, दमा में भी यह उपयोगी है, क्योंकि आयुर्वेद मतानुसार यह कफ को निष्कासित करता है। महिलाओं में प्रसव के बाद यदि स्तन में दूध की कमी हो, तो इसका सेवन करना एक ओर दूध की मात्रा को बढ़ाता है, तो दूसरी ओर यदि दूध (माता के दूध) में कोई विकार हो, तो उसे भी दूर करता है।

यौन–रोग 'फिरंग' की द्वितीय अवस्था में ब्राह्मी का प्रयोग लाभप्रद है।

गंडमाला और श्लीपद में भी उपयोगी है।

शीतवीर्य होने के कारण यह ज्वर को दूर करता है।

सामान्य कमजोरी में यह रसायन (टॉनिक) का काम करता है।

इस पौधे के जड़, फूल, पत्र, फल तथा तना सभी का औषध के रूप में प्रयोग होता है।

औषधि का शरीर से उत्सर्ग

इसका उत्सर्ग त्वचा व गुर्दों के द्वारा होता है। उत्सर्गकाल में यह त्वचा व गुर्दों को उत्तेजित करती है।

औषधि का अहित प्रभाव

इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से सिरदर्द, चक्कर आना और मानसिक अवसाद की स्थिति उत्पन्न होती है। त्वचा में खुजली व लालिमा होती है। ऐसी अवस्था में इसका प्रयोग बन्द करके सूखे धनियाँ का सेवन करना चाहिए।

घातक

ब्राह्मी को हमेशा छाया में सुखाना चाहिए। धूप में सुखाने से इसका उड़नशील तैल नष्ट हो जाता है, जिससे इसकी कार्यकारी शक्ति कम हो जाती है।

अन्य जड़ी–बूटियों के साथ उपयोग

(१) ब्राह्मी के पत्तों का रस ४० मिली. कूट का चूर्ण १ ग्राम तथा शहद ५ ग्राम मिलाकर पीने से उन्माद रोग दूर होता है।

(२) ब्राह्मी के रस को शहद के साथ सेवन करने से अपस्मार रोग नष्ट होता है।

(३) ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, कूट और छोटी इलायची सभी समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को १ ग्राम की मात्रा में प्रातः, सायं मधु के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

(४) वच, कूट, शंखपुष्पी इनको समान मात्रा में लेकर सूक्ष्म पीसकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को ब्राह्मी के स्वरस में भिगोकर छाया में सुखा ले। इस छाया में सुखाये हुए चूर्ण को १ ग्राम की मात्रा में प्रातः–सायं मधु के साथ सेवन कर ऊपर से गाय का मिश्री मिला हुआ दूध पीने से उन्माद, अपस्मार, भ्रम तथा मानसिक दुर्बलता में लाभ होता है।

(५) शंखपुष्पी के पंचांग का चूर्ण व अश्वगन्धा की जड़ का चूर्ण समान मात्रा में पीसकर ब्राह्मी पंचांग के स्वरस में भिगोकर छाया में सुखा ले। इस छाया शुष्क–चूर्ण के वजन के बराबर मिश्री मिला ले। इस चूर्ण को १ ग्राम की मात्रा में प्रातः–सायंकाल गाय के दूध के साथ सेवन करने से शारीरिक व मानसिक थकान दूर होती है।

(६) ब्राह्मी पंचांग का चूर्ण, शंखपुष्पी के फूलों का चूर्ण, अश्वगन्धा की जड़ का चूर्ण, गुलाब के फूलों का चूर्ण सबको समान मात्रा में लेकर महीन पीसकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को २ ग्राम की मात्रा में सेवन करना मानसिक रोगों में उपयोगी है।

(७) वायविडंग, कालीमिर्च, वच, शंखपुष्पी के पत्ते तथा ब्राह्मी सभी को समान भाग लेकर महीन पीसकर चूर्ण बना ले। चूर्ण का जितना वजन हो, उसके बराबर मिश्री मिला ले। मात्रा– इस चूर्ण का १ ग्राम की मात्रा में प्रातः–सायं पानी के साथ सेवन करना मानसिक दुर्बलता में उपयोगी है।

ब्राह्मी के प्रमुख आयुर्वेद शास्त्रोक्त योग

(१) ब्राह्मीवटी

मात्रा– १–२ गोली प्रातः सायंकाल मक्खन के साथ।

उपयोग– दिमाग की कमजोरी, अनिद्रा हिस्टीरिया, मुर्च्छा, उन्माद, स्मरण-शक्ति की कमजोरी आदि मानसिक विकारों में उपयोगी हैं।

(२) ब्रह्म रसायन

मात्रा– १० ग्राम प्रातःकाल गाय के दूध के साथ।

उपयोग– इसके सेवन से शरीर व दिमाग की कमजोरी दूर होती है। स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। इसका नियमित सेवन दमा, खाँसी तथा कब्ज रोग को दूर करता है। यह उत्तम रसायन है।

(३) सारस्वतारिष्ट

मात्रा– १० से २० मिली. समान भाग जल से भोजनोपरान्त।

उपयोग– यह स्मरणशक्ति की वृद्धि करता है। यह भ्रम (चक्कर आना), चित्त की अशान्ति, अनिद्रा आदि विकारों में उपयोगी है। इसके सेवन से मानसिक तनाव दूर होकर दिमाग तरोताजा रहता है। ◻

डाकघर, अजीतगढ़
जनपद, सीकर (राजस्थान) – ३३२७०१

(पृष्ठ ३८ का शेष) **असलियत– 'गालिब' की...**

अक्टूबर को लिखते हैं कि, "याद रहे कि अभी बागियों (क्रान्किारियों) के गिरोह जगह–जगह, बरेली, फरक्काबाद, लखनऊ में उत्पात मचा रहे हैं। उनके दिल खुदा करे, खून हो जायें कि बेकार हो जायें, जो लड़ाई के लिए खुले हुए हैं। इधर सोह और नूह के इलाके में मेवातियों ने बेतरह ऊधम मचा रखा है–जैसे दीवाने जंजीरों से रिहा हो गये हैं। तुलाराम नाम का एक बागी कुछ मुद्दत तक रेवाड़ी में उत्पात मचाने के बाद शैतान की रहनुमाई में मेवातियों से जा मिला है। यह गिरोह उन जंगलों और पहाड़ों में अंग्रेज हुक्मरानों से अलग से लड़ रहा है। यह बदकिस्मती के अलावा कुछ है ही नहीं..., जिस दिन से गोरे मुझे पकड़ कर ले गये, उस दिन के अलावा चौखट पर कदम रखना, घर से बाहर निकलना नसीब नहीं हुआ।" रेवाड़ी के उक्त राव तुलाराम को उस क्रान्ति में फाँसी दी गई थी; जिसे गालिब ने 'शैतान' बताया। मलका विक्टोरिया को भेजे गये 'कसीदें' के बारे में गालिब बड़े गर्व से लिखते हैं कि "एक दरख्वास्त शहनशाहे–इंग्लैण्ड के नाम सिकंदरे–ज़ाह, फरीदूने–हशम लार्ड केनिंग नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के हुजूर में भेजी। ख्वाहिश है कि मलिकाए–मुअज्जमा (विक्टोरिया) अपनी जुबान मुबारक से मेहरख्वाँ (खिताब) इरशाद फरमाएँ। अपने हुक्म से सराय (खिलअत) बख्शें और अपने ख्वान से चंदनान–रेजा (रोटी के टुकड़े) इनायत फरमायें।" गर्जेकि पेन्शन दें। ❑

जो १०१ वर्ष की आयु में भी स्वस्थ और सबल रहे

– श्वेतकेशी

वेदमूर्त्ति पंडित सातवलेकर

वह बालक जो जन्म से ही बड़ा कमजोर और आये दिन बीमार बना रहता था– किस तरह जब वह ५० वर्ष का प्रौढ़वयी हुआ, तो उस उम्र में वह दौड़ते हुए पहाड़ी पर चढ़ जाता और फिर दौड़ते हुए ही पहाड़ी से नीचे उतरता–यही नहीं ३० व ४० वर्ष की आयु में वह रोज ५०० आसन और सूर्य–नमस्कार जैसे व्यायाम करने में सक्षम रहता था जबकि उसकी जन्म–पत्री में ज्योतिषी ने उस बालक के १८वें वर्ष में ही मृत्यु हो जाने की भविष्यवाणी किंवा अकाल–मृत्यु के योग लिख रखे थे। पैदा होते ही उसे हर तरह के रोग घेरे रहे। कोई सप्ताह ऐसा न जाता, जब कि वह किसी न किसी रोग से ग्रस्त न रहा हो। शरीर बहुत क्षीण। २५ वर्ष का होने आया, फिर भी वह उस पहाड़ी पर चढ़ पाने में असमर्थ रहा था, जिस पर आगे ५० वर्ष का होने पर दौड़ कर चढ़ा करता। उसके जन्म–काल से लेकर युवावस्था तक उसके पिता बड़े चिन्ता–ग्रस्त रहते कि अपने पुत्र को नीरोग रखने के लिए और उसकी दैहिक दुर्बलता दूर करने के लिए क्या उपाय करें। वे वैसे भी अपनी चार संतानों को अल्पायु में ही अकाल काल–कवलित होते देख चुके थे और यह बालक भी पैदायशी रोगी ही सिद्ध हो रहा था– उस पर अल्पायु–मृत्यु का योग उन्हें और दुःखी व चिन्तित बनाये था। वह जन्मा था महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले के कोल गाँव में। ब्राह्मण–परिवार था। उस परिवार में परम्परागत यह नियम चला आया था कि जब बालक ५ साल का हो जाये, तो सबेरे ही स्नान करके रोज १२ सूर्य–नमस्कार (एक प्रकार का व्यायाम) करे। इसलिए उस कमजोर देह के रोगी रहने वाले बालक को रोज सबेरे नहाकर १२ सूर्य–नमस्कार करने की आदत डालनी ही पड़ी। बाल–बुद्धि भला उस व्यायाम का क्या महत्त्व समझती, हाँ वह उसे सूर्य–वन्दना या नमस्कार मानकर ही करता रहा। यह भी वह विवश होकर ही करता था, जब कि उन दिनों महाराष्ट्र के अनेक परिवारों के युवक १२०० तक सूर्य–नमस्कार रोज किया करते थे और १०० से लेकर ५०० सूर्य–नमस्कार करने वाले युवकों की तो बहुत संख्या था–फिर भी उम्र बढ़ते जाने पर भी उक्त बालक की प्रवृत्ति कभी यह नहीं हुई कि वह अधिक सूर्य–नमस्कार करके अपना स्वास्थ्य सुधारे– इसलिए २५ वर्ष की युवावस्था होने पर भी वह वैसा ही कमजोर और रोगी बना रहा। एक तरह से धार्मिक निमय बनाकर वह रोज १२ सूर्य–नमस्कार प्रातः संध्योपासन करने के बाद कर लिया करता था। परन्तु बीमारी झेलते रह कर भी १८वें वर्ष में जो उसकी अकाल–मृत्यु का योग बताया गया था, जन्म–पत्री में, वह मृत्यु नहीं हुई और २५वाँ वर्ष शुरू होने पर वह रत्नागिरी जिले से मुम्बई चला आया। वहाँ चित्र–कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए "सर जे.जे. स्कूल आफ आर्टस्" में भर्ती हो गया। इसके पूर्व वह गाँव में घर पर संस्कृत सीखकर यह योग्यता प्राप्त कर सका था कि पतंजलि का महाकाव्य पढ़ने लगा था और संस्कृत में व्याख्यान भी दे सकता था। परन्तु योगासनों की तरफ या प्राणायाम की ओर अभी तक उसकी कोई रुचि नहीं हुई थी। उन्हीं दिनों एक घटना घटी।

हुआ यह कि मुम्बई में इसी बीच एक ऐसा आदमी आया, जो अपने को योगी और विद्या में दक्ष बताता था। उसका दावा था कि वह मुँह से काफी लम्बा कपड़ा निगलकर उस कपड़े को मल–द्वार से बहिर्गत कर सकता है। मुम्बई के एक थियेटर में उसके प्रदर्शन आयोजित हुए। अब जो योग की ओर उक्त रत्नागिरी वाले युवक का ध्यान गया, तो वह बाजार से योग विषयक जानकारी देने वाले ग्रन्थ खरीद लाया। उन्हें पढ़ा। उसे उन ग्रन्थों से योग की 'धौति' आदि क्रियाओं का पता चला; परन्तु जैसी घोषणा उस कथित 'योगी' ने की थी, वैसा कही लिखा नहीं मिला। फिर तो वह युवक उसके पास थियेटर में गया और उससे कहा कि आप जिस क्रिया का दावा करते हैं, उसे हमारे स्कूल की व्यायाम–समिति में आकर प्रत्यक्ष प्रदर्शित करें। वह राजी हो गया। लेकिन वहाँ सबके सामने आने पर वैसा कुछ कर दिखाने में वह असफल रहा, इससे उसकी बड़ी किरकिरी हुई– और

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

विभाजन की विभीषिका

- डॉ० किशोरी लाल व्यास 'नीलकंठ'

क्यों विभाजन की विभीषिका
हर रात
मेरी बूढ़ी आँखों की पलकों पर
उतर आती है चुपचाप?
खटखटाती है मेरा दरवाजा, जर्जर
उठ, हरमिन्दर कौर, उठ
देख, तेरी पाँचों बेटियाँ
खड़ी हैं तेरे द्वार।
महुए के फूलों-सी खुशबूदार
अनारदानों-सी रसभरी,
गुलमुहर-सी चटक, लाल-लाल।
देख तो, यौवन की दहलीज पर खड़ी
हरखा रही हैं तेरी बेटियाँ
उठ, अभी तुझे सजाने हैं वन्दनवार
हाथ पीले करने हैं,
उठाने हैं नखरे बारातियों के
बजती शहनाइयों के बीच
और बिदा करनी हैं
पाँच जोड़ी रोती आँखें।
उठ, हरमिन्दर, उठ
देख, बौरों से भरी
आम की डालियों पर
झूल रही हैं तेरी लड़कियाँ
तितलियों-सी,
लड़ रही हैं मैनाओं-सी
फुदकती गौरेया-सी
वासन्ती हँसी, सावनी फुहार
बिखेरतीं
निश्चिन्त, खेल रही हैं
तेरी पुत्तरियाँ-
सारे बगीचे को रौंदती
गुदगुदाती, हँसाती।
कहाँ हैं मेरी बेटियाँ,
कहाँ हैं?
रोज इसी तरह सपनों में
आती हैं, सताती हैं
मेरे जागने तक
कपूर-सी, खुशबू बिखेरकर
सुधियों की
चुपचाप चली जाती हैं
बूढ़ी आँखों को रुला जाती हैं।
सोई ही कहाँ हूँ मैं, जो जागूँ?
खुली की खुली हैं मेरी आँखें,
बरसों से।
कहाँ से आयेंगी मेरी बेटियाँ?
इन्हीं आँखों से मैं देख चुकी हूँ
दरिन्दों से बचने
एक के बाद एक को
पुल पर चढ़ कर
उफनी हुई सतलुज के
झागदार पानी में कूदते
मटमैली लहरों की
गोद में समाते।
इन आँखों को कैसे झुठलाऊँ?
खुली आँखों में भी
विभाजन के नजारे
दुःस्वप्नों से
घूमते रहते हैं
खण्डहरों में घूमते प्रेतों-से
रात-दिन।
कटे हुए हाथ-पैर, सिर-धड़
रेल के डिब्बों से टपकता गाढ़ा लहू
कटे हुए स्तनों पर हाथ रखे
चीखती-दौड़ती नंगी औरतें
भालों की नोकों पर
लटके हुए बच्चे
जलते हुए मकान, दूकानें
अट्टालिकाएँ
बर्छियाँ, तलवारें लिए
रौंदती हुई धर्मान्ध छायाएँ
चीखें .... विवशताभरी,
रक्त सनी चीखें
आदमी के पशुत्व का
राक्षसी ताण्डव
मेरी खुली पलकों पर
दिन रात, टी०वी० सीरियल के
एपिसोडों-सा
चलता रहता है... एक... दो
तीन... तेरह... तेईस
क्या फर्क पड़ता है?
मेरी आँखें बन्द हों या खुली?
मेरी पाँच जवान बेटियाँ
बगीचे में
झूला झूलते
बाढ़ से बिफरतीं
सतलुज की ओर निकल पड़ी हैं
मैं इन्हें विदा देना भी भूल गयी हूँ
हरमिन्दर कौर, हाथ तो हिला
अलविदा तो कह दे
फिर भला कब मिलन हो
किस जनम में? ★

– फ्लैट नं० ११२, प्लॉट नं० ५
सौम्या अपार्टमेण्ट,
हुडा काम्प्लेक्स, कोत्तापेट, हैदराबाद

प्रख्यात हिंदी लेखिका श्रीमती भगत का निधन

गत दिनों प्रख्यात हिन्दी लेखिका श्रीमती मंजुल भगत का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। वे ६२ वर्ष की थीं। श्रीमती भगत का उपन्यास 'अनारो' बेहद लोकप्रिय हुआ। इस उपन्यास पर उन्हें यशपाल पुरस्कार मिला था। राष्ट्रधर्म परिवार की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

बात रसोई की

-डॉ. माण्डवी दीक्षित

भोजन मनुष्य की केवल अनिवार्य आवश्यकता ही नहीं; अपितु किसी भी सभ्यता-संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। सुरुचिपूर्ण ढंग से तैयार किये गये सुस्वादु भोजन का कितना महत्त्व है, इसको इस बात से आँका जा सकता है कि विविध कला-शास्त्रों की भाँति ही पाक-शास्त्र अथवा पाक-कला का भी अभ्युदय हुआ और आज पाक-शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखी जा रही हैं, विभिन्न संस्थानों द्वारा पाक-कला का प्रशिक्षण दिया जा रहा है तथा भोजन तैयार करने की नयी-नयी शैलियाँ विकसित की जा रही हैं। किसी भी देश अथवा समाज की प्राचीन तथा अर्वाचीन सभ्यता का अध्ययन, वहाँ के 'खान-पान' के अध्ययन के बिना अधूरा ही रहता है।

जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, हमारा देश प्राचीनकाल से ही कलाप्रिय रहा है। इस कलाप्रियता ने हमारे रसोईघरों पर भी अपना पूरा प्रभाव डाला। प्राचीन भारतीय साहित्य में परिगणित चौंसठ कलाओं में पाक-कला का विशेष स्थान है। भोजन के लिए 'षट्-रस व्यञ्जन' तथा 'छप्पन भोग' जैसे प्रयोग इस तथ्य का स्पष्ट प्रतीक हैं कि भारतीय भोजन के विषय में विविधताप्रिय रहे हैं। छप्पन प्रकार का भोजन बनाकर भगवान् को अर्पण करने वाला पर्व 'अन्नकूट' हमारी सम्पन्नता एवं पाक-कला का अनुपम उदाहरण है।

भारत विविधताओं का देश है और यह विविधता हमें विभिन्न क्षेत्रों के भोजन तथा तदनुरूप भोजन तैयार करने की शैलियों में भी दिखायी देती है। प्रत्येक शैली में प्रयुक्त होने वाली खाद्य-सामग्री तथा मसालों का अनुपात भी भिन्न-भिन्न होता है, जिसे परम्परागत कहा जा सकता है। प्रत्येक भारतीय परिवार में परम्परागत ढंग से भोजन तैयार होता है और प्रत्येक परिवार या व्यक्ति का अपना निश्चित स्वाद होता है। इस विविधता को क्षेत्रवार यों समझ सकते हैं, जैसे पंजाब में सरसों का साग, मक्के की रोटी तथा मट्ठा (जिसे 'लस्सी' कहते हैं); बंगाल में मछली-भात; उत्तर भारत में दाल, रोटी और सब्जी; तो दक्षिणी प्रान्तों में चावल तथा दाल के मिश्रण से तैयार व्यञ्जन जैसे- इडली, दोसा, साँभर तथा गुजरात का ढोकला विशेष प्रचलित हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय भोजन-परम्परा में गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। ये परिवर्तन एक ओर तो आर्थिक-सामाजिक प्रगति का परिणाम है, तो दूसरी ओर वैज्ञानिक तथा प्राविधिक विकास के फल-स्वरूप सम्भव हो सका है। पर्यटन की बढ़ती सुविधाओं एवं प्रवृत्ति ने प्रान्तीयता की दीवारों को तोड़ा है, तो उदारीकरण के परिणाम-स्वरूप पाश्चात्य-शैली एवं स्वाद का प्रभाव भी हमारे रसोईघरों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों के फलस्वरूप पारम्परिक चूल्हे तथा बुरादे की अँगीठियों का प्रयोग समाप्तप्राय है। इनका स्थान क्रमशः स्टोव, गैस-चूल्हे से होते हुए 'कुकिंगरेंज', 'ओवेन', 'हॉट प्लेट' तथा 'सोलर कुकर' ने ले लिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी कृषि विश्वविद्यालय के प्रयासों से निर्धूम चूल्हों का प्रयोग हो रहा है। दूध गरम करने, चाय आदि बनाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक केतली आदि का प्रयोग सामान्य-सी बात है।

भोजन तैयार करने के लिए भी हलके तथा अधिक सुविधायुक्त बर्तनों का प्रयोग हो रहा है। सफाई की सुविधा के लिए 'नॉन-स्टिक-पैन' का प्रयोग बढ़ रहा है। स्वाद के साथ पौष्टिकता बनाये रखने के उद्देश्य से 'प्रेशर कुकर' ने पारम्परिक भगौनों तथा फूल पीतल के भारी बटुओं-बटलोइयों की छुट्टी कर दी है। नाश्ते तथा भोजन के लिए स्टील, चीनी-मिट्टी तथा प्लास्टिक के बर्तनों का प्रयोग हो रहा है।

भोजन बनाने के ही नहीं, भोजन करने के पारम्परिक तौर-तरीके यथा-चौकी-पाटे का दर्शन भी यत्र-तत्र ही देखने को मिलता है। इनका स्थान 'डाइनिंग टेबिल' ने ले लिया है। जिन निम्न-मध्यमवर्गीय घरों में यह सुविधा नहीं है, वहाँ साधारण मेज, कुर्सी, तख्त और पलँग पर भी बैठकर भोजन करना आधुनिक होने की पहचान बन गया है।

भोजन बनाने तथा करने की आदतों तथा तौर-तरीकों में परिवर्तन से भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है हमारे व्यञ्जनों तथा स्वाद में आया परिवर्त्तन/भोजन को खूब तेल-मसाले में भून कर बनाने की अपेक्षा उबालकर तथा फ्राई कर बनाने का प्रचलन बढ़ रहा है। साथ ही ओवेन में तैयार किये जा सकने वाले व्यञ्जनों की

लोकप्रियता भी विशेषकर नव–धनाढ्य– वर्ग में बढ़ रही है। भोजन ने प्रान्तीयता की दीवारें तोड़ी हैं। उत्तर भारत में दक्षिण भारतीय व्यञ्जनों के होटलों में लगातार बढ़ती भीड़, विवाह आदि उत्सवों पर पारम्परिक व्यञ्जनों के मध्य इडली, दोसा, उपमा, ढोकले तथा तन्दूरी आदि ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। इसी प्रकार उत्तर भारत के व्यञ्जन विशेषकर दही–बड़ा, आलू–टिक्की, खस्ता–समोसा, चाट इत्यादि अन्य प्रान्तों में भी पसन्द किये जा रहे हैं। लखनऊ के बारे में तो प्रचलित कहावत है– 'लखनऊ गये और चाट न खायी, तो क्या खाया'?

भोजन पर विदेशी स्वाद का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित हो रहा है। उदारीकरण के फलस्वरूप यह परिवर्तन गत वर्षों में कुछ अधिक ही तेजी से आया है। चीनी तथा मलेशियाई व्यञ्जनों में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी है। नूडल्स, बर्गर, स्पगैटी, चाऊमिन, मैकरोनी आदि आज भारतीय रसोई का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनते जा रहे हैं। अपने सात्विक शाकाहारी भोजन के लिए जाने जाने वाले इस देश में मांसाहारी भोजन के प्रति लोगों का रुझान इधर बहुत बढ़ रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पैक्ड तथा डिब्बाबन्द उत्पादों ने भी हमारी पारम्परिक खान–पान की आदतों को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण (किन्तु गर्हित) भूमिका निभायी है। मिठाइयों का स्थान केक, पेस्ट्री तथा विभिन्न प्रकार के बिस्कुट लेते जा रहे हैं। शीतल पेयों यथा लस्सी, ठण्डाई तथा शरबत का स्थान पेप्सी, कोका–कोला, मिरिन्डा जैसे विदेशी पेयों ने ले लिया है।

संक्रमण, परिवर्तन तथा विकास के दौर में हम जहाँ अनेकानेक नये स्वाद तथा नये व्यञ्जनों को अपनाते जा रहे हैं, वहीं अनेक पारम्परिक व्यञ्जनों को भूलते भी जा रहे हैं। रसाज, पन्यौछा, रसभरी, खरिका, चूरमा तथा मूरन जैसे व्यञ्जन अब बिरले ही बनते हैं। नयी पीढ़ी के लिए इनका स्वाद तो दूर, नाम जानना भी इतिहास की बात हो या लोकगीतों की, जो शायद कभी–कभार आकाशवाणी पर प्रसारित हो जाते हैं। फिर एक फैशन भी तो है कि उँह! यह सब तो बड़ा 'टाइम–टेकिंग है', बाजार से ब्रेड ले लो और सैंडविच बनाकर खालो फटाफट तैयार। वर्तमान में भारतीय रसोई पर यह 'फटाफटवादी सैंडविच संस्कृति' ही प्रभावी होती दिख रही है। कहीं ऐसा न हो कि आधुनिकता के नाम पर हम अपनी रसोई, रसोई के बर्तन और देशी व्यञ्जनों को ही एक दिन भुला बैठें। □

– १२३ फतेहगंज, गल्ला मण्डी, लखनऊ (उ०प्र०)

प्रेरक–प्रसंग

महानता

– नारायणानन्द

'भइया मेरा यह गट्ठर मेरे सिर पर रखवा दो!'

बम्बई महानगरी की एक सड़क के किनारे एक बुढ़िया लकड़ियों के एक गट्ठर के पास खड़ी उधर से गुजरने वाले लोगों से यह निवेदन कर रही थी।

किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगती, कुछ तो उसकी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ जाते और कुछ मुँह बिचकाकर।

सूर्यास्त हो चुका था। बुढ़िया को घर पर पहुँचकर अपने छोटे–छोटे बच्चों को भोजन बनाकर खिलाने की चिन्ता थी, किन्तु उसकी सहायता कोई नहीं कर रहा था।

तब तक उसे सामने से पैन्ट–कोट–टाई से सज्जित एक सज्जन आते हुए दिखे। बुढ़िया कातर दृष्टि से उनकी ओर निहार रही थी। जब वे सामने पहुँचे तो बुढ़िया ने उनसे भी यही निवेदन करना चाहा, किन्तु संकोच के कारण उसका उठा हुआ हाथ नीचे आ गया और खुला हुआ मुँह बन्द हो गया।

उन महाशय को लगा कि शायद बुढ़िया उनसे कुछ कहना चाहती है। वे पीछे मुड़े और बोले– 'क्या कहना चाहती हो माँ?'

उनका यह आत्मीय सम्बोधन सुनकर बुढ़िया की आँखों में आँसू आ गये। वे सज्जन बोले– 'माँ! रोओ नहीं पैसों की आवश्यकता हो, तो बताओ।' इतना कहते ही उनका हाथ पैन्ट की जेब में चला गया।

बुढ़िया तपाक से बोली– 'नहीं बाबू, मुझे पैसे नहीं चाहिए। मैं तो यहाँ से गुजरने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यह लकड़ियों का गट्ठर अपने सिर पर रखवाने का निवेदन कर रही थी। किन्तु किसी ने सहायता नहीं की। आपने तो मेरे बिना कुछ कहे ही मुझे माँ कहकर पूछा, इसीलिए आखों में आँसू आ गये।'

उन सज्जन का हाथ जेब से बाहर आ गया और उन्होंने लकड़ियों का गट्ठर उठाकर बुढ़िया के सिर पर रख दिया।

बुढ़िया के रुद्ध-कण्ठ से एक ही वाक्य निकला– 'तुम बड़े महान् हो बेटा! भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।' और वह अपने रास्ते पर चल पड़ी।

वे सज्जन थे बम्बई उच्च न्यायालय के प्रतिष्ठित न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानडे।

– ८६, सिविल लाइन, उन्नाव (उ०प्र०)

गोद लिए बच्चे कितने अपने, कितने पराए

–डॉ. अनामिका प्रकाश

माँ अपनी संतान को कितना चाहती है, यह स्पष्ट करने की जरूरत नहीं। बेटे को जरा-सी खरोंच लग जाये, तो माँ चिन्तित हो उठती है। दुनिया में जितने भी रिश्ते हैं, उन सबमें सबसे अधिक भावनात्मक रिश्ता माँ का अपनी संतान से होता है।

तो क्या गोद लिए हुए बच्चों को भी उतना ही प्यार मिल पाता है? कहीं ऐसा तो नहीं कि अपनी कोख से पैदा हुए बच्चों की बनिबस्त गोद लिये हुए बच्चों को माँ-बाप का प्यार न मिल पाता हो? हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरणपोषण अधिनियम १९५६ की धारा ८ में दत्तक-ग्रहण के सम्बन्ध में स्त्रियों को विस्तृत अधिकार दिए जाने के बाद उक्त सवालों पर बहस जरूरी है।

मगर उक्त प्रश्नों पर बहस करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि संतान गोद लेने के पीछे कारण क्या है?

वैसे तो हर धर्म में, खास तौर से हिन्दू धर्म में पुत्र का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। नरक से बचाने के लिए, श्राद्धकर्म के लिए पुत्र की आवश्यकता अनिवार्य मानी जाती थी। वंश-परम्परा को बनाये रखने के लिए भी पुत्र आवश्यक होते थे। मगर यदि किन्हीं कारणों से संतान उत्पन्न न हो रही हो, तो क्या किया जाय? इसी स्थिति से निबटने के लिए दत्तक-ग्रहण की व्यवस्था की गयी। मनु ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "संतानहीन व्यक्ति को एक पुत्र का प्रबन्ध जिस किसी प्रयत्न से हो सके, करना चाहिए।" दत्तक मीमांसा में कहा गया है – "पितरों को पिण्डदान, जलदान देने तथा धार्मिक संस्कार को पूरा करने के लिए एवं अपने नाम को कायम रखने के लिए एक व्यक्ति को पुत्र दत्तक ग्रहण में लेना चाहिए, यदि वह पुत्रहीन है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठानों एवं अपनी वंश-परम्परा को कायम रखने के लिए दत्तक ग्रहण करता है। सवाल पैदा होता है कि आज के इस मशीनी दौर में यह प्रथा कहीं सिर्फ प्रथा ही तो बनकर नहीं रह गई है?

जहाँ तक दत्तक पुत्रों, पुत्रियों को गोद लेने वाले माँ-बाप का प्यार मिलने का प्रश्न है, तो अधिकांशतया ऐसे माँ-बाप अपनी दत्तक संतान को पूरा स्नेह देते हैं। जाहिर है कि वे संतानहीन होते हैं, इसलिए अपना पूरा लाड़-प्यार उन्हें देते हैं। मगर यह शायद गोद लेने की बात का प्रभाव होता है कि ऐसी सन्तानों को यही शिकायत रहती है कि उन्हें भरपूर स्नेह नहीं मिल पाता। छोटी उम्र में तो कोई खास दिक्कत नहीं होती है, मगर समझदार हो जाने पर जब बच्चे को पता चलता है कि उसे गोद लिया गया है, तो उसके अन्दर ही अन्दर एक हीनग्रन्थि बनने लगती है, जिसका शिकार होकर बच्चा अक्सर सही बातों का गलत अर्थ लगा लेता है। मसलन, यदि बच्चा कोई गलत बात करता है और उसकी भलाई के लिए ही यदि उसके माँ-बाप उसे डाँटते या मारते हैं, तो यह समझ बैठता है कि उसके साथ ऐसा इसलिए हो रहा है, क्योंकि वह उनकी अपनी संतान नहीं, वरन् गोद लिया हुआ है। परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे उस बच्चे के अन्दर असंतोष की भावना घर कर जाती है, जो बाद में विद्रोह का रूप ग्रहण कर लेती है और माँ-बाप को मन मसोस कर रह जाना पड़ता है। स्थिति उस समय बड़ी जटिल हो जाती है, जब अपने किसी रिश्तेदार का बच्चा ही गोद लिया गया हो। ऐसी स्थिति में वह बच्चा बार-बार अपने वास्तविक माँ-बाप के पास लौट जाने की धमकी भी देता है। अक्सर ऐसे बच्चे अपराधी भी बन जाते हैं।

एक सर्वेक्षण-प्रतिवेदन के अनुसार गोद लिए गये अधिकांश बच्चे या तो अपराधी बन जाते हैं या फिर ऐय्याशी में ही अपना जीवन बिता देते हैं। कुछ ही बच्चे ऐसे होते हैं, जो पढ़-लिखकर किसी योग्य बन पाते हैं। ऐसी स्थिति में तो गोद लेने के पीछे जो कारण हैं, वे ही पूरे नहीं हो पाते और माँ-बाप के पास पछताने के सिवाय

कुछ नहीं रह जाता।

फिर सवाल उठता है कि यदि माँ–बाप अपने गोद लिए हुए बच्चों को पूरा स्नेह देते हैं, तो क्यों उनके अन्दर परायेपन का एहसास जड़ें जमा लेता है ? क्यों वे अपने को कटा–कटा महसूस करते हैं ?

यह बात भी किसी सीमा तक सत्य है कि उनको उतना प्यार वास्तव में नहीं मिल पाता, जितना कोख से पैदा हुई सन्तान को। लोग बच्चा गोद तो ले लेते हैं और उसके लिए सारी सुख सुविधाओं का प्रबन्ध भी कर देते हैं, मगर यह नहीं समझ पाते कि इन सबसे ज्यादा एक बच्चे को आवश्यकता होती है बहुत अधिक प्यार की।

माँ–बाप के स्नेह का यदि अभाव है, तो बच्चे के लिए और सारी चीजें किसी काम की नहीं हैं। यदि लड़की को गोद लिया गया है, तो ऐसे माँ–बाप अक्सर उसे गृहस्थी के गुण समझाने की बजाय उसे भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध करा देते हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसी लड़कियाँ ससुराल में ताने सुनने को विवश हो जाती हैं; क्योंकि उन्हें कुछ आता ही नहीं। माँ–बाप ने उन्हें कुछ सिखाया ही नहीं होता। इसलिए घुट–घुटकर जीना ही ऐसी लड़कियों की नियति बन जाती है और वे आजीवन अपने दत्तक माँ–बाप को कोसती रहती हैं।

हालाँकि दत्तक ग्रहण अधिनियम १९५६ की धारा १२ के अनुसार गोद ली हुई सन्तान, गोद लेने वाले परिवार के समस्त अधिकारों एवं सुविधाओं को प्राप्त कर लेती है ; मगर हकीकत यह है कि प्यार के अभाव में ये सारी चीजें उसके लिए निरर्थक साबित हो जाती हैं।

इसलिए ऐसे माँ–बाप को, जो किसी की सन्तान को गोद ले रहे हैं, चाहिए कि वे अपनी दत्तक सन्तान को सारी भौतिक सुविधाएँ तो मुहैया करायें ही, उन्हें भरपूर लाड़–प्यार भी दें, ताकि बच्चे के अन्दर किसी प्रकार की हीनग्रन्थि न बनने पाये, वह बच्चा यह न समझे कि वह गोद लिया हुआ है, इसलिए उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जा रहा है। तभी गोद लेने की प्रथा का लाभ मिल सकता है।

जो माँ–बाप अपनी संतान को गोद दे रहे हैं, उन्हें भी पहले यह समझ कर अपने बच्चे को गोद देना चाहिए कि जहाँ उनका बच्चा जा रहा है, उसे वहाँ माँ–बाप का प्यार मिल पायेगा या नहीं। केवल अपना बोझ हल्का करने की दृष्टि से अपने बच्चे को गोद देना बच्चे का पूरा जीवन तबाह कर सकता है। ❒

आर.बी. २/६२ जी.एफ.बी.
रेलवे कालोनी, बाद (मथुरा)

(पृष्ठ ४१ का शेष) **जो १०१ वर्ष की ...**

उसी रोज से उक्त महाराष्ट्र छात्र की अभिरुचि योगासनों की ओर बढ़ती गई। अब वह आस्थावान् होकर आसन और प्राणायाम करने लगा। उससे उसका स्वास्थ्य धीरे–धीरे सुधरने लगा। यहाँ तक कि २५ साल की उम्र में ही जबकि उसका वजन कुल ८७ पौण्ड था– ३०वें वर्ष की आयु तक पहुँचने पर बढ़कर ११० पौण्ड हो गया। फिर जब उसे मुम्बई से हैदराबाद जाना पड़ा, तो वहाँ भी नियम से वह नित्य योगासन, सूर्य–नमस्कार तथा प्राणायाम करता रहा। कालान्तर से उसे गुरुकुल कांगड़ी–हरिद्वार और फिर लाहौर रहना पड़ा– इन सब शहरों में भी उसके नित्य योगासन–सूर्य–नमस्कार और प्राणायाम चलते रहे। वह अब स्वस्थ रहने के साथ ही, शरीर का वजन १४५ पौण्ड का हो गया। ३०–४० साल की उम्र में वह हर रोज ५०० योगासन, सूर्य–नमस्कार आदि कर लेता था। प्राणायाम अलग करता था। फिर ४० वर्ष के बाद जैसे–जैसे उम्र बढ़ी, सूर्य–नमस्कारों की संख्या घटाकर प्राणायाम बढ़ाता गया। यहाँ तक कि ९९ वर्ष की आयु में वही महाशय अब प्रातःसंध्या दो–दो सौ प्राणायाम कर लेते थे रोज, २०० प्रातः और २०० सायंकाल। इनका नाम था पंडित श्री पाद दामोदर सातवलेकर। वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् माने गये। अनेक ग्रन्थ लिखे। ९९ वर्ष की आयु में प्रातः ५.३० बजे गर्म जल से नहाकर ७.३० बजे तक गायत्री, प्राणायाम, महामृत्युंजय–जप, ध्यान, फिर २०० प्राणायाम नित्य करते रहे। प्रातः ध्यान में २ घंटे लगाते, शाम को १ घंटा। २५ साल से कभी कोई रोग नहीं हुआ। ९ बजे रात सो जाते थे। ८० वर्ष की आयु तक सवेरे ५.३० बजे ठंढे पानी से नहाते रहे। १०१ वर्ष की आयु तक पूर्णतः नीरोग और सबल रहकर ६–६ घंटे रोज लेखन–कार्य भी करते रहे। १०२ वर्ष की आयु में संसार से विदा ली। उनका कहना था, "यदि लोग रोज आधा घंटा भी योगासन, सूर्य–नमस्कार और प्राणायाम के लिए समय दें, तो उनका अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन अवश्य सम्भव होगा। लेकिन यह काम प्रातः ८ बजे से पहले हो जाये। हो सके, तो शाम को भी सन्ध्योपासन करें; क्योंकि प्रातः–सायं लम्बी संख्या करके ही ऋषियों ने दीर्घ जीवन प्राप्त किया था। (ऋषयो दीर्घसंध्यत्वात् दीर्घमायुमाप्नुयुः)। अपनी रीढ़ सदा सीधी रखें। (सयं कायशिरोग्रीवे) १०० वर्ष जीवन जीने की वैदिक भावना रखे। ये बातें उनकी स्वयं की अनुभूत थीं। मेरा–उनका तो वर्षों पत्राचार रहा। हमेशा अपने हाथ से ही लिखकर लेख भेजा करते थे। अन्तिम क्षण तक अप्रमाद उनका लेखन चलता रहा था। ब्रिटिश दासता के विरुद्ध वे क्रान्ति–कार्यों में भी संलग्न रहे थे। ❒

आज यह सनातन–राष्ट्र जिस 'चक्रव्यूह' में फँसा हुआ है, उसका भेदन करके विजय वरण करे, यही सन्देश है इस कविता का। – सम्पादक।

चक्र-व्यूह

–राज बहादुर 'विकल'

अन्धकार के चक्रव्यूह में एक किरण फँस गई अचानक
चक्रव्यूह अन्यायी हाथों का ध्वंसात्मक आयोजन है ;
चक्रव्यूह बिकती प्रतिभा के हाथों तम का अभिनन्दन है।
एक किरण की हत्या करने जब अँधियारे मिल जाते हैं,
जब उत्तराधिकारी तम के रवि को देख नहीं पाते हैं ;
जब अन्यायी सिंहासन को प्रतिभा शीश झुका देती है,
पुण्य–लोक में आग लगाकर अपना बल दिखला देती है ;
नीति, न्याय की हत्या का जब आयोजन होने लगता है,
अपने को असहाय जानकर जब विवेक रोने लगता है ;
बहुमत का बल जहाँ सत्य की चिता जलाने आ जाता है,
अहंकार जब धरती का सिन्दूर मिटाने आ जाता है ;
चक्र–व्यूह निर्मित होता है
पाप अगम संचित होता है
जहाँ ज्ञान का हृदय आँसुओं
की निधि से वंचित होता है
जब सौन्दर्य–सृष्टि का स्वर्णांकुर लपटों में बाँधा जाये,
गाँवों की ऐश्वर्य–राशि पर अन्यायों की बदली छाये ;
तम की चट्टानों के प्रहरी मिलकर साथ उठा करते हैं,
एक शीश पर एक साथ जब चौदह हाथ उठा करते हैं ;
पापों की ज्वाला जलती है,
सपनों में शंका पलती है ;
मानवता का सेन्दुर जलता, सुख की आशा जल जाती है,
किरणों की बंशी जल जाती, नभ की भाषा जल जाती है,
क्रान्ति किरण जूझती जगत् को आलोकित कर देने वाली,
अन्धकार की शिरा–शिरा में अंगारे भर देने वाली,
तम के द्वार तोड़ देती है
युग को नया मोड़ देती है
बन्धन कर स्वीकार मुक्ति की चिन्ता सदा छोड़ देती है

* * *

वह किरण
तम की खुली हथेली पर जो सूरज के अंगारे रख दे
शबनम को कंचन पहना दे,
कोलाहल को जगा–जगा कर जो सपनों को गीत बना दे,
कालिख का आवरण हटा दे ;
वह किरण जो आग रातों में लगादे,
मानवों में सो रहा जो देवता उसको जगा दे ;
वह किरण जो तिमिर में हुंकार करके भोर कर दे,
स्वप्न भागें, विश्वभर को राग दे दे, शोर कर दे ;
आवरण तम का हटा दे,
हो सभी प्रत्यक्ष, भ्रम सन्देह की उमरें घटा दे
गन्ध को गति दान कर दे
हर चमन झूमे, अमन पर जिन्दगी बलिदान कर दे,
सृष्टि की जड़ता भगा दे,
हर लहर को आग दे, हर बूँद में सूरज उगा दे

* * *

उस एक किरण पर झपट पड़े मिलकर पापों का अन्धकार,
जिसका पथ–दर्शन करे ज्ञान, प्रतिभा बिलखाये निराधार,
शीतल मलयानिल छल में फँस अंगारा भी बन जाता है,
सत्ता के हाथों बिका ज्ञान हत्यारा भी बन जाता है,
जब पाप रोटियाँ दे दे कर प्रतिभा को दास बना लेता,
शस्त्रों के बल से मन चाहा अपना इतिहास बना लेता ;
जड़ता से पूँजी पाने को चेतन बिक जाया करते हैं,
सुख इन्द्र–धनुष पा जाने को सावन बिक जाया करते हैं ;
तब ज्ञान नहीं चिन्ता करता किसका दर्पण टूटा होगा,
किसका सिन्दूर पुँछा होगा किसका जीवन टूटा होगा,
तब ज्ञान उतारू हो जाता शैशव–हत्या करवाने को
रचता रहता है चक्रव्यूह कल्पित ऊँचाई पाने को
तब व्यूह तोड़ने आ जाता है तरुणाई का स्वाभिमान
कर महाक्रोध की आँधी से जीवन का वन कम्पायमान
जब व्यूह तोड़ने वाले हैं कैसे निकलेंगे क्या जानें
तम का षड्यंत्र विफल करके किस भाँति जलेंगे क्या जानें
जवानी की किरण है मृत्यु को ललकारने वाली,
प्रलय को डाँटकर विध्वंस को संहारने वाली ;
तिमिर के वक्ष को जो तोड़ करके जगमगाती है,
नये इतिहास के सिर रक्त का कुंकुम लगाती है।

* * *

जवानी आग है, जिसको अँधेरे कब बुझा पाये,
जवानी ज्योति है जिसको नहीं पापी मिटा पाये ;
रचाये व्यूह कोई पर बुरा परिणाम होता है,
जवानी प्राण देती विश्वभर में नाम होता है ;
जवानी जो अनय की शृंखला को तोड़ देती है,
स्वयं बलिदान होकर काल का रथ मोड़ देती है।
यौवन को धूल बनाने को बनते आये हैं चक्रव्यूह,
धरती पर न्याय जलाने को बनते आये हैं चक्रव्यूह।
जब समाज के वृद्ध गृद्ध से देखा करते
तरुणाई का वन्दन होता,
पुष्प चढ़ा अभिनन्दन होता ;
छोटी उमर बहुत दीपक की,
पर मठ में आराधन होता।
बड़े कुटिल मस्तिष्क भावना की जय देख जले जाते हैं,
करते तब षड्यंत्र घृणा से अपने हाथ मले जाते हैं।
जिनका खाते अन्न उन्हें अपनी योग्यता दिखाने को,
आदर्शों की चिता भस्म पर सुखका महल उठाने को।
चक्रव्यूह की रचना करते पुण्यालोक मिटाने को,
नरता का सिंदूर पोंछ कर खिलते फूल मिटाने को।
चक्रव्यूह, सत्ता के विकृत मस्तिष्कों का अन्धकार है,
चक्रव्यूह भावुकता का घर राख बनाता अनाचार है,
चक्रव्यूह संगठित पापियों के मन की काली पुकार है,
चक्रव्यूह मधु–ऋतु के पुष्पों पर पतझारों का प्रहार है।
चक्रव्यूह, भीगती चेतना के विनाश का आयोजन है ;
दानवता की दम्भ–वेदि पर युवा रक्त का नव तर्पण है।।

❋ ❋ ❋

चेतना न ज्वाला जला सकी, आँधी भी चाट नहीं पायी
लोहे की पैनी तलवारें भी जिसको काट नहीं पायीं
वह है उद्वेलित मुक्त पवन, उस पर तलवार चलाना क्या ?
वह बहते जल की मुक्तधार उस पर अंगार गिराना क्या ?
चेतना अबुझ ज्वाला जिसको जगती के मेघ बुझा न सके,
मिट–मिट कर बनने वालों को क्रूरों के हाथ मिटा न सके।
अन्यायों में आदर्शों की साधना नहीं मिट पायेगी,
पापी कितने ही व्यूह रचें चेतना नहीं मिट पायेगी।
रवि का जलता दर्पण थामे, नाचती धरा ओढ़े अम्बर,
मिट्टी के चरणों में बाँधे है जन्म–मरण के दो नूपुर,
मरने–मिटने की चिन्ता क्या, कम्पित न किया भूचालों ने,
संसार बनाया है सुन्दर बन–बनकर मिटने वालों ने।
है मृत्यु घूमती कुलटा–सी अरमान निकाल नहीं पायी।
जीवन को अब तक पकड़ न पायी, भाँवर डाल नहीं पायी।।

जब कौरव दल अन्यायों का अति दुर्गम व्यूह रचाता है,
जब धर्मराज हो क्लीव शान्ति के बुझे गीत दोहराता है,
पीड़ित समुदाय दुखी हो हो जब अविरल अश्रु बहाता है,
तब यौवन का प्रतिशोध व्यूह के भेदन को आ जाता है।
वृद्धता सदा दासत्व पाश को कह देती विधि का विधान,
पर विधि की रेखाओं को भी धोता यौवन का स्वाभिमान।
बढ़ता यौवन का स्वाभिमान
देखता सामने व्यूह पाप का रचा हुआ
पहरा देती है घृणा, दम्भ का खड्ग लिये,
विष–कन्या ईर्ष्या घूम रही लपटें लेकर,
अधरों पर मीठे बोल, हृदय में हत्या की अभिलाषायें,
हैं लगे कपट के वज्रद्वार, मुद्रित कपाट
जिन पर चढ़कर गर्जन करता है अहंकार
लपटें धधकाता घूमा करता सर्वनाश
चाहता सुलग जाये निर्माणों की गाथा
चाहता दुष्ट, विधवा हो जाये पुण्य–प्रभा
लेकिन यौवन का रणोद्घोष, चेतनता का उद्दाम रोष,
इन सब को कुचल बढ़ा जाता दैवी ममता का पुण्य–कोष।
अंगारों सा जलता यौवन, आँधी बन जाती साँस–साँस
उदयाचल–सा आलोकित होता है मानस का महाकाश।
वज्रों की शक्ति हिलोरें लेती है यौवन की बाहों में
फटते अँधियारों के पहाड़ आपाते कभी न राहों में
अभिमन्यु मरा यह बात झूठ,
वाणी का छल है, विडम्बना,
वह बलिदानों की परम्परा को सौंप गया शोणित अपना,
अन्याय पाप को राख बनाने जो धधकी,
वह नव–यौवन की जलती ज्वाला देख चुकी ;
भागती हुई सदियाँ पीछे मुड़–मुड़ करके,
तम की सूली पर टँगा उजाला देख चुकी।
सदियों ने देखा बहुत यहाँ, अन्याय, पाप, शोषण, दोहन,
अब होगा नूतन अरुणोदय, मानवता का होगा वन्दन,
दुःशासन के हाथों न कहीं पर चीर उतारे जायेंगे,
लाक्षागृह कहीं नहीं होंगे, अभिमन्यु न मारे जायेंगे।
छल करके विष देने वाले पातकी अनार्य नहीं होंगे,
पापों का चक्रव्यूह रचने वाले आचार्य नहीं होंगे।
सिंहासन के हाथों बिकता अन्यायी ज्ञान नहीं होगा,
जब अँधियारों के हाथों से रवि का बलिदान नहीं होगा।
राहों में कलियाँ बिखराओ इतिहास नया आने को है,
धरती ने शीश उठाया है, आकाश नया आने को है।।

—महाकवि निलयम्, 'विकल' निवास,
मोहमदजयी, शाहजहाँपुर–२४२००१

व्यंग्य

निन्दक नियरे राखिये...

- रामभवन सिंह ठाकुर

संसार में जितने भी रस हैं, उनमें निन्दा रस का एक अलग ही अनूठा स्थान है। यह अवर्णनीय, अनिर्वचनीय, अनुपम, अलौकिक, सर्वोत्तम, अद्भुत, महारस है। इसे रसराज की संज्ञा दी जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस जगत् में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने इसका रसास्वादन न किया हो। सभी ने किसी न किसी रूप में, कभी न कभी, अवश्य ही इसका स्वाद चखा है; आनन्द लिया है। इस रस के समक्ष साहित्य जगत् के नौ रस एवं प्रकृति के सभी रस, जड़, पात, छाल, फूल, फल आदि रस भी फीके पड़ जाते हैं, निन्दा-रस जैसा कोई रस नहीं है।

'निन्दा रस सम रस, नहिं जग माहिं।
खोजत फिरें रसिक जन, जहँ-जहँ जाहिं।।'

निन्दा रस में निमग्न लोग ही इसकी उपयोगिता एवं विशेषता से परिचित रहते हैं। विशेषज्ञ लोग तो जिसका रस निकालते हैं, उसे पता ही नहीं लगने देते और यदि देर-सबेर उसे पता भी लगता है, तो बहुत देर हो चुकी होती है। आमना-सामना होने पर वे बिल्कुल ही मुकर जाते हैं, कभी-कभार साक्ष्य होने पर ही स्वीकारते हैं।

निन्दा रसिक, मिलनसार, मृदुभाषी, वाक्पटु एवं तात्कालिक सूझ-बूझ के धनी होते हैं। वे अनजान, अपरिचित लोगों से भी अल्पावधि में ही मेज-जोल बढ़ाकर घुल-मिल जाते हैं एवं उनके मन में छा जाते हैं, उनके हृदय में अपनी विशिष्ट छवि अंकित कर, फिर उचित अवसर पाकर उनके ही रिश्तेदारों, सगे-सम्बन्धियों, सहकर्मियों, परिवारजनों, पड़ोसियों, समाजवालों आदि की बुराई नमक-मिर्च-मसाला लगाकर, इस ढंग से प्रारम्भ करते हैं कि उन्हें सत्यता का अहसास होने लगता है एवं ऐसा लगने लगता है कि इनसे अच्छा हितैषी दुनिया में हमारा कोई नहीं है और जब उसकी बातों का सामने वाले पर अनुकूल असर होने लगता है, तब वह अपनी सफलता पर फूला नहीं समाता है। उसे अतीव आनन्दानुभूति होती है, ब्रह्मानन्द सहोदर-सी सुखानुभूति होती है।

रामराज्याभिषेक का समाचार सुनकर मन्थरा ने कैकेयी को जिस प्रकार भरमाया था एवं राजा दशरथ तथा माता कौसल्या की निन्दा करके निन्दारस का रसास्वादन कियां था, वह तो जगत् प्रसिद्ध है। यह सब उसकी मृदुभाषिता, वाक्पटुता एवं तात्कालिक सूझ-बूझ का ही परिणाम था। उसकी मधुरस घोलती वाणी ऐसी ही थी, जैसे शब्द में विष मिला हो और यही निन्दा-रसिकों का सर्वोत्तम गुण है।

'सुनत बात मृदु अन्त कठोरी।
देति मनहुँ मधु माहुर घोरी।।'

आज भी कई मन्थरा, शकुनी हैं, जो एक-दूसरे की निन्दा करते अघाते नहीं हैं एवं चाहे जहाँ बुराई करते, फूट के बीज बोते फिरते हैं, वे बसी-बसाई, खुशहाल गृहस्थियों में विष घोल रहे हैं, परिवारों में फूट डाल रहे हैं, कार्यालयों में वैमनस्य पैदा कर रहे हैं। हमारे पड़ोस में ऐसी ही एक सम्पन्न परिवार की सदस्या हैं, वे स्वभाव से ही निन्दा-रसपान की बड़ी शौकीन हैं। वे पड़ोसियों के सगे-सम्बन्धियों के यहाँ स्वयं के व्यय से मौका देखकर चाहे जब पहुँच जाती हैं और उनसे अपनत्व स्थापित कर सम्बन्धी पड़ोसी की चतुराई से, धीरे-धीरे से बुराई करना प्रारम्भ कर देती हैं एवं वहाँ से आकर उनकी बुराई पड़ोसी से करती रहती हैं तथा दोनों ओर से आदर-सत्कार पाती हैं। वे बहू-बेटियों से भी उनकी सास, ननद, देवरानी, जेठानी की और उनसे उनकी ही बहू-बेटियों की निन्दा करती रहती हैं। उनकी इस रसिकता के परिणाम-स्वरूप कुछ युवक-युवतियों की सगाई, सम्बन्ध टूट गये हैं एवं एक-दो परिवार में कैकेयी संवाद भी दृश्यमान हो चुका है। कहीं-कहीं महाभारत होते-होते भी बचा है। जब भेद खुला, तो उनसे सभी ने बोलचाल बन्द कर दी तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों ने भी धिक्कारा।

निन्दा करनेवाला और सुननेवाला दोनों समान रूप से इसके सहभागी होते हैं, क्योंकि रसास्वादन तो दोनों ही करते हैं। निन्दक दूसरों के दोष ही दोष देखता है, उसे अपने दोष कभी दिखाई नहीं देते।

"दोष पराये देखकर, चलै हसंत–हसंत।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त।।"

कलिकाल की भी ऐसी महिमा है कि झूठ बोलने वाला, मसखरी करने वाला, चाटुकार, दूसरों के दोष बखान करने वाला ही सबसे प्रिय एवं हितैषी लगता है और वही गुणवान् माना जाता है। ऐसे व्यक्ति परिवार में, पास–पड़ोस में, कार्यालयों आदि में यानि सभी जगह किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान रहते हैं एवं अपने आपको सबसे अधिक होशियार, चालाक समझते हैं।

"जो कह झूठ, मसखरी नाना।
कलियुग सोइ, गुनवन्त बखाना।।"

निन्दा–रस–पान भी एक प्रकार का व्यसन है, जिसने भी एक बार इसका पान किया, फिर वह इसका आदी हो ही गया है एवं शनैः शनैः प्रवीणता भी हासिल की है। दूसरों का यश, कीर्त्ति, सम्पत्ति, वैभव, ख्याति आदि देखकर ईर्ष्यावश इसकी उत्पत्ति होती है। **"देखि न सकहिं पराइ विभूती"** वाली कहावत को चरितार्थ करने वाली प्रवृत्ति के लोग विशेष रसिक होते हैं एवं वे ही इसमें संलग्न रहते हैं। कुछ लोग जन्मजात और कुछ सत्संग के प्रभाव से रसिक बन जाते हैं। ऐसे लोग यदि कुलीन, उच्च घराने के, पढ़े–लिखे ख़ूबसूरत हों और वे भी इस रस से परिपूर्ण रहते हैं, तो वे ऐसे शोभायमान होते हैं– जैसे स्वर्णघट में विषरस भरा हो।

"मन मलीन, तन सुन्दर ऐसे।
विष रस भरा, कनक घट जैसे।"

शिक्षित लोग आसवन-विधि से विशुद्ध निन्दा रस–पान का आनन्द लेते हैं। वे लोग बड़े चालाक एवं छिपे–रुस्तम होते हैं, इनका पता लगाना मुश्किल होता है। ये आधुनिक संचार माध्यमों, फोन या पत्र के माध्यम से अपना शौक पूरा करते हैं। हमारे एक ऐसे ही मित्र का पता चला है, जो फोन एवं पत्रों के द्वारा अच्छे–अच्छे परिवारों में फूट डालने में सफल हुए हैं, कुछ के तो सम्बन्ध ही खराब हो गये। कुछ दिन पूर्व ही उनकी लिखावट की शिनाख्त पर वे पहिचाने गये एवं पंचायत बैठाकर उन्हें दण्डित किया गया एवं माफी मँगाई गई।

निन्दा रसिक हमारे ही साथ रात–दिन उठते–बैठते, कार्य करते हैं, परन्तु हम उन्हें ऐसे ही नहीं जान पाते हैं जैसे कि दाहिने हाथ को भी बाँये हाथ की खबर नहीं होती है। ये लोग जब हाथ झुला–झुलाकर, आँखें मटका–मटका कर अपनी निन्दा–रस सनी जिह्वा कुशलतापूर्वक संचालित करते हैं, तब तो अच्छे–अच्छे भी रसपान किये बिना नहीं रहते हैं। कभी–कभी नारद जी भी जन कल्याण की भावना से इसका रसास्वादन करते–कराते, आनन्द उठाते, रस–मग्न हो तीनों लोक में निष्कंटक भ्रमण करते हैं।

प्रिय भाइयो, बहिनो! निन्दारस जितना आनन्ददायी, सुखकारी है, उतना ही अहितकारी तथा अपयशकारी भी है। पर–निन्दा के समान संसार में कोई पाप नहीं है। जो दूसरों की निन्दा में संलग्न रहते हैं, वे इस जन्म में भी धिक्कारे जाते हैं, घृणा के पात्र बनते हैं एवं अगले जन्म में चमगादड़ की योनि पाते हैं।

"सब कै निन्दा, जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं।।"

दूसरों की निन्दा करना सूर्य पर धूल उड़ाने के सदृश है। कबीरदास जी के अनुसार यदि हम दुनिया में बुरा आदमी खोजें, तो कोई भी नहीं मिलेगा और यदि हम अपना ही आत्मावलोकन करें, तो पायेंगे कि हमसे ज्यादा बुरा और कोई नहीं है। हम दूसरों की बुराई करके सुख प्राप्त करना चाहें, तो यह वैसे ही असम्भव है जैसे कि बबूल का पेड़ लगाकर आम्र-फल प्राप्ति की कामना करना।

अतः निन्दक–रसिकों से निवेदन है कि वे निन्दा-रस का सावधानी–पूर्वक पान करें एवं दूसरों को भी करायें, परन्तु मन्थरा जैसी घर फोरू न बनें और शकुनी की तरह महाभारत न रचाएँ, बल्कि किसी की बुराई करना हो, तो उसके समक्ष ही करें, ऐसा करने से उनको सभी अपने पास रखना चाहेंगे, क्योंकि इससे उनके स्वभाव को बिना साबुन पानी के अपने मुख से ही निर्मल कर देंगे।

"निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करें सुभाय।।"

★

– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद वार्ड
सिवनी (म०प्र०)–४८०६६१

भइया की चिट्ठी

प्यारे भइया, बहिनो,

जय श्री राम।

इस बार तो दशहरा और दीवाली दोनों अक्टूबर में ही पड़ गये। है न दोहरी खुशी की बात दस दिन की रामलीला, रावण–वध और राम की विजय की खुशी में दीवाली। भारत में तो मई में ही पटाखे छूट गये थे। वह सरकारी दीवाली थी। पूरा विश्व चौंक गया था भारत के इन पटाखों की गूँज से।

आप सब क्या करने वाले हैं। पटाखे तो दगेंगे ही, फुलझड़ियाँ भी छूटेंगी। पर जरा बच के, कम से कम और दूर से। मिठाई भी तो आयेगी! तो क्या अकेले ही खा जायेंगे? अपने इस भइया को नहीं पूछेंगे! कैसे भेजेंगे हम तक मिठाई। यदि आप मेरा सुझाव मान लें तो वह मिठाई मुझ तक पहुँच जायेगी। आपके पास–पड़ोस या मुहल्ले में कुछ ऐसे परिवार भी होंगे जो बहुत गरीब हैं वे अपने बच्चों को न तो पटाखे दे सकेंगे और न मिठाई। वे छोटे–छोटे भइया–बहिन मन मार कर रह जायेंगे। यदि आप उनमें से एक दो बच्चों को अपने घर बुलाकर अपनी मिठाई का कुछ हिस्सा उनको खिला दें, तो वह मिठाई निश्चित ही हम तक पहुँच जायेगी।

आशा है अपने भइया के लिए आप ऐसा जरूर करेंगे। आप यदि ऐसा करें तो हमें पत्र अवश्य लिखें। उनके दरवाजे पर अपनी ओर से जलते हुए दो दीप अवश्य रख दें। उनके घर भी उजाला हो जायेगा और तभी सार्थक होगा– 'दीप–से–दीप जले। हर घर को ज्योति मिले।'

विजयादशमी और दीपावली की मंगल–कामनाओं सहित।

आपका

भइया

दीप

– दिनेश गुरुदेव

हम दीप नये जलने वाले,
जल कर नव ज्योति जगा देंगे।
हम सरस हृदय कोमल मन के,
रूठे जन मन को मना लेंगे।

तूफानों ने हमको घेरा
या घेरा हो घन गर्जन ने
हम मलय पवन बहने वाले
झंझावातों में भी जलकर
कोना–कोना चमका देंगे।

देखा है हमने इस जग में,
जब सूर्य–सान्ध्य छिप जाता है,
अपनी देह जला तिल–तिल
हम तम को दूर भगा देंगे।

– बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

हम

– राजबहादुर सिंह 'राजन'

हिल मिल रहते हम।
नहीं किसी से कम।।

हम बच्चे हैं धुन के पक्के,
देते नहीं किसी को धक्के।
टाँग अड़ाने वालों के हम,
छुड़ा दिया करते हैं छक्के।।
हिम्मत वाले हम। नहीं किसी से कम।।

हम हैं वीर सिपाही जैसे,
डरते नहीं कभी हम भय से।
मान बड़ों का करते वैसे,
किन्तु जुझारू हैं निर्दय से।
बम भोले हैं हम। नहीं किसी से कम।।

ग्राम–जगदीशपुर, पो०–मिर्जापुर ऐहारी, रायबरेली

एक कुशल शिल्पी पक्षी : बया

घर बनाना कोई इससे सीखे

– अभिनन्दन शुक्ल

बया एक कुशल शिल्पी पक्षी है। यह भारत के अधिकांश भागों में पाया जाता है। इसका रंग भूरा मटमैला होता है। बया के शरीर के ऊपरी भाग पर गहरी धारियाँ होती हैं एवं नीचे का भाग सफेदी लिए हुए होता है। दूर से देखने पर यह गौरैया जैसा लगता है।

बया अपने सुन्दर घोंसले के कारण सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। इसका घोंसला अत्यन्त आकर्षक और मजबूत होता है। बया के घोंसले के सम्बन्ध में सर्वाधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि इसका निर्माण केवल नर बया करता है और वह भी मादा बया को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए।

सामान्यतया वर्षा ऋतु आरम्भ होने के कुछ समय पूर्व किसी बबूल, ताड़ या सामान्य ऊँचाई के काँटेदार पेड़ की डाल पर नर बया अपना घोंसला बनाता है। घोंसले में दो भाग होते हैं। एक अण्डे देने के लिए और दूसरा रहने के लिए। कभी–कभी नर बया घोंसले के निकट एक झूला भी बनाता है। इस मध्य मादा बया इधर–उधर घूमती रहती है। जब घोंसला बन कर तैयार हो जाता है तो मादा बया विभिन्न नर बयाओं द्वारा बनाये गये घोंसलों में जाती है, उनका अवलोकन करती है और जो घोंसला उसे पसन्द आ जाता है, उसमें रहने लगती है। मादा बया के आते ही नर बया यह समझ जाता है कि उसके घोंसले को एक मादा बया ने पसन्द कर लिया है। अब वे दोनों पति–पत्नी की तरह रहने लगते हैं। मादा बया घोंसले की सफाई करती है तथा दाना चुगने नर के साथ खेतों–खलिहानों में जाती है। कुछ समय बाद मादा बया अण्डे देती है और उन्हें सेती है।

अब नर अपने पूर्व घोंसले को छोड़ देता है और नया घर बसाता है। पहले की तरह इसमें भी शीघ्र ही

नवोदित स्वर

सच्ची लगन जीवन को ऊँचाई तक ले जाती है और जब यह लगन किसी कोमल मस्तिष्क में आ जाये तो निश्चय ही वह प्रगति के सोपान गढ़ता है। ऐसे ही प्रगति के सोपान गढ़ने की दिशा में अग्रसर भैया अभिनन्दन शुक्ल अंग्रेजी माध्यम से पढ़ते हुए भी हिन्दी के प्रति पूर्ण समर्पित हैं 'हाली–क्रॉस कॉनवेण्ट स्कूल–दतिया' में कक्षा १२ में पढ़ने वाला यह छात्र बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा है। पशु–पक्षियों की बोली संग्रह करने की उसकी प्रवृत्ति है और उन्हें अपने कैमरे में कैद करने की ललक भी। इसके लिए कैमरा और टेप रिकार्डर उसके साथ ही रहते हैं।

जीव–जन्तुओं का अध्ययन उसकी प्रवृत्ति बन गयी है। अपनी हर कक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण होने वाले इस छात्र ने जहाँ अनेक प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त की है वहीं वह अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी हुआ है।

ोई न कोई मादा बया आकर रहने लगती है। नर या उसके साथ कुछ समय रहता है और जैसे ही दा बया अण्डे देती है, वह उसे छोड़ देता है। इस कार एक मौसम में वह तीन–चार घोंसले बनाता है।

बया ने इतना सुन्दर घोंसला बनाना किस तरह खा? इस सम्बन्ध में पक्षी वैज्ञानिक अभी तक कोई नकारी प्राप्त नहीं कर पाये हैं। उनका यह मत है नर बया सुन्दर घोंसले बनाने की कला कहीं हर से नहीं सीखता, बल्कि यह उसकी मूल प्रवृत्ति जो उसे वंशानुक्रमण से प्राप्त होती है।

बया एक कुशल शिल्पी ही नहीं है, बल्कि एक द्धिमान पक्षी है। इसे मैना तथा तोते के समान बहुत छ सिखाया जा सकता है। बहुत से लोग बया को ल कर उसे तरह–तरह के अनोखे करतब सिखाते । प्रशिक्षित बया को दिखाकर यदि एक छोटा–सा छल्ला ऊपर की ओर उछाला जाये तो वह उसे जमीन पर गिरने के पहले ही बड़ी फुर्ती से अपने चोंच में पकड़ लेगी।

बया का घोंसला अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक होता है। शहर के लोग इससे अपने बैठक कक्ष को सजाते हैं, किन्तु भारत की अनेक जातियों एवं जनजातियों में इसे अत्यन्त अशुभ समझा जाता है तथा घर के भीतर नहीं रखा जाता है। उनका विश्वास है कि, बया का घोंसला घर में रखने पर पति–पत्नी में झगड़ा होता है और यदि इसे अधिक दिनों तक घर के भीतर रखा जाये तो पति–पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद भी हो सकता है। शायद इस विश्वास का कारण नर बया के साथ मादा बया का बदलना हो सकता है।

– ३, गोविन्द गंज, दतिया–४७५६६१ (म०प्र०)

❐

अभिनन्दन

योग्य पिता की योग्य न्तान है अभिनन्दन। इसके ता प्रो० परशुराम शुक्ल भी लचर, थलचर, नभचर एवं मयचरों पर एक वृहद विश्वकोष तैयार करने में हर्निश लगे हुए हैं।

दर्जनों पत्र–पत्रिकाओं में पशु–पक्षियों पर उसके लेख निरन्तर प्रकाशित होते रहते हैं। अभिनन्दन त्र लेखक ही नहीं है वह एक अच्छा कलाकार भी । कई कला प्रतियोगिताओं में भी वह पुरस्कृत आ है। अपने लेखों के लिए आवश्यक रेखांकन ह स्वयं करता है। इतनी कम आयु में ही उसकी स्तक– 'जीव–जन्तुओं का विचित्र संसार' को विवेक काशन दिल्ली ने छापा है। अभिनन्दन की राजनीति में भी विशेष रुचि है। पढ़– लिखकर एक सफल जनेता बनने की महत्त्वाकांक्षा उसमें विद्यमान है। हाँ 'बया' पक्षी पर उसका आलेख प्रस्तुत है। अभिनन्दन का पता लेख के साथ है।

चकरी

–रामसागर 'सदन'

दीवाली में आती चकरी,
नाच–नाच इतराती चकरी।

मुँह से आग उगलती, लेकिन,
हमको नहीं डराती चकरी।

झिलमिल दीपों की पाँतों पर,
गुस्सा नहीं दिखाती चकरी।

लाख उसे कहते रुकने को,
मगर नहीं रुक पाती चकरी।

सबके घर–आँगन में खुलकर,
अपना मान बढ़ाती चकरी।

दीवाली के बाद किसी को,
बिरले ही दिख पाती चकरी।

– पोस्ट–बाघी ताजपुर
जिला–समस्तीपुर (बिहार)–८४८१३०

बुद्धि लगाओ

भइया/बहिनो, यह जो ६ बिन्दु समान दूरी पर बने हुए हैं इनको ४ सीधी रेखाओं द्वारा बिना कलम उठाए इस प्रकार स्पर्श करो कि कोई बिन्दु छूटे नहीं। इसे १ मिनट में हल करने वाला बुद्धिमान, ५ मिनट लगाने वाला सज्ञान, इससे अधिक समय लगाने वाला अल्पज्ञान कहलायेगा। इस हल न कर पाने वाला अपने लिए विशेषण स्वयं चुने।

– वेदिका

सितम्बर-९८ 'वर्ग पहेली' के उत्तर

१.	छत्रपति शिवाजी –	१९–२–१६३०
२.	दयानन्द सरस्वती –	१२–२–१८२५
३.	स्वामी विवेकानन्द –	१२–१–१८६३
४.	लाला लाजपतराय –	२८–१–१८६५
५.	सुभाष चन्द्र बोस –	२३–१–१८९७
६.	पं० दीनदयाल उपाध्याय–	२५–९–१९१६

अगस्त-९८ 'वाक्य बनाओ' के उत्तर

१. तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा।

– सुभाष चन्द्र बोस

२. स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।

– लोकमान्य तिलक

३. हम आजाद रहे हैं, आजाद रहेंगे।

– चन्द्रशेखर आजाद

४. मुझे पड़ी एक–एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगी।

– लाला लाजपत राय

५. गर्व से कहो हम हिन्दू हैं।

– स्वामी विवेकानन्द

६. जय जवान जय किसान।

– लाल बहादुर शास्त्री

७. मन चंगा तो कठौती में गंगा।

– सन्त रविदास

○ साहू

हँसना मना है

छात्र (अध्यापक से): गुरुजी मुझे जल्दी से सूक्ष्मदर्शी दीजिए।

अध्यापक: सूक्ष्मदर्शी का क्या करोगे?

छात्र: उत्तीर्ण होने वालों की सूची में मेरा नाम नहीं दिखाई दे रहा है।

– प्रस्तुति–गौरव

बाल कथा

ऐसे सीख मिली

— चित्रेश

संजय जैसे ही पार्क में पहुँचा, क्षण भर के लिए दीपक, नीलू, पप्पू और विनय की बात–चीत बन्द हो गयी। इन लोगों ने उसे घूर कर देखा, फिर अगले पल आपस में एक–दूसरे को देखने लगे। दीपक ने सिर झटकते हुए रुकी बात फिर शुरू की– "छोड़ो इस मनहूस को, आओ हम अपना काम करें। वरना कलुआ भाग गया तो सारा मजा किरकिरा हो जायेगा।"

दीपक की बात सुनकर विनय, पप्पू और नीलू अपनी कारगुजारी में व्यस्त हो गये। संजय खिसियाया–सा जाकर जामुन के पेड़ के नीचे वाली बेंच पर बैठ गया। दीपक का उसके प्रति ऐसा बुरा व्यवहार कोई नई बात न थी। असल में दीपक, पप्पू, नीलू और विनय की यह "टोली" एक–दम चाण्डाल–चौकड़ी थी। घर से पैसे चुराकर फिल्में देखना, स्कूल में अनुपस्थित रहना और तरह–तरह की शरारतें करना इस चौकड़ी का मुख्य काम था। संजय अभी नया–नया इन लोगों के मोहल्ले में आया था। इसीलिए इनकी आदतों से ठीक से परिचित भी नहीं हो पाया था। उसने दो–तीन बार इन लोगों को गलत कामों से रोका थ, फलस्वरूप चौकड़ी के नेता दीपक की जली–कटी बातें उसे सुनने को मिली थीं।

मगर परसों तो हद हो गई थी। स्कूल में दीवाली की चार दिनों की छुट्टी हुई थी। चाण्डाल–चौकड़ी खुशी–खुशी घर लौट रही थी। संजय भी साथ ही था। कुछ दूर आने पर आम के पेड़ के नीचे बैठे एक भूरे कुत्ते को देखकर दीपक रुक गया। आँख नचाता हुआ बोला– "चलो, इसी समय हम मजेदार ढंग से दीवाली का उद्घाटन कर डालें।"

"कैसे, हमें भी बताओ ?" पप्पू ने पूछा।

"इस भूरे लाल को देख रहे हो।" उसका संकेत कुत्ते की तरफ था। "इसकी पूँछ से छोटे पटाखों का एक गुच्छा बाँधकर आग छुआ देते हैं। बस मजा आ जायेगा।"

"वाह, भाई दीपक, मान गये तुम्हारी अकल को ! वाकई सुन्दर योजना है।" विनय खुशी से उछल पड़ा।

नीलू भी उत्साहित था। बोला– "आज दोपहर में मैंने खाना भी नहीं खाया था। सारा खाना टिफिन–बॉक्स में है। इसे खिलाकर मैं भूरे लाल से दोस्ती कर लेता हूँ, इससे पूँछ में पटाखे बाँधने में आसानी होगी।"

यह सब तय हुआ, तो पप्पू पटाखे का गुच्छा और माचिस लाने के लिए चन्दा एकत्र करने लगा। सबने दिया, लेकिन संजय ने साफ मनाकर दिया– "मुझे ऐसे बेकार के कामों में नहीं शामिल होना है।"

"इसमें तुम्हें मजा नहीं आयेगा क्या ? पप्पू ने पूछा।"

"बिल्कुल नहीं।" संजय ने जवाब दिया– "भला किसी कुत्ते को परेशान करके कौन–सा मजा मिल सकता है ?"

"अच्छा तो तुम इस कुत्ते के लिए परेशान हो।" पप्पू ने एक क्षण के लिए बात रोककर अपने साथियों को देखा, फिर मुस्कराते हुए कहा– "संजय जी ! आपकी इस कुत्ते से कोई रिश्तेदारी है क्या ?"

दीपक, विनय और नीलू खीं...खीं...कर हँस पड़े। संजय झेंप गया। बोला– "रिश्तेदारी नहीं तो कोई दुश्मनी भी नहीं है।"

"छोड़ पप्पू, उस मनहूस को। जितना पैसा कम हो, मुझसे ले लो और जल्दी से पटाखे और माचिस

ले आओ।" दीपक ने तैश में आकर कहा।

इसके बाद चाण्डाल–चौकड़ी अपनी कार–गुजारियों में व्यस्त हो गयी। संजय कुछ दूर पर खड़ा सब देखता रहा। नीलू ने टिफिन–बॉक्स से एक पराठा निकाला और कुत्ते के सामने बैठकर एक–एक टुकड़ा उसके आगे फेंकने लगा। कुत्ता खुशी से पूँछ हिला–हिलाकर खाने लगा, बीच–बीच में वह प्यार से टुकड़े फेंकते नीलू को भी देख लेता था।

एक पराठा खत्म हुआ तो नीलू ने दूसरा निकाल लिया। अब विनय आकर कुत्ते के पास बैठ गया और उसकी पीठ सहलाने लगा। स्वादिष्ट भोजन और बच्चों का प्यार पाकर वह खुशी से कूँ ...कूँ ... करने लगा। उसके कान चिपटे से होकर पीठ की तरफ झुक गये और वह शरीर ढीला करके लेट–सा गया। इसी बीच पप्पू पटाखे लेकर आ गया। दीपक पटाखे लेकर पूँछ के पास पहुँचा। धीरे से उसने पटाखे का गुच्छा पूँछ से बाँधा और माचिस निकाल ली।

नीलू ने कुत्ते के सामने पूरा पराठा रख दिया और विनय के साथ थोड़ी दूर जाकर खड़ा हो गया। दीपक ने झट माचिस जलाकर पटाखे की बत्ती से छुआ दी, फिर अगले क्षण दोस्तों के पास आ गया। कुत्ता अभी पराठे से नोंचकर एक टुकड़ा ही खा पाया था कि पूँछ से बँधे पटाखे दगने लगे। वह चौंककर उठ खड़ा हुआ। फटाक् ...फटाक् ... की आवाज से डरकर बेतहाशा भागा। कुछ दूर जाकर एक बिजली के खम्भे से टकराया और चोट खाकर गिर पड़ा। पटाखे अब तक दग चुके थे। लेकिन पटाखों की सुलगती खोल से पूँछ जलने लगी थी। कुत्ते ने मुँह से पटाखों की खोल नोच डाली और जली पूँछ चाटता–लँगड़ाता हुआ चला गया। चाण्डाल–चौकड़ी को इस खेल में बड़ा मजा आया। वे रास्ते भर संजय को चिढ़ाते हुए घर पहुँचे थे।

आज जब संजय उद्यान में आया तो वे फिर एक कुत्ते की पूँछ से पटाखे बाँधने की तैयारी कर रहे थे। आज उन्हें काले रंग का एक बड़ा–सा कुत्ता मिला था, जिसे उन लोगों ने कलुआ नाम दिया था।

बेंच पर बैठे संजय ने देखा, दीपक ने अपने दोस्तों के साथ झटपट सारी व्यवस्था पूरी कर ली। नीलू कुत्ते के सामने आया, "कलुआ–कलुआ" कहकर बिस्कुट फेंका। कुत्ता उसे चबा गया। लेकिन न उसने पूँछ हिलाई और न ही उसके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव आये। नीलू ने दूसरा बिस्कुट फेंका। इसे भी गटक कर वह अकड़ खाँ बना बैठा रहा।

"अरे, यह तो बड़ा अड़ियल है!" नीलू ने कहा।

दीपक ने समझाया– "बिस्कुट फेंकते जाओ! अभी अकड़ छू–मन्तर हो जायेगी।"

नीलू ने एक–एक करके तीन–चार बिस्कुट फेंके। पप्पू कुत्ते के पास पहुँचा और डरते–डरते पीठ पर हाथ रखा। कुत्ते ने चौंकर मुँह में बिस्कुट दबाये–दबाये लाल–लाल आँखों से पप्पू को घूर कर देखा, फिर करर–करर की आवाज के साथ बिस्कुट चबाने लगा। दीपक पटाखों का गुच्छा लेकर पूँछ के पास पहुँचा, लेकिन पूँछ पर हाथ लगाते ही कलुआ गुर्रा उठा। इसी समय नीलू ने उसके पास एक साथ कई बिस्कुट फेंके। वह सामान्य हो बिस्कुटों पर मुँह मारने लगा। दीपक के लिए इतना मौका काफी था।

उसने जल्दी से पटाखों का गुच्छा पूँछ से बाँध दिया। उसके इशारे पर बाकी बिस्कुट कलुआ के सामने फेंक, नीलू आगे से हट गया। पप्पू भी दूर जा खड़ा हुआ। दीपक ने माचिस जलाकर पटाखों की बत्ती से छुआ दिया।

अभी वह मुड़कर मित्रों के पास पहुँचने के लिए दौड़ लगाना ही चाहता था कि पटाखे दगने लगे। गुस्से से खौखियाकर कलुआ पलटा, सामने दीपक को पाकर उसके पैरों में काट लिया।

इस बीच पूँछ में बँधे पटाखे, फटाक्... पड़ाक् ....फट्...की आवाजों के साथ दगे जा रहे थे, जिससे कलुआ गुस्से से पागल–सा होकर दीपक पर पिल पड़ा। वह भयानक गुर्राहट के साथ उसे दाँतों और पंजों से उसे नोच–खसोट रहा था।

दीपक सहायता के लिए चिल्लाया। संजय ने

आस-पास देखा, जल्दी में उसे एक-डेढ़ मीटर लम्बा एक लकड़ी का टुकड़ा मिला। वह उसी को लेकर दौड़ पड़ा, लेकिन भगाते-भगाते कुत्ता दीपक को तीन-चार जगह काट चुका था। पेट, छाती और जाँघ पर पंजों से गहरी खरोंच भी आ गयी थी। वह जमीन पर पड़ा कराह रहा था और स्वयं चलकर घर पहुँचने की हालत में नहीं था।

संजय ने उसे घर पहुँचाने के लिए पार्क में नीलू, विनय और पप्पू की खोज की, पर वहाँ कोई न था। सभी डर के मारे नौ-दो ग्यारह हो चुके थे। वह दौड़कर रिक्शा ले आया और रिक्शेवाले की सहायता से उसे रिक्शे पर बैठाकर अस्पताल पहुँचाया और जल्दी से दीपक के पिता को यह समाचार दिया।

अगले दिन सबेरे, संजय हाल-चाल पूछने दीपक के घर पहुँचा। उसे देखते ही दीपक की नजरें झुक गयीं। आँखों से टप् ... टप् आँसू टपकने लगे। संजय ने देखा तो कहा- "दीपक भाई ! तुम रो रहे हो। कोई तकलीफ है क्या ?"

संजय की अपनत्व-भरी बात सुन, वह हिचक-हिचक कर रोने लगा। बड़ी मुश्किल से संजय ने उसे चुप कराया और पूछा- "आखिर बात क्या है, क्यों रो रहे हो ?"

दीपक ने आँखें पोछीं, फिर भर्राये गले से बोला- "संजय भाई ! मुझे क्षमा कर दो, मैं सदैव तुम्हारी नेक सलाह की खिल्ली उड़ाया करता था। कई बार बुरा-भला भी कह चुका हूँ। जबकि तुमने मेरे लिए ... और वे जिन्हें मैं मित्र मानता था मुझे मरने के लिए छोड़कर भाग गये। क्या यह दुःख की बात नहीं है ?"

"अरे दीपक ! यह भी कोई बात हुई।" संजय ने प्यार से समझाया- "सच कहा जाय तो यह खुशी की बात है कि तुम्हें अपनी भूल समझ में आ गयी है। पिछली बातों के लिए पछताना बेकार है। बस इतना याद रखो- अब कोई भूल न होने पाये।"

"इतनी बड़ी दुर्घटना झेलने और अब लगातार चौदह सुई लगवाते-लगवाते फिर कोई भूल न करने का सबक तो मिल ही जायेगा।" दीपक ने फीकी मुस्कान के साथ जवाब दिया।

❐

– पो० आ०-जासापारा, गोसाईगंज-२२८११६
सुलतानपुर, (उ०प्र०)

हम लायेंगे नूतन विहान

– महेशचन्द्र त्रिपाठी

सादगी-सफाई-सदाचार
सिद्धान्त हमारे बुनियादी।
हम प्रगतिशील, श्रमजीवी हम,
हैं चरण हमारे फौलादी।।

हम सत्पथ पर ही चलते हैं
हम नहीं किसी से खाते भय।
डरता है हमसे काल और
पथ रोक न पाती कभी प्रलय।।

हम सत्यव्रती, दृढ़संकल्पी
जग की आँखों के तारे हैं।
हम हँसकर प्राण लुटा देते
पर कभी न हिम्मत हारे हैं।।

हम निश्छल हैं, हम निर्मल हैं
सम्मान बड़ों का करते हम।
हम भेदभाव से बहुत दूर
सब पर है दृष्टि हमारी सम।।

हम हैं जग के भास्वर भविष्य
हम ही हैं आने वाले कल।
हम लायेंगे नूतन विहान
करके प्रत्येक समस्या हल।।

– सिधौंव, फतेहपुर – २१२६६३ (उ.प्र.)

देववाणी शिक्षण - १३

इस पाठ में आप निम्नलिखित शब्द ध्यान में रखिये–

धाविष्यति = (वह) दौड़ेगा
धाविष्यसि = (तू) दौड़ेगा
धाविष्यामि = (मैं) दौडूँगा
प्रापयिष्यति = (वह) पहुँचायेगा
प्रापयिष्यसि = (तू) पहुँचायेगा
प्रापयिष्यामि = (मैं) पहुँचाऊँगा
चलिस्यति = (वह) चलेगा
चलिष्यसि = (तू) चलेगा
चलिष्यामि = (मैं) चलूँगा
भविष्यति = (वह) होवेगा
भविष्यसि = (तू) होवेगा
भविष्यामि = (मैं) होऊँगा
पतिष्यति = (वह) गिरेगा
पतिष्यसि = (तू) गिरेगा
पतिष्यमि = (मैं) गिरूँगा

इनका उपयोग करके आप कई वाक्य बना सकते हैं–

१. अहं इदानीं धाविष्यामि।
२. किं त्वं न धाविष्यसि।
३. किं स मम पत्रं तं नरं प्रापयिष्यति ?
४. तत् कथ भविष्यति ?
५. स इदानीं तस्मिन् कूपे नैव पतिष्यति।
६. त्वं तं ग्रामं चलिष्यसि तर्हि अहं अपि चलिष्यामि।

इन्हीं के ही हिन्दी वाक्य देखिए–

१. मैं अब दौडूँगा।
२. तू क्यों नहीं दौड़ेगा ?
३. क्या वह मेरा पत्र उस मनुष्य को पहुँचायेगा ?
४. वह कैसे होगा ?
५. वह अब कुएँ में नहीं गिरेगा।
६. तू उस गाँव को जायेगा तो मैं भी चलूँगा।

अब निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिए–

मध्याह्न = दोपहर
दिवा = दिन में
रात्रौ = रात्रि में
प्रातः = सबेरे
सायं = शाम को
यथा = जैसा
तथा = वैसा
द्रुतं = शीघ्र

इन शब्दों का उपयोग करके अब वाक्य बनाइये–

१. स मध्याह्ने कुत्र गच्छति ?
२. यत्र रामः गच्छति तत्र एव स गच्छति।
३. त्वं रात्रौ कुत्र गमिष्यसि ?
४. अहं तव गृहं गमिष्यामि।
५. स सायं नैव गमिष्यति।
६. अह परमेश्वरं प्रातः स्मरामि।
७. त्वं मम गृहं सायं सत्वरं आगच्छ।
८. त्वं तत्र दिवा किं न गमिष्यसि ?
९. रामचन्द्रः रात्रौ दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं पठिष्यति।
१०. यथा स वदिष्यति तथा अहं अपि वदिष्यामि।
११. पश्य, कथं सः द्रुतं धावति।

इन्हीं के ही हिन्दी वाक्य देखिए–

१. वह दोपहर को कहाँ जाता है ?
२. जहाँ राम जाता है, वहाँ ही वह जाता है।
३. तू रात्रि में कहाँ जायेगा ?
४. मैं तेरे घर जाऊँगा।
५. वह शाम को नहीं जायेगा ?
६. मैं सबेरे ईश्वर का स्मरण करता हूँ।
७. तू मेरे घर शाम को जल्दी आ।
८. तू वहाँ दिन में क्यों नहीं जायेगा ?
९. रामचन्द्र रात्रि में दीपक के प्रकाश में पुस्तक पढ़ेगा।
१०. जैसा वह बोलेगा वैसा मैं भी बोलूँगा।
११. देख, कैसे वह शीघ्र दौडता है।

★

स्नेह का अर्थ समझायेंगे

– मदन देवड़ा

जब भी हम विद्यालय जायें
या अपने घर वापस आयें
भीड़–भाड़ में
बीच सड़क पर
दिख जाए यदि–
कोई अन्धा–लूला–लँगड़ा।
उसे राह दिखलायेंगे।

पढने–लिखने में
यदि कोई
सहपाठी !
कमजोर दिखे तो,
देकर उसका साथ
लक्ष्य तक–
हम उसको पहुँचायेंगे।

व्यर्थ किसी से
बात–बात पर
कोई साथी झगड़ पड़े तो
करके बीच–बचाव,
स्नेह का अर्थ उसे समझायेंगे।

– १३, महावीर पथ, पो०–तराना, उज्जैन (म०प्र०)

महाभारत कालीन अस्त्र-शस्त्र

- डॉ० सीताराम शुक्ल

[विद्वान् लेखक विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर में सैन्य-विज्ञान के प्राध्यापक हैं। महाभारतकालीन युद्ध-शास्त्र पर उनकी बहुमूल्य शोध है। 'राष्ट्रधर्म' के लिए यह उनका प्रथम लेख है। – सम्पादक]

योधन सम्भार की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आयुधों का है; क्योंकि इनकी पर्याप्तता एवं कुशलता पर युद्ध की जय और पराजय अवलम्बित होती है। आयुधों को दो प्रधान रूपों में विभक्त किया जा सकता है– १. अस्त्र तथा २. शस्त्र।

महर्षि उशना ने अस्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है– "जो मन्त्र या तन्त्र अग्नि के द्वारा फेंका जाता है, उसे अस्त्र कहते हैं। अस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं– (क) नालिक, (ख) मान्त्रिक। नालिक में बन्दूक या तोप आदि आते हैं, जिन्हें 'अदिव्यास्त्र' कहते हैं। दूसरे मान्त्रिक अस्त्र होते हैं, जिन्हें मन्त्र की प्रेरणा से चलाया जाता है, जो 'दिव्यास्त्र' कहलाते हैं।"

अस्त्रों के अतिरिक्त जिन आयुधों को हाथ से पकड़े हुए प्रहार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, उन्हें शस्त्र कहते हैं, जैसे असि, कुन्त, गदादि।

अस्त्र

क– अदिव्यास्त्र (नालिक)

अदिव्यास्त्रों में आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता न होकर मानसिक तथा शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है। इन अदिव्यास्त्रों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है। अदिव्यास्त्रों में (१) धनुष और बाण, (२) भुशुण्डी, (३) त्रिशूल, (४) चक्र, (५) शक्ति, (६) शतघ्नी आदि माने जाते हैं, जिनका परिचय संक्षिप्त रूप से निम्नवत् है :–

(१) धनुष

धनुष का भारतीय साहित्य में बाहुल्य से वर्णन मिलता है। वैदिक साहित्य में धनुष को लेकर एक पृथक् उपवेद ही बना दिया गया था, जिसे धनुर्वेद के नाम से जाना जाता है। –दामोदरात्मज शाङ्र्गधर ने 'शाङ्र्गधर पद्धति' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें धनुर्वेद की भी एक विशिष्ट प्रकरण के रूप में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। बाद में इस परम्परा को महर्षि ऋचीक ने अग्रसर किया, उनसे ही इसकी दो शाखाएँ जमदग्नि और परशुराम द्वारा प्रचलित हुईं। महाकाव्य, पुराण, संहिता, स्मृति, धर्मशास्त्र, धनुर्विद्या के स्रोत रहे हैं। भारतीय साहित्य में तीन धनुषों को श्रेष्ठतम माना गया है– शिव का पिनाक, विष्णु का शाङ्र्ग और अर्जुन का गांडीव। धनुष के लिए कार्मुक, कोदण्ड, चाप, द्रूणादि उपनाम भी मिलते हैं। प्रत्येक धनुष आकृति में लगभग अर्द्धचन्द्राकार रूप में होता है, जिसका मध्य भाग थोड़ा दबा हुआ, जहाँ हाथ से पकड़ रखते हैं, होता है तथा दोनों किनारों से एक रज्जु कसके बँधी होती है, जिसे 'ज्या' अथवा 'प्रत्यंचा' कहते हैं। इसमें शर साधकर फेंका जाता है। दिव्यास्त्र तथा अदिव्यास्त्र दोनों के लिए धनुष प्रत्येक योद्धा का प्राथमिक अस्त्र है।

महाभारतकालीन कुछ प्रमुख योद्धाओं के धनुष–बाण की प्राप्ति तथा उनकी विशेषताएँ ये हैं :– खाण्डव वन का दहन करने हेतु वरुण देव ने गाण्डीव धनुष, बाणों से भरे दो अक्षय–तूणीर तथा कपिध्वज–युक्त रथ अर्जुन को प्रदान किया था। यह धनुष अद्भुत था, अपार–शक्ति का अक्षय–भण्डार था तथा सभी शस्त्रों को नष्ट कर डालने की शक्ति उसमें विद्यमान थी। आकार में सभी धनुषों से बढ़कर था। वह चिकना और छिद्र रहित था। अनन्त वर्षों तक गाण्डीव एक पूज्य–निधि था।

युधिष्ठिर के पास महेन्द्र का दिया हुआ दिव्य–धनुष

था और भीमसेन के पास वासुदेव का दिया हुआ दिव्य धनुष था। नकुल, घटोत्कच के पास पौलस्त्य नामक धनुष था। बलराम ने रुद्र सम्बन्धी भयानक दिव्य धनुष प्राप्त था। इसे उन्होंने सन्तुष्ट होकर श्रेष्ठ धनुष प्राप्त किया था। इसे उन्होंने सन्तुष्ट होकर अभिमन्यु को दे दिया था।

द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के पास दिव्य धनुष–रत्न क्रमशः रुद्र, अग्नि, कुबेर, यम, शंकर से सम्बन्ध रखने वाले थे।

२. बाण

लक्ष्य–वेध करने के लिए बाण एक प्रमुख साधन था, जिसे धनुष के माध्यम से छोड़ा जाता था। इसका अग्र–भाग लोहे का बना और तीक्ष्ण होता था। पिछला भाग भी लोहे अथवा काष्ठ का बना होता था। साहित्य में बाण के वेणु, शर, शलाका, दण्डासन, नाराच और शिलीमुख आदि नाम मिलते हैं। बाणों को सुरक्षित रखने के लिए तूणीर की व्यवस्था थी।

महाभारत में विभिन्न प्रकार के बाणों का दो स्थानों पर विशेष वर्णन मिलता है। प्रथम स्थान पर (क) क्षुर, (ख) नाराच, (ग) भल्ल, (घ) विपाठ का वर्णन तथा दूसरे स्थान पर सात प्रकार के विशिष्ट बाणों का वर्णन नीलकण्ठी टीका के आधार पर मिलता है, जिनका क्रमिक वर्णन इस प्रकार है :–

(क) क्षुर :– यह वह शस्त्र होता है जिसके पार्श्व में तेज धार होती है जैसे– नापित (नाई) का छूरा।

(ख) नाराच :– नाराच सीधे बाण को कहते हैं, जिसका अग्रभाग तीक्ष्ण होता है।

(ग) भल्ल :– जिसकी नोंक का पिछला भाग चौड़ा और नोकदार होता है, उसे भल्ल कहते हैं।

(घ) विपाठ :– इस बाण की आकृति खनती की भाँति होती है, यह दूसरे बाणों से बड़ा होता है।

इन उपर्युक्त बाणों में क्षुर और नाराच सीधा है तथा भल्ल टेढ़ा और विपाठ विशाल है। महाभारत में नीलकण्ठी टीका के आधार पर सात प्रकार के विशिष्ट बाणों का विवरण इस प्रकार दिया गया है–

१. कर्णी :– जिधर बाण के फल का रुख हो, उसके विपरीत रुख वाले दो काँटों से युक्त बाण को 'कर्णी' कहते हैं। शरीर में धँस जाने पर यदि उसे निकाला जाय, तो वह आँतों को भी अपने साथ खींच लेता है। इसीलिए इसका प्रयोग निन्द्य माना गया है।

२. नालीव :– यह बाण अत्यन्त छोटा होता है, और शरीर में समग्र डूब जाता है और निकालना कठिन होता है।

३. वस्तिक :– वस्तिक बाण डण्डे और फल के सन्धि–स्थान पर अत्यन्त पतला होता है। इस चुभे हुए बाण को निकालने पर बीच से टूट जाता है, फल भीतर ही रह जाता है और केवल दण्ड–भाग बाहर निकल आता है।

४. सूची :– यह भी कर्णी के समान होता है तथा इसमें बहुत से कण्टक होते हैं।

५. कपिश :– कुछ लोग कपिश को भी सूची के समान मानते हैं। कुछ का मत है कि यह बन्दर की हड्डी का बना होता है। अधिकांश के अनुसार कपिश काले लोहे का बना होता है। इसका हल्का आघात लगने पर ही वह शरीर में गहराई तक पहुँच जाता है। मेदिनी कोश के अनुसार कपिश का अर्थ काला ही है।

६. गवास्थिज :– गाय की अस्थि (हड्डी) से बने होने के कारण ही इसे 'गवास्थिज' कहा गया है।

७. गजास्थिज :– जो बाण हाथी की हड्डी से बना हो, वह 'गजास्थिज' कहलाता है। इसका प्रभाव भी विषलिप्त बाण के समान ही होता है।

धनुर्वेद में प्रधान रूप से द्वादश प्रकार के बाणों का उल्लेख किया गया है, जिनके नाम तथा विशेषताएँ निम्नवत् हैं :–

१. अरामुख :– इस बाण में रथ के चक्र की भाँति भाले लगे होते हैं। लगभग ६ अरों से युक्त इस बाण को 'अरामुख' कहते हैं।

२. क्षुरप्र :– इस बाण का अग्रभाग खुरपे के फल के समान होता है। अतः इसे 'क्षुरप्र' कहते हैं।

३. गोपुच्छ :– इस बाण का अग्रफलक गोपुच्छ की भाँति होता है।

४. अर्द्धचन्द्र :– इस बाण का अग्रफलक अर्द्धचन्द्र की भाँति होता है।

५. सूचीमुख :– इस बाण का अग्रफलक सूची (सूई) के मुख की भाँति होता है।

६. भल्ल :– इस बाण का अग्रफलक दो भालों के समान होता है तथा दो किनारों वाला होता है।

७. वत्सदन्त :– इस बाण के चारों ओर मुड़े हुए शंकु लगे रहते हैं जैसे–बछड़े के दाँत।

८. द्विभल्ल :– अनुमान है कि यह बाण मानो दो भालों को मिलाकर बनाया गया है, अतः इसे 'द्विभल्ल' कहते हैं; किन्तु इसकी आकृति बहुत कुछ गदा से मिलती हुई होती है।

९. कार्णिक :– इस बाण का अग्रफलक कर्णिकार (कनेर) पुष्प से मिलता है।

१०. कातुण्ड :– इस बाण की आकृति कौए के शरीर से मिलती हुई होती है। अतः इसका नाम 'कातुण्ड' दिया गया।

ये उपर्युक्त १० बाणों के प्रकार धनुर्वेद के शर–लक्षण प्रकरण में मिलते हैं।

इन दस प्रकारों के अतिरिक्त धनुर्वेद के शर–लक्षण प्रकरण में मिलते हैं।

इन दस प्रकारों के अतिरिक्त धनुर्वेद में नाराच और नालिक नाम के दो प्रकार के बाण और बताये गये हैं, जिसमें सब प्रकार से लौह ही लगा हुआ है। उन्हें नाराच और नल–यन्त्र से छोड़े जाने वाले लघु बाण 'नालिक' कहलाते हें, जो दूर तक मार करते हैं और विशेषतः ये दुर्ग युद्धों में काम आते हैं। धनुर्वेद के आधार पर कुल १२ प्रकार के ही बाण हैं।

३. तूणीर

यद्यपि तूणीर कोई अस्त्र नहीं है, किन्तु धनुष और बाण के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि तूणीर न हो, तो बाणों को धारण करना अति कठिन हो जाये। तूणीर में ही बाणों को सुरक्षित एवं संगृहीत किया जाता है। कई महापुरुषों के तूणीर अक्षय हुआ करते थे, जिसमें राम, कृष्ण तथा अर्जुन मुख्य हैं।

४. भुशुण्डी

आधुनिक काल में जैसे बन्दूक होती है, वैसे ही महाभारत–काल में भुशुण्डी होती थी, जिसमें गोलियाँ बहुत दूर तक फेंकी जाती थीं। यह लोहे और काष्ठ से निर्मित होती थी। निवात–कवच नामक दानव अर्जुन से इसी शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध करने आया था। दैत्य गुरु शुक्राचार्य भी भुशुण्डी को लघु नालिका कहकर इसका लक्षण इस प्रकार बताते हैं–

"जिसमें नाल ऐसी हो कि मूल की ओर से तिरछा होकर ऊपर की ओर तक छिद्र हो, वह पाँच बालिस्त लम्बी हो, जिसके मूल तथा अग्र–भाग में लक्ष्य को वेध करने में सहायक तिसबिन्दु सदा लगे हों, यन्त्र द्वारा आघात होने पर अग्नि पैदा करने वाले ग्रावचूर्ण (बारूद) जिसके मूल के कर्ण–भाग में भरा हुआ हो, जिसका मूल–भाग जो पकड़ने के लिए होता है, उसके अंगोपांग सुन्दर काष्ठ के बने हुए हों, जिसकी नाल का छिद्र एक अंगुल चौड़ा हो तथा अग्नि–चूर्ण भरने की शलाका भी साथ हो, उसे लघु नालिका (बन्दूक) कहते हैं।"

अमृतवाणी

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितरसास्वादः संगतिः सुजने जने।।

(हितोपदेश, १/१५४)

संसार रूपी विषवृक्ष में भी दो फल अमृत के समान लगते हैं– एक तो सुभाषितों के रस का आस्वादन और दूसरा सज्जनों की संगति।

आपदां कथितः पन्थाः इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्।।

(चाणक्यशतक, ७४)

इन्द्रियों को वश में न रखना विपत्तियों का मार्ग है तथा इन्द्रियों को वश में रखना सुख–शान्ति और समृद्धि का मार्ग है। मनुष्य इन दोनों मार्गों में से जिस मार्ग पर भी चलना चाहे चल सकता है।

धनिनोऽपि निरुन्मादाः युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः।।

(साहित्यदर्पण, १०/६६)

महापुरुष धन से सम्पन्न होने पर भी उन्माद से रहित, युवा होने पर भी चञ्चलता से रहित तथा प्रभुता से सम्पन्न होने पर भी अभिमान से रहित होते हैं।

वनेऽपि सिंहाः मृगमांसभक्षिणो बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति।
एवं कुलीनाव्यसनाभिभूताः न नीचकर्माणि समाचरन्ति।।

(पञ्चतन्त्र, ५/७१)

मृगों का मांस खाने वाले सिंह भूखे होने पर भी वन में रहते हुए भी घास नहीं चरते हैं। इसी प्रकार उच्चकुल में उत्पन्न व्यक्ति विपत्तियों से ग्रस्त होने पर भी नीचतापूर्ण कर्म नहीं करते हैं।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारभ्य तूत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।

(नीतिशतक, २७)

निम्न श्रेणी के व्यक्ति विघ्नों के भय से कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ तो कर देते हैं किन्तु विघ्नों के आने पर कार्य को रोक देते हैं और उत्तम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् विघ्नों से बार–बार पीड़ित होने पर भी कार्य को पूरा किये बिना नहीं छोड़ते हैं।

– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

५. शतघ्नी

आधुनिक काल के तोप की भाँति शतघ्नी हुआ करती थी। यह लोहे से बनी होती थी। शीघ्र तापग्राही, चूर्ण की सहायता से शीशे व काँसे की धातु की और पत्थर की गुटिकाएँ (गोले) इस यन्त्र से दूर तक छोड़ी जा सकती थी। अर्जुन के साथ निवातकवच ने इसका प्रयोग किया था। महर्षि उशना इसे 'बृहन्नालिक' (तोप) कहकर इसका लक्षण इस प्रकार से प्रकट करते हैं– जिसके नाल की चद्दर मोटी, छिद्र की चौड़ाई अधिक एवं गोले का आकार बड़ा हो, जो दूर तक लक्ष्य भेदन करने वाला हो, वह 'बृहन्नालिका–यन्त्र' कहा जाता था। इसका मूल भाग काष्ठ का बना होता था और बैलगाड़ी से ढोया जाता था।

६. त्रिशूल

यह अस्त्र भी लोहे से निर्मित होता था, इसके मुखाग्र में सूक्ष्म रूप से तीन फलक होते थे। इस तीव्र अस्त्र का प्रहार शारीरिक शक्ति से किया जाता था, जो अति घातक होता था। इसके प्रयोग का उदाहरण धनञ्जय के साथ निवातकवच दानवों के युद्ध में प्राप्त होता है।

७. चक्र

यह अस्त्र भी गोलाकार चक्र जैसा लोहे का बना हुआ होता था। शुक्राचार्य ने चक्र का लक्षण बताते हुए कहा है कि– जिसके घेरे की लम्बाई ७ हाथ की और चक्र की भाँति गोलाकार हो, प्रान्त भाग में छुरे लगे हों, जिनकी नाभि सुन्दर और दृढ़ बनी हो, उसे 'चक्र' कहते हैं। महाभारत में इस चक्र का विभिन्न रूपों में वर्णन मिलता है। अग्निदेव ने केशव को खाण्डव–वन–दहन–काल में अद्भुत चक्र 'सूत्र' प्रदान किया था, जिसका मध्य–भाग वज्र की भाँति कठोर था। खाण्डव–वन–दहन–काल में ही जब श्रीकृष्ण और अर्जुन देवों के साथ भीषण संग्राम करते हैं, तो मित्र देवता एक ऐसा चक्र लेकर आते हैं, जिसके किनारों पर छुरे लगे हुए थे। इसी प्रकार घटोत्कच ने भी समरांगण में कर्ण के बाणों से व्यथित होकर दिव्य सहस्रार चक्र हाथ में लिया था। उस चक्र के किनारे पर भी छुरे लगे हुए थे और जिसे उसने कर्ण–वध की इच्छा से उस पर छोड़ दिया था।

८. शक्ति

प्राश को ही स्त्रीलिंग में 'शक्ति' कहते हैं, जिसे हिन्दी भाषा में बर्छी के नाम से जानते हैं। युधिष्ठिर ने शक्ति के द्वारा ही शल्य का वध किया था। वह स्वामि कार्तिकेय का प्रधान अस्त्र माना जाता था। इसका फलक प्राश से कुछ लघु और आयताकार होता था। ये शक्तियाँ विभिन्न प्रकार की होती थीं।

९. भिन्दिपाल

महाभारत में भिन्दिपाल का वर्णन बहुलता से मिलता है। इसे नलिका भी कहते हैं। यह चर्म और रज्जु–विशेष से बना होता था। इससे पत्थर फेंके जाते थे। अलम्बुष ने भीम के विरुद्ध इसका प्रयोग किया था। सामान्यतः इसे 'गुलेल' या 'गोफनी' कहते हैं।

ख. दिव्यास्त्र (मान्त्रिक)

दिव्य का तात्पर्य चमत्कार–युक्त, अलौकिक या आध्यात्मिक वस्तु–विशेष है अर्थात् जो यन्त्र दिव्य शक्तियों से सम्बन्धित हों, उन्हें 'दिव्यास्त्र' कहते हैं। इन दिव्यास्त्रों में प्रायः तपस्या का प्रभाव होता है, जिनकी प्राप्ति भी तपस्या, गुरु–शुश्रूषा अथवा परम्परा से होती है। प्रधान दिव्यास्त्रों का परिचय निम्नवत् है :–

(१) वरुणास्त्र :– यह दिव्यास्त्र वरुणदेव का है, जो जल के देवता हैं, अतः इस दिव्यास्त्र के द्वारा जलधारा से आघात किया जाता था। भीष्म ने इसका प्रयोग शाल्व के घोड़ों पर किया था, जिससे वे मूर्च्छित हो गये थे। धनञ्जय ने भी अस्त्र–प्रशिक्षण–प्राप्ति के अनन्तर प्रदर्शन काल में इसी दिव्यास्त्र के द्वारा वर्षा की झड़ी लगाकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया था।

(२) ऐन्द्रास्त्र :– यह दिव्यास्त्र इन्द्र से सम्बन्धित है। यह इन्द्रायुध वज्र के समान कठोर होता है। भीष्म ने इसी का प्रयोग करके शाल्व के घोड़ों का वध किया था।

(३) ब्रह्मशिरास्त्र :– आचार्य द्रोण ने अर्जुन को यह दिव्यास्त्र प्रदान किया था। यह दिव्यास्त्र सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों में अद्वितीय था। इसका प्रयोग वर्जित भी था। समस्त विश्व को भस्म करने की इसमें क्षमता थी। अर्जुन ने इस अस्त्र के प्रयोग से जल में ग्राह के टुकड़े–टुकड़े कर दिये थे। उसके प्रयोग तथा संहार की विभक्त विधि थी। यदि किसी अल्प तेज वाले व्यक्ति पर इस दिव्यास्त्र का प्रयोग किया जाता है, तो यह उसके साथ ही समस्त विश्व को भी भस्म कर सकता था।

(४) आग्नेयास्त्र :– पूर्वकाल में इस दिव्यास्त्र को आचार्य बृहस्पति ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने अग्निवेश को, अग्निवेश ने द्रोण को और द्रोणाचार्य ने धनञ्जय को प्रदान किया। अर्जुन ने इसका प्रयोग अंगारपर्ण गन्धर्व के साथ युद्ध में दुर्योधन को बचाने के लिए किया था। इसके प्रयोग करते ही गन्धर्व का रथ विदग्ध और वह स्वयं मूर्च्छित हो गया। यह अस्त्र स्व–नामानुसार अग्निदेव का कहलाता है और उसका कार्य भीषण अग्नि–वर्षा करना था।

(५) वायव्यास्त्र :– यह दिव्यास्त्र वायु देवता का

कहलाता था। इसके द्वारा भयंकर आँधी चलायी जाती थी। अर्जुन ने अपने अस्त्र–शस्त्र–प्रदर्शन–काल में इसकी भयंकरता प्रदर्शित की थी।

(६) **भौमास्त्र** :– यह अस्त्र भू–देवी का कहलाता था। अर्जुन ने इसका प्रदर्शन भी अपने अस्त्र–कौशल–प्रदर्शन–काल में किया था। इसके प्रयोग से अनेक प्रकार की धरातलीय भू–संरचनाएँ उत्पन्न की जाती थीं।

(७) **पर्जन्यास्त्र** :– यह दिव्यास्त्र पर्जन्य देव का था। इसके द्वारा मेघों को उत्पन्न कर घनघोर वर्षा की जाती थी जैसा कि धनञ्जय ने अस्त्र–कौशल–प्रदर्शन–काल में मेघों का विस्तार कर वर्षा की झड़ी लगा दी थी।

(८) **पर्वतास्त्र** :– इसके संचालन से पर्वत उपस्थित हो जाते थे। अर्जुन ने इसे अपने अस्त्र–कौशल–प्रदर्शन–काल में प्रदर्शित किया था।

(९) **अन्तर्द्धानास्त्र** :– इस अस्त्र को चलाने से चालक स्वयं को अन्तर्द्धान कर लेता है। कभी प्रकट और कभी लुप्त कर लेता है। धनञ्जय इसके भी विशेषज्ञ थे।

(१०) **पाशुपतास्त्र** :– यह एक दुर्लभ अस्त्र था। महेश्वर भगवान् ने इसे अर्जुन को घोर–तपस्या के बाद प्रदान किया था। यह सम्पूर्ण विश्व को भस्म करने की क्षमता रखता था। इसका प्रयोग अल्पशक्तिवान् पर वर्जित था। अर्जुन ने इसका प्रयोग निवातकवच दानवों के नाश हेतु किया था। इसके प्रयोग करने से भयंकर प्रकार के जन्तुओं की उत्पत्ति होती थी। इसका प्रयोगकर्त्ता मानसिक संकल्प, दृष्टि, वाणी, और धनुष से शत्रु को नष्ट कर सकता था।

(११) **ब्रह्मास्त्र** :– यह दिव्यास्त्र ब्रह्मा का कहा जाता था। अर्जुन, कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य ने इसका प्रयोग बहुतायत से किया। यह अस्त्र संकल्प–विशेष के लिए ब्रह्मा को स्मरण करके छोड़ा जाता था। प्रयोगान्तर अस्त्र सहसा प्रज्वलित हो उठता था। प्रलयकारी अग्नि–सदृश ज्वालाएँ उठने लगती थीं। आकाश से उल्काएँ गिरने लगती थीं। भयंकर शोर होने लगता था। भूकम्प आ जाता था। यह दिव्यास्त्र प्रयोग हेतु नहीं था। इसका प्रयोग केवल जितेन्द्रिय ही कर सकता था। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया ही नहीं, यदि वह पुरुष इसका प्रयोग करके उसे पुनः लौटाने का प्रयास करे, तो यह अस्त्र सगे सम्बन्धियों सहित उसका सिर काट देता था। जिस देश में एक ब्रह्मास्त्र को किसी उत्कृष्ट अस्त्र से दबा दिया जाता था, उस राष्ट्र में १२ वर्षों तक वर्षा नहीं होती थी। यह अमोघ–अस्त्र था।

(१२) **नारायणास्त्र** :– यह अस्त्र आचार्य द्रोण के द्वारा भगवान् नारायण से वरदान के रूप में प्राप्त किया गया था। इसे प्राप्त कर इसका प्रयोक्ता अद्वितीय शक्ति से समन्वित हो जाता था। यह अस्त्र शत्रु को मारकर ही लौटता था। इसके द्वारा कौन वध्य है और कौन नहीं है, यह भी नहीं जाना जा सकता था; क्योंकि यह तो अवध्य को भी मार देता था और इसी कारण से इसका सहसा

गणपति उत्सव सम्पन्न

महाराष्ट्र से प्रारम्भ हुआ गणेशोत्सव आज सम्पूर्ण देश में प्रमुखता के साथ मनाया जाने वाला उत्सव हो गया है। सामाजिक संस्थाओं के साथ–साथ साहित्यिक संस्थाएँ भी बढ़–चढ़कर भागीदारी ले रही हैं। अखिल भारतीय नवोदित साहित्यकार परिषद्

सीधी द्वारा भी शास्त्री नगर में २६ अगस्त से ५ सितम्बर तक गणेशोत्सव का आयोजन किया गया। परिषद् के क्षेत्रीय संयोजक श्री संजय कुमार रैकवार के संयोजन में आयोजित यह उत्सव, हवन–पूजन, कीर्त्तन, काव्य–पाठ जैसे विविध कार्यक्रमों के माध्यम से ५ सितम्बर को सोन नदी में गणपति प्रतिमा के विसर्जन के साथ सम्पन्न हुआ। समारोह में क्षेत्रीय सामाजिक कार्यकर्ता तथा राष्ट्रवादी विचारक श्री लालमणि सिंह एवं रामपाल तिवारी की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही। ❐

प्रयोग वर्जित था। संग्राम में रथ से उतर कर शस्त्रों को त्यागकर अभय याचना करता हुआ प्रयोगकर्त्ता की शरण में जाना ही इस महास्त्र से बचने का उपाय था। रणभूमि में इस अस्त्र के द्वारा जो व्यक्ति अवध्य मनुष्यों को पीड़ा देता था, वह स्वयं भी सब प्रकार से पीड़ित होता था। गुरु द्रोणाचार्य से इस अस्त्र की प्राप्ति अश्वत्थामा को हुई थी। अश्वत्थामा ने इस दिव्यास्त्र का प्रयोग उस समय किया, जब द्रोणाचार्य इस संसार से उर्ध्वलोक को जा चुके थे। उनकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए द्रौणि (अश्वत्थामा) ने इसका प्रयोग किया था। अश्वत्थामा के द्वारा नारायणास्त्र के प्रकट होते ही बिना बादलों के ही आकाश में गर्जना होने लगी थी। जल की बूँदों के साथ प्रचण्ड वायु चलने लगी थी, पृथ्वी काँप उठी थी, समुद्र में ज्वार आ गया था। नदियों के प्रवाह प्रतिकूल दिशा में बहने लगे थे। पर्वतों के शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे थे। सम्पूर्ण दिशाओं में अन्धकार छा गया था। देव, दानव, गन्धर्व और सब भूपाल त्रस्त हो उठे थे।

इस अस्त्र का प्रयोग केवल एक बार ही किया जा सकता था। न तो यह अस्त्र एक बार छोड़ने पर पुनः वापस लौटता था और न तो प्रयुक्त ही होता था। यदि इसका पुनः प्रयोग किया जाता था, तो यह दिव्यास्त्र निःसन्देह प्रयोक्ता को ही समाप्त कर देता था।

(१३) गान्धर्वास्त्र :– इस दिव्यास्त्र को धनञ्जय ने तप करके तुम्बुरु आदि प्रमुख गन्धर्वों से प्राप्त किया था और अर्जुन से इसकी प्राप्ति अभिमन्यु को हुई थी। इसके प्रयोग से प्रयोक्ता बलात् चक्र के समान परिभ्रमण करता हुआ दिखाई देता था। उसके अनेक सैकड़ों और हजारों रूप दिखाई देते थे। यह अस्त्र गन्धर्वों का है, अतः इसे गान्धार्वास्त्र कहते हैं। इसे भी महास्त्रों में गिना जाता था।

(१४) सम्मोहनास्त्र :– इस दिव्यास्त्र के प्रयोग से शत्रु मूर्च्छित अवस्था को प्राप्त हो जाते थे। इस अस्त्र को केवल अर्जुन ही जानते थे। इनके द्वारा इस दिव्यास्त्र का प्रयोग कौरवों पर किया गया था। उस समय केवल भीष्म को छोड़कर सारे ही योद्धा मूर्च्छित हो गये थे, क्योंकि इसका निवारण भीष्म को छोड़कर अन्य किसी के लिए भी सम्भव नहीं था।

(१५) प्रस्वापनास्त्र :– इस अस्त्र के देवता प्रजापति थे। यह दिव्यास्त्र विश्वकर्मा द्वारा निर्मित था। भीष्म को छोड़कर धरा पर अन्य कोई व्यक्ति इसे नहीं जानता था। वसुगणों ने इस दिव्यास्त्र को महात्मा भीष्म को उस समय दिया था, जब उनका परशुराम से युद्ध हो रहा था। इसके प्रयोग से शत्रु मृत्यु को प्राप्त नहीं होता था; अपितु मूर्च्छित होकर रण-स्थल में सो जाता था।

(१६) त्वष्टास्त्र :– इस अस्त्र के देवता त्वष्टा थे, अतः यह 'त्वष्टास्त्र' कहलाता था। इसके प्रयोग से माया का नाश हो जाता था और चारों ओर हजारों बाण प्रकट हो जाते थे। महाभारत समर में भीमसेन ने इस अस्त्र का प्रयोग करके राक्षस अलम्बुष की माया का नाश कर उसे पराजित किया था।

यदि हम प्राचीनतम युद्धों को देखें, तो सारे युद्ध प्रायः दिव्यास्त्रों से ही किये जाते थे, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि अदिव्यास्त्रों का प्रयोग होता ही नहीं था। उनका भी उतनी ही बहुलता से प्रयोग किया जाता था।

२. शस्त्र

योधन-सम्भार का अस्त्र के अतिरिक्त शस्त्र भी एक प्रमुख युद्धोपकरण था। इसका प्रयोग शत्रु के अति निकट अथवा सम्मुख होने पर किया जाता था। ऐसे शस्त्र हैं खड्ग, गदा, प्रास, परशु, पट्टिश आदि।

१. खड्ग

भारतीय शस्त्रों में सर्वप्रिय और सार्वकालिक शस्त्र खड्ग था। इसके असि, करवाल, खड्ग, तलवार, चन्द्रहास, शिष्टि, मण्डलांग, कृपाणादि अनेक नाम थे। जिस प्रकार धनुष प्रत्येक भारतीय वीर का प्राथमिक अस्त्र था, उसी प्रकार प्राचीनकाल में खड्ग भी वीर का प्राथमिक शस्त्र रहा है। प्राचीनकाल से ही खड्ग लौह से निर्मित होता रहा है। प्रमुख रूप से तलवार के दो भेद थे, एक धार वाली और दो धार वाली। आगे चलकर समय-समय पर विभिन्न प्रकार की बनने लगी थी। तलवार के तीन अंग होते हैं। प्रथम– **कोष**, जिसमें तलवार आवृत रहती थी, द्वितीय– **मूठ**, जहाँ से तलवार को पकड़कर प्रहार किया जाता था और तृतीय– **तलवार का फलक**, जिससे आघात किया जाता था। महर्षि शुक्र ने करवाल का लक्षण इस प्रकार बताया है– कुछ टेढ़ा एक ओर धारवाला, चार अंगुल चौड़ा, तीक्ष्ण प्रान्त भागवाला, नाभि तक ऊँचा, दृढ़, मूठ वाला एवं चन्द्रमा के समान स्वच्छ चमकने वाला ऐसा खड्ग होता था। पाण्डव वीरों के विशिष्ट खड्गों का विवरण इस प्रकार है।

धर्मराज का खड्ग :– महाराज धर्मराज की करवाल तीस अंगुल लम्बी, विचित्र कोण वाली, सुफलात्मिका थी। इसकी मूठ सोने की बनी हुई थी।

भीमसेन का खड्ग :– भीमसेन के खड्ग का कोष व्याघ्र-चर्म का बना था। उसकी तलवार गुरुतर भार सहन करने वाली थी, जो दिव्य एवं शत्रुओं के लिए भयंकर थी। (शेष पृष्ठ ७४ पर)

श्रद्धाञ्जलि

नयी मूर्त्तियाँ गढ़ते-गढ़ते चला गया शिल्पी

कालजयी कविताओं के सशक्त हस्ताक्षर बाल साहित्य मनीषी द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी के निधन के समाचार से समस्त हिन्दी जगत् मर्माहत हुआ है। १६४६ में प्रकाशित प्रथम काव्यकृति 'दीपक' लेकर क्षितिज तक को आलोकित करने वाले इस महामनीषी का जन्म १ दिसम्बर, १६१६ को आगरा के रौहता ग्राम में हुआ था। देश ही नहीं तो विदेश से भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपना जीवन अध्यापन क्षेत्र को समर्पित कर दिया। सहायक अध्यापक से लेकर निदेशक के स्तर तक के दायित्वों का विधिवत् निर्वाह करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के लिए अपना जीवन होम कर दिया। महाप्रयाण २६-८-६८ सायं ६.१५ बजे से लगभग एक घण्टा पूर्व ही वे एक गोष्ठी से लौटकर घर आये थे। अपने कमरे में फिसल कर गिर जाने के कारण उनके सिर में लगी चोट ही उनकी चिर-विदा का कारण बनी।

५ काव्य संग्रह, २ खण्डकाव्य, २६ बाल-साहित्य संग्रह, ३ कथा-संग्रह सहित अनेक ग्रन्थों का प्रणयन उन्होंने किया। 'द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी रचनावली' उनके जीवनकाल में ही ३ भागों में प्रकाशित हुई। उनकी कविताओं को जहाँ पाठ्य-पुस्तकों के महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है, वहीं बाल मन पर संस्कार करने वाली अनेक कविताएँ बच्चों का कण्ठहार बनी हैं और यही उन्हें सच्चा सम्मान मिला है। संस्थाओं द्वारा प्रदत्त अनेक सम्मान, पुरस्कार माहेश्वरी जी के नाम के साथ जुड़कर स्वयं धन्य हुए हैं।

'हम आने वाले पल हैं, हम आने वाले कल हैं,
देखे अब तक के कल भी, अब हम लाने वाले कल हैं,
मूर्त्ति नयी हम गढ़ते हैं, कदम-कदम हम बढ़ते हैं।

का मन्त्र फूँकने वाले माहेश्वरी जी अब इतनी दूर निकल गये हैं जहाँ से आज तक कोई वापस नहीं आया। अब हमारे समक्ष शेष है उनका कृतित्व एवं उनकी यश-काया, जो आने वाली पीढ़ी को युग बोध देगी। नवल चेतना का सम्बल प्रदान करेगी।

'राष्ट्रधर्म' परिवार इस दिवंगत साहित्य मनीषी के श्री चरणों में श्रद्धापूर्वक नमन करता है।

स्मृति में सम्मान

आगरा से नन्दनन्दन गर्ग द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार स्व० श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी को प्रतिवर्ष रचनात्मक श्रद्धाञ्जलि देकर उनका पुण्य-स्मरण करने के लिए संस्कार भारती आगरा महानगर ने आगरा मण्डल के एक बाल-साहित्यकार को प्रतिवर्ष रुपये ११११/- का बाल-साहित्यकार सम्मान प्रदान करने की घोषणा की है।

रत्नलाल शर्मा दिवंगत

बाल साहित्य को समृद्ध करने वालों के सम्मान में संलग्न दिल्लीवासी एक हिन्दी सेवी श्री रत्नलाल शर्मा, जो स्वयं समर्थ बाल साहित्यकार थे, का भी देहावसान हो गया। 'श्रीमती रतन शर्मा स्मृति न्यास' की ओर से वे प्रतिवर्ष बाल साहित्य की एक चुनी हुई पुस्तक के रचनाकार को सम्मानित कर रहे थे। वे 'राष्ट्रधर्म' के लेखकीय परिवार से भी जुड़े थे। 'राष्ट्रधर्म' परिवार की उस दिवंगत आत्मा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि!

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

गन्ना विकास में नये कदम

श्री ओम प्रकाश सिंह
मंत्री, गन्ना विकास एवं सिंचाई विभाग, उ.प्र.

◆ बाढ़ प्रभावित किसानों हेतु शत-प्रतिशत गन्ना मूल्य भुगतान के विशेष उपाय

- राज्य चीनी निगम की मिलों के लिये 27 करोड़ व सहकारी मिलों के लिये 9.45 करोड़ अवमुक्त।

◆ लघु एवं सीमान्त कृषकों को विशेष प्रोत्साहन एवं सुरक्षा

- लघु एवं सीमान्त कृषकों को शत-प्रतिशत बान्डिंग की सुविधा।
- पांच बैलगाड़ी तक सट्टा वाले किसानों को पेराई सत्र के प्रारम्भ से प्रत्येक पखवारे में गन्ना आपूर्ति हेतु पर्चियां उपलब्ध होंगी।

◆ गन्ना प्रतियोगिता में विजयी किसानों को विशेष सुविधा

- राज्य, रेंज तथा जोनल गन्ना प्रतियोगिताओं में विजयी किसानों के कुल उपज का 85 प्रतिशत तक गन्ना खरीद सुनिश्चित।

◆ गन्ना उत्पादन में वृद्धि के विशेष कार्यक्रम

- अगेती तथा सामान्य गन्ना प्रजातियों के लिये भिन्न-भिन्न रंग की आपूर्ति पर्ची की व्यवस्था।
- कीटनाशकों पर 50% अनुदान तथा 50% समितियों के माध्यम से अग्रिम।
- उत्तम गुणवत्ता के उवर्रक इफ्को/ कृभकों से क्रय किये जाने की व्यवस्था।
- गन्ना बीज निगमों से बीज क्रय हेतु समस्त लेन-देन एकाउण्ट पेयी चेक द्वारा।

अब तक का रिकार्ड भुगतान

कुल गन्ना मूल्य देय	–	रु. 3029.41 करोड़
अब तक कुल भुगतान	–	रु. 2904.91 करोड़ (96%)
अवशेष	–	रु. 124.50 करोड़ (मात्र 4%)

श्री मंगल सिंह सैनी
राज्य मंत्री, गन्ना विकास

अधिक जानकारी के लिये गन्ना विकास परिषद या चीनी मिल से सम्पर्क करें

गन्ना विकास विभाग द्वारा प्रसारित

राजनीति

चित्रकूट फिर 'चित्रकूट' हुआ

-हृदय नारायण दीक्षित
भू.पू. संसदीय कार्य मंत्री, उ. प्र.

सिंहासन बत्तीसी की कथा एक साधारण ग्रामीण से प्रारम्भ होती है। कहते हैं कि एक टीले पर जानवर चरा रहे लोगों में से एक व्यक्ति जैसे ही टीले की चोटी पर जाता है, वह एक विशेष भाव-भूमि में, विशेष चित्त-दशा में, विशेष हाव-भाव में बोलने लगता है। वहाँ से उतरते ही उस व्यक्ति की शिखर-भाव-भूमि लुप्त हो जाती है। दूसरे दिन अनायास ही जब वह व्यक्ति उसी शिखर-केन्द्र पर फिर पहुँच जाता है, उसकी चित्त-दशा फ़िर उसी भाव-भूमि का स्पर्श कर लेती है। खुदाई पर उस जगह एक सिंहासन निकलता है। सिंहासन महान् पराक्रमी सम्राट् विक्रमादित्य का है। तात्पर्य यह है कि सिंहासन पर खड़ा होने के कारण ही उस व्यक्ति के मनस्तंत्र पर विशिष्ट प्रकार के परिवर्त्तन आ जाते थे।

चित्रकूट इसी प्रकार की अनुपम धरती है। तुलसीदास जी इसी पावन धरती पर बैठकर विश्व में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले ग्रन्थ 'रामचरित मानस' का उपाख्यान गाये थे। वे इसी धरती पर बैठकर परम-भक्त हनुमान् से सीधे सम्वाद स्थापित करने में सफल हो जाते हैं। सारा चमत्कार इसी धरती का ही तो है। भगवान् को न मानने वाले प्रख्यात समाजवादी नेता डा० राम मनोहर लोहिया इसी पावन-भूमि पर आकर 'रामचरित मानस' की चौपाई "एक बार चुनि कुसुम सुहाये" पर मुग्ध हो जाते हैं।

डा० लोहिया कहते हैं- राम की कथा अद्भुत है। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम अपनी पत्नी के लिए फूल चुन-चुन कर लाते हैं। "सीतहिं पहिराये प्रभु सादर" का तात्पर्य बड़ा अनूठा है। अपनी पत्नी को चुन-चुन कर लाये गये फूलों की माला खुद मर्यादा-पुरुषोत्तम राम अपने हाथों से सम्मान-पूर्वक पहनाते हैं। डा० लोहियां कहते हैं राम की कथा भारत के लोक-जीवन को पति-पत्नी के अद्भुत प्रेम का सहज संदेश बड़ी सरलता से पहुँचाती है। स्त्री समानता के पक्षधर डा० लोहिया राम-कथा के इस प्रसंग को अपने साथियों में अक्सर सुनाया करते थे। चित्रकूट से अभिभूत डा० लोहिया इसी पवित्र-स्थली को रामायण मेला के अनुष्ठान के लिए चुनते हैं। इस धरती में जरूर कुछ ऐसा है, जो कुछ-कुछ छन्द जैसा है, कुछ-कुछ गीत जैसा, काव्य जैसा, जल जैसा, सलिल, कमल जैसा प्रीतिकर। राग, द्वेष और वैर-भाव से दग्ध-चित्त को निर्मल और स्थिर करने में सक्षम। सत्य की शोध के लिए सर्वाधिक उपयुक्त वैज्ञानिक प्रयोगशाला है चित्रकूट की पावन-भूमि।

चित्रकूट भारत राष्ट्र के अनेक तीर्थ स्थलों में से नितान्त अनूठा और अद्वितीय दर्शनीय स्थल है। भारतीय दर्शन और योग में "चित्त" का उल्लेख बड़े गहरे अर्थों में हुआ है। दुनिया की किसी भी भाषा में मानव व्यक्तित्व के अन्तरतम ; किन्तु सक्रिय चेतन को अभिव्यक्त करने वाला "चित्त" जैसा दूसरा शब्द मौजूद नहीं है। चित्त मनुष्य के व्यक्तित्व का वह आन्तरिक जगत् है, जहाँ शब्द, रूप और आकार ग्रहण करते हैं। चित्त में ही हर देखी हुई वस्तु और दृश्य के चित्र बना करते हैं। ऐसे सभी चित्र स्मृति-कोष में जमा होते रहते हैं। किसी वस्तु का नाम सुनते ही चित्त सक्रिय हो जाता है और फौरन् उसी वस्तु का चित्र सामने आ जाता है। चित्रों का बनना, बनते जाना, बिगड़ना और फिर बनना चित्तवृत्ति/चित्त की प्रकृति है। सोची हुई योजनाओं के चित्र भविष्य कहलाते हैं। बीती हुई घटनाओं के चित्र अतीत या भूत कहलाते हैं। भूत और भविष्य से जुड़ने वाले चित्रों की धारावाही निर्मिति ही सुख का मूल है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि चित्तवृत्ति को समाप्त कर मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस् की लब्धि कर सकते हैं। पतंजलि योगसूत्र योग की परिभाषा में "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" का मार्ग बताता है और चित्त की चित्र बनाते रहने की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य वृत्ति से निवृत्ति का लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। पतञ्जलि का सम्पूर्ण योग दर्शन चित्तवृत्तियों के निरोध की प्रावैधिकी है। भारतीय योग-विद्या का यही मूल आधार भी है। चित्त-वृत्ति का

निरोध ही कृष्ण के शब्दों में व्याख्या को "चित्र-मन" बनाता है।

सिगमण्ड फ्रायड विश्व के अति प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिक हुए हैं। फ्रायड का सम्पूर्ण जीवन "मन" के अध्ययन पर बीता है। वे मन की तीन स्थितियों क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त ही बताते हैं। क्षिप्त मन की साधारण स्थिति होती है। मूढ़ मन की मंद स्थिति होती है। विक्षिप्त मन के तात्पर्य पागलपन से लिए जा सकते हैं। मगर भारत की योग-विद्या इन तीनों स्थितियों से भी आगे कुशाग्र मन और तुरीय मन तक की व्याख्या करती है। किसी एक विषय पर केन्द्रित हो गई मनःस्थिति को "कुशाग्र" कहते हैं। आखिरी स्थिति अ-मन की होती है। उसे तुरीय भी कह सकते हैं। जहाँ चित्त की वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं तब अनहक चित्र नहीं बना करते है। न भूत की स्मृतियाँ सताती हैं, न भविष्य की योजनाएँ आशंकित/आकर्षित करती हैं।

"चित्रकूट" मनुष्य के चित्त में चित्र बनने वाली वृत्ति का स्वामी बना देने वाला दर्शन झरोखा है। अपने १४ वर्षीय वन-प्रवास में मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ११ वर्ष से अधिक का काल-खण्ड इसी दिव्य-भूमि के आस-पास पार करते हैं। कामदगिरि की उपत्यकायें प्रत्येक भारत-भक्त को मोहित करती हैं। अब्दुर्रहीम खानखाना मुसलमान थे, मगर चित्रकूट के प्रेम में पड़कर वे भी गा उठे "चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस। जापर विपदा परति है, सो आवति यहि देस।।" चित्रकूट विपत्ति-नाशक केन्द्र जो है।

भारत शील, आचार, संयम, सत्य, शिव और सुन्दरता की उपासना-भूमि है। मर्यादा भारत की धरती का पराग है। ठीक है कि भारत ने गंगा, यमुना और सरस्वती जैसी नदियों के स्तवन किये हैं ; परन्तु राम-प्रवास के दीर्घकालिक क्षेत्र में मन्दाकिनी पूरी मर्यादा के साथ ही बहती है। बहती क्या है, अपने सम्पूर्ण यौवन में बहते हुए छन्द बन जाती है और वद्बबाद में भी स्वच्छन्द नहीं होती है। मन्दाकिनी के बहाव के छन्द, वानस्पतिक हरीतिमा और पग-पग पर अपनी पूरी आभा और आश्वासन के साथ खड़े मंदिरों की घंटाध्वनियों से मिलकर ऋचा बन जाते हैं। सो चित्रकूट ऋचा-गुंजित दिव्य-भूमि है। यह एक ऐसी भूमि है, जो सम्पूर्ण भगवत्ता की काया और माया के रहस्यों का सार-तत्त्व अपने अन्तस् में समेटे हर तीर्थ-यात्री पर अमृत-कलश उँड़ेलती ही रहती है। चित्रकूट "मंगल भवन अमंगल हारी" लब्धि की वरेण्य यज्ञ-वेदी भी है।

सती अनसूया के मन्दिर के सामने श्रद्धावनत झुके श्रद्धालु जैसे ही सीढ़ियाँ उतरकर राम-कथा के अनेक रम्य व दिव्य प्रसंगों की साक्षी मंदाकिनी के जल में आचमन के लिए उतरते हैं, तट पर पड़ी स्फटिक-शिला इन्द्र-पुत्र जयन्त पर भगवान् श्री राम द्वारा चलाये गये सींक के बाण की घटना का स्मरण दिला देती है। कहते हैं कि राम ने इसी शिला पर बैठकर जयन्त पर सींक का बाण चलाया था। जयंत ने कौए का वेष धारण कर सीता को अपमानित करने की कुचेष्टा की थी। शिला पर बने राम के चरण-चिह्नों को भारत का लोक-जीवन टकटकी लगाकर देखता ही रहता है।

तर्क में यह बात किसी को न जँचे, तो कोई बात नहीं। श्रद्धा का मतलब ही "असम्भव पर विश्वास" होता है। मगर ध्यान रहे, असम्भव पर विश्वास पैदा कराने वाले कोई युग-पुरुष विरले ही होते हैं। ऐसे विश्वास की भावभूमि संक्रामक होती है। एक से अनेक तक फैलते गये ऐसे विश्वास को जब सम्पूर्ण लोक की स्वीकृति मिल जाती है, तभी इसे श्रद्धा कहा जाता है। चित्रकूट के कण-कण पर लोकजीवन की श्रद्धा के अबीर-गुलाल

जैसे रंग चढ़े हुए हैं।

पर्वत की खोह में राम–सीता के रुकने की छोटी–सी कंदरा में स्थित स्थान में घुसकर बड़े–बड़े नास्तिकों की आँखों में "गुप्त गोदावरी" के जल–प्रवाह सहज ही देखे जा सकते हैं।

स्मरण रहे कि चित्रकूट को लेकर बहुजन समाज पार्टी अपने वोट बैंक को सुरक्षित करना चाहती है। 'धरती–पुत्र' (?) मुलायम सिंह यादव/मायावती द्वारा चित्रकूट का नाम शाहूजी महराज नगर कर देने का विरोध कर रहे थे। राजनीति के लिए ही मुलायम सिंह ने घोषणा की थी कि चित्रकूट का नाम बहाली के लिए वे खुलकर संघर्ष करेंगे। तय हुआ था कि सपा सांसद/विधायक चित्रकूट में पैदल मार्च करेंगे। राजनीतिक कारणों से हुई उक्त घोषणा राजनीतिक कारणों से ही क्रियान्वित नही हो सकी। मायावती ने कहा है कि सत्ता में वापस लौटते ही वे इस नाम को पुनः बदल डालेंगी। मुलायम सिंह यादव कहा करते हैं, सत्ता में आते ही वे नकल अध्यादेश को फिर से खत्म कर देंगे। भारतीय राजनीति के ऐसे गर्हित वायदे भी नेताओं पर दया करने को विवश करते हैं। वे सत्ता में आयेंगी, तो पौराणिक नाम बदलने और पार्कों वगैरह के निर्माण तक ही राज्य–व्यवस्था को सीमित रखेंगी। वे आयेंगे, तो नकल पर लगी रोक को पुनः बहाल कर देंगे। ऐसे आश्वासनों और कार्यकरण से न तो राष्ट्र बनते हैं और न ही सरकारें लोकप्रिय होती हैं।

भारतीय जनता पार्टी की राजनीति का अधिष्ठान सांस्कृतिक है। मुलायम सिंह यादव राजनीतिक कारणों से इस सांस्कृतिक प्रश्न को उठाने की कोशिश कर रहे थे। कल्याण सिंह सांस्कृतिक कारणों से चित्रकूट नाम के परिवर्तन पर आहत थे। कल्याण सिंह की सरकार के ताजे निर्णय के कारण भी सांस्कृतिक ही हैं। भारतीय जनता पार्टी के लिए चित्रकूट श्रद्धा और आस्था का प्रश्न है।

श्रद्धा और आस्था के प्रश्नों पर राजनीति नहीं की जाती। राजनीति के हानि और लाभ का विचारण भी श्रद्धा और आस्था के प्रश्नों पर नहीं किया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश सरकार के चित्रकूट विषयक इस निर्णय ने समूचे राष्ट्र को आह्लादित किया है। कल्याण सिंह सरकार ने इस निर्णय के माध्यम से कोई राजनीतिक अभियान नहीं चलाया है; वरन् भारत की पावन धरती के मर्यादा–पुरुषोत्तम राम की तपस्थली के नाम पर की जा रही राजनीति का प्रतिकार–मात्र किया है। चित्रकूट से भारत की पहचान होती रही है। अपने प्रतीक, प्रतिमान, तथा पहचान को अक्षुण्ण बनाये रखने का कार्य प्रत्येक राष्ट्र का नैतिक दायित्व ही नहीं, कर्तव्य होता है, वही किया गया है। फिर यह चिल्ल–पों क्यों? □

–एल–१५६२, आई सेक्टर,
ल.वि.प्रा. कॉलोनी, कानपुर–मार्ग, लखनऊ

भूल सुधार

'राष्ट्रधर्म' के 'अपनी स्वतंत्रता के पचास वर्ष' विशेषांक (अगस्त, ९८ अंक) में पृष्ठ २२ की पंक्ति ७ में 'माहिपाल' की जगह 'मस्यिान' छप गया है। इसी पृष्ठ पर द्वितीय पैरा पंक्ति ३ में 'जनरल जोशी' की जगह पर 'जनरल जैसी' छपा है।

पाठक कृपया सुधार कर लें।

– संपादक
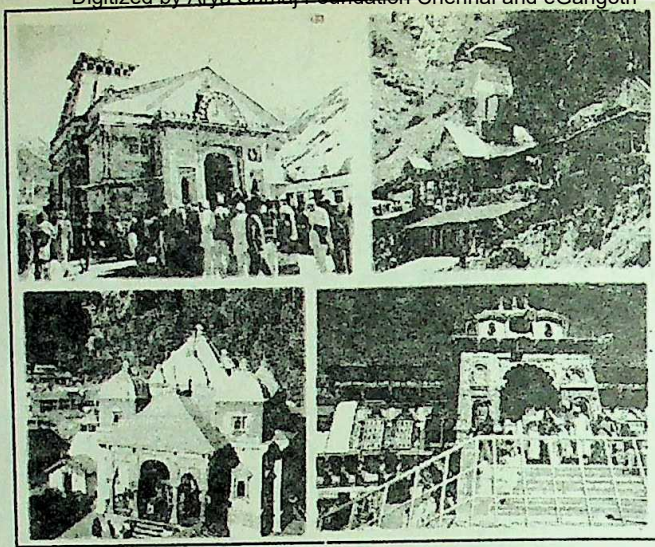
आत्मिक शान्ति के प्रेरणास्रोत - पर्वतांचल के चार धाम

केदारनाथ, बदरीनाथ, गंगोत्री एवं यमुनोत्री

केदारनाथ - भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक। मान्यतानुसार धर्मराज युधिष्ठिर के स्वर्ग प्रस्थान का स्थल। प्रमुख दर्शनीय स्थल - केदारनाथ मन्दिर, शंकराचार्य जी की समाधि, श्री भैरवनाथ मन्दिर, गांधी सरोवर, वासुकीताल आदि।

बदरीनाथ - अलकनन्दा एवं ऋषि गंगा के संगम तट तथा नर-नारायण पर्वतमालाओं के मध्य अवस्थित भगवान् विष्णु का धाम। प्रमुख दर्शनीय स्थल - श्री बदरीनाथ मन्दिर, तप्तकुण्ड, माता मूर्ति मन्दिर, शेष नेत्र मन्दिर, चरणपादुका तीर्थ आदि।

गंगोत्री - भगवती गंगा के स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण का पावन स्थल। प्रमुख दर्शनीय स्थल - गंगोत्री मन्दिर, गौरीकुण्ड, पटांगण, केदारगंगा संगम, देवघाट आदि।

यमुनोत्री - बन्दरपूंछ पर्वत शिखर के पश्चिमी किनारे पर अवस्थित यमुना नदी का उद्‌गम स्थल। प्रमुख दर्शनीय स्थल- यमुनादेवी मन्दिर, सूर्यकुण्ड, दिव्यशिला।

विशेष - चारों धामों के कपाट प्रतिवर्ष अप्रैल-मई माह में खुलते हैं व मध्य नवम्बर के आसपास बन्द होते हैं।

आवासीय सुविधाएं -

गढ़वाल मंडल विकास निगम द्वारा इन सभी स्थानों व यात्रा मार्ग पर स्थान-स्थान पर आवासीय इकाइयों की स्थापना की गई है, जिनमें प्रमुख हैं:- ● होटल देवलोक, बदरीनाथ, दूरभाष : 01389-85212 ● पर्यटक विश्राम गृह, केदारनाथ, दूरभाष: 866210 ● पर्यटक आवास गृह, यात्री लॉज, गंगोत्री ● यात्री लॉज, जानकी चट्टी, यमुनोत्री।

आवासीय इकाइयों व गढ़वाल मण्डल विकास निगम द्वारा चार धाम यात्रा हेतु संचालित भ्रमण कार्यक्रमों में अग्रिम आरक्षण हेतु कृपया निम्नलिखित कार्यालयों से संपर्क करें :-

● **लखनऊ :** दूरभाष - (0522) 201571, 201572. ● **नई दिल्ली :** दूरभाष- (011) 3326620, 3350481. ● **ऋषिकेश :** दूरभाष- (0135) 431793, 432648, 430799. ● **देहरादून :** दूरभाष- (0135) 656817, 654408, 656071, 65107. ● **अहमदाबाद :** टेलीफैक्स - 91-79-6564245. ● **मुम्बई :** दूरभाष- (022) 2024415, 2843197, 2185458, 2024627, 2027762. ● **कलकत्ता:** दूरभाष- (033) 2207855 ● **चण्डीगढ़ :** दूरभाष- (0172) 707649, 531321. ● **हरिद्वार :** दूरभाष- (0133) 424240. ● **जयपुर :** टेलीफैक्स - (0141) 378892.

उ०प्र० पर्यटन

3, नवल किशोर मार्ग, लखनऊ। (उ०प्र०) भारत।
फोन : (0522) 228349, 225165, फैक्स : (0522) 221776.

हमें फाँसी नहीं गोली से उड़ा दो

- राजशेखर व्यास

७ अक्टूबर, १६३० को 'ट्रिब्यूनल' ने लाहौर षड्यन्त्र केस का भी फैसला सुना दिया– 'भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी ; कमलनाथ तिवारी, विजय सिन्हा, जयदेव कपूर, शिव वर्मा को आजन्म कालापानी, अजय घोष, सुरेन्द्र पांडेय की रिहाई और अन्य सभी मुखबिरों की बाइज्जत मुक्ति ।'

६८ पृष्ठों में लिखा यह फैसला मानो पहले से ही सबको मालूम था। भगत सिंह के पिता ने 'ट्रिब्यूनल' को एक पत्र लिखा, जिसमें भगत सिंह को मुक्त करने की प्रार्थना के साथ लिखा था कि भगत सिंह कलकत्ता में थे और इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि सांडर्स–वध में भगत सिंह शामिल नहीं थे। यह सिर्फ एक कानूनी दाँव था, मगर इस बात का पता चलते ही भगत सिंह ने जो उत्तर अपने पिता को लिखा, वह क्रान्तिकारियों के इतिहास में एक विलक्षण क्रान्ति–पत्र है। वह पत्र यों था :–

"मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि आपने विशेष ट्रिब्यूनल (पंचाट) को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना–पत्र भेजा है। यह समाचार इतना दुःखदायी है कि मैं उसे शान्त होकर नहीं सुन सकता। यह एक परीक्षा की घड़ी थी और मैं कहूँगा कि आप उसमें असफल रहे। सच तो यह है पिता जी कि आपने मेरी पीठ में छुरा भोंका है। मेरा जीवन उतना मूल्यवान् नहीं, जितना आप समझते हैं। आप एक देशद्रोही से कम नहीं हैं। मेरे सिद्धान्त मेरे जीवन से बड़े हैं।"

आगे वह ट्रिब्यूनल, जिसने भगत सिंह की सजा तय की थी, स्वतः ही समाप्त हो गया। अब सारे देश की निगाह दो बातों पर थी– क्या गांधी जी भगत सिंह को बचायेंगे ? क्या भगत सिंह दया–याचना करेंगे ? करोड़ों लोग ऐसे थे, जो भगत सिंह के बहुमूल्य जीवन की कीमत समझते थे। उनका मानना था कि कम से कम भगत सिंह का जीवित रहना, क्रान्तिकारी आन्दोलन को जीवित रखने के लिए अपरिहार्य है।

इस केस के वकील प्राणनाथ मेहता ने साहस कर भगत सिंह से पूछा– "सरदार! आप जानते हैं, देश आजाद होने वाला है ? आपकी सारी लड़ाई उसी के लिए है और जब देश आजाद हो जायेगा, तो उसे आपकी और ज्यादा जरूरत होगी। नये राष्ट्र–निर्माण के लिए आप जैसे विचारकों का जीवित रहना बहुत जरूरी है। अगर आप चाहें, तो एक ऐसी दया–याचिका बनायी जा सकती है, जिससे आपके स्वाभिमान और सम्मान पर कोई आँच नहीं आयेगी। दल के लिए, देश के लिए आपका जीवन बेहद महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है।"

भगत सिंह प्राणनाथ का बड़ा सम्मान और प्यार करते थे। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "ठीक है, तुम कहते हो, तो मैं तैयार हूँ। जाओ, दया–याचिका तो तैयार करो।" सभी विस्मित हो गये। भगत सिंह इतनी सहजता से तैयार हो गये। प्राणनाथ खुशी से झूम उठे। फौरन अपने कार्यालय भागे। रात भर जाग कर दया–याचिका तैयार की और सुबह–सुबह जब जेल गये, तो अवाक् रह गये। भगत सिंह ने कहा, "हमने तो 'दया–याचिका' पंजाब के गवर्नर को भेज भी दी।" और उसकी एक प्रति उन्होंने प्राणनाथ के हाथ में रख दी। कुछ यों था वह दहकता हुआ याचना–पत्र :–

आदरणीय महोदय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वाइसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके 'लाहौर–षड्यन्त्र–केस' की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण स्थापित किया। जिसने अक्टूबर ३० को हमें फाँसी का दंड सुनाया।

हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा दोष यह लगाया गया है कि हमाने सम्राट् जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं– प्रथम यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है, दूसरी यह कि हमने निश्चित रूप से उस युद्ध में भाग लिया है, अतः हम राजकीय युद्धबंदी हैं। यद्यपि इसकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रहे

सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है।

हमारे विचार से प्रत्यक्ष रूप से ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई नहीं है और हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का क्या आशय है। हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे, चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक या सर्वथा भारतीय ही क्यों न हों।

उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो, तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएँ मिल जायें अथवा समझौता हो जाये, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती। जनता पर इन सब बातों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इन सब बातों की भी चिन्ता नहीं नहीं है कि एक बार फिर युवकों को धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता पथ–भ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से क्रांतिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता तो उन्हें अपना शत्रु समझते हैं; क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने बलिवेदी पर अपने पतियों को भेंट किया, अपने आपको भी न्योछावर कर दिया; परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेंट भले ही झूठी कहानियाँ बना कर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की ख्याति को हानि पहुँचाने का प्रयास करें, परन्तु यह युद्ध तो चलता रहेगा।

हो सकता है कि यह युद्ध भिन्न–भिन्न दिशाओं में, भिन्न–भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। यह युद्ध प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दिशाओं में चलता रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर जारी रहे और कभी यह युद्ध इतना भयानक हो जाये कि जीवन–मरण की बाजी लग जाये।

चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव तो आप पर पड़ेगा ही। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें, चुन लें; परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

निकट भविष्य में यह युद्ध अन्तिम रूप से लड़ा

जायेगा और तब यह दिखने लगेगा कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही वह युद्ध है, जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया है। हम इसके लिए अपने पर गर्व करते हैं। इस युद्ध को न तो हमने आरम्भ किया है, न यह हमारे सामने, हमारे जीवन के साथ समाप्त होगा। हमारी सेवाएँ इतिहास के उस अध्याय के लिए मानी जायेंगी, जिसे भगवती चरण और यतीन्द्रनाथ दास के बलिदानों ने विशेष रूप से प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान् हैं। जहाँ तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम बलपूर्वक आपसे कहना चाहते हैं कि आपने हमें फाँसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेंगे ही। आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है ; परन्तु इस प्रकार आप 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला ही सिद्धान्त अपना रहे हैं और उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय द्वारा हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग और निर्णय लिया गया है। इस स्थिति में हम

मुक्तक

मैंने नहीं मनाया मित्रो ! स्वर्ण-वर्ष आजादी का,
सोच रहा हूँ आग लगा दूँ ढेर लगाकर खादी का।
अर्द्धशती तक खादी में ही नर भुजंग छिपते आये;
काश्मीर का निर्वासित क्यों नाम जपेगा गांधी का।

– विजय त्रिपाठी

'युद्धबंदी' हैं और इसी आधार पर हम आपसे माँग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबंदियों जैसा व्यवहार किया जाये– हमें फाँसी देने के बजाय गोलियों से उड़ा दिया जाये।
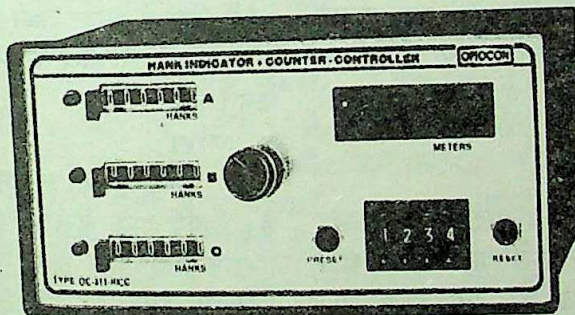
अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है, जो आपकी सरकार के ही एक न्यायालय ने दिया है। आप अपनी कार्रवाई द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना विभाग को आदेश दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक दस्ता भेजा जाये।'

ऐसी क्षमायाचना क्या किसी दूसरे ने कभी की होगी ?... नहीं ; क्योंकि कोई दूसरा भगत सिंह भी तो पैदा नहीं हुआ ! □

– ई. ६०७, कर्जन रोड अपार्टमेन्ट, नई दिल्ली

महाभारतकालीन

अर्जुन की करवाल :– अर्जुन की असि दीर्घाकार थी। उसके पृष्ठ–भाग में मेंढकी का चित्र बना हुआ था और उसका मुख–भाग भी मेंढकी के मुख के समान बना हुआ था। अर्जुन का यह विशाल खड्ग युद्ध–भूमि में भारी आघात को सहने में समर्थ और दृढ़ था।

नकुल की असि :– नकुल की असि का कोष अजगर–चर्म से बना हुआ था। यह करवाल नाना प्रकार के युद्धों में शस्त्रों का भारी आघात सहन करने में समर्थ और दृढ़ थी।

सहदेव की चन्द्रहास :– सहदेव की विशाल चन्द्रहास का कोष गो–चर्म से बना हुआ था। वह भी सब प्रकार के आघात, प्रत्याघात करने में समर्थ और सुदृढ़ था।

२. गदा

शस्त्रों में गदा का प्रमुख स्थान था। शारीरिक बल में अति शक्तिशाली वीरों का यह प्रिय शस्त्र था। उदाहरणार्थ, विष्णु की कौमोदकी गदा, हनुमान् की गदा, वृषपर्वा की गदा, भीम की गदा आदि। यह गदा लोहे की बनी होती थी। इसका मुखाग्र गोलाकार और उसमें भी अग्रिम भाग नुकीला होता था। पिछला भाग दण्डाकार होता था। महर्षि उशना ने गदा का लक्षण इस प्रकार बताया है– 'आठ पहलवाली, मूठ में मोटी और हृदय के बराबर ऊँची, दृढ़ दण्डों वाली गदा होनी चाहिए।' उदाहरण के लिए भीम की गदा का वर्णन प्रस्तुत है, "भीम की गदा, जो वृषपर्वा से प्राप्त हुई थी, गुर्वी, भार–सहा, दृढ़, सुवर्ण बिन्दुओं से चित्रित एकाकी ही हजारों गदाओं के समान बलशालिनी और शत्रुघातिनी थी। भीम गदा–युद्ध में सिद्ध–हस्त वीर थे।"

३. तोमर

यह शस्त्र भी लोहे का बना होता था। इसका अग्रभाग भारयुक्त और दीर्घाकार फल वाला होता था। इसका पिछला भाग काष्ठ–दण्ड का बना होता था। सामान्य भाषा में इसे गँड़ासा कहते हैं। महाभारत में इस अस्त्र का स्थान–स्थान पर वर्णन मिलता है।

४. प्रास

दीर्घाकार काष्ठ–दण्ड के अग्रभागों में लघु एवं तीक्ष्ण फलक वाला यह शस्त्र प्रास, कुन्त या भाला भी कहलाता था। शुक्राचार्य के अनुसार चार हाथ लम्बे दण्ड–युक्त छुरे के समान तीक्ष्ण मुखवाला प्रास नाम का शस्त्र होता है तथा दस हाथ से लम्बे दण्ड के अग्रभाग में तीक्ष्ण फल से युक्त, जिसके मूल में कील लगी होती है, उसे 'कुन्त' (भाला) कहते हैं।

५. परशु

यह शस्त्र भी प्रास के समान ही होता है। इसमें और प्रास में अन्तर केवल यह है कि इसका अग्रभाग चौड़े फलक वाला होता था और दोनों किनारे नुकीले और तीक्ष्ण होते थे। इसके पीछें के भाग में प्रास के ही समान दीर्घाकार काष्ठ–दण्ड संयुक्त होता था। इसे सामान्य भाषा में फरसा कहते हैं।

६. परिघ

लोहे के पत्र से आवृत यष्टिका को परिघ कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है। एक लोहे के पत्रवाली और दूसरी लोहे के तारों से सुगठित होती थी।

७. मुसल

लोक–प्रवाहानुसार तो मुसल काष्ठ का ही बना होता है, जो कि धानादि की कुटाई के उपयोग में आता है; किन्तु हो सकता है कि रणक्षेत्र का मुसल लोहे से निर्मित होता रहा हो। यह बलराम जी का प्रिय शस्त्र था। इसका भी महाभारत में यथास्थान वर्णन मिलता है।

८. पट्टिश

इस अस्त्र का भी महाभारत में स्थान–स्थान पर वर्णन मिलता है। मैक्डोनल के मत में यह अस्त्र तीखे किनारे वाला, काष्ठ–दण्ड से युक्त, तीन तीखे काँटों वाला होता था। मोनियर विलियम्स के मत में भी तीन काँटों से युक्त तीखे किनारों वाले अस्त्र को पट्टिश कहते हैं।

महर्षि शुक्र इसका लक्षण बताते हुए कहते हैं– अपने बराबर लम्बा तथा दोनों ओर जिसके मुख हो एवं जो बीच में से हाथ से पकड़ा जाए, उसे 'पट्टिश' शस्त्र कहते हैं।

९. पाश

पाश का भी महाभारत में यथास्थान वर्णन मिलता है। महर्षि शुक्र इसका लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जिसमें तीन हाथ लम्बा दण्ड लगा हो और उसमें तीन शिखायें (छोर) हों जो लोहे के तारों से बना हो, उसे 'पाश' नाम का शस्त्र कहते हैं।

१०. करज (बघनख)

महाभारत में इस शस्त्र का भी यथास्थान वर्णन मिलता है। महर्षि शुक्र ने इसका लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है– "पक्के उत्तम लोहे के बने हुए–दृढ़ एवं नख के समान तीक्ष्ण नुकीले शस्त्र को 'करज' (बघनख) कहते हैं।" ❐

– २१ ए, उजियारी पुरवा, खेवरा बाँगर, नवाबगंज, कानपुर–२०८००२

रामगाथा

डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

आलोच्य पुस्तक 'रामगाथा' एक उपन्यास है। भारतीय भाषाओं की प्रसिद्ध रामायणों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए ख्यात डॉ० रमानाथ त्रिपाठी विदेशों और भारतीय वनवासियों के मध्य प्रचलित रामकथाओं और लोकगीतों के भी गहन अध्येता हैं। राम–कथा के ऐसे अधिकारी विद्वान् ने वाल्मीकि रामायण के चरित्र नायक राम के उदात्त चरित्र का इस औपन्यासिक कृति में अंकन किया है, जो बहुत ही प्रभावशाली बन पड़ा है।

प्राक्कथन में लेखक ने रामकथा के भारत के कण–कण में व्याप्त महत्त्व पर प्रकाश डाला है। सम्पूर्ण उपन्यास सात पर्वों में लिखा गया है। अन्त के परिशिष्ट में लेखन ने– (१) राम का वन–गमन मार्ग, (२) राम–सीता की आयु, (३) कैकेयी : मँझली या छोटी, (४) रावण : दशानन या एकानन ? तथा (५) उत्तर कथा सीमा–निर्वासन आदि विषयों पर विस्तारपूर्वक ऊहा–पोह के साथ सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है, जो बहुत ही ज्ञानवर्द्धक है और विचारणीय भी।

प्रथम पर्व की कथा विश्वामित्र के आगमन से प्रारम्भ होती है और अन्त राम–सीता के वार्त्तालाप से होता है, जिससे अगले पर्व की घटनाओं की पूर्व–सूचना मिलती है। राम भ्रमण कर बाहर से आते हैं तो सीता से अपनी दिनचर्या का वर्णन करते हैं फिर राम सीता से उनकी दिनचर्या के विषय में पूछते हैं एक दिन सीता को उदास देखकर राम ने पूछा, क्या हुआ ? सखी सीता ने उत्तर दिया– "पता नहीं क्यों, छोटी माँ की एक कुबड़ी दासी मुझसे चिढ़ी–सी लगती है। आज जब माँ मुझे साड़ी और उत्तरीय दे रही थीं, तो उसने केकय देश की प्राकृत–भाषा में कुछ कहा। माँ ने उसी भाषा में उसे झिड़क दिया। मैं तुम्हारे जैसे पुरुषोत्तम की सहधर्मिणी हूँ। मैं तो पूरे परिवार को बाँधकर चलना चाहती हूँ।" एक बार पिताजी के पैर छूने गई थी उन्होंने कहा था– "बेटी ! तुम सबसे बड़ी हो। तुमसे मुझे बहुत अपेक्षाएँ हैं।" इस पर राम ने कहा– "सखी, तुम सच में 'नारीणामुत्तमा' वधू– संसार की समस्त स्त्रियों में श्रेष्ठ हो। कभी–कभी तुमसे बिछोह की कल्पना से ही मैं सिहर जाता हूँ।"

द्वितीय पर्व में राम–वनगमन; भरत का ननिहाल से वापस आना; अयोध्या से नागरिकों और वसिष्ठ के साथ राम से चित्रकूट में मिलना, राम का अयोध्या वापस लौटने से इन्कार करना, भरत का राम की चरण–पादुकाएँ लेकर नंदिग्राम में निवास आदि प्रसंगों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। सती अनसूया की भेंट का वर्णन करके द्वितीय पर्व की कथा का पटाक्षेप होता है।

तृतीय पर्व में राम, सीता और लक्ष्मण के दण्डकारण्य में अनेक ऋषियों से मिलन, शूर्पणखा–प्रसंग, खर–दूषण आदि राक्षसों का वध, रावण का संन्यासी–वेष में सीता का हरण, जटायु से रावण का युद्ध, जटायु मरण, राम द्वारा जटायु की अन्त्येष्टि आदि प्रसंगों का सजीव वर्णन किया गया है।

चतुर्थ पर्व में राम, सुग्रीव, हनुमान् की मैत्री, बालि–वध, सीता की खोज का उपक्रम, जटायु के बड़े भाई संपाति से मिलन, उसके द्वारा सीता के लंका में उपस्थित होने की सूचना आदि को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

पंचम पर्व में हनुमान् का सीता की खोज के लिए लंका प्रस्थान, रावण के महल में हनुमान् द्वारा सीता की खोज, रावण के महल का अति श्रृंगारिक चित्रण, लंका–दहन, हनुमान् की सीता से भेंट आदि घटनाओं के वर्णन बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। इस पर्व में रावण के विशाल भवन का ऐश्वर्यशाली वर्णन उल्लेखनीय है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार के अश्लील वर्णनों से अपने 'मानस' को मुक्त रखा है।

षष्ठ पर्व लंका–काण्ड से सम्बन्धित है। इसमें मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण से हुए युद्धों का प्रभावपूर्ण वर्णन है और यह पर्व राम राज्य के विशद वर्णन के साथ समाप्त होता है। सप्तम पर्व में सीता निर्वासन की दुःखद कथा का मर्मभेदी वर्णन हुआ है।

रामगाथा उपन्यास अपने ढंग का प्रथम हिन्दी उपन्यास है जो उपन्यास की दृष्टि से अत्यन्त सफल, पठनीय, चिन्तनीय और संग्रहणीय भी है। पुस्तक का मुद्रण साफ सुथरा; पर कतिपय त्रुटियों से युक्त, कागज उत्तम, तथा मुख–पृष्ठ आकर्षक है। मूल्य भी अधिक नहीं प्रतीत होता। उपन्यास भारतीय संस्कृति और उसकी स्वस्थ परम्पराओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने में सफल है।

पुस्तक– रामगाथा (उपन्यास), **लेखक**– डॉ० रमानाथ त्रिपाठी,
प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
संस्करण– १९९८, **पृष्ठ संख्या**– २१६, **मूल्य**– रु० १५०/–

(पृष्ठ ६ का शेष)
राजनीतिक उत्तराधिकारी जवाहर ! तू ने मेरे मुँह में 'हे राम !' रख दिया; मेरे नाम को भुनाते रहने के लिए मेरी 'समाधि' कई एकड़ में बनवा दी और उस पर 'हे राम !' लिखवा दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर तोहमत मढ़ दी और उसे खत्म कर डालने में कोई कसर नहीं रखी। तू भूल गया कि कभी मैं वर्धा में जमनालाल बजाज के साथ संघ का शिविर देखने गया था और वहाँ यह देखकर फूला नहीं समाया था कि जो मैं नहीं कर पाया, वह संघ के संस्थापक डॉ० हेडगेवार ने कर दिखाया। शिविर में छुआछूत के कहीं दूर-दूर तक कोई लक्षण नहीं मिले मुझे। डॉ० हेडगेवार ने अपनी प्रणाली बतलाकर मेरा पूरा सन्तोष कराया था इस अद्‌भुत कार्य के बारे में। तू भूल गया कि डॉक्टर हेडगेवार एक भूतपूर्व क्रान्तिकारी और कांग्रेसी थे। तू यह भी भूल गया कि डॉक्टर ने देश की पुरानी बीमारी का सही इलाज खोज लिया था। मुझे बहुत धक्का लगा यह देखकर कि महाराष्ट्र में मेरे नाम पर कांग्रेसियों ने संघवालों ही नहीं, चितपावन ब्राह्मणों पर भी सामूहिक हमले किये; उनकी हत्याएँ कीं; उनके घर फूँके। भला हो न्यायाधीश आत्माराम का, जिन्होंने 'दूध का दूध और पानी का पानी' कर दिया। अरे ! अभियोजन ने तो संघ का कहीं जिक्र तक नहीं किया था मेरे कत्ल के मुकदमे में।

कुछ और भी भयंकर भूलें हुई मुझसे ताकि मेरी महात्मा की छवि पर आँच न आये। पाकिस्तान के रूप में भारतवर्ष से काट दिये गये भू-भाग-हिन्दू-विहीन कर दिये गये। मुहम्मद बिन कासिम से लेकर बहादुरशाह 'जफर' तक (और वायसराय माउण्टबैटन तक भी) जो नहीं हो पाया था, वह मेरी अदूरदर्शिता ने कर दिखाया। मोहम्मद अली तथा शौकत अली के बाद मैं न जाने कैसे मौलाना अबुल कलाम आजाद और डॉ० जाकिर हुसेन के प्रभाव में आ गया। शिक्षा-विशेषज्ञ के रूप में डॉ० जाकिर हुसेन से मैंने जो बेसिक रीडरें लिखवाकर बिहार के प्राइमरी स्कूलों में चलवायीं, उनमें 'बादशाह राम' और 'बेगम सीता' लिखा देखकर बिहार वालों ने उनकी होली जला डाली थी, तब उनका पढ़ाया जाना बन्द हुआ। मेरे प्रभाव से एकत्र लाखों रुपये के चन्दे से डॉ० जाकिर हुसेन ने 'जामिया मिलिया इस्लामिया' के रूप में दिल्ली में एक और 'अलीगढ़' की स्थापना की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के नाते हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का समर्थन किया और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा स्थापित कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार का अभियान चलवाया; पर हुआ क्या कि मैं हिन्दी के बजाय 'हिन्दुस्तानी' के नाम पर उर्दू भाषा और फारसी लिपि को देश पर लादे जाने का समर्थक बन गया। लेकिन पुरुषोत्तमदास टण्डन मेरे आड़े आ गये और हिन्दी के आगे 'हिन्दुस्तानी' को हारना पड़ गया। देश-विभाजन और 'हिन्दुस्तानी' का घोर विरोध करने वाले टण्डन को मैंने क्षमा नहीं किया। अपने विरोधी को क्षमा करना मेरे स्वभाव में था ही नहीं, क्या कहूँ उस पट्ट शिष्या डॉ० सुशीला नायर को, जिसने मेरे साथ रात में निर्वस्त्र लेटने की बात स्वीकार करके मेरे ब्रह्मचर्य-व्रत, जो बा की सहमति से मैंने लिया था, की परीक्षा के रहस्य का उद्घाटन कर दिया। मैं कोई रामकृष्ण परमहंस तो था नहीं। अतः 'मेरे सत्य के साथ (इस) प्रयोग' का औचित्य कौन समझेगा ? वैसे औचित्य था भी तो नहीं। मेरे 'महात्मा' होने के कारण लोगों ने मेरी हर उस नितान्त अनुचित बात या जिद को भी माना, जो तत्काल या बाद में देशघाती सिद्ध हुई। व्यक्ति नहीं, वेष अधिक पुजता है इस देश में। इसलिए देश ने मुझे पूजा और ऐसी पूजा का जो फल होता है, उसे भोगा; भोग रहा है और आगे न जाने कब तक भोगेगा।

सबसे ज्यादा दुःख तो मुझे इस बात से पहुँचता है कि जो आये दिन आज भी मेरी हत्या करते रहने से नहीं चूकते, वह संघवालों को 'गान्धी के हत्यारे' कहते हैं। एक से एक चोर, उचक्के, लुच्चे, लफंगे, लुटेरे, झूठे, मक्कार, दगाबाज, कातिल, डकैत मेरी मूर्ति को भी चैन नहीं लेने देते, उसके नीचे बैठते हैं धरना देने, अनशन करने। मेरे धरना, अनशन, सत्याग्रह, स्वदेशी, सत्य, अहिंसा, सबकी हमेशा ऐसी-तैसी करते रहने वाले जब मेरी 'जय' बोलते हैं, तो जी चाहता है, जमीन में धँस जाऊँ। गोडसे ने अच्छा किया, जो मुझे मार दिया। मैं उसका बहुत-बहुत आभारी हूँ, अन्यथा यदि कहीं मैं १२० वर्ष तक जिन्दा रहता, जैसी कि मेरी इच्छा थी, तो मैं घुट-घुटकर तिल-तिल मरता रहता और मुझे आह भी न भरने देते ये लोग। नाथूराम ! तुझे धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद ! तू ने कलंक लेकर भी मुझे निष्कलक कर दिया और ये है कि तेरी आवाज भी लोगों तक नहीं पहुँचने देते !

अन्त में मेरी प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि मोहनदास करमचन्द गान्धी भले ही फिर से पैदा हो जाय; पर 'महात्मा गान्धी' दूसरा न पैदा हो, नहीं तो गोडसे को भी फिर पैदा होने से कोई रोक नहीं पायेगा। ❒

— आनन्द मिश्र 'अभय'

सामाजिक समरसता

गरीब और निर्बल वर्ग के लिए सार्थक कदम

☆ निर्बल वर्ग हेतु १,३५,००० इन्दिरा आवास निर्मित।

पिछड़े वर्ग के छात्रों हेतु २११ करोड़ रु. की छत्रपति साहू जी महाराज छात्रवृत्ति योजना तैयार। पिछड़े वर्ग के निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति हेतु स्वीकृत बजट में २६६ प्रतिशत की भारी बढ़ोत्तरी।

☆ विकलांगों को सरकारी नौकरियों में ३% का आरक्षण तथा निःशुल्क बस यात्रा सुविधा।

☆ महिलाओं के लिए 'महिला उत्थान योजना'।

☆ वृद्धावस्था पेंशन वितरण में धांधली समाप्ति हेतु न्याय पंचायत स्तर पर ही पेंशन वितरण।

☆ बुनकर, कुम्हार, लोहार, सुनार, मछुआरे, बढ़ई, चर्मकार, हस्तशिल्पी आदि के उत्थान के लिए "विकास परिषद्" की स्थापना।

पूंजी निवेश : विकास का आधार

☆ नई औद्योगिक नीति, निर्यात नीति एवं खनिज नीति अनुमोदित। औद्योगिक विकास हेतु 'इन्फ्रास्ट्रक्चर इनशियेटिव फंड की स्थापना।

☆ निजी क्षेत्र में कैप्टिव पावर प्लांट लगाने को प्रोत्साहन। कैप्टिव पावर कंजम्पशन पर अधिभार माफ।

☆ इलाहाबाद में १० हजार करोड़ रुपये की रिफाइनरी एवं ५०० मेगावाट के पावर प्रोजेक्ट की स्थापना का निर्णय।

☆ जर्मनी की बी.एम.डब्लू कम्पनी तथा हीरो साइकिल कम्पनी के सहयोग से लक्जरी कार का उत्पादन प्रारम्भ।

☆ ग्रेटर नोयडा में "खिलौना नगर" की स्थापना के लिए १०० एकड़ भूमि की व्यवस्था।

☆ दिल्ली में "उद्योग बन्धु कार्यालय" की स्थापना।

☆ नोयडा में विश्व व्यापार केंद्र तथा इलेक्ट्रानिक सिटी की स्थापना का निर्णय।

☆ उद्यमियों की समस्याओं के हल हेतु 'सिंगिल टेबिल सिस्टम अण्डर वन रूफ' प्रणाली लागू।

☆ इन्फार्मेशन टेक्नालॉजी विभाग की स्थापना का निर्णय।

फिल्म को उद्योग का दर्जा (प्रदेश के भीतर ५० प्रतिशत से अधिक फिल्मांकन पर मनोरंजन कर में ६ माह तक ५० प्रतिशत की छूट तथा ७५ प्रतिशत फिल्मांकन करने पर एक वर्ष तक १०० प्रतिशत की छूट।

☆ आगरा, नोएडा, देहरादून एवं वाराणसी में साफ्टवेयर टेक्नालॉजी पार्क तथा कानपुर एवं इलाहाबाद में इन्फार्मेशन टेक्नालॉजी इन्स्टीट्यूट की स्थापना का प्रस्ताव।

समग्र विकास

का

एक वर्ष

हमारी परिकल्पना

किसान उठेगा तो गाँव उठेगा।
गाँव उठेगा तो देश उठेगा।

— कल्याण सिंह, मुख्यमंत्री, उ.प्र.

☆ सड़कों के विकास के लिए १३६५ करोड़ रुपये का प्राविधान। 'सड़क निधि' की स्थापना।

☆ "मार्ग विकास नीति" घोषित।

☆ ३०५३३ कि.मी. राष्ट्रीय मार्ग/राज मार्ग/ग्रामीण/जिला मार्ग गड्ढा मुक्त।

☆ राष्ट्रीय मार्गों पर ५ सेतु एवं १ रेल उपरिगामी सेतु का कार्य पूर्ण। नाबार्ड योजना के अन्तर्गत २६३ सड़कें तथा ३६ पुलों का निर्माण।

☆ दिल्ली-नोयडा के बीच आठ लेन वाले पुल हेतु निजी क्षेत्र से ३३४ करोड़ रुपये का पूंजी निवेश।

☆ २६.४ कि.मी. लम्बे नोयडा, ग्रेटर नोयडा एक्सप्रेस हाईवे पर कार्य प्रारम्भ।

☆ इलाहाबाद में २ हजार मेगावाट का तापीय विद्युत गृह बनाने के लिए अमेरिकी मेसर्स आई.एस.एन. इन्टरनेशनल, वाशिंगटन को अनुमति।

☆ २३०७ मेगावाट की निजी क्षेत्र की बिजली परियोजना हेतु पी.पी.ए. हस्ताक्षरित।

☆ विद्युत व्यवस्था में सुधार हेतु 'नियामक आयोग का गठन।

☆ ३१३३ मेगावाट तापीय विद्युत के उत्पादन, ८५.७१ मिलियन यूनिट दैनिक तापीय/जलीय विद्युत उत्पादन तथा ६४२ मिलियन जलीय विद्युत उत्पादन का नया कीर्तिमान। पी.एल.एफ. ४६ प्रतिशत से बढ़कर ५८ प्रतिशत हुआ।

- ☆ ५० करोड़ से अधिक पूंजी निवेश वाली औद्योगिक इकाईयों को व्यापार कर से छूट की सुविधा की अवधि १२ वर्ष से बढ़ाकर १५ वर्ष की गयी।
- ☆ दिल्ली से विस्थापित उद्योगों को प्रदेश में स्थापित करने पर कर की छूट/दर में कमी।

प्रक्रियाओं का सरलीकरण

- ☆ रजिस्ट्री प्रक्रिया का सरलीकरण।
- ☆ एक स्तरीय मण्डी शुल्क व्यवस्था।
- ☆ छोटे व्यापारियों को राहत देने के उद्देश्य से स्वतः कर निर्धारण योजना शुरू।
- ☆ वाहन पंजीकरण के कार्य का सरलीकरण। वाहन डीलर पंजीकरण के लिए अधिकृत।
- ☆ अल्पसंख्यक छात्रों को वजीफा के लिए आय प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की अनिवार्यता समाप्त।
- ☆ घरेलू विद्युत कनेक्शन की प्रक्रिया का सरलीकरण।
- ☆ मत्स्य पालकों को एकमुश्त पट्टा देने में प्रक्रिया का सरलीकरण।
- ☆ व्यापार कर का सरलीकरण। कुलिया, मिठाई, अगरबत्ती व्यापार कर से मुक्त तथा कई अन्य वस्तुओं पर भी व्यापार कर में छूट।

कानून व्यवस्था

- ☆ लखनऊ के २१ वर्ष पुराने शिया–सुन्नी विवाद को हल करके जुलूस शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न।
- ☆ सभी त्यौहार तथा हरिद्वार महाकुम्भ शान्तिपूर्वक संपन्न।
- ☆ माफियाओं के विरुद्ध कार्रवाई हेतु "स्पेशल टास्क फोर्स" का गठन।
- ☆ अपराधियों से साँठ–गाँठ रखने वाले ११३४ चिह्नित पुलिस कर्मियों के खिलाफ कार्रवाई। सराहनीय कार्य करने वाले २४८७२ पुलिस कर्मी पुरस्कृत तथा १२ को आउट ऑफ टर्न प्रोन्नति।
- ☆ एफ.आई.आर. दर्ज करने की अनिवार्य व्यवस्था।

क्षेत्रीय संतुलन

- ☆ बुन्देलखण्ड विकास निधि के लिए ४० करोड़ रु., पूर्वांचल विकास निधि के लिए १२० करोड़ रु. तथा उत्तरांचल की वार्षिक उप–योजना हेतु ८६० करोड़ रुपये का प्राविधान।

अन्य महत्वपूर्ण निर्णय एवं कार्यक्रम

- ☆ मुख्य मंत्री द्वारा प्रत्येक सोमवार को प्रातः ६ बजे से ११ बजे तक जनता दर्शन कार्यक्रम में जनसमस्याओं की व्यक्तिगत सुनवाई। जिलाधिकारी व पुलिस अधीक्षकों द्वारा प्रतिदिन १० से १२ बजे तक कार्यालय में उपस्थित रहकर जन समस्याओं का निराकरण।
- ☆ शीघ्र ही "युवा एवं खेल नीति" की घोषणा।
- ☆ स्वाधीनता सेनानियों की पेंशन १५००/– से बढ़ाकर २२५०/– प्रतिमाह।
- ☆ सार्वजनिक वितरण प्रणाली में धांधली रोकने हेतु नये राशन कार्ड की व्यवस्था।
- ☆ होमगार्ड्स के दैनिक भत्ते में ५ रु. की वृद्धि।
- ☆ 'हमारे दस' योजना के अन्तर्गत वन विभाग की घर बैठे पेड़ लगवाने की योजना।
- ☆ उत्तरांचल राज्य के गठन का प्रतिबद्ध प्रयास।
- ☆ पर्यटन नीति का उदारीकरण। उद्यमियों को टैक्स अवस्थापना सुविधा उपलब्ध कराने हेतु टैक्स हाली डे योजना, सुख साधन कर का सरलीकरण, विद्युत व्यवस्था में राहत, मनोरंजन कर में छूट आदि सुविधाएँ देने का निर्णय।

इलाहाबाद से हल्दिया तक जल परिवहन सेवा।

स्वास्थ्य सेवाओं को लोकोपयोगी बनाने हेतु दवाओं की खरीद की धनराशि को गत वर्ष के लिए प्राविधानित ३४ करोड़ रुपये से बढ़ाकर ७० करोड़ रुपये किया गया।

अतिवृष्टि, बाढ़ तथा भूस्खलन से प्रभावित क्षेत्रों में भू राजस्व, सिंचाई देय तथा तकावी आदि के राजस्व देय तथा विद्यार्थियों की फीस माफ।

बाढ़ पीड़ितों की तात्कालिक सहायता हेतु १०२ करोड़ रुपये स्वीकृत। प्रधान मंत्री राहत कोष से भी २०० करोड़ रुपये की सहायता।

२६० करोड़ की विधायक निधि की स्थापना।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक पहचान तथा जन भावना को देखते हुए नवसृजित २ जनपदों के पुराने नाम चित्रकूट तथा हाथरस वापस।

प्रदेश सरकार की विकास—दृष्टि

नियोजन की दिशा - नीचे से ऊपर की ओर,

विकास की धारा - गाँव से नगर की ओर,

अर्थ-व्यवस्था - कृषि से उद्योग की ओर,

अर्थ-नीति - निवेश से रोजगार की ओर,

निवेश - सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र की ओर,

विकास दर - उत्पादन से उत्पादकता की ओर,

समाज के कल्याण की दिशा - विपन्नता से सम्पन्नता की ओर।

उत्तर प्रदेश में पहली बार

- कुल बजट का ७० प्रतिशत भाग ग्रामीण विकास हेतु।
- विधायक निधि का गठन।
- सरकारी सेवा में चयन की पारदर्शी प्रक्रिया।
- पंचायतों तथा नगरीय निकायों को राजकीय करों की कुल आय का ११% सीधे दिये जाने का निर्णय।
- नकल मुक्त परीक्षा।
- विद्युत नियामक आयोग का गठन।
- चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं मुक्त विश्वविद्यालय स्थापना का निर्णय।
- सम्पत्ति में पति–पत्नी का संयुक्त नाम।
- सड़क निधि की स्थापना।
- टेक्नॉलोजी मिशन की स्थापना।
- सूचना का अधिकार देने की पहल।

उत्तर प्रदेश देश में अग्रणी

- खाद्यान्न उत्पादन में।
- दुग्ध उत्पादन में।
- गन्ना एवं चीनी उत्पादन में।

सबका विकास-सबका उत्थान - यही संकल्प - यही अभियान

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

अभिमत

हिन्दूधर्म, राष्ट्रधर्म के संरक्षक–संवर्धक हिन्दू पत पातशाही–संस्थापक छत्रपति शिवाजी (शिवभूपति) का माता जिजाबाई के साथ सुन्दर व्यवस्थित दरबार की शोभा मुखपृष्ठ पर सँजोए 'राष्ट्रधर्म' की प्रति प्राप्त हुई। पृष्ठ ३ पर गोस्वामी तुलसी दास की मृत्यु में श्रावण कृ. ३ सन् १६८० छपा है जबकि संवत् १६८० होना चाहिए।

पृष्ठ ४ पर प्रस्तुति में मेरे लेख को पृष्ठ ६७ पर बताया गया है जबकि यह ७० पर है। इसी प्रकार 'चिट्ठी आई पेरिस से' का पृष्ठ ६८ न होकर पृष्ठ ६७ होगा।

पृष्ठ ११ एवं १४ पर डॉ. आशीर्वादम ने मद्रास व चेन्नई के बारे में एक अच्छी नई जानकारी दी है। अन्यथा मेरी जानकारी के अनुसार चेन्नई विजयनगर साम्राज्य (हम्पी) का एक समुद्रतटीय ग्राम था जिसका पुरबी किनारा 'मद्रासपट्टम' अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। सन् १६३९ ई. में चेन्नई एवं अन्य अगल–बगल के ग्राम तत्कालीन हम्पी के शासक चन्द्रगिरि द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को दिया गया। आर्मागन में ई. इं. कं. के प्रधान फ्रांसिस डे ने व्यापार का मुख्यालय स्थापित किया। सन् १६४० में उत्तर की ओर सेंट जार्ज किला बनवाया। बाद में यह (चेन्नई या मद्रास) १०० वर्षो तक ब्रिटिश उपनिवेश रहा।

जहाँ पं. वचनेश त्रिपाठी जी का लेख 'आब–आब कहि मरि गया' प्रेरणादायक है, वहीं डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर का 'चन्देलों के इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्रोत' एवं राजशेखर व्यास का 'भारतीय आचार–मर्यादाओं का मर्म रहस्य' भारतीय राष्ट्रीय जनमानस को दिशा बोध दिलाने वाला है। सम्पादकीय तो समयानुकूल सटीक है ही।

– डॉ. श्रीकृष्ण सिंह सोंढ
चित्तरपुर, रामगढ़ (हजारीबाग)

'राष्ट्रधर्म' का जून ९८ का अंक पढा। प्रत्येक अंक की भाँति इस अंक में भी सभी लेख एवं रचनाएँ उत्कृष्ट एवं रोचक थी। ... 'संविधान की समीक्षा', 'क्या पृथ्वी खत्म होती जा रही है' तथा 'कौन थे भर', अपने आप में एक नवीनतम जानकारी लिए हुए थे।

यह तो सर्वविदित ही हो गया है कि आजकल जो इतिहास विद्यालयों मे पढ़ाया जा रहा जिसमें वास्तविकता कम और काल्पनिकता ज्यादा है। उसे अपने असली स्वरूप से भटकाया जा रहा है। लेकिन ऐसी शंकाएँ राष्ट्रधर्म पत्रिका के लेखों से पैदा नहीं होनी चाहिए। पं. वचनेश जी जिनके पास स्वतंत्रता की लड़ाई के अनुभवों का खजाना है। यह बात उनके लेखों से स्पष्ट होती है। तथा श्रीमती आशारानी जी भी एक दमदार विद्वान लेखिका हैं। उनकी विद्वत्ता में भी कोई संदेह नहीं है मगर मेरे जैसी युवा पीढ़ी जो आपातकाल के बाद पैदा हुई है उसे आजादी की लड़ाई के इतिहास के बारे में अलग–अलग लेखकों में भिन्न–भिन्न विरोधाभास यदि 'राष्ट्रधर्म' जैसी पत्रिकाओं में मिलता है तो वह किस पर विश्वास करे?

– जितेन्द्र प्रसाद सूत्रधार
सागवाड़ा, राजस्थान

अगस्त ९८ के मुखपृष्ठ पर भारत माता का विकृत चित्र प्रकाशित हुआ है। आज तक इस रूप में कभी भी भारतमाता का कहीं चित्र नहीं देखा। भारतमाता के पूर्व प्रकाशित कई चित्र या खण्डित भारतमाता का द्रवित रूप आदि हो सकते थे।

कृपया यह ध्यान दें कि 'राष्ट्रधर्म' की गरिमा के अनुरूप चित्र ही समय–समय पर प्रकाशित हों तभी अपना कुछ संदेश ग्रहणीय होगा।

–सतीश अग्निहोत्री
राजाजीपुरम्, लखनऊ

अगस्त माह की 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका पढ़ी। वचनेश त्रिपाठी द्वारा लिखित 'आत्मसाक्ष्य' लेख प्रशंसनीय है। इसी प्रकार श्री अंशुमान शुक्ल द्वारा परमाणु बम की ओर ध्यान दिलाने का सफल प्रयास रहा है।

श्री हृदयनारायण दीक्षित का लेख सिर के ऊपर से गुजर गया। कृपया "मधुरेण समापयेत्" को पुनः सर्वेश चन्द्र शर्मा के हाथों में सौंप दें, क्योंकि वे एक अच्छे व्यंग्यकार हैं। शंकर पुणतांबेकर द्वारा लिखित कथानक मूल कथा से भटक जाता है।

"शिवजी पर जलाभिषेक क्यों" जैसे लेखों की 'राष्ट्रधर्म' को अधिक आवश्यकता है। इस बार कहानियों की संख्या नगण्य है। तथा मुखपृष्ठ देखकर 'राष्ट्रधर्म' का आधुनिकता की ओर गमन करने का बोध हुआ।

–आरती शुक्ला
वी.आई.पी. रोड, कैण्ट, लखनऊ

मैं पिछले ६ माह से राष्ट्रधर्म का पाठक हूँ। पत्रिका अपनी सस्कृति को सहेजकर युगपरिवर्तन की दिशा में सक्रिय है। जुलाई ९८ अंक में 'आम' और 'बादल' रचनाओं के स्थान पर कोई राष्ट्रीयतावादी रचनाएँ होतीं तो ज्यादा अच्छा लगता।

–महेन्द्र दीक्षित *भिन्ड (म.प्र.)*

'राष्ट्रधर्म' में अच्छे लेख, कहानियाँ व कविताएँ पढ़ने को मिलती है। परन्तु उसमें जो जर्दा का विज्ञापन छपता है उससे पत्रिका की छवि धूमिल होती है!

–देशराज, भुच्चोमंडी

मैं 'राष्ट्रधर्म' को कई वर्षो से पढ़ता आ रहा हूँ। किन्तु इधर जनवरी ९८ से लेखों में भारीपन लगता है। कुछ लेखों की विषय सामग्री तो पिछले वर्षो प्रकाशित हुई होती है। पत्रिका का वैविध्य पक्ष समाप्त होता जा रहा है। सागर के आगर जैसे लम्बे लेख अनावश्यक लगे। अधीश कुमार का लेख अन्य पत्रों में भी छपा है। कृपया 'राष्ट्रधर्म' में जूठन देने से बचें।

–राजमणि मिश्र
लंका, वाराणसी

भारतीय संस्कृति के संवाहक 'राष्ट्रधर्म' का अगस्त ९८ विशेषांक 'अपनी स्वतन्त्रता के पचास वर्ष' बहुआयामी कलेवर से सम्पृक्त है। इसका प्रत्येक अंश सांस्कृतिक चिन्तन में अवगाहन कराता है। अनुसंधानपूर्ण आलेख, कविताएँ एवं कहानी के अतिरिक्त बाल वाटिका समग्रता की प्रतीक है। जोगेश्वरी सधीर ने ज्वलन्त प्रश्न 'कब थमेगा कश्मीर में हिन्दुओं का संहार' लेख में सामयिक समस्या पर सराहनीय लेखन किया है। डॉ० गणेशदत्त सारस्वत की बाल वाटिका में 'वर्षा' बालगीत बहुत अच्छा लगा।

– डॉ० हरि प्रसाद दुबे
रामपुर भगन, फैजाबाद

'राष्ट्रधर्म' का "अपनी स्वतन्त्रता के पचास वर्ष" विशेषांक पढ़ा।

इस विशेषांक में अपनी स्वतन्त्रता के पचास वर्ष से सम्बन्धित ४, ५ साधारण लेखों के अतिरिक्त कोई सारगर्भित सामग्री पढ़ने को नहीं मिली, जबकि अंक में २२ तो लेख ही दिये हैं कथाएँ अलग से।

– सीताराम चतुर्वेदी 'अटल'
सकरार, झाँसी

मैं पिछले कई वर्षों से राष्ट्रधर्म पत्रिका का पाठक हूँ। पत्रिका के सभी लेख प्रेरणादायक ही होते हैं। किन्तु कुछ महीनों से राजबहादुर 'विकल' व दामोदर स्वरूप 'विद्रोही' द्वारा रचित कविताएँ पढ़ रहा हूँ। कविताएँ ओजपूर्ण व राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण होती हैं। अगस्त अंक में 'विकल जी' की कविता 'ओ चन्दन तरु ? तुझको प्रणाम' में विकल जी के उच्च उद्‌गार हैं।

"देववाणी शिक्षण" भी बहुत अच्छा है बच्चों के काम का है जो हिन्दी एवं संस्कृत विषय लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। लिख कर ले जाते हैं। पत्रिका को अधिक शिक्षण युक्त बनाने का यत्न करें। पत्रिका का मूल्य १० या १२ रु० है जो बहुत कम है। इसका मूल्य १५ रु० से कम नहीं होना चाहिए।

–कैप्टन एम०एल० राठौर
हुसैनपुरा, शाहजहाँपुर

'राष्ट्रधर्म' का अगस्त विशेषांक मेरे हाथ में है। यूँ तो मैं आपके पत्र का पिछले ६ या ७ वर्षों से नियमित पाठक हूँ। परन्तु मैं पहली बार लिख रहा हूँ। विद्वान लेखक श्री अनुपम मिश्र की यशस्वती लेखनी से लिखी "सागर के आगर– जिन्हें हम भुला बैठे" पढ़कर अभिभूत हो गया। वास्तव में इतनी तथ्यपरक जानकारियाँ, इतना सटीक विश्लेषण इस विषय में अभी तक नहीं आता। इस विषय में अभी तक नहीं मिला।

– नीरज बरनवाल
आम्रपाली, फुसरो बोकारो, बिहार

'राष्ट्रधर्म' अंक देखने को मिले हैं। साहित्य और संस्कृति विचारों से ओत–प्रोत रचनाएँ पढ़कर प्रसन्नता होती रही है; परन्तु पिछले दिनों से पत्रिका के कुछ नियमित स्तम्भ बन्द करने वाली बात समझ में नहीं आती है। बाल वाटिका में प्रकाशित रचनाएँ पहले से काफी बेहतर हैं। सम्पादकीय विचार अपने आप में काफी कुछ कहते रहते हैं, प्रत्येक रचना अपना उद्देश्य पूर्ण करती दिखती हैं।

–दुर्गा प्रसाद शुक्ला 'आजाद'
जानकीपुरम्, लखनऊ

मैंने पहली बार 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका झाँसी स्टेशन पर (बुक स्टाल) पुस्तक विक्रय केन्द्र से खरीदी। पत्रिका आद्योपान्त पढ़ गया पत्रिका प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय है। मुख पृष्ठ आकर्षक है। दृष्टिकोण 'भारत ही माता है...' सारगर्भित लेख है। कहानी 'भागो बुआ' अच्छी लगी। उच्च स्तरीय पत्रिका के प्रकाशन के लिए बधाई।

–श्याम सुन्दर 'सुमन
भीलवाड़ा, राजस्थान

'राष्ट्रधर्म' का अगस्त १९९८ विशेषांक 'अपनी स्वतन्त्रता के पचास वर्ष' पढ़ा। विशेषांक बहुत ही आकर्षक, ज्ञानवर्धक एवं रोचक लगा। स्वतन्त्रता संग्राम एवं राष्ट्रभक्ति पूर्ण लेख एवं कविताएँ बहुत अच्छी लगीं। देववाणी शिक्षण एवं मधुरेण समापयेत् स्थायी स्तम्भ मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। 'राष्ट्रधर्म' मिलने के बाद मैं पूरी पत्रिका पढ़ता हूँ और फिर अपने मित्रों को पढ़ने के लिए दे देता हूँ। राजनीति और स्वतन्त्रता के लेख मुझे बहुत प्रेरणादायी लगे। यह एक संग्रहणीय अंक है।

– जगदीश दान
झलालड़, नागौर (राजस्थान)

अगस्त १९९८ का विशेषांक 'राष्ट्रधर्म' का राष्ट्र भावना प्रधान रहा। 'अपरिहार्य था परमाणु–विस्फोट' भारत की राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा हेतु जरूरी था। प्रो० बलराज मधोक का नई सामाजिक क्रान्ति का लेख सामयिक है। प्रेरक है।

– नारायण मघवानी
उज्जैन, मध्य प्रदेश

'राष्ट्रधर्म' के अगस्त अंक में प्रकाशित कमल किशोर 'भावुक' की रचना 'ओ कलमधर्मा!' रुचिकर एवं शिक्षाप्रद लगी, ऐसी रचना प्रकाशित करने पर साधुवाद स्वीकारें, अन्त में एक सुझाव 'चित्त के स्वर' स्तम्भ पुनः प्रारम्भ करें तो अच्छा होगा।

– सतीश 'सरस'
मोहद, (नरसिंहपुर)

'राष्ट्रधर्म' के सितम्बर ९८ में प्रकाशित सम्पादकीय सशक्त है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ–साथ देवनागरी अंकों का संविधान से मान्यता न मिलना वास्तव में राष्ट्र के साथ एक धोखा है। अभी तक जू० हाईस्कूल स्तर तक देवनागरी अंकों का प्रयोग किया जाता था परन्तु अब कक्षा ६ की नई पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग हो रहा है। सरकारी प्रकाशनों को छोड़कर प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में भी अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग है। ऐसी दशा में हमारे बच्चे देवनागरी अंकों के प्रयोग से दूर होते जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश सरकार को चाहिए कि हाईस्कूल स्तर तक देवनागरी अंकों का प्रयोग करने की व्यवस्था करे।

– राघवेन्द्र त्रिपाठी
राजकीय आदर्श विद्यालय,
बिसवाँ, सीतापुर

कमियाँ ढूँढ़े, हमें बतायें।
केवल नहीं, प्रशंसा गायें।।

मधुरेण समापयेत्

बैल से बकरी तक

– शंकर पुणतांबेकर

हलकू का एक बैल चोरी चला गया। हलकू को ताज्जुब इस बात का था कि चोर एक ही बैल को चुरा ले गया। चोर में इतना धरम कि जरूरत–भर चुराओ। महाजन तो हवेली वाला होता है, तब भी जितना बनता है, लूटता–खसोटता है। इसने सोचा ऐसे चोर के खिलाफ शिकायत दर्ज कराना पाप है। लेकिन उसकी औरत ने कहा– 'ऐसे चुप न बैठो, नहीं तो चोर कल दूसरा बैल भी ले जायेगा।'

हलकू को लगा घरवाली ठीक कह रही है, इसलिए वह पुलिस चौकी पहुँचा।

हवलदार ने उसकी शिकायत सुनकर कहा, गांधी बाबा कितने ऊँचे आदमी थे, जानते हो?

जी, हलकू बोला, उन्होंने तो देश आजाद कराया।

उनकी सीख क्या थी, यह भी तुम जानते होगे। वे कहते थे– दुश्मन से भी प्यार करो।

हाँ, जानता हूँ भैया! गांधी बाबा तो देवता थे देवता!

वे कहते थे दुश्मन तुम्हारे एक गाल पर चाँटा मारे, तो उसके सामने दूसरा गाल कर दो। दुश्मन इससे पानी–पानी हो जायेगा।

हलकू ने कोई जवाब नहीं दिया, बस सुनता रहा।

अब देखो हलकू, चोर तुम्हारा दुश्मन है। उसने तुम्हारा एक बैल चुराया है, तो गांधीजी का रास्ता पकड़ तुम उसे दूसरा बैल भी चुराने का मौका दो। चोर पानी–पानी हो जायेगा।

लेकिन इससे क्या मेरा पहला बैल वापस मिल जायेगा?

देखो भाई, हवालदार ने कहा, बैल तुम्हारा वापस मिले–न–मिले, हमने तुम्हारा फर्ज बता दिया गांधी के रास्ते पर चलने का।

मेरा बैल वापस नहीं मिला, तो मैं मर जाऊँगा। एक बैल से तो मैं खेती नहीं कर सकता, हलकू ने अपनी कठिनाई रखी।

तो मत चलो गांधी के रास्ते पर दर्ज करा दो शिकायत, हवलदार बोला, गांधी ने तुम लोगों के लिए कितना किया। जेल गये, भूखे रहे, तन पर पूरे कपड़े नहीं पहने और तुम्हीं लोग अब उनके रास्ते पर चलना नहीं चाहते। इसी कारण तो देश उठ नहीं पा रहा है। इसी कारण तो चोर तुम्हारे बैल चुरा रहे हैं। आज एक बैल चुराया है, देख लेना कल वे तुम्हारा दूसरा बैल भी चुराकर ले जायेंगे।

हलकू डर गया और बिना शिकायत दर्ज कराये ही घर लौट आया।

हलकू की औरत 'गोदान' की धनिया किस्म की औरत थी। हलकू से हवलदार की बातें सुनीं, तो उत्तेजित होकर बोली, हम गाधी बाबा के रास्ते चलें या न चलें, कल हमारा दूसरा बैल भी चोरी चला जायेगा; क्योंकि जो लोग हमें गांधी बाबा का उपदेश देते हैं, वे ही अपनी–अपनी कुर्सियों में बैठे गांधी बाबा का गला घोंट रहे हैं। मैं जाती हूँ और दर्ज कराती हूँ चोरी की शिकायत।

और सचमुच वह चौकी की तरफ निकल पड़ी। हवलदार ने उसे आते देख लिया। तीखी मिरच आ रही है, यह देख वह वहाँ से भागा।

शाम को खाना खा लेने के बाद हलकू पड़ोसी बदरी के साथ पंचायत टी०वी० देखने जाता। आज बदरी बुलाने आया, तो उसने चलने से मना कर दिया।

जाओ जाओ, उसकी घरवाली बोली, दुःख–पीड़ा भुलाने के लिए ही तो सरकार ने यह डिब्बा हम लोगों के लिए भेजा है और तुम दुःख–पीड़ा में ही उसे देखने नहीं जा रहे हो। वे कैसी अच्छी–अच्छी औरतें दिखाई जाती हैं– साबुन की, तेल की, पाउडर की, और न जाने किन–किन चीजों की, जिन्हें गांधी बाबा कह गये थे आजादी के बाद देश में जरूर पैदा करना।

यह सुन बदरी ने कहा, भौजी! कहीं तुम इस डिब्बे में गलती से पहुँच जाओ, तो डिब्बे को आग ही लग जाये।

हलकू बदरी के साथ टी०वी० देखने जरूर गया, लेकिन वहाँ उसका मन नहीं लग सका।

सरपंच को उसके बैल की चोरी की खबर पहले

ही मिल गई थी। सो उसने उस[illegible] देख हलकू, ऐसे गम में डूब जाने से काम नहीं बनता। तुम बैल के लिए कर्ज की दरखास्त दे दो। आजकल तो बैंकों से कर्ज मिल जाता है।

यह सुन हलकू की जान–में–जान आयी। सरपंच ने उसे विस्तार में सब समझा दिया।

दूसरे ही दिन वह बैंक पहुँचा।

बैंक में घुसते ही उसे काउण्टर के पीछे की ओर दीवार पर टँगा गांधी बाबा का फोटो दिखा। वह डरा और उसे हवलदार की याद आयी। बैंक बाबू जरूर अड़ंगा लगायेगा। कहेगा– तुम बैल के लिए कर्ज न लो, बकरी के लिए लो।

फारम चाहिए, मुझे कर्ज लेना है– उसने काउण्टर पर बैठे बाबू से कहा।

बाबू ने सुना नहीं, तो हलकू को लगा सच्चा गांधी भक्त है। इसने अपने कानों पर हाथ धरे हैं– बुरा नहीं सुनता। कर्ज बुरी चीज है न।

उसी की बगल में बैठे एक दूसरे बाबू के सामने खड़ा हुआ। उसने हलकू की ओर देखा तक नहीं। हलकू ने सोचा– यह भी गांधीवाला है, अपनी आँखों पर हाथ धरे है। बुरा नहीं देखता। गरीबी बुरी चीज है न।

अब वह तीसरे बाबू के सामने खड़ा रहा। यह बाबू किसी हिसाब में फँसा हुआ था, सो हाथ के इशारे से ही हलकू को वहाँ से चले जाने को कहा। हलकू के विचार आया, यह भी गांधी का रास्ता पकड़े है। मुँह पर हाथ धरे है– बुरा नहीं बोलता। 'हटो–हटो' कहना बुरी चीज है न।

आखिर चपरासी ने उसकी मदद की, वह उसे एक कमरे में बाबू के पास ले गया। हलकू ने देखा– कहीं यहाँ तो गांधी बाबा नहीं हैं। नहीं थे। वह आश्वस्त हुआ– यहाँ काम बनेगा।

और बाबू ने उसकी बात सुनी। कर्ज का फार्म भर दिया और कहा कि इस पर सरपंच और पटवारी की तस्दीक कराकर लाओ।

वह पटवारी के पास पहुँचा। पटवारी के कमरे में गांधी बाबा का फोटो देखकर वह डरा। पटवारी कहीं कानों पर, आँखों पर और मुँह पर हाथ धरे होगा, तो मुश्किल में पड़ जाऊँगा।

लेकिन पटवारी के कान, आँख, मुँह तीनों खुले थे। उसने हलकू से कहा, मैं तस्दीक कर दूँगा लेकिन मेरा कमीशन।

कमीशन ? तो क्या मैं गलत तस्दीक करा रहा हूँ ? हलकू ने कहा– गांधी बाबा की तस्वीर टाँगें हो और ऐसी गलत बात करते हो ?

देखो हलकू, पटवारी बोला– गांधी बाबा इतने बड़े थे कि हम उनके रास्ते पर नहीं चल सकते। तुम्हीं सोचो, अब मैं तुम्हारी तस्दीक न करूँ सही बात की होते भी तो क्या तुम गांधी की तरह भूख–हड़ताल कर सकते हो दस–बीस दिन की ?

सही कहते हो भैया ! मैं तुम्हें कमीशन दूँगा, तुम तस्दीक कर दो।

इसके बाद हलकू सरपंच की तस्दीक के लिए पंचायत में पहुँचा। यहाँ भी गांधी बाबा के फोटो को देख डरा, जबकि इसके पहले वह उनको कई बार देख चुका था।

कमीशन की बात सरपंच ने भी की।

हलकू ने गांधी बाबा के फोटो की ओर देख कमीशन की बात मान ली। गांधी की तरह वह जेल तो नहीं जा सकता था, जो विरोध करता।

कमीशन उसे बैंक में भी देना पड़ा।

तीनों के कमीशन कटकर कोई दो हफ्ते के बाद जब कर्ज की रकम हलकू के हाथ में आयी तो उसने देखा कि उसमें बैल नहीं खरीदा जा सकता था, बकरी ही खरीदी जा सकती थी। उसके मुँह से निकल पड़ा। जय गांधी बाबा की। ❐

– २. मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५००२

भाई–भाई

– सन्तोष कान्त

शाम को घर पहुँचे तो देखा– मेरे दोनों बेटे आपस में झगड़ रहे थे। मैंने उन्हें डाँटते हुए कहा– 'क्या तुम भाई–भाई प्रेम से नहीं रह सकते ? जब देखो तब...' तभी मेरी छोटी बेटी गोद में चढ़कर पूछने लगी– 'पिताजी आज आप कहाँ गये थे ?' 'मैं बेटी ....' इससे आगे मुझे चुप रह जाना पड़ा, क्योंकि मैं एक मुकदमे के लिए गया था जो मेरे और मेरे भाई के बीच जमीन को लेकर चल रहा था।

– द्वारा श्री सिद्धेश्वर प्रसाद
पंचशीलनगर, वार्ड नं.–१३, लाल कोठी के पीछे
बाढ़ – ८०३२१३(पटना)

राष्ट्रधर्म

मार्गशीर्ष-२०५५ नवम्बर-१९९८
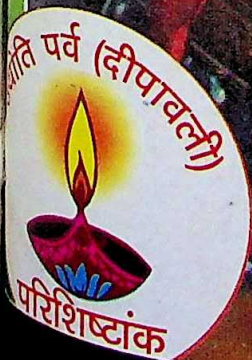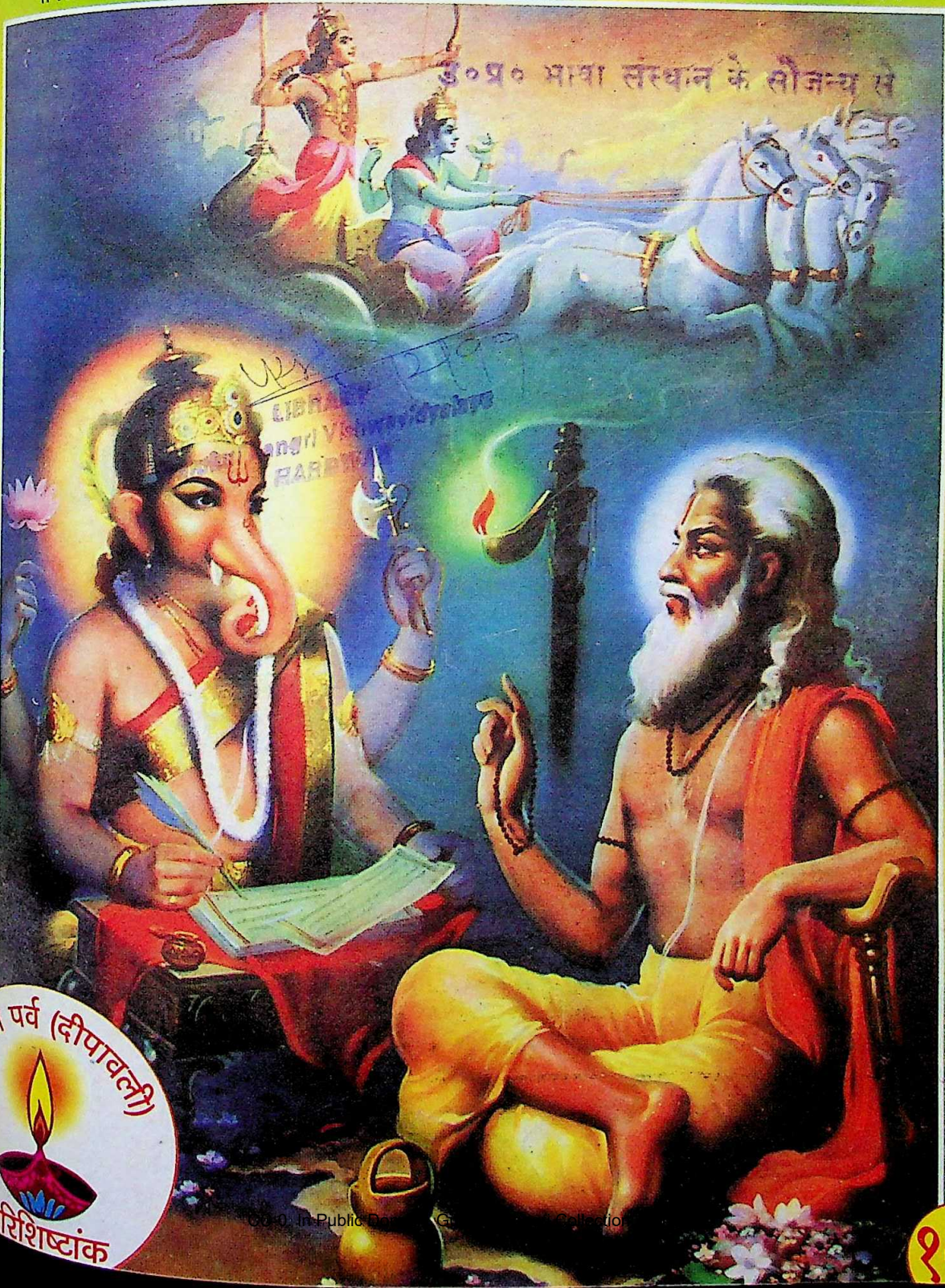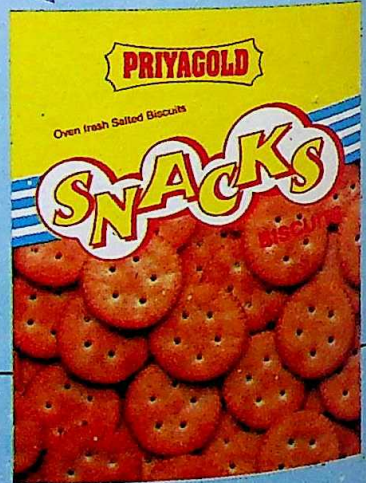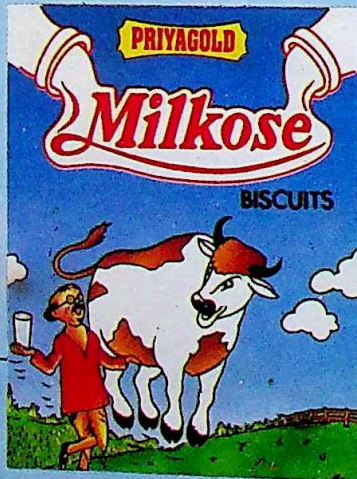
राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित
संपादक : आनन्द मिश्र 'अभय'

गंगा–मात्र एक नदी का नाम नहीं, एक जलधारा का नाम नहीं। यह तो शुचिता, पवित्रता, सात्विकता, आध्यात्मिकता, दिव्यता, भव्यता और पतितपावनता का सजीव प्रतीक है। तभी तो वेदों, पुराणों से लेकर अब तक का समस्त भारतीय वाङ्मय इसका गुणानुवाद करते नहीं थकता। वाल्मीकि, व्यास से लेकर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और सुमित्रानन्दन पन्त तक सब इसकी महिमा गाते दिखायी देते हैं। गंगा की महिमा अनन्त है, अलौकिक है, अपरम्पार है; क्योंकि यह साक्षात् ब्रह्म–द्रव है ब्रह्माजी के कमण्डलु से निःसृत। यह 'शंकरमौलिविहारिणि विमले' है, तो जह्नु–तनया भी है। कितनी तपस्या की भगीरथ ने, तब कहीं स्वर्ग–लोक से मर्त्य–लोक में अवतरित हुई यह पवित्रतम जलधारा–अमृतधारा। तभी तो विश्वभर की अन्य नदियाँ जहाँ केवल नदी ही हैं, यह देव–नदी है; सुरसरि है। त्रिपथगा–आकाश, पाताल और पृथ्वी, तीनों लोकों में इसकी धाराएँ प्रवाहित हैं। धरती पर यह गंगा है, तो आकाश में आकाश–गंगा और पाताल में पाताल–गंगा। धरती पर भी त्रिपथगामिनी है, तीन धाराओं भागीरथी, अलकनन्दा और मन्दाकिनी में बहती हुई अन्ततोगत्वा एकधार होकर गंगा बन जाती है। भगीरथ की तपस्या का साक्षात्–स्वरूप ही तो इसे भागीरथी बनाता है। आद्य शंकराचार्य जब इसके दिव्य–दर्शन करते हैं, तो सहज ही गा उठते हैं–

'देवि! सुरेश्वरि! भगवति गंगे! त्रिभुवनतारिणि तरलतरंगे!'

पूरा स्तोत्र ही भाव–गंगा का निर्मल–प्रवाह है। तन्वंगी लवंगी के प्रसंग को लेकर काशी के पण्डित जब वरदराज–स्तवकार अप्पय दीक्षित के नेतृत्व में पण्डितराज जगन्नाथ को प्रताड़ित करने की अति कर दिये, तो अत्यन्त दुःखी अन्तःकरण से वह माँ गंगा को पुकार उठे– **'समृद्धिं सौभाग्यं सकलवसुधायाकिमपितन्...'** और एक–एक

त्रिभुवनतारिणि तरलतरंगे

शिखरिणी (छन्द, जिसमें गंगा–लहरी रची गयी) पर एक–एक सीढ़ी चढ़ती हुई गंगाजी बावनवीं सीढ़ी पर बैठे अपने इस भक्त को बहा ले गयीं; पुत्र ममतामयी माँ की गोद में जा सोया–जीवन्मुक्त हो गया और काशी देखती ही रह गयी। आज भी दशाश्वमेध घाट की उन सीढ़ियों पर बैठकर गंगा की कलकल–ध्वनि में पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा–लहरी' के मधुर स्वर सुने जा सकते हैं। अपनी 'गंगा–लहरी' के साथ ही अमर हो गये पण्डितराज भी।

'रसखान' तो ठहरे **'ब्रज के बन बाग तड़ागन'** और **'कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन'** पर सब कुछ न्योछावर कर देने वाले भक्त; पर जब गंगाजी की दिव्य छटा देखते हैं, तो उनकी महिमा गाये बिना नहीं रह पाते–

'आक धतूरो चबात फिरैं बिस खात फिरैं सिव तेरे भरोसे।'

ठीक भी तो है; क्योंकि गंगा–जल तो सदा से विषहारी, विषनाशक रहा है, तभी तो विषधर के काटने से मृत घोषित शरीर को गंगा की धारा में प्रवाहित कर देने पर जीवित हो उठने की बात आज भी यदा–कदा सुनने को मिल जाती है।

'पद्माकर' भी कोई ऐसे–वैसे कवि नहीं हैं। गंगाजी की महिमा का गुणगान करते थकते नहीं–

"काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।"

और ऐसी गंगाजी की इस तारिणी, उद्धारिणी सहज प्रकृति के कारण बेचारे धर्मराज तक को अपना यमराजत्व छोड़कर प्रत्येक प्राणी के कर्मों का लेखा–जोखा रखने वाले यमलोक के एकमात्र लेखाधिकारी चित्रगुप्त को खीझकर यह आदेश देना पड़ता है–

"... खाता खति जान दे बही को बहि जान दे।"

क्योंकि गंगाजी द्वारा पापों से उद्धार पाये प्राणियों की भीड़ का कहीं ओर–छोर ही नहीं है। ओर–छोर हो भी कैसे–

"गंगा गंगेति यो ब्रूयात्, योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः, विष्णुलोकं स गच्छति।।"

सौ योजन (चार सौ कोस) की दूरी से भी जो 'गंगा', 'गंगा' कहता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक (बैकुण्ठ) चला जाता है।

कोई तर्कातिरेकी कह सकता है कि यह तो अतिशयोक्ति है, लन्तरानी है, तो उसे यह बताना आवश्यक हो जाता है–भाई! यदि इसे लन्तरानी ही मान लिया जाय, तो भी इसका अपनी जगह कम महत्त्व नहीं है; क्योंकि **जब शुरू–शुरू में केरल में आये पादरी अपने मजहब का प्रचार पूरे वर्ष भर जमकर करते रहने के पश्चात् एक भी हिन्दू को ईसाई न बना पाये, तो उनमें से एक ने अपने प्रमुख को रिपोर्ट भेजी– 'ईसा के चमत्कारों का यहाँ के लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता; क्योंकि हमारे आने से हजारों साल पहले से ही यहाँ के बन्दर समुद्र लाँघ जाते रहे हैं।'** वैसे गंगाजी का माहात्म्य ही ऐसा है कि उनके नाम–स्मरण–मात्र से ही पाप स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

ऐसी शुचिता, पवित्रता की प्रतीक गंगा आज घोर संकट में है और यह संकट किसी और ने नहीं; हमने, स्वयं हमने पैदा किया है गत पचास वर्षों में, वह भी विकास के नाम पर। इसे विकास कहें या विनाश कि गोमुख हिमानी, जहाँ से गंगा का उद्‌गम है, गत पचीस वर्षों में लगभग ६ कि०मी० पीछे खिसक चुका है। यदि यही हाल रहा, तो आगामी शताब्दी में गोमुख हिमानी समाप्त हो जायेगा, गंगा सूख जायेगी। बलिहारी है हमारी विकास की वर्तमान अवधारणा की। गोमुख सिमट रहा है और ऊपर से टेहरी बाँध बनाकर गंगा को बन्धक बनाया जा रहा है विद्युत्–उत्पादन के बहाने। **जिस गंगा की पवित्रता को अपने ७५० वर्ष के शासन में मुसलमान और १५० के शासन में अंग्रेज नष्ट नहीं कर पाये, उसे हमने अपने ५० वर्ष के शासन में नष्ट कर डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। पर्यटन (तीर्थाटन नहीं; क्योंकि यह 'साम्प्रदायिक' है) के नाम पर गंगोत्री से गोमुख तक खोल दिये गये होटलों और ढाबों ने इस क्षेत्र का तापमान बढ़ा ही दिया है, कूड़ा–कर्कट (प्लास्टिक आदि) के जलाये जाने ने भी कम प्रलय नहीं ढहाया है। भूर्ज–पत्र का गंगोत्री क्षेत्र में फैला विशाल–वन तो न जाने कब का विनष्ट किया जा चुका है। अब तो गंगा हरिद्वार में ही प्रदूषित हो चुकी हैं। ऋषिकेश के पेन्सिलीन कारखाने से लेकर बरौनी के तेलशोधक कारखाने तक तटवर्त्ती प्रत्येक नगर का गंगा को प्रदूषित करने में अपना अन्यतम योगदान है। पर्यावरण–प्रदूषण रोकने के नाम पर मात्र कागजी योजनाएँ और हवाई बातें ही बनायी जाती हैं। गंगा ही नहीं, उसकी हर सहायक नदी और उस नदी की भी सहायक नदियाँ जब गन्दा नाला बना दी गयी हैं उद्योगों और नगरों के विकास के नाम पर, तब भला किस सेठ गोविन्ददास के यहाँ ११० वर्षों से रखा गंगाजल यथावत् शुद्ध और निर्मल मिल पायेगा।** ध्यान रहे, ब्रिटिश–काल में निकाली गयी लोअर गंगा नहर के निकास के पास से लिये गये जल में जहाँ कुछ ही समय बाद कीड़े पड़ जाते देखे गये, वहीं गंगा की मुख्य– धारा से लिया गया जल आज भी वर्षों तक ज्यों का त्यों बना रहता है एकदम दूषण–मुक्त, स्वच्छ, निर्मल, पहले जैसा स्वादयुक्त। क्या ऐसा चमत्कारी विलक्षण गुण विश्व की अन्य किसी नदी में पाया जाता है? गंगा का यह गंगत्व ही उसके देव–नदी होने का साक्षात् प्रमाण है। सुर–सरिता का सुरत्व, यह दैवी–गुण अक्षुण्ण बना रहे, इसका एकमात्र दायित्व उस राष्ट्रीय समाज का है, जो देश की प्रत्येक नदी को, जलधारा को, गंगा–माता का ही रूप मानकर युगों– युगों से श्रद्धापूर्वक नमन करता आ रहा है।

एतदर्थ आइये; कविवर रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) के भक्ति–प्रवण स्वर में स्वर मिलाते हुए उन्हीं के शब्दों में गंगाजी से प्रार्थना करें–

अच्युत–चरन–तरंगिनी, सिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दवभाल।।

★

— **आनन्द मिश्र 'अभय'**

राष्ट्र की अपेक्षा है कि ...

– प्रो० बलराज मधोक

इतिहास इस बात का साक्षी है कि हर ५० से १०० वर्षों के अन्तराल में संसार के विभिन्न भागों और देशों में उथल–पुथल होती है, जिसके फलस्वरूप उन भूभागों और देशों में महत्त्वपूर्ण बदल आते हैं, संसार के मानचित्र से कई देश लुप्त हो जाते हैं या खण्डित हो जाते हैं और कई नये देश और राज्य अस्तित्व में आ जाते हैं। भारत अथवा हिन्दुस्तान में १९४७ में एक ऐसा उथल–पुथल हुआ था। गत कुछ समय से भारत के अन्दर और इसके इर्द–गिर्द के देशों में चलने वाले घटना–चक्र से लगता है कि भारत उसी प्रकार के एक और उथल–पुथल की ओर बढ़ रहा है। इस शताब्दी के अन्तिम वर्ष इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं। इसलिए इस काल में भारत की केन्द्रीय सरकार के स्वरूप, इसकी नीतियों और इसके नेतृत्व अथवा प्रधानमन्त्री के चरित्र और चिन्तन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

अनेक दशकों से भारत में दो विचारधाराओं की टक्कर चल रही है। एक विचार–धारा यह है, जो भारत की धरती और इसके यथार्थ के साथ जुड़ी हुई है। इसके प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, श्यामजी कृष्णा वर्मा, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्रपाल, वीर सावरकर, डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार, सरदार पटेल और डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी रहे हैं। दूसरी विचार–धारा वह है, जो पश्चिमी, विशेष रूप में ब्रिटिश संस्कृति, सभ्यता, भाषा से चकाचौंध हुए, आत्म–विश्वास–विहीन, आत्मविस्मृत अंग्रेजों के मानसपुत्रों द्वारा चलाई गई। इसके पक्षधर राजा राममोहन राय, सर फिरोज शाह मेहता, दादाभाई नौरोजी और पं० नेहरू माने जाते हैं। गांधीजी ने जवाहर लाल नेहरू को अपना राजनैतिक उत्तराधिकारी बनाकर इस विचारधारा को न केवल बल ही प्रदान किया; अपितु इसे स्वतन्त्र भारत की सरकार की विचारधारा भी बना दिया। यह अब 'नेहरूवाद' के नाम से जानी जाती है।

इस नेहरूवादी विचारधारा से जुड़े दल और तत्त्व राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी विचार धारा को अपने लिए सबसे बड़ा खतरा मानते हैं। वे इसे 'साम्प्रदायिक' और 'मुस्लिम विरोधी' कहते हैं तथा अपनी विचारधारा को 'सेक्युलर' कहते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ जुड़ा होने के कारण भाजपा उनकी नजरों में गैर–सेक्युलर, साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी है। इसी आधार पर इसके विरुद्ध वे एकजुट होते रहे हैं, एकजुट होने का प्रयत्न करते हैं। भाजपा के अन्दर के कुछ लोग तथाकथित सेक्युलरवादियों के प्रहारों की प्रभावी काट करने के बजाय सुरक्षात्मक रुख अपना रहे हैं। उनके वक्तव्य और कार्यकलाप राष्ट्रवादी तत्त्वों और मतदाताओं में विभ्रम पैदा कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि दल, संगठन और तत्त्व एकजुट हो जायें ताकि सेक्युलरवादियों की दाल गलने न पाये। इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्रवादी चिन्तन, विचारधारा और नीतियों को स्पष्ट और सरल भाषा में पेश किया जाये; क्योंकि स्थायी बन्धन विचार का होता है। संगठन और सत्ता लोगों को कुछ समय के लिए ही जोड़ सकती है; परन्तु विचार का प्रश्न स्थायी और सार्थक होता है।

राष्ट्र देवो भव

भारत में रहने वाले सभी लोग, जो भारत की धरती और भारत की संस्कृति के प्रति आस्था रखते हैं, एक राष्ट्र के अंग हैं। देश की धरती राष्ट्र का शरीर होती है और संस्कृति इसकी आत्मा। भारत एक राष्ट्र है; परन्तु इसमें राज्य, जनपद, प्रान्त अनेक हैं। भारतीय हिन्दू समाज एक है; परन्तु इसमें बिरादरियाँ अथवा जातियाँ अनेक हैं। धर्म, जो भारतीय जीवन का आधार है, एक है; जाति पन्थ अथवा पूजा विधियाँ अनेक हैं। अपने–अपने पन्थ, जाति और क्षेत्र के प्रति लगाव रखना, उसका हित चाहना स्वाभाविक है। उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती; परन्तु यदि पन्थ अथवा मजहब या जाति या क्षेत्र के हितों में और राष्ट्र के हित में टकराव की स्थिति पैदा हो, तो जो व्यक्ति राष्ट्र के हित को अपनी जाति, बिरादरी, पन्थ अथवा सम्प्रदाय और क्षेत्र के हितों पर वरीयता देता

है, वह राष्ट्रवादी कहलाता है और जो राष्ट्र के हित की बलि चढ़ाकर भी अपने सम्प्रदाय, जाति या क्षेत्र का हित साधना चाहता है, उसे साम्प्रदायिक या अलगाववादी कहा जाता है। संसार भर में राष्ट्र की यही परिकल्पना और राष्ट्रवादी होने की यही कसौटी मानी जाती है। इस कसौटी पर कसने से स्पष्ट हो जाता है कि 'सेक्युलरवाद' की दुहाई देने वाले दल मूलतः सम्प्रदायवादी और अलगाववादी हैं। सम्प्रदायवाद की भावना खत्म करने और सभी को मनसा, वाचा, कर्मणा, राष्ट्रवादी बनाने और देश की राजनीति और नीतियों को राष्ट्रवादी दिशा देने के लिए 'राष्ट्र देवो भव' का मन्त्र देश के ग्राम-ग्राम और गली-गली में गूँजना चाहिए।

सेक्युलरवाद

सेक्युलरवाद और सेक्युलर राज्य के संसार भर में तीन मूल तकाजे माने जाते हैं-

१. राज्य अपने नागरिकों के बीच पन्थ अथवा सम्प्रदाय के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न करे।
२. सभी नागरिकों पर समान कानून लागू हो।
३. कानून के सामने सभी नागरिक बराबर हों।

भारत राज्य इस समय इनमें से एक तकाजे को भी पूरा नहीं कर रहा। भारत के संविधान के अनुच्छेद २९-३० साम्प्रदायिक आधार पर नागरिकों में भेदभाव करते हैं। सब नागरिकों के लिए समान कानून सम्बन्धी संविधान के अनुच्छेद-४४ को अभी तक कार्य रूप नहीं दिया गया। फलस्वरूप कानून के सामने सभी नागरिकों के बराबर होने का प्रश्न ही नहीं। यह स्थिति बदलने की आवश्यकता है। भारतीय हिन्दू संस्कृति का आधार ऋग्वेद का मन्त्र 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' है, यह सबका भला चाहने वाली मानववादी संस्कृति है। इसीलिए भारतीय हिन्दू राज्य कभी साम्प्रदायिक अथवा मजहबी राज्य नहीं रहा। वर्तमान भारत राज्य को सही अर्थ में 'सेक्युलर राज्य' बनाने के लिए इस संस्कृति और इसमें निहित ऊपर लिखे गये सेक्युलरवाद के तीन तकाजों को पूरा करना होगा। इसलिए राष्ट्रवादियों को तथाकथित सेक्युलरवादियों के प्रति सुरक्षात्मक रुख अपनाने की बजाय उन पर सीधा प्रहार करने की आवश्यकता है।

न्यायप्रिय न्यायाधीश

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश कुलदीप सिंह, जब सेवानिवृत्त हो गये, तो राजधानी स्थित अपने सरकारी बंगले को खाली करने में सिर्फ एक दिन का समय लिया। माननीय न्यायाधीश, जिन्होंने जनहित को ध्यान में रखते हुए न्यायिक सक्रियता को नये आयाम दिये, यह नहीं चाहते थे कि सरकारी आवासों के उपभोक्ताओं को मिलने वाली एक महीने की छूट का भी वह उपयोग करें। सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीशों के लिए एक नया उदाहरण पेश कर, वे चण्डीगढ़ चले गये। उन्होंने न तो वकालत की और न ही न्याय सम्बन्धी किसी कार्य में जुड़ने की कोशिश की। ❑

भारतीयकरण

भारत के जिन लोगों की राष्ट्र के प्रति आस्था किसी भी कारण से संदिग्ध हो चुकी है, जो अपने सम्प्रदाय के हित के लिए देश को तोड़ने और इसमें अशान्ति फैलाने के लिए इस्लामी देशों की शह पर आतंकवाद फैला रहे हैं। उनको सही रास्ते पर लाने और राष्ट्रधारा में शामिल करने के लिए उनका भारतीयकरण करना आवश्यक है। ऐसा करने के बजाय उनका तुष्टीकरण किया जा रहा है। इसका उल्टा प्रभाव पड़ रहा है और ऐसे लोग राष्ट्र-धारा से और अधिक दूर होते जा रहे हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए सभी राष्ट्रवादी तत्त्वों-दलों और संगठनों द्वारा भारतीयकरण को एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में अपनाना चाहिए।

राष्ट्रीय विरासत और अस्मिता की रक्षा

हजारों वर्षों तक "बहशी" अरब और तुर्क (मुगल वास्तव में तुर्क थे-सम्पादक) आक्रमणकारियों ने इस्लाम के नाम पर भारत की संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत को खत्म करने के लिए अत्याचार और तोड़फोड़ की। उन्होंने हजारों मन्दिरों, कलाकृतियों, पुस्तकालयों और नगरों को नष्ट किया, या उनके स्थानों पर मस्जिदें बनाईं। उन्होंने अनेक नगरों के नामों का भी अरबीकरण और इस्लामीकरण किया। वाराणसी का काशी विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा के श्रीकृष्ण जन्मस्थान मन्दिर और अयोध्या के श्री राम जन्मस्थान मन्दिर भारत की सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक हैं, तो उन्हें तोड़कर उनके ऊपर बनाये गये मस्जिदनुमा ढाँचों को हटाकर उन्हें वास्तविक स्वरूप देना भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करना है। इसके लिए सभी राष्ट्रवादियों को दृढ़ संकल्प होकर काम करना

(शेष पृष्ठ ६९ पर)

□ पुष्करनाथ

८१ वर्ष बाद जिसके नाम पर बी.ए. की डिग्री दी गयी

शहीद कन्हाईलालदत्त

कन्हाईलाल दत्त का जन्म सन् १८८७ की जन्माष्टमी को हुआ था। 'काकोरी-केस' के क्रान्तिकारी कभी शहीद कन्हाईलाल दत्त की याद करके फाँसी की कोठरियों में गाया करते थे, "खूब बंगाल में खेले थे कन्हाई होली।"

सच ही उन्होंने देश-शत्रु के रक्त से फाग खेला था। जैसा उनका (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर) जन्म-दिन, वैसा ही क्रान्तिकारी चरित्र। उनका राशि नाम 'सर्वतोष' था। जन्मे थे चन्दन नगर में। वहाँ उनके मामा रहते थे। पिता चुन्नीलाल दत्त चार साल की वय में उन्हें बम्बई लाये। जहाँ वे पाँच साल रहे। वहीं के एक हाईस्कूल में वे पढ़ने के लिए भेजे गये। पैतृक घर था श्रीरामपुर (बंगाल) में। ब्रजेश्वरी देवी माँ थीं। नौ साल के होकर वे चन्दर नगर आये। तत्पश्चात् वहीं 'डूप्ले कालेज' में पढ़े। बी० ए० किया। चारुचन्द्र राय वहाँ के प्रोफेसर थे। वे भी क्रान्तिकारी थे। इन्होंने ही कन्हाई को विप्लवी बनाया। निर्धन छात्रों से कन्हाई का बड़ा लगाव था। वे उनसे मित्रता रखते थे तथा अपनी माता से कहकर उनके भोजनादि की व्यवस्था करते थे। इन्हीं में एक पितृ-मातृहीन छात्र था, 'टोखा'। कन्हाई ने उसे अपने घर पर ही रहने की व्यवस्था की थी। कन्हाई परीक्षा में सदा प्रथम आते थे।

कन्हाई जब क्रान्तिकारी दल में आ गये, तो ढाका के नवाब समीमुल्ला का हिन्दू जनता पर अत्याचार करने का समाचार अखबारों में पढ़ा। हिन्दू जनता भी प्रतिरोध के लिए संगठन की जरूरत अनुभव करने लगी। उधर चन्दन नगर की फ्रेञ्च सरकार भी स्वदेशी-आन्दोलन का दमन करने लगी अंग्रेजों की देखादेखी याकि उनकी हिमायत में। इसी के जवाब में क्रान्तिकारियों ने वहाँ के मेयर मसियेतार्दिकेल के बँगले में बम फेंका। वह फ्रेञ्च था। मेयर ने वहाँ की एक स्वदेशी-सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस बमकाण्ड में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी भी शामिल था। इसी तरह कुष्टिया में हुआ। वहाँ 'अनुशीलन समिति' की शाखा थी। कुष्टिया में ईसाई प्रचार का जोर बँधा। पादरी हिकेन बाथम लोगों को ईसाई बनाने के लिए वहाँ बहुत सक्रिय थे। विप्लवी बलदेवराय ने उन्हें गोली का निशाना बनाया। यही बलदेवराय बाद में संन्यासी अनन्तानन्द बनकर "रामकृष्ण मिशन" में चले गये थे। इन घटनाओं के बाद किंग्सफोर्ड को बम से मारने की चेष्टा हुई। तब अरविन्द घोष आदि के साथ कन्हाईलाल भी गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में लाए गये। इस 'बम केस' में पाण्डिचेरी के प्रोफेसर चारुचन्द्र राय भी पकड़े गये। लेकिन फ्रान्सीसी प्रजा होने से वे रिहा हो गये। 'मॉरिस कालेज' नागपुर से बालकृष्ण काणे नाम के एक महाराष्ट्रीय को भी गिरफ्तार करके इसी जेल में रखा गया। कन्हाईलाल विनोद-प्रिय थे। ये रात में जल्दी सो जाते थे; फिर आधी रात को उठकर साथियों के बिस्तर से सन्देश (मिठाई), आम, बिस्कुल खोजकर निकालते फिरते थे। जिस रात खाली हाथ लौटना होता, उस रात एक रस्सी लेकर साथियों के हाथ-पैर एक दूसरे से बाँधकर खिसक आते। कभी कविताएँ रचते-सुनाते, तो कभी अन्य मनोरंजक कार्यक्रम चलाते रहते। जेल में भी वे हँसते-हँसाते रहे। ऐसे ही दिन कट रहे थे। नरेन्द्र गोसाईं सरकारी मुखबिर बन गया। कन्हाई लाल दत्त और सत्येन्द्र बोस ने उसको जेल में ही मारने का दायित्व लिया। पहली गोली सत्येन्द्र ने चलाई; पर नरेन्द्र मरा नहीं। तब दौड़कर कन्हाई ने उसे मार गिराया। यह कथा सत्येन्द्र के चरित्र के साथ जुड़ी हुई है। नरेन्द्र मुखबिर होकर जेल में वादामाफ गवाह होने से माफी पा गया था। मुकदमे में कन्हाई को हमेशा अपने साथियों को बचाने की चिन्ता रही। जज

डब्ल्यू०ए० मेर ने उनसे अदालत में प्रश्न किया था—

"मि० कन्हाई लाल, तुम मानते हो कि तुम्हीं ने नरेन्द्र का खून किया?"

कन्हाई ने स्वीकार किया था, "हाँ, मैंने जरूर मारा।"

"क्यों?"

"इसका कारण क्या बताऊँ? यदि बताना आवश्यक ही है तो यह कहूँगा कि वह देशद्रोही था, इसी से मार दिया।"

"और कुछ कहना चाहते हो?"

"हाँ, मुझे यह कहना है कि इस मामले में इन्द्रनाथ नन्दी को गलत फँसाया गया है। उसके खिलाफ झूठी गवाहियाँ गढ़ी गईं हैं। रिवाल्वर दो ही थे, तीन नहीं। तीसरे रिवाल्वर का आविष्कार इन्द्रनाथ नन्दी को फँसाने के लिए किया गया है।"

ऐसे थे कन्हाई। खुद सब कुछ स्वीकार करना, लेकिन साथियों की निर्दोषिता साबित करना। फाँसी के समय इनका वजन १६ पौण्ड बढ़ गया था। फाँसी १० नवम्बर, १६०८ को दी गई। उन्होंने वकील करने से मना कर दिया था। जब जज ने इनसे कहा, "तुम चाहो, तो अपने बयान बदल सकते हो।" कन्हाई बोले, "हाँ, इतना बदलना चाहता हूँ कि नरेन्द्र को सत्येन्द्र ने नहीं, अकेले मैंने ही मारा है। दोनों रिवाल्वर मेरे ही पास थे। मैंने ही चलाये।"

बम निर्माण और सम्पादकत्व साथ-साथ

मोतीलाल राय चन्दन नगर के ही थे। ये ऐसे महान् विप्लवी थे कि जिनसे रासबिहारी बोस ने क्रान्ति-दीक्षा ली थी। इनका कहना है कि कन्हाईलाल बम बनाने के लिए कलकत्ता के 'युगान्तर' कार्यालय पहुँचे थे। बारूद भी ले गये थे। वह कार्यालय तब मेडिकल कालेज के दक्षिण स्थित चौथा तल्ला गली में था। कन्हाई ने देखा था कि वहाँ उस समय भी (अरविन्द घोष के भाई) बारीन

(शेष पृष्ठ १८ पर)

अधिकार की लड़ाई

- रति सक्सेना

शायद किसी दफ्तर का डिस्पैच विभाग था या किसी संस्था का परीक्षा विभाग। बहरहाल उस विभाग को जाना पड़ा, कारण कुछ भी हो। कुर्सी, मेज, पंखे, अलमारियाँ, फाइलें सभी लद-लद कर चली गयीं- नई इमारत में। अब बाकी बचा है कागजों का पहाड़। सभी कमरों में फैले हुए कागज, शहर के नामी-गिरामी रद्दीवाले को बुलाया गया। रद्दी का भाव लगा रद्दी के दाम ही। ट्रक भर तो होगा ही शायद। एक, दो, तीन ... दिन पर दिन गुजरते गये। रद्दी बिक गई, लेकिन ले जाई नहीं गई। गोदाम जो खचाखच भरा है। दो-तीन ट्रक पटाखा फैक्टरी में जायेंगे, तभी गोदाम में जगह होगी। नये मालिक ने दबाव डाला, तो रद्दी खिसकने की नौबत आयी। साँझ गहराने पर ट्रक आकर खड़ा हुआ। चार-पाँच 'नीली वर्दी धारी' मजदूर यूनियन के नेता आकर धरना डाल बैठ गये। यूनियन-नियम के अनुसार इस इलाके का बोझा उन्हें उठाना है। वे जो माँगें मजूरी देनी है। रद्दी कमरों से निकाल ट्रक पर लदवाने की मजदूरी बतायी गयी 'पाँच हजार रुपये' रद्दी शायद इससे कम में ही बिकी थी। रद्दी मालिक चिल्ला रहा, घिंघिया रहा था, पर यूनियन मजदूर नेता टस से मस नहीं। आखिरकार बात तय की गयी। मजदूर नेताओं को 'बारह सौ रुपये' दिये गये वहाँ से बिना काम किये खिसकने के लिए। रद्दी वाले ने रद्दी खुद उठाई और ट्रक में लादी।

अब मजदूर नेता दो-चार पिट्ठुओं के साथ शहर की बढ़िया सी 'बार' में गये। मुर्गे के साथ बोतलें खाली की गयीं। लड़खड़ाते कदमों से 'दस-बीस' रुपयों के साथ घर पहुँचे। बच्चों को हराम की कमाई थोड़े ही खिलानी है।

जय हो साम्यवाद की! ❐

- के०पी० IX/६२४, वैजयन्त, चेटीकुनु, मेडिकल कालेज, पो०आ० तिरुवनन्तपुरम्-६६५०११

हृदयनारायण दीक्षित

जीवनमूल्यों की राजनीति बनाम प्याज के मूल्यों की राजनीति

राजनीति लोकमंगल का अनुष्ठान होती है। उसे लोकनीति की आचार–सारिणी से बाँधकर रखा जाना चाहिए। राजनीति में सत्ता की प्राप्ति की स्वाभाविक कामना होती है। लोकनीति में सम्पूर्ण–मानवता की मंगल भवन–अमंगलहारी उदात्त–भावनाएँ समवेत होती हैं। भारतीय जन–गण मन अपनी सामर्थ्य के शिखर छूने की कर्म आराधना में सनातन संस्कृति के आदर्शों से अनुप्राणित होता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में बहुमत प्राप्त करने की राजनीतिक विवशताएँ होती हैं। वैचारिक अधिष्ठान के आधार पर लोकमत के सुसंस्कार का काम कठिन होता है, अतः राजनीतिक क्षेत्र के लोग समूह, दल, जाति, मजहब, भाषा, क्षेत्र की संकीर्णताओं के 'शार्टकट' मार्ग पकड़ते हैं। तब राजनीति जाति–हित, क्षेत्र–हित, सम्प्रदाय–हित की पैरोकार बन जाती है और उसका प्रत्येक कर्म देश–भंजक हो जाता है।

२१ अक्टूबर १९५१ (अर्थात् ४७ वर्ष पूर्व इसी मास) को भारत की राजनीति को भारत राष्ट्र के सनातन जीवन मूल्यों से जोड़ने का संकल्प पारित करते हुए भारतीय जनसंघ की स्थापना की गयी थी। जनसंघ देश की राजनीति में "एक और दल" के रूप में नहीं गठित किया गया था। किसी तिकड़म और मूल्यहीनता के घटिया साधन अपनाये बगैर भी राजनीति की जा सकती है, शुचिता, उदात्त जीवन–मूल्य और आग्रही राष्ट्रवाद के अधिष्ठान पर राजनीति की नयी धारा बहाने वाले लोग कतिपय विषम राजनीतिक परिस्थितियों के बीच १९८० में भारतीय जनसंघ से भारतीय जनता पार्टी हो गये। १९७७ में नई दिल्ली के प्रगति मैदान में जनसंघ को विसर्जित करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी कई बार रोये थे। सारा पण्डाल रो रहा था। अश्रु–प्रवाह के बीच भावुक यह लेखक भी उस 'विसर्जन–त्रासदी' का प्रत्यक्षदर्शी था। जनसंघ के लोग जनता पार्टी हो गये थे। जीवन मूल्यों के साथ छेड़खानी न बर्दाश्त करने की हालत में वे १९८० में जनता पार्टी से बाहर जाने को विवश हो गये थे।

भाजपा, जनसंघ के काल से ही जीवनमूल्य–आधारित राजनीति की विशिष्ट पार्टी के रूप में लोक–स्वीकृति पा चुकी है जाति, मजहब, क्षेत्र और ऐसी ही सैकड़ों टुच्ची संकीर्णताओं की राजनीति करने वाले दलों से ऊबी भारतीय जनता ने भाजपा को भारत के स्वाभाविक दल के रूप में मान्यता दे दी है। केन्द्र की भाजपा सरकार इसी तथ्य का जीवन्त साक्ष्य है। मगर यह बात दो छोटे–छोटे राज्यों में सीमित स्वयं को राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय दल मानने वाले वामपन्थियों को नागवार गुजरी। भ्रष्टाचार का पर्याय बन चुकी कांग्रेस को भी अपनी नस्ल के खात्मे के खतरे बहुत पहले से ही भाजपाई राजनीति में दिखाई पड़ रहे हैं। अल्पसंख्यकों को किसी भी सूरत में खुश करने की कोशिश में संलग्न पाकिस्तान को २००० करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता देने की माँग करने वाले मुलायम सिंह और लालू प्रसाद जैसों को भाजपा का आग्रही राष्ट्रवाद अखर ही रहा है, सो सबके सब केन्द्र की भाजपा सरकार को किसी भी तरीके से हटाने के घटिया प्रयत्नों में लगे हुए हैं। सब तरह हारकर सम्प्रति सभी दल प्याज की कीमतों को लेकर सरकार को नाकारा सिद्ध करना चाहते हैं।

राष्ट्र–जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियाँ 'प्याज' के सामने उन्हें नहीं दिखाई पड़तीं। परमाणु–परीक्षण के कारण विश्व–परिदृश्य में भारत की बढ़ गई हाहाहूथी सामर्थ्य भी उन्हें रास नहीं आती। गृहमन्त्री लालकृष्ण आडवाणी के ठोस प्रयत्नों के कारण कश्मीर घाटी में किसी सीमा तक लौट आयी वर्षों पुरानी रौनक भी छद्म सेक्युलर दल नहीं देखना चाहते। संयुक्त राष्ट्र संघ के मञ्च पर हिन्दी का उद्घोष भी कांग्रेसजनों और संकीर्ण वृत्ति के राजनीतिक दलों को आह्लादित नहीं करता। प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में विश्व के सभी गरीब मुल्कों

के प्रवक्ता के रूप में पहचाने गये, भारत का स्वाभिमान बढ़ाने वाले ऐसे सहस्रों कारक और वर्तमान सरकार की उपलब्धियाँ उन्हें बिल्कुल प्रभावित नहीं करतीं। नये बने मुल्ला की तरह वे सिर्फ "प्याज–प्याज" ही चिल्ला रहे हैं।

जीवन–मूल्यों की राजनीति का सामना प्याज के मूल्यों की राजनीति से करने के ये रणनीतिकार वास्तव में दया के पात्र हैं।

प्याज की खेती के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाना सरकार का काम है। मगर प्याज की फसल के प्राकृतिक कारणों से नष्ट हो जाने की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ नजर–अन्दाज की जा रही हैं। सिर्फ राजनीतिक कारणों से ही प्याज की कीमतों पर बावेला है। प्याज भारतीय रसोई का अपरिहार्य घटक कभी नहीं था। प्याज खाने वाले परिवारों में भारतीय परम्पराओं के अधिसंख्य साधक अभी भी भोजन नहीं करते। भोजन को एक खास विदेशी सभ्यता का छौंक देने के चलते प्याज ढाबों और होटलों की रसोई का घटक बना। प्याज की पैदावार से विदेशी मुद्रा भी कमायी जाती रही है। बेइंतिहा मचे राजनीतिक शोर के चलते भारत सरकार ने प्याज के आयात का फैसला भी किया है। मगर सवाल यह है कि क्या वास्तव में प्याज के अभाव के कारण भारत में खाद्य पदार्थों की सूची का सन्तुलन गड़बड़ा गया है?

एक प्रतिष्ठित पत्रिका में छपे एक व्यंग्य–चित्र में एक खरीददार इत्र की दुकान में प्याज की गन्ध की शीशी माँग रहा है। खरीददार कह रहा है प्याज महँगा है इसलिए प्याज की महक से ही काम चलायेंगे। लगता है कि भारत की गन्ध–वृत्ति को भी साथ–साथ ध्वस्त करने की कोशिशें चल रही हैं। हम भारतवासी केवड़ा, जुही, चमेली, रातरानी, बेला और गुलाब की गन्ध को सुगन्ध कहते हैं। मिट्टी का तेल भले ही घर में जरूरी हो, मगर उसकी गन्ध को दुर्गन्ध की ही संज्ञा दी जाती है। "प्याज की महक" के लिए बेताबी का चित्रण करने का मतलब है कि प्याज की गन्ध को सुगन्ध कहने के लिए हम सबको मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। सुगन्धित वस्तुओं की सूची में चन्दन वगैरह के बजाय अब प्याज का नाम क्रमांक एक पर लिखाये जाने की राजनीति जारी है।

यह राजनीति टुच्ची ही नहीं, मानसिक दिवालियेपन की भी प्रतीक है। कांग्रेस की सरकार के समय लहसुन की कीमत ७० रुपये प्रति किलोग्राम थी। जबकि लहसुन प्याज की तुलना में ज्यादा उपयोगी और पौष्टिक भी है। इस गर्हित षड्यन्त्र में शामिल एक पत्रकार ने मध्य प्रदेश के एक प्रमुख दैनिक में धनिये की पत्ती की कीमत रु० ३००/– प्रति किलो लिखकर प्याज की राजनीति को और भी हवा देने की कोशिश की है। कौन नहीं जानता कि महाराष्ट्र के नासिक, कोल्हापुर व धूलिया में वर्षा के कारण प्याज की फसल बुरी तरह नष्ट हो गयी थी। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा और गुजरात से प्याज की नयी फसल आने में एक माह और लग सकता है। अखिल भारतीय पोटेटो एण्ड ओनियन मर्चेण्ट एसोसिएशन के महासचिव राजेन्द्र शर्मा ने इसी अक्टूबर ९८ में दिल्ली में कहा है कि प्याज की कीमतों में वृद्धि का मूल कारण महाराष्ट्र में प्याज का भाण्डार घट जाना है और वर्षा के कारण ५० प्रतिशत फसल का नष्ट हो जाना है।

प्याज भारतीय रसोई का अपरिहार्य घटक कभी नहीं था। प्याज खाने वाले परिवारों में भारतीय परम्पराओं के अधिसंख्य साधक अभी भी भोजन नहीं करते। भोजन को एक खास विदेशी सभ्यता का छौंक देने के चलते प्याज ढाबों और होटलों की रसोई का घटक बना। प्याज की पैदावार से विदेशी मुद्रा भी कमायी जाती रही है। बेइंतिहा मचे राजनीतिक शोर के चलते भारत सरकार ने प्याज के आयात का फैसला भी किया है। मगर सवाल यह है कि क्या वास्तव में प्याज के अभाव के कारण भारत में खाद्य पदार्थों की सूची का सन्तुलन गड़बड़ा गया है?

एक प्रतिष्ठित पत्रिका में छपे एक व्यंग्य–चित्र में एक खरीददार इत्र की दुकान में प्याज की गन्ध की शीशी माँग रहा है। खरीददार कह रहा है प्याज महँगा है इसलिए प्याज की महक से ही काम चलायेंगे। लगता है कि भारत की गन्ध–वृत्ति को भी साथ–साथ ध्वस्त करने की कोशिशें चल रही हैं। हम भारतवासी केवड़ा, जुही, चमेली, रातरानी, बेला और गुलाब की गन्ध को सुगन्ध कहते हैं। मिट्टी का तेल भले ही घर में जरूरी हो मगर उसकी गन्ध को दुर्गन्ध की ही संज्ञा दी जाती है। "प्याज की महक" के लिए बेताबी का चित्रण करने का मतलब है कि प्याज की गन्ध को सुगन्ध कहने के लिए हम सबको मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। सुगन्धित वस्तुओं की सूची में चन्दन वगैरह के बजाय अब प्याज का नाम क्रमांक एक पर लिखाये जाने की राजनीति जारी है।

असल में अपने देश में कारखाने में बनी वस्तुओं की कीमतें उत्पादक तय करते हैं। कृषि उत्पादों की कीमतें सरकारी अभिकरणों के हाथ तय होती हैं। कारखाने में बनी वस्तुओं के अधाधुंध विज्ञापन पर खर्च होने वाली मोटी धनराशि भी वस्तुओं की कीमतों में जोड़ दी जाती है। औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादक अपने उत्पादों की कीमतों के निर्धारण में 'उत्पादन लागत' का सिद्धान्त नहीं मानते। अर्थशास्त्र का मोटा-सा सिद्धान्त है कि किसी वस्तु के उत्पादन में आई लागत में उत्पादक के लिए थोड़ा लाभ जोड़कर कुल कीमत तय की जानी चाहिए। मगर कारखाने की वस्तुओं की कीमतों में उत्पादन लागत के साथ-साथ विज्ञापन का खर्च भी शामिल होता है। विज्ञापन के कारण वस्तु की बढ़ी हुई माँग को देखकर उत्पादक मनमाने ढंग से कीमतें बढ़ाते हैं। विज्ञापन पर खर्च और भी बढ़ा देते हैं ताकि माँग बढ़े और वे कीमतें बढ़ाते रहें। इस सारे 'व्यापार-षड्यन्त्र' का भार विवश उपभोक्ता पर ही पड़ता है।

कृषि जिन्सों के विज्ञापन नहीं होते। अधिकांश कृषि-उत्पाद उत्पादन लागत से भी कम कीमतों पर बिकते हैं, क्योंकि किसान के पास भण्डारण क्षमताएँ नहीं होतीं। किसान अपनी जिन्सों को अपनी घरेलू जरूरतों के कारण भी फौरन् बेचने को विवश होते हैं। औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों में होने वाली वृद्धि पर अखबार कभी शोर नहीं मचाते। अखबार भी "औद्योगिक उत्पाद" ही होते हैं। उन्हें औद्योगिक घरानों के विज्ञापनों पर ही लम्बी जिन्दगी मिलती है। मगर खेती में पैदा चीजों की कीमतों की छोटी-सी वृद्धि पर भी अखबार और निहित स्वार्थ शोर मचाने में एकजुट हो जाते हैं।

गाण्डीव न रख जीवन रण में

- डॉ० रामस्वरूप खरे

मत हो उदास, गाण्डीव न रख जीवन-रण में,
केतन साहस का लहर उठे, कुछ ऐसा कर।
बच महाभयंकर स्वार्थ-सर्प के दंशन से,
अभिमान न कर, डस लेगा वह अन्यथा तुझे।
जो बीत चुका, जा भूल उसे अपने मन से,
तू वर्तमान को मधुर बना, जो प्राप्त तुझे।।
चल, मुख न मोड़ बाधाएँ जो आयें मग में,
पथ हो प्रशस्त समझौता उनसे ऐसा कर।
कितने हुतात्म हो गये, जलाने ज्योति मधुर,
पथ का तम दूर न हो पाया न प्रकाश मिला।
कितने ही मेघ झुके इस प्यासी धरती पर,
वसुधा प्यासी ही रही न मधु उल्लास खिला।।
बढ़ ले प्रदीप, जो बुझ न सके तूफानों में,
तम हो क्षय, स्नेह अमर उसमें कुछ ऐसा भर।
बलिदान अधूरा रह जायेगा, यदि न हुआ,
भारत माँ का शृंगार विलक्षण मन भावन।
तस्वीर अधूरी रह जायेगी जो सोची,
यदि दे न सके तुम भाव-रूप उसको पावन।।
गा गीत जागरण का, जो व्यापे तन-मन में,
नवयुग की वीणा में तू स्वर कुछ ऐसा भर।।

- ५, प्राध्यापक निवास, राठ मार्ग, उरई, जनपद-जालौन-२८५००१ (उ०प्र०)

एक करोड़ के लगभग सरकारी, अर्द्ध सरकारी व निगमों से जुड़े कर्मचारी-अधिकारियों की सेवाओं की कीमतें (वेतन) आसमान छू रहे हैं। एक प्रशासनिक अधिकारी सरकारी कार और आवास के साथ-साथ प्रतिदिन लगभग एक हजार रुपये पाता है। इस प्रकार की कीमत वृद्धि पर शोर नहीं मचाते। सांसद और विधायक, मन्त्री की वेतन-वृद्धि पर भी भारी शोर नहीं होते; क्योंकि ऐसी सभी "मूल्य वृद्धियाँ" सम्पूर्ण भ्रष्ट-व्यवस्था के साझीदारों से जुड़ी होती हैं। यही मूल्य-वृद्धियाँ जरूरी चीजों की मूल्य-वृद्धि को भी हवा देती हैं। अर्थशास्त्र और बाजार सिद्धान्त के सामान्य जानकार भी जानते हैं कि ८०-६० लाख लोगों की वेतन वृद्धियाँ अर्थ-व्यवस्था की जड़ों को किस प्रकार हिलाती रहती हैं। फिर बेचारे प्याज की जड़ें गहरी ही कितनी होती हैं! ❑

भिन्न वेष-भाषा-भोजन पर संस्कृति सबकी एक

कला, संगीत एवं साहित्य की अखिल भारतीय संस्था संस्कार भारती का सत्रहवाँ कला साधक संगम १० अक्टूबर से १२ अक्टूबर तक नागपुर में आयोजित किया गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की तपोभूमि रेशिम बाग परिसर में बनाये गये विशाल सभा–मण्डप में गत १० अक्टूबर को प्रातः १० बजे जब पूज्य सरसंघचालक रज्जू भैया की उपस्थिति में रामायण और महाभारत जैसे धारावाहिकों के निर्माता रामानन्द सागर ने तुलजा भवानी के मन्दिर से लायी गयी ज्योति शिखा द्वारा द्वीप प्रज्वलित कर इस समारोह का उद्घाटन किया, तो आसेतु हिमाचल ने एक साथ करतल ध्वनि से सभा–मण्डप को गुंजित कर दिया। भाषा–वेष की विविधता होते हुए भी भारतमाता की जय तथा जय श्रीराम का समवेत स्वर एवं विशिष्ट संस्कारों की छाप सभी को एकसूत्र में पिरोये हुए थी।

इस समारोह में ७२ घण्टे तक अखण्ड रूप से चलने वाले कार्यक्रमों की शृंखला में ११ अक्टूबर को निकाली गयी 'रंग धारा–यात्रा' विशेष आकर्षण का केन्द्र रही। प्रत्येक प्रदेश ने अपनी परम्परागत वेष–भूषा में अपनी विशिष्ट लोक–संस्कृति के कार्यक्रमों, झाँकियों के माध्यम से दर्शकों का मनोरंजन ही नहीं किया, उनमें प्रेरणा के भावों का प्रस्फुटन भी किया। तीन किलोमीटर की इस यात्रा में सम्पूर्ण मार्ग रंगोली से सजाया गया था।

नागपुर नगर के एक सौ चौराहों पर विविध प्रान्तों के कलाकारों द्वारा खेले गये नुक्कड़ नाटकों को वहाँ की जनता ने तो सराहा ही, समाचार पत्रों ने भी प्रशात्मक ढंग से छापा।

मुकेश खन्ना (शक्तिमान), रामानन्द सागर, अनूप जलोटा, शेखर सुमन, मराठी सिने निर्देशक राजदत्त आदि की स्वयं स्फूर्त उपस्थिति जहाँ विशेष उल्लेखनीय रही, वहीं समापन सत्र में नाना पाटेकर की अध्यक्षता तथा उनके भावपूर्ण उद्बोधन ने समारोह में चार चाँद लगा दिये।

तीन दिवसीय इस लघु भारत के दृश्य ने जहाँ राष्ट्रीय एकता, समता, समरसता की भाव–भूमि को सुदृढ़ किया, वहीं संगीत, कला एवं साहित्य के साधकों को अपनी कला–प्रस्तुति का समुचित अवसर भी प्रदान किया। तभी तो संस्कार भारती के इस कला साधक संगम की सफलता को देखकर रामानन्द सागर ने एक ऐसा ही संगम सागर–तट पर मुम्बई में आयोजित करने का निमन्त्रण दे डाला।

इस सम्मेलन में जहाँ तीनों दिन उपस्थित रहकर परम पूज्य सरसंघचालक रज्जू भैया ने अपना मार्गदर्शन प्रदान किया वहीं, संघ के अनेक पदाधिकारी तथा महाराष्ट्र सरकार के कई मन्त्री व राजनेता भी उपस्थित रहे।

वास्तव में संस्कार भारती द्वारा आयोजित इस महाकुम्भ में साहित्य, संगीत और कला की त्रिवेणी का अपूर्व संगम तीन दिन तक हिल्लोरे लेता रहा। — *'पर्यटक'*

अभिमत

'राष्टधर्म' का मैं एक नियमित पाठक हूँ। एक लम्बे समय तक इसको देखने–परखने के बाद निःसंकोच और बिना कोई अतिशयोक्ति के कह सकता हूँ कि राष्ट्रीय स्वाभिमान बरकरार रखने, जगाने में पूरे हिन्दुस्तान में इस प्रतिष्ठित पत्रिका का कोई सानी नहीं। आपके हर सम्पादकीय में एक नया ओज होता है, एक नई दृष्टि होती है, जिसकी रोशनी हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी भाईयों, जो खुद को विश्व का सबसे बड़ा एकमात्र धर्मनिरपेक्ष मानते हैं, की आँखों पर से निश्चित ही उनका धुँध हटाता रहा है। दुर्भाग्य उनका कि अपनी किसी खास मजबूरी में स्वीकारते नहीं।

— **अवधेश शर्मा** (हजारी बाग)

मैं 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पाठक हूँ। अपनी स्वतन्त्रता के पचास वर्ष विशेषांक बहुत ही अच्छा लगा, विशेषकर कविताएँ बहुत पसन्द आयीं। लेख भी प्रेरणास्पद थे। आशा है आप सभी अंकों में 'राष्ट्रधर्म' का यही स्तर बनाये रखेंगे।

प्रो० मधोक का लेख "चाहिए एक नयी सामाजिक–क्रान्ति" पढ़ा। उनकी देश प्रेम की भावनाओं से पूरी तरह सहमत हूँ।

— **वि० रा० पगारे**, (कटिहार)

'राष्ट्रधर्म' सितम्बर १९९८ के स्वाधीनता परिशिष्ट में 'शंख के असंख्य चमत्कार', 'ईसवी सन् २००१ का भारत' एवं 'ओंकार मान्धाता एक सिद्ध क्षेत्र' आदि लेख काफी ज्ञानवर्द्धक रहे तथा मुख पृष्ठ पर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन का चित्र मनमोहक रहा।

— **अद्वैत दशरथ तिवारी** (प्रतापगढ़)

'राष्ट्रधर्म' का सितम्बर अंक पढ़ा। हृदयनारायण दीक्षित जी का लेख 'भारत राज्यों की यूनियन नहीं एक सनातन राष्ट्र हैं' पढ़ा। मननीय प्रेरक लगा।

'धर्मग्रन्थों में राष्ट्रभक्ति के स्वर' लेख में चिन्तन, राष्ट्रीयता की ऊष्मा लगी। सभी कविताएँ श्रेष्ठ व प्रेरक लगीं। गीतकार प्रदीप को मिले दादा फाल्के सम्मान पर अग्रवाल जी का लेख सही है। हिन्दी दिवस विशेष आह्वान सटीक है। हमारे प्रधानमन्त्री संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिन्दी में बोले हैं। गौरव की बात है।

— **नारायण मघवानी**, (उज्जैन)

कमियाँ ढूँढ़ें, हमें बतायें।
केवल नहीं प्रशंसा गायें।।

सम्मान 'राष्ट्रधर्म' के सह सम्पादक का

भाऊराव देवरस सेवा–न्यास द्वारा 'पं० प्रताप नारायण मिश्र–स्मृति युवा साहित्यकार सम्मान' इस वर्ष 'राष्ट्रधर्म' के सह–सम्पादक श्री राम नारायण त्रिपाठी 'पर्यटक' को पत्रकारिता–विधा के लिए प्रदान किया गया है। सम्मान के प्रतीक स्वरूप सरस्वती–प्रतिमा, स्मृति–चिह्न, अंग–वस्त्रम्, श्रीफल, पं० प्रताप नारायण मिश्र का पूरा प्रकाशित साहित्य तथा न्यास द्वारा अब तक प्रकाशित साहित्य, सम्मान–पत्र एवं रु० ३१००/– पत्र–पुष्प के रूप में सम्मान–समारोह के विशिष्ट अतिथि डॉ० शरण बिहारी गोस्वामी, कार्यकारी उपाध्यक्ष, उ०प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा श्री 'पर्यटक' को प्रदान किया गया।

यह सम्मान नरेन्द्रालय, फैजाबाद में गत २७ सितम्बर ९८ को भाऊराव देवरस सेवा–न्यास के तत्त्वावधान में आयोजित एक भव्य समारोह में दिया गया। उक्त अवसर पर सर्वश्री स्वामी चिन्मयानन्द जी (मुख्य अतिथि) माननीय ओमप्रकाश जी, क्षेत्र–प्रचारक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, पं० वचनेश त्रिपाठी ('राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' तथा 'तरुण भारत' के भूतपूर्व सम्पादक), ब्रह्मदेव शर्मा 'भाईजी', लल्लू सिंह (मान० राज्यमन्त्री, उ०प्र० सरकार) तथा देवेन्द्र प्रताप (न्यास सचिव) मंच पर विराजमान थे। अवध विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० गिरीश चन्द्र सक्सेना ने समारोह की अध्यक्षता की तथा कार्यक्रम का संचालन किया विद्वद्वर डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी ने।

'राष्ट्रधर्म' श्री 'पर्यटक' को इस अवसर पर बधाई देते हुए हर्ष का अनुभव करता है। ध्यान रहे 'पर्यटक' जी अखिल भारतीय नवोदित साहित्यकार–परिषद् के संस्थापक हैं।

श्री रामनारायण त्रिपाठी 'पर्यटक' को सम्मान प्रदान करते हुए डॉ० शरण बिहारी गोस्वामी

बधाई

इस बार कहानी विधा के लिए 'पं० प्रताप नारायण मिश्र–स्मृति युवा साहित्यकार–सम्मान' नवोदित कहानी लेखिकाओं में उभरते एक नये नाम सुश्री मीनाक्षी दीक्षित को प्रदान किया गया है। यह सम्मान भाऊराव देवरस सेवा–न्यास द्वारा नरेन्द्रालय, फैजाबाद में आयोजित एक भव्य समारोह में गत २७ सितम्बर को श्रीमती निर्मला सिंह के हाथों दिया गया, जिसमें सरस्वती–प्रतिमा, स्मृति–चिह्न, अंग–वस्त्रम्, श्रीफल, न्यास तथा पं० प्रताप नारायण मिश्र जी का प्रकाशित साहित्य, सम्मान–पत्र तथा रु० ३१००/– की धनराशि समाविष्ट थी।

सुश्री मीनाक्षी दीक्षित 'राष्ट्रधर्म' से लेखिका के रूप में गत अनेक वर्षों से सम्बद्ध हैं। उनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। कु० मीनाक्षी को 'राष्ट्रधर्म' की बधाई।

इसी क्रम में बाल साहित्य के लिए चर्चित युवा हस्ताक्षर श्री सुनील जोगी, संस्कृत साहित्य के लिए 'संस्कृत सम्भाषण' के सम्पादक एच० आर० विश्वास, नाटक के लिए श्री पवन मिश्र, कविता के लिए श्री प्रमोदकान्त तथा सिन्धी साहित्य के लिए रवि कर्मवीर टेकचन्दानी को भी न्यास द्वारा सम्मानित किया गया। 'राष्ट्रधर्म' की इन सबको भी बधाई। □

जीना बेहतर जीना

– डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

एक बार मैं अपने एक मित्र के यहाँ गया। उसके दाँत में बहुत दर्द हो रहा था। मैंने उससे कहा; "किसी डॉक्टर को दिखाओ।"

वह– "एक दो दिन में अपने–आप ठीक हो जायेगा। जब दर्द को मालूम होगा कि यह आदमी बेहया है, किसी डॉक्टर को दिखाता नहीं, मेरी कोई सेवा नहीं करता, तो स्वयं ही भाग जायेगा।

मैं– "दर्द की हया आदि भावनाएँ नहीं होतीं। एक–दो दिन में रोग घटने के बजाय बढ़ भी सकता है। तब कष्ट अधिक होगा, इलाज पर खर्च भी अधिक होगा।"

वह– "जो दर्द भाग्य में बदा है, वह भोग लेना चाहिए। नहीं तो फिर कभी इसी जन्म में या किसी अगले जन्म में भोगना पड़ेगा।"

मैं– "ये सब पोंगापन्थी की बातें हैं। रोग को बढ़ने देने का अवसर देना केवल मूर्खता है।"

वह– "अरे! हम मूर्ख ही सही। समय कहाँ मिलता है। यह काम, वह काम। हमेशा फँसा ही रहता हूँ।"

मैं– "अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना सबसे पहला काम या कर्तव्य है। शरीर से ही तो काम करते हैं। शरीर ही ठीक नहीं तुम्हारा, तो काम क्या करोगे?"

वह– "अच्छा भाई! तुम्हारे जैसा ज्ञानी तो मैं हूँ नहीं। जब समय मिला, चला जाऊँगा डॉक्टर के पास।"

बाद में पता चला कि मेरा मित्र डॉक्टर के पास नहीं गया। दर्द कई दिन रहा। एक दिन जब बहुत जोर का दर्द हो रहा था, तब उसने दाँत को जोर से खींच दिया। दाँत बाहर निकल आया। कुछ दिन तक कोई सामान्य लोगों का बताया इलाज किया। दर्द एक दिन खत्म होना ही था, हो गया।

बहुत समय बाद मेरी उस मित्र से फिर भेंट हुई। मैं उनके घर ही गया था। पहले मैं जब कभी उनके पास जाता, तो वे कहीं जा रहे होते; पर मेरे लिए रुक जाते थे। लेकिन अब तो उन्होंने खड़े–खड़े ही एक दो औपचारिक बातों के पश्चात् कहा, "मित्र! क्षमा करना, इस समय बहुत आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ। मेरी आँख में दर्द हो रहा है। डॉक्टर को दिखाने जा रहा हूँ।"

मैंने पूछा, "बहुत दर्द हो रहा है?"

वह– "नहीं, हल्का–सा ही है।"

मैंने कटाक्ष किया, "तुम तो मित्र! दर्द सहने वाले वीर हो, फिर इतने उतावले क्यों हो रहे हो?"

वह– "बात यह है मित्र! कि मैंने नेत्र दान कर दिये हैं। अब इन आँखों को सदा स्वस्थ रखना मेरा कर्तव्य है। ये अब किसी की अमानत भी हैं।"

आँखों का इलाज तत्काल करा लेने से इस समय तो उसी को सुख मिलेगा। इसका अर्थ है, जो लोग दूसरों के लिए जीते हैं, वे अपने लिए भी उन लोगों से बेहतर जीते हैं, जो केवल अपने लिए ही जीते हैं।

❑

ज्वलन्त प्रश्न—

क्यों बार-बार महाभारत ही दोहराया जाता है

राजशेखर व्यास

हजारों वर्ष पूर्व महर्षि वेदव्यास ने महाभारत जैसा विशाल और विश्व का अद्वितीय ग्रन्थ लिखा था। उस महान् ग्रन्थ में समस्त मानवता और विशेषतः भारत की आत्मा का व्यापक–रूप अंकित कर शब्द को सप्राण बनाया था। सम्भव है, तब उस कुशल शिल्पी ने यह अपेक्षा रखी हो कि मेरे देश के वासी कोटि–कोटि मानव अपने विराट् विकसित "आत्मरूप" का प्रत्यक्ष दर्शन कर पथभ्रान्त नहीं होंगे; परन्तु "व्यास" जैसे महापुरुष को अपने अस्तित्वकाल में ही इतिहास के कटु सत्य का अनुभव करना पड़ा। महाभारत जैसी प्रबन्ध रचना के पश्चात् ही उन्हें कहना पड़ा कि "मैं हाथ ऊपर उठाकर चीखता हूँ, मेरी कोई सुनता नहीं।"

ऊर्ध्वबाहू विरौम्येष न कश्चिच्छ्रुणोति मे।
धर्मादर्थश्चकामश्च सधर्मः किन्न सेव्यताम्।।

ढाई हजार साल बाद यही हाल महात्मा "बुद्ध" का हुआ। "बुद्ध" महान् क्रान्तिकारी हुए हैं। पुरानी परम्पराओं के कठोर बन्धन में बँधे समाज को अपनी ओजस्विनी वाणी से पलटने का गम्भीर प्रयास उन्होंने किया और उसमें बहुतांश में सफलता भी मिली; किन्तु "भिक्षु आनन्द" के अनुरोध पर अपने संघ में महिलाओं को लेने को विवश होना पड़ा, जिसका परिणाम वे स्वयं जानते थे और वह हुआ भी। भारत में बौद्ध–धर्म का उच्छेद हो गया, जड़ें उखड़ गयीं।

'महात्मा' गांधी ने ढाई हजार साल बाद उसी कटु सत्य का अपने जीवनकाल में दर्शन कर लिया। गांधी जी हमारे सामने प्रत्यक्ष रहे हैं। इसलिए चाहे हमने उनमें बुद्ध और महावीर के क्रान्तिकारी समाज सुधार के उस ऐतिहासिक रूप के दर्शन नहीं किये, किन्तु भावी इतिहास बतला सकेगा कि गांधी ने शताब्दियों से सुषुप्त समाज की मोह–निद्रा भंग कर किस तरह झकझोरकर उसे जाग्रत् बना दिया। गांधी को महज राजनीति का "महात्मा" मानकर हम उस महापुरुष के साथ न्याय नहीं कर सकते। उसने जीवन के प्रत्येक अंग, प्रत्येक पहलू को परखा, स्पर्श किया और उसे सचेतन बनाया है। वह भी उसमें आत्ममय तदाकार होकर। दो हाथ–पैर का साधारण मानव मोहनदास करमचन्द गांधी कोटि–चरण, कोटि–बाहु बन विराट्–व्यक्तित्व का स्वामी हो गया था। सारे समाज का सूत्रधार, पथ–प्रदर्शक होकर 'महापुरुषत्व' की सार्थकता सिद्ध की थी; किन्तु उसी को वेदव्यास की वाणी के कठोर सत्य का अपने जीवन के उत्तरकाल में अनुभव करना पड़ा। दिल्ली के विशाल बिड़ला भवन की प्रार्थना सभाओं में हाथ ऊपर उठाकर घोषित करना पड़ा कि "अब मेरी कोई नहीं सुनता।" उन्होंने दो दशक पूर्व ही भविष्य का दर्शन कर सही कहा था कि "स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस को विसर्जित कर देना ही उचित है; किन्तु उनके अनुयायियों ने ही इस कठोर सत्य को समझने का प्रयास नहीं किया। आज यह "सत्य" कितना कटु बनकर प्रत्यक्ष हो गया है। यदि गांधीजी के समक्ष यह "विसर्जन– पर्व" मना लिया गया होता, तो जनता प्रतिवर्ष पर्व के रूप में कांग्रेस की महान् उपलब्धियों और सेवाकार्य को श्रद्धापूर्वक अपनी अंजलि अर्पित करती; परन्तु इस समय कांग्रेस की हत्या कर उसका शव–परीक्षण किया जा रहा है।

गांधीजी के साथ रहकर उनके उपदेशों को आचार में उतारने वाले, खुदाई खिदमतगार "बादशाह खान" (खान अब्दुल् गफ्फार खाँ); जिन्हें लोग 'सरहदी गांधी' कहते थे, ने भी स्वाधीन भारत के २२ वर्ष पश्चात् इस भूमि पर आकर कितनी निराशा अनुभव की थी। उन्हें यह कल्पना भी नहीं थी कि गांधी वाले देश की ऐसी दुर्दशा स्वाधीन होने के पश्चात् हो सकती थी। वेदव्यास, गौतम बुद्ध और गांधी की तरह ही बादशाह खान ने भी दिल्ली के विमान–तल पर उतरते ही विषादपूर्वक कहा था कि "जब तुमने गांधी का कहा नहीं सुना, तो मेरा क्या सुनोगे।"

क्यों "सत्ता" के साथ "सत्य" का समन्वय करना सम्भव नहीं हो पाता? महाभारत में भी सत्य और धर्म को प्रमुख मानकर "महाभारत" का "समर–संघर्ष" हुआ है। पर परिणाम? गांधीजी अवश्य सत्ता में भी सत्य का अभिनव प्रयोग कर रहे थे, पर सत्ता पर अधिष्ठित जनों ने जब स्वयं गांधी जी को ही निरपेक्ष बनने को विवश कर दिया, तब प्रयोग का प्रश्न ही निरर्थक हो गया। ऐसा हर बार क्यों होता है? क्यों बार–बार महाभारत ही दोहराया जाता है? ◻

– ई– ६०७, कर्जन रोड अपार्टमेन्ट, नई दिल्ली

(पृष्ठ १० का शेष)

एक बोतल में बम का मसाला भरे जा रहे हैं। साथ ही 'युगान्तर' पत्र का सम्पादन कार्य भी जारी है। चन्दन नगर में विप्लव-कार्य की योजना शुरू में उपाध्याय ब्रह्म बान्धव ने सोची थी, परन्तु उसको भूमिका प्रदान की बारीन्द्र घोष ने। कन्हाई लाल ने उसकी जड़ जमा दी वहाँ। समिति की छह शाखाएँ खोलीं। कन्हाई का अपना घर ही उन शाखाओं का केन्द्र रहा। कन्हाई ने शाखाओं में लाठी चलाना सिखाने की व्यवस्था की थी। स्वयं उसमें दक्ष हो गये थे। मोतीलाल राय बताते हैं कि "भद्र-लोक के लोगों को लाठी चलाते देखकर शेष सभी वर्गों के लड़के भी हमारी समिति-शाखाओं पर आकर लाठी की शिक्षा लेने को उत्सुक होते थे। उन दिनों मुहल्ले-मुहल्ले में समिति शाखाओं पर लाठी की 'चटा-चट' की आवाजें गूँजती थीं। उत्साह आता था। बाहर से उन्हें देखकर कोई नहीं समझ सकता था कि ये शाखाएँ विप्लवी-समिति की हैं। कभी यदि कोई सदस्य ऐसी जिज्ञासा कन्हाई से करता भी, तो वे उसे टाल जाते थे। उन दिनों कुमिल्ला जैसे जिलों में आततायी (दंगाई) मुसलमानों के जो अत्याचार हिन्दुओं पर हो रहे थे, उससे उत्तेजित होकर भी लोग समिति की शाखाओं की ओर आकर्षित हुए थे और उसी कारण उनके मन में संगठन, लाठी, छुरे, तलवार की शिक्षा प्राप्त करने की उमंग उत्पन्न हो सकी थी, यह सच है। ढाका के नवाब समीमुल्ला द्वारा तथा कुमिल्ला में मुसलमानों से जिस तरह सताये जाकर हिन्दुओं में जोश और जागृति आई, उसके कारण वे भी पिस्तौल आदि का प्रयोग करने की बात सोचने लगे। सभा-जुलूसों पर उन दिनों मुसलमानों की तरफ से पत्थर-वर्षा, उपद्रवों की नित्य ही खबरें अखबारों में आती थीं। इसी से विप्लवी समिति की शाखाओं पर भी बिना प्रयास ही ठेलाठेल मची थी। खूब नये लोग आ रहे थे। कन्हाई ने उसका लाभ उठाते हुए उनमें से योग्य युवक चुने। उनमें यह भाव जगाया कि "यह हमारा देश है। हम इसे स्वाधीन करेंगे।"

एक रात अमावास्या को गंगा-तट पर खड़े वटवृक्ष के नीचे कन्हाई ने विप्लव की दीक्षा लेते हुए प्रतिज्ञा ग्रहण की। १०५ डिग्री ज्वर में भी वे कर्मरत रहते थे। उन दिनों कुमिल्ला, ढाका, मेमनसिंह और जमालपुर आदि में जो जुल्म हिन्दुओं पर ढाये गये, उससे स्वदेशी-साधना का दृष्टिकोण बदल गया। जमालपुर में सरस्वती-प्रतिमा को वसन्त पर जिस तरह मुसलमानों ने तोड़ा, उस कारण हिन्दू स्त्रियाँ सब कुछ फेंककर रास्तों, घाटों पर लोटने लगीं। इन बातों ने युवकों को झकझोर दिया। इसी स्थिति में कन्हाई ने विप्लवी समिति ('अनुशीलन-समिति') की दीक्षा ली थी। उस देशकाल-परिस्थिति को भी भूलना नहीं चाहिए।

बंगाल के इस महान् बलिदानी क्रान्तिकारी को सन् १९०८ में फाँसी दी गयी थी। उस समय उन्हें डिग्री नहीं दी जा सकी होगी, जो ८१ वर्ष बाद वर्ष १९८९ के अप्रैल में दी गयी कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा। यह उपाधि (बैचलर ऑफ आर्ट्स) हुगली जिले के चन्दरनगर में हुए एक विशेष दीक्षान्त-समारोह में दी गई। यहीं कन्हाईलाल दत्त रहते थे। बंगाल के मुख्यमन्त्री ज्योति बसु तथा राज्यपाल टी०वी० राजेश्वर इस मौके पर मौजूद रहे। विडम्बना यह कि इस समारोह में शहीद के परिवार का कोई भी सदस्य मौजूद न था। अतः यह उपाधि उस परिवार के किसी जीवित व्यक्ति को नहीं दी जा सकी, वरन् इस स्थिति में इसे दिया गया बर्दवान-विश्वविद्यालय के कुलपति मोहित भट्टाचार्य को। उपाधि प्रदान करने के लिए दीक्षान्त-समारोह में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के कुलपति भास्कर राय चौधरी आये थे। शहीद कन्हाई लाल दत्त ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही बी०ए० किया था। यह दिन स्मरणीय रहेगा; क्योंकि अभी तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय के विगत १३३ वर्षों के इतिहास में ऐसा प्रथम बार ही हुआ। यह भी सोचने की बात है कि ८१ साल बाद हमारे देश ने उस वीर विप्लवी को याद किया, आजादी आने के ४२ साल बाद। ❒

हाथियों का आवासीय विद्यालय

थाईलैण्ड के लम्पाचा क्षेत्र के सौगान केन्द्र से लगभग ५० कि०मी० की दूरी पर हाथियों का एक आवासीय विद्यालय है। यहाँ के छात्रावास में हाथियों को छह मास तक रहकर औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा है।

प्रत्येक हाथी से यह अपेक्षा है कि वह प्रतिदिन प्रातः ६ बजे से चलने वाले वर्ग में नियमित रूप से भाग ले। छह मास तक चलने वाले इस प्रशिक्षण को चार भागों में बाँटा गया है, जिसमें हाथियों को बैठना, उठना, मुड़ना और लकड़ी के लट्ठों को ढकेलना सिखाया जाता है। इस वर्ग में उन्हें जीप, गाड़ी, बन्दूक चलने की आवाज और परिणाम तथा सिंह और बाघ की उपस्थिति का संज्ञान भी कराया जाता है।

विद्यालय में प्रवेश की न्यूनतम आयु ५ वर्ष है और एक बार में मात्र १५ छात्रों की आवासीय व्यवस्था है। ❒ (मी०फो०)

निजामशाही ने जिनकी मूर्त्ति लगवाई

- पथिक

तेलंगाना– गोलकुण्डा का शासक उन दिनों मुसलमान था, नाम था– तानिशा या तानशाह। जनता में यही नाम प्रचलित था। वैसे वह अपना नाम लिखता था– अबू हसन कुतुबशाह। इसका मन्त्री मदन नामक हिन्दू था। मन्त्री ने नेलकोंडपल्ली ग्राम के एक रामभक्त गोपना को भद्राचलम् का हाकिम तैनात करा दिया। यह पद आज के तहसीलदार के समकक्ष था। भद्राचलम् तीर्थस्थान होने से गोपना को उससे बड़ा लगाव रहा। वहाँ कभी एक प्राचीन राम–मन्दिर रहा था, जिसे तोड़ा जा चुका था और अब वह नितान्त अवशेष रूप में ही दिखता था। मन्दिर किस तरह पूर्व भव्य–रूप प्राप्त करे, वस्तुतः यही चिन्ता गोपना से उस मुस्लिम शासक की चाकरी करवा रही थी। कारण, जब वे हाकिम नहीं थे, एक बार अपने गाँव से भद्राचलम् आये तो उस टूटे–फूटे मन्दिर की जो दुरवस्था देखी, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। श्री राम के नाम से जुड़े उस पवित्र स्थान की यह दुर्गति उन्हें सहन नहीं हुई। कारण, एक तो वे अपने पिता की गोद में राम–कथा सुनते–सुनते ही बड़े हुए थे (पिता शिक्षक थे; किन्तु वे गोपना के बचपन में ही गुजर गये) तब माँ से उन्हें राम की महिमा–गरिमामयी कथा की शिक्षा मिली। पिता को फुर्सत के समय अपने गाँव के किसानों को राम–कथा (रामायण) सुनाने में रुचि थी और उस समय बालक गोपना उनकी गोद में बैठा बड़े ध्यान से राम–चरित्र, उनकी वीरता का गौरव सुनता रहता था।

भद्राचलम् में राममन्दिर का गर्भ–गृह

बड़े होने पर जब उसी गोपना ने भद्राचलम् आकर वहाँ प्राचीन राम–मन्दिर की भग्नावस्था देखी, तो वह उसे भुला न सका। वरन् इस चिन्ता में रहने लगा कि किस तरह इस स्थान पर फिर से श्रीराम का विशाल मन्दिर खड़ा किया जाय? उसके दीक्षा–गुरु रघुनाथ भट्टाचार्य ने उसे दीक्षा भी राम–मन्त्र की ही दी थी। यही मन्त्र दक्षिण भारत में 'तारक–मन्त्र' कहलाता है। गोपना पर जब माँ ने बहुत जोर दिया, तो उसने विवाह कर लिया। उसकी पत्नी थी, आदेम्मा, जिससे एक उसके पुत्र भी था। राम–मन्दिर–निर्माण की चिन्ता लिए ही वह नवाब अबू हसन कुतुबशाह के मन्त्री मदन से मिला और मन्त्री ने उसे भद्राचलम् का हाकिम बनवाने में सफलता प्राप्त की।

जैसे ही गोपना उस इलाके से बखूबी परिचित हो गया और हाकिम होने से उसका प्रभाव भी हावी हुआ, वैसे ही उसने अपने पूर्व संकल्प को क्रियान्वित करना शुरू कर दिया। उसने वहाँ के धनी–मानी लोगों से धन संग्रह किया और ध्वस्त राम–मन्दिर के पुनर्निर्माण में लग गया। मन्दिर बहुत विशाल बना और उसकी भव्यता के अनुरूप ही गोपना ने उसकी साज–सज्जा में तमाम धन खपाया; मन्दिर में जो श्रीराम–सीता–लक्ष्मण की विशाल प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायीं, उन्हें रत्नाभरणों से शृंगारित कराया। सब जेवर जवाहरातवाले जड़ाऊ ही थे। इसमें गोपना ने शाही खजाने का भी कोई दो लाख रुपये खर्च कर दिया। सोचा, जल्द ही जनता से इतना ही धन एकत्र करके शाही खजाने की भरपाई कर देंगे लेकिन नवाब कुतुबशाह की बेगम को इस बात की खबर हो गई। वह सितारा बेगम बहुत हिन्दू–द्वेषी तथा हिन्दू–धर्म–विरोधिनी ही थी। उसने उस समय भी नवाव से अपनी खिलाफत जाहिर की थी, जब राज्य का मन्त्री मदन नाम का हिन्दू बना और तब भी उसने नाराजगी जताई, जब उस मन्त्री ने गोपना को हाकिम बनवाया। सितारा बेगम नहीं चाहती थी कि उस राज्य का कोई मन्त्री या हाकिम हिन्दू हो। न वह
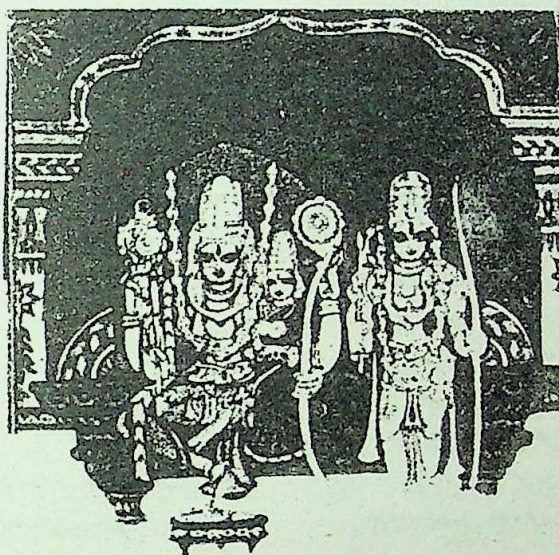
यही पसन्द करती थी कि गिराये गये मन्दिर फिर से खड़े किये जायें। वह घोर तास्सुबी औरत थी और बहुत क्रूर भी। अतः जैसे ही सितारा बेगम को भद्राचलम् में राम–मन्दिर बनने तथा उसमें शाही खजाने के भी लाखों रुपये खर्च किये जाने की जानकारी हुई, वैसे ही वह फौरन नवाब से मिली और गोपना के इस कारनामे की शिकायत पेश करते हुए जोर दिया कि गोपना गिरफ्तार करके कैद में रखा जाये और उसे सख्त सजा दी जाये। जब तक कुतुबशाह गोपना के खिलाफ कोई कार्रवाई करें, इसी बीच सितारा बेगम ने साजिश करके कुछ मुसलमान छिपे तौर से भद्राचलम् भेजे और उन्हें ताकीद की कि तुम वहाँ जो शाही खजाना है, उसमें डाका या चोरी करके ज्यादा से ज्यादा रकम उठा लाओ ताकि इस हाकिम हिन्दू के बच्चे गोपना को बुरी तरह फँसाया जा सके। डाकू गये और वहाँ डाका मारकर कोई डेढ़ लाख रुपये खजाने का उड़ा लाये। अब खजाने में साढ़े तीन लाख रुपये के गबन का जुर्म लगाकर सितारा बेगम ने पुनरपि नवाब को उकसाया कि इस काफिर हाकिम के होश जल्द ठिकाने न लगाये गये, तो यह उस इलाके को ही लूटकर बर्बाद कर देगा। मन्दिर का नाम यह बहाने के तौर पर लेता है। कुतुबशाह ने हथियारबन्द आदमी गोपना की गिरफ्तारी के लिए भेज दिये और वे उसे जंजीरों से जकड़ कर गोलकुण्डा ले आये। कागजात देखकर गोपना पर छह लाख रुपये के गबन का जुर्म लगाया गया। कहा गया– "दो लाख रुपये तो तुमने मन्दिर बनाने में खर्च कर दिये; डेढ़ लाख रुपये डाके में लुटवा दिये; बाकी ढाई लाख रुपये की वसूलियाबी ही तुमने किसानों से नहीं की।" गोपना को कैदखाने में अकथनीय यातनाएँ दी जाने लगीं।

सितारा बेगम ने ताकीद कर दी जेल दारोगा को कि "इस काफिर को सिर्फ मछली और नमक खाने के लिए भेजो और कोई राशन वगैरह न देना।"

गोपना के पाँव भारी–भारी बेड़ियों से दुखते रहते। ऊपर से प्रहार होता कोड़ों का। जमीन में काँटें बिछाकर गोपना को दौड़ाया जाता। लोहे का खम्भा ढोवाया जाता। गोपना केवल श्रीराम नाम के सहारे ये सब यातनाएँ मौन होकर सहते–झेलते रहे। गोलकुण्डा की जनता में बड़ा विक्षोभ फैला; पर वह अवश थी। न शस्त्र थे, न सत्ता। अवश्य मौका पाते ही वह क्रुद्ध–क्षुब्ध जनता श्रीराम की जय–जयकार करती और गोपना रामभक्त की भी और फिर पता नहीं कैसे एक घटना घटी। दो मुसलमान–वेषी सुन्दर युवक एक रोज आधी रात को अचानक कुतुबशाह के हरम में जहाँ नवाब की ख्वाबगाह थी, आ खड़े हुए। मुसलमान वेष में होने से ही शायद उन्हें किसी पहरेदार या सिपाही ने न रोका हो। उन सुन्दर युवकों ने तेज स्वर में नवाब से कहा– "ये लो अपने छह लाख रुपये और रसीद लिख दो ताकि भरपाई की सनद रहे।" नवाब अभी भी जैसे उस ख्वाबगाह में ऊँघता–सा कोई खूबसूरत ख्वाब ही देख रहा हो, इस तरह सकते में आ उसने रसीद लिख दी और भौंचक, हक्का–बक्का हो उन सुन्दर नवजवानों को एकटक निहारता– ताकता रह गया, उनके नूर भरे चेहरों से उनकी नजर ही नहीं हट पा रही थी और पलक मारते वे दोनों युवक वहाँ से न जाने किधर लापता हो गये।

सुबह कुतुबशाह को लगा कि उसको सपने में कोई दो लड़के छह लाख रुपये चुकाकर रसीद लिखवा ले गये। वह हैरान हो कैदखाने में कैदी गोपना के पास गया कि क्या वे रुपये तुमने ही भेजे थे। पर वहाँ जाकर वह देखता है कि गोपना के पाँवों के पास उसकी रसीद पड़ी है और वह अलमस्त कैदी 'राम–राम' की रट लगाता आँखें बन्द किये लगातार आँसू ढारे जा रहा है। नवाब चकराया यह दृश्य देखकर। उसकी समझ में कुछ भी न आया। बार–बार पूछने पर गोपना सिर्फ जोर–जोर रोता ही रहा। उत्तर नदारद। फिर नवाब की अपनी स्मृति के अँधेरे में जैसे एकाएक कोई विचार कौंधा और वह गोपना के कदमों में झुक गया। उसके पाँव चूमे; बेड़ियाँ कटवाईं। रिहा किया गोपना को। फिर भागा–भागा महलसरा में गया और वे छह लाख रुपये लाकर गोपना की गोद में डाल दिये। अपने किये की माफी माँगने लगा नवाब। गोपना चुप और उसी रोज शाही मुहर लगाकर नवाब ने एक दस्तावेज लिखवाया जिसमें न सिर्फ वह राम–मन्दिर वरन् भद्राचलम् का खजाना और भद्राचलम् की जागीर गोपना के नाम लिख दी। राम–भक्त की उसके आराध्य श्रीराम की सब तरफ जय–जयकार होने लगी और फिर खुद उस १७वीं शताब्दी में निजामशाही ने ही रामभक्त गोपना की एक मूर्त्ति भी मन्दिर–परिसर में प्रतिष्ठित करवाई। भगवान् के साथ भक्त पर भी फूल चढ़ने लगे। ८५ साल की उम्र तक गोपना सर्वविधि श्रीराम–मन्दिर की सेवा–पूजा करते रहे। गोदावरी जिले में भद्राचलम् स्थित वह राम–मन्दिर आज भी खड़ा है अपनी गौरव– मण्डित ऐतिहासिकता के साथ और वहाँ राम–भक्त गोपना की मूर्त्ति भी द्रष्टव्य है। शायद कुतुबशाह को उसकी इसी उदारता के कारण हिन्दू जनता उसे एक नवीन नाम 'भले राजा' के नाम से पुकारने लगी। 'तानिशा' अब 'भले राजा' का खिताब पा गया। ✩

थ्योडोर मामसन : साहित्य की विस्तृत परिभाषा देने वाले जर्मन साहित्यकार

– डॉ० शुभंकर बनर्जी

३० नवम्बर, १८१७ को थ्योडोर मामसन का जन्म जर्मनी के गार्डिग नामक शहर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कील में हुई थी। १८४३ में डैनिश सरकार ने उन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की तथा उच्च शिक्षा हेतु इटली भेज दिया। मात्र १८ वर्ष की अल्पायु में ही सन् १८४८ में उन्हें लिपजिंग में सिविल लॉ के प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति मिली; परन्तु १८५० में ही राजनैतिक कारणों से उन्हें पद से हट जाना पड़ा। बाद में १८५२ में उन्हें ज्युरिख में प्रोफेसर का पद पुनः मिल गया।

सन् १८५८ में उन्हें बर्लिन में प्रोफेसर का पद प्राप्त हो गया। उन्होंने अपना अटूट ध्यान अध्ययन की ओर देने का निश्चय किया। कई वर्ष तक थ्योडोर मामसन प्रशियन संसद् के संदस्य भी रहे। अपने जीवन–काल में उन्होंने कई विषयों का अध्ययन किया। उन विभिन्न विषयों पर उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं तथा अपनी तीक्ष्ण–बुद्धि से लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया।

दरअसल थ्योडोर मामसन उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने न केवल कानून बल्कि साथ–साथ इतिहास तथा पुराण–पुरावशेष–शास्त्र का भी गहन अध्ययन किया था। अपने जीवन–काल में उन्होंने १०० से भी ज्यादा प्रकार की रचनाएँ की थीं; परन्तु उनकी ख्याति मुख्य रूप से एक ही पुस्तक पर निर्भर रही। उस पुस्तक का उल्लेख करके नोबेल पुरस्कार प्रदान–पत्र में भी किया गया है। उस पुस्तक का नाम "रोम के गेस्किख्टे" (रोम का इतिहास) था जिसका प्रकाशन १८६२ में हुआ था। उनके पुस्तक के दूसरे उल्लेखनीय भाग थे रोम, आदि काल से ४० ई०पू० तक (१८६७) तथा द प्राविन्सेज ऑफ द रोमन एम्पायर, फ्रॉम सीजर टु डायोक्लेशियन (१८६७)।

थ्योडोर मामसन की यह पुस्तक न केवल तत्कालीन पण्डितों को अपने विस्तार तथा गहराई से प्रभावित करने में सफल हुई थी बल्कि इस पुस्तक ने रोम के भूले हुए जीवन को एक बार फिर उसके जीवन्त रूप में पाठकों के

नोबल साहित्य पुरस्कार प्राप्त करने वाले दूसरे व्यक्ति के रूप में उनकी ख्याति पूरी दुनिया में फैल गयी। इस पुरस्कार को प्राप्त करके उन्होंने अपनी मातृभूमि का भी नाम साहित्य–जगत् में ऊँचा किया। जब उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की गयी, तब किसी ने भी इस निर्णय पर असन्तोष प्रकट नहीं किया।

थ्योडोर मामसन को साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान करते ही दो बातों का स्पष्टीकरण हो गया–

१. साहित्य शब्द का जो अर्थ स्वीडिश अकेडेमी लगाती है, वह उतना संकीर्ण कदापि नहीं है, जितना कि इसके आचार्य लगाते थे। अर्थात् यह स्पष्ट हो गया है कि "साहित्य" की परिभाषा अधिक विस्तृत है तथा इसमें इतिहास को भी अवश्य सम्मिलित किया जा सकता है।
२. यह बात भी स्पष्ट हुई है कि यह पुरस्कार उन सभी रचनाओं को ध्यान में रखकर दिया जाता है, जो लेखक ने अब तक लिखी हैं न कि जैसा अल्फ्रेड नोबेल के वसीयतनामे में उल्लिखित था। थ्योडोर मामसन को यह पुरस्कार उनके जीवन की अन्तिम अवस्था में मिला था, जब उनकी आयु ८५ वर्ष की थी।

सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया था। इस पुस्तक में थ्योडोर मामसन ने न केवल रोम का बल्कि सम्पूर्ण इटली का भी इतिहास प्रस्तुत किया था। दरअसल रोम तथा रोम के लोग तो वैसे इटली का केवल अंग ही थे; परन्तु अपनी सभ्यता तथा शक्ति के बल पर रोमन लोगों ने सम्पूर्ण इटली पर ही अपना प्रभुत्व जमा लिया था। थ्योडोर मामसन ने "इतिहास की एकता" पर भी जोर डाला तथा यह प्रमाणित करने की भी चेष्टा की कि १८०० ई० पूर्व के इटली तथा उन्नीसवीं सदी के जर्मनी तथा यूरोप में कोई विशेष भेद नहीं रहा।

उन्होंने अपनी लेखनी से सिसरो, हैनिबल, सुली तथा सीजर आदि का परिचय अपने पाठकों से ऐसे कराया मानो पाठक किसी पुराने मित्र से पुनः मिल रहा हो। इस पुस्तक के कुछ अश आज भी प्रसिद्ध हैं। उदाहरणस्वरूप– हैनिबल का आल्प्स पार करना। इस पुस्तक में बहुत सी बातों का विस्तृत वर्णन है। इन विवरणों से मामसन के विशाल पाण्डित्य तथा अपरिमित ज्ञान का भी प्रमाण मिलता है।

यह सत्य ही है कि मामसन की पुस्तक केवल

ऐतिहासिक घटनाओं तक ही सीमित नहीं रही। उनकी पुस्तक में धर्म, सभ्यता, रहन–सहन, खान–पान, साहित्य तथा कला का भी विस्तृत वर्णन किया गया। थ्योडोर मामसन ने न केवल अतीत का चातुर्यपूर्ण वर्णन किया है बल्कि साथ ही अपने विलक्षण ज्ञान का भी परिचय देते हुए अपनी रचनाओं से उनके वर्तमान के ज्ञान का भी बोध कराया है।

जब उनकी आयु ८५ वर्ष की हो चुकी थी, तब १० दिसम्बर १६०२ को उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले वे विश्व के दूसरे तथा जर्मनी के प्रथम साहित्यकार थे। उनसे पहले नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे कवि सुली प्रूधों, जो फ्रान्स के थे।

साहित्य का यह सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त करने के बाद थ्योडोर मामसन ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहे। उसके अगले वर्ष १ नवम्बर १६०३ को उनकी मृत्यु ८६ वर्ष की अवस्था में हो गई।

जब वर्ष १६०२ में थ्योडोर मामसन को स्वीडिश अकेदेमी ने पुरस्कार प्रदान किया, तब अपने नोबेल पुरस्कार प्रदान–पत्र में इस बात का उल्लेख किया कि– "थ्योडोर मामसन ऐतिहासिक रचनाओं की कला के सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी रचना 'रोम का इतिहास' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"

यह बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि थ्योडोर मामसन ने ही सर्वप्रथम साहित्य के अर्थ को संकीर्णता से बाहर निकाल कर उसे विस्तृत परिभाषा प्रदान की।

❐

– सचिव, "शान्ति मिशन", ए–४६, सादतपुर, करावल नगर रोड, दिल्ली–११००६४

हिमाचल के ईसाईकरण का षड्यन्त्र

हिमाचल की देवभूमि को यदि ईसाई षड्यन्त्रों से बचाया न गया, तो निकट भविष्य में यह सम्पूर्ण क्षेत्र अलगाववाद की लपेट में आ सकता है। दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई आदि के बड़े–बड़े गिरजाघर विदेशों से प्राप्त धन और ईसाई प्रचारकों को हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में भेजते हैं तथा उनके द्वारा भोले–भाले निर्धन पहाड़ी लोगों को ईसाई बनाने का कार्य चण्डीगढ़, अमृतसर और गुरदासपुर आदि गिरजाघरों के पादरी सम्पन्न कराते हैं।

'इन प्रचारक पादरियों ने कौड़ियों के मोल भूमि खरीद कर शिमला, सिरमौर, चम्बा व लाहौर आदि जिलों के पहाड़ी क्षेत्रों को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना है। ये लोग जनजातीय क्षेत्रों में तथाकथित सेवा–प्रकल्प चला रहे हैं। विद्यालयों की भी एक लम्बी शृंखला इन लोगों ने खड़ी कर दी है। हिमाचल प्रदेश से बहला–फुसला कर लाये लोगों को धारीवाल, लुधियाना के गिरजाघरों तथा ईसाई ठिकानों पर रखा जाता है। इनके मस्तिष्क में ईसाई मत के प्रति जबरन श्रद्धा ठूँसी जाती है। कुछ समय के बाद निश्चित शर्तों के आधार पर इन्हें ईसाई बनाकर उनका नाम पक्के रजिस्टर में लिख दिया जाता है।

हिमाचल प्रदेश की कौड़ियों के भाव हथियाई जमीन पर विद्यालय व चिकित्सालय आदि बनाकर गरीबी और लाचारी का लाभ उठाकर यहाँ के भोले लोगों को ईसाई बनाया जा रहा है। काँगड़ा, हमीरपुर, मण्डी, विलासपुर आदि जिलों में तो ईसाईकरण का कार्य अनेक वर्षों से चल रहा है।

हिमाचल से उठ रही ईसाईकरण की लपटें सम्पूर्ण हिमाचल को निगल जाने को हैं। ('हिमाचल ध्वनि' से साभार)

हिमाचल में इस्लामी आतंकवादी

हिमाचल के लोग भोले–भाले हैं। इन्हें पता नहीं लगता कि कन्धे पर कपड़े की गाँठ रखकर, हाथ में एक डण्डा लेकर सलवार और टोपी पहने इन अपरिचित कश्मीरी मुसलमानों की यह फौज उनके ग्रामों, में गलियों में, मुहल्लों में, एक साथ क्यों घूम रही है? सावधान रहें, ये आपको घर पर सस्ते कम्बल और कपड़े देने नहीं आये हैं। वे तो ग्रामों की भोली–भाली माताओं से, बहिनों से मीठा बोलकर उन्हें ठगने में कोई कमी नहीं छोड़ते। आपको अच्छा और सस्ता कपड़ा देना उनका उद्देश्य नहीं है। स्मरण रखें, यह तो आई०एस०आई० के एजेंटों की फौज है। उन्हें आपके रास्तों का, पुलों का, उनका विरोध करने वालों और उनके अपनों का पूरा–पूरा सर्वेक्षण करना है। जरूरत पड़ने पर भागने के लिए कौन–कौन रास्ते हो सकते हैं? छिपने के लिए कौन–कौन से घर हो सकते हैं? इन सारे रहस्यों का उन्हें पूरा ब्यौरा प्राप्त करना है। उन्हें इस काम के लिए प्रतिमास आर्थिक रूप में कोई योगदान भी कर रहा है। क्या आपको इन सारे रहस्यों और तथ्यों का पता है?

जरा सोचें, क्या कश्मीरी कपड़ा बेचने वालों की एक साथ इतनी बड़ी फौज, पहले भी कभी आपने गाँव–गाँव में घूमते देखी थी? बैजनाथ के पहाड़ी ग्रामीण–क्षेत्र में कई वर्षों से, परिवार, बनाकर रह रहे एक उग्रवादी का पकड़ा जाना क्या सजग होने के लिए पर्याप्त नहीं है?

❐

– 'हिमालय ध्वनि' से साभार

प्राचीन भारत में कृषि–व्यवस्था

– डॉ. शिवनन्दन कपूर

"भारत माता ग्राम–वासिनी" कहने से ही भारत के कृषि-प्रधान राष्ट्र होने की पुष्टि हो जाती है। ग्राम ही कृषि के केन्द्र रहे हैं। इस देश में पुरा काल से ही खेती मुख्य जीविका के रूप में रही। पुरातन ग्रन्थों के मनन से विदित होता है, उस काल की कृषि–व्यवस्था किस प्रकार की थी, एवं उसमें क्या बाधाएँ थीं। अन्न की मुख्यता भी हर युग में बदलती रही। उपज का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा था।

वैदिक युग

'ऋग्वेद' तथा 'अवेस्ता' दोनों में ही 'यवम् कृषि' वाक्य के प्रयोग से प्रतीत होता है कि हिन्द-ईरानी-सभ्यता के काल से ही आर्यों की जीविका का मुख्य आधार कृषि रहा। कृषि की महत्ता का उल्लेख 'ऋग्वेद' में है। 'ऋग्वेद' में स्पष्ट कहा गया है, खेती करो (कृषिमित्कृषस्व, १०–३४–१३) 'अथर्ववेद' में अपने देश का वर्णन ही कृषि–कार्य एवं गों–धन की मुख्यता पर हुआ है। जिसकी चार दिशाओं में खेती होती है, जो नाना प्रकार से प्राणियों की रक्षा करती है, वह जन्मभूमि हमें गो–धन तथा जन्म से समृद्ध करे–

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्,
सा नो भूमिगोष्वप्यन्ने दधातु।।

(अथर्ववेद, १२ काण्ड, पृथ्वी सूक्त ४)

कृषि कर्म उस युग में अत्यन्त पावन माना जाता था। जनक ऐसे राजा भी हल चलाते हैं, दिलीप सदृश रघुवंशी गो–चारण करते हैं। 'ऋग्वेद' में विभिन्न स्थानों पर कृषि से शस्य–श्यामला धरती का उल्लेख है। गोधूम, यव, ब्रीहि आदि अन्न के प्रकार उल्लिखित हैं। ('ऋग्वेद' १/२३/१५; १/१७६/२)। सीता, सीर, फल, लांगल आदि की भी चर्चा है। यज्ञ से पर्जन्य अर्थात् बादल बनते थे तथा मेघ कृषि–कार्य में, वर्षण कर सहायक होते थे। इस कारण यज्ञ किये जाते थे। ऋषि भी कृषि–कार्य करते थे। शिष्य उसमें सहयोगी होते थे। समय पड़ने पर वे शिष्य खेत की मेड़ के समानान्तर लेट कर पानी बहने से रोकते भी रहे। राजा इक्ष्वाकु ईख के आविष्कर्त्ता थे।

उत्तर वैदिक युग

उत्तर वैदिक युग से कृषि की प्रमुखता के साथ, साधनों में भी अभिवृद्धि हुई। "शतपथ ब्राह्मण" में कहा गया है "प्रजा का आधार अन्न ही है। (अन्नं वै विशः ६/७/३/७)। प्रश्नोपनिषद् कहता है, अन्न ही प्रजापति है (१–१४) "तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न को ब्रह्म मानते, कृषि की ही महत्ता मानी गई है। कहा गया है, अन्न ही ईश्वर है। उससे ही सब उत्पन्न होते हैं। उससे ही जीवन चलता है। नष्ट होकर भी सब अन्न में ही मिलते हैं। सभी अन्न में ही एकरूपता पाते हैं (३/३) 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन का सूत्रपात "अन्नं बहुकुर्वीत् के रूप में उपनिषद् काल में ही हो गया था।

पुरोहित तथा क्षत्रिय के अतिरिक्त सभी कृषि–कार्य करते थे। बाद में यह वैश्यों का कार्य माना जाने लगा (काठक, ३७/१)। शूद्र खेती में सहयोगी थे। खेत दान करने वाले कभी–कभी उसमें काम करने वाले मजदूरों को भी सुविधा के लिये साथ दे देते थे। 'ऋग्वेद' में भी हल का उल्लेख है। उसे 'लांगल' या 'सीर' कहा गया है (१०१/४)। बैल खेत जोतने के काम में लाये जाते थे। हल का नुकीला भाग 'फाल' कहा गया है। उसकी मूठ लकड़ी की होती थी। उसमें लगा मोटा बाँस 'ईषा' कहा गया है। ईषा पर ही 'युग' याने जुआ टिका रहता था। अश्विन देवों ने मनु को हल से खेती करने की विधि बताई थी (ऋग्वेद १२७/२३१) हल में जोते जाने वाले बैलों की संख्या ६,८,१२ तथा कभी २४ भी होती थी (काठक, १५/२)।

उपाय तथा व्याघात

वैदिक युग में मानव देवताओं पर अधिक निर्भर था। अच्छी खेती के लिए वह जल के देवता इन्द्र तथा फसल पकाने के लिए सूर्य या पूषन की आराधना करता था। सीता या धरती माता की पूजा होती थी। पहली बार हल जोतने, बीज बोने तथा पहली फसल घर लाने पर पूजा की जाती थी। फसल पक जाने पर श्रद्धावश कुछ अनाज खेतों में ही छोड़ दिया जाता था। खेत से घर ले जाते हुए भी अन्न के दाने गिर जाते थे। उन्हें "शिल"

कहा गया है। शिलाद ऐसे मुनि उन्हें ही बीन कर प्राण–धारण कर लेते थे। वर्षा के लिए जल–देवता से निवेदन किया जाता था (अथर्ववेद, ७–१८–३६) इसीलिये जौ तथा धान उत्पन्न करने वाली इस धरा को "पर्जन्य-पत्नी" अर्थात् मेघ प्रिया कहा गया है

यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पंचकृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

– अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त, १२–४२

अथर्ववेद में अतिवर्षा या बिजली के गिरने से बचने के भी मन्त्र हैं (७/१८१)। खेतों को हानि पहुँचाने वाले पतंगों, जम्य, उपक्वस आदि कीड़ों का उल्लेख है। आर्य टिड्डयों के खेत साफ कर जाने से भी परिचित हो चुके थे। उनके जनपदों में अकाल फैलने का भी उल्लेख है। (छांदोग्य उपनिषद्, १०/१/ से ३ तक) खेत रक्षा के यन्त्र तथा साधन भी वर्णित हैं। "अथर्ववेद" के पृथ्वी-सूक्त, १२वें काण्ड में धरती को अन्नौषध की क्षेत्र–भूमि बताया है (यह वह गौ, जिसके थन अन्न रूपी दुग्ध से भरे हैं, शान्त, पयस्वती, सुरभि (वही ५६)।

उपज के अन्न

"शतपथ–ब्राह्मण" में खेती के विभिन्न कार्यों की चर्चा है, यथा जोतना (कर्षण), बोना (वपन), काटना (लवन), माड़ना (मर्दन) आदि (शतपथ ब्राह्मण १/६/२/३) 'ऋग्वेद' में ही भूसा अलग करने की क्रिया का उल्लेख है (१०–७१–२)। अन्न की नाप का पात्र 'अर्दर' था। कोठार को "स्थिवि" कहा जाता था। कुल्या या नहरें भी निकाली जाती थीं (ऋग्वेद ३/४५/३) तथा १०–४३/७)। करीष (पशुओं के गोबर की खाद) का कृषि में महत्त्व आर्यों को ज्ञात हो चुका था। (अथर्व वेद१६/३१/३)। प्रारंभ में गेहूँ का उपयोग नहीं पाया जाता। आदि काल में साँवा (श्यामाक) तिल, इक्षु या गन्ना, जौ, तथा धान्य (व्रीहि) की मुख्य उपज़ थी। तिल पंच मुख्य शस्यों में गिना गया है। धान की महत्ता सबसे अधिक थी। आज भी धन–धान्य का प्रयोग चल रहा है। बाद में गेहूँ भी उत्पन्न किया जाने लगा। गोधूम का वर्णन मूँग आदि के साथ 'शतपथ–ब्राह्मण' में है। सिन्धु–सभ्यता में गेहूँ के दाने मिले हैं, "तैत्तिरीय संहिता" में जौ का उल्लेख है। धान की तीन किस्में थीं, कृष्ण या काला 'आशु' याने शीघ्र तैयार होने वाला तथा बड़े दानों का "महाव्रीहि", 'आशु' साठी चावल था। यह साठ दिनों तैयार हो जाता था।

रामायण काल

रामायण काल में अर्थ–शास्त्र के लिए 'वार्त्ता' शब्द है। वैश्य के लिये वार्त्ता के अन्तर्गत व्यापार गो–पालन, तथा कृषि का उल्लेख है। इस "तिस्रः विद्या" को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था। (वाल्मीकि रामायण २/१००/४३)। खेती से पेट भरने के कारण ही वैश्य "कृषिगोरक्ष्य जीविनः" कहे गये। अष्ट-वर्ग अथवा शासन सम्बन्धी जिन आठ बातों की राजा को जानकारी होनी अत्यन्त आवश्यक थी, उनमें खेती भी सम्मिलित थी। समय पर राजा भी हल उठाने से नहीं हिचकता था। जनक का उदाहरण दिया जा चुका है। हल जोतना कोई नीच कार्य नहीं माना जाता था। राजा के अन्न के शासकीय कोठार "धान्यकोश" कहलाते थे (वाल्मीकि रामायण २/३६/७)। अकाल अथवा अन्य समय पर कृषकों को वहाँ से खाने के लिए अन्न तथा बीज देने की व्यवस्था रहती थी। रामायण में ज्वार तथा गेहूँ की लहलहाती फसलों एवं धान की सुनहली बालों का रम्य वर्णन है। (वाल्मीकि रामायण ३/१६/७)। खेती के छह शत्रुओं का भी उल्लेख है। उस युग में भी राजा दशरथ के पड़ोसी देश अंग राज्य में अनावृष्टि से अकाल पड़ा था।

दो प्रकार के खेत

उस काल में खेत दो प्रकार के हुआ करते थे। 'देव मातृक' वे खेत कहे गये हैं, जो सिंचाई के लिए देवता अथवा वर्षा के जल पर निर्भर रहते थे। "अदेव मातृक" या 'नदी मातृक' खेत नदी या नहरों से सिंचाई की व्यवस्था करते थे। कोसल राज्य में कुल्याओं या नहरों से सिंचन की व्यवस्था थी। खरीफ तथा रबी दोनों ही तरह की फसल हुआ करती थी। कूप, सरोवर, ताल, नहर, नदी आदि सिंचाई के साधन थे (वाल्मीकि–रामायण, २/१००/४३) । राज्य की ओर से 'प्रणाली' (नहर) और 'रोधस्' (बाँध) बनवाये जाते थे। बाँध, नहर आदि बनाने वाले यन्त्री या इंजीनियर 'यंत्रक' कहे गये हैं। उन्हें राज्य से वेतन मिलता था। खेत को 'क्षेत्र' या 'केदार' कहा जाता था। वर्षा की तीन झड़ियाँ खेती के लिए बहुत अच्छी मानी जाती थीं (वाल्मीकि रामायण, २/४३/१६)। इसी प्रकार आधी उगी धान की फसल में भी जल बरसना उत्तम समझा जाता था (अर्धसंजातस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुन्धरा, ५/४०/२, वा. रामायण)। धान की दो फसलें कार्तिक तथा फागुन की हुआ करती थीं। खेती की छह ईति (संकट) थीं– अनावृष्टि, बाढ़, टिड्डी, चूहे, शत्रु का आक्रमण, तथा पक्षी (वाल्मीकि रामायण,२/१००/४४)। कलश, कुद्दाल, कुम्भ, क्षुर, दात्र, (दराँती), फाल, हल, पिटक, टोकरी खनित्र (फावड़ा) आदि का उल्लेख भी वाल्मीकि रामायण में है। बैल हल ही नहीं जोतते थे, वाहन के काम में भी

आते थे। बैलगाड़ी को 'गोरथ' कहा जाता है।

बौद्ध तथा जैन युग–नाव पर खेती

बौद्ध एव जैन–युग में भी खेतों को अत्यन्त महत्त्व मिला है। कश्मीर के सदृश, कानन द्वीप में नौका पर 'धान उपजाने का वर्णन है (बृहत्कल्प–भाष्य, १/१२३६) उस काल में खेत दो भागों में बँटे रहते थे– सेतु तथा केतु। सेतु ही 'रामायण' काल के 'नदी मातृक' अथवा 'अदेव मातृक' खेत रहते थे। उन्हें कृत्रिम साधनों से सींचा जाता था। केतु 'देव मातृक' खेत थे। उनकी सिंचाई वर्षा के जलसे ही होती थी, लोग पारी–पारी से सिंचाई करते थे। पर कुछ बेईमान कृषक चुपके से, रात के अंधेरे में अपना खेत सींच लेते थे। हल जोतने को 'स्फोट–कर्म' कहा जाता था। कुद्दाल के अतिरिक्त 'नंगल' (हल) से भी खेत जोतते थे। ईख, जौ, धान मुख्य उपज थीं। धान के रक्तशालि, गन्धशालि, महाशालि प्रमुख प्रकार थे। किसान उन्हें क्यारियों में बोना जानते थे। कोठार में अन्न रखा जाता था। किसानों की कन्याएँ ढेले चलाकर, सिंगी बजाकर पक्षियों एवं पशुओं से खेत की रखवाली करती थीं। धान के अतिरिक्त गेहू, मूँग, कुल्थी, मटर, चना, सन भी उपजाया जाता था। धान की सत्रह किस्मों का वर्णन प्राप्त है। अनेक दालों के साथ अलसी, सरसों, कोदों आदि भी पैदा किया जाने लगा था। अदरक, लौंग, मिर्च-मसाले एवं नमक की खेती भी हो रही थी। अकाल पड़ने पर लोग अपने बच्चे भी बेंच डालते थे (महानिशीथ, पृ. २८)।

खेती को राज–सम्मान

वैश्य के लिए तो खेती स्वाभाविक कर्म माना गया है (महाभारत भीष्म पर्व ४०/४८) तथा शान्ति पर्व २६४/४) जो नागरिक कृषि हेतु खेत में बीच नहीं बोता था, उसको सभा या 'समिति' में बैठने का अधिकार नहीं मिलता था। यह इस राष्ट्र के कृषि–प्रधान होने का प्रमुख प्रमाण है। (न सः समितिं गच्छेत् यश्च नानिर्वपेत् कृषिं) कोई अन्य जीविका न होने पर शूद्र भी कृषि कर सकता था। (शूद्रस्यापि विधीयंते यदा वृत्तिर्न जायते, 'महाभारत', शान्ति पर्व, २६४/४)। नारद ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न किये, उससे भी कृषि की महत्ता प्रकट होती है। उन्होंने कहा था "तुम्हारे राज्य में कर की अधिकता से किसान पीड़ित तो नहीं है? वे सन्तुष्ट हैं न? राष्ट्र में तालाब भर–पूर हैं। कृषि देव–मातृका है। कहीं कृषकों से बोये बीज जलाभाव से नष्ट तो नहीं होते?

त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं काच्चित्तुष्टा कृषीबला :।
कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि महान्ति च।।
भागशा विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका।
कच्चिन्न भक्तं बीजं कृष्णकस्यावसीदति।।

पोप पर छाया जन्मपत्री का आतंक

जन्म के साथ ही मनुष्य के जीवन में एक वस्तु छाया की भाँति चिपकी रहती है। लाख पीछा छुड़ाने के बावजूद व्यक्ति उसके खानों में उलझ ही जाता है। भारत में इसे जन्मपत्री कहते हैं। जिनके यहाँ जन्मपत्री का रिवाज नहीं है, वे किसी अन्य विधि से ग्रहों की चाल पर हरदम पैनी दृष्टि गड़ाये रहते हैं। राजा से लेकर सामान्य जन तक जन्मपत्री को सीने में चिपकाये इधर–उधर डोलते रहते हैं। आँगन में किलकारी क्या गूँजी; तुरन्त जन्म समय नोट कर भागे पण्डित जी के पास और हो गया राहु–केतु का खेल शुरू। बच्चा फेल हुआ तो फिर देखने लगे ग्रहों की चाल। किस ग्रह की कुदृष्टि से फेल होने की नौबत आयी। दुर्घटना, विवाह, प्रोन्नति, तबादला आदि–आदि ज्वलन्त प्रश्नों के जवाब आजकल जन्मपत्री के खानों में ढूँढ़े जाने लगे हैं। जन्मपत्री पर विश्वास करना हमारी विशेषता बन चुकी है। लेकिन इस मामले में आधुनिक रोम हम से कहीं आगे बढ़ गया है। रोमवासी जन्मपत्री के पीछे इतने पागल हो रहे हैं कि पोप जान पाल को इस मामले में सीधे हस्तक्षेप करना पड़ा। इटली के टेलीविजन चैनल, रेडियो व समाचार–पत्र ग्रहों की टेढ़ी–मेढ़ी गति से अटे पड़े हैं। टेलीविजन पर इस बाबत जिप्सी परिधान पहने लोगों का भविष्य पढ़ने वाली महिला के तो रोम–वासी दीवाने हो रहे हैं। सारांश यह कि रोम के रंगीन माहौल में लोग सिर्फ ग्रह–नक्षत्रों के इर्द–गिर्द ही घूम रहे हैं। ईश्वर पर ध्यान लगाने के बजाय तारों की दीवानी रोम की जनता को पोप जान पाल ने नसीहत भरी झिड़की लगायी है। ७८ वर्षीय पोप कहते हैं– 'जन्मपत्री व जादू में कतई विश्वास मत करो, इनके (जन्मपत्री व जादू) अनुमान कुछ नहीं कर सकते। तारों की ओर देखने के बजाय ईश्वर की ओर देखो। ईश्वर की सच्ची प्रार्थना से ही जिन्दगी को नई दिशा मिलती है।

पोप की इस चेतावनी की, नक्षत्रों की दुनिया में खोया रोम पूरी तरह उपेक्षा करने पर उतारू है। ❑

– हिन्दुस्तान २०–६–९८

पौराणिक काल

पुराणों में व्रीहि धान्य, यव, गोधूम, अण व (लघुधान्य), तिल, प्रियंगु (कांगनी) उदार (ज्वार), कारदूष (कोदों), सतीनक (छोटी मटर) माष, मुद्ग, मसूर, निष्पाव (बड़ी मटर) कुलत्थक, (कुलथी), चणक (चना), आढक्य (अरहर) शण (सन) आदि की खेती होने का संकेत है। मर्कट (मक्का) भी उपजाया जाता था (विष्णु पुराण १/६/२५)। खेतों के चारों ओर आड़ बना कर, नालियों से सिंचाई होती थी। राजा पृथु ने गो रूप धरती को दुहकर अन्न उपजाये थे। यह रूपक राजाओं के खेती की ओर ध्यान देने का स्मरण दिलाता है। पराशर तथा वृद्धप ने कृषि–शास्त्र की रचना की। शस्य वेद का भी उल्लेख मिलता है।

पाँच हलों की खेती

पंतजलि ने पाँच हलों की खेती का उल्लेख किया है। छोटा हल लांगल एवं बड़ा 'जित्य' कहा गया है। एक हल से जोती जाने वाली धरती 'हल्या', दो हलों से जुती 'द्विहल्या', तथा तीन हलों से जोती गयी भूमि 'त्रिहल्या' कही गई है। जोतने योग्य भूमि 'कर्ष' कही जाती थी। खेतों में बीज डालने के अनेक पात्र थे। यथा– कुम्भ, उष्टिका आदि। उनके अनुसार खेतों का नाम भी पड़ जाता था, जैसे पात्रिक, कुंभिक आदि; क्योंकि ये नाप विशेष थे। जिस खेत में एक पात्र बीज बोया गया हो, वह 'पात्रिक' कहा जाता था। पतंजलि ने 'महाभाष्य' में अन्न के आधार पर भी खेतों के नाम गिनाये हैं। जिस खेत में जो अन्न बोया गया, उसके अनुसार उसका नाम पड़ता था, यथा– मोद्गीन (मूँग का खेत), यव्य (जौ का), यवक्यं (जई का) माषीण (उर्द का क्षेत्र) मांग्य (पटसन) तिल्य (तिल बोया जाने वाला खेत) उम्मा (अतसी का खेत) आणव्य (ज्वार का क्षेत्र) आदि। खेत को अनेक बार बोया जाता था। फिर एक पुरुष पीछे–पीछे बीज बिखेरता चलता था, दोहरी जोत को द्विगुण करना कहते थे। जोतना 'विलेखन' कहलाता था। जुए में जुते बैल दो कोस तक जा सकते थे। इस कारण दो कोस की दूरी का नाम "गव्यूति" पड़ा था। तिल तथा उर्द अथवा कोई भी दो अनाज मिलाकर भी बोये जाते थे। नदी के किनारे भी खेतों के लिये कुएं बना लिये जाते थे। पाणिनि ने विपाशा के तट पर दो कुओं का उल्लेख किया है। सिंचाई का पात्र मशक "उष्ट्राजिन" (ऊँट के चमड़े का) भी हुआ करता था।

पक्षियों से खेतों की रक्षा के लिए 'चंचा' (घास का आदमी 'काग भगोड़ा') भी बनाया जाता था। उससे पशुओं तथा पक्षियों से खेतों की रखवाली हो जाती थी। रखवाले भी खेत पर रहते थे (महाभाष्य, ६/२/७८)। किसानों को ऋतु–ज्ञान था। वे जानते थे कि बिजली लाल कौंधी, तो तेज धूप निकलेगी। पीली कौंधी, तो फसल अच्छी होगी। सफेद कौंधी, तो हानि होने की संभावना रहेगी। अकाल भी पड़ सकता है (२/३/१३, महाभाष्य) –

> **वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी।**
> **पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षा सिता भवेत्।।**

कटनी के लिये 'लाव', फसल काटने वाले के लिए "लावक" शब्द थे। कई लोग मिल कर फसल काटते थे, जिससे एक दिन में कार्य हो जाये। काटने वाले सहयोग भाव से भी आते थे। बदले में, उनकी कटनी पर मदद दे दी जाती। कुछ लोग 'भृति' या 'मूलय' लेते थे। धान काटने तथा उखाड़ने, दोनों प्रकारों का उल्लेख है। उर्द तथा मूँग केवल उखाड़ते थे। 'दात्र' या हँसिये से फसल काटी जाती थी। काटते समय खेत में गिरे दाने 'शिल' कहे गये। पंक्ति में अथवा सीधे भी कटाई होती थी। ईख को काटने के साथ लौह–दण्ड से पीट कर गिराते थे। अन्न का ढेर गौ, सिंह आदि के रूप में करते थे। इससे फसल की पहचान रहती थी।

कटी फसल 'खल' तथा ढेरी की जगह 'खल्य' कहलाती। आज भी उसे 'खलिहान' कहते हैं। भूसा डड़ाने की क्रिया 'निष्पाव' थी। सूप तथा वायु की मदद से किसान यह काम करते थे। इसमें वे परस्पर सहायक होते। भूसा खलिहान में ही पड़ा रहता। गेहूँ, जौ आदि के टूटे तने 'बुस' एवं धान के भुस को 'तुष' कहा जाता। उसका पुआल 'पलाल' कहलाता है, बिना बोये उग आया अन्न 'कृष्टपथ्य' कहा जाता। बिना जुती धरती पर स्वतः उगा नीवार, ककुनी, सांवा आदि अकृटपथ्य हैं। 'व्रीहि' छोटा धान था। उसके सफेद काले ये दो भेद थे। षष्ठिक (साठी) तथा 'शालि' बड़ा धान्य था। शालि प्रायः ताल के किनारे बोया जाता। इसकी अनेक किस्में थीं। इसे 'अवहनन' कूट-कूट कर चावल बनाते थे। 'महाभारत' में कपास की खेती का उल्लेख है। शृंगवेर या अद्रक भी पैदा होता था। शृंगवेरपुर में कभी अद्रक बहुलता से होती थी। ❐

– विट्ठलनगर, खण्डवा (मध्य प्रदेश)

कहानी

वकील के तख्त पर बैठे जंगी को काफी देर हो चुकी थी। आँखें निकालते मुंशी जी की सूरत से जंगी को चिढ़ थी, मगर मजबूरी जो न कराये, सो थोड़ा। वकील साहब हालाँकि कुछ रहमदिल हैं, मगर उनकी रहमदिली पर यह दीमक खाये जैसे मैले दाँतों वाला मुंशी भारी पड़ जाता है। चेचकरू चेहरे और चेचक के कारण ही डेढ़ आँख वाला यह काला मुंशी किसी कोबरे से कम नहीं है। इसका डँसा मुवक्किल न दीन का रहता और न दुनिया का। इसका मुँह सबेरे देख लो, तो पूरा दिन समझो बेकार हो गया। मगर जंगी को उसका मुँह देखना पड़ता है और देखना ही नहीं, मन में नाखुश होने के बावजूद मुस्कराकर 'नमस्ते' भी करना होता है और इसका मुँह बन्द करने के लिए तम्बाकू वाला पान भी लाना पड़ता है। वरना पहले तो यह लंगूर की तरह खौरता था। देखते ही कहता था– "तुम अपनी फाइल किसी दूसरे वकील के पास ले जाओ। रुपये के काम में आठ आना टिकाते और दिन भर खोपड़ी खाते हो।"

होश

– मदन मोहन पाण्डेय

जंगी की यह लाचारी थी कि उसके प्रतिद्वन्द्वी सुमेर के वकील की टक्कर का दूसरा वकील उसकी समझ में और कोई था नहीं। जो थे भी, उन पर उसे भरोसा कम था। इस मुंशी ने ही बताया था कि कई वकील लोग केस में दूसरे पक्ष में मिल जाते हैं। अवधेश बाबू के बारे में उसने ऐसा कुछ नहीं सुना था। इसीलिए मुंशी जी की जलीकटी बातें सुनकर भी वह वकील साहब को छोड़ नहीं पाता था। हाँ, उसका यह प्रयास जरूर रहता था कि फीस के दाम वकील साहब के सामने ही दिये जायें। वह दस–पाँच रुपये की रियायत भी कर देते थे। मगर मुंशी का हर सम्भव प्रयास यही रहता कि रुपये वही ले लें। कहीं टिकट का बहाना होता है, कभी अहलकारों को देने का और उसी में कहीं मुंशी जी के अपने फायदे की भी बात निकल आती। इसीलिए कम से कम जंगी वकील साहब के हाथ में ही पैसे देने में कल्याण समझता था।

उसे कोफ्त हो रहा था वकील साहब पर, जो जाने कितनी देर से अभी तक आये ही नहीं थे। पता नहीं किस अदालत में गायब होकर रह गये। वह तो पूरी तरह पस्त हो गया था, लड़के की बीमारी की वजह से। सबेरे आते ही चाय के साथ सूखी रोटी ही नसीब हुई थी। वह भी क्या मुँह में चल पाई थी! खाने–पीने की तंगी के चलते वह पहले से कमजोर था। अब तो महीने भर की बीमारी ने देह में सिर्फ हड्डियाँ ही छोड़ी थीं। मुकदमे ने पहले से तंग कर रखा था। जब छुन्नू बीमार पड़ा, तब उसके पास गिरवीं रखने के लिए खेत के अलावा और कुछ शेष नहीं था। मुकदमा न होता, तो बाग में एकाध पेड़ ही बेंच लेता। मगर उसी बाग की वजह से ही वह और सुमेर दोनों ही नेस्त–नाबूद हुए थे। दोनों छोटी पूँजी के आदमी थे। मेहनत, मजदूरी से एक–एक एकड़ खेत में ही अच्छी खासी नहीं तो काम चलाऊ गुजर हो ही जाती थी। मगर दोनों सगे भाइयों में बाग के बँटवारे में एक शीशम का पेड़ नाक का सवाल बन गया। उसी पेड के कारण बाग पर हुई मुकदमेबाजी में दोनो के बैल, भैंस बिक गये और दौड़–धूप में पैसा खर्च हुआ सो हुआ; खेती चौपट होकर रह गई। जहाँ पहले दोनों अपनी मेहनत के बूते पर गाँव में इज्जत की निगाह से देखे जाते थे, अब किसी से बात करना भी चाहें तो वह सोचता था, कहीं उधार माँगने तो नहीं आये। गाँव वालों के लिए उनका यह बेतुका मुकदमा इतना जरूरी नहीं था कि उसके लिए दोनों अपनी हरी–भरी गृहस्थी को अभावग्रस्त करते। किन्तु नासमझी और झूठी शान के चक्कर में अब दोनों वकील-मुहर्रिरों की चिरौरी करने को विवश थे। जो पैसा विकास और बच्चों की शिक्षा पर खर्च होना चाहिए था, वह बस के किराये पर और वकील मुहर्रिर की फीस पर खर्च हो रहा था। खुद पूरा दिन पानी पीकर काट देते और उनके पैसे पर वकील और मुहर्रिर माल उड़ाते। अपने बच्चे नमक के साथ रोटी खाते और

वकीलों के बच्चों को दूध और फल अच्छे नहीं लगते।"

जंगी आज वकील साहब के तख्त पर आने की राह और भी बेसब्री से देख रहा था, क्योंकि उसे छुन्नू की हालत रह–रह कर हूल-सी मारती थी। सबेरे चलते समय उसने कितनी आजिजी से कहा था– "बापू! मेरी दवा जरूर ले आइयेगा। मैं दो रातों से सो नहीं पाया हूँ। अब शायद ज्यादा दिन आपको दवा लानी न पड़े। कहते–कहते उसका गला रुँध गया था और जैसे मृत्यु की परछाइं उसकी आँखों में झाँकने लगी थी।"

जंगी का मन तभी से बहुत उदास है। आज मुकदमे की तारीख पर आने को उसके पाँव नहीं चल रहे थे। किसी तरह घिसट कर आया था। बेटे को दवा लाने का आश्वासन देकर वह आया था, परन्तु अब वह बड़ा असमंजस में था। खेत गिरवीं रखकर उसने जो पैसे पाये थे, उसमें से सौ का आखिरी नोट ही उसकी जेब में रह गया था। वकील साहब आ जाते, तो उनसे चिरौरी करके कम से कम पचास रुपये बच जाते और एक आध दिन की दवा–दारू का जुगाड़ हो जाता। पर जब वह आयें, तब ना।

जेठ की सड़ी गरमी के चलते शरीर झौंस कर रह गया था और पसीना जैसे बदन में काट रहा था। सूरज की किरणें दिन भर शरीर में बरछी की तरह लगी थीं, जिनसे रोम–रोम व्याकुल हो रहा था। घुटने पर पसीने से चिपकी धोती छुड़ाने के प्रयास से पुरानी धोती ही फट गई। अब वकील साहब के तख्त पर भी किरणें तिरछी होकर पड़ने लगी थीं। चार तो बजने आया होगा।

तभी हवा के झोंके की तरह वकील साहब तख्त पर आये और सारे लोग हड़बड़ी में खड़े हो गये। जंगी ने हाथ जोड़कर कहा– "हुजूर, फीस के दाम ले लीजिए, ताकि मैं भी घर जा सकूँ। लड़के की तबीयत बहुत गड़बड़ है।"

"अरे! इतनी देर से बैठे क्यों रहे!" वकील साहब ने मुस्कराते हुए कहा। "रुपये मुंशी जी को ही दे दिये होते।"

"कितने रुपये हुए साहब?" जंगी ने कहा।

वकील साहब ने मुंशी की ओर इशारा किया और उनका आशय समझकर मुंशी जी ने कागज पर कुछ जोड़ते हुए कहा– "मुकदमे में तरमीम होनी है। लेखपाल तलब होना है। पूरे डेढ़ सौ रुपये का खर्च है।"

जंगी के पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। कहाँ

वह पचास बचाने की सोच रहा था और कहाँ उसकी जमा पूँजी से ऊपर पचास रुपये फीस के चाहिए। अब वह वकील साहब से क्या कहे और कैसे कहे? अंटी ढीली करते हुए पसीने से सना नोट निकाल कर उसने वकील साहब की हथेली पर रख दिया और कातर नेत्रों से वकील साहब की ओर देखने लगा। मगर वकील साहब सिगरेट सुलगाकर सरकारी वकील रह चुके मेहरोत्रा साहब से बातें करते-करते दूसरी ओर निकल गये। उसे पूरा भरोसा था कि वकील साहब के आने पर जब वह अपनी व्यथा बतायेगा, तो वह दस-बीस रुपये जरूर लौटा देंगे।

किन्तु ऐसा न हो सका। वकील साहब मेहरोत्रा जी की गाड़ी पर बैठ गये। शायद घर जायेंगे। मुंशी से कोई उम्मीद रखना बालू से तेल निकालने की उम्मीद करना है। वह थके कदमों से घर जा रहा था। घर जाने का किराया भी पास में नहीं था। दिन भर का भूखा-प्यासा जंगी कचहरी से निकल कर सीधे गेट के बाहर लगे नल पर गया। जहाँ हाथ-पाँव धोकर कुल्ला करके आँखों पर पानी के छींटे देकर खाली पेट पानी से ही भरने की झूठी आशा से उसने चुल्लू बाँधकर थोड़ा सा पानी पिया। उसका मन तो और भी पीने का था। मगर खाली पेट में पानी कटार की तरह लग रहा था। वह पेट पकड़ कर नल के पास नमी में उगी हुई घास पर बैठ गया। आज जितनी देर हो, अच्छा है। कम से कम उतनी देर वह दवा के लिए उठी छुन्नू की शिकायती आँखों से तो बचा रहेगा। दवा न लाने की बात वह किस मुँह से कहेगा।

कुछ देर बाद वह धीरे-धीरे गाँव की ओर जाने वाली सड़क पर पैदल ही चल दिया। पेट में यद्यपि अब भी दर्द के बबूले जैसे उठ रहे थे, पर घर तो जाना ही था। धीरे-धीरे वह तीन किलोमीटर चला होगा कि गाँव के साह जी का ट्रैक्टर उधर से निकला। भला हो साह जी का, जिन्होंने बिना कहे ही ट्रैक्टर रोककर उसे बैठा लिया।

घर पहुँचने पर उसने देखा कि वहाँ भीड़ लगी है। छुन्नू को कमजोरी की वजह से बेहोशी आ गई थी और अब हालाँकि बेहोशी खुल चुकी थी, पर आने जाने वालों का ताँता अभी लगा था। तभी बड़े संकोच के साथ सुमेर भी उसे देखने के लिए आया था। लेकिन सुमेर के पाँव दरवाजे पर ही ठिठक गये थे। कहीं कोई कुछ कह न दे। वह दरवाजे पर खड़ा ही था कि छुन्नू ने क्षीण कण्ठ से कहा- "बापू! मेरी दवा लाये हो।"

छुन्नू की हालत से अपराध-बोध से ग्रस्त जंगी को अपने ऊपन ग्लानि सी होने लगी। मैं भी कैसा बाप हूँ जो बेटे को दवा नहीं खरीद सकता। दुखी हृदय से बोला- "बेटे, सारे पैसे मुकदमे में खर्च हो गये। मैं कल कोई न कोई इन्तजाम करके तुझे दवा लाऊँगा।"

"और तब तक अगर इसकी जान को कुछ हो गया, तो अपना इन्तजाम लेकर चाटना। मेरा लाल दवा के बिना जा रहा है।" कहकर जंगी की पत्नी हृदय हिला देने वाले स्वर से दहाड़ें मार-मार कर रोने लगी।

द्वार पर खड़े सुमेर से छोटे भाई की यह दशा देखी न गई। वह अकड़ के मारे मुकदमेबाजी में पड़ा जरूर था। मगर यह बात उसने कभी सोची भी न थी कि मुकदमे के कारण उसका गोद में खिलाया छोटा भाई इतना लाचार हो जायेगा कि भतीजे को ऐसी हालत में दवा भी नसीब नहीं होगी। इसका सगा भतीजा अगर दवा के लिए तड़प-तड़प कर मर गया, तो वह मुकदमा जीत कर भी क्या खुश रह सकेगा? उसकी लड़ाई तो भाई की अकड़ से थी, जो खुद ही लाचार हो गया है। वह अकड़ के काबिल ही कहाँ रहा। वह खड़ा न रह सका।

तनिक देर में वह छुन्नू की चारपाई के पास बैठकर उसके माथे पर हाथ फिरा रहा था- "मेरा छुन्नू दवा के बिना नहीं रहेगा। मुकदमेबाजी से क्या हमारा खून का नाता खत्म हो गया। आखिर क्या ऐसी दशा में भी मैं इतना गैर हूँ कि मुझे बताया तक न जाता। झगड़े वाली शीशम मैं छुन्नू को देता हूँ। जंगी की ही नाक ऊँची रहे। मैं बड़ा हूँ। मुझे झुकने में शर्म नहीं है। मगर खबरदार जंगी। जो तुम ताऊ और भतीजे के बीच में बोले।" यह कहकर उन्होंने सौ का नोट छुन्नू की हथेली में दबा दिया।

छुन्नू की आँखों से निश्छल प्रेम के आँसू निकल पड़े और उन्हें पोछते हुए सुमेर बोला- "सबेरे हम दोनों डॉक्टर के पास चलेंगे। घबरा मत, तेरा बाल-बाँका नहीं होगा।" उसके आँसू टप-टप कर छुन्नू के सीने पर गिर रहे थे। मन का सारा कलुष मानो इन आँसुओं में धुल गया। छुन्नू ने ताऊ के गले में अपने कमजोर हाथ डाल दिये। जंगी एक किनारे ठगा-सा खड़ा इन दोनों को देख रहा था। उसे इतना भी होश नहीं था कि बड़े भाई के लिए मूँढ़ा ही डाल दे। ❑

— ग्राम-मसीत, पोस्ट-साण्डला,
जिला-हरदोई (उ०प्र०)

भस्म होना

– डॉ० रीता शुक्ला

आज प्रातः
भेंट हो गयी
क्रमशः
सती, सीता, राधा से
प्रश्नवाचक दृष्टि लिए
हर युग की
प्रतिनिधि
वे
सामने थीं
सती से मैंने पूछा
कैसे भस्म हो पायीं तुम
अपनी ही योगानल में,
यद्यपि
निरपराध थीं तुम।
सती बोली
मेरे शंकर को
आज के पुरुष के समकक्ष
मत रखो तुम
जो स्त्री जाति का
चिरन्तन प्रेम
सिर्फ सती में ही पाता था।
उस सती में दूसरे नारी रूप को
सह नहीं पाया वह
युगों तक मेरे विरह को
ढोकर
मेरी ही प्रतीक्षा कर
मुझसे कम भस्म नहीं हुआ वह।
किन्तु
सीता तुमको तुम्हारे युगों ने तो
निरन्तर वनवास ही दिया।
तुम्हारा राम भी
तुम्हें
अग्निपरीक्षाओं में
क्यों जलाता रहा।
वह त्रेता था
पगली,
बोली सीता।
राम, राम ही था
वह सीता की नहीं
युग मूल्यों की अग्नि-परीक्षा
लेता रहा।
पर, राधा
तुम्हारा प्रेम तो
अपरिभाषित ही रह गया
जहाँ प्रेम तपकर भी
अमर्यादित ही रहा
उस अपने युग को
क्या तुम भी श्रेष्ठ मानोगी।
फिर भ्रम गयीं तुम
युग ने नहीं
कृष्ण ने मुझे
मेरे प्रेम को
मेरे चिरन्तन सत्य को
पहचाना था।
वह कृष्ण
जो आज भी
रास बिहारी, छली के रूप में
पहचाना जाता है।
वह, कृष्ण
मुझमें मेरे प्रेम में
डूबकर
युगों तक
सिर्फ मेरा ही रहा।
इससे बड़ी मर्यादा
और किसे कहना चाहोगी।
छोड़ो
जाने दो।
इस काले कलि में
उन अमर मूल्यों को
ढोने का दुस्साहस मत करो।
सती, सीता, राधा के
आदर्श लेकर
इस
अभिशप्त युग में
भस्म होती रहोगी
भस्म होती रहोगी।

– राजकीय कन्या इण्टर कालेज,
नमजला, मुनस्यारी,
पिथौरागढ़–२६२५५४

डायनासोर युग की मछली इंडोनेशिया के सागर में मिली

डायनासोर युग की एक दुर्लभ मछली सीलाकांथ इंडोनेशिया के सागर में पायी गयी है। पहली बार इस मछली का पता १९३८ में चला और वह तब अफ्रीका के कोमोरो द्वीप के निकट पाई गई थी। वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि यह मछली ६५ करोड़ वर्ष पूर्व लुप्त हो चुकी है।

'न्यूयार्क टाइम्स में २४ सितम्बर ९८ को विश्वविद्यालय के जंतु विज्ञानी सांतो पाल्लो के हवाले से छपी खबर के अनुसार यह मछली जुलाई में इंडोनेशिया के सागर में पायी गयी। चूँकि इंडोनेशिया कोमोरो द्वीप से काफी दूर है, इसलिए इन मछलियों की पैदाइश यहाँ से नहीं हुई होगी। पाँच फुट लम्बी यह मछली २७ किलोग्राम से भी अधिक वजन की होती है। □

जब गजवनी (गजनी) पर पुनः हिन्दू ध्वज फहरा

— वचनेश त्रिपाठी

जहाँ से महमूद गजनवी ने विशाल अश्वारोही सेना लेकर सोमनाथ—मन्दिर पर हमला किया, वह 'गजनी' पहले 'गजवनी' नाम का एक हिन्दू राज्य रहा था। वह हिन्दू राजा गज की राजधानी थी। गज से खुरासान आदि मुस्लिम राज्यों से कई युद्ध हुए— हर बार हमला मुसलमान शासक ही करते थे। एक हमलावर था खुरासान का शाह फरीद, जो फरीद शाह कहलाता था। यह हर बार राजा गज से हारा, गज के पास प्रभूत सैन्य—शक्ति थी। अनन्तर लगातार पराजित होने पर फरीदशाह ने रूम के शाह सिकन्दर से मदद माँगी और एक बार फरीद और शाह सिकन्दर दोनों ने संयुक्त रूप से राजा गज की राजधानी गजवनी पर हमला किया। राजा गज ने अभी ही गजवनी का नया दुर्ग बनवाया था। एक बार नया हमला होने पर गज ने अपने १२ वर्षीय पुत्र शालिवाहन को गजवनी (गजनी) से लोहकोट (लाहौर) भेज दिया। उधर रूम की फौज ने सब तरफ मुसलमानों में यह फिजा फैलाई कि हमारा इस जंग का मकसद है इस्लाम और शरीयत की सल्तनत कायम करना। अगर इसके लिए जंग जरूरी है तो हम जंग करेंगे, जिहाद करेंगे काफिरों के खिलाफ।"

अतः, राजा गज का फरीदशाह और सिकन्दर शाह की फौजों से भीषण संग्राम हुआ, जिसमें हिन्दू वीरों ने खुरासान और रूम की २५ हजार फौज काट डाली। ७ हजार हिन्दू सैनिक भी खेत रहे युद्ध में। विजयश्री ने गज को ही वरण किया। फरीदशाह और सिकन्दर शाह की पराजित सेनाएँ भाग खड़ी हुईं। राजा गज के वीर सैनिक विजय का डंका बजाते और गौरव से हिन्दू—ध्वज लहराते युद्ध से घर लौटे। यह बड़ी बात थी कि बर्बर मुस्लिम आक्रामकों से चतुर्दिक् घिरी रहने पर भी गजवनी स्वतन्त्र हिन्दू—राज्य के रूप में अपनी गैरिक—ध्वजा ऊँचे फहरा रही थी। वस्तुतः वह समय था इस्लामी अन्धड़ के वेग का। वह इस्लामी उत्थान—काल था। जिहादी जोश मुसलमानों को नित नये हमले करने को उकसाता था। इस स्थिति के बावजूद अतीत में एक बार १५ वर्षों तक गजवनी पर मुसलमान नया हमला करने में हिचकते रहे और इस अवधि में गजवनी स्वतन्त्र और सुरक्षित रही। मुस्लिम आक्रमणों में युद्ध—रत रहने से तब तक राजा गज का परंपरागत रूप से राज्याभिषेक नहीं सम्पन्न हो पाया था। अनन्तर कुछ लम्बा अवकाश मिला, तो वह रस्म पूरी हुई। युधिष्ठिर संवत् ३००८ के वैशाख महीने की तृतीया को गज को विधिवत् अभिषिक्त किया गया। उस दिन रविवार था, रोहिणी नक्षत्र था। गज ने उस अनाक्रमण के अवकाश में कश्मीर राज्य की राज— कन्या से विवाह रचाया। वैसे वह पूर्व विवाहित ही था। शालि— वाहन इसी कश्मीरी राज— कन्या से जन्मा था, जिसे गज ने युद्ध—काल निकट आया देख लोहकोट (लाहौर) के क्षेत्र में भेज दिया था। लोहकोट के राजा ने बालक शालिवाहन की सहायता की। उस युग में किलों को प्रायः 'कोट' कहते थे। 'लोहकोट' की ही तरह दिल्ली के लाल किला को पहले 'लाल कोट' कहते थे। 'लाल' का अर्थ वर्ण से नहीं समझना चाहिए वरन् 'आल्हखण्ड' में पृथ्वीराज चौहान के धनुष को भी 'लाल कमनिया' कहा गया है और आज भी चौहानों में कई नामों के पूर्व 'लाल' शब्द संयुक्त देखा जाता है। इसीलिए उत्तर प्रदेश के एक पुराने चौहान जमींदार का लोग पूरा नाम न लेकर केवल 'लाल साहब' कहा करते थे, क्योंकि उनके नाम के आगे 'लाल' शब्द जुड़ा था। इसी अर्थ में 'लालकोट' शब्द को लेना चाहिए न कि 'लाल किले' से। सो, राजा गज की कश्मीरी रानी थी तत्कालीन कश्मीर—नरेश कन्दर्पकेलि की बेटी। अतः जैसा कि ऊपर लिखा कि शालिवाहन जब अभी लोहकोट में ही था, नये सिरे से खुरासानी फौज ने गजवनी पर भीषण आक्रमण कर

दिया। इस बार कई लाख फौज लेकर फरीदशाह का शाहजादा आया था युद्ध करने। राजा गज ने अपनी सेना के तीन भाग करके उसे तीन मोर्चों पर लगाया; क्योंकि खुरासानी सेना ने गजवनी को घेरकर ५ मोर्चे लगाये थे। यह युद्ध गजवनी में पूरे महीने भर चलता रहा। रोज हजारों सैनिक कटते रहे। यहाँ तक कि ३० हजार हिन्दू सैनिक महीने भर में वीरगति पा गये। हाँ; एक लाख मुसलमान सैनिकों को भी राजा गज की सेना ने काट डाला। इसमें खुरासान के सुल्तान फरीदशाह का शाहजादा भी मारा गया। परन्तु दुर्भाग्य कि अन्ततः युद्ध में स्वयं राजा गज भी खेत रहा। उस समय गजवनी के दुर्ग की रक्षा गज के चाचा श्री देव के सुपुर्द थी। श्रीदेव ने जब देखा कि दुर्ग में खुरासानी सेना प्रविष्ट हो रही है, तो उन्होंने दुर्ग में प्रथम बार जौहर–व्रत करने का आदेश दिया। हजारों हिन्दू 'बहू–बेटियाँ' दुर्ग में विशाल जलती चिता में कूद–कूद कर आहुत हो गईं। पुरुषों ने केसरिया–व्रत अपनाकर मरने–मारने की परम्परा निभाई और गजवनी के दुर्ग पर इस्लामी झण्डा दिखाई दिया पहली बार। इस दुःखद स्थिति की खबर जब लोहकोट में शालिवाहन को हुई; तो उसने १२ दिनों तक भूमि–शयन करके शोक मनाया। पिता की मृत्यु के पश्चात् भाद्र मास की अष्टमी, रविवार के दिन पंचनद में उसने 'शालिवाहनपुर' की प्रतिष्ठा की। नया नगर बसाया वहाँ और सोत्साह तेजी से सेना में भर्ती शुरू की। कारण, उसे अपने पितृ–राज्य गजवनी की दासता चुभ रही थी। उसे शान्ति कैसे होती? उधर तुर्कों की ताकत बढ़ती जाती थी और गजवनी के चतुर्दिक् दूर–दूर तक इस्लामी राज्य खड़े होते जा रहे थे। बलात् धर्मान्तरण जारी था। सीमातीत रूप से तलवार की नोक पर हिन्दुओं का धर्मान्तरण बाढ़ पर था जैसा कि आगे एक दिन डॉ० मोहम्मद इकबाल ने भी कहा कि–

"नक्श तौहीद का हर दिल पे बिठाया हमने।
ज़ेरे खंजर भी ये पैगाम सुनाया हमने।।
याद आता है कभी मर्दे–मुसलमां तुझको।
कलमा पढ़ते थे तलवारों के साये में हम।
काटकर रख दिये कफ्फार के लश्कर हमने..."

सो, युद्ध में बकौल 'इकबाल' गजवनी में 'जेरे खंजर' (तलवार के द्वारा) ही 'इस्लामी तौहीद' का "पैगाम" सुनाया था खुरासानियों ने और 'जिहाद' के ही नाम पर वहाँ और सब तरफ "कफ्फार के लश्कर" तुर्क सेना ने "काटकर रख दिये" थे।

लेकिन शालिवाहन भी मर्द था। उसका पौरुष ललकार रहा था। उसे गजवनी दुर्ग पर इस्लामी झण्डा एक पल भर चैन नहीं लेने दे रहा था। उसे अपने शहीद पिता का तुर्कों के रक्त से तर्पण भी करना था। गजवनी का आहत–अपमानित दुर्ग आर्त्त आवाज से उसे पुकार रहा था। अतः एक दिन अचानक ही शालिवाहन की तरोताजा सेना बाज की तरह झपटती गजवनी पर जा टूटी। खूंन की नदी बह चली। रुण्ड–मुण्ड–लोथों के अम्बार लग गये। भयंकर रूप से खुरासानियों को काटते हुए हिन्दू सेना दुर्ग में जा धँसी। गजवनी की गलियाँ, तुर्कों के छिन्न–विच्छिन्न शवों से पट गयीं। शालिवाहन अब तुर्कों के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु सिद्ध हो रहा था। सात दिनों तक गजवनी में कराल काल नृत्य करता रहा। महाकाली गजवनी के द्वार–द्वार अपना रक्त–खप्पर खटखटाती घूमीं। खुरासानी सेना के २० हजार सैनिक मार गिराये हिन्दू वीरों ने और फिर ८वें दिन गजवनी के दुर्ग पर पुनः हिन्दू–ध्वज सगौरव साभिमानपूर्ण स्वाधीनता से फहर उठा मुक्त पवन में। गजवनी तुर्कों से स्वतन्त्र करा ली शालिवाहन ने और तुर्कों के रक्त से पितृ–तर्पण का संकल्प पूर्ण किया। कुछ दिन शालिवाहन राज्य–व्यवस्था के लिए गजवनी में ही रुका रहा ससैन्य। उसने अपनी उदारतावश, जो वहाँ मुस्लिम प्रजा थी उसे नहीं मारा, न निकाला। नतीजा यह हुआ कि शालिवाहन से अभय पाकर गजवनी में मुसलमानों की आबादी तेजी से बढ़ती गई। तब तक शालिवाहन ने नहीं सोचा था कि मुस्लिमों को यही वृद्धि एक दिन विषम समस्या बन जायेगी। शालिवाहन के १५ पुत्र थे। बड़ा था, बालन्द। उसने बालन्द को गजवनी का शासन सौंपा और शालिवाहनपुर लौट आया। परन्तु काल–रथ तेजी से घूम रहा था। गजवनी भी अपने चतुर्दिक् हिन्दू–विरोधी कुचक्रों से ग्रस्त हो ही गया। इस्लामी सैन्य–शक्तियाँ विस्तार लेती जा रही थीं। फलतः गजवनी की राज्य–शक्ति अपनी ही राजधानी तक सीमित हो रही। गजवनी के आस–पास जितने नगर–ग्राम थे, वे सब तुर्कों के ही अधिकार में आ चुके थे। उनमें इस्लामी जिहाद का जुनून उबल रहा था।

बालन्द के ७ पुत्र थे। उसके द्वितीय पुत्र भूपति का एक बेटा हुआ। नाम था चाकेता। वय होने पर बालन्द ने इसी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। चाकेता ने एक बचपना किंवा भूल यह की कि अपनी सेना में, सुरक्षात्मक व्यवस्था में बड़े उत्साह से तुर्कों की भर्ती करता रहा। उन्हें भूमि–ग्राम–पद प्रदान किये। चाकेता विश्वास करता था कि ये सब तुर्क संकट–काल में उसका साथ देंगे; पर यह उसका भ्रम ही था। अवश्य अब स्थिति यह थी कि

चाकेता के अनेक सम्पन्न और समर्थ सामन्त और सेनाधिकारी तुर्क ही थे। वह अहर्निश उन्हीं तुर्कों की कुमंत्रणाओं और कुचक्रों से घिरा रहने लगा। वही उसके पाले हुए तुर्क सामन्त बलखबुखारे के तुर्क सुल्तान से मिलकर चाकेता के खिलाफ साजिश रचने लगे। जब षड्यन्त्र का नक्शा बन गया, तो एक रोज इन्हीं तुर्क सामन्तों ने चाकेता से प्रस्ताव किया कि, "हुजूरे आला को बलखबुखारे के शाह ने दावत दी है, बरायमेहरबानी कुबूल फरमाएँ। वह हुजूर की हत्तुलइमकान इज्जत अफजाई में कुछ कमी न रखेगा। दरअसल उन दिनों बलखबुखारे का उजबेक शासक के कोई लड़का न था, थी सिर्फ एक बेटी जो अनिन्द्य सुन्दरी होने के साथ–साथ स्वभाव की अति क्रूर और कठोर थी। पुरुषों को अपनी उँगलियों पर नचाना उसने खूब सीखा था। वह खेल मात्र था उसके लिए। इसी कारण गजवनी के तुर्क सामन्तों ने उस शहजादी को अपने षड्यन्त्र का मोहरा बनाया, ताकि उसकी ओट में चाकेता को काबू में किया जा सके। फलतः जब चाकेता उजबेक शासक के आमन्त्रण पर बलखबुखारे गया और उसके सम्पर्क में उजबेक शहजादी लाई गई, तो सहज ही उसने अपने लुभावने हाव–भाव और बातों से चाकेता को वश में कर लिया। वह उस पर बुरी तरह आसक्त हो गया। वहाँ चाकेता की आवभगत में कोई कसर नहीं रखी गई लेकिन जब वह बलख से गजवनी लौटा, तो वह पहले का स्वस्थ चाकेता नहीं रह गया था। वरन् वह अपने मन–मानस में ऐसा रोग पाल बैठा था कि जिसका उपचार केवल बलख के हरमसरा (अन्तःपुर) में ही सम्भाव्य था। फिर भी वह महीनों मौन रह कर अन्तर्पीड़ा सहता रहा। घुलता रहा अन्दर ही अन्दर। तुर्क सामन्त तो मौके की तलाश में ही थे। उससे कहा– "हुजूर की सेहत हमें परेशानी में डाल बैठी है। आप हुक्म फरमाइये, हम हर न्यामत फिर वह कोई भी कीमत रखती हो, हुजूर के रुबरू पेश करने में देर नहीं करेंगे।" सुनकर चाकेता एक फीकी हँसी हँसा– फिर बोला, "मेरा रोग लाइलाज है, असाध्य। गजवनी में उसकी औषधि प्राप्य नहीं।" तुर्कों ने बात पकड़ कर जिद ठानी। कहा– "हुजूर एक इशारा भर कर दें– फिर वह शफा (औषधि) कहीं भी हो। हम लाकर चैन लेंगे। हम तो हर हालत में हुजूर को खुश देखने की ख्वाहिश रखते हैं?" फिर क्या था– उनकी अपने प्रति इसे सच्ची सहानुभूति मानकर चाकेता ने उन्हें मन का छिपा भेद बता दिया। व्यथा बता दी। तुर्क सामन्तों ने बलख जाने की बड़ी तत्परता बरती, पर किया मात्र नाटक; गये नहीं कहीं। कुछ समय इतस्ततः बिताकर लौटे, तो चाकेता से कहा– बलख का सुल्तान तो बखुशी अपनी बेटी आपकी खिदमत में देने को तैयार हो गया, पर एक रुकावट आती है..."। चाकेता खिल उठा, बोला– "रुकावट क्या है? कह दो कि मैं उसे अपनी पट्टमहिषी बनाऊँगा।" तुर्क कहने लगे, "हुजूर बात जरा टेढ़ी है। दरअसल बलख का शाह ठहरा मुसलमान और इस्लाम की रू से वह उसी को शहजादी दे सकता है, जो मुसलमान हो।" यह सुनकर एक बार तो चाकेता का हिन्दुत्व जागा। उत्तेजित हो उठा वह, स्यात् उसे अपने महान् पितामह यदु वंशी शालिवाहन की आन याद आ गई हो। फिर कई दिन वह एकान्त वास में पड़ा रहा, राज्य–सभा में नहीं आया। तुर्क देख रहे थे कि वह किस कदर अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त है– अतः वे आशावान् थे। चाकेता बलख की उस रूपवती और तेज–तर्रार शहजादी को जितना ही भुलाने की प्रचेष्टा करने लगा, उतना ही उसका मानस अधीर होता चला गया। आखिर वह रुग्ण होकर देह से दुर्बल हो गया और नौबत यह आ गई, पूरा विगत इतिहास, धर्म, परम्परा, संस्कृति सभी कुछ भूलकर चाकेता राजी हो गया जैसे भी जिस शर्त पर हो, बलख की शहजादी को अपने अन्तःपुर में लाने को व्यग्रता के लिए। उसकी यह स्वीकृति परम सन्तुष्टि पूर्वक तुर्क सामन्तों ने बलख भेज दी। पूर्व नियोजित षड्यन्त्र रंग ला रहा था और विवेक गँवाकर मोहान्ध चाकेता उसी अनपेक्षित, अमंगल और अपमानकारक दिशा में ढकिलता चला। वह आतुर था कि जितनी जल्दी हो, बलख की वह रूपसी गजवनी के अन्तःपुर में आ जाये। अन्ततोगत्वा बलख में ही उस शहजादी से चाकेता निकाह पढ़ाने गया। फिर शहजादी ने जिद ठानी कि वह बलख में ही रहेगी। फलतः चाकेता को उस उजबेक शाह ने बलख की ही सत्ता सौंप दी। अनन्तर वह अपना अधिकांश समय वहीं बलख में ही बिताने लगा। इस तरह जो गजवनी राज्य यदु–वंशियों का, श्रीकृष्ण के वंशजों का था। वह सहज ही तुर्क सामन्तों के कब्जे में आ गया। एक तरह से उसके वास्तविक शासक वे तुर्क ही बन गये। भले नाम चाकेता का चलता रहा। उधर बलख में उजबेक शासक की जो २५ हजार तुर्क सेना थी सबके सब घुड़सवार सैनिक, वह सब चाकेता के ही अधिकार में थी पर चाकेता को अब उस उजबेक शहजादी से ही फुर्सत कहाँ थी। वह सैन्य–दल उसके लिए कोई अर्थ ही न रखता था। चाकेता ने सख्त ताकीद कर दी कि उसके धर्मान्तरण का संवाद भारत में न भेजा जाय। इसी चाकेता के एक पुत्र का नाम पड़ा

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

इसे बचाकर रखिये

- अंजली शुक्ला

नाक नाक है इसकी अलग ही साख है। इसलिए ऊपर वाले ने ताक-झाँक कर नाक बनायी है। नाक है, तो धाक है। नाक के ऊपर दो आँखें और नीचे होंठ हैं। तो श्रीमान्! नाक को बचाकर रखिए; क्योंकि ईश्वर ने भी नाक की 'सुरक्षा' विशेष रूप से की है।

कुछ लोगों को नाक-भौं चढ़ाने की आदत होती है। यदि आप किसी आफिस में कार्यरत हैं, तो अफसर को प्रसन्न करने के लिए 'नाक का बाल' बनना ही पड़ेगा और अगर कहीं कोई भूल-चूक हो गई, तो अफसर को नाक-भौं सिकोड़ने में देर भी नहीं लगेगी।

नाक के साथ भी लोग ज्यादती करने से बाज नहीं आते हैं। जैसे- यदि दो परिवारों में झगड़ा हो जाय, तो अब दोनों एक दूसरे को हाथ फटकार-फटकार कर कहेंगे तेरी नाक न नीची करायी, तो मेरा नाम नहीं। दूसरा जवाब देगा कि तेरी नाक न टेढ़ी की, तो मेरा नाम बदल देना। लीजिए हो गई न नाक की ऐसी-तैसी। अरे! खूब लड़ो; पर नाक को बीच में क्यों लाते हो? "नाकों चने चबाना" से लगता है कि लोग शायद वाकई मुँह के बजाय नाक से चने चबाते होंगे; परन्तु असल मतलब तो तब समझ में आता है, जब खुद को नाकों चने चबाने पड़ते हैं।

यह क्या! आपने तो अभी से नाक-भौं सिकोड़ना शुरू कर दिया। लगता है, आप अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देंगे। जब आप 'वह' नहीं थे, तो हरदम नाक-भौं सिकोड़ते रहते थे और जब से 'वह' हो गये हैं, तब से हर एक की नाक में दम किये रहते हैं। उनका भी ख्याल नहीं करते, जो 'उनकी' नाक का बाल हैं।

नाक ऊँची व नीची रखने का अनुभव तो आप को होगा ही। कुछ लोग नाक ऊँची रखने के चक्कर में घर फूँक तमाशा देखते हैं और जो नाक ऊँची रखने में असफल हुए, उनकी नाक नीची हो जाती है।

किसी कन्या के विवाह में आप वर पक्ष को देखिए, कैसे वह हर कार्य में अपनी नाक ऊँची रखता है। यदि कहीं कन्या-पक्ष से कोई त्रुटि हो गयी, तो कन्या-पक्ष की नाक नीची करने में भी वे आगा-पीछा नहीं सोचते।

नाक कटना बहुत बुरी चीज है; क्योंकि नाक कटने के बाद पुनः जोड़ी नहीं जा सकती ('अब प्लास्टिक सर्जरी से' भले ही जोड़ी जाने लगी है) अर्थात् एक बार सम्मान चला जाये, तो वापस नहीं आता। तो ये समझ लीजिए आप को नाक की धाक बनाकर रखनी है। यदि किसी को जुकाम हो जाय, तो नाक की शामत आ जाती है।

यहाँ तक तो गनीमत है कि जुकाम में नाक की शामत आ जाती है; पर जब यही नाक सोते हुए बजने लगे, तो अगल-बगल वालों की शामत आ जाती है। कुछ दिन पहले एक समाचार-पत्र में समाचार प्रकाशित हुआ कि एक अमेरिकी महिला ने अपने पति के नाक बजाने अर्थात् खर्राटा भरने से परेशान होकर उसे तलाक दे दिया। बेचारा पति!

नाक से बोलना, नाक तक भर कर खाना खाने के इतने प्रसंग मशहूर हैं कि दो-चार लेख निपट जायें। किसी-किसी की नाक सूँघने में अत्यन्त तेज होती है। वह यह तक बता देगी कि कब किसके घर क्या पक रहा है; कब किसका झगड़ा हुआ; कब किसके यहाँ सब्जी जल गयी; आदि-अन्त सब बता देगी।

पत्रकारों की नाक सूँघने में बहुत तेज होती है और उस पर खोजी पत्रकार हों, तो 'सोने पर सुहागा' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। ये जिसके पीछे पड़ जायें, उसका तो भगवान् ही मालिक है। पता नहीं; कहाँ-कहाँ से खबरें ले आते हैं। हमें इनका आभारी होना चाहिए कि ऐसे समाचार, जो हम स्वप्न में भी नहीं सोच सकते, ये पत्रकार न जाने कहाँ से लाकर हमारे सामने परोस देते हैं।

प्राचीनकाल से अब तक सभी लेखकों, कवियों और विद्वानों ने लम्बी व पतले नासापुट वाली नाक को सर्वश्रेष्ठ व सौन्दर्ययुक्त माना है।

नाक फूलना भी एक बड़ी बीमारी है। आपने किसी से कोई अनुचित बात कहीं नहीं कि बस सामने वाले की नाक फूलने लगती है। नाक से बोलने वाले तो और भी बुरे लगते हैं। कोई भी बात करेंगे, तो समझ में ही नहीं आता कि रो रहे हैं या हँस रहे हैं।

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

गणित की वैदिक परम्परा में एक नया ऋषि श्री निवास रामानुजन्

- डॉ० रणजीत सिंह

लेखक

इतिहास के उतार-चढ़ाव में भारत ने बार-बार अपनी जीवनी शक्ति के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। १९वीं सदी में भी जब एक-एक करके ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने साम-दाम-दण्ड-भेद के द्वारा सभी देशी राज्यों को हड़प लिया और सन् १८५७ के स्वातंत्र्य समर में निर्णायक रूप से स्वाभिमानी राजा-नवाबों को पददलित कर दिया, तब भारतीय मनीषा एक बार फिर हतप्रभ हो गयी, स्वयं को पराधीनता की हथकड़ी-बेड़ी में जकड़ा पाकर भारतमाता न तो हताश हुई और न निराश; वरन् उसने उसी समय अंग्रेजों के साथ-साथ सम्पूर्ण पश्चिमी जगत् को उन्हीं के मैदान में चुनौती देने का मन ही मन निश्चय कर लिया। चुनौती के लिए चुना गया यह मैदान था दर्शन का, अध्यात्म का, ज्ञान और विज्ञान का। इसी नयी भूमिका के लिए हिन्दुस्तान ने उन्हीं हिस्सों का चुनाव किया, जहाँ अंग्रेजी सत्ता और सभ्यता का रंग सबसे गहरा था, सबसे पहले जमा था। १८५७ में साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए अंग्रेजों को सबसे ज्यादा सिपाही और संसाधन भी इन्हीं से मिले थे। अतएव राष्ट्र के पुनर्जागरण की जिम्मेदारी भारतमाता ने उन्हीं पर डाली। यह प्रदेश थे पूर्व में बंगाल और दक्षिण में मद्रास (अब तमिलनाडु)।

बंगाल ने रामकृष्ण परमहंस, जगदीश चन्द्र बोस, स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्र नाथ टैगोर जैसे सपूतों को जन्म दिया। इन्होंने भारत की आध्यात्मिक ऊँचाई और सांस्कृतिक श्रेष्ठता का सिक्का सारी दुनिया में जमा दिया। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की विश्व-धर्म-सभा में हिन्दुत्व को जिस प्रकार प्रस्थापित किया, उसने हिन्दुस्तान के कोने-कोने में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की चेतना और स्वाधीनता का संकल्प जगा दिया। उधर मद्रास में महर्षि रमण ने सनातन-धर्म को कर्म-काण्ड की भूल-भुलैया से निकालकर आत्म-साक्षात्कार के सहज-सरल साधन के रूप में उपलब्ध करा दिया। पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ ने वेंकटरामन् के रूप में सन् १८८४ में तिन्नवेली में जन्म लिया। बीस वर्ष की आयु में अमेरिकन कालेज आफ सायन्स, न्यूयार्क की एम. ए. परीक्षा आठ विषयों में सर्वोच्च अंक पाकर उत्तीर्ण करने का कीर्तिमान स्थापित किया। अध्यात्म के साथ-साथ वेदों में वर्णित वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुसन्धान करने में उनकी गहरी रुचि थी। इसी क्रम में कुछ अबोधगम्य समझे जाने वाले सूत्रों के सहारे उन्होंने वैदिक गणित का आविष्कार किया और भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाकर उस पर व्याख्यान दिये, २४ खण्डों के एक बृहदाकार ग्रन्थ का प्रणयन किया और गणित जैसे दुरूह समझे जाने वाले विषय को सरल-सहज व आनन्ददायी बनाने की कुंजी दुनिया के हाथ में थमा दी। इस तरह आधुनिक समझे जाने वाले गणित में भारतीय चिन्तन की धाक जमा दी।

इसी समय दो अन्य महान् प्रतिभाएँ मद्रास में अवतरित हुईं। इनमें प्रथम तो थे श्रीनिवास रामानुजन् और दूसरे थे भौतिक-शास्त्र में नोबुल पुरस्कार पाने वाले प्रथम भारतीय वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर वेंकटरामन्।

श्रीनिवास रामानुजन् का जन्म २२ दिसम्बर सन् १८८७ में 'इरोड', तमिलनाडु में हुआ था। उनकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय बचपन में ही मिलने लगा था। गणित में उनकी गति और अभिरुचि तो आश्चर्यजनक थी। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही जार्ज शूब्रिज कार की गणित की एक पुस्तक के दो खण्ड उन्हें प्राप्त हो गये। इसमें दी गयी लगभग ६००० समस्याओं का समाधान करने में उन्होंने दिन-रात एक कर दिया। गणित की इन समस्याओ के अतिरिक्त और कुछ पढ़ना-लिखना उन्हें अच्छा ही न लगता था; परन्तु इस अभ्यास से उनकी अन्तर्निहित प्रतिभा जाग उठी। कार की पुस्तक और समस्याओं से कहीं आगे जाकर नयी स्थापनाएँ और विधियाँ उनके मन में और मस्तिष्क में प्रकाशित होने के लिए मचलने लगीं, कागजों पर उतरने लगीं।

सन् १९०३ में इन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय की मैट्रिक्युलेशन परीक्षा ससम्मान पास कर लीं। उच्च

अध्ययन के लिए उन्हें छात्रवृत्ति भी प्राप्त हो गयी; परन्तु गणित के प्रति उनका अतिशय अनुराग और अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के प्रति उपेक्षा उनके पिताजी की चिन्ता का कारण बन गयी। बाबू या अफसर बनने के लिए तो अंग्रेजी पढ़ना जरूरी है, गणित की पढ़ाई रोजी–रोटी का जुगाड़ भला किस प्रकार कर सकती है? एक अत्यन्त व्यावहारिक प्रश्न, सामान्य आर्थिक स्थिति वाले पिता और गणित के पीछे एकदम दीवाने बने पुत्र के बीच मतभेद का कारण बन गया।

गणित के प्रति उनके इस एकांतिक प्रेम ने न केवल एक विनम्र एवं आज्ञाकारी पुत्र को पिता की नजरों में उद्दण्ड सिद्ध कर दिया; वरन् एक जिज्ञासु विद्यार्थी को विश्वविद्यालय के लिए भी अपात्र बना दिया। इण्टर की परीक्षा में गणित के अतिरिक्त अन्य विषयों में उनकी अपर्याप्त सफलता के कारण उनकी छात्रवृत्ति एक वर्ष बाद ही समाप्त हो गयी और उच्च शिक्षा का उनका स्वप्न चूर–चूर हो गया। सच तो यह है कि हमारी शिक्षा–व्यवस्था में सत्यनिष्ठा, गम्भीर चिन्तन और मौलिक प्रतिभा के लिए गुंजायश लगभग नहीं के बराबर है। चन्द चुने हुए सवालों और उनके बँधे–बँधाये जवाबों में फँसी कक्षाएँ, उलझे व्याख्यान और ऐशो–आराम की जिन्दगी की आशा में दिन गिनते विद्यार्थी न तो ज्ञान–विज्ञान के वाहक बन सकते हैं और न किसी राष्ट्र का निर्माण ही कर सकते हैं। इसलिए इनमें घुट–घुट कर कितनी मौलिक प्रतिभाएँ दम तोड़ देती हैं और कितने विकासशील व्यक्तित्व अपनी नैतिकता से हाथ धो बैठते हैं, इसका अनुमान आज की सामाजिक–आर्थिक और राजनैतिक स्थिति देखकर सरलता से लगाया जा सकता है।

परन्तु श्रीनिवास रामानुजन् ने लीक पीटने वाले मद्रास विश्वविद्यालय की सीमाओं से बाहर निकलकर एकलव्य की तरह गणित का अपना अभ्यास जारी रखा। मद्रास बन्दरगाह पर अनपढ़ खलासियों की चिट्ठियाँ लिखकर, छोटे बच्चों को पढ़ाकर, और कभी–कभी मेहनत मजदूरी करके भी अपने लिए रोटी, गणित की साधना के लिए कापी–किताब और दिया–बत्ती के लिए तेल जुटाने में उनका उत्साह बस देखने लायक था। थोड़े ही दिनों में यह गणित का दीवाना नौजवान मद्रास के सम्पन्न परिवारों में चर्चा का विषय बन गया। बहुत से लोग उन्हें जानबूझ कर सहायता करने के इरादे से छोटे–मोटे काम दे देने लगे। ऐसे ही लोगों में थे मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के एक अधिकारी रामचन्द्र राव।

लड़के को खाता–पीता देखकर कागज पर झूठ–मूठ की लकीरें खींचने और अबूझ संकेतों से कागज रंगने से उसे विरक्त करने के उद्देश्य से उनके माता–पिता ने सन् १९०९ में उनका विवाह कर दिया। अब घर–गृहस्थी की आवश्कताएँ आकाशी–वृत्ति से पूरा होना मुश्किल हो गया। कुछ ही दिनों में हितैषियों की मदद से उन्हें मद्रास पोर्ट–ट्रस्ट की नियमित नौकरी मिल गयी। अब नौकरी और परिवार के बीच उनका समय बँट गया; परन्तु अपने अध्ययन तथा अनुसन्धान की गति में उन्होंने कोई व्यवधान आने न दिया।

इसी बीच सन् १९०७ में वी. रामास्वामी अय्यर के प्रयत्नों से मद्रास में इण्डियन मैथेमेटिकल सोसायटी की स्थापना हो गयी। रामानुजन् ने इसकी गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया। विश्वविद्यालय के बँधे हुए दायरे के बाहर गणित की समस्याओं की खुलकर चर्चा करने और विचारों के आदान–प्रदान का उन्हें थोड़ा अवसर मिल गया। सन् १९११ में इस सोसायटी के मुख–पत्र में "बर्नौली के अंकों की कुछ विशेषताएँ" शीर्षक से उनका एक लेख प्रकाशित हुआ। इससे उनकी मौलिक प्रतिभा का समाचार दूर–दूर तक पहुँच गया। पोर्ट–ट्रस्ट के एक अंग्रेज अधिकारी सर फ्रान्सिस स्प्रिंग, जो स्वयं भी गणित के अच्छे जानकार थे, रामानुजन् की मौलिक प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने रामानुजन् के कुछ समाधान कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफेसर जी०एच० हार्डी के अवलोकनार्थ भेज दिये। प्रो० हार्डी को रामानुजन् का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। इनकी मौलिकता ने उनको इतना आह्लादित किया कि उन्होंने रामानुजन् को अपने साथ अनुसन्धान करने के लिए कैम्ब्रिज बुलाने का निश्चय कर लिया। १९१३ में मद्रास विश्वविद्यालय ने भी प्रो० हार्डी की सलाह पर रामानुजन् के लिए विशेष शोध–वृत्ति की व्यवस्था कर दी। कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज की ओर से एक अलग अनुदान की भी व्यवस्था की गयी।

एक स्वाधीन देश के स्वतन्त्र चेता विद्वान् और पराधीन मानसिकता वाले विश्वविद्यालयी पढ़ाकुओं की सोच–समझ में जो अन्तर है, वह रामानुजन् के साथ घटी इस घटना से स्पष्ट हो जाता है। जिस विश्वविद्यालय वालों ने उनको अपनी कक्षाओं में आने के योग्य नहीं समझा और पुस्तकालय में प्रवेश की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, उसी को अब उन्हें अनुसन्धान के लिए बुलाना पड़ा; परन्तु इस बुलावे पर भी क्या विश्वविद्यालय को अपनी भूल का अहसास हुआ होगा? स्वाधीनता के पचास वर्ष बाद भी प्रतिभा का सम्मान करने का इतना साहस क्या कोई भारतीय विश्वविद्यालय कर सकेगा?

आहार व्यवहार सम्बन्धी विघ्न बाधाएँ रामानुजन्

के परिवार वालों के मन में अनेक प्रकार की कुशंकाओं को जन्म दे रही थीं। दूसरी ओर योग्य गुरु का स्नेह भरा आमंत्रण रामानुजन् को अपनी ओर खींच रहा था। पिता सोचते थे कि "जब अध्ययन की सुविधाएँ और साधन मद्रास में मिल सकती हैं, तो विदेश जाने की क्या आवश्यकता है?" परन्तु विश्वविद्यालय की आन्तरिक स्थिति तो रामानुजन् ही समझते थे। लोगों को उनकी मौलिक प्रतिभा और ख्याति तथा प्रोफेसर हार्डी का हस्तक्षेप रास नहीं आ रहा था। नियमित शिक्षा के अभाव में उनका ज्ञान कई प्रकार से अपूर्ण था, उपाधियाँ तो बिल्कुल थीं ही नहीं। इन्हें लेकर दबी जबान से उनके विरुद्ध कुछ न कुछ प्रायः कहा जाया करता। वरिष्ठ प्राध्यापकों से समुचित सहयोग और मार्गदर्शन में भी कोई न कोई बाधा आ जाती थी। कैम्ब्रिज में समुचित सहयोग और प्रेरणाप्रद वातावरण का आकर्षण अन्ततः सामाजिक–पारिवारिक विघ्न–बाधाओं पर विजय पा गया। सन् १९१४ में रामानुजन् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सम्मानित विद्यार्थी बन गये। रोजमर्रा की जिन्दगी की छोटी–बड़ी चिन्ताओं से मुक्ति पाकर रामानुजन् अपने अध्ययन और अनुसंधान के कार्य में पूरे मनोयोग से जुट गये।

कैम्ब्रिज की स्थिति मद्रास से बिलकुल भिन्न थी। प्रतिभा का सम्मान और सहयोग की उत्सुकता सबके चेहरे पर साफ झलकती थी। प्रो० हार्डी व्यक्तिगत रूप से उनकी कठिनाइयों का हल निकालने में सहायता करते और बदले में बरसों से अपने पास पड़ी हुई अनुत्तरित समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने में रामानुजन् को शामिल कर लेते। उनका सम्बन्ध आधुनिक प्रोफेसर और स्कालर की तरह न होकर प्राचीन भारतीय गुरु–शिष्य के समान बन गया; जिसमें कोई आगे–पीछे नहीं है; बस, दोनों मिलकर ज्ञान की साधना कर रहे हैं। अपनी इस भावना को प्रो० हार्डी ने इस प्रकार व्यक्त किया है– "इस संसार में मैं अन्य लोगों की अपेक्षा रामानुजन् का अधिक ऋणी हूँ। उनके साथ काम करना मेरे जीवन का सबसे अधिक रोमांचकारी अनुभव था।"

कठोर जलवायु और उनका परम्परागत प्रातः–स्नान और शाकाहार–बस दो ही बातें रामानुजन् के कैम्ब्रिज प्रवास के विरुद्ध थी। वे लगातार लोगों से मिलते–जुलते, लिखते–पढ़ते, किन्तु कम से कम खाते और विश्राम उससे भी कम करते। परिणामस्वरूप उनका स्वास्थ्य धीरे–धीरे शिथिल होने लगा। पहले न्यूमोनिया और बाद में टी०बी. के शिकार हो गये, परन्तु बीमारी के बावजूद उनके कार्यक्रम में प्रायः बहुत कम व्यवधान पड़ता। धीरे–धीरे उनकी मौलिक प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि की खबर अन्य देशों के गणितज्ञों को भी लग गयी। यहाँ तक कि रूस के स्टालिन पुरस्कार विजेता विनग्रादो ने भी उनकी सुझायी गयी विधियों का उपयोग करके अपनी कई समस्याओं का समाधान किया। उनकी सूझ–बूझ और मौलिकता ने समकालीन गणितज्ञों को इतना प्रभावित किया कि लन्दन की रायल सोसाइटी ने १९१८ में उन्हें अपना सदस्य चुन लिया। इस प्रकार वे रायल सोसायटी के प्रथम भारतीय सदस्य बने। उसी वर्ष कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज ने भी उन्हें अपना 'फेलो' बनाया। डा० हार्डी ने उसके नाम का प्रस्ताव करते हुए– रायल सोसायटी को बतलाया था कि "यूरोप के विद्वान् गणितज्ञों में इस समय उनका कोई सानी नहीं है।. ... उनके द्वारा उठायी गयी मौलिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में अभी हमें पचास वर्ष लग जायेंगे।"

कैम्ब्रिज में उनका कुल प्रवास पाँच वर्ष से भी कम ही रहा। इसमें भी लगभग दो वर्ष बीमारियों से संघर्ष करते व्यतीत हुए, परन्तु इसी अवधि में उन्होंने उच्चकोटि के इक्कीस शोध–पत्र प्रकाशित करवाये। प्रो० हार्डी सहित अन्य अनेक गणितज्ञों के साथ मिलकर अनेक नवीन उद्भावनाओं और साहसी स्थापनाओं का सृजन किया, नयी विधियों का विकास किया। अपने बहुत से विचार उन्होंने तीन बड़ी–बड़ी नोटबुक्स के रूप में लिखकर रख दिये थे। इसमें से अधिकतर ऐसे थे, जो समय से बहुत आगे थे और लोगों की समझ में नहीं आते थे। इसलिए सन् १९६२ में टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फन्डामेन्टल रिसर्च ने उन्हें ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया। उनके सम्पादन का प्रयास भी नहीं किया गया कि न जाने कोई आड़ी–तिरछी रेखा, कोई बेकार पड़ा बिन्दु या चिह्न कल किसी नवीन उद्भावना का कारण बन जाय।

सन् १९१९ में वे भारत वापस आ गये; क्योंकि डाक्टरों का विचार था कि भारत की उष्ण जलवायु ही उनके स्वास्थ्य को सुधार सकती है; परन्तु अविश्रान्त श्रम और कठिन बीमारी ने उनके शरीर को जर्जर कर दिया था। भारत वापसी के केवल पाँच मास बाद २६ अप्रैल सन् १९२० को ही उन्होंने शरीर छोड़ दिया। प्रसिद्ध गणितज्ञ जे.आर. न्यूमन ने 'शताब्दी का सबसे मौलिक प्रतिभाशाली विद्वान्' कहकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और प्रसिद्ध दार्शनिक–लेखक जूलियन हक्सले ने "उन्हें शताब्दी का सबसे महान् गणितज्ञ" स्वीकार किया। ज्ञान–विज्ञान की भारतीय परम्परा की श्रेष्ठता को दुनिया में मान्यता दिलवाने का उनका जीवन–लक्ष्य पूर्ण हो चुका था और भारत माता की चुनौती देने की योजना भी। ❑

– ८/३१७, इन्दिरानगर, लखनऊ।

मा० कल्याण सिंह
मुख्य मंत्री, उ०प्र०

संक्रामक रोगो से बचाव हेतु जनता से अपील

मा० रमापति शास्त्री
स्वास्थ्य मंत्री

अतिसार, हैजा, डायरिया तथा पीलिया से बचाव हेतु :-

क्या करें :-

- पानी का सेवन उबाल कर ही करें अथवा 20 लीटर पानी (एक बाल्टी भर) में एक क्लोरीन की गोली पीस कर डालने के एक घन्टे उपरान्त पानी का सेवन करें। रोग के प्रथम लक्षण उल्टी या पतले दस्त प्रकट होने पर तुरन्त निकट के स्वास्थ्य केन्द्र से सम्पर्क करें। उक्त लक्षण प्रकट होते ही रोगी को तरल पदार्थ का सेवन प्रचुर मात्रा में करायें।

क्या न करें :-

- बासी भोजन, सड़ी गली मछली, कटे, सड़े गले तथा खुले फलों एवं खाद्य पदार्थों का सेवन कदापि न करें। पेट में कीड़ों से बचने के लिये तालाब या गन्दे पोखरों में बच्चों को कदापि स्नान न करने दें तथा स्वयं भी न करें। उपचार सदैव सरकारी चिकित्सालय या प्रशिक्षित चिकित्सक से ही करायें। झोला छाप चिकित्सकों के उपचार से बचें।

मस्तिष्क ज्वर (नौकी रोग) से बचाव हेतु :-

क्या करें :-

- बीमारी के प्रथम लक्षण तेज बुखार, झटके तथा बेहोशी प्रकट होने पर वयस्क हेतु एक गोली एवं बच्चों को आयु के अनुसार आधी अथवा एक चौथाई गोली खिलायें तथा ठन्डे पानी के कपड़े से शरीर को विशेषकर सिर को बार बार पोछें ।

क्या न करें :-

- नीम हकीम या झोलाछाप तथाकथित चिकित्सकों से उपचार न कराकर तुरन्त समीप के चिकित्सा केन्द्र या मेडिकल कालेज में रोगी को भर्ती करायें।

स्वास्थ्य विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधायें :-

रोग का प्रभाव गोरखपुर मण्डल के जनपदों से अधिक रहता है। रोगियों के उपचार हेतु बी0आर0डी0 मेडिकल कालेज, गोरखपुर में उपचार की विशेष व्यवस्था की गई है। रोगियों के उपचार केन्द्र तक निःशुल्क वाहन से पहुँचाने की भी व्यवस्था की गई है, जिस हेतु 150/- रू0 प्रति रोगी की दर से भुगतान हेतु धनराशि मण्डलायुक्त को उपलब्ध कराई जा चुकी है।

" सेवा का लाभ उठायें तथा जानलेवा बीमारियों से छुटकारा पायें एवं अपने परिवार तथा समाज को स्वस्थ्य रखने में अपना बहुमूल्य योगदान दें "

स्वास्थ्य महानिदेशालय, उ0प्र0

चिट्ठी आई पेरिस से-

गुनगुनी धूप, रमणीय उद्यान और अटल जी का काव्य-पाठ

— डॉ० ओम प्रकाश पाण्डेय

आज शारदीय नवरात्र का अन्तिम दिन है। इसी के साथ सितम्बर मास का अन्तिम दिन भी है। भारत में दुर्गा पूजा की इस समय धूमधाम होगी। धूप-दीप से सुवासित पर्यावरण जनजीवन में नई चेतना और प्रेरणा जगा रहा होगा। पेरिस में भी कहीं-कहीं दुर्गा पूजा का आयोजन होता है, विशेष रूप से बंगाली-समुदाय के द्वारा। विदेश में रहते हुए, भारतीय पर्व-महोत्सवों के अवसर पर टीस उठनी स्वाभाविक है। लेकिन इस मास में सितम्बर भर में, चार-छह दिन ही बदलियों के रहे- अधिकतर खुला आकाश मिला। पर्यटकों के लिए भी ये दिन आकर्षण के होते हैं। ऐफिल टावर के आस-पास के पार्कों, सें मिशेल का समीपवर्ती क्षेत्र, सड़कों के किनारे के रेस्तराँ, सेन नदी पर चलती हुई मोटर बोटें- सभी विश्वभर के पर्यटकों से आच्छन्न रहे। अभी मेरे विश्वविद्यालय में अध्ययन-अध्यापन का क्रम इस सत्र में आरम्भ नहीं हुआ। इसलिए मुझे भी घूमने-फिरने का भरपूर अवसर मिला।

काफी विशाल क्षेत्र में फैला यह पार्क अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए पेरिस भर में प्रसिद्ध है। बड़ी-सी झील, जिसमें बतखें हर समय तैरती रहती हैं, कृत्रिम पहाड़ उनसे प्रवाहित होते हुए जल-प्रवाह (झरने), हरी घास के बड़े-बड़े, ऊँचे-नीचे मैदान, बीच-बीच में अपने आप उगे हरे-भरे वृक्ष, योजनाबद्ध ढंग से लगाई गई फूलों की असंख्य मनोहर क्यारियाँ, स्थान-स्थान पर स्थापित मिथुन-मूर्तियाँ और शौर्य-प्रेरक पाषाण प्रतिमाएँ बच्चों के खेलने के लिए क्रीड़ा के बहुसंख्यक उपादान, आकस्मिक वर्षा से बचने के लिए चारों ओर बने खुले काष्ठ-मण्डप क्षुधा शान्त करने के लिए पार्क के किनारे स्थापित रेस्तराँ, शंका-निवृत्ति के लिए स्वच्छ प्रसाधन (टायलेट), सुरक्षा के लिए चारों ओर घूमते हुए उद्यान-रक्षक इतनी सुविधाओं के कारण बहुत-से लोग, विशेषकर वृद्ध नर-नारी पूरा-पूरा दिन इन्हीं पार्कों में बिता देते हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोग पुस्तकों को पढ़ने, चित्रांकन करने या अन्य कार्यों में संलग्न रहते हैं। शीत-ऋतु में, जब झील का पानी बिल्कुल बर्फ की तरह जम जाता है, तापमान शून्य के नीचे चला जाता है, तब भी झील में न पक्षी घटते हैं और न पार्क में नर-नारी। नवजात शिशुओं को शीत सहने का अभ्यास माताएँ प्रारम्भ से ही इन पार्कों में कराती रहती हैं। बच्चों को मिट्टी में खेलने से यहाँ किसी को भी रोकते मैंने नहीं देखा। लेकिन बहुसंख्यक जनसमूह जुटने पर भी पार्क में कहीं गन्दगी नहीं दिखेगी। चमड़े के जूते पहनकर कोई घास के मैदानों पर चलता नहीं दिखेगा। रोक-टोक न होने पर भी क्यारियों से किसी को कभी फूल तोड़ते या मसलते मैंने नहीं देखा। गहरे-से-गहरा तनाव इस पार्क में दूर हो जाता है।

यहाँ कुछ ऐसे सांस्कृतिक प्रसंगों के प्रीतिकर अवसर मिले, जिनके कारण यह टीस कुछ कम वेधक रही। वैसे इस समय यहाँ प्रायः समशीतोष्ण मौसम है- भारत में नवम्बर के मध्य में जैसा रहता है। रीतिकालीन कवि सेनापति के शब्दों में- 'कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति, सेनापति है सुहाति...।' मैं जब से आया हूँ इस बार, प्रायः खिली हुई गुनगुनी धूप का आनन्द ले रहा हूँ। बहुतों के लिए पेरिस के नाइट क्लब, सेक्स शाप, पिगाल क्षेत्रवर्त्ती, काम-क्रीड़ा के प्रदर्शक व्यापारिक केन्द्र ये अधिक आकर्षक होते हैं, लेकिन पेरिस में मुझे सर्वाधिक आनन्ददायी लगते हैं, यहाँ के बड़े-बड़े उद्यान और पार्क। जब 'मेजों द लैन्द' (भारत-भवन) में रहता था, तो उसके पास स्थित पार्क मोंसूरी मेरे विशिष्ट आकर्षण का केन्द्र था। काफी विशाल क्षेत्र में फैला यह पार्क अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के

लिए पेरिस भर में प्रसिद्ध है। बड़ी–सी झील, जिसमें बतखें हर समय तैरती रहती हैं, कृत्रिम पहाड़ उनसे प्रवाहित होते हुए जल–प्रवाह (झरने), हरी घास के बड़े–बड़े, ऊँचे–नीचे मैदान, बीच–बीच में अपने आप उगे हरे–भरे वृक्ष, योजनाबद्ध ढंग से लगाई गईं फूलों की असंख्य मनोहर क्यारियाँ, स्थान–स्थान पर स्थापित मिथुन–मूर्त्तियाँ और शौर्य–प्रेरक पाषाण प्रतिमाएँ बच्चों के खेलने के लिए क्रीड़ा के बहुसंख्यक उपादान, आकस्मिक वर्षा से बचने के लिए चारों ओर बने खुले काष्ठ–मण्डप क्षुधा शान्त करने के लिए पार्क के किनारे स्थापित रेस्तराँ, शंका–निवृत्ति के लिए स्वच्छ प्रसाधन (टायलेट), सुरक्षा के लिए चारों ओर घूमते हुए उद्यान–रक्षक इतनी सुविधाओं के कारण बहुत–से लोग, विशेषकर वृद्ध नर–नारी पूरा–पूरा दिन इन्हीं पार्कों में बिता देते हैं। अपनी–अपनी रुचि के अनुसार लोग पुस्तकों को पढ़ने, चित्रांकन करने या अन्य कार्यों में संलग्न रहते हैं। शीत–ऋतु में, जब झील का पानी बिल्कुल बर्फ की तरह जम जाता है, तापमान शून्य के नीचे चला जाता है, तब भी झील में न पक्षी घटते हैं और न पार्क में नर–नारी। नवजात शिशुओं को शीत सहने का अभ्यास माताएँ प्रारम्भ से ही इन पार्कों में कराती रहती हैं। बच्चों को मिट्टी में खेलने से यहाँ किसी को भी रोकते मैंने नहीं देखा। लेकिन बहुसंख्यक जनसमूह जुटने पर भी पार्क में कहीं गन्दगी नहीं दिखेगी। चमड़े के जूते पहनकर कोई घास के मैदानों पर चलता नहीं दिखेगा। रोक–टोक न होने पर भी क्यारियों से किसी को कभी फूल तोड़ते या मसलते मैंने नहीं देखा। गहरे–से–गहरा तनाव इस पार्क में दूर हो जाता है।

सम्प्रति मेरा आवास पेरिस के १५वें भाग में है। सेन नदी के बायें किनारे पर स्थित यह नगराञ्चल अनेक कारणों से विशिष्ट माना जाता है। फ्रांस–सरकार का गृह–मन्त्रालय इसी अंचल में है, फिर अनेक गगनचुम्बी बहु मंजिली आधुनिक इमारतें, जिन्हें यहाँ 'स्काई–क्रीपर' कहा जाता है, बड़े–बड़े होटल, लेन के उस पार स्थित फ्रान्स का रेडियो केन्द्र इनके अतिरिक्त आन्द्रेसित्राँ नामक एक बहुत विशाल महोद्यान भी इसके गौरव में चार चाँद लगाता है। यह नगरोद्यान आजकल जहाँ पर स्थित है, पहले वहाँ एक बड़ी मोटर–फैक्टरी थी। मोटर–फैक्टरी तो बन्द हो गयी, लेकिन उस स्थान पर सन् १९९२ में एक विशाल पार्क का निर्माण हो गया। यह पार्क अपने बहुसंख्यक बड़े–बड़े फौव्वारों, मैदानों के चारों ओर बहने वाली कृत्रिम नहरों जिनमें सदैव स्वच्छ जल ही रहता है, बहुत ऊपर इससे भी बड़े–बड़े कृत्रिम तालाबों, छोटे–छोटे बहुत–से तालाबों, तालाबों में लगे विभिन्न प्रकार के कमल के फूलों, मखमली घास के मैदानों, बाँस के झुरमुटों, लता–गुल्मों, इत्यादि के कारण अत्यन्त नयनाभिराम है। सम्पूर्ण उद्यान का क्षेत्रफल तीन किलोमीटर से अधिक ही होगा। इसमें बहुत–से पौधों की सुरक्षा के लिए उनके ऊपर शीशे के रमणीय कक्ष बना दिये गये हैं। रात्रि में फौव्वारों, नहरों और तालाबों में बहुरंगी रोशनी के लिए बड़ी अच्छी व्यवस्था भी है। इस पार्क में कबूतरों और पालतू कुत्ते–बिल्लियों के अतिरिक्त अन्य कोई जीव–जन्तु नहीं दिखा। साँप–बिच्छू तो खैर पेरिस में होते ही नहीं हैं, लेकिन अन्य कीड़े–मकोड़े भी नहीं दिखाई पड़े। मैसूर के वृन्दावन पार्क और उसके अनुकरण में बड़ौदा इत्यादि में बने पार्कों को भी मैंने देखा है, लेकिन यह आन्द्रेसित्राँ पार्क उनमें से किसी से भी कम नहीं दिखा। एक तीसरा पार्क भी बहुत प्रसिद्ध है। वह है लुक्सुमबुर्ग जो सोरबोन विश्वविद्यालय के पास में ही है। यहाँ के राजा भी कुछ काल तक लुक्सुमबुर्ग में बने भवनों में चार–पाँच सौ वर्ष पहले रहते थे। यह भी बहुत विशाल उद्यान है। नगर के उस हिस्से में, जिसे पहले 'लैटिन क्वार्टर' कहते थे (क्योंकि पूरे पेरिस में फ्रांसीसी बोली जाने पर भी, इस क्षेत्र में लैटिन बोलने का ही वातावरण कभी था) होने के कारण भी यह उद्यान पर्यटकों का विशिष्ट केन्द्र रहा है। फ्रान्स की राज्यसभा भी इसी उद्यान के एक ओर है। जब सत्र चलता है, तब उस ओर जाना निषिद्ध रहता है। लेकिन पार्क इतना बड़ा है कि इस प्रतिबन्ध का प्रभाव नगण्य ही रहता है।

इन तीनों पार्कों के अतिरिक्त ऐफिल टावर के आस–पास के बड़े–बड़े पार्क भी इधर सैलानियों से भरे दिखे। ऐफिल टावर लौह-निर्मित विशाल स्तम्भ है, जो अपने निर्माता इन्जीनियर ऐफिल के नाम पर प्रसिद्ध है। लगभग एक हजार मीटर ऊँचा यह स्तम्भ पर्यटकों के लिए शायद यहाँ सबसे बड़ा आकर्षण है। मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा की ऊँचाई का यह द्योतक है। इसकी सबसे ऊपर की मंजिल तक जाने के लिए चारों ओर लिफ्टों की व्यवस्था है, जहाँ प्रवेश–द्वारों पर लगी बड़ी–बड़ी कतारें इसे देखने के लिए आये लोगों की उत्कट उत्सुकता की द्योतक हैं। इसके पास ही, सेन नदी को पार करते ही 'त्रोकादेरो' क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है। इसमें दो विशाल संग्रहालय हैं। एक प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्धित है और दूसरा सिनेमा–जगत् से। इन संग्रहालयों के पीछे, विशाल फौव्वारे हैं, जो बड़ी दूर तक कभी सम और कभी विषम गति में पानी फेंकते रहते हैं। घास के हरे–भरे मैदानों में दूर–दूरस्थ यात्रियों के दल बैठे या लेटे हुए इन नयनाभिराम

(शेष पृष्ठ ५९ पर)

लाल बहादुर शास्त्री की पुण्य स्मृति में—

क्यों धर्म न पूरा निभा सके ओ वीरव्रती !

– दामोदर स्वरूप 'विद्रोही'

[यह कविता विलम्ब से प्राप्त होने पर भी इसी अंक में देने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। ध्यान रहे, कविवर 'विद्रोही' की जन्म–तिथि भी २ अक्तूबर ही है। –सम्पादक]

"बहुत दिनों पर मिला देश को "लाल बहादुर",
वीरभूमि को ज्यों पिछला इतिहास मिला था।
शान्ति, शान्ति के लिए, शक्ति के लिए समर का—
दृढ़ साहस से भरा, ओज—विश्वास मिला था।।

भारतीय रणकौशल अथवा वीर कथाएँ—
विश्व मानने को, किंचित् तैयार नहीं था।
आन—बान—मर्यादा का आदर्श पुरातन—
सिमट रहा था, कहीं शेष आधार नहीं था।।

तब वामन बन, मिले देश को शक्ति—पुरुष तुम—
फिर काशी में पढ़ी हुई गीता देखी।
बन पवन पुत्र घुस पड़े अशोक वाटिका में—
जब क्रूर निगाहों से आहत सीता देखी।।

क्यों धर्म न पूरा निभा सके ओ वीरव्रती ?
किसलिए विजय के बाद शोक—रव भाया है ?
तुम आते, तो हम दीप जला स्वागत करते,
किसलिए अयोध्या—दिल्ली में शव आया है ?

इस तरह तुम्हारा अन्त हुआ, इसके कारण—
दिल्ली में नाना भाँति लगाये जाते हैं।
कोई कहता हर्षातिरेक में चले गये—
कोई विषादमय मृत्यु बताये जाते हैं।।

कोई कहता कर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर—
अपने निवास पर जब वापस आये होंगे।
"मैंने कर डाला काम, न नेहरू कर पाये,
यह सोच बहुत मन ही मन हरषाये होंगे।

नेहरू ने वर्ष अठारह तक जाने कितनी—
इन पाक शासकों की लाखों घातें सह लीं।
"नो वार पैक्ट" हो जाये इनसे किसी भाँति,
इनकी जायज—नाजायज भी बातें सह लीं।

भारत का गुस्सा सहा, इन्हें खुश करने को—
पर बहल न पाये नेहरू के बहलाने में।
लेकिन मैंने सुलझाया मास अठारह में,
इतना काफी है शान्तिदूत कहलाने में।।

यह इतना भारी हर्ष और वह अल्प गात,
जो अपने भीतर नाचा, थककर ऊब गया।
हर्षातिरेक की लहरों में वह प्राण—पोत,
कुछ क्षण तैरा फिर गहराई में डूब गया।।

कोई कहता यह नहीं मृत्यु का कारण है,
कोसीजिन ने कुछ बेजा धमकाया होगा।
कश्मीर—प्रश्न का प्रेत किया होगा सम्मुख,
भोले दिमाग को उल्टा समझाया होगा।।

कुछ फुसलाकर, कुछ दिखा—दिखाकर सब्जबाग,
कुछ रक्षा का आश्वासन, कुछ हथियार—रकम।
थे करा लिए होंगे दस्तखत हैरानी में,
लेकिन ज्यों सोचा होगा हटते क्षणिक भरम।।

क्या सेना वापस जायेगी उस सीमा पर,
जो पाँच अगस्त पुरानी सीमा की रेखा ?
बस इतना आना, उसके हृदयस्थल पर—
चलचित्र, समान सामने उसने यों देखा।

चौधरी कह रहे, यह लो मेरा त्यागपत्र,
वर्दी उतार कर अर्जुन सिंह खड़े आगे।
अब्दुल हमीद, गुरुबक्श सिंह, मेजर त्यागी—
के रुण्ड बदलते करवट और पड़े जागे।।

सरगोधा पर अपने शरीर के टुकड़ों को
है वीर नरेन्दर रण—देवी को खिला रहा।
यह कर्नल तारपोर अँगारों से लिपटा,
जो सात—सात टैंकों को इकला जला रहा।।

यह दृश्य देखकर पलभर आँख मुँदी होगी,
तो स्वप्न उभर कर पलकों पर आया होगा।
हल्दी से पीले हाथ, गात गंगाजल–सा
"कविता"[1] का जीवन विधवा बन आया होगा।।

अपनी झोली को फैलाकर रोती होगी–
मैया वह, जिसका पुत्र अकेला चला गया।
सहमी देखी सुकुमारी एक मँगेतर जो,
जिसके सपनों का राजा रण में छला गया।।

जब दीख पड़े काँपते हाथ, तस्वीर लिये,
बच्चे अनाथ पापा का पता पूँछते हैं।
केसर को अपना रक्तदान करने वाले–
रावलपिंडी की सीधी राह पूँछते हैं।।

अम्बाले से अमृतसर के खँडहर रोते,
कह रहीं कथा दुर्दिन की जलती दीवारें।
हो जोधपूर की जेल याकि हो अस्पताल–
कोलाहल करती असहायों की चीत्कारें।।

यह स्वप्न भयानक देख, नींद टूटी होगी।
निज गात पसीने से लथपथ पाया होगा।
तब उठा चारपाई से होगा घबराकर,
फिर एक प्रश्न सीधा सम्मुख आया होगा।।

"यह रक्तदान, बलिदान सभी कुछ व्यर्थ हुआ,
यह उड़ी, पुंछ, करगिल का लेना व्यर्थ हुआ।
अधिकार मुझे था क्या समझौता करने का,
इच्छोगिल तक भारत का लोहू व्यर्थ हुआ।।"

तब उमस गई होगी उसकी भीतर छाती–
अभिशाप करोड़ों आहों के छाये होंगे।
मुँह पर रख करके हाथ बहुत तड़पा होगा,
औ' प्राण हथेली पर सहसा आये होंगे।"

☆

–चमकनी, बहादुरगंज, शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

1. डोंगराई के विजेता हुतात्मा मेजर आशाराम त्यागी की पत्नी, जो १६ वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई थी।

पचीस पैसे अवश्य खर्च करें

'राष्ट्रधर्म' के सुधी पाठकों से साग्रह अनुरोध है कि गत जनवरी, ९८ अंक (सनातन भारत विशेषांक) से लेकर अब तक के सभी अंकों की सामग्री पर एक गहन–दृष्टि डालकर कृपया यह सूचित करने का विशेष कष्ट करें कि–

१. **कौन सा स्तम्भ आपको रुचिकर और उपयोगी लगता है और क्यों**;
२. कौन सा स्तम्भ आपको पसन्द नहीं है और क्यों नहीं पसन्द है;
३. कोई नया स्तम्भ आप चाहते हैं या नहीं, चाहते हैं, तो किस विषय पर;
४. समग्र रूप से आपको 'राष्ट्रधर्म' कैसा लगता है तथा आपकी दृष्टि में क्या–क्या और अपेक्षित है।

उक्त चार बिन्दुओं पर निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से आपकी राय 'राष्ट्रधर्म' के लिए बहुमूल्य सिद्ध होगी। 'राष्ट्रधर्म' की समाज में ग्राह्यता बढ़े, इस हेतु अपने सुझाव देने से कृपया न चूकें। बहुधा प्रशंसात्मक पत्र ही हमें पाठकों से प्राप्त होते हैं, जिनसे अपने पाठक–वर्ग की अपेक्षाओं का सम्यक् आकलन किया जा सकना सम्भव नहीं हो पाता।

आप अपने स्पष्ट विचार एक पोस्टकार्ड पर लिखकर भेजने की कृपा करें। विश्वास है, मात्र ०–२५ पै० का यह परिव्यय करने में आप कंजूसी नहीं बरतेंगे।

— सम्पादक

भगवती लक्ष्मी को एक मान-पत्र राजनीतिकों की ओर से

– सुरेश 'आनन्द'

हे महामान्य देवी लक्ष्मी! आपकी कृपा दृष्टि दयानिधि से मंत्रिमण्डल के सदस्यों को समग्र दृष्टि मिली और राष्ट्रीय पवित्र देश की सोने की चिड़िया सौंपी, इसके लिए सभी मंत्री आपका आभार व्यक्त करने के लिए शब्दकोष में शब्द नहीं ढूँढ पा रहे हैं?

हे विष्णु–भार्या! आपकी दूर दृष्टि के हम भारतीय राजनीतिज्ञ दिल खोलकर प्रशसक हैं। आपने हमें विष्णु की पदवी देने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। अतः हम भी विष्णु बनकर आप जैसी लक्ष्मी के वाहन उल्लू पर ही विराजते रहे हैं। आपके ही वरदान से निश्चित ही हम मालामाल हो गए हैं। हम सभी प्रसन्न हैं। अतः आपकी कृपा–दृष्टि के कायल होकर नतमस्तक हैं।

हे महालक्ष्मी! विगत पाँच दशकों से भी अधिक समय से आपकी ही कृपा–दृष्टि रही है। आपकी ही बदौलत अंग्रेजों, मुगलों के डंडे, गोली, कारावास के कष्टों व सिद्धान्त–विद्धान्त कार्यक्रमों, योजनाओं सभी को विस्मृत कर सदैव आपकी ही स्तुति करते रहे हैं। कृपया देश–विदेश कहीं भी रहें, आप का वरद–हस्त सदैव बना रहे और हमारी भावी पीढ़ी को कुर्सी पर गोंद की तरह चिपके रहने की प्रेरणा देती रहें।

हे वरदायिनी! हमारी सात पीढ़ी "आजादी दिलाई" का सदैव मंत्र फूँकती रहे और आपका उपयोग करती रहे, गांधी को नजरअंदाज कर सुरा–सुन्दरी, हुक्का–पानी, महल–वाड़े, गाड़ी–घोड़े प्राप्त करने का वरदान प्राप्त करती रहे, आपका यही वरदान प्रशंसनीय है, जिसके लिए हम सभी वैशाखनन्दनों को भी बाप मान सकते हैं, मंदिर–मस्जिद सभी जगह घुटने टेक सकते हैं, अभिनय कर सकते हैं।

हे महामाया! आपकी जय हो। आपके महल कोठियों के शान्तिप्रिय भक्तों की जय हो। वही तो हम निर्धन राजनीतिज्ञों का ख्याल रखते हैं? आप सभी दरबारी, चमचे गांधीवादियों के नैनों पर सदैव आवरण फेरती रहें, और हम गांधी विनोबा को भले ही भजते रहें, पर कृपा–दृष्टि हम पर रहे, ऐसा वरदान दीजिए।

हे देवी! हमारे कंधों पर जब से देश का भार आया है, तब से ही हम पिछड़ा–वर्ग, हरिजन, आदिवासी, अल्पसंख्यक, बहु–संख्यक, सवर्ण, बहुत सी गालियाँ निकाल चुके हैं। आपके ही पुण्य–प्रताप से इनमें थोड़ी दरार डालकर किसी को भी नहीं उठने दे रहे हैं। हम सदैव राजभक्त कहलाते रहे हैं। अतः आपकी जय हो, आपके कारनामों की जय हो।

हे देवी! आपकी कृपा–दृष्टि से ही किसी मंत्री और उसकी भार्या या प्रेमिका या चमचे को कभी चार गाड़ियाँ लगती हैं, तो कभी दस गाड़ियाँ लगती हैं। सरकार नहीं देती, तब भी उनका विभाग या उनके अधीन उपक्रमों या ठेकेदारों अथवा उद्योगपतियों से मिल जाती हैं। यह करिश्मा आपकी ही बदौलत होता है, अतः आपकी सदैव जय जयकार हो।

हम राजनीतिज्ञ अपनी नीति से प्रसन्न हैं। लोक को गोली मारो, तंत्र पर काबिज सिद्ध हुए हैं। किसी को बंगला, किसी को कोठी, किसी को महल मिल गया है। अब झोपड़ी की याद करने का मन नहीं करता, यहाँ खूब नींद आती है। चूँकि जब से आपकी दया से राजनीतिज्ञ बने हैं, हमारा अपराधीकृत जीवन भी बदल गया है, आपकी जय जयकार हो।

देवी! आपकी ही कृपा–दृष्टि से हम अब भारत के चिकित्सालयों में नहीं जाते हैं। हमारा इलाज लन्दन, न्यूयार्क, पेरिस में होता है। हम भारत के सिरमौर जो हैं। कृष्ण कन्हैया भी हैं। राधा–रुक्मिणी भी कभी–कभी मिल जाया करती हैं। द्वारकापुरी भी बसा लेते हैं। घरों में जापानी गुड़िया, संगमरमर का हमाम, हर कमरे में कूलर, हर सुविधा, हर सुख सब कुछ आपकी ही कृपा से तो मिला है, आपकी सदैव जय जयकार हो।

महालक्ष्मी! अब तो जादू का चिराग आपकी कृपा से हमारे हाथों में आ गया है। जब चाहें, जिस समय चाहें, सब कुछ मँगा सकते हैं। बच्चों की शादी, राजतन्त्रीय जमाने–सी राजसी ठाट–बाट से कर सकते हैं। चिकित्सा–भत्ता, आवास–भत्ता, बैठक–भत्ता, मौसम–भत्ता, भोजन–भत्ता, समस्या–निवारण–भत्ता, आयात–निर्यात हथियार, गाड़ी, गैस, मकान, कपड़ा–रोटी दिलाने का भत्ता, याने सभी

आपकी कृपा–दृष्टि से प्राप्त करने का अधिकार–पत्र प्राप्त हो गया है। आपकी जय हो। आपने इस आजाद देश का कल्याण किया है। हम बार–बार साष्टांग प्रणाम करते हैं।

हे विष्णु भार्या ! देश में नीति और नीति में राजनीति व राजनीति में राज्य घुस आया है। यह आपके वरदान का ही पुण्य–प्रताप है। दुनिया के देशों में जनतंत्रीय भारत की कुंडली खास राजनीतिज्ञों के लिए ही तो बनायी गयी है। इस राजयोग के लिए आपकी बार–बार जय–जयकार हो।

हे महामाया ! अगर आपकी कृपा नहीं होती, तो राजा–प्रजा में अन्तर करना मुश्किल हो जाता। इसीलिए हर मंत्री, हर राजनीतिज्ञ, हर विधायक, हर सांसद् ने अपना–अपना कर्तव्य तन्त्र–यन्त्रों में लक्ष्मी–स्तुति पढ़कर सम्भाल लिया है। आपके वरदानी तन्त्र–यन्त्र को सोते–जागते, रात–दिन दीपावली के दिन प्रतिपल वक्षःस्थल पर धारण किये रहते हैं।

हम राजनीतिज्ञों का विश्वास है कि इस देश के आधुनिक नारद मुनियों, रचनात्मक गांधीवादियों, विनोबा वादियों, लोहिया और माफियावादियों से आप हमें हमेशा बचाकर रख सकेंगी। आप अन्तर्यामी हैं। आपके ही जादू से लँगोटी वाले गांधी की सिद्धान्त वाली लाठियाँ टूट गई हैं; जय प्रकाश के चमचे बिल्ली बन गये हैं; लोहिया, दीनदयाल के तीर बेकार हुए हैं; वीर सावरकर का इतिहास भी सागर में डूब गया; विनोबा की धरती व जय जगत् की गठरी कहीं गुम गई है। वास्तव में यह लोग कोई राजनीतिज्ञों के चरित्रों के नहीं थे, तभी तो आपने भाँप लिया और वे किनारे कट गए, इसीलिए तो अब लक्ष्मी देवी ! आप हमारे बंगलों की तिजोरी में चुपचाप आकर बस सकती हो। हम पलक पाँवड़े बिछाकर स्वागत करेंगे।

हे देवी ! हम राजनीतिज्ञ करबद्ध वरदान माँगते हैं, अब ऐसे तथाकथित सिद्धान्तवादी पैदा ही न हों, अतः अपना मायावी जाल फेंकती ही रहो। देवी ! हमें इन्हें मिटाने में कितना श्रम करना पड़ा है, यह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता ? फिर हम भोले–भाले, निष्कपट, सरल व्यक्तित्व के धनी हैं, हम क्या जानें सिद्धान्त–विद्धान्त क्या होते हैं ?

हमने तो मुस्लिमकाल और अंग्रेज चाल देखी हैं। उनकी शिक्षा ग्रहण की है। तब उनकी सभ्यता संस्कृति छोड़कर और कहाँ जायें ? इसीलिए देवी हमें वरदान देती ही रहना। हम इसी धरती के मुकुटधर ! कैसे पूजे जायें ? वैसी कृपा करना।

हम ही कुर्सी–रक्षक हों ? हम ही योजना–भक्षक हों। हम ही गिरगिट बनें ? हम ही आदमी रहें ? हम ही शराब बेंचें और हम ही दूध ? हम ही शिक्षक बनें और हम ही विद्यार्थी रहें ? हमारी रग–रग में आपका वरदान समाहित हो।

हे महामान्या ! महालक्ष्मी ! हमारा खजाना भरा रखो, ताकि हमारे अधीन कर्मचारियों, अधिकारियों का बिस्तर हमेशा गोल कराने में सुविधा बनी रहे। यह हर छह माह में या एक वर्ष में भागते रहें, भगाये जाते रहें, जिससे इन्हें हमारी महिमा के दर्शन होते रहें। हर जगह हमारे कल्याण में लगे रहें। इससे दूसरा लाभ यह कि भागते–भागते थककर स्वतः ही कुर्सी छोड़ कर चले जाएंगे, इससे हमारे खजाने में बचत ही बचत रहेगी ?

सही पूछो; अंग्रेज जो खजाना व कुर्सी छोड़ गये थे, वह राजनीतिज्ञों की ही थी न ? अतः आपकी इस कृपा–दृष्टि के लिए कृतज्ञ हैं ? इसी तरह इस देश के तमाम खेत खलिहान, पेड़–पौधे, खनिज, नदी–नाले, पर्वत, भूमि, आकाश सभी कुछ पर आपकी कृपा से प्रथम अधिकार हमारा ही है न ? हमें ऐसा वरदान दो, इसका उपयोग कैसे भी करें, कोई रोके नहीं। किसी को इस सम्पदा में हाथ न लगाने दें। चाहे किसी को इससे वंचित कर दें ? आखिर बादशाह , नवाब, वजीर, लार्ड वायसराय और क्या करते थे जो हम उनसे कुछ नया करें ?

हे देवी ! इसीलिए हम पाँच दशकों से वोट माँगते–माँगते यह अच्छी तरह से सीख गये हैं कि किसको कैसे हटाया जाता है और किसको कैसे जमाया जाता है ? किसको कैसे ठगा जाता है और किसको कैसे ठग से बचाया जाता है ? आप हमारे जैसे सभी चमचों पर अपने वरदान–वृक्षों की छाया करती रहो, यही हमारी प्रार्थना है।

हे देवी ! अपना वाहन उल्लू हमारी छतों पर या ड्राइंग रूम में खड़ा रखो, तो पक्की व्यवस्था कर सकते हैं ? आपका वरदहस्त हमारे मस्तक से नहीं हटे, इतना निवेदन स्वीकार करें।

कोई जमाना था, जब राम के अयोध्या लौटने पर दीप प्रज्वलित किये गये थे, दीपावली मनायी गयी थी, पर अब तो हमारे राजगद्दी पर बैठने की खुशी में यह पर्व होता है ? आपके वरदान की खुशी से देश की झोपड़ियों से प्रसन्नता फूटती है, क्योंकि इस देश के आदमी को केवल यही मालूम है राजा की खुशी में ही उसकी खुशी है। अतः परमदेवी ! महालक्ष्मी ! आपकी जय हो। आम आदमी को यह जानकारी बनी रहे कि वह कभी सरस्वती के पास न जाये और राजनीतिज्ञों की आरती गाता रहे। और कुछ थोड़े ही माँग रहे हैं आप से।

हम हैं आपके अपने–

'विनम्र' भारतीय 'निर्धन' राजनीतिज्ञ। □

–आनन्द परिधि, एल–६२, पं. प्रेमनाथ डोगरा मार्ग, रतलाम (म. प्र.)

राज्यसभा में गो व गो–वंश की हत्या के विरुद्ध उल्लेख (१३–७–१९९८)

... मरेहु चाम सेवहिं चरन

सभापति महोदय, इस विशेष उल्लेख के द्वारा आपके माध्यम से इस सदन के अन्दर एक गाय कुछ ज्ञापन देना चाहती है; क्योंकि गायों की भाषा सांसद् नहीं समझते, मैं कुछ समझता हूँ। इसलिए मैं दुभाषिए का काम आज संसद् के समक्ष करना चाहता हूँ। महोदय, गाय आपसे निवेदन करते हुए कह रही है–

अरि जु दन्त त्रन धरहिं, तिनहिं मारत न सबल कोइ।
हम नित प्रति त्रन चरहिं, बैन उच्चरहिं दीन होइ।।
हिन्दुन मधुर न देहिं, कटुक तुरकन न पिलावहिं।
पय विशुद्ध अति आवहि, वत्सन हित मत धावहिं।।
सुनहु सांसद अरज यह, करत गऊ जोरे करन।
कौन चूक मोंहि मारहीं, मरेहु चाम सेवहिं चरन।।

गाय कह रही है कि ऐसी क्या बात है कि दो योद्धा जब आपस में लड़ते हैं, तब सामने वाला यदि मुँह में तिनका डाल ले, तो उसको माफ कर दिया जाता है, हम तो सुबह से शाम तक मुँह में तिनका रखती हैं, इसलिए हमें मारने का कौन–सा औचित्य है? कोई जोर से बोलता है, तो उसको दण्ड देते हैं। फिर हम तो बहुत ही वात्सल्य से बोलती हैं, बहुत धीरज से रँभाती हैं। हमारी वाणी पूरी तरह वात्सल्यमय है, इसलिए हमें मारने का कौन–सा औचित्य हो सकता है? ऐसा भी नहीं है कि हम हिन्दू को तो मीठा दूध पिलाती हैं और मुसलमान को कड़ुवा दूध पिलाती हैं। गाय कह रही है कि उसका दूध इतना शुद्ध है और उसके शुद्ध दूध को पीने के बाद लोग स्वस्थ हो जाते हैं। वह सांसदों से कह रही है कि हे सांसदों! हमारी कौन–सी चूक है, जिसके कारण हमारी हत्या हो रही है? मरने के बाद मेरी चमड़ी तो आपके पाँव की रक्षा करती है, इसलिए मुझे मारने में क्या औचित्य है?

महोदय, मैं यहाँ गाय के ज्ञापन को एक दुभाषिए के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। परन्तु इसके साथ ही मैं एक निवेदन यह भी करना चाहता हूँ कि **संविधान के अनुच्छेद–४८ में इस बात की व्यवस्था है कि सरकार इस बात को देखे कि गाय, गाय के बछड़े और जितने भी दुधारू पशु हैं, उनकी हत्या न हो; परन्तु हमारे देश की सीमा से लगे हुए जितने भी देश हैं, वहाँ पर गाय के मांस का निर्यात होता है। गाय के मांस को बर्फ में जमाकर पास के दुबई आदि देशों में भेजा जाता है। कुवैत और दुबई आदि देशों में लगभग ६०० करोड़ रुपये का मांस निर्यात किया जाता है और सीमान्त प्रदेशों में इसकी तस्करी भी हो रही है।**

महोदय! आप शिरोमणि–पुरुष हैं। इस देश की दशा और दिशा को देखने वाले हैं, मैं आपकी मार्फत संसद् से यह निवेदन करना चाहूँगा कि राज्य सरकारों के मुख्यमन्त्रियों की बैठक बुलायें और गाय और गो–वंश की रक्षा के लिए कोई कारगर कदम उठायें। हिन्दुस्तान की धरती पर गो–हत्या न हो इस नाते मैंने गायों का ज्ञापन रखा है। आज से लगभग ५०० साल पहले नरहरि दास बारहठ ने भी अकबर के सामने एक ज्ञापन दिया था, 'आईने अकबरी' में लिखा है एवं मैथिलीशरण गुप्त ने "भारत– भारती" नामक पुस्तक में लिखा है कि गो–हत्या पर प्रतिबन्ध हो गया था तथा इसके बाद गो–हत्या रुक गयी थी।

मैं आपके माध्यम से, महोदय! आपसे सशक्त कोई नहीं है; संसद् से बड़ा सशक्त कोई नहीं है; इसलिए सभापति महोदय! आज इस अवसर का लाभ उठाकर मैंने गायों का ज्ञापन आपको दिया है। इसमें मैंने केवल दुभाषिए का काम किया है। इतना निवेदन कर मैं अपनी बात पूरी करता हूँ। ...... (व्यवधान) ..... ❒

– ओंकार सिंह लखावत

सांसद (राज्य सभा), करनी कुञ्ज, कचहरी मार्ग, अजमेर (राजस्थान)

कत्लखानों के कारण देश की दुर्दशा
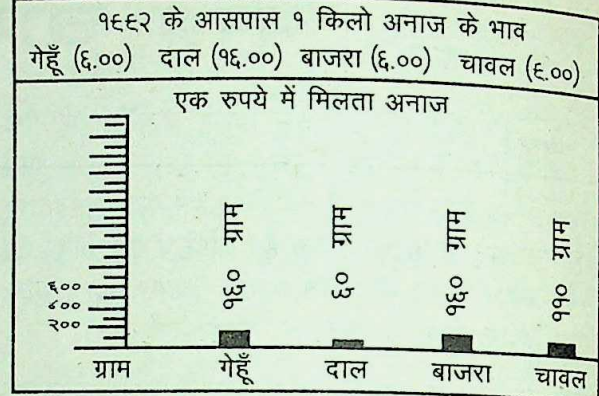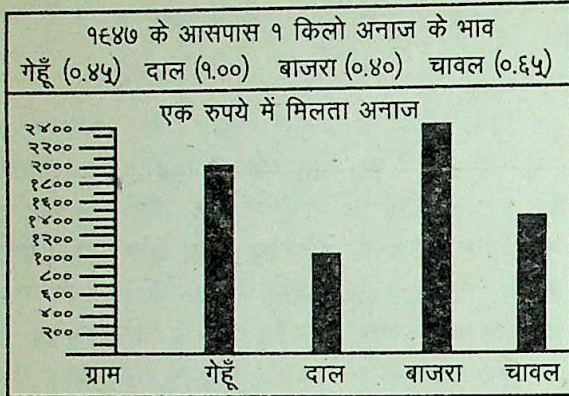
अनाज के भाव में बढ़ोतरी

सिर्फ ४५ सालों में गेहूँ के भाव में १२०० प्रतिशत की वृद्धि, दाल के भाव में १६०० प्रतिशत, बाजरे के भाव में १६०० प्रतिशत एवं चावल के भाव में १५०० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। (अब १९९८ में दामों में यह वृद्धि और अधिक हो गयी है, जिसके रुकने के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे है। –सम्पादक)

अनाज के भाव में यह बढ़ोतरी कैसे?

अनाज के उत्पादन खर्च में भारी मात्रा में बढ़ोतरी से।

उत्पादन खर्च में बढ़ोतरी क्यों?

मुफ्त में मिलने वाली देशी खाद (गोबर इत्यादि) के बदले महँगी रासायनिक खाद का उपयोग, जो उत्पादन खर्च का बहुत बड़ा हिस्सा है।

मुफ्त में मिलने वाले देशी खाद (गोबर) की उपलब्धि कैसे कम हुई?

पशुओं के अमर्याद कत्ल के कारण; उदाहरण के लिए सिर्फ देवनार के कत्लखाने में हर साल अन्दाज से छोटे–बड़े २७,४६,००० पशुओं का कत्ल होता है, जिससे मुफ्त में मिलने वाले २०,६०,००० टन गोबर का मिलना बन्द होता है।

सिर्फ देवनार जैसे एक कत्लखाने से लाखों टन गोबर का नाश होता है, तो पूरे देश में हजारों कत्लखानों द्वारा करोड़ों टन खाद व मूत्र मिलना बन्द होता है। ❒

प्रस्तुति– प्रीतेश बोरा, २०६, धन महल, एस०वी० रोड, मलाड (पश्चिम) एन०एल० स्कूल के सामने, मुम्बई–४०००६४

पशु–विनाश से प्रजा–विनाश

१. गोबर याने सच्चा सोना।
२. गोबर देश के अर्थतन्त्र को मजबूती और समृद्धि प्रदान करता है, रासायनिक खाद दिवालिया व कर्जदार बनाता है।
३. आर्थिक समृद्धि की नींव गोबर है।
४. श्री (लक्ष्मी) गोबर में बसती है, बड़ी–बड़ी मशीनों में नहीं।
५. पशु देश का धन हैं, पशु का नाश धन का नाश है और देश का शतमुखी सर्वनाश है।
६. भारतीय परम्परागत खेती फिर अपनायें। पशु बचेंगे, तो देश की समृद्धि बढ़ेगी।
७. समृद्ध अर्थतन्त्र का आधार खेती है और समृद्ध खेती का आधार समृद्ध पशुधन है।
८. पशु व खेती की समृद्धि परस्पर एक दूसरे से जुड़ी हुई है।
९. पशु का नाश पर्यावरण का विनाश और नैसर्गिक सन्तुलन का विनाश है।
१०. पशु का नाश याने गोबर (खाद) व मूत्र (पेस्टीसाईड्स) का नाश।
११. रासायनिक खाद का उपयोग आर्थिक गुलामी लाता है। देशी खाद (गोबर) इस गुलामी से मुक्त कराता है।

खेती :– रासायनिक खाद से– ★ १२५ (एम०एम०) वर्षा की जरूरत, ★ उत्पादन का खर्च भारी मात्रा में, ★ ढुलाई खर्च ज्यादा, ★ करोड़ों की पूँजी लगती है, ★ अनाज की गुणवत्ता कम, ★ कुछ वर्षों के बाद जमीन का बंजर हो जाती है।

परिणाम :– ★ अनाज का उत्पादन खर्च भारी।

प्राकृतिक (गोबर की) खाद से– ★ २५ से ५० (एम०एम०) वर्षा की जरूरत, ★ उत्पादन खर्च की लागत बहुत कम, ★ उपयोग की जगह पर ही उपलब्ध,★ खर्च कम, ★ बहुत कम पूँजी लगती है, ★ अनाज की गुणवत्ता अधिक, ★ जमीन की गुणवत्ता बरक़रार रहती है।

परिणाम :– ★ धीरे–धीरे अनाज का उत्पादन खर्च कम होता जाता है।

– प्रस्तुति–विनियोग परिवार, बी–२/१०४, वैभव, जांबली गली, बोरीवली (पश्चिम), मुम्बई–४०००९२

कितना रहस्यमय है महासागरीय जीव-जगत्

नलिन कुमार

मानव सदा से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा है। अज्ञात ने उसे सदैव आकर्षित किया है। अन्वेषणों से जुड़े जोखिम को उठाने के लिए वह सदैव तैयार रहा है। मानव की यही खोजी प्रवृत्ति उसे पहले अन्तरिक्ष और बाद में चन्द्रमा पर ले गयी। अब तो उसकी आँखें सितारों के जहाँ से भी आगे झाँकने की कोशिश कर रही हैं। अनन्त–असीम ब्रह्माण्ड में मानव जीवन की खोज के प्रयास भी किये जा रहे हैं। लेकिन मानव की एक अन्य प्रवृत्ति अपने आसपास की चीजों या माहौल को नजरअन्दाज करने की भी रही है। शायद उसे लगता हो कि अपने आसपास के अन्वेषण कार्य तो कभी भी किये जा सकते हैं, इसलिए पहले सुदूर के रहस्यों को समझा जाय।

कारण चाहे जो भी, हमारे महासागर तक इस मानवीय उपेक्षा के शिकार बने हैं। महासागर पृथ्वी के धरातल के लगभग ७१ प्रतिशत भाग को आच्छादित किये हैं, लेकिन इनके गर्भ में छिपे खजानों के बारे में मानव को नाममात्र की जानकारी है। लन्दन के नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम के गहरे समुद्र से सम्बन्धित प्रशाखा के प्रमुख डॉ० जॉन लैम्ब्सहेड के अनुसार सिर्फ महासागर तलों में जीवों की एक करोड़ से १० करोड़ अज्ञात प्रजातियाँ हो सकती हैं, जिनकी पहचान करने और फिर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने में मनुष्य को हजारों साल लग सकते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार पृथ्वी पर जैव–विविधता की प्रक्रिया और इसके कारणों को महासागर तलों में रहने वाले सूक्ष्म जीवों के अध्ययन से समझा जा सकता है।

महासागरों की औसत गहराई करीब ३७०० मीटर ही है; लेकिन इनके बारे में हमें उतनी भी जानकारी नहीं है, जितनी पृथ्वी से करीब चार लाख किलोमीटर दूर स्थित चन्द्रमा के बारे में है। वैज्ञानिकों के अनुसार महासागरों में इतनी ज्यादा चिकित्सीय और प्रौद्योगिकीय सम्भावनाएँ निहित हैं कि इनके अन्वेषण और दोहन के बाद हमारा जीवन बदल सकता है और महासागरीय जैव–विविधता के अध्ययन के बाद शायद 'विकासवाद से जुड़े तमाम रहस्यों को सुलझाया जा सकेगा। धरती पर से जीवों की कई प्रजातियों की समाप्ति और मानव जाति की शाश्वतता से सम्बन्धित अनेक सवालों के जवाब मिल सकेंगे। आज से २५ साल पूर्व तक यह माना जाता था कि महासागरों के तल खाली, एकरस और वस्तुतः जीवनविहीन हैं; किन्तु आज यह पता चल चुका है कि अकेले सिर्फ महासागरों के तलीय कीचड़ में ही सूक्ष्म जीवों की लाखों प्रजातियाँ विद्यमान हैं।

गहरे समुद्र सम्बन्धी विषय के प्रसिद्ध विशेषज्ञ ब्रिटेन के डॉ० जॉन गेज महासागर तलों में सूक्ष्म जीवों की लाखों अज्ञात प्रजातियों की उपस्थिति को एक बहुत अबूझ पहेली बताते हैं। कई समुद्र विज्ञानियों के अनुसार अगले कुछ दशकों में महासागरों से सम्बन्धित हमारी धारणाओं में बड़े परिवर्त्तन होंगे। कैलिफोर्निया के समुद्र विज्ञानी जिम बैरी मानते हैं कि असली रोमांच महासागर की गहराइयों में ही है। वैज्ञानिकों की आम धारणा है कि समुद्री जीवों से अनेक असाध्य रोगों की दवा प्राप्त की जा सकती है। शंकु के आकार वाले घोंघों के विष के चिकित्सकीय प्रयोग सम्बन्धी अनुसन्धान से जुड़े यूटा विश्वविद्यालय के जीव विज्ञानी बाल्डोमेरो ओलिवेरा कहते हैं– "कुछ हद तक हमने समुद्रों की उपेक्षा की है और यह गलत प्रवृत्ति है। अनेक दवा कम्पनियाँ ओलिवेरा के अनुसंधान की सफलता का इन्तजार कर रही हैं; क्योंकि तब ऐसी दर्दनिवारक दवाएँ बनायी जा सकेंगी, जिसकी लत लगने की सम्भावना नहीं होगी।"

कैलिफोर्निया की समुद्र अनुसंधान प्रयोगशाला एमबीएआरआई के वरिष्ठ वैज्ञानिक ब्रुस सबिंसन ने वर्ष १९८५ में प्रशान्त महासागर में ५०० मीटर गहराई में डीप रोवर नामक गोलाकार पनडुब्बी यन्त्र में विचरण करते हुए ४० मीटर से भी बड़े, अर्द्धपारदर्शक और प्रकाशवान् जीवों को पहली बार देखा था, तो वह भयभीत हो गये थे। उन्होंने सोचा कि जैव–प्रकाश से चमकते जीव इतने विशाल आकार के भी हो सकते हैं। ५८ वर्षीय राबिंसन कहते हैं– "मेरी उम्र शायद अन्तरिक्ष यात्रा के लायक नहीं

(शेष पृष्ठ ५० पर)

लेह में सिन्धु के तट पर नया तीर्थ

भारत के लोगों को लगता था कि सिन्धु पाकिस्तान में चली गई। कराँची के लोगों की तो वह दिल की धड़कन है, परन्तु सिन्धु, जिससे अपने देश को 'हिन्दुस्तान' नाम मिला और यहाँ के लोगों को सिन्ध से ही हिन्द के लोग कहा जाने लगा, वह लद्दाख में लेह के पास हिमालय के रमणीक सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में कल–कल बहती है।

श्री लालकृष्ण आडवाणी जी, तरुण विजय जी, दोनों को कुछ वर्ष पूर्व यहाँ का दृश्य देखने को मिला था। सिन्धु का पुत्र सिन्धु–तट पर भाव–विह्वल हो उठा। इसी हृदयस्पर्शी कल्पना ने एक नये तीर्थ को जन्म दिया। पिछले वर्ष ७० तीर्थ यात्री आये थे। इस वर्ष भारत के अनेक स्थानों से ५०० तीर्थ यात्री लद्दाख में लेह के पास सिन्धु के तट पर पूजन, स्नान एवं भव्य भक्ति संगीत कार्यक्रमों हेतु पधारे।

मा० लालकृष्ण आडवाणी जी, जम्मू–कश्मीर के मुख्य मंत्री फारुक अब्दुल्ला, दिल्ली के मुख्यमंत्री साहिब सिंह वर्मा, भारत के रक्षा मंत्री जार्ज फर्नांडीज एवं देश के विशाल संघटन संघ के सह सरकार्यवाह मा० सुदर्शन जी पधारे। साथ ही अनेक महानुभाव सांसद्, शिक्षाविद, विद्वान्, संगीतकार, कलाकार एवं भक्त जन पधारे। २५ एवं २६ अगस्त सिन्धु के तट पर भक्ति एवं संगीत का रंगारंग मेले का प्रेरणाप्रद वातावरण रहा। सूखे व बर्फीले पहाड़, तट के दोनों तरफ व मैदान से परे अपनी सुन्दरता बिखेर रहे थे। लोग नैनीताल या शिमला जाते हैं; यहाँ पर जाना चाहिए। इसे तीर्थ के साथ–साथ Holiday Paradise पर्यटन का स्वर्ग बनाना चाहिए। अगले वर्ष २५, २६, २७ अगस्त १९९९ उत्सव की तिथि घोषित की गई है। सिन्धु तट पर मेला लगेगा। आप आएँ, खूब भक्ति भाव के साथ आएँ भारत माँ एवं हिमालय की गोद में सिन्धु के तट पर इस नए तीर्थ में !!

श्री तरुण विजय, दिल्ली सरकार, जम्मू–कश्मीर सरकार एवं धर्म यात्रा महा संघ (जिसके अध्यक्ष दिल्ली के मांगेराम जी हैं) ने इन सारी व्यवस्थाओं एवं कार्यक्रम को स्वरूप दिया। सूर्या फाउण्डेशन के कई कैडेट्स कई दिन पहले से व्यवस्थाओं में लगे थे। सूर्या फाउण्डेशन के चेयरमैन पिछले वर्ष भी आए थे और इस वर्ष भी।

भारत की सेनाओं के जनरल आफिसर कमाण्डिंग मे.ज. बुधवार एवं उनकी टीम ने यात्रियों के प्रति अपने प्यार को प्रकट किया। तीर्थ यात्रियों के लिए फौजियों ने अपनी बैरकें खाली कर दीं। उनकी खातिरदारी परिवार की तरह की। सेविका समिति की प्रमिला ताई व अन्य बहनों ने सभी फौजी भाइयों को राखी बाँधी। अनेक लामा एवं लद्दाख कल्याण संघ के लोग स्वागत में लगे। लामा लोबजांग एवं थुप्सान झेवांग भी आए थे। स्थानीय लद्दाखी भाई बहनों ने अनेक नृत्य पेश किये। रात्रि में वीर जोरावर सिंह के किले में भारत माँ के वीर बहादुर जोरावर सिंह की विजय यात्राओं पर प्रकाश एवं ध्वनि कार्यक्रम पेश किया। अनेक यात्री देखने गये। जापान द्वारा बना शान्ति स्तूप व मन्दिर एवं प्राचीन बुद्ध की हेमिस एवं ठिकसे की बौद्ध ध्यान स्थली। अनेकों ने बाजार से परम्परा लद्दाखी चीजें खरीदीं। अगले वर्ष आप भी आएँ भारत माँ एवं पवित्र तीर्थ के जल से अपनी भक्ति की पुष्टि करने यहाँ लद्दाख में लेह के पास सिन्धु के तट पर हिमालय की गोद में !

□

प्रस्तुति– जय प्रकाश
अध्यक्ष, सूर्या फाउण्डेशन,
बी–३/३३०, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली–११००६३

पश्चिमी विलासी संस्कृति की देन है "एड्स"

– वैद्य ब्रजबिहारी मिश्र

भगवान् राम एवं कृष्ण की पवित्र जन्मभूमि ऋषियों की तपस्थली, भगवती भागीरथी की पतितपावनी निर्मल धारा से शुद्ध अन्तःकरण वाले सदाचारियों के देश भारत में दुराचरण–जन्य एड्स जैसे घातक एवं मारक रोग की काली छाया मँडराती देखकर भला किस भारतवासी को दुःख एवं आश्चर्य न होगा ? यह घातक रोग प्रायः उन दुराचारियों को होता है, जो पशु–मैथुन, समलैंगिक–मैथुन, अति मैथुन एवं अनेक स्त्रियों से समागम करते हैं। भारत में परस्त्री–गमन, अन्य योनि, अयोनि–गमन को अत्यन्त गर्हित एवं निन्दित मानते हैं। यहाँ स्त्रियों को 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। इसी पूज्य भाव से प्रेरित होकर श्रीराम ने शूर्पणखा के प्रणय निवेदन को ठुकराते हुए एक पत्नी–व्रत का आदर्श उपस्थित किया था। काश ! अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन श्री राम के एक पत्नी–व्रत का अनुसरण करते हुए अपनी पत्नी के रहते मोनिका लेविंस्की के प्रेमपाश में आबद्ध न होते, तो उनकी जो आज देश एवं विदेशों में थू–थू हो रही है, वह न होती और सम्पूर्ण विश्व में वे एक आदर्श पति, चरित्रवान् राष्ट्रपति तथा श्रेष्ठ पुरुष के रूप में पूज्य होते। भारत के सन्त कहते हैं–

दीपशिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।

युवतियों का शरीर सौष्ठव दीपशिखा (दीपक की लौ) के समान आकर्षक होता है। ऐ मन ! उनके आकर्षण में पतिंगा मत बनो, अन्यथा जल कर खाक हो जाओगे। सन्तों का यह उपदेश उन्हें पसन्द नहीं, जो 'खाओ, पियो और मौज उड़ाओ' की संस्कृति पर विश्वास रखते हैं। स्त्री को पूज्या नहीं, मात्र भोग्या मानते हैं। अपनी काम–पिपासा तृप्त करने सुदूर अफ्रीका जैसे निर्धन देश जाते हैं। अफ्रीका के लोगों में सन् १९७० के मध्य एक नये रोग के लक्षण दिखलाई पड़े, जिसे वैज्ञानिकों ने 'एड्स' नाम से सम्बोधित किया। इन्हीं एड्स–ग्रस्त महिलाओं से अमेरिका के धनाढ्य विलासी युवकों ने मौज–मस्ती मारने की नीयत से जो अवैध सम्बन्ध स्थापित किया, उससे यह रोग अमेरिका पहुँचकर आज सारे विश्व में व्याप्त हो रहा है। भारत में इस रोग की जानकारी सन् १९८३ के पश्चात् हुई।

एड्स क्या है ?

A.I.D.S. अक्वायर्ड इम्यून डेफिसियेन्सी सिन्ड्रोम अर्थात् उपार्जित व्याधि क्षमत्व–शक्ति ह्रास का रोग है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति बलहीन, कान्तिहीन, क्षमताहीन, उत्साहहीन, कृशकाय एवं मरणासन्न स्थिति में हो जाता है। शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता का अभाव हो जाने से साधारण से साधारण रोगों से भी अपनी रक्षा में शरीर असमर्थ हो जाता है।

एड्स का कारण

वैज्ञानिकों ने इस रोग के उत्पादक विषाणुओं (वायरस) का नाम L.A.V. एवं H.T.L.V. निर्धारित किया है। अमेरिका के प्रोफेसर गेलो ने H.T.L.V. (**Human "T" Limphocytes Virus** के शरीर पर आक्रमण से एड्स व्याधि होने का पता लगाया। रोगियों का रक्त–परीक्षण कराया गया। जिनके रक्त में H.I.V. वायरस मिले, उन्हें एड्स का रोगी मानकर अन्य रोगियों से अलग कर दिया गया। इसका उद्भव काल छह माह से छह वर्ष तक माना गया है।

आयुर्वेदिक–दृष्टिकोण

एड्स में इम्यूनिटी के ह्रास से शरीर में रोग–प्रतिरोधक क्षमता का जो ह्रास होता है, वह आयुर्वेद में ओज–क्षय के कारण माना गया है; क्योंकि ओज ही शरीर को अन्य विजातीय द्रव्यों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। इससे लेकर शुक्र–पर्यंत समस्त धातुओं का जो तेज है, उसे 'ओज' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम बल है। इस बल के कारण ही शरीर में स्थिरता, माँस–वृद्धि शारीरिक, मानसिक, सब कार्यों में अप्रतिहत गति, स्वर एवं वर्ण की निर्मलता, श्रोत्र, नासिका आदि दशों इन्द्रियों में तथा मन एवं बुद्धि आदि इन्द्रियों से अपने कार्य का ज्ञान भली प्रकार होता है। प्राणियों के सम्पूर्ण शरीरावयव इस ओज (बल) से व्याप्त होते हैं। पर और अपर भेद से यह दो प्रकार का होता है– १. **अष्ट–विन्द्वात्मक पर ओज**– यह हृदय में रहता है। इसके नष्ट होने से प्राणियों का शरीर नष्ट हो जाता है। **अपर ओज**–अर्द्धाञ्जलि

मात्रा में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। इसी अपर ओज के ह्रास से शरीर की इम्यूनिटी (रोग प्रतिरोधक क्षमता) नष्ट होती है। इसी की कमी से शोष जैसा महा भयंकर दुःसाध्य, दुर्विज्ञेय औपसर्गिक रोग उत्पन्न होता है। आचार्य सुश्रुत ने आज से ३००० वर्ष पूर्व शोष महारोग के उपसर्ग के जो कारण बताए, वही सब कारण वैज्ञानिकों के अनुसार क्या एड्स के नहीं है यथा–

प्रसंगाद् गात्र संस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनाध्वापि वस्त्र मान्यानुलेपनात्।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।।

अर्थात् प्रसंग (संक्रान्त व्यक्ति से मैथुन करने) से, संक्रान्त व्यक्ति के शरीर स्पर्श से, संक्रान्त व्यक्ति के निःश्वास से, संक्रान्त व्यक्ति के साथ भोजन करने से, संक्रान्त व्यक्ति के साथ सोने से, बैठने से, उसकी धारण की गई वस्तु, माला या अनुलेप (अंगराग) को लगाने से कुष्ठ, ज्वर, शोष (क्षय) नेत्राभिष्यन्द और औपसर्गिक रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँच जाते हैं। एड्स भी एक दूसरे से इसी प्रकार फैलता है।

एड्स के लक्षण

शरीर के भार में कमी, दौर्बल्य, अजीर्ण, अज्ञात लक्षणों वाला ज्वर, रात्रि में पसीना आना, अतिसार, रक्तगत, श्वेत कणों में ह्रास, शिरःशूल, भ्रम, जिह्वा पर काले धब्बे आदि लक्षण एड्स रोग में पाये जाते हैं।

एड्स की चिकित्सा

एड्स एक असाध्य मारक रोग है। सारे विश्व के वैज्ञानिक इसकी उपयुक्त औषधि हेतु अनुसन्धान में संलग्न हैं। आयुर्वेद में इस रोग में ओजोवर्द्धक पदार्थों यथा गोदुग्ध, गोघृत, स्निग्ध, मधुर शीत, जीवनीय गुण के द्रव्यों का सेवन करायें। इस रोग के विषाणुओं को नष्ट करने एवं बल बढ़ाने हेतु सुवर्ण भस्म या सुवर्णमिश्रित योग यथा योगेन्द्र रस, वसन्त मालिनी सुवर्णघटित, वसन्तकुसुमाकर रस का प्रयोग करें। मुक्तापिष्टी ८०० मि०ग्रा० मधुयष्टी चूर्ण १ ग्राम में मिलाकर देने से लाभ होता है। सिद्ध मकरध्वज, रसकर्पूर, गंधक रसायन, ब्राह्मरसायन, अश्वगंधापाक, मूसलीपाक का प्रयोग सुयोग्य वैद्य की देख–रेख में करें। शक्ति वृद्धि हेतु शतावर्यादि घृत, नारायण तैल, क्षीरबला तैल (तैलों का बाह्य एवं अभ्यंतर) का प्रयोग करना चाहिए।

एड्स से बचने के उपाय

चिकित्सा की अपेक्षा एड्स रोग न हो, ऐसा उपाय प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। एड्स से बचने के जो उपाय वैज्ञानिकों ने बताये हैं उनमें अप्राकृतिक मैथुन से बचें, एड्स–ग्रस्त रोगी से सम्भोग न करें, वेश्यागमन न करें, समागम में कन्डोम का प्रयोग करें, रोगी के सम्पर्क से बचें, रोगी का रक्त स्वस्थ व्यक्ति को न चढ़ायें, मन में शोक, क्रोध, तनाव न रखें आदि। सर्वोत्तम उपाय तो एकनिष्ठ रहना ही है। पति–पत्नी के प्रति, पत्नी पति के प्रति पूर्णतः निष्ठावान् रहे और व्यभिचार, दुराचार से प्रत्येक दशा में बचे। हिन्दू–संस्कृति में आचार–विचार और आहार–विहार पर जैसा जोर दिया गया है, वैसा विश्व में अन्यत्र अलभ्य है। अपनी सनातन परम्परागत आचार संहिता का पालन करने वाले को ऐसे घृणित रोग होने की कोई सम्भावना ही नहीं रहेगी। ❐

– २८०, रामनगर कॉलोनी, लखनऊ–४

(पृष्ठ ४७ का शेष) **कितना रहस्यमय है ...**

रही; लेकिन इसके बावजूद मैं अनजान जीवों का अध्ययन कर पा रहा हूँ, वह भी उनके बीच जाकर।' उनके अनुसार गहरे समुद्र में अज्ञात जीवों की अनोखी दुनिया में घूमने के रोमांच का सहज वर्णन असम्भव है।

महासागरों में अपृष्ठवंशी जीव और शैवाल वनस्पतियों की लाखों प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनका रहन–सहन भूमि पर पाये जाने वाले जीव–जन्तुओं की अपेक्षा बहुत ही जटिल होता है। इनसे प्राप्त कार्बनिक यौगिकों का जैविक प्रभाव की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। पिछले दस–पन्द्रह वर्षों में समुद्री जीवों से प्राप्त ५,००० से भी अधिक कार्बनिक यौगिकों का पता चला है। इनमें से अधिकांश चिकित्सा प्रणाली में उपयोग के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। समुद्री जीव–जन्तुओं से औषधि विकास में मनुष्य को अभी तक ज्यादा सफलता नहीं मिलने का एक कारण समुद्रों से इसकी प्राप्ति में कठिनाई भी है। लेकिन आज दुनिया भर के वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि इस दिशा में बहुआयामी अनुसन्धान उपयोगी ही नहीं, नितान्त आवश्यक भी है। महासागरों के गर्भ में इतने रहस्य छिपे हैं कि उन्हें जानने के लिए पौराणिक कथाओं में वर्णित समुद्र–मन्थन को दोहराने की जरूरत होगी। आज के युग में समुद्र–मन्थन का मतलब होगा महासागरीय सम्पदाओं के दोहन के लिए समन्वित अन्तरराष्ट्रीय प्रयास। और अगर यह समुद्र मन्थन पर्यावरण अनुकूल विधियों से किया गया, तो शायद सिर्फ अनेक रत्न ही मिलेंगे, विष की एक भी बूँद नहीं। ❐ (नेशनल फीचर)

गीजी

० साहू
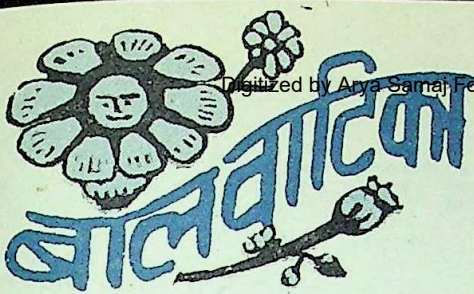
सबसे बढ़कर देश हमारा

– श्रीराम सिंह 'उदय'

सबसे बढ़कर देश हमारा–
हमको प्यारा है।
इसकी रक्षा करना ही
कर्तव्य हमारा है।
कोई दुश्मन आकर जो इससे टकरायेगा–
मिट जायेगा, नहीं पलट कर वापस जायेगा,
जिसमें साहस हो, आए–
इसने ललकारा है।
सबसे बढ़कर ...
हम वैरी के लिए वज्र हैं, मित्रों के गलहार हैं,
गद्दारों के शीश उड़ाने वाली हम तलवार हैं,
लहू–पसीने से हमने,
यह देश सँवारा है।
सबसे बढ़कर ...
जल–थल–नभ में कालजयी सैनिक रखवाले हैं,
हम खेतों से उद्योगों तक कार्य सम्भाले हैं,
सभी ओर एकता, प्रेम है,
भाईचारा है।
सबसे बढ़कर ...
जो आतंकी–नर दानव रक्तों के प्यासे हैं,
वे न बचेंगे हमसे, उनकी अन्तिम साँसें हैं,
"जियो और जीने दो सबको",
अपना नारा है।
सबसे बढ़कर ...
हम हैं देश–भक्त, इसकी हम शान बचायेंगे,
राष्ट्र–केतु को ऊँचे अम्बर में फहरायेंगे,
आज हमारे पौरुष का फैला उजियारा है।
सबसे बढ़कर ...

– बाँसडीह, बलिया–२७७२०२ (उ०प्र०)

कहानी

आदत बदल गई

– दुर्गा प्रसाद शुक्ल 'आजाद'

नीरज आठवीं कक्षा में पढ़ता था। पढ़ाई के साथ–साथ वह व्यवहार कुशल भी था। वह कभी भी किसी का काम करने से मना नहीं करता था। इसलिए उसे जब भी किसी चीज की आवश्यकता होती तो कोई उसे मना नहीं करता।

जरूरत पड़ने पर नीरज अपने साथियों से चीजें माँग लेता था और वे भी उसे कभी मना नहीं करते। धीरे–धीरे उसमें दूसरों से चीजें माँगने की आदत पड़ गई।

नीरज के माता–पिता उसे बार–बार समझाते कि वह दूसरों से चीजें न माँगे, क्योंकि कभी इसका दुष्परिणाम भी भोगना पड़ सकता है, परन्तु नीरज इस बात पर कभी ध्यान नहीं देता।

एक दिन छुट्टी थी। नीरज से उसकी माँ ने कहा, 'बेटा बाजार जाकर कुछ सामान ले आ।'

नीरज अपनी माँ से थैला और पैसे लेकर बाजार जाने के लिए साईकिल ढूँढ़ने लगा। तभी उसकी माँ ने कहा, 'साईकिल तो भैया ले गया है तू पैदल ही चला जा, कौन सा दूर है बाजार और फिर कोई अधिक वजन भी तो नहीं होगा सामान का।' यह सुनकर नीरज बोला, 'आप भी कैसी बातें करती हैं माँ, थैला लटकाकर मैं पैदल बाजार जाऊँ, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'अच्छा, तो भैया को आ जाने दे, फिर ले आना सामान', माँ ने कहा। तभी नीरज ने सोचा, क्यों न राजू की साईकिल माँग लूँ, वह मुझे मना नहीं करेगा। गणित के सवाल तो मैं ही समझाता हूँ न उसे। माँ को बिना बताये ही नीरज राजू से साईकिल माँगकर बाजार चल पड़ा।
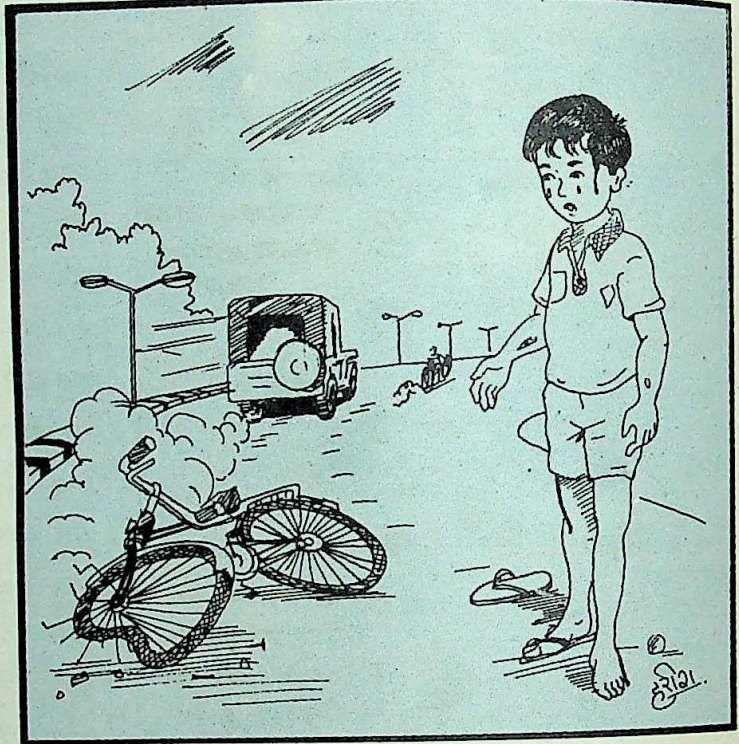
राजू की साइकिल एकदम नई थी। नई साईकिल चलाने में नीरज को बड़ा मजा आ रहा था। वह सड़क पर सोचता चला जा रहा था कि अगर उसके पास भी ऐसी ही नई साईकिल होती तो क्या मजा आता। तभी उसे ध्यान आया कि अगर इस बार वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ तो अपने पिताजी से वह साइकिल की ही माँग करेगा।

नीरज अपने विचारों में ऐसा खोया कि उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि सामने चौराहा है। वह तेजी से साइकिल चलाये जा रहा था। इतने में सामने से एक जीप आ गई और पीछे से एक स्कूल बस। सड़क अधिक चौड़ी नहीं थी और उसके किनारे पत्थर पडे थे। नीरज सम्भल नहीं पाया और उसकी साईकिल

का अगला पहिया जीप की चपेट में आ गया। नीरज उछलकर दूर जा गिरा। जीप सर्राटे के साथ निकल गई। इतने में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। सभी कहने लगे 'चलो लड़का बच गया।' साईकिल तो ठीक ही हो जायेगी।

नीरज के हाथ–पैर फूल गये। वह थर–थर काँपने लगा। साइकिल का अगला पहिया तो एकदम मुड़ गया था। वह किसी काम का न रहा। नीरज ने इधर–उधर देखा, पर आस–पास कहीं साइकिल मरम्मत करने वाला नजर नहीं आया। तभी उसने चौराहे पर खड़े रिक्शेवाले को आवाज देकर बुलाया। साइकिल को रिक्शे पर रखवाकर वह साइकिल की दुकान पर पहुँचा। साइकिल की मरम्मत करने वाले ने बताया कि यह पहिया तो किसी काम का नहीं रहा। पूरा पहिया ही दूसरा लगेगा। यह सुनकर तो नीरज के होश गुम हो गये।

पर अब कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था। नीरज जो पैसे घर से लेकर चला था सामान लेने के लिए वह सब साईकिल के पहिये और रिक्शे वाले को देने में खर्च हो गये।

तभी उसे ध्यान आया कि गांधी बाजार में उसके मित्र नितीश के पिता की कपड़े की दुकान है। वह दुकान पर पहुँचा। उस समय संयोग से नितीश भी वहीं पर था। नीरज ने नितीश से अपने साथ घटी सारी घटना बताई। नितीश ने अपने पिताजी से कहकर नीरज को जितने पैसों की आवश्यकता थी, दिलवा दिये।

नीरज सामान खरीद कर घर की ओर चल पड़ा। वह ज्यों ही घर के दरवाजे पर पहुँचा, उसके पास नई साईकिल देखकर उसकी माँ ने पूछा', यह किसकी साईकिल ले गया था बेटा, बस तेरे जाते ही तेरे भैया भी लौट आये थे।'

'यह साइकिल तो राजू की है माँ। नीरज ने बुझे मन से कहा। नीरज को उदास देखकर उसकी माँ ने पूछा, 'कहीं किसी से झगड़ा तो नहीं हुआ, तेरी तबियत तो ठीक है न, तू इतना उदास क्यों है ?'

तभी नीरज ने सारी घटना माँ को बता दी। माँ यह सब सुनकर सन्न रह गयी। वह नीरज को छाती

(बाल-साहित्य-परिचय)

आधुनिक बाल कहानियाँ

बाल–साहित्य के लिए समर्पित युवा हस्ताक्षरों में रमाशंकर का नाम भी चर्चित हो रहा है। उ०प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा बाल साहित्य–साधना के लिए पुरस्कृत रमाशंकर ने १०५ बाल कहानियों का संग्रह 'आधुनिक बाल कहानियाँ' नाम से सम्पादित किया है। दो भागों में प्रकाशित इस संकलन के प्रथम भाग में ५३ तथा द्वितीय भाग में ५२ कहानियाँ हैं।

स्थापित व वरिष्ठ साहित्यकारों से लेकर नवोदित बाल रचनाकारों तक की कहानियों का समावेश इस संकलन में किया गया है। संकलन के इन दोनों खण्डों में जहाँ अनेक वरिष्ठ कथाकारों की कहानियाँ बालमन को स्पर्श करती हैं, वहीं कई नवोदित कथाकारों की कथाएँ भी कसौटी पर खरी उतरती हैं; जो बच्चों के कोमल मस्तिष्क को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। वैसे तो सभी कहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करने वाली हैं किन्तु इनका मूल्य बच्चों की जेब से ज्यादा है। दोनों संकलनों का संयुक्त मूल्य २१०.०० है इस कारण यह संकलन पुस्तकालयों के अतिरिक्त बच्चों तक सीधा पहुँच पाने में असमर्थ रहेगा।

संकलन में कथा और कथाकारों का क्रम सुनियोजित नहीं हो सका है। न तो कथा की श्रेष्ठता के क्रम में कहानियाँ समायोजित हैं और न ही कथाकारों के आयु–क्रम के अनुसार। द्वितीय भाग में कथाकारों का जो परिचय दिया गया है वह भी अपूर्ण तो है ही क्रमबद्ध भी नहीं है। सम्पादन की इन छोटी भूलों को छोड़कर पुस्तक पठनीय एंव संग्रहणीय हैं। रमाशंकर भी इस सद्प्रयास के लिए बधाई के पात्र हैं।

सम्पादक : रमाशंकर
प्रकाशक : शिल्पी प्रकाशन,
६८. रामकृष्ण पार्क, अमीनाबाद,
लखनऊ।
मूल्य : रु० २१०.०० (संयुक्त) **पृष्ठ :** ५४६ (संयुक्त)
समीक्षक : पर्यटक

से लगाती हुई बोली, 'बेटा, भगवान की कृपा से तू बच गया तुझे कुछ हो जाता तो ....'

यह कहकर नीरज की माँ सिहर उठीं। वह बोलीं, 'बेटा, दूसरों से चीजें माँगने की आदत अच्छी नहीं होती। तुझे नितीश के पिता से पैसे भी उधार लेने पड़े। क्या यह सब तुझे बुरा नहीं लगा।' नीरज ने सिर झुका लिया।

तब तक नीरज के पिताजी और भैया भी आ गये। वे भी यह सुनकर बड़े दुःखी हुए। पिताजी कहने लगे, 'नीरज, तुझे इस घटना से शिक्षा लेनी चाहिए कि अब तू दूसरों से किसी तरह की चीज कभी नहीं माँगेगा।' नीरज की आँखों में आँसू आ गये। वह मन ही मन संकल्प लेता हुआ बोला, 'पिताजी, अब मैं कभी किसी से कोई भी चीज नहीं मागूँगा।' यह कहकर वह राजू की साईकिल वापस करने के लिए उसके घर की ओर चल पड़ा।

– १३, मतिकरपुर, राजाकरनाई, बिसवाँ, सीतापुर–२६१२०१ (उत्तर प्रदेश)

प्यारी चिड़िया

– चन्द्रपाल सिंह यादव

नन्ही–मुन्नी प्यारी चिड़िया।
लगती बहुत दुलारी चिड़िया।।
'फुर्र' से उड़ कर नीचे आती।
'फुर्र' से ऊपर जाती चिड़िया।।
जब मैं दाना छितरा देता।
आँगन में आ जाती चिड़िया।।
मीठा–मीठा गाना गाती।
मेरे मन को भाती चिड़िया।।
आँगन में बिखरे दानों को।
फुदक–फुदक कर खाती चिड़िया।।
मन करता जब "इसे पकड़ लूँ।"
तब झट से उड़ जाती चिड़िया।।
छोटी है, पर बड़ी सयानी।
नहीं पकड़ में आती चिड़िया।।

– २६१, फेथफुलगंज, कैण्ट, कानपुर–२०८००४

नाम बताओ – पुरस्कार पाओ

प्रस्तुत वर्ग में 'राष्ट्रधर्म' के प्रारम्भ से लेकर अब तक के सम्पादकों के नाम छिपे हैं। बायें से दायें, ऊपर से नीचे तथा बायें ऊपरी कोने से दाहिने नीचे कोने की ओर तिर्यक नामों को संजोया गया है। नाम खोजने में एक अक्षर का एक से अधिक बार प्रयोग किया जा सकता है। इसमें ११ नाम हैं।

क्रम से नाम लिखकर भेजने वालों में से लाटरी पद्धति से प्रथम विजेता को पुरस्कृत किया जायेगा।

हल प्राप्त होने की अन्तिम तिथि १० दिसम्बर है।

उत्तर सम्पादक बाल वाटिका के नाम से भेजें।

म	सं	क	ट	मो	च	न	गो	स्वा	मी	दा	स
अ	हा	रा	जी	व	लो	च	न	अ	ग्नि	हो	त्री
ट	ल	वी	र	भा	रा	म	द	त्त	मि	श्र	रा
ल	ज्ञा	रे	र	नु	सु	म	न	च	न्द्र	शी	म
वि	ने	श्व	र	प्र	सु	रे	श	भ	ग	त	शं
हा	न्द्र	र	म	ता	सा	मु	न्द्र	म	स	ल	क
री	स	द्वि	हे	प	क	द	क्ष	मि	चि	म	र
वा	क्से	वे	श	शु	भ	ग	त्रि	न	त्त	ह	अ
ज	ना	दी	रा	क्ल	ल	ल	य	पा	ल	ल	ग्नि
पे	सा	ई	व	च	ने	श	त्रि	पा	ठी	त्रि	हो
यी	थी	अ	भि	न	व	ना	रा	य	ण	या	त्री
हो	आ	न	न्द	मि	श्र	अ	भ	य	रा	ठी	म

बुद्धि लगाओ का हल
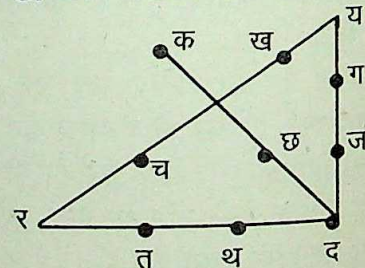
क, छ, द को स्पर्श करती हुई सीधी रेखा खींचो फिर द से ज, ग को स्पर्श करती हुई रेखा 'य' तक बढ़ा दो वहाँ से ख, च को काटती हुई रेखा 'र' तक बढ़ा दो फिर 'र' से त, थ को मिलाती हुई रेखा को द से मिला दो इस तरह बिना कलम उठाए ४ सीधी रेखाओं द्वारा सभी बिन्दुओं का स्पर्श हो जायेगा।

– वेदिका

बाल कथा

मैं भी रावण मारूँगा

— रामनारायण 'पर्यटक'

'माँ ! ओ माँ !!' की आवाज लगाता हुआ दरवाजे पर खेल रहा रामू, रसोईघर की तरफ दौड़ पड़ा।

रामू की माँ भोजन बना रही थी। अचानक रामू की आवाज सुनकर वह रसोई से बाहर निकल आई।

'क्या बात है रामू! तू इस तरह चिल्ला क्यों रहा है?'

रामू माँ की उँगली पकड़कर बाहर की ओर खींचते हुए बोला– 'आओ माँ, देखो ये सब क्या है?'

माँ रामू के साथ दरवाजे पर आ गई। दूर से आती हुई झाँकी अब दरवाजे तक पहुँच चुकी थी। घण्टे, घड़ियाल और शंख बज रहे थे। लोग 'सियावर रामचन्द्र की जय', 'पवनसुत हनुमान की जय' के नारे लगाते हुए आगे बढ़ रहे थे। एक झाँकी को रथ का आकार दिया गया था। रथ के आगे वाले भाग में राम–लक्ष्मण, सीता बने हुए बच्चे, आशीर्वाद की मुद्रा में खड़े हुए थे। उनके चरणों के पास हनुमान का अभिनय करने वाला एक स्थूलकाय लड़का आँखें बन्द किये हाथ जोड़े बैठा था। कभी–कभी वह आँखें खोल कर इधर–उधर देख भी लेता था।

हनुमान को देखकर माँ का आँचल खींचते हुए रामू ने कहा– 'माँ, वह देख मोटू बैठा है।'

माँ ने उधर देखते हुए कहा– 'अरे हाँ, यह तो श्यामू है।'

शरीर से स्थूल होने के कारण मुहल्ले के सभी बच्चे उसे 'मोटू' कहकर पुकारते थे। यही नहीं तो उसके माता–पिता भी उसे यदा–कदा 'मोटू' ही पुकार दिया करते थे।

रथ के पीछे वाले भाग में वानर, भालू बने बच्चे लोगों को आकर्षित कर रहे थे तथा भक्तजन दर्शनार्थियों को प्रसाद वितरित कर रहे थे।

रामू की माँ ने पाँच रुपये रथ में रखे दानपात्र में डाल दिये और प्रसाद लेकर रामू के साथ घर में आ गयी।

रामू ने प्रसाद खाते हुए सहज भाव से माँ से
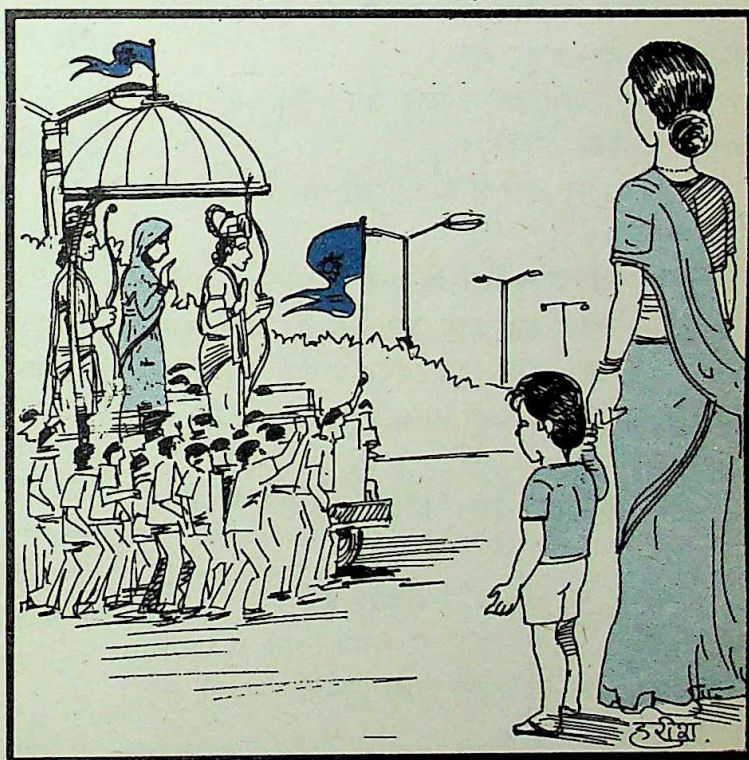
पूछा– 'यह क्या था माँ?'

माँ ने उत्तर दिया– 'रामलीला की झाँकी' और रोटियाँ बनाने में लग गयी।

'यह रामलीला क्यों होती है माँ?' रामू ने धोती का पल्लू खींचते हुए पुनः प्रश्न कर दिया।

'मैंने तुमको उस दिन राम की कहानी सुनाई थी न। राम ने जो कुछ उस समय किया था, उसी का

प्रमंचन लोग इस समय करके राम को याद करते हैं। जो अच्छे काम करता है, उसे लोग इसी तरह के आयोजन करके याद करते रहते हैं।' माँ ने बताया।

'माँ आपने बताया था कि राम जब रावण को मार कर अयोध्या आये थे तब वहाँ दीवाली मनाई गयी थी। रामू के इस प्रश्न का उत्तर माँ ने 'हाँ बेटा' कहकर दे दिया।'

'माँ मैं भी राम बनूँगा, बन सकता हूँ न!' रामू ने माँ से पूछा।

'हाँ, क्यों नहीं बन सकते। देखो तुम्हारा साथी श्यामू हनुमान बना हुआ है न!'

'नहीं माँ! मैं सचमुच का राम बनूँगा,' रामू ने मटकते हुए कहा।

'सचमुच का राम कैसे बनोगे बेटा!' माँ ने उसे आश्चर्य से देखते हुए पूछा।

'मैं भी रावण को मारकर राम बनूँगा माँ.' रामू ने हाथ उठाकर कहा।

'अब रावण कहाँ है बेटा! उसे तो राम ने पहले ही मार दिया।'

'नहीं माँ! उस दिन पिताजी कह रहे थे न कि पाकिस्तान रावण का काम कर रहा है। वह हमारी जमीन चुरा रहा है और हमारे निर्दोष भाई–बहनों को मार भी रहा है,' खोपड़ी हिलाते हुए रामू ने माँ को समझाया।

'पर तुम पाकिस्तान को कैसे मारोगे?' माँ ने प्रश्न किया।

'माँ मैं पढ़–लिख कर देश का वीर सिपाही बनूँगा और अपनी तोप से पाकिस्तान को मार गिराऊँगा,' रामू ने दोनों हाथ घुमाते हुए माँ को समझाया।

माँ ने उसे गोद में उठाकर उसका माथा चूम लिया। गोद से उतरते ही रामू बोल पड़ा–

'तब तो माँ तुम भी मेरे लौटकर आने पर घर में दीप जलाकर दीवाली मनाओगी न!'

माँ ने उसे चिपटाते हुए कहा– 'जरूर बेटा! जरूर मनाऊँगी दीवाली मैं। उस दिन की मैं आतुरता से प्रतीक्षा करूँगी बेटा!'

जंगल के रंग

– कु० अंशु शुक्ला

जंगल के हैं रंग निराले,
पीले, लाल, वसन्ती, काले।
हरे–भरे वृक्षों से सज्जित,
फल भी हैं मीठे रसवाले।।

इसमें रहता बन्दर कालू,
जो है रोज पकाता आलू।
और नाचते भालू मामा,
जिन पर हँसती चिड़िया शालू।।

भारी भरकम बाबा हाथी,
धूर्त भेड़िया जिनका साथी।
टुन–टुन चुहिया चूँ–चूँ करती,
जिस पर बिल्ली मौसी मरती।।

इन सबका है राजा शेर,
नहीं किसे से रखता वैर।
राजा की इक सुन्दर रानी,
जो करती हरदम मनमानी।।

– ३. गोविन्द गंज, दतिया–४७५६६१ (म०प्र०)

और तभी रामू नाचते हुए, माँ से कई बार सुनी किसी कवि की यह कविता गुनगुना उठा–

'राम बड़े वीर थे।
लड़ने में रणधीर थे।।
सीता उनकी रानी थीं।
भारत की महरानी थीं।।
रण में रावण मारा था।
दुश्मन को ललकारा था।।
मैं भी राजा राम बनूँगा।
देश–धर्म का काम करूँगा।।'

– साहित्य मन्दिर, ई–५३२१, राजाजीपुरम्, लखनऊ–२२६०१७ (उ०प्र०)

बाल-कथा-प्रतियोगिता

(चित्र देखो-कहानी लिखो)

ध्यान दें !

भैया–बहनो, ऊपर के चित्र को देखकर तुम्हें इसके अनुसार बाल कहानी लिखनी है। उद्‌बोधक, प्रेरक कहानी हमें २५ दिसम्बर तक अवश्य प्राप्त हो जानी चाहिए। कहानी–लेखन में हाईस्कूल, इण्टर तथा स्नातक कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी ही भाग ले सकते हैं। कहानी के साथ विद्यालय के परिचय–पत्र की छाया प्रति या प्रधानाचार्य के प्रमाण–पत्र सहित अपना श्वेत श्याम लघु चित्र भी भेजें। साथ में पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा तथा कहानी मौलिक व अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र अवश्य दें।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान प्राप्त कहानियों को पुरस्कृत कर उन्हें 'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित भी किया जायेगा।

कहानी टाइप की हुई अथवा स्वच्छ हस्तलिखित हो तथा तीन पूर्ण पृष्ठों से अधिक न हो।

जिन कहानियों के साथ लिफाफा नहीं होगा उन्हें वापस नहीं किया जा सकेगा।

कहानी भेजते समय लिफाफे पर यह कूपन चिपकाएँ–

सम्पादक,
बाल–कथा–प्रतियोगिता
राष्ट्रधर्म मासिक
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,
लखनऊ–२२६ ००४

रेल

– कृष्ण शलभ

इंजन डिब्बे रेल बुआ।
आओ खेलें खेल बुआ।
दोपहरी में सोता घर।
अब तो नहीं किसी का डर।
पीछे चलें गली में हम।
पाँव नहीं रखना धम–धम।
टोली की टोली को लेकर।
राजू बाहर खड़ा हुआ।
सीटी तेज बजाना आप।
झण्डी हरी दिखाना आप।
बाकी बच्चे होंगे डिब्बे।
इंजन मुझे बनाना आप।
बिजली वाली गाड़ी होगी।
जिससे निकले नहीं धुँआ।

– संकल्प, ५४२. नया आवास विकास, सहारनपुर, (उ०प्र०)

देववाणी शिक्षण ९४

इस पाठ में निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिये–

दास्यति	(वह) देगा
दास्यसि	(तू) देगा
दास्यामि	(मैं) दूँगा
नेष्यति	(वह) ले जायेगा
नेष्यसि	(तू) ले जायेगा
नेष्यामि	(मैं) ले जाऊँगा

इन शब्दों का अब उपयोग कीजिये–

१. स मह्यं फलं दास्यति। २. त्वं मां पुस्तकं नैव दास्यसि किम्? ३. त्वं मम पत्रं कदा नेष्यसि? ४. अहं तव पत्रं अधुना एव नेष्यामि। ५. यदा अहं अन्नं पक्ष्यामि, तदा स तं स्वगृहे एव नेष्यति।

इन्हीं के ही हिन्दी वाक्य देखिये–

१. वह मुझे फल देगा। २. क्या तू मुझे पुस्तक नहीं देगा? ३. तू मेरा पत्र कब ले जायेगा? ४. मैं तेरा पत्र अभी ही ले जाऊँगा। ५. जब मैं अन्न पकाऊँगा, तब वह उसे अपने घर ले जायेगा।

अब निम्नलिखित शब्द स्मरण कीजिये–

वदितुं	बोलने के लिए
द्रष्टुं	देखने के लिए
गन्तुं	जाने के लिए
पक्तुं	पकाने के लिए
प्रापयितुं	पहुँचाने के लिए
भवितुं	होने के लिए
कर्तुं	करने के लिए
वक्तुं	बोलने के लिए
स्थातुं	ठहरने के लिए
पठितुं	पढ़ने के लिए
खादितुं	खाने के लिए
आगन्तुं	आने के लिए
धावितुं	दौड़ने के लिए
चलितुं	चलने के लिए
पतितुं	गिरने के लिए
दातुं	देने के लिए
लिखितुं	लिखने के लिए
भ्रामयितुं	घुमाने के लिए
नेतुं	ले जाने के लिए
उपवेष्टुं	बैठने के लिए

इन शब्दों का उपयोग करके अब आप वाक्य बना सकते हैं–

१. कृष्णः मम गृहं चलितुं न इच्छति। २. जले पतितुं न कः अपि इच्छति। ३. अन्नं नेतुं अहं गच्छामि। ४. स ईश्वरं द्रष्टुं इच्छति। ५. स धनाढ्यः भवितुं इच्छति। ६. स गृहस्य द्वारं कर्तुं गच्छति। ७. अहं वक्तुं गच्छामि। ८. त्वं पठितुं आगच्छसि किम्? ९. त्वं गृहे स्थातुं गच्छ। १०. अहं फलं खादितुं रामस्य गृहं गच्छामि। ११. सः तव नगरं आगन्तुं इच्छति। १२. अहं इदानीं तेन सह वदितुं इच्छामि। १३. रामः तत्र गन्तुं इच्छति। १४. त्वं धनं दातुं न इच्छसि किम्? १५. स इदानीं पत्रं लिखितुं तत्र गतः। १६. त्वं तत्र फलं प्रापयितुं किं न गच्छसि? १७. अहं चक्रं भ्रामयितुं गतः। १८. अहं इदानीं अत्र उपवेष्टुं इच्छामि। १९. स अद्य पक्तुं तत्र गमिष्यति। २०. अहं अद्य सायं धावितुं इच्छामि।

इन्हीं संस्कृत वाक्यों के हिन्दी अर्थ नीचे दिये गये हैं।

१. कृष्ण मेरे घर चलने की इच्छा नहीं करता। २. जल में गिरने की इच्छा कोई भी नहीं करता। ३. अन्न लाने के लिये मैं जाता हूँ। ४. वह ईश्वर को देखने की इच्छा करता है। ५. वह धनवान् होने की इच्छा करता है। ६. वह घर का दरवाजा बनाने की इच्छा करता है। ७. मैं बोलने के लिये जाता हूँ। ८. तू पढ़ने के लिये आता है क्या? ९. तू घर रहने के लिए जा। १०. मैं फल खाने के लिए राम के घर जाता हूँ। ११. वह तेरे नगर को आने की इच्छा करता है। १२. मैं अब उसके साथ बोलने की इच्छा करता हूँ। १३. राम वहाँ जाने की इच्छा करता है। १४. क्या तू धन देने की इच्छा नहीं करता? १५. वह पत्र लिखने के लिए वहाँ गया। १६. तू वहाँ फल पहुँचाने को क्यों नहीं जाता? १७. मैं चक्र घुमाने के लिये गया। १८. मैं अब यहाँ बैठने की इच्छा करता हूँ। १९. वह आज पकाने के लिए वहाँ जावेगा। २०. मैं आज शाम को दौड़ने की इच्छा करता हूँ।

इस पाठ में आपको एक श्लोक बताया जाता है–

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्‌भूतहितमत्यंतमेतत्सत्यं मतं मम।।

महाभारत, शांति, ३२९/१३

पद– सत्यस्य। वचनं। श्रेयः। सत्यात्। अपि। हितं। वदेत्। यत्। भूत+हितं। अत्यन्तं। एतत्। सत्यं। मतं। मम।।

अन्वयः– सत्यस्य वचनं श्रेयः। सत्यात् अपि हितं वदेत्। यत् अत्यन्त भूतहित एतत् सत्यं, इति मम मतम्।

अर्थ– सत्य का भाषण कल्याण करने वाला है। सत्य से भी हितकारक भाषण बोलना चाहिए। जो अत्यन्त प्राणी मात्र का हितकारी वचन, वह सत्य (है, ऐसा) मेरा मत है।।

इस श्लोक का अर्थ समझने पर आप स्वयं निम्न वाक्यों की हिन्दी बना सकते हैं–

सत्यस्य एव भाषणं श्रेयः। असत्यस्य वचनं कदापि श्रेयः न भवति। सत्यात् अपि हितं एव वक्तव्यं इति सः बदति। सत्यात् हितं एव वक्तव्यं इति मम मतम्। कस्य वचनं श्रेयः भवति? सत्यस्य एव। किं सत्यं? यत् अत्यन्तं भूतहितकारकं तत् एव सत्यं। सर्वदा सत्यं एव वक्तव्यम्।

(पृष्ठ ४० का शेष) **गुनगुनी धूप ...**

दृश्यों का आनन्द लेते रहते हैं। शनिवार और रविवार को यहाँ बेहद भीड़ उमड़ती है। नौजवानों के झुण्ड के झुण्ड, दोनों ओर की सीढ़ियों के मध्य खाली पड़े स्थान पर स्केटिंग का अभ्यास करते रहते हैं।

सितम्बर के तीसरे और चौथे सप्ताहों में, पेरिस में एक प्रदर्शनी भी आकर्षण का केन्द्र रही। यहाँ का एक प्रसिद्ध स्थान है शाँजेलीजे। इसका उल्लेख पहले मैं नव वर्षाभिनन्दन के प्रसंग में कर चुका हूँ। बेहद चौड़ी और लम्बी यह सड़क इतनी विशाल है कि इस पर ७–८ लाख तक लोग इकट्ठे हो सकते हैं। प्रायः ३१ दिसम्बर की रात में, यहाँ समवेत होकर विशाल जन–समूह बीते वर्ष को विदाई देता है और नये वर्ष का स्वागत–अभिनन्दन करता है। उस समय यहाँ की रोशनी मन मोह लेती है। इसी शाँजेलीजे में अभी हवाई जहाजों की एक विशाल प्रदर्शिनी चल रही है। वायुयान के निर्माण में अब तक कितना विकास हुआ, इसका आकलन यहाँ खड़े किये गये विभिन्न मॉडलों के सैकड़ों हवाई जहाजों, हेलीकॉप्टरों, मारक विमानों और क्षेप्यास्त्र साधनों को देखकर किया जा सकता है। फ्रान्स युद्ध सामग्री का प्रमुख निर्यातक देश है, इसलिए सैन्य विमानों का बाहुल्य स्वाभाविक था। कुछ विमानों के कल–पुर्जे तो दूर से ही दिख रहे थे। इन्हीं में बहुचर्चित जैगुआर विमान भी मैंने यहीं देखा। लगभग दो किलोमीटर के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के विमानों को देखकर लगता है कि मनुष्य आकाश में छलाँग लगाने के लिए कितने अदम्य जीवट से अनवरत प्रयत्न करता रहा है। ऊपर उठने की यह लालसा ही फ्रान्स की प्रगति की कहानी का सारांश है। हजारों दर्शक इन विमानों के चारों ओर खड़े तज्ञ जनों से पूछताछ करते रहते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन की दृष्टि से भी सितम्बर मास पेरिस के लिए महत्त्वपूर्ण रहा। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है प्रधानमन्त्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी का आगमन। फ्रान्स और विशेष रूप से पेरिसवासी भारतीयों के लिए श्री वाजपेयी का यहाँ आना सदैव उल्लासवर्द्धक रहा है। कुछ वर्ष पूर्व, जब वे विपक्ष में थे, तब भी वे यहाँ आये थे और भारत–भवन (मेजों द' लैन्द) के इन्दिरा गांधी सभागार में प्रदत्त उनके विशिष्ट अभिभाषण की चर्चा कुछ प्रबुद्धजन अब भी सोत्साह करते रहते हैं। इस बार प्रधानमन्त्री के रूप में, उनकी विदेश यात्रा का विशेष लक्ष्य यद्यपि अमरीका था; लेकिन वहाँ अपने व्याख्यानों से धूम मचाने के बाद, लौटते समय दो दिनों के लिए उनका पेरिस–प्रवास भी यहाँ के भारतीयों के लिए अविस्मरणीय बन गया। दिनांक २९ और ३० सितम्बर के दोनों दिन उनके कारण बेहद गहमा–गहमी भरे रहे। भारतीय राज दूतावास, पेरिस के अधिकारी और कर्मचारी तो हफ्तों से उनके आगमन के उपलक्ष्य में तैयारी कर रहे थे। नियन्त्रण–कक्षों के माध्यम से सम्पूर्ण व्यवस्था नियमित की जा रही थी। २९ सितम्बर की सन्ध्या यहाँ के हिन्दी और संस्कृत के विद्वानों की गोष्ठी में श्री वाजपेयी के साथ उन्मुक्त चर्चा में बीती। पेरिस के प्रतिष्ठित इलाके प्लास दु वेन्दोम में स्थित रित्ज होटल के एक बड़े कक्ष में आयोजित यह विद्वद्–गोष्ठी अनेक कारणों से उल्लेखनीय रही। इसमें पेरिस तथा उसके आस–पास के नगरों से, भारतीय विद्या विशेष रूप से हिन्दी, संस्कृत, मानवशास्त्र, संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों में गहन अनुसन्धान करने वाले प्रायः एक दर्जन लब्धप्रतिष्ठ साहित्य–मनीषी सम्मिलित हुए। कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं– मादाम कोले केय्या, एनी मोन्तो, शाँबार, ओबीगेनिन, फ्रान्स भट्टाचार्य (बंगला के विख्यात साहित्यकार श्री लोकनाथ भट्टाचार्य की फ्रांसीसी पत्नी) कु० नलिनी बलबीर, मादाम पोर्शे, अक्षय बकाया, गँबोरियो इत्यादि। अधिकांश फ्रांसीसी विद्वानों और विदुषियों ने अपना परिचय स्वयं हिन्दी में देने का प्रयत्न किया। फ्रान्स में

हिन्दी और संस्कृत के क्षेत्रों में हो रहे शोध–कार्यों की जानकारी श्री वाजपेयी को दी गई। कुछ सुझाव भी दिये गये, जैसे भारतीय राजदूतावास (पेरिस) में सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना, पेरिस के बड़े पुस्तकालयों में सुरक्षित दुर्लभ संस्कृत–हस्तलेखों (पाण्डुलिपियों) की छायांकित प्रतियाँ तैयार करना, पेरिस के विश्वविद्यालय सहित अन्य पुस्तकालयों में भारत सरकार की ओर से हिन्दी और संस्कृत के ग्रन्थों को उपहार स्वरूप प्रदान करना, हिन्दी–शिक्षण के लिए उपादेय आडो–विजुअल सामग्री तैयार कराकर भिजवाना तथा पेरिस में अधिक संख्या में हिन्दी–संस्कृत के अध्यापकों को विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत भेजना इत्यादि। श्री वाजपेयी ने सोत्साह इन पर विचार करने की सहमति प्रदान की। अन्त में श्री वाजपेयी ने, विद्वानों के अनुरोध पर अपनी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ भी सुनाईं, जिनका अभिप्राय था कि प्रभु! इतनी ऊँचाई मत देना कि पीड़ितों की गुहार न सुन सकूँ। कार्यक्रम में अप्रिय प्रसंग तब आये जब एक हिन्दी–विद्वान् ने पेरिस स्थित भारतीय राज दूतावास को 'राजभूतावास' कहकर वहाँ के अधिकारियों के रुक्ष व्यवहार, हिन्दी के प्रति प्रमाद और सांस्कृतिक अक्षमता की शिकायतें खुलकर कीं। श्री वाजपेयी ने उन्हें भी अपने अवसरोचित वाग्वैदग्ध्य से सन्तुष्ट कर दिया। श्री वाजपेयी की विनम्रता, सात्विकता और विद्यानुराग से विद्वज्जन भूरि–भूरि सराहना करते हुए ही विदा हुए।

इसी सितम्बर मास के दूसरे सप्ताह में, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (निर्माणाधीन) के कुलपति श्री अशोक वाजपेयी ने भी कुछ हिन्दी विद्वानों और विदुषियों से मुलाकात की तथा मेजों द' लैन्द में आयोजित सान्ध्य गोष्ठी में अपनी कुछ कविताएँ भी सुनाईं। इस गोष्ठी का समापन करते हुए यूनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के स०म० राजदूत श्री चिरञ्जीव सिंह ने एक बड़ा मूल्यावन् सुझाव हिन्दी के सन्दर्भ में दिया और वह था कि विदेशों में कार्यरत अधिकारी अपने घर–परिवार में तो कम–से–कम मातृभाषा में बात करें। कार्यक्रम का समापन शान्ति–पाठ से हुआ। कर्नाटक कैडर के आई०ए०एस० अधिकारी श्री सिंह यूनेस्को के पेरिस कार्यालय में भारतीय पक्ष का प्रतिनिधित्व तो करते ही हैं, यहाँ के विद्वानों का उत्साह–संवर्द्धन भी करते रहते हैं। वे चण्डीगढ़ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य रहे हैं। जिसकी पूरी–पूरी छाप उनके व्यक्तित्व और वार्तालाप में झलकती है। ..

– अतिथि आचार्य, सारबोन नूबिल
विश्वविद्यालय, पेरिस

अमृतवाणी

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किमु।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।

(हितोपदेश, ३/११६)

जिसके स्वयं बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसका क्या हित कर सकता है? जिसके आँखें नहीं हैं, दर्पण उसकी क्या सहायता कर पायेगा?

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानहा मुखभंगे दूरतो वा विवर्जनम्।।

(चाणक्यशतक, १५/३)

दुष्ट व्यक्तियों से तथा काँटों से दो ही प्रकार से निपटा जा सकता है या तो जूते से उनका मुँह कुचल दिया जाये या फिर दूर से ही उनसे बचकर निकल जाया जाये।

गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिः गावः क्षीरविवर्जिताः।।

(शार्गंधरपद्धति, २६८)

मनुष्य को चाहिए कि वह सद्गुणों को अर्जित करने का प्रयास करे। आडम्बरों को अपनाने से क्या लाभ? घण्टियों से सुशोभित गायें भी दूध से रहित होने पर बिक नहीं पातीं।

उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातम्,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानाम् कर्मणामाविपत्तेः,
भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।।

(भोजप्रबन्ध, २४)

उचित या अनुचित कोई भी कार्य करने से पूर्व बुद्धिमान् मनुष्य को उस कार्य के परिणाम पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए। अत्यन्त शीघ्रता में किये गये कार्य का परिणाम कभी–कभी प्रतिकूल हो जाता है और वह प्रतिकूल परिणाम मनुष्य के हृदय में काँटे के समान तब तक चुभता रहता है, जब तक कार्य को शीघ्रता में किये जाने से उत्पन्न विपत्ति बनी रहती है।

येषां न विद्या न तपो न दानम्,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

(नीतिशतक, १३)

जिन मनुष्य के पास न विद्या है, न तपस्या, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म, पृथ्वी पर भार बने हुए वे मनुष्य वस्तुतः पशु हैं, जो इस मृत्युलोक में मनुष्य के रूप में रह रहे हैं।

– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

गीता–जयन्ती (इस वर्ष ३० नवम्बर को) के अवसर पर विशेष–

'पुराण-वैरी' ये इतिहासकार

– कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण

[तेलुगु के कवि–सम्राट् श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के प्रस्तुत लेख के माध्यम से 'राष्ट्रधर्म' के सुधी पाठकों को इतिहास–बोध की सही दिशा सम्बन्धी अन्य भारतीय भाषाओं में हो रहे लेखन की एक झलक वदान्यवर डॉ० भीमसेन 'निर्मल' ने देने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। – सम्पादक]

आज पाश्चात्यों के सिखाये कृतक विद्याओं के कारण मत्स्य, वायु, विष्णु, भविष्य, भागवत आदि पुराणों के बताये गये महा विषयों पर हमारे देश के ही कई लोगों का विश्वास नहीं रहा है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयों को तो छोड़ दीजिए। अपने इतिहास पर ही विश्वास नहीं रहा है। महाभारत युद्ध को हुए आज से पाँच हजार साठ वर्षों से अधिक हो जाना भी आज विश्वसनीय नहीं है। कई लोग हमारे "वर्षगणन–सिद्धान्त" को ही नहीं मान रहे हैं। इसका कारण है पाश्चात्यों के द्वारा लिखा गया हमारा इतिहास, जो हमारे सिर पर मढ़ा जा रहा है। हमारे इतिहास को जान–बूझ कर कई पाश्चात्यों ने अस्त–व्यस्त कर दिया है। कल नहीं तो परसों सही, आँखें खोल कर वह जाति (पाश्चात्य) अपने मारण–आयुधों की शक्ति द्वारा अन्य राष्ट्रों के सर्वनाश कर देने में आगे–पीछे नहीं देखेगी; प्रकृति–सिद्ध अमानव–स्वभाव से युक्त हो, पराये देशों को अपने वश में कर, उन देशवासियों को मानसिक रूप से भी गुलाम बना कर, अपने सिद्धान्तों को श्रेष्ठ तथा दूसरों के ज्ञान को हीन बता रही है। अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने का एक प्रमुख साधन होने के कारण, उन्होंने हमारे इतिहास को मनमाने ढंग से बदल कर लिख दिया है। वे जिन–जिन देशों को अपने वश में कर लेते हैं, उन देशों की प्रजा में भेदभाव उत्पन्न कर देते हैं। उनमें समैक्य–भाव को दूर कर देते हैं। कहते हैं कि तुम लोगों में समैक्य–भाव नहीं है, इसलिए तुम स्वतन्त्रता के योग्य नहीं हो। यह उनकी राजनीति की चाल है। यह बहुत बड़ा राजनैतिक तन्त्र है। हमारे देश में अंग्रेजों ने इस तन्त्र को खूब पनपाया। हममें आपस में कई भेद पैदा किये। हमारे देश में वर्ण–भेद है, वह संसार के किसी देश में नहीं है। "वर्ण" इस नाम को छोड़ दें, तो संसार के सभी देशों के मनुष्यों में भेद हैं। यह उनके कुतन्त्र का प्रथम सोपान हुआ। उन्होंने बताया कि यहाँ की सभी विद्याओं को ब्राह्मणों ने लिखा है, ब्राह्मण आर्य हैं, अन्य सभी द्रविड़ हैं। अपने देशों में धार्मिक गुरुओं ने जिस प्रकार सामान्य प्रजा को पीड़ित किया था, उसकी तुलना कर यह भी बताया कि यहाँ के ब्राह्मणों ने दूसरों को पीड़ित किया था। हमारी बुद्धिहीनता के कारण अंग्रेजों ने अपने विद्या–विधान तथा राजतन्त्र को सफल बनाया।

पाश्चात्यों के धार्मिक ग्रन्थ के अनुसार ईसा–पूर्व सृष्टि के हुए लगभग चार हजार वर्ष हुए हैं। उनकी सृष्टि हुई भी इसी प्रकार। लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व तो उनके देश थे ही नहीं अर्थात् उन–उन स्थानों में प्रजा निवास ही नहीं करती थी। दस हजार वर्ष या उससे पूर्व भारत देश से लोग प्रवास पर जाकर, निवास के योग्य देशों में जा कर बस गये। यहाँ से जो लोग बाहर गये, वे यहाँ समा नहीं सके थे। वे लोग अल्पबुद्धि वाले तथा वेदों के परमार्थ से अनभिज्ञ थे। उन्हीं को हमारे पूर्वजों ने 'म्लेच्छ' कहा था। उनमें से कुछ मिस्र गये। कुछ मध्य एशिया। कुछ रूस गये तो कुछ यूनान। दस–बारह हजार वर्षों में, सभी देशों को अपने वश में कर वे प्रबल बनने लगे। पहले जो भूले और जंगली थे, वे समूह और समाजों में एकत्र हो, राज्यों की स्थापना कर, व्यापार करने लगे। इसलिए पाँच हजार वर्ष पहले उनकी सत्ता ही क्या थी ? कुछ भी नहीं। उस असभ्य दशा से प्रगति करने वालों में कोई विवेकी व्यक्ति पैदा हुआ और वह पैगम्बर बना। उसने जो कुछ भी कहा, वही उनके लिए परमार्थ हुआ। शायद भगवान् की इच्छा हो कि पिछले चार–पाँच सौ वर्षों में उन्हें उन्नति मिले। वे अपने मरण–आयुधों की शक्ति से श्रेष्ठ बने। अपने आधिक्य को बनाये रखने के लिए दूसरे देशों के आधिक्य को कम कर दिखाना उनके दुरहंकार का प्रमाण है।

इस देश में अंग्रेजों के किये कई ऐसे कार्यों में उनका यह प्रचार भी एक है कि हमारा प्राचीन इतिहास अटकलबाजी है, वह सब ब्राह्मणों द्वारा कल्पित है, झूठा है

और हमारा अपना कोई इतिहास ही नहीं है। पुराणों पर वैर "पुराण वैर" है। वैर की यह भावना पाश्चात्य इतिहासकारों में जड़ जमाये है। अपने अनुयायियों को उन्होंने इसे घोट कर पिला दिया है। ये अनुयायी इसे अपने गुरुओं से भी तीव्र रूप में अपनाये हुए हैं। इसके दो प्रधान कारण दिखाई पड़ते हैं। पहला उन सिद्धान्तों से भरे विद्या–विधान में बड़ी–बड़ी परीक्षाओं को पास कर, हजारों रुपये कमाते हुए, आराम से रह सकना। दूसरा अंग्रेजों का फैलाया हुआ वर्णभेद का कुतन्त्र। आर्य–द्रविड़–भेद के कुतन्त्र में विश्वास रखने वाले कुछ उग्रवादी भी इनमें हैं। जन्म से, प्रकृति से सहज रूप से ही कुछ लोग द्वेषपूर्ण स्वभाव वाले होते हैं। मानवों के स्वभाव जन्म से ही भिन्न होते हैं। किसी को शासन करना प्रधान लगता है, किसी को द्वेष करना प्रधान। किसी को धन संग्रह करना ही प्रधान लगता है, तो किसी को संन्यासी बन कर रहना श्रेष्ठ लगता है। मानवों में इस प्रकार के सहज प्रकृति (स्वभाव) भेद सैकड़ों–हजारों की संख्या में हैं। इसलिए द्वेषभाव से युक्त होना उनके लिए स्वाभाविक ही है। अपने द्वेष को प्रकट करने के लिए कोई विषय चाहिए उन्हें। इन पाश्चात्यों के बताये सिद्धान्तों के जकड़ कर रहना, जीवन में उनके प्रचार को ही परमार्थ मानना, इन दो प्रकार के व्यक्तियों द्वारा पाश्चात्यों के द्वारा फैलाई मिथ्या–इतिहास नामक यह माया चल रही है।

हमारे प्राचीन इतिहास को भ्रष्ट करने के लिए पाश्चात्यों द्वारा किये गये प्रयत्नों में सिकन्दर के आक्रमण की घटना भी एक है। सिकन्दर के समय में भारत का सम्राट् गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त था। उसका पुत्र समुद्रगुप्त चक्रवर्त्ती था। मौर्य चन्द्रगुप्त उस समय से १२०० वर्ष पहले था। इस समय–परिवर्तन से पाश्चात्यों ने हमारे इतिहास की अवधि को कम करने का सफल प्रयत्न किया है। मेगास्थानीज ने लिखा है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय "सेंड्रकोटस" नामक चक्रवर्त्ती भारत पर शासन कर रहा था। वह सेंड्रकोटस चन्द्रगुप्त रहा होगा। यह चन्द्रगुप्त अगर गुप्त चन्द्रगुप्त होगा, तो पुराणों में बताया इतिहास ठीक उतरता है। पर ठीक नहीं बैठना चाहिए न। ठीक बैठे, तो भारतीयों की सभ्यता और १२०० वर्ष प्राचीन बनेगी। इस कुतन्त्र के लिए, वेद–वेदांगों पर श्रद्धा रखने वाले मैक्समूलर ने भी सहायता प्रदान की। अंग्रेजी में एक कहावत है कि पानी से खून गाढ़ा होता है। इस प्रकार हमारे इतिहास में १२०० वर्षों के कम हो जाने से ईसा पूर्व १८वीं शताब्दी में रहने वाले महात्मा बुद्ध ईसा– पूर्व छठी शताब्दी में आ गये। अब राज्य तथा राजाओं के संवत् तथा नामों में कितने परिवर्तन हुए, यह कहने की बात नहीं है।

महाभारत के युद्ध का काल–निर्णय होना चाहिए। यह निर्णय पाश्चात्य ऐतिहासिकों के सिद्धान्तों का अनुसरण करने से नहीं होगा। उसका अपना अलग मार्ग है। व्यास–रचित महाभारत में ही उस समय के निर्णय करने की सुविधा है। भीष्म ने उत्तरायण–संक्रमण में अपना शरीर त्यागा था। उत्तरायण–संक्रमण तो प्रतिवर्ष होता है। भारत युद्ध के समय तथा आज के समय में भेद है। प्रतिवर्ष पचास विलिप्तों के भेद से यह होता है। तब के और अब के भेद को इस अन्तर से विभाजित करें, तो सिद्ध होगा कि महाभारत के युद्ध को आज से ५१०१ वर्ष हुए हैं। सन् १९३० में मद्रास के एक बड़े वकील श्री नारायण शास्त्री जी ने अनेक प्रमाण देकर इसे सिद्ध किया था। उसके बाद नरसारावपेट के स्व० नडिंपल्लि जगन्नाथराव ने "महाभारत–युद्ध–समय" नामक पुस्तक में इस विषय को सप्रमाण निरूपति किया था। "भारत–देश–चरित्र (इतिहास) चतुरानन" तथा ब्राह्मीभूत श्री कोट वेंकटाचलम् ने अपने सारे जीवन को पाश्चात्यों के इस अन्याय की पोल खोल देने में ही लगा दिया। (उनके ग्रन्थों के आधार पर ही लेखक ने 'पुराण–वैर ग्रन्थमाला' नाम से अठारह उपन्यासों की रचना की है। – सम्पादक)

इसका एक ही कारण है। हमारे पुराण, राजतरंगिणी, कलियुग–राज–चरित्र में वर्णित सभी विषय, महाभारत–युद्ध को हुए ५१०१ वर्ष हुए हैं, ऐसा मानने से ही, ठीक उतरते हैं, नहीं तो नहीं। ठीक बैठने वाले हिसाब के रहते हुए भी, ठीक न बैठने वाले हिसाब को ग्रहण कर, उसे लिखने वालों को दोषी बताएँ, तो कैसे चलेगा ? भारतीय का अर्थ भारत देश में पैदा होना ही नहीं है। अनन्त, अगाध, अपरिच्छेद्य तथा नित्य इन वेद–वेदान्त, पुराण– इतिहासों पर विश्वास रखना ही 'भारतीयता' है। यह माता–पिता पर रहने वाली सहज भक्ति के समान है। वे माता–पिता सीता–राम और रुक्मिणी–कृष्ण हैं। ☐

अनुवादक– डॉ० भीमसेन 'निर्मल'
१–१–४०५/७/१, गांधीनगर, हैदराबाद–५०००८०

विशेष :– (श्री सत्यनारायणजी ने "पुराण वैर ग्रन्थमाला" नाम से १८ उपन्यास लिखे हैं, जिनमें आर्ष रचनाओं के तथ्यों के आधार पर, ईसा–पूर्व के भारतीय इतिहास का अनुपम चित्र उपस्थित किया गया है। *– अनु०*)

शंकर मौलिविहारिणि विमले !

– रघोत्तम शुक्ल

भगवान शंकर के नृत्य से राधामाधव द्रवित हुए। वह ब्रह्मद्रव ब्रह्मा जी ने अपने कमण्डलु में भर लिया, जो बाद में देव–लोक में पवित्र नदी के रूप में प्रवाहित होने लगा। इस देव नदी को सुरसरि, देवापगा, मन्दाकिनी आदि नामों से पुकारा गया; यही गंगा है। पृथ्वी पर राजा सगर की सन्तानों को कपिल मुनि ने भस्म कर दिया था, जिनकी आत्माओं का उद्धार गंगा–जल से तर्पण करने और उनकी 'भस्म' गंगोदक से भीगने पर हो सकता था। अतः उनके वंशज भगीरथ ने महान् तप करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने यह अपेक्षा की कि गंगा जी के स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित होते समय इनका वेग दुःसह होगा और ये पृथ्वी फोड़कर रसातल चली जायेंगी; अतः यदि शंकर भगवान् इनके इस विकट वेग को अपने शिर पर धारण कर लें, तभी पृथ्वीवासियों के लिए ये उपलब्ध हो पायेंगी। परिणामस्वरूप राजा भगीरथ ने तपस्या द्वारा भूतनाथ भगवान् शिव को प्रसन्न किया और भोले शंकर उन्हें अपनी जटाओं में अवतरित करने हेतु तैयार हुए। देवलोक विहारिणी गंगा, विष्णु चरणों के माध्यम से पृथ्वी की ओर उत्कट वेग से प्रवहमाना हुईं। उन्हें अहंकार भी आ गया कि मेरा वेग कौन रोक पायेगा? फिर क्या था; शिवजी ने अपनी जटाओं में उन्हें ऐसा विलीन किया कि वे भूमि पर आ ही नहीं सकीं। अन्ततः भगीरथ ने पुनः तप करके शिवजी को प्रसन्न किया और अपनी अभीष्ट– सिद्धि हेतु तथा भू–वासियों के मंगल के लिए मुक्तिदा गंगा को शंकर जी की जटाओं से भूमि पर अवतरित कराया। हिमवान् व मैना की ये ज्येष्ठ पुत्री, माँ पार्वती की बड़ी बहन हिमालय में गोमुख से निकलकर उत्तर भारत के विविध स्थानों को पवित्र करती हुई– लोक मंगल की मूर्तिमान् रूप–समुद्र (बंगाल की खाड़ी) में विलीन हुईं। रसातल में भी उन्होंने पदार्पण किया, जहाँ उनका नाम 'भोगवती' पड़ा। इस तरह ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों से सम्बद्ध होकर गंगा तीनों लोकों में प्रवाहित हैं। इसलिए इनका नाम 'त्रिपथगा' भी है। इनकी महिमा अपरम्पार है। महाभारत में उल्लेख है कि 'गंगाजी का नाम लिया जाय, तो वह सारे पापों को धोकर पवित्र कर देती हैं। दर्शन करने पर कल्याण प्रदान करती हैं। स्नान और जलपान करने पर मनुष्य की सात पीढ़ियों को पावन बना देती हैं। यथा–

"पुनाति कीर्त्तिता पापं, दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अवगाढ़ा च पीता च, पुनात्या सप्तमं कुलम्।।"

(वन पर्व/अध्याय ८५/श्लोक–९३)

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने ठीक ही कहा है– 'दरसन, मज्जन, पान त्रिविध भय दूरि भगावत।'

कल्याणकारी गंगा का स्वरूप बहु–आयामी और उनका व्यक्तित्व पहलदार है। शंकर जी की जटाओं में विहरण करने वाला रूप विशेष श्लाघनीय होने के कारण यहाँ वर्ण्य–विषय है। स्वयं शिव ही मंगल स्वरूप फिर उनकी जटाओं का प्रक्षालन करने का सौभाग्य प्राप्त करने के कारण उनकी मुक्तिदायिनी शक्ति और पवित्रकारिणी क्षमता असंख्य गुणित हो जाना स्वाभाविक है। शिव जटाओं में स्थान पाकर वे सर्वोच्च स्थान, जो किसी के लिए सुगम नहीं है, पर विराज रही हैं। "गंगा लहरी" के रचयिता कवि पद्माकर ने कुछ यूँ देखा कि कच्छप की पीठ पर कोल, कोल पर शेषनाग की कुण्डली और कुण्डली पर उनके सहस्र फण हैं। शेष फण समूह पर पृथ्वी और पृथ्वी पर हिमालय पर्वत है। हिमाद्रि शिखर पर शंकर जी आसीन हैं, उन पर जटाओं की शोभा है। शंकर जटाओं पर चन्द्रमा की छटा छिटकी है तथा चन्द्र छटा पर गंगधार अपनी अनुपम छटा सरसा रही है। गंगा जी की यह परमोच्च स्थिति देखकर ही भक्त कवि अपने पाप परिवार को ललकार बताता है–

"जैसे तै न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
तैसो अब तो सों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं,
कहैं 'पदमाकर' प्रचण्ड जो परैगो तौ,
उमंडि करि तो सों भुजदण्ड ठोंकि लरिहौं।
चलो–चलु चलो–चलु विचलु न बीच ही तें,
कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं;
एरे! दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छारि करिहौं।।"

भूतनाथ भगवान् शंकर के जटा–कलाप में प्रवाहित होना श्रद्धालुओं की भक्ति और विश्वास के साथ–साथ साहित्यकारों के आकर्षण का केन्द्र सनातन से रहा। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने गंगा जी को 'काम–शत्रु शंकर जी के मस्तक की मालती माला' के रूप में देखा तथा 'त्रिपुरारि शिव के शिर पर चलने वाली' पाया। इस प्रकार पापों की हरणकर्त्री हैं जाह्नवी–

'मदन मथन मौलेमलिती पुष्प माला' तथा
'त्रिपुरारि शिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्'
(गंगाष्टक से)

गोस्वामी तुलसीदास शिव–स्तुति गाते समय उनके मस्तक पर गंगा को किल्लोल करते देख आह्लादित हुए "स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा" और भोले शंकर से–गंगाधर–से प्रसन्न होने की प्रार्थना की। परम शिवभक्त, महापण्डित रावण उन भगवान् शंकर में निरन्तर अनुराग चाहता है, जिनके जटारूपी कड़ाह में देव नदी सम्भ्रमित हो रही है–

"जटा कटाह सम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी–
विलोलवीचिवल्लरी विराजमान मूर्द्धनि।"
(शिव ताण्डव स्तोत्र)

श्मशान में उठने वाले चक्रवात से उड़ने वाली धूल से शिव का जटाकलाप धूसरित होता रहता है, साथ ही तृतीय नेत्र में धक्–धक् जलने वाली ललाटाग्नि और कण्ठस्थ गरल भी निरन्तर अपना प्रभाव डालते ही रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में अपने सतत शीतल प्रवाह से जह्नु सुता भगवान् शंकर का ताप शमन तो करती ही हैं; अतः उनका शिव की प्रियां होना स्वाभाविक है। वे अतीव सुन्दरी और चिर यौवना हैं। उनकी अप्रतिम रूप–सम्पदा देखकर राजा शान्तनु के शरीर में रोमाञ्च हो आया था। उनके नेत्र गंगा की रूप–माधुरी पान करते तृप्त नहीं होते थे–

तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद विस्मितो रूप सम्पदा।
पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत् नराधिपः।।"
(महाभारत/आदि पर्व/अध्याय ६७/२६)

इस सौन्दर्य से युक्त रूपसी यदि किसी पुरुष के शिरासनस्था हो, तो विवाहिता पत्नी को "सौतिया डाह" होना स्वाभाविक है। लोक–जीवन में सपत्नी या सौत से ईर्ष्या करने से बच पाना कठिन है, भले ही वह राम की माता ही क्यों न हो। कैकेयी ने कहा है– "जियत न करब सवति सेवकाई।" बिहारी न दो पत्नियों के पति की खींचातानी होने की बात कही है– "दुहूँ ओर खैच्यो रहै जिमि बिबि तिय को कंत" अतः शंकर–शीश पर विराज रहीं गंगा से गिरिराज की छोटी पुत्री शिव–पत्नी पार्वती का सपत्नी–भाव भी चर्चित है। महाभारत में व्यास ने गंगा को शिव जी की भार्या भी कहा है। "सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या, दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा।" (अनुशासन पर्व/१०६/८६) महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें पार्वती की सपत्नी कहा है– "मातः शैलसुता सपत्नि वसुधा श्रृंगारहारावलि।" पण्डित राज जगन्नाथ ने सौत सुलभ मात्सर्य का मनोहर शब्द–चित्र खींचा है। गंगाजी शंकर जटाओं में बड़े वेग से छहरा रही हैं। वाम भाग में पार्वती जी प्रतिष्ठित हैं। कवि कहता है कि गणेश (हेरम्ब) की माता के कपटपूर्ण दृष्टिपात को देखकर गंगा भी अपनी लहरों को छहराने के ब्याज से क्षोभ प्रकट कर रही हैं। शिव शिर पर हो रहे इस शीत–युद्ध की परिणामी उत्तुंग तरंगें पापों का भञ्जन कर दें–

"उदञ्चन्मात्सर्यस्फुट कपट हेरम्ब जननी,
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनित संक्षोभ निवहा।
भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गांगा पुनरसी,
तरंगाः प्रोत्तुङ्गाः दुरितभर भंगाय भजताम्।।"
(गंगा लहरी)

यदि कोई युवती किसी पुरुष के जाल में फँस जाय, भले ही वह जटा–जाल हो तो निकल पाना दुष्कर होता है; यदि पुरुष सर्वशक्तिमान् हो तो स्थिति जटिलतर बन जाती है। शंकरीय जटा–जाल में फँसी गंगा की स्थिति विचित्र और मनोरंजक है। वह जोर–जोर शोर मचाती हैं। इससे उद्धार न होने पर नारी–सुलभ हाव–भाव दिखाकर जल के 'कलकल' स्वर के ब्याज से अगले दिन का वचन देती है; किन्तु शिव अपने 'स्थाणु' नाम के अनुरूप अटल और अचल हैं और जाह्नवी युवती किंवा सचल जलराशिभूता मचल रही हैं। एक कवि कहता है–

"उलझ गई है जह्नु बालिका सदा के लिए,
एक बार शम्भु जटाजाल मध्य फँसकर।
उठ उठ धाती है, मचाती जोर जोर शोर,
किन्तु रह जाती हर बार धँस धँस कर।।
छटक छटक जाती झटक मटक मस्त,
"कल कल" स्वर करती हैं हँस हँस कर।
अटल अचल स्थाणु, मचल मचल मुग्ध–
गंग ज्यों जटाल–बाल–व्याल गया डँसकर।।

लेखक व कवि तो रस, अलंकार और उक्ति वैचित्र्य का सहारा लेते ही हैं; किन्तु श्रद्धालुओं और भक्तों को क्या अन्तर पड़ता है। भोले शंकर निर्विकार, कामारि और आशुतोष, अवढरदानी हैं, गंगा और पार्वती दोनों विश्व माताएँ उनसे संलग्न रहकर लोक–कल्याण में सन्नद्ध हैं। दोनों वरदायिनी हैं– "सीस बसै वरदा, वरदानि, चढ़े वरदा घरनिउ वरदा है।" (तुलसीदास) शिव–शीश पर विराजने और उनकी जटाओं का प्रक्षालन करने के कारण गंगा मैया की पवित्रता में वृद्धि सर्व स्वीकार्य है। वाल्मीकि रामायण में ऋषि और गन्धर्व यह देखकर कि ये तो शंकर जी के मस्तक से गिर रही हैं, दौड़कर बहुत पवित्र मानकर, आचमन करने लगे–

"तत्रर्षिगण गन्धर्वा वसुधातलवासिनः।
भवांग पतितं तोयं पवित्रार्मति पस्पृशुः।।"

(बालकाण्ड/४३/२६)

वैसे भी शिव के जटा–कलाप में प्रवाहित गंगा का स्वरूप अन्य रूपों की अपेक्षा ध्यान करने से भक्त उन्हें शिर पर ही धारण करेगा। रहीम (अब्दुर्रहीमखानखाना) को भी यही रूप वांछनीय था "हरि न बनायो सुरसरी कीजौ इन्दवभाल।" इसीलिए शंकराचार्य जी ने भगवती गंगा के इसी स्वरूप का ध्यान कर अपनी मति उनके चरणों में लगी रहने की स्तुति की है– "शंकरमौलिविहारिणि विमले, मम मतिरास्तां तव पद कमले।"

चन्द्रचूड़ की जटा–विहारिणी जह्नुजा की अपार महिमा का वर्णन कर सकना शब्द–सामर्थ्य के सर्वथा परे है।

❒

– 'शाम्भवी', सी–२१, सेक्टर–एम,
अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ

फ्रान्स में बनेगा वीर सावरकर का स्मारक

८८ वर्ष पूर्व एक स्टीमर से स्वातन्त्र्य वीर सावरकर के ऐतिहासिक मुक्ति पलायन की स्मृति में फ्रान्स की भूमि पर वीर सावरकर का स्मारक स्थापित किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि पलायन की इस घटना ने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को दुनिया के नक्शे पर ला दिया था। फ्रान्स के मार्सेली नगर के मेयर ने सावरकर की स्मृति में एक स्मारक की स्थापना के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी है।

ज्ञातव्य है कि सावरकर को राजद्रोह के आरोपों के अधीन ब्रिटेन में गिरफ्तार किया गया था। वहाँ से भारत लाये जाते समय आठ जुलाई १९१० को वे 'मोरिया' नामक स्टीमर के शौचालय से कूद कर निकल भागे और समुद्र में तैर कर फ्रान्सीसी तट पर स्थित मार्सेली डॉक पर जा पहुँचे; परन्तु भाषा की समस्या के कारण इस महान् स्वतन्त्रता सेनानी का यह प्रयास विफल सिद्ध हुआ। फ्रान्सीसी भूमि पर अपनी गिरफ्तारी के खिलाफ उन्होंने हेग स्थित अन्तर्राष्ट्रीय अदालत में अपील की, मगर यह भी नाकाम ही रही। ब्रिटिश शासकों ने उन्हें दो आजीवन कारावास की सजा दी। ❒

मा० कल्याण सिंह
मुख्य मंत्री, उ०प्र०

माननीय मुख्य मंत्री श्री कल्याण सिंह के मुख्य मंतित्व काल में एवं माननीय राज्य मंत्री (स्वतन्त्र प्रभार) श्री गोरख प्रसाद निषाद के दिशा निर्देशन में

मा० गोरख प्रसाद निषाद
राज्य मंत्री, पशुधन एवं मत्स्य
(स्वतंत्र प्रभार)
उत्तर प्रदेश

पशुधन विकास के प्रगति की ओर बढ़ते कदम

1. **पशु जन्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि**
   वर्ष 1997-98 में दुग्ध उत्पादन, अण्डा उत्पादन व ऊन उत्पादन क्रमशः 129.00 लाख, 7280 लाख तथा 21.40 लाख किलोग्राम रहा। वर्ष 1998-99 हेतु 141.83 लाख मीट्रिक टन, 8470 लाख तथा 22.70 लाख कि०ग्राम का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
2. **पशुओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि**
   व्यापक उन्नत प्रजनन, रोग नियंत्रण, चारा उत्पादन तथा आधुनिक प्रबन्धन सुविधाओं के फलस्वरूप पशुओं की उत्पादकता में उत्साह वर्धक वृद्धि हुई है। वर्ष 1980-81 में गाय व भैंस की दुग्ध उत्पादकता क्रमशः 1.56 कि०ग्रा० तथा 2.87 कि०ग्रा० थी जो 1997-98 में बढ़कर क्रमशः 2.49 कि०ग्रा० तथा 3.79 कि०ग्रा० हो गई है।
3. **उन्नत पशु प्रजनन की सुविधाओं में वृद्धि**
   प्रदेश में 746 कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र तथा 1915 कृत्रिम गर्भाधान उपकेन्द्र कार्यरत हैं। तरल नत्रजन उत्पादन तथा अतिहिमीकृत वीर्य उत्पादन हेतु क्रमशः 21 एवं 6 केन्द्र स्थापित है। प्रजनन आच्छादन को वर्तमान 23.5% से 40% तक पंहुचाने का लक्ष्य नवीं पंचवर्षीय योजना हेतु रखा गया है। वर्ष 1997-98 में 30.24 लाख कृत्रिम गर्भादान सम्पादित किये गये तथा वर्ष 1998-99 हेतु 39.426 लाख का लक्ष्य रखा गया है। भारत सरकार की सहायता से राष्ट्रीय गाय तथा भैंस प्रजनन परियोजना चलाकर प्रजनन आच्छादन बढ़ाया जायेगा।
4. **पशु चिकित्सा व पशु स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि**
   प्रदेश में 2044 पशु चिकित्सालय, 3 पालीक्लीनिक, 280 'द' श्रेणी औषधालय, 2693 पशु सेवा केन्द्र तथा एक केन्द्रीय तथा 13 मण्डलीय रोग निदान प्रयोगशालाऐं कार्यरत हैं। वर्ष 1997-98 में 215 लाख पशुओं का उपचार 11.41 लाख बधियाकरण तथा 281.75 लाख सुरक्षात्मक टीकाकरण किया गया एवं 2.22 करोड़ सुरक्षात्मक टीकों का उत्पादन किया गया। वर्ष 1998-99 में 95 नये पशु चिकित्सालय, 2 पालीक्लीनिक, 10 'द' श्रेणी औषधालय तथा 10 पशु सेवा केन्द्र स्थापित करने का लक्ष्य एंव 254.59 लाख पशु उपचार, 13.75 लाख बधियाकरण तथा 284.68 लाख सुरक्षात्मक टीकाकरण का लक्ष्य रखा गया है। 16 रोगनिदान प्रयोगशालाएं स्थापित की जायेंगी।
5. **पौष्टिक तथा उन्नत चारा उत्पादन में वृद्धि**
   वर्ष 1997-98 में 3107.73 कुन्तल चारा बीज वितरण तथा 4309.90 हेक्टेयर भूमि उन्नत चारा फसलों से आच्छादित की गई। वर्ष 1998-99 में 5550 कुन्तल चारा बीज वितरण 24200 मिनी किट वितरण का लक्ष्य रखा गया है। बायो मास उत्पादन में वृद्धि तथा सिल्वीपासवर की स्थापना के अर्न्तगत 159 किसान वनों की स्थापना की जा रही है। प्रति जनपद 200 कृषकों को प्रशिक्षित किया जायेगा।
6. **स्वरोज़गार के अवसरों में वृद्धि**
   कृत्रिम गर्भाधान आदि सेवायें पशुपालकों के द्वार पर उपलब्ध कराने हेतु 1829 इन्सेमिनेटर कार्यरत हैं। वर्ष 1998-99 हेतु 105 इन्सेमिनेटर को प्रशिक्षित करके तथा स्वरोजगार के अवसर प्रदान किये जायेंगें। विश्व बैंक सहायतित उत्तर प्रदेश कृषि विविधीकरण परियोजना के अर्न्गत वर्ष 1998-99 में 200 प्रैावेट को भी स्वरोजगार प्रदान किया जायेगा। लगभग सभी जनपदों में 93 करोड़ रू० की लागत से 22000 व्यक्तियों को पशुधन इकाईयों की स्थापना कराकर रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा।
7. **गोवंशीय पशुओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु कार्यक्रम** चलाये जा रहे हैं तथा गोवध एवं गो तस्करी पर पूर्ण नियंत्रण हेतु शीघ्र ही गो सेवा आयोग का गठन किया जा रहा है।
8. **पशुधन कार्यक्रम में कृषकों की सक्रिय सहभागिता** सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 'कृषक समूहों' तथा पशुपालक संगठन गठित किये जायेंगे।
9. **पशुधन तथा पशु उत्पादों के निर्यात को प्रोत्साहन** प्रदान करने हेतु 'रोग रहित क्षेत्रों' की स्थापना की जायेगा।
10. **गोवंश की स्वेदेशी प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्धन** हेतु गौशाला/गोसदनों को सहायता प्रदान की जायेगी तथा पशुधन प्रक्षेत्रों को सुदृढ़ किया जायेगा।
11. **समन्वित कुक्कुट उत्पादन कार्यक्रम** के अर्न्तत परम्परागत 'बैकयार्ड कुक्कुट' उत्पादन को बढ़ावा दिया जायेगा।

डा० ए०के० सिंह
निदेशक, पशुपालन विभाग
उत्तर प्रदेश

पशुपालन विभाग द्वारा प्रसारित

ललित श्रीवास्तव
सचिव, पशुधन एवं मत्स्य
उ०प्र० शासन
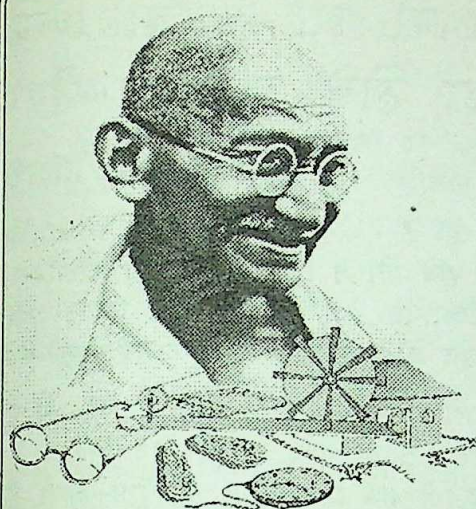
वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे ...

''समाज की सच्ची सेवा यह है जिससे समाज यानी सब लोग ऊंचे चढ़ें। समाज देख कर ही मनुष्य कह सकता है अमुक समाज कैसे ऊंचा चढ़े।''

— महात्मा गांधी

बापू की राह पर —

- जात-पांत, मत-मज़हब, वर्ग और सम्प्रदाय का भेदभाव किये बिना सभी नागरिकों के जान-माल की सुरक्षा व सम्मान।
- सर्वधर्म समभाव व समरस समाज की स्थापना के लिए ठोस प्रयास।
- सम्पूर्ण योजना राशि की 70 प्रतिशत धनराशि ग्रामीण विकास के लिए आवंटित।
- पंचायतों तथा नगरीय निकायों को स्वायत्तता तथा राजकीय करों की कुल आय का 11 प्रतिशत सीधे उन्हें देने का निर्णय।
- प्रदेश की कुल योजना राशि का 21.5 प्रतिशत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण के लिए निर्धारित। इस धनराशि का व्यय किसी अन्य कार्य के लिए न हो, इस हेतु एक स्थायी व्यवस्था।
- चालू वित्तीय वर्ष में प्रदेश के कुल बजट 9000 करोड़ रुपये में से 1927 करोड़ रुपये अनुसूचित जाति/जनजातियों के लिए स्पेशल कम्पोनेन्ट प्लान तथा ट्राइवल सब प्लान हेतु निर्धारित। यह वृद्धि गत् वर्ष की तुलना में 27.05 प्रतिशत है।
- अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछड़ावर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय के छात्र-छात्राओं की बढ़ी हुई छात्रवृत्ति के लिए पर्याप्त धनराशि का प्राविधान।
- 'खादी ग्रामोद्योग बोर्ड' के माध्यम से 101 करोड़ रुपये के प्राविधान से ग्रामीण क्षेत्रों में 7000 इकाइयां स्थापित कर 31000 व्यक्तियों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का निर्णय।
- गांधी ग्रामों में निवास करने वाले अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं को प्रशिक्षण देकर 500 चरखे उपलब्ध कराये गये।
- 50 हथकरघा विकास केन्द्रों की स्थापना का निर्णय।
- इस वर्ष 20,000 बुनकरों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य।
- 'बुनकर बहबूदी फण्ड योजना' के अन्तर्गत 4500 बुनकरों को लाभान्वित करने की योजना।
- महिलाओं हेतु 67 करोड़ रुपये की 'महिला उत्थान योजना' प्रारम्भ।
- सभी असेवित विकास खण्डों में निजी क्षेत्र में बालिका इण्टर कालेज खोलने का निर्णय।
- पारिवारिक सम्पत्ति में विधवाओं को पुत्रों के समान अधिकार देने का निर्णय।
- वल्दियत के रूप में पिता के साथ माता का नाम लिखने का निर्णय।
- सघन मिनी डेरी योजना सभी जनपदों में लागू।
- बेरोजगारों को गाँवों में ही स्वरोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 3000 इकाइयों की स्थापना का निर्णय।
- स्वच्छ कार विमुक्ति योजना के तहत इस वर्ष अनुसूचित जाति के 1 लाख लोगों तथा 15,500 स्वच्छ कारों को लाभान्वित करने का लक्ष्य।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए सुनिश्चित रोजगार योजना एवं जवाहर रोजगार योजना के लिए इस वर्ष 2,000 करोड़ रुपये का प्राविधान।
- प्रति वर्ष 10 लाख बेरोजगारों को वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराने के लिए 'रोजगार छतरी' योजना प्रारम्भ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ग्रामोत्थान की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए प्रदेश सरकार सम्पूर्ण बजट का 70% भाग ग्रामीण विकास पर व्यय कर रही है।

बापू के सपनों के अनुरूप एक शोषणमुक्त, समतायुक्त, ममतामय, परस्पर पूरक-पोषक, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी समाज की संरचना हमारा संकल्प है।''

कल्याण सिंह, मुख्यमंत्री, उ०प्र०

 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

(पृष्ठ ३३ का शेष) **जब गजवनी ...**

बिजली खाँ (खान)। चाकेता के आठ पुत्रों में सबसे छोटे का नाम था, 'साहसमन्द'। कर्नल जेम्स टॉड के इतिहास–ग्रन्थ के अनुसार चगतई वंश चाकेता के इन्हीं पुत्रों से चला, जब कि उसकी हिन्दू रानियों ने अपने पुत्रों के नाम– १. देवसी, २. भैरो, ३. क्षेमकर्ण, ४. नाहर, ५. जयपाल तथा ६. अरसी रखे थे। ये सभी हिन्दू नाम ही हैं। टॉड के इतिहास–ग्रन्थ के अनुसार श्रीकृष्ण का ही एक वंशज 'यदु' एक दिन गजवनी के राजा के सैनिकों को सीमान्त प्रदेश के पहाड़ पर मिल गया। वे उसे साथ ले गये राजा के पास वह निःसन्तान था। प्रश्न था, राज्य कौन करे आगे? तब राजा ने सैनिकों को आदेश दिया कि तुम्हें कोई अज्ञात युवक यदि किसी निर्जन पर्वत या वन में मिल जाये, तो उसे ले आओ। इस तरह वह श्रीकृष्ण–वंशी यदु गजवनी का राजा हुआ। गज उसका पुत्र शालिवाहन– उसका पुत्र बालन्द और फिर चाकेता तक आते–आते यह राज–वंश वैयक्तिक इच्छाओं के फेर में पड़कर भ्रष्ट होकर पूर्व गौरव खो बैठा। ❑

– सण्डीला, हरदोई (उ०प्र)

मरने से भी ज्यादा फिर पैदा होने का डर है

– अवध नरेश तिवारी

जग दिखता है औरों के अपराध सभी दिखते हैं,
अपने ही सब अंग न दिखते अपनी ही आँखों से।
ऐसी आँखों से क्या जाँचूँ अपनी जीवनगाथा,
तब भी खुद को स्थापित करता हूँ उत्तम लाखों से!

जिन आँखों से गोचर और अगोचर सब दिखता है,
जिन आँखों से यथातथ्य सम्पूर्ण ज्ञान मिलता है।
वे न खुलेंगी तब तक अन्धा हूँ, गूँगा–बहरा हूँ,
उभय ग्रहों के मध्य अनाकर्षणविमूढ़ ठहरा हूँ।

निर्बल पाँवों अगम दिशा में घिसटूँ, पार न पाऊँ,
क्षर रहकर अक्षर लोकों तक किस बूते पर जाऊँ।
इतने जन्म गँवाकर भी इतनी न कमाई जोड़ी,
जो मन ही निर्मल कर पाता, लिप्सा मिटे निगोड़ी।

मरने से भी ज्यादा फिर पैदा होने का डर है,
कर्मभोग के लिए अभागा व्यसनी जीव अमर है।
ढूँढ़ रहा हूँ आग अकारथ ही ठण्ढी राखों से,
हीरे–मोती रैन–बसेरे के आलों–ताखों से।

– पूरे सलई, कौड़िया, गोण्डा (उ०प्र०)–२७११२२

(पृष्ठ ३४ का शेष) **इसे बचाकर ...**

और अब चलते चलाते। नाक चाहे छोटी हो, बड़ी हो, लम्बी हो या मोटी हो, टेढ़ी या सीधी हो, पकौड़ी हो या पिच्ची हो, गोल हो या तोते जैसी हो, पतली हो या नुकीली हो, छिदी हो या बिना छिदी हो, कैसी भी हो, नाक 'नाक' है।

यह 'नाक' शब्द ही कुछ विचित्र है। यह जिसके पीछे लग जाये, उसकी तो खैर नहीं। जैसे– खतरनाक, दर्दनाक, अफसोसनाक, शर्मनाक आदि। सम्पादकों की कलम भी कभी–कभी लेखकों, कवियों के लिए खतरनाक से 'कतर नाक' बन जाती है।

मेरी मानिए– नाक कैसी भी हो; पर शर्मनाक न हो। ये प्रकृति का दिया अमूल्य और सुन्दरतम उपहार है। जीवन की अमूल्य निधि है। इसे बचाकर रखिए। ❑

– विवेक विहार कालोनी, वी०आई०पी० रोड, कैन्ट, लखनऊ

चाहिए। इनकी मुक्ति और पुनर्निर्माण के बिना भारत की स्वतन्त्रता अधूरी मानी जायेगी और अधूरी ही रहेगी भी।

राष्ट्र रक्षा

देश की धरती और संस्कृति की आन्तरिक और बाहरी खतरों से रक्षा करना राष्ट्र सरकार का पहला कर्त्तव्य माना जाता है। स्वतन्त्रता के बाद की केन्द्रीय सरकार इस मामले में अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाई। भारत को बाहर से मुख्यतः पाकिस्तान और चीन से खतरा है और अन्दर से उनके एजेण्टों से। भारत की सुरक्षानीति मुख्यतः पाकिस्तान और चीन को ध्यान में रखकर बनानी चाहिए। भारत की सेनाओं को अणुबम समेत आधुनिकतम शस्त्रों से लैस करना भी राष्ट्र–रक्षा की पहली अपरिहार्यता है।

सुरक्षा नीति की सफलता के लिए विदेश नीति का सुरक्षानीति से तालमेल होना अनिवार्य होता है; परन्तु गत ५० वर्षों में भारत की विदेश नीति कुछ नेताओं की व्यक्तिगत वाह–वाह के लिए देश के सुरक्षा हितों और सुरक्षा नीति से कटी रही है। इसी कारण गत ५० वर्षों में देश पर चार बाहरी आक्रमण हुए हैं और देश की ५० हजार वर्ग मील से अधिक भूमि हमारे हाथ से निकल गई।

भारत के सुरक्षा हित माँग करते हैं कि भारत इस्राइल से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये और अमरीका के साथ सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न जारी रखे। अमरीका और यूरोप के देश भी चीन की शक्ति से घबराने लगे हैं। वह इस्लामवाद को भी साम्यवाद की तरह का खतरा मानने लगे हैं। इस्लामवाद स्वतन्त्र विचार, लोकतन्त्र और मानववाद का विरोधी है। इसलिए इस खतरे से भारत को स्वयं भी सचेत रहना चाहिए और इसका मुकाबला करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी साथी जुटाने चाहिए।

पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की बात मृग–मरीचिका जैसी है। पाकिस्तान भारत के साथ मित्रता कर नहीं सकता; क्योंकि जब भी वह ऐसा करेगा, तब पाकिस्तान के अलग देश के रूप में अस्तित्व का आधार ही खत्म हो जायेगा। इसलिए पाकिस्तान जब तक कायम रहेगा, भारत का शत्रु बना रहेगा। जो लोग किसी प्रधानमन्त्री की इसलिए प्रशंसा करते हैं कि उसने पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारे, वह यह सिद्ध करते हैं कि उनके हाथ में देश के सुरक्षा हित सुरक्षित नहीं रह सकते।

पाकिस्तान स्थायी रूप में कायम नहीं रह सकता। इसके अन्तर्विरोध ही इसे खत्म कर देंगे; परन्तु खत्म होने से पहले यह भारत पर एक निर्णायक–युद्ध थोपेगा, जिसमें भारत के अन्दर के इसके एजेण्ट इसकी भरपूर सहायता करेंगे। राष्ट्रवादी सरकार को इस निर्णायक युद्ध के लिए देश को तैयार करना और उसमें पूर्ण विजय प्राप्त करने की रणनीति बनानी होगी। इस निर्णायक युद्ध के बाद पाकिस्तान खत्म हो सकता है और भारत के पुनः अखण्ड होने की प्रक्रिया शुरू हो सकती है।

कश्मीर और अनुच्छेद ३७०

यह सोचना कि कश्मीर का प्रश्न पाकिस्तान के साथ तनाव का कारण है, आत्मवंचना है। यह भारत–पाक तनाव का कारण नहीं; बल्कि परिणाम है। यदि कश्मीर पाकिस्तान को दे दिया जाये, तो भी पाकिस्तान शत्रु बना रहेगा; हाँ, उसकी भूख और बढ़ जायेगी।

कश्मीर समस्या का मूल कारण पं० नेहरू की अदूरदर्शिता और शेख अब्दुल्ला की धूर्त्तता थी। शेख अब्दुल्ला की महत्त्वाकांक्षा कश्मीर घाटी का सुल्तान बनने की थी। इसके लिए वह पाकिस्तान का साथ देने को तैयार था; परन्तु जिन्ना ने उसे घास नहीं डाली। पं० नेहरू ने अपनी अदूरदृष्टि और राष्ट्रवाद पर व्यक्तिवाद को वरीयता देने की अपनी प्रवृत्ति के कारण महाराजा हरिसिंह, जिसके द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने से जम्मू–कश्मीर भारत का संवैधानिक और कानूनी दृष्टि से अभिन्न अंग बना, को रियासत से निकाल दिया और शेख अब्दुल्ला को कश्मीर घाटी के साथ–साथ जम्मू और लद्दाख का भी 'सुल्तान' बना दिया।

शेख अब्दुल्ला का गैर–कश्मीरी मुसलमानों पर कोई प्रभाव नहीं था। इसलिए उसकी गिलगित, बालतिस्तान और मीरपुर–मुजफराबाद क्षेत्र को रियासत का अंग बनाये रखने में कोई रुचि नहीं थी और पं० नेहरू की रुचि केवल कश्मीर घाटी में ही थी। इसलिए उन दोनों ने रियासत के कश्मीर घाटी के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम–बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान की झोली में डाल दिया। ऐसा करके उन्होंने महाराजा हरिसिंह, भारत की सेनाओं और भारत देश के साथ विश्वासघात किया।

अब्दुल्ला कश्मीर घाटी पर अपनी पकड़ मजबूत करने के साथ–साथ लद्दाख और जम्मू की घाटी के साथ लगने वाले क्षेत्र का इस्लामीकरण करके 'विशाल इस्लामी

कश्मीरी राज्य कायम करना चाहता था। उसका बेटा फारुक अब्दुल्ला भी यही चाहता है। इस वस्तुस्थिति को भारत के राजनेता जानते हुए भी जानना नहीं चाहते रहे। वे अपने दलगत हितों के लिए कश्मीर घाटी के हिन्दुओं के साथ– साथ लद्दाख के बौद्धों और जम्मू के हिन्दुओं को भी बलि का बकरा बनाते रहे। फलतः कश्मीर घाटी से हिन्दू नाम शेष हो गया और जम्मू तथा लद्दाख के इस्लामीकरण का आतंकवादी–कार्यक्रम जारी है।

संवैधानिक और कानूनी दृष्टि से सारी जम्मू–कश्मीर रियासत भारत की है। इसका जो एक–तिहाई भाग, सन् १६४८ से पाकिस्तान के अधिकार में है, उसे उसने पाकिस्तान के साथ पूरी तरह मिला लिया है। इस पाक–अधिकृत–भाग को युद्ध के बिना वापिस नहीं लिया जा सकता; परन्तु उस क्षेत्र में युद्ध करना भारत के हित में नहीं; क्योंकि वहाँ की सामरिक (लाजिस्टिक) स्थिति पाकिस्तान के अनुकूल है। भारत को वहाँ लड़ना चाहिए, जहाँ की सामरिक (लाजिस्टिक) स्थिति भारत के लिए अनुकूल हो।

जो काम भारत कर सकता था और अब भी बिना किसी कठिनाई के कर सकता है, वह है रियासत के उस भाग को, जो भारत के अधिकार में हैं, शेष भारत के साथ पूरी तरह मिलाना, इसे भारत के संविधान के पूर्णतः अन्तर्गत लाना और उसका पुनर्गठन करके लद्दाख, जम्मू और कश्मीर को भारत अन्तर्गत स्वायत्त राज्य बनाना। इस काम में सबसे बड़ी रुकावट भारत के संविधान का (पूर्णतः) अस्थायी अनुच्छेद ३७० है, जो रियासत के भारत में विलय के दो वर्ष बाद अब्दुल्ला के आग्रह पर १६४६ में संविधान में जोड़ा गया था। यह अनुच्छेद सेक्युलरवाद के भी विरुद्ध है और मानववाद के भी। यह न भारत के हित में है और न जम्मू–कश्मीर के लोगों के हित में। इस अस्थायी अनुच्छेद को बहुत पहले निरस्त कर देना चाहिए था, परन्तु ऐसा करने के बजाय इसे ही कश्मीर के भारत में विलय का आधार बताकर (स्व०) महाराजा हरिसिंह का ही नहीं, अपितु सारे राष्ट्र का का अपमान किया जा रहा है। कश्मीर समस्या के हल के लिए यह पहली आवश्यकता है। अन्यथा कश्मीर घाटी के साथ–साथ लद्दाख और जम्मू का भविष्य भी खतरे में पड़ जायेगा। इसलिए इस अनुच्छेद को निरस्त करना और जम्मू–कश्मीर राज्य का भौगोलिक आधार पर पुनर्गठन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। रियासत का जो भाग पाकिस्तान के पास है, उसके भविष्य का फैसला तो पाकिस्तान के साथ भावी निर्णायक–युद्ध ही करेगा, परन्तु भारत को उस पर कानूनी दावे को दोहराते रहना चाहिए।

जनकल्याणवादी अर्थव्यवस्था

भारत की विशिष्ट परिस्थिति और आवश्यकताएँ भारत की अर्थनीति का आधार तथा लक्ष्य जनकल्याणवादी होना चाहिए। नेहरू असली भारत से कटे हुए व्यक्ति थे। उन्होंने सोवियत रूस की अन्ध नकल करके भारत की अर्थव्यवस्था को अयथार्थवादी और जनविरोधी बना दिया। इसके कारण भारत, जो आर्थिक दृष्टि से १६४७ में जापान के बराबर और चीन से आगे था, गत ५० वर्षों में लगातार पिछड़ता गया और आज इसकी गणना संसार के निर्धनतम देशों में होती है। सोवियत रूस में साम्यवाद के खत्म हो जाने के कारण भारत के नेहरूवादी अमेरिका की अन्ध नकल करने लगे हैं। वे भारतवादी बनने से अब भी इनकार कर रहे हैं। फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था कम्युनिज्म के चंगुल से निकल कर अमरीकी पूँजीवादी के शिंकजे में फँसती जा रही है।

भारत की अर्थव्यवस्था को जनकल्याणवादी बनाने के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। सिकुड़ते

संसार में भारत शेष संसार से कटा तो नहीं रह सकता, परन्तु इसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गुलामी से बचाना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि भारत की अर्थनीति का भी भारतीयकरण अथवा स्वदेशीकरण किया जाये।

स्वदेशी

जिन अर्थों में १६०४–५ में बंगाल में और १६२०–२१ में शेष भारत में स्वदेशी का आन्दोलन चला था, उन अर्थों में स्वदेशी आन्दोलन इस समय न व्यावहारिक है और न प्रासंगिक। अब स्वदेशी आन्दोलन को भारतीयकरण के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। इसके लिए आवश्यक है कि भारत आर्थिक क्षेत्र को दो भागों में बाँटे। एक भाग, जिसके लिए विदेशी निवेश और तकनीकी सहायता आवश्यक है, उसे बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए खोल दिया जाये। दूसरा भाग, छोटे उद्योग, कृषि, व्यापार और श्रम प्रधान ग्रामीण और घरेलू उद्योग–धन्धे हैं। इनको बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की परिधि से बाहर रखा जाये।

इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है भारतीय उपभोक्ताओं, विशेष रूप से गत कुछ वर्षों में धनी बने उच्च–मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं की मानसिक दासता दूर करके उनका भारतीयकरण किया जाये, ताकि वे भारत में बनी वस्तुओं को विदेशी माल पर वरीयता दें। जब तक राष्ट्रवाद की भावना कमजोर रहेगी, तब तक न स्वदेश और न स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग पैदा होगा। राष्ट्रवाद और स्वदेशी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है। हमारा कृषि–उत्पादन गत वर्षों में बढ़ा अवश्य है; परन्तु जनसंख्या, कृषि और उद्योगों के उत्पादन की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से बढ़ रही है। इसलिए अधिक उत्पादन का लाभ जनसाधारण को नहीं मिल पा रहा। गरीबी दूर करने और अर्थव्यवस्था को सही अर्थों में जनकल्याणवादी बनाने के लिए जनसंख्या की बढ़ोत्तरी पर अंकुश लगाना आवश्यक है।

जनसंख्या सम्बन्धी राष्ट्रवादी नीति

भारत में जनसंख्या जिन कारणों से बढ़ रही है, उन पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। जनसंख्या का बढ़ना गरीबी बढ़ने का कारण भी है और परिणाम भी। इसलिए देश से गरीबी दूर करने के लिए जनसंख्या पर अंकुश लगाना आवश्यक है।

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मुसलमानों की जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है। वास्तव में मुस्लिम मुल्ला और नेता राजनैतिक उद्देश्यों से जनसंख्या बढ़ाने को प्रोत्साहन दे रहे हैं। बहु–विवाह और परिवार नियोजन का विरोध इस काम में उनके सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इसलिए विवाह और तलाक के मामले में शरीयत के स्थान पर एक विवाह–सम्बन्धी समान कानून लागू करना आर्थिक दृष्टि से भी आवश्यक है। तथाकथित सेक्युलरवादी, जो सबके लिए समान कानून का विरोध करते हैं, बहु–विवाह के इस आर्थिक पहलू से जान–बूझ कर आँखें मूँदे हुए हैं।

जनसंख्या बढ़ने का दूसरा कारण भारत में पड़ोसी देशों, विशेष रूप से बंगलादेश से गैर–कानूनी ढंग से करोड़ों मुसलमानों की घुसपैठ है। इस समय ऐसे घुसपैठियों की संख्या तीन करोड़ से अधिक हो चुकी है। पूर्वांचल के राज्यों, पश्चिम बंगाल और महानगरों में अलगाववादी हलचलों और अपराधों में वृद्धि का एक बड़ा कारण यह घुसपैठ ही है।

यह घुसपैठी भारत के गरीबों के हाथों से काम, मुँह से रोटी और सिर से छत भी छीन रहे हैं। वे देश की गरीबी बढ़ाने का एक बड़ा कारण बन गये हैं।

राजनैतिक, आर्थिक और राष्ट्रीय सुरक्षा और एकता की दृष्टि से इन घुसपैठियों को भारत से निकालना और मुसलमानों में शरीयत कानून का चलन बन्द करके उन पर समान कानून लागू करना भारत की राष्ट्रीय आवश्यकता बन गयी है। देश के सभी राष्ट्रवादी दलों, संगठनों और तत्त्वों को इस पर विशेष बल देना चाहिए।

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार पानी की तरह ऊपर से नीचे की ओर आता है। भारत में इस समय जीवन के सब पहलुओं में व्यापक भ्रष्टाचार का मुख्य कारण स्वतन्त्र भारत के लोकतान्त्रिक 'राजाओं' द्वारा इस मामले में जनता के सामने गलत उदाहरण पेश करना है। इनकी सूची में सबसे पहला नाम जवाहरलाल नेहरू का आता है। कहा जाता है कि वे और कुछ भी हों, भ्रष्ट नहीं थे। यह सर्वथा गलत है। केवल पैसे के रूप में घूस लेना ही भ्रष्टाचार नहीं होता। जो व्यक्ति निजी जीवन में भ्रष्टाचारी है, व्यभिचारी है, शराबी है, वह सार्वजनिक जीवन में प्रामाणिक हो ही नहीं सकता। परन्तु पं० नेहरू और उनके अनुयायियों की राजनेताओं के व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन को अलग–अलग करके देखने और उनके निजी जीवन

के भ्रष्टाचार पर ध्यान न देने की नीति ने भारत के लगभग सभी राजनेताओं को भ्रष्ट बना दिया है। उच्च विचार और सादा तथा सात्विक जीवन की भारतीय परम्परा उनके लिए उपहास का विषय बन चुकी है। उनका रहन–सहन, खान–पान और जीवन का रंग–ढंग पुराने रजवाड़ों के रंग–ढंग को मात कर रहा है।तब राज्य में राजा एक होता था अब राजाओं की फौज है। इसलिए स्थिति पुराने रजवाड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक खराब होती जा रही है।

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए दो काम करने होंगे। उच्च पदों पर ऐसे लोगों को ही बिठाया जाये, जिनका निजी और सार्वजनिक जीवन और छवि निर्मल हो। साथ ही शिक्षा में धर्म शिक्षा का समावेश हो। धर्म और पन्थ अथवा मजहब दो अलग–अलग परिकल्पनाएँ हैं। मजहबी शिक्षा, जो भेदभाव और मार–काट सिखाती है, का पूरी तरह निषेध होना चाहिए और धर्म–शिक्षा, जो नैतिकता, मानवता और सद्व्यवहार सिखाती है, कम से कम प्राथमिक कक्षाओं में अनिवार्य होनी चाहिए। "सत्यम् वद् धर्मं चर" हर स्कूल में प्रवेश पाने वाले के लिए प्रथम पाठ होना चाहिए।

सुराज्य

भारत को १९४७ में स्वराज्य तो मिला, परन्तु गत ५० वर्षों में यह सुराज्य नहीं बन सका। यह 'रामराज्य' तो बन ही नहीं सका; परन्तु इसके विपरीत यह कुराज अथवा रावण राज्य अवश्य बनता जा रहा है।

स्वराज्य को सुराज्य बनाने के लिए चरित्रवान् नेताओं का होना अनिवार्य है। राजनेताओं के भ्रष्टाचार, सेक्युलरवाद के नाम पर शिक्षा में से धर्म को निकालने के साथ–साथ हमारी आज की राज्य व्यवस्था भी राज्य के बिगड़ते स्वरूप और कुशासन का एक बड़ा कारण है। उनमें से प्रमुख लोकतन्त्र का प्रचलित स्वरूप है। एक ओर गरीब और अशिक्षित होने के कारण मतदाता अनैतिक और कुर्सी के भूखे धनाढ्य और बदमाश राजनेताओं और उम्मीदवारों के हाथों में खेल जाते हैं, दूसरी ओर चुनाव हलकों का बहुत बड़ा होने और विधानसभा के हलकों में भी मतदाताओं की संख्या लाखों में होने के कारण भारतीय लोकतन्त्र का रूप ही विकृत हो गया है।

लोकतन्त्र हमारे देश के लिए नया नहीं है; परन्तु इसका वर्तमान रूप नया है। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि या यह हमारे अनुकूल नहीं और या हम इसके अनुरूप नहीं। इस पर भी पुनर्विचार करना स्वराज्य को सुराज्य बनाने के लिए आवश्यक है।

ग्राम पंचायतों और जनपद सभाओं को अधिक महत्त्व और शक्ति दी जानी चाहिए। बड़े राज्यों का भूगोल, इतिहास, परम्परा, प्रशासनिक सुविधा और भाषा के आधार पर ऐसा पुनर्गठन किया जाना चाहिए कि किसी विधानसभा चुनाव क्षेत्र में ५० हजार से अधिक मतदाता न हों। लोकसभा की सदस्य संख्या बहुत नहीं बढ़ाई जा सकती। इसलिए इसके चुनाव के ढंग पर पुनर्विचार करना चाहिए।

तीसरे, राज्य को धर्म अथवा नैतिकता के आधार पर चलाना चाहिए। राज्य, पंथ या मजहब निरपेक्ष; परन्तु धर्म सापेक्ष होना चाहिए। धर्म को मजहब के साथ खलत–मलत करके अंग्रेजों के मानसपुत्रों ने हिन्दुस्तान के राजतन्त्र को गन्दा और विकृत कर दिया है। धर्म–विहीन राजा और राज्य सभी बुराईयों का स्रोत बन जाता है। सुराज्य के लिए चौथी आवश्यकता लोगों की भाषा को राज्य, प्रशासन और शिक्षा की भाषा बनाना है। हमारे प्रशासन पर अंग्रेजी के वर्चस्व ने इसे जनमानस और जनजीवन से काट रखा है। इसलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना भी सुराज्य के लिए आवश्यक है।

संस्कृत भारत की अधिकांश क्षेत्रीय भाषाओं की जननी है। दक्षिण की चार भाषाओं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम पर भी संस्कृत का प्रभाव बहुत व्यापक है। वे भी संस्कृतमयी हो चुकी हैं। इसलिए संस्कृत सही अर्थ में भारत की राष्ट्रभाषा है। यह भारत की सभी भाषाओं को जोड़नेवाली कड़ी है। इसे सर्वाधिक महत्त्व देने की आवश्यकता है।

हमारी सभी भाषाओं की वर्णमाला लगभग समान है; परन्तु लिखने के ढंग में थोड़ा–थोड़ा अन्तर है। यदि सभी भाषाओं को लिखने के लिए देवनागरी लिपि, जो संस्कृत की लिपि होने के कारण देश के सभी भागों में प्रचलित है, को वैकल्पिक लिपि बना दिया जाये, तो भाषाओं की अनेकता के बावजूद उनमें एकरूपता लायी जा सकती है और सभी भाषाएँ सारे देश में पढ़ी और समझी जा सकती हैं।

राष्ट्रवादी चिन्तन और नीतियों का ऊपर दिया तथ्यात्मक और तर्कसंगत विवेचन सभी राष्ट्रवादी तत्त्वों, दलों, संगठनों के लिए दिशाबोधक का काम करेगा। राष्ट्रवाद और हिन्दुत्व पर्यायवाची शब्द हैं, इसे हमें कदापि नहीं भूलना है। ❑

– जे–३६४, शंकर रोड, नई दिल्ली–११००६०

मधुरेण समापयेत्—

पत्थर, पत्थर और पत्थर

— शंकर पुणतांबेकर

वह विद्वान् था, विद्वान् आज की भाषा में। सही कहा जाये, तो वह ज्ञानी था और ज्ञान उसने प्रकृति से बटोरा था। वास्तव में वह स्वयं प्रकृति का एक अंग था, प्रकृति के बीच ही वह रहता था। मिट्टी उसकी माँ थी, पेड़ उसके सखा थे।

एक दिन पहाड़ ने विद्वान् को बुलाया और उससे कहा— देखो, तुम एक छेनी बनाओ और एक हथौड़ी। इस छेनी—हथौड़ी से मेरी तलहटी में देवता की मूर्त्ति को आकार दो।

देवता की मूर्त्ति! यह क्या चीज है? विद्वान् ने पहाड़ से सवाल किया।

देवता एक शक्ति है, बड़ी शक्ति।

शक्ति तो प्रकृति है। उससे बढ़कर किसी की शक्ति नहीं हो सकती और यदि तुम देवता की ही शक्ति मानते हो, तो वह देवता प्रकृति है।

देखो, तुम यदि मेरी बात नहीं मानोगे, तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा— पहाड़ ने विद्वान् को धमकी देते हुए कहा।

विद्वान् ने इसके जवाब में चिढ़कर कहा, तुम अपने में देवता का निर्माण कराकर प्रकृति की शक्ति का, उसके सत्य का अपहरण करना चाहते हो।

इतना कह विद्वान् पहाड़ के यहाँ से लौट आया।

लेकिन पहाड़ तो पहाड़ था— पत्थर का पुंज। विद्वान् ने अपनी बात की अवहेलना की है, यह देखकर उसने उसको सताना शुरू कर दिया।

वह उसके रास्ते आता, विद्वान् बुरी तरह ठोकर खा उठता।

विद्वान् सोया होता, तो पहाड़ उस पर पत्थर की मार करता।

वह जिन फलों को खाकर गुजारा करता, उन पर पत्थर चलाता।

हैरान होकर आखिर विद्वान् को पहाड़ की बात माननी पड़ी।

जब मूर्त्ति बन गयी, तो पहाड़ ने कहा, अब तुम फूल लाकर मुझ पर चढ़ाओ, जिससे और लोग भी आकर फूल चढ़ा सकें।

मैंने मूर्त्ति बना दी, मैं फूल—वूल नहीं चढ़ाऊँगा, विद्वान् बोला।

नहीं चढ़ाओगे? तुम्हें मेरे फिर पत्थर खाने हैं क्या? पहाड़ ने क्रुद्ध होकर कहा।

विद्वान् पेड़ों के पास गया, अपने सखाओं के पास।

पेड़ों ने कहा, कोई चारा नहीं है भाई! तुमने वह देवता नहीं, राक्षस बनाया है उस पहाड़ में। जाओ, उसे जाकर फूल चढ़ाओ।

लेकिन यह तो तुम लोग जिस सौन्दर्य और सुगन्ध का निर्माण करते हो, उसका दुरुपयोग होगा।

पेड़ बोले, कहा न अब कोई चारा नहीं।

विद्वान् ने मूर्त्ति को फूल चढ़ाये। उसे देखकर और लोग भी चढ़ाने लगे।

आगे एक दिन पहाड़ ने विद्वान् से कहा, अब तुम मेरी गौरव—गाथा गाओ, मेरा गुणगान करो। बताओ कि मैं सत्य हूँ, मुझे छोड़कर सब असत्य है।

लेकिन सत्य तो प्रकृति है, उसका ज्ञान है, सत्य तो आदमी है, उसका ज्ञान है। तुम तो निरा पत्थर हो... निष्क्रिय पत्थर।

देखो, तुम मेरी बात नहीं मानोगे, तो मैं तुम्हें चैन से नहीं जीने दूँगा।

विद्वान् ने देवता की गौरव—गाथा का एक मोटा पोथा तैयार किया और बताया सत्य है देवता।

एक लम्बा अरसा बीतने के बाद एक दिन विद्वान् ने पेड़ों से कहा, पहाड़ ने देवता बनकर सर्वत्र अपना सिक्का जमा लिया है। उसके भक्त उसे अब सृष्टि का निर्माता कहने लगे हैं। अपने को सत्य जताने वाले इस देवता ने भक्तों को मन्त्र दिया है, जो केवल उसके गुण गाता है और जो सत्य पर कोई प्रकाश नहीं डालता और—तो—और, इसने धर्मदीप जैसी घातक वस्तु अपने भक्तों में उपजायी है, इससे सत्य पर और अधिक परदा पड़ता है; क्योंकि इसमें प्रकाश कम धुँआ ही अधिक है।

पेड़ों ने सुनकर आह भरी और कहा, यह आदमी

के विकास के लिए अच्छा नहीं है।

कोई एक युग बीत गया। पहाड़ ने विद्वान् को फिर बुलाया।

अब क्या चाहते हो? विद्वान् ने प्रश्न किया, तो पहाड़ ने कहा, देखो समय गुजरने के साथ मेरा देवता फीका पड़ता जा रहा है। तुम मुझमें अब एक राजा अंकित कर दो।

राजा! राजा क्या होता है?

तुम लोगों का शासक, तुम्हारी शान्ति और व्यवस्था की देखभाल करने वाली शक्ति।

हमारा शासक तो हमारी मिट्टी है... जो हमारी माँ है। तुम शासक कैसे बन सकते हो, निरा पत्थर ... अनुत्पादक पत्थर।

देखो, पहाड़ ने कहा, तुम मेरे आदेश का पालन नहीं करोगे तो नतीजा तुम जानते हो।

इस पर विद्वान् ने कहा कि मैं इस बारे में अपनी माँ मिट्टी से और सखा पेड़ों से पूछ आता हूँ।

लेकिन मिट्टी और पेड़ दोनों ने कहा, पहाड़ इतना कठोर है कि उसके सामने तुम्हारा–हमारा कोई बस नहीं। जाओ और उसके आदेश का पालन करो।

विद्वान् ने पहाड़ में जैसी पहाड़ ने बतायी, राजा की मूर्ति बना दी।

जब मूर्ति बन गयी, तो पहाड़ ने कहा, अब तुम फल लाकर मुझे भेंट करो, जिससे और लोग भी आकर फल भेंट कर सकें।

विद्वान् ने विरोध किया, लेकिन उसके सखा पेड़ों ने कहा, कोई चारा नहीं है भाई, उस पत्थर को जाकर फल भेंट करो।

एक दिन विद्वान् को पहाड़ की यह बात भी माननी पड़ी कि वह उसकी गौरव–गाथा गाये, उसका गुणगान करे, लोगों को बताये कि वह सौन्दर्य है।

एक अरसा बीतने के बाद विद्वान् ने पेड़ों से कहा, पहाड़ ने राजा बनकर सर्वत्र अपना सिक्का जमा लिया है। उसके दरबारी उसे अब धरती का पालक कहने लगे हैं। राजा ने लोगों को तन्त्र दिया है ... जो सौन्दर्य पर कोई प्रकाश नहीं डालता और जिसने कविता, कला, संगीत के सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है, और–तो–और उसने छत्र जैसी विकृत वस्तु दरबारियों से बनवा ली है। यह छत्र जनरक्षा के नाम पर राजा की ही अधिक रक्षा करता है।

पेड़ों ने सुना, तो उदास हो गये। कहा, यह आदमी के कर्तृत्व के लिए अच्छा नहीं है।

और एक युग ~~बीतने के~~ बाद पहाड़ ने विद्वान् को बुलाकर कहा, समय के बीतते राजा पुराना पड़ गया है, सो मेरे राजा पर लोक–प्रतिनिधि का चोगा चढ़ा दो।

लोक प्रतिनिधि तो लोक में से होना चाहिए, तुम्हारे जैसे पत्थर में से नहीं– विद्वान् ने कहा।

पहाड़ ने वही बात दोहरायी कि विद्वान् यदि उसकी बात नहीं मानेगा, तो उसे उसका बुरा नतीजा भुगतना होगा।

विद्वान् ने मजबूर होकर राजा पर लोक–प्रतिनिधि का चोगा चढ़ा दिया। उसकी माँग पर उसके लिए वह पेड़ों की शाखाएँ ले गया, सामान्य छत्र के नाम पर उनसे अपनी रक्षा के लिए। उसकी गौरव–गाथा गायी, उसका गुणगान किया और बताया कि वह शिव है।

विद्वान् ने आगे चलकर एक दिन पेड़ों को बताया, पहाड़ ने लोक–प्रतिनिधि बनकर सर्वत्र अपना सिक्का जमा लिया है, उसके गुर्गे उसे अब जन–उद्धारक कहने लगे हैं। इसने लोगों को यन्त्र दिया है, जिसमें स्वयं आदमी यन्त्र बन गया। और–तो–और इसने प्रचार–साधन जैसी ठगाऊ वस्तु गुर्गों से निर्माण करा ली है, जो प्रतिनिधि का ही अधिक शिंव (कल्याण) देखती है।

पेड़ों ने सुना, तो बड़ी ग्लानि अनुभव की।

बोले, यह आदमी के भविष्य के लिए अच्छा नहीं है। ❐

— २, मायादेवीनगर, जलगाँव–४२५००२

श्रीमान् जी

१. कहा जाता है कि रावण के दस मुख थे। वे दसों मुख से एक ही बात करते थे। लेकिन आजकल के नेता एक मुख से दस–दस बात करते हैं।
२. आप तो उस रिटायर होने वाले ऑफिसर की तरह हैं, जो जाते समय अपने मातहतों को ईमानदार रहने का उपदेश देता है।
३. समुद्र का पानी इतना खारा है कि पिया नहीं जाता, उसमें निवास करना, बड़े–बड़े मगरमच्छ का सामना करना कठिन है। फिर भी विष्णुजी, लक्ष्मी के लोभ में वहाँ निवास करते हैं। फिर इन बेचारे लीडरों का क्या दोष है।
४. नेताओं के हेर–फेर, गोलमाल के किस्से पढ़कर डाकुओं के दल आत्म–समर्पण के लिए खड़े हैं और विनम्र भाव से कह रहे हैं– "सरकार, आप सब हमसे बड़े हैं।"

— मनसाराम गुप्त

('दक्षिण समाचार' से साभार)

उ०प्र० सहकारी विधायन एवं शीतगृह संघ लि०, (पैक्सफेड)

१६-ए, विधानसभा मार्ग, लखनऊ

प्रमुख कार्य एवं विशेषताएँ

१. उत्तर प्रदेश शासन द्वारा अधिकृत एकमात्र सहकारी निर्माण एजेन्सी।

२. उत्तर प्रदेश शासन द्वारा मूल्य समर्थन योजना के अन्तर्गत गेहूँ क्रय हेतु अधिकृत क्रय एजेन्सी।

३. उत्तर प्रदेश के ५० जनपदों में निर्माण इकाई स्थापित कर प्रदेश सरकार के विकास कार्यों में संलग्न।

४. ६० करोड़ रुपये मूल्य के निर्माण / विकास कार्यों में संलग्न।

५. प्रदेश के विभिन्न समितियों के ६४ सहकारी शीतगृहों के संचालन हेतु वांछित सहयोग / तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करने एवं अनुश्रवण करने में संलग्न।

६. प्रदेश की सहकारी दाल मिलों एवं धान मिलों के संचालन हेतु सुझाव / योजना विभाग / शासन को भेजने में संलग्न।

७. प्रदेश के सहकारी शीतगृहों, धान मिलों एवं कृषि सेवाई मरम्मत केन्द्रों के कुशल संचालन हेतु प्रबन्धकों की व्यवस्था हेतु उनका कामन कैडर क्रियान्वित करना।

८. निबन्धक, सहकारी समितियाँ, उ० प्र० के निर्देशानुसार प्रदेश में कार्यरत सहकारी बीज गोदामों हेतु खाली बोरों की व्यवस्था में संलग्न।

९. उच्चतम गुणवत्ता, न्यूनतम अवधि में निर्माण कार्यों के सम्पादन हेतु कुशल अभियन्ताओं / विशेषज्ञों की व्यवस्था।

१० पर्वतीय क्षेत्र के भूकम्प से प्रभावित विद्यालयों के भवनों का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत सम्पादन।

आर० पी० सिंह
प्रबन्ध निदेशक

राधेश्याम सिंह
प्रशासक

राष्ट्रधर्म

पौष-२०५५

दिसम्बर-१९९८

एक प्रवासी पक्षी

इन्हें मारें नहीं, संरक्षण दें।

११/-

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल वेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित
संपादक : आनन्द मिश्र 'अभय'

यहाँ के शासकों की अपनी अदूरदर्शिता एवं प्रमाद आदि के कारण देश निर्बल हो गया; असुरक्षित हो गया। विदेशी–विधर्मी आक्रमणकारियों ने इस देश को जमकर लूटा–खूँदा। शकों, कुषाणों, हूणों को तो हमने परास्त कर अन्ततोगत्वा आत्मसात् कर लिया; पर जब अरबों, तुर्कों, अफगानों, मुगलों (मुगल भी तुर्क ही थे) ने इस देश पर आक्रमण किये और यहाँ पैर जमा लिये, तो साढ़े सात सौ साल तक ऐसा जमकर लूटा; विध्वंस किया कि आज भी उसको पढ़ने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक–हम्पी (विजयनगर) के ध्वंसावशेष ही उस लूट, ध्वंस, संहार की दारुण व्यथा–कथा जानने–समझने के लिए पर्याप्त हैं। फिर भी अलाउद्दीन खिलजी के समय के भाव इतिहास की पुस्तकों में पढ़ें, तो लगेगा कि लन्तरानी तो नहीं है १ रत्तल में इतने मन गेहूँ, गुड़ या चावल।

फिर आये अंग्रेज, लगभग दो सौ साल तक इस देश को लूटने में उन्होंने भी कोई कसर नहीं रखी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक को कहना पड़ा– 'सब धन बिदेस चलि जाइ यहै अति ख्वारी'। लेकिन अंग्रेजों ने दो–दो विश्व–युद्ध लड़े, जीते, तब भी चीजों के दाम 'आम आदमी' की पहुँच के बाहर कभी नहीं जाने पाये। जानते हैं, जब अंग्रेज देश को खण्डित करके छोड़कर गये, तो गेहूँ १ रु० का १६ सेर, शकर १ रु० की ८ सेर, घी १ रु० का १५ छटाँक था और सोना ३०–३२ रु० तोला। लेकिन देश स्वतन्त्र क्या हुआ; सत्ता नेहरूजी जैसे भोगवादी के हाथ में क्या आयी, चारों ओर लूट मच गयी। सरदार पटेल के मरने के बाद तो किसी भी कांग्रेसी को कोई डर–भय रह ही नहीं गया। शास्त्री जी के बाद तो धूम मच गयी लूट–खूँद की। छुटभैये से लेकर बड़भैये तक सबकी पौ बारह। ऐसे–ऐसे मन्त्री रहे केन्द्र में कि जब बम्बई में हीरे–जवाहरात के दाम एकदम बढ़ जाते थे, तो लोग जान जाते थे कि कौन मन्त्री पधारा है शहर में।

फिर भी जब मोरारजी की जनता सरकार आयी, तो दाम गिरे। लोगों के राशनकार्ड तक बेकार हो गये; क्योंकि खुले बाजार में राशन की दूकान की अपेक्षा चीनी के दाम कम थे। पर भला हो मधुलिमये और राजनारायण जैसे सोशलिस्टों और चरणसिंह जैसे सत्ता–लोलुपों का कि उस सरकार को गिरा कर ही माने। फिर तो वही होना था, जो हुआ। इन्दिरा, राजीव, विश्वनाथ प्रताप, चन्द्रशेखर और नरसिंहराव तक नये–नये तरीकों से लूट की ऐसी धमा–चौकड़ी मचायी गयी कि 'बोफर्स' और 'घोटाला' हर प्रकार के भ्रष्टाचार के प्रतीक बन गये। सोना तक विदेशों में गिरवी रखना पड़ा सरकार को। ४ महीना = ४० साल – लूट का यह फार्मूला कांग्रेस और चन्द्रशेखर की सरकार की बदौलत चल निकला। और जब देवगौड़ा तथा गुजराल जैसी गयी–गुजरी सरकारें आयीं, तब तो फिर 'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई' की कहावत चरितार्थ हो उठी। सुखरामों से लेकर जय ललिताओं और मुलायम से लेकर मायावतियों की तो बात ही क्या लालू प्रसादों और राबड़ी देवियों तक की बन आयी। सरकारी लूट कैसी होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है समस्तीपुर (बिहार) का वह नगर–भवन, जिसका शिलान्यास २७ नवम्बर ८३ को एक मुख्यमन्त्री; १६ जून ८५ को उद्घाटन दूसरा मुख्यमन्त्री और उसी नगर– भवन का शिलान्यास पुनः १७/२/९८ को तीसरा मुख्यमन्त्री करता है, जबकि भवन कभी बनता ही नहीं है। इनमें से दो भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमन्त्री चन्द्रशेखर सिंह और बिन्देश्वरी दुबे थे और तीसरे 'स्वनामधन्य' लालू प्रसाद यादव।

अन्ततोगत्वा अटल जी के नेतृत्व में जो भाजपा गठबन्धन की सरकार राम–राम करके केन्द्र में आ पायी, उसकी 'पोखरण–धृष्टता' से अमेरिका ऐसा बौखला उठा है कि एक पल के लिए भी वह इस सरकार को सहन करने को तैयार नहीं है; परन्तु 'मजबूरी का नाम महात्मा गांधी' के कारण सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर अधिष्ठित कराने का 'गणितीय समीकरण' ठीक से बैठ ही नहीं पा रहा है। अतएव एक के बाद एक उलटे–सीधे वक्तव्य और खुराफात पर खुराफात वर्तमान सरकार को बदनाम करने के लिए! परन्तु जो सबसे बड़ा 'सत्तासीन घटक दल' है, उसके अन्दर तीव्रता से पनप गयी 'कांग्रेसी विषाक्तता' आज सरकार के अच्छे कामों तक पर पानी फेर देने के लिए पर्याप्त है। महँगाई की इस लहर और 'प्रचार लहर' के संयोग से उपजा जन–आक्रोश कितना महँगा पड़ेगा, इस का रञ्च–मात्र भान शायद सत्तासीनों और सत्ताहीनों दोनों में से किसी को नहीं है। जो भी हो, भाजपा के लिए (यदि कोई चमत्कार न हो जाय) तो यह महँगाई 'आह महँगाई!' ही सिद्ध होने वाली लगती है।

इस देश का विपक्ष न तो विपक्ष या प्रतिपक्ष है और न विरोधी–पक्ष। वह तो बस 'हिन्दुत्व–द्वेष–पक्ष' है और इसीलिए राष्ट्र–विरोधी पक्ष बन बैठा है। इसका लोकतन्त्र से नहीं, स्वार्थ–तन्त्र से ही नाता बचा रह गया है। देश जाय भाड़ में, राष्ट्र जाये चूल्हे में, इसकी बला से।

परन्तु देश का जो प्रबुद्ध ('बुद्धिजीवी' नहीं) वर्ग है, वह महँगाई बढ़ने के कारणों में गहराई से जाने में अक्षम–सा सिद्ध हुआ है। गत पचास वर्षों में जैसा सत्ता–तन्त्र रहा है, उसने महँगाई बढ़ाने की कोई भी तो तरकीब बाकी नहीं छोड़ी।

पंचवर्षीय योजनाएँ, उधार की चुनावी–पद्धति, भोगवादी कुसंस्कारों का प्रचार–प्रसार, विकास के नाम पर सारे नैतिक मूल्यों का विनाश, अपराधी राजनीति द्वारा प्रशासन–तन्त्र का विध्वंस, जातिवादी विद्वेष की विष–बेलि का वपन, भोग–विलास के साधनों की संकुलता को 'उच्च जीवन–स्तर' का मानदण्ड बना देना, ऋणं कृत्वा (घृतं नहीं) मदिरा पिवेत्' की चरितार्थता ने हमारी रग–रग में समाज और राष्ट्र के प्रति दायित्व–बोधहीनता का संचार कर दिया है। मुफ्तखोरी का बाजार गरम है, सब को सब कुछ मुफ्त चाहिए, काम धेला भर न करना पड़े। आयोग पर आयोग ; समितियों पर समितियाँ ; प्रदेशों पर प्रदेश ; मण्डलों पर मण्डल ; जिलों पर जिले; तहसीलों पर तहसीलें, विकास खण्डों पर विकास–खण्ड बनाते जाने की क्षुद्र मानसिकता ने देश का दिवाला निकाल डाला है। निरर्थक विदेश यात्राओं और सरकारी अपव्यय की कोई सीमा नहीं रह गयी है। मन्त्रियों, सांसदों, विधायकों की दिनानुदिन बढ़ती सुख–सुविधाओं, वेतनों, भत्तों, पेंशनों की बाढ़ आ गयी है ; वेतन–आयोगों द्वारा बढ़ते वेतनमानों का ज्वार रुकता नहीं। महँगाई से वेतन–भत्ते और वेतन–भत्तों से महँगाई बढ़ने के चल निकले दुष्चक्र को तोड़ने की कोई सोचता नहीं। विभिन्न कर्मचारी तथा श्रम संगठनों की माँगों का द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ते जाने पर कोई विराम नहीं। ऊपर से धमकी का गुण्डई भरा नारा– 'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी माँगें पूरी हों' का नारा ! कोई पूछने वाला नहीं, कोई टोकने वाला नहीं। ऐसे में महँगाई लग्गियों बढ़ेगी नहीं, तो क्या करेगी ?

अन्त में एक बात और ! जिस प्याज, आलू और टमाटर को लेकर इतनी हाय–हाय मची और मचायी गयी, वे सबके सब इस देश की उपज नहीं, बाहर से आये 'एक प्रकार के घुसपैठिये' हैं, जो हमारी रसोई तक पर आधिपत्य जमा लिये हैं। प्याज (पलाण्डु) मध्य–एशिया के शकस्थान (सीस्तान) से शकों के साथ प्रथमशती ई० पू० में इस देश में आया ; आलू १४६८ ई० में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया और टमाटर तो द्वितीय विश्वयुद्ध के समय १६४० में अंग्रेज लाये थे। प्याज का तो आज तक देश के लाखों घरों में प्रवेश वर्जित है ; आलू भी पहले जानवरों को खिलाये जाने तक ही सीमित रहा और टमाटर भी 'विलायती भाँटा' के नाम से तब कई वर्षों तक अखाद्य ही माना जाता रहा। 'घुसपैठिये' कोई भी हों, कभी न कभी राष्ट्र के लिए समस्या बनते ही हैं। आज जो बांग्लादेशी घुसपैठियों की हिमायत कर रहे हैं, उन्हें कौन बताये कि प्याज और टमाटर जैसे 'बेजान घुसपैठिये' जब इतना तहलका इतने वर्षों बाद मचा सकते हैं, तो बांग्लादेशी जैसे 'सजीव घुसपैठिये' कब क्या नहीं कर डालेंगे ?

— आनन्द मिश्र 'अभय'

कृपया ध्यान दें

राष्ट्रधर्म का (आगामी अप्रैल का १६६६ अंक)

खालसा-पन्थ-स्थापना-विशेषांक

आगामी वैशाखी पर्व (१४ अप्रैल, १६६६) को खालासा–पन्थ की स्थापना हुए तीन सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे। अवतारी पुरुष गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने इसी पर्व के दिन आनन्दपुर साहब (पंजाब) में तीन सौ वर्ष पूर्व खालसा–पन्थ की स्थापना कर **'सकल जगत में खालसा पन्थ गाजै, जगै धर्म हिन्दू सकल भंड भाजै'** की उद्घोषणा की थी। हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु खालसा–पन्थ शस्त्रधारी दाहिनी भुजा के रूप में इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ बनकर यशस्वी हुआ।

अतएव 'राष्ट्रधर्म' ने उक्त पावन–पर्व के शुभ अवसर पर **'खालसा–पन्थ–स्थापना विशेषांक'** निकालने का संकल्प किया है। यह विशेषांक अपने में एक अनूठा तथा दुर्लभ सन्दर्भ–ग्रन्थ–सा होगा। विशेष विवरण अगले अंक में।

— व्यवस्थापक

- अधीश कुमार

कश्मीर की सुरक्षा से ही भारत की सुरक्षा सम्भव

५१ वर्ष पहले जब भारत की स्वतन्त्रता के सूर्योदय के साथ ही देश की सभी रियासतें भारत या पाकिस्तान में विलय हो रही थीं, तब कश्मीर के महाराजा हरिसिंह द्विविधा में थे।

तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार पटेल, कश्मीर का भारत के लिए महत्त्व समझ कर विलय करने को महाराज को जब मना नहीं पाये, तब उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री गुरुजी गोलवलकर से सहायता माँगी। श्री गुरुजी सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये हवाई जहाज से नागपुर से चलकर दिल्ली होते हुए जम्मू पहुँचे। १८ अक्टूबर, १९४७ को उन्होंने महाराजा से भेंट की। भेंट के समय युवराज कर्णसिंह और प्रधानमन्त्री मेहरचन्द महाजन भी उपस्थित थे।

महाराजा को भारत में विलय के लिए सहमत कराने के बाद श्री गुरुजी ने संघ के स्वयंसेवकों को जम्मू-कश्मीर की रक्षा के लिए रक्त की अन्तिम बूँद तक बहाने का आदेश दिया।

अपने हाथ से बाजी जाते देख कर २१ अक्टूबर को पाकिस्तानी सेना ने कबाइलियों के रूप में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। रियासत के अधिकांश मुस्लिम सैनिक भी शस्त्रों सहित उनसे मिल गये। कश्मीर घाटी खून से नहा गयी। गाँव-गाँव में लूट, आगजनी, हत्या, अपहरण और बलात्कार चरम सीमा पर थे। लगभग ९५ हजार हिन्दुओं की हत्या, हजारों महिलाओं का अपहरण और शीलभंग हुआ। ८० हजार से अधिक लोगों ने भागकर जम्मू में शरण ली। ऐसे संकट के समय राज्य के अधिकारियों ने श्रीनगर में संघ के स्वयंसेवकों से सहायता माँगी।

२६ अक्तूबर को भारत सरकार ने विलय को स्वीकार किया और २७ अक्तूबर को भारतीय सेनाओं ने श्रीनगर में प्रवेश किया। संघ के स्वयंसेवकों ने तब तक मोर्चे को सम्भाले रखा। इसी बीच श्रीनगर का हवाई अड्डा भी रात-दिन हजारों स्वयंसेवकों ने परिश्रम से सेना के वायुयान उतरने के योग्य बनाया। 'कोटली' में पाक सीमा में विमानों द्वारा गिराये गये भारतीय सेना के शस्त्रास्त्रों को लेने गये ८ स्वयंसेवकों में से ४ ही जीवित लौटे पर गोला बारूद भारतीय सेना तक पहुँचा कर। भारतीय सेना ने श्रीनगर पहुँचते ही भयंकर संग्राम प्रारम्भ किया। पाक सेना को घाटी से खदेड़कर सेना शेष कश्मीर को मुक्त कराना चाहती थी; परन्तु तब तक नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को जम्मू-कश्मीर का प्रधानमन्त्री (मुख्यमन्त्री नहीं) घोषित कर दिया था। शेख ने कश्मीर की मुक्ति के लिए आगे बढ़ती सेना को ७ नवम्बर को रोक दिया। शेख ने डॉ० अम्बेडकर सहित सभी राष्ट्रवादियों के विरोध के बावजूद संविधान में जोड़े गये अनुच्छेद ३७० की आड़ में जम्मू-कश्मीर में अलग संविधान और अलग झण्डा बनाकर भारत से कश्मीर को अलग रखने का प्रयास और हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार प्रारम्भ कर दिये।

इन राष्ट्रघाती कारनामों के विरुद्ध प्रजा परिषद् के नेतृत्व में २२ नवम्बर १९५२ से सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ, जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद् और भारतीय जनसंघ की मुख्य हिस्सेदारी थी। जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जम्मू-कश्मीर में बिना परमिट भारतीयों के प्रवेश पर लगी रोक के विरुद्ध सत्याग्रह किया। शेख अब्दुल्ला के बन्दी के रूप में संदिग्ध परिस्थितियों में २३ जून १९५३ को उनकी मृत्यु हो गयी। प्रतिक्रियास्वरूप सारा देश उठ खड़ा हुआ; नेहरू जी को मजबूर होकर शेख को हटाना पड़ा और परमिट प्रथा समाप्त हुई। आत्मबलिदान देकर

डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर को भारत से अलग होने से बचा लिया।

कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण प्रथम २० अक्तूबर १९४७– पाकिस्तान ने कश्मीर के ४० प्रतिशत भाग (लगभग ४८ हजार वर्ग किलोमीटर धरती) पर कब्जा कर लिया, जो अब तक पाक अधिकृत कश्मीर के रूप में गुलामी झेल रहा है।

द्वितीय १९६५ आपरेशन जिब्राल्टर– पाक सेना के संरक्षण में ३० हजार भाड़े के सैनिकों को कश्मीर में घुसाया, पर भारतीय सेना की वीरता के कारण असफल रहा।

तृतीय १९७१ – बंगलादेश युद्ध में हुई पराजय के कारण असफल।

चतुर्थ १९७७ आपरेशन टोपाक– जनरल जिया के काल में प्रारम्भ किया छाया–युद्ध। १९८७ में अफगानिस्तान में सी०आई०ए० द्वारा प्रशिक्षित आतंकवादियों को आई०एस०आई० द्वारा हथियार देकर भारत में प्रवेश।

आपरेशन के० २– १९९० में प्रारम्भ किये गये मजहबी आक्रमण ने तीन लाख हिन्दुओं को घाटी से विस्थापन के लिए विवश किया।

फरवरी १९९० में जम्मू में हुए सम्मेलन में विस्थापित परिवारों की सहायता के लिए जम्मू–कश्मीर सहायता समिति का गठन हुआ।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के बैनर तले ११ सितम्बर १९९० को देशभर से आये १० हजार से अधिक छात्र–छात्राओं ने जम्मू में एकत्र होकर श्रीनगर की ओर कूच किया, सरकार ने सभी को गिरफ्तार किया। १९९१ में राष्ट्रसेविका समिति ने देशभर में जनजागरण किया और ३१ मार्च १९९१ को जम्मू में देशभर से आयी सैकड़ों माताओं बहिनों ने प्रदर्शन कर कश्मीर–समस्या की ओर सारे देश का ध्यान आकृष्ट किया।

तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष डॉ० मुरली मनोहर जोशी ने कन्याकुमारी से चलकर २६ जनवरी १९९२ को श्रीनगर के लाल चौक में झण्डा फहराकर देश विरोधी ताकतों को चुनौती दी।

आज ३ लाख से अधिक विस्थापित हिन्दू फिर से अपने घर जाने की प्रतीक्षा में हैं।

१९९८ में केन्द्रीय सरकार बदलने से सुरक्षा बलों ने अपना शिकंजा कसा, परन्तु प्रदेश सरकार का वांछित सहयोग नहीं मिला। १९९१ से १९९८ तक कुल २९९ विदेशी आतंकवादी, जिनमें से ८० केवल अगस्त ९८ में, मारे गये हैं। आतंकवादी निर्दोष हिन्दुओं की हत्या कर फिर से डराना चाहते हैं। कई बड़े हत्याकाण्ड इसके सबूत हैं। आज कश्मीर में चित्र बदल रहा है। केन्द्रीय गृहमन्त्री लालकृष्ण आडवाणी ने **कश्मीर के हिन्दू पुनः अपने घर जा सकें,** ऐसा वातावरण बनाने की घोषणा की है।

इन बदली परिस्थितियों में एक बार फिर सारे भारत को अपने मुकुट की रक्षा करने के लिए आगे आना ही होगा।

स्मरण रखें– कश्मीर की समस्या सारे भारत की समस्या है और कश्मीर की रक्षा सारे भारत की रक्षा है। □

'अटल' देश की शान हैं

– मार्कण्डेय त्रिपाठी

परम पूज्य भगवा ध्वज प्रेरित
शक्ति आज द्युतिमान है।
दीर्घकाल की सतत साधना
का यह शुभ वरदान है।।

केशव रोपित, गुरुजी पोषित,
संघ–वृक्ष की सब शाखाएँ।
आज चतुर्दिक् फैल गयी हैं,
संस्कारित इसकी प्रतिभाएँ।।

बाला साहब, रज्जू भैया
प्रेरित पुण्य वितान है।
दीर्घकाल की सतत साधना
का यह शुभ वरदान है।।

अनगिन बाधाएँ आयीं पर,
क्लान्त नहीं हैं साधक जिसके।
राष्ट्र समर्पित जीवन–पथ पर,
नित्य बढ़े हैं पालक जिसके।।

उसी अमर पथ के जो राही
'अटल' देश की शान हैं।
दीर्घकाल की सतत साधना
का यह शुभ वरदान है।।

काव्य–हृदय मानव–हित चिन्तक,
जन–गण–मन का प्रबल समर्थक।
आज मिला है भारत–भू को,
पन्त–प्रधान दिव्य छवि सर्जक।

सचमुच यह तो घोर तमस
का हर्त्ता, सूर्य महान है।
दीर्घकाल की सतत साधना
का यह शुभ वरदान है।।

...और अब सरस्वती वन्दना का भी विरोध

• हृदय नारायण दीक्षित
(भूतपूर्व संसदीय कार्य–मन्त्री, उ०प्र०)

भारतीय राजनीतिज्ञ किसी भी सूरत में सत्ता चाहते हैं। सत्ता प्राप्ति के अपने उपायों में वे लोक–जीवन को अपनी विचारधारा समझाने का कष्ट उठाने को बिलकुल तैयार नहीं हैं। वे जानते हैं कि कुछ सम्प्रदायों के वोट 'हिन्दू विरोधी' चेहरा दिखाने से ही मिलते हैं। कुछ जातियों के बीच हिन्दुत्व को 'सवर्णत्व' सिद्ध करने से वोट जुगाड़ सध जाते हैं। सो भाजपा को छोड़कर बाकी के सभी राजनीतिक दलों ने 'हिन्दू विरोध' का शार्टकट मार्ग अपना रखा है। गैर–भाजपा दल अपने भाजपा–विरोध में हिन्दू–विरोध की सभी सरहदें लाँघ चुके हैं। हिन्दू–जन–मन गैर भाजपा दलों की हिन्दू (राष्ट्रीय) प्रतीकों तक का घटिया विरोध करने की नग्न राजनीति को (शायद) मात्र भाजपा–विरोध के रूप में ही देख रहा है, जबकि "माँ सरस्वती" जैसे प्रतीकों का विरोध मात्र भाजपा के ही विरोध में लेने से भारत राष्ट्र की अस्मिता के प्रति ही भारी खतरे खड़े हो चुके हैं। 'माँ सरस्वती' का विरोध शिक्षामंत्रियों के सम्मेलन में कोई पहली बार ही नहीं हुआ है। विकृत मानसिकता का शिकार मकबूल फिदा हुसैन जैसा चित्रकार माँ सरस्वती का नग्न–चित्र पहले ही बनाकर इन्हीं छद्म सेक्युलर दलों की वाहवाही लूट चुका है। माँ नंगी की गई और हिन्दू मन के चुप बैठे रहने से ही शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में ऐसी कुत्सित हरकतें दोहराई गयी हैं।

भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में सरस्वती को ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के विभिन्न रूपों में सनातन काल से पूजा जाता रहा है। सरस्वती को दुर्गासप्तशती जैसे लोकप्रिय ग्रन्थों में 'ऐं' बीज–मन्त्र में रूप में सृष्टिरूपा कहा गया है। विश्वप्रसिद्ध कवि निराला माँ सरस्वती से ही भारत के राष्ट्रीय जागरण की प्रार्थना में कहते हैं, "प्रिय स्वतन्त्रव अमृत–मन्त्र नव भारत में भर दे। वीणावादिनि वर दे"। निराला नवभारत में "अमृत मन्त्र" के भर जाने की आराधना सरस्वती से ही करते थे। वह भी उस समय, जब देश पराधीन था। सरस्वती आज साम्प्रदायिक करार दी जा रही है और सरस्वती–पुत्र चुप हैं! सरस्वती हिन्दी, उर्दू या अरबी में नहीं गातीं। वे तो वीणावादिनी हैं। वीणा–वादन का प्रतीक बड़ा प्यारा है। वीणा वैसे तो काष्ठों वाला तन्तु–वाद्य है। मगर तार–तार मिलते हैं, तो एकात्मकता में एक विराट् संगीत का जन्म होता है। भारत का जन–जन तार–तार है। तार–तार का मतलब इकाई–इकाई है, तार–तार का मतलब अलग–अलग भी है। यही तार–तार मिलते हैं, सजते हैं, ज्ञान के साथ युक्त होते हैं, तो वीणा बनाते हैं। राष्ट्रीय–एकात्मकता की प्रतीक वीणा को हाथ में लेकर सम्पूर्ण जगत् को वाक्–सिद्धि, अक्षर–सिद्धि शब्द–सिद्धि देनेवाली माँ सरस्वती के विरोध का कड़ाई से प्रतिकार किए जाने की नितान्त आवश्यकता है। इसे मात्र भाजपा सरकार के विरोध में देखने से भारतीय संस्कृति न केवल कमजोर होगी, वरन् दुर्वृत्त सेक्युलर राजनीतिकों के उस पर आये दिन किये जाने वाले प्रहारों को प्रोत्साहन मिलेगा।

कोई भी राष्ट्र सांस्कृतिक चैतन्य–बोध के अभाव में दीर्घकाल तक जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्र-जीवन की प्रत्येक गतिविधि में संस्कृति ही व्यक्ति को "मैं" से "हम" का बोध देती रहती है। राष्ट्र अपने नागरिकों के बीच 'हम' की भावभूमि से सुदृढ़ता पाता है। प्रत्येक व्यक्ति में अपने निजी हित के बारे में ही सोचते रहने की स्वाभाविक इच्छा होती है। ऐसे व्यक्ति देश, समाज और गाँव की तुलना में स्वहित को स्वाभाविक रूप से अधिक महत्त्व देते हैं। व्यक्ति–हित की तुलना में ग्राम और ग्राम–हित की तुलना में राष्ट्र–हित बहुत बड़े होते हैं, यह बात तर्क से समझाने में बड़ी आसान प्रतीत होती है; किन्तु तर्क से समझ लेने में बड़ी कठिन होती है। तर्क के सामने प्रतितर्क भी चलते हैं। बौद्धिक तर्क किसी व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व को प्रभावित करने की क्षमता नहीं रखते; मगर संस्कृति बिना किसी तर्क–प्रतितर्क के ही व्यक्ति को सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र के प्रति आदर–भाव से भरती रहती है। भारतीय ऋषियों ने सूर्य की विश्व का पालन–पोषण करने की अद्भुत क्षमताओं को बहुत पहले जान लिया था। सभी वनस्पतियाँ प्रकाश– संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) के माध्यम से ही भोजन पाती हैं। सूरज की किरणों के अभाव में प्रकाश–संश्लेषण नहीं हो सकता। सभी प्राणियों में सूर्य का ताप विद्यमान है। सूर्य की गरमी के थोड़ा-सा भी बढ़ जाने

से पृथ्वी उत्तप्त हो जाती है। यही गरमी और भी बढ़कर पृथ्वी के प्राणि-जीवन को झुलसा सकती है। सूरज का ताप अत्यधिक घटने से भी पृथ्वी का जीवन समाप्त हो जाना है। विज्ञान इन तथ्यों को तर्क के माध्यम से लाता है। परिकल्पना, तर्क और प्रयोग के जरिए ही विज्ञान अपनी यात्रा करता है।

भारतीय संस्कृति के शिखर हमारे ऋषि इन्हीं तत्त्वों से लोक-जीवन को अनुप्राणित करने की दृष्टि से सूरज को प्रणाम करवाते रहे हैं। गायत्री-मन्त्र का "तत्सवितुर्" सूरज ही है जो भूर्भुवः और स्वः लोकों का स्वामी है। प्रकाश रूपा ज्ञान-प्राप्ति की ऋषि-आराधना ने सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में भारत के जन-जन को 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (प्रकाश की ओर चलें) की अभीप्सा से भर दिया है। इसके लिए किसी तार्किक सभा, सम्मेलन की जरूरत नहीं पड़ी। संस्कृति एक सतत प्रवाही प्राणवान् गतिविधि होती है।

भारतीय दर्शन ने सृष्टि के कण-कण में एक ही विराट् ऊर्जा की उपस्थिति देखी है। भारतीय संस्कृति सृष्टि के कण-कण के प्रति नमस्कार और प्रणाम की भाव-भूमि की सम्वाहिका सदा से रही है। विज्ञान जिन्हें इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान जैसे नाम अब दे रहा है, भारत ने प्रकृति को त्रिगुणमयी जानते हुए सत्व रज और तम तीन धाराओं के रूप में बहुत पहले से ही इसका व्याख्या कर दी थी। सृष्टि के कण-कण में एक ही परम-तत्त्व को देखकर भारत के साधु, महात्मा और ऋषि एक-स्वर से एक ही परमसत्ता की बातें गाते रहे हैं।

भारतीय संस्कृति इस तत्त्व-ज्ञान को अपनी सतत-प्रवाही धारा का हिस्सा बनाती है और सम्पूर्ण जगत् के प्रति "करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी" की भावभूमि में भारत के हाथ नमस्कार कहने को बँध जाते हैं। भारत का अस्तित्व अपनी संस्कृति के कार्यकरण में ही बचा हुआ है। अनेक परकीय हमलों के बावजूद भारत विश्व में आज अजेय शक्ति के रूप में सीना तानकर अगर खड़ा हुआ है, तो इसके कारण सांस्कृतिक हैं। हिन्दू-प्रतीकों के विरोध के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र काम कर रहे हैं। पाश्चात्य साम्राज्यवादी और इस्लामिक आतंकवादी शक्तियाँ जानती हैं कि भारत में हिन्दू-राष्ट्रवाद की लहर आगे आने वाले दिनों में भारत को और भी बलशाली एवं सुदृढ़ बनाएगी। भारत को तोड़ने के परकीय शक्तियों के मंसूबे ध्वस्त हो रहे हैं, सो सबके सब एकजुट होकर भारत की जाग्रत् हिन्दू-चेतना को ही नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

माँ माने गये प्रतीकों पर हो रहे ऐसे हमलों की तात्त्विकता को प्रत्येक भारतीय जाने और समझे। ये हमले मात्र भाजपा का ही विरोध नहीं हैं; अपितु सांस्कृतिक चेतना को नष्ट करने वाले हैं। सुनियोजित अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र भी हैं ऐसे राजनीतिक हमले। अतएव ऐसी राजनीतिक ताकतों का पर्दाफाश करने के लिए तक तीव्र प्रतिकार की आवश्यकता है। इसमें रञ्च-मात्र विलम्ब या शिथिलता इस सनातन हिन्दू राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित करने वाली सिद्ध होगी। □

अमृतवाणी

अकृत्वा परसन्तापं अगत्वा खलमन्दिरम्।
अनुज्झित्वा सतां मार्गं यत् स्वल्पमपि तद् बहु।।

(शार्ंगधर पद्धति, ३०७)

किसी दूसरे को कष्ट दिये बिना, दुष्ट व्यक्ति के घर जाये बिना तथा सज्जनों का मार्ग छोड़े बिना जो कुछ भी थोड़ा-बहुत मिल जाय, मनुष्य को उसे ही बहुत मानते हुए उतने में ही सन्तुष्ट रहना चाहिए।

कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम्।।

(हितोपदेश, १३)

समर्थ व्यक्तियों के लिए कोई भी भार अधिक नहीं होता, उद्योगशील व्यक्तियों के लिए कुछ भी दूर नहीं होता, विद्वानों के लिए कहीं भी विदेश नहीं होता तथा प्रिय बोलने वाले व्यक्तियों के लिए कोई भी पराया नहीं होता।

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति सञ्चिन्त्य मनसा कुर्याद् वा पुरुषो न वा।।

(विदुरनीति, २/१६)

यह कार्य करने से मुझे क्या लाभ या हानि होगी तथा यह कार्य न करने से मुझे क्या लाभ या हानि होगी, इस प्रकार से अपने मन में भलीभाँति विचार करने के बाद ही मनुष्य को वह कार्य या तो करना चाहिए या फिर नहीं करना चाहिए।

बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुः येन नागोऽपि बद्ध्यते।।

(पञ्चतन्त्र, ३६१)

व्यक्ति भले ही निर्बल हों किन्तु यदि वे अधिक संख्या में हैं तथा संगठित हैं तो उन पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। छोटे-छोटे तिनकों से बँटकर जो मोटी रस्सी बनायी जाती है, उससे हाथी भी बाँध लिया जाता है।

प्रिया न्याय्या वृत्तिः मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरम्,
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः धैर्यं पदमनुविधेयं च महताम्,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्।।

(नीतिशतक, ५८)

न्यायपूर्ण व्यवहार ही प्रिय होना, प्राणों का संकट होने पर भी अनैतिक कार्य न करना, दुष्ट व्यक्तियों से कभी कुछ न माँगना, मित्र यदि निर्धन हो तो उससे भी न माँगना, विपत्ति के समय उच्चकोटि का धैर्य रखना तथा महापुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना, तलवार की धार पर चलने का यह व्रत सज्जनों को किसने सिखाया है? अर्थात् सज्जनों में ये सब बातें जन्मजात ही होती हैं।

प्रस्तुति- डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

कैसा था समाज- कालिदास के समय का

□ राजशेखर व्यास

कालिदास के साहित्य के व्यापक अनुशीलन के पश्चात् यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाकवि का समय इस देश में आर्यजनों के अभ्युदय काल में रहा है। ज्ञान, विज्ञान, कला-कौशल, शास्त्र और दर्शन आदि में पर्याप्त प्रगति हो गयी थी। रस विलास के प्रसाधनों की पर्याप्तता थी। कालिदास के समय में देश में अशान्ति या निराशा का अवसर नहीं था। आशा और विश्वास का विकसित वातावरण बना हुआ था, इसी पर जीवन का आदर्श स्थित था। वैदिक विधान, नैतिक आदर्श मर्यादाशीलता, चरित्र और ज्ञान से उनके काव्य, नाटक के पात्र परिमार्जित थे। उनके समय का समाज सुगठित, सुव्यवस्थित एवं सुसम्पन्न था, समाज-व्यवस्था चार वर्णों में विभाजित थी और उसके नियन्त्रण, योगक्षेम का उत्तरदायित्व राजा पर रहता था।

चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वतः सर्व चतुर्मुखात्
(रघु० १०-२२)

इस वाक्य में विष्णु की स्तुति करते हुए लोगों को "चतुर्वर्णमय" सूचित किया है और "नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः" (रघु० १४-६७) में स्पष्टतः मनुस्मृति के इस विधान का समर्थन किया है कि राजा का धर्म वर्णाश्रम के संरक्षण का है। इसी प्रकार शाकुन्तलम् में दुष्यन्त को "वर्णाश्रमाणां पालयिता" (५-१२) वर्णाश्रम का पालन करनेवाला बतलाया है और रघु को "वर्णाश्रमाणां गुरु" (रघु० ५-१९) वर्णाश्रम का गुरु कहा है। दुष्यन्त को यह प्रमाण-पत्र दिया गया है कि उसके शासन में वर्णों में से अत्यन्त नीचे के दर्जे का व्यक्ति भी गलत रास्ते से नहीं जाता है। "न कश्चित् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते" (शाकुं० ५-१०) चार वर्णों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के विषय में उनके साहित्य में विस्तार से चर्चा उपलब्ध होती है, अन्य के विषय में उतनी नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि इन दो वर्णों का प्रभाव उस समय अधिक बढ़ा हुआ था। क्षत्रियों का शासक और वर्णाश्रम-रक्षक होने के कारण तथा ज्ञान, प्रभाव, प्रतिभा, साधना आदि के कारण ब्राह्मणों का विशेष प्रभुत्व था, वैश्यों का वर्चस्व कहीं नहीं दिखाई देता और शूद्रों की स्थिति भी उसी प्रकार साधारण प्रतीत होती है।

जहाँ कालिदास ने अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मणों के रूप में समाज में प्रतिष्ठित एवं प्रभाव रखने वाले- वसिष्ठ, वाल्मीकि, कण्व, कौत्स, मारीच, वरतन्तु, च्यवन आदि की चर्चा की है, वहाँ विदूषकों के रूप में जो ब्राह्मण पात्र प्रस्तुत किये हैं, वे खाऊ, मजाक करने वाले, राजा के मित्र, चतुर, कुशल सारथी; किन्तु साधारण प्रतिष्ठा के पुरुष ही हैं। हाँ राजकुलगुरु, उपाध्याय, आश्रमवासी ऋषि, अध्यापक, आचार्य आदि ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित रूप में हम देख पाते हैं; परन्तु ब्राह्मण विदूषकों में उस विशेषता या श्रेष्ठता के दर्शन नहीं होते। आचार-व्यवहार में भी वे प्रथम वर्ग के ब्राह्मणों से हीन प्रतीत होते हैं। आश्रम के प्रमुख आचार्य और कुलपति में अधिकांश ऋषि-मुनि विशिष्ट प्रकार के आर्य (श्रेष्ठ) आदर्श के व्यक्ति रहे हैं। उनके आश्रम का वातावरण उनके उच्च नैतिक वातावरण से अभिभूत रहना स्वाभाविक है। उनसे साधारण समाज या तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग का सहज अनुमान लगाना सरल नहीं। अवश्य ही आश्रमों का जीवन पवित्र और चरित्र मर्यादामय रहता था। उसकी रक्षा शासकों के लिए भी आवश्यक रहती थी। जब दुष्यन्त कण्वाश्रम की सीमा में मृगया के लिए चला गया, तो आश्रम के अन्तेवासी ब्रह्मचारियों ने उसे सचेत किया था कि "सावधान! ये आश्रम के मृग हैं, ये अवध्य हैं।" इस पर राजा को सखेद शिकार से विरत होना पड़ा था। आश्रमों में युवक ही नहीं, बालिकाएँ भी रह सकती थीं और वहाँ ज्ञान-विज्ञान और चरित्र-गठन भारतीय आदर्श-मर्यादा के अनुरूप होता था। इतना ही नहीं, आश्रमों में चाहे सादा जीवन, स्वस्थ वातावरण, वल्कल-वसन आदि का व्यवहार भले ही होता हो, पर वहाँ के स्नातक शिक्षित, साधारण से लेकर सुधरे हुए सम्पन्न सुसंस्कृत राज परिवारों के कुल-शील, संस्कारों से पूर्ण परिचित एवं प्रवीण ही होते थे। शकुन्तला इसका आदर्श उदाहरण है। वह ऋषि-आश्रम की वनकन्या होते हुए भी इतनी सुसंस्कृत थी कि सहज ही वह उस समय के सर्वशक्ति-सम्पन्न राजा की महारानी होने के अनुरूप समझी गयी, केवल वनचारिणी विदुषी ही नहीं थी, आर्य

आदर्श की उदाहरण भी थी। 'च्यवन' के आश्रम में पुरूरवा के पुत्र आयु का समस्त शिक्षण संस्कार हुआ है। वहाँ शास्त्रीय ज्ञान एवं वेद–वेदांग की शिक्षा के साथ ही क्षत्रियों के राजकुमारों को शस्त्रास्त्र–ज्ञान, समर–कौशल का अध्ययन भी करवाया जाता था। आयु को च्यवन ने जात–कर्म–संस्कार देकर दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की थी (विक्रमो० ५–११)। रघुवंश में कौत्स और वरतन्तु का उदाहरण भी महत्त्व का है। शिक्षा लेने के बाद गुरु दक्षिणा के लिए १४ कोटि मुद्राएँ राजा के कोष से प्राप्त हुई थीं, जिन्हें राजा ने सहर्ष देना कर्तव्य समझा था। यह उन आश्रमों की प्रतिष्ठा और मर्यादा का उदाहरण ही है। कण्व के आश्रम में हजारों छात्रों को आश्रय प्राप्त होता था। उनके भरण–पोषण के साथ चरित्र–संस्कार का निर्माण और ज्ञान–विज्ञान का दान दिया जाता था। वहाँ का वातावरण अत्यन्त मानवतापूर्ण, वात्सल्य, स्नेह से सिक्त रहता था। शकुन्तला आश्रम के वृक्षों–वनलताओं से जहाँ आत्मीयता रखती थी, वहाँ आश्रम के हरिणों से भी उसका वात्सल्य था। ठीक उसी प्रकार स्वयं कुलपति कण्व का वीतराग होते हुए भी विदाई के समय गद्‌गद् हो जाना इसका प्रमाण है कि आचार्य और आश्रमवासी जनों में कितना तादात्म्य सम्बन्ध रहता था। यहाँ शास्त्र के ज्ञान–विज्ञान के साथ, व्यवहार और समाज–जीवन के संस्कार और मानवता के विकास की भी दीक्षा मिलती थी। अध्ययन, लेखन, मनन, कला, कृषि, बागवानी का भी उनके ज्ञान में समावेश रहता था। अवश्य ही मारीच का आश्रम अलग प्रकार के स्वर्गिक वातावरण से पूर्ण ज्ञान–वैराग्यमय गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श होता है। आश्रमों में सामान्यतः प्रातःकाल उठकर वेद–ध्वनि का क्रम दिखाई देता है। आश्रमों में विरक्त संन्यासी ही नहीं, गृहस्थ भी दिखाई देते हैं। वे कर्मकाण्ड, यज्ञ, त्याग, संस्कारों के साथ अतिथि–सत्कार और गृहस्थोचित व्यवहार करते हैं–

राजन् ! प्रविश्य प्रतिगृह्यताम् आतिथेयः सत्कारः
(शाकु० १–१२)

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् पुनानम्
(रघु० १–५३)

इसी प्रकार राजाओं के द्वार पर, दरबार में भी इन आश्रमवासियों, विद्वानों, छात्रों, ब्रह्मचारियों का विशेष समादर किया जाता है। उनकी आकांक्षाओं को आज्ञा समझकर पूर्ण किया जाता है। आश्रम के वृक्ष, लताओं की जिस स्नेहभाव से देखभाल की जाती है वह अपत्य–स्नेह से कम नहीं कहा जा सकता।

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
(रघु० ५–६)

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु (आश्रमवृक्षेषु) (शाकुं० १–१६)

अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितेमृगैः (रघु० १–५०)

वृक्ष, लता, पल्लवों से ही नहीं, आश्रमवासी जीवों से भी ऐसे ही स्नेहमय–आत्मीय व्यवहारों के उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार अतिथियों–सहवर्गियों से किये जाते हैं। एक प्रकार से ये आश्रम मानव–निर्माण के आदर्श शिक्षा–क्षेत्र रहे हैं, समाज में इनका स्थान विशिष्ट प्रकार का समादरपूर्ण रहा है।

निःसन्देह कालिदास ने ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों का वर्णन अधिक विस्तार से किया है। उसके अधिकांश पात्र आदर्श क्षत्रिय रहे हैं। स्वाभाविक है कि उनके वर्णन में उनके वर्ग का रूप विशद होकर समक्ष आया है। कवि ने अपने क्षत्रियों की कसौटी विशेष रखी है। वह क्षत्रिय "सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्" आजन्म शुद्ध देखना चाहता है। उसने "क्षत" से रक्षण करने वाले को जग–विख्यात "क्षत्रिय" माना है–

"क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः" (रघु० २–५२)

उसके पात्र– दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, अतिथि दुष्यन्त, सभी आर्य आदर्श के संस्कारशील, मर्यादा और नीति के प्रतिनिधि हैं। उनका महत्त्व "स्ववीर्यगुप्ताहि मनो प्रसूतिः" में स्पष्ट दिखाई देता है। चरित्रशीलता और मर्यादाप्रवणता के यद्यपि दिलीप, रघु आदि के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु "अनिर्वचनीयं परकलत्रम्" के एक सूत्र में उनका उच्च शील है, जो समस्त रूप में निहित हो जाता है। इसके विपरीत कालिदास ने क्षत्रियों के उक्त आदर्श के विपरीत अग्निवर्ण राजा के दूषित चरित्र पर भी प्रकाश डालकर यह बतलाया है कि आदर्श के प्रतिकूल चलने वाले क्षत्रिय के जीवन का कैसा दुष्परिणाम हो जाता है। इसी प्रकार जब एक बार कुशावती नारी रूपलावण्य से युक्त हो राज प्रासाद के शयन कक्ष में रात्रि के निबिड़ अन्धकार में सहसा प्रविष्ट हो राजा के सम्मुख खड़ी हो जाती है, तब रघुवंश के उदात्तचरित राजा ने सर्वप्रथम उसके इस साहस पर सावधान करते हुए सूचित किया कि– खबरदार ! ऐसी कोई बात न कहे, जो इस उच्चवंश की चरित्र मर्यादा के प्रतिकूल हो; क्योंकि "स्ववीर्यगुप्ताहि मनो प्रसूतिः।"

कालिदास के काल के क्षत्रियों को उचित जातकर्म–

सस्कार, उपनयन आदि दिये जाते थे और उनकी शिक्षा में धनुर्वेद, सैन्य–शिक्षा का भी समावेश होता था। आश्रमों में भी यह व्यवस्था रहती थी। ऋषिवर्ग केवल शास्त्रीय शिक्षण में ही वर्चस्व नहीं रखते थे, महाभारत के द्रोणाचार्य आदि की परम्परा, वसिष्ठ के द्वारा राम को दी गई सैन्य शिक्षा का क्रम कवि के काल में आश्रमों में भी प्रचलित रहा है। क्षत्रियों के समस्त संस्कारों पर इन आचार्यों का अधिकार रहता था। क्षत्रियों में मृगया की प्रवृत्ति रहती थी। प्रायः राजागणों में बहुविवाह प्रचलित रहा है। "बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते" (शाकुं० ३–१८), पर सर्वसाधारण समाज मे इसकी शायद उतनी स्वीकृति नहीं थी, क्योंकि राजाओं में ही "बहुपत्नी प्रथा" श्रूयते–सुनी जाती थी। क्षत्रियों में मदिरा पीने की प्रवृत्ति अवश्य रही है। अग्निमित्र की महारानी इरावती और रघु के सैनिकों में इसे प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मणों का सम्मान, यज्ञ यागों की प्रवृत्ति, दिग्विजय की रुचि अपनी प्रजा के प्रति सन्तान की तरह व्यवहार (स पिता, पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः), ब्राह्मणों व आश्रमों की सुरक्षा एवं योग–क्षेम का उत्तरदायित्व क्षत्रियों पर रहता था। न केवल पुरुष ही, क्षत्रिय महिलाएँ भी ज्ञान–विज्ञान शास्त्र में निपुण, शील–संस्कार से युक्त, कला– कौशल में प्रवीण रहती थीं। पुरोहितों, मुनियों का प्रभाव, शाप का भय, इन पर भी रहता था। वे पति–सहचारिणी, युद्ध में साथ देने वाली, स्वाभिमानिनी थीं और प्रायः पर्दा भी करती थीं।

कालिदास के साहित्य में वैश्यों की चर्चा अधिक नहीं मिलती। कहीं–कहीं राजा के द्वारा व्यापारियों के व्यापार–मार्ग की रक्षा–व्यवस्था का संकेत प्राप्त होता है। अतिथि राजा द्वारा अपनी शासन–प्रवीणता के अनुरूप वैश्यों को भयरहित व्यापार करने की व्यवस्था की गई थी। वह व्यापारी नदी की ओर प्रवास करते हुए यही अनुभव करता था कि अपने घर के दरवाजे के पास की छोटी–सी बावड़ी पर ही आया है और पहाड़ी की ओर प्रवास करते हुए भी वह यही समझता था, जैसे अपने बगीचे या घर में ही घूम रहा है। (रघु० १७–६४) अर्थात् व्यापारी के लिए उस काल के शासन में कहीं भी भय का कारण नहीं था, न कोई स्थान व्यापारी या समृद्ध व्यक्ति के लिए अगम्य ही था।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में धनमित्र नामक एक व्यापारी की चर्चा है, जो समुद्र द्वारा व्यापार करता था। उसके लिए दुष्यन्त यह अनुमान करता है कि शायद उसकी एकाधिक स्त्रियाँ होंगी; क्योंकि सम्पन्नों में यह प्रवृत्ति रहना अस्वाभाविक नहीं समझा जाता था। व्यापार की आय का छठा भाग शासकों को देना पड़ता था (रघु० १७–६५) यद्यपि शासन द्वारा व्यापार की सुविधाएँ सुलभ होती थीं, पर व्यापारी को अपने साथ सार्थवाह की व्यवस्था करनी पड़ती थी, वह भी अपने साथ का इन्तजाम करके निकलता था। शासन की सुविधा होते हुए भी कभी पथ में संघर्ष करना पड़ता था, ऐसी एक घटना का वर्णन 'मालविकाग्निमित्र' (अंक–५) में आया है। कालिदास के साहित्य से वैश्यों के व्यवहार, संस्कार आदि का कोई अधिक वर्णन सुलभ नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि उस समय वैश्यों का प्रभाव अधिक नहीं था, न उन्हें अधिक महत्त्व प्राप्त ही होगा।

इसी प्रकार शूद्रों के सम्बन्ध में भी कवि ने अधिक प्रकाश नहीं डाला है। 'शाकुन्तलम्' में धीवर के प्रवेश से साधारण रूप से शूद्रों की स्थिति की कल्पना होती है। अँगूठी लेकर राजद्वार में पहुँचकर भी वह उस पर अक्षरों से अज्ञान दिखाई देता है। पुलिस और इस कक्षा के अधिकारी भी शायद निम्न–वर्ग के रहते थे, जिनका ज्ञान भी अत्यन्त सीमित दिखाई देता है। प्रायः कवि के समय के दास–दासी, छोटे अधिकारी, प्रासाद के परिचारक–वर्ग प्राकृत का प्रयोग करते हैं। वे साधारण संस्कारी ही रहने चाहिए। पुलिस के सिपाही और थानेदार (अधिकारी) किसी को पकड़कर सहज– चाँटे चिपका देना, इनसे इकबाल करवा लेना, शराब पिलवाना, मौका पाने पर पैसे भी झटक लेना आदि व्यवहार नाटक के पात्रों से प्रकट होते हैं। ये कर्म सभी निम्न–स्तरीय लोगों के हैं। सारथी, सूत, दास, दासी, अश्वरक्षक, गजरक्षक आदि की चर्चाओं से भी इस वर्ग के विषय में विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

कालिदासकालीन महिलाओं में सुदक्षिणा, इन्दुमती, दमयन्ती, लविका, उर्वशी, यक्षिणी, भिक्षुणी, दासिकाएँ, परिचारिकाएँ, शकुन्तला की सहेलियाँ प्रियम्वदा, अनसूया तथा ऋषि पत्नियाँ इरावती, धारिणी, महारानियाँ आदि विशेष हैं। ये संस्कारी, शिक्षिता, चरित्रशील, चित्रकला वाद्य, संगीत, नृत्य–निपुण, व्यवहार–दक्ष तथा उदारवर्णी एवं आतिथ्य–सत्कार–प्रवीण होती थीं। 'अर्थो हि कन्या परकीय एवं (शाकुं० ४–२२) तथा– "इमे अपि प्रदेये" (शाकुं० ४–१८) आदि वाक्यों से स्पष्ट है कि कन्याएँ विवाहित ही होती थीं और "पराया धन" समझी जाती थीं। कठिनाई से कोई बालिका अविवाहित जीवन व्यवतीत करती थी।

दुष्यन्त ने शकुन्तला की सहेलियों से यह पूछा भी

था कि "क्या यह आजन्म तपस्विनी का जीवन व्यतीत करना अविवाहित रहना चाहती हैं?"

इससे यह प्रतीत होता है कि कुछ कन्याएँ ऐसी भी रहती थीं। गौतमी इस प्रकार का उदाहरण मौजूद है। लड़कियों की पसन्दगी भी की जाती थी। माता-पिता और वर की सम्मति भी अपेक्षित थी। चित्रों के द्वारा वर की अनुमति भी प्राप्त की जाती थी- प्रतिकृति रचनाभ्यः यह मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट कहा है। उस समय की बालिकाएँ अल्पवय में विवाहित नहीं होती थीं और शादी होने पर परिवार में उन्हें स्नेह और सम्मान का स्थान प्राप्त होता था। यह ठीक है कि "बहुवल्लभा राजानः" के अनुसार एकाधिक स्त्रियों से विवाह की राजा को सुविधाएँ सुलभ थीं, "अभिनवमधुलोलुपो" (शाकुं० ५-१) में यही संकेत है। यद्यपि कालिदास ने कुश राजा के युद्ध में वीर-गति पा जाने पर उसकी स्त्री कुमुद्वती के सती होने का उल्लेख किया है; पर सम्भवतः यह तथा रति के सती होने की कामना का वर्णन हमारी सम्मति में यह उससे पुराकाल की प्रथा का प्रतीक मात्र है। उसने अग्निवर्ण की रानी को सती नहीं बनाया है। गर्भिणी होने के सिवा उस पर शासन-संचालन का भार भी दिया है (रघु० १६-५१)। स्त्रियाँ उस समय व्रत-उपवास, नियमादि का आचरण करती थीं। शकुन्तला द्वारा सौभाग्यदेव का पूजन, धारिणी द्वारा पुत्र के लिए व्रत, औशीनरी के द्वारा प्रियानुरंजन-व्रत आदि की चर्चा आई है। शकुन्तला आश्रम में बालिका की तरह स्वच्छन्द रहती थी; पर विवाहित होने पर दुष्यन्त के समक्ष जाने के समय उसने पर्दा भी किया था (शाकुं० ५-१३)।

कवि के समय में मनोरंजन के साधन भी पर्याप्त रहते थे। उत्सव, नाटक, उद्यान-भोजन, नृत्य, संगीत, मनोविनोद, विविध प्रसंगों पर अभिनय के प्रयोग किये जाते थे। राजप्रासादों में संगीत, चित्र के विविध प्रयोग मिलते हैं। स्वयं राजा, राजकुमारियाँ संगीत, नृत्य, चित्रकला में प्रवीण दिखाई देते हैं। दुष्यन्त का चित्र-प्रेम, अग्निमित्र का चित्र-दर्शन, मालविका का संगीत, नृत्य में नैपुण्य, अग्निवर्ण की गायन-वाद्य में प्रवीणता, कथावार्त्ताओं का प्रयोग प्रायः होता रहता था। लोगों में कथा, कहानियाँ सुनने, कहने का प्रचार था- "उदयन कथाकोविद् ग्रामवृद्धान्" (मेघ०) इसी प्रकार शादी-विवाह के प्रसंग पर समारोह निकालने (रघु० ७, कुमार ७) की प्रथा थी। उन समारोहों पर फूल और खीलें बालिकाएँ बरसाती थीं (रघु० २-१०) शादी-ब्याह की अन्य रस्में तो उसी प्रकार होती थीं, जिस प्रकार आज भी प्रचलित हैं। महिलाएँ उस समय कौषेय (कोसे) और चीनांशुक भी पहनती थीं, उत्तरीय भी धारण करती थीं, अलंकार-आभूषण भी पहना करती थीं; शुक, सारिका, मोर, हंसों के पालने, चुगाने, उन्हें शिक्षित करने में अनुराग रखती थीं। मकान को सजाना, षट्रस भोजन का निर्माण, दीवारों पर चित्र अंकित करना, पुष्प-स्तवक, ताम्बूल, केशों को चन्दन की धूप द्वारा सुगन्धित बनाना, पैरों में महावर लगाना, घरों को रँगना, स्तनों को रँगना, शरीर पर पीठिका-मर्दन करना, मुँह पर पाउडर, सुगन्धित जल द्वारा पंखों को सिंचित कर हवा लेना, जलयन्त्र (फव्वारों) से स्नान, यन्त्र-धारागृह की रचना भी की जाती थी। वेश्या तथा अभिसारिकाएँ भी रहती थीं। देव-मन्दिरों में नर्तिकाएँ रहती थीं। कवि ने रस-विलास के विपुल साधनों का वर्णन किया है। नूपुर, मणिमेखला, काँची, रत्नों के विविध अलंकार, कर्णफूल, कटि-किंकिणी, बाहुवल्लभ, अभ्यंजन (कज्जल) आदि का वर्णन भी विस्तारपूर्वक मिलता है। नगर-भवन, प्रासादों की मनोहारी रचना के विविध वर्णनों से काव्य नाटकों के अनेक पृष्ठ भरे हैं। साकेत का सौन्दर्य और उसका करुण संहार, अलका का अनुपम वैभव, सप्त मंजिले महल, स्फटिक के फर्श, सुन्दर मनोरम उद्यान, विहार-स्थल, धनिकों के हर्म्य, मलय मन्द पवन के साथ भवनों से प्रसारित होने वाली सुरभित धूप, संगीत की स्वर-लहरी, इसी तरह अवन्ती के सुधा-धौत धवल भवन, विदिशा और मन्दसौर की रूप-रमणियों का संचार, शिप्रा का प्रियतम वात, उद्दाम-यौवन, शृंगार-विलास, विष-वैद्य, गर्भवैद्य, कौमार-भृत्य की कुशलता, ज्योतिष के ग्रह-मुहूर्त्त पर आस्था, मन्त्र, पूजा, टोटके, शाप, वर का महत्त्व, प्रवास के शकुन आदि का विचार, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड का महत्त्व- यह कालिदास के काल में स्पष्ट दिखाई देता है। विशेष रूप से परकीय स्त्रियों की चर्चा करना हेय समझा जाता था (अनिर्वचनीयं परकलत्रम्)। कामुक-वृत्ति के विषय में यद्यपि विलासिता का, शृंगार का प्रभूत वर्णन करते हुए भी, कवि ने धर्म-विरुद्ध काम के आचरणों को वर्जित बतलाया है (अप्यर्थ कामौ तस्यास्तां धर्म एवं मनीषिणः)। इसी कारण उसके काल के लोग "असक्तः सुखमन्तभूत"- आसक्ति से रहित हो सुखोपभोग करते थे। उस समय ऐश्वर्य और सुख विलासिता के साधन सुलभ थे, फिर भी लोग यश की भावना रखते थे। भौतिक सुख को अधिक महत्त्व नहीं देते थे। शरीर को नाशवान् समझकर उसको जीवन में महत्त्व नहीं दिया जाता था- "एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु

(शेष पृष्ठ ६७ पर)

एक शोधपूर्ण आलेख—

• डॉ० एच०एस० गुगालिया

यीशु मसीह का भारत-प्रवास एवं निवास

'यह सुस्पष्ट नहीं है कि यीशु अपना धर्म प्रवचन आरम्भ करने के पूर्व कहाँ गये थे और उन्होंने क्या किया था? मध्य एशिया, कश्मीर, लद्दाख, तिब्बत एवं आगे के उत्तरी क्षेत्रों में यह दृढ़ विश्वास है कि यीशु वहाँ प्रवास पर आये थे। कुछ लोगों का यह भी विश्वास है कि यीशु भारत में भी रहे थे' ("विश्व इतिहास की झलक"—पं० नेहरू)। इस तथ्य का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे रहस्यों पर से परदा हट सके।

'ख्रीस्तांचे हिन्दुत्व' से साभार

सर लारिंसर का अनुमान

सर लारिंसर ने बताया है 'गीता' बाइबिल पर से लिखी गई है। इसके करीब सौ श्लोक बाइबिल के समानार्थी हैं। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार— "महाभारत का युद्ध ईसा के जन्म से पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व हुआ था। उसी के आसपास गीता की रचना की गई थी।" डॉ० राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन फिलासफी' में बताया है कि "गीता का रचनाकाल ईसा के जन्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व का है।" बाइबिल के नये नियम— जिनमें ईसा मसीह का वृत्तान्त है, की रचना ईस्वी सन् ६३ में सर्वप्रथम मत्ती की पुस्तिका के रूप में सामने आई थी, शेष पुस्तिकाएँ तो और बाद की हैं। वस्तुतः गीता महाभारत के भीष्म पर्व के परिच्छेद २३ से ४० में समाविष्ट है। श्री आत्मलक्षी ने अपनी पुस्तक 'ईसा मसीह भारतीय दर्शन के प्रचारक' में यह बताया है कि गीता के एक सौ पचास से अधिक श्लोकों को बाईबिल में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपनाया गया है। उदाहरणस्वरूप गीता के अध्याय आठ का श्लोक ५ एवं ६ को देखने से यह विदित होता है कि वे बाईबिल में लूका के २३ : प३ के समानार्थी हैं। इससे यह निःसन्देह रूप से ज्ञात होता है कि बाईबिल में गीता के श्लोकों से काफी कुछ लिया गया है।

पण्डित नेहरू का अनुमान

'विश्व इतिहास की झलक' में पण्डित नेहरू ने कहा है— "कई विषयों में गौतम के उपदेशों का यीशु के उपदेशों पर सीधा प्रभाव है।" इससे यह सिद्ध होता है कि यीशु गौतम बुद्ध के ज्ञान से प्रभावित थे। उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला विश्वविद्यालय दूर-दराज के शिक्षार्थियों के ज्ञान प्राप्त करने का विश्रुत स्थान था, यीशु भी वहाँ ज्ञान की खोज में पहुँचे हों।"

भविष्य पुराण का सन्दर्भ

भविष्य पुराण ईस्वी सन् ११५ के लगभग लिखा गया था। इस पुराण के प्रतिसर्ग पर्व के तृतीय खण्ड में शकारि शालिवाहन जो विक्रमादित्य का पौत्र था, उसकी हूण देश के मध्य स्थित पर्वत पर एक गौरांग श्वेत वस्त्रधारी सुन्दर पुरुष से भेंट हुई थी, जब उसने उनसे परिचय पूछा, तो उस पुरुष ने कहा— "मैं ईशपुत्र हूँ और कुमारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। मैं म्लेच्छ धर्म का प्रचारक एवं सत्यव्रत में स्थित हूँ।" महाराज के और पूछने पर उसने बताया था— "मैं म्लेच्छ प्रदेश से आया हूँ, जहाँ मैंने म्लेच्छ धर्म की स्थापना की है। मेरा नाम ईसा मसीह प्रतिष्ठित हुआ है।" तब राजा ने उनका अभिवादन किया। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि यीशु भारत आये थे।

ख्रीस्तांचे हिन्दुत्व—लेखक डॉ० बाबूराव सावरकर का विवेचन

इस मराठी पुस्तक के लेखक ने अपने विदेश

भ्रमण के दौरान कई स्रोतों से ईसा मसीह के चित्रों को प्राप्त करके उनका विवेचन किया था तथा निम्न निष्कर्ष निकाले हैं–

क. यीशु के गले में भारतीयों के समान यज्ञोपवीत था तथा उनका केशबन्ध तत्सामयिक भारतीयों के अनुसार था।

ख. यीशु के हाथ में भारतीय योगियों के समान दण्ड था और उनके वस्त्र भारतीयों के अनुसार थे।

ग. उनके मस्तक पर भारतीयों के समान तिलक था एवं वे सकच्छ धोती धारण किये हुए थे।

इन चित्रों को श्री सावरकर ने एम० कर्अ ब्रेल क्लॉरेन्स गॅलेरी एवं जी०जी० मिले की पुस्तक 'खाईस्त लाइकनेस इन हिस्ट्री ॲन्ड आर्ट' से उन्होंने सन्दर्भित किया था।

बाईबिल के सन्दर्भ

यीशु ने बाईबिल में बार–बार कहा है– "मेरा उपदेश मेरा नहीं, मेरे भेजनेवाले का है।" (यूहन्ना ७ : १६)

जब उन्होंने अपने देश नाजरथ के सभाघरों में उपदेश दिया, तो उसे सुनकर सभी लोगों ने विस्मित होकर कहा– "इसको यह ज्ञान और चतुराई कहाँ से मिली ? यह तो बढ़ई का बेटा और मेरी का पुत्र ही तो है, जो कभी पाठशालाओं में नहीं गया, तो इसने यह ज्ञान कहाँ प्राप्त किया ?" – यूहन्ना ४७ : १४। इस पर से यीशू ने कहा– "नबी की हर जगह इज्जत होती है, उसके देश को छोड़कर।" – मत्ती १३ : ५४ से ५७।

बिना पाठशाला गये उस बढ़ई के पुत्र को ज्ञान और चतुराई कहाँ से प्राप्त हुई, इसका यीशु के नगरवासियों को भी आश्चर्य था। यीशु द्वारा अपने उपदेशों में गूढ़ एवं आलंकारिक भाषा का प्रयोग करना, जैसा कि महाभारत एवं जातक कथाओं में बहुतायत से हुआ है तथा दृष्टान्त लेकर अपने विचारों को सुस्पष्ट करने की पद्धति भी यीशु ने भारत से ही ग्रहण की थी। तभी तो उनका यह कहना सार्थक होता है कि उनका उपदेश उनका नहीं, उनको भेजने वाले का है। इससे यह सिद्ध होता है कि अज्ञातवास काल में यीशु मसीह काफी समय तक भारत में रहे और वहाँ उन्होंने धर्म एवं दर्शन का अध्ययन किया।

ईसाई मिशनरियों का दक्षिण भारत में प्रवेश

"यीशु की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष पश्चात् ही ईसाई मिशनरी का दक्षिणी भारत में प्रवेश हो चुका था, जबकि तब तक इंग्लैण्ड तथा पश्चिमी यूरोप में वे नहीं पहुँच सके थे। रोम में भी उनके प्रति घृणा का वातावरण था।" विश्व इतिहास की झलक– पं० नेहरू।

ईसाई मिशनरियों को सर्वप्रथम भारत में ही प्रचार करना क्यों उपयुक्त लगा, इसका एकमात्र कारण तो यही हो सकता है कि यीशु ने भारत की धरा पर वर्षों रहकर धर्म–ज्ञान प्राप्त किया था, इस कारण उन्हें भारत में धर्म प्रचार के लिए उपयुक्त वातावरण सहज प्राप्त होने का भरोसा था। भारत में उन्होंने काफी संख्या में धर्म–परिवर्तन कराया था और आज उन धर्मान्तरितों की पीढ़ियाँ भारत में वहाँ मौजूद हैं।

यीशू का अभ्यंजन

ग्रीक मूल शब्द खीस्त का अर्थ है तेल या मलहम से अभ्यंजन। यीशु को उनकी मृत्यु का कुछ समय पूर्व आभास हो चुका था। इसलिए उनकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व जटामांसी के इत्र से उनका अभ्यंजन किया गया था, तभी वे खीस्त बने, उसके पूर्व तक वे जीसस यानि धर्म (ईसाई) के प्रवर्त्तक ही थे।

परमेश्वर की विश्रान्ति का दिन शनिवार (अशुभ) को भोजन के समय इत्र का अभ्यंजन (अशुभ) ईसाई धर्म में माना जाता है। इसी कारण यीशु ने इसे अपने गाड़े जाने की पूर्व सूचना बताया था। उन्होंने अभ्यंजन के दो दिन बाद मंगलवार को फसह (इच्छा–भोजन) किये जाने की घोषणा भी की थी। इसे बाईबिल में "अन्तिम भोज" कहा गया है, जो सम्भवतया ६ अप्रैल ३० ईस्वी को हुआ था। सात अप्रैल ३० को उनको सलीब पर लटकाया गया था।

यह अभ्यंजन, मृत्यु–पूर्व भोज– श्राद्ध, पाद–प्रक्षालन, भारत के अतिरिक्त अन्य किसी देश में प्रचलित नहीं था। यीशु ने अपने शिष्यों का पाद–प्रक्षालन किया था तथा

उन्हें भी इसका अनुकरण करने को कहा था– यूहन्ना १३ : ४ से १६। यह अन्तिम भोज, पाद–प्रक्षालन–क्रिया पास्का पर्व के पवित्र दिन पवित्र स्थान यरूशलम में किया गया था। भारत में एकमात्र तत्समय मृत्यु पूर्व श्राद्ध तथा पादप्रक्षालन शुभ दिन एवं शुभ स्थान पर किये जाने की प्रथा थी। इससे यह विदित होता है कि यीशु ने यह सब भारत में ही आकर देखा–भाला तथा सीखा था।

यीशु मसीह और सिद्धियाँ

कहा जाता है कि यीशु को कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। नामतः — दूरश्रवण, दूरदर्शन, पानी पर चलना, समाधिस्थ होना, स्पर्श से लोगों को रोगमुक्त करना, तूफान आदि प्राकृतिक विपदाओं की पूर्व सूचना देना, लोगों के विचारों को भाँप लेना, मनोवाञ्छित वस्तुओं को निमिष–मात्र में प्राप्त कर लेना, दुष्टात्माओं को देह से मुक्त करना, भूखों को भोजन करा देना, वशीकरण, मृतकों को जीवित कर देना, देह का रूपान्तरण कर लेना, अन्धे, गूँगे, बहरे, लूलों को ठीक करना, जल को द्राक्षा–रस बना देना, प्राणों को ब्रह्म–रन्ध्र में प्रवेशित कर शरीर को मृत समान बना लेना, भविष्य को जान लेना आदि।

भारत में सीखी इन्हीं सिद्धियों से उन्होंने अपने देश में जाकर धर्म–प्रचार करते समय आजमाया था और करीब ३००० लोगों को अपना शिष्य बनाया था। यीशु स्वयं साधना करने तथा बाद में इजराइलियों के उत्पीड़न से बचने के लिए, ऐसे दो बार भारत आये थे। उन्होंने वर्षों तक हिमालय (स्वर्ग) में रहकर योग–विद्या, दर्शन, धर्मशास्त्र, मन्त्र–तन्त्र आदि की साधना की थी। इसीलिए वे कहा करते थे– "मैं स्वर्ग से उतरा हूँ। मैं स्वर्ग से उतरी रोटी हूँ।" इन्हीं सिद्धियों के कारण वे सलीब पर समाधिस्थ हुए, उन्हें अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हुआ और उन्होंने भविष्यवाणी की और लोगों को चमत्कृत किया था।

सलीब पर यीशु की मृत्यु नहीं हुई थी

राज्यपाल पीलातुस ईसा को निर्दोष मानता था; किन्तु जब महायाजकों एवं पुरनियों तथा उपस्थित जनता ने ईसा को प्राणदण्ड देने को मजबूर किया, तो उन्हें यीशु को सलीब पर लटका देने की आज्ञा देनी पड़ी थी। पीलातुस ने रोमन सम्राट् को सन् ३२ में एक पत्र लिखकर यीशु की निर्दोषिता तथा उन्हें कोई राज्य पाने की लिप्सा नहीं है, ऐसा अवगत कराया था और लोगों के दबाव में आकर उन्हें ऐसा निर्णय लेना पड़ा उसमें दर्शाया गया था। इस पत्र की मूल प्रति रोम स्थित वेटिकन के ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

बाध्य किये जाने पर पीलातुस ने भीड़ के सामने अपने हाथ धोते हुए कहा– "मैं इस धर्मात्मा के खून के लिए दोषी नहीं हूँ।" इसी कारण पीलातुस ने ऐसा प्रबन्ध किया कि यहूदियों का गुस्सा ठण्डा पड़ जावे और यीशु मरे नहीं। उन्होंने शुक्रवार को सूर्यास्त के कुछ घण्टे पूर्व यीशु एवं दो खूंखार डाकुओं को सलीब पर चढ़ाया। यहूदी कानून के अनुसार सूर्यास्त होते ही लटकाये हुए लोगों को क्रूस पर से उतार लिया जाता था। सूर्यास्त होने पर जब उन डाकुओं को सलीब पर से उतारा गया, तो वे मरे नहीं थे; बल्कि जिन्दा थे, अतः नियमानुसार उनके पैरों को तोड़कर उन्हें छोड़ दिया गया। सिपाहियों ने ईसा को जाँचा, तो उनको मरा समझकर उनके पैर नहीं तोड़े। सिपाहियों ने उनके शरीर पर छुरा भोंका तो

ईसा मसीह की पहली भारत यात्रा का संभावित मार्ग [ए फेबर कैसर की पुस्तक के आधार पर]

वहाँ से रक्त और पानी निकला– यूहन्ना १६ : ३४। यीशु को कोई आह नहीं निकली, क्योंकि वह समाधिस्थ थे। उनका एक शिष्य उनके शव का कब्जा प्राप्त करने के लिए पीलातुस के पास पहुँचा और शव की माँग की। तब पीलातुस ने "आश्चर्य किया कि वह इतनी जल्दी मर गया।" – मरकुस १५ : ४४। तब पीलातुस ने शव यूसुफ को देने का परवाना दे दिया। सिपाहियों ने यीशु का शव यूसुफ को दे दिया।

तीन व्यक्ति एक साथ सलीब पर लटकाये गये और दो जिन्दा निकले तो तीसरे के मृत होने का कोई कारण नजर नहीं आता है। सलीब पर मौत कई घण्टों बाद, भूख–प्यास, जानवरों के हमलों, मौसम की विपरीतता के कारण होती थी, जबकि यीशु के मामले में तो कुछ ही घण्टों के बाद उनको सलीब से अलग किया गया, ऐसी

स्थिति में उनके मर जाने का सैकड़ों में एकाध ही सम्भावना थी। जहाँ तक कीलों के घावों का प्रश्न था, वे तो उचित चिकित्सा से शीघ्र ठीक हो सकते थे। मृत्यु के थोड़े समय पश्चात् ही हृदय कार्य करना बन्द हो जाने से घाव से रक्त की कुछ बूँदें ही निकलतीं। अतः शरीर–विज्ञान–शास्त्र के नियमों के अनुसार ईसा के शरीर से रक्त का प्रवाह होना यह सिद्ध करता है कि यीशु क्रूस पर मरे नहीं थे।

स्टटगर्ट जर्मन संस्थान के सचिव कर्ट बेरना ने काफी अनुसंधान कर दो पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की हैं। एक पुस्तक का नाम "ईसा की मृत्यु क्रूस पर नहीं हुई" दूसरी का नाम था "चादर"। वैज्ञानिक विवरणों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि ईसा की मृत्यु क्रूस पर नहीं हुई थी, क्योंकि उनका हृदय कार्य कर रहा था, जिस कारण शरीर के घाव से खून बह रहा था। यदि हृदय–गति बन्द हो जाती, तो रक्त का प्रवाह भी बन्द हो जाता। युसूफ ने ईसा को गन्ध एवं एलवा के मिश्रण से तर चादर में लपेट कर एक नयी खुदी कब्र में, जो चट्टान में उसने खुदवाई थी, लिटाकर फिर उसे पत्थर से ढँक दिया गया। उनको दफन न किया जाना तथा कब्र में गाड़ा न जाना यह प्रतिपादित करता है कि यीशु क्रूस पर मरे नहीं थे। कब्र द्वार पर यूसुफ पत्थर रखकर गया था– मत्ती २७ : ५७ से ६०। यीशु की वह चादर नौवीं सदी तक यरूसलम में रही फिर कुस्तुनतुनियाँ होती हुई बेल्जियम पहुँची, वहाँ से वह चादर सन् १५३५ में तुरीन पहुँची। बाद में सन् १६४६ में उसे तुरीन के आर्कविशप को सौंप दिया गया। उस चादर पर जो खून के दाग मिले; जाँच में सिर के काँटों के ताज के कारण बहनेवाले खून के थे। यदि यीशु को मरे थोड़ा समय हो जाता, तो सिर के घावों से खून नहीं बहता। इससे यह साबित होता है कि यीशु का हृदय सक्रिय था। तुरिन चादर की वैज्ञानिक जाँच निष्कर्ष से ईसाई चर्च में बड़ा बवाल मचा, अन्त में ३० जून, १६६० को पोप जॉन तेइसवें ने एक फतवा देकर इस विवाद को शान्त किया। "चादर" पुस्तक में इन्हीं विवादों का विस्तार से वर्णन है।

गुफानुमा कब्र पर पत्थर रखकर बन्द किया जाना भी सप्रयोजन था; क्योंकि इससे उसमें बन्द व्यक्ति चाहे तो आराम से श्वास ले सकता था। यदि उसको वहाँ से बाहर आना हो, तो उसे मात्र उस पत्थर को खिसकाना था। अन्यथा मृत व्यक्ति के मामले में ऐसा करना निरर्थक होता।

उस पत्थर को खिसका कर ईसा सुबह बाहर निकले। पुनः गिरफ्तार होने के अन्देशे के कारण यीशु गुप्त रूप से अपने शिष्यों से मिले। उनका, लोगों की नजर न पड़े ऐसे स्थानों पर अपने शिष्यों से मिलना यह भी सिद्ध करता है कि वे लौकिक थे अलौकिक नहीं। इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यों से यह साबित होता है कि ईसा सलीब पर से जीवित बच निकले थे।

यीशु की प्रथम भारत–यात्रा

प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् ऐन्द्रिय फेबर कैसर ने अपनी पुस्तक, "जीसेस डाइड इन कश्मीर" में ईसा की तेरहवें वर्ष से उन्तीसवें वर्ष की आयु की, अनुसंधान करके बड़ी समाधानकारक जानकारी दी है, जबकि इस अवधि के बारे में नये नियम मौन हैं। लुका ने २ : १ से ५२ तक में यीशु के १२ वर्ष तक की अवधि की यीशु की जीवनी का वर्णन किया है। उसके बाद तीस वर्षीय यीशु बपतिस्मा लेकर प्रवचन देते हैं– लुका ३ : २१।

निकोलाई नोतोविच रूसी यात्री ने उन्नीसवीं शताब्दी में जब कश्मीर, लद्दाख और छोटा तिब्बत का प्रवास किया, तब वह हेमिस नामक लामाओं के केन्द्र के बड़े बौद्ध लामा से चर्चा–रत हुए। तब उन्हें लामा ने अपने विशाल ग्रन्थालय में एक ऐसी हस्तलिखित पुस्तक का जिक्र किया, जो पाली मूल की होकर उसका तिब्बती में अनुवाद है, जिसमें यीशु मसीह का भारत, नेपाल एवं तिब्बत प्रवास का वर्णन है। इस पुस्तक के चौथे खण्ड के पाँचवें श्लोक में संक्षेप में बताया गया है–

"कुछ समय पश्चात् इजराइल में पवित्र; किन्तु गरीब दम्पति के यहाँ पर एक सुन्दर पुत्र हुआ। बाल्यकाल में ही उसने लोगों को ईश्वर के एक तथा अविभाजित होने के बारे में बताया। उसका नाम ईसा रखा गया। तेरहवें वर्ष का होते ही कई कुलीन वंशज उससे अपनी बेटी का सम्बन्ध करने के लिए उसके माता–पिता के पास पहुँचे। इसी दौरान वह घर से भाग कर एक काफिले के साथ भारत के सिन्ध में आत्मोन्नति द्वारा ब्रह्म–ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से आ पहुँचा। उस समय भारत एवं इजराइल के मध्य व्यापारियों के काफिले आते–जाते रहते थे। इसके लिए पूर्व में जाकर उसे भगवान् बुद्ध के सिद्धान्तों का अध्ययन करने का तय किया। सिन्ध से वह पंजाब आया। वहाँ से उड़ीसा के जगन्नाथधाम पहुँचा, जहाँ व्यासकृष्ण की समाधिस्थल के ब्राह्मणों ने उसे वेदाध्ययन कराया। वे छह वर्ष तक जगन्नाथपुरी, राजगृह एवं वाराणसी में रहे और उन्होंने वेदों के अलावा उपनिषदों

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

अटलबिहारी वाजपेयी

कुछ यादें कालेज के दिनों की

— शंकर पुणतांबेकर

बहुत कम लोग ऐसे देख पड़ते हैं, जो सामान्यत्व और असामान्यत्व का विलक्षण मिश्रण होते हैं। हम इनके बारे में कहने को बाध्य हो जाते हैं– कितना असामान्य और इतना सामान्य हमारे जैसा अथवा कितना सामान्य और इतना असामान्य संतों-जैसा। अटल बिहारी वाजपेयी ऐसे ही लोगों में से एक हैं।

वे आज देश के प्रधानमंत्री हैं। संसद् में चालीस वर्ष विरोधी पक्ष की भूमिका निभाने के बाद इस पद पर पहुँच सके हैं। वे जिस भारतीय जनता पार्टी के हैं, उस पर नित्य साम्प्रदायिक और फासिस्ट होने का लाञ्छन लगाया जाता रहा है, लगाया जा रहा है।

हमारे यहाँ राजनीति पोलो का खेल है उन लोगों का, जिनके पास घोड़े हैं– अमीरी के घोड़े, खानदान के घोड़े, सत्तासीन बाप-दादों के घोड़े।

अटल बिहारी वाजपेयी के पास जब वे राजनीति में आये– इनमें से कोई एक भी घोड़ा नहीं था। वे उन लोगों में से नहीं थे, जो सुख से ऊबकर राजनीति में उतरते हैं अथवा उन लोगों में से भी नहीं, जिन्हें राजनीति में रहकर देश नहीं, अपने आप को बनाना होता है।

पद और वंश से तो व्यक्तित्व को गरिमा प्राप्त हो जाती है ; पर पद और वंश को व्यक्तित्व से गरिमा बहुत कम लोग दे पाते हैं। देश का प्रधानमंत्री-पद विभूषित करने वाले ऐसे व्यक्तियों में हम तीस वर्ष पूर्व के लाल बहादुर शास्त्री का और आज अटल बिहारी वाजपेयी का नाम ले सकते हैं। संघ-संस्कारित अटलजी को तो किसी का आशीर्वाद भी नहीं रहा। उन्हें कोई 'गाड फादर' नहीं था। पूर्णतः 'सेल्फ मेड' व्यक्तित्व है उनका।

राजनीति में चरित्र और मेधा कम ही देख पड़ते हैं। मेधा यदि देख ही पड़े, तो वह कूटनीति में परिणत हो जाती है।

अटलजी चरित्र और मेधा वाले व्यक्ति हैं। उनकी मेधा यदि कूटनीति बनी भी,तो स्वहित में कभी नहीं, राष्ट्रहित में सदैव बनी।

याद आते हैं ग्वालियर के वे दिन (१९४१-१९४५) जब अटलजी विक्टोरिया कॉलेज-(अब रानी लक्ष्मीबाई कॉलेज) में पढ़ते थे। वे छात्रसंघ के जनरल सेक्रेटरी पद के लिए खड़े होते थे और इतने लोकप्रिय थे कि सहज चुनाव जीत जाते थे।

जनरल सेक्रेटरी (जी.एस) केवल 'सोशल गैदरिंग' के लिए नहीं होता था। वह छात्रों की शिकायतें सुनता और कॉलेज अधिकारियों की सहायता से उन्हें दूर करने का प्रयास करता। गरीब छात्रों की फीस माफ करवाना, विद्यार्थी सहायक संघ से पुस्तकें दिलाना, छात्रवृत्ति मंजूर कराना– ये महत्त्वपूर्ण काम भी इसके जिम्मे थे। वह विश्वयुद्ध का समय था। आज के पचपन साल पहले ग्वालियर-जैसे बड़े शहर में भी घर-घर बिजली नहीं थी। बिजली जैसे कार थी– बड़ों की चीज। सो रोशनी मिट्टी के तेल पर ही निर्भर थी। और विश्व-युद्ध के उस विकट काल में मिट्टी का तेल दुर्लभ था, राशन की दूकान से सीमित कोटे में मिलता। छात्रों को इससे बड़ी दिक्कत होती, विशेष रूप से परीक्षा के दिनों में। मुझे याद है, अटलजी ने छात्र संघ के किसी अधिकारी देशराज की सहायता से छात्रों के लिए मिट्टी के तेल का विशेष कोटा बिना किसी आन्दोलन के मंजूर करवा लिया था। छात्रों की खुशी का ठिकाना नहीं था। अन्धों को जैसे आँखें मिल गयी थीं। उस वर्ष के 'सोशल गैदरिंग' के 'फनी प्राइज डिस्ट्रीब्यूशन' में देशराज और अटलजी को मिट्टी के तेल का (खास तौर पर बनवाकर)

एक-एक छोटा पम्प प्रदान किया गया था।

'फनी प्राइज डिस्ट्रीब्यूशन' में एक वर्ष एक लड़की को 'मूँछें' प्राइज में घोषित हुईं। लड़की के होठों पर कुछ-कुछ बाल थे। लड़की को शायद इसकी भनक लग गयी थी, वह इस कार्यक्रम में आयी ही नहीं। विशाल मंच से, जो कैण्टीन की इमारत के सामने के दूर तक फैले प्रांगण के मध्य भाग में बना था, लड़की का नाम दो-तीन बार मूँछें दिखाकर पुकारा गया, तो छात्रों से खचाखच भरा प्रांगण तालियों की आवाज से गूँज उठा, पर लड़की जो हम छात्रों के लिए 'परी' थी, भीड़ में से प्रकट नहीं हुई।

और लड़की के नाम मूँछों की घोषणा छात्र-संघ के इतिहास में एक बड़ी घटना बन गयी। उन दिनों छात्रसंघ का अध्यक्ष प्रिंसिपल की ओर से प्रोफेसरों में से नामजद होता था। अध्यक्ष प्रोफेसर ने मूँछों की घोषणा पर एतराज किया। इसे एक अभद्र घटना बताया और इसके लिए 'जी एस' यानी अटल जी को जिम्मेदार ठहराया। काफी दिनों तक अध्यक्ष और अटलजी में चखचख चलती रही। छात्रों ने ही अन्ततः स्वीकार कर लिया कि उनकी ओर से ऐसी गुस्ताखी नहीं होनी चाहिए थी। इस 'एपिसोड' (कथांश) का महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि लड़की ने-कहने को वह बड़े की बेटी थी, अपनी ओर से कोई शिकायत नहीं की थी। अटलजी ने भी खेद व्यक्त किया कि ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए था, पर उन्होंने छात्रों के जायज अधिकारों पर अधिकारियों के अंकुश का विरोध किया,... डटकर विरोध किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि आगे से छात्रसंघ का अध्यक्ष छात्रों में से ही चुना जाने लगा और अगले वर्ष अटल जी ही अध्यक्ष चुने गये।

अटलजी ने जो संघर्ष किया, उससे छात्र-संघ को अधिक अधिकार मिले, जिनका निर्वाह उन्होंने अध्यक्ष के नाते पूरी शिष्टता और जिम्मेदारियों के साथ किया।

'सोशल गैदरिंग' में अध्यक्ष और महामन्त्री सर्वेसर्वा। पैसे खाने की पूरी गुंजाइश, पर जब-जब अटली जीएस् या अध्यक्ष रहे, पैसे के मामले में उनका दामन हमेशा साफ रहा। गैदरिंग के प्रमुख अतिथि के रूप में हर बार किसी ऊँचे व्यक्ति को आमन्त्रित किया जाता। एक वर्ष राहुल सांकृत्यायन आये थे। ऐसे अवसर पर अटलजी जब भाषण करते, तो बाहर के मेहमान भी मन्त्र मुग्ध हो जाते थे।

. . अटलजी कविता भी करते थे, मंच पर उनका कविता-पाठ भी मुग्धकारी होता था। वे जब बी०ए० के अन्तिम वर्ष में थे उसी वर्ष (१९४४-४५) डॉ शिवमगल सिंह 'सुमन' हमारे कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। 'सुमन' जी पहले से ही कवि-रूप में हिन्दी-जगत् को ज्ञात थे। वे उस जमात के गीतकारों में से थे, जो अपने को दीनहीनों की आवाज कहते हैं। उन्हीं दिनों इनका एक संग्रह प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था-जीवन के गान। अब इस संग्रह में आवाज श्रमिकों-खेतिहरों की और स्वयं कवि की जिन्दगी राजकुमार-सी। 'सुमन जी' का व्यक्तित्व भी एकदम आकर्षक और मुग्धकारी था। इसी विसंगति को देखते हुए अटल जी ने 'सुमन जी' पर एक व्यंग्यात्क कविता लिखी थी, जो उसी वर्ष के कालेज पत्रिका के हिन्दी विभाग के प्रथम पृष्ठ (ओपनिंग पेज) पर छपी थी। 'सुमन जी' के लिए यह अवश्य ही गौरव की बात है कि अटल जी उनके 'कैरियर' के 'फर्स्ट बैच' के छात्र थे।

कॉलेज इमारत की दाहिनी ओर पिछले विंग में एक बड़ा-सा कुँआ था- पता नहीं यह अब है या नहीं। इस कुएँ की जगत पर बैठकर खाली घण्टों में हम छात्र प्रायः गपशप लगाया करते। अटलजी भी कई बार होते। युद्ध-काल था, सो युद्ध की बातें भी निकल आतीं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन की बातें भी चल पड़तीं। कई बार हम लोग जिम्मेदार नागरिक की तरह गम्भीर हो उठते थे- क्या भारत को युद्ध में अंग्रेजों का साथ देना चाहिए? अंग्रेज क्या सचमुच अपने वचन का निर्वाह करेंगे कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वतन्त्रता दे दी जायेगी आदि। उन्हीं दिनों वेंडेल विल्की की पुस्तक 'वन वर्ल्ड' प्रकाशित हुई थी। अमरीकी लेखक की यह पुस्तक करीब-करीब सभी ने पढ़ी थी। इस पुस्तक पर भी हमने एक बार जमकर चर्चा की थी। हम अपने भावी कैरियर के बारे में भी यहाँ बोलते। हम जिन्दगी में क्या बनेंगे? क्या बन पाना हमारे ही हाथ में है? एम्बिशन से मिशन बड़ा है। पर एम्बिशन (महत्त्वाकांक्षा) की भी अपनी महत्ता है। अटलजी कहते 'एम्बिशन' हो, पर वह 'डिसिप्लिन्ड एम्बिशन' होना चाहिए। 'डिसिप्लिन्ड' तो 'मिशन' को भी होना चाहिए। हमें अटलजी की इस तरह की बातें खूब अच्छी लगतीं। अपने सामान्य से लिवास में वे हमें सादा जीवन और उच्च-विचार की प्रतिमूर्ति लगते।

मुझे याद है एक बार 'ग्रेटनेस' पर बात चल पड़ी थी। वे बोले थे- 'ग्रेटनेस' क्या नाम और प्रसिद्धि में ही है? बड़ा लेखक, बड़ा खिलाड़ी, बड़ा नेता, बड़ा अभिनेता, बड़ा विजेता महान् होता ही हो, ऐसा नहीं। विजेता की

दृष्टि से ही विचार करें, तो विजयी औरंगजेब क्या महान् है और परास्त दारा क्या महान् नहीं है? दारा, राणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान अपनी पराजयों में भी कितने महान् हैं। सवाल मिशन का है– जय–पराजय का नहीं। फिर व्यक्ति छोटा हो या बड़ा, उसे यह देखना है कि औरों के लिए उसमें कितनी उदारता है, संवेदनशीलता है और स्वयं कितना खुला मस्तिष्क है।

बातें तो सभी इस प्रकार की करते हैं, पर उनकी कथनी और करनी में अन्तर होता है। इसीलिए वे महान् नहीं बन पाते। आज विचार करते हैं, तो देखते हैं अटल जी में महानता के बीज कैसे आरम्भ से ही पड़ गये थे।

तब हमने कभी नहीं सोचा था कि अटलजी राजनीति में जायेंगे। हम जानते थे, वे प्राध्यापक बनेंगे। कानपुर से राजनीति–शास्त्र में प्रथम श्रेणी में एम.ए. कर आने के बाद (१९४७) उन्हें प्रस्ताव (ऑफर) भी आया था। उनकी नियुक्ति उज्जैन के माधव कॉलेज में हो गयी थी, पर वे नियुक्ति ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में ही चाहते थे। वे प्राध्यापकी में आते, तो एक ऊँचे कवि बनते– विचारोत्तेजक क्रान्तिकारी कवि।

यह विशेष बात है कि आज जब भारतीय राजनीति झूठ, मक्कारी, भ्रष्टाचारिता, स्वार्थपरता, जातिवाद, भाई–भतीजावाद, धनवाद के दलदल से सराबोर है, उस दशा में अटलजी उससे अछूते रहे हैं। उनकी राजनीति– 'राजनीति बनाम राष्ट्रनीति' नहीं है, वह राष्ट्रनीति का ही पर्याय है।

ऐसा नहीं कि कुएँ की जगत पर हम जगत की गम्भीर बातें ही करते, इनमें 'लाइट मूड' की बातें भी होतीं, चुटकुलेबाजी भी। उन दिनों बी.ए. फाइनल की कक्षा में पढ़ने वाला एक ऐसा छात्र था, जो कहते थे बी०ए० की परीक्षा में १४ बार अनुत्तीर्ण हो चुका था। आज उसका नाम नहीं याद आ रहा है। उसका व्यक्तित्व और ठाट–बाट ऐसे कि प्रोफेसर लगे। यह फर्राटेदार अंग्रेजी में ऐसा भाषण देता दुनिया के किसी भी विषय पर– सेक्स पर भी कि सुनने वाला दाँतों तले उँगली दबाये कह उठे– क्या यह प्रतिवर्ष बी०ए० में फेल होता है! उसका भाषण सुन हम लोग हँसी से लोट–पोट हो उठते थे, अटलजी भी।

छात्र–संघ के चुनाव के दौरान अटल जी पोस्टर चिपकाने में भले ही कभी न देखे गये हों, हाँ; चुनाव की समाप्ति पर उन्हें हटाने के अभियान में वे नित्य आगे रहे हैं। आज भी विक्टोरिया कॉलेज के रिकॉर्ड में इस अभियान के छायाचित्र मौजूद होंगे। शुरुआत के जमाने में कालेज के प्रिंसिपल भारत के जाने–माने शिक्षाविद् एफ.जी. पियर्स थे। वे भी इस अभियान में हिस्सा लेते।

बुरे को बुरा कहने और निर्भीक हो उसे लोगों के सामने उजागर करने में अटलजी कभी पीछे नहीं रहे। हम लोगों का बी०ए० का अन्तिम वर्ष था। उस वर्ष के 'सोशल गैदरिंग' में (जन. १९४५) एक कवि–सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था, जिसमें झाँसी–आगरा आदि के बाहर के भी कुछ कवि आमन्त्रित किये गये थे। सम्मेलन रात दस बजे था। पर ग्यारह बज गये, गाड़ी भेजने पर भी आमन्त्रित कविगण हाजिर नहीं हुए, तो अटलजी स्वयं उन्हें लेने रेस्ट हाउस पहुँचे। वहाँ जाकर वे क्या देखते हैं कि कवि लोग पीने में मशगूल हैं। अटलजी के माथे पर बल पड़ गये। कवियों को वे जैसे–तैसे मंच तक लाये। तब तक बारह बज चुके थे। अटल जी ने कवियों को मंच पर आदरपूर्वक बैठाया, छात्रों को उनका परिचय कराया और हम छात्रों के बीच उनकी उपस्थिति को गौरवपूर्ण बताया। लेकिन इसके पश्चात् झटके से दूसरे ही क्षण यह भी घोषणा की कि खेद है, यह कवि–सम्मेलन कैंसल किया जाता है। हम छात्र ऐसे कवियों से कविता नहीं सुनना चाहते, जिन्हें न समय का भान है और न अपने खान–पान का लिहाज। उस रात कविता–पाठ नहीं हुआ। छात्रों के साथ–साथ डॉ० 'सुमनजी' भी बड़े सकते में, जो इस कवि–सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे थे।

ऐसी कितनी ही बातें हैं कालेज के दिनों की, जो अटलजी के सुथरे चरित्र और सोच का परिचय देती हैं। इनके व्यक्तित्व की अपनी गन्ध थी। इस बारे में छोटी लेकिन उतनी ही ऊँची यह बात– छात्रसंघ के चुनाव के दौरान जहाँ पोस्टर लगाये जाते, बैनर ताने जाते, वहाँ 'कैनवेसिंग कार्ड' भी बाँटे जाते, जो विजिटिंग कार्ड के आकार के होते। उम्मीदवार सुगन्धित बनाने के लिए अपने कार्डों पर सेंट छिड़कते थे। अटल जी ने कभी सेंट नहीं छिड़का। एक बार लड़कियों–लड़कों के झुण्ड में अटलजी के कार्ड को लेकर एक लड़की को कमेंट था– अटलजी के कार्ड को सेंट की जरूरत ही नहीं, स्वयं उनके नाम में सेंट है।

अटलजी के नाम की इस सुगन्ध से ; दिव्य गन्ध से, भारत ही नहीं, आज पूरा विश्व गमक रहा है।

□

– २, मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५००२

कहानी

— मदन मोहन पाण्डेय

विश्वास की आत्मा

आज फिर होरी लाल रामकली के दरवाजे की ओर गया है। उसके हाथ में एक कागज का बंडल था और पैरों में फुर्ती थी। कुरता–पायजामा भी कायदे का धुला था। काले–घुँघराले बालों में भी एक करीना था। दरअसल वह अपनी वेशभूषा से थोड़ा लापरवाह रहता है। वरना अच्छा–खासा, लम्बा–चौड़ा जवान है। साँवला होते हुए भी चेहरे पर एक रौनक है, जो अपनी ओर आकर्षित करने भर को काफी है और यही लखन महतो का दर्द भी है। यह मैला–कुचैला होता, कुरूप होता, तो उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। लेकिन जब यह बाँका सजीला जवान उनके छोटे भाई रामहरख की जवान बेवा के घर में जाता है, तो लखन महतो को अपनी मूँछें झुकती नजर आती हैं। मुँह पर कोई न कहे, लेकिन पीठ पीछे किस–किस की जबान रोकेंगे। कोई और होता, तो वह मना भी कर देते। लेकिन होरी लाल रामकली का सगा जीजा है। भले ही अब रामकली की जीजी नहीं रहीं, लेकिन नाता तो बना ही रहा। उस पर तुर्रा यह कि होरी लाल, रामहरख के समय से ही परिवार में घुला–मिला रिश्तेदार रहा है। जब वह कैंसर से जूझकर चार में से तीन एकड़ खेत बेंच चुका था, तब होरी लाल ने अपनी ताकत भर मदद की थी। महतो का भी जी उछला था, लेकिन महतो की पत्नी ने कहा था– "अपने बेटों के लिए कुछ रखोगे या सब कुछ भाई पर ही न्यौछावर कर देने का इरादा है।"

महतो के मन को ठेस लगी थी। उन्होंने भाई के लिए खर्च ही क्या कर पाया था। वे बोले थे– "तुम बेकार की बात मत किया करो। आखिर रामहरख मेरा भाई है। उसके लिए खर्च करना मेरा फर्ज बनता है। मैंने उसे दे ही क्या दिया है? खेत के अलावा।"

महतो की पत्नी जानतीं थी कि महतो का संकेत माल जेवर की ओर है, जो बापू मरते दम चुपके से उसे दे गये थे और फिर जिसकी चर्चा ही कभी न चली थी, क्योंकि रामहरख कम उमर का होने के कारण उसके विषय में जानता ही नहीं था। खेती–पाती बाँटकर दे दी। महतो की पत्नी की नजर में यही क्या कम एहसान था। महतो के मन में इस बात का अपराध–बोध रामहरख की बीमारी में घिर आया था और वे उसे कुछ न कुछ दे देना चाहते थे। उनकी यही भावना ताड़कर पत्नी और जवान हो आये बेटों ने प्रतिवाद किया था। पत्नी तो लड़कों की ओर देखकर बोली थी– "भाई को सब कुछ दे दो और मेरे बच्चों को कटोरा पकड़ा दो, भीख माँगने को।"

फिर तो महतो के कुछ न कहने पर भी पत्नी और बेटों ने वह कुहराम मचाया था कि रामहरख की पत्नी रामकली ने आकर कहा था– "दादा जी! हमें कुछ नही चाहिए। केवल आपका आशीर्वाद हमारे साथ रहे।" और महतो की पत्नी से बोली थी– "जीजी! हमें आपका एक तिनका तक हराम है, लेकिन मरनेवाले को शान्ति की मौत मर तो लेने दीजिए।"

रामकली तो यह कह कर चली गयी; पर महतो की छाती पर जैसे सिल रख गई थी। रामहरख के बचने के आसार तो बहुत कम थे। सारी जमा–जथा की मालिक पत्नी है। वह औलाद के प्रेम में अन्धी है। काहे कुछ देने लगी। अपराध–बोध लेकर तो उन्हें जीना होगा। अगर रामहरख नहीं रहा, तो उसकी जवान बेवा रामकली परिवार की प्रतिष्ठा के लिए मुसीबत का पहाड़ बन जायेगी। अपने घर वाले मदद करने नहीं देंगे, तो बाहर वालों से घाल–मेल रोकने का नैतिक अधिकार भी वह खो चुकेंगे। भगवान् न करे, ऐसा हो।

लेकिन हुआ ऐसा ही। रामहरख दो बेटी और एक बेटे तथा रामकली को छोड़कर जब कैंसर के बहाने मौत के भयावह जबड़ों में समा गया, तब महतो को वे शब्द भी नहीं मिल रहे थे, जिनके द्वारा वह रामकली को सांत्वना देते। घर की माली हालत आईने की तरह साफ थी। एक एकड़ खेत के सिवा और सारी पूँजी हाथ से गुजरे वक्त की तरह गुजर चुकी थी। खेत तो देगा, तब देगा। फिलहाल तो फसल पर अनाज भी बहुत थोड़ा रह गया था। ऐसे समय होरीलाल ने उसे कुछ रुपये दिये थे, महीने–पन्द्रह दिन के गुजर–बसर के लिए और बाकी इन्तजाम के लिए खेत ठेके पर उठवा दिये थे। दो ढाई

हजार रुपया रामकली के हाथ में आ गया था, पर आज की मँहगाई में इतने पैसे की बिसात ही क्या? इसके आगे होरीलाल के पास कोई चारा नहीं था। वह पहले जरूर मिल में काम करता था। लेकिन मिल की छँटनी के बाद तो वह खुद तंगी में गुज़र कर रहा था। उसकी एकमात्र पूँजी उसकी अलमस्ती और मेहनत जरूर थी, जिसके सहारे जिन्दादिली के साथ दिन काट रहा था।

रामहरख के मरने के बाद वह महीना भर रामकली के घर रहा था। तब महतो की पत्नी और बेटे इतने ही दिनों में बड़बड़ाने लगे थे– "यह कुलच्छनी छाती पर मूँग दलेगी। अभी तो मर्द की चिता भी ठण्डी नहीं पड़ी है। जीजा सबके होते हैं; पर कोई हया–शर्म घोलकर नहीं पी जाता।"

बड़े बेटे राघव ने तो एक दिन गड़ासे में धार लगायी थी और छोटे बेटे काली चरन से कह रहा था– "चाचा तो गया ही। उन दोनों को टुकड़े–टुकड़े न कर दिया, तो मेरा नाम नहीं।"

लेकिन यह मौका उन दोनों को नहीं मिल सका था। अगले सबेरे किसी से बिना कुछ कहे होरीलाल मुँह अँधेरे ही कहीं निकल गया था। महतो के घर ने चैन की साँस ली थी– "चलो, जब चेते तभी सही।"

लेकिन उनकी यह खुशी भी ज्यादा दिन कहाँ रही। आज पाँच महीने बाद बैताल फिर डाल पर आ गया। होरीलाल को देखकर आज बेटों के साथ–साथ महतो के मन में भी सन्देह के बादल घुमड़ने लगे। वह बिना बीबी का है और यह बिना मर्द की है। जवानी के आँखें नहीं होती हैं। इतने दिन रामकली ने भले ही किसी तरह मेहनत करके भलमंसी से निबाहा। लेकिन अब मुश्किल है। बेटे तो अगिया बैताल हो रहे थे। राघव कह रहा था– "यह हरामजादी नाक कटवायेगी ही। साथ ही हमारे परिवार का एक एकड़ खेत भी होरीलाल को दे बैठेगी। समय रहते इसका इलाज करना होगा। शरीर के रोगी अंग को चीर–फाड़ कर उसे निकाल देना ठीक रहता है, नहीं तो सारा शरीर सड़ जाता है।"

पत्नी का स्वर लड़कों से दो अंगुल आगे का भविष्य देख कर आशंकित था। वह रामकली को ही रामहरख के मरने का कारण मान रही थी। आखिर होरीलाल आता तो पहले भी था।

महतो की निगाह में अतीत के वे चित्र घूम रहे थे, जब छोटा भाई हष्ट–पुष्ट कड़ियल जवान था और रामकली खेती के काम में उसका हाथ बँटाती। घर में समृद्धि की

स्मरणीय रहेंगे २ नवम्बर ९० और ६ दिसम्बर ९२

'क्यों नहीं?'

–कु० पूर्णिमा कोठारी

लेखिका कु० पूर्णिमा कोठारी अयोध्या–आन्दोलन में बलिदान हुए कोठारी–बन्धुओं, रामकुमार और शरद कुमार की बहन हैं, अब परिवार में अपने माता –पिता की एक यही सन्तान है, प्रस्तुत कविता में व्यक्त है कि वे आज भी उन्हीं चिर–परिचित पद चापों को सुन पाने की प्रतीक्षा कर रही हैं, जैसे कि अपने शहीद भाइयों के जीवन काल में सुनती थीं। ३० अक्तूबर ६० को जब कारसेवकों ने मुलायम सिंह सरकार के सभी आठ सुरक्षा–चक्रों को भेदकर राम जन्मभूमि पर खड़ी बाबरी इमारत के तीनों गुम्बदों पर भगवा फहरा दिया था, तो अपनी उस हार से खीझकर मुलायम सिंह ने २ नवम्बर ६० को घोर नृशंस बदला सैकड़ों निहत्थे कारसेवकों को पुलिस की गोलियों से भुनवाकर लिया था। ६ दिसम्बर ६२ को उक्त बाबरी ढाँचे को नामशेष कर कारसेवकों ने नया इतिहास रचा राष्ट्र–गौरव का। **–सम्पादक**

सुनती हूँ जब भी कोई आहट
नजरें जाती हैं सभी कामों से हट,
हर पल रहता है बस यही इन्तजार
कानों को सुनाई दे परिचित पदचाप
शायद तरसती नजरें देखें वो नजारा
जिसे हकीकत ने हर पल के लिए नकारा
पर सपनों की बात कुछ और है,
जानती हूँ सच्चाई पर किसका जोर है
जो भी सच है सामने आकर रहेगा
जिन्दगी का सबसे बड़ा सच 'मौत' है,
और ये भी एक शाश्वत सत्य है, कि
जिन्दगी और मौत में उतनी ही दूरी है।
जितनी धरती–अम्बर के बीच है,
नहीं रह सकते जैसे दिन–रात साथ–साथ
फिर मैं क्यों कर रही हूँ उनका इन्तजार
जिन्हें अपने बन्धन में लिये है मौत के हाथ
क्यों नहीं? बन्द करती देखना मेरी निगाहें
क्यों नहीं? सुनना बन्द करते मेरे कान
क्यों नहीं? क्यों नहीं? क्यों नहीं?

६/२–डी, खैलात घोष लेन, कलकत्ता– ७००००६

पायलें रुन–झुन बजती थीं। वे दिन ठहरे रह जाते, तो कितना अच्छा था। मगर उन सोने के दिनों को किसी की नजर लग गई। अब यह दिन भी देखने पड़े हैं।

महतो रात में इसी उहापोह में दरवाजे पर लेटे थे। पत्नी ने घर का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया था। सामने पगुराती भैंसों की घंटियों की आवाज थी और अकेले महतो लेटे थे। और दिनों में यह आवाज उन्हें सुखद लगती थी; लेकिन आज घंटियों की वही आवाज उनको छाती पर पड़ते हथौड़ों की चोट लग रही थी। सामने गलियारे के पार रामहरख के घर में दिया अभी जल रहा था और महतो की नसों में सन्देह के साँप रेंग रहे थे। पहले तो उन्हें रामकली पर भरोसा था, लेकिन अब इतनी देर तक दिया जलते रहने से उनका विश्वास सन्देह में परिवर्तित हो रहा था, ज़ो उनके धीरज और विवेक को दंश पर दंश मार रहा था। उनका मन हुआ दरवाजे की ओट से झाँककर देखा जाये। क्या–क्या गुल खिलाये जा रहे हैं। अगर लड़कों की बात सच साबित होती है तो फिर वह उन्हें रोकेंगे नहीं, वह चाहे जो करें। लेकिन यदि ऐसा न हुआ और भगवान् न करे ऐसा हो, तो वह कम से कम इसी अपराध–बोध से मुक्त होकर मर सकेंगे। चैन की जिन्दगी तो अब नसीब नहीं।

सोचते–सोचते उनके पैरों में पता नहीं कहाँ से जादुई वेग आ गया और उन्होंने खुद को रामहरख के दरवाजे पर झिर्री से आँख लगाये पाया। यद्यपि उनके मन का एक पक्ष कह रहा था, कुछ तो शर्म करो तुम बिरादरी के महतो हो। इस तरह अपनी ही छोटी भावज की जासूसी क्या तुम्हें शोभा देती है। पर दूसरे ही क्षण उनका संदेही हृदय कहता, देख लेने में क्या हर्ज है? एक मन कहता कुछ ऐसा–वैसा हुआ, तो क्या देखना आसान रह जायेगा। इन सारे विचारों को पीछे छोड़कर वह यन्त्रवत् दरवाजे से आँख लगाए हुए थे। मानो सारी इन्द्रियों की शक्ति अकेले आँखों में ही सिमट आयी थी।

सामने अलग–अलग चारपाइयों पर होरीलाल और रामकली बैठे थे। होरीलाल रामकली को पाँच हजार रुपये देकर कह रहा था– "मैंने इतने दिनों दिल्ली में मेहनत मजदूरी करके यही कुछ बचा पाया है। बड़ी तमन्ना थी, अपने लिए एक रेशमी कुरता बनवाने की। लेकिन बच्चों के नंगे बदन मेरी आँखों में तैर गए और तब दिमाग में आया कि बच्चों के कपड़े फटे होंगे, तो तुम्हारे भी तो साबित नहीं रह गए होंगे। लिहाजा कपड़ों का यह बंडल लिए आया। अब तुम इन्हें रखो या न रखो। मेरे तो कोई पहचानने वाला है नहीं। और रही बात इन रुपयों की, ये मैं तुम्हे इसलिए दे रहा हूँ ताकि एक गाय खरीद लो और उसके दूध से रोजमर्रा के खर्चे निकल सकें।"

हथेली पर मुँह टिकाते हुए रामकली ने कहा– "लेकिन जीजा जी! मैं आपका एहसान कैसे उतार पाऊँगी। यहाँ तो लोग ऐसे भी बीस बातें बनाने को बैठे हैं। अगर यह कपड़े और गाय देखेंगे, तो जीना मुहाल कर देंगे।"

होरीलाल फिर बोला– "इसमें एहसान की कोई बात नहीं। आज तुम्हारी जीजी जिन्दा होती, तो तुमसे कुछ ही कम उम्र के मेरे बच्चे होते। मैंने छुटपन में तुम्हें कई बार गोद खिलाया होगा। यह सब कुछ मैं तुम्हें अपनी बच्ची मानकर कर रहा हूँ। मेरा यह सुख छीनने का अधिकार तुम्हें नहीं है। तुम लोगों को देखकर तनिक देर को मेरे मन में बाप होने का गौरव जग जाता है। तुम्हें क्या पता इससे मेरी आत्मा को कितना सुख होता है। इन्हीं टुकड़े–टुकड़े सुखों के सहारे जीने और कमाने का सहारा बना रहता है, नहीं तो मेरा ही कौन अपना बैठा है। और खबरदार हौसला मत खोओ, तुम्हारे आगे तो तीन–तीन भविष्य की आशाएँ हैं। मैं सबेरे ही चला जाऊँगा मुँह अँधेरे। मैं नहीं चाहता कि लोग हमारे कारण सन्देह पालें। इस नाजुक रिश्ते की पवित्रता बनाये रखने के लिए ही मैं आगे से यहाँ शायद ही आऊँ। लेकिन मेरी आत्मा तुम्हारे परिवार के साथ ही रहेगी। जब मुझे लगेगा, तुम संकट में हो, तो तुम्हारा पत्र पाते ही मैं यहीं मिलूँगा।" यह कहकर होरी लाल अपनी बाँहों से आँखें पोंछने लगा। शायद उसके आँसू बह आये थे, जो रात के अँधियारे में भी विश्वास की पवित्र चमक से जगमगा रहे थे।

द्वार पर खड़े महतो को अपनी आँखों पर भरोसा नहीं हो रहा था। वे आँखें मलमल कर देख रहे थे कि होरीलाल आदमी है या फरिश्ता। आज यदि वे दूसरों की बात सुनने का गिरा हुआ काम न करते, तो गिरावट की सीमा क्या रहती? उनके पैरों में एक नया बल आ गया था और वे अपने पलँग पर लेट गये।

अब उनका मन संकल्प ले चुका था कि वे बेटों का इरादा कभी भी पूरा नहीं होने देंगे। इसके लिए चाहे उन्हें उनके खिलाफ पुलिस में ही क्यों न जाना पड़ जाए। और अव्वल तो उनके बेटे उनकी बात मान ही जायेंगे। पत्नी की प्रतिक्रिया अब उन्हें भिनभिननाती मक्खी की आवाज से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं लग रही थी। ❑

ग्राम– मसीत, पत्रा०– साण्डला
जनपद– हरदोई (उ०प्र०)

नवाब भागा– सोमनाथ का भाग्य जागा

– डॉ० रणजीत सिंह

भारतीय स्थापत्य के गूढ़ अध्येता ई०बी० हैवेल ने 'इन्डो आर्यन सिविलिजेशन' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "अशोक से आज तक भारतीय जीवन और चिन्तन का जो अमूल्य संकलन यहाँ की कलाकृतियों में संग्रथित है, उसके लिए विश्व भारत का ऋणी है। प्राचीनकाल से अब तक अन्य किसी भी राष्ट्र ने इतनी उदात्त संस्कृति का निर्माण नहीं किया है। धर्म को जीवन–दर्शन बनाने में इतनी सफलता किसी ने नहीं पायी है। किसी ने भी मानव जाति की ज्ञानराशि को इतना समृद्ध और सामर्थ्यवान् नहीं बनाया है।"

भारतीय चिन्तन की उदात्तता, दार्शनिकों की संवेदनशीलता और कलाकारों की सृजनशीलता का दर्शन हमें साहित्य में, कला में, स्थापत्य में, शिल्प में सर्वत्र होता है। राजनीतिक प्रभाव से सहस्रों वर्षों तक यह इस प्रकार अछूता रहा कि विश्व–व्यापार में दुनिया भर से सिमट–सिमट कर सोना–चाँदी, हीरा–जवाहरात भारत की ओर आते रहे, उपयोगी वस्तुएँ तथा उत्पाद भारत से बाहर जाते रहे। परिणाम–स्वरूप विदेशी आक्रमणकारियों ने लूटपाट से अपने खजाने भर लेने के साथ यहाँ के कला, विज्ञान, शिक्षा तथा संस्कृति को नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए तरह– तरह के प्रयास किये।

लौह पुरुष–पटेल

मध्यकालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों ने संस्कृति को नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए सर्वनाश का सहारा लिया। मठ मन्दिरों तोड़ कर, कलाकृतियों को खण्ड–खण्ड किया। पुस्तकालयों को जलाया, विद्वानों और विद्यार्थियों के प्राण–हरण किये। अंग्रेजों ने नयी शिक्षा–प्रणाली और भाषा के प्रचार–प्रसार द्वारा आधुनिक मानस को संस्कृति की प्राचीन परम्परा से अलग–थलग कर दिया। उनका अनुमान था कि इस शिक्षा से कुछ दिन बाद भारतवासी केवल अपने रंग और रक्त से ही भारतीय रह जायेंगे; जो काफी खरा उतरा; परन्तु भारतीय संस्कृति का यह वट–वृक्ष बार–बार शाखा–प्रशाखाओं के विनाश के बाद धरती से जीवन–रस लेकर पल्लवित होता है, पुष्पित होता है।

सोमनाथ के मन्दिर का विध्वंस और निर्माण इसी सांस्कृतिक संघर्ष की शौर्य–गाथा है। १९४७ में स्वशासन प्राप्त कर लेने के बाद सांस्कृतिक पुनरुत्थान उसी तरह एक अनिवार्य घटना है जैसे सूर्योदय के साथ पक्षियों का कलरव। अतएव यदि सरदार सौराष्ट्र के मानचित्र को सुधारने के बाद सोमनाथ के पुनरुद्धार का संकल्प न लेते, तो स्वतन्त्रता–संग्राम की यह कथा अधूरी रह जाती। उनके इस शिव–संकल्प में निहित है हिन्दू समाज की धार्मिक स्वतन्त्रता का संकेत, भावी पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक स्वाभिमान का दिशा–निर्देश। जहाँ उनकी इस घोषणा से वाममार्गियों और अलगाववादियों के सीने पर साँप लोटने लगा, वहीं नवनिर्मित पाकिस्तान के अखबारों को नारा मिल गया–

"आसमाने हिन्द पे गूँजी सदा–ए–सोमनाथ।
फिर किसी गजनी से कोई गजनवी पैदा करो।।"

सोमनाथ का मन्दिर प्रभास तीर्थ में स्थित है, जो काठियावाड़ प्रायद्वीप की जूनागढ़ नामक रियासत में स्थित है। लगभग दस लाख वर्ग किलोमीटर में फैली हुई इस रियासत के पूर्व में गिरिनार की पहाड़ियाँ और पश्चिम में उपजाऊ मैदान हैं; जहाँ कपास, मूँगफली, तिलहन और गन्ना मुख्य फसलें हैं। सूखी पहाड़ियों में गिरि के वन हैं, जहाँ प्रसिद्ध भारतीय सिंह (केसरी) अब भी पाये जाते हैं और जिनका शिकार करने के लिए दूर–दूर से राजा, नवाब आया करते थे। भावनगर, प्रभास पाटन और पोरबन्दर जैसे बन्दरगाहों और उपजाऊ भूमि ने शिक्षा, कला–कौशल

तथा व्यापार के द्वारा इस प्रदेश को समृद्ध बना दिया था।

शिव पुराण में बताये गये बारह ज्योतिर्लिंगों में यह सर्वप्रथम है। कहते हैं कि दक्ष प्रजापति ने अपने जामाता चन्द्रदेव को अपनी सभी (२७) पत्नियों के साथ समान रूप से प्रेम–व्यवहार करने के बजाय किसी एक पर अनुराग की वर्षा करते देखा और उपेक्षिताओं की शिकायत पर शाप दे दिया। परिणामस्वरूप क्षयरोग से ग्रस्त हो गये। रोगमुक्ति के लिए चन्द्रदेव ने प्रभास तीर्थ में भगवान् शिव की जिस स्थान पर आराधना की थी, वहीं यह सोमनाथ का मन्दिर निर्मित हुआ था। पश्चिमी भारतवर्ष में इसकी वही मान्यता है, जो उत्तर में काशी–विश्वनाथ की है। यदुवंश की राजधानी द्वारका और भगवान् कृष्ण के शरीर त्याग की भूमि 'देहोत्सर्ग' भी यहीं है। महारानी अहिल्याबाई ने सन् १८७३ में थोड़ी दूर पर सोमेश्वर भगवान् के एक अन्य मन्दिर का भी निर्माण करवाया था। गिरि की पहाड़ियों पर जैन–मन्दिर तथा बौद्ध–विहार इधर–उधर बिखरे हैं।

जिस प्रसिद्धि ने दूर–दूर से विद्वानों, विद्यार्थियों और व्यापारियों को आकर्षित किया, उसी ने पश्चिम एशिया से मुसलमान आक्रमणकारियों को भी। लूटमार के मजे साथ ही मजहबी प्रचार का सबाब सन् १०२४ में गजनी के महमूद गजनवी ने हमला किया और यहाँ से सैकड़ों ऊँटों पर लादकर सोना–चाँदी, हीरे–जवाहरात, चन्दन के दरवाजे और 'बुतशिकन' (मूर्तिभंजक) की उपाधि ले गया।

महमूद का हमला जितना भयानक था, उतना ही घनघोर था भीमदेव का बदला। अभी महमूद काठियावाड़ से बाहर निकला ही था कि उसकी फौजों पर भीमदेव टूट पड़ा। आस–पास के राजाओं ने भी सैनिक सहायता के लिए भेजे। महमदी भाग निकले और रेगिस्तान में भटकते महमूद से जा मिले। भीमदेव के प्रतिकार का समाचार इतना दिल दहलाने वाला था कि अगले साढ़े तीन सौ साल तक काठियावाड़ में शान्ति रही। अगले तीस वर्षों में उसने सोमनाथ का पुनरुद्धार करवाया। सुख–शान्ति, शिक्षा, कला–कौशल वापस आ गये।

सन् १४७२ में जो मुस्लिम हुकूमत आयी, उससे १९४७ में ही मुक्ति मिली; हालाँकि नवाबों ने कभी मुगलों की हाजिरी बजायी, कभी मराठों की। अन्त में १८२० में कम्पनी सरकार का प्रभुत्व स्थापित हो गया। तभी नवाब ने मन्दिरों की व्यवस्था में, तीर्थयात्रियों के आने–जाने में, तरह–तरह की बाधाएँ डालना शुरू कर दिया। कुण्ड में नहाने पर 'चिल्ली' कर लगा दिया। मरम्मत और देखभाल के काम रोक दिये गये।

परन्तु भग्नावशेषों में भी इतनी भव्यता थी कि पद पखारते सागर की लहरों के बीच सीढ़ियों पर खड़े होने पर गूढ़ मण्डप, मेघनाद–मण्डप, उनके विशाल स्तम्भ और अधगिरे शिखर देखकर भीमदेव, रावखांगार और रानक देवी का बरबस स्मरण हो आता था। मूर्त्ति–भंजन के पूर्व पाशुपताचार्य गंगा सर्वज्ञ का बलिदान, ज्योतिर्लिंग की याद जो ज्ञान की परम्परा का प्रतीक है और प्राचीनता को नवीनता से जोड़ने की ऊर्जा। प्राचीन पर श्रद्धा न हो, तो भविष्य का विश्वास कैसे होगा ? सन् १९२२ में एक बार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी दर्शन के लिए पधारे। प्रातः समुद्र का स्पर्श कर सीढ़ियों से ऊपर चढ़े, तो देखा गूढ़–मण्डप में, जहाँ कभी देवाधिदेव का निवास था, एक दरोगा की घोड़ी बँधी हुई थी। शत्रु तो श्रद्धा और विश्वास का विनाश करने के लिए तत्पर होगा ही। गूढ़–मण्डप पर तीन गुम्बदोंवाली एक मस्जिद जैसा आकार था। ज्यादातर छतें और फर्श टूटे थे। परन्तु विशालकाय स्तम्भ, एक दूसरे से ३५–३५ फुट दूर खड़े थे। हाथियों की सूँड़ों पर रखा हुआ महापीठ, फूटे हुए कलश, विकृत की गयी प्रतिमाएँ थीं। थोड़ी दूर पर छोटा–सा गणपति मन्दिर था पुराना, प्रतिमा नई थी।

"उधर हिरण्य–तट पर कृष्ण ने देहत्याग किया था। एक ऐसे व्यक्ति का शरीर भूमि पर सोया था, जिसने धर्म की हानि होने पर आने का वादा किया था। कल्पना कलियुग के उस पार ले गयी। कृष्ण सोये हैं, गहरी नींद में, बहुत दिन की थकावट है, पूरे महाभारत के युद्ध में कहाँ सोने को मिला था ? दिन भर रथ चलाते, रात को घायल घोड़ों की सेवा–शुश्रूषा करते। पैर में शिकारी का तीर लगा। आँख खुली। मुख पर मुस्कान आ गयी। सन्देश आया है, काम खत्म हो गया, अब चलना है। तीर निकाल दिया और फिर सो गये, न उठने के लिए।"

१५ अगस्त सन् १९४७ आ गया। सारा भारत स्वतन्त्र हो गया, परन्तु पवित्र प्रभास क्षेत्र, भगवान् की द्वारका, सोमनाथ का मन्दिर पराधीन है। नवाब एक ओर भारत से पत्र–व्यवहार कर रहा है, दूसरी ओर पाकिस्तान के साथ साँठ–गाँठ। पाकिस्तान, जिसका पता नहीं है सैकड़ों मील तक। लेकिन म्लेच्छ भूगोल को धोखा दे रहा है। ८२ प्रतिशत आबादी हिन्दुओं की है। मुसलमान गुण्डों को खुली छूट है हत्या, लूटमार और अपहरण की। हजारों लोग भाग रहे हैं। बहुत से तैयारी में हैं; परन्तु यह जो हिन्दुस्तान–पाकिस्तान बँटा है, वह हिन्दू, मुसलमान

जनसंख्या के आधार पर ही तो! यह तो इतिहास को भी धोखा देने की जुगत बैठा रहा है। एक पाकिस्तानी को अपना दीवान बना लिया है। अत्याचार बढ़ रहे है, पलायन हो रहा है। बाहर से लाकर मुसलमानों को बसाने की कोशिश चल रही है। अब क्या होगा ? सरदार पटेल की नींद उड़ी हुई है।

आज सितम्बर की १५ तारीख है। नवाब ने पाकिस्तान के साथ सन्धि कर ली है। बस हद हो गयी। सामलदास गांधी आरजी हुकूमत का ऐलान कर देते हैं। वे घोषणा करते हैं कि "नवाब ने उस सिद्धान्त का उल्लंघन किया है जिसके आधार पर भारत का बँटवारा हुआ है।

लाखों हिन्दुओं को उनकी मरजी के खिलाफ पाकिस्तान का नागरिक बना दिया है और पाकिस्तान ने बिना हमसे पूछे इसे स्वीकार कर लिया है।

अतएव हमारी निष्ठा अब इनमें से किसी के प्रति नहीं है और हम अपनी आत्मरक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठायेंगे।"

श्रम की हुई अर्चना ऐसी

-आजाद रामपुरी

श्रम की हुई अर्चना ऐसी, सब सपने साकार हो गये।
फलीभूत हो गई साधना, क्षण सुख के आगार हो गये।।

जीवन की गति की हर बाधा, ऐसा नव श्रृंगार कर गयी।
दौड़ गया रग-रग में साहस, नव-यौवन का ज्वार भर गई।।
कुटिल निराशा हुई तिरोहित, पल-पल चढ़े सुयश शिखरों पर।
फूल चूमने लगे राह को, दर्द-वेदना प्यार हो गये।।

महक उठी जीवन की निष्ठा, लोहा स्वर्ण किया पारस से।
ऐसी जोत लगी पौरुष की, पौधे लहराते साहस से।।
किलकारी भरती खुशहाली, विहँस उठा मन का धन-वैभव।
वशीभूत मन की कुण्ठायें, दुख, सुख सम स्वीकार हो गये।।

मन-मन्दिर के लक्ष्य-देव को, किया प्रतिष्ठित श्रद्धा धन से।
निखर उठा रँग-रूप सलोना, ऐसा किया समर्पण मन से।।
एकनिष्ठ रम गयी चेतना, ज्ञान-चक्षु खुल गये भीतरी,
जिसने पिया हलाहल जग का मनुज वही अवतार हो गये।।

-ललितपुर कालोनी, ग्वालियर-४७४००६

२४ अक्टूबर को आरजी हुकूमत ने राजकोट में जूनागढ़ भवन पर कब्जा कर लिया। यह विजयदशमी का दिन था। चारों ओर से जूनागढ़ के विस्थापित नवयुवक बढ़ चले, सब आरजी हुकूमत के साथ हैं। छोटे-छोटे गाँव, कस्बे सब उठ खड़े हुए। आरजी हुकूमत वाले आगे बढ़ते, हर जगह उनका स्वागत होता। नौजवान आगे बढ़ते हैं। पहले दिन चार गाँव लिये। अमरपुर में पड़ाव किया। दूसरे दिन २४ गाँव साथ आ गये। नवाब अपना माल असबाब, कुत्ते, बच्चे, बीबियों-बाँदियों को लेकर भाग निकला। पीछे रह गया दीवान। उसने ८ नवम्बर को राजकोट के कमिश्नर बुश को चिट्ठी लिखी। जूनागढ़ को खून-खराबे से बचाने के लिए सेना भेजिये। मैं सामलदास के बजाय आपको अपना अधिकार सौंपता हूँ। यह २६ तारीख थी। रात को सरदार के पास कमिश्नर का फोन आया। सरदार मुंशी जी की ओर मुड़े और कहा- "जूनागढ़ ने भारतीय सेना को आमन्त्रित किया है।"

मुंशीजी बोले- जय सोमनाथ।

१२ को दीवाली थी। अगले दिन सभा हुई। सरदार ने साफ कहा, "जो अब भी अपने को अलग अनुभव करते हों, जो समझते हों कि वे भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के निकट हैं उन्हें नवाब का रास्ता अपनाना चाहिए।"

शाम को सरदार सोमनाथ गये। सीढ़ियाँ उतरे। सागर से अंजलि भर कर जल उठाया और कहा- मेरी आंकाक्षा पूरी हुई। काका साहब गाडगिल (नरहरि विष्णु गाडगिल) भी साथ थे- बोले हमें सोमनाथ मन्दिर का निर्माण करना चाहिए। सरदार ने सहमति दी।

शाम को अहिल्याबाई मन्दिर में सभा हुई, सरदार ने कहा- **"इस नववर्ष के दिन कार्तिक शुक्लपक्ष में संवत् २००४ को हमने संकल्प लिया है कि हम मन्दिर का निर्माण करेंगे। इस पवित्र कार्य में आप सब सहयोग दें।"**

जाम साहब ने तत्काल एक लाख रुपये दिये सामलदास गांधी ने पचास हजार देने की घोषणा की। ८ मई १९५० को नये मन्दिर की नींव रखी गयी। चाँदी के नन्दी आये। कन्हैयालाल मुंशी ने अर्चन किया। सरदार अस्वस्थ थे। देहोत्सर्ग के कृष्ण की तरह उनका कार्य भी पूर्ण हो चुका था। ❐

- ८/३१७, इन्दिरानगर, लखनऊ-२२६०१६

स्वास्थ्य के लिए अमृत है दही

– डॉ० गणेश कुमार पाठक

चाहे कोई भी मौसम हो, दही का सेवन अमृत के समान माना गया है। खासतौर से ग्रीष्म ऋतु में दही की उपयोगिता में चार चाँद लग जाते हैं। हमारे आयुर्वेद ग्रन्थों यथा– 'चरक–संहिता', 'सुश्रुत–संहिता' एवं 'अष्टांग–संग्रह' आदि में दही को स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं गुणकारी भोज्य पदार्थ माना गया है।

दही की महत्ता एवं गुणवत्तां को आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। नोबेल पुरस्कार प्राप्त फ्रान्सीसी वैज्ञानिक डॉ० एली मैचिनी काफ ने, जो आयु–वृद्धि के उपायों की खोज के लिए विख्यात रहे हैं, अपनी पुस्तक "द प्रोलांगेशन आफ लाइफ" में दही को अमृत सदृश बताया है एवं इसके गुणों की विस्तृत चर्चा की है। एली मैचिनी काफ के अनुसार बढ़ती आयु के साथ पाचन नलियों में हानिकारक जीवाणुओं तथा क्षारों की वृद्धि से उत्पन्न विष रक्त में मिलकर जरावस्था के लक्षण प्रकट करते हैं, किन्तु भोजन में दही के प्रयोग से ये लक्षण दूर हो जाते हैं, कारण कि दही के लैक्टिक एसिड जीवाणु आँतों के क्षारों को बाहर करते हैं, जिसके फलस्वरूप पाचन–शक्ति में वृद्धि होती है। यही नहीं, दही रक्त के क्षार को भी कम करता है। दूध की अपेक्षा दही में अधिक कैलोरीज की विद्यमानता के बावजूद लैक्टिड एसिड के कारण उसमें सुपाच्यशक्ति अधिक होती है।

अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० बरनार मैकफेडान ने दही को शरीर को विकार–रहित बनाने वाली प्रमुख औषधि माना है। उनके अनुसार दही आँतों की गर्मी को शान्त करता है तथा भूख में भी वृद्धि करता है।

एक रूसी वैज्ञानिक ने भी दही का गुणगान किया है। रूस के चिकित्सकों ने अजरबैजान एवं उजबेकिस्तान के लोगों के दीर्घायु होने का मुख्य कारण लोगों द्वारा दही का अधिक सेवन ही माना है।

औषधीय गुण

१. दही में ऐसे जीवाणु पाये जाते हैं, जो शरीर में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को समाप्त कर देते हैं, भोजन को पेट में सड़ने से बचाते हैं तथा जीवनी शक्ति को बढ़ाकर मस्तिष्क को भी बल प्रदान करते हैं।

२. ग्रीष्म ऋतु में दही से तैयार शर्बत या लस्सी का सेवन अत्यन्त लाभदायक एवं शीतलता प्रदान करने वाला होता है।

३. दही आँत के क्षार कणों में कमी लाकर आँत के लचीलेपन में वृद्धि करती है, जिससे पाचन–क्रिया बढ़ जाती है एवं मंदाग्नि, अपच, कब्ज एवं उदर गैस की बीमारियों से छुटकारा मिलता है।

४. चूँकि दही में लैक्टिक एसिड की अधिकता होती है, अतः दही के सेवन से लैक्टिक एसिड की कमी से उत्पन्न होनेवाले रोग यथा– शरीर में शिथिलता, त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ना, बाल सफेद होना, असमय बुढ़ापा आदि की रोकथाम होती है।

५. दही में गुड़ या चीनी मिलाकर खाने से तृष्णा एवं दाह का शमन होता है।

६. यद्यपि दही में पर्याप्त चिकनाई होती है तथापि नलिकाओं में कोलेस्ट्रोल के जमाव का खतरा नहीं रहता है कारण कि दही में लैक्टिड एसिड जीवाणुओं एवं कैल्शियम की अधिकता होती है, जो प्रोटीन आदि जटिल पदार्थों को यथाशीघ्र पचा देती है।

७. अतिसार, विषम–ज्वर, भोजन में अरुचि आदि रोगों में भी दही का सेवन विशेष उपयोगी होता है।

८. दही का पानी अत्यन्त सुपाच्य एवं पौष्टिक होता है। इसके सेवन से थकावट दूर होती है एवं आँतों को पोषण मिलता है।

स्पष्ट है कि दही का सेवन अनेक रोगों को दूर भगाता है; किन्तु दही के सेवन में कुछ सावधानी बरतने की आवश्यकता है। जैसे– गरम, अधिक खट्टा, घी के साथ, रात को तथा कार्त्तिक मास में दही का सेवन करने से दोष उत्पन्न होते हैं और व्यक्ति रोग ग्रसित हो जाता है। लकवे के मरीज एवं शीतल प्रकृति वाले लोगों को दही का सेवन नहीं करना चाहिए। ❒

– प्रतिभा प्रकाशन, बलिया–२७७००१ (उ०प्र०)

समुद्र-गर्भ में अब भी विद्यमान है द्वारका

– प्रो० जयप्रकाश नारायण द्विवेदी

संसार के असंख्य जनमानस की आस्था, श्रद्धा, निष्ठा एवं भक्ति की केन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार परम प्रख्यात देव–स्थपति विश्वकर्मा के द्वारा बनायी गयी नगरी का नाम द्वारका है। यह बारह योजन में निर्मित हुई थी–

इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानां महोदधिम्।
ययाचे द्वादशपुरीं द्वारकां तत्र निर्ममे।।

(विष्णु पुराण–५/२३/१३)

अर्थात् भगवान् व्रजबिहारी ने समुद्र से द्वारका के निर्माणार्थ बारह योजन (९६ मील) जमीन माँगी और भूमि प्राप्त होने के बाद वहीं पर द्वारका को बसाया।

द्वारका की रचना के विविध कारण बताये जाते हैं; जैसे– श्रीकृष्ण चन्द्र का कालयवन/जरासन्ध से त्रस्त होना, यदुवंश की शत्रुओं से रक्षा करना एवं दूर रहकर महाभारत–युद्ध का संचालन करना, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने यहाँ की प्रजा में निर्भीकता, प्रेम, सौहार्द व धर्म की न केवल प्रतिष्ठा हेतु द्वारका का निर्माण कराया; प्रत्युत दुनिया के अन्य देशों से वैदेशिक सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण, आवागमन, व्यापार तथा आयात–निर्यात प्रभृति तथ्यों की सुविधा को भी ध्यान में रखा; क्योंकि यह नगर अरब देशों से भारत में प्रवेश के लिए तब से ही द्वार सदृश रहा है।

ओखा मण्डल में बेट शङ्खोद्धार के पास स्थित द्वारकाधीश एवं रुक्मिणी के प्राचीन व श्रेष्ठ स्थापत्य– शिल्प समन्वित मन्दिरों से सुशोभित द्वारका यद्यपि पिण्डारक तीर्थ के समीप ६० किलोमीटर दूरी पर ही है तथा वह प्रभास तीर्थ भी यहाँ से २३५ किलोमीटर दूर स्थित है, जहाँ षट्पंचाशत् कोटि यदुवंशी परस्पर न केवल गृहयुद्ध करके विनष्ट हो गये थे; वरन् पाण्डव–कौरव की रण– विभीषिका के संचालक, कंस व मुष्टिक/ चाणूर के विदारक जगदुद्धारक को भी व्याध के बाण से विद्ध होना पड़ा था; फिर भी कुछेक विद्वानों के अनुसार इस द्वारका के असली होने में सन्देह प्रतीत होता है, जो पूर्णतः आधारहीन, गल्प एवं आत्मअस्मिता की स्थापना के लिए ही है, किसी वास्तविकता के लिए नहीं। ध्यातव्य है कि पौराणिक एवं पुरातात्त्विक उभयविध साक्ष्यों के आधार पर द्वारका समुद्र के द्वारा निमग्न कर ली गयी थी। यह द्वारकाधीश की वही कर्मभूमि है, जहाँ अखिल ब्रह्माण्ड में अभेद सिद्धान्त के संस्थापक, 'ब्रह्म–सत्यं जगन्मिथ्या' के प्रवर्त्तक तथा सर्वोच्च–भारतीय सनातन चिन्तन के प्रतीक व अपनी चरणगति से राष्ट्र का दो बार सर्वेक्षण करने वाले, शिवावतार आद्यजगद्गुरुशंकराचार्य ने सर्वप्रथम श्री शारदापीठ की स्थापना की। यह पीठ सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र आदि अन्य अनेक प्रान्तवासियों से नित्याराधित है। यथा–

सिन्धु सौवीर सौराष्ट्राःमहाराष्ट्रस्तथान्तराः।
देशाः पश्चिमदिग्स्थाः ये शारदामठभागिनः।।

(श्री महानुशासन एवं मठाम्नाय–पृ०–७ श्लोक ५)

मठाम्नाय के अनुसार शारदापीठ का वेद साम, ब्रह्मचारी विश्वरूपक एवं गोमती पवित्र तीर्थ है। यथा–

गोमती तीर्थममलं ब्रह्मचारिस्वरूपकः।
सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत्।।

(वही पृष्ठ ६, श्लोक ३)

यह वह तपःपूत भूमि है, जहाँ अगाधभक्ति, निष्ठा, समर्पण, त्याग व प्रेम की मूर्त्ति मीरा जगन्नियन्ता के पादपद्मों में सदा–सदा के लिए विलीन हो गईं। रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु, निम्बार्काचार्य एवं स्वामिनारायण सम्प्रदाय के पुरोधा भगवान् सहजानन्द जी महाराज की तपश्चर्यास्थली द्वारका में अब तक २४९६ वर्षों के अन्तराल में (कुछ विद्वानों के अनुसार) ७७ शंकराचार्य हो चुके हैं अर्थात् वर्तमान शारदापीठाधीश्वर ७८वें जगद्गुरु हैं। यह नगर पुराणों के आधार पर न केवल राजनीतिगत प्रतिनिधित्व करता रहा है, बल्कि लगभग ढाई हजार वर्षों से धर्मधुरीणता का निर्वाह भी कर रहा है।

सम्प्रति द्वारका का क्षेत्रफल कुल ७००.३५ वर्ग किलोमीटर है और विश्व के मानचित्र में यह २२°.० अक्षांश से २२.२९° अक्षांश एवं ६८.५०° देशान्तर से ६९.१४° देशान्तर के मध्य स्थित है। सन् १९९१ ई. की जन–गणना के अनुसार यहाँ की कुल जन–संख्या लगभग ३०,००० है। इतिहास एवं पुराणों के अनुसार यह उपनगरी कुशस्थली, द्वारवती, उषामण्डल व ओखामण्डल इत्यादि विभिन्न नामों से अभिहित की जाती रही है। इसके कारण पृथक्–पृथक् हैं।

१. यहाँ कुश का बाहुल्य रहा होगा, जो अब देखने को

नहीं मिलता।

२. बाणासुर की पुत्री उषा के कारण यह उषामण्डल या ओखा मण्डल कहा गया। अद्यतन शोधों के अनुसार बाणासुर (असुर बनीपाल) वर्त्तमान इराक का प्रतापी राजा था।

३. मोक्ष, स्वर्ग, राष्ट्रहित, सुरक्षा, उत्थान व व्यापारिक विकास का द्वार होने के कारण द्वारवती संज्ञा से यह संस्थान संज्ञित है।

अयोध्या, मथुरा, मायाकाशी काञ्चीअवन्तिकाः।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः।।

क्योंकि यह सप्तपुरियों में शीर्षस्थ है— अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची और अवन्तिका तथा द्वारका। धर्म, दर्शन, कर्म व अध्यात्म का चिरकाल से सतत केन्द्र होने के कारण इस सन्त भूमि पर देशी तथा विदेशी मनीषी सतत चिन्तन करतें रहे हैं। द्वारका के जलमग्न होने का प्रथम प्रमाण विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। भगवान् ने यदुवंशियों से कहा कि आप लोग प्रभास प्रस्थान करें; क्योंकि सागर मेरे घर को छोड़कर शेष सम्पूर्ण द्वारका के भूखण्ड को डुबो देगा। हुआ भी वही। कुछ ही दिनों बाद सागर ने अपनी दी हुई भूमि वापस ले ली। यथा—

प्लावयामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः।
वासुदेवगृहं त्वेकं न प्लावयति सागरः।।
(विष्णु पुराण—५/३८/६)

अर्थात् यदुवंशियों से रहित द्वारका को समुद्र ने डुबाया, लेकिन वासुदेव निकेतन को छोड़कर।

रेवती के प्राणप्रिय बलराम के कनिष्ठ भ्राता जहाँ अधिपति हैं, वहाँ कैलासवासी दिगम्बर महादेव को भी निवास करना मनोरम लगता है। यही कारण है कि द्वादश ज्योतिर्लिंगों में परम—प्रमुख नागेश्वर की मूर्त्ति यहीं विराजती है।

'... नागेशं दारुकानने। शिवपुराण में यह ज्योतिर्लिंग पश्चिमी सागर के तट पर बताया गया है और इसके अतिरिक्त नागेश्वर ज्योतिर्लिंग को अन्यत्र स्थित स्वीकारने वाले सभी तर्क युक्तिसंगत न होने के कारण निरस्त हो चुके हैं।

इस द्वारका में एक ओर जहाँ द्वारकाधीश मन्दिर है, तो दूसरी ओर भद्रकाली, सिद्धेश्वर, गायत्री आदि के अतिरिक्त रणमुक्तेश्वर प्रभृति देवस्थलों का कोई कम महत्त्व नहीं है। समुद्र-देवता के साथ-साथ सागर के ठीक मध्य भड़केश्वर महादेव का जीर्ण मन्दिर भारतीय अस्मिता का प्रबल ध्वजवाहक है। सम्प्रति प्रायः यहाँ के सभी मन्दिर प्रशासनिक व पुरातत्त्वीय उपेक्षा के शिकार हैं। सागरीय पवनवेग के खारेपन से भूशिल्पों और वास्तुशिल्प का सतत कटाव (क्षरण) होता रहता है।

आश्चर्य यह है कि जिस उपनगर का निर्माण अमरावती के सदृश किया गया था, वहाँ राजमार्ग, भवन, चौराहे, गलियाँ, नगर प्याऊ, अन्तःपुर, चबूतरे, दूकानें, वाटिकाएँ एवं अन्य सम्पूर्ण सुविधाएँ ऐसी सुलभ थीं, मानो द्वारका पृथ्वी की ककुद् (व्विक्त) हो, यहाँ सर्वविधरत्न, जल की अच्छी सुविधा, सुचारु प्रकाश—व्यवस्था व फल—फूल से सुसज्जित वनस्पतियाँ थीं, अब वह सब कुछ दिखाई नहीं देता। महाभारत हरिवंश खिल भाग, देवी भागवत एवं विष्णुपुराण के साक्ष्यानुसार इसी द्वारका में श्रीकृष्ण जी ने सत्यभामा को प्रसन्न करने के निमित्त स्वर्ग से पारिजात का वृक्ष लाकर लगाया था। यहीं वह सुधर्मा सभा बनी थी, जिसमें रहने वाले को पिपासा और बुभुक्षा बाधित नहीं कर सकते थे और कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का हरण भी व्रजराज ने यहीं से जाकर किया था। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि द्वारका कल्पवृक्ष के समान है। यहाँ पर मोक्षार्थी मोक्ष, धनार्थी धन और पितृश्राद्ध करने वालों के पितर उद्धार को प्राप्त करते हैं। विष्णुपुराण पञ्चम अंश के २३वें अध्याय में द्वारका के सूक्ष्म निर्माण का विशद और विस्तृत वर्णन है। पौराणिक/ऐतिहासिक विवेचनों के अनुसार आनर्त अर्थात् सौराष्ट्र के इस भूभाग में पहले नाग जाति के लोगों का बाहुल्य/वर्चस्व था। रेवती नागकुल की कन्या बतायी गयी हैं, इसीलिए उनका विवाह शेषावतार बलराम जी के साथ सम्पन्न हुआ।

यद्यपि द्वारका नाम से यहाँ अनेक स्थान हैं, जैसे— बेट द्वारका, मूल द्वारका, गोमती द्वारका, द्वारका (कोड़ीनार, के पास; जो जूनागढ़ जिले में स्थित है) इत्यादि; किन्तु वर्तमान द्वारका को ही द्वारका होने की मान्यता लोक और शास्त्र दोनों से प्राप्त है।

साधुनगरी द्वारका पर जो नूतन शोध हुए हैं, उनके आधार पर प्रो० एस०आर० राव एवं डॉ हरमुख धीरजलाल साँखलिया के अनुसार द्वारका अब तक ६ बार नष्ट हो चुकी है— एक बार जलकर और ५ बार डूबकर। अर्थात् वर्तमान द्वारका ७वीं द्वारका है। इसके अतिरिक्त श्री देवकुमार जे० मोढानी के अनुसार वास्तविक द्वारका सागर में विलीन हो गयी है। यही कारण है कि कुछडी व काटेला गाँवों के मध्य सागर विद्यमान है। प्रो० एस०आर० राव ने वर्षों तक सागर में नाव डालकर जलाप्लावित द्वारका के सन्दर्भ में ढेर सारा शोध किया है। खुदाई से निकली सामग्री के अनुसार कतिपय पुरातत्त्वविद् प्राचीन द्वारका को आज से लगभग ३४०० वर्ष प्राचीन मानते हैं;

किन्तु यह सर्वमान्य सत्य नहीं है, क्योंकि ये ही विद्वान पहले कृष्णकालीन संस्कृति को २००० वर्ष पूर्ववर्त्तिनी मानते थे तथा इसे इतिहास का विषय मानने को तैयार नहीं थे। अनुसन्धान जारी है। सम्भव है आने वाला काल यह सिद्ध कर सके कि हमारी कृष्णकालीन द्वारका आज से ५००० वर्ष पुरानी है, जो भारतीय सनातन परम्परा और पुराणों की मान्यता है।

जो कुछ भी हो, लेकिन महाभारत, गीता एवं पुराण श्रीकृष्णचन्द्र के ऐतिहासिक पुरुष होने के जाज्वल्यमान प्रमाण हैं और ध्यातव्य है कि वे ही द्वारका के अधिपति हैं। युगों से आस्थालु जनसमूह उन्हें न केवल अपना आदर्श मानता रहा है, बल्कि वे सभी के पूज्य जीवनाधार रहे हैं। नरसी मेहता, रहीम, रसखान आदि अगणित भक्त–हृदय उसी द्वारकाधीश का नाम जपकर अपने जीवन को सार्थक बनाते रहे। यहाँ तक कि जगत् की विरली ही ऐसी कोई प्रतिभा रही होगी, जिसने द्वारका की यात्रा से अपने को पूर्णपूत न किया हो। द्वारका के स्वामी भगवान् के अवतार नहीं; साक्षात् भगवान् ही हैं–

'... कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

द्वारका के अन्तर्गत कुशेश्वर, धींगेश्वर, रणमुक्तेश्वर, सिद्धेश्वर व भड़केश्वर; ये कुल पाँच प्राचीन शिवालय हैं। स्वयं द्वारकाधीश के जगत् मन्दिर के परिसर में छोटे–छोटे देवलायों की नक्षत्रमाला देखते ही बनती है। दुर्वासा, त्रिविक्रम, प्रद्युम्न, दत्तात्रेय, माधवराय, देवकी, लक्ष्मीनारायण, जाम्बुवती (जाम्बवन्ती), सरस्वती, लक्ष्मी, हनुमान्, गणेश, गरुड़, सत्यभामा एवं पुरुषोत्तम जी के मन्दिर द्वारका–तीर्थ–माल के पावन रुद्राक्ष हैं और मुख्य मन्दिर उसका सुमेरु। यहाँ से एक किलोमीटर दूर स्थित रुक्मिणीजी का मन्दिर आज भी महर्षि दुर्वासा की क्रोधी प्रकृति से उपजे शाप के परिणाम का स्मारक है। यद्यपि महाभारत में वर्णित यहाँ की प्राकृतिक अमराइयाँ आज नामशेष हैं, फिर भी जन–जन के दिल की अमराई उस ऐतिहासिकता का प्रतिनिधित्व करने में सर्वथा समर्थ है। द्वारका से बेट की यात्रा करते समय गोपी तालाब नामक तीर्थ भी यहीं द्वारका से १३ किलोमीटर दूरी पर विद्यमान है, जो अपने भीतर अहम्, अनाचार, नीति, वीरता एवं भारतीय प्रतिष्ठा की असंख्य किम्वदन्तियाँ समेटे हुए है। कथा इस प्रकार है–

महाभारत की भयंकर रणसिद्धि के पश्चात् अर्जुन को अपनी वीरता पर गर्व हुआ, जिसके खण्डनार्थ श्रीकृष्ण जी ने कुन्तीनन्दन के ही नेतृत्व में गोपिकाओं को द्वारका से मथुरा भेजने का निर्देश दिया; किन्तु पार्थ के देखते–देखते कुशस्थल से १३ किलोमीटर दूर जाने पर जंगली जातियों ने गोपियों को न केवल लूट लिया, बल्कि गाण्डीव–धन्वा के अहंकार को भी धराशायी कर दिया। ऐसी स्थिति में आत्मप्रतिष्ठा के रक्षार्थ उन गोपवधूटियों ने पार्श्ववर्त्ती सरोवर में प्रवेशकर स्वर्ग का संवरण कर लिया। यह तीर्थ अहंकारापहारक, भारतीय ललनाओं की लज्जा का रक्षक, वन्य–संस्कृति की स्वच्छन्दता का प्रतीक एवं कृष्ण के व्रीडात्राता की अमोघशक्तिमत्ता का साक्षात् प्रतिनिधिभूत प्रमाण है। कृष्ण के तपाई मन्दिरों से सुसज्जित, प्रशासन से उपेक्षित; किन्तु नदी के दीप सदृश अपनी अस्मिता का बोध कराने वाला यह पावन स्थल गोपीचन्दन के लिए प्रख्यात है, क्योंकि गोपीसर (जिसमें गोपांगनाओं ने आत्मोत्सर्ग किया था) के प्रत्येक मृत्तिका–खण्ड पर सुदर्शन–चक्र के चिह्न जैसी आकृति दिखायी देती है। कहना न होगा कि उन्हीं मृत्तिका पिण्डों से गोपी–चन्दन बनाया जाता है। द्वारका तीर्थ–क्षेत्र का गोपी–चन्दन विविध वैष्णवादि सम्प्रदायों के सन्तजन के जीवन का अनिवार्य शृंगार है।

बेट द्वारका ओखा (द्वारका से ३५ किलोमीटर दूर) से लगभग ५ किलोमीटर दूर अनुमानतः कुल ८ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में बसा हुआ एक गाँव है, जो कभी श्रीकृष्ण जी की राजधानी रही होगी। यहीं पर भगवान् ने शंखासुर का वध किया था। जहाँ पवनसुत का सिद्ध स्थान (हनुमानदाण्डी) और महाप्रभु जी की प्रमुख बैठक है। यह स्थान चतुर्दिक् सिन्धु सागर से घिरा हुआ होने के साथ–साथ सामरिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व का है। इसे देखने मात्र से यहाँ की तपोनिष्ठता की अनुभूति सामान्य व्यक्ति को भी होने लगती है। वर्तमान में अखण्ड समाधि–मण्डित महात्मा प्रेमभिक्षु जी महाराज एवं स्वामिनारायण सम्प्रदाय की सन्त–परम्परा ने भी द्वारका को ही अपनी तपोभूमि बनाया।

राष्ट्र का विकास, सीमा की रक्षा, सतत भगवद्भाव से भावित, रामधुन की अजस्र–धारा से पूत द्वारका स्वतः भगवत्स्वरूपा है। नरसी मेहता को यश व मोक्ष, मीरा को मुक्ति एवं सुदामा को श्री प्रदान कर धन्य कर देने वाली द्वारका देश के प्रत्येक आस्तिक जन के पावन कण्ठ की वैजयन्ती है। गत लगभग ५००० वर्षों से पाँचों पाण्डवों के नाम से विद्यमान अलग–अलग कूप, पोखरे व खुदाई से प्राप्त विशिष्ट एवं विशाल उलूखल समूह आज भी कृष्णकालीन द्वारका को प्रमाणित करने में पूर्णतः समर्थ है। यही कारण है कि भीमकूप, नकुलकूप, युधिष्ठिर, अर्जुन व सहदेवादि कूपों का जल आज भी मधुर है,

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

– सुधीर ओखदे

बुद्धिजीवी और श्रमजीवी

बुद्धिजीवी रोज सबेरे फाइल लेकर घर से निकलता है और दिनभर अपने प्रमाण–पत्रों की प्रदर्शिनी लगाकर शाम को घर वापस आता है। वह सुबह नाश्ता करता है, दोपहर का खाना साथ ले जाता है और चाय, पान के पैसे भी साथ में रखता है।

जिस दिन से वह स्नातक हुआ है, उसी दिन से वह बड़ा बन गया है। अब वह गम्भीर रहता है। सोचकर मुस्कराता है और सोचकर जवाब भी देता है। अभी कल ही उससे पूछा गया– नौकरी लगी ? तो वह काफी देर गम्भीर बना रहा। जब तक वह जवाब देता, प्रश्नकर्त्ता जा चुका था।

बुद्धिजीवी ऐसे प्रश्नों के उत्तर देना भी जरूरी नहीं समझता। वह जानता है कि उसका भविष्य उज्ज्वल है। वह फ्रान्स की राज्य–क्रान्ति के बारे में जानता है, सामाजिक समझौते के सिद्धान्त के बारे में जानता है। वह रूसो को जानता है, शेक्सपियर को जानता है और सामरसेट मॉम को भी जानता है।

वह केवल वही आवेदन–पत्र भरता है, जहाँ अच्छी तनख्वाह की बात हो। वह बुद्धिजीवी इसीलिए बना है कि उसका भविष्य सुरक्षित वित्त के घेरे में हो अन्यथा वह श्रमजीवी बनता, जैसा उसका पड़ोसी है।

श्रमजीवी भी रोज सुबह घर से निकलता है और दिन भर मेहनत करके अपनी कमाई माँ के हाथ में रखता है। सुबह वह भी नाश्ता करके जाता है और दोपहर का खाना साथ लेकर जाता है। अब वह चाय और सिगरेट नहीं पीता, क्योंकि अब वह कमाता है।

जिस दिन से वह शिक्षा से विमुख हुआ है, उसी दिन से वह बड़ा बन गया है। अब वह खुलकर हँसता है और खूब बातें करता है। अभी कल ही उससे पूछा गया, नौकरी लगी ? तो अपने दोनों हाथ दिखाकर कहा कि जब तक यह सलामत हैं, नौकरी मेरे दरवाजे पर खड़ी रहती है।

बचपन में बुद्धिजीवी और श्रमजीवी मित्र थे। शिक्षा के व्यवसायीकरण ने जहाँ उन दोनों के बीच अन्तर–रेखा खींच दी, वहीं बुद्धि की परिपक्वता ने उनके दिलों के बीच भी एक अमिट रेखा खींच दी।

श्रमजीवी अब भी बुद्धिजीवी से उतना ही स्नेह रखता है। उसे अभिमान होता है कि मेरा एक मित्र बुद्धिजीवी भी है। वहीं बुद्धिजीवी को शर्म आती है कि मेरा एक मित्र श्रमजीवी भी है। बुद्धिजीवी सतर्क रहता है कि कहीं श्रमजीवी का स्नेह लोगों के सामने व्यक्त न हो।

बुद्धिजीवी सदैव श्रमजीवी की किस्मत को कोसता है कि कहाँ मैं और कहाँ तुम। श्रमजीवी उसे चाय पिलाता है और नाश्ता भी कराता है।

बुद्धिजीवी को स्नातक हुए कई वर्ष हो गये हैं। वह अब भी रोज फाइल लेकर सुबह से निकलता है और शाम ढले घर वापस आता है। अब उसे समय पर नाश्ता नहीं मिलता। वह व्यथित है।

अब वह श्रमजीवी के पास जाकर भी बैठने लगा है। उसकी कर्मस्थली पर जाता है और वहीं चाय, नाश्ता इत्यादि करता है। अब वह स्वाभिमान को धीरे–धीरे छोड़कर बेशरम–सा बनता जा रहा है; पर वह अब भी श्रमजीवी से अपने आपको श्रेष्ठ समझता है। एक दिन श्रमजीवी ने उसे दो हाथों की महिमा का प्रवचन सुनाया। बुद्धिजीवी ने अपने हाथों को देखा, तो वह उसे कलम से नजर आये।

श्रमजीवी अब अच्छा कमाने लगा है। कल उसकी सगाई होने वाली है। फिर विवाह होगा। श्रमजीवी का संसार अब आरम्भ होने वाला है।

बुद्धिजीवी ने श्रमजीवी के पैसे से खरीदी सिगरेट का अन्तिम कश लगाया और बुदबुदाया– नहीं हो सकती ! कभी नहीं हो सकती ! इस अवस्था में मेरी शादी हो ही नहीं सकती।

अब बुद्धिजीवी कम तनख्वाह की नौकरी भी करना चाहता है। उसने मौर्यकाल, गुप्तकाल, मुगलकाल सभी कुछ पढ़ा है। वह अमेरिका की सीनेट के बारे में जानता है, भारत के संविधान के बारे में जानता है, आधुनिक कविता को समझता है, पर वह अब तक बेरोजगार है।

श्रमजीवी यह सब कुछ नहीं जानता। वह मशीनों के बारे में जानता है। मोटरकार के कलपुर्जों के बारे में जानता है। स्कूटर के बारे में जानता है। फिर भी वह बेकार नहीं है। अब श्रमजीवी अपने श्रम से एक गैरिज का मालिक बन बैठा है और बुद्धिजीवी उस गैरिज का हिसाब–किताब देखता है।

बुद्धिजीवी अब भी स्वयं को श्रमजीवी से श्रेष्ठ मानता है और श्रमजीवी रोज भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे भगवान् ! बुद्धिजीवियों को किताबी शिक्षा से ऊपर उठा और उन्हें इतनी बुद्धि तो अवश्य दे कि वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। ❐

– III/२, आकाशवाणी कालोनी, जलगाँव, महाराष्ट्र –४२५००१

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय की डायरी के कुछ पृष्ठ

– भाषान्तर, डॉ० रामशंकर द्विवेदी

[गताक में तेलुगु में लिखे जा रहे साहित्य की एक झलक विद्वद्वर डॉ० भीमसेन निर्मल द्वारा अनूदित एक रचना के माध्यम से दी गयी थी। इस बार विख्यात चिन्तक साहित्यकार विभूति–भूषण वन्द्योपाध्याय की दैनन्दिनी के कुछ पृष्ठों के भाषान्तर से बांग्ला साहित्य की एक बानगी प्रस्तुत है। –सम्पादक]

'यदिदं हि जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्'– यह जो कुछ दृश्यमान संसार है, इसके पीछे प्राणों की चिरन्तन धारा का ही उच्छलन हो रहा है। बांग्ला के कृती साहित्यकार विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय अपनी रचनाओं के माध्यम से प्राणों की उसी आनन्द–धारा का आस्वाद जीवन भर लेते रहे और उसी का अनुभव पाठक कर सकें इसके लिए ही वे शब्द–साधना में निरत रहे। उनके पुत्र ने एक स्थान पर लिखा है–

'विभूतिभूषण आसक्ति–हीन, असूयाहीन, प्रज्ञादृष्टि–सम्पन्न उदार पुरुष थे। इस समय याद आता है मरने के पहले श्रद्धेय सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का मेरी माँ के साथ दूरभाष पर उनका अन्तिम संलाप। उन्होंने बाबा के बारे में बोलते–बोलते आवेशित होकर कहा था– 'बऊ माँ, मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि वर्तमान युग में जन्म लेने के कारण विभूतिभूषण ने उपन्यास, कहानी लिखे हैं। दो हजार वर्ष पहले जन्म लेते, तो वे उपनिषद् रचना करते। विषयवस्तु में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर है केवल शिल्प और प्रस्तुतीकरण के उपादानों में।'

यहाँ पर विभूतिभूषण की डायरी का कुछ अंश इस दृष्टि से दिया जा रहा है, जिससे यह पता चल सके कि विभूतिभूषण की साहित्य–दृष्टि क्या थी और उन्होंने वर्त्तमान युग में जन्म लेकर भी किस प्रकार उपनिषद्–प्रतिपादित चिरन्तन सत्य का अभिव्यञ्जन किया है। दलित साहित्य के दल–दल से ग्रस्त और 'जन' तथा 'प्रगति' का ढिंढोरा पीटनेवाली दृष्टि चिरन्तन जीवन के इस खुले आकाश को देखे और साहित्यकार के स्वधर्म का निर्धारण करे–

कल तुम्हें देख सका हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर के तिरछे चाँद और शुक्र तारे के पीछे तुम थे। इस शेष होती रात के आकाश के पीछे, इस फूल खिले नीम की डालों के साथ, इस सुन्दर, शान्त, घन नील आकाश के साथ तुम किस प्रकार एकाकार होकर जुड़े हुए हो। यह जो कितने प्राणी, कितने पेड़–पौधों की प्रजातियाँ तैयार हुईं और चली गईं, यह जो पारावतों का दल उड़ रहा है, नारियल वृक्ष की फुनगियाँ भोर की वातास से हिल रही हैं, यह जो जंगली जड़ी की झाड़ियाँ छत की मुँडेरों पर उग रही हैं– दो हजार वर्ष पहले ये सब और मेरा छात्र विभूति कहाँ थे? अथवा दो हजार वर्ष बाद ये सब कहाँ रहेंगे? अपने समस्त छोटे–मोटे सुख–दुःख, आनन्द–हताशा लिए, छोटे–छोटे बुलबुलों की तरह गहन, गम्भीर अनन्त काल–सागर में कहाँ विलीन हो जायेंगे, उसका फिर कोई ठिकाना ही नहीं मिलेगा– फिर नये लोग, बाल–बच्चे आयेंगे, पुनः नये फूल–फलों का दल आयेगा, फिर नया सुख–दुःख, हर्ष–हताशा आयेगी, कितनी मधुर–ज्योत्स्ना–रात्रियों की मधुर वातास पुनः बहेगी, पुरानी अवन्तिका की स्त्रियों के कुन्तलों से उड़ी अगरु–गन्ध जितनी मदिर थी, भावी किसी अवन्तिका के विलास–भवन में विद्यमान स्त्रियों की नवीन केश–राशि से उड़ी गन्ध पुराने जमाने की अपेक्षा कुछ कम मदिर नहीं होगी, कितनी ग्राम्य नदियाँ भविष्यत् की कितनी अनागत ग्राम्य वधुओं के सुख–दुःख का सम्भार लेकर बहती रहेंगी– फिर वे भी चली जायेंगी और नया दल आ जायेगा।

किन्तु हे चिरन्तन! तुम ठीक–ठाक बने रहते हो। 'हे अनन्त! युग–युग में तुम कभी नहीं बदलते हो। समस्त परिवर्त्तनों, समस्त ध्वंस–सृष्टि के बीच से होकर

तुम अपरिवर्त्तित, अनाहत होकर युग–युगान्तर तक चलते रहते हो। यह दृश्यमान पृथिवी जब आकाश में ज्वलन्त वाष्प–पिण्ड थी, उससे भी कितने अनन्त काल पूर्व से तुम हो, यह पृथिवी जब पुनः किसी दूर अनिर्दिष्ट भविष्य में, फिर से जड़ पदार्थ–खण्ड में रूपान्तरित होकर दिशाहीन उल्का की गति से उद्भ्रान्त होकर अनन्त व्योम में घूमती फिरेगी, तब भी तुम विद्यमान रहोगे। काल से परे, सीमा से परे, ज्ञान से परे तुम कौन हो– तुम्हें पहचाना नहीं जा सकता। फिर भी लगता है, जैसे तुम्हें कभी पहचाना है, कभी जाना है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब नदी के जल में झिलमिल करती हुई मधुर ज्योत्स्ना पड़ती है, काई भरे कूल पर ताल देती है, तब लगता है जैसे तुम वहाँ विद्यमान हो, छोटा बच्चा अपना भोला मुख लिए जब सुकुमार चन्दन की गन्ध अपने पूरे शरीर में मल लेता है और अपने दोनों कोमल हाथ गले में डाल देता है, तब लगता है जैसे तुम वहाँ विद्यमान हो, सप्तर्षि–मण्डल जब पृथिवी की गति से सारी रात के बाद दूर पश्चिमी आकाश में झूल जाता है, रुद्र, प्रचण्ड, अथवा पकड़ में न आनेवाली उस गति के वेग में मानो तुम हो; जनहीन प्रान्तर के किनारे जब ग्राम्य फूलों का दल का दल ठसाठस खिलकर अकारण ही हँस पड़ता है, तब लगता है उन फूलों के सरल प्राणों का जो प्राचुर्य है, उसमें मानो तुम विद्यमान हो।

इसीलिए तो यह कहा था कि कल रात्रि के अन्तिम प्रहर में तुम्हें अकस्मात् देख सका। रात्रि के अन्धकार–पूर्ण अन्तिम प्रहर के चन्द्रमा उसके पास में ही विद्यमान शुक्र तारे के पीछे विद्यमान तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ।

पाँच बजे हैं। ठीक संध्या होने को आ रही है। छोटे–छोटे उन्हीं अजाने रंगीन फूलों के पौधों की ओर देखकर हठात् कैसा आनन्द आ गया, नाथ नगर के आम्र वृक्षों के ऊपर सूर्य अस्त हो रहा है, उस तरफ का आकाश कैसा लाल हो गया है, इन सामान्य वस्तुओं का आनन्द, सुकुमार भोले मुख की हँसी, रंगीन फूलों के वृक्ष, नीले आकाश का पहला तारा, यह जो पक्षी टेढ़ी–मेढ़ी डाल पर बैठा हुआ है। कुल मिलाकर एक–एक समय जीवन का कैसा गम्भीर आनन्द एक–एक क्षण में आता जाता है।

मनुष्य इसी आनन्द का अनुभव न कर पाने के कारण दुःख में, हिंसा में, स्वार्थ प्रेरित द्वन्द्व में सुख खोजने जाकर अपने को और भी दुःखी कर डालता है। आज जो मार्टिन लूथर की जीवनी पढ़ रहा था, उससे लगा एक–एक युग में एक–एक व्यक्ति आत्ममन लिए पृथिवी पर आकर सिर्फ अपने स्वतन्त्र विचार को ही व्यक्त कर नहीं चला जाता है, वरन् जड़ मन को भी बन्धन–मुक्त करने में सहायता करता है। जिस तरह सहस्र वर्षों का पुञ्जीभूत अन्धकार क्षणभर में ही दियासलाई की एक तीली जलते ही चला जाता है, उसी तरह से (वह व्यक्ति भी सहायता करता है।)

किसी से घृणा नहीं करनी होगी। इस जगत् में जो हिंसक हैं, स्वार्थान्ध हैं, नीच मन के हैं, उनसे हमें घृणा नहीं करनी चाहिए, सिर्फ उच्च जीवन के आनन्द का उन्हें अनुभव करा देनेवाला कोई न होने के कारण ही वे ऐसे हो गये हैं। कौन मुक्त–पुरुष उनके अनन्त अधिकार की वार्त्ता उनके उपेक्षित, भूखे, मुरझाये प्राणों तक पहुँचा सकेगा ?

।। २७ अक्टूबर १६२४, कलकत्ता।।

एकाएक पुराने दिन याद आ गये। लगा कितने छाया भरे विकाल, कितनी सुन्दर ज्योत्स्ना–भरी रातें, कितनी सन्ध्याएँ सभी कैसी गम्भीर, अनन्त और रहस्यमय हैं। उनके दोनों ओर से बहता हुआ काल उन्हें ले जाकर किस दूरवर्त्ती स्थान पर फेंक रहा है, उसी तरह से भविष्य भी मनुष्य के मन को बहुत गम्भीर और अनन्त लगता है, अतीत भी अल्प–दिन–व्यापी होने पर भी उससे भी अधिक गम्भीर लगता है, रहस्यमय लगता है, लुप्त होते जाने वाली गम्भीरता से युक्त रहस्य उसके अंग–अंग में लिपटा हुआ है, अनेक दिन बीत जाने पर भी, पुरातन अतीत में विलीन हो जाने पर भी उनकी गन्ध, शब्द, रूप अब भी मेरे मन में विद्यमान हैं। मन के जिस स्थान पर उनका वास है, वह वर्णनातीत है, किन्तु एक दिन अकस्मात् उसी तार पर आघात हो जाने से अतीत के क्षण अपनी गन्ध, रूप, रंग, शब्द, सुख–दुःख, हँसी–अश्रु, आशा–निराशा, मंगल–अमंगल, सौन्दर्य और रस के रूप में प्रत्यक्ष होकर क्षण भर के लिए ही सही वास्तविक रूप में उदित हो जाते हैं; पर सिर्फ क्षणभर के लिए, उसके बाद दूसरे ही क्षण दृष्टि भ्रम की तरह पुनः विलीन हो जाते हैं।

– ।। २६ अप्रैल १६२५, भागलपुर।।

एकाएक लगा जैसे हजार वर्ष पहले जो सब पक्षी वन–वन में गाकर चले गये हैं, आज इस छायाभरी संन्ध्या में वही मानो फिर से कहीं से आकर गा उठे। जो सब लड़के–लड़कियाँ हजार वर्ष पहले माँ–बाप की गोद में मीठी हँसी हँसकर, बहुत दिन बीते बचपन में देखे हुए स्वप्न की तरह कहीं विलीन हो गये हैं, आज सन्ध्या में

वही सब धुँधले, सुदूर अतीत के बच्चों की मिली-जुली हँसी, नदी-तट के वन-वन, मैदान-मैदान, कुञ्ज-कुञ्ज में फूलों के रूप में खिलकर गोधूलि के अँधेरे में आलोक के रूप में विद्यमान हैं।

उनके छोटे से घर-संसार में सन्ध्या हो गयी। राय लोगों के कटहलतला, पुकुर किनारे, टूनू लोगों के आँगन, नेडो लोगों के घर के सामने लगे विशाल वृक्ष के नीचे अँधेरा हो गया। खेलने के छोटे कमरे के छोटे जगत् में अन्धकार हो गया।

संसार के असंख्य आनन्दों का अनन्त कोष खुला हुआ है। पेड़-पौधे, फूल-पक्षी,, विस्तृत मैदान और घाट, काल, नक्षत्र, सन्ध्या, ज्योत्स्ना-रात्रि, अस्तंगत सूर्य के आलोक से रंजित नदी-तट, अन्धकार और नक्षत्रमय विस्तृत आकाश-इन सब वस्तुओं के माध्यम से ऐसा विपुल, अनिर्वचनीय आनन्द, अनन्त की उदार महिमा हमारे प्राणों में ला सकता है; किन्तु सहस्र वर्षों तक तुच्छ सांसारिक वस्तुओं को लेकर उन्मत्त रहने के कारण उस विराट्, असीम, शान्त उल्लास के सम्बन्ध में कोई जानकारी ही उन तक नहीं पहुँच पाती है। संसार के सौ में से निन्यानबे लोग इस आनन्द के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपनी मृत्यु के दिन तक अनभिज्ञ ही बने रहते हैं। एक सौ वर्ष तक जीवित रहने पर भी वह ज्ञान उन्हें नहीं मिल पाता है। उस तरह की शिक्षा, संग-साहचर्य, आदर्श, जो आनन्द के पथ-प्रदर्शन के लिए आवश्यक होता है, दुर्भाग्य से वह सभी को तो उपलब्ध हो नहीं पाता है।

साहित्यिक जनों का काम होता है इस आनन्द-वार्त्ता को जन सामान्य के प्राणों तक पहुँचा देना। वे लोग भगवत्प्रेरणा से यही महती आनन्द-वार्त्ता, यही जीवन की अनन्त-वाणी सुनाने के लिए संसार में आये हैं, यह काम उन्हें करना ही होगा। इसी में उनके जीवन की सार्थकता है। (३० अप्रैल, १९२५, भागलपुर)

— १७४, पाठकपुरा, उरई-२८५००१

हम ऋचाओं की करें फिर सर्जना

-कमल किशोर 'भावुक'

श्लथ कभी भी कर्म का स्यन्दन नहीं होगा।
यातना से डर करुण क्रन्दन नहीं होगा।
पन्थ दुर्गम तो हमें स्वीकार हैं लेकिन-
चाटुकारों का चरण-वन्दन नहीं होगा।

★

व्यथित राही के लिए विश्राम खोजेंगे।
बेसहारों के लिए सुख-शाम खोजेंगे।
प्रण हमारा पतझड़ों के मान-मर्दन को,
हम बहारों के नये आयाम खोजेंगे।

★

लक्ष्य पर पहुँच कर विराम जन्म लेता है।
कोशिशों से ही परिणाम जन्म लेता है।
मुश्किलों से न घबरा कभी सोचकर ये-
कष्ट की कोख से आराम जन्म लेता है।

★

प्रीति की प्रस्तावना को बल मिले।
शान्ति की सम्भावना को बल मिले।
हम ऋचाओं की करें फिर सर्जना,
अग्नि की आराधना को बल मिले।

— बुद्ध विहार, (हनुमान मन्दिर के पीछे)
आलमनगर रेलवे स्टेशन, लखनऊ

(पृष्ठ ३१ का शेष) **समुद्र-गर्भ में अब ...**

जबकि शेष सारा वातावरण खारा है। पाण्डव जिन उलूखलों में सोमरस तैयार करते थे, उन्हें मार्ग के दोनों ओर लगाकर व्यवस्थित कर देने के कारण उस मार्ग को 'सोमरस-मार्ग' के नाम से जाना जाता है।

निष्कर्षतः धर्म, संस्कृति, शान्ति, स्नेह, आस्तिकता, मानवता, देश-प्रेम, ईमानदारी, स्वाभिमानशीलता, अचौर्य व निष्ठा की संवाहिका / ध्वजवाहिका है द्वारका। कहा भी गया है कि-

सौराष्ट्र पञ्चरत्नानि नदी नारी तुरंगमाः।
चतुर्थं सोमनाथश्च पञ्चमं हरिदर्शनम्।।

ऐसे हरिदर्शन के पुण्य से पुण्यशालिनी द्वारका सदा ही प्रणम्या थी, है और रहेगी। ❐

— निदेशक, श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकाडमी
एण्ड इण्डोलाजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जामनगर
(गुजरात)-३६१३२५

क्या उपनिषद् काल की गंगा–घाटी संस्कृति थी ?

– वीरेन्द्र नाथ भार्गव

उपनिषदों का ज्ञान कोई एकदेशीय ज्ञान नहीं है। उपनिषद् ज्ञान उस काल का ज्ञान है, जब विश्व एक ही धर्म का अनुयायी था। विभिन्न उपनिषद् कितने प्राचीन हैं ? इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है। लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी विश्व की ज्ञात मिस्र से लेकर सिन्धु घाटी सभ्यताओं में प्रतीक चिह्न और चित्रित लिपि का प्रयोग हुआ था। प्रतीक चिह्न और चित्रित लिपि के अस्तित्व में आने का और उसे अपनाये जाने का भी निश्चित कारण रहा है। भारत में उपलब्ध–प्राचीनतम प्रमाण प्रागैतिहासिक गुफाएँ शैल–चित्र हैं। ऐसी अनेक गुफाएँ भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् भी खोज निकाली गयी हैं। सन् १९७९ तक मध्य भारत की प्रसिद्ध भीमबेटका सहित भारत में लगभग १००० शैल–चित्र–गुफाएँ खोजी जा चुकी थीं। क्या उपनिषद् उन प्रागैतिहासिक प्रमाणों से जुड़े हुए हैं; यह विचारणीय है। एक प्रसिद्ध भारतीय पुराविद् डॉ० अशोक दत्ता ने नवम्बर १९८२ में बंगाल के मिदनापुर जिले में लालजल नामक स्थान पर देवपहाड़ नामक पहाड़ी पर १० मीटर आयताकार प्रागैतिहासिक गुफा खोज निकाली। यहाँ पायी गयी हड्डियों से बने उपकरणों से अनुमान लगा कि ये ताम्र–युग से भी पुराने हैं। इस गुफा में लाल रंग से बना एक सावधान मुद्रा में मुड़ी गर्दन वाले साँड का रेखा–चित्र खोजा गया। हजारों वर्ष पहले जब घने जंगल और हिंसक पशुओं का प्रसार था, तब एक पहाड़ी में गुफा में बना साँड का चित्र क्या सन्देश देता है ? छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित ब्रह्मचारी सत्यकाम को ब्रह्म (ओऽम्) के प्रथम चरण का साँड के मुख से दिया सन्देश की गाथा का इस चित्र के द्वारा होने की सम्भावना व्यक्त होती है।

भारतीय पुराविदों ने बर्दवान और वीरभूमि क्षेत्रों से लगभग ८२ प्रागैतिहासिक गुफाएँ खोज निकालीं। पांडुराजार ढिबी नामक स्थान पर ताम्रयुग से भी पुराने मिट्टी के बर्तन और ठीकरों पर गणितीय रेखाचित्र इत्यादि खोजे गये हैं। पांडुराजार शब्द पांडवकालीन जैसी प्रचीनता की परम्परा का बोधक है। यहाँ पायी गयी एक हाँडी के अन्दर स्वस्तिक चित्र बने हुए पाये गये हें। प्रणव के अर्थ हैं प्राण (जीवन देनेवाली वस्तु अथवा शक्ति) यह जीवन देने वाला धक्का (प्रणव) मस्तिष्क में चोटी के स्थान पर सर्वप्रथम पड़ता है। यहाँ आकर यह शक्ति सुनहरे स्वस्तिक वाचक चिह्न के रूप में प्रकट होती है। इस चिह्न के बनते ही ओऽम् की गुंजार प्रारम्भ हो जाती है। ये अनुभव अति सूक्ष्म हैं। योग–विद्या में निपुण व्यक्ति इसे सुन सकता है। कदाचित् बंगाल में पाई गयी स्वस्तिक चित्रित हाँडी ऐसे ही उपनिषदों से जुड़े इतिहास की प्रामाणिकता को पुष्ट करती है। उपर्युक्त प्रागैतिहासिक साँड़ का चित्र और स्वस्तिकयुक्त हाँडी सम्मिलित करने पर प्राचीन भारतीय इतिहास के लुप्त अध्यायों और सत्य प्रसंगों को दिशा–बोध देते हैं। प्राचीन संसार की सभ्यताएँ नदियों के किनारे सर्वप्रथम पनपी थीं। प्राचीन मिस्र में मिले नील नदी, इराक में दजला और फरात नदी तथा भारत में सिन्धु नदी के किनारे बसी सभ्यताएँ विश्वविख्यात हैं।

बंगाल में पाये गये ये शैलचित्र तथा पुरासामग्री क्या प्राचीन गंगाघाटी संस्कृति के स्मृति–चिह्न हैं? प्रसंगवश महात्मा बुद्ध के १०० पूर्वजन्मों की गाथाओं, उनमें से कुछ नगर वाराणसी सहित गंगातट पर प्राचीन संस्कृति के अंग रहे हैं। कदाचित् बौद्ध साहित्य और वैदिक साहित्य को पुरादृष्टिकोण से गंगाघाटी संस्कृति के आलोक में समझा जायेगा, तो भारतीय संस्कृति के सम्बद्ध विलुप्त अध्याय उजागर हो सकेंगे, ऐसा विश्वास है। इनसे भारत की प्रागैतिहासिक परम्परा उपनिषदीय ज्ञान को अभिव्यक्त करने वाले शैलचित्रों में निहित विश्व–व्यापी संकेतों, सन्देशों को कदाचित् पुष्ट कर पायेंगे। ❐

– १२, महावीर नगर, जयपुर–३०२०१०

> *कोई मनुष्य सर्वरूप परमात्मा से अपनी अमरता तब तक कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक समग्र राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम–रोम में जोश न मारती हो।*
>
> **– स्वामी रामतीर्थ**

उत्तम क्या है ? शाकाहार या मांसाहार ?

- अनिल भटनागर 'मोहनव्रज'

क्या उत्तम है शाकाहार या मांसाहार ? यह विवाद प्रायः लोगों में देखने को मिलता है। बहुधा जो जन्म से शाकाहारी होते हैं, वे मांसाहार की आलोचना करते हैं तथा जो मांसाहारी होते हैं, वे शाकाहारियों को हेय–दृष्टि से देखते हैं। प्रायः यह विवाद भावनाओं के आधार पर होता है न कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा तर्क के आधार पर।

आइए, इस विषय पर तर्कपूर्ण शैली में विचार करें और निर्णय करें कि क्या उत्तम है— शाकाहार या मांसाहार ? इसके लिए निम्नलिखित कुछ प्रश्न हैं, जिनके उत्तर से हमें स्पष्टीकरण प्राप्त हो सकता है—

प्रश्न १– जहरीले तत्त्व किसमें हैं, शाकाहार या मांसाहार में ?

उत्तर– विश्व भर के डॉक्टरों ने यह साबित कर दिया है कि शाकाहारी भोजन उत्तम स्वास्थ्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है। फल–फूल, सब्जी, विभिन्न प्रकार की दालें, बीज एवं दूध से बने पदार्थों से बना हुआ सन्तुलित आहार भोजन में कोई भी विषैले तत्त्व पैदा नहीं करता। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब कोई जानवर मारा जाता है, तो वह मृत पदार्थ बनता है। यह बात सब्जी के साथ लागू नहीं होती। यदि किसी सब्जी को आधा काट दिया जाये और जमीन में गाड़ दिया जाए तो वह पुनः सब्जी के पौधे के रूप में हो जायेगी; क्योंकि वह एक जीवित पदार्थ है। लेकिन यह बात एक भेड़, मेमने या मुरगे के लिए नहीं कही जा सकती।

प्रश्न २– कैंसर (कर्क रोग), उच्च रक्तचाप, दिल या गुर्दे की बीमारी किसको जल्दी आक्रान्त करती है– शाकाहारियों को या मांसाहारियों को ?

उत्तर– विशिष्ट खोजों के द्वारा यह पता चला है कि जब किसी जानवर को मारा जाता है, तब वह इतना भयभीत हो जाता है कि भय से उत्पन्न जहरीले तत्त्व उसके सारे शरीर में फैल जाते हैं और वे जहरीले तत्त्व मांस के रूप में उन व्यक्तियों के शरीर में पहुँचते हैं, जो उन्हें खाते हैं। हमारा शरीर उन जहरीले तत्त्वों को पूर्णतया निकालने में सामर्थ्यवान् नहीं हैं। परिणाम यह होता है कि कैंसर, उच्च रक्तचाप, दिल या गुरदे आदि की बीमारी मांसाहारियों को जल्दी आक्रान्त करती हैं। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से हम पूर्णतया शाकाहारी ही रहें।

प्रश्न ३– किसमें प्रोटीन है– अण्डे में, पनीर में, मूँगफली में या दूध में ?

उत्तर– बहुधा यह दलील दी जाती है कि अण्डे एवं मांस में प्रोटीन, जो शरीर के लिए एक आवश्यक तत्त्व है, अधिक मात्रा में पाया जाता है; किन्तु यह बात कितनी गलत है, यह इससे साबित होगा कि सरकारी स्वास्थ्य बुलेटिन संख्या २३ के अनुसार ही १०० ग्राम अण्डों में जहाँ १३ ग्राम प्रोटीन होगा, वहीं पनीर में २४ ग्राम, मूँगफली में ३१ ग्राम, दूध से बने कई पदार्थों में तो इससे भी अधिक एवं सोयाबीन में ५३ ग्राम प्रोटीन होता है।

प्रश्न ४– किसमें अधिक कैलोरी है– मछली में, मुर्गे में या दाल में ?

उत्तर– जहाँ १०० ग्राम अण्डों में १७३ कैलोरी, मछली में ६३ कैलोरी व मुर्गे के मांस में १९४ कैलोरी प्राप्त होती है, वहीं गेहूँ व दालों से ३०० कैलोरी, सोयाबीन से ३५० कैलोरी व मूँगफली से ५५० कैलोरी और मक्खन निकले दूध एवं पनीर से लगभग ३५० कैलोरी प्राप्त होती है। फिर अण्डों के बजाय दाल आदि शाकाहार सस्ता भी है। तो हम यह निर्णय ले सकते हैं कि स्वास्थ्य के लिए क्या चीज जरूरी है।

प्रश्न ५– कोलेस्ट्रॉल किसमें अधिक है– मुर्गे में, अन्न में या फलों में ?

उत्तर– अधिक कोलेस्ट्रॉल शरीर के लिए लाभदायक नहीं है। १०० ग्राम अण्डों में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा ५०० मिलीग्राम है और मुर्गे के गोश्त में ६० है, तो वही कोलेस्ट्रॉल सभी प्रकार के अन्नों, फलों, सब्जियों आदि में शून्य है। अमरीका के विश्वविख्यात पोषण–विशेषज्ञ डॉ० माइकेल क्लेपर का कहना है कि अण्डे का पीला भाग विश्व में कोलेस्ट्रॉल एवं जमी चिकनाई का सबसे

बड़ा स्रोत है, जो स्वास्थ्य के लिए घातक है।

प्रश्न ६– आजकल टी०वी० पर आ रहा है कि अण्डे शाकाहारी हैं। क्या यह सही है?

उत्तर– १९६२ में यूनीसेफ ने एक पुस्तक प्रकाशित की तथा अण्डों को लोकप्रिय बनाने के लिए अनिषेचित (इन्फर्टाईल) अण्डों को 'शाकाहारी अण्डे' (वेजीटेरियन) जैसा मिथ्या नाम देकर भारत के शाकाहारी समाज में भ्रम फैला दिया। १९७१ में मिशिगन यूनीवर्सिटी (अमेरिका) के वैज्ञानिक डॉ० फिलिप जे. स्केण्ट ने यह सिद्ध किया कि संसार का कोई भी अण्डा निर्जीव नहीं है, फिर चाहे वह निषेचित (सेया गया) हो या अनिषेचित। यह इस बात से भी साबित होता है कि कोई भी अण्डा पेड़–पौधों से पैदा नहीं किया जा सकता है। अनिषेचित अण्डे में भी जीव होता है, उसमें श्वास लेने की क्रिया होती है, जो जीवन की निशानी है। यदि ऐसे अण्डे में श्वासोच्छ्वास की क्रिया बन्द हो जाये, तो अण्डा सड़ जाता है। अण्डे को शाकाहार में गिनना बहुत बड़ा धोखा है और अपने व्यापारिक स्वार्थ के लिए फैलाई गयी भ्रान्ति है।

इंगलैण्ड के मशहूर चिकित्सक डॉ० राबर्ट ग्रास तथा प्रो० ओकासा डेविडसन इरविंग के मतानुसार अण्डे खाने से पेचिश तथा मंदाग्नि जैसी बीमारियाँ घर कर जाती हैं और आँतें सड़ जाती हैं। जर्मनी के प्रोफेसर एग्तरबर्ग का निष्कर्ष है कि अण्डा ५१.८३ प्रतिशत कफ पैदा करता है, जो शरीर के पोषक तत्त्वों को असन्तुलित करता है। फ्लोरिडा (अमेरिका) के कृषि–विभाग की हैल्थ बुलेटिन के अनुसार अण्डों में ३० प्रतिशत डी०डी०टी० होता है। पोल्ट्रीज को जिस तरह रखा जाता है, उस प्रक्रिया में से होकर डी०डी०टी० मुर्गी की आँतों में घुल–मिल जाता है। प्रत्येक अण्डे के ऊपरी खोल में १५,००० सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जो सूक्ष्मदर्शी–यन्त्र द्वारा आसानी से देखे जाते हैं। उनके द्वारा डी०डी०टी० का विष अण्डों द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँच जाता है, जिससे कैंसर के रोग होने का खतरा रहता है। हाल ही में इंग्लैण्ड के डॉक्टरों में एक, जहरीली महामारी के शिकार हो गये। भारत में ऐसा कोई तरीका कानूनन लागू नहीं है, जिससे सड़े अण्डों की पहचान हो सके और ऐसे अण्डों के सेवन से उत्पन्न होने वाले भयंकर रोगों से लोगों का बचाव हो सके। यही नहीं, डॉ० ई०वी० मेवकालम का कहना है कि अण्डों में कार्बोहाइड्रेट बिल्कुल नहीं होते तथा कैल्शियम की मात्रा न्यूनतम होती है, जिससे पेट में सड़ाँध हो जाती है।

प्रश्न ७– जीव विज्ञान की दृष्टि से हमारा स्वाभाविक भोजन मांसाहार है या शाकाहार?

उत्तर– मनुष्य की संरचना की दृष्टि से भी हम देखेंगे कि शाकाहारी भोजन हमारा स्वाभाविक भोजन है। गाय, बन्दर, घोड़े और मनुष्य इन सबके दाँत सपाट बने हुए हैं, जिनसे शाकाहारी भोजन चबाने में सुविधा रहती है। जबकि मांसाहारी जानवरों की जीभ लम्बी होती है एवं दाँत नुकीले होते हैं, जिनसे वे मांस को खा सकते हैं। उनकी आँतें भी उनके शरीर की लम्बाई से दुगुनी या तिगुनी होती हैं जबकि शाकाहारी जानवरों एवं मनुष्य की आँतें उनके शरीर की लम्बाई से सात गुना होती हैं। अर्थात् मनुष्य शरीर की रचना शाकाहारी भोजन के लिए ही बनायी गयी है न कि मांसाहार के लिए।

बड़े आश्चर्य का विषय है कि जो प्राणी (बन्दर) सिर्फ आदमी की शक्ल का है, वह मांस नहीं खाता है, वह अपनी आँतों को पहचानता है, परन्तु मनुष्य कहलाने वाला प्राणी इतना विवेकहीन है कि वह मांस–भक्षण करता है।

प्रश्न ८– वे जीव, जिन्हें जीवनदान नहीं दे सकते, उनका जीवन लेने का हमें क्या अधिकार है?

उत्तर– आज विश्व में सबसे बड़ी समस्या है, विश्व शान्ति की स्थापना करना और बढ़ती हुई हिंसा को रोकना। चारों ओर हिंसा एवं आतंकवाद के बादल उमड़ रहे हैं। उन्हें यदि रोका जा सकता है तो केवल मनुष्य के स्वभाव को अहिंसा और शाकाहार की ओर प्रवृत्त करने से ही। महाभारत से लेकर गौतम बुद्ध, ईसा, भगवान् महावीर, गुरुनानक और गांधीजी तक सभी सन्तों एवं मनीषियों ने अहिंसा पर विशेष जोर दिया है। हमारे संविधान की धारा– ५१ ए (जी) के अन्तर्गत भी हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सभी जीवों पर दया करें और इस बात को याद रखें कि हम किसी को जीवन प्रदान नहीं कर सकते तो उनका जीवन लेने का भी हमें कोई हक नहीं है।

प्रश्न ९– विश्व में अब शाकाहार की ओर रुचि बढ़ रही है या मांसाहार की ओर? विश्व के अधिकतर बुद्धिजीवी शाकाहारी थे या मांसाहारी?

उत्तर– दस वर्ष पूर्व नीदरलैण्ड की १.५ प्रतिशत आबादी शाकाहारी थी जबकि वर्तमान में वहाँ ५ प्रतिशत शाकाहारी हैं। एक प्रकीर्ण मतगणना के अनुसार इंग्लैण्ड में प्रति सप्ताह ३,००० व्यक्ति शाकाहारी बन रहे हैं। वहाँ अब २५ लाख से अधिक व्यक्ति शाकाहारी हैं। एक प्रेस समाचार के अनुसार अमरीका में डेढ़ करोड़ व्यक्ति शाकाहारी हैं। सुप्रसिद्ध गायक माइकल जैक्सन एवं मैडोना पहले से ही शाकाहारी हो चुके हैं। अब विश्व की सुप्रसिद्ध टेनिस खिलाड़ी मार्टिना नावस्तिलोवा ने भी शाकाहार व्रत धारण कर लिया है। बुद्धिजीवी व्यक्ति शाकाहारी प्रणाली को

अधिक आधुनिक, प्रगतिशील और वैज्ञानिक कहते हैं एवं अपने आपको शाकाहारी कहने में गर्व महसूस करते हैं। संसार के महान् बुद्धिजीवी, उदाहरणार्थ पाम थ्यमोरस, अरस्तू, प्लेटो, लियोनार्दो द विंची, शेक्सपीयर, डारविन, पी०ए० एक्सले, इमर्सन, आइन्स्टीन, जार्ज बर्नार्ड शॉ, एच०जी० वेल्स, सर जूलियन हक्सले, लियो टॉल्स्टाय, शेली आदि सभी शाकाहारी ही थे। भारत के प्रमुख सामाजिक नेता जो शाकाहार के क्षेत्र में अग्रणी रहे हैं, उनमें महावीर और गौतम बुद्ध से लेकर गांधीजी तक अनगिनत नाम हैं। यही नहीं, नोबेल पुरस्कार विजेता सी०वी०रमण और भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् भी शाकाहारी थे।

प्रश्न १०– जब मुसलमान, ईसाई लोग मांसाहार खाते हैं तो क्या यह उनके धर्म के अनुकूल है? क्या केवल हिन्दुओं के लिए ही यह निषिद्ध है?

उत्तर– सनातन धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म में तो मांसाहार सर्वत्र निषिद्ध ही है। कुरान व बाइबिल में भी जीव–मात्र के प्रति दया व पड़ोसी के प्रति सद्भाव का ही उल्लेख किया गया है। आज जो मुस्लिम या ईसाई मांसाहार करते हैं, वे अपने धर्म की आड़ लेते हैं, वे दिखाएँ तो सही कि पैगम्बर, या ईसा मसीह ने कहाँ और किस ग्रन्थ में किस पृष्ठ पर मांसाहार की वकालत की है? उन्होंने कहा कि हम सब ईश्वर की सन्तान हैं। अतः एक ओर तो हम उनके पुत्रों, जीवों की हत्या करें व दूसरी ओर उन परमपिता की कृपा चाहें, इसे कौन पिता पसन्द कर सकता है?

सनातन धर्म में जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल मिलेगा, के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। अतः जहाँ–जहाँ कथा आई है कि अमुक ने अमुक की बलि दी, वहाँ–वहाँ उसका परिणाम भी दिखाया गया कि इससे यज्ञ भगवान् कुपित हो गये व यज्ञ करनेवालों को ही नष्ट कर दिया। दक्ष ने अपने यज्ञ में बकरे की बलि दी तो उसकी स्वयं की बलि हो गई एवं उसको बकरे का मुख लगाना पड़ा। जड़भरत जी की बलि देने पर देवी कुपित हो गईं व सब यज्ञ करने वालों का ही संहार कर दिया।

दूसरी ओर देखिए– राजा दशरथ जी द्वारा किया गया सात्विक यज्ञ, जिसमें अग्नि व घी का प्रयोग किया गया स्वयं श्री यज्ञ–भगवान् प्रकट हुए व पुत्र प्राप्ति का वर दिया और पुत्र भी कैसे? भगवान् श्री राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सरीखे।

माता गांधारी ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि मैंने ऐसा कौन–सा पाप किया था कि अपने सामने ही मुझे सभी १०० पुत्रों का मरण देखना पड़ा। प्रभु श्रीकृष्ण ने बताया "पूर्व जन्म में भी आप एक रानी थीं। एक बार भयंकर व्याधि होने पर दो विकल्प आपके सामने थे– वैद्य की दी हुई जड़ी–बूटी का सेवन या फिर एक तान्त्रिक द्वारा १०० कीड़ों को मारकर बनाये गये एक मलहम का सेवन। आपने मलहम को चुना। उन १०० कीड़ों को पिसने में जो पीड़ा हुई, उससे वे मन ही मन दुःखी होते रहे तथा प्रतिज्ञा करते रहे कि आपसे कभी न कभी बदला अवश्य लेंगे। ये आपके १०० पुत्र ही वे १०० कीड़े हैं और अब उनके मरण पर जो पीड़ा आपको हो रही है, वह आपकी यातना है, आपका पश्चात्ताप है।"

एक प्राचीन कहावत के अनुसार जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। इसलिए मांसाहार जैसे तामसिक एवं मृत भोजन से तो हम तामसिक वृत्ति के ही बनेंगे। सभी जीवों में समानता एवं दिव्य भावना की दृष्टि से भी मांसाहार कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। ❐

– "श्रीहरिधाम", १३६५, सेक्टर–१२, श्रीरामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–११००२२

कुत्ते को दूध पिलाती है गोमाता

आप भले ही विश्वास करें या न करें; किन्तु भरतपुर (राजस्थान) की कृष्णनगर हाउसिंग कालोनी स्थित एक मकान के सामने एक गाय को कुत्ते को दूध पिलाते और दुलराते हुए देखकर लोग दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाते हैं। इस दृश्य को देखने कालोनी में लोगों का मेला–सा लगा रहता है। कालोनी के सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के अनुसार उक्त गाय प्रतिदिन बिना नागा किये दोपहर तथा सायंकाल आती है और बिना लात चलाये कुत्ते को दूध पिलाती है। यह दृश्य पूरे भरतपुर नगर में चर्चा का विषय बना हुआ है।

कौन कहता है गाय माता नहीं है? ❐

विश्व पर इस्लामी कट्टरवाद की कुटिल छाया (१)

- राम गोपाल

विश्व के तेजी से बदलते राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में पिछले कुछ वर्षों से इस्लामी कट्टरवाद भयंकर रूप धारण करता जा रहा है। पहले यह कट्टरवाद अरब–इजरायल संघर्ष तथा (१९७० के दशक में) सोवियत रूस द्वारा अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप से जुड़ा था; किन्तु अरब राज्यों और इजरायल के बीच शांन्ति समझौता हो गया है और अफगानिस्तान से न केवल सोवियत रूस की सेनाएँ चली गईं हैं; बल्कि स्वयं सोवियत रूस समाप्त हो गया है। परिणामस्वरूप लगभग ७० मुस्लिम अन्तर्राष्ट्रीय कट्टरवादी संगठन, जिनके पास अपरिमित अस्त्र–शस्त्र व गोला–बारूद हैं, आज विश्व के धर्म–निरपेक्ष और प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों को अपना निशाना बना रहे हैं। वे मुस्लिम देश भी जो पूरी तरह शरीयत (इस्लामी कानून) का पालन नहीं करते, यथा ईजिप्ट, अल्जीरिया, टर्की, आदि इनकी चपेट में हैं।

सात अगस्त १९९४ को लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय खिलाफा कॉन्फ्रैंस हुई थी, जिसमें आठ हजार कट्टरपन्थी मुस्लिम प्रतिनिधि नेता और विद्वानों ने भाग लिया। इनमें से काफी संख्या में सिरों पर बड़े–बड़े रूमाल बाँधे मुसलमान स्त्रियाँ भी थीं। इस कॉन्फ्रेंस का आयोजन 'हिजब–उ–तहरीर' नामक संस्था ने किया था, जिसकी आतंकवादी गतिविधियों के कारण उस पर खाड़ी देशों ने प्रतिबन्ध लगा रखा था। इस संस्था के प्रवक्ता फरीद कासिम ने कहा–

'अरब देशों और इजरायल के बीच जो सन्धि–वार्त्ता चल रही है, वे सब गैर–कानूनी है। जब तक इजरायल नामक राज्य समाप्त नहीं हो जाता, तब तक इस्लामी राज्यों में शान्ति नहीं हो सकती। तमाम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, चाहे वे संयुक्त–राष्ट्र हों, चाहे अन्तर्राष्ट्रीय–मुद्रा–कोष या अरब लीग, सभी उपनिवेशवादी बड़े राष्ट्रों के अधीन हैं। इसलिए उन सभी को इस्लाम तथा मुस्लिम जनसमुदाय अमान्य करते हैं।'

जैसे ही इस प्रकार की स्थितियाँ या घोषणाएँ होती थीं, उपस्थित मुस्लिम प्रतिनिधियों के मुँह से इस्लामी युद्धघोष, 'अल्ला–हो–अकबर' गूँज उठता था। वक्ताओं में पश्चिमी एशिया, पाकिस्तान और संयुक्त–राज्य–अमेरिका के लोग भी शामिल थे। इस प्रकार इस्लामी कट्टरवाद समस्त विश्व के लिए नवीनतम खतरा बनकर उभरा है। किन्तु भारत को यह खतरा सबसे अधिक है; क्योंकि भारत शताब्दियों से इस्लामी कट्टरवाद की चपेट में रहा है। इस इस्लामी कट्टरवाद के विरुद्ध किसी भी योजना में इसके विश्वव्यापी स्वरूप को ध्यान में रखना आवश्यक है। यह भी जानना आवश्यक है कि वे कौन से तत्त्व हैं, जो हजारों–लाखों स्त्री–पुरुषों, युवक–युवतियों को इस्लामी कट्टरवाद से जुडने की और इसके लिए देश–विदेश की सीमाएँ लाँघकर अपना जीवन, धन, सम्पत्ति, सभी कुछ न्योछावर करने की प्रेरणा देते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ईसाई धर्म के बाद, विश्व में इस्लाम मतावलम्बियों की संख्या सर्वाधिक है। चौदह सौ वर्ष पहले अपने जन्मकाल से ही इस्लाम की प्रकृति आक्रामक रही है। प्रारम्भ में ही इस्लाम के प्रवर्त्तक हजरत मोहम्मद ने मक्का के प्राचीनतम मन्दिर 'काबा' पर अपना दावा प्रस्तुत किया। अपने नये मजहब के लिए यदि मुहम्मद साहब ने एक नया पूजा–स्थल निर्मित किया होता, तो उनका पूर्ववर्त्ती धर्मपालकों से संघर्ष न होता और न उन्हें मक्का से पलायन कर मदीना जाना पड़ता, न एक विशाल सेना खड़ी करके आठ वर्ष बाद मक्का पर आक्रमण करते, न काबा पर अधिकार करके वहाँ स्थापित ३६० से अधिक देवी–देवताओं की मूर्त्तियों को तोड़ने की, न ही मक्का के हर उस व्यक्ति की हत्या करनी पड़ती, जिसने उनके नये (मजहब) को स्वीकार नहीं किया। मोहम्मद साहब का यह कृत्य ही उनके अनुयायियों के लिए अनुपम अनुकरणीय उदाहरण बन गया, जिसके अनुसार अन्य धर्मों के साथ सह–अस्तित्व का सिद्धान्त (अल्पकालीन अपवाद को छोड़कर) त्याज्य हो गया।

इस्लाम कहता है कि संसार में एक ही ईश्वर है, हजरत मोहम्मद उसके दूत या पैगम्बर हैं और कुरान ईश्वर का, मोहम्मद द्वारा दिया गया, मनुष्य को सन्देश है। यहाँ तक सब ठीक है। इस्लामी राजनीति तथा अन्य

धर्मावलम्बियों पर अत्याचार का सिलसिला निम्नलिखित मान्यताओं से उपजता है–

१. यद्यपि मोहम्मद साहब से पहले सैकड़ों पैगम्बर विभिन्न देशों और लोगों के बीच हुए; किन्तु अन्तिम पैगम्बर होने के नाते वे सबसे ऊपर हैं तथा पिछले सभी पैगम्बर निरस्त माने जायें।
२. भविष्य में प्रलयकाल तक कोई अन्य ईश्वरीय दूत अर्थात् पैगम्बर नहीं आ सकता।
३. वह हर बात जो कुरान के अनुसार नहीं है, झूठ है और उसको नष्ट हो जाना चाहिए।
४. किसी गैर–मुस्लिम को इस्लाम की शरण में लाना अथवा इस्लाम, हजरत मोहम्मद या कुरान का अनादर करने वाले को यमलोक पहुँचाना सबसे महान् धार्मिक कृत्य है।

हजरत मोहम्मद का जीवन चरित्र तथा उनके द्वारा समय–समय पर किये गये फैसलों से इस्लाम धर्मवेत्ता यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मात्र इस्लाम के प्रचार व प्रसार के उद्देश्य से ही मुसलमान, गैर–मुसलमान के साथ अल्पकालिक समझौते कर सकता है। उपर्युक्त धर्मवेष्टित राजनीतिक आदर्श या दर्शन ही था, जिससे प्रेरित होकर अरबवासियों ने एक हजार वर्ष पूर्व पश्चिमी–एशिया, मध्य एशिया, उत्तरी अफ्रीका और भारत के सिन्ध प्रान्त में अपने साम्राज्य स्थापित किये। उन्होंने अपने नये राज्यों की यहूदी, ईसाई, पारसी, बौद्ध, हिन्दू जनता अथवा अन्य धर्मावलम्बियों को इस्लाम में परिवर्तित किया और अपनी अरबी भाषा को राजभाषा बनाया। बाद के समय में जैसे–जैसे तुर्कों, ईरानियों तथा अन्य गैर–अरब जनता में राष्ट्रीय भावना जगी, उन्होंने इस्लाम धर्म अंगीकार करते हुए भी, अरब शासन और उनकी अरबी भाषा को उखाड़ फेंका। उसके स्थान पर स्वशासन और स्वभाषा– तुर्की अथवा फारसी को पुनः स्थापित किया। इस प्रकार पर्शिया, ईजिप्ट, सीरिया, टर्की आदि के स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुए। इनमें भी अपने–अपने राज्य–विस्तार को लेकर परस्पर युद्ध हुए। वास्तव में ६३२ ई० में हजरत मोहम्मद के देहावसान के साथ ही उत्तराधिकार को लेकर उनके वारिसों में झगड़े शुरू हो गये। इन आन्तरिक युद्धों के कारण ही खलीफा की गद्दी मदीना से उठकर दमिश्क, वहाँ से बगदाद फिर ईजिप्ट, और अन्त में टर्की (इस्तम्बूल) चली गयी। इन्हीं युद्धरत सम्प्रदायों और वंशों में से कुछ– तुर्की, ईरानी, अफगानी, मुगल आदि– भारत की उत्तर–पश्चिमी सीमा पार कर भारत में आ घुसे और यहीं बस गये।

प्याज का प्रवेश वर्जित

उत्तर प्रदेश ही नहीं, सम्भवतः पूरे देश में जनपद हरिद्वार का मिरगपुर गाँव एकमात्र ऐसा आदर्श ग्राम है, जिसके अन्दर प्याज घुस नहीं सकता। इस ग्राम में प्याज का सेवन पूर्णतः निषिद्ध है।

ग्राम देवता बाबा फकीरा के द्वारा पूर्व में लगाये गये निषेधों के कारण इस गाँव में कोई भी प्याज का सेवन नहीं करता। यहाँ तक कि गाँव में प्याज रखने तक की मनाही है। प्याज के विरुद्ध यह प्रथा विगत अनेक वर्षों से इस गाँव में चली आ रही है, जिसका पालन प्रत्येक ग्रामवासी पूरी श्रद्धा से करता है। ❒

उपर्युक्त शक्तिशाली इस्लामी राज्यों ने योरोप के ईसाई राज्यों के भारत तथा अन्य दक्षिण–पूर्वी देशों के साथ शताब्दियों से होने वाले व्यापार को बहुत हानि पहुँचाई; क्योंकि बीच में पड़ने वाले बन्दरगाहों के मालिक इस्लामी राज्य, व्यापार के माल पर भारी कर वसूल करते थे। कालीमिर्च और कुछ अन्य कीमती वस्तुएँ वे स्वयं लेकर मनमाने भाव पर योरोप को बेंचते थे। इन इस्लामी राज्यों को जहाँ अपना राजस्व बढ़ाने की आवश्यकता थी, वहाँ इन्हें योरोप के व्यापारियों को समाप्त भी करना था। इन्हीं विपरीत व्यापारिक परिस्थितियों के कारण योरोप निवासियों ने स्वयं भारत तथा अन्य पूर्वी देशों को खोजने का काम शुरू किया। अपनी अधिक शक्तिशाली समुद्री शक्ति के कारण धीरे–धीरे योरोपीय व्यापारियों ने पूर्व और पश्चिम के बीच चलने वाले व्यापार पर एकाधिकार कर लिया। अठारवीं शताब्दी से योरोप में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति ने आग में घी का काम किया। १६वीं शताब्दी के अन्त तक विश्व में टर्की का ऑटोमन साम्राज्य और पर्शिया (ईरान) ही दो मुस्लिम देश योरोपीय दासता से मुक्त रहे। इसके बाद ऑटोमन साम्राज्य पर ईसाई ताकतों का दबाव बढ़ा। एक ओर रूस के बादशाह जार के द्वारा और दूसरी ओर योरोपीय शक्तियों द्वारा सक्रिय समर्थन पाकर ऑटोमन साम्राज्य के ईसाई–बहुल राज्य स्वतन्त्र हो गये। ग्रीस, रूमानिया, सर्बिया, बुलगारिया, साइप्रस,

ईजिप्ट अलग होकर ब्रिटेन के अन्तर्गत आ गये। ट्यूनीशिया पर फ्रान्स का आधिपत्य हो गया। इन सब राजनैतिक कारणों से विश्व का मुस्लिम समुदाय योरोप के ईसाई देशों का दुश्मन हो गया। इसी काल में जर्मनी भी योरोप की एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा; किन्तु उसे टर्की के टूटे साम्राज्य में से कोई हिस्सा न मिला। फ्रान्स और ब्रिटेन का प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण जर्मनी ने टर्की की हर प्रकार सहायता की। इन्हीं कारणों से प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१८) के दौरान टर्की ने अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया।

योरोपीय शक्तियों के बढ़ाव के विरुद्ध इस्लामी जगत् की प्रतिक्रिया दो रूपों में प्रकट हुई। एक तो पश्चिमी विचारों और शिक्षा से प्रभावित उच्चवर्गीय समुदाय और दूसरे कट्टरपन्थी मुल्ले-मौलवियों द्वारा। पहले वर्ग का प्रमुख प्रवक्ता जमालुद्दीन (जमाल-अल्-दीन) अफगानी (सन् १८३९-९७) हुआ है। उसकी मान्यता थी कि इस्लाम, जिसे धर्म की संज्ञा दी जाती है, वास्तव में एक सभ्यता है, जिसमें विश्व-शक्ति बनने के गुण हैं। मुसलमानों को इसी प्रकार संगठित होना है, जैसे कि अनेक टुकड़ों में बँटे जर्मन और इटलीवासी हुए। अफगानी के अनुसार इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन योरोप, विशेषकर ब्रिटेन है, जिसके अधीन इजिप्ट और भारत थे। प्रारम्भ से ही राजनीति तथा मानव-जीवन के सभी पक्ष इस्लाम मजहब की परिधि में आ जाते हैं, लेकिन जमाल-अल्-दीन योरोपीय राज्य-पद्धति अपनाने का पक्षधर था। वह भारत भी आया था और बम्बई, कलकत्ता तथा अन्य नगरों के मुस्लिम नेताओं से मिला था। वह पहला व्यक्ति था, जिसने भारतीय मुलसमानों के सामने पाकिस्तान जैसे अलग राज्य की योजना रखी। इसका उल्लेख सर सिकन्दर हयात खाँ ने ११ मार्च १९४१ को अविभाजित पंजाब असेम्बली में किया था।

योरोपीय शक्तियों के विरुद्ध कट्टरपन्थी मुल्ले-मौलवियों की प्रतिक्रिया यह थी कि देशस्थ सीमाओं की परवाह न करते हुए विश्व के सभी मुसलमानों को एकजुट होकर योरोप के राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व के विरुद्ध धर्मयुद्ध (जिहाद) छेड़ देना चाहिए।

द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रभाव

उपर्युक्त वातावरण में योरोपीय शक्तियों ने प्रत्येक मुस्लिम देश के उच्चवर्गीय नेतृत्व से गठजोड़ किया। द्वितीय महायुद्ध के बाद जिन देशों को उन्हें छोड़ना पड़ा, उनमें इसी मुस्लिम उच्च वर्ग के नेताओं को सत्ता सौंपी। उस समय तो सभी इस्लामी और गैर इस्लामी देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। ये सारे देश (जिन्हें मिलाकर तीसरा विश्व कहा जाता है) प्रत्येक क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र प्रगति करने के प्रयासों में जुट गये; किन्तु कुछ छोटे राष्ट्रों (यथा सिंगापुर) को छोड़कर सभी को असफलताओं का सामना करना पड़ा। कारण यह था कि इन देशों के नेतृत्व मूल रूप से विलासी और अनुभवहीन थे। उनके शासन जनता को लुभावने नारे देने और उन्नत देशों से बड़ी-बड़ी उधार की रकमों पर टिके थे। दूसरी ओर पूँजीवादी पश्चिमी देश तथा सोवियत रूस के नेतृत्व वाले कम्यूनिस्ट देशों के बीच शीतयुद्ध (लगभग ४५ वर्षों तक चले) के दौरान पूँजीवादी संयुक्त-राज्य-अमेरिका, ब्रिटेन आदि एक ओर से तथा सोवियत संघ, चीन आदि कम्यूनिस्ट देश दूसरी ओर से इस्लामी देशों (जिनकी संख्या लगभग ५० है) और गैर-सरकारी इस्लामी संगठनों को अपनी-अपनी ओर मिलाने की होड़ में लग गये। इनमें कई संगठन और देश अतिवादी भी थे। इस प्रकार प्रत्येक को एक न एक गॉड फादर (धर्म-पिता) मिल गया। जहाँ पूँजीवादी देशों ने पाकिस्तान, ईरान, टर्की और ईजिप्ट आदि को अरबों-खरबों डालर की सैनिक और आर्थिक सहायता दी, वहीं कम्यूनिस्ट देशों ने उसी प्रकार की सहायता इराक, अफगानिस्तान, (भारत भी) आदि देशों को दी। पाकिस्तान इन सब में होशियार और भाग्यशाली रहा। उसे पूँजीवादी अमरीका और कम्यूनिस्ट चीन दोनों से अधिकतम सहायता प्राप्त हुई। खाड़ी देशों के खनिज-तेल-उत्पादक मुस्लिम राष्ट्रों को पश्चिमी देशों की सरकारों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारी मात्रा में पूँजी, पूँजीगत सामान और प्राविधिक ज्ञान उपलब्ध कराया, जिससे इन देशों का खनिज-तेल-उत्पादन बहुत बढ़ गया। तेल के कारण ही ये मुस्लिम देश विश्व के अत्यधिक धनवान् देशों में हैं। इस तेल की आय का एक बड़ा भाग विश्व में पान-इस्लामवाद को बढ़ावा देने में प्रयुक्त होता है। इस पान-इस्लामवाद के तीन अंग हैं– (१) इस्लाम का राजनीतीकरण, (हर देश में मुस्लिम समाज को राजनैतिक संघर्ष के लिए प्रेरित करना); (२) इस्लाम का तैलीकरण (खनिज-तेल की कमाई को मुस्लिम समाज के उत्थान के लिए व्यय करना); (३) इस्लाम का आणवीकरण करना (आगामी अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में इस्लाम की ओर से लड़ने के लिए आणविक हथियारों का निर्माण करना)।

– ए-२बी/९४-ए, एम०आई०जी० फ्लैट,
'एकता अपार्टमेण्ट', पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-११००६३

पठनीय पुस्तक

'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प'

शैलेन्द्र नाथ कपूर

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने प्राचीन तथा नवीन ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त विज्ञान एवं शिल्प विषयक सामग्री को १६ अध्यायों में विभाजित किया है। ये क्रमशः गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जन्तु–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, कृषि–विज्ञान, ध्वनि–विज्ञान, सूर्य–विज्ञान एवं प्रकाश, शिल्प, यन्त्र–शिल्प, आध्यात्मिक यन्त्र, विमान–विद्या, वेद और विज्ञान तथा पुराणों में विज्ञान। इन सभी अध्यायों को कालक्रम को दृष्टिगत रखते हुए उप विभागों में बाँटा गया है। लेखक ने विशेष रूप से साहित्यिक तथा कही–कहीं पुरातात्त्विक प्रमाणों से तथ्यों को पुष्ट करते हुए देश के प्राचीन ज्ञान को सरल एवं सुबोध, किन्तु परिमार्जित भाषा में पाठकों तक पहुँचाने की सफल चेष्टा की है।

वर्तमान काल में हमारा देश आणविक शक्ति से समन्वित होकर अपनी सीमाओं की रक्षा की दृष्टि से आत्मनिर्भर है। अब हम विकासशील नहीं, अपितु विकसित देश के अन्तर्गत एशिया महाद्वीप की महाशक्ति हैं। अपने आत्म–सम्मान की रक्षा करते हुए अपने पड़ोसी देशों की सहायता करने हेतु सदैव तत्पर हैं। हमारा मन विश्व के प्रति सदैव स्वच्छ रहा है। ऐसे समय में प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। राष्ट्र के नागरिकों को इस पुस्तक से एक ही स्थान पर अपने पूर्वज चिन्तकों की मनीषा का ज्ञान हो जाता है। मानव जीवन की रक्षा तथा ब्रह्माण्ड का ज्ञान उनकी साधना का अभिन्न अंग था। यह ज्ञान भारत से विदेशों में जाता रहा। अरब तथा योरोप के देशों ने इसका विशेष लाभ उठाया।

पुस्तक के लेखक के अनुसार : प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास में लोक कल्याण की भावना का विशेष स्थान था। विज्ञान साधना का श्रीगणेश वैदिक काल से ही हो गया था। वेदों में गणित, ज्योतिष एवं आयुर्वेद के विषय में जो प्रामाणिक ज्ञातव्य तथ्य हैं, वे उस काल में साधनारत मनीषियों की वैज्ञानिक उपलब्धि के पुष्ट प्रमाण हैं। 'गणित के अन्तर्गत शून्य का आविष्कार वैदिक ऋषि गृत्समद ने किया था ; परन्तु इसका प्रथम प्रयोग आचार्य पिंगल कृत 'छन्दसूत्र' में मिलता है। इसकी रचना लगभग २०० ई० पू० में हुई थी।' (पृ० १४) वस्तुतः ऋग्वेद की निम्न ऋचा का विशेष महत्त्व है–

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।'

शुभ विचार हर ओर से हमारे पास आवें।

यह ऋचा हमारे पूर्वजों की उदार चिन्तन भावना तथा श्रेष्ठ संकल्प शक्ति को उद्घाटित करती है। इसी भावना के अन्तर्गत वेदों का उत्कृष्ट ज्ञान समाहित है। वैदिक युग की सबसे बड़ी ज्ञात संख्या 'परार्द्ध' ($१०^{१२}$) कहलाती थी। वैदिक ऋषि मेधातिथि के नाम से एक मन्त्र में १ से लेकर परार्द्ध तक की संख्याओं का क्रम निम्न है– (द्रष्टव्य पृ० १५)

१	एक
१०	दस
१००	शत
१०००	सहस्र
१०,०००	अयुत
१००,०००	नियुत
१०००,०००	प्रयुत
१०,०००,०००	अर्बुद (अरबी में अरब)
१००,०००,०००	न्यर्बुद (अरबी में खरब)
१,०००,०००,०००	समुद्र
१०,०००,०००,०००	मध्य
१००,०००,०००,०००	(?) लेखक ने यहाँ भी नियुत लिखा है जो सम्भवतः कुछ अन्य नाम होना चाहिए।
१,०००,०००,०००,०००	परार्द्ध।

मेधातिथि ने उपर्युक्त संख्याओं को दस के गुणकों में अंकित किया है। समय के साथ ये संख्याएँ अधिकांशतः प्रचलन में रहीं। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण निम्नवत् है :–

६०२ ई० से ६०७ ई० तक उत्तर भारत में हर्षवर्द्धन का शासन था। उनके राजकवि बाणभट्ट ने संस्कृत भाषा में 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उन्होंने हर्ष की सेना में हाथियों की संख्या का वर्णन करते हुए लिखा है– 'अनेकनागायुतबलम्।' अर्थात् उसकी सेना में हाथियों की संख्या अनेक अयुत थी। हर्ष के राज्यकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। उसने लिखा है कि हर्ष की सेना में ६०,००० हाथी थे। एक 'अयुत' '१०,००० के बराबर है। अतः हर्ष की सेना में ६ अयुत हाथी थे।

भारतीय संख्या–प्रणाली को अरबवासियों ने भारत से सीखा। ७१२ ई० में जब अरबों ने भारत के सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया, तो वे अपने साथ यहाँ प्रचलित अंकों की जानकारी भी ले गये और उसे अपना लिया। अरबों ने इसे 'इल्म–उल्–हिन्दसा' (हिन्दी की विद्या) नाम दिया। पाश्चात्य देशों में यह विद्या अरब से गई। (पृ० १६)

प्रसिद्ध अरबी गणितज्ञ 'अलख्वारिज्मी' ने आठवीं शती ई० में प्रथम अंकगणित सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक के गणित भाग को 'इल्म हिन्द' का नाम दिया गया। कई सौ वर्ष बाद इस अरबी ग्रन्थ का लेटिन भाषा में अनुवाद हुआ। यह अनूदित ग्रन्थ अनेक वर्षों तक यूरोप के विश्वविद्यालयों में पाठ्यग्रन्थ के रूप में प्रचलित रहा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय अंकपद्धति रोमन तथा यवन अंक पद्धतियों की अपेक्षा सरल है। उदाहरणतः रोमन में ५ को V, १० को X, ५० को L, १०० को C तथा १००० को M लिखा जाता है। यदि २१०४ लिखना हो तो MMCIV लिखेंगे। यवन (यूनानी) वर्णमाला के अक्षर अल्फा, बीटा, डेल्टा, थीटा आदि भी जटिल हैं।

कालान्तर में गणित के विकास के साथ–साथ उसकी अनेक शाखाएँ विकसित हुईं। प्राचीन भारत में गणित एवं ज्योतिष के असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् आर्यभट हुए। २३ वर्ष की आयु में उन्होंने १२१ श्लोकों में 'आर्यभटीय' नामक ग्रन्थ लिखा। इन श्लोकों को चार पादों या प्रकरणों–दश–गीतिका, गणित पाद, कालक्रिया–पाद और गोलपाद में विभाजित किया गया है। प्रथम दो प्रकरण गणित सम्बन्धी हैं और अन्तिम दो ज्योतिष सम्बन्धी। इनमें लेखक ने अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति सम्बन्धी अनेक जटिल प्रश्नों को हल किया है। ट्रिगनामेट्री या त्रिकोणमिति के चिह्न ज्या (Sine) और कोज्या (Cos) की सारिणियाँ सर्वप्रथम आर्यभट की देन हैं जिसे योरोपवासियों ने बाद में सीखा। आचार्य ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य, श्रीधराचार्य, भास्कराचार्य द्वितीय, लीलावती, नारायण पण्डित आदि आचार्यों ने गणित–विज्ञान के क्षेत्र में जो योगदान दिया है, उसका समुचित अध्ययन वर्तमान की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

हमारे पूर्वज ज्योतिष–विद्या के जन्मदाता तथा उसके प्रखर अध्येता थे। ज्योतिष शास्त्र के प्रत्यक्ष होने का प्रमाण सूर्य तथा चन्द्रमा देते हैं। आकाश स्थित ज्योति पुंजों के निरीक्षण, परीक्षण, अध्ययन और उनके रहस्यों को जानने की भावना से ज्योतिष विद्या का जन्म हुआ–

"ज्योतिषं सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्....।" अर्थात् सूर्यादि ग्रह नक्षत्रों और काल आदि का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिष–शास्त्र कहा जाता है। लेखक ने अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से ज्योतिष शास्त्र के विविध अंगों की अभिव्यक्ति की है। उदाहरणतः ब्राह्मणों एवं आरण्यकों के समय में नक्षत्रों की आकृति, स्वरूप, गुण तथा प्रभाव का ज्ञान प्राप्त करना ज्योतिष के अध्येताओं का ध्येय हो गया। उसके बाद नक्षत्रों के शुभाशुभ फलों का विवेचन होने पर ज्योतिष के तीन अंग विकसित हुए–

१. गणित, २. सिद्धान्त, ३. फलित।

लेखक ने इनका समुचित विवरण देकर पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि की है। छान्दोग्य उपनिषद् (७.१.२. तथा ७.१.४.) में उल्लेख है कि चन्द्रमा जिस मार्ग से आकाश में भ्रमण करता है, उस पर पड़ने वाले प्रमुख तारों को 'नक्षत्र' कहते हैं। २८ दिन के चन्द्रमा के भ्रमण का निदर्शन २७ नक्षत्रों से होकर सम्भव होता है। परवर्ती युग में मास के नाम नक्षत्रों के नाम पर पड़े, जैसे चित्रा के नाम पर चैत्र, विशाखा के नाम वैशाख आदि।

'सूर्य–सिद्धान्त' के अनुसार–

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।

अर्थात् पूर्णिमा के अन्त में जिस नक्षत्र में चन्द्रमा हो, उसी के नाम पर मास का नाम पड़ता है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों का अध्ययन कितना गहन एवं वैज्ञानिक था, इसका आकलन प्रस्तुत तथ्यों से किया जा सकता है।

तैत्तिरीय संहिता (३.४.७.१.) में उल्लेख है–

सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः।

अर्थात् चन्द्रमा का एक नाम 'सूर्यरश्मि' भी था। स्पष्ट है कि हमारे पूर्वज जानते थे कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है।

मानव शरीर का रोग–ग्रस्त हो जाना स्वाभाविक

है। नीरोग होने के लिए प्रकृति ने हमें नाना प्रकार की वनस्पतियाँ दी हैं। इनका अध्ययन करके हमारे पूर्वजों ने उपचार के अनेक मार्ग प्रशस्त किए। यह ज्ञान वैदिक युग से हमारी साहित्यिक सम्पदा द्वारा प्राप्त है। वैदिक चिकित्सक अश्विनीकुमार तथा बाद में धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद के ज्ञान द्वारा हमारी चिकित्सा–पद्धति को सम्पन्न किया। प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय आयुर्वेदाचार्यों को 'प्लास्टिक सर्जरी' का ज्ञान था; क्योंकि इसके लिए 'त्वचारोहण' शब्द का प्रयोग मिलता है। चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता से प्राचीन चिकित्सा–पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

जन्तु–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, कृषि आदि के क्षेत्र में अपरिमित ज्ञान प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध है। इसकी मुख्य जानकारी के लिए किया गया लेखक का प्रयास सराहनीय है। प्राचीन भारतवासी विमान विज्ञान से परिचित थे। महर्षि भरद्वाज के अनुसार–

'वेग साम्याद् विमानोण्ड जानामिति।'

आकाश में पक्षियों (अण्डज–अण्डे से उत्पन्न होने वाले) के वेग–सी जिसमें समता हो, वह विमान कहा गया है। रामायण में वर्णित पुष्पक विमान का वर्णन सर्वविदित है। इस विषय में 'रहस्य–लहरी' नामक ग्रन्थ का विवरण देते हुए लेखक ने मुख्य रूप से तीन प्रकार के विमानों का विवरण दिया है–

१. मान्त्रिक, २. तान्त्रिक, ३. कृतक (यन्त्रों द्वारा संचालित)

इसका विस्तृत ज्ञान पुस्तक के अध्ययन से ही सम्भव है। वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र में पाँच प्रकार के कोष होते हैं–

१. अन्नमय कोष, २. प्राणमय कोष, ३. मनोमय कोष, ४. विज्ञानमय कोष, ५. आनन्दमय कोष।

अन्नमय कोष के अन्तर्गत धन, रत्न, पर्वत, नदियाँ, जलाशय, वनस्पतियाँ आदि आते हैं। प्राणमय कोष के अन्तर्गत यातायात तथा संचार के साधन आते हैं। मनोमय कोष में देशवासियों की मानसिक प्रवृत्तियाँ आती हैं। विज्ञानमय कोष में वे समस्त प्रकृति प्रदत्त मानवोपयोगी पदार्थ हैं, जो उपचार, देश–रक्षा तथा राष्ट्र की प्रगति में अपना योगदान देते हैं तथा जिनका सम्यक् आकलन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। इन सभी कोषों से समृद्ध राष्ट्रवासी जब आनन्द की अनुभूति करते हैं, तो वह आनन्दमय कोष होता है। श्री कपूर जी ने प्रस्तुत पुस्तक के लेखन से राष्ट्र के पाँचों प्रकार के कोषों को किसी न किसी रूप में प्रकाशित करने की चेष्टा की है। वे ज्ञानवृद्ध तथा अनुभववृद्ध हैं। ९० वर्ष की आयु में भी उनकी लेखनी सबल एवं प्रेरणादायक है। पुस्तक सर्वथा पठनीय और संग्रहणीय है। प्रत्येक विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालय में इसे रखा जाना अपेक्षित है। छपाई, मुखपृष्ठ आदि की सुघरता को देखते हुए मूल्य भी अधिक नहीं है।

लेखक	:	श्री श्याम नारायण कपूर
प्रकाशक	:	साहित्य निकेतन ३७/५० शिवाला रोड,गिलिस बाजार, कानपुर– २०८००१
प्रथम संस्करण	:	१९९८
मूल्य	:	२९५ रुपये **पृष्ठ** : ३८५

☆

सर्वोत्तम स्नान–गृह

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय अपने व्यवहार द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष आदर्श उपस्थित करते थे। एक बार कुछ छात्र सवेरे–सवेरे उनके पास गये और स्नान गृहों की संख्या बढ़ाये जाने की माँग की। महामना ने छात्रों की बातों को शान्ति से सुना, फिर बोले– मैं अभी भ्रमण करने जा रहा हूँ। यदि आप लोग मेरे साथ चल सकें, तो इस समस्या पर भी कुछ चर्चा हो सकेगी। विद्यार्थी मालवीय जी के साथ हो चले। भ्रमण करते हुए सब लोग गंगा के किनारे पहुँचे। महामना ने अपनी पगड़ी, अंगरखा तथा जूते उतारे, फिर "गंगा मैया की जय, जय गंगे भागीरथी" का उद्घोष करते हुए जल में प्रवेश किया। अच्छी तरह स्नान करने के बाद जब वे बाहर आये, तब बोले– इससे उत्तम स्नानगृह आपको कहाँ मिलेगा? अगले दिन से प्रातः विद्यार्थियों की वह टोली गंगा–स्नान के लिए जाने लगी। ❐

–संजीव कुमार आलोक

विनीता भवन, निकट–बेली, स्कूल, सवेरा सिनेमा चौक, काजीचक, बाढ़– ८०३२१३ (बिहार)

विज्ञान की उपलब्धियाँ लोकहितकारी कैसे बनें?

– डॉ० जा० आशीर्वादम्

आधुनिक युग विज्ञान का युग माना जाता है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन के लिए जो सुविधाएँ प्रदान की हैं, उनके द्वारा सम्पूर्ण मानव जीवन ही विज्ञान के वश में आ गया है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि विज्ञान ने सारे संसार को आक्रान्त कर लिया है। यह भी मान लेना चाहिए कि इस सिलसिले में उन्नति भी बहुत हुई है। फिर भी खेद इस बात का है कि सम्पूर्ण मानव जीवन विज्ञान का गुलाम बनकर रह गया है। यहाँ तक कि साहित्य जैसे अमूल्य वरदान को भी उसके आगे तुच्छ माना जाने लगा है। फलस्वरूप यह प्रश्न तक उठने लगा है कि विश्वविद्यालयों के स्तर पर छात्रों को भाषा व साहित्य सिखाने की क्या आवश्यकता है?

साहित्य को एक प्रकार से विज्ञान का गुरु ही मान लेना चाहिए। हाँ; यह सच है कि जोर से गिरने वाले झरने की धारा के वेग से बिजली को उत्पन्न करने का मार्ग तो वैज्ञानिकों ने ही ढूँढ़ा। यह भी सच है कि चाँद पर मनुष्य को उतरवाकर विज्ञान श्रेय के शिखर पर खड़ा भी हुआ। फिर भी इन वैज्ञानिकों से भी पहले कवियों का ध्यान तो सदा से उसी चाँद और झरने की ओर गया है और उनकी विषय–वस्तु हमेशा ये ही बने रहे हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि साहित्यकार आगे चले और वैज्ञानिकों ने पीछा किया। अतः साहित्य विज्ञान का पितामह है।

इस प्रकार प्राकृतिक मूल्यों को जब वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के कई साधनों के द्वारा पहचाना, तब उन्हीं मूल्यों को साहित्यकारों ने उनसे भी (वैज्ञानिक) बहुत पहले बिना किन्हीं साधनों की मदद के सिर्फ अपनी कल्पनाशक्ति से पहचाना है।

किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। विज्ञान एवं साहित्य के लिए भी प्रतिक्रियाएँ हैं। विज्ञान की प्रतिक्रिया तो दो पक्ष की होती है अर्थात् भलाई पक्ष व हानि पक्ष; पर साहित्य की प्रतिक्रिया तो एक ही पक्ष की होती है यानी भलाई पक्ष मात्र। उदाहरणार्थ टाइम बमों का आविष्कार तो विज्ञान का है। जब तक उसका प्रयोग युद्ध–क्षेत्र तक सीमित रहता है, तब उसकी प्रतिक्रिया तो अच्छी है ही; पर जब यह आम जनता के ऊपर भी फटने लगता है, तो उसकी प्रतिक्रिया हानि ही हानि है। अतः विज्ञान की प्रतिक्रिया हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। जबकि साहित्य की बिल्कुल उस तरह की प्रतिक्रिया नहीं है।

धर्म, सत्य, अहिंसा आदि का शिक्षा, जो मानव के लिए साहित्य द्वारा प्राप्त होती है, वह लोक–कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। खासकर मनुष्य का मनोबल उसके द्वारा बढ़ता है। इसके ठीक विपरीत विज्ञान तो अधिकतर शारीरिक सम्बन्ध के व्यवहारों की ओर अग्रसर है। मन को कमजोर छोड़कर शरीर–मात्र को मजबूत बनवाने से मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु समान बन जाता है। तन और मन दोनों के समान रूप के तालमेल से ही मानवता सम्पूर्ण बनती है। जब मनुष्य विज्ञान मात्र को अपनाता है, तो वह एक यन्त्र मात्र बनकर रह जाता है।

आज के हमारें कई विश्वविद्यालयों और कालेजों में बी० काम० पढने वाले छात्रों के लिए भाषा व साहित्य सीखना अनावश्यक समझकर उनको पाठ्यक्रमों से छूट दी गई है। धर्म, सत्य, अहिंसा आदि की शिक्षा तो साहित्य से ही मिलती है। कालेज के छात्रों को ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का मौका न देकर 'रैगिंग' जैसे गर्हित क्रिया–कलापों से उनको रोकने का प्रयत्न करना कहाँ तक सफल सिद्ध हो सकता है?

वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा प्राप्त साधनों के सहारे जो जीवन हम जी रहे हैं, वह एक जंगली घोड़े की तरह तेज चलने वाला जीवन है। उसे संयम में लाकर उचित रास्ते पर चलाने के लिए साहित्य एक वल्गा (बागडोर) के समान सहायक बन सकता है। विज्ञान मात्र के लिए बढ़ावा देकर साहित्य की अवहेलना करना एक को जीवित छोड़ दूसरे को मरवा डालने के समान है। वह व्यक्तिगत जीवन के लिए ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण समाज के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। विज्ञान की उपलब्धियाँ लोकहित के विरुद्ध प्रयुक्त न हों, यह दृष्टि, यह मानसिकता, यह संकल्प साहित्य के बिना सम्भव ही नहीं है। दोनों का अधिष्ठान अध्यात्म है; परन्तु पाश्चात्य दृष्टि विज्ञान की प्रायः सभी उपलब्धियों तथा बहुआयामी प्रगति को भोगवाद की परिधि में ही बाँध रखने पर कटिबद्ध रही है और यही सबसे बड़ी विडम्बना है मात्र मानव ही नहीं, पूरी सृष्टि की दृष्टि से भी।

❑

– ८, कलैमगल नगर, पूंतमल्ली, चेन्नई–६

जब सरकारी स्कूलों में 'ईसा' के भजन याद कराये जाते थे।

साढ़े छह करोड़ अछूत नहीं, हमारे भाई-बहन हैं, 'जिगर के टुकड़े'

'भारतमाता के दो करोड़ पुत्रों के प्रति स्वामी श्रद्धानन्द का दर्द' 'हमें स्वदेशी वस्तुओं को लोकप्रिय बनाना है'

• पुष्करनाथ

गांधीजी को "महात्मा" की पदवी प्रदान करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द ही थे, जिन्होंने इस सन्दर्भ में स्वय लिखा है कि "अप्रैल सन् १६१५ में, जब वे (गाधीजी) गुरुकुल गये, तब से मैंने उन्हे 'महात्मा' की पदवी दे दी थी और यह मुझे महात्मा (गाधीजी) से मिला प्रथम पत्र था और अंग्रेजी में लिखा उनका अन्तिम पत्र भी। कारण यह कि उस व्यक्ति को, जो हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना चाहता है, अपने देशवासियों से अंग्रेजी में पत्र–व्यवहार करने का कोई अधिकार नही है। इन पंक्तियों से सिद्ध है कि सन् १६१५ तक अछूतोद्धार और स्वदेशी आन्दोलन तो क्या, गाधीजी पत्राचार भी भारत से अंग्रेजी में ही करते थे और गाधीजी अवश्य उन्हें विदेश से जब पत्र लिखते थे तो उन्हें "महात्मा मुशीराम" ही लिखते थे– स्वामी श्रद्धानन्द का पूर्व नाम मुंशीराम ही था।" इनके रचनात्मक कार्यक्रमों में "स्वदेशी–वस्तु–प्रचार" और "विदेशी–वस्तु–बहिष्कार" "अछूतोद्धार", "स्वदेशी भाषा–प्रसार" तथा उस जमाने की "सरकारी विश्वविद्यालय प्रणाली से एकदम स्वतन्त्र स्वदेशी शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली का विकास" जैसी बातें भी शामिल थीं। वे प्रथम श्रेणी के अग्रणी समाज–सुधारक थे। हिदू–धर्म–प्रचारक भी थे। हिन्दुत्व के ही प्रश्न पर सन् १६२१ में स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस से त्याग–पत्र दे दिया, कारण कांग्रेस से उनका मतभेद हुआ था गाधीजी के खिलाफत आन्दोलन के समर्थन, रौलट–ऐक्ट के विरोध तथा आर्य समाज के प्रश्न को लेकर। स्वामी श्रद्धानन्द मुस्लिम तुष्टीकरण–नीति के विरोधी थे और खुलेआम तमाम मुस्लिमों की शुद्धि करके हिन्दू धर्म में लौटा चुके थे हालाँकि यही वे वक्ता थे, जिनका व्याख्यान मौलानाओं ने दिल्ली की 'जामा–मस्जिद' में ले जाकर तमाम नमाजियों के सामने करवाया था। फिर भी हिन्दू–हित से कुढ़कर मुसलमानों ने अब्दुल रशीद नामक एक हत्यारे को इनसे 'मुलाकात' के बहाने भेजकर श्रद्धानन्द की हत्या करा दी। वे हिन्दू–हितों पर ही बलिदान हो गये। कारण मुख्य यही था, उनका हिन्दू–धर्म–प्रचार। गाधीजी ने उनके बारे में लिखा था–

"स्वामी जी से मेरा पहला परिचय तब हुआ, जब वे महात्मा मुशीराम के नाम से प्रसिद्ध थे, वह परिचय भी पत्रो से हुआ। उस समय वे "गुरुकुल कांगड़ी" के प्रधान थे; जो कि उनका सबसे पहला और बडा शिक्षा–क्षेत्र का काम है। वे सिर्फ पश्चिमी शिक्षा–पद्धति से ही सन्तुष्ट न थे, वरन् लड़कों में वे वेद–शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे और वे पढाते थे हिन्दी के जरिये,अंग्रेजी के नही। इस विषय में स्वामीजी ने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिन्दी में था। उन्होंने मुझे "मेरे प्रिय भाई" कहकर लिखा था। इसने मुझे महात्मा मुंशीराम का प्रिय बना दिया। इससे पहले हम दोनों कभी मिले नहीं थे।"

सन् १६१६ में श्रद्धानन्द ही अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। उन अधिवेशनों में तब तक अंग्रेजी में ही व्याख्यान होते थे, पर श्रद्धानन्द हिन्दी में बोले। कांग्रेस–मच से और वह भी अधिवेशन में हिन्दी में दिया गया यह प्रथम भाषण था और यही शुभारम्भ था हिन्दी को राष्ट्र–भाषा का दर्जा प्राप्त कराने की पहल का। फिर तो हिन्दी के समर्थक और भी होने लगे। "मैं अकेला ही चला था, कारवाँ बढ़ता गया।" अकेले चलने वाले थे स्वामी श्रद्धानन्द ही। गांधीजी का नाम बाद में जुड़ा। गाधीजी को हिन्दी की सुधि और उसके राष्ट्र–भाषा की महिमा–गरिमा की प्रेरणा प्रदान करने वाले भी वही थे।

कांग्रेस–मंच से उस अधिवेशन में ही सन् १६१६ में श्रद्धानन्द ने अछूतोद्धार का जो प्रश्न बड़ी दर्द भरी भाषा में उठाया था, वह भी आज नये सिरे से अपनी प्रासंगिकता प्रकट करता है, उन्होंने कहा था कि– "मेरे शब्दों पर गहरा विचार कीजिये और सोचिये कि, **किस प्रकार आपके साढ़े छह करोड़ भाई, आप के जिगर के टुकड़े, जिन्हें आपने काटकर फेंक दिया है, किस प्रकार भारतमाता**

के साढ़े छह करोड़ पुत्र एक विदेशी गवर्नमेण्ट रूपी जहाज के लंगर बन सकते हैं। मैं आप सब बहिनों और भाइयों से एक याचना करूँगा कि इस पवित्र जातीय मन्दिर में बैठे हुए अपने हृदयों को मातृभूमि के प्रेम–जल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो कि आज से वे साढ़े छह करोड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे, बल्कि हमारे भाई और बहिन हैं। उन सबकी पुत्रियाँ और पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढ़ेंगे। उनके गृहस्थ नर–नारी हमारी सभाओं में सम्मिलित होंगे। हमारे स्वतन्त्रता–प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कन्धे से कन्धा जोड़ेंगे और हम सब एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ही अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे। हे देवियो और सज्जन पुरुषो! मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

इन शब्दों में युग–प्रवर्त्तक की वाणी मुखरित है। धर्म–क्रान्ति, समाज–क्रान्ति का शंखनाद गुंजित है। दलितों के प्रति दिल में सच्ची वेदना की कसक हुए बिना ऐसे प्रभावी उद्‌गार बहिर्गत होते नहीं। यही थे, जो सत्याग्रह को "धर्म–युद्ध" कहते थे। दलित–सेवा के लिए विख्यात विदेशी भारत–प्रेमी दीनबन्धु एण्ड्रूज, जो कि गांधी जी के सहयोगी रहे थे, भी श्रद्धानन्द का समादर करते थे।

गांधीजी ने लिखा था कि, "Dear Mahatma Ji! Mr. Andrews has familiarised your name and your work to me I feel that I am writing to no stranger. I hope therefore, that you will pardon me addressing you by the title which both Mr. Andrews and I have used in discussing you and your work."

गांधीजी ने अंग्रेजी में श्रद्धानन्दजी को एक पत्र फिनिक्स (नेटाल) से सन् १९१४ के २१ अक्टूबर को लिखा था। अनन्तर स्वामीजी के कहने से गांधी जी भी अंग्रेजी छोड़कर स्वदेशी भाषा में ही पत्राचार करने लगे। आज देश में अधिकारों की बड़ी माँग है। हर कोई 'हक' के लिए 'जिहाद' छेड़ने पर आमादा है। अल्पसंख्यकों को केवल "हक–हुकूक" ही चाहिए। फर्ज–अदायगी से उनका कोई रिश्ता नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् १९०७ में ही अपनी पत्रिका "सद्धर्म प्रचारक", जो जालन्धर से निकलती थी– में लिखा था–

"अधिकार! अधिकार! अधिकार! हाँ! तुमने किस गिरे हुए शिक्षणालय में शिक्षा प्राप्त की थी? क्या तुमने कर्त्तव्य कभी नहीं सुना? क्या तुम धर्म शब्द से अनभिज्ञ हो? मातृभूमि में अधिकार का क्या काम? यहाँ धर्म ही आश्रय दे सकता है। 'अधिकार' शब्द से सकामता की गन्ध आती है। इस अधिकार की वासना को अपने हृदय से नोचकर फेंक दो। निष्काम-भाव से समाज और धर्म की सेवा करो।"

उन्होंने स्वामी दयानन्द के इन शब्दों से प्राप्त प्रेरणा को दृढ़ बनाया था कि– "कोई कितना ही करे, परन्तु जो **स्वदेशी–राज्य** होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" उन्होंने दयानन्द जी का 'सत्यार्थ प्रकाश' १०–१२ बार पढ़ा था। मेरा ख्याल है कि यह 'स्वदेशी' शब्द सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने ही सम्भवतः सन् १८७८ में प्रचारित किया था। स्वामी श्रद्धानन्द रोज सवेरे डेढ़ घण्टे दयानन्द–कृत "वेद–भाष्य" और "सत्यार्थ प्रकाश" का अनुशीलन करते थे। तभी जब एक बार श्रद्धानन्द का भाषण फीरोजपुर–आर्य समाज में सन् १८८५ के बाद प्रथम बार लाला लाजपत राय ने सुना, तो जलसा खत्म होने पर उन्होंने श्रद्धानन्द से पूछा– "यह इतनी उन्नति संस्कृत में तुमने कब की?" श्रद्धानन्द ने इस भाषायी उन्नति का कारण दयानन्द के ग्रन्थों का पारायण करना ही बताया था। श्रद्धानन्द "नरम दल वालों को 'भिक्षार्थी', गरम दल वालों को 'सुखार्थी' और अंग्रेज सरकार को 'गोराशाही' लिखते थे। जालन्धर में ही उन्होंने सन् १८८६ में प्रथम कन्या–पाठशाला खोली, जो आगे "कन्या महाविद्यालय" नाम से प्रसिद्ध हुई। सन् १९१९ में कुख्यात दमनकारी अंग्रेज लेफ्टिनेण्ट गवर्नर (पंजाब) माइकेल ओडायर तक ने लिखा कि "जालन्धर कोई ऐतिहासिक स्थान नहीं है, लेकिन कन्या–महाविद्यालय ने इसे देश भर में मशहूर कर दिया।"

यह 'कन्या–शिक्षालय' क्यों खोला? बड़ा अजीब कारण श्रद्धानन्द जी ने बताया, लिखा कि, 'ईसा' के भजन गाना सिखाया जाता था।

"एक दिन कचहरी से लौटकर जब अन्दर गया, तो वेद कुमारी दौडी आई और उसने जो भजन पाठशाला से सीखकर आई थी, सुनाने लगी, **"इक बार 'ईसा!' 'ईसा' बोल! तेरा क्या लगेगा मोल।।", "ईसा मेरा नाम रसिया, ईसा मेरा कृष्ण–कन्हैया" आदि। सुनकर मैं बहुत चौकन्ना हुआ। तब पूछने पर पता लगा कि आर्य जाति की पुत्रियों को अपने शास्त्रों की निन्दा करनी भी सिखाई जाती है।** निश्चय किया कि हमें अपनी 'पुत्री–पाठशाला' अवश्य खोलनी चाहिए।" वे धर्मोन्मुखी शिक्षा चाहते थे। गांधीजी ने कहा कि "स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचन–वीर नहीं। उन विश्वासों के लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वे वीरता के अवतार थे। भय के सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया। वे योद्धा थे और योद्धा शय्या पर मरना नहीं चाहता। वह तो युद्ध–भूमि का मरण चाहता है।" ●

देववाणी शिक्षण १५-१६

सन्धि

संस्कृत में दो शब्दों के पास-पास आने पर पहले शब्द के अन्त का वर्ण और दूसरे शब्द का पहला वर्ण ये दोनों वर्ण कुछ विशेष नियमानुसार एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसे 'सन्धि' कहते हैं। अभी तक बिना सन्धि किये हुए वाक्य ही पीछे के पाठों में दिये हैं। अब आगे उन्हीं वाक्यों की सन्धि करके देते हैं। वाक्यों की सन्धि इस प्रकार होती है।

बिना सन्धि किये हुए वाक्य	सन्धि किये हुए वाक्य	अर्थ
स तत्र **न+अस्ति**[१]	स तत्र **नास्ति**	वह वहाँ नहीं है।
तत्र पुस्तकं **न+एव**[२]	अस्ति तत्र पुस्तकं **नैव** अस्ति	वहाँ पुस्तक है ही नहीं।
बदामि+अहम्[३]	**बदाम्यहम्**	मैं बोलता हूँ।
सः+अत्र[४] उपविशति	**सोऽत्र** उपविशति	वह यहाँ बैठता है।
सः मधुरं बदति	**स मधुरं** वदति	वह मीठा बोलता है।
कृष्णः+तत्र[६] अस्ति	**कृष्णस्तत्र** अस्ति	कृष्ण वहाँ है।
वने **किम्+अस्ति**[७]	वने **किमस्ति**	वन में क्या है?

इन सन्धियों के नियम आगे दिये जायेंगे। परन्तु वहाँ सन्धि की जानकारी हो इसलिये संस्कृत वाक्य सन्धि करके बताये हैं। कुछ सन्धियाँ होती नहीं।

अहं नैव गच्छामि। सोऽद्यात्राऽऽगच्छति ('आ' का लोप बताने के लिए अवग्रह चिन्ह ऽ ऽ देते हैं। 'अ' का लोप बताने के लिए एक अवग्रह चिन्ह ऽ देते हैं)।

कृष्णो न गच्छति। वायुः सदा बहति। (सन्धि नहीं)।

कृष्णः किं न वदति? (सन्धि नहीं)।

यदा कृष्णस्तत्र (कृष्णः+तत्र- विसर्ग का स्) गच्छति तदा स नैव पठति।

x सोम इदानीम् (सोमः+इदानीम्-) विसर्ग का लोप होकर बाद में स्वर अलग रहते हैं) कुत्रास्ति?

अब नीचे के सन्धि किये हुए वाक्य पढ़िये-

तत्राहं न पश्यामि। न तत्र पश्याम्यहं। स तत्र न गच्छति। त्वं किं पश्यस्यत्र? अहं तत्र गच्छामि। तत्राऽहं गच्छामि। गच्छाम्यहं तत्र। यत्र स गच्छति तत्राहं गच्छामि। यत्र स गच्छत्यहं तत्र गच्छामि। यत्र स गच्छति गच्छाम्यहं तत्र। यत्र स गच्छति गच्छामि तत्राहम्। यत्राहं पश्यामि तत्र त्वं किं न पश्यसि? यत्र पश्याम्यहं तत्र त्वं किं न पश्यसि? यत्र स पश्यति तत्राहं पश्यामि। यत्र स पश्यति तत्र पश्याम्हम्। यत्र स पश्यत्यहं तत्र पश्यामि।

नहि, नाहं तत्र गच्छामि। नहि, न तत्राहं गच्छामि। नहि, न तत्र गच्छाम्यहम्। नह्यहं तत्र न गच्छामि।

अहं तव गृहं सायमागमिष्यामि। त्वं मम गृहं सायं सत्वरमागच्छ। सोऽद्य तस्य नगरे गमिष्यति, फलं भक्षयिष्यति। यथा सः पुस्तकं पश्यति तथा पठति। नहि नहि, सः पुस्तकं पश्यति परन्तु नैव पठति। स इदानीं पुस्तकं पश्यति परन्तु किं न पठति? त्वं तत्र दिवा किं न गमिष्यसि? रामचंद्रो रात्रौ दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं पठिष्यति। त्वं यद्यन्नं पक्ष्यसि तर्ह्यहं खादिष्यामि। तस्मिन् बने इदानीं सलिलं शोभनं भविष्यति। तस्मिन् गृहे श्वेतं वस्त्रं नास्ति। कस्मिन् गृहे रक्तं पत्रमस्ति, वद।

प्रयत्न ५

पीछे के पाठों के ज्ञान की अब यहाँ जाँच करें।

(१) नीचे के शब्दों की सन्धि कीजिये-
उदाहरणार्थ- (१) **गोपालः + तत्र = गोपालस्तत्र**, (२) **तत्र + इदानीं = तत्रेदानीं**, (३) **गच्छति + अद्य = गच्छत्यद्य**। अब इनकी सन्धि कीजिए- १. **गोविंदः + तस्मिन्**, २. **वद + इति**, ३. **इति + एके**।

(२) नीची की सन्धि तोड़िये-
उदाहरणार्थ- **गोपालो गच्छति = गोपालः गच्छति**,

सन्धियों के कुछ नियम-

१. अ अथवा आ+अ अथवा आ = आ होता है।
२. अ अथवा आ के बाद ए, ऐ आने पर = ऐ और ओ, औ आने पर औ होता है।
३. इ, उ, ऋ, लृ (ह्रस्व, दीर्घ) के बाद विजातीय (वह ह्रस्व अथवा दीर्घ) स्वर आने पर क्रमशः य्, व्, र्, ल् होते हैं।
४. विसर्ग के पहले अ, और बाद में अ आने पर ओऽ होता है।
५. सः के बाद अ के अलावा कोई भी अक्षर (स्वर, व्यंजन) आने पर विसर्ग का लोप होता है।
६. विसर्ग के बाद त् आने पर विसर्ग का स् होता है।
७. अर्ध व्यंजन के बाद स्वर आने पर उस व्यंजन में वह स्वर मिलकर वह व्यंजन पूर्ण अक्षर होता है।

x सन्धि होने पर एक जगह आये हुए उन दो स्वरों की पुनः सन्धि नहीं होती।

नैव = न एव। कृष्ण इच्छति = कृष्णः इच्छति। खादाम्यहम् = खादामि+अहम ; नागच्छाम्यहं = न + आगच्छामि + अहम् ; कस्मान्नगरात् = कस्मात् + नगरात् ; रामोऽस्ति = रामः + अस्ति।

अब ये सन्धियाँ तोड़िये– १. नृपो रक्षति, २. तदैकः ३. अश्व उत्पतति। ४. आगच्छाम्यहम्। ५. गृहान्नीतम्। ६. मूढोऽस्मि। ७. तदात्रागच्छति।

(३) नीचे की संधि छुडाइये–

सन्धि ; उदाहरणार्थ–गच्छत्यायुः = गच्छति + आयुः।

(अ) अब सन्धि तोड़िये–

१. खादत्याम्रम्, २. पतत्यंबरात्।

(आ) उदाहरणार्थ– धात्वर्थः = धातु + अर्थः।

अब सन्धि तोड़िये– १. मन्वंतरम्, २. गुर्वादेशः, ३. अस्त्विति।

(इ) उदाहरणार्थ– १. राजाज्ञा = राजा + आज्ञा, २. पक्कान्नं = पक्क + अन्नं।

अब सन्धि तोड़िये– १. धर्मार्थम्, २. शालान्तः, ३. सज्जनाधारः।

(ई) उदाहरणार्थ– धेनुर्गच्छति = धेनुः + गच्छति।

अब सन्धि तोड़िये– १. प्रभुरिच्छति, २. हरेराज्ञा, ३. धेनोर्दुग्धम्।

तस्मान्न[1]गरा[2]दत्रागच्छ। तस्ये[3]श्वरस्य वाचकः प्रणवोऽस्ति।

त्वं दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं पठसि किम् ? नहि, नहि, अहं दीपस्य प्रकाशे पुस्तकं न पठामि। अहं ह्यो रामचंद्रस्य गृहं गतः। तत्रेन्द्रदत्तः किं पश्यति ? सोमेन दत्तं फलं स न खादति। रामस्य शोभनं पुस्तकं कुत्राऽस्ति ? तन्नगरं गच्छ। स त्वां पश्यति। अहमत्र त्वां पश्यामि। कथं स तत्र गच्छति ? स तत्र नास्ति।

हे रामचन्द्र! त्वं फलं खाद। हे मनुष्य! पुस्तकं पठ। त्वं तत्र गच्छ। इदानीं सत्वरं धाव। सत्यं वद। पत्रं लिख। फलं तत्र नय।

ब्रूहि, स इदानीं कुत्र गतः ? वद, त्वमधुना किं पठसि ? चक्रं भ्रामयेदानीम्। तव रक्तं वस्त्रं कः पश्यति ? मम पीतं वस्त्रं शीघ्रं तत्र नय। अत्रै[4]वोप[5]विश। इदानीमहमत्रैव तिष्ठामि, त्वं शीघ्रमत्रागच्छ। तं तस्य गृहं प्रापय। तस्मा[6]देकं पत्रं देहि। अधुना ब्रूहि, त्वया किमुक्तम्। स कदापि युक्तं न वदति। अहं सदा युक्तं सत्यमेव वदामि। गृहस्य समीपं स लिखति। स इदानीं वने वृक्षस्य समीपे तिष्ठति। फलं देहि।

यः शूरः पुरुष इदानीं मम नगरे[7]ऽस्ति स एव तत्राद्य गच्छति। यं त्वमिदानीं तत्र पश्यसि स एव भूपः। येन तुभ्यं धनं दत्तं स एव वीरोऽस्ति। यस्य पुरुषस्य पुस्तकं त्वं पठसि, स एव मम गृहे इदानीमस्ति। यस्मिन्गृहे स नरोऽस्ति तद् गृहं कुत्राऽस्ति ? तस्य भूपस्य किं नगरम् ?

यदा त्वं तत्र गमिष्यसि, तदा[8]ऽहं त्वां द्रक्ष्यामि। कदा त्वं भूपस्य नगरं गमिष्यसि ? यदा त्वं श्वस्तत्र गमिष्यति, तदाऽहमपि तत्रैवाऽगमिष्यामि। यदा त्वं फलं खादिष्यसि, तदाऽहमपि फलं खादिष्यामि। यदा रामोऽन्नं पक्ष्यति तदा त्वमप्यन्नं खादिष्यति। यदा स पुस्तकं पठिष्यति तदाऽहमपि पठिष्यामि। यदि त्वं तत्र न गमिष्यसि तर्ह्य[9]हमन्नमपि न खादिष्यामि। अहं मम गृहमद्येदानीं गच्छामि, त्वं श्व आगमिष्यसि। क इदानीं तत्र गमिष्यति ? अहमद्याऽन्नं नैव पक्ष्यामि।

अहमिदानीं धाविष्यामि। त्वं न धाविष्यसि किम् यदि स नगरं गमिष्यति तर्हि तव पत्रं प्रापयिष्यति। तदेवं भविष्यति। नहि नहि, स इदानीं तस्मिन्कूपे नैव पतिष्यति। पश्य त, कथं स धावति। त्वं कुत्र पश्यसि ?

अहं तव गृहं सायमागमिष्यामि। त्वं मम गृहं सत्वरमागच्छ। सोऽद्य[10] तस्य नगरं गमिष्यति। फलं भक्षयिष्यति। स इदानीं पुस्तकं पश्यति परन्तु किं न पठति ? त्वं तत्र दिवा किं न गमिष्यसि ? रामचंद्रो रात्रौ दीपस्य प्रकाशेन पुस्तकं पठिष्यति। त्वं यद्यन्नं पक्ष्यसि तर्ह्यहं खादिष्यामि। कस्मिन्गृहे रक्तं वस्त्रमस्ति ? वद।

सूचना– यदि विद्यार्थियों को इनमें से कुछ वाक्य समझ में नहीं आये हों, तो वे उनको पीछे के पाठों से निकालकर उनका अर्थ देखें ; परन्तु प्रायः ये वाक्य सहज ही में समझे जा सकेंगे। □

---

१ तस्मात्+नगरात्– त् का न्, २. नगरात्+अत्र– त् का द्, ३. तस्येश्वरस्य (तस्य+ईश्वरस्य– अ+ई मिलकर ए), ४ अत्रैवोपविश– अत्र+एव– अ+ए=ऐ, ५. एव+उपविश– अ + उ = ओ।

६. तस्मादेकं– तस्मात्+एकम् = त् का द्, ७. नगरेऽस्ति– रे+अ–ए के बाद अ का लोप, ८. तदाऽहं (आ के बाद अ, अवग्रह चिह्न से 'ऽ' बताते हैं), ९. तर्हि+अहम्– तर्ह्यहम्– ई+अ=य (– इ का य् + अ), १०. सोऽद्य=सः+अद्य।

घड़ी

रुकती नहीं कभी पल भर है,
करती नहीं कभी झिक–झिक।
घड़ी–घड़ी का लेखा रखती,
बन्द नहीं होती टिक–टिक।

समय बताती हर प्राणी को,
कहती व्यर्थ नहीं खोओ।
अगर तुम्हें बनना है कुछ तो–
मेहनत की फसलें बोओ।

द्वार बुद्धि के खुले रखो तो–
होगी नहीं कभी चिक–चिक।।
कायरता को दूर भगाओ,
साहस से नाता जोड़ो।

अच्छे काम करो तुम हरदम–
बुरी आदतों को छोड़ो।
हाथ तुम्हारे ही है सब कुछ–
चाहे स्वस्थ रहो या 'दिक'।।

सुख की कुंजी पास तुम्हारे,
अपनी बाहों को तोलो।
नहीं किसी को बुरा कहो तुम–
मीठी बोली ही बोलो।

चूक गए तो दुनिया भर के–
लोग कहेंगे धिक–धिक–धिक।।
चाभी चुक जाने पर इसकी,
गति वैसी ही होती है।

बिना साँस के जैसे काया–
चिर निद्रा में सोती है।
सच तो है कि तपस्या जीवन–
मात्र नहीं है यह 'पिकनिक'।।

– डॉ० गणेशदत्त सारस्वत
सारस्वत–सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर (उ०प्र०)

○ साहू
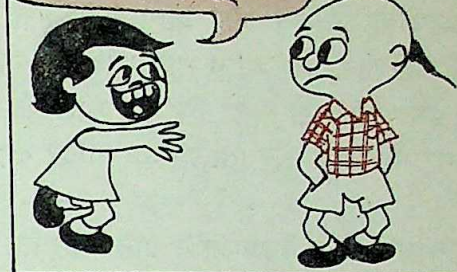
रमा तिवारी को बाल साहित्य पुरस्कार

श्रीमती रतन शर्मा स्मृति न्यास दिल्ली द्वारा आयोजित श्रीमती रतन शर्मा स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार इस बार जयपुर निवासी श्रीमती रमा तिवारी को उनकी कृति 'नन्ही और नानी' पर प्रदान किया गया।

६ अक्टूबर ९८ को त्रिवेणी सभागार में आयोजित इस समारोह में दिल्ली के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री साहिब सिंह वर्मा ने श्रीमती रमा तिवारी को रु० १२०००/– का बैंक ड्राफ्ट, प्रतीक–चिह्न तथा प्रशस्ति–पत्र प्रदान कर पुरस्कृत किया। ❑

हवाई महल

❐ डॉ० परशुराम शुक्ल

दीनू और मोती दो भिखारी थे। दोनों हष्ट–पुष्ट तथा जवान थे, लेकिन कोई काम नहीं करते थे। उनके न कोई घर–द्वार था न नाते–रिश्तेदार। दोनों दिन भर इधर–उधर से भीख माँग कर खाते और रात में कहीं पर भी किसी कुँए, तालाब या मन्दिर के पास सो जाते।

दीनू और मोती में आपस में घनिष्ठ मित्रता थीं। वे साथ–साथ भीख माँगते, साथ ही खाते और हमेशा साथ रहते। उन्हें प्रतिदिन इतनी भीख मिल जाती थी कि उनका पेट आराम से भर जाता था।

दीनू और मोती को हमेशा रूखा–सूखा खाने को मिलता था, किन्तु एक दिन उन्हें एक धनी सेठ ने घी–चुपड़ी गेहूँ की रोटियाँ और मट्ठा दिया। दोनों ने खूब छक कर खाया और डकार ली। इसके पहले उन्होंने इतना स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं खाया था।

दोनों मित्र रात में सोते समय भी घी–चुपड़ी रोटी और मट्ठे की याद कर रहे थे। उस भोजन की याद करते ही उनके मुँह में पानी आ जाता था।

"यार! गेहूँ की रोटी तो बड़ी स्वादिष्ट होती हैं।" दीनू से न रहा गया तो वह बोल पड़ा।

"और मट्ठे के साथ तो गेहूँ की रोटी का मजा दुगुना हो जाता है।" मोती ने भी अपने मुँह में आये पानी को गुटकते हुए कहा।

"सुनो दोस्त! मैं तो अब एक काम करूँगा! मैं खेत खरीदूँगा और गेहूँ की खेती करूँगा, जिससे हमेशा गेहूँ की रोटियाँ खा सकूँ।" दीनू ने बहुत सोच विचार कर अपनी योजना बतायी।

"ठीक है यार, तुम खेत खरीदो और गेहूँ की खेती करो। मैं एक भैंस खरीदूँगा और उसके दूध से घी और मट्ठा बनाऊँगा। तुम मुझे गेहूँ की रोटियाँ खिलाना और मैं तुम्हें घी और मट्ठा खिलाऊँगा।"

दोनों मित्र एक–दूसरे की योजनाएँ सुनकर बहुत खुश हुए और पास के एक पेड़ के नीचे सो गये।

प्रातः काफ़ी धूप निकलने पर उनकी आँखें खुलीं। दोनों ने एक–दूसरे की ओर देखा। उन्हें फिर रात की बातें ताजा हो गयीं।

"तो तुम खेत खरीदोगे और गेहूँ की खेती करोगे, यह पक्की बात है?" मोती ने दीनू से पूछा।

"हाँ दोस्त! बिलकुल पक्का है और तुम भी भैंस खरीदोगे और दूध से घी–मट्ठा बनाओगे। तभी तो हम दोनों को जिन्दगी भर गेहूँ की घी–चुपड़ी रोटियाँ और मट्ठा मिल सकेगा।" कहते–कहते दीनू के मुँह में पानी आ गया।

"हाँ दोस्त! मैं भैंस अवश्य पालूँगा, लेकिन उसे चराने कहीं नहीं जाऊँगा। मेरी भैंस तुम्हारे खेत के आसपास ही चरेगी।" मोती ने कुछ अकड़ कर कहा।

"वाह! यह कैसे हो सकता है? तुम्हारी भैंस मेरे खेत के पास कैसे चर सकती है? मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा।" दीनू को क्रोध आ गया।

दोनों भिखारी इस बात को लेकर झगड़ा करने लगे। उनकी चीख–पुकार सुनकर आस–पास के लोग इकट्ठे हो गये।

"क्यों भाई? तुम लोग आपस में क्यों झगड़ा कर रहे हो?" भीड़ में से एक आदमी ने आगे बढ़कर पूछा।

दीनू और मोती एक साथ बोल रहे थे। वे एक दूसरे को अपशब्द भी कह रहे थे, अतः उनकी बात

किसी को समझ में नहीं आ रही थी। तभी एक वृद्ध व्यक्ति ने आगे बढ़ कर कहा– "देखो भाई ! तुम लोग आपस में झगड़ा मत करो और पंचायत बैठा लो। पंच तुम्हारा न्याय करेंगे।"

दीनू और मोती पंचायत के लिए तैयार हो गये।

दोपहर हो रही थी। एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठ गयी। दीनू और मोती अपनी–अपनी जिद पर अड़े थे। दीनू कह रहता था– "मैं तुम्हें अपने खेत में भैंस नहीं चराने दूँगा।" इधर मोती कर रहा था– "मैं तुम्हारे खेत में ही अपनी भैंस चराऊँगा।" दीनू और मोती इस तरह तकरार कर रहे थे कि शाम हो गयी और पंच कुछ भी न समझ पाये।

तभी एक वृद्ध पंच ने आगे बढ़ कर दोनों को चुप कराया और दीनू से पूरी बात बताने के लिए कहा। दीनू ने धनी सेठ द्वारा गेहूँ की घी–चुपड़ी रोटी और मट्ठा दिये जाने से लेकर अन्त तक की बात बता दी। अब वृद्ध पंच ने मोती से भी पूरी बात बताने के लिए कहा। उसने भी वही कहानी दुहरा दी। वृद्ध पंच सब समझ गया। उसने गम्भीर स्वर में दीनू से पूछा– "तुम्हारे खेत कहाँ हैं ?"

"अभी कहाँ हैं ? लेकिन मैं खरीदूँगा।" दीनू ने उत्तर दिया।

"तुम्हारी भैंस कहाँ है ?" वृद्ध पंच ने मोती से पूछा।

"अभी कहाँ है ? पर मैं खरीदूँगा।" मोती ने उत्तर दिया।

वृद्ध पंच ने गम्भीर स्वर में अपना निर्णय दिया– अभी न पास में खेत हैं और न भैंस। तुम व्यर्थ में झगड़ा कर रहे हो। जाओ और प्रेम से रहो। पहले मेहनत करके धन कमाओ और फिर खेत और भैंस खरीदो। इसके बाद आगे की सोचना।"

वृद्ध पंच ने अपने साथियों की ओर मुँह करके हँसते हुए कहा– "इसी को कहते हैं– "सूत न कपास कोरी में लठी–लठा।" चलो अब अपने घर चलें।"

और पंचायत उठ गयी।

– ३, गोविन्द गंज, दतिया (म०प्र०)–४७५६६१

प्रेरक–प्रसंग — उत्पल कान्त

कर्त्तव्य-पालन

एक बार एक किसान ने गौतम बुद्ध से अपने गाँव आने का आग्रह किया। बुद्ध उसके गाँव पहुँचे, तो सारे गाँव वाले उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़े। परन्तु उसी दिन बुद्ध को गाँव बुलाने वाले किसान के बैलों की जोड़ी कहीं खो गयी। किसान अब दुविधा में फँस गया कि महात्मा बुद्ध का प्रवचन सुनने जाये या अपने बैलों को खोजे। बहुत सोचने पर उसने अपने बैलों को ही ढूँढ़ने का निर्णय किया।

घण्टों भटकने के बाद कहीं जाकर उसे अपने बैल मिले। थका किसान घर आते ही भोजन करके सो गया। अगले दिन वह संकोच के साथ बुद्ध के पास गया। बुद्ध उसकी ग्लानि को समझ गये और बोले "मेरी दृष्टि में यह किसान ही मेरा सच्चा अनुयायी है। इसने उपदेशों से अधिक कर्म को महत्त्व दिया है। यदि कल यह अपने बैल खोजने न जाता और यहाँ आकर मेरा प्रवचन सुनने लगता, तो इसे मेरी कही हुई बातें समझ में नहीं आतीं; क्योंकि इसका मन कहीं और भटक रहा होता।" ❑

– (द्वारा) सरस्वती शिशु मन्दिर, बाढ़ बाजार बाढ़, बिहार

चार-चौपदी

'मोटूलाला'
मोटू लाला
ओढ़ दुशाला,
करते हो क्यों–
धंधा काला।

'नन्हें भैया'
ता–ता थइया,
नन्हें भइया।
नाच रहे हैं–
कृष्ण–कन्हैया।

ताना—बाना
दादी–दादा,
नानी–नाना,
बुनते रहते
ताना–बाना।

'निठल्ली'
भूरी बिल्ली
भागी दिल्ली,
फिर भी पूरी–
रही निठल्ली।

– दिनेश दर्पण

छत्रीबाग पथ, नयापुरा, तराना (उज्जैन) म०प्र०

नई साइकिल

— नागेश पाण्डेय 'संजय'

आज मंगू बन्दर बहुत खुश था। क्योंकि उसके पिता ने उसे चमचमाती हुई नई साइकिल लाकर दी थी। इस खुशी में वह साइकिल दिखाने के लिए अपने साथियों के यहाँ चल पड़ा।

रिमझिम जिराफ, मंगल भालू, सोनू खरगोश, कालू लोमड़, चम्पू घोड़ा– सभी के घर जाकर उसने अपनी साइकिल दिखायी और अपने पिता की जमकर तारीफ की। साथियों में मंगू बन्दर का अच्छा–खासा रोब जम गया था। साइकिल देख सभी की आँखें चार हो गयी थीं। "अरे वाह! अब तो तुम स्कूल साइकिल से आया करोगे। इतनी अच्छी साइकिल स्कूल में और किसी की है भी नहीं।" मंगू बन्दर के कई साथियों ने उसकी साइकिल को ललचाई आँखों से भी घूरा। एक–दो ने तो कहा– "देखो जी, कभी–कभी हमें भी अपनी साइकिल पर बिठा लिया करना।"

"हाँ, हाँ। क्यों नहीं। अरे, मैं तुम्हारा हूँ। यह साइकिल तुम्हारी है। तुम लोग चिन्ता क्यों करते हो।" मंगू बन्दर ने भी अपने साथियों की बात का उत्तर जरा तनकर दिया।

मंगू शाम को घर पहुँचा तो बड़े व्यवस्थित ढंग से अपनी साइकिल खड़ी की। भूख तो जैसे उसे थी ही नहीं। काफी देर तक अपनी साइकिल को ही निहारता रहा, फिर थोड़ा–बहुत खाया–पिया और सो गया।

मंगू को ठीक से नींद भी न आई। वह तो चाहता था कि बस, जल्दी से सुबह हो। जिससे वह स्कूल में अपनी चमचमाती हुई साइकिल दिखाकर सब बच्चों में छा जाये। बच्चे ही क्या, कई शिक्षक भी तो उससे पूछेंगे– "क्यों मंगू? कितने की आई यह साइकिल?" यह सच था, कि इतनी अच्छी साइकिल स्कूल भर में किसी के पास नहीं थी।

अगले दिन मंगू एक घण्टा पहले से ही स्कूल जा पहुँचा। बच्चे आते और वह उन्हें अपनी साइकिल दिखाता। साइकिल स्टैण्ड पर प्रार्थना होने तक बच्चों की भीड़ जुटी रही।

कुछ दिन बीते तो मंगू की साइकिल उतनी चर्चा का विषय नहीं रही। बच्चे उसे भूल गये। अच्छे बच्चों को साइकिल से क्या लेना–देना? स्कूल में पढ़ने के लिए आते हैं तो बस, पढ़ना है। साइकिल से क्या? लेकिन कालू लोमड़ के लिए तो जैसे साइकिल पढ़ाई से ज्यादा और महत्त्वपूर्ण हो गई थी। वह मंगू की साइकिल को ललचाई निगाह से देखता और मंगू से मन ही मन जलता।
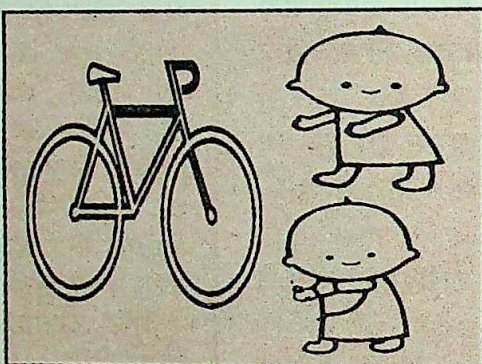
वास्तव में कालू लोमड़ को पहले से ही मंगू से चिढ़ थी। मंगू तो शुरू से ही पढ़ने में तेज था। सभी उसकी तारीफ करते थे। पढ़ने में फिसड्डी होने के कारण कालू को कोई शिक्षक पसन्द भी नहीं करता था। उस पर स्कूल का काम ठीक से न करने और शैतानियाँ करते रहने के कारण जब–तब उसकी पिटाई भी हो जाती थी।

कालू ने भी कई बार कोशिश की थी कि उसे भी एक अच्छी–सी चमचमाती साइकिल मिल जाये। मगर उसके पापा का कहना था कि वे उसे साइकिल तभी दिलायेंगे जब वह प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होगा। प्रथम श्रेणी तो दूर, कालू को तो बस उत्तीर्ण होने में ही आसमान के तारे दिख जाते थे। बात साफ थी

कालू को न कभी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होना था और न ही कभी साइकिल ही मिलनी थी। यही कारण था कि कालू के मन में मंगू के प्रति और अधिक ईर्ष्या आ गयी थी। कालू की योजना थी कि जैसे भी हो उसे मंगू को नीचा दिखाना है।

समय बीता तो कालू के घर में एक नये किरायेदार आ गये। उनके लड़के के पास मंगू से भी अच्छी साइकिल थी। कालू ने उससे दोस्ती कर ली। वह जब-तब उसे कुछ न कुछ खिलाता-पिलाता रहता। उसकी खूब तारीफ भी करता।

कालू ने दोस्ती का फायदा उठाना शुरू किया। वह जब-तब उसकी साइकिल माँग लेता। धीरे-धीरे वह रोज ही उसकी साइकिल लेकर स्कूल जाने लगा। उस लड़के को भी कोई परेशानी इसलिए नहीं होती थी, क्योंकि उसका स्कूल दूसरी मीटिंग में एक बजे से था। कालू साइकिल बारह बजे उसे वापस कर देता।

कालू की साइकिल के कारण मंगू बन्दर की साइकिल फीकी पड़ गयी थी। सब उसे 'पुरानी साइकिल वाला' कहने लगे। कालू के भड़काने पर बच्चे उसे और चिढ़ाते। मंगू बन्दर एक दिन बहुत ज्यादा चिढ़ गया। उसने सभी के सामने घोषणा कर दी। "साइकिल- दौड़ करा लो। पता लग जायेगा कि कौन नई साइकिल वाला है और कौन पुरानी वाला।"

अब क्या था, साइकिल-दौड़ तय हो गयी। छुट्टी के बाद, जब सभी बच्चे अपनी-अपनी साइकिल लेकर निकल गये तो मंगू और कालू ने अपनी साइकिलें निकालीं। सड़क खाली हो चुकी थी। मंगू और कालू के साथ उनके सात-आठ साथी थे। सावधान! 'एक, दो, तीन, ...' का संकेत पाते ही दोनों ने अपनी-अपनी साइकिलें दौड़ा दीं। कभी कालू आगे निकलता तो कभी मंगू। रेस 'भारत-प्रेस' तक थी क्योंकि वहीं पर कालू का घर था। साइकिलें दौड़ी जा रही थीं। भारत प्रेस अब ज्यादा दूर न था। पीछे से कालू और मंगू के सभी साथी उनमें जोश भरते आ रहे थे। अचानक सामने से एक जीप ने हार्न दिया। कालू और मंगू के हाथ-पैर फूल गये। जीप ज्यादा दूर न थी। दोनों की साइकिलें एक में टकरा गयीं। बहुत बड़ा भाग्य, कि कालू और मंगू दूर जा गिरे। जब तक कि जीप चालक ब्रेक लगाता, दोनों साइकिलों के ऊपर जीप चढ़ गयी। साइकिलों का कचूमर निकल गया।

जीप पुलिस की थी और उन लोगों की कोई गलती भी नहीं थी। इसलिए वे इन बच्चों को डाँट-फटकार कर चलते बने।

फालतू की शर्त और बीच सड़क पर साइकिल दौड़ाने की बहुत बड़ी सजा कालू और मंगू को मिली थी। दोनों को घर में भी खूब डाँट-फटकार मिली। कालू के पिता को साइकिल के पूरे पैसे अपने किरायेदार को देने पड़े।

मंगू की साइकिल भी बिल्कुल बेकार हो चुकी थी। उसे भी कबाड़ी को बेच देना पड़ा। अब दोनों को पैदल ही विद्यालय जाना पड़ता। उनके साथी उन्हें पैदल देखकर आपस में मुस्कराकर कहते 'बेचारे नई साइकिल वाले।'□

– ३६१, बजरिया, खुटार, शाहजहाँपुर–२४२४०५ (उ०प्र०)

सर्दी आयी

– डॉ० हरि प्रसाद दुबे

ठिठुरन लेकर सर्दी आयी,
बच्चों के मन को जो भायी।
धूप बहुत ही सुन्दर लगती,
शीत लहर ढक जाती बस्ती।
हवा चले तो लगती ठण्डी,
तापें लोग जलाकर कण्डी।
पंखे, कूलर को आराम,
लस्सी, बरफ का न कुछ काम।
रात निकलती रोज रजाई,
बूढ़े पूँछें धूप क्या आई।
दिन में जल्दी धूप न आती,
रात बड़ी है होती जाती।
बच्चे करते खूब पढ़ाई,
हँसते मिल सब भाई-भाई।

गयादेवीनगर, ए०एन० रामपुर भगन, फैज़ाबाद–२२४२०३

नवोदित स्वर : अनुपम कुमार त्रिवेदी

दो जनवरी १९८० को जन्मे भैया अनुपम कुमार त्रिवेदी विज्ञान स्नातक तृतीय वर्ष के छात्र हैं। अध्ययन के साथ-साथ लेखन में भी इनकी रुचि जाग्रत हुई तथा कहानी व कविता विधा आपने चुनी। इन्होंने लगभग एक दर्जन बाल कहानियाँ व अनेक कविताएँ लिखी हैं। जिनमें से कई बालहंस सहित अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छपी भी हैं। इनकी कहानियों में मानवीय संवेदना की छाप स्पष्ट रूप से दिखती है।

*यहाँ पर इनकी एक बाल कहानी **'किताब'** दी जा रही है जिसमें एक बालक की संवेदना का चित्रण है। इनका पता है-*

द्वारा श्री रमाकान्त त्रिवेदी, मो० गोकुलपुरी, गढ़ी रोड, लखीमपुर खीरी-२६२७०१

किताब

दीपक ने अपनी गुल्लक खोलकर पैसे बाहर निकाले और गिनने लगा, "एक, दो, तीन..... अट्ठारह, उन्नीस और बीस।"

आज दीपक के पास पूरे बीस रुपये हो गये थे। वह स्कूल जाते समय जब रेलवे स्टेशन पर से गुजरता था, तो वहाँ किताबों की दुकान में रखी कहानी की किताब देखकर उसका मन ललचा जाता था। दीपक ने एक दिन अपने पिता से कहा, "पिताजी मुझे बीस रुपये दे दें, मैं कहानियों की किताब लूँगा जो स्टेशन पर किताबों की दुकान में रखी है।"

तब उसके पिता ने कहा था, "मैं तुम्हें बीस रुपये दे तो सकता हूँ लेकिन तुम्हें वह किताब अपनी बचत से खरीदनी चाहिए। मैं तुम्हें जो जेबखर्च रोज देता हूँ, अगर उसमें से कुछ पैसे तुम रोज बचाने लगो तो तुम कुछ ही दिनों में अपने पैसों से वह किताब खरीद सकते हो।"

पिताजी की बात दीपक की समझ में आ गयी और उसने उसी दिन से बचत करना शुरू कर दिया था। कुछ ही दिनों में उसने पूरे बीस रुपये जोड़ लिये थे। दीपक वह रुपये लेकर रेलवे स्टेशन की ओर जा रहा था, तो सोच रहा था कि, अब उसके पास कितनी अच्छी कहानियों की किताब होगी, जैसी उसके किसी भी मित्र के पास नहीं है।

वह स्टेशन पर पहुँच गया और दूकानदार से किताब ले ली वह पैसे देने ही जा रहा था कि उसने वहीं पर एक बहुत ही कमजोर, दुबले-पतले, बूढ़े आदमी को देखा, जिसके सारे कपड़े फट चुके थे, जो आने-जाने वाले लोगों से कह रहा था, "मुझे खाना दे दो, तीन दिन से भूखा हूँ, भगवान् तुम्हारा भला करेंगे .... मैं बहुत भूखा हूँ।"

वह बूढ़ा आदमी बहुत से लोगों से यह कह रहा था; मगर कोई उसकी बात नहीं सुन रहा था। एक आदमी ने तो, "पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते हैं भीख माँगने!" कहते हुए धक्का दे दिया। वह गिर पड़ा।

दीपक ने एक बार उस बूढ़े आदमी की ओर देखा और फिर हाथ में पकड़ी चमकीले कवर वाली कहानियों की किताब की ओर देखा, फिर उस किताब को दूकानदार की ओर वापस बढ़ाते हुए कहा, "आप अभी इसे रख लें, मैं फिर आकर ले जाऊँगा।" और वह बूढ़े के पास गया। उसने बूढ़े का हाथ पकड़ कर उठाया और उसे लेकर खाने की और दूकान की ओर बढ़ गया। ❐

— अनुपम कुमार त्रिवेदी

बाल–कथा प्रतियोगिता

(चित्र देखो-कहानी लिखो)

ध्यान दें !

भैया–बहनो, ऊपर के चित्र को देखकर तुम्हें इसके अनुसार बाल कहानी लिखनी है। उद्‌बोधक, प्रेरक कहानी हमें २५ दिसम्बर तक अवश्य प्राप्त हो जानी चाहिए। कहानी–लेखन में हाईस्कूल, इण्टर तथा स्नातक कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी ही भाग ले सकते हैं। कहानी के साथ विद्यालय के परिचय–पत्र की छाया प्रति या प्रधानाचार्य के प्रमाण–पत्र सहित अपना श्वेत श्याम लघु चित्र भी भेजें। साथ में पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा तथा कहानी मौलिक व अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र अवश्य दें।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान प्राप्त कहानियों को पुरस्कृत कर उन्हें 'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित भी किया जायेगा।

कहानी टाइप की हुई अथवा स्वच्छ हस्तलिखित हो तथा तीन पूर्ण पृष्ठों से अधिक न हो।

जिन कहानियों के साथ लिफाफा नहीं होगा उन्हें वापस नहीं किया जा सकेगा।

कहानी भेजते समय लिफाफे पर यह पर्णिका चिपकाएँ–

सम्पादक,
बाल–कथा–प्रतियोगिता
राष्ट्रधर्म मासिक
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,
लखनऊ–२२६ ००४

पहेलियाँ इतिहास की

– महेश चन्द्र त्रिपाठी

(१)

बच्चो बोलो किस शासक ने
जीता था कलिंग का युद्ध ?
युद्ध जीतकर बना अहिंसक
गुण गाते हैं सभी प्रबुद्ध।

(२)

कायर भाई को समाप्त कर,
था भाभी से किया विवाह।
गुप्तवंश के किस शासक में,
बच्चो! थी वीरता अथाह ?

(३)

था कौन बताओ महापुरुष,
मुगलों से हार नहीं मानी।
हल्दी घाटी में अकबर से
किसने रण करने की ठानी ?

(४)

अट्ठारह सौ सत्तावन का
वह स्वतन्त्रता का संग्राम,
बच्चो! किसने शुरू किया था
क्या था क्रान्तिवीर का नाम ?

उत्तर– (१) अशोक महान्, (२) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, (३) महाराणा प्रताप, (४) मंगल पांडे।

– खुशवक्तराय नगर, फतेहपुर–२१२६०१ (उ०प्र०)

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

वर्तमान सरकार के कार्यकाल में पंचायती राज विभाग की प्रमुख उपलब्धियाँ एवं निर्णय

श्री धर्मपाल सिंह
पंचायती राज राज्य मंत्री
(स्वतन्त्र प्रभार)

महत्त्वपूर्ण निर्णय

१. ७३वें संविधान संशोधन के अनुरूप २८ विभागों के अधिकार पंचायतों को सौंपे गये।

२. राज्य वित्त आयोग द्वारा राज्य की शुद्ध आय का ३ प्रतिशत पंचायतों को दिये जाने सम्बन्धी की गयी संस्तुति के स्थान पर आय का ४ प्रतिशत पंचायतों को देने का निर्णय।

३. दशम वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर प्राप्त धनराशि से कराये जाने वाले १००००/– रुपये तक के लागत के कार्यों की स्वीकृति देने का अधिकार ग्राम पंचायतों को सौंपा गया।

४. त्रिस्तरीय पंचायतों के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष पदधारकों को हटाने के लिए ग्राम पंचायत/क्षेत्र पंचायत/जिला पंचायत के तत्कालीन समस्त सदस्यों की संख्या का दो तिहाई बहुमत अनिवार्य।

५. त्रिस्तरीय पंचायतों के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष पदधारकों के निर्वाचन के बाद दो वर्ष तक उनको हटाने के लिए नोटिस लाने पर रोक।

६. त्रिस्तरीय पंचायतों के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के पदधारकों को हटाने के लिए लाये गये अविश्वास प्रस्ताव के पारित न होने पर दो वर्ष की अवधि तक पुनः दूसरी नोटिस लाये जाने पर रोक।

७. प्रधानों को अपने विरुद्ध लाये गये अविश्वास प्रस्ताव की नोटिस पर होने वाले मतदान में मत देने का अधिकार।

८. ग्राम पंचायतों द्वारा किये जाने वाले कार्यों में सम्पूर्ण पारदर्शिता बनाये रखने हेतु ग्राम पंचायतों में सूचना पट लगाकर उन पर समस्त निर्माण कार्यों का विवरण व अभिलेख और लाभार्थियों की सूची चस्पा करने के निर्देश।

९. ग्रामीण जनता को ग्राम स्तर पर ही निःशुल्क न्याय सुलभ कराने के उद्देश्य से न्याय पंचायतों के गठन का निर्णय।

१०. जिला पंचायतों को अपनी आय में वृद्धि हेतु राज्य सरकार द्वारा पहली बार जिला पंचायतों को सम्पत्ति एवं विमवकर लगाने की स्वीकृति देने का निर्णय।

११. पंचायती राज व्यवस्था में निहित भावना के अनुरूप अधिकारों का विकेन्द्रीकरण करते हुए जिला पंचायतों के व्यवसायिक भवनों/दूकानों के निर्माण की ५ लाख रुपये तक की लागत की योजनाओं की स्वीकृति का अधिकार मण्डलायुक्त को सौंपा गया।

उपलब्धियाँ

१. दशम वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर पंचायतों को विकास एवं निर्माण कार्यों हेतु वर्ष १९९६–९७ में १८६.८८ करोड़ स्वीकृत किया गया जिसमें से १५१६०.४० लाख रुपये ग्राम पंचायतों के लिए अवमुक्त किया गया। अवमुक्त की गयी धनराशि का उपभोग किया जा चुका है।

२. दशम वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर पंचायतों को विकास एवं निर्माण कार्यों हेतु वर्ष १९९७–९८ में रु० १८६.८८ करोड़ स्वीकृत जिसमें से १५१६०.४० लाख रुपये की धनराशि ग्राम पंचायतों के लिए अवमुक्त की गयी।

३. राज्य वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर सार्वजनिक सम्पत्तियों के रखरखाव हेतु पंचायतों को वर्ष १९९७–९८ में रुपये २३४.६१ करोड़ तथा वर्ष १९९८–९९ के प्रथम ४ माह के लिए रुपये ६३.३३ करोड़ रुपये की धनराशि स्वीकृत। ग्राम पंचायतों को अवमुक्त धनराशि में से बाढ़ से क्षतिग्रस्त सार्वजनिक परिसम्पत्तियों के मरम्मत व रखरखाव पर व्यय करने की स्वीकृति।

४. ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण की स्वच्छता सुनिश्चित करने और महिलाओं द्वारा अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और उनके सम्मान की रक्षा हेतु वर्तमान सरकार के कार्यकाल में कुल ८७,५१३ व्यक्तिगत शौचालयों और १,०६६ महिला काम्पलेक्सों का निर्माण कराया गया।

५. ग्रामीण पर्यावरण की स्वच्छता सुनिश्चित करने और स्वच्छता का सन्देश जन–जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से दिनांक २५ सितम्बर, १९९७ से २ अक्टूबर, १९९७ तक तथा १० अप्रैल १९९८ से १७ अप्रैल, १९९८ तक प्रदेश की समस्त पंचायतों में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय स्वच्छता सप्ताह का आयोजन किया गया। स्वच्छता सप्ताह के दौरान प्रत्येक विकास खण्ड में उत्कृष्ट कार्य करने वाली दो ग्राम पंचायतों के प्रधानों और ग्राम पंचायत के प्रभारी अधिकारियों को प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित करने एवं उन ग्राम पंचायतों को प्रोत्साहन स्वरूप विकास कार्यों हेतु ३५०००/– रुपये का नकद पुरस्कार दिये जाने का निर्णय लिया गया है।

६. ग्रामीण क्षेत्र की स्थानीय जनता विशेषतया कमजोर वर्ग के लोगों को आवागमन की सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वर्तमान सरकार के कार्यकाल में कुल ४००५ अम्बेडकर ग्रामों में खड़ञ्जा व नाली का निर्माण कराया गया।

७. ग्राम पंचायतों के कार्यालयों, बैठकों, उत्सवों तथा समारोहों आदि हेतु सार्वजनिक स्थान उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वर्तमान सरकार द्वारा कुल २३९७ पंचायत भवनों का निर्माण कराया गया।

८. पंचायत पदाधिकारियों और कार्मिकों के प्रशिक्षण की एक वृहद कार्य योजना तैयार कर १४३३२ पंचायत पदाधिकारियों को प्रशिक्षित किया गया। वर्ष १९९८–९९ में कुल ४८००० पंचायत पदाधिकारियों को प्रशिक्षित किये जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ है।

९. जिला पंचायतों की सकल आय में १५ प्रतिशत की वृद्धि की गयी।

१०. आजादी के बाद पहली बार जिला पंचायतों की वित्तीय स्थिति में अपेक्षित सुधार लाने के उद्देश्य से जिला पंचायत ललितपुर में सम्पत्ति एवं विमवकर लागू कराया गया तथा अन्य जिला पंचायतों को नियमावली की प्रतिलिपि देकर उनसे भी नियमावली लागू करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गयी है।

११. नव सृजित जनपदों की जिला पंचायतों में उपाध्यक्ष के चुनाव सम्पन्न कराये गये।

डॉ ओमप्रकाश
सचिव, पंचायती राज, उ०प्र० शासन लखनऊ

श्याम लाल केसरवानी
निदेशक, पंचायती राज, उ०प्र०

वचनेश त्रिपाठी

सरदार पटेल तथा भारतीय मुसलमान

उक्त पुस्तक के लेखक के बारे में यह ज्ञातव्य है कि उन्होंने "सलमान रश्दी" की पुस्तक के जवाब में एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है, **"मुहम्मद एण्ड कुरान"**। वकालत करने के बाद १५ वर्षों तक लेखक 'महाराष्ट्र–राज्य–सरकार' में मन्त्री भी रहा है और सम्प्रति "अलीगढ मुस्लिम यूनीवर्सिटी" का कुलपति है। प्रस्तुत पुस्तक दो मुस्लिम शहीदों, ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान और हवलदार अब्दुल हमीद खान की स्मृति को समर्पित है। ये दोनों शहीद सर्वोच्च सैनिक सम्मान "परमवीर चक्र" प्राप्त उच्च कोटि के वीर–कर्मा थे, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु एक मुस्लिम लेखक होने के नाते स्पष्ट है– डा० ज़कारिया के मन–मस्तिष्क से हिन्दू–मुस्लिम का भेद निःशेष नहीं हुआ। और जाता भी कैसे, स्वयं लेखक ही इस पुस्तक की भूमिका में पृष्ठ २३ पर लिखता है कि–

"जो विषय मैंने चुना, वह कुछ विवादास्पद था, इसलिए प्रारम्भ में इसके बारे में मेरे मन में कुछ शंकाएँ थीं। भारतीय राजनीति का विद्यार्थी होने के नाते एवं उसमें सहभागिता की वजह से मुझे सरदार पटेल के जीवन व उनके समय के बारे में एवं विविध क्षेत्रों में उनकी महान उपलब्धियों के बारे में पर्याप्त ज्ञान था, लेकिन अनेक सह–धर्मियों (मुसलिमों) की तरह मुझे भी यही लगता था कि वे (सरदार पटेल) मुसलमानों को पसन्द नहीं करते, **वास्तव में मैं तो यह सोचता था कि वे पक्के मुसलमान–विरोधी थे**। तो क्या मुझे उनकी स्मृति में होने वाले भाषण में उनकी आलोचना करनी चाहिए? मैंने अपने मित्र एस० रामकृष्णन से बात की। वे सरदार को बहुत निकटता से जानते हैं.....। उन्हें विश्वास था कि पटेल पर कोई धब्बा नहीं लगेगा। ....उन्होंने पटेल के बारे में लिखी गई एवं स्वयं पटेल द्वारा लिखी गई कई पुस्तकें दीं। सारा साहित्य एकत्र करके मैं इस आरोप की तह तक पहुँचने के प्रयास में लग गया कि पटेल मुसलमान–विरोधी थे"। इस पुस्तक में वस्तुतः डा० ज़कारिया के उन भाषणों का संकलन है, जो उन्होंने २९ और ३० अक्टूबर (सन् १९९६) को दिल्ली–स्थित "नेशनल म्यूजियम" में दिये थे– पश्चात् वही दोनों व्याख्यान ३१ अक्तूबर और १ नवम्बर को "आकाशवाणी" से प्रसारित हुए। उन दिनों केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री थे सी.एम. इब्राहीम– जिन्होंने प्रथम भाषण की अध्यक्षता की थी। ये भाषण "सरदार पटेल–स्मृति–व्याख्यान–माला" के अन्तर्गत हुए थे। आगे पृष्ठ २४ पर वह लिखता है कि,

"मै जानता हूँ कि अधिकांश हिन्दू सरदार पटेल की पूजा करते हैं। इसलिए मुसलमानों के लिए यह आवश्यक है कि वे पटेल को समझें और **यदि सम्भव हो तो उनके प्रति अपनी नापसंदगी को छोड़ें**।"

सन् १९५० की १६ मई को प्रातः १० बजे जीवन में प्रथम और अन्तिम बार जब लेखक सरदार पटेल से मिला, उन दिनों पटेल रुग्ण थे, तो लेखक ने उस भेंट के बारे में पृष्ठ २५ पर लिखा है कि **"मुझे उम्मीद थी कि वे विभाजन में मुसलमानों की भूमिका के कारण उनसे नाराज एवं आक्रामक होंगे, पर वे आश्चर्यजनक ढंग से शान्त तथा सहारा देने वाली मुद्रा में थे**। उनके शब्दों का मुझ पर गहरा असर पड़ा था।

पटेल ने उस दिन लेखक को यह सुझाव दिया था कि "मैं अपने युवा साथी धर्मावलम्बियों को जिन्ना व मुस्लिम लीग द्वारा बनाई गई दो समुदायों को बाँटनेवाली दीवारों को तोड़ने की आवश्यकता समझाऊँ।" स्वयं लेखक के शब्दों में **"वे (पटेल) युवा मुसलमान वर्ग पर द्विराष्ट्र–सिद्धान्त के प्रभाव से बहुत चिन्तित थे।"** परन्तु प्रश्न है कि सरदार पटेल के इस सुझाव के अनुसार लेखक (डा० रफीक ज़कारिया) ने क्या कोई उल्लेखनीय कार्य किया? संसद् में वे कांग्रेस के उपनेता रहे और फिर सन् १९८४ में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के विशेष दूत के रूप में इस्लामी देशों का दौरा भी किया, परन्तु इन कार्यों से क्या वे कट्टरपंथी युवा मुस्लिम-वर्ग में व्याप्त साम्प्रदायिक दीवार ढहा सके? वह साहस किया बंगलादेश की लेखिका तसलीमा नसरीन ने कि जहाँ ८८ प्रतिशत मुसलिम बसते हैं और केवल ९ प्रतिशत हिन्दू–वहाँ जब तमाम हिन्दू परिवारों की महिलाओं पर जिहादी शैतानों ने बलात्कार किये तथा अनेक अकथनीय अत्याचार

किये, तो यहाँ डा० रफीक ज़कारिया जैसे मुस्लिम विद्वानों ने जबान न खोली; वरन् उन अत्याचारों पर उपन्यास लिखा बंगला देश की ही तसलीमा नसरीन ने और जिसके कारण वह ४ वर्षों से हर तरह की साँसत झेल रही है– छिपकर रह रही है; परन्तु भारत में मंत्री और कांग्रेस–नेता रहे डा० जकारिया जैसे मुसलिमों ने तसलीमा से रंच मात्र भी हमदर्दी न दिखाई– न कठमुल्लों के फतवे के खिलाफ ही कुछ कहा– यदि आज सरदार पटेल जीवित होते, तो कल्पना की जा सकती है कि वे इस तसलीमा के विषय में क्या कुछ करते–कहते जबकि भारत में तसलीमा ने पनाह माँगी थी; परन्तु यहाँ की उस समय की केन्द्रीय सरकार ने मुस्लिम-तुष्टीकरण–नीति के तहत तसलीमा को वीसा देने से ही नाहीं कर दी। तब किस मर्द-मोमिन ने सरकार की इस निर्दय नीति के खिलाफ मुँह खोला– अलबत्ता सलमान रश्दी के जवाब में डा० ज़कारिया आ खड़े हुए। उधर एक तसलीमा है जिसने 'लज्जा' उपन्यास में 'इस्लाम' और 'कुरान' पर ऐसी रोशनी डाली है, जिसके अनुसार हिन्दू महिलाओं पर अत्याचार करना गुनाह है।

सन् १६४६–४७ में भारतीय नगरों में, यहाँ तक कि खास दिल्ली में भी खूँखार अलगाववादी मुसलमान 'वही कुछ करने वाले थे, जो बकौल तसलीमा नसरीन ने 'लज्जा' में उजागर किया– परन्तु उन दिनों सरदार पटेल ही थे– जिन्होंने न केवल दिल्ली के हिन्दुओं की रक्षा मुस्तैदी से की; वरन् जब कांग्रेसी नेता मारे जाने वाले थे और दिल्ली पर लीगी झंडा फहराने की मुहिम कार्यान्वित होने जा रही थी, तो ऐन मौके पर संघ स्वयंसेवकों की पूर्व सूचनाओं पर सेना बुलाकर दिल्ली बचाई और नेतागण भी बच सके– उन प्रसंगों की चर्चा से प्रस्तुत पुस्तक में बचा गया है। अवश्य डा० जकारिया ने सरदार पटेल को भी जवाहर लाल के साथ देश-विभाजन का जिम्मेदार ठहराने के लिए मेरियम, एलेनहायेस द्वारा लिखित 'गांधी वर्सेस जिन्ना–दि डिबेट ओवर दी पार्टीशन ऑफ इंडिया' के पृष्ठ १३१ से यह उद्धृत करना आवश्यक समझा कि "जब गांधी जी को यह पता चला कि नेहरू और पटेल ने माउण्ट बैटन की विभाजन की योजना को गुपचुप स्वीकृति दे दी है, तो वे ढंग से सो नहीं पाये थे और काफी अर्से तक परेशान रहे। प्यारे लाल ने लिखा है कि एक जून १६४७ को वे सामान्य समय से पहले ही उठ गये थे और धीमे स्वर में बुदबुदा रहे थे, "आज मैं स्वयं को अकेला पा रहा हूँ। सरदार और जवाहर लाल भी यह सोचते हैं कि स्थिति का मेरा आकलन गलत है और विभाजन स्वीकार करने से शान्ति स्थापित हो जायेगी। उन्हें मेरा वायसराय से यह कहना भी पसन्द नहीं आया कि यदि विभाजन होना ही है तो वह ब्रिटिश हस्तक्षेप से या ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत नहीं होना चाहिए....। उन्हें लग रहा था कि उम्र ने मुझे सठिया दिया है..., शायद मैं इसे देखने के लिए जिन्दा नहीं रहूँगा– पर यदि मेरी आशंका सही सिद्ध होती है और भारतीय स्वतन्त्रता खतरे में पड़ती है, तो आने वाली पीढ़ियाँ यह जान लें कि इसके बारे में सोच–सोचकर एक बूढ़ी आत्मा कितनी परेशान हुई थी। कोई यह न कहे कि भारत के टुकड़े कराने में गाँधी का हाथ था। यह उद्धरण पुस्तक के पृष्ठ ११२ पर उद्धृत है। तथापि कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक का मूल उद्देश्य पटेल की महत्ता और गौरवास्पद कृतित्व का उजागर करना ही है– अतः एतदर्थ लेखक को बधाई देते हैं, परन्तु पटेल के महान व्यक्तित्व और कृतित्व पर इस पुस्तक में यथेष्ट और अपेक्षित स्वरूप में प्रकाश नहीं डाला जा सका। पुस्तक का मूल्य भी अधिक है। छपाई–सफाई अच्छी है। यह भी एक कटु सत्य है कि किन्हीं भाषणों से पटेल सरीखे राष्ट्रीय नेता का सफल शब्द–चित्रांकन सम्भव नहीं।

लेखक : डा० रफीक ज़कारिया

अनुवादक : विश्वनाथ सचदेव

प्रकाशक : राजकमल–प्रकाशन, १ बी, नेताजी सुभाषमार्ग, नई दिल्ली– ११०००२

मूल्य : १२५ रुपये **पृष्ठ** : ११६

मालवीय जी की ससुराल

महामना पं० मदन मोहन मालवीय का मिर्जापुर नगर के साथ अटूट सम्बन्ध था। उनकी ससुराल नगर के इमली महादेव मुहल्ले की एक सँकरी गली में थी। इस बारे में यहाँ के लोगों को पता तक नहीं था। मण्डल आयुक्त मनोज कुमार की निजी रुचि और नगर पालिका परिषद के अध्यक्ष अरुण कुमार दुबे के प्रयासों से गली में स्थित उस मकान को ढूँढ निकाला गया। महामना की स्मृति को जीवित रखने के उद्देश्य से यहाँ एक शिलापट्ट लगाया गया है। महामना की बारात १८७८ में इलाहाबाद से यहाँ आई थी, और इसी स्थल पर पं० नन्दराम मालवीय की पुत्री कुंदन देवी के साथ उनका पाणिग्रहण संस्कार पूरे वैदिक रीति–रिवाज से सम्पन्न हुआ था। ❐

(जनसत्ता– १५.१०.६८, पृ० ३)

सांस्कृतिक लोक-कला भू-अलंकरण

डॉ शिवनन्दन कपूर

आलेपन या भूमि–अलंकरण हमारी संस्कृति, तथा सामाजिक चेतना की जीवन्त अभिव्यंजना है। अल्पना में नारी की कल्पना आसपास के वातावरण को, परम्पराओं को नूतन रंग देती है। ऊँचे प्रासादों से लेकर, निर्धन की कुटिया तक इसके रंग बिखरते रहे हैं। उनमें संस्कृति की आत्मा मुखर रही है। सामाजिक तथा आत्मिक अर्थ वाले प्रतीक बोलते रहे हैं। कला की ऊँची उड़ान, पर तोलती है।

अल्पना शब्द 'आलेपन' से उद्भूत है। दर्पण के प्रतिबिम्ब के सदृश किसी वस्तु या आकृति का रेखाओं में आलेखन ही आलेपन है–

सादृश्यं दृश्यते यस्मिन् दर्पण प्रतिबिम्बवत्।
चित्रावासमितिस्थातम् तस्यालेपनं स्मृतम्।।

"मानसोल्लास" में चित्र के चार भेद किये गये हैं– विद्ध, अविद्ध, रस–चित्र तथा धूलि–चित्र (अध्याय–३, प्र० १)। श्री कुमार के "शिल्प–रत्न" में मात्र तीन भेद मिलते हैं– धूलि–चित्र, सादृश्य तथा रस–चित्र। धूलि–चित्र ही अल्पना है। ऊपर दी गयी परिभाषा के अनुसार आलेपन या अल्पना में कल्पना की प्रधानता रहती ही है। इसी अल्पना ने उत्तर प्रदेश तथा बिहार में 'ऐपन' का रूप ग्रहण कर लिया है। बंगाल में इसे अब भी अल्पना ही कहते हैं। महाराष्ट्र एवं मध्य–प्रदेश में इसे विविध रूपों वाली "रांगोली" के रूप में रचते हैं। राजस्थान में यह "माण्डणा" के रूप में प्रख्यात है। गुजरात में गृहिणियों ने इसको "साथिया" की संज्ञा देकर साथी बनाया। वैसे "सथिया" शब्द उत्तर प्रदेश में भी प्रचलित है। बिहार में कहीं–कहीं उच्चारण–भेद से इसे 'अरिपन' या 'अइपन' का अभिधान भी दिया है। बुन्देलखण्ड में यह "साँझी" के रूप में प्रचलित है। दक्षिण भारत में "कोलम", 'कुण्डल' तथा 'कोडरां' नाम हैं। संस्कृत ग्रन्थों में इसके लिए 'रंगावली' एवं 'रंगमाला' पर्याय भी प्राप्त हैं।

रांगोली शब्द का उद्भव "रंग–वल्ली" या रंग से बनाई लता है। रंग–वल्ली शब्द प्रकृति से इसकी अभिन्नता का द्योतक है। कल्पना का आधार लेकर, प्रकृति के विविध रूपों का अंकन इसका मुख्य आधार रहा। धरती को गोबर से लीप कर रंग–वल्ली बनाने का निर्देश था– **लेपयित्वा गोमयेन रंगवल्याः समन्वितः।** आज भी रांगोली बनाने से पूर्व उस स्थान को स्वच्छ कर गोबर से लीपते हैं।

लोक–कला के रूप में यह अपने देश में हजारों सालों से प्रचलित है। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर इसका आलेपन होता ही है। व्यक्ति–विशेष के स्वागत, दीपावली एवं अन्य पर्वों पर इस मंगल–सूचक अलंकरण का कलात्मक चित्रण पूजा के स्थान तथा द्वार के समक्ष किया जाता है। समय–समय पर इसकी प्रतियोगिता कर कला–परीक्षा तथा प्रोत्साहन का आयोजन होता है। विवाह के अवसर पर कन्या के द्वार पर अल्पना आँकी जाती है। वेदी के निकट भी चौक पूरते हैं। अनेक कोणों वाली आकृतियाँ मात्र आँगन या द्वार पर ही नहीं बनतीं, कहीं–कहीं तो छत को भी इससे भव्यता प्रदान की जाती है।

रांगोली में 'चुटकियों' से पहले बिन्दु टीपते हैं। फिर उन पर आकृति बना ली जाती है। अब बाजार में टीन की बनी छोटी–बड़ी छिद्र–युक्त आकृतियाँ बिकने से इसे बनाने में सुविधा तथा शीघ्रता हो गयी है। कमल तथा स्वस्तिक का अंकन विशेष किया जाता है। देवी तथा पशुओं की आकृतियाँ भी बनायी जाती हैं। राखी पर, दीवाल पर नाग एव श्रवण के चित्र आंकते हैं। गुजरात में भूमि–चित्र या धूलि–चित्र धान की भूसी से भी निर्मित होते हैं।

रांगोली की टिपकियाँ या बिन्दु–निर्माण वैसे तो दो उँगलियों की चुटकी से करते हैं; किन्तु कमल का अंकन तीन उँगलियों की सहायता से होता है। रांगोली शीघ्र धूमिल पड़ती जाती है। इसी क्षण–भंगुरता के कारण "शिल्प–रत्न" में इसे "क्षणिक" की संज्ञा दी गयी है।

धार्मिक महत्त्व

विवाह आदि पर तो इसका अंकन होता ही है। "स्कन्द–पुराण" में देवता के समक्ष चक्र, कमल, स्वस्तिक

आदि मांगलिक–चिह्न बना कर पूजा करने का विधान है। राजस्थान में यह विश्वास किया जाता है कि "माण्डणा" न आँकने से पूरे गाँव पर विपत्ति की छाया आ सकती है। कला–प्रोत्साहन तथा सज्जा की अनिवार्यता के लिए लोगों ने इस प्रकार की किंवदन्ती का आश्रय लिया। बंगाल में लक्ष्मी–व्रत के लिए निर्मित अल्पना में सूर्य, धान्य, उलूक आदि के साथ मछली भी आँकी जाती है। मछली वहाँ का मुख्य आहार होने से समृद्धि की प्रतीक है। वैसे भी यह शुभ प्रतीक मानी जाती रही है।

विविध सामग्री

देवी को "कलारूपेण संस्थिता" मानकर एक प्रकार से कला का सम्मान किया गया है। यह कला विविध सामग्रियों से सज्जित की जाती है। भूमि स्वच्छ कर, गोबर से लीप कर, चिकना बनाते हैं। उपादान के आधार पर भी इसके अनेक भेद हैं, यथा, धूलि–चित्र, पुष्प–चित्र, रस–चित्र आदि–

धूलिचित्रं पुष्पचित्रं रसचित्रमितिक्रिया।
रसलिप्तं चिरस्थायि सर्वेषामितिरिच्यते।।

रस–चित्र स्थायित्व लिये रहता है।

रांगोली धूलि–चित्र की श्रेणी में आती है। पिसे पत्थर के चूर्ण में अनेक प्रकार के रंग मिला कर, रंगोली की सामग्री तैयार कर ली जाती है। सफेद चूर्ण से 'टिपकियाँ' याने बिन्दु तथा फिर रंगीन चूर्णों से आकृतियाँ बनाई जाती हैं। प्रस्तर–चूर्ण के अतिरिक्त हल्दी, आटा, कोयले का चूरा, चावल का चूर्ण, गेरू, चूना, सिन्दूर आदि के प्रयोग से भी सजीवता लाई जाती है। प्रस्तर–चूर्ण बना बनाया मिलता है, एवं अन्य उपादानों की अपेक्षा सस्ता होता है। कलाकार रागोली के माध्यम से, विशाल दरी पर पड़े नोट, प्रकृति–चित्र, मुद्रित समाचार–पत्र आदि आँक कर विस्मित कर देते हैं।

भूमि–अलंकरण में धार्मिक प्रतीक फूल, दीपक,

मेरा क्या दोष ?

— मदन देवड़ा

एक बार एक सेठ जी ने दो पण्डितों को अपने घर भोजन के लिए आमन्त्रित किया। जब दोनों पण्डित आ गए, तो सेठजी ने उनका बहुत आदर–सत्कार किया।

कुछ देर बाद उनमें से एक पण्डितजी स्नान करने चले गए तो सेठजी ने दूसरे पण्डितजी से पूछा– "महाराज! आपके साथ वाले पण्डित तो काफी विद्वान् मालूम होते हैं।"

यह सुनकर वे पण्डितजी बोले– "सेठजी! यह आप क्या कह रहे हैं? विद्वान् तो यह हो ही नहीं सकता। मैं तो इसकी सात पीढ़ियों तक को जानता हूँ। मुझे तो यह निरा 'बैल' लगता है।"

यह सुनकर सेठजी कुछ नहीं बोले– केवल मुस्करा दिए। कुछ देर बाद जब पहले वाले पण्डित जी स्नान करके आ गये, तो दूसरे पण्डितजी स्नान करने चले गये। सेठजी ने उनसे भी यही पूछा– "महाराज! आपके साथ वाले पंडितजी तो बहुत विद्वान् मालूम होते हैं।

भला उन पंडितजी में भी इतना उदारती कहाँ थी कि वे अपने सामने किसी दूसरे की प्रशंसा सुन सकें। तपाक से बोले– अरे, सेठजी! आप उसे विद्वान् कह कर विद्वत्ता को लज्जित कर रहे हैं, मुझे तो वह 'भैंसा' लगता है।" अब की बार भी सेठजी कुछ नहीं बोले, केवल मुस्कराए।

कुछ देर बाद सेठजी ने दोनों पण्डितों को भोजन की लिए बिठा दिया तथा एक के सामने 'घास' और दूसरे के सामने 'भूसा' रख दिया। यह देखकर दोनों पंडित आग–बबूला हो गये। बोले– "यह क्या सेठजी! आपने हमें अपने यहाँ बुलाकर हमारा अपमान किया है।" ऐसा कह–कहकर दोनों पण्डित चलने लगे। तब सेठजी ने उन्हें रोकते हुए कहा– "मैंने तो किसी का अपमान नहीं किया है। मैं तो आप दोनों को ही विद्वान् समझता था; पर असली बात तो आपने ही एक दूजे को बैल और भैंसा कहकर बता दी। मैंने भी यही जानकर आपके योग्य खुराक परोस दी, बताइए। इसमें मेरा क्या दोष?

— १३, महावीरपथ, तराना, उज्जैन (म.प्र.)

नारी, कमल, गज, अश्व, लक्ष्मी, लता आदि का अकन होता है। बने–बनाये टीन के साँचों से इन्हें अंकित करने में सुगमता हो जाती है। प्राचीन–काल में रत्नों अथवा रत्न–चूर्ण से भी धूलि–चित्र बनाये जाते थे। यथा "गज मोतिन से चौक पुराये" अथवा–

"चौकें चारु सुमित्रा पूरीं।
मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी।।
(मानस, अयोध्या काण्ड, ३–८)

देवता के समीप भी गेरू से अलंकरण किया जाता था। गेरू से आँकने से पूर्व उस स्थल को चूने से पोत देते थे। इससे गेरू का अकन सहज उभर आता था। पटरे के नीचे भी अल्पना आँकी जाती रही। उस स्थान पर दीपक जला कर रखते थे।

पुष्प–चित्र

पुष्प–चित्र का प्रयोग नाना रंगों के सुरभिमय सुमनों से किया जाता है। पूर्वकाल में विविध पुष्पों से, विशेषकर कमल से कला–पूर्ण पुष्प–चित्र बनते थे। मन्दिरों में अब भी पुष्प चित्र बना करते हैं। पुष्टि–मार्ग के अन्तर्गत विशेष रूप से धूलि–चित्र तथा पुष्प–चित्र को प्रोत्साहन दिया गया है।

रस–चित्र

रस–चित्र स्पष्टतः रंगीन द्रव–पदार्थों से बनाये जाते हैं। हल्दी, पिसे चावल का घोल, रंगों के घोल तथा पुष्प–रस से बने रंगों का उपयोग इनमें होता रहा है। रुई या बालों के गुच्छे से बनी कूर्चिका अथवा कूची बना ली जाती रही। "चित्र–सूत्र" ग्रन्थ में रस–चित्र के उद्भव की रोचक गाथा है। बदरिका–आश्रम में नारायण तप कर रहे थे। उनका ध्यान भंग करने के लिए देवराज ने अनेक अप्सराओं को भेजा। उनका दर्प चूर्ण करने के उद्देश्य से नारायण ने आम्र–पल्लवों के रस से, अपनी जाँघ पर एक अतीव सुन्दरी का चित्र अंकित किया था। उस चित्र की सजीवता देख कर वे अप्सराएँ अत्यन्त लज्जित हुई थीं।

**प्राप्तानां वंचनार्थाय देवस्त्रीणां महामुनिः।
सहकाररसं गृह्य उर्व्यां चक्रे वरस्त्रियम्।
चित्रेण सा ततो जाता रूपयुक्ता वराप्सरा।
या दृष्ट्वा पीडिताः सर्वे जग्मुस्ता देवयोषिताः।।**

नारायण के ऊरु से उद्भूत होने से ही उस चित्र–सदृशा रूपसी को उर्वशी का नाम दिया गया था। अप्सराओं में अनिन्द्य तथा उत्कृष्ट उर्वशी की सर्जना रस–चित्र में हुई थी।

वैसे तो भूमि–चित्र अधिकांशतः धरती पर ही बनाये जाते हैं। इसी कारण "नारदीय शिल्प" में इस प्रकार के चित्रों को "भौम–चित्र" की संज्ञा दी गयी थी। विविध अवसरों पर दीवालों, देहरी, दोनों द्वार–पक्षों तथा गृह के भीतर की छत पर भी रस–चित्रों का आलेखन हुआ है। भारत के देवालयों में ही नहीं, यूरोप के गिरजाघरों में भी ऐसे अलंकरण अथवा धार्मिक आलेख्य प्राप्त हैं। प्रख्यात चित्रकारों ने घण्टों टँगे रह कर ऐसे रस–चित्रों का आलेखन किया है। नाग–पंचमी पर नाग–देवता के रस–चित्र बनाकर, उन पर सेवइयाँ अथवा खीर के साथ पान चिपका दिये जाते हैं। दुर्गा, चाँद, सूर्य, पुष्प, मयूर, मत्स्य आदि सांस्कृतिक प्रतीकों का अंकन होता रहा है।

विभिन्न क्षेत्रों में इस लोक–कला का रूपांकन अनेक अवसरों पर होता है। 'अहोई' के "माण्डणे" में फूल, चक्र, स्वस्तिक आदि के साथ कभी हुक्का पीती महिला भी आँक दी जाती है। इस तरह जन–जीवन भी इससे अछूता नहीं रहता। श्रावण में "जिरौती" की आकृति के साथ स्वस्तिक एवं सूर्य, चन्द्र के अंकन अनिवार्य हैं। देवता के प्रतीक नयन का चित्रण "जिरौती की विशेषता है। निमाड़ के अंचल में बालाएँ दीवाल पर प्रकृति के आँचल से सुमन चुन कर देवी, सूर्य, चन्द्र आदि की आकृतियाँ सज्जित करती हैं। सन्ध्या के समय वहाँ दीप जला कर "संझा पूली" मनाती हैं। दीप–पर्व पर तो चारों ओर रांगोली के रंग बिखरे–निखरे रहते हैं। बुन्देलखण्ड में सुराती–पूजन पर सूर्य, सप्तर्षि, चन्द्र–सूर्य, कमल, निधियाँ, गज आदि के अंकन की प्रथा है। होली पर भी कमल, मिष्ठान्न आदि की अल्पना करते हैं। बंगाल में लक्ष्मी–पूजन पर सिन्दूर–पात्र भी आँका जाता है।

महलों से झोपड़ियों तक उल्लास का रंग बिखेरने वाली यह लोक–कला धरती की माटी को कलात्मक रूप से इन्द्रधनुषी बनाती है। घर, आँगन, द्वार–पक्ष, देहली पर मंगल–प्रतीक बनाकर मन को कल्याण–भावना से युक्त किया जाता है। गृह–सज्जा तो होती ही है। घर सँवरने के साथ चित्र–कला की स्वाभाविक शिक्षा देने का इससे सरल, अंकुश–रहित साधन अन्य नहीं। कला का धर्म से जुड़ाव, अपने सांस्कृतिक प्रतीकों का सहज ज्ञान तथा स्वाभाविक उल्लास को उजागर करने का अन्य कोई प्रकृत रूप नहीं। □

–विठ्ठलनगर, खण्डवा (म०प्र०)

विजय–दिवस (१६ दिसम्बर) पर विशेष–

मृत्युञ्जय भारत की सेना !

– ना० गं० वझे

हमारी सेना संसार की श्रेष्ठतम सेनाओं में गिनी जाती है। शत्रु–पक्ष की तुलना में साधन–सुविधाओं की कमी को वह पूरा करती है अपनी प्रबल इच्छाशक्ति एवं प्रखर देशभक्ति के बल पर। अपनी निष्पक्षता, शालीनता तथा विमल–चारित्र्य के द्वारा वह उन सभी देशों का दिल जीत चुकी है, जहाँ–जहाँ राष्ट्र–संघ की ओर से उसे तैनात किया गया। विशेषकर स्त्री–वर्ग के प्रति तो उसका व्यवहार विश्व में 'एकमेवाद्वितीयम्' ही है।

अपने रण–कौशल के बल पर सन् १९७१ के युद्ध में पाकिस्तान के ९२ हजार सशस्त्र सैनिकों–सेनाधिकारियों को आत्म–समर्पण करने के लिए बाध्य करने वाली और प्राकृतिक तथा मानव–निर्मित विपदाओं के समय जन–सेवा का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करने वाली हमारी सेना पर हमें गर्व होना सहज–स्वाभाविक है।

हमारे इसी गर्व की अभिव्यक्ति तत्कालीन प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री के 'जय जवान, जय किसान' के नारे से हुई थी। हाल ही में पोखरण–परीक्षणों के पश्चात् उस नारे में 'जय विज्ञान' को जोड़कर वर्त्तमान प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हमारी सेना एवं उसके सहायक वैज्ञानिकों के मनोबल व उत्साह को हजार गुना वृद्धिंगत कर दिया है।

साहसे श्री वसति

वर्षों के दब्बूपन को ठुकराकर, वाजपेयी–सरकार ने पोखरण–परीक्षणों के द्वारा अपने साहस का परिचय दिया। परिणाम–स्वरूप भारतीय सेना की प्रहार–क्षमता में हुई अपेक्षित वृद्धि, हमारे देश को विश्व की महाशक्तियों में प्राप्त स्थान, परीक्षणों की पृष्ठभूमि, भारतीय वैज्ञानिकों व शास्त्रज्ञों की प्रतिभा के सम्मुख सिद्ध हुई अमेरिका की यान्त्रिक (उपग्रह) एवं मानवी गुप्तचर–तन्त्र की हतबलता और उसकी जल्दबाजी में आर्थिक प्रतिबन्धों की घोषणा करने की बुद्धि पर उसके ही देश में लगा प्रश्न–चिह्न, स्थानीय राजनीतिज्ञों द्वारा उसे भारत के पक्ष में दी गयी सलाह, परीक्षणों के तुरन्त पश्चात् अरब देशों द्वारा किया गया भारत का अभिनन्दन, उसका अमेरिका–विरोधी कारण आदि के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की इच्छा, हर देशभक्त भारतीय को होगी। इस इच्छा–पूर्त्ति की क्षमता रखता है अमेरिका के प्रसिद्ध न्यूज वीकली 'टाइम' में छपा सम्बन्धित सुदीर्घ लेख। केवल विरोधी दलों के समान 'निशान–ए–पाकिस्तान' की उपाधि–प्राप्त यूसुफ खान (फिल्म अभिनेता दिलीप कुमार) जैसों को छोड़कर, जिन्होंने ९१ प्रतिशत ('टाइम्स आफ इण्डिया' के अनुसार) भारतीय जनता की प्रतिक्रिया के विपरीत अपना बेसुरा–राग अलापा है, सभी के आनन्द को द्विगुणित करेगा; क्योंकि–

मृत्युञ्जय भारत की सेना।

श्रम–सुरभित तन, वज्र–सदृश मन।
कोटि–कोटि जन–रक्षक जीवन।
अटल वीर–प्रण, खल–विध्वंसन।

शोभित वर वैश्वानर–दुहिता।
रिपु–वन–दावा कृतान्त तड़िता।
शिव–संरक्षित अजेय अजिता।

तिमिरांकित पथ–प्रकाश पावन।
भारत जननी नेत्र–नीरांजन।
दुग्ध–धवल यश नित्य सुहावन।

शक्ति–युक्ति–संयम–युत शुभदा।
धवल–चरित, अनुशासित सुखदा।
जननी–कर शिर–धारित वरदा।।

– १४ए/बी, कार्पोरेशन कालोनी,
उत्तर अंबाझरी मार्ग, नागपुर–४४००१०

☆

... कि गंगाजी की बढ़ती हो

❏ वागीश

जिन दिनों सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में "अलीगढ़ मुस्लिम कालेज" की स्थापना की, उन्हीं दिनों एक साहब अकबर इलाहाबादी से जब मिले, तो उनसे पूछा कि "अखबार में यह खबर पढ़ी होगी आपने कि सर सैयद अहमद ने अलीगढ़ में "अलीगढ़ मुस्लिम कालेज" कायम किया है। अकबर इलाहाबादी ने कहा, "जी हाँ, खबर मैंने भी पढ़ी है।" तब उन्होंने कहा, "और आपने इतने बड़े शायर होकर इस बारे में कुछ लिखा नहीं ? दाद नहीं दी सर सैयद साहब को?" अकबर इलाहाबादी कुछ क्षण मौन रहे। फिर बोले, "लीजिए सुनिये,...." और ये पंक्तियाँ सुनाइं कि–

"हजार शेख ने दाढ़ी बढ़ाई सन की–सी,
मगर वो बात कहाँ, मालवी मदन की–सी।"

अर्थ यह कि सैयद "सर" साहब सफेद सन जैसी अपनी दाढ़ी कितनी ही लम्बी बढ़ा लें, पर उनका (सैयद साहब) मुकाबला महामना मदन मोहन मालवीय से नहीं हो सकता– मालवीय जी की बात ही कुछ और है, जिसकी कल्पना सर सैयद अहमद के जीवन में नहीं की जा सकती।"

यह उल्लेखनीय है कि भारत उन दिनों ब्रिटिश दासता की बेड़ियों में जकड़ा था और जो लोग अंग्रेजों के खैरख्वाह थे, उन्हें धड़ल्ले से 'सर', 'राय बहादुर', 'खान बहादुर', 'राजा', 'नवाब' आदि के खिताब अंग्रेज सरकार बख्श या बाँट रही थी– ऐसे वातावरण में जबकि सर सैयद अहमद खाँ भी अंग्रेजों के पक्षधर और जाने–माने समर्थक थे, अकबर इलाहाबादी ने बजाय सर सैयद अहमद के महामना मालवीय और उनके शिक्षा संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को वरीयता दी, महत्त्व दिया, यह बड़ी बात है। इस तरह एक और प्रसंग; प्रयाग में कुम्भ–पर्व पर संगम पर त्रिवेणी–प्रवाह में स्नान का समाँ बँधा था, एक घाट पर कुछ अंग्रेज फौजी भी नहाने के नाम पर धमा–चौकड़ी मचाये थे, क्योंकि वहाँ अनेक स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। इसलिए वे नशे में चूर गोरे उनसे छेड़–छाड़कर अपमानित कर रहे थे और साथ ही पुलिस अन्य यात्रियों को वहाँ स्नान करने जाने को बलात् रोक रही थी– पं. जवाहर लाल नेहरू ने जब यह स्थिति देखी, तो किसी से उसकी लाठी छीनकर त्रिवेणी में कूद पड़े और गुस्से में भिड़ गये गोरों पर– इस घटना ने कुम्भ के मेले में एक ब्रिटिश–विरोधी आन्दोलन का रूप ले लिया। उस अवसर पर अकबर इलाहाबादी ने लिखा था–

"लड़ें क्यों हिन्दुओं से हम,
यहीं के अन से पनपे हैं।
हमारी भी दुआएँ हैं,
कि गंगाजी की बढ़ती हो।"

सर सैयद अहमद खाँ अलीगढ़ से जो अंग्रेजी अखबार निकालते थे, उसे 'गजट' कहते थे, 'गजट' अखबार के माध्यम से भी सर सैयद अहमद काफी चन्दा वसूलते थे, जिसके परिप्रेक्ष्य में अकबर इलाहाबादी ने लिखा था कि–

"ले के सैयद जो 'गजट' निकले, तो लाखों पाये।
शेख 'कुरान' दिखाता फिरा, धेला न मिला।।

पश्चिमी भाषा और सस्कृति का जो प्रचार–प्रसार उन दिनों वृद्धि पर था– जिसके कारण अंग्रेजी शिक्षा का बोलबाला था, उसके बारे में भी अकबर इलाहाबादी ने लिखा कि,

"हम ऐसी कुल किताबें काबिल–ए–जब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के, बाप को खब्ती समझते हैं।।

अकबर इलाहाबादी लड़कियों को शिक्षा दिलाने के विरोधी न थे, अपितु उसे आवश्यक मानते थे; परन्तु साथ ही वे फैशन–परस्ती के खिलाफ थे; लिखा था–

"तालीम लड़कियों की जरूरी तो है मगर,
खातूने–खाना हों वे, सभा की परी न हों।
बाप–माँ से, शेख से, अल्लाह से क्या उनको काम,
डाक्टर जनवा गये, तालीम दी सरकार ने।।"

यहाँ 'सभा', 'जनवा' (जन्म दिलाना) जैसे शब्दों से उन्हें उर्दू शायदी में परहेज न था। यह उर्दू कवि

इलाहाबाद का रहने वाला था। जन्मा था सन् १८४६ के १६ नवम्बर को। इनका पूरा नाम था सैयद अकबर हुसैन रिजवी। ये स्माल काजेज कोर्ट के जज और फिर सेशन जज रहे। इनके जमाने में उर्दू शेरो–शायरी, आशिक–माशूक की सीमाओं तक सीमित थी, लेकिन अकबर इलाहाबादी ने उसे एक नितान्त भिन्न स्वरूप प्रदान किया। उस युग की राजनीति, शिक्षा, पंथ, सम्प्रदाय सभी क्षेत्रों पर अकबर इलाहाबादी की पैनी कलम ने कमाल दिखाया। वे न अंग्रेज–परस्त रहे, न कठमुल्ले मुसलमानों के समर्थक। एक जगह लिखा–

"शेखजी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुए।
एक हैं खुफिया पुलिस में, एक फाँसी पा गये।।"

अर्थात् "शेख साहब का एक लड़का पुलिस जासूस है,तो दूसरे को अपराधी होने से फाँसी दी गई।" किसी का घमण्ड उन्हें सहन न था। एक साहब जब उनसे मिलने उनके यहाँ आये, तो अपनी पर्ची पर नाम के साथ "बी० ए०" भी लिख दिया, इस कारण अकबर इलाहाबादी ने उनसे मिलने के बजाय उसी पर्ची पर यह लिख भेजा कि,

"गर आप बी.ए. पास हैं तो बन्दा बीबी पास है।"

चन्दा वसूल कर जेबें गरम करने वाले नेताओं को भी अकबर इलाहाबादी ने नहीं बख्शा, लिखा कि–

"सर्विस में मैं दाखिल नहीं, हूँ कौम का खादिम।
चंदों की फसल आस है, तनख्वाह कहाँ है।"

अर्थात् "मैं कोई नौकर–चाकर या अन्य काम–धन्धा तो करता नहीं, अलबत्ता कौम का सेवक हूँ इसलिए मुझे सिर्फ भरोसा चन्दों की रकम का ही है, वेतन मुझे कहाँ रखा है।"

एक बार एक मौलाना आये और अकबर इलाहाबादी को यह खबर सुनाई कि "जनाब ! एक खुशखबरी है ; एक ब्रिटिश कम्पनी ने मक्के तक रेलवे लाइन बिछाने का ठेका लिया है, इसमें हाजियों को बड़ी सहूलियत हो जायेगी।" अकबर इलाहाबादी साहब बोले, "बेशक, तो सुनिये कि–

"मक्के तक रेल का इन्तजाम हुआ जाता है।
अब तो इंजन भी मुसलमान हुआ जाता है।"

यह व्यंग्य सटीक बैठता है, क्योंकि मक्के–मदीने तक किसी हिन्दू का पहुँचना तो वहाँ प्रतिबन्धित है, सिर्फ मुसलमान ही वहाँ की यात्रा कर सकते हैं।"

इनका बेटा भी सीतापुर में डिप्टी कलक्टर था, नाम था– सैयद हुसैन। एक बार जब अकबर इलाहाबादी भी उसी के यहाँ रह रहे थे, तो एक दिन उस लड़के के कुछ दोस्त आये, जो अकबर इलाहाबादी से अपरिचित थे, यह न जानते थे कि जिसके यहाँ बैठे हैं– ये बुजुर्ग उनके पिता हैं। अतः अकबर इलाहाबादी की तरफ पीठ करके मौज–मस्ती में कहकहेबाजी और हँसी–मजाक में मग्न रहे– एक तरह से वृद्ध अकबर इलाहाबादी की उपेक्षा ही की। सोचा होगा, होंगे कोई गरजमंद, जो डिप्टी साहब (सैयद हुसैन) को सलाम बजाने या उनसे कुछ दरख्वास्त करने आये होंगे। तभी वहाँ एक ऐसा युवक आया, जिसने कानाफूसी करके उन लोगों को सूचित कर दिया कि "तुम लोग यह क्या फिजा बना बैठे हो– अरे ! ये जो बुजुर्ग बैठे हैं– ये वालिद (पिता) हैं डिप्टी साहब के।" अब तो हवा ही बदल गई। सब हँसी–मसखरी छोड़कर ससम्मान अकबर इलाहाबादी के इर्द–गिर्द घिर आये। शिष्ट बन गये। अकबर इलाहाबादी सामान्यतया उनसे वार्त्ता करने लगे, किन्तु बीच में एक शिगूफा छोड़ ही दिया उन्होंने, कहा– "यह खबर है आप लोगों को कि एक दिन ऐसा हुआ कि उधर विलायत में खुदा खुद तशरीफ लाये, पर शुरू में न किसी ने उनकी तरफ तवज्जो दी, न उनकी आमद पर उनकी इज्जत–अफजाई की। बाद में एक ने कह दिया कि "सुनो, ये साहब जो तशरीफ लाये हैं, यही ईसामसीह के वालिद (पिता) हैं।" फिर तो उनकी वह इज्जत होने लगी कि पूछो मत।" वस्तुतः यह व्यंग्य स्वयं उन्हीं लोगों पर था, जो उनके पुत्र के मित्र थे और शुरू में यहाँ आकर धींगा–मुश्ती कर रहे थे। परन्तु अब लज्जा से नतशिर थे। स्पष्ट है कि ऐसे प्रसंगों की वे अनदेखी करना नहीं जानते थे। ब्रिटिश शासन पर यह व्यंग्य देखिए कि–

"पानी पीना पड़ा है पाइप का।
हर्फ पढ़ना पड़ा है टाइप का।।
पेट चलता है, आँख आई है।
शाह एडवर्ड की दुहाई है।।"

अर्थ यह कि नल का पानी पीने से दस्त शुरू हो गये और टाइप वाले अक्षरों की पुस्तकें पढ़ते–पढ़ते आँखें दुखने लगीं– दुहाई है शाह (शासक) एडवर्ड की।" ७५ वर्ष की आयु में यह कवि सन् १९२१ में चिर–विदा ले गया। ❒

(पृष्ठ १४ का शेष) **कैसा था समाज**

भौतिकेषु" (रघु० २–५७)। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, कार्य, संघर्ष, छोटेपन की भावना उत्पन्न नहीं होती थी। प्रसन्नता से समाधानपूर्वक रहने, मनोविकृतियों पर नियन्त्रण, अपने वचन पर दृढ़ता, प्रामाणिकता, विपरीत आचार–व्यवहार से घृणा, कार्य स्वीकार कर उसकी पूर्त्ति में निश्चय, सत्य–आचरण, श्रेष्ठजनों की मर्यादा, गुरुजनों के प्रति आदर, कर्तव्य–निष्ठा, आत्मनिर्भरता यह उस समाज की विशेषता थी। इस देश में अनेक संघर्ष ब्राह्मण और क्षत्रिय को लेकर होते रहे हैं। यह कालिदास के पूर्ववर्त्तीकाल में अधिक घातक रहे हैं; परन्तु कालिदास ने जिस समय अपना साहित्य निर्मित किया है, मालूम होता है, इन दो वर्गों में परस्पर सौहार्द और सहयोग भावना बढ़ी हुई थी और कवि ने इसी पर बल देते हुए बतलाया है कि ब्रह्मबल और क्षत्रबल का संयोग हो जाने पर वायु और आग का सहयोग बनकर सामर्थ्य (शक्ति) बढ़ा देने वाला होगा– (पवनाग्नि– समागमो ह्ययं सहित ब्रह्म यदस्त्रतेजसा– रघु० ८–४)। इसी प्रकार और भी कहा कि वसिष्ठ का मन्त्र–सामर्थ्य और धनुर्धारी अतिथि नरेश के बाण का संयोग सध जाने पर कौन–सी बात है जो असाध्य रह जाती (रघु० १७–३८)। इससे इन दोनों शक्तियों का सहयोग और महत्त्व कालिदास के समय में रहा है। प्रायः क्षत्रिय शासक वर्ग अपने पुत्र के कार्यभार सम्भालने योग्य हो जाने पर उत्तरदायित्व उस पर डालकर अलग हो जाते थे, युवक की प्रगति का पथ प्रशस्त कर देते थे। जिस प्रकार समाज में चार वर्णों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, उसी प्रकार जीवन में भी चार भागों में चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी थी–

'शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्,
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।
(रघु० १–८)

स्पष्ट है कालिदास के समय का समाज सभ्य, सुसंस्कृत, शिष्ट और शालीन था। ❑

– ई–६०७, कर्जन रोड, अपार्टमैंट, नई दिल्ली–११०००१

जन्म–दिवस (२५ दिसम्बर) पर—

... सही प्रधान मिला है

- दामोदरदत्त मिश्र 'प्रसून'

पहली बार स्वतन्त्र देश का भाग्य–प्रसून खिला है,
पहली बार पवित्र–भूमि को सही प्रधान मिला है।
मुद्दत बाद सभी ने ली है, अब राहत की साँस–
दशकों का निर्मित अनीति का टूटा आज किला है।।

साध कोटिशः जनमन की लड़कोरी आज हुई है,
आशाएँ प्रतिपक्षी की लगती ज्यों छुई–मुई हैं।
लम्बे अरसे से हम पीते आये विष की घूँट–
आन, अस्मिता, स्वाभिमान की, आखिर जीत हुई है।।

अटल बिहारी नहीं– देश की पीड़ा मूर्त्त हुई है,
नूतन रामराज्य की जिसमें इच्छा स्फूर्त्त हुई है।
खतम हुआ घोटालेबाजों का लम्बा इतिहास–
जन–जीवन के भव्य–काव्य की नवल–प्रवृत्ति हुई है।।

जन–जीवन का काव्य कि जिसमें भरी हुई 'ममता' है,
भारतीय संस्कृति की गरिमा सभी बीच 'समता' है।
चारों क्षितिज जहाँ आपस में मिलने को हैं आतुर–
जहाँ 'अकाल' महेश्वर भी हैं और स्वयं 'ललिता' हैं।।

"एक राष्ट्र" की ध्वजा तले वैविध्य सभी हर्षित हों,
सिंहासन की देख शूरता शत्रु स्वयं घर्षित हों।
जल–व्याल मर गया, नागपति सिंहासन आसीन–
सत्य, सरलता सहित शौर्य पर वैभव आकर्षित हों।।

– ललिता निकेतन, ग्राम व पोस्ट–कोरान सराय,
जनपद–बक्सर (बिहार)–८०२१२६

साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। जीवन परमात्मा की सृष्टि है; इसलिए अनन्त है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है; इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है।

— प्रेमचन्द

(पृष्ठ १८ का शेष) **यीशु मसीह का ...**

आदि महत्त्वपूर्ण किताबों का पारायण किया। इसी दौरान उन्होंने मानव समानता का प्रतिपादन करते हुए शूद्रों को पवित्र ग्रन्थों का पठन कराना चालू कर दिया। ब्राह्मण पुरोहितों के मना करने पर जब वे नहीं माने, तो उन्हें खत्म करने की साजिश की गई, किन्तु शूद्रों ने उन्हें बचाकर वहाँ से रवाना कर दिया। वे वहाँ से कपिलवस्तु गये, जहाँ उन्होंने पाली भाषा सीखकर छह वर्षों तक बौद्ध सूत्रों को पढ़ा, समझा। इसके बाद वे राजपूताना आये, वहाँ उन्होंने मूर्तिपूजा एवं दासप्रथा समाप्त करने की सीख दी। इसके बाद वे फारस पहुँचे। वहाँ के धार्मिक नेताओं ने फतवा दे दिया कि कोई उनका उपदेश न सुने; किन्तु जब उन्होंने नहीं माना, तो ईसा को पकड़वाकर जंगल में छुड़वा दिया। ईसा वहाँ से ३० वर्ष तक की आयु तक भ्रमण करते रहे। फिर वे इजराइल पहुँचे। इसके बाद का उस पुस्तक का वर्णन पूरी तरह बाईबिल के अनुसार है। इस प्रकार यह तिब्बती ग्रन्थों का वर्णन स्वाभाविक, तर्कसंगत एवं सही लगता है। तो यह थी यीशु की प्रथम भारत–यात्रा।"

यीशु की दूसरी भारत–यात्रा एवं भारत में निवास

क्रूस पर से जीवित बच निकलने के बाद अपने लोगों की नजरों से छिपते–छिपाते हुए मात्र अपने शिष्यों के सामने प्रकट होते सर्वप्रथम वे गैलिली नामक स्थान पर पहुँचे। इजराइल में उन्हें प्राणों का संकट नजर आ रहा था, इस कारण उन्होंने अपना रुख पूर्व की ओर कर लिया। इजराइल की कुछ जातियाँ भी वहाँ के दमन–चक्र से घबराकर अफगानिस्तान, कश्मीर एवं तिब्बत में बस गईं थीं। इन्हीं लोगों को उन्होंने कश्मीर में पाया था। इस यात्रा में उनके साथ उनकी माँ मेरी और एक शिष्य था। वे सबसे पहले उमस्कस पहुँचे। आज भी इसी नगर में तीन मील के फासले पर "मुकामे ईसा" है, जहाँ वे कुछ दिन ठहरे थे।

इसके पश्चात् वे सीरिया और ईरान गये। उन्होंने कई कुष्ठ रोगियों को रोग–मुक्त किया, तो लोगों में "युज आसफ" (स्वस्थ कुष्ठ रोगियों के नेता) के नाम से मशहूर हो गये। ईरान से वे तक्षशिला (अब पाकिस्तान) आये, वहाँ उनके संग टामस नामक एक शिष्य और जुड़ गया। सब लोगों ने फिर कश्मीर की ओर प्रयाण किया, किन्तु मार्ग में लगभग ४० मील की दूरी पर मरी नामक स्थान पर मेरी की मृत्यु हो गयी। आज भी मेरी की कब्र पर "माई मेरी दा स्थान" का शिलालेख लगा हुआ है और कब्र यहूदियों के रिवाज के मुताबिक पूरब से पश्चिम की ओर है। वहाँ से ईसा कश्मीर में प्रविष्ट हुए। जिस घाटी से वे आये, उसका नाम युजमर्ग (यीशु मार्ग) आज भी है। इसके बाद "ऐश मुकाम" नामक स्थान पर ईसा अपने शिष्यों के साथ रुके और आराम किया, ऐसा "नूरनामा" में उल्लेख आया है।

कश्मीर के प्रथम इतिहासकार मुल्ला नादिरी ने अपने फारसी में लिखे ग्रन्थ में जिक्र किया है कि सन् ५४ से "युज आसफ" ने कश्मीर में अपना उपदेश देना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने स्वयं को पैगम्बर बताकर घोषित किया था कि वे ईश्वर का पैगाम कश्मीरियों के लिए लाये हैं। यह थी यीशु की दूसरी भारत–यात्रा, जिसके बाद वे भारत में ही स्थायी रूप से बस गये थे।

यीशु के वंशज

अभी भी कश्मीर में एक ऐसा परिवार है जो "युज आसफ" को अपना पूर्वज मानता है। एक फ़ारसी पुस्तक "नेगारिस–तान–ए–कश्मीर" में बताया गया है कि ईसा ने शादी की थी और उनकी सन्तानें हुई थीं। साहिबजादा बशारत सलीम अपने को उनका वंशज मानते हैं और उनके पास अपना वंशवृक्ष भी है।

शेख अल् सईद–उस्–सादिक नामक इतिहासकार ने अपने ग्रन्थ में 'युज आसफ' की यात्राओं का विवरण दिया है। इसमें बताया गया है कि ईसा की मृत्यु कश्मीर में हुई थी। यूज आसफ उर्फ ईसा ने मृत्यु के समय अपने चेले टामस को निर्देशित किया था कि जहाँ उनकी अन्तिम श्वास निकले, उसी स्थान पर उनको दफनाया जावे। टामस ने ऐसा ही किया, उन्हीं उसी जगह दफनाया गया। आज भी उस स्थान पर, जो श्रीनगर में है, एक कब्र "रोजाबेले" स्थान पर है जहाँ सभी धर्मों के लोग जाकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि ईसा मसीह भारत में १३वें वर्ष से तीसवें वर्ष की उम्र तक रहे और बाद में वे जब दूसरी बार आये, तो वे यहाँ बस गये।

☆

– ५७६, स्नेह नगर, इन्दौर–४५२००१ (म०प्र०)

श्री कल्याण सिंह
माननीय मुख्यमंत्री, उ.प्र.

श्री सूर्य प्रताप शाही
माननीय आबकारी मंत्री

श्री विक्रमाजीत मौर्य
माननीय आबकारी राज्य मंत्री

आम जनता से अपील

विशेष सावधानी बरतें

- मिथाइल अल्कोहल एक खतरनाक जानलेवा जहर है। इसका सेवन केवल एक घूंट कर लेने से ही अंधापन व मौत हो जाती है। मिथाइल अल्कोहल देखने, सूंघने व चखने में बिल्कुल शीरे, गुड़, अथवा महुआ या अनाजों से निर्मित इथाइल अल्कोहल जैसा ही पानी के समान होता है।
- इथाइल अलकोहल से हर प्रकार की शराब बनाई जाती है जो कि शराब के ठेकों से कानूनी तौर पर बेची जाती है। शराब के ठेकों के अलावा किसी और जगह से शराब पीना गैर कानूनी और खतरनाक काम है।
- शराब के ठेकों के अलावा कहीं और से खरीदी गई शराब में मिथाइल अल्कोहल नामक खतरनाक जहर मिला हो सकता है और ऐसी शराब को एक घूँट पी लेने से ही अंधापन या मौत हो सकती है।
- अब कानूनी तौर पर मिथाइल अल्कोहल को जहर घोषित कर दिया गया है।
- मिथाइल अल्कोहल नामक खतरनाक जहर को बिना लाइसेंस के खरीदना, बेचना व उसे अपने पास रखना कानूनी तौर पर जुर्म बना दिया गया है।

चेतावनी

- शराब की अधिकृत दुकानों व ठेकों के अलावा किसी अन्य व्यक्ति अथवा अवैध शराब के अड्डे से शराब खरीद कर न पियें, क्योंकि वह जहरीली व जानलेवा हो सकती है।
- विशेष प्रकार की तीव्र गंध वाले बैगनी रंग के द्रव को कदापि न पियें, क्योंकि वह जहरीला मिथाइल अल्कोहल हो सकता है।
- थिंनर आदि को कभी न पियें क्योंकि ये पदार्थ भी जहरीले व जानलेवा मिथाइल अल्कोहल से निर्मित हो सकते हैं।
- किसी रोड टैंकर से कोई पदार्थ निकलवाकर न पियें क्योंकि वह पदार्थ जहरीला मिथाइल अल्कोहल या डिनेचर्ड स्प्रिट हो सकता है। और उसके पीने से मौत हो सकती है।

निर्देश

- जिस फैक्ट्री, व्यापारी व व्यक्ति को मिथाइल अल्कोहल नामक खतरनाक जहर को खरीदना, बेचना, अपने कब्जे में रखना व उपयोग करना हो, वह अपने जिले के जिला आबकारी अधिकारी अथवा जिलाधिकारी से तुरन्त लाइसेंस ले लें। अन्यथा बिना लाइसेंस के जिस फैक्ट्री, व्यापारी व व्यक्ति के पास मिथाइल अल्कोहल नामक जहर पाया जायेगा उसके खिलाफ *"उत्तर प्रदेश-प्वाइज़न्स रेगुलेशन ऑफ पज़ेशन एण्ड सेल"* (संशोधन) नियमावली 1994 के तहत कानूनी कार्यवाही की जायेगी।

पी० सी० रावल
प्रमुख सचिव
आबकारी, उ०प्र०

पी० एल० लोई
आबकारी आयुक्त, उ०प्र०
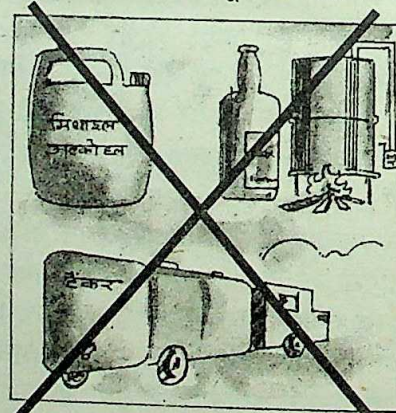
उत्तर प्रदेश आबकारी विभाग द्वारा प्रसारित

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' का अक्टूबर ६८ का अंक 'ज्योति–पर्व विशेषांक' मिला। पत्रिका का कलेवर एवं आवरण आकर्षक, सारगर्भित एवं बहुआयामी है। समाहित सामग्री लेख, कहानी, प्रेरक प्रसंग, व्यंग्य एवं स्थायी स्तम्भ पठनीय, चिन्तनपरक, प्रेरणास्पद, ज्ञानवर्धक हैं। 'प्रकाश–पर्व, दीपावली एवं महालक्ष्मी की पूजा', 'महाभारत कालीन अस्त्र–शस्त्र', 'धाय नहीं राजकुमारी थी पन्ना' लेख एवं 'विभाजन की विभीषिका' तथा 'चक्रव्यूह' कविताएँ अत्यधिक रुचिकर लगीं। 'बाल वाटिका' भी मन भायी रचनाकार हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

'मी मोहनदास करमचन्द गांधी बोलतोय' शीर्षक के माध्यम से सम्पादकीय में अभिव्यक्त उद्‌गार विचारणीय एवं मननीय हैं। भारतीय संस्कृति की संवाहक यह पत्रिका अपने नाम के अनुरूप गरिमामयी रचनाओं से परिपूर्ण रहे, यही कामना की जाती है।

– राम भवन सिंह ठाकुर
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद वार्ड
भैरोगंज, सिवनी (म०प्र०)

'राष्ट्रधर्म' प्रथम बार पढ़ने का अवसर मिला। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत विषय–सामग्री को समेटे हुए यह अनूठी पत्रिका भारत के हृदय स्थल लखनऊ से प्रकाशित हो रही है।

भारत के गौरव और संस्कृति की भीनी–भीनी खुशबू प्रवाहित करने वाली यह अद्वितीय पत्रिका निःसन्देह बधाई की पात्र है।

अक्टूबर १६६८ अंक में प्रकाशित प्रो० बलराज मधोक का लेख– 'इस्लामी आतंकवाद का विनाश और तिब्बत' तथा वचनेश त्रिपाठी का लेख– 'भारत खण्डित नहीं होता, यदि ...' उत्कृष्ट स्तर के हैं।

– सुरेश कासलीवाल
हिण्डौन सिटी (राजस्थान)

'राष्ट्रधर्म' का ज्योति पर्व विशेषांक अपनी ज्योति विकीर्ण करने में समर्थ है। उसका सम्पादकीय "मी मोहनदास करमचन्द गांधी बोलतोय" निर्भीक लेखनी से लिखा गया एक विचारोत्तेजक लेख है। हमारे देश में प्रायः यह होता है कि जब हम किसी को महिमामण्डित कर देते हैं, तो फिर उसके नितान्त अनुचित कार्य के प्रति भी मौन रहते हैं। महात्मा गांधी के साथ भी यही हुआ। उनके द्वारा किये गये गलत पक्षपातपूर्ण एवं अनुचित निर्णयों का भी हम उल्लेख नहीं करते।

– राघवेन्द्र त्रिपाठी
बिसवाँ, सीतापुर

'राष्ट्रधर्म' का अक्टूबर १६६८ 'ज्योति–पर्व विशेषांक' पढ़ा। अंक में अनुसंधानपूर्ण आलेख, कविताएँ एवं कहानी के अतिरिक्त बाल वाटिका समग्रता की प्रतीक है। विशेषांक पढ़ने से प्रकाश–पर्व दीवाली के बारे में अनेक एतिहासिक जानकारियाँ मिली। 'प्राचीन मिश्र में भी मनायी जाती थी दीवाली', 'तिब्बती भाषा में रामकथा' एवं 'महाभारत कालीन अस्त्र–शस्त्रों' के बारे में जानकारी मिली। वचनेश जी त्रिपाठी का संस्मरण लेख 'भारत खण्डित नहीं होता यदि ...' एवं सम्पादकीय 'मी मोहनदास करमचन्द गांधी बोलतोय' बहुत अच्छा लगा। यह विशेषांक ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि में अग्रसर एवं प्रेरणादायी व संग्रहणीय अंक है। मुख–पृष्ठ पर सिद्धि–बुद्धि प्रदेदेवि भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी देवी का चित्र अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला है।

– जगदीश दान कविया
झलालड़, नागौर (राजस्थान)

'राष्ट्रधर्म' के ज्योति पर्व विशेषांक के मुखपृष्ठ जो देवी महालक्ष्मी का चित्र है वह आपत्तिजनक है। यदि हम आप उत्तेजक चित्रों का विरोध करने वाले ही ऐसे चित्र छापेंगे तो क्या हमारा विरोध बेमानी नहीं होगा मुझे विश्वास है कि मेरी इस बात को अन्यथा न लेकर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर भविष्य में सुसंस्कृत सादे चित्र ही अंकित करायेंगे।

अक्टूबर अंक के बेतुके दोहे, 'चक्रव्यूह', 'घर बनाना कोई इससे सीखें', 'महाभारत काल के अस्त्र–शस्त्र' जैसे लेख अत्यन्त उत्साहजनक व ज्ञानवर्द्धक हैं। 'अपराधी को सजा न मिलती' भी प्रशंसनीय है।

– गोविन्द दत्त द्विवेदी
डलमऊ, रायबरेली

ज्योति–पर्व विशेषांक में सम्पादक की कलम ने महात्मा जी के महत् कृत्यों, विचारों, राष्ट्र के प्रति समर्पण किंवा विशेष जन के मोह के फलस्वरूप राष्ट्र की महान् सेवा की; 'मी मोहनदास करमचन्द गांधी बोलतोय' माध्यम से महात्मा के ही श्री मुख से उजागर कर दी, विशेष बोध–दायी एवं प्रेरक रही।

कथित सेक्युलर जन तो क्षुद्र स्वार्थवश इस पर भी हो हल्ला करेंगे, जो उनका स्वभाव बन गया है, पर लेखनी निर्भयता से चलती रहे, राष्ट्र प्रेम की धारा को प्रवाहित करती रहे यही कामना, यही प्रार्थना। दीक्षित जी की चित्रकूट–महिमा, मधोक जी का 'इस्लामी आतंकवाद का विनाश और तिब्बत, श्वेत 'केशी' का लेख विशेष बोधगम्य है। 'राष्ट्रधर्म' यथार्थ रूप में राष्ट्रधर्म निर्वहन कर रहा है।

– रूप सिंह, पूर्व प्रवक्ता, (हिन्दी)
बैसवारा, ललितपुर (उ०प्र०)

मैं 'राष्ट्रधर्म' का पाठक एवं शुभचिन्तक हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। इस कार्य हेतु आप प्रयास करें।

सरस एवं सरल कविता को ही स्थान दें। तो अच्छा होगा। अभिमत दो–तीन पन्नों में प्रकाशित किया करें। इससे पाठकों के विचारों से भी अवगत होने का मौका मिलेगा। कम पत्र छपना इस पत्रिका का कमजोर पक्ष है। आशा है कि आप इस पर विचार करेंगे।

– अमिताभ
रैनबसेरा, लहेरिया सराय, दरभंगा (बिहार)

'राष्ट्रधर्म' सितम्बर ६८ को पढ़ा आनन्द का अनुभव हुआ। पृष्ठ ६७ पर कहानी "बिरादरी" जिसके लेखक श्री मदन मोहन पाण्डेय हैं, बहुत अच्छी लगी। यह कहानी युवापीढ़ी के लिए बहुत ही प्रेरक एवं संस्कार-युक्त है।

— ओमप्रकाश शर्मा
वसई, आगरा (उ०प्र०)

आरती शुक्ला (लखनऊ) "राष्ट्रधर्म" के अक्टूबर अंक में लिखती हैं कि 'मधुरेण समापयेत्' में शंकर पुणतांबेकर के व्यंग्य का कथानक मूलकथा से भटक जाता है। मेरे विचार से व्यंग्य कहानी के विपरीत कोई कथा नहीं कहता;बल्कि उसके बहाने हमारी विकृतियों को उजागर करता है। इसलिए व्यंग्य के कथानक में जितना भटकाव होगा, उतना वह व्यापकता लिए होगा। 'राग दरबारी' दस डाउनिंग स्ट्रीट और क्रेमलिन तक भटका है।

— पी० सुहास
२०१, किशोर स्मृति, स्टेशन
रोड, कलवा, मुम्बई-४०००0१

'राष्ट्रधर्म' का 'ज्योति-पर्व विशेषांक' (अक्टूबर १६६८) मिला। आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ डॉ० श्री कृष्ण सिंह सोढ़ का पन्ना धाय पर खोजपूर्ण ऐतिहासिक आलेख नये तथ्यों को उद्घाटित करता है। तिब्बती भाषा में रामकथा (प्रो० जगवंश किशोर), महाभारत कालीन अस्त्र-शस्त्र (डॉ० सीताराम शुक्ल) एवं प्रो० बलराज मधोक जी के आलेख विशेष आकर्षक तथा ज्ञानवर्द्धक रहे। पुष्करनाथ द्वारा 'गालिब की असलियत' का खुलासा सराहनीय है। दीपावली पर यथेष्ट सामग्री के साथ महेश चन्द्र त्रिपाठी, राजबहादुर विकल तथा अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' की रचनाएँ अच्छी लगीं, 'बया पक्षी पर चि०' अभिनन्दन शुक्ल की जानकारी तथा डॉ० माण्डवी दीक्षित की रसोई की बातों के साथ वैद्य दिनेश कुमार शर्मा की ब्राह्मी बूटी पर जानकारी ज्ञानवर्द्धक है। आशा है कि भविष्य में भी इसी प्रकार की सामग्री पढ़ने को निरन्तर मिलती रहेगी।

— कुँवर शिवभूषण सिंह गौतम
छतरपुर (मध्य प्रदेश)

'राष्ट्रधर्म' का ज्योति पर्व विशेषांक मैंने पढ़ा जिसमें ज्ञान की विविधता है। साहित्य और संस्कृति का समावेश है। किन्तु ज्योति पर्व को सार्थक बनाने वाली आदरणीय 'विकल' जी की कविता अति सुन्दर लगी। आज की प्रतिभा, चेतना, जवानी एक किरण है जो पापाचार के अन्धकार के चक्रव्यूह में फँसी हुई है। यह किरण अप्रतिम है, अभेद्य है, अजेय है। विकल जी ने लिखा है "जवानी आग है जिसको अँधेरे कब बुझा पाये, जवानी ज्योति है जिसको नहीं पापी मिटा पाये।" यही किरण जब फूट पड़ती है,तो उन्होंने लिखा है- 'पापों का चक्रव्यूह रचने वाले आचार्य नहीं होंगे। "जब अँधियारों के हाथों से रवि का बलिदान नहीं होगा।" आदि। इस कविता की एक-एक पंक्ति महाकाव्य की अभिव्यक्ति रखती है।

— दिनेश गुरुदेव
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

विदित हो कि 'राष्ट्रधर्म' के विगत अंक में 'महात्मा गांधी बोलतोय' नामक सम्पादकीय प्रकाशित हुआ है। व्यक्त मत तथ्यों के विपरीत और दुर्भावना से प्रेरित है।

— अशर्फी लाल
खेरवा, पुरबावाँ, हरदोई

कितनी खतरनाक है रंग गोरा करने वाली क्रीम

बहुत से लोगों में गोरेपन के प्रति तीव्र आकर्षण होता है। यही कारण है कि बाजार में गोरेपन की क्रीम या फेयरनेस क्रीम की भरमार है लेकिन बहुत कम लोगों को यह पता है कि काले से गोरे बने पॉप स्टार माइकल जैक्शन जैसे व्यक्ति भी अपने चेहरे पर पुरानी रंगत वापस लाने के लिए बेताब हैं।

'कुछ ही हफ्तों में' गोरा बनाने का दावा करने वाली कई प्रमुख कॉस्मेटिक कम्पनियाँ बाजार में अपने उत्पादों के साथ उतर चुकी हैं लेकिन डॉक्टारों और उपभोक्ता संगठनों का कहना है कि लोगों को इन क्रीमों की असलियत का पता नहीं है। उपभोक्ताओं को क्रीम बनाने वाली सामग्रियों और सुरक्षा सम्बन्धी बहुत-सी जरूरी बातें मालूम नहीं हैं। मूलचन्द अस्पताल के वरिष्ठ त्वचाविज्ञानी डॉ० एच० रिजवी का कहना है कि गोरेपन की क्रीम में ज्यादातर हाइड्रोक्विनेन या त्वचा के रंगकणों को कम करने वाली सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाता है, जो गोरा बनाने की प्रक्रिया में त्वचा के प्राकृतिक रंगकणों को नष्ट कर देती है। इनसे त्वचा कैंसर भी हो सकता है।

अमेरिका जैसे देशों में तो इस पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है। डॉ० रिजवी के कथनानुसार उनके अस्पताल में हर महीने कम से कम पाँच मरीज ऐसे आते हैं, जिन्हें गोरेपन की क्रीम के उपयोग से त्वचा सम्बन्धी बीमारी होती है। इससे इन क्रीमों के रासायनिक दुष्प्रभावों का पता चल जाता है।

('राष्ट्रदेव' से साभार)

नाविक

- शंकर पुणतांबेकर

वह नाविक को सुना रहा था और नाविक मन्त्रमुग्ध हो उसे सुन रहा था। अपनी शक्ति तुम नहीं पहचानते तुम्हीं ने इधर से उस शहर की ओर ढो–ढोकर उसे सम्पन्न बनाया है। अनाज, लकड़ी, ईंट, लोहा, दूध, गन्ना, कपास, तिलहन सभी कुछ तो ढोते हो। तुम दूध ढोते हो; लेकिन कभी दूध पीने को मिला तुम्हें? तुम अनाज ढोते हो, कभी भरपेट खाने को मिला तुम्हें? तुम कपास ढोते हो, कभी ठीक से ओढ़ने को कपड़ा मिला तुम्हें? तुम ईंट ढोते हो और और खुद फूस की झोपड़ी में रहते हो। तुम लकड़ी ढोते हो और उसी लकड़ी का डण्डा तुम्हारी पीठ पर बरसता है। वह पुजारी तुम्हें उल्टे–सीधे पाठ पढ़ाता है कि ये तो तुम्हारे पूर्वजन्म के फल हैं। ये पूर्वजन्म के फल नहीं, उन पैसेवालों के कारनामें हैं, जो तुमसे काम तो सोलह आने का लेते हैं; लेकिन तुम्हारे हाथ चार आने ही टिकाते हैं।

वह नाविक को प्रायः इस तरह की बातें सुनाता। कहता, यदि तुम काम बन्द कर दो, तो बड़े लोगों के काम ही ठप्प पड़ जायें। ये लोग जो इतनी सुख–चैन की खाते हैं, वह तुम जैसे गरीबों की मेहनत पर। तुम कभी झूठ नहीं बोलते, ये बोलते हैं। तुम भगवान् से डरते हो, ये नहीं डरते।

वह बड़े प्यार से बोलता। नाव में खुद कुछ खाता, तो उसे भी देता।

बड़े लोग उससे कभी प्यार से नहीं बोले। कहते, जल्दी–जल्दी डाँड़े चलाओ। कुछ खाते, तो अकेले–अकेले खाते। कुछ लोग तो उसके साथ अछूत–सा व्यवहार करते।

नाविक को लगता प्यार–भरी बातें करनेवाला वह आदमी ईश्वर की सन्तान है और ये बड़े लोग शैतान की।

एक दिन नाव मँझधार में उलट गयी।

नाविक को बड़ा धक्का लगा, जब उसने देखा कि प्यार–भरी बातें करनेवाला तो डूब गया और जितने भी शैतान की सन्तान थे, वे बच गये।

हे भगवान्, यह कहाँ का न्याय है। जो आदमी से प्यार करता था, वह डूब गया और जो आदमी को लूटते हैं, वे बच गये। तुम्हारा शास्त्र तो कहता है, जो पापी होते हैं, वे दण्ड पाते हैं।

वह जवाब के लिए पुजारी के पास गया।

पुजारी ने कहा, वह नौजवान नास्तिक था। वह ईश्वर की बनायी हुई व्यवस्था के खिलाफ बोलता था, सो डूब गया, बल्कि उसे डुबाने के लिए ही भगवान् ने नाव उलटा दी। जिन्हें तुम शैतान की सन्तान कह रहे हो, वे शैतान की नहीं भगवान् की सन्तान हैं, तभी तो वे डूबे नहीं। शैतान की सन्तान तो वह डूब जानेवाला नौजवान था। तुम्हें उस नौजवान की मौत पर दुःखी नहीं होना चाहिए; बल्कि खुशी होनी चाहिए और याद रखो, तुम्हारी नाव इन बड़े लोगों पर जिन्दा है, उस नौजवान जैसे कंगालों पर नहीं। वह नौजवान नरक में जायेगा; क्योंकि वह मुझे उलटी–सीधी सुनाता था।

नाविक को विश्वास नहीं हुआ कि नौजवान नरक में जायेगा, उसी को डुबाने के लिए भगवान् ने नाव उलटायी और वे बड़े लोग भगवान् की सन्तान हो सकते हैं।

उसके मन को शान्ति नहीं थी। वह उस आदमी के पास गया, जिसके बारे में नौजवान बताया करता था। कहता था, वह मेरा गुरु है; कहता था, वह आदमी नहीं महात्मा है।

वह आदमी बोला, नौजवान की मौत से मुझे भी बड़ा दुख है प्यारे भाई! पुजारी ने नौजवान की मौत पर खुशी मनाने को कहा, लेकिन मैं तो तब खुशी मनाता, जब वे शैतान की सन्तान डूब जाते ; किन्तु वे लोग कैसे डूब सकते हैं। उनके पास तुमड़ियाँ हैं, बचने के सब साधन उपलब्ध हैं। नौजवान के पास कोई साधन नहीं था, सो वह डूब गया। साधनों पर बड़े लोगों का कब्जा है। वे बड़े लोग कहते हैं तुम लोग तैरना सीखो, तैरना। आदमी तैरना सीख भी ले, नाव की परवा ही न करे, पर जो पानी में मगर हैं, उनसे कैसे बचे। यह पुजारी भगवान् को बीच

में लाकर तुम्हारी विवेक बुद्धि भ्रष्ट करता है। यह भगवान का नहीं, इन्हीं बड़े लोगों का पुजारी है। मैंने उन बड़े लोगों से कहा कि तुम इधर गाँव की बस्ती में जहाँ से अपने सुख-चैन के लिए सारा सामान लूटकर ले जाते हो, अस्पताल बनावा दो, सड़कें बनवा दो, सिंचाई-सफाई की व्यवस्था करो, मनोरंजन के साधन जुटा दो, तो उन्होंने यह कुछ न करके एक मन्दिर खड़ा कर दिया। इस मन्दिर में पुजारी बैठा-बैठा लोगों को बताता है कि यह तुम अपने पूर्वजन्म के फल भोग रहे हो। अब क्या बताऊँ तुम्हें। इस पुजारी का जब-जब पैसा चोरी चला गया, तो दहाड़ मार कर रोया। वही जब मन्दिर के भगवान की चोरी हो गयी, तो बस हे भगवान्! हे भगवान! ही करता रहा।

सुनकर नाविक का मन इतना त्वेष से भर गया कि उसने दो-चार बार बड़े लोगों से भरी नाव को उलट दिया। कुछ लोग मगर के शिकार बने।

इधर वह इस टोह में था कि पुजारी को उलट दूँ।

पर नाविक स्वयं उलट-पलट हो गया। बड़े लोगों ने बाँस-रस्सी का पुल बनवा लिया और कुछ ही दिनों में पक्के पुल का काम शुरू हो गया।

यह पुल बड़े लोगों के पास पहुँचा कैसे? इसक ज्ञान तो उस नौजवान के गुरु के पास ही था, नाविक सोचा। गुरु ने नौजवान को इस पक्की नाव के बारे बताया था और कहा था, इसे वह शैतान की सन्तानों हाथ नहीं पड़ने देगा। गुरु के पास इतना ज्ञान था कि व स्वयं भगवान् लगता था और उसका छोटा-सा घर मन्दि

यह पुल तुम बनवा रहे हो? इन्जीनियर के त में जाकर और चाकू दिखाकर नाविक बोला।

उसके चाकू को देखकर इन्जीनियर डरा नहीं बोला, तुम मुझे मार दो नाविक। मैंने अपने गुरु के सा गद्दारी की है। पर क्या करूँ, मजबूर हो उठा। गुरु बचाने के लिए हमारे ज्ञान-विज्ञान-चेतना को भूखों म से बचाने के लिए।

यह सुनकर नाविक का चाकू हाथ से गिर पड़

दूसरे दिन नाविक पुल के मजदूरों में भरती गया।

□

— २ मायादेवी नगर, जलगाँव — ४२५०

अ०भा० साहित्यकार परिषद् का राष्ट्रीय अधिवेशन

साहित्य की दशा और दिशा पर चिन्तन

भारतीय साहित्य के समुचित उन्नयन और विकास को समर्पित संस्था अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के गत २४/२५ अक्टूबर को सोनीपत (हरियाणा) में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य की दशा और दिशा' पर व्यापक परिचर्चा सम्पन्न हुई, जिसमें साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर गहन चिन्तन किया गया।

समारोह का उद्घाटन करते हुए मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ० मुरली मनोहर जोशी ने अपने सारगर्भित उद्बोधन में भारत की करोड़ों वर्ष पुरानी सनातन परम्परा में प्रत्येक धार्मिक कार्य में पढ़े जाने वाले 'संकल्प' में नित्य स्मरण की जाने वाली काल गणना के महत्त्व को समझने पर विशेष बल दिया और कहा कि तथाकथित प्रगतिशीलों की तरह इक्कीसवीं सदी में जाने की रट लगाते रहने के बजाय भारतीय चिन्तकों को बावनवीं शताब्दी में प्रवेश की बात करनी चाहिए।

इसी अवसर पर उन्होंने वीररस के ख्याति-प्रा कवि दामोदर स्वरूप 'विद्रोही' की दो पुस्तकों— 'गुल शैशव' तथा 'दिल्ली की गद्दी सावधान' के अतिरिक्त व अन्य पुस्तकों का विमोचन भी किया।

समारोह में सर्वश्री आचार्य विष्णुकान्त शास भण्डारू सदाशिवराव, डॉ० दयाकृष्ण विजय, डॉ० श बिहारी गोस्वामी, नरेन्द्र कोहली, दया प्रकाश सिं देवेन्द्र स्वरूप, कन्हैया सिंह सहित देश भर के दो सौ अधिक साहित्यकारों ने सहभागिता की। साथ ही रा में अनूठा भव्य कवि-सम्मेलन भी आयोजित हुआ।

अधिवेशन के अन्तिम चरण में आगामी ३ वर्षों लिए श्री भण्डारू सदाशिव राव को परिषद् का अध्य डॉ० दयाकृष्ण विजय को कार्यकारी अध्यक्ष तथा कन्हैया सिंह को महामन्त्री मनोनीत किया गया। □

प्रस्तुति— 'पर्यट